UGC Care Listed

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

वर्ष-12, अंक-43, अक्टूबर - दिसम्बर 2022

ISSN-2321-1504 Nagfani

RNI No. UTTHIN/2010/34408



नागफनी

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य

भाग-1

मूल्य

₹ 150/-

अगामी अंक की सूचना

जनवरी से मार्च 44वाँ अंक के लिए आगामी 30 दिसम्बर 2022 तक ही आलेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 दिसम्बर के बाद प्राप्त आलेख को उसके आगे वाले अंक के लिए रखा जाएगा। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं। स्वीकृति संबंधी मेल प्राप्त होने के बाद सदस्यता के बारे में जानकारी के लिए सम्पर्क कर सकते हैं. सदस्यता के संबंध में नागफनी के वेवसाइट पर विस्तार से जानकारी दी गयी है."नागफनी" अस्मिता,चेतना,और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है पत्रिका का ISSN-2321-1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख nagfani81@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें।व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी । शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।

आलेख भेजने संबंधी निर्देशः-

- शोधालेख यूनि कोड kokila फॉन्ट 14 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDF दोनों में भेजना है ।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण-पत्र
- अन्य किसी टाइप फश्वन्ट को स्वी त नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

भाग – 01

नागफनी

A Peer Reviewed Refereed Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)
UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504NagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

संपादक
सपना सोनकर

सह संपादक
रूपनारायण सोनकर

Co Editor(English)
Prof.Rajesh karankal
Dr.Santosh Kumar Sonkar

कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

वर्ष-12 अंक 43,अक्तूबर-दिसम्बर -2022

सलाहकार मण्डल (Peer Review Comittee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
डॉ. आर. कनागसेल्वम, इरोड (तमिलनाडु)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर मोहनलाल 'आर्य' मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)
डॉ.जी.व्ही .रत्नाकर हैदराबाद(तेलंगाना)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन.पी.प्रजापति एवं प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य।

मुख पृष्ठ– उत्कर्ष प्रजापति, सिंगरौली - मध्यप्रदेश

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.0941077718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी. आर. -62 ए ब्लॉक कॉलोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म. प्र. पिन-486886 मो. 09752998467

सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1500/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-3000/-रुपये, पंच वार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए –3500/-रुपये, विदेशों में$50 आजीवन व्यक्ति-6000/-रुपये,संस्था-10,000/-रुपये।

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक–A/C –8367100138282 IFSC Code-IPOS0000001 Branch-sidhi, NIRPAT PRASAD PRAJAPATI

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।**'नागफनी'**में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वयं के हैं। जिनमेंसंपादक की सहमति अनिवार्य नहीं हैं।**'नागफनी'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड़ें दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gmail.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http:naagfani.com

नागफनी

वर्ष-12 अंक43,अक्तूबर -दिसम्बर 2022

अनुक्रम पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय 5
पाठकों की प्रतिक्रिया 6
साहित्यिक विमर्श
1.नवें दशक का हिंदी साहित्य और युवा आक्रोश-**विष्णु सरवदे** 7-9
2.तुलसी के काव्य में प्रकृति चित्रण-**डॉ.कपिलदेव प्रसाद निषाद** 10-12
3.मोहन राकेश की कहानियों में सामाजिक यधार्थ -**डॉ.संदिरेड्डी सुभाषिणी** 13
4.दीपा मेहता की 'फायर' फिल्म में क्वीर (Queer) प्रतिनिधित्व-**सलीजा .ए .पी** 14-15
5.'माधवी' नाटक की रंगमंचीयता-**डॉ.जस्टी इम्मानुएल** 16-17
6.नाट्यालेख और रंगालेख का अंतर्संबंध-**सोहन कुमार** 17-19
7.हिंदी की कविताओं में 'देश प्रेम'-**डॉ.विजय भास्कर लावणे** 20-21
8.समसामयिकता के संदर्भ में अनागत कविता- **डॉ. रीना सिंह** 22-23
9.खिली हुई धूप का रूपक : मुकेश मानस-**डॉ. कर्मानन्द आर्य** 23-25
10.रघुवीर सहाय के निबंधों एवं लेखों के विविध आयाम-**डॉ. प्रमोद पडवळ** 26-27
11.गोस्वामी तुलसीदासजी के काव्य की प्रासंगिकता-**डॉ.अजित चुनिलाल चव्हाण** 28-29
12.हमारा दुख अपना ही रहा-**डॉ.वैशाली खेडकर** 29-30
13.छायावाद और रोमांटिक काव्यधारा-**डॉ.विजय महादेव गाडे** 31-32
14.संस्कृति के विविध आयाम एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी का चिंतन जगत-**संजीव कुमार मिश्र** 33-34
15.रंगभाषा: एक सतत सृजनशील प्रक्रिया-**डॉ.कुसुमलता मलिक** 34-36
16.गोरखनाथ की बानियों में सामाजिक चेतना-**कृष्ण कुमार साह** 36-38
17.मैला आँचल का समाज शास्त्रीय अनुशीलन-**प्रभात कुमार द्विवेदी** 39-40
18.जय शंकर प्रसाद के 'आँसू' में शोक की अभिव्यक्ति-**डॉ वीणा जे** 41-42
19.बाल मनोविज्ञान: बाल साहित्य के सन्दर्भ में- **श्री विद्या पी.वी./ डॉ.जी.शान्ती** 43-45
20..खंजन नयन उपन्यास का सामाजिक मूल्यांकन-**नवीन** 45-47
21.यशपाल के साहित्य-रचना के विभिन्न वर्ण्य-विषय-**डॉ.अंजू बाला** 47-50
22.वैयक्तिक प्रगीत कविता में बिम्ब-विधान-**रेणु बाला** 50-51
23.मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में चित्रित मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक समस्याएं-**शमीम पी** 52-53
24.आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की आलोचना दृष्टि और 'निराला'-**मनीष कुमार भारती** 54-55
25.डॉ.कमल किशोर गोयनका की दृष्टि में प्रेमचंद की भारतीयता -**अनिल कुमार पाण्डेय** 56-57
26.ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में सामाजिक जीवन-**स्वालियाबेगं आर कोप्पल/प्रो. राजू एस.बागलकोट** 58-59
27.अग्निशेखर की रचनाओं में विस्थापन जनित मानवीय वेदना-**गीता शास्त्री/डॉ.एस प्रीति** 59-60
28.भारत की आजादी में छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का योगदान-**डॉ.रेशमा अंसारी** 61-63
29.लोक गायन शैली-कजरी-**डॉ. दीप सिंह** 63-65
30.'काली बिल्ली' कहानी संग्रह में चित्रित सामाजिक चेतना-**हरिजन प्रकाश यमनप्पा** 66
31.डॉ.श्रीराम परिहार के ललित निबंधों में अभिव्यक्त पर्यावरण चेतना-**डॉ.जितेंद्र पीतांबर पाटिल** 67-68
32.कनुप्रिया:विशिष्टाद्वैत की आड़ में-**डॉ.आण्टणी पी.एम.** 68-69
33.'कुल जमा बीस' वर्चुअल दुनिया की चकाचौंध में फँसे युवाओं का मार्मिक आख्यान-**राजेश चौहान/डॉ.अर्चना शर्मा** 70-71
34.विनय पत्रिका में उदात्त तत्व-**डॉ.आशा बिष्ट** 72-73
35.सुशीला टाकभौरे के नाटकों में चित्रित सामाजिक मूल्य: एक अनुशीलन-**डॉ. दोड्डा शेषु बाबु** 73-74
36.डॉ.शान्ति सुमन के गीत:एक अध्ययन-**मोहन कुमार** 75-77
37.समकालीन हिंदी-कन्नड़ उपन्यासों में पर्यावरण विमर्श (ऐखना मेरी जान' और गालक्के सिक्का चंदिर के संदर्भ में)-**रूपा प्रभु बी./प्रो. संजय.एल.मादार** 78-79
38.श्री जवाहर ज्योति महाकाव्य में वर्णित परिस्थितियों का संक्षिप्त मूल्यांकन-**विनीता शर्मा /डॉ.नीलम गुप्ता** 79-82
39.सूत्रधार: भारतेन्द-**पूनम शर्मा** 82-84
40.येछे दरजे ठंचि के उपन्यास "लिङ्झिक" में परिलक्षित पीढ़ियों के बीच संघर्ष-**डिम्पी रानी बर्मन/प्रफुल्ल कुमार नाथ** 84-85
41.हिंदी कथा साहित्य में लघु कथाकारों का योगदान -**डॉ.मीना मिलिंद ठाकूर** 86-88
42.ममता कालिया के दौड़ उपन्यास में चित्रित महानगरीय जीवन-**डॉ.अजय जी कम्मत** 88-90
43.मनुष्य के अपराजित हौसले की कहानी 'अपाहिज'-**मदालसा मणि त्रिपाठी/डॉ.विश्वजीत** 90-91
44.इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी कहानियों में संवेदना के विविध रूप-**राठोड़ ज्योति चंद्रकांत** 92-93
45.हरियाणवी लोकगीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन-**श्रवण कुमार यादव/ डॉ. एन.पी. प्रजापति** 94
46 .सुल्ताना का स्वप्न-**डॉ.माधवी लता** 95-97
47.त्रिशी जन-जाति के मौखिक साहित्य का स्वरूप-**तेची यापेरा/प्रो./शिवम चतुर्वेदी** 98-99

स्त्री विमर्श

1.पाश्चात्य स्त्री-विमर्श का इतिहास -**डॉ.महेश दवंगे** 100-121
2.भारत में स्त्री शिक्षा और उनके अधिकार-**डॉ.मोहन लाल 'आर्य'** 102-103
3.भारतीय नारी और सामाजिक मान्यताएं-**डॉ.अरविंद अंबादास घोडके** 103-104
4.'औरतें': स्त्री जीवन की व्यथा का ब्यौरा-**डॉ.अन्सा ए** 105-106
5.मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'गुनाह बेगुनाह' में नारी चेतना-**अंजलि** 106-108
6.हंडा में दबी हुई स्त्री'-**डॉ.मिनी ए.आर** 109
7.दलित स्त्री आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में चित्रित सांस्कृतिक परिदृश्य-**नीतामणि बरदलै/नूरजहान रहमातुल्लाह** 110-111
8.लोक कथाओं में चित्रित स्त्री जीवन: मिज़ो लोक कथाओं के संदर्भ में-**डॉ.वंदना भारती** 111-113
9.आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्ष और स्त्री संघर्ष: महिला उपन्यासकारों के विशेष संदर्भ में-**सुशीला/डॉ.मंजुला तोमर** 114-115
10.'दक्षिणी कामरूप की 'गाथा'उपन्यास में पुरुष तांत्रिक समाज व्यवस्था का वर्णन-**किरण कलिता** 116-117
11.हिंदी के समकालीन स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त स्त्री-संघर्ष -**सेलीष्या जोसफ/डॉ.मेरली के पुन्नूस** 118-119
12.अल्मा कबूतरी उपन्यास में कबूतरा स्त्री-**मयुरी मजुमदार** 120-121
13.हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन-**विनीता ठकरेले लोधी /डॉ.समयलाल प्रजापति** 122-123
14.इक्कीसवीं सदी के हिंदी लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी- **बबीता कुमारी** 124-125
15.नारी-अस्मिता के प्रश्न और 'ध्रुवस्वामिनी'**-डॉ.समरेन्द्र कुमार** 126-127
16.अब बाजार स्त्री के कदमों में है : अनीता वर्मा की कविता-**कार्तिक राय** 128-129
17.पंकज सुबीर की कहानियों में स्त्री छवि-**डिन्सी जोर्ज/डॉ.जी.शान्ती** 130-131
18.मैला आँचल के स्त्री पात्र-**डॉ.माया सगरे-लक्का** 131-133
19.हिन्दी और तेलुगु के नारी उपन्यासों में सामाजिक आन्दोलन का प्रभाव(चुने हुए उपन्यासों के संदर्भ में)**-बी.रविंदर** 133-135
20.महात्मा बुद्ध के शैक्षिक विचारों में नारी शिक्षा की स्थिति का एक अध्ययन-**प्रज्ञा बौद्ध /प्रो रामबली यादव** 135-137
21. मेहरून्निसा परवेज के उपन्यासों में स्त्री विमर्श-**सुश्री दुर्गावती** 138-139

दलित विमर्श

1.'हमारे हिस्से का सूरज' में अभिव्यक्त दलित चेतना एवं सामाजिक परिवर्तन-**डॉ. जी. वी. रत्नाकर** 140-141
2.पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए डॉ. बी. आर. अम्बेडकर प्रतिपादित विकास रणनीति की समीक्षा-**डॉ.धीरज कदम** 141-144
3..डॉ.तुलसी राम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' में अंधविश्वास-**डॉ.मृत्युंजय कोईरी** 144-146
4.विमर्श नहीं दलित चेतना है मुक्ति का आधार(ऐतिहासिक व सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य)-**डॉ.रविन्द्र गासो** 147
5.'सामाजिक न्याय और अस्मिता संघर्ष के लिए "मादिगा दंडोरा" आंदोलन'**-डॉ. जी. राजु** 148-149
6.डॉ.अंबेडकर के द्वारा नारी उत्थान हेतु किये गये प्रयासों एवं हिंदू कोड बिल का संक्षिप्त मूल्यांकन-**गृहशोभा/डॉ.अनिल कुमार दीक्षित** 149-151
7.समतावाद की नींव रखता 'प्रत्यंचा'उपन्यास'-**आशा त्रिपाठी/प्रो.दिनेश कुशवाह** 152-153
8.स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में दलित चेतना- **सुनीता सिंह** 153-155
9.मुसहर समुदाय का जीवन-संघर्ष-**राम नाथ कुमार** 156-158
10.दलित साहित्य की वैचारिकी-**अंकित कुमार वर्मा** 159-161
11.हिन्दी दलित नाटकों में अस्मिताई संघर्ष-**विभिषण कुमार** 162-163

आदिवासी विमर्श

1.पूनम वासम की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन-दृष्टि-**लाली कुमारी** 164-165
2.राष्ट्र निर्माण के कार्य मे आदिवासी नायकों का योगदान-**डॉ.मनोहर भी.यैरकलवार** 166-168
3.आदिवासी मराठी साहित्य:एक विचार(महाराष्ट्र के आदिवासी जीवन पर आधारित काव्य संग्रह 'वनवासी'के संदर्भ में)-**डॉ. नितीन कुमार जानबाजी रामटेके** 168-169

किन्नर विमर्श

1.अस्तित्व की तलाश में सिमरन: किन्नर अस्मिता का जीवंत दस्तावेज-**डॉ.नीरज शर्मा** 170-171
2.किन्नर समाज और मीडिया-**डॉ.मीनाक्षी बी. पाटील** 172-173
3.भारतीय समाज में ट्रांसजेंडर समुदाय: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण-**घनश्याम कुशवाहा** 174-176
4.'नाला सोपारा': अभिशप्त जीवन की त्रासदी-**डॉ.गरिमा तिवारी** 177-179

विविध विमर्श

1.उच्च शिक्षा : हिंदी भाषा की स्थिति एवं चुनौतियाँ(दक्षिण भारत के हैदराबाद महानगर के संदर्भ में)-**डॉ.पठान रहीम खान** 180-182
2.पंचयातों में महिला आरक्षण, के 30 वर्ष:सशक्तिकरण यथार्थ या मिथक-**डॉ. संजय यादव** 183-185
3.भूमि उपयोग का अर्थ एवं महत्व एक भौगोलिक अध्ययन **-प्रदीप कुमार/डॉ. सालिक सिंह** 186-187
4.भारत के लोकतांत्रिक यात्रा में राजनैतिक पक्ष की भूमिका (स्वतंत्रता पूर्व एवं पाश्चात्य के विशेष संदर्भ में)-**डॉ.शशिकांत जे. चवरे** 188-192
5समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में वृद्धजनों की समस्याओं का विश्लेषण(बनबसा नगर पंचायत क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)- **रेनू बाला** 193-195
6.प्राकृतिक आपदाओं का मानव जीवन के आर्थिक विकास पर दुष्प्रभाव तथा इसका प्रबंन्ध झुन्झुनू जिले के सन्दर्भ में-**रामावतार वर्मा-डॉ. सालिक सिंह** 196-197
7.प्रथम लंदन यात्रा के दौरान मोहनदास के अनुभव: एस.एस. क्लाइड जहाज के संदर्भ में-**सूर्य प्रकाश** 197-198
8.झुन्झुनू जिले में पर्यावरण अवनयन के कारको एवं होने वाली हानियों के प्रबंधन-एक भौगोलिक अध्ययन-**सवित राज/डॉ.सालिक सिंह** 199-201

9.उदारवादी अर्थव्यवस्था में पत्रकारिता के क्षेत्र में तकनीकी के बदलते आयाम:कृत्रिम बुद्धिमता(AI)के विशेष संदर्भ मे-**डॉ.मनीष शर्मा** 201-203
10.शिक्षा एवं व्यापक शिक्षा में नवाचार:भूमिका एवं महत्व-**डॉ.राजकुमारी गोला** 203-204
11.सामाजिक विकास में दिव्यांगजन-**प्रेमकुमार नाईक** 205-206
12.भारतीय समाज में ई- शासन प्रणाली की उपयोगिता-**डॉ.हरिन्द्र कुमार/डॉ.हरेन्द्र कुमार** 207-209
13.पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन-**देवेन्द्र कुमार /प्रो.रामबली यादव** 209-211
14.प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों'का अध्ययन-**गीता पांडे /डॉ.हलधर यादव** 211-213
15.आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य एवं विकास-**शिप्रा अग्रवाल/डॉ.हलधर यादव** 214-216
16.ग्रामीण समाज पर भूमि सुधार कार्यक्रमों के प्रभाव का समाज शास्त्रीय अध्ययन-**डॉ.रवीश कुमार सिंह** 216-217
17.गिग श्रमिकों के मुद्दे और चुनौतियां: ई-कॉमर्स उद्योग के विशेष संदर्भ में-**संजीत कुमार/ विनोद सेन** 218-221
18.मीडिया में हिन्दी और रोजगार की संभावनाएँ-**डॉ.राजशेखर उ.जाधव** 222-223
19.वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की भारत वर्ष में स्थिति का अध्ययन-**जयप्रकाश यादव /डॉ.हलधर यादव** 223-226
20.भारत में प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता को बढ़ाने वाले विभिन्न कारकों का विश्लेषण- **मनीषा सिंघल/डॉ.सीता देवी** 226-227
21.महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानन्द के विचारों का स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययन-**कृष्णा सिंह अधिकारी/ डॉ.मंजूला सिंह** 228-229
22.किशोरावस्था में सामाजिक परिपक्वता-विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि का अध्ययन-**ममता मेहरा/डॉ.मंजुला सिंह** 230-231
23.स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन एवं मानवतावादी दर्शन-**पूनम रानी/डॉ.हलधर यादव** 232-233
24.प्रेरणा और व्यक्तित्व के विकास में शैक्षणिक उपलब्धि की भूमिका-**पंकज कुमार सिंह/डॉ. सीता देवी** 234-235
25.कृषि तकनीकी परिवर्तन का अर्थ महत्व एवं उपयोगिता का एक अध्ययन-**पूनम यादव/डॉ. सालिक सिंह** 235-237
26.प्राथमिक शिक्षा के सर्वांगीण विकास में शिक्षा का अधिकार अधिनियम का संक्षिप्त मूल्यांकन- **रंजन शर्मा/डॉ.सीता देवी** 238-240
27.प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापकों की शिक्षण क्षमता का अध्ययन-**सचिन कुमार गुप्ता/ डॉ.हलधर यादव** 241-242
28.विवेकी राय जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की सामाजिक,आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का अध्ययन-**आनन्द सावरण /डॉ.मंजूला तोमर** 242-244
29.किशोर छात्रों के विघटनकारी व्यवहार पर रचनात्मक प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन-**अनुग्रह नारायण सिंह/डॉ.सीता देवी** 245-246
30.राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का अध्ययन-**अजय कुमार/प्रो.महेन्द्र प्रसाद पाण्डेय** 246-248
31.माध्यमिक तथा उच्च शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों का पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन- **परिना बंसल/डॉ.मोहन लाल 'आर्य'** 249-251
32व्यावसायिक शिक्षा नीति में आरक्षित और औसत छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध का अध्ययन-**शशि शर्मा/डॉ.हलधर यादव** 251-253
33.जसिंटा केरकेट्टा के कविता संग्रह "जड़ों की जमीन" में प्रतिरोध के विविध स्वर-**कु.रेशम सोनकर** 254-256
34.भारतीय शिक्षा में स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन-**ओमपाल सिंह/डॉ.हलधर यादव** 256-258
35.मुक्तिबोध का गद्य : भाषा एवं शिल्पगत परिप्रेक्ष्य-**डॉ.लक्ष्मीकान्त चंदेला** 259-260
36.प्रौढ़ शिक्षा से 'सबके लिए शिक्षा' तक का सफर-**डॉ.अनिल कुमार सिंह** 261-262
37.समकालीन कविता का अस्तित्ववादी रूप और मूल्यबोध-**डॉ.मार्तण्ड कुमार द्विवेदी** 263-265
38.सूर्यबाला के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना-अंजुम आरा बेगम/डॉ.रमणी चन्द्राकर 266-267
39.प्रवासी जीवन और सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन- नवी हसन 268-271
40.An Analytical Study Of The Bhagavad Gita's Teachings: A Guide To Success In Human Life-Mani Sharma, Prof. Harish Kumar Tyagi 272-276
41.स्रोतों का सर्वेक्षण और इतिहास लेखन की परंपरा-डॉ.स्वाती रंजन चौधरी 277-280
42 डॉ.मधुधवन की कहानियों में नारी पक्षधरता के विविध आयाम-श्रीमती सुधा.वी., आचार्य डॉ.वी.जगन्नाथ रेड्डी 281-284
43.Environmental Impacts of Tourism : An Approach to Sustainable Tourism Development--Shri Bhaskar R. Patgar 285-286
44.समकालीन दलित स्त्री कविता में प्रतिरोध का स्त्री-स्वर-आम्बालिका जायस्वाल,डॉ.रामचंद्र रजक 287-290
45.स्नातक छात्रों में सामाजिक चिंता : एक मात्रात्मक चिंतन-कुन्ती कुमारी, डॉ.बसंत कुमार 291-294
46.शिवमूर्ति के उपन्यास में अभिव्यक्त किसान संघर्ष -डॉ.एल.पी.लमाणी 295-296
47 Gender Performance: Reflection on Feminism in Sue Monk Kidd's The Mermaid Chair-Pooja Joshi,Anil Sehrawat 297-300
48. भरहुत के अभिलेखों में दान की अवधारणा · मोहिनी शर्मा,डॉ.सुप्रिया संजू 301-304
49.वैदिक चिंतन परंपरा में संपोषी विकास की अवधाराणा-**शुभम केसरी,प्रोफ्रेसर राजवीर शास्त्री, डॉ.श्रुतिकांत पाण्डे** 305-307
50.Environmental Consciousness Through Storytelling: A Curriculum Integration Case Study-**Prekshi Saini,Dr. Anshu Mathur, Dr. Sheena Thomas** 308-312
51.Teachings of Bhagavad Gita: A Tool for Ethical Emancipation of Secondary School Students.-**Ms. Mani Sharma, Professor Harish Kumar,Dr. Anuradha Sekhri** 313-322
52.Indian Democracy & Role Of Panchayathi Raj Institution & Ict In Empowerment Of Youth-**Dr.S.Narayan** 323-325
53.Analysis of trends and challenges of urbanization and land use pattern. A case study of Lucknow city-**Dipti Maurya, Pradip Kumar** 326-331
54.प्रतिनिधि कथाओं में बाल किन्नर जीवन-**सोमनाथ रामचंद्र चव्हाण** 332-334
55 पाठ्य पुस्तकों तथा पाठ्य सामग्री द्वारा कौशलों का विकास: विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० एवं २१ वीं शताब्दी के निहितार्थ-**कृति गुलेरिया,डॉ.अलका मुदगल** 335-338
56.'बुनियाद' विभाजन की दास्ताँ-**डॉ. कविता शर्मा** 339-340
57.अल्मोडा जनपद के माध्यमिक विदयालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण के संदर्भ में उनकी शैक्षिक चिंता का अध्ययन : **प्रो.अनिता जोशी,आशा आर्य** 341-349
58.आइएमटीम विश्वविद्यालय में प्रयुक्त हो रहे गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अभ्यासों का एक अध्ययन-**लक्ष्मी प्रसाद, डॉ.हरिओम चौहान** 350-352
59. परिवारिक वातावरण का उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास पर पडनेवाले प्रभाव का अध्ययन-- **राहूल, डा.हरिओम चौहान** 353-355
60. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं में अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन- **कु.मोनिका, डॉ.राजकुमारी गोला** 356-359

नागफनी
वर्ष-12 अंक 43 , अक्तुबर - दिसंबर -2022

अनुक्रम पृष्ठ क्रमांक

61. मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन–**कविता गर्ग, डॉ. मोहन लाल 'आर्य'** 360-365
62. मुरादाबाद विकासखण्ड में जनसंख्या वृद्धि एवं भू–दृश्य परिवर्तन एक भौगोलिक अध्ययन–**राहुल कुमार,डॉ. मोहन लाल 'आर्य'** 366-369
63. मुरादावाद मंण्डल के कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्वता के प्रभाव का अध्ययन–**जया ओझा,प्रा.डा.राजकुमारी सिंह** 370-374
64. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के शिक्षक प्रशिक्षण स्तर में कार्यरत शिक्षकों की जीवन शैली पर उनके पारिवारिक कारकों का प्रभाव–**ममता राजपूत,प्रो.डा. राजकुमारी सिंह** 375-378
65. वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत् शिक्षकों की मूल्य एवं शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन–**अभिषेक यादव,डॉ.भूपेन्द्र कौर** 379-382
67. चाक उपन्यास में सत्ता, संस्कृति और स्त्री–**प्रियंका चौधरी** 383-386
68. बिजनौर जनपद में स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, तथा सह-शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन-मनीषा, डॉ.हरिओम चौहान 387-390
69. A STUDY OF RELATIONSHIP BETWEEN U.P. AND C.B.S.E. BOARDS PRINCIPALS' ADMINISTRATIVE EFFECTIVENESS AND THEIR INSTITUTIONAL ACADEMIC PERFORMANCE-**Gaurav Kumar,Dr. Mohan Lal Arya** 391-393
70.वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित बी.एड.महाविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण का अध्ययन **-राजकुमार , डॉ.भूपेंद्र कौर** 394-397
71. Effect of Menstrual Cycle on Physical Fitness of Football Players-**Dr. Ayaz A.Khan, Dr. Alok Kumar Singh, Prerna Mishra** 398-399
72.The Impact of Reflective Practice on Teacher Professional Growth-**Km Indu, Dr. Neetu M Shukla, Dr. Nandita Deb** 400-405
73. नागार्जुन के उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ-**डॉ.सपना भूषण** 406-408
74. संस्कृत नाट्य साहित्य में रामचन्द्र सूरि का योगदान -एक अध्ययन-**जयश्री जोशी, डॉ.राघव कुमार झा** 409-412
75.Eco-critical Consciousness in Ancient Vedic Wisdom: Prithvi Sukta and its Contemporary Geopolitical Relevance-- Dr. Sanjay Verma,Lalit Kumar 413-418
76."A Study Of Transgressive Depiction Of Gender In The Select Films" : Daayraa, Margarita With A Straw, And Badhaai Do.- Maitreyee 419-424
77. आधुनिक भारत और अहिल्याबाई होल्कर-डॉ. शारदा गौतम 425-427
78.मीरा कान्त के नाटक और स्त्री प्रश्न-डॉ.अशोक कुमार मीणा,डॉ. कंचन 428-430
79. Ensuring Digital Privacy for Children: Addressing Emerging Challenges in India-Dr. Inderpreet Kaur Narang 431–439

संपादकीय .....

हम विशाल देश भारत के निवासी हैं और जब हम भारत देश को अपने दृष्टि पटल पर लाते है तो गर्व से सीना चौड़ा हो जाता है.क्योकि यही वह देश है जहां तथागत बुद्ध ने जन्म लिया और समता स्वतन्त्रता, बन्धुत्व और न्याय का पाठ पढाया. साथ ही पंचशील ,चार आर्य सत्य और सम्यक मार्ग दिया, जिसे दुनियां के कई देश अपने जीवन में अपनाकर उन्नति के पथ पर अग्रसरित हैं. आपको विदित होगा की भारत (आधिकारिक नाम: भारत गणराज्य, अंग्रेज़ी: Republic of India) दक्षिण एशिया में स्थित भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे बड़ा देश है। भारत भौगोलिक दृष्टि से विश्व का सातवाँ सबसे बड़ा देश है, जबकि जनसंख्या के दृष्टिकोण से चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारत के पश्चिम में पाकिस्तान,उत्तर-पूर्व में चीन(तिब्बत), नेपाल और भूटान, पूर्व में बांग्लादेश और म्यान्मार स्थित हैं। हिन्द महासागर में इसके दक्षिण पश्चिम में मालदीव, दक्षिण में श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व में इंडोनेशिया से भारत की सामुद्रिक सीमा लगती है। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत तथा दक्षिण में हिन्द महासागर स्थित है। दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में अरब सागर है।इसी भारत भूमि पर सिंधु घाटी सभ्यता फली फूली, ईसा पूर्व संस्कृत भाषा सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में फैली, वेदों की रचना से लेकर उपनिषद पुराण आदि लिखे गये.इसी धरती पर बौद्ध एवं जैन धर्म उत्पन्न हुए. तत्कालीन राजनीतिक एकत्रीकरण ने गंगा बेसिन में स्थित मौर्य और गुप्त साम्राज्यों को जन्म दिया। जिसके बारे में कहा जाता है की उनका समाज विस्तृत सृजनशीलता से भरा हुआ था। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में, इसाई, इस्लाम, यहूदी और पारसियों ने भी भारत में आकर अपनापन का एहसास किया.पंजाब में सिख धर्म की स्थापना हुई। इसी भारत की धरा में में धीरे-धीरे ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का विस्तार हुआ, जिसने भारत को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदल दिया तथा अपनी संप्रभुता को भी ताकतवर बनाया. ब्रिटिश राज शासन का विरोध 1857 में शुरू हुआ। सहिष्णु भारतीयों ने जब देखा की हमारे उदारता का इस कदर अपमान हो रहा है तो उन्होंने सम्मिलित होकर आन्दोलन करना शुरू किया.धीरे धीरे यह मुहिम एक प्रभावशाली राष्ट्रवादी आंदोलन का रूप ले लिया जिसे अहिंसक विरोध के लिए जाना गया और वही आन्दोलन ब्रिटिश शासन को समाप्त करने का प्रमुख कारक बन गया. 1947 में ब्रिटश शासक ने भारतीय साम्राज्य को दो स्वतंत्र प्रभुत्वों में विभाजित किया, भारतीय अधिराज्य तथा पाकिस्तान अधिराज्य, जिन्हे धर्म के आधार पर विभाजित किया गया। वहीं से धर्म की नीव नफरत के रूप में पडती हुयी दिखाई दी. भारत अब 1950 से एक स्वतंत्र प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य है.

स्वतंत्र भारत में भारतीय सम्बिधान निर्माता डॉ बाबा साहब अम्बेडकर ने हमे एक ऐसा सम्बिधान दिया जो दुनियां के लिए प्रेरणास्रोत है. विश्व का सबसे बड़ा लिखित संबिधान जिसमे भारत के प्रत्येक व्यक्ति को नागरिक के रूप में स्थापित कर भारत की विविधता को एकता के सूत्र में बाँधने का महनीय कार्य किया. अब हमे भारत को विश्वगुरु बनाना है तो समग्रता में सभी भारतियों के सहयोग से ही बनाया जा सकता है. कोई भी देश जब उन्नति करता है तो उसके पीछे उस देश के नागरिको के कारण ही करता है. उन्नति का कारण शिक्षा, उत्तम स्वास्थ्य, वैज्ञानिक सोच और शोध कार्य की भूमिका महत्वपूर्ण होती है. लेकिन वर्तमान दौर में जारी आंकड़ों को देखें तो हमारी भावनाओं को ठेस लगती है.भूख और कुपोषण की स्थिति को दर्शाने वाली ग्लोबल हंगर इंडेक्स की रिपोर्ट जारी हुई है, जिसमें भारत को 121 देशों में 107वें पायदान पर रखा गया है.इस इंडेक्स में भारत की स्थिति पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल और बांग्लादेश से भी बदतर है.इस इंडेक्स में दक्षिण एशिया में सबसे बेहतर स्थिति श्रीलंका की है. आर्थिक दिक़्क़तों से जूझ रहे श्रीलंका को इस इंडेक्स में 64वां स्थान दिया गया है.ग्लोबल हंगर इंडेक्स की रैंकिंग कुल स्कोर पर दी जाती है. यह स्कोर ख़ासकर के चार संकेतकों के मूल्यों पर मापा जाता है, जिनमें कुपोषण, शिशुओं में भयंकर कुपोषण, बच्चों के विकास में रुकावट और बाल मृत्यु दर हैं. ये तो हुई भूख की बात. महगाई, बेरोजगारी और शिक्षा स्वास्थ्य पर चिन्तन करें तो स्थिति और भी भयावह नजर आती है. आजादी के अमृत महोत्सव के साल में सामाजिक आर्थिक विषमता जस की तश हो तो यह एक गंभीर स्थिति को सूचित करता है. घडा छूने, मूछ रखने से प्रताड़ित किया जाय, यहां तक की जान भी ले लिया जाय तो ऐसे भयावह स्थिति के बारे क्या कहा जाय ? किसी भी आजाद देश और सभ्य समाज में ऐसी घटनाएँ नही होनी चाहिए.

वर्तमान में जो हमारी नई पौध है,वह व्हात्सप,फेसबुक,यु ट्यूब में खोई हुयी है. पुस्तको से नाता तोडती जा रही है. आधी अधूरी जानकारी से समाज में अशांति का माहौल पैदा कर रहे हैं. विद्या हमे विनय सिखाती है यह नैतिक ज्ञान अब लोग मानने को तैयार नही हैं. हलाकि कुछ हमारी नई पीढ़ी है, वह नये तरीके से लिख रही है। डिजीटल युग में व्यापक बदलाव भी आ रहा है। जिसमें साहित्य में भी व्यापक बदलाव दिख रहा है। जितना बुरा लोग हिंदी साहित्य को लेकर सोच रहे हैं, हालत उतने बुरे नहीं हैं।सभी तरह के विमर्शों के माध्यम से लोग अपनी-अपनी भावनाओं को व्यक्त कर रहे है.प्रस्तुत अंक में भी इसी विविधता को ध्यान में रखा गया है. साहित्यिक विमर्श, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श के साथ ही अन्य विषयों को भी विविध विमर्श नाम से स्थान दिया गया है. इस बार से नागफनी को दो भागों में करके प्रकाशित किया जा रहा है. एक हिंदी भाषा पर आधारित है जिसे 'भाग एक' नाम दिया गया है और दुसरा अंग्रेजी भाषा पर आधारित है 'जिसे भाग दो' नाम दिया गया है. ऐसा इसलिए किया गया है ताकि अंक बहुत मोटी न हो और प्रकाशन वितरण में सहूलियत हो सके.इन दोनों अंको को प्रकाशित कर नागफनी पत्रिका के वेबसाईट पर भी अपलोड किया जाएगा और सदस्यों के पते पर हार्ड कॉपी पोस्ट भी किया जाएगा.उम्मीद है यह प्रयास आप सभी विद्वान साथियों को पसंद आएगा.

नागफनी त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका का यह अक्तूबर से दिसम्बर–2022 का अंक विपरीत परिस्थियों में तैयार कर आप लोगों तक समय से पहुचाने का प्रयास है. देश के प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कहानीकार श्री रूप नारायण सोनकर जी का मार्गदर्शन और स्नेह हमें संबल प्रदान करता रहा है. इस अंक के लिए इंदिरा गाँधी ट्राइबल सेंटर विश्विद्यालय अमरकंटक से डॉ. संतोष जी और औरंगाबाद से डॉ.बलिराम धापसे, हैदराबाद से डॉ.संजय एल.मादार जी का अतुलनीय सहयोग और मार्गदर्शन मिलता रहा है.आप सभी का मार्गदर्शन और सहयोग नागफनी पत्रिका को इसी तरह से मिलता रहेगा इसी उम्मीद और विश्वास के साथ i

जय भीमi जय भारत iiजय संबिधान iii

दिनांक - **(डॉ.एन.पी.प्रजापति)**
25.10.2022

पाठकों की प्रतिक्रिया ……..

अनमोल इंद्रधनुषी मनका है नागफनी

UGC Care listed साहित्यिक पत्रिकाओं की माला में अस्मिता ,चेतना ,और स्वाभिमान जगाने का प्रतीक 'नागफनी' पत्रिका एक अनमोल इंद्रधनुषी मनका के रूप में गुंफित है ,जिसमें हिंदी/अँग्रेजी साहित्य के समस्त क्षेत्रों को बखूबी उच्च स्तरीय लेखन से संवारा जाता है।

'नागफनी' में पुष्प बराबर नहीं खिलता, बल्कि जब खिलता है कांटों के बीच, अद्भुत मोहक सौंदर्य के साथ। यह त्रैमासिक नागफनी साहित्यिक पत्रिका भी समाज के काँटेदार सच्चाई को साहित्य के कलेवर में 'सत्यं ,शिवम्, सुंदरम् ' का बोध कराता श्रेष्ठ, साहित्यिक शोधपरक, समीक्षात्मक, रचनाओं को गुणात्मक धर्मिता के साथ हिंदी/अँग्रेजी साहित्य के विविध आयामों ,विमर्शों को संजो कर सुधी पाठकों, अध्येताओं,शोधार्थियों के लिए श्रेष्ठतम सामग्री बड़े ही सहजता के साथ उपलब्ध करा रहा है।

आज़ादी का अमृतमहोत्सव केंद्रित 42 वाँ अंक पढ़ने के बाद पत्रिका के समस्त विद्वान संपादक मंडल तथा विद्वत रचनाकार समूह को हृदय से साधुवाद ---- । इस अंक के सभी समीक्षात्मक-शोधपरक आलेख विविध साहित्यिक विषयों पर अत्यंत उपयोगी एवं सारगर्भित हैं । पत्रिका से संदर्भित ध्यातव्य तथ्य यह भी है कि पत्रिका के सभी अंकों का (जब से मैं इससे जुड़ी हूँ – करीबन ढाई-तीन वर्षों से) मुखपृष्ठ अत्यंत ही विषयानुरूप , अंकगत संपूर्ण पत्रिका का सारतत्व संजोये हुए सौंदर्य से पूरित अति रोचक और प्रशंसनीय होता है।

डॉ रेणु सिन्हा
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
निर्मला कॉलेज, राँची ,झारखंड
मोबाइल नंबर : 9430763472

सबसे अलग है नागफनी

नागफनी का जुलाई - सितंबर २०२२ का ४२ वॉ अंक प्राप्त हुआ। यह अंक बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। कुछ ही महीनों से मैं इस पत्रिका से जुड़ा हूँ , फिर भी समकालीन साहित्य के विविध पहलुओं की जानकारी बहुत ही विस्तृत रूप में प्राप्त हुआ। उसमें प्रकाशित विविध साहित्यिक विमर्श सभी शोधार्थियाँ एवं साहित्यिक प्रेमियों के लिए ज्ञान दायक ही नहीं बल्कि पाठकों के चिंताओं को नया दृष्टिकोण प्रदान करने वाली रही। नागफनी पढ़कर निस्संदेह यह कह सकते है कि शत प्रतिशत यह अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाली साहित्यिक पत्रिका ही है। यह आनेवाली पीढ़ी केलिए महत्वपूर्ण संपत्ति है । मैंने अनेक ऐसी साहित्यिक पत्रिकाएँ पढ़ी है, फिर भी नागफनी उन सभी से अलग एवं महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह इसलिए है कि बाक़ी सभी पत्रिका किसी एक विषय या घटना पर अटके रहते हैं एवं संकीर्ण है। लेकिन नागफनी पत्रिका ने सभी विषयों का विस्तृत रूप में मान्यता दिया है। मेरा एक छोटा सा अनुरोध है कि आने वाले अंकों में अंधविश्वास पर भी कुछ लेख शामिल करें। मैं केरल से हूँ, पहले तो गर्व के साथ यह कहता था लेकिन आज नतमस्तक होकर कहना पड़ रहा है। यहाँ अब जो अंधविश्वास का बोलबाला चल रहा है वह विश्व के किसी भी जगह देखने को नहीं मिलेगा।ऐसी व्यथापूर्ण स्थिति में भी कुछ ना कुछ चैन ऐसी पत्रिका व पुस्तकों से प्राप्त होती है। नागफनी पत्रिका के सभी कार्यकर्ताओं को धन्यवाद एवं अपने कार्य में सफल होने की शुभकामनाएँ।

डॉ. अजय जी कम्मत
एर्नाकूलम , कोचीन, केरल

सदैव तरक्की पर हो नागफनी

आजादी के अमृत महोत्सव पर जुलाई 2022 का यह नागफनी विशेष अंक शोधार्थियों के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध है जैसे ही यह अंक प्राप्त हुआ मन को तसल्ली मिली की अब कुछ रोचक , ज्ञान से संबंधित, वैविध्य पूर्ण लेखों को पढ़ने का अवसर मिला अनुवाद, कहानी समीक्षा, वृद्ध विमर्श, व्यंग्य, नारी शिक्षा ,दलित आलोचना ,आदिवासी साहित्य की हर विधा का वर्णन अंक की विशेषता है। सामाजिक विषमताओं से पीड़ित मनुष्य के इस जीवन क्रम में साहित्य ही एक ऐसी दवा है क्यों की उसके विचारों के माध्यम से मरहम लगा सकता है। आपका यह कार्य सराहनीय है। यह कार्य सिर्फ कार्य न रहकर ईश्वर के प्रति उपासना बन चुका है। आप इस कार्य को सदा ऐसे ही आगे करते रहें मेरी शुभकामनाएं हैं। यह पत्रिका आगे आने वाले समय में और विस्तार करें, तरक्की करें और हम जैसे पाठकों का उत्साह बढ़ाते रहें। धन्यवाद ii

डॉ मंजुला चौहान
असिस्टेंट प्रोफेसर
बसवेश्वर कला महाविद्यालय
बागलकोट - कर्नाटका

हिंदी भाषा और साहित्य के लिए महत्वपूर्ण पत्रिका है 'नागफनी'

"नागफनी" एक अस्मिता,चेतना और स्वाभिमान जगानेवाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है। इसके 42वे अंक को मैंने पढ़ा और पाया कि सम्पूर्ण हिंदी भाषा और साहित्य के लिए यह एक महत्वपूर्ण पत्रिका है। इसमें स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर विमर्श सहित विविध साहित्यिक विमर्शों से संबंधित आलेख प्रकाशित हुए हैं जो बहुत ही ज्ञानवर्धक है। हिंदी साहित्य के कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक इत्यादि विधाओं के साथ साथ पत्रकारिता, पर्यावरण, मीडिया, भाषा, शिक्षा, भारतीय शिक्षा नीति 2020 इत्यादि विविध क्षेत्र से संबंधित आलेख एक साथ हिंदी व अंग्रेजी भाषा में पढ़ने को मिला। मेरा भी एक आलेख प्रस्तुत अंक में प्रकाशित हुआ है, उसके लिए संपादक मंडली को मैं धन्यवाद ज्ञापन करती हूं।और आगामी अंकों के लिए शुभकामनाएं ii

भवदीया
शिल्पा दत्ता असम

The July-September 2022, 42nd edition of Nagfani has articles from various dimensions of society highlighting the studies carried out in the areas of literature, gender, communities, and education. This edition boasts about these works submitted by scholars, academicians from various Universities. The writers have discussed the issues of women education, presence of Dalit in literatures and politics, presence of Aadivasis, specifically their struggles and contribution to the nature. Under the section of various discussions, articles have ranged from welfare works of Ashoka to the Gandhian impact on the aspects of Sardar Patel's life. The English discourse is also constituted of articles from various areas such as – education, gender inequality, literary works, feminism, and transgender issues.

I extend my heartiest congratulations to the editor and the editorial team for their success in publishing the 42nd edition of 'Nagfani" – UGC Care Listed Multidisciplinary journal, in which scholars and academicians from all over the country has made their contributions and have successfully published their articles. This edition has been successful in providing a platform for researchers to present their views, and I wish the editors all the best so that they continue to publish such good exemplary research in future editions. I thank the authors, editors and all associated with the journal for publishing such quality articles and wish that the journal reaches new heights of success with more quality research works.

With Regards
Sidhant Kumar
Research Scholar
Central University of Jharkhand

नवें दशक का हिंदी साहित्य और युवा आक्रोश

विष्णु सरवदे
प्रोफेसर हिंदी विभाग
हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय,हैदराबाद

भारत स्वतंत्र होने के बाद भारतीय सामाज में धीरे धीरे परिवर्तन आते गये, स्वत्रंता के बाद नवें दशक में तीव्र सामाजिक परिवर्तन देखने को मिलता है। इसके बारे में विश्वभंरनाथ उपाध्याय कहते है की:-"नवम दशक में तीव्र सामाजिक परिवर्तन के स्थान पर सामाजिक गतिरोध और हिंसक जड़ता का दबाव बड़ा है और कहानी ने जड़ता विरोधी कार्य किया है।अधिकतर कहानियों से पाठक में मनुष्यता की संवेदना उत्पन्न करने की कोशिश की गई है और धार्मिक तत्ववाद से उत्पन्न सांप्रदायिक जड़ता, जलालत, देश और समाज को खंड-खंड करने की प्रवृत्ति का विरोध किया गया है। यह आत्मविश्वासकी भयंकर दशा पहले कभी नहीं थी, इसलिए नवम दशक देश और समाज की आत्महत्या का दशक लगता है और कहानी में आत्महत्या के विरुद्ध मानवीय संवेदना का संघर्ष जारी रखा है।"[1] इस दशक में अनेक कहानियाँ और उपन्यास इस पर लिखे ।इस साहित्य में युवा पीढ़ी के प्रति अनेक प्रतिक्रिया आने लगी,यह प्रतिक्रिया युवा-वर्ग की संवेगात्मक समस्याएं प्रतीत होती है। इस कारण युवा मानसिकता में कुंठा, विध्वंसकारी मानसिक न्यूनता और रोमानी कल्पनाओं से अनुप्रेरणा मिलती है। कभी-कभी तो युवाओं में अपराधिक प्रवृत्तियां उभरने की संभावनाएं होती है। युवा-वर्ग के बौद्धिक और भावात्मक शोषण के विरुद्ध रचनाकारों ने युवा आक्रोश और विरोध की स्थितियों का वर्णन किया है। इस लेखन के बारे में कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा हैं कि :-"हिंदी कहानी में आजाद भारत की स्थिति- परिस्थिति, अस्था-अनास्था,नए पुराने मूल्यों का संघर्ष आदि की टकराहट हुई और नया सृजनात्मक विस्फोट हिंदी कहानियों में हुआ।"[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि नवें दशक तक आते-आते हिंदी कहानी में बदलाव आता दिखाई देता है इसे हम मुक्तिबोध के विचारों में देख सकते है :-"सामाजिक विचारों को बदल दिया और उसे अनुगामी एवं प्रगतिशील बना दिया है।"[3] यही नहीं युवा वर्ग की विभिन्न महत्वकांक्षाएं और सपने, उचित मार्गदर्शन का अभाव, अपराधीकरण का रुझान, बदलता हुआ दृष्टिकोण, प्रेम प्रकरणों में बदलाव, यौन विकृतियां, परिवारवाद का विकास स्वरूप तथा उचित पोषण का अभाव आदि कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो कि युवा मानसिकता में बदलाव ला रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि रचनाकारों ने युवा मानसिकता पर विशेष ध्यान दिया। माता-पिता पहले संयुक्त परिवार के मूल्यों के साथ जीते थे उन मूल्यों को हिन सिद्ध करके वह एकल परिवार में अपनी सुख-शांति तथा आर्थिक असुविधा देख रहे थे इसी कारण वे पारिवारिक मूल्यों की चिंता किए बिना अपने संयुक्त परिवार से अलग होकर अपना इकल परवार बनाते है जिसमें पति-पत्नी तथा उसके विस्तार के लिए केवल एक सदस्य को शामिल करते है। यहाँ हमें भारत सरकार का नारा 'हम दो हमारे दो" यथार्थ दिखाई देता है जो परिवार कल्याण की योजना के लिए था जिसके कारण जनसंख्या न बढ़े। इस विज्ञापन ने परिवारिक इकाई पर और युवा मानसिकता पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है बढ़ते शहरीकरण की होड़ में इकल परिवार ने दो के स्थान पर एक सन्तान को महत्व दिया है। माता-पिता सुबह बच्चों को स्कूल भेजकर नौकरी पर चले जाते हैं और दोपहर या शाम को बच्चें स्कूल से थके भूखे प्यासे लौटकर अपनी स्कूली बातें किसी से बोल नहीं पाते, अपने स्कुल का अभ्यास 'खुद करो या न करो' की स्थिति में गुजरते हैं तब उन्हें सबसे पहले माँ का अभाव महसूस होता है और यही अभाव उसके मन में खटकता है।माता-पिता के अलगाव के कारण बालक के मन में जो अकेलेपन का भाव निर्माण होता है यही मनोवैज्ञानिक कारण युवा आक्रोश के लिए जिम्मेदार है। बालमन में मां के प्रति जो आत्मीय भावबोध बालक के मन में होता हैं वह पिता की और झुकता है कि पिता पैसा कमा सकते हैं फिर मां को नौकरी क्यों करनी पडती है।शायद पिता चाहते होगें, यह कारण उसके मन में घर कर लेता है और पिता के प्रति प्रतिक्रियात्मक घृणा बोध जागृत हो उठता है।अपनी असाह्यता के कारण बालक माता-पिता के साथ व्यावहारिक, आर्थिक ,पारिवारिक परिस्थितियों में बंधकर रह जाता है। परंतु मनोवैज्ञानिक स्तर पर देखा जाए तो ऐसे बालक के मन में माता-पिता के प्रति गहरी दरार निर्माण होती है। एकल परिवार में आर्थिक स्थिति का अभाव बालक के सामने नहीं आता क्योंकि नौकरी पेशा माता-पिता आर्थिक अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए अपनी संतान को खुश रखने के लिए समय न देकर कुछ अतिरिक्त देते हैं शायद वह यह मानकर चलते हैं कि बालक को जो समय और आत्मीयता नहीं दे सकते उसकी पूर्ति छुट्टी के दिन किसी होटल में खाना खिलाकर, पार्क में घुमा-फिराकर या सिनेमा दिखा कर पूरा करते है परन्तु यह सब काफी नहीं होता माता-पिता की मजबूरी होती है। वह यह सब आखें मूंदकर अर्थार्जन के पीछे दौड़ते है। शहरीकरन में उसके बिना ख़ुशी का जीवन बिता नहीं सकते। दूसरों का रहन सहनदेखकर वह भी उसी तरह रहना चाहते है इसलिए वह दौड़ धुप करते है। ऐसी स्थिति में बालक माता-पिता से अंतर अनुभव करता है।

एकल पारिवार का बालक अनुशासन हिन होकर जीता है वह नौकर --नौकरानी की देखरेख में छोड़ जाते है या किसी केअर हाऊस में। ऐसे बालक उदंड हो जाते हैं ,वह माता पिता की अवज्ञा करने से नहीं चुकते। इस समस्या का कारण कहानीकार या समाजशास्त्री नहीं खोजते। वास्तविकता यह है कि निश्चित रूप का अनुशासित जीवन यापन का स्वरूप हर परिवार के लिए अपेक्षित होता है लेकिन जब माता-पिता दोनों ही कामकाजी होते हैं तो बच्चे नौकर-नौकरानी,केअर हाउस के सहारे पोषित नहीं हो पाते क्योंकि ऐसे बालको की अपेक्षाएं नौकर-नौकरानी या केअर हाउस पूरी नहीं कर सकते।लेकिन इतना अवश्य है कि माता-पिता द्वारा बालकों के ज्ञान वर्धन के लिए समय देना चाहिए, परन्तु माता-पिता बालक को समय न देकर अपनी जीविकोपार्जन को प्रमुखता देते हैं तो ऐसी स्थिति में बालक का मन मानसिकता के द्वंद में फस जाता है। नवें दशक के युवाओं की मानसिकता को परिवर्तित और पारिवारिक संबंधों को चिंतन के धरातल पर बदलता हुआ दिखाई देता है ।इस समय के विभिन्न स्थितियों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही यह भी देखा जाता है कि आज की युवा पीढ़ी के सामने कोई आदर्श नहीं है। जिससे वे अपने जीवन के प्रशस्त मार्ग को आगे बढ़ाए।लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय इस संदर्भ कहते है कि "नई पीढ़ी के युवा वर्ग के सामने ना कोई आदर्श है ना ही कोई उच्च जीवन मूल्य है, पुराने जीवन मूल्य पुराने हो चुके हैं किंतु नए जीवन मुल्यों की स्थापना ही नहीं हुई है।"[4] आधुनिक युग में आदर्शता की खोज में भटकता हुआ युवा वर्ग कुंठित होकर निर्वासित और हताशता भोगने के लिए मजबूर हो जाता है, यह विचित्र स्थिति उसके विद्रोह,आक्रोश और असंतोष की भावनाओं को बढावा देती है,इस युवा मानसिकता के वैयक्तिक एवं सामाजिक संदर्भ इस प्रकार है:-

1.पारिवारिक स्थिति

2.आर्थिक स्थिति

3. आदर्शवादीता

4. विद्रोही चेतना

5. प्रगतिशीलता

6..रोमानीयत

7..मोहभंग

8. राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव

1.पारिवारिक स्थिति:- परिवार ही वह इकाई है जिसमे युवा वर्ग अपने संस्कार ग्रहण करता है और उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है तथा उसके व्यक्तित्व की विविध अनुक्रिया ही उसके परिवारिक स्थिति की देन होती है। युवा वर्ग आज जिस पारिवारिक स्थिति से गुजर रहा है उसमें सर्वाधिक सामना उसके अकेलापन का है। माता-पिता दोनों ही कामकाजी वर्ग के कारण वह अकेला पण महसूस करता है और अकेले पण का शिकार होता है। वह एकल परिवार में हमेशा अकेले ही बंद कमरे में रहता है तब उसके मन में अपने परिवार के प्रति विरोध की भावना जागृत हो जाती है।

2. आर्थिक स्थिति:-आधुनिक भौतिक युग में अर्थ बहुत सारी स्थितियों का निर्णायक है। सभी मानवीय मूल्य एवं सामाजिक संबंध अर्थ पर केंद्रित हो गए हैं। युवा वर्ग जीवन की उस अवस्था से गुजरता है जब वह सपनों और आकांक्षाओं के झूले पर झूला झूलता दिखाई देता है। जीवन की कटुताओं और विभत्सता सब कुछ उसके लिए मनोरम होते हैं। किंतु अर्थअभाव उसकी इन महत्वाकांक्षाओं पर पानी बिखेर देता है।आज का युग जब अपने समूह को संपन्नता से घिरा हुआ पाता है तो वह भी वैसा ही करने के लिए तैयार होता है। पर निजी अर्थ स्त्रोतों के आगे विवश होने पर उसके मन में प्रतिक्रिया और कुंठा जागृत हो जाती है।

3.आदर्शवाद:- युवा मानसिकता को सामान्यत: आदर्शहीन समझा जाता है लेकिन यह सर्वमान्य निर्णय नहीं कहा जा सकता । युवा मानसिकता के अधिकांश युवक आदर्शवादी होते हैं। जीवन के कटु यथार्थ की कल्पना युवा कर नहीं पाता इसलिए उसके आदर्श का रूप भी समान नहीं होता। कई बार युवा वर्ग किसी नेता या फिल्मी नायक या किसी राष्ट्रीय एवं सामाजिक व्यक्तित्व को अपना आदर्श चुन लेते हैं और वह उसके कार्यों एवं व्यवहारों को अपने जीवन में साकार होते हुए देखने के लिए अपनी मानसिकता तैयार कर लेते हैं।

4. विद्रोही चेतना:- युवा वर्ग आदर्शवादी होता है किंतु यह ध्यान देना भी अनिवार्य होता है कि वह मात्र आदर्शवादी ही नहीं बल्कि वह अपनेआशाओं, आकांक्षाओं में प्रतिकूलता आते देख विविध सामाजिक एवं पारिवारिक विशेषताओं के कारण अपनी ही विद्रोही चेतना में उमड़ जाता है। कई बार यह भी होता है कि परिवार के लोग युवा वर्ग की मानसिकता और भावनाओं पर बिना सोच-विचार के ही उसके स्वभाव के विरुद्ध निर्णय कर लेने का निश्चय कर लेते हैं तब ऐसी स्थिति में वह युवा वर्ग में विद्रोह की चेतना के अंकुर पनपने लगते हैं।

5. प्रगति शीलता:- स्वतंत्रता के चार दशक बीत जाने के बाद राष्ट्र और समाज में प्रगतिशीलता दिखाई देती है। उसके समानांतर युवा वर्ग में पर्याप्त गतिशीलता के दर्शन दिखाई देते हैं। लेकिन यह वही संभव होता है जहाँ युवा वर्ग परंपरागत नीतियों, मान्यताओं के विरुद्ध नए और क्रांतिकारी रूप में उभरता है। तथा वह सामाजिक प्रवादों की चिंता न करते हुए स्वविवेक से अपने प्रगतिशील कदमों को दृढ़ता से रखने में सफल होता हैं। इस स्थिति में युवा-वर्ग में प्रेम विवाह, स्वच्छंद साहचर्य और विवाह युक्त यौन संबंधों के प्रति स्वतंत्र चिंतन को महत्व देने की पहल करता है।

6. रोमानियात :- युवा वर्ग भावुक और संवेदनशीलता से परिपूर्ण होता है। अतः ऐसी स्थिति में युवा पीढ़ी में स्वाभाविक रूप से विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। युवा वर्ग में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण और प्रेम ही रोमानियता की स्थिति लाता है। युवावस्था का प्रेम कभी-कभी उन्माद की स्थिति तक भी पहुँच जाता है। नवें दशक तक आते-आते रूमानियत की परिणीति में एक और दहेज उन्मूलन का उचित समाधान भी दिखाई देता है।

7. मोहभंग:- सपनों का निर्माण और कल्पना लोक में विचरण करती हुई युवा पीढ़ी जब यथार्थ के प्रचंड रूप से रूबरू होती है तो वह अपने को मोहभंग की स्थिति मे पाती है । सपनों और कल्पनाओं को युवा वर्ग कभी भी यथार्थ धरातल पर विचार करने या सोचने समझने का अवसर नहीं दे पाता है तो निश्चित ही उसके सामने मोहभंग की स्थिति पैदा हो जाती है। इस का विचार करने पर हम यह कह सकते है कि युवा मानसिकता के इन बदलते परिवेशों, पारस्परिक संबंधों और चिंतन के धरातल पर युवाओं के मध्य विकसित भावनात्मक संघर्ष उत्पन्न हो जाना सामान्य स्थिति है। मुक्तिबोध ब्रह्मराक्षस की पक्तियों में कहते है :-

" पिस गया वह भीतरी
औ बाहरी दो कठिन पाटों के बीच
ऐसी ट्रेजडी है नीच!! "[5]

युवा पीढ़ी का मोहभंग होने के कारण वर्तमानऔर भविष्य के दो पाटों के बीच वह पिसता जाता है।

8.राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव:- स्वतंत्रता के बाद जिस प्रकार हमारे देश में राष्ट्रीय चेतना का तीव्र प्रवाह पीढ़ी-दर-पीढ़ी होना चाहिए था, वह संभव नहीं हुआ। यद्यपि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के परवर्ती प्रभाव उसे स्वतंत्रता से अधिक स्वच्छंद एवं सहज लगे। स्वतंत्रता में उसे इन आदर्शों और अपनी ही तंत्र के अधीन रहने की अनिवार्यता आवश्यक थी पर स्वच्छंदता में आत्मानुशासन की आवश्यकता नहीं थी। इसीलिए युवा वर्ग अपने राष्ट्र के प्रति किसी भी भावना से अनुप्राणित और प्रेरित नहीं हुआ अपने परिवार से स्वतंत्र और स्वछंद होने में उसे कोई झिझक नहीं हुई। परिणामत: राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव केवल राष्ट्रीय संकट काल में ही देखा जा सकता है और ऐसे क्षणों में निश्चित ही उसमें राष्ट्रीय बोध,त्याग और राष्ट्र के प्रति अपने बलिदान के लिए किसी भी प्रकार की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। इस भावनात्मक संघर्ष में लीन युवा मानस में निरंतर अनेक स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है:-

1. आचरण पर विसंगतियां:- युवा वर्ग जिस परिवेश और परिस्थिति में जी रहा है उसमें अनेक प्रकार की विसंगतियां विद्यमान है। युवा वर्ग का भावनात्मक, पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्ष कई प्रकार की विसंगतियां पैदा कर देता है।

(क)कुंठा ग्रस्तता:- युवा वर्ग अपनी भावनाओं के साथ पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का तालमेल न होने पर कुंठित होने लगता है। इस प्रकार वह कुंठा से उत्पन्न होने वाली आचरण विसंगतियों का शिकार हो जाता है। वास्तव में युवा वर्ग में मानसिक रूप से समायोजन में विफलता ही कुंठा जगाती है। युवा वर्गों की बढ़ती हुई उम्र के कारण शरीर में व्यापक परिवर्तन होते रहते है इस कारण युवाओं को अनेक मानसिक तनाव झेलने पड़ते हैं। संबंधों और उत्तरदायित्वों के नए बोझ को उसे वहन करना पड़ता है। इस कारण उसे कहीं भी किसी भी तरह का व्यवधान कुंठा ग्रस्त बना देता है। युवा कई बार अपने आप को नए परिवेश के बीच समायोजन कर पाने की कठिनाइयों के कारण कुंठित हो जाता है।

(ख)अंर्त:मुखता :- युवा मानस में परिवेश और परिस्थितियों के बीच उचित समायोजन नहीं हो जाने पर कभी कभी वह अंर्त:मुख हो जाता है, जिसके कारण युवा वर्ग में आचरण, व्यवहार भी बदल जाता है। ऐसी स्थिति में निश्चित ही युवा वर्ग को चिंतित और उद्विग्न बनाता है।

(ग) काम संबंधी धारणाएं:- युवा वर्ग इस उम्र में द्वंद की स्थिति से गुजरता है, जिसमें वह अपनी कोमल अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए एक प्रणय का सहारा चाहता है। वह प्रणय के विषय में सोचता है,जिसके विषय में सोचता है उसे पाने का प्रयास करता है उसे पाकर उसके सानिध्य का अनुभव करना चाहता है। ऐसी स्थिति में युवा वर्ग अति भावुक होता है इस भावुकता की सीमा में युवा अपनी गलत धारणाओं के कारण हीनता की सीमा तक पहुंच जाता है इतना हीनहीं वह बेशर्मी की सीमाएं भी पार कर जाता है।समायोजन की विसंगति के फलस्वरूप युवा वर्ग में काम-पुष्टि की प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है, जो सामाजिक मान्यता के खिलाप एवं अनैतिक होता है। भ्रांत धारणाओं के कारण ही युवा वर्ग में सामाज के बारे में द्विधा मन: स्थिति निर्माण हो जाती है। विकृत एवं गलत धारणाओं के कारण किशोर मन में सामाजिक एवं पारिवारिक विसंगतियां निर्माण होती है। इस संबंध में सुजाता जी कहती है कि :-"बचपन में और किशोरावस्था में मिले उत्तरदायित्व से दूर रंगीन वातावरण, शराब और सुंदरियां, उसके स्वभाव में एक और यौन तृप्ति के नए-नए खेल करने की खपत और सुंदर स्त्री के प्रति रुझान और अधिकार चाहने की प्रवृत्ति अवस्था

काम को विकसित करती है। तो दूसरी ओर दूसरों पर निर्भर रहने की कमजोरी भी उत्पन्न कर देती है।"[5] युवा अवस्था काम के प्रति आकर्षित होता है |काम संबंधी सपने हमेशा सजाता है,उसके मन उसे काम के प्रति लालचा रहती है उसे रोकने का काम समाज करता है।

2.यथार्थ का संघर्ष:- वास्तव में युवा वर्ग में महत्वकांक्षाएं हमेशा प्रबल होती है। अपनी महत्वकांक्षाएं पूरी करने के लिए वह भरकस प्रयास करता है| प्रगति, पद, प्रतिष्ठा एवं समृद्धि की भावनाएं उसके मन में हमेशा उत्पन्न होती है। अपनी इस महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु ही युवा वर्ग आदर्शवादी और व्यवहारिक बनता है,जब वह यथार्थ से टकराता है तो अनेक समस्याएं सामने आती है। महत्वाकांक्षाओं और यथार्थ के बिच युवा विवश हो जाता है। युवा दिवा सपनों में भटकने लगता है महत्वाकांक्षाओं और यथार्थ के सामंजस्य के फलस्वरूप उसमें कुंठा उत्पन्न होती है। लेकिन कभी-कभी हताशा एवं महत्वकांक्षा के कारण युवा वर्ग कुंठा की ओर जाता है। ऐसी स्थिति में युवा वर्ग में पोषित स्वप्निल, रूमानियत से परिपूर्ण संवेदनाओं से भरा हुआ महत्वाकांक्षी संसार यथार्थ के कारण एक ही झटके से टूट जाता है।

3. परंपरा और पीढ़ी अंतराल:- पीढियों की अवधारणा का निरंतर प्रभाव युवा मानसिकता पर हमेशा बना रहता है मध्यमवर्ग इस से सर्वाधिक प्रभावित होता है क्योंकि मध्यमवर्गीय परिवार की जड़े संस्कृति एवं परंपराओं से मजबूत होती है। वर्गगत संस्कारों में युवा वर्ग की महत्वकांक्षाएं नष्ट हो जाती है ,परंपराओं की जकड़न उसे आधुनिक चेतना को ग्रहण करने नहीं देती। समाज में परंपराएं जड़ होती है वह व्यक्ति को मुक्त नहीं होने देती बल्कि अपने फासे में फंसाए रखती है पुरानी पीढ़ी इन परंपराओं की प्रति जड़ बनकर रहती है तथा वह नई परंपराओं को स्वीकार नहीं करती।नई पीढ़ी अपनी कल्पनाओं, महत्वाकांक्षाओं और आधुनिकता के प्रति आकर्षित होती है वह पुरानी परंपराओं को स्वीकार नहीं करती इन दोनों के बिच नई पीढ़ी पिसती जाती हैं। आधुनिक चेतना और नई परंपरा को पुरानी पीढ़ी स्वीकार नहीं कर पाती इसके कारण दोनों में गहरी खाई निर्माण हो जाती है। परंपराएं कुछ विशेष अर्थों में महत्व भी रखती है क्योंकि वह सदैव जड़ नहीं होती, वह अच्छी भी होती है इतना ही नहीं वह कारगर भी सिद्ध होती है। अतः आधुनिकता चेतना और परंपरा की पारस्परिक टकराहट ने इस सामाजिक संरचना में परिवर्तन के बीज बोए जाते है सामाजिक मूल्यों,नैतिकता,आदर्शों और संस्कृति के मापदंडों में परिवर्तन आता है। आधुनिक चेतना और परंपरा की इस टकराहट ने सामाजिक एवं पारिवारिक संबंधों में जटिलताएं उत्पन्न नहीं की बल्कि उसमें संघर्ष और तनाव पैदा किया हैं। व्यवस्थाओं के प्रति युवा वर्ग में हमेशा गहरा आक्रोश होता है क्योंकि आज युवा वर्ग के पास जीविकोपार्जन के साधन नहीं है इस कारण युवा अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति कर नहीं पाता। इस आर्थिक तनाव, कुंठाजन्य आक्रोश के कारण युवा वर्ग इसका जन्मदाता बन जाता है। स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र की स्थापना से लेकर अब तक के परिदृश्य को देखा जाए तो वह ऐसा ही है, इस अर्थचक्र के तन्त्र वैषम्य ने उन्हें तोड़ दिया है। जिसके परिणाम स्वरूप असंतोष और अधीरता युवा वर्ग की प्रकृति बन गई है क्योंकि अनिश्चित भविष्य उनके आगे संघर्षात्मक चुनौतियाँ लेकर खड़ा है।

4. भावना का अतिरेक एवं साहसिकता:- युवा अवस्था में भावना का अतिरेक जादा होता है वह अत्यधिक संवेदनशील और भावुक होता है। भावना का अतिरेक युवक में इतना अधिक होता है कि वह उसमें कुछ भी कर सकता है। युवा मानस की वृत्ति सहज, स्वाभाविक एवं स्वच्छंद होती है लेकिन वह असंवेदनशील नहीं होती। यह सच्चाई है की युवा वर्ग आज अपनी भावनाएं व्यक्त करने में पीछे नहीं है। वह बड़े साहस के साथ अपनी भावनाएं व्यक्त करता है।युवको में भावनात्मक अतिरेक के कारण उनके रक्त में ऐसी ऊर्जा होती है की वह असंभव कार्य को संभव बनाता है उसे उसके लिए प्राण क्यों न देने पड़े. इसलिए उद्धमता के शिखर पर पहुंचना युवा वर्ग के लिए कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ बनकर सामने आता है। युवा वर्ग यथार्थ वास्तविक जीवन में जिन भावनाओं से संचालित होता है वह उसमें साहस अवश्य जगाता है। ऐसी स्थिति में सामान्य वर्ग का युवक अपनी साहसिक बुद्धि एवं विवेक का परिचय देता है। साहस केवल व्यक्ति के प्रदर्शन या फिर मांसल शरीर की ऊर्जा से ही प्रदर्शित नहीं होता बल्कि उसके प्रदर्शन के लिए विवेक की भी आवश्यकता होती है। वह स्पर्धात्मक परिस्थितियों से जमकर लोहा लेने का सामर्थ्य रखता है।

5.अकेलापन :- युवा वर्ग पीढ़ी अंतराल और परिस्थितियों के कारण अकेलेपन और अलगाव का शिकार हुआ हैं। रघुवर दयाल इसके बारे में कहते है कि "बदलती हुई परिवेश में आज युवा जन अनेक कुंठाओ, संत्रासो, टुटन, घुटन,पीड़ा, निराशा और संघर्ष पूंजी का संग्रहालय बन गया है।"[6]इसका परिणाम स्वरूप वह बहुत अकेलापन महसूस करता है। वह न पुरानी पीढ़ी के साथ सामंजस्य कर पाता है और न ही अपने आसपास के सम- वयस्कों के साथ ही पूरी तरह घुल मिल जाता है। क्योंकि वह जिस शैक्षिक वातावरण से गुजरता है उसमें न उददेश है और न ही मूल्य विशेष, जिससे आगे चलकर उसकी पहचान बन सके। ऐसी दिशाहीन स्थिति में युवा वर्ग न ही पारिवारिक संबंधों से कटा हुआ अनुभव करता बल्कि उसमें एक अजनबीपन बढ़ता हुआ दिखाई देता है जो परस्पर दूरियाँ बढ़ाता है तथा अलगाव पैदा करता है।

अकेलपन की यातना युवा वर्ग को मिलती है उसके बारे में कमलेश्वर का कहना है कि:- " युवा वर्ग को यह यात्रा सामाजिक क्षेत्र के परिचय की विडंबना उसे प्रिय है। अतः वह परिचय के क्षेत्र को सीमित कर अकेलापन चाहता है। इसलिए हमारे देश की मानसिकता इस अति परिचय से उबी हुई है। इस अतिशय उब का परिणाम यह अकेलापन है।"[7]इस अकेलेपन के कारण युवा वर्ग अपनी पहचान भी खो देता है। इस अकेलेपन और खालीपन की अनुभूति ने उसे ऐसा बना दिया है कि वह अपने लिए ही अजनबी बन गया है। क्योंकि उसने अपने अकेलेपन के इर्द-गिर्द विभिन्न संवेदना और आतंक पूर्ण अनुभूतियों का मायावी संसार रचाया है और वह एक अंधेरी भूल भुलैया में खो गया सा लगता है। अतः उसे न तो किसी से लगाव रह गया है और न ही किसी से जुड़ाव।

6. नैतिकता के प्रति अनुग्रह:- युवा मानसिकता के विविध स्वरूपों का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि युवा वर्ग रचनात्मक दृष्टि और ऊर्जा रखता है। परंतु आज के इस वातावरण में शिक्षा, बेरोजगारी तथा दिशाहीन भविष्य में युवा वर्ग के आदर्श जीवन के सपने अवरुद्ध हो जाते हैं। इसलिए वह आदर्शों के साथ किसी भी प्रकार के समझौते नहीं करते वह पूर्व स्थापित आदर्श तथा उनसे पैदा हुई नैतिकता के प्रति विद्रोह की भावनाएं रखता है,इसी कारण किसी भी प्रकार के समझौते नहीं करता। नैतिकता के प्रति अस्वीकृति का भाव मन में रखता है। जो आदर्श जीवन संघर्षों की सच्चाई को स्वीकार नहीं करता वह आदर्श उसके किस काम का है। आदर्शों और मूल्यों के लिए युवा वर्ग निरंतर संघर्षशील रहता है। आदर्शवादी दृष्टिकोण से अभिभूत यह पीढ़ी टूट तो सकती है किंतु समझौता करने के लिए झुक नहीं सकती।

निष्कर्ष :- निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते है की युवा मानसिकता के विविध स्वरूपों का चित्र हिंदी साहित्य में हुआ है। सातवें दशक के बाद युवा वर्ग अपने मूल्यों के प्रति अपनी मूल्यवत्ता खो चुका है। इस दशक का युवा वर्ग पुराने मूल्यों को त्यागकर नवीन मूल्यों को अपनाने के लिए सजग रहता है। नवें दशक में हिंदी साहित्य में अनेक कविता,उपन्यास और कहानियां लिखी हैं। उसमें युवा मानसिकता का कोई न कोई स्वरूप चित्रित हुआ दिखाई देता हैं।

****

संदर्भ:

1.नवें दशक की कथा यात्रा- धर्मेंद्र गुप्त - पृष्ठ-205

2. वही, पृष्ठ- 188

3.वही, पृष्ठ -14

4. हिंदी उपन्यास बदलते प्रतिमान- लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय - पृष्ठ -122

5. चाँदका मुंह टेडा 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध पृष्ठ – 42

6.हिंदी उपन्यासों के असमान्य चरित्र- सुजाता- पृष्ठ -342

7.हिंदी उपन्यासों के बदलते प्रतिमान- रघुवीर दयाल- पृष्ठ -26

8.हिंदी कहानी की भूमिका -कमलेश्वर- पृष्ठ- 263

तुलसी के काव्य में प्रकृति चित्रण

डॉ.कपिलदेव प्रसाद निषाद
एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग
पी.जी.डी.ए.वी.कॉलेज नेहरू नगर,
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
दिल्ली-110065Mob. 9013260706

प्रस्तावना: मध्ययुगीन कवियों से लेकर आधुनिक काल के कवियों ने प्रकृति को अपने काव्य का विषय बनाया है। अपनी कथा में प्रकृति को मानवीयकरण अलंकार से सुशोभित किया। संत कवियों के काव्य में पशु-पक्षी तक मनुष्य के जैसे बातचीत करते हुए पाए जाते हैं जैसे मनुष्य -मनुष्य से बात करता है, संवाद करता है, वैसे ही सारे जीव-जंतु। समस्त संसार के प्राणी ईश्वर द्वारा संचालित हैं और वह भी आपस में संवाद स्थापित करते हैं जिसके माध्यम से वह अपने दैनंदिन दिनचर्या को अपने सुख-दुख को अभिव्यक्त करते हैं इनके माध्यम से रचनाकार मानव समाज को, मानव जाति को संबोधित करता है, शिक्षा देने का प्रयास करता है, शिक्षित करने का प्रयास करता है। नदियों, झरनों, पहाड़ों, वनस्पतियों में औषधीय गुण तो होता ही है किंतु इन पेड़-पौधों के स्वभाव से मनुष्य का स्वभाव सुनिश्चित होता है। अन्य कवियों के साथ-साथ गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में देखने को मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन इसी संदर्भ में हुआ है प्रस्तुत आलेख में समझने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द: प्रकृति, पर्यावरण, कथा, ग्रामांचल, लोक बोली, ऋतुओं, औषधीय, प्राणदायिनी, बारहमासा, उद्दीपन, पद्मावत, पुरइन, मंदाकिनी।

गोस्वामी तुलसीदास की काव्य कथा की बनावट प्रकृति और पर्यावरण से आच्छादित है। रामकथा के विकास में प्रकृति उद्दीपन के रूप में व्यवहरित हुई है। उनके लिए प्रकृति के साहचर्य के बिना काव्य रचना करना दुष्कर कार्य है। वस्तुओं के साथ रहने से उसके स्वभाव की जानकारी मिलती है। मनुष्य पशु,पक्षी से लेकर पेड़,पौधों,नदी,झरना आदि वनस्पतियों के संपर्क से ही उसके विषय में जान पाता है। यह एक दिन का कार्य नहीं है। अन्य प्राणियों के साथ-साथ प्रकृति और मनुष्य का संबंध भी अनादि काल से चला आ रहा है। कौन-सी वनस्पति में किस प्रकार का औषधीय या अन्य गुण है और वह किस काम आती है? यह उसके साहचर्य से ही पता चलता है। दोहावली के इस दोहे से समझा जा सकता है कि अलग-अलग स्वभाव के वृक्षों के साथ किस प्रकार व्यवहार करने पर किस प्रकार का परिणाम सामने आता है, तथा यह दोहा नैतिकता का पाठ भी देता है-

"नीच निरादरहीं सुखद आदर सुखद बिसाल।
कदरी बदरी बिटप गति पेखहु पनस रसाल।।"

इस दोहे में तुलसीदास ने लोक रीति-नीति को सूत्रित किया है। लोक व्यवहार में प्रायः देखा गया है कि किस प्रकार नीच स्वभाव के लोगों का निरादर करने से और बड़े लोगों का आदर करने से सुख पाते हैं। इस बात को समझने के लिए केले और बेर का उदाहरण देते हैं, कहते हैं कि इन्हें बार-बार काटे जाने पर अधिक फल देते हैं किन्तु आम और कटहल गंभीर स्वभाव के वृक्ष हैं। इनको सींचने और सेवा करने से अधिक फल देते हैं। कवि तुलसीदास इन प्राकृतिक पदार्थों का अपनी काव्य रचना में प्रयोग करते हैं इसे देखा जा सकता है। यह ज्ञान एक प्रकार से परंपरा की थाती है। जिसे कवि तुलसी ने पाया है। सर्वविदित है कि प्रकृति की गोद में ही सामान्य जन (खासतौर पर किसानी जीवन) पलता-बढ़ता है तुलसीदास का पूरा जीवन इन्हीं जीवनानुभवों के बीच रहा। गोस्वामी तुलसीदास के रचना संसार का जो समाज है वह नगर और ग्राम का समाज है। जिसमें राजमहल से लेकर ग्रामांचल,जंगल,पर्वत,नदियाँ आदि सब समाहित हैं।वर्तमान समय में विकास की अंधी दौड़ ने प्रकृति को भोग कर छोड़ दिया है। नदियों को पुराणों में विराट पुरुष की नाड़ियाँ कहा गया है। नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बनाकर उनको सड़ने के लिए छोड़ दिया गया है। उन्हें बचाना होगा, उससे प्रेम करना होगा संतान की तरह। साहित्य,कला,धर्म,दर्शन सब में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि मनुष्य प्रकृति से ही सीखता है और प्रकृति ही उसे सिखाती भी है। वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व में प्रकृति के ऊपर खतरा मंडरा रहा है अगर इसे नहीं बचाया गया तो बहुत कुछ खत्म हो जाएगा और फिर जो बचेगा उसका हिसाब किसी के पास नहीं रहेगा। नदी, वन, पर्वत,पठार,वृक्ष आदि सभी मानव जीवन के अंग हैं। गोस्वामी तुलसीदास राम काव्य के सृजन में जीवन के इन्हीं मूलभूत अंगों को समावेशित करते हैं। कथा में प्राकृतिक तत्वों का रस घोलते हैं जिसे स्वस्थ प्राणदायिनी बयार की भाँति महसूस किया जा सकता है। "प्रकृति स्वतंत्रता पूर्वक खेल करने के लिए अपनी इच्छा से सैकड़ों और हजारों गुणों को उत्पन्न करती है।" यह सही है कि उक्त बात दार्शनिक संदर्भ में कही गई है किंतु संसार का कोई भी दर्शन हो मानव जीवन को बचाने,उसे सुरक्षित रखने की ही तो बात करता है। मानव जीवन को कैसे बचाया जाए या उसके जीवन में जितने भी पड़ाव आते हैं वह किस प्रकार से किसी व्यक्ति समूहों,समाजों के लिए अनुकरणीय हो सकता है इसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। तुलसीदास के काव्य में प्रकृति के इन्हीं रूप-रंगों के प्रति प्रदर्शित प्रेम को देखा जा सकता है। उनका लोक बोली,भाषा,रंग-रूप वातावरण के प्रति गहरा लगाव था। प्रसिद्ध आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार-"तुलसीदास उत्तरी भारत विशेषता हिंदी प्रदेश को-यहाँ की भूमि, नदियों, भाषाओं लोगों के रीति-रिवाजों को बहुत अच्छी तरह से जानते थे यह सब जाना होगा उन्होंने अपने कठिन जीवन-संघर्ष के दौरान। वे यहाँ की प्रकृति के सौंदर्य, सर-सरिता के निर्मल जल,उसमें खिले कमल, कुमुद, खेतों,धानों, खग-मृग,हरित,भूमि, दूब पर मुग्ध हुए थे तो उसर,अकाल,दावाग्नि,

काई, जोंक,सर्प, नक आदि से भी भीत भी हुए थे। उन्होंने यहाँ के पुरुष और नारियों के स्वभाव को गहराई से समझा था यहाँ के आकाश, धरती,ऋतुओं मेघों को विविध रूपों में देखा और आँका था।"

यह आंकना ही उसका महत्व जानना है। नए कवियों के यहाँ दूब,नदी के संदर्भ अब बदल गए हैं। धान,घास,फूनगी नए अर्थों की व्यंजना करने लगे हैं। किंतु पुराने और नए दोनों ध्रुवों के कवियों में एक बात समान है वह है मानव जीवन की प्रतिष्ठा। इन प्राकृतिक पदार्थों के संपर्क में आने से जो उनसे जानकारी मिली वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। वह जीवन के सुख-दुख में काम आने वाली वस्तु है जिसे कवियों ने अपनी कथा प्रसंगों के सृजन में इनका प्रयोग किया है। सुख-दु:ख के क्षणों में भी नदी,जंगल,जीव-जंतुओं को कथा का सहभागी बनाया गया है। सूरदास की गोपियाँ कृष्ण के चले जाने के बाद कहती हैं कि मधुबन तुम किस प्रकार हरे-भरे खड़े हो? तुम कृष्ण के विरह में क्यों नहीं खड़े-खड़े जल कर मर गए! मलिक मोहम्मद जायसी के पद्मावत में भी बारहमासा का वर्णन मिलता है।

जायसी सधी नजरों से रानी नागमती के विरह को जीव-जंतुओं पर आरोपित करते हैं। रानी नागमती कौवे से कहती है कि हे! कौवे तू जा राजा से कह कि मैं तुम्हारी विरह में जल रही हूँ और जलने से जो धुआँ उठ रहा है,उससे जंगल के सारे जीव-जंतु,पशु-पक्षी काले पड़ गए हैं अर्थात दु:ख को व्यंजित करने के लिए कवि जायसी ने कथा का जो ताना-बाना बुना है वह व्यावहारिक लौकिक और पाठक के हृदय समीप लगता है-

"पिउ सौं कहेऊ सन्देसड़ा, हे भौरा हे काग।
सो धनि बिरहै जारि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग।"

किन्तु तुलसीदास यह मानते हैं कि इस समस्त संसार को ईश्वर संचालित करता है जड़-जंगम से लेकर संपूर्ण भूमंडल के सजीव पदार्थ, प्राणी उन्हीं के आधीन हैं। तुलसी के राम सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त हैं इसलिए यदि जब वे दुःखी होते हैं तो सारा संसार दुःखी दिखाई देता है और यदि वे प्रसन्न है तो सब कुछ प्रसन्न दिखाई देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी द्वारा रचित रामकथा प्रसंगों में किसी प्रकार की अप्रिय घटना घटित होने पर पात्र भी दुःखी दिखाई देते हैं। जैसे रामचरितमानस में राम, सीता अपहरण पर दुःखी होते हैं। राम दुःखी है तो प्रकृति भी दुःखी है। इसी क्रम में दुःखी होकर जीव-जंतुओं,पशु-पक्षियों से पूछते हैं-

"हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।"

प्रकृति जब-जब नया रूपाकार ग्रहण करती है तब-तब पशु,पक्षी से लेकर मनुष्य तक को प्रभावित करती है। नए वातावरण से नवीनता का संचार होता है। जिसमें उछलना, कूदना, गीत गाना सब शामिल है। वर्षा, ग्रीष्म, वसंत आदि ऋतुओं पर गीत गाए जाते रहे हैं। यह उसी मनुष्य की संवेदना का विस्तार है जो प्राकृतिक पदार्थों और ऋतु में समाहित है महाकवि निराला ने भी बादल-राग की कविता गाई-

"झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर!
राग-अमर! अंबर में भर निज रोर!
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर-
राग-अमर! अंबर में भर निज रोर!
अरे वर्ष के हर्ष!
बरस तू बरस-बरस रसधार!"

निराला का प्रिय ऋतु बसंत है। बसंत के मौसम में समस्त संसार जगमग है। रूप, रंग,गंध से संपूर्ण वातावरण सुशोभित है-

"रंग गई पग-पग धन्य धरा-/हुई जग जग मग मनोहरा।
वर्ण गंध धर, मधु मरंद-भर,/तरु-उर की अरुणिमा तरुणातर
खुली रूप-कलियों में पर भर/स्तर-स्तर सुपरिसरा।
गूँज उठा पिक पावन पंचम,/खग कुल कलरव मृदुल मनोरम,
सुख के भय काँपती प्रणय क्लम
वन-श्री चारुतरा।"

महाकवि कालिदास ने भी बादल को दूत बनाकर मेघदूत की रचना की। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने भी प्रियप्रवास में प्रकृति का चित्रण किया है।

"दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।।"

एक दूसरे प्रसंग में राधा बादल से कहती है कि हे बादल! तू उन ग्रामीणों के खेतों में जाओ जहाँ वे काम कर रहें हैं। वहाँ जाओ उनके ऊपर छाया करो जिससे कि धूप न लगे। इस प्रकार कवि ने बादल का मानवीकरण कर दिया है लोक कल्याण के लिए।

"अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है।/छोटे-छोटे मोती जैसे
उनके शीतल तुहिन कणों को,/मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर घिरते देखा है,/बादल को घिरते देखा है।"

इस कविता में कवि नागार्जुन सफेद पर्वत के शिखरों पर बादल को गिरते देखना, उन पर्वतों पर शीतल ओस का गिरना और कमल जैसे प्राकृतिक पदार्थों का अपनी कविता में सांगोपांग वर्णन करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने अपनी कविता का कलेवर सजाने-सँवारने के लिए माननीय अनुभवों और भावों को चिन्हित कर उनका वर्णन करता है। कवि अपने भावों को इस प्रकार लिखना चाहता है कि वे सबके भाव बन जाएँ और सबके भाव बन जाने पर रचना मनोहारी लगने लगती है। यदि प्राकृतिक उपादानों को काव्य-कला की पृष्ठभूमि से हटा दिया जाए तो कला स्वरूप बदल जाएगा।

तुलसीदास रामचरितमानस में नदी, ताल,तलैया, तथा कवितावली और अन्य रचनाओं में भी इसी तरह का वर्णन करते हैं। चूंकि भक्त कवि तुलसीदास को सारा संसार सीता राममय दिखाई देता है और यह भी मानते हैं यह सारा संसार उन्हीं से घटित हो रहा है। सीता राम की कथा के बिना कुछ भी लिखना-कहना व्यर्थ है इसलिए तमाम प्राकृतिक पदार्थों में सीता राम के विभिन्न रूपों और गुणों समाहित करते हैं और कहते हैं कि इसके बिना कविता की कल्पना करना व्यर्थ है-

"बरसा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरण जुग सावन भादव मास।।"

सावन,भादो में पानी बहुत बरसता है संपूर्ण पृथ्वी बरसात के पानी से भीग जाती है सीता राम की भक्ति भी इसी प्रकार से है। मलिक मोहम्मद जायसी पद्मावत में नागमती विरह-वर्णन करते समय बारहमासा का विधिवत प्रयोग करते हैं। इसमें रानी नागमती कहती है कि -

"बरसे मघा झकोरि झकोरी। मोर दुई नैन चुवै जस ओरी।।"

गोस्वामी तुलसीदास राम की कथा और उनके महात्म्य को नदियों के साथ जोड़ते हैं। जैसा कि ज्ञात है कि प्राचीन समय में नदियों के किनारे ही सभ्यताओं का विकास हुआ है। नदियों से पानी मिलता है,पानी के बिना कृषि कार्य भी संभव नहीं है। जीवन के लिए वायु की तरह पानी भी आवश्यक वस्तु है। जहाँ पानी नहीं है वहाँ अकाल पड़ता है। इसलिए नदियों में बारहों मास जल प्रवाह का रहना आवश्यक है। जल भी एक प्रकार का वैभव है। नदियों की तरह मनुष्य का जीवन बहता है। तुलसी कहते हैं जीवन में राम रूपी नदी कथा का होना आवश्यक है-

"रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।।"

रामकथा मंदाकिनी नदी के समान है, जो कि कवि के हृदय में बहती है। उनका हृदय चित्रकूट है इस चित्रकूट रूपी वन में स्नेह ही स्नेह है। इसी वन में सीता राम विहार करते हैं। सरयू नदी रामकथा में अपनी महिमा और गरिमा के साथ उपस्थित होती है और वह कवि के हृदय में बहती रहती है सरयू नदी के दोनों तटों में से एक तट लोक का किनारा है और दूसरा तट वेद का। तुलसीदास अपने आसपास के वातावरण को बहुत अच्छी तरह से निरखते-परखते हैं और प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनी कथा का आलंबन बनाते हैं। तुलसी के मानस और कवितावली में विभिन्न नदियों का नाम विभिन्न संदर्भों में आता है इस संदर्भ डॉ.रामविलास शर्मा ठीक ही लिखते हैं कि-"मानों हिन्दी प्रदेश की सभी नदियों को स्मरण पर तुले हों।" इन्हीं नदियों में कमल भी पाया जाता है। बालकाण्ड में तुलसी ने कविता कि रचना प्रक्रिया के संदर्भ में पुरइन (कमल) उपमा दी है। पुरइन शब्द का प्रयोग जायसी और सूरदास के काव्य में भी मिलता है-

"पुरइन कपिस निचोल विविध रँग विहसत सचु उपजावै।
सूर श्याम आनंद कंद की शोभा कहत न आवै।" (सूरदास),

इसी प्रकार जायसी भी पद्मावत के चित्तौड़गढ़ खंड में पुरइन की उपमा देते हैं। जैसे-

"सरवर चहुं दिसि पुरइन फूली। देखत बारि रहा मन भूली।।"

पुरइन पूर्वी उत्तर प्रदेश के बड़े-बड़े तालाबों,पोखरों में पाया जाता है। चैत-बैसाख से लेकर सावन-भादों में इसके फूल खिलते हैं। कमल के पत्तों को आज भी बेचा जाता है। उसकी जड़ों को कमल ककड़ी के नाम से जाना जाता है। वह भी गुणकारी खाद्य-पदार्थ है। भोजपुरी और अवधी बोली में कमल को पुरइन कहा जाता है, पुरइन पत्तों पर आज भी शादी-ब्याह में भोजन परोसकर खिलाया जाता है। पुरइन के पत्तों पर भोजन करना शुभ माना जाता है। इस संदर्भ को बताने का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि लगभग चार सौ वर्ष पूर्व महाकवि तुलसीदास को पुरइन की

जानकारी भलीभाँति थी तभी तो मानस की रचना करते समय तालाब में खिले पुरइन की मनोहरता और सघनता की उपमा देते हैं। पूरे तालाब में जब पुरइन खिल जाते हैं तब पानी ढक जाता है, और पूरे तालाब में फूल ही फूल, फल ही फल दिखाई देता है। जिसे देखकर मन प्रसन्न हो जाता है तथा इसके फल में औषधीय गुण भी पाए जाते हैं। गोस्वामी जी की कविता भी इसी भांति है-

"पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।"

गोस्वामी तुलसीदास ने प्रकृति के नाना रूपों को काव्य का विषय बनाया है कारण यह है कि-"उन्होंने प्रकृति को राम के अधीन" माना है। चूंकि समस्त संसार दुखों में डूबा है। पापों से मुक्ति के लिए राम के चरणों से उत्पन्न नदी दुखों का नाश करती है,अब उसी नदी को पार करने के लिए कथा नायक केवट से नाव माँग रहे हैं। नदी, तटनी, सरिता कथा प्रसंग में आलंबन, उद्दीपन बने हैं। दूब, दूध, दही, अक्षत आदि जैसे नितांत दैनिक जीवन के व्यवहारिक वस्तुएँ कथा में स्थान सुनिश्चित करती हैं। चरवाहा (गाय, भैंस, भेड़,बकरी को खुले मैदानों, नदी के किनारे, तालाब के किनारे और पठार में घूम-घूम कर चराने वाला व्यक्ति),किसान, मजदूर, बनिया, भिखारी,भाट, चाकर, नट, चोर आदि जैसे अति सामान्य प्राणी भी कवि की रचना प्रक्रिया का अंग बनते हैं। कवितावली के उत्तरकाण्ड में रामकथा के बहाने वन का चित्रण करते हैं। यह वह पवित्र वन है जिसमें मृग,पक्षी, किसानों के खेत खलिहान, सीता राम लक्ष्मण का निवास स्थान है जहाँ ऋषि मुनि आज भी निवास करते हैं। साधु-संतों, साधकों के लिए ज्ञान का वृक्ष भी है जहाँ शीतल और पवित्र जल के झरने बह रहे हैं जहाँ शिव की जटा से गंगा निकली है कवि कहता है कि यदि सीताराम का सच्चा स्नेह चाहिए तो चित्रकूट जरूर जाना चाहिए और वहाँ रहना चाहिए। जैसे-

"जहाँ वन पावनों, सुहावनों विहंग मृग,
देखि अति लागत अनंद खेत-खूँट सो।
सीताराम-लखन-निवास,वास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो।
झरना झरत झरि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेश जटाजूट सो।
'तुलसी' जौ राम सों सनेह साँची चाहिए,
तौ सेइए सनेह सों विचित्र चित्रकूट सो।।"

कथा के नायक जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ की तस्वीर आँखों के समीप दिखाई देने लगती है ऐसा लगता है कि कोई व्यक्ति हमारा हाथ पकड़कर उसे दिखा रहा है। रामचरितमानस और कवितावली में प्रकृति के उदाहरण भरे पड़े हैं। यही प्रकृति मानव जीवन में शुरू से लेकर अंत तक विभिन्न रूपों में विद्यमान रहती है; प्राकृतिक उपादान कथा में उद्दीपन का कार्य करते हैं। जिसे समर्थ कवियों ने अपनी काव्य-कला का विषय बनाया। कवि तुलसी भी इन्हीं प्राकृतिक उपादानों का रामकथा में वर्णन करते हैं। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार-"उनकी कविता में अन्न, फसल,बादल,ओले,वर्षा,धान,दूब आदि का उल्लेख बार-बार आता है।" रचनाकारों ने मानव जीवन और प्रकृति के अन्तःसम्बन्धों का गहराई से चिंतन-मनन किया है। क्या प्रकृति के बिना जीवन संभव है? वर्तमान दौर में इस विषय पर सहज ही सोचा-समझा जा सकता है। वर्षों पहले मानस, कवितवाली और गीतावली जैसे रचनाओं में प्रकृति और कला के सामंजस्य का अनूठा रूप मिलता है जिसमें मानव जीवन और उससे संबंधित तमाम क्रिया-व्यापार मिलते हैं। छोटी-छोटी वस्तुओं, समाज से अलग पड़े सामान्य जन,उनका रहन-सहन,तीज-त्यौहार,खुशी और आनंद उनके सुख-दुख सबका वर्णन मिलता है। सामान्य-सी प्रतीत होने वाली सभी घटनाएँ समर्थ कवियों के काव्य के विषय रहे हैं। तुलसी इन्हें बीनते-बटोरते हैं चिंतन-मनन करते हैं, फिर काव्य की कसौटी पर कसते हैं। यह सही है कि गोस्वामी तुलसीदास भक्त कवि हैं भक्ति के माध्यम से एक ऐसी कथा का वितान खड़ा करते हैं जिसमें मनुष्य जीवन के समस्त व्यापार घटित होते देखा जा सकता है। जो कवितवाली के साथ-साथ मानस जैसे महाकाव्य में भी दिखाई पड़ता हैं-"महाकाव्य में व्यापक जीवन, संस्कृति, और प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण अपेक्षित है। मानस में देवों, दानवों, वानरों तथा तिर्यक-प्राणियों के वैविध्यपूर्ण जीवन का वर्णन है। सभी पात्र,स्त्री-पुरुष अपनी प्रकारात्मकता और जीवन वैचित्रय के कारण जीवंत है। उसमें बाल्य, यौवन, वार्धक्य, उल्लास, विषाद आदि विभिन्न जीवन-दशाओं यज्ञ, नामकरण, विवाह आदि संस्कारों नगर, बारात, मंडप आदि वस्तुओं यात्रा, युद्ध कथोपकथन आदि व्यापारों, और ऋतुओं, प्रभात, संध्या, वन, पर्वत, सरिता, सागर आदि प्राकृतिक विषयों का वर्णन है।" तुलसी के काव्य सृजन में प्रकृति अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ उपस्थित हुई है। वह प्रतिपल परिवर्तित होते हुए भी कुछ न कुछ सिखाती है। सुख-दुःख का संदेश भी देती है। नदी की अविरल धारा की तरह प्रकृति भी बहना सिखाती है। बहना ही जीवन है। यह जीवन तुलसी के काव्य में सदियों से बह रहा है।

****

संदर्भ:-

1. तुलसीदास, (सं.तैंतीसवाँ संस्करण) दोहावली, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ-105
2. रामविलास शर्मा, (2001) भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली,उद्धृत, पृष्ठ-122
3. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-41
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, (2013) जायसी ग्रंथावली,नई दिल्ली, पृष्ठ-306
5. तुलसीदास, (सं.2071 आठवां पुनर्मुद्रण 2,000) रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, अरण्यक काण्ड, पृष्ठ-329
6. रामविलास शर्मा, (2014) रागविराग, लोकभारती इलाहाबाद, पृष्ठ-53-54
7. वही, पृष्ठ-43
8. http://kavitakoshorg/kk/%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%AF_%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B8_/_%E0%A4%85%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%A7%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE_%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%82%E0%A4%B9_%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%A7%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%AF_%E2%80%98%E0%A4%B9%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%94%E0%A4%A7%E2%80%99_/_%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%A5%E0%A4%AE_%E0%A4%B8%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%97_/_%E0%A4%AA%E0%A5%83%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%A0_&_%E0%A5%A7
9. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, एवं चंचल चौहान, (2011) नया पथ, जनवरी-जून (संयुक्तांक) नागार्जुन जन्मशती विशेषांक, नई दिल्ली, पृष्ठ-101
10. तुलसीदास, (सं.2071 आठवां पुनर्मुद्रण 2,000) रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ-24
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, (2013) जायसी ग्रंथावली, नई दिल्ली, पृष्ठ-305
12. तुलसीदास, (सं.2071 आठवां पुनर्मुद्रण 2,000) रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर,पृष्ठ-30
13. रामविलास शर्मा, (2001) भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास,साहित्य अकादमी, नई दिल्ली,पृष्ठ-225
14. https://hi-wiktionary-org/wiki/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7%E0%A4%A8%E0%A4%B0%E0%A5%80:%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80&%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%80/%E0%A4%AA%E0%A5%81%E0%A4%B0
15. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, (2013) जायसी ग्रंथावली, नई दिल्ली, पृष्ठ-392
16. तुलसीदास, (सं.2071 आठवां पुनर्मुद्रण 2,000) रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ-33
17. डॉ.रामशरण गौड़, (अक्तूबर-दिसंबर 2001) तुलसी विशेषांक, इंद्रप्रस्थ भारती, हिंदी अकादमी, दिल्ली, वर्ष: 13: अंक: 4, पूर्णांक: 46
18. सुधाकर पाण्डेय, कवितावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-180
19. विश्वनाथ त्रिपाठी, (2011, भूमिका से) लोकवादी तुलसी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
20. डॉ.वासुदेव सिंह, तुलसीदास, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद,पृष्ठ-255

मोहन राकेश की कहानियों में सामाजिक यधार्थ

डॉ.संदिरेड्डी सुभाषिणी
नेललूर जिला, आंध्रप्रदेश
मो.-8499864032

मोहन राकेश की करानियों में अपने युग में उत्पन्न सभी हलचलों समस्याओं एवं परिस्थितियों का अध्ययन बड़ी गहनता एवं तीव्रता के साथ किया है। वे जानते है कि किस तरह नारी की भावनाओं का मजाक हो रहा है। उच्च और निम्न वर्ग की बीच की असमानताएँ किस तरह यहाँ का मजदूर शोषण का शिकार बन रहा है। एवं किस तरह उच्च वर्ग वैभव एवं विलास के पालन में झूलना हुआ आराम का जीवन बिता रहा है।

मोहन राकेश की अपनी कंपनियों में मध्यवर्गीय जीवन के बारे में बताते हुए यह चित्रित किया है कि समाज में ऐसे लोग है जो अनेक प्रकार की यातनाएँ झलते रहते हैं। उनकी आर्थिक और सामाजिक यातनाओं के साथ-साथ किस प्रकार समाज में वे शोषित हो रहे हैं उनका यधार्थ चित्रण यहाँ किया गया है।

" कंबल " कहानी में मोहन राकेश जी निम्न वर्ग के लोगों की दयनीय स्थिति के बारे में जानकारी देते हैं। गंगादेई अपने परिवार के साथ कैम्प के पास धैर बनाकर रहती थी । तीस घरों की परिधियाँ जिनके बीच एक भी दीवार नहीं। फिर भी सबका एक-एक घर अपना है। उस कैम्प में जितने लोग है उन सब केलिए जिंदगी एक सवाल है फिर भी थे लोग जीत रहे हैं। सुबह से शाम तक काम के लिए इधर-उधर ढूँढते रहते हैं। रात को निराशा होकर घर लौटते हैं कभी कभी धनी लोग इन लोगों की गरीबी का फ़ायदा उठाते है। गंगादेई का बड़ा बेटा रामू को कुछ लोग मुसलमानों से बदला लेने की भावना को पैदा करके अंत में उसके मौत का कारण बन जाते हैं।

गंगादेई का परिवार एक साथ रहते हुए भी बिछड़े रहते हैं । जब बड़े बेटा की मौत हो गयी तब से उनका सहारा टूठ गया। गंगादेई के पति रामशरण जिंदा तो है लेकिन कुछ करने लायक नहीं रहा। ठंड के कारण खांसी की बीमारी आ गयी । ओढ़ने के लिए घर में एक कंबल तक नहीं रही। एक दिन किसी ने एक कंबल बनारसी देते हैं। बनारसी कंबल ओढ़कर आराम की नींद लेने के लिए सोची ।

" आधा कंबल शरीर से खींच गया। था। बनारसी ने कंबल को समेटने की चेष्टा की। गंगादेई का स्वर नींद में भी कर्कश था, डायन को अपनी ही शरीर से मोह है"। " बच्चा पास पड़ा ठिठुर रहा है, उसे टकने की चिंता नहीं। थोडा और छोड़ कंबल बच्चे को भी दो घड़ी सोने दे" ।

गरीब परिवार में एक कबुल के लिए झगडा होते हुए देखकर धनी लोग उसका उपयोग करने के लिए सदा सचेत रहते हैं। उसकी सहायता करने के लिए नहीं बल्कि उस अव का फायदा उठाने के लिए तैयार रहते है।

बनारसी ने आवेश में पूरा कंबल फेंक दिया कहा - ले ले केबल अपने ऊपर भी लेल । मुझे ठंड खाकर मौत नहीं आएगी । उन लोगों की निर्धनता का परिणाम यह निकला कि बहुत ठंड से रामसरण को अपना प्राण त्याग देना पड़ा । घर-परिवार में भी निर्धनता के कारण दरार पड़ जाते है निर्धनता के सामने पिता नहीं, माता नहीं कोई नहीं । कोई भी आदमी अपनी अंदर की भूख को मिटाने के लिए अपनी जिन्दगी को गुजारने केलिए इन सब रिश्तों को त्याग देना पड़ता है ।

अंत में परिणाम यह हुआ, गंगादेई सुबह उठकर रामसरण को जगाती है। लेकिन - रामसरण जागता, नहीं उसकी टांगे अकड़ कर फैल गई थी । शरीर में सूजन उत्तर आई थी मुंह आधा खुला था। आँख थी। आँख थी । वह मर चुका था ।" यहाँ गरीब लोगों की आर्थिक शोषण और सामाजिक स्थिति का चिषण किया गया है। मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियों में मिसपाल शीर्षक के अंतर्गत कहानीकार यह बताया है कि यधार्तवादी नारी पात्रों में जीवन को यथार्थ चित्र दृश्य बड़ी स्वाभाविकता से सजाए गए है । " मिसपाल " एक दफ्तर में काम करती थी। दफ्तर का वातावरण उसे अपने अनुकूल नहीं लगता था। उसे हर एक से शिकायत थी।

" ये लोग इतने ओछे और बेईमान है "। वह कहा करती इंतनी छोटी और कमीनी बातें है कि मेरा इनके के बीच रहते हर वक्त दम घुटता रहता है। इस तरह अकेली जिंदगी जीनेवाली नारी पर समाज किस नजर से देखता है ? और उसका हर किये पर मजाक उडान अपना हक मानता है। दफ्तर के लोग यह जानते थे कि वह किसी बात को स्वीकार करती थीं। लोग इस बात को जानते थे इसलिए जान बुझकर उसे छेडने के लिए कुछ - न - कुछ कहते रहते हैं। बुखारिया तो रोज ही उसके रंग-रूप पर कोई न कोई टिप्पणी कर देता था। क्या बात है मित्र पाल, आज रंग बहुत बिखर रहा है। दूसरी तरफ से जोरावर सिंह बात जोड देता आजकल मिसपाल पहले से स्लिम भी जो हो रही है।

मिसपाल इन संकेतों से बुरी तरफ परेशान हो उठती और कई बार ऐसे समय हफ्तर से उठकर चली जाती है विषपाल को इस तरह की हर बात दिल में चुभ जाती थी । आखिर वह नौकरी छोड़कर दूर चली जाती है। मोहन राकेश जी "मंदिर-मंदिर की देवी" कहानी में भारतीयों में सामाजिक चेतना लाने केलिए, हिन्दु धर्म के अंधविश्वास पर सफलतापूर्वक कुटारघात किया है। भारतीय समाज में अंधविश्वासी होने का एक कारण भाग्यवाद है। हिन्दुस्तानी भाग्य पर अधिक विश्वास रखते हैं। मंदिर के बाहर बैठे पांगले व्यक्ति को भी लोग सिद्ध पुरुष मानकर किस तरह अंधविश्वास में जी रहे हैं, इस बात का नमूना यहाँ दिखाई देता है। आज के वैज्ञानिक युग में भी सामान्य लोगों के मानस में से अंधश्रद्धा का भूत जहाँ का तहाँ ही घर कर बैठा है। मोहन राकेश जी ने कुछेक उदाहरणों द्वारा इस समस्या पर प्रकाश डाला है। धर्म को व्यवसाय के रूप में अपनानेवाले अशिक्षित लोगों द्वारा धार्मिक शास्त्रों की सुरक्षा पर लग रहे प्रश्नार्थक चिहन है । "जानवर और जानवर" कहानी धर्म और अपने पद के नाम पर अत्याचार करने वाले पादरी का चित्रण राकेश जी ने काली स्पाही से लिखा है । मिशन का पादरी फिशर अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अनाचार अनीति और के भ्रष्ट तरीकों को अपनाता है। यहाँ तक कि वह अपने खिलाफ अनीतियों का फर्दापाश करने वालों के पेट पर लात, मारने नहीं हिचकिचाता और सबेरे चर्च में जाकर अवर फादर हू आर्ट इन हैवन है लोड बी दाई नेम, दाई किंगडम कम दाई वील बी डन, दिस वर्ल्ड एकज इन हैवन ------।

मोहन राकेश जी कहते हैं कि पादरी जैसे लोग, अपने पद और धर्म के नाम पर कुकृत्य कर रहा है। इस प्रकार राकेश जी ने "जानवर और जानवर' कहानी में स्कूल मिशन में धर्म और पद की आड में हो रहे अनाचार, अत्याचार और पाखंड को पादरी के चरित्र के माध्यम से बेनकाब किया है।

मोहन राकेश जी ने अपनी कहानियों में जिस विविध दृष्टिकोणों से मानवीध संबंधों और समाज की विविध समस्याओं का विश्लेषण किया है, उसने समाज की बखियाँ उधेड-कर रख दी है। राकेश जी की कहानियाँ सामाजिक यथार्थ के साथ पूर्ण गहराई से जुटी हुई है।

दीपा मेहता की 'फायर' फिल्म में क्वीर (Queer) प्रतिनिधित्व

सलीजा ए .पी.
असिस्टेंट प्रोफेसर
Govt.Arts and Science College
Kozhikode ,Kerala

'फायर'फिल्म की कहानी नाम की तरह ही आग से भरी हुई है I सारे पात्रों के दिल में आग है, और फिल्म देखने पर लोगों के दिमाग में भी शायद आग ही उभर आई , और उस आग से लोगों ने थिएटर को भी जला डाला I इस तरह देखा जाये तो उस आग ने किसी को भी नही छोड़ा I शायद भारतीयों को लगता होगा कि इस तरह खुले आम समलैंगिकता दिखाया जाने से हमारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा, हमारी सभ्यता भ्रष्ट हो जाएगी, हमने जो बनाए रखा है इतने सालों से वह बिगड़ जाएगा I

क्वीर की परिभाषा देते हुए हम बता सकते है कि 'कवीर' नामक एक 'छाता' शब्द के अंतर्गत वे सभी लोग आते है जो विषम लैंगिक व सिस जेंडर नहीं है I अर्थात जिसकी जेंडर स्त्री व पुरुष का नहीं हो या जिसकी लैंगिकता समाज के कायदे के अनुकूल नहीं हो जिसको समाज विचित्र कहते आये हो और उनको उसी अर्थ में क्वीर नाम प्राप्त हुआ I दरसल क्वीर के अंतर्गत मात्र ट्रांसजेंडर या मात्र समलैंगिक समाहित नहीं है ,इसमें अनेक विभाग है, कई तरह के अंतर के साथ I जेंडर और लैंगिकता में शारीरिक व मानसिक रूप से अलगाव रखनेवाले सभी इस विभाग में आते है I ये अलगाव फिल्मों में आकर जैसे मिट जाता है I सभी एकरूप होजाता है ,और वे सभी ट्रांसजेंडर लोगों के रूप में समरूप हो जाते है I यह फिल्म की बात ही नहीं है समाज का हर एक व्यक्ति इन सब से अज्ञान या अल्पज्ञान होने के कारण सब को एक समझने लगता है I ट्रांसजेंडर और सभी समलैंगिक लोगों को एक साथ देखते है और एक ही रूप में देखते है I अभी भी हमारे समाज को इसके बारे में खबर नहीं कि 'कवीर' नाम के छाते के अन्दर कौन -कौन रहते है और क्यों रहते है I और इसका भी खबर नहीं कि सब इसलिए एक ही छाते में रहते है कि उनका अलग -अलग कोई छाता नहीं है I और तथाकथित विषम लैंगिक उन्हें समाज से दूर करने में लगे रहते है I

बॉलीवुड कवीर दुनिया के बारे में उसकी विचित्रता को लेकर वास्तविकता को चित्रित करने में बहुत क्रूर रहा है I एलजीबीटीक्यू समुदाय के अधिकांश बॉलीवुड का प्रतिनिधित्व ऐसे पात्रों के रूप में हुआ है जिन्होंने लैंगिक रूढ़ियों को मात्र परिभाषित किया है। उसके आगे कुछ नहीं बताया गया और यथार्थ प्रतिनिधित्व से दूर रहा I उदाहरण के लिए, राजा हिंदुस्तानी में कम्मो और गुलाब सिंह या बाजी में आमिर खान। बाज़ी में, आप पाते हैं कि आमिर खान एक महिला के व्यक्तित्व को ले जाता है, छेड़खानी करता है और इस तरह, फिल्म के खलनायक को फँसाता है, I पहले फिल्मों इस तरह का पात्र का सृजन मज़ाक के लिए किया जाता था नहीं तो खलनायक या कोठेवाली के रूप में ,जैसे 'सड़क' में महारानी के वेष में सदाशिव अमरापुरकर और 'संघर्ष' में आशुतोष राणा I लेकिन तब भी समलैंगिकता का चित्रण नहीं के बराबर था I

फिर 'दोस्ताना' और हाल में 'स्टूडेंट ऑफ़ द इयर' दोनों फ़िल्मों ने समलैंगिक पुरुषों के प्रतिनिधित्व को खराब करके पैसा कमाया I उनको सिर्फ लैंगिकता के लिए ही ज़िन्दगी बितानेवाले दिखाकर नकारात्मक प्रतिनिधित्व ही दिखाया I जैसे 377 अब नार्मल है फिल्म का एक संवाद है जो एक बेटी अपने माँ से करती है "आप मेरे जीवन के एक छोटे से पार्ट को क्यों नहीं समझ पारही है ?" लैंगिकता एक इंसान की ज़िन्दगी का एक छोटा सा अंश है ,फिर मात्र उसको लेकर अमुक इन्सान की पूरी ज़िन्दगी ख़राब करने का ठेका विषम लैंगिक लोगों ने खुद ले रखा है ,यही चर्चा और परिवर्तन लाने का विषय है I

भारत ऐसा देश है जहाँ पर संविधान और विधि नियमों से ज्यादा महत्व सामाजिक,व धार्मिक रीति-रिवाजों को देता है I समाज जितने भी आगे बढ़े, समाज के लोग जितने भी प्रगति करें समाज अपने लोगों को अपने नियम पर चलने को मजबूर करते है I धार्मिक रीति रिवाज को समाज अपना सब कुछ मानता है ,और उसी के बलबूते पर आगे बढ़ने लगता हैं और राय भी उसी के आधार पर बनाने लगते हैं...I धार्मिक विश्वासों के आधार पर ही समाज अपना नियम बनाता है ,धर्म को ही अपनी संस्कृति मानकर आगे बढता है I ऐसे में समाज में एक समलैंगिक मुद्दे पर फिल्म बनाना और थियटर में रिलीज़ करवाना बहुत जोखिम की बात है ,जो दीपा मेहता ने किया था I यह फिल्म उनकी तत्व त्रय (elements trilogy) में से एक है I दूसरा फिल्म 'Earth' और तीसरा फिल्म 'Water' है I जो भारतीय समाज के विवादस्पद मुद्दों पर बनाया गया था I

दीपा मेहता ने 'फायर' फिल्म के ज़रिये एक आम परिवार की, आम लोगों की ज़िन्दगी में होनेवाली एक घटना के ज़रिये एक आम बात ही हमारे सामने रखी है। बड़ी हिम्मत के साथ ,लेकिन इसे दूसरे लोग विचित्र या अनहोनी मानते है। ज़्यादातर बुज़ुर्ग इसे गन्दा मानते है। अपरिपक्व मानते है। इस के बारे में बात करना भी भारत में पाप माना जाता था तो इसको फिल्मों पर दिखाना सब की नज़र में कितना बड़ा पाप रहा होगा I1996 में यह फिल्म बड़ी हिम्मत की बात थी I

एक साधारण,माध्यवार्गेय परिवार में छोटे भाई की शादी के बाद बहू जब घर आती है...हर तरह का स्वागत होता है.। भाई, जेठानी, बीजी और नौकर सब ख़ुशी मनाते है। खुश नहीं है तो वह छोटा भाई है जिनके इच्छा के विरुद्ध यह शादी हुई थी ,और भी एक है जो इस शादी नामक बंधन से ख़ुश नहीं थी- वह दुल्हन है I शायद उसकी सारी भावनाओं के विरुद्ध यह शादी हुई थी I यह भी हमारे समाज की परिचायक है। जो नहीं होना है उसे होने देते हैं और जो होना चाहिए उसे होने नहीं देते I

छोटा भाई अब भी रोज़ रात अपनी प्रेमिका से मिलने जाता है और फिर सीता के पास आकर भी लैंगिक रूप से अपना कर्तव्य जैसा कुछ निपटाता है। जो सीता बिलकुल भी नहीं चाहती मगर उसे भी सहना पड़ता है। सीता की भावनाएं जेठानी राधा के साथ बहुत जल्दी जुड़ जाती है। सीता अपनी भावनाओं के साथ राधा के प्रेम भावनाओं को जोड़ पाती है, राधा की ज़िन्दगी के अधूरे सपनों को अपने सपनों के साथ जोड़ने में वह जल्द ही सफल होती है।

घर के नीचे ही उनका अपना मिठाई का दुकान है ,जिस से घर शान से चलता है I राधा ने अपने आप को बाँट दिया थी ,दुकान में मिठाई बनाने में नेतृत्व देनेवाली और काम करनेवाली एक कुशल कर्मचारी के रूप में ,घर का सारा काम समय में निपटानेवाली एक नौकर के रूप में ,दादी जो चल फिर नहीं सकती, उसका सारा काम छाव से निभानेवाली होम नर्स के रूप में और घर में सब के लिए हर वक्त मौजूद होनेवाली खुशहाल बहू के रूप में I राधा का पति जो ,घर का बड़ा बेटा है एक पंडित श्रेष्ठ को बहुत मानते है ,उनके सत्संग में भाग लेता भी रहता है ,जिनसे अब मन का नियंत्रण और शरीर का नियंत्रण भी सीख रहा है I वह अपनी पत्नी राधा के साथ एक ही खाट पर लेटकर कुछ देर संयम सीखता है ,उनको अपनी शारीरिक विचारों पर काबू पाने के लिए मात्र ही अपनी पत्नी की ज़रूरत है I राधा को कुछ देर उनके साथ लेटना पड़ता है और जब पति कहे तो वहाँ से उठकर दुसरे खाट पर जाकर लेटना होता है I सीता तो अपने पति से किसी भी तरह जुड़ नहीं पायी I दीपा मेहता इस कहानी के ज़रिये हमें यह भी समझती है कि शादी होना और लैंगिक सम्बन्ध जोड़ना ,यह भी काफी नहीं होता है मन जुड़ने के लिए I उस की वासनाएं अलग थी ,वह अपने पति में कोई दिलचस्पी नहीं रख पारही थी ,और दिलचस्पी रखने की आवश्यकता उस पति को भी नहीं था I राधा और सीता के बीच जो लगाव और अपनापन है वह उनकी निकटता को बढ़ावा देता है I दोनों करीब रहने पर प्राप्त आनंद चकते हुए सारी सीमाओं को लांघने लगते है I वे दोनों साथ होते हुए ही अपने आप को पूर्ण पा रहे थे I वे दोनों उसी प्रेम की पूर्णता में खोरहे थे ,इसलिए पता ही नहीं चला कि बीजी सब कुछ जान रही थी I बीजी का पात्र प्रतीकात्मक रूप से समाज और समाज में मौन रूप से अधिकार जामाए बैठे ,रूढ़ी और आचार की पैरवी करनेवाले ,तथाकथित सभ्य समाज है I वह चुपचाप बैठती है लेकिन सारी चीज़ो पर नज़र रखती है, अपना लिबाज़ भी चाहे किसी और से

पहनवाती हो मगर घमंड नहीं छोडती I वह घर के किसी भी व्यक्ति को कायदे के या आचार के खिलाफ जाने नहीं देगी, खासकर बहुओं को I

समाज भी वैसे ही है, वह पुरुष तो मनमानी कर सकता है होजाए उन्हें कोई फरक नहीं पड़ता I मगर स्त्री के सारे बंधनों को और उसके लिए जो भी नियम है उन सब को, कसकर बांधता जाता है I

बीजी को मुंडू नामक नौकर से बहुत कुछ सहना पड़ता है, बिना आवाज़ उठाये कई बेशर्मियों का सामना करना पड़ता है, समाज को भी ऐसे भुगतना पड़ता है.. समाज या समाज के पैरवी करनेवाले कितने भी रोक लगाए उसके चेहरे पर कालीमा थोपनेवालों की कमी नहीं होती I बीजी सीता के मुँह पर थूक कर राधा और सीता के बीच के समबन्ध के प्रति अपना विरोध प्रकट करती है I यहीं तो होता है समाज में भी वह चुपचाप तमाशा देखता है और फिर उसके खिलाफ कुछ हुआ तो सामने वाला चाहे अपना भी हो उस पर खींचड़ उछालने में कोई कसर नहीं छोड़ता Iबीजी चल नहीं सकती, सब उसको ढ़ोते है.. उसको इधर उधर ले जाने के लिए भी दूसरों की कंधो का सहारा लेना पड़ता है, उसी तरह समाज भी I वह कई सारी अंधविश्वासों और अनाचारों को कंधे पर ढोके रखा हैं और ऐसा भी कह सकते है कि बीजी रुपी समाज जब बहुत सारे बंधन ,अनाचार, रूढी अंधविश्वास सारी चीजों से लाचार हो गए हैं उस में बसे सारे व्यक्तियों को यह ढोना पड़ता है I

बीजी एक प्रतीक है कभी ना बदलने वाले समाज के नजरिए की और कभी ना आगे बढ़ने वाले दिमाग की I समाज के अंधविश्वासों को बरकरार रखने के लिए और पुरुष वर्चस्व को कायम रखने के लिए बीजी जितना उससे हो सकती है उतना कर रही है I उसी तरह समाज चाहे लंगड़ा हो फिर भी अपने कायदे कानून पर ही टिके रहेगा अंधविश्वासों को ढोते हुए ही आगे बढ़ेगा…I

इसी तरह समाज का एक और प्रतीक है मुंडू का कैरेक्टर I परिवार का नौकर है ,राधा की सहायता करते हुए मिठाई की दूकान और घर में रहता है ,और वह राधा से चाहत मन में रखता है I वह सीता और राधा की दोस्ती को बढ़ते हुए देख नहीं पारहा था, और धमकाकर सावधानी बरतने के लिए आह्वान भी देता है I सीता और राधा के प्रेम के पलों को उसने जब चोरी से देख लिया तो रंगे हाथों पकडवाने के लिए राधा के पति को बुलाकर ले आता है I जो उसने देखा वह पाप था ,और उसके मन में जो राधा के प्रति था उसका पाप से कोई ताल्लुक ही नहीं I

दीपा मेहता ने सीता और राधा नाम से इन दो प्रेमियों का सृजन शायद जानबूझकर ही किया है, उनको दो पौराणिक नायिकाओं के नामों को ही अपनाकर भारत की पौराणिक परम्परा को चुनौती देनी थी I पुराण की राधा जिसने अपने प्रेम को ही विश्व कल्याण के लिए त्याग दिया था लेकिन दीपा ने राधा को अपना प्यार अपने परिवार के लिए ना त्यागनेवाली के रूप में दिखाने की हिम्मत की है I ,और अपने प्रिय के लिए इस संसार को छोड़कर न्योछावर होनेवाली सीता का नाम किसी और के प्यार में लीन अपने पती को ही छोड़कर अपने प्यार को आपनाने वाली के रूप में दिखाया है I भारतीय सारे मनगढ़त कहानियों को धर्म के नाम पर विश्वास करने के लिए तैयार होते है मगर, एक व्यक्ति के मन और तन की बात की विभिन्नता को स्वीकार करने के लिए कदापि तैयार नहीं होसकता I

राधा को समंदर देखने की इच्छा थी बचपन से ,जिसकी पूर्ति कभी नहीं हुई ,उसी तरह उसकी ज़िन्दगी इच्छाओं की आपूर्ति में ही उसकी ज़िन्दगी थी जो पूर्णता को छू पाई तो सिर्फ सीता के प्रेम में I इस तरह के पात्रों के सृजने में भी फिल्म कामयाब रही ,मगर राधा का पात्र अपनी परिस्थिति से मजबूर होकर समलैंगिकता में प्रवेश करती हुई दिखाई है ,जो एक गलत प्रतिनिधित्व होसकता है I लोगों को गलत धारणा में भी डाल सकता है कि समलैंगिकता परिस्तिथि से मजबूर होकर जन्म लेती है I कई लोग ऐसी मानसिक और शारीरिक इच्छाओं को दबाकर ही अपनी ज़िन्दगी बिताते है I यह फिल्म बेमेल विवाह और अधूरी सपनों में अपने आपको कुर्बान कर जीने के आलावा भी कुछ करने का आह्वान भी देता है I जब राधा और सीता अपने घर के सारे बंधनों को तोड़कर निकलते है तो वह उनके प्यार की जीत थी और समाज के लिए सीख I

भले ही इस फिल्म के पहले समलैंगिक फिल्मों के चित्रण का प्रयास हुआ था ,मगर वह कही दिखाई नहीं दिया था ,इसी को प्रथम चित्रण के रूप में हम ले सकते है वह भी प्रभावी तरीके से I प्रभाव इतना था कि थियटर तक जलाकर लोग प्रतिक्रिया करने लगे Iइसका मतलब यही था कि सच्चाई को देखकर झटका ज़रूर लगा था और स्वीकार करने की दिक्कत भी देख रहे थे I जो सामाज में रात के अँधेरे में होता रहा उनको दिन के उजाले में भी स्वीकार करना था बस I उनकी इस शुरुआत के बाद ऐसे फिल्मों का कुछ सिलसिला ज़रूर आया जो निडर होकर समलैंगिक कहानी सटीक रूप से चित्रित कर रहा था I

******

सन्दर्भ :-

1. Queer को एक 'छाता शब्द' या 'umbrella word' के रूप में मानते है
2. www.Collinsdictionary.com-queer की परिभाषा
3. Queering films.himadriroy
4. फिल्म 377 अब नार्मल है
5. Homemcr.org
6. Fire फिल्म -1996

'माधवी' नाटक की रंगमंचीयता

डॉ.जस्टी इम्मानुएल
सहायक आचार्या- हिंदी विभाग
अल्फोंसा कालेज पाला कोट्टयम जिला
केरल पिन:686574

रंगमंचीयता नाटकों की लोकप्रियता बढ़ाने वाला तत्व है।यह लोक चेतना के विकास का अत्यन्त अनुपेक्षणीय गुण भी है। नाटककारों ने रंगमंचीयता के प्रयोग से ही समाज के विभिन्न समस्याओं, विभिन्न पक्षों को उकेरकर नाटकों को सहज सरल और जनोपयोगी बनाते हैं।इस दृष्टि से माधवी नाटक विशेष उल्लेखनीय है।

भीष्म साहनी का नाटक माधवी का सृजन महाभारत के उद्योग पर्व के 206 वें अध्याय के आधार पर हुआ है। थिएटर निदेशक राजेंद्र नाथ मल्होत्रा द्वारा माधवी नाटक का पहला प्रस्तुतीकरण हुआ। इसमें यू.एस प्रशिक्षित पात्र रुषी बन्नी ने माधवी की भूमिका निभा दी। इसके संगीत प्रस्तुतीकरण को अंतरराष्ट्रीय फेस्ट का पुरस्कार भी मिला। इस नाटक का अगला प्रदर्शन प्रयोग नाट्य संस्था ने प्रगति मैदान (दिल्ली) के मंजर मंच पर उनतीस,तीस जून तथा एक जूलाई उन्नीस सौ चौरासी को एम के रैना के निर्देशन में किया। भीष्म साहनी का रंगमंच से सरोकार सिर्फ नाटककार का नहीं था। वे उसके हर पहलू से जुड़े थे। उन्होंने अभिनय भी किया, निर्देशन में भी हाथ जमाया आधा दर्जन नाटकों की रचना करके एक विख्यात नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित भी हुए। लंबे समय तक 'इप्टा' से भीष्म साहनी का सरोकार इस नाटक का अनेक बार सफल मंचन करने में सहायक हो चुका है वहां उसका निर्देशक अरविंद गौडे थे।

इस नाटक की प्रस्तुति और प्रदर्शन के लिए निर्देशक ने कथा वाचन की शैली को अपनाया। प्रदर्शन के शुरुआत ढोल मंजीरे के साथ एक धुन से है, जो शीघ्र ही समाप्त हो जाती है। फिर कथा वाचक प्रवेश करके कथा की सूचना देता है। कथावाचक यहां संस्कृत नाटकों में सूत्रधार की जैसी भूमिका निभाता है। यहां कथा वाचक एक ज्ञानी पंडित और भविष्य द्रष्टा की तरह कर्तव्यपारायणता एक सच्चा साधक का सर्वश्रेष्ठ गुण - माँ के प्रति गुरु के प्रति और धर्म के प्रति कर्तव्य पालन करने का अर्थ भी स्पष्ट करता है । तुलसीदास की - नीति सदा चली आयी

प्रण जाये पर वचन न आयी' वाले चौपाई को दुहराते वचन पालन की ज़रूरत पर ज़ोर देते हैं । फिर दर्शको को संबोधित करके महाभारत का कर्तव्य पारायण शिष्य गालवकुमार की कथा कहने लगता हैं। गुरु श्रेष्ठ विश्वामित्र का शिष्य गालव अपनी शिक्षा पूर्ति के वक्त गुरू दक्षिणा देन की हठ करता है। उसके हठी स्वभाव से क्रुद्ध होकर विश्वामित्र उससे आठसौ अश्वमेधी घोडे दक्षिणा में माँग लेते हैं। गुरु दक्षिणा जुडा पाने में असमर्थ मुनिकुमार गंगा में कूदकर आत्महत्या करने को तैयार करते हैं । अपने भक्त को संकट से बचाने के लिए विष्णु भगवान ने उससे दानवीर ययाति के करीब पहुंचने का सलाह देते हैं। राजपाट से निवृत्त ययाति गालव की प्रतिज्ञा सुनकर असमंजस में पड जाते हैं। आखिर वे चिर कौमार्य एव अन्य अनेक दिव्य दुर्लभ गुणों से युक्त अपनी एकमात्र बेटी माधवी को यह कहकर उसे सौंप देते हैं कि यहाँ कहीं किसी भी राजा के पास आठ सौ अश्वमेधी घोड़े मिलें उनके बदले वह माधवी को राजा के पास छोड़ दें । माधवी के बारे में कहा गया है कि उसके गर्भ से उत्पन्न बालक चक्रवर्ति राजा बनेगा। यहीं से माधवी की कथा आरंभ होती है। इस नाटक के केंद्र में ययाति की बेटी माधवी है, जो लगभग एक अलौकिक मिथकीय परिवेश में रहते बहते हुए भी अत्यधिक सजीव ' सर्वदा प्रासंगिक और आकर्षक बनकर उभरती है । पुरुष वर्चस्व समाज में हाशिए कृत एवं पुरुषों की स्वार्थ पूर्ति के लिए के समक्ष अपनी जिंदगी की कुर्बानी करने में अभिशब्द नारी की प्रतिनिधि है माधवी। उसे अपने पिता की यशप्राप्ति की लालसा में उनकी दानवीरता की आग में अपने सपनो की बलि चढ़ानी पड़ती है । पुरुषों के लिए नारी किसी न किसी प्रकार अपने स्वार्थ पूर्ति का साधन मात्र है । ययाति के लिए अपनी बेटी माधवी अपना यश कायम करने का साधन हो जाती है तो गालिब के लिए अपने कर्तव्य पूर्ति का साधन मात्र बन जाती है । माधवी गालव से गुरु के पास जाकर ऋण मुक्त कराने की प्रार्थना करने को कहती है गालव इनकार करता है क्योंकि उसके के लिए अपनी साधना ही महत्वपूर्ण है पिता की यश लिप्सा और गालव की स्वार्थतता के बीच माधवी का सपने टूट जाते हैं I अश्वमेधी घोड़ों की खोज में निकले गालव यह सत्य पहचानते हैं कि पूरे आर्यवर्त में कोई भी राजा के पास आठ सौ अश्वमेधी घोड़ा नहीं है ।अश्वमेधी घोड़ा जुटाने के प्रयास में माधवी कई राजाओं के अनंतपुर में रहने के लिए मशबूर हो जाती है । इस प्रकार माधवी अयोध्या के राजा हरियश्व काशी के लंबट महाराज दिवोदास, भोजनगर के वृद्ध राजा उशीनर आदि राजाओं के संग रह कर उन्हें चक्रवर्ती बनने के लिए लक्षण युक्त संतानो की भेंट करके अंत में विश्वामित्र के सामने भी अपने को समर्पित करते हैं ।इस प्रकार पूरे आठ घोड़े जुटाकर गालब को ऋण मुक्त करती है ।इन तीनों राजाओं के लिए माधवी का जिस्म चक्रवर्ती पुत्र को जन्म देने का साधन मात्र था । राजा हर्यश्व के दरबार की भरी सभा में इसकी नारीत्व का अपमान भी होता है गालव की शर्त पर विश्वास न रखकर राजा हर्यश्य राज ज्योतिषी को.दरबार में बुलाया जाता है । ज्योतिषी द्वारा माधवी को गालव और भरी सभा के सामने दरबार के बीचो बीच एक पीठिका पर खडा कर उसके अंग प्रत्यंगों की खोज परख करता है ।राज ज्योतिषि माधवी की , पीठ,कपोल नेत्र ,स्तनयुगल , नितंब, केश , दॉत, पैर तक को छू छू कर उसकी विशेषताएं बताकर उसे चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करने योग्य सिद्ध करता है तभी राजा उसे खरीदता है । इस प्रकार माधवी को भरी सभा में अपमान भी सहना पड़ता है।

मातृत्व की ममता हर नारी के लिए एक स्वप्न है ।यहां माधवी को मां की आनंददाई भावनाओं का गला घोंटना पड़ता है ।अपनी कोख से जन्म लेने वाले बच्चों की आवाज को अनसुना करके अपने पिता की दानशीलता तथा गालव की कर्तव्यपरायणता को बनाए रखते हैं। इसी प्रक्रिया में उसे अपना कौमार्य नष्ट होता है। वह बूढी हो जाती है। अपने नारीत्व और मातृत्व तक की बली देती है। माधवी का दृढ़ विश्वास था कि लक्ष्य पूर्ति के बाद गालव उसे अपनी जिंदगी में समाएगा। अपने पिताजी गालव को ही उसे सैंपा है ।लेकिन ऋण चुकाने के बाद कर्तव्यनिष्ठा का उपासक गालव सौंदर्य का उपासक बन जाता है। जो स्त्री गुरु के आश्रम में रह चुकी हो उसे अपनी पत्नी नहीं मान सकता । माधवी को त्याग देने का प्रयास करता है। माधवी के फीके सौंदर्य को अनुष्ठान द्वारा पुन: स्थापित करने का सलाह देता है। माधवी चाहती है कि गालव उसी अवस्था में ही उसे अपनाएं। लेकिन गालव इसके लिए तैयार नहीं। अपने आदर्श पर ,अपने दृढ़ संकल्प पर अडिग रहनेवाली माधवी इस प्रस्ताव का टुकराती है। जिस पुरुष को वह अपना सर्वस्व मानती थी जिस पुरुष की अव्यवहारिक प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अपना सब /कुछ नष्ट कर दिया उस पुरुष के स्वार्थ और आत्म सीमित रूप को पहचान कर वह विद्रोह करने लगाती है यह खुद ही उसे वहीं छोड़ विशाल दुनिया में अपने सही जगह और पहचान ढूंढने निकल पड़ती है ।जाने के पहले वह प्रतिषेत प्रकट करती है -"संसार गालव को तपस्वी और साधक कहेगा, ययादी को दानवीर कहेगा पर उसे?यह एक प्रतिषेध का सवाल है जिसका वह खुद जवाब देती है चंचल वृत्ति की नारी कहकर लोग उसका अपमान करने लगेगा। यहां उसकी मनोवेदना प्रतिषैद बनकर उभरती है मैं तो तो वह मां हूं जिसकी गोद भर्ती गई और काली होती गई। अब तो संतान धारण करने से ही मुझे डर लगता है संतान धारण करने का मेरे लिए केवल एक ही अर्थ है अपने बच्चों को खो देना "।

पुरुष द्वारा अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए स्त्री को इस्तेमाल करने की एक खतरनाक कथा थोड़े बहुत हेर- फेर के साथ आदिम युग से आज तक किसी न किसी रूप में बार-बार दोहराई जाती है। अपनी प्रतिष्ठा के लिए दूसरों की जिंदगी को, दूसरों की स्वतंत्रता को कोई भी मूल्य न देने वाले स्वार्थ आधुनिक पीढ़ी का प्रतिनिधि है गालव। यहां नाटककार ने गालव के माध्यम से भूमंडलीकरण के इस युग में शिक्षित और लक्ष्योंन्मुख युवा पीढ़ीयों के बीच संबंधों की जटिलता और विडंबना को अभिव्यक्त किया है। गालव में आधुनिक शिक्षित युवा पीढ़ियों की अनुशासन बद्धता, दृढ़संकल्प, कठोर निष्ठा,लक्ष्य प्राप्ति तक पहुंचने का संकल्प, अपनी क्षमता पर दंभ आदि विशेषताएं विद्यमान हैं। देश के कोने कोने पर भटकने पर भी गालव की एकनिष्ठा में कोई अंतर नहीं आया उस दृष्टि से देखें तो माधवी भी अपनी कर्तव्य पारायण से पीछे नहीं हटती। माधवी के बिना गालव अपनी लक्ष्यपूर्ति में सफल नहीं होता वह अपने पिता के वचन को सार्थक बनाने के लिए अपनी तमाम श्रेष्ठताओं की आहूति करती है ।नाटककार ययाति के चरित्र के द्वारा कठोर प्रतिष्ठा और प्रशंसा के इच्छुक शासक वर्ग का चित्रण करते हैं। अपनी बेटी के आग्रह की चिंता किये बिना ययाति उसे गालव को देता है। "मैं ने तुम्हें दान स्वरूप दे दिया है। तुम्हारे माध्यम से उस युवक प्रतिज्ञा पूरी होगी।" अपनी लाभ, पदोन्नति एवं प्रतिष्ठा के लिए पिता या पति द्वारा भेंट की गयी स्त्रियों का करुण क्रंदन बाजारीकरण के इस युग में खूब सुनाई पड़ता है। भूमंडलीकरण के इस युग में स्त्री केवल बिकाऊ माल बन गयी है। आज स्त्री विज्ञापन का सबसे बड़ा शिकार है। पुराने रीतिकाल में स्त्री भोग्य वस्तु के रूप में केवल दरबारों एवं धनिकों के घर तक उपलब्धी । लेकिन आज इस समकालीन दौर में स्त्री को चौराहे पर लटकते हुए, टेलिविजन और इंटरनेट में प्रदर्शित करते हुए सब कहीं भोग्य वस्तु के रूप रूपायित किया है। गालव की लक्ष्यपूर्ति के लिए कई राजाओं के रनिवास में जाने के लिए अभिशप्त माधवी जैसी स्त्रियाँ आजकल मामूली घरों तक उपलब्ध है।

निष्कर्षत:

हम कह सकते हैं कि महाभारत की कथा पर आधारित माधवी में भीष्म साहनी ने अपने समय की जरूरत और चुनौतियों को नज़र अंदाज़ नहीं किया है। माधवी इस प्रौद्योगिक युग की नारी के तमाम संवेदनाओं की वाहिका है। माधवी नाटक के तमाम पात्र वर्तमान समाज के किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। माधवी नाटक द्वारा भीष्म साहनी ने समकालीन समाज की समस्यायों को सामने लाने का प्रयास किया है। शासक वर्ग की कूट नीनियों का पर्दाफाश भी किया है। उसी प्रकार रंगमंच की दृष्टि से तथा नारी अस्मिता की दृष्टि से माधवी नाटक उल्लेखनीय है।

******

संदर्भ ग्रंथ:-

1. माधवी -भीष्म साहनी
2. भीष्म साहनी के नाटकों में मिथकीय और रंगमंचीय प्रयोग प्रोफ आलोक गुप्ता

नाट्यालेख और रंगालेख का अंतर्संबंध

सोहन कुमार
पीएच.डी. (शोधार्थी)
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 9718159820

शोध सार-नाटक साहित्यिकी मानकों के अतिरिक्त मंचीय कल्पना के पदचिन्हों को प्रदर्शित करने वाली वह विधा है जो पाठ्य और प्रदर्शन के दोहरे मानक को स्व में समाहित करती है। नाट्यालेख लेखक के मानसिक रचना संसार की शाब्दिक प्रस्तुतिकरण है। जिसमें नाटककार घटनाओं और दृश्यों का अभिव्यक्तिकरण समय सापेक्ष करता है। इसी आलेख के आलोक में निर्देशक अभिमंचन हेतु रंगालेख तैयार करता है जो पाठ्य में अभिव्यक्त घटनाओं व दृश्यों का वर्तमान में प्रस्तुतिकरण करता है। इस प्रकार दोनों आलेख के मध्य अन्योन्याश्रित संबंध होता है, क्योंकि कोई भी मंचीय आलेख मंचन के दौरान किस प्रकार के स्वरुप और शैली को ग्रहण करेगी इसकी छवि मूल आलेख में प्रतिबिंबित हो जाती है। इस शोध पत्र में नाट्यालेख व रंगालेख के अन्योन्याश्रित अंतर्संबंधों को उजागर करने का प्रयास हुआ है।

बीज शब्द:- नाट्यालेख, रंगालेख, संप्रेषण, अभिमंचन, इप्टा, समन्वित।

नाटक एक साहित्यिक विधा है, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति मंचीय प्रक्रिया द्वारा ही संभव होती है। इसके विपरीत मंचन एक साहित्येत्तर विधा है, जिसके अभाव में नाटक अधूरा सा रहता है। यही कारण है कि नाटक को एक सहयोगी कला के रूप में स्वीकार किया जाता है। जिसमें समाज का ताना-बाना बुना होता है, जिसमें राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का सरोकार दिखाई पड़ता है। नाटक का पाठ और प्रदर्शन इन्हीं बिन्दुओं के संकेन्द्रण पर आधारित होता है। जिसके आलोक में पाठक या प्रेक्षक पाठ्य और प्रदर्शन के श्रव्य, दृश्य या श्रव्य-दृश्य दोनों ही माध्यमों को अनुभूति करता है। हिंदी रंगमंच साहित्य की एक पाठ्य, श्रव्य तथा दृश्य विधा से जुड़े भाग नाटक के समीप दिखायी देती है। नाटकों का लेखन एक पाठ्य विषय-वस्तु के रूप में होता है जिसकी सार्थक अभिव्यक्ति मंच पर नाटक के विषयवस्तु, कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण आदि की संयोजित संकल्पना के साथ मंच पर कुशल रंगकर्मियों की प्रतिभा के माध्यम से प्रस्तुत होती है। नाटक के सम्पूर्ण समर्पण व अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में प्रख्यात रंगचिन्तक नेमिचंद्र जैन कहते हैं- **"नाटक साहित्यिक अभिव्यक्ति की ऐसी विधा है, जो केवल साहित्य ही नहीं अपितु उससे अधिक कुछ और भी है क्योंकि यह रचना की प्रक्रिया द्वारा लिखे जाने पर ही समाप्त नहीं होती, उसका पूर्ण प्रस्फुटन और सम्प्रेषण रंगमंच पर जाकर ही होता है।"** सामान्यतः नाटक की प्रकृति साहित्यिक होती है परंतु उसका जुड़ाव प्रदर्शन के विविध पक्षों से होता है। नाटक के शिल्पगत तत्व इसे अन्य साहित्यिक रुपों से पृथक करते हैं। इसमें निहित शिल्प के अंतर्गत कथा-संरचना, चरित्र-चित्रण, संवाद, भाषा-शैली, देशकाल इत्यादि की सजग उपस्थिति, इसे साहित्य से अन्यान्य दृश्यकाव्य का स्वरुप भी प्रदान करते हैं। इसकी मंचीय सम्पूर्णता को अभिकेंद्रित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, **"केवल पुस्तक में लिखी बातें ही सम्पूर्ण नाटक नहीं है, वे अपनी पूर्णता के लिए रंगमंच की अपेक्षा रखता है।"** नाटक में कथ्य, विषय और उद्देश्य का विशेष महत्त्व होता है, जो नाटक के अस्तित्व को संभव बनाता है और उसके रंगमंचीय प्रभाव की गुणवत्ता को निर्दिष्ट करता है। आचार्य भरतमुनि ने नाटक के उत्स के संदर्भ में यह सिद्धांतबद्ध किया कि नाटक के विविध तत्वों की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा चतुर्वेदों से हुयी है। जैसे-पाठ्य का गठन ऋग्वेद से, अभिनय यजुर्वेद से, गायन या गीत सामवेद से तथा अथर्ववेद से विविध रसों का संचयन कर एक समूर्ण नाट्यवेद का निर्माण किया गया। यही कारण है कि नाट्य का निर्माण पाठ्य, अभिनय, गीत व रस के संकेन्द्रण में किया जाता है। इस प्रकार

स्पष्टतया साहित्य के अन्य स्वरूपों से नाटक को पृथक करने के सन्दर्भ में देवेन्द्रराज अंकुर का मत है कि, **"जहाँ साहित्य की शेष सारी विधाएँ अपने लिखित रूप में एक निश्चित, अंतिम व सम्पूर्ण रूप को पा लेती हैं, वहाँ नाटक अपने लिखित रूप में एकांगी और एकायामी है और अंततः जब वह मंचित रूप में हमारे सामने आता है, तभी वह सम्पूर्ण होता है।"** इस प्रकार नाटक अभिमंचन हेतु मंचीय धरातल पर प्रस्तुत होकर नाटककार की अमूर्त कल्पना जगत को व्यावहारिक मूर्त धरातल प्रदान करता है।

19वी० शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नाटकों के अभिमंचन हेतु लेखन की परम्परा की शुरुआत हुई, जिसमें द्विगेंद्रलाल राय व रवि ठाकुर के बांग्ला नाटकों से लेकर शौकिया रंगमंच के प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र के साथ ही साथ जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी व मोहन राकेश इत्यादि के नाटकों का मंचन हुआ। इन नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से नाट्य लेखन व मंचन की दिशा व दशा को भी बहुत हद तक निर्धारित किया। जिस पथ पर आगे बढ़ते हुए अनेक नाटककार व कुशल रंगकर्मी हुए, जिन्होंने साहित्य की इस दृश्य-पाठ रुपी संपदा का परिमार्जन व परिष्कार किया। हिंदी नाटकों के लेखन की शुरुआत यद्यपि मुग़ल सत्ता की समाप्ति के समय से ही दिखने लगता है परन्तु सर्वप्रथम 'सैयद आगा हसन लखनवी' के गीतिनाट्य 'इंदरसभा' का 1857 ई. में लेखन व लखनऊ के बाजार अहाते में अभिमंचन कर लेखन व मंचन का क्रम प्रारंभ हुआ। इसके पश्चात् साहित्यिक मानकों की छाया में ही सही हिंदी नाटकों का लेखन व अभिमंचन प्रारंभ हुआ। जिसमें भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पेशेवर मंचन के विपरीत शौकिया रंगमंच के अनुकूल प्रहसन प्रधान नाटकों यथा- भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, सत्य-हरिश्चंद्र, तथा वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति इत्यादि का लेखन किया। जिसे उनकी 17 वर्षों की लेखन, अभिनय व निर्देशन की कौशल प्रधान प्रतिभा व विविध नाट्य मंडलियों ने स्थायित्व प्रदान कर लोगों को इस ओर आकृष्ट किया। भारतेंदु के नाट्य उपादानों की चर्चा करते हुए महेश आनंद ने लिखा है, **"हम 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध की गतिविधियों को जांचें तो पायेंगे कि भारतेंदु और उनके साथी नाटककारों ने 'इप्टा' की भांति जनजागृति के लिए रंगमंच को उसका सही व्यक्तित्व देने का प्रयास बहुत पहले कर दिया था।"** भारतेंदु की परंपरा को अग्रिम पंक्ति तक पहुँचाने में जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण लाल, सेठ गोविन्द दास, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीश चन्द्र माथुर व मोहन राकेश इत्यादि की भूमिका प्रमुख है। नाटक साहित्यिकी मानकों के अतिरिक्त मंचीय कल्पना के पदचिन्हों को प्रदर्शित करने वाली वह विधा है जो न केवल पाठकीय क्षमता को संकलित करती है अपितु मंचीय प्रदर्शन के द्वारा चाक्षुष सौन्दर्य का भी अनुस्वादन कराती है। इस प्रक्रिया में पाठकीय और प्रदर्शनीय दोहरे मानकों को स्व में समाहित करके चलने की चुनौती नाटक के समक्ष होती है। इस क्रम में वह लेखक के मानसिक पटल से निकलकर निर्देशक के मंचीय पटल तक पहुँचने का प्रयास करती है। लेखन से मंचन की यात्रा में नाटक विविध स्वरूपों को ग्रहण करती है, जहाँ पाठकीय कौशल की प्राप्ति हेतु कथ्यात्मक बुनावट, पात्र-संवाद, देशकाल-वातावरण व भाषा शैली को अपना आधार बनाती है तो वहीँ मंचीय प्रदर्शन हेतु निर्देशकीय क्षमता, अभिनेता की अभिनीत कौशल व मंचीय आवरण इत्यादि को अपना आधार बनाती है। इस प्रकार के दोहरे चरित्र के प्रस्फुटन में नाट्य समीक्षकों के मध्य नाटक के लेखन और प्रदर्शन को लेकर एक विभेद दिखाई पड़ता है कि नाटक का लेखन मंच के अनुरूप हो या मंचीय क्षमताओं का निर्धारण नाटक के अनुरूप किया जाय। हिंदी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद जी ने रंगमंच को नाटकों के अनुरूप व्यवस्थित करने की बात की है। इस सन्दर्भ में उनका अभिमत है कि, **"काव्यों के अनुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुए और रंगमंचों की नियमानुकूलता मानने के लिए काव्य बाध्य नहीं हुए। अर्थात् रंगमंच को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा और प्रत्येक काल में माना जायेगा कि काव्यों के लिए अथवा नाटकों के लिए रंगमंच होते हैं। काव्यों की सुविधा जुटाना रंगमंच का काम है।"** इस प्रकार इनका अभिमत है कि नाट्यलेखन मंचीय संकल्पनाओं के अनुरूप न होकर नाटककार की अपनी मौलिक कल्पना और शैलियों के अनुरूप होती है। इसके विपरीत मंचीय कार्यशैली व संकल्पनाओं का निर्धारण नाटक की मौलिक उद्भावनाओं के अनुरूप होनी चाहिए। इस प्रकार नाटक और उसकी रंगमंचीय क्षमता के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि नाट्य आलेख और रंग आलेख नाटककार और निर्देशक की नाटक को सार्थक अभिव्यक्ति के धरातल पर पहुँचाने की एक सामूहिक अभिव्यक्ति है जो एक को दूसरे की पूरक बनाती है। इस सन्दर्भ में लक्ष्मीनारायण लाल का कथन इस मत को स्थायित्व प्रदान करता है कि, **"नाट्यकृति और रंगमंच एक दूसरे के कार्य और कारण हैं, दूसरे स्तर पर एक दूसरे के पूरक और यहाँ तक कि एक-दूसरे के पर्याय भी हैं।"** इस प्रकार नाटक अपनी सार्थकता के धरातल को साहित्य और रंगमंच के सामूहिक स्वरुप में प्राप्त करता है जहाँ पाठ्य के रूप में पाठक के मस्तिष्क में दृश्यगत चेतना का संचार करता है वहीँ मंचीय प्रस्तुति के द्वारा प्रेक्षक के सम्मुख यथार्थगत रूप में दृश्यों को परिलक्षित करता है। विश्व जगत में कला ऐसी अद्भुत अभिव्यक्ति का संसाधन है, जो मनुष्य के आतंरिक और वाह्य अर्थात् मानसिक और भौतिक व्यक्तित्व को आपस में सूत्रबद्ध करने का कार्य करती हैं। जहाँ मानसिक धरातल पर आतंरिक भावों, संवेदनाओं और मनोवेगों का प्रस्फुटन होता है वहीँ इन्हीं को अभिकेंद्रित कर वाह्य भौतिक परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार व अभिव्यक्ति होता है। फिर कला का कोई रूप हो चाहे साहित्य हो, ललित कलाएँ हो या फिर स्थापत्य कलाएँ, सभी के परिलक्षण में कलाकार की रचना प्रक्रिया लगभग समान होती है। कला मर्मज्ञ अपने भौतिक संसार के चारों तरफ़ से रचना सामग्री को अपने मनोजगत में ग्रहण करते हैं तत्पश्चात अपने कलात्मक अनुभावों का अभिव्यक्तिकरण करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सभी कलाओं का अपना एक नैरेटिव होता है अर्थात् सभी के परित कोई न कोई कहानी मौजूद होती है, जो कहीं एक आयामी और कहीं बहुआयामी होती है। इस सन्दर्भ में देवेन्द्र राज अंकुर का अभिमत है कि, **"हर एक कला एक आयामी न होकर कम से कम द्विआयामी और कई बार बहु-आयामी हो जाती है- पहला, उसका ठीक हमारे सामने दिखलाई पड़ने वाला स्थूल, अमूर्त या ठोस रूप, दूसरा पीछे से झांकता एक और कथ्य व कथानक और तीसरा इन दोनों के मेल से देखने वाले के मन-मस्तिष्क में जन्म लेता अपना अर्थायाम।"** इन्हीं बिन्दुओं के आलोक में एक साहित्यकार भी अपनी मानसिक उद्भावनाओं को शब्दबद्ध करके पाठक के सम्मुख लिपिबद्ध रूप में प्रस्तुत करता है। पाठक इन शब्दों के साकार रूप के मध्य से बिम्बों की कल्पना करता है और कथा प्रवाह में शब्द मानसिक पटल पर दृश्यों का संधान करता है। पाठ्य के मध्य प्रस्तुत शब्द, उसकी ध्वनि और उसमें से उभरते दृश्य की सम्भावना, उस पाठ्य को नृत्य, संगीत और नाट्य की समाहित कल्पना के साथ रंगमंच की ओर उन्मुख करती है। किसी पाठ्य के लेखन से उसके अभिमंचन के मध्य इन्हीं बिन्दुओं के सापेक्ष लेखक, साहित्यिक पाठ्य व पाठक तथा निर्देशक, मंचीय आलेख व प्रेक्षक की सामूहिक संकल्पना को स्वीकार किया जाता है। यहाँ प्रत्येक चरण में एक दूसरे की सहभागिता अनिवार्य होती है। यही कारण है की, **"नाटकों को composite Art अर्थात् समन्वित कला की संज्ञा दी गयी है।"** अर्थात् यहाँ आपसी सामंजस्य के बगैर शिल्पकला के रूप में नाटक की सम्पूर्णता की कल्पना संभव नहीं है।नाट्यालेख लेखक के

पमानसिक रचना संसार की शाब्दिक प्रस्तुतिकरण है जो साहित्य की अन्य विधाओं के विपरीत पाठ्य से इतर मंचीय संभावनाओं को भी अभिकेंद्रित कर लिपिबद्ध की जाती हैं। जिसमें लेखक कथ्य, भाषा स्वरुप और शैली के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए घटनाओं और संवादों के मध्य से नाटकीयता को उद्दीप्त करता है। यद्यपि घटनाएँ चाहे सामाजिक हो या फिर ऐतिहासिक तथा उनका संबंध सूत्र वर्तमान से हो या भूत से, परन्तु उनका प्रस्तुतिकरण वर्तमान में किया जाता है। यही कारण है कि नाटक और उसके आलेख को समय सापेक्ष कहा जाता है जो साहित्य की अन्य विधाओं की भांति काल की अनिवार्यता को नहीं स्वीकार करती है। इस सन्दर्भ में देवेन्द्र राज अंकुर का अभिमत है कि, **"नाटक को यदि एक द्विजन्मीय विधा कहा गया है तो सर्वथा उचित है अर्थात् उसका पहला जन्म एक लिखित आलेख के रूप में और दूसरा जन्म उसके प्रस्तुत हो जाने के साथ सम्पन्न होता है।"** समय की सापेक्षता के आलोक में लेखक नाट्यालेख को जीवन्तता प्रदान करता है। जिसमें नाटकीय आरोहण शब्दों के भीतर से घटित होता है जो कथानक में घटित होने वाले तनाव, घात-प्रतिघात, संघर्ष, उत्सुकता, रोमांच और रहस्य इत्यादि के कारण अभिव्यंजित होता है। नाटकीय अभिव्यंजना की उपस्थिति नाट्यालेख में संवाद के कारण होता है जो न केवल कथा विन्यास का आधार होता है अपितु कथ्य के मध्य रंग संकेतों की उपज का द्योतक होता है। इन्हीं रंग संकेतों को चिन्हित कर नाटककार दृश्यों का विभाजन करता है, जिससे नाट्य आलेख में लेखक में पाठक के मानसिक पटल पर जीते-जागते, चलते-फिरते मानवीय शब्दों के माध्यम से नाटकीय दृश्यों की संरचना करता है। इन्हीं कल्पनात्मक दृश्यों के आलोक में निर्देशक रंग पटल पर वास्तविक दृश्यों की संरचना करते हैं।यद्यपि मंचन हेतु रंगालेख का चयन एक जटिल समस्या होती है, कि किस नाट्यालेख को मंचन हेतु चयनित किया जाय क्योंकि सभी नाटक में एक कथा विन्यास होता है, जो जिंदगी के किसी न किसी पक्ष को उद्घाटित करता है। अतः मंचीय आलेख की सार्थकता के आलोक में नाटक का चयन एक जटिल निर्देशकीय क्षमता का परिचायक होता है। इस सन्दर्भ में रंग निर्देशक देवेन्द्रराज अंकुर का अभिमत है, **"हम नाटक के चुनाव के लिए कोई भी प्रक्रिया क्यों न अपनाएं, हमें सबसे पहले एक जरुरी सवाल का सामना करना पड़ता है- आख़िर हम किसी भी नाटक अथवा रचना का मंचन के लिए क्यों चयन करते हैं?"** अर्थात् जिस प्रकार नाटककार के सम्मुख नाट्यलेखन से पूर्व उसके समय सापेक्ष तथा मंचीय रंग संकेतों के अनुकूल होने की अनिवार्यता होती है उसी प्रकार रंग आलेख के चयन और निर्माण से पूर्व निर्देशक के सम्मुख एक जरुरी प्रश्न सदैव होता ही कि क्या कारण है कि किसी आलेख का चयन मंचन हेतु किया जा रहा है। निर्देशक किसी पाठ्य के मंचीय प्रबंध में एक सेतु की भांति कार्य करता है। वह नाट्यालेख में निहित लेखक के निज परिवेश, वातावरण के मध्य से रंगमंचीय प्रस्तुति हेतु मंचीय परिवेश व दृश्यों का विधान करता है। इन्हीं मंचीय संभावनाओं के आलोक में निर्देशक अन्य रंगकर्मियों की उपस्थिति में नाट्यालेख के मुद्रित शब्दों के मध्य से अनकही और अलिखित अर्थछायाओं का संधान कर दृश्यों का प्रस्फुटन करते हैं। इस प्रकार निर्देशकीय कौशल व नेतृत्त्व क्षमता के कारण निर्देशक की मंचीय उपस्थिति नहीं होने के बावजूद भी वह मंच पर घटित सभी मंचीय कार्यदशाओं का केंद्रबिंदु होता है। रंगमंचीय प्रस्तुति के दौरान जिस आलेख को मंचन हेतु निर्धारित किया जाता है वह अभिनय के क्रम में न केवल निर्देशकीय प्रतिभा का पर्याय होती है अपितु निर्देशक के साथ ही साथ अभिनेता, अन्य पार्श्व रंगकर्मी तथा अंततः प्रेक्षक का आलेख हो जाती है। निर्देशक व अन्य पार्श्व कर्मियों की मंचीय उपस्थिति के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि, **"मूलरूप से निर्देशकों के काम करने का अपना-अपना अंदाज होता है। कुछ लोग अपने जीवन में किए एक चर्चित नाटक की ताउम्र फोटोकॉपी करते रहते हैं। कुछ नाटककार के लिए एक-एक कौमा और निर्देशों को हू-ब-हू मंच पर उतारते हैं।----तो कुछ हर एक नाटक को नवीन सृजन मानते हैं और अभिनेता को सृजन का साझेदार। ऐसे निर्देशक पूरी टीम के साथ मिलकर नाटक बनाते हैं।"** इस प्रकार मंचीय आलेख के निर्माण से लेकर उसकी मंचीय प्रस्तुति में निर्देशक व अभिनेता सहित अन्य पार्श्व रंगकर्मियों की भूमिका निर्धारित की जा सकती है। जिसके आलोक में नाट्य अभिमंचन एक जीवंत रंगशैली का स्वरुप ग्रहण करती है जो प्रेक्षकों की सामूहिक अभिव्यक्ति के मध्य नाटककार के एकान्तिक और सामूहिक अनुभवों को जीवंत स्वरुप में प्रस्तुत करती है।

इस बिंदु पर आकर लेखक का सच या लेखक के भाव जो नाटक के सृजन के समय एकान्तिक होता है। मंचीय पटल पर अभिमंचित होने के बाद लेखक का एकान्तिक अनुभव सामूहिक अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है, जो और भी ज्यादा व्यावहारिक प्रतीत होने लगता हैं। इस प्रकार नाट्यालेख और मंचीय आलेख में अन्योन्याश्रित संबंध पाया जाता है, क्योंकि कोई भी मंचीय आलेख मंचन के दौरान किस प्रकार के स्वरुप और शैली को ग्रहण करेगी। यह उसके मूल आलेख से ही प्रतिबिंबित हो जाता है। यद्यपि निर्देशक रंगपटल पर लेखक की मूल शैली के विपरीत किसी स्वतंत्र शैली का सृजन कर सकता है लेकिन इससे मंचन की सार्थकता व सम्प्रेषणीयता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो सकता है। जैसे- 1976 में मोहन राकेश के यथार्थवादी नाटक 'आधे-अधूरे' के अभिमंचन में निर्देशक अमाल अल्लाना द्वारा गीत व कोरस का प्रयोग तथा ज्ञानदेव अग्निहोत्री के नाटक 'शुतुरमुर्ग' के अभिमंचन में निर्देशक श्यामानंद जालान द्वारा नाटक के पात्रों की वेश-भूषा व रूप-सज्जा को पूर्णतः नृत्यगत शैली में प्रस्तुत करना। यहाँ निर्देशक द्वारा नाटकीयता के सृजन हेतु लेखक की मौलिक उद्भावनाओं से खिलवाड़ रंगालेख की सम्प्रेषणीयता को संदेहास्पद बनाती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि रंगमंच पर अभिमंचन हेतु निर्देशक को मंचीय आलेख नाट्य आलेख से ही प्राप्त होता है। यह वस्तुतः वैसे ही में प्रदर्शित किया जाता है जैसा कि आलेख में लेखक ने निर्धारित किया है। नाट्यालेख और रंगालेख का यह अंतर्संबंध दोनों के अन्योन्याश्रित रूप को प्रदर्शित करते हैं।

******

संदर्भ :-

1. नेमिचंद्र जैन, रंगदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण पृष्ठ संख्या-25
2. सिद्धनाथ कुमार, नाटकालोचन के सिद्धांत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्क. पृष्ठ संख्या-55
3. देवेन्द्रराज अंकुर, दर्शन प्रदर्शन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण पृष्ठ संख्या-11
4. प्रेम सिंह सुषमा आर्य रंग प्रक्रिया के विविध आयाम, लेख- हिंदी रंगमंच के 125 वर्ष, पृष्ठ संख्या- 44
5. जयशंकर प्रसाद, काव्य कला और अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृष्ठ सं. 65
6. लक्ष्मीनारायण लाल, रंगमंच और नाटक की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1985, पृष्ठ संख्या- 15
7. देवेन्द्र राज अंकुर, रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा सं.पृष्ठ -18
8. शंभू मित्र, किसे कहते हैं नाट्यकला, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 8
9. देवेन्द्र राज अंकुर, दर्शन-प्रदर्शन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या-12
10. देवेन्द्रराज अंकुर, रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा सं- पृष्ठ -85
11. आशा (संपादक), रंग वैचारिकी : नए सन्दर्भों में, अनन्य प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-102

हिंदी की कविताओं में 'देश प्रेम'

डॉ.विजय भास्कर लावणे
शोध निर्देशक
महात्मा गांधी महाविद्यालय, अहमदपुर
त-अहमदपुर, जिला- लातूर, महाराष्ट्र

स्वतंत्रता आंदोलन के समय मीडिया आज इतना सक्रिय नहीं था। अंग्रेज लोग सामान्य आदमी को इकट्ठा नहीं होने दे रहे थे ,समाचार पत्र में देश से संलग्न लिखने पर बंदी थी, तब आजादी का प्रचार -प्रसार करने के लिए तत्कालीन लोगों ने कविताओं का सहारा लेकर समाज में जनजागृति करने लगे उन कविताओं का मुख्य स्वर देश से प्रेम ही था ।जिसमें सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविता 'झांसी की रानी 'इसमें ओजपूर्ण शब्द भर दिए हैं जैसे -

सिंहासन हिल उठे ,राजवंशों ने भृकुटी तानी थी
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,

इन काव्य पंक्ति द्वारा सोए हुए समाज में एक नव चेतना जागृत हुई और पुरुष के साथ महिला भी उसमें शामिल हुई ।आंदोलन देश के कोने - कोने में शुरू हुआ परिणाम स्वरूप आजादी के आंदोलन को एक नई दिशा मिली। देश प्रेम ,देश भक्ति और देश हित को सामने रखकर कई कवियों ने कविताओं का सृजन किया है। जिसमें प्रमुख है सुभद्रा कुमारी चौहान की वीरों का कैसा हो वसंत और झांसी की रानी ,अटल बिहारी वाजपेई की गीत नया गाता हूं,भारतेंदु हरिश्चंद्र की नए जमाने की मुकरी, मैथिलीशरण गुप्त की नवयुवकों के प्रति ,प्रदीप की फांसे सभी पलट गए, उदय प्रताप सिंह की यह वह भारतवर्ष नहीं है, दुष्यंत कुमार की कहां तो तैय था चिरागा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की जागो फिर एक बार।

स्वतंत्रता आंदोलन में एक से एक सुंदर कविताएं आने लगी थी जिनका उद्देश्य देश प्रेम ही हुआ करता था। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'वीरों का कैसा हो वसंत'इस कविता में कवित्री दिखाती है कि भारतीय नौजवानों ने आजादी के आंदोलन के समय किस तरह वसंत उत्सव मनाना चाहिए ,इसको बड़ी सुंदरता से समझा है ।भारत जैसे विशाल देश में हिमालय सिंह जैसा गरज कर वीरों को पुकार रहा है ,उसकी आवाज चारों तरफ से चारों दिशाओं से जमीन से नभ में सुनाई दे रही है।आजादी के आंदोलन में योगदान देना चाहिए सारी पृथ्वी सरसों के फूलों से ढक गई है। पृथ्वी पुलकीत हुई है और वह आज नौजवानों को पुकार रही है। तलवार और कृपाण हाथ में लेकर वीरों ने रण में लड़ने के लिए आना चाहिए, लंका में हनुमान ने जिस तरह आग लगाई थी उसी तरह आजादी की ज्वाला हर एक मनुष्य के मन में होनी चाहिए, देश के महान राजा के उदाहरण देती है कवियत्री वह कहती हैं महाराणा प्रताप ,तानाजी मालुसरे जैसे वीरों ने देश के लिए अपनी जान की बाजी लगानी चाहिए। सदियों पुराने भूषण और चंद जैसे जोश पूर्ण काव्य रचना करने वाले भूषण अथवा चंद नहीं रहे हैं ,उनके काव्य से नवचैतन्य आता था आज कभी लिखने का प्रयास करें तो कलम अंग्रेजों ने बांध रखी है याने लेखन पर बंदी है तब सुभद्रा कुमारी जी कहती है,-

बिजली भर दे वह छंद नहीं
है कलम बंधी स्वच्छंद नहीं
फिर हमें बताएं कौन हंत
वीरों का कैसा हो वसंत।[1]

कवित्री इस कविता में संदेश देती है कि कठिन से कठिन परिस्थिति में डट कर प्रसन्न होकर परिस्थिति का सामना करना चाहिए। जीवन में संघर्ष तो आती ही है पर हर समय मुकाबला करने के लिए तैयार रहना चाहिए। आजादी के आंदोलन में हर मानव ने योगदान देना चाहिए। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'नए जमाने की मुकरी' इस कविता में अंग्रेजों का मुकरी द्वारा अंग्रेजों का सही रूप समाज के सामने लाया है ।जब अनुभूति अभिव्यक्त होने के लिए मन में हलचल मचती है तो काव्य का सृजन होता है ।

आजादी के आंदोलन के समय आदमी को कानून के जाल में फंसा कर उसे सख्त से सख्त सजा अंग्रेज देते थे ।जो उनकी चाटुकारी करते थे उन्हें बड़े-बड़े सम्मान से पुरस्कृत किया जाता था। जो लोग पढ़े लिखे थे उन्हें अंग्रेज शासन में नौकरी नहीं थी, पर चाटुकारी करने पर तो पुरस्कार भी और नौकरी भी मिलती थी, समाचार पत्रों में अंग्रेजो के खिलाफ लिखने पर सजा भी मिलती थी।

भारत भीतर सब रस चूसै।
हंसी हंसी के तन मन धन मूसै।।
जाहिर बात में अति तेज।
क्यों सखि सज्जन नहीं अंग्रेज।।[2]

भारतीय लोगों से मीठी बातें करके उनका शोषण भी किया जा रहा था। उनका धन भी चुराया जाता था अपनी बात सामने वाले के गले में उतारने में बड़े शातिर थे अंग्रेज। मीठी- मीठी बातों में फंसाकर कई राजाओं के राज्य छीन लिए। तभी भारतीय नारी को कहते हैं ऐसे वीर पुत्रों को जन्म दो जो बड़ा होकर अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल दे। अंग्रेजी शराब की आदत नौजवानों को लगाई है पर उससे दूर रहना है ,इस तरह भारतेंदु मुकरी द्वारा अंग्रेजों की कूटनीति को उजागर करके समाज में देश प्रेम की भावना बढ़ाने का कार्य करते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त ने स्वतंत्र पूर्वकाल में लिखी कविता 'नवयुवकों के प्रति'एकदम सीधी सरल और उपदेश परक है देशहित को सामने रखकर देश का उद्धार किया है, देशहित किस तरह हो इस पर लक्ष्य केंद्रित किया गया है ।"गुप्त जी सच्चे राष्ट्रभक्त कवि है राष्ट्रीयता का स्वर उनकी प्रायः प्रत्येक रचना में सुनाई पड़ता है "।[3] प्रत्येक युवक ने अपने जीवन की बारीकियों को समझ लेना चाहिए। युवकों ने अपना आचरण अच्छा रखना चाहिए, साथ ही युवक के मन में चलने वाले संयम और असंयम में उलझना नहीं चाहिए, निरंतर मन पर संयम रखना चाहिए युवा अवस्था में जो संतुलित जीवन जीता है वह अपनी मंजिल तक जरूर पहुंचता है। इसी कारण कवी कहते है सारे देश की नजरें देश के नव युवकों पर है ,तुम्हें देश उद्धार करना है। सारे देश के नौजवानों को गुप्त जी कहते हैं नर जन्म दुर्लभ है और जिंदगी ज्यादा तो नहीं है, इसी कारण संयम के रास्ते पर नवयुवकों ने चलना चाहिए। कवि ने समाज में देश हित की भावना, देश प्रेम किस तरह बढे यह उद्देश्य सामने रखकर ही इस काव्य पंक्तियों की रचना की है।

देशहित से संलगना कई कविता और गीतों का निर्माण कवि प्रदीप ने किया है। जिसमें ए मेरे वतन के लोगों यह काव्य शहीदों के स्मरण में लिखा गया और वह बहुत लोकप्रिय है ।आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की और नन्ना मुन्ना राही हूं देश का सिपाही हूं जैसे अजरा अमर गीतों की निर्मिती प्रदीप ने करके हर भारतीय के मन में राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत की है ।उनकी कविता 'पासे सभी पलट गए' इस काव्य पर जागृति फिल्म में गीत भी है, इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की झांकी प्रस्तुत की है। कवि ने देश के अतीत को वर्तमान के बच्चों नौजवानों के सामने रखा है ,देश का भविष्य सुरक्षित करने का प्रयास करते समय आजादी के आंदोलन में स्वतंत्रता सेनानियों ने जो बलिदान दिया उसके महत्व को समझाया है।

देखो कहीं बर्बाद न होवे ये बगीचा
इसको हृदय के खून से बापू ने है सींचा
रखा है यह चिराग शहीदों ने बाल के ।[4]

कवि प्रदीप ने 'फांसे सभी पलट गए' इस कविता में देश की महानता आजादी के लिए बलिदान देने वाले लोगों को याद दिला कर देश के आने वाली संतानों के लिए सही रास्ता क्या है और दुनिया किस तरह दांवपेच करती है, उसमें नहीं फसना है यह समझाया है। नव युवकों ने आराम आलस्य को छोड़ना होगा, सपनों की दुनिया को तोड़ना होगा और विश्व में ऐसा काम करना है कि सबसे आगे भारत का तिरंगा होना चाहिए। याने हर स्पर्धा के युग में भारतीय ही आगे

रहना चाहिए ।आजादी का इतिहास प्रदीप ने काव्य द्वारा समाज के सामने लाने का सफल प्रयास किया है, देश भक्ति राष्ट्र हित और देश प्रेम की संकल्पना उनके काव्य द्वारा जागृत हुई है । अटल बिहारी वाजपेई जी 'गीत नया गाता हूं ' कविता में देश के लोगों के लिए संदेश देते हैं कि देश के लोगों ने जीवन में कभी निराष नहीं होना चाहिए, नीरस जीवन में एक दिन जरूर मीठा स्वर सुनाई देगा।

टूटे हुए तारों से फूटे बसंत स्वर
पत्थर की छाती में आया नवांकुर
झरे सब पीले पात
कोयल की कुहुकरात।5

जो लोग पत्थर दिल होते हैं उनके मन में देश के प्रति देश की जनता के प्रति प्रेम का अंकुर जरूर निर्माण होगा पुराने विचारों के लोग अब समाप्त हुए है। अब नव विचार प्रवाह की धारा प्रवाहित हुई है ।इस देश में अच्छे विचार वाले, अच्छी सोच वाले लोग जरूर निर्माण होंगे ऐसा आशावाद अटल जी के मन में है।

उदय प्रताप सिंह 'यह वह भारतवर्ष नहीं है' इस कविता में कवि दिखाते हैं कि अपना देश इतना महान था कि अपने देश में धन-धान्य की कमी नहीं थी, घर- घर में हर रोज खुशियों की दिवाली होती थी, सोने जैसे दिन थे चांदी जैसी रातें थी, हर सुबह सत्य और सुंदर होती थी आडंबर का बोझ नहीं आचरण सब का सही होता था।

इसी देश के बारे में कहती आई थी सदीया
बही- बही फिरती थी इसमें दूध दही के नदिया
पर अब कहीं देखने को भी वह उत्कर्ष नहीं है
तब मुझको लगता है यह वह भारतवर्ष नहीं है।6

इस देश में पहले दूध दही की नदिया बहती थी, अब दूध दही देखने को नहीं मिलता है। पहले एक दूसरे का लोग साथ देते थे, किसी के जीवन रहा पर कोई कठिनाई आए तो सभी उसका साथ देकर समस्या का निराकरण करते थे। आज भी फूल है पर उसमें सुगंध नहीं है, उपवन है पर उसमें आनंद नहीं आ रहा है।

किसने हर आदमी के जीवन में जहर घोल दिया है ।जो चेहरे हंसने वाले थे उनके चेहरे की हंसी भी कहीं चली गई है। आज तो एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए सारे प्रयास कर रहे हैं ।पर यह भूल रहे हैं कि देश के खातिर कितने लोगों ने बलिदान दिया है। महावीर, गौतम और कृष्ण की फोटो सिर्फ दीवारों पर है पर उनका आदर्श कोई भी लेता नहीं। महिलाएं सुरक्षित नहीं ,राजनेता अपने कामों में व्यस्त, गुंडे अपने कामों में व्यस्त ,सामान्य परेशान हैं। सारे लोग पश्चात संस्कृति को अपना रहे हैं ।किसान के घर अनाज नहीं भ्रष्टाचारी चोर बेईमान और जुआरी महलों की अधिकारी बनकर बैठे हैं। कोई भी किसी के भले की नहीं सोचता, कोई मरते को नहीं बचाता ।परिणाम स्वरूप देश दिशाहीन होगा इस देश को संभालना है ।देश फिर से हरा-भरा बनाना है ,देश में हर जगह मानवता होगी यह आशावाद उदय प्रताप सिंह को है। हर कवि ने देश का इतिहास बताया है पर उदय प्रताप ने पुराने इतिहास और वर्तमान में क्या हो रहा है यह समझाया है क्योंकि उनके मन में देश प्रेम है इसी कारण कहते हैं देश को बचाओ।

निष्कर्ष— हिंदी साहित्य में कई विधा है पर सबसे लोकप्रिय विधा के रूप में कविता को अपनाया गया है क्योंकि आजादी के समय समाचार पत्रों में प्रत्यक्ष रूप से कोई बात कहने पर सजा भी मिलती थी। इसलिए कवियों ने कविता का माध्यम चुना जिसमें सुभद्रा कुमारी चौहान जी की झांसी की रानी, वीरों का कैसा हो वसंत, अटल बिहारी वाजपेयी जी की गीत नया गाता हूं, भारतेंदु हरिश्चंद्र की नए जमाने की मुकरी , मैथिलीशरण गुप्त की नवयुवकों के प्रति, प्रदीप की फासे सभी पलट गए ,उदय प्रताप सिंह की यह वह भारतवर्ष नहीं है, दुष्यंत कुमार की कहां तो तय था चिरागा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की जागो फिर एक बार ।इन सब कवियों ने इन कविता द्वारा देश प्रेम को बढ़ाने का प्रयास किया है। किस तरह देश के प्रति पहले अपना योगदान देना चाहिए देश हित को सामने रखना चाहिए देश के आदर्श पुरुष का चरित्र याद करके देश के प्रति बलिदान देने के लिए आगे आना चाहिए। गलत रास्ते पर नहीं जाना चाहिए ,अगर देश का नवयुवक गलत रास्ते पर चलेगा तो देश का अहित ही होगा। अंग्रेज लोगों को अपनी मीठी जुबान से अपने ही जाल में फंसाते थे और छोटे से गुनाह की बड़ी सजा देते थे और चाटुकार का सम्मान भी करते थे । अंग्रेज शासन से किस तरह सतर्क रहना चाहिए यह भी यह भी समझाते हैं। कोई कवि कहता है अच्छा आचरण नवयुवकों ने करना चाहिए, संयम को अपनाकर उलझन वाले रास्ते से दूर रहना चाहिए। सारे देश की और विदेश की नजरें देश के नौजवानों पर ही रहती है। अगर देश के नौजवान सही रास्ते पर चले तो देश भी सही रास्ते पर चलता है।

प्रदीप जैसे कवी तो हमेशा देश प्रेम की कविता लिखते हैं उनके कई गीत आज भी लोकप्रिय है ,उनके हर काव्य पंक्ति से देश प्रेम झलकता है ,उनके काव्य में नौजवानों को संदेश मिलता है कि देश के लिए जिन क्रांतिकारियों ने अपना बलिदान दिया उन्हें याद करना चाहिए, उसके बलबूते पर यह आज आजादी मिली है ।दुनिया दांवपेच करती है इसमें नौजवानों ने हंसना नहीं चाहिए हर स्पर्धा में भारतीय ही आगे रहना चाहिए ,यही उनका लक्ष्य है। वाजपेयी जी की कविता में पुराने विचार छोड़कर आज देश प्रेम से पुलकित होकर लोग एक दूसरे का हीत सोचेंगे और देश हित जरूर होगा। यह आशावाद रखते हैं। उदय प्रताप सिंह ने आजादी के बाद देश की हालत आज क्या है और पुराने जमाने में देश की हालत क्या थी यह दिखाकर आज क्या बदलाव लाने चाहिए यह संदेश देकर देश प्रेम की भावना किस तरह बढ़ेगी यह संदेश दिया है।

इन सारी कविताओं में देश प्रेम की भावना को प्रबल बनाया है और जब देश का प्रश्न आता है तो सभी कवियों ने नवयुवकों को ही सामने रखकर देशहित किस तरह हो ,देश का पूव इतिहास , आजादी का इतिहास काव्य द्वारा सामने लाकर वर्तमान युवक ने कैसा बर्ताव रखना चाहिए, किस तरह से जीवन जीना चाहिए, देशहित किस तरह से होगा, देश प्रेम की भावना किस तरह से बढेगी , यही लक्ष्य सामने रखकर सभी कवियों ने अपनी कविताओं का सृजन किया है।साथ ही समाज के हर वर्ग के मन में भी इन कविताओं द्वारा देश प्रेम की भावना बढ़ाने में सहायता होती है।

******

संदर्भ-

1. साहित्य सौरभ /सं.-डॉ. सुजीत सिंह परिहार /राजकमल प्रकाशन/ प्रथम संस्करण पृष्ठ- 129
2. साहित्य भारती/ सं. -डॉ. अजय टेंगसे/ वाणी प्रकाशन /प्रथम संस्करण 2013/ पृष्ठ 15
3. भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीयता और मूल्य बोध/ सं.- रामनारायण शर्मा /साहित्य संचय प्रथम संस्करण 2022 /पृष्ठ 164
4. साहित्य भारतीय / सं.-डॉ. अजय टेंगसे/ वाणी प्रकाशन /प्रथम संस्करण 2013/पृष्ठ 50
5. साहित्य सौरभ/ सं.- डॉ. सुजीत सिंह परिहार/ राजकमल प्रकाशन- प्रथम संस्करण 2019 पृष्ठ 147
6. साहित्य सौरभ/ सं.- डॉ सुजीत सिंह परिहार/ राजकमल प्रकाशन/ प्रथम संस्करण 2019 पृष्ठ 149

सम सामयिकता के संदर्भ में अनागत कविता

डॉ.रीना सिंह
सह प्राध्यापक
आर.के. तलरेजा महाविद्यालय
उल्हासनगर 3,जि. थाने-महाराष्ट्र

अनागत कविता वह कविता है जो मनुष्य के लिए है, मनुष्य के उज्जवल भविष्य के लिए है। अनागत कविता काव्य के क्षेत्र में एक सार्थक प्रयोग है। ऐसा प्रयोग जो मनुष्य को संवेदनशील बनाए रखने में प्रयत्नशील है। अनागत भविष्य की कविता है और आने वाले कल का मार्गदर्शक है। अनागत कविता को समझने के लिए अनागत शब्द का अर्थ भी समझना होगा। 'अनागत' शब्द अपने आप में व्यापकता और विशेषता को समेटे हुए है। 'अनागत' शब्द 'आगत' शब्द का विरुद्धार्थी है। 'अनागत' का शाब्दिक अर्थ न आया हुआ, न होने वाला, भावी, अविदित, अप्राप्त, अज्ञात, अपरिचित, अपूर्व, अनादि, अचानक।[1]हिंदी काव्य जगत में अनागत कविता आंदोलन का प्रारंभ साठोत्तरी कविता के दूसरे दशक से होता है। समकालीन कविता से होते हुए 21वीं शताब्दी में भी इसका प्रभाव दिखाई देता है। अनागत एक संस्कृति कालीन कविता है, जिसकी अस्पष्टता या रहस्यात्मकता एक ऐसी रचनात्मकता है जो उसे अनेक बहु आयामी संदर्भ प्रदान करती है। अनागत काव्य में तत्कालीन समाज तथा जनजीवन में व्याप्त विविध पहलु स्थान-स्थान पर चित्रित किए गए हैं। अनागत कविता में मानवतावादी पक्ष से लेकर वर्तमान समाज की विसंगतियों, समस्याओं,विद्रूपताओं आदि के साथ-साथ स्वर्णिम एवं सुखद भविष्य की कल्पना भी की गई है। संपूर्ण अनागत काल का विवेचन- विश्लेषण करने पर प्राप्त प्रमुख बिंदुओं को नियमित रूप में प्रस्तुत किया गया है-

मानवता के पक्ष की अभिव्यक्ति: अनागत कविता मानव के कल्याण की कविता है। वह वर्तमान के कुहासे से घिरी हुई ही नहीं बल्कि उसमें भविष्य की भी चिंता है। इसी कारण यह रचना कालजयी रचना कहलाती है। अनागत कविता वर्तमान की निराशा से निकलकर भविष्य की सोच एवं चिंता को दर्शाती है। धूमिल की कविताओं में भारतीय जीवन की असहायता और भयावहता का बड़ा ही सूक्ष्म और चेतनायुक्त चित्रण मिलता है। स्वतंत्रता के पश्चात् आम आदमी की मानसिकता को, उसके संघर्षों को उन्होंने अपने काव्य का वर्ण्य- विषय बनाया है। 'मोचीराम' कविता में उन्होंने निम्न वर्ग के मोची के मन में एक फटेहाल गरीब व्यक्ति के प्रति जो संवेदना है, अपने परिवेश के प्रति उसके मन में जो छटपटाहट है,उसे उसकी भाषा में व्यक्त किया है-

कोई आदमी जूते की नाप से/बाहर नहीं है/फिर भी मुझे ख्याल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है / जिस पर टांके पड़ते हैं,
जो जूते से झांकती हुई अंगुली की चोट छाती पर/ हथौड़े की
तरह सहता है[2]

संवेदनहीन समाज: वर्तमान यांत्रिक युग में मनुष्य संवेदनहीन होता जा रहा है। अहंकार से भरे मानव ने स्वयं को स्वार्थ रूपी आवरण में बांध लिया है। समाज में व्याप्त विद्रूपताओं, विसंगतियों,कुरूपताओं आदि समस्याओं ने मनुष्य को एकरस बना दिया है। रमेश रंजक अपने काव्य भुखमरी का गीत में निर्धन और धनवान के बीच शोषण की व्यवस्था पर चोट करते हैं-

जब तक भूख अकिंचन है, बेगार है/भात, रात का खाने को तैयार है
सत्तू और चबैना गुड़ की डेली तक/सूदखोर के हाथों का व्यापार है।[3]

अनागत कविताएं भारतीय जीवन में समाहित व्यापक एवं गतिशील जीवन मूल्यों से मनुष्य को परिचित कराती हैं। अनागत कविता का कवि जब समाज में व्याप्त अनैतिकता, मूल्यहीनता, असंवेदनशीलता, निर्दयता आपसी वैमनस्य, संदेह, अविश्वास को देखता है तो उसकी रचनाधर्मिता और कविकर्म सजग होकर मानवीय संवेदना के पक्ष को और मुखर बनाने का प्रयत्न करते हैं।

गावों और महानगरों का यथार्थ चित्रण: अनागत काव्य में गांवों की तत्कालीन स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है। गांवों की बदहाली, उनकी बीमार अवस्था, सड़ी-गली प्रथाएं, रीति -रिवाज आदि की जंजीरों में अभी भी हमारे गांव का समाज जकड़ा हुआ है। यही कारण है कि अभी भी बहुत से गांव विकास की मुख्यधारा से कटे हुए हैं। जनवादी सोच और ग्राम्य संस्कृति के संवाहक कवि कैलाश गौतम की कविता 'नौरंगिया' में एक खेतिहर स्त्री के माध्यम से ग्रामीण जीवन की वेदना को स्पष्ट किया गया है-

ढहती भीत पुरानी छाजन, पकी फसल तो खड़े महाजन
गिरवी गहना छुड़ा न पाती, मन मसोस फिर फिर रह जाती
कब तक आखिर कितना जूझे, कौन बताए किससे पूछे
जाने क्या-क्या टूटा-फूटा, लेकिन हँसना कभी न छूटा
पैरों में मंगनी की चप्पल, साड़ी नई उधार की है।
नौरंगिया गंगा पार की है।[4]

गांवों का यथार्थ चित्रण करने के साथ ही अनागत काव्य धारा के कवियों ने महानगरों का भी वास्तविक स्वरूप अपने काव्य में दर्शाया है। नगरों की चकाचौंध में अंधेरे में डूबा जीवन, त्रासदी से भरा जीवन, अपने अस्तित्व को खोजता जीवन आदि का चित्रण इन कविताओं में उभरकर हुआ है। आडंबर का ढोंग रचने वाले महानगरों की दुर्दशा की यथार्थ छवि इन कवियों की रचनाओं में मिलती है। महानगर के व्यस्ततम जीवन में सभी सिर्फ अपने स्वार्थ पूर्ति में लगे हैं। महानगर में रहने वाले सभी बड़े-बड़े सपने पालते हैं। लेकिन उनके सपने कभी पूरे नहीं हो पाते । मजदूर शहर में आते हैं ताकि वे एक अच्छा जीवन जी सकें, लेकिन शहर की विडंबनापूर्ण और दिखावे भरा जीवन उनके लिए अभिशाप के समान हो जाता है। दुष्यंत कुमार के 'गजल' की कुछ पंक्तियां यहां उल्लेखनीय है-

न हो कमीज तो पांवों से पेट ढंक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।
तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात जरूरी है इस शहर के लिए।[5]

स्त्री शोषण का यथार्थ: कहने को तो सभी मनुष्यों को जन्म से स्वतंत्रता, सामान गरिमा तथा समान अधिकार होना चाहिए। परंतु स्त्रियों को सभी क्षेत्रों में पीछे धकेला जाता है ,जैसे कि पीछे रहना उनकी नियति है। अनागत कवि स्त्रियों और पुरुषों की बीच की खाई पाटना चाहता है। उनके बीच की असमानता को दूर कर स्त्रियों को एक नई पहचान दिलाना चाहता है। अनागत कवि स्त्रियों के लिए सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन की मांग करता है। आज भी ऐसी घटनाएं हो रही हैं जहां दिन -दहाड़े स्त्रियों की अस्मिता लूट कर उन्हें अपमानित किया जाता है। अपराधियों को कानून और पुलिस का भय भी नहीं रह गया है। निर्मला पुतुल अपनी कविताओं के माध्यम से प्रशासन व्यवस्था पर चोट करती हैं-

कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान
जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है/पूरे गाँव को गिरवी
और ले जाता है कोई लकड़ियों के गट्ठर की तरह
लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को
हजार पाँच-सौ हथेलियों पर रखकर।[6]

सुशीला टाकभौरे दलित स्त्री रचनाकारों में अपना महत्तवपूर्ण स्थान रखती हैं। उन्होंने समाज में दलित लोगों के साथ होने वाले भेदभाव के साथ-साथ स्त्रियों के साथ होने वाले अन्याय को भी उजागर किया है। उनकी कविता स्त्री समाज के इसी दोगले चरित्र को उजागर करती है-

एक स्त्री/जब भी कोई कोशिश करती है/लिखने की बोलने की समझने की
सदा भयभीत- सी रहती है/ मानो पहरेदारी करता हुआ
कोई सिर पर सवार हो पहरेदार/ जैसे किसी मजदूर औरत के लिए ठेकेदार/
या खरीदी संपत्ति के लिए/चौकीदार।[7]

वर्तमान राजनीति का चित्रण: अनागत काव्य धारा के समय की जब हम

राजनीतिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करते हैं , तो ज्ञात होता है कि उस समय राजनीतिक पटल पर उथल-पुथल मचा हुआ था।समस्त बुद्धिजीवी वर्ग देश के संभावित भविष्य को लेकर चिंतित था। आजादी के समय बहुसंख्यकों ने स्वतंत्र भारत में आशा रुपी नए स्वर्णिम सपनों को संजोए अपने विकास की त्वरित गति को देखा था। लगभग सभी भारत वासियों के मन में आशा थी कि देश की आजादी के बाद सभी को समानता का अधिकार मिलेगा ,सभी को आगे बढ़ने के लिए समान रूप से अवसर प्राप्त होंगे। लेकिन यह सारी की सारी आशाएं धरी की धरी रह गई। 'संसद से सड़क तक' में व्यंग्य करते हैं-

एक आदमी रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है ना रोटी खाता है/ सिर्फ रोटी से खेलता है / मैं
पूछता हूं/यह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है।[8]

देश का समसामयिक यथार्थ: अनागत काल में तत्कालीन यथार्थ को भलीभांति प्रस्तुत किया गया है। कश्मीर को लेकर भारत पाकिस्तान का मुद्दा हो, चीन के साथ तनाव का मुद्दा हो, आतंकवाद का, उग्रवाद का, नक्सलवाद का, पूर्वी भारत के राज्यों जैसे असम के साथ दरार का मुद्दा हो, इन सभी समसामयिक गतिविधियों का उल्लेख इन कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है। अनागत काव्य धारा के प्रमुख कवि अजय प्रसून जी की 'मेरा हिंदुस्तान' कविता में इन सभी परिस्थितियों का चित्र अंकित किया गया है-

सारे देश में धुआं सा छाया हुआ है
मेरा हिंदुस्तान बौखलाया हुआ है/ गुजरात की उषा निशा सरीखी
गली गली लहू वाली धार दिखा /भारतीयता हजार बार
चीखी है/कोटे वाली बात विष से भी तीखी है।[9]

भविष्य की सुखद परिकल्पना: अनागत कविता आशावादी दृष्टिकोण लिए हुए है। इन कवियों का मानना है कि अभाव में, संघर्षों में ,कठिनाइयों में, विपरीत परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने को जिंदगी कहते हैं। उनके अनुसार संघर्ष के पथ पर आगे बढ़ना ही मनुष्य की पहचान है। यदि एक स्वर्णिम भविष्य को प्राप्त करना है तो किसी भी संघर्ष के साथ पराजय न स्वीकार करते हुए उन परिस्थितियों का डटकर सामना करना चाहिए। हमें अपने अतीत से भी सीख लेना चाहिए क्योंकि अतीत की सीख वर्तमान को सुंदर और भविष्य को स्वर्णिम बनाती है। ईश्वर द्वारा दिए गए इस जीवन में सुख- दुख दोनों का समान रूप से आना- जाना लगा रहता है। बलबीर सिंह रंग की कविता 'मरुभूमि में उद्यान की चर्चा करें' में इस आशावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है-

आइए मरुभूमि में उद्यान की चर्चा करें,/ध्वंस के संदर्भ में
निर्माण की चर्चा करे/ निर्झरों, नदियों तालाबों की प्रगति को साधुवाद
सिंधु में उठते हुए तूफान की चर्चा करें।[10]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी काव्य में अनागत काव्यांदोलन के प्रमुख कवियों ने समसामयिक यथार्थ का अपने काव्यों में बड़ी प्रमुखता से चित्रण किया है। इस चित्रण में उन्होंने समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक लगभग सभी पहलुओं को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। अतः कहा जा सकता है कि जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ ही मनुष्य के भविष्य की सुखद कल्पना को भी अपने काव्य में स्थान देकर यह अनागत काव्यधारा को अमर बना गई है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1. पाठक आर.सी, आदर्श हिंदी शब्दकोश, भार्गव बुक डिपो, वाराणसी, 2004 ,पृष्ठ. 29
2. डॉ. रणसुभे नारायण, काव्य प्रदीप, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई, 2010, पृ. 61
3. सं. हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई विश्वविद्यालय, गीत- पूंज, राजकमल प्रकाशन पृ. 81
4. डॉ रणसुभे सूर्यनारायण, काव्य प्रदीप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 88
5. वही, पृष्ठ 56
6. पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, रुपान्तर अशोक सिंह,भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ 20
7. सं. हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई विश्वविद्यालय, काव्य सरिता, परिदृश्य प्रकाशन, मुंब. पृष्ठ 63
8. पांडे सुदामा 'धूमिल', संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 43
9. नूतनवाग्धारा, अनागत कविता आंदोलन:नई सुबह की आहट,संपादक-डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल, अंक-44- 48,वर्ष-2021,पृष्ठ.62
10. वही, पृष्ठ.59

खिली हुई धूप का रूपक : मुकेश मानस

डॉ.कर्मानन्द आर्य

मुकेश मानस (15 अगस्त 1973- 04 अक्टूबर 2021) भारतीय साहित्य मनीषा में ऐसे दुर्लभ रचनाकार थे जिन्होंने बहुत कम समय में साहित्य और समाज की बारीकियों को अपनी रचना का रंग दिया जो कहीं अछूते रह गए थे. वे एक धारदार कवि, संवेदनशील कहानीकार, तीसरी धारा के आलोचक, कुशल समीक्षक और एक प्रतिभावान प्राध्यापक थे. वे एक अत्यंत साधारण दलित परिवार में पैदा हुए थे पर उन्होंने अपनी रचनात्मकता में केवल दलितों को ही प्राथमिकता नहीं दी बल्कि विशाल मजदूर वर्ग उनकी संवेदना का विषय रहा. उन्होंने अपने परिवार की आर्थिक विपन्नता और उसकी विद्रूपता को बहुत नजदीक से देखा था. अभावों की जिन्दगी ने मुकेश को कुंदन बना दिया था. वे अपने से अधिक समाज को महत्व देते थे. पारंपरिक रूप से उनके मजदूर पिता लोहे इकट्ठा करने का कारोबार करते थे जिससे मुश्किल से परिवार का भरण पोषण होता था. पारिवारिक संघर्षों के साथ ही उनकी पढ़ाई को भी गति मिली थी. दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे किसी बड़े विश्वविद्यालय में उनका प्राध्यापक का सफर बहुत आसान नहीं था. रचनात्मकता की दृष्टि से देखें तो मुकेश मानस ने बहुत कम समय में जो मुकाम बनाया वह किसी से छुपा हुआ नहीं है. स्वभाव से संकोची कोई कवि हो लम्बे अंतराल में चार कविता संग्रह : 'भीतर बुद्ध है' 'पतंग और चरखड़ी' 'काग़ज़ एक पेड़ है' 'धूप है खिली हुई' से अपनी दुनिया सजा सकता है. कविताओं में दिमाग नहीं बल्कि उनकी कहानियों में उनका दिमाग बोलता है.

उनका कहानी संग्रह – 'उन्नीस सौ चौरासी' 'पंडिज्जी का मंदिर और अन्य कहानियां' हैं. आलोचना का नाम लें तो 'हिन्दी कविता की तीसरी धारा' 'दलित साहित्य के बुनियादी सरोकार' आदि उनकी चर्चित आलोचना पुस्तकें हैं जिन्हें पाठकों ने हाथो हाथ ही नहीं लिया बल्कि उसकी भरपूर चर्चा भी की. यात्रा वृत्तांत देखें तो –'हरा शहर' अन्य पुस्तकों में –'विवेकानन्द' 'भारत की प्रथम शिक्षिका सावित्रीबाई फुले' 'दलित समस्या और भगत सिंह' 'अम्बेडकर का सपना पुस्तिकाएं' पत्रकारिता के लिये 'मीडिया लेखन : सिद्धांत और प्रयोग' किताब जो बेहद चर्चित हुई. इतना ही नहीं वे एक अच्छे आलोचक के रूप में भी उभरे. उन्होंने – प्रोफेसर कांचा इलैया की किताब 'व्हाई आई एम नाट ए हिन्दू(2003)' एम एन राय की किताब 'इंडिया इन ट्रांजिशन (2005)' के अनुवाद प्रकाशित किया, जब दलित साहित्य में दलित-बहुजन पत्रिकाओं का घोर अभाव था उन दिनों से ही उन्होंने अनियतकालीन हिन्दी पत्रिका मगहर संपादन करना आरम्भ किया. 'आरोही' नाम से उन्होंने एक महत्वपूर्ण प्रकाशन संस्थान की शुरुआत भी की थी जिस प्रकाशन ने कई किताबें पाठकों तक पहुंचाई. दलित बस्ती के एक ऐसे युवक का प्रोफेसर जैसे पद पर रहना कोई सामान्य घटना नहीं है. उन्हें बहुत कम उम्र मिली. बड़ा संयुक्त परिवार पिता की मृत्यु के बाद मुकेश के कन्धों पर आन पड़ी थी. अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को उन्होंने बहुत सिद्दत से निभाया. वे अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को भी आजीवन नहीं छोड़ पाये. एकाकी और विरहपन ने उनकी बची उम्र को खा लिया. उनकी जिन्दगी की कसमसाहट और बेचैनी को उनकी रचनाओं में सहज ही देखा जा सकता है. उनका लेखन विलासिता का लेखन नहीं था. उन्होंने अपने जीवनकाल में जिन विसंगतियों को देखा समझा था उन्हीं को अपनी रचनात्मकता का विषय भी बनाया था. उनपर जितना बाबा साहब आंबेडकर का प्रभाव था उससे कहीं कम प्रभाव उनपर कार्ल मार्क्स का नही था. इसलिए उनके विचार और लेखन को लोग दलित वामपंथ का लेखन समझते थे. मुकेश मानस ने सदैव अपने मानसिक विस्तार को आगे बढ़ने दिया और कभी वैचारिक स्खलन को जीवन का अंग नहीं बनाया. मुकेश मानस ऐसे व्यक्तित्व थे जो मित्रों में लोकप्रिय थे परन्तु बाद के जीवन में आये अवसादों ने उनकी रचनात्मकता को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया. वह जनसंघर्षों के युवा चितेरे थे. डॉ. मुकेश मानस पर लिखे एक आलेख में युवा हिन्दी आलोचक सर्वेश मौर्य लिखते हैं कि –'प्रगतिशील दलित साहित्यकार, जनसंघर्षों में हम सबके साथी युवा कवि, चिन्तक, आलोचक मुकेश मानस अब हमारे बीच नही रहे. वे सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी के एसोसिएट प्रोफेसर थे. लिखने पढ़ने के शौकीन,

जिंदादिल, बहस मुबाहिसे में हिस्सा लेने वाले, यारबाश, जनसंघर्षों के धुर समर्थक और सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में मशगूल रहने वाले अपने तरह के व्यक्ति थे. आधुनिक हिंदी कविता, दलित साहित्य, मार्क्सवाद और आंबेडकरवाद उनकी दिलचस्पी के क्षेत्र थे. आधुनिक हिंदी कविता पर उनकी पुस्तक 'हिंदी कविता की तीसरी धारा' काफी चर्चित रही थी. वे जबरदस्त उद्यमी आदमी थे. हमेशा नए तरह से सोचने वाले; नए का सम्मान करने वाले; जोखिम उठाने वाले और रचनात्मकता के लिए किसी भी हद तक जाने वाले शख्स थे. अपने राजनीतिक सांस्कृतिक जीवन की शुरुआत उन्होंने वामपंथी संगठन व 'नौजवान' पत्रिका से की थी. वे भगत सिंह को बेहद पसंद करते थे तथा डॉ. अंबेडकर के राजकीय समाजवाद के हिमायती थे'. संघर्षों और उलझनों के बीच पिसता हुआ मनुष्य अपनी दश्चिंताओं और परेशानियों को जब किसी से कह नहीं पाता हैं तब वह लेखन की तरफ लौटता है. अपनी तन्हाइयों को शब्दों के कपडे पहनाकर वह कुछ इस प्रकार से अपनी भावनाओं का प्रकट करता है ताकि अपने दुखों को सिला जा सके. वह अपनी सबसे बेहतरीन कोशिश करता है. लेकिन कई बार लाख कोशिशें करने के बाद भी वह अपनी कोशिशों में सफल नहीं हो पाता है. अपनी प्रोफेशनल और व्यक्तिगत जीवन में सामंजस्य न बैठा पाने के कारण मुकेश ऐसी उलझनों में उलझते गए जो उन्हें मौत के अलावा और कुछ न दे सका. उनकी सारी कोशिशें बेकार चली गई. अपनी व्यक्तिगत जीवन की विसंगतियों को अगर हमें शब्द देना हो तो वे कुछ इस तरह से मुकेश भाई ने व्यक्त किये होंगे :

जगता रहता सारी रात / सोचता रहता सारी रात /
तन्हाई और सन्नाटे को / सुनता रहता सारी रात /
अपने प्रश्नों के जवाब /ढूँढता रहता सारी रात /
जाने कैसी उलझन है / उलझा रहता सारी रात / 2005

वंचित तबकों से आने वाले कवि रचनाकारों ने अपनी रचनाओं का विषय सबसे अधिक 'जाति' को बनाया है. क्योंकि जाति के कारण उन्हें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक धार्मिक-सांस्कृतिक अपमान झेलने को मजबूर होना पड़ा है. जाति के कारण जो उनकी पहचान बन पायी है उसी तरह से नकारात्मक व्यवहार उनके साथ देश समाज का रहा है. मैं मुकेश मानस की कविताओं का पाठक प्रशंसक रहा हूँ. नई पीढ़ियों में सामाजिक रूपांतरण और परिवर्तन की जो बलवती इच्छा दिखाई देती है उससे मुकेश मानस कहीं भी असम्पृक्त नहीं हैं. उनकी यही कामना रही है कि सम्पूर्ण मानवता को उजाले की और जाना हमारा कर्तव्य होना चाहिए. पूर्वजों की चिंताएं हमारी अपनी चिंताएं होनी चाहिए पर साथ ही हमें बदलाओं को भी स्वीकार करते रहना होगा. जाति के जितने दुष्परिणाम हो सकते हैं वे आंबेडकरवादी कवियों को परेशान ही करते हैं. जाति के जितने बहुल रूपक हो सकते हैं वह सब उनकी कविता में दिखाई देते हैं. हिंदी दलित साहित्य धारा की यह अनूठी कविता अपने आप में मिशाल है. मुकेश अपनी कविता में लिखते हैं :

बाप चमार / माँ बीमार/ जवान होती बहनें चार/
माटी की चोंतरी/ कर्ज़े की कोठरी/ टपकती हुई ओसरी/
भूखे पेट जागना/ और हिम्मत हारना/ खुद को रोज़ मारना /
जातिगत प्रताड़ना /ज़िन्दगी अवमानना /
एक दुःसह यातना / किसकी व्यथा है ये /
उसका क्या नाम है / उसका कोई नाम नहीं /
वह तो सर्वनाम है/ जहाँ भी जाओगे
नज़र को दौड़ाओगे / हर सिम्त उसे पाओगे (1991, पुरानी नोटबुक से)

प्रेम और संवेदना की रचनात्मकता किसी कवि को वह उंचाई देती है जिसका वह हमेशा आकांक्षी रहता है. व्यक्तिगत प्रेम एक दिन विस्तार पाकर दुनियावी प्रेम में बदल जाता है. वहीं से उसका आकाश शुरू होता है. निजात्मक प्रेम अनुभूतियों से वह अपने प्रिय को बार बार आमंत्रण देता है और उस महाचिति रूपी महामिलन की आकांक्षा बनाये रखना चाहता है. संयोगावस्था का विरह एक दिन वियोग का ठूंठ वृक्ष मात्र होकर रह जाता है. तब कवि की अनुभूतियाँ कुछ इस रूप में बोलती हैं :

सागर झरने रोएँगे तो मेरे अँसुअन का क्या होगा
हम तुम ऐसे बिछड़ेंगे तो महामिलन का क्या होगा
मैंने मन के आँगन में, प्रेम सुमन खिलाए थे
तुमने अपनी ख़ुशबु से, जो आकर के महकाए थे
तुम प्रेम नदी ही सूख गईं तो, इस उपवन का क्या होगा?
मैंने अपने अंतर को, मंदिर एक बनाया था
तुमको उस मंदिर में एक देवी सा सजाया था
जो तुमको अर्पित करना था, अब उस जीवन का क्या होगा? हम ...।

मुकेश मानस ने मन की संवेदनाओं को छूने वाले बहुत मार्मिक गीत भी लिखे हैं. उनके गीतों की एक लम्बी श्रृंखला है जो उनके प्रकाशित संग्रहों में देखी जा सकती है. एक सरल सहज मन ऐसे गीतों में ही अपने प्रेम को निरुपित कर पाता है. संवेदना के कटु धरातल पर अपने आप को अभिव्यक्त कर पाता है. उनके गीतों में प्रेम का विस्तार है. महादेवी वर्मा की तरह उनके गीत अंतरतम की महान अभिव्यक्ति हैं. एक महान पुकार उनके हृदय में उठती रहती है. अमूमन दलित साहित्यकारों के यहाँ जहाँ आक्रोश और करुणा की बहुतायत है, ऐसे भावप्रवण गीत बहुत कम दिखाई देते हैं. कवि अपनी संवेदना को कुछ इस तरह के शब्दों में पिरोता है :

दीप सा मन जलता रहा रात भर
स्नेह आँखों से झरता रहा रात भर
दूर तक मैंने तुमको पुकारा भी था
दे के आवाज़ तुमको पुकारा भी था
फिर भी पथ में अकेला मैं क्यों रह गया

दुःख हैं तो दुःख के निदानात्मक कारण भी हैं. भव्यता इस बात में हैं कि सुख और दुःख की इन स्थितियों में कौन स्वयं को उबार पाता है. वह अपने विरूद्धों में कितनी बार सामंजस्य बना पाता है. वह जीवन की राहों में लड़ने का माद्दा रखता है कि नहीं. अगर वह माद्दा रखता है तो वह रास्ता कौन सा है? दुःख से लड़कर पार उतरने में ही जीवन की सार्थकता है. कवि मुखेश मानस ने लिखा है :

जितनी बार लड़ेंगे दुख से/हम उतने ही वीर बनेंगे
राहों में चाहे शूल मिलें/मन के कोमल फूल जलें
जितनी बाधाएँ होंगी पथ में
हम उतने ही धीर बनेंगे, जितनी बार... (1987)

अधिकरण प्रकाशन, नई दिल्ली से सद्यः प्रकाशित (2020) उनका कविता संग्रह 'धूप है खिली हुई' के ब्लर्ब में 'ब्रेख्त' की कविता से उनके मनोभावों और उनकी संजीदगी को आराम से पहचाना जा सकता है. मुकेश लिखते हैं:

हर चीज बदलती है अपनी हर आखरी साँस के साथ /तुम एक ताजा शुरुआत कर सकते हो लेकिन जो हो चुका, सो हो चुका/ओ पानी एक बार तुम शराब में उड़ेल चुके हो /उसे उलीचकर बाहर नहीं कर सकते -ब्रेख्त

ठीक इसी तर्ज पर वह अपनी पुस्तक की अनुक्रमणिका के समापन पर पंजाबी के महान कवि 'पाश' की कविता रखते हैं जिससे उनकी तात्कालिक मानसिक दशा का पता चलता है. पारिवारिक विघटन ने उनके जीवन को असामान्य कर दिया था. सोशल मीडिया पर कई बार उन्होंने आत्महत्या के विचारों को शेयर भी किया था. वे बहुत टूटे हुए इंसान बनकर रह गए थे. जीवन की आपाधापी में संगति न बैठा पाने के कारण उनका जीवन बहुत कठिन हो गया था. 'पाश' के शब्दों में कहें तो –

चाँद भी अकेला है मेरी तरह
और उन सब गुनहगार लोगन की तरह
जिहोने अनुकूल परिस्थियाँ न होने पर भी
जीने का दुस्साहस किया -'पाश'

कवि साहित्यकार की विचारधारा किसी धारा विशेष की नहीं होती है बल्कि वह सम्पूर्ण धरती, सम्पूर्ण मानवता की वाहक होती है. किसी आदमी की पहचान जब एक वैचारिक धरातल पर करके जब उसे उसी विचारधारा के लिए कुंद कर दिया जाता है तब हम उसके सात न्याय नहीं कर रहे हते हैं. कवि की विचारधारा को दुनियाबी चीजों से अलग देखने का हिमायती यहाँ कवि दिखाई देता है:

मेरी विचारधारा /एक बहती हुई आज़ाद हवा है धूप है खिली हुई अलसाई घास पर / फैली हुई किरण हैं पेड़ की शाख पर समन्दर की उठती गिरती लहर है / अन्तहीन धुन है गिटार से झरती हुई केनवस पर चमकता हुआ चटख रंग है / दुख है पत्तियों पर गिरी हुई ओस का पक्षियों के कंठ से फूटता हुआ / एकांत का गीत है आँखों में महकता हुआ फूल है

मुहब्बत का /जमीन से उठती हुई धमक है इन्सान के इंकलाबी कदमों की / देश-देशावर में गूंजता हुआ मुक्ति का राग है (2013, धूप है खिली हुई, पृष्ठ 11)

भाषाओं के अनगिनत विमर्श एक साथ चलते रहेते हैं. वैसे कविता तो स्वयं में भाषा में तमीज होने की चीज है हुआ करती है. भाषा की अपनी राजनीति होती है और जिन भाषाओं को राजनीति का संरक्षण प्राप्त हो जाता है वह सत्ता और शासन की भाषा हो जाया करती है. कवि भाषाओं की इस राजनीति में स्वयं को शामिल पाता है. वह अपनी भाषा को बचाए रखने की राजनीति करता है. कवि लिखता है :

आदमी होता हूँ /मैं अपनी भाषा में /मेरी भाषा मेरे शासक की भाषा नहीं है
इस आज़ाद मुल्क में /गुलाम रखा है /मेरे शासक की भाषा ने /

मंगलेश डबराल मुकेश मानस के प्रिय कवियों में से एक हैं. मंगलेश डबराल भी पहाड़ का दुर्गम दुःख झेलकर आज महानगर का हिस्सा बन पाए हैं. उनकी स्मृतियों में पहाड़ है तो मुकेश मानस की स्मृति में मंगलेश की लिखी गई कविता 'पहाड़ पर लालटेन' बार-बार कवि को याद आती हैं :

मंगलेश डबराल को सुनना / कोई पुकार शुरू होती है कहीं धीमे से
फिर घाटियों से उठती है कोई हवा धीरे-धीरे / किसी पहाड़ के धवल शीर्ष तक जाकर वापस लौट आता है कोई पक्षी / एक धूसर दृश्य उभरकर करुण हो जाता है बादल की ओर एकटक निहारती है एक स्त्री / अंत में गिरने लगती है रात और चूल्हे सुलगने लगते हैं आग की लपटें धीरे-धीरे उठकर फैल जाती हैं दिशाओं में कोई झरना गुनगुनाने लगता है / एक दुख भरा गीत कहीं किसी वीराने में कोई झील थरथराने लगती है फिर हवा, पानी, पहाड़ और आग / पुकारते हुए विलीन हो जाते हैं अन्धेरे की गर्त में कहीं दूर धीरे-धीरे एक लालटेन सी / टिमटिमाने लगती है एक सुबह (खिली है धूप, पृष्ठ 16) कवि ने सामाजिक जीवन के उन कटु यथार्थों को बहुत नजदीक से देखा भोगा. मुफलिसी और भूखेपन को धता बताकर जीवन के जंगल से एक नई राह निकाली. बाधाओं और संकटों को पार करते हुए ही उनकी कविता इस मर्म भूमि तक पहुंची. बाल्मीकि की कविता का क्रौंचवध, असहाय प्रसव वेदना, घृणा और तिरस्कार के बीच जीते आम आदमी, का समग्र बिम्ब उनकी कविता में है. मुकेश मानस कवि ही नहीं मनुष्य भी बहुत अच्छे थे. उनके भीतर मोहने की अद्भुत और भावुक कला थी. उनकी संवेदना इसकी ताकीद करती हैं कि मनुष्यों को घृणा से नहीं प्रेम से अपना बनाया जा सकता है. कवि अपनी 'दुख' नामक कविता में लिखता है :

इस देश में एक मुसलमान होने का दुख
मैं नहीं जानता क्योंकि मैं मुसलमान नहीं हूँ/मैं नहीं जानता एक ईसाई होने का दुख /क्योंकि मैं ईसाई नहीं हूँ /आदिवासी होने का दुख क्या होता है
क्योंकि मैं आदिवासी नहीं हूँ

पूरी दुनिया अपना घर है जहाँ न अधिक पढने लिखने का दंभ है, न धन दौलत की हेकड़ी. यहाँ रोज कमाकर खाने वाले मजदूर के चेहरे का आत्मतोष है जो सिर्फ और सिर्फ अपनी मेहनत पर विश्वास करता है. जो जानता है कि यह दायभाग उसे किसी ईश्वर या भगवान् ने नहीं अपितु उसके अपने आत्मबल और मेंहनत ने दिया है. उनकी कविता में पितरों का आशीर्वाद है तो नई होती पीढ़ियों की चेतस प्रेम भी. यहाँ हिन्दू-मुसलमान-मुगल-क्रिस्तान जैसे कितने लोग नकाब ओढ़े दिखाई देंगे लेकिन इंसानियत ढूंढे नहीं मिलती. 'मैं नहीं जानता' शीर्षक कविता में मुकेश मानस लिखते हैं :

लेकिन मैं पहचानता हूँ / अपनी रगों में जड़ जमाए अपने
अपमान के दुख को जो टीसता है / सदियों से मेरे भीतर/ये मेरा दुख ही है /
जो मुझे जोड़ देता है सबके दुखों से(2014, खिली हुई धूप, पृष्ठ 18)

साहित्य और समाज अन्योनाश्रित हैं. जार्ज काडवेल ने कहा था कि 'साहित्य का मोती समाज की सीपी से जन्म लेता है. समाज में जो कुछ घटित होता है उसकी सही सही अभिव्यक्ति साहित्य में होती है. समाज की व्याप्ति लोक संवेदना और चिंतन का विषय बनकर पुनः उसको उत्पादित करता है. साहित्य के माध्यम से साहित्यकार ऐसे संवादों को जन्म देता है जो समाज की चिंताओं को समाज के पटल तक ले आता है.विमर्शों के केंद्र में इक्कीसवीं सदी है. स्त्री, दलित, आदिवासी, बाल, वृद्ध, थर्डजेंडर लेखन को प्रमुखता से प्रोत्साहित किया जा रहा है.अब साहित्य का संकुल केंद्र से हाशिये की तरफ बढ़ता हुआ संवेदना को भी विकेंद्रीकृत कर रहा है. समाज के उपेक्षित वर्गों का समाज और साहित्य में इस तरह मुखर होकर संवेदना का अंग बनना उसकी जागरूकता और संवेदना को दर्शाता है. समाज से बहिष्कृत, लिंग निरपेक्ष, आदिम समुदायों से आने वाले लोगों पर अब साहित्यिक लोगों की नजर जा रही है तो यह अनुकरणीय है. आज का सवाल वृहन्नला और शिखंडी तक सीमित नहीं है. आज शारीरिक श्रम का सवाल भी प्रमुख नहीं है अपितु इक्कीसवीं सदी ने ज्ञान और संवेदना के स्तर पर भी इन विषयों को छुआ है. 'किन्नर की गाली' कविता में वह किन्नर समाज के यथार्थ को स्वीकार करने की बात करते हैं :

लालवत्ती के चौराहे पर / ताली पीटते हुए एक किन्नर ने
मुझे दीं बहुत सारी दुआएं / मैंने बदले में जब उसे कुछ नहीं दिया
तो उसने मुझे एक गाली दी / तमाम दुआओं से कहीं ज्यादा
उसकी गाली मुझे सच्ची लगी / मुझे सही लगा उसका गाली देना
(2014, धूप है उगी हुई, पृष्ठ 23)

प्रसिद्ध भाषाशास्त्री प्रो. राजेन्द्र प्रसाद सिंह का एक कथन बार-बार याद आता है : ''20 वीं सदी पूँजी का युग था जिसके पास पूँजी थी, वह सबसे अधिक शक्तिशाली था. 21 वीं सदी ज्ञान का युग है, जिसके पास ज्ञान है, वह सबसे अधिक शक्तिशाली है. इस ज्ञान- युग का "महाभारत" शस्त्र से नहीं, स्याही से लड़ा जाएगा.'' भारत में शिक्षा का बड़ा अभाव रहा है. अठारवीं सदी से पहले भारत की शिक्षा व्यवस्था पर यदि नजर डालें तो स्थिति बिलकुल शून्य है. अनपढ़ बनाए हुए लोगों की एक बड़ी जमात दिखाई देती ही. देश के चार या पांच प्रतिशत पुरुषों को ही पढ़ने का अधिकार था. वे भी शिक्षा गुरुकुल या घर पर अध्यापक रखकर की जाने वाली शिक्षा. शिक्षा के नाम पर तो यदि कोई स्त्री या दलित शास्त्रवचनों को सुन ले तो उसके कान में शीशा घोलकर डाल देने की बात यहाँ के विधि ग्रंथों में रही है. यानि केवल उस समुदाय के पास शिक्षा है जो या तो लूटकर्म में संलिप्त रहें है या उसमें सहायक रहे हैं. कवि अपनी कविता 'मेरा सवाल' में ऐसे ही चुभते हुए सवाल पूछता है :

ज्ञान के सारे पाठ्यक्रम आपके हैं/उनमें मैं कहां हूँ
शासन के सारे संस्थान आपके हैं/उनमें मैं कहां हूँ
बदलाव के सारे विचार आपके हैं/उसमें मैं कहाँ हूँ

अरे भले लोगो/सब कुछ तो आपका ही है /फिर भी कितना नापसंद है आपको
मेरा ये सवाल (2013, धूप है खिली हुई, पृष्ठ 40)

हिंदी दलित साहित्य की प्रमुख हस्ताक्षर रजनी तिलक ने मुकेश मानस के जीवन पर गहरी छाप छोड़ी. मुकेश के इस संग्रह में वैसे तो गोविन्द प्रसाद, मंगलेश डबराल, अरुण कमल केदारनाथ सिंह, डॉ. तेज सिंह आदि कई नाम चीन कवियों को स्मृत किया गया है पर जितनी सिद्दत से उन्होंने रजनी तिलक को याद किया है उन्हें हम कुछ इन शब्दों में देख सकते हैं : रजनी तिलक

एक आवाज / जो सदा उठती थी समता, सम्मान, प्रतिरोध और संघर्ष के लिए एक आवाज / जो व्यक्ति से व्यक्ति विचार से विचार/आंदोलन से आंदोलन के बीच सबसे मजबूत कड़ी थी/वो आवाज़ / आज चुप हो गई/फिर से एक नई आवाज़ में उठने के लिए/(धूप है खिली हुई, 31.03.2018, पृष्ठ 53)और डॉ. सर्वेश मौर्य के ही शब्दों में कहें तो : 'फासीवाद, साम्प्रदायिकता, जाति, जनतंत्र, राजनीति, संस्कृति, विचारधारा, विमर्श व पूंजीवादी सत्ता उनकी चिंताओं के केंद्र थे. लेकिन उनकी चिंताएं कई बार इस परिधि को लाँघ कर बृहत्तर हो जाती थीं. मानवता, प्रकृति, प्रेम और इकोलॉजी के बारे में भी वे सोचते थे जैसे कोयलगान नामक अपनी एक कविता में कहते हैं कि- "कहाँ गए सब जंगल?/ कहाँ गए सब बाग-बगीचे?/ कहाँ गए सब खूबसूरत फूल?/ जो ये कोयल गा रही है/ दिल्ली जैसे महानगर में रहने वाले/ मेरे जैसे एक कवि के घर में." इसी तरह अपनी एक और छोटी कविता 'परिंदे' में वे कहते हैं कि "उड़ो/ कि तुम परिन्दे हो/ उड़ो/ कि उड़ना तुम्हारा धर्म है/ उड़ो/ कि सारा आकाश तुम्हारा है." और देखिये आज वह कर्मठ परिंदा उड़ गया है. क्योंकि उड़ना ही उसका धर्म था, सत्य था. ऐसे समय में जब फासीवादी ताकतें मजबूत हो रही हैं मुकेश मानस जैसे जनपरस्त प्रगतिशील योद्धा का जाना दलितों की प्रगतिशील धारा के लिए एक बड़ी क्षति है'. मुकेश मानस की रचनाशीलता का फलक बहुत व्यापक है.

****

रघुवीर सहाय के निबंधों एवं लेखों के विविध आयाम

डॉ. प्रमोद पडवळ
सहयोगी प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय
शिरूर, जिला- पुणे (महाराष्ट्र)

सारांश- आधुनिक हिंदी साहित्य जगत् के बहुआयामी और प्रतिभा संपन्न रचनाकारों में एक उल्लेखनीय नाम हैं रघुवीर सहाय। वे एक कवि होने के साथ-साथ गद्यकार भी थे। अनेक विधाओं में साहित्य सर्जना उनकी बहुज्ञता की परिचायक है। उनकी लेखनी ने कविता, कहानी आदि विधाओं के साथ-साथ निबंध इस विधा में भी सफलतापूर्वक संरचण किया है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिससे जुड़ी घटनाओं पर विचार-विमर्श हेतु रघुवीर सहाय ने लेखनी न चलाई हो। 'सीढ़ियों पर धूप में', 'दिल्ली मेरा परदेस', 'लिखने का कारण', 'ऊबे हुए सुखी' आदि उनके नौ निबंध एवं लेख संग्रह संग्रहों से इसकी प्रतीति मिलती है। एक पत्रकार और साहित्यकार के नाते सामाजिक विसंगती का बखूबी प्रस्तुतीकरण इसमें मिलता है। अपने लेखों और निबंधों में रघुवीर सहाय ने समाज की हर छोटी-बड़ी गतिविधियों का पर्यवेक्षण करके समाज की सद्य परिस्थिति को न केवल सभी के सम्मुख रखा, बल्कि परिवर्तन या सुधार के कारगर उपाय भी बताए। स्वाधीनोत्तर भारत का जनमानस, उसकी स्थिति, आकांक्षाएँ आदि के संदर्भ में उनके विचार महत्वपूर्ण हैं।

बीज शब्द- बहुज्ञता, अभिव्यक्ति, साहित्य सर्जन, दृष्टिकोण, समकालीन, यथार्थ, अनुभूति, आधुनिकता।

उद्देश्य- हिंदी साहित्य संसार में रघुवीर सहाय अपनी मौलिक प्रतिभा के आधार पर महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कविता, कहानी आदि विधाओं के साथ-साथ निबंध विधा में भी रघुवीर सहाय का प्रचुर मात्रा में लेखन मिलता है। आज़ादी के बाद भारतीय समाज में विकसित होती हिंसा, सत्ता और राज्य की शक्तियों के आतंक, अन्याय को रघुवीर सहाय के निबंध एवं लेख पहचानने का यत्न करते हैं। लिहाज़ा समकालीन जीवन की वास्तविकता की अधिक पैनेपन से अभिव्यक्ति की दृष्टि से रघुवीर सहाय का निबंध साहित्य महत्वपूर्ण है। मगर रघुवीर सहाय का निबंध एवं लेख लेखन उतना आलोकित नहीं हुआ है, जिसके वे हकदार थे। इन्हीं बिंदुओं पर विचार-विमर्श हेतु प्रस्तुत आलेख का प्रयोजन है।

प्रस्तावना-रघुवीर सहाय एक कवि होने के साथ-साथ गद्यकार भी थे। अनेक विधाओं में साहित्य सर्जना उनकी बहुज्ञता की परिचायक है। कविता रघुवीर सहाय की पहली पसंद थी, पर अन्य जिन विधाओं को उन्होंने अपनाया उनमें कहीं अप्रामाणिकता नज़र नहीं आती क्योंकि वे हर विधा को एक न एक विधा का विकल्प मानते थे। कहानी, रेडिओ नाटक, यात्रावर्णन, संस्मरण, समीक्षा, अनुवाद की तरह निबंध एवं लेख भी लिखे हैं। संपादक एवं पत्रकार के रूप में रघुवीर सहाय ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जिन विचारों को अभिव्यक्ति दी उन्होंने आगे निबंधों की, लेखों की शक्ल धारण की। रघुवीर सहाय के निबंधों एवं लेखों का विस्तार से विवेचन करने से पहले उनसे परिचित होना आवश्यक है।

रघुवीर सहाय का निबंध एवं लेख साहित्य- अपने पत्रकारिता जीवन में रघुवीर सहाय ने जो सर्जनात्मक विचार प्रस्तुत किए वे ही आगे निबंध एवं लेखों के रूप में प्रकाशित हुए। रघुवीर सहाय के कुल नौ निबंध-लेख संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'सीढ़ियों पर धूप में' यह रघुवीर सहाय की पहली पुस्तक है, जो सन 1960 में प्रकाशित हुई। कहानियों और कविताओं के बाद इसके अंतिम भाग में कुछ आलोचनात्मक लेख और साहित्य से जुड़ी टिप्पणियाँ शामिल है। इसके बाद 1976 में 'दिल्ली मेरा परदेस' पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें रघुवीर सहाय द्वारा 'धर्मयुग' में लिखे 'दिल्ली की डायरी' कॉलम की टिप्पणियाँ संग्रहित की गई हैं। सन 1978 में रघुवीर सहाय की 'लिखने का कारण' नाम से निबंध एवं लेखों के संग्रह की तीसरी पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में कुछ आलोचनात्मक लेख, भाषा से संबंधित चिंतन तथा कुछ साक्षात्कार संकलित है। रघुवीर सहाय ने 'दिनमान' में प्रकाशित अपने संपादकीय लेखों और टिप्पणियों से सन 1982-83 में तीन पुस्तकें तैयार की- 'ऊबे हुए सुखी', 'वे और नहीं होंगे जो मारे जाएँगे' तथा 'भँवर, लहरें और तरंग'। समकालीन विषयों, घटनाओं से संबंधित चिंतन-मनन पाठक को एक जगह पर उपलब्ध हो इस दृष्टिकोण से इन लेखों का संकलन किया गया है। प्रस्तुत संकलन के लेख सजग पत्रकारिता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। शब्दशक्ति' रघुवीर सहाय की सन् 1983 में प्रकाशित ऐसी पुस्तक है, जिसमें व्याकरण की छोटी-छोटी मगर महत्वपूर्ण बातों को बड़े ही मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया है। अख़बार में काम करते समय रघुवीर सहाय शब्द और भाषा अशुद्धि की जिन समस्याओं से गुजरे उसका समाधान इस पुस्तिका में दिया गया है। इसके बाद सन् 1984 में 'यथार्थ यथास्थिति नहीं' किताब छपी। इस पुस्तक का संपादन डॉ. सुरेश शर्मा ने किया है। इसमें रघुवीर सहाय के पाँचवे दशक के बाद के अप्रकाशित और कुछ प्रकाशित आलोचनात्मक लेख, निबंध तथा भेंटवार्ता सम्मिलित हैं। सन् 1983 में 'नवभारत टाईम्स' छोड़ने के बाद रघुवीर सहाय अंत तक मुक्त लेखन करते रहे। इस बीच उन्होंने जनसत्ता में 'अर्थात्' नामक कॉलम नियमित रूप से लिखा। उनके लिखे इस स्तंभलेख की पुस्तक 'अर्थात्' नाम से 1994 में प्रकाशित हुई, जिसका संपादन हेमंत जोशी (रघुवीर सहाय के दामाद) ने किया। सामाजिक न्याय, समता तथा स्वतंत्रता की धारणा प्रस्तुत करने की दृष्टि से 'अर्थात्' में संकलित लेख महत्वपूर्ण हैं।'लेखक के चारों ओर', 'हिंदी का अर्थ', ऊबे हुए सुखी', 'आधुनिकता की खोज', 'गाँधी, लोहिया, जयप्रकाश', 'परदे के पीछे', 'भारत बचाओ', 'सरकार कोई भी हो', 'जो आदमी हम बना रहे हैं', 'लोग क्या सचमुच भूल गए हैं', 'प्रांतीय पताका', 'राजधानी की राजनीति', 'रोटी का हक', 'एक हृदय हो भारत जननीः राष्ट्रभाषा और राष्ट्रवाणी', 'राष्ट्रप्रेम और कवि', 'यथार्थ यथास्थिति नहीं', 'औरत की देह औरत का देश है' आदि रघुवीर सहाय के कुछ उल्लेखनीय लेख-निबंध हैं। अपने इन लेखों के माध्यम से वे मनुष्यता, न्याय, समता, स्वतंत्रता, राजनीति, लोकतंत्र आदि संबंधी धारणाओं को विश्लेषित करते हुए उसकी सही समझ पाठकों को दिलाकर उन्हें सचेत करने का भी प्रयास करते हैं।

रघुवीर सहाय के निबंध एवं लेखों के विविध आयाम रघुवीर सहाय के निबंध एवं लेखों की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक यथार्थ की अनुगूँज इसमें है। शायद यह सजग पत्रकारिता और चिंतनशील साहित्यकार का परिणाम हो सकता है। अतः इनका विस्तार से विवेचन निम्नलिखित आयामों के आधार पर करना उचित रहेगा-

1.साहित्य, भाषा संबंधी चिंतन-रघुवीर सहाय पेशे से भले ही पत्रकारिता से जुड़े रहे परंतु उनकी प्रकृति एक साहित्यकार की थी, इसलिए उनके लेखन में साहित्य तथा हिंदी भाषा के बारे में चिंतन दिखाई देता है। समकालीन साहित्य लेखन, रचना प्रक्रिया, साहित्य से जुड़ी विविध गतिविधियाँ आदि की परख उनके निबंधों एवं लेखों में दिखाई देती है।विषयवस्तु की दृष्टि से आज कविता का दायरा सिमटकर मानव की भाव भंगिमाओं तक रह गया है। कवि के साथ-साथ पाठक या श्रोता की ज़िम्मेदारी भी इसमें बढ़ती है। कवि को अनुभूतियों के सतही चित्रण की अपेक्षा गहराई में उतरना होगा और पाठक को भी उसकी सही समझ के लिए प्रयास करना होगा। यथा- ''कविता सिर्फ़ नई अनुभूतियों की समझ नहीं देती, नई वस्तुओं की समझ भी देती है। पर आज की कविता में वस्तुजगत् कितना सीमित हो गया है।... कविता सिर्फ़ दो और दो चार नहीं है, वह ऐसी एक समस्या भी है जिसमें दो और दो जोड़ते ही चार से कुछ ज़्यादा हो जाने की संभावना बन जाती है। चार से वह जो अतिरिक्त होता है वह गिनती में नहीं गिना जा सकता, अनुभव की गहराई ही उसे नाप सकती है।''[1] अर्थात इसमें लेखक की ज़िम्मेदारी अधिक बढ़ जाती है। इसी के मद्देनजर लेखक के उत्तरदायित्व के बारें में रघुवीर सहाय ने लिखा हैं- ''लेखक अन्याय और ग़ैरबराबरी का समर्थन करके साहित्यिक नहीं हो सकता। वैसा लेखक नाम और पैसा कमा सकता है पर ये दोनों पहचाने अब विशिष्टता की पहचाने नहीं रह गई हैं। विशिष्टता तो आज भी इसी से मानी जाएगी कि लेखक ने पाठक को भय से, संशय से, ग्लानी से कितनी मुक्ति दी है...साहित्य का यही धर्म है और यही उसका मर्म भी है।''[2] वस्तुतः अन्याय, शोषण और गुलामी से समाज की मुक्ति यही साहित्य का उद्देश्य होना चाहिए। साहित्य की तरह हिंदी भाषा की स्थिति और उसके भविष्य को लेकर रघुवीर सहाय अपने लेखन के प्रारंभ से ही चिंतित रहे। -

'भाषा भ्रमजाल' नामक लेख में उन्होंने लिखा है- ''1965 के बाद 'हिंदी की तैयारी' से भी गिरकर 'हिंदी के पूजन' का युग आरंभ हुआ जिसमें हिंदी इस्तेमाल के लौकिक दर्जे से उठाकर आराधना और ध्यान की अलौकिक ताक पर रख दी गई। आँकड़े मौजूद है कि 1965 के बाद सरकारी कामकाज में शायद बिहार और राजस्थान को छोड़कर किसी हिंदी भाषी राज्य में हिंदी का प्रयोग 1965 के पहले की अपेक्षा इतना नहीं बढ़ा कि उसका केंद्र सरकार पर असर पड़ सकता। राजधानी में केंद्र सरकार के कार्यालयों में यदि हिंदी राज्यों में आनेवाले पत्र अब तक शतप्रतिशत हिंदी में आने लगे होते तो शायद भाषा का राजनैतिक फैसला आज कुछ और ही होता।''[3]रघुवीर सहाय के साहित्य एवं भाषा संबंधी चिंतन में उन सारी स्थितियों पर प्रहार नज़र आता है जो इनकी विरोधी धारणाओं का पोषण करती हो। अपने साहित्यिक विचारों में जहाँ उनका सजग साहित्यकार का रूप निखरता है वहीं राष्ट्रभाषा संबंधी चिंतन में स्वाभीमानी एवं जागरूक नागरिक के दर्शन होते हैं।

2.साहित्य समाज के पारस्परिक संबंधों पर विचार-प्रदर्शन- साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। दोनों एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है। सामाजिक जीवन के राग-द्वेष, हर्ष-विषाद, इच्छा-आकांक्षा आदि का सही एवं प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण साहित्यकार का धर्म होता है और जब साहित्यिकता के साथ पेशा भी लोकसंसक्ति से जुड़ा हो तो यह ज़िम्मेदारी और अधिक बढ़ जाती है। रघुवीर सहाय एक साहित्यिक ही नहीं तो पत्रकार भी थे, अतः उनके साहित्य में समाज और साहित्य के पारस्परिक संबंधों पर विचार-विवेचन दिखाई देना अनायास ही था।रघुवीर सहाय की दृष्टि से समाज परिवर्तन में साहित्यकार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है पर इसके लिए उसे अपने अहं के त्याग के साथ-साथ जनसाधारण के साथ जुड़ाव आवश्यक है। 'एकता के पक्ष में' निबंध में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि- ''अब समय आ गया है कि साहित्यकार निश्चल होकर समाज में अपने सहयोगी स्थान को पहचाने, विशिष्टता का दावा छोड़ दे और यह स्वीकार करे कि समाज-परिवर्तन के अन्य संगठित साधनों के पतन के साथ-साथ उसकी ज़िम्मेदारी बढ़ती जाती है। उसका काम कठिन होता जाता है। परंतु उसका अहंकार भी उतना ही कम हो जाना चाहिए।....समय के साथ-साथ सत्ता के संतुलन को मिटाने की जो ज़िम्मेदारी पूरे राष्ट्र पर आ पड़ती है उसमें एक साहित्यकार क्या योग दे रहा है यही जानना साहित्यकार को जनसाधारण के साथ जुड़ने के लिए जरूरी है।''[4]बहुत से कवि बाकी को भी प्रकाशित करते हैं और बहुत-से आलोचक उसमें से शब्दों और प्रतीकों के सहारे या इससे भी घटकर उसमें व्यक्त विचार के सहारे, परंपरा से संबंध खोजते और पाते भी हैं- और उसकी घोषणा करके अपना धंधा जारी रखते हैं।''[5] असल में साहित्यकार की प्रत्येक रचना समाज को नई दिशा देने में समक्ष रहेगी ऐसा दावा न तो साहित्यिक कर सकता है, न पढ़नेवाला पाठक और न ही आलोचक। उसका (रचना) जुड़ाव भले समाज से हो, पर जब तक समाज-परिवर्तन की शक्ति उसमें नहीं रहेगी, साहित्य और समाज के पारस्परिक संबंधों की दृष्टि से उसका महत्व नगन्य ही होगा।

3. सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति:- प्रत्येक साहित्यकार एक समाज में जीता है। समाज विशेष की वह इकाई होता है। वह समाज को देखता है, उस पर विचार करता है। चेतन-अचेतन दोनों रूपों में समाज के राग-द्वेष उसकी चित्तवृत्ति को प्रभावित करते हैं और उसी का चित्रण वह करता है। एक संवेदनशील साहित्यकार होने के नाते रघुवीर सहाय के साहित्य में सामाजिक जीवन को बखूबी अभिव्यक्ति मिली है। आज सभी ओर आधुनिकता का नारा दिखाई देता है, पर आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार का निरा अनुकरण भारतीयता से मेल नहीं खाता। 'आधुनिकता की खोज' निबंध में इस बात का विवेचन रघुवीर सहाय इस प्रकार करते हैं- ''भारत में आधुनिक वही नहीं हो सकता जो पश्चिम में है। यहाँ जो आधुनिक होगा वह इतना आलीशान भले न हो, एक समतावादी समाज की झलक उसमें होनी ही चाहिए- उसके आविष्कारों में नयापन और न्याय एक साथ निहित होंगे- इसीलिए वैभव का अश्लील प्रदर्शन आधुनिक नहीं है। ''[6]भारतीय लोगों को चाहे जितनी समस्याओं का सामना करना पड़े वे अपनी संस्कृति के मूलतत्वों- दया, क्षमा, शील, स्नेह आदि को नहीं छोड़ते। उनकी यही बात उन्हें संसार में अलग और अनूठा बनाती है। 'लेखक के चारों ओर' इस लेख में इसका जिक्र रघुवीर सहाय इस प्रकार करते हैं कि- ''आटा, दाल, चावल, तरकारी और शक्कर का दाम कल जो था वह आज नहीं है। यानी बढ़ गया है। कुर्ते, कमीजें, कोट, पतलून कुहानियों पर या कंधे से एक-एक करके फट चुके हैं। दूध, मक्खन, मलाई, तेल, साबुन, जूते और डबलरोटी में जितना खर्च हो जाता है उसके बाद बीमे के प्रीमियम, स्कूल की फ़ीस और मकान का किराया देने को बच नहीं रहता। मगर हम अपने सौजन्य, दया, क्षमा, शील, स्नेह में एक रत्ती कम नहीं हुए हैं। आप से जब मिलेंगे, तपाक से नमस्ते करेंगे और पूछेंगे, ''मजे में तो है?'' और आप जवाब दें इसके पहले ही कह देंगे, ''जी, आपकी दया से सब चैनचान है। नमस्ते।''[7] सचमुच इतनी औदार्यता दुनिया में दुर्लभ है। भारतीयों की भारतीयता की यही एक पहचान भी कही जा सकती है। इस तरह अपने लेखों और निबंधों में रघुवीर सहाय ने समकालीन सामाजिक जीवन की असलियतों को उजागर किया है।

4.समकालीन बदलती राजनीतिक गतिविधियों पर विचार-विवेचन- प्रजा को पुत्र और राजा को ईश्वर के समान मानने की परंपरा आधुनिक काल तक आते-आते टूट गई। इसके लिए बदलती राजनीतिक धारणा ही अधिकतर ज़िम्मेदार दिखाई देती है। बड़े से बड़े व्यक्ति से लेकर सामान्य मनुष्य तक सबको आज जिसने प्रभावित किया है, वह राजनीति है। अवसरवादी लोगों ने प्रशासन में जाकर चोरबाजारी, घूस, भ्रष्टाचार का साम्राज्य स्थापित किया है। भ्रष्ट-अभ्रष्ट किसी भी ढंग से रूपया इकट्ठा करना और भोग-विलास करना ही आज के नेताओं का लक्ष्य बन गया है।संपादक एवं पत्रकार होने के नाते रघुवीर सहाय राजनीति से नज़दीकी से जुड़े रहे। समकालीन राजनीतिक गतिविधियों को उन्होंने निकटता से देखा, परखा और साहित्य के द्वारा उसे अभिव्यक्त किया। समकालीन राजनीतिक दलों की वास्तविकता को वे इस प्रकार उजागर करते हैं- ''समाज की आकांक्षा क्या है और राजनैतिक दलों की लिप्सा क्या है, दोनों में कोई नैतिक संबंध नहीं रह गया है। .....व्यक्ति के न्यायोचित अधिकारों के लिए संघर्ष की इच्छा तात्कालिक स्वार्थ की पूर्ति के लोभ के नीचे दब गई। इस दमन के प्रतिकार के लिए समस्त राजनैतिक दलों में न विचारधाराएँ कोई कार्यक्रम दे रही है न कार्यक्रम कोई विचारधारा दे रहे हैं।''[8] इसका कारण बताते हुए रघुवीर सहाय कहते हैं- ''आज राजनीति ने अतीत को समझने और भविष्य को बनाने की चेतना फैलाना कुल मिलाकर बंद कर दिया है। वह वर्तमान में आधी से अधिक डूबी हुई उसी के कीचड़ में किलौलें कर रहीं है।''[9]राजनीति का बदलता स्वरूप समाज विरोधी भले नजर आए, पर रघुवीर सहाय को राजनीति ही समाज परिवर्तन का आवश्यक उपाय लगता है। उसे देश के विविध भौगोलिक खंडों और ऐतिहासिक स्तरों में एकता की परंपराएँ पहचानकर उनसे आगे समकालीन जीवन से उदित नई परंपराएँ चलानी चाहिए।''[10] अस्तु, रघुवीर सहाय ने अपने लेखों एवं निबंधों में जहाँ भी मौका मिला तत्कालीन राजनीतिक विचारधाराओं को स्पष्ट कर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता दर्शायी है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिससे जुड़ी घटनाओं पर विचार-विमर्श हेतु रघुवीर सहाय ने लेखनी न चलाई हो। उनके निबंध एवं लेख संग्रहों से इसकी प्रतीति मिलती है। एक पत्रकार और साहित्यकार के नाते सामाजिक विसंगती का बखूबी प्रस्तुतीकरण इसमें मिलता है। अपने लेखों और निबंधों में रघुवीर सहाय ने समाज की हर छोटी-बड़ी गतिविधियों का पर्यवेक्षण करके समाज की सद्य परिस्थिति को न केवल सभी के सम्मुख रखा, बल्कि परिवर्तन या सुधार के कारगर उपाय भी बताए। अतएव रघुवीर सहाय के यह लेख तथा निबंध उनके एक सजग नागरिक, चिंतनशील साहित्यकार और जागरूक पत्रकार के निदर्शक कहे जा सकते हैं।

****

संदर्भ-

1.रघुवीर सहाय रचनावली, खंड 3- संपा. डॉ. सुरेश शर्मा, पृष्ठ 160
2.वही, पृष्ठ 120
3.वही, पृष्ठ 53
4.वही, पृष्ठ 120, 121
5.वही, पृष्ठ 27
6.रघुवीर सहाय रचनावली, खंड 3- संपा. डॉ. सुरेश शर्मा, पृष्ठ 64
7.रघुवीर सहाय रचनावली, खंड 4- संपा. डॉ. सुरेश शर्मा, पृष्ठ 118
8.वही, पृष्ठ 193
9.वही, पृष्ठ 320
10.वही, पृष्ठ 420
11.रघुवीर सहाय की पत्रकारिता दृष्टि- डॉ. राजकुमारी रानी, पृष्ठ 13
12.समकालीन रचना-दृश्य और रघुवीर सहाय का कृतित्व- डॉ. शीला दानी, पृष्ठ 133

गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य की प्रासंगिकता

डॉ.अजित चुनिलाल चव्हाण
वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य
महाविद्यालय,शहादा (महाराष्ट्र)

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में संत शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है- "जो सुख दोनों को ही समान भाव से देखता है, जिसे मान-अपमान, स्तुति एवं निंदा की चिंता नहीं रहती, जो धैर्य से काम लेता है, वही संत है।" जो अनासक्त है, सदैव सम और प्रसन्न रहनेवाला तथा अपरिग्रही है, वही संत कहलाया जा सकता है। अधिकतर विद्वान संत नामदेवजी के लेखन से संत काव्य का आरंभ मानते हैं। वह संत नामदेवजी ही हैं जिन्होंने संत काव्य परंपरा को एक सुव्यवस्थित रूप देकर भारतभर में भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखकर विचार करें तो संत साहित्य की बहुत अधिक आवश्यकता है। संत साहित्य प्रासंगिक है और रहेगा। संत साहित्य का मूल भाव मानव कल्याण है। बार-बार होते विदेशी आक्रमण के कारण भयभीत, उदासिन तथा अपने में ही सीमटे-सिकुड़े समाज को संतों ने ही ढाढस बँधाया, उसके लिए भक्ति-ज्ञान के द्वार खोल दिए। उन्होंने भगवतभक्ति रस से आपुरित साहित्य के माध्यम से कर्मकांड, पाखंड, बाह्याचार, भेदभाव, अंधश्रद्धा, अज्ञान, परनिंदा आदि से बचने का एक सहज-सुलभ भक्ति मार्ग बताया। त्रसित जनता का मार्गदर्शन किया। उसे एक निश्चित दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित किया।

मध्ययुग की रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामभक्ति के माध्यम से ज्ञान, योग और कर्म की त्रिवेणी का संगम कराया। उनके काव्य में लोकमंगल, जनकल्याण की भावना से ओतप्रोत लोकहित, समाजहित, संस्कृति गान, मानवमूल्य, समन्वय भावना आदि का कल्याणकारी विचार है। दया, क्षमा, शांति, परोपकार, त्याग, धैर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य, इंद्रियनिग्रह, आस्था, शुचिता, श्रद्धा, समर्पण, सतसंगति, लोकसंग्रह जैसे भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति है। इस रूप में उनका काव्य भारतीय संस्कृति का वाहक है। उन्होंने संकुचितता को दूर कर समाज में परस्पर सामंजस्य स्थापित करने का पुरजोर प्रयास किया। आदर्श और मर्यादा के उदाहरण समाज के सामने रख शील और नीति की बातें बताई। इसका आधार भगवत भक्ति को माना। कहा कि राम को प्राप्त करने का साधन सत्संग है। ईश्वर कृपा के लिए भक्ति आवश्यक है। उन्होंने अपने आराध्य राम की भक्ति के माध्यम से लोकधर्म को बचाने का कार्य किया। जनकल्याण को महत्त्व दिया। उदासिन-हताश-निराश जनता को नैतिक बल प्रदान कर उसमें उत्साह और विश्वास भर दिया। उनकी समाज-सापेक्ष भक्ति में सर्वजन हिताय की बात प्रमुख है। इसमें उनकी भावप्रवण, जीवनदायिनी भाषा का बड़ा योगदान रहा है। उनके संबंध में महात्मा गांधी कहते हैं- "भारत की सभ्यता की रक्षा करने में तुलसीदास जी ने बहुत अधिक भाग लिया है। तुलसीदास के चेतनमय 'रामचरितमानस' के अभाव में किसानों का जीवन जड़वत और शुष्क बन जाता। पता नहीं कैसे क्या हुआ, परंतु यह तो निर्विवाद है कि तुलसीदास की भाषा में जो प्राणपद शक्ति है वे दूसरों की भाषा में नहीं पायी जाती।"

ठीक इसी तरह की बात आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी करते हैं- "गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी प्रेरणा से आज जनता अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुग्ध होती है, महत्त्व पर श्रद्धा करती है, शील की ओर प्रवृत्त होती है। सन्मार्ग पर पैर रखती है, विपत्ति में धैर्य धारण करती है, बुराई पर ग्लानि करती है और मानव जीवन के महत्त्व का अनुभव करती है।" इस रूप में कहा जा सकता है कि उनका काव्य आज के संदर्भ में सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने राम के सर्वसमावेशक व्यक्तित्त्व में जनकल्याण, लोकरक्षक, लोकमंगल, इष्टदेव, समन्वयकारी भावना को देखा। उनके आराध्य राम में परम शीलवान, औदार्य, सत्यनिष्ठा, मर्यादा, कारूण्य, शक्ति, संपन्नता, विनयशीलता, शालिनता, सख्यत्व हैगोस्वामी जी ने अपने समय के समाज को, लोगों को समेटा-साधा। उनका ढाढस बँधाया। अपने इष्टदेव राम के माध्यम से राजा की योग्यता, उसके कर्तव्य, मर्यादापूर्ण आदर्श आचरण की बात कहीं। जिससे समाज का कल्याण संभव हो। उन्होंने अपनी समन्वयवादी भावना से समाज में एकता स्थापित कर जनविकास के नए मार्ग प्रशस्त किए। कहना होगा कि- "'रामचरितमानस' में एक ओर राम की भक्ति को सच्चे हृदय से प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर रामराज्य की स्थापना करके समाज में ऐसा परिवर्तन चाहते हैं जहाँ सभी सुखी रहे। उन्होंने जिस सामाजिक जीवन को अंकित किया है उसका मूल आधार है- सदाचार। प्रत्येक समाज की अच्छाई एवं बुराई उसके आचार पर निर्भर रहती है। व्यक्ति और परिवार के आचरण देश व समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते हैं। राम यद्यपि क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होकर शक्ति, शील और सुंदरता के प्रतीक थे।" इस प्रकार चक्रवर्ती राजा होने पर भी राम वानरों और रीछों को गले से लगाते हैं। भक्त के जूठे बेर खाते हैं। संपर्क में आने वाले सभी से गले मिलते हैं तो पक्षीराज जटायु का श्राद्ध भी करते हैं। सबका सम्मान कर अपनत्व का परिचय देते हैं। उनके राजा राम ने जनसाधारण को गले लगाना महान समताभाव - सहृदयता का द्योतक है। इस रूप में उन्होंने एक ऐसा समाज चाहा कि उसमें न कोई किसी को पीडा देने वाला हो और न ही कोई पीडित | कोई भी आर्थिक दृष्टि से कमजोर और दुखी न हो। हर मनुष्य सुख-शांति और आनंद से भरा रहे- इसलिए आज तुलसीदासजी के समतावादी विचारों की प्रासंगिकता और अधिक आवश्यक बन जाती है। उनका काव्य भाव सामाजिक स्थैर्य-शांति, सद्भाव, परस्पर स्नेह, विश्वास, सहयोग, बंधुता की भावना को बढावा देता है।

तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में राजा और प्रजा के निश्चित कर्तव्यों का निर्धारण किया है और उनके यथायोग्य न्यायसम्मत निर्वहन की बात भी कही है। साथ ही कहा कि दोनों को एक दूसरे का परस्पर पूरक और हितैषी होना चाहिए। समाज के सुख के लिए राजा को निःस्वार्थी और सेवा परायण रहना चाहिए। प्रजा का अपने अपनों की तरह पालन-पोषण करते हुए राजा के अपरिग्रही रहने की बात पर भी उन्होंने जोर दिया है। उन्होंने बताया कि मनुष्य शरीर के मुख और अन्य अंगों में जिस तरह समन्वय बना रहता है, ठीक उसी तरह राजा और प्रजा में भी समन्वय बना रहना चाहिए। समस्त मानव समाज के सुख की कामना करनेवाले तुलसीदासजी में समन्वयकारी महान लोकनायक के विराट दर्शन होते हैं।

इसी के चलते सुदृढ समाज निर्माण के लिए व्यक्ति और परिवार के संगठित होने की आवश्यकता पर भी उन्होंने बल दिया है। उन्होंने हमेशा ही लोकल्याण और परोपकार को एक बड़ा धर्म माना। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हुए उसके द्वारा स्वस्थ राम राज्य की कल्पना की। राजा के लिए धार्मिकता, शक्ति संपन्नता, तेजस्वीता, सदाचारिता, सहयोगिता, निःस्वार्थता, परोपकार को आवश्यक बताया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में चेताया है कि प्रजा को दुख पहुँचानेवाला राजा कभी भी सुखी नहीं होगा, वह सीधे नरक में जाएगा। राजा को चाहिए कि वह अपना समस्त जीवन प्रजा हित में ही अर्पित कर दें। प्रजा का सेवक बनकर उसका यथायोग्य भरण-पोषण करे। वर्तमान में गोस्वामी जी के इन्हीं विचारों में से अपनी प्रधान सेवक की भावना को देखा जा सकता है। जिस प्रकार राम राज्य में किसी को कोई कष्ट नहीं था, उसी प्रकार तुलसीदासजी को आज अभिप्रेत है। समाज को सुख और शांति प्रदान करने वाला ही उत्तम शासक होता है। राजा प्रजा के धन का रक्षक होने के नाते वह उसे मनमाने ढंग से खर्च नहीं कर सकता और अपने व्यक्तिगत सुख, आराम के लिए तो कतई नहीं। तुलसीदासजी ने अपने काव्य में काशी में फैली महामारी का उल्लेख किया है। इस भयंकर महामारी के दौरान समाज में अन्याय-अत्याचार, लूट-खसोट का, मनुष्य के अमानवीय बनते जाने का करुण वर्णन है। इसे आज के संदर्भ में हाल ही में फैली भयावह वैश्विक महामारी और व्यवस्था के बारे में जाना जा सकता हैसाहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज में रहकर ही अपने आपको विकसित करता है। समाज के अभाव में मनुष्य की कल्पना करना बहुत कठिन होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने काव्य में आदर्श परिवार का चित्रण कर सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसका अनुकरण और अनुसरण करके मनुष्य अपने गृहस्थ जीवन को अत्यंत सुचारू बना सकता है। इससे परिवार के साथ समाज का स्वास्थ्य भी सुष्ठु रहेगा। परस्पर आदर, स्नेह, सहयोग, संगठितता को और अधिक बढ़ावा मिलेगा। इसके लिए गोस्वामी जी ने मनुष्य के मर्यादापूर्ण आचरण को महत्व दिया है। षड्विकारों को मनुष्य का प्रबल शत्रु मान उन्होंने कहा कि अपने नैतिकतापूर्ण, संयमित आचरण से ही मनुष्य उन्हें पराजित कर सकता है। उन्होंने अपने काव्य में नैतिक मूल्यों की स्थापना करना उनके समाज सुधारक रूप का ही

परिचायक है। उन्होंने सामान्य लोगों के जीवन को उन्नत और सरस बनाने के लिए सहज-सरल-सुगम रामभक्ति का मार्ग बताया। इस भक्ति में मात्र विवेक संयुक्त श्रुति सम्मत सौहार्द्र है। उसमें जो अभीष्ट है वह-'सरल सुभाव न मन कुटिलाई, जथा लाभ संतोष सदाई' वाला है। गोस्वामीजी के इष्टदेव राम के अखिल ब्रह्मांडत्व को लेकर डॉ. विद्यारानी कहती हैं-"गोस्वामीजी के राम नर-नारायण की जीवित जागृत झाँकी दिखा रहे हैं। वे सभी स्थलों और कालों के लिए सामयिक बनकर सामने आए। गोस्वामीजी के देशकाल में तो उन्होंने आकर मंगलाशा का ऐसा प्रभात बिखेर दिया कि पराधीन हिंदू समाज एक नवीन चेतना से ओतप्रोत हो गया। उसे एक नया अद्भुत बल मिल गया। उसमें एक नई अपूर्व संगठन शक्ति आ गई। उसे एक ऐसा अजय रथ मिल गया जिस पर चढ़ कर वह भी राम के समान कह सकता था 'सखा धर्ममय अस रथ जाके, जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके'।" इस रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान स्थिति में गोस्वामीजी द्वारा चित्रित राम के मानवीशील महामानवीय कारूणिक रूप की नितांत आवश्यकता है। लोककल्याण के पथ में ही अपने जीवन की सफलता माननेवाले गोस्वामीजी ने भारतीय जनसाधारण को मानो 'राम जपु राम जपु राम जपु बाबरे' नामक महामृत्युंजयरूपी रामबाणी रामनामी मंत्र दिया। यह मंत्र मानव समाज के लिए परम आचरणीय, अनुकरणीय तथा कल्याणकारी है। उन्होंने कहा कि व्यक्ति का दायित्व अपने व्यक्तिगत स्वार्थ तक सीमित न रह कर वह समाजोन्मुख बने, समाज सापेक्ष बने। इसमें किसी एक व्यक्ति या परिवार का नहीं तो सभी का समुचित विकास निहित है। उन्होंने जिस रामराज्य की कल्पना की है वह आचरण -अनुकरण की वस्तु है। न्याय-नीति सम्मत व्यवस्था है।

गोस्वामीजी का समस्त काव्य जनकेंद्रित है। 'सियाराममय सब जग जानी' की सर्वसमावेशक आकाशीय विराट भावना हर समय में समसामयिक है। उनका लेखन लोकसुखाय-जनहिताय है। वे अत्यंत संवेदनशीलता के साथ सजग भाव से जनसाधारण के कष्टों का चित्रण करते हैं, और उन कष्टों के निवारण के उपाय भी बताते हैं। इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं- "तुलसीदासजी का स्वप्न श्रमिक जनता के लिए धरोहर है जिससे प्रेरित होकर वह समाजवाद के लिए मंजिल -दर-मंजिल बढ़ती जाएगी। तुलसी का मानव प्रेम उनकी कविता का स्रोत है। उनके लिए साहित्य न तो सामंतों के मनोरंजन का साधन है, न निरुद्देश्य प्रयोग है।" इस रूप में तुलसीदासजी का साहित्य सामंती विचारधाराओं से, पूँजीवादी साहित्य सिद्धांतों से भी लड़ने की प्रेरणा देता है। इसलिए उन्हें भारतीय संस्कृति एवं जनसामान्य का प्रतिनिधि कवि माना जाता है।

निष्कर्षत: गोस्वामी तुलसीदासजी मूल रूप से एक श्रेष्ठ मानवतावादी रचनाकार हैं। समाज, साहित्य, संस्कृति आदि सभी स्तरों पर समन्वयशीलता उनके सामाजिक आदर्श का केंद्रीय तत्व है। इस दृष्टि से उनका काव्य लोकमंगलकारी मूल्यदृष्टि का परिचय देता है। उनके क्षात्रधर्मी राम इसी भावना से भरे हैं। मानव प्रेम एवं मानव कल्याण गोस्वामी जी के संतत्ववाले स्वभाव का मूल आधार है। यह भावना उनके लोकनायक होने का प्रमाण कही जा सकती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार ही उनकी काव्यभावना मूलतः समन्वयवादी एवं लोक कल्याणकारी रही है। उनमें स्थित भक्त का रूप विराट समन्वयवादी, लोकचिंतक, लोकरक्षक, लोकमंगल के पावन विचारों से ओतप्रोत है, तो उनमें स्थित संत का रूप सामाजिक विसंगतियों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील है। उन्होंने राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप द्वारा सामाजिक आदर्श प्रस्तुत किया है। लोकधर्मी कवि गोस्वामी तुलसीदासजी के लोकधर्म में मानवमूल्य मर्यादा, सदाचरण, काव्य, अहिंसा, शील, नीति, परोपकार, त्याग, समर्पण, कर्तव्यबोध, बंधुत्व, मित्रत्व आदि महत्वपूर्ण तत्व हैं। इस रूप में वे लोकचेतना, लोकधर्म, लोकहृदय के सर्वमान्य कवि ठहरते हैं। कुल मिलाकर उनका काव्य आज अत्यंत प्रासंगिक है।

****

संदर्भ सूची :

1. विद्यासागर, डॉ. पोरवाल उर्मिला, सेतू, मई- 2020
2. उधृत - डॉ. विद्यारानी, तुलसी का भारतीय संस्कृति को योगदान, संकल्प, जुलाई-सितम्बर पृ. ५२.
3. प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, पृ. 195.
4. डॉ. विद्यारानी, तुलसी का भारतीय संस्कृति को योगदान, संकल्प, जुलाई-सितंबर-२०१५, पृ. 54.
5. डॉ. शर्मा रामविलास, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 83.

हमारा दुख अपना ही रहा

डॉ. वैशाली खेडकर

सहायक प्राध्यापक ,हिंदी विभाग

महात्मा फुले महाविद्यालय- पिंपरी, पुणे- 27 मो.9850337233

"चाहती हूँ मैं/नगाड़े की तरह बजे
मेरे शब्द और निकल पड़ें लोग
अपने अपने घरों से सडकों पर.." -निर्मला पुत्तुल

प्रसिद्ध कवयित्री निर्मला पुतुल की ये पंक्तियाँ आदिवासी समाज के भीतर नयी उर्जा और साहस भरती है. शब्द ताकतवर होते हैं, दिलो-दिमाग पर असर करते हैं.इसी शब्द सामर्थ्य से सभ्य समाज ने गुलामी की अवधारणा को विकसित किया. धर्म को अपने स्वार्थ के अनुरूप विकसित किया. इसी शब्द छल ने शोषित समाज को पीढ़ी-दर-पीढ़ी नरकनुमा यातनाओं में धकेल दिया लेकिन अब अक्षर ज्ञान ने इस शोषण से मुक्ति को संभव बनाया है. दरअसल यह शब्द लड़ाई का औजार है,इसी औजार से दलित और स्त्री ने अपनी लड़ाई लड़ी है. आदिवासी समाज भी इसी का प्रयोग कर अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है. आदिवासी भारत का मूल निवासी है. भारत की जिस सभ्यता और संस्कृति पर हमें गर्व है वह इनके भीतर ही जीवित है. सभी समाज तो अपने क्षुद्र स्वार्थ एवं अहं के नामपर अपनी संस्कृति को भूला चुके है. किंतु गरीबी और आर्थिक अभाव में भी आदिवासी समाज ने अपनी मानवीयता का दामन नहीं छोड़ा है. आदिवासी समाज पर अनगिनत अत्याचार हुए, इन्हें जंगलों में खदेड़ा गया, लगातार उनकी संस्कृति,सभ्यता एवं जीवनशैली को मिटाने की कोशिश की गयी. मगर आदिवासी समाज ने अपनी मूल पहचान को कभी मिटने नहीं दिया.भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नेहरू ने आदिवासी समाज के संदर्भ में कहा था, "भारत के आदिवासी हजारों वर्षों से इस देश के सबसे पुराने निवासी है. बाद में यहाँ आनेवाले समूहों ने इन आदिवासियों को दबाकर रखा है,उनकी जमीन छीन ली. उन्हें पर्वतों में खदेड़ा और उन्हें उत्पीड़कों ने अपने हित में बेगार करने को विवश किया. आज विभिन्न समूहों के लगभग 4 करोड़ आदिवासी (अब करीब 10 करोड़)जिन पर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, चूँकि वे राष्ट्रीय संस्कृति से अलग-थलग रह रहे हैं." मा. प्रधानमंत्री जी ने जो कहा था उसका असर अब तक नहीं दिख रहा है. अब तो जल,जंगल और जमीन केलिए उनका संघर्ष शुरू है.

वनोंऔर जंगलों पर आदिवासी समाज का पुश्तैनी अधिकार है. परंपरा से ही जल,जंगल और जमीन धरोहर के रूप में उन्हें प्राप्त है. वे प्रकृति के संरक्षक है. उसकी गोद में कई पीढ़ियों ने जन्म लिया है और मृत्युपरांत उसी में दफ़न होकर खाद बनकर प्रकृति को सिंचित किया है. वे प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितनी की ज़रूरत है. प्रकृति उनके लिए माँ होती है. इसी मातृ रक्षा में कई पीढ़ियों ने अपना बलिदान तक दिया है. इनकी जीवनशैली अन्य तथाकथित सभ्य समाज से अलग है. सभ्य समाज की तुलना में अनपढ़ आदिवासी समाज में खून-ख़राबा, बलात्कार की घटनाएँ नगण्य है.आदिवासी समाज प्रकृति से अपनी संस्कृति निर्माण करता है. जंगल एक पेड़ से नहीं समूह से बनता है. आदिवासी समाज में भी सामूहिकता या समूह मूल्य सर्वोच्च है. यह मूल्य आज भी बरक़रार है. प्रकृति की गोद में ही अनूठी आदिवासी संस्कृति का रोपण हुआ है. किंतु विस्थापन ने आदिवासी समाज के सम्मुख नयी चुनौती खड़ी की है. सरकार और पूंजीपतियों की सांठ-गांठ से प्राकृतिक दोहन का कार्य जोर-शोर से शुरू है. मन माना कानून बनाकर सरकार पूंजीपतियों के आगे जंगलों को परोस रही है. जिसमेंआदिवासी अपनी पुश्तैनी धरोहर से बेदखल हो रहे हैं. जैसे,"पहले भूमि अधिग्रहण व छोटा नागपुर टेनेंसी एक्ट जैसे कानून के तहत आदिवासियों की जमीन लेने पर रोक थी. इसके प्रावधानों से मुक्ति पाने के लिए सरकार ने मनमाने ढंग से संशोधन किए. सरकार की इस नीति के कारण 1991 और 1995 की अवधि के बीच केवल झारखण्ड में पचास हजार एकड़ भूमि से पंद्रह लाख लोग विस्थापित हुए है,जिसमें 41.27 प्रतिशत आदिवासी है."वर्तमान समय में यह संख्या दिनों-दिन बढ़ रही है. सरकार द्वारा आदिवासियों की ज़मीनहड़पने का षडयंत्र शुरू हुआ है विकास के नामपर इनकी जमीनें हड़पकर इन्हें जबर्दस्ती विस्थापित

. किया जा रहा है.वर्त्तमान समय अर्थ केंद्रित है. सभी देशों की सरकारें अन्य देशों की तुलना में अपने को आर्थिक सक्षम बनाना चाहती है. इसी सोच ने आर्थिक उदारीकरण को जन्म दिया.1990 के बाद शुरू हुयी आर्थिक उदारीकरण की नीति ने गरीब तबके को अधिक प्रभावित किया. ग्लोबलायजेशन शब्द सुनने को बड़ा मोहक एवं आकर्षक लगता है,किंतु यह उस दीमक की तरह है जो हमारी सभ्यता, संस्कृति की जड़ों को खोकला बना रहा है. आज विश्व एक ग्राम की तरह बना है,किंतु यह विकसनशील देशों के लिए अवसर नहीं, संकट है. निर्मला पुतुल कहती है, "दुनिया को एक छोटे से गाँव में बदलने की योजना पूंजी और साम्राज्यवाद ने आर्थिक मंदी की मज़बूरी में बनाई है. जाहिर है कि जब एक ही गाँव होगा तो भाषा - साहित्य भी एक ही होगा.''आदिवासी पढ़ा लिखा समाज इस षडयंत्र को समझता है.इसी मुक्त बाज़ार व्यवस्था ने आदिवासी समाज की संस्कृति एवं सभ्यता पर प्रहार किया है. अवैध खनन ने उनकी उपजाऊ ज़मीन को रेगिस्तान बनाया है. बड़ी-बड़ी मशीनरी 24 घंटे ज़मीन के भीतर से बोक्साइट निकलकर ट्रकों में लादकर ले जा रही है और उन्हीं गड्डों में बरसात का पानी भरकर कई बीमारियों को जन्म दे रहा है. उनकी जमीनें कंपनी ने हथिया ली है,अब किसान मजदूर बनकर मालिक की दया पर कंपनी में मजदूरी कर रहा है, यह वर्तमान समय की सच्चाई है. विकास के नामपर मल्टीनेशनल कंपनियों को खुले तौर पर प्रकृति को लूटने की छूट दी जा रही है. सरकारी एवं प्रशासकीय अधिकारी अपने क्षुद्र स्वार्थ केलिए कंपनी की मनमानी को नजर अंदाज कर देते हैं. फिर शुरू होती है शोषण की अनवरत प्रक्रिया. आदिवासी समाज अपनी आँखों के सामने प्रकृति का कत्लेआम देखने के लिए मजबूर हो जाता है. यह विकास की नीति आदिवासी समाज के समझ के परे है. इसीलिए वंदना टेटे 'तुम्हारे विकास का गणित' नामक कविता में कहती है-

"तुम्हारे विकास का गणित/मेरी समझ में नहीं आता
मेरी आँखे वर्तमान के अँधेरे में
कुछ ढूंढती रह जाती है/और मेरे पांव टिकने की/जगहे ढूंढते."

विकास की नीति ने आदिवासी समाज को छत्र-छाया विहीन किया है. असल में सरकार ने उन्हें मूलभूत सुविधाएँ देनी चाहिए किंतु सरकार ही उन्हें उनके आशियाने से बेदखल करने की निरंतर साजिश करती है. यही वजह है आज भी आदिवासी समाज अभाव में ही जीवन जी रहा है.प्रतिपल उनकी आँखों के सामने प्रकृति का विनाश किया जा रहा है. विकास एवं आधुनिक सभ्यता के नाम पर जंगलों को उखाड़ने की साजिश शुरू है. आदिवासी समाज को भी आधुनिक सुविधाओं के नाम पर जंगल से बेदख़ल किया जा रहा है. विस्थापन एक नयी चुनौती बन कर उनके सम्मुख खड़ी है. आदिवासी समाज ने कभी-भी अपने स्वार्थ के बदले प्रकृति से समझौता नहीं किया है.अतः इस समझौते एवं सौदे की राजनीति से आदिवासी समाज काफी दूर है. इस संदर्भ में ग्लैडसन डुंगडुंग जी ने 'हमें नहीं चाहिए तुम्हारा रंगीन चश्मा' नामक कविता में कहा है –

" हमें नहीं चाहिए/तुम्हारी विकास नीति
जो दसरों का हक़ छीनने का पाठ पढ़ाती है/हमें नहीं चाहिए
तुम्हारी आर्थिक तरक्की जो पूंजीपतियों का पेट भरती है
प्रकृति का सौदा करती है."

वर्त्तमान समय में आदिवासी समाज इस विकास नीति का पुरजोर विरोध कर रहा है. यह विकास नहीं, प्राकृतिक दोहन है. आदिवास समाज ने अपने स्वार्थ केलिए कभी-भी प्रकृति का उपयोग नहीं किया है, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी इस प्राकृतिक विरासत को संभालकर रखा है. उनकी संस्कृति, परंपरा, जीवन शैली सभी में प्रकृति व्याप्त है. प्रकृति के बिना उनका कोई वजूद ही नहीं है.लेकिन सरकार और पूंजीपतियों की सांठ-गांठ ने आदिवासी समाज को प्रकृति से ही बेदखल किया है. सभ्य समाज भी इसे आदिवासी समाज की लड़ाई मानकर अपनी आँखें मूंद रहा है. लेकिन आदिवासी समाज अपने हक़ और अधिकार की लड़ाई लड़ रहा है. यह पहली बार नहीं है कि वे अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं, स्वतंत्रता संग्राम में भी बढ़ चढ़कर हिस्सा लेकर अंग्रेजों के ख़िलाफ़ आज़ादी की लड़ाई उन्होंने लड़ी थी. किंतु आज़ादी के इतिहास में उनका योगदान गुमनाम ही रहा. आज़ादी केलिए कई आदिवासियों ने अपना बलिदान दिया, किंतु उनके नाम इतिहास में दर्ज नहीं हो पाये. लेकिन लोकगीत एवं मौखिक परंपरा में इस आदिवासी समाज ने अपने इतिहास को जीवित रखा.कई कवि एवं लेखकों ने इस इतिहास को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है. निर्मला पुतुल, मुन्ना साह, ज्योति लकडा, महादेव टोप्पो, शिशिर टुडू आदि कई रचनाकारों ने अपने इतिहास एवं संस्कृति को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है. 'मेरा इतिहास' इस कविता में शिशिर टुडू कहते हैं,-

" तुम लिखो या न लिखो/कुछ कहो या न कहो
ये हवाएँ, ये वादियाँ, ये मौसम/जिनका मैं सदा से अनुचर हूँ
दोहराते है मेरा इतिहास/हर मौसम"

इतिहास में आदिवासी समाज के ऐतिहासिक योगदान का उल्लेख नहीं है. अब इस समाज के पढ़े-लिखे लोग अपने इतिहास को दर्ज कर रहे हैं.इनका इतिहास प्रकृति के हर अंग पर लिखा गया है. पेड़,पत्ते, हवाएँ, वादियाँ इस इतिहास के साक्षी है. कोल विद्रोह, संथाल विद्रोह, अहोम विद्रोह, खासी विद्रोह, भील विद्रोह, मुंडा विद्रोह आदि कई विद्रोह आदिवासी समाज ने अंगेजों के ख़िलाफ़ किये है,साथ ही झारखंड के पहाड़ियाँ आदिवासियों ने रमना अल्हाड़ी के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम छेड़ा जो भारत में अंग्रेजों के ख़िलाफ़ हुए युद्धों में अंतिम सशस्त्र युद्ध था, जिसका कहीं भी जिक्र नहीं है.इस विद्रोह में केवल पुरुष ही नहीं बल्कि काफ़ी संख्या में महिलाएँ भी सम्मिलित थी. इन क्रांतिकारियों में सिनगी दई, कली दई, मांझियाँ मुंडा आदि कई महिलाएँ सम्मिलित थी.दरअसल सामंती सोच में बदलाव आवश्यक है. आदिवासी समाज यहाँ का मूल निवासी है. भारत की जिस संस्कृति और सभ्यता पर हमें गर्व है, उस परंपरा का निर्माण और विकास इस समाज ने ही किया है.किंतु इसी परंपरा और संस्कृति से उन्हें बेदख़ल किया जा रहा है. अब तो जल, जंगल और जमीन केलिए भी उनका संघर्ष ज़ारी है. वैश्वीकरण और बाजारवाद ने आदिवासी समाज की जीवन पद्धति को तहस-नहस किया है.यही वजह है आज भी उनकी समस्याओं का अंत नहीं हुआ है. सरकार की तरफ़ से ज़ारी सभी योजनाएँ महज़ कागजों की शोभा बढ़ा रही है. आदिवासी समाज के उत्थान केलिए कई समाज सेवी एवं शैक्षिक संस्थाएं भी योगदान दे रही है, किंतु यहाँ पर भी आदिवासी समाज नदारद है. इस संदर्भ में वाहरू सोनवने की 'स्टेज' कविता अधिक प्रासंगिक है, जैसे,

"हम वही बैठ गए/हमें ख़ूब शाबासी मिली
'और' वे स्टेज पर खड़े होकर/हमारा दुःख हमें ही बतियाते रहे
हमारा दुख अपना ही रहा/जो कभी उनका हुआ नहीं"

यह आदिवासी समाज की सबसे बड़ी विडंबना है. जिस समाज के सुधार केलिए योजनाएँ या कार्यक्रम बनाए जाते हैं, वहां से मूल आदिवासी को ही दरकिनार कियाजाता है. यहीं वजह है आज़ादी के 75 साल बाद भी आदिवासी समाज अपने मूल अधिकारों से वंचित है. दरअसल आदिवासी समाज ही भारत का मूल निवासी है. पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रकृति के सानिध्य में ही उसने अपना जीवनयापन किया है. किंतु वर्त्तमान समय में सरकार और पूंजीपतियों द्वारा उनकी इस पारंपरिक विरासत को छल-कपट से छीना जा रहा है.उन्हें जबर्दस्ती अपने ही जल, जंगल और जमीन से बेदख़ल किया जा रहा है.प्रकृति पर उनका पुश्तैनी अधिकार था किंतु अब जंगल प्रवेश पर पाबंदी लगा दी है. ऐसे में अपना और परिवार का गुजारा करना भी आदिवासी समाज केलिए मुश्किल हुआ है. वर्त्तमान में यह समाज आर्थिक अभाव, अशिक्षा, बेरोज़गारी, भुखमरी, बीमारी, भूमि अधिग्रहण आदि कई समस्याओं में घिर गया हैऔर दिनों-दिन इसमें इजाफ़ा ही हो रहा है. आज भी कई गाँव ऐसे है जहाँ पीने का पानी, बिजली, दरसंचार, इन्फ्रास्ट्रक्चर का अभाव है.सरकारी काग़जों पर तो आदिवासी समाज की समस्याएं न्यूनतम ही है. बल्कि सरकार भी आदिवासी समाज के विकास के नाम पर अपनी ही पीट थपथपाती है. असल में आदिवासी समाज की लड़ाई आदिवासी समाज ही लड़ रहा है. उसकी अपनी वेदना और पीड़ा का कोई संवाहक नहीं है.यही वजह है कि आदिवासी समाज का दुःख-दर्द आज भी किसी और का हो ही नहीं पाया है.

****

छायावाद और रोमांटिक काव्यधारा

प्रो.(डॉ.) विजय महादेव गाडे
शोध-निर्देशक एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
बाबासाहेब चितळे महाविद्यालय,भिलवडी
जि.सांगली (महाराष्ट्र) मो.09860271909

शोध सारांश:-भारतीय परिप्रेक्ष्य में छायावादी काव्यधारा बीसवीं सदी के महान काव्य आंदोलन रूप में सर्वपरिचित हैं। वस्तुतः छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में प्रसाद जी का स्थान 'प्रजापिता' का माना जाता है। छायावादी आंदोलन में कविता के रूप (Form)तथा वस्तु (Content)के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए है और अपने व्यापक रूप में उसने तात्कालीन युगजीवन का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व भी किया है। छायावाद न केवल 'स्थूल' के प्रति 'सूक्ष्म' का विद्रोह है अपितु यह एक नवचेतना और नवजागरण का उद्घोष भी है। दोनों काव्यधाराएँ क्रमशः हिंदी तथा अंग्रेजी भाषाओं के अक्षय गौरव के लिए पात्र हैं जिनकी कीर्ति आज भी अक्षय है।

बीज शब्द – रोमांसवाद, छायावाद, सौंदर्यान्मुखता, मानवता, रहस्यवाद, वेदना-निराशा के स्वर, करूणा, प्रतिक्रियात्मक विद्रोह, प्रकृति के प्रति अनुराग, 'अहं भारतीय'

छायावादी काव्य रचना का समय जब हम देखते हैं तो हमारे समझ में यह बात आती है कि इसका रचनाकाल दो विश्वयुद्धों के बीच का है।रोमांसवाद काव्य रचना का समय सन 1800से 1850 के बीच में आता है।1914 में रवीन्द्रनाथ को जब 'गीतांजलि' के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया, तब भारतीय साहित्य के प्रति विदेशों की रूचि आकृष्ठ हुई। हिंदुस्तान की आजादी की लडाई उन दिनों अपनी चरमसीमा पर थी किंतु 1926 के असफल आंदोलन का प्रभाव न केवल भारतीय जनमानस पर पडा बल्कि इससे हिंदी का कवि भी अछूता नहीं रहा और इसका बिंब हमें छायावादी काव्यधारा में जगह-जगह पर देखने को मिलता है। छायावादी कवियों पर अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रमुख रूप से प्रभाव पडा है। एबरक्रांबी ने रोमांसवाद की परिभाषा करते हुए लिखा है कि यह एक विशिष्ट मानसिक प्रवृत्ति है जो बाह्य संघर्षों से अपने संबंध विछिन्न करके अंतर्मुख जगत के आनंद में लीन रहने में विशेष सुख पाती है। उनके अनुसार - **"Romanticism is that attitude of mind in which it withdraws if self from commerce with the outer world, and turns it upon things which it finds within it self."**[1]रोमांटिक कवि मूलतः अहंवादी होता है। वह स्थूल जगत के परिवेश को प्रभावित करना चाहता है। एअरक्रांबी के अनुसार - **"And it is, the life of this world is a continual offence against love and is what he believes in.But in the vision of his inner experience of love. This must be the world which must finally triumph ! And so his imagination tells us not of an inner reality, into which one may withdraw form the imperfection which, nevertheless must still go on existing, but of an inner reality which will at least replace and conceal the imperfection of outer experience. The world he imagines is to march out of its quarters and annex and reorganize world he know."**[2]द्विवेदी युगीन काव्य में परंपराओं और रूढियों के प्रति आकर्षण था और इन्हीं की प्रतिक्रिया के रूप में स्वछंदतावाद का जन्म हुआ। अंग्रेजी कवि टेनीसन का कथन है -

"Old order change thyyielding place to new.
God fulfils himself in many ways.
Last one good order should corrupt the world!"[3]

द्विवेदी युग के पश्चात आनेवाले छायावादी प्रभाव के लक्षण श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में हमें दिखाई देते हैं। हिंदी कविता में स्वच्छंदतावादी विचारधारा का व्यापक रूप छायावाद है। समग्ररूपेण छायावादी कविता वैयक्तिक अनुभूति की ही कविता है।

सौंदर्यान्मुखता, मानवता, रहस्यवाद, वेदना-निराशा के स्वर, करूणा, प्रतिक्रियात्मक विद्रोह, प्रकृति के प्रति अनुराग, विशिष्ट अभिव्यक्ति के प्रति लगाव, रोमांसवाद की कुछ विशेषताएँ हैं जिन्हें छायावादी कविता में भी देखा जा सकता है। वर्डस्वर्थ, शैली, कीट्स, बायरन के अतिरिक्त वाल्ट व्हिटमैन, सिटवैल्य, वाल्टर डिलामेअर, उमर खय्याम आदि का भी प्रभाव छायावादी कवियों पर पडा है जिसे उन्होंने स्वीकार किया है। वस्तुतः छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में प्रसाद जी का स्थान 'प्रजापिता' का माना जाता है। प्रसाद जी ने 'इंदु' नामक पत्रिका में सर्वप्रथम कहा था - "साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता और उसके लिए कोई निबंध या विधि नहीं है क्योंकि साहित्य स्वतंत्र-प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है।"[4]प्रसाद जी की कविता में प्रेम पीडा का चित्रण अधिक हुआ है। यहीं व्यक्तिगत निराशा 'विश्व प्रेम' का रूप ग्रहण कर सारे विश्व की पीडा को स्वीकार कर उसे सुखमय बनाना चाहता है। 'आँसू' की कुछ पंक्तियाँ -

"सब का निचोड लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन-सा, आँसू इस विश्व सदन में।
मानस जीवन बेदी पर, परिणय हो विरह मिलन का
सुख दुःख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का, मन का।"[5]

बिल्कुल प्रसाद जी की तर्ज पर पंत लिखते हैं -

"यह साँझ उषा का आंगन, आलिंगन विरह-मिलन का
चिर हास-अश्रुमय आनन, रे इस मानव जीव का।"[6]

'When We Two Parted' कविता में बायरन ने अपनी विरह वेदना को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है -

"In secret we met- In Silence I grieve
That thy heart could forget Thy spirit deceive
If I should meet thee After long years
How should I greetthee ? With silence andtears !"[7]

प्रकृति प्रेम छायावादी काव्यधारा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। कवि प्रकृति को छोडकर किसी सुंदरी की आँखों में उलझना नहीं चाहता क्योंकि उसके लिए प्रकृति महत्वपूर्ण है इसलिए कवि सवाल करता है-

"छोड द्रुमों की मृदु छाया, छोड प्रकृति से भी माया
बाले ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !"[8]

लगभग इसी बात को रोमांसवादी कवि इन शब्दों में अभिव्यक्त करता हैं -

"I love not man the less, but nature more
From these our interviews, in which I steal
From all I may be, or have been before,
To mingle with the Universe and feel
What I can ne'er express, yet cannot all conceal."[9]

महाकवि निराला ने अपनी विरह अभिव्यक्ति को इन शब्दों के सहारे प्रकट किया है जो समय बीतने पर आज भी तरोताजा है -

"बाँधो न नाव इस ठाव बंधु !
पूछेगा सारा गाँव बंधु !
वह हँसी बहुत कुछ कहती थी फिर भी अपने में रहती थी
सबकी सुनती थी, सहती थी, देती थी सबको दाँव बंधु।"[10]

'The Education of Nature'कविता के माध्यम से वर्डस्वर्थ ने अपनी विरह भावना को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है -

"She died and left to me
This heath this clam and quite scene
The memory of what has been
and never more will be !"[11]

प्रसाद जी ने तो 'कामायनी' में श्रद्धा के रूप में नारी को चित्रित किया है।

किंतु कहीं-कहीं पर छायावादी काव्यधारा में नारी चित्रण में ऐंद्रियिकता आ गई है, जिसकी तुलना अंग्रेजी कवि कीट्स से की जा सकती है। पंत लिखते हैं -

"नील रेशमी तम का कोमल खोल-खोल कच भार
तार-तरल लहरा लहरांचल स्वप्न-विकच स्तन हार
शशि-कर-सी लघु-पद सरसी में करती तुम अभिसार
दुग्ध-फेन शारद ज्योत्स्ना में ज्योत्स्ना-सी सुकुमार।"[12]

तो कीट्स नारी वर्णन इन शब्दों में करते हैं -

"No-yet still steadfast, still unchangeable
pillow's upon my fair love's ripening breast
To feel for ever its soft fall and swell
Awake for ever in a sweet unrest !"[13]

किसी पशु-पक्षी को संबोधित करते हुए गीत लिखना यह पुरानी भारतीय परंपरा है जिसे अंग्रेजी कवियों ने भी निभाया है। वर्डस्वर्थ ने कोयल को संबोधित करते हुए लिखा हैं -

"O blessed Bird !the earth we pace
Again appears to be,
An unsubstantial fairy place
That is fit home for thee!"[14]

तो सुमित्रानंदन पंत नवयुग का स्वागत भी कोयल के माध्यम से करते हुए लिखते हैं -

"मंजरित विश्व में यौवन के जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर मदिरा से भर दे फिर नव-युग की प्याली।"[15]

छायावादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्ति है 'विद्रोह' की भावना। फ्रांसीसी राज्यक्रांति के बाद जनवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति साहित्य का मूल विषय बन गई थी. स्टफर्डबूक के अनुसार - "We meet the spirit of revolution before the Revolution.... It is not learned Polk Thomson whom cares for, but the shepherd in the snow, the ploughmen in the field, the poor girl crouching in the door way on a bitter night, and the country maiden bathing in the summer stream." [16]वर्डस्वर्थ, शेली, बायरन आदि कवियों पर इस क्रांति का प्रभाव पडे बिना न रहा। ठीक उसी प्रकार की स्थिति छायावादी युगीन भारतीय समाज की थी। महाकवि 'निराला' जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से विद्रोह का शंखनाद किया। शैली की 'Ode To The West Wind' निराला के 'बादल राग' से मिलती जुलती रचना है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ लोगों के मन में विश्वास जागृत करती है -

"The trumpet of a prophecy ! O wind,
If winter comes can Spring be for behind ?"[17]

तो निराला जी 'बादल राग' कविता में क्रांति का, विप्लव का बिगुल बादल के माध्यम से इन शब्दों में बजाते हैं -

"ऐ अटूट-टूट पर छूट पडने वाले उन्माद
छिन्न भिन्न कर पत्र-पुष्प पादप वन-उपवन
वज्रघोष से ए प्रचंड, आतंक जमाने वाले.....
बरसे विप्लव के जलधर।"[18]

भारतीय परिप्रेक्ष्य में छायावादी काव्यधारा बीसवीं सदी के महान काव्य आंदोलन रूप में सर्वपरिचित हैं। छायावादी आंदोलन में कविता के रूप (Form)तथा वस्तु (Content)के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए है और अपने व्यापक रूप में उसने तात्कालीन युगजीवन का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व भी किया है। छायावाद न केवल 'स्थूल' के प्रति 'सूक्ष्म' का विद्रोह है अपितु यह एक नवचेतना और नवजागरण का उद्घोष भी है। कवि चाहे छायावादी हो या रोमांटिक हो माने सभी एक ही आवाज में कह रहे है 'Romanticism is my destination' अर्थात वास्तव की यथार्थ की जानकारी जब तक मन को मौन अर्थात खामोश नहीं बनाती तब तक Romanticismका निर्माण नहीं हो सकता यही हमें दिखाई देता है। इसलिए हम डॉ. स्टेंडल के शब्दों में कह सकते हैं - "Romanticism is the art of presenting to the nation the literary works, which is actual state of their habit and beliefs are capable of giving them the greatest possible pleasure. Romanticism stands for progress, liberty, originality and the spirit of the futures."[19]इस विस्तृत परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि ऊपर दिए गए सभी संकेत छायावादी और रोमांटिक काव्यधारा में स्पष्टरूपेण परिलक्षित होते हैं। यह सारे लक्षण दोनों काव्यधारा में समान रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

निष्कर्ष -

मूलतः भारत में जो नवजागरण हुआ, उसके बाद भारतीय कवि दुनिया की ओर आँखे खोलकर देखने लगे और पश्चिमी विचारों का प्रभाव भी उन पर रहा।भारत तथा ब्रिटेन की दोनों काव्यधाराएँ आश्चर्यकारक रूप से समानताएँ रखती हैं। जिनका असर इन दोनों अर्थात छायावादी तथा रोमांटिक काव्यधाराओं में हमें दिखाई देता है। दोनों काव्यधाराओं में समान रूप से बहुत सारी समानताएँ है जिनमें प्रकृति वर्णन, स्त्री सौंदर्य का चित्रण, अनुराग एवं विरह पक्ष का चित्रण के साथ-साथ पुरानी बातों, रूढियों तथा परंपराओं का त्याग और नवयुग, नवविचारों का स्वागत यह सारी बातें तथ्य के रूप में उभरती हैं।वास्तव की, यथार्थ की जानकारी जब तक मन को मौन अर्थात खामोश नहीं बनाती तब तक Romanticimका निर्माण नहीं हो सकता यही हमें दिखाई देता है।दोनों काव्यधाराएँ क्रमशः हिंदी तथा अंग्रेजी भाषाओं के अक्षय गौरव के लिए पात्र हैं जिनकी कीर्ति आज भी अक्षय है।

******

संदर्भ संकेत:-

1. इंद्र देवेंद्र शर्मा - जयशंकर प्रसाद और आसूँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1956 पृ. 43
2. वहीं पृ. 43
3. Oxford University Press - Fifteen Poets, Oxford New York, 1999 पृ. 389
4. इंद्र देवेंद्र शर्मा - जयशंकर प्रसाद और आसूँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1956 पृ. 44
5. प्रसाद जयशंकर - आसूँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 2001, पृ. 79
6. पंत सुमित्रानंदन– तारापथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 1998, पृ. 29
7. Oxford University Press - Fifteen Poets, Oxford University Press, New York 1999 पृ. 297
8. पंत सुमित्रानंदन - वीणा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 2000 पृ. 20
9. Oxford University Press - Fifteen Poets, Oxford University Press, New York 1999 पृ. 304
10. ' निराला ' सूर्यकांत त्रिपाठी – रागविराग , लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 2000 पृ. 162
11. Oxford University Press - Fifteen Poems, Oxford UniversityPress, New York 1999 पृ. 322
12. पंत सुमित्रानंदन– तारापथ ,लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 1998, पृ.पृ. 112
13. Oxford University Press - Fifteen Poems, Oxford University Press, New York 1999 पृ. 383
14. वहीं पृ. 234
15. डॉ. शर्मा कृष्णदेव - सुमित्रानंदन पंत और उनका तारापथ, रीगल बुक डेपो दिल्ली पृ. 31
16. शर्मा देवेंद्र - जयशंकर प्रसाद और आसूँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1964, पृ. 51
17. Oxford University Press - Fifteen Poems, Oxford University Press, New York 1999 पृ. 341
18. ' निराला ' सूर्यकांत त्रिपाठी - रागविराग , लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 2000 पृ. 57
19. शर्मा देवेंद्र - जयशंकर प्रसाद और आसूँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1964, पृ. 53

संस्कृति के विविध आयाम एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी का चिंतन जगत

संजीव कुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन पी.जी. कॉलेज
बलिया, पिन कोड : 277001 मो.नं. 6394372133

प्रस्तावना : इतिहास के अविच्छिन्न प्रवाह में कोई स्थिर बिन्दु नहीं होता, लेकिन एक सफल रचनाकार उसी प्रवाह में अपनी वैयक्तिक प्रज्ञा से कुछ जोड़ता एवं उसे एक नए आयाम में मूर्तिमान करने का प्रयास करता है। स्थिरता एवं प्रवाह के इस तनाव को जो रचनाकार जितनी कुशलता और सूक्ष्मता से अंकित कर पाता है, वह उतना ही बड़ा रचनाकार होता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ऐसे ही रचनाकार थे। लोकोन्मुख साहित्य के पक्षधर आचार्य द्विवेदी ने अत्यंत मार्मिकता के साथ भारतीय इतिहास और संस्कृति के ऐसे पहुलओं को उजागर किया जो अबतक की दृष्टि से ओझल थे और जिनपर किसी साहित्यकार की दृष्टि नहीं गई थी। द्विवेदी जी ने अपनी रचनात्मकता के लिए ऐसा क्षेत्र चुना था, जहाँ नया करने का अवकाश था किन्तु इसके लिए अप्रतिम मेघा और सघन संवेदनशीलता की आवश्यकता थी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी में ये दोनों गुण विद्यमान थे। जहाँ वे प्रखर प्रज्ञा के स्वामी थे, वहीं संस्कृति के जीवंत तत्वों के प्रति अत्यंत संवेदशीलता भी। इन अर्थों में पुरातन और अधुनातन के विलक्षण संयोग थे।

बीज शब्द :- संस्कृति, सभ्यता, संस्कार, सार्वभौम, शुद्धतावाद

मुख्य अंश :-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का संपूर्ण रचनाकर्म भारतीय संस्कृत का ललित उल्लास है उनके सृजन में हतदर्प भारत की निराशा नहीं, बल्कि इस संस्कृति की अविकल सनातन धारा का उदात्त एवं उज्ज्वल पक्ष अपनी संपूर्णता में मुखर होकर पाठक के समक्ष उपस्थित होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी भारतीय संस्कृति के आधुनिक उद्गाता हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर भारतीय संस्कृति एवं उसके अन्य पक्षों को जानना आवश्यक हो जाता है।संस्कृति मूलतः संस्कृत भाषा का शब्द है। 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु के उपरांत 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर 'सुट' के आगम से संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है। (1) इसका अर्थ है। निरंतर संस्कार और परिष्कार। यही कारण है कि भूषणभूति सम्यक कृति ही संस्कृति कही जाती है। (2) संस्कार एवं परिष्कार की क्रिया में मूलतः दो बातें प्रमुखतया परिलक्षित होती हैं. दोषापनयन एवं गुणाधान अर्थात् दोषों को हटा देना और नवीन उत्कर्षप्रद विशेषताओं का सम्यक् सन्निवेश करना। संस्कृतियों के विकास में ये दोनों क्रियाएं समान रूप से होती हैं। परिष्कार के इस क्रम में वे भीतरी रूढ़ियों को बहिष्कृत करते हुए तथा अन्य समकालीन संस्कृतियों से गुणों को ग्रहण करती हुई स्वयं को समृद्ध करती चलती हैं। गोविंद चंद्र पांडे संस्कृति को मूलतः एक मूल्य-व्यवस्था के रूप में देखते हैं। टाइलर की परिभाषा को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि संस्कृति अथवा सभ्यता वह इकाई है जिनमें ज्ञान, विश्वास कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित सभी योग्यताएं सम्मिलित हैं। (3)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सभ्यता के आंतरिक गुणों एवं प्रभावों को संस्कृति के रूप में व्याख्यायित करते हैं। वे लिखते हैं- "सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का। सभ्यता की दृष्टि वर्तमान की सुविधाअसुविधाओं पर रहती है, संस्कृति की भविष्य या अतीत के आदर्श पर; सभ्यता नजदीक की ओर दृष्टि रखती है संस्कृति दूर की ओर... सभ्यता बाह्य होने के कारण चंचल है संस्कृति आंतरिक होने के कारण स्थायी।" (4) जायसी के शब्दों में कहा जाए तो 'फूल मरइ पर मरइ न बासू'। इस कथन से सभ्यता और संस्कृति, इन दोनों पदों में एक की भंगुरता और दूसरे की चिरजीविता स्पष्ट हो जाती है। इसलिए दिनकर ने कहा है कि सभ्यता की अपेक्षा संस्कृति महीन होती है यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन, फूलों में गंध। यह सभ्यता की अपेक्षा टिकाऊ भी अधिक है क्योंकि सभ्यता की सामग्रियां टूट-फूट कर विनष्ट हो सकती हैं लेकिन संस्कृति का विनाश इतनी आसानी से नहीं किया जा सकता।प्रसिद्ध भारतीय पुरावेत्ता वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार संस्कृति मनुष्य के भूत वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति। (5)द्विवेदी जी अपने साहित्य में संस्कृति बोध के अनेक महत्वपूर्ण सूत्र उद्घाटित करते है, जिनसे उनके चिंतन का प्रस्थान बिंदु निर्मित होता है। द्विवेदी जी से पूर्व भारतीय संस्कृति को देखने-समझने की जो कोशिशें हुई, उनमें पूर्वाग्रह का प्राबल्य अधिक था। पूर्वनियोजित परिणामों के आधार पर विकृत व्याख्याओं की श्रृंखला चल पड़ी, जिनका तार्किक प्रतिरोध आवश्यक था, लेकिन उसके साथ ही संस्कृति की शुद्धतावादी अवधारणाओं का भी विकास हुआ, जो अहं को पोषित करने के साथ-साथ वर्चस्व की हिंसानीति का भी बढ़ावा देते थे। द्विवेदी जी इन दोनों अतिवादी ध्रुवों को छोड़कर संस्कृति की सामाजिक अन्विति की विधायक अवधारणा का विकल्प प्रस्तुत करते है, जिसमें न तो मिथ्या अहंकार के लिए जगह है, न ही तिरस्कार के अनोदार्य की। आचार्य द्विवेदी न तो आधुनिकता से आक्रांत है न गतानुगतिकता से कुंठित बल्कि वे परम्परा की उपादेयता पर विचार करने के साथ-साथ आधुनिकता की आवश्यकता भी व्यक्त करते हैं, उनकी दृष्टि में परंपरा और आधुनिकता एक-दूसरे के विरोधी प्रत्यय नहीं बल्कि पूरक और सहयोगी वस्तुएं है या कि गतिशीलता के दो आयाम है और दोनों ही आवश्यक हैं। वे भारतीय संस्कृति की चर्चा करते मानव संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करते हैं जहाँ राष्ट्रीयता या जातियता के बंधन नहीं है। एक ओर जहाँ उनके साहित्य में फलित ज्योतिष या धर्मशास्त्र सम्बन्धी चिंतन मिलता है तो दूसरी ओर रूढ़ियों और पाखण्ड का पुरजोर विरोध। यह द्विवेदी जी के विराट कोंतिदर्शी वैचारिकी का ही प्रतिफलन है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति को वे भारतीय श्रेष्ठ साधनाओं और उसके अविरोधी सत्यों के रूप में परिभाषित करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेद्री अपने साहित्य संस्कृति के उदात्त पक्ष सत्य, अहिंसा, प्रेम मैत्री, करूणा दया समर्पन त्याग और बलिदान को उसकी विशिष्ट मान्यताओं के रूप में रेखांकित करते हैं। मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य मानने वाले द्विवेदी जी के संस्कृति विषयक चिंतन में उनकी मानवतावादी दृष्टि का प्रसार दिखता है। आचार्य द्विवेदी के साहित्य में भारतीय संस्कृति के सामाजिक रूप की अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक अर्थात् मिली-जुली या समान्वित यथा-आर्य हुए, गन्धर्व शक, युनान, पात्सी, मंगोल आदि के संघर्ष और दीर्घकालीन साहर्यप का सुदंर, सार्थक और सामाजिक परिणाम है।

आचार्य द्विवेदी संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए इसे एक अस्पष्ट प्रत्यय के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं कि इसकी कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन सकी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और संस्कारों के अनुसार इसका अर्थ लेता है। द्विवेदी जी संस्कृति को निर्विशेष मनुष्य के सार्वभौम परिष्कार की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं इसलिए वे इसे किसी देशविशेष या जाति-विशेष से आबद्ध करके नहीं देखना चाहते। अतः वे संसार के सभी मनुष्यों के लिए एक सामान्य मानव-संस्कृति का विचार प्रस्तुत करते हैं। उनके द्वारा दी गई संस्कृति में मनुष्य द्वारा की जाने वाली धार्मिक साधनाएँ, कलात्मक प्रयत्न, सेवा, भक्ति और वे योगमूलक अनुभूतियाँ सन्निहित हैं जिनके द्वारा वह महान् सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है। इसलिए द्विवेदी जी कहते हैं कि 'मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएं ही संस्कृति हैं।"(6)

आचार्य द्विवेदी संस्कृति के साथ 'भारतीय' पद का प्रयोग करते हुए अत्यंत सजग प्रतीत होते हैं। वे सवाल उठाते हैं कि क्या भारतीय से मतलब भारतवर्ष के समस्त अच्छे-बुरे प्रयत्न और संस्कार हैं? स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे सभी भारतीय संस्कार उत्तम माननेका पक्षपात नहीं करते। वे कहते हैं, "इसलिए मैं जब भारतीय विशेषण जोड़कर संस्कृति शब्द का प्रयोग करता हूँ तो मैं भारतवर्ष द्वारा अधिगत और साक्षात्कृत अविरोधी धर्म की ही बात करता हूँ। लोगों ने भी कुछ प्रयत्न किए हैं"(7) और वे समेकित प्रयत्न ही भारतीय संस्कृति का दृढ़ आधार हैं। इस प्रकार द्विवेदी जी द्वारा की गई भारतीय संस्कृति की परिभाषा में तीन बातें मुख्यतः स्पष्ट होती हैं- एक, वह भारतीयों

द्वारा सत्य की प्राप्ति के लिए की गई समस्त साधनाओं की चरम परिणति है। दूसरा, वह अविरोध स्थापित करने वाली है। तथा वह इस संस्कृति का अंतिम गुण कहते हैं कि "वैदिक युग से लेकर ईसा की 19वीं शताब्दी तक निरंतर समन्वय की चेष्टा ही भारतीय संस्कृति का इतिहास है।"(8)

प्रायः यह समझा जाता रहा है कि 'भारत हिंदुओं का देश है अतः उन्हीं की संस्कृति भारतीय संस्कृति है के मूल वेदादि शास्त्र हैं"(9) लेकिन द्विवेदी जी इस शुद्धतावादी मत के पोषक नहीं है। जिस संस्कृति में इन्द्र, वरुण आदि देवी-देवताओं का प्राधान्य था, यज्ञ-याग का बाहुल्य था, उसमें दूसरे समय शिव, विष्णु आदि देवताओं और पूजा-पाठ, तीर्थ-व्रत आदि का प्राधान्य हो गया।" यह उद्धरण इस बात का प्रमाण है कि परंपरा एवं संस्कृति की दुहाई देने के नाम पर उनमें कूपमंडूकता रत्ती भर भी नहीं है। बल्कि वे तो संस्कृति की उस अंतधारा के वाहक हैं, जो उसमें कोई नहीं जमने देती है। इसलिए उन्होंने 'अशोक के फूल' निबंध में यह उद्घोष किया है कि सब कुछ अविशुद्ध है, शुद्ध है तो केवल मनुष्य की जिजीविषा। इसी कारण डॉ. नामवर सिंह अशोक के फूल निबंध को आर्य संस्कृति की शुद्धता पर चोट करने के उद्देश्य से लिखा गया मानते हैं। (10)

भारतीय संस्कृति में आचार-विचार की परस्पर विरोधी धाराएँ ही एक-दूसरे की पूरक बलकर इसे समृद्ध करती आई हैं। देहात्मवाद-अद्वैतवाद, दुःखवाद-आनंदवाद, ये सब एक-दूसरे में इस तरह घुल-मिल गए हैं कि इनको भारतीय संस्कृति से पृथक करके देखा नहीं जा सकता। कई बार यह उलझाने वाला होता है कि एक ओर जहाँ इस संस्कृति में अद्वैत का उद्घोष सुनाई देता है तो दूसरी और जाति-व्यवस्था की जटिलताएं भी दिखाई देती हैं। भक्ति की धारा ने जहाँ सबको मानवमात्र की प्रभुता में प्रतिष्ठित किया तो दूसरी और अस्पृश्यता और कर्मकांड के बंधन भी हैं।

द्विवेदीजी ने इस संस्कृति में जहाँ लोकायतों की एक शाखा का ध्येय-वाक्य बताया है-

'पिब खाद च वामलोचने यदतीतं वरमात्रि तन्न ते।
न हि भीरुगतं निवर्तन्ते समुदयमात्रमिदं कलेवरम्।।'

खाओ, पियो और मौज करो। जो बीत गया सो कभी नहीं लौट सकता।... यह शरीर सिर्फ जड़ तत्वों का संघातमात्र है, इसके आगे कुछ नहीं है।

एक ओर जहाँ यह भोगवादी जीवन-दृष्टि है तो दूसरी ओर-

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।" (11)

त्यागपूर्वक कर्तव्यभाव से संयमित उपभोग की दृष्टि का परिचय भी भारतीय संस्कृति में प्राप्त होता है, हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति समन्वय की विराट चेष्टा का दूसरा नाम है।द्विवेदीजी संस्कृति को उसकी जीवंत संश्लिष्टता में ग्रहण करते थे। वे उसे संग्रहालय में रखी हुई मृत वस्तुओं के समान प्रदर्शन की चीज़ नहीं मानते थे बल्कि व्यक्तिमात्र के नित्यप्रति-जीवन में घटित होने वाले समस्त क्रियाकलापों का आधार मानते थे। संस्कृति चिंतन के इन मान-बिंदुओं के आधार पर ही वे उदात्त वैचारिकी की आधारशिला रख सके थे। क्यों यह कम महत्वपूर्ण है कि वे पौधों-फूलों के माध्यम से पूरी सांस्कृतिक यात्रा सम्पन्न कर डालते है। संस्कृत की पुरानी शब्दावली में कहा जाय तो द्विवेदीजी प्रसन्नगम्भीर शैली के निबन्धकार हैं जिन्होने अपनी सहज-सरल भाषा में संस्कृति के गूढ़ एवं मार्मिक तथ्यों को उद्घाटित किया जो आज भी संस्कृति-चिंतन की भावी यात्रा में आलोकबिंदु बनकर मार्गदर्शन कर रहे हैं।

******

सन्दर्भ :-

1. मानक हिंदी कोश, रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं. 1966, पृ.243
2. हिन्दू संस्कृति अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 24
3. भारतीय परम्परा के मूल स्वर, सं. कृष्णदत्त पालीवाल, सस्ता साहित्य मण्डल- पृ. 27
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-9, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृ.195
5. वासुदेव शरण अग्रवाल, कला एवं संस्कृति, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1985, पृ. 11
6. हजारीप्रसाद द्विवेदी, भारतीय संस्कृति की देन, भारत संधान, अंक 32, पृ. 11
7. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-9, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृ.201
8. वहीं, 217
9. हिन्दू संस्कृति अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ.36
10. नामवर सिंह, संस्कृति और सौंदर्य, hindisamay.com
11. ईशादि नौ उपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 2

रंगभाषा: एक सतत सृजनशील प्रक्रिया

डॉ.कुसुमलता मलिक
हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय-दिल्ली

शब्दों के आलोक में समय के रंग बिखेरने वाले नाट्य कर्मियों की रंगभाषा अन्य किसी भी साहित्यिक विधा की भाषा के समान सीधी, सपाट, प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक, दृश्यात्मक, भावात्मक, विवरणात्मक मात्र नहीं होती वरन् नाट्य भाषा के एक या दो नहीं, अपने ही अनेक स्तर होते हैं। जिन्हें समस्त रंगप्रक्रिया को आत्मसात करके ही समझा जा सकता है ठीक उसी प्रकार यह भी सत्य है कि रंगभाषा बहुआयामीय होती है। उसके स्तरों तथा आयामों को एक-एक करके पृथक्त्व में कुछ हद तक जाना तो जा सकता है किंतु पूर्णतया समझा नहीं जा सकता दरअसल रंगभाषा को सामूहिकता में ही समझा जा सकता है। चूँकि समूह सम्मिलित प्रदर्शित आयामों को पृथक-पृथक रूप में बिलगाकर समझने की चेष्टा करेंगे तो प्याज के छिलकों के समान परत-दर-परत सब उधेड़ कर सारतत्व के रूप में शेष कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाएंगे। साहित्य की अन्य विधाओं में यह सुविधा रहती है कि भाषा के अंगों-उपागों, भेदों-प्रभेदों, रूपों-प्रकारों को अलग-अलग व्याख्यायित, विश्लेषित किया जा सकता है किंतु यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि नाटक एक समूहगत स्वतंत्र, जनतंत्रात्मक विधा है, जिसका अस्तित्व उसके समवेत सामाजिक स्वरूप में ही निहित रहता। अब प्रश्न यह उठता है कि समवेत सामाजिक सत्ता की भाषा के अवयवों को किस प्रकार विवेचित किया जाए जिससे रंगभाषा को आद्यन्त समझा जा सके। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र की पृष्ठभूमि है। आचार्य भरत नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में आत्रेय आदि ऋषियों के द्वारा पूछे गये पाँच प्रश्नों के उत्तर स्वरूप नाट्यशास्त्र रचते हैं। आचार्य भरत का सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र पढ़ते समय कई स्थलों पर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आचार्य नाटक की ही नहीं किसी अन्य कलात्मक विधाओं की भी विवेचना कर रहे हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि आचार्य हथेली उंगली, पंजा, घुटना, जंघा, बाहू, मस्तक, ग्रीवा, स्कंध, शीर्ष आदि का भिन्न प्रकारेण विश्लेशण करने के बावजूद, एक ही देहयष्टि का विवरण दे रहे हैं। शरीर एक है, एक जीवित सत्ता अर्थात् चेतना से शरीर है जिसके विभिन्न अंग-उपांग होते हुए भी, अपनी पृथक पहचान रखने के बावजूद, उनका संचरण, प्रकाशन, अभिभावन, उद्भावन, शांतभावन एक ही चेतना से निर्धारित होता है। ठीक यही स्थिति नाट्य भाषा की भी है। प्रथमतः उपलब्ध कोई भी नाटक अपनी एक विशिष्ट भाषा में अभिव्यक्त होता है यह भाषा अपनी प्रकृति और स्वरूप दोनों में साहित्य की अन्य विधाओं की भाषा से भिन्न होती है। किंतु ध्यातव्य यह है कि यह प्राथमिक पाठ एक उर्वर बीज के समान होता है। इस बीज को अलग-अलग रूचि, स्वभाव, संस्कार, प्रवृत्ति वाले रंगकर्मी अलग-अलग प्रकार से पनपा सकते हैं। नाटक के प्राथमिक पाठ में पनपने की अद्भुत क्षमता निहित रहती है बशर्ते उसकी उर्वरता, अभिवर्द्धन क्षमता का बोध सही रूप में प्राप्त किया जाए। इस सही रूप का निर्धारक तत्व भी समवेत सामाजिकता की समझ में ही निहित रहता है।तो क्या यह समझा जाए कि रंगभाषा को व्याख्यायित करने के लिए अथवा समझने के लिए तात्कालिक समवेत सामाजिक चेतना को समझना अनिवार्य होता है? प्रथमतः रचनात्मक स्तर पर किसी भी नाटक के प्राथमिक पाठ की भाषिक संरचना, जितनी सीधी और सरल होने का आभास देती है, वास्तव में वह उतनी ही अधिक संश्लिष्ट, अनेकार्थी गंथ अपनी बुनावट में सन्निहित रखती है। आचार्य भरत ने इस बात को समझाते हुए बहुत ही विस्तारपूर्वक नाटक की समवेत सामाजिक परिकल्पना को विवेचित किया है- "इस पंचम वेद में त्रैलोक्य के भावों का अनुकीर्तन है। इस नाट्य वेद अंदर कहीं धर्म है, कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ, कहीं शांति अथवा श्रम, कहीं हँसी, कहीं युद्ध, कहीं काम और कहीं वध का अनुकरण है। इसमें धर्म का पालन करने वालों के लिए कर्तव्य की शिक्षा है, काम की चाहना करने वाले के लिए काम है। दुर्विनीतों को संयमित करने और विनीत जनों के संयम का उल्लेख भी इसमें है। यह कायरों में साहस उत्पन्न करने वाला, वीरों में उत्साह भरने वाला, अजातियों को विशेष बोध कराने वाला तथा जातियों को विद्वत्ता प्रदान करने वाला है। यह ऐश्वर्यशालियों के

लिए विलास है, दुखियों को धीरज बंधाने वाला है, अर्थोपार्जन के इच्छुकों के लिए अर्थप्रद और उद्विग्न चित्तवालों के लिए धैर्य प्रदान करने वाला है। यह नाट्य उत्तम, मध्यम और नीच सभी प्रकार के लोगों के कार्यों से सम्बद्ध है और सबको हितकारी उपदेश देने वाला तथा धैर्य, क्रीड़ा, सुख देने वाला भी है। यह नाट्य दुःख से आर्त, परिश्रम से क्लान्त शोक से संतप्त जनों को समय पर विश्राम देने वाला होगा। न कोई ऐसा ज्ञान है न योग है और न ही कोई कार्य ही है जो इस नाट्य में प्रदर्शित न किया जा सकता हो।"नाट्यशास्त्र (1.117) रंगभाषा के रूप में शब्दों के गंभीर एवं विशिष्ट, गतिशील एवं तटस्थ रंग एक साथ पाठ के जीवित वजूद को, उसके समस्त अस्तित्व और उजागर पहरन को एक धड़कती हुई जीवंत प्रक्रिया के रूप में मंच पर प्रस्तुत कर रहे होते हैं। शब्दों, क्रियाओं, मंच सज्जा, ध्वनि एवं प्रकाश परिकल्पना के संयोजन से पाठ (वस्तु) को संवाद अथवा मूक अभिनय के माध्यम से अंतर्निहित प्रत्याशित अथवा अप्रत्याशित तक पहुँचना, एक अत्यंत जटिल, संश्लिष्ट प्रक्रिया है। शब्द ध्वनियों एवं अभिनय को स्फूर्त रंग रूप में ढालकर, उनके अर्थों को समग्र मंचीय आलोक के रंगों द्वारा प्रस्तुत करना और इस प्रस्तुति प्रक्रिया के जरिए सामने बैठे दर्शकों के मनोमस्तिष्क में उतर जाना अत्यंत कठिन भाषिक संवाद है तथापि नाट्य भाषा के माध्यम से यह संभव हो पाता है। यह प्रक्रिया चित्रकार की उस स्थिति के समान ही होती है, जहाँ चित्रकार तूलिका द्वारा रंगों के माध्यम से हृदयस्थ भावों विचारों को बिना ध्वनि के भी अंकित कर पाता है। समस्त नाट्य प्रस्तुति समग्र रंगभाषा के साथ, रंग सज्जा के आलोक में, अनेकषः छवियों को उद्भाषित करती हुई, एक साथ मंच के समक्ष बैठे दर्शक के अन्तर्मन तक दृश्य, श्रव्य एवं प्रकाश के सहारे उतर जाती है। यही रंग प्रस्तुति पाठ (वस्तु) को शब्दों के द्वारा जीवत सजगता के साथ दर्शनीय रूप में प्रस्तुत करती हैं। यह समग्र रंगप्रक्रिया सभी घटकों को आत्मवान बनाते हुए, समवेत रंगप्रस्तुति अपनी एकाग्रीभूत चेतना में 'रसो वै सः' को साकार करते हुए, प्रेक्षक के खुले कपाट वाले हृदय में मैत्री भाव से पैठ जाती है। इसी अर्थ में भरत ने सामाजिक अथवा सहृदय अथवा प्रेक्षक का भोक्ता के रूप में उल्लेख किया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय नाट्य चिंतन की रसाश्रयी परिकल्पना इसी समवेत अनुष्ठान में रूपायित होती है जिसे भट्टनायक के साधारणीकरण के माध्यम से समझा जा सकता है।

रंगभाषा की दृष्टि से नहीं वरन् मूलपाठ और रंगालेख की दृष्टि से भी नाटककार तथा निर्देशक, अभिनेता तथा दर्शक मूल पाठ (वस्तु) तथा नाट्यालेख के पारस्परिक संबन्ध अत्यंत गहरे उलझे हुए रंगानुभूति के माध्यम से मंच पर क्रियाशील होते हैं। यहपारस्परिकता, उलझन, विरोध, सहजता, जटिलता, सहमति, असहमति, फाँस, रडक के विविध भावों से गुजर कर विचार एंव दृष्टि की रहस्यमयता में से आलोकित होकर वस्त्र की भांति दृष्टिगत होती है। जिस प्रकार सूत से बने हुए धागों के तंतुजाल को हम बाहरी रूपाकार में ही देखते हैं यदि उसके आंतरिक गुंथाव को गाँठ दर गाँठ, ताना-बाना से निर्मित लहरिया को संश्लिष्टता की बजाय पृथक-पृथक रूप में उधेड़ कर समझने की कोशिश करते हैं तो बाहरी रूप से देखे गए वस्त्र का सौन्दर्य क्षत-विक्षत होता है। ठीक इसी प्रकार रंगभाषा का सौष्ठव भी प्रेक्षकगण की अक्षुण्ण ग्रहणशीलता में ही निहित रहता है जो सरल हो जाने वाले बिन्दु को उलाँघ कर, उस समवेत आकार की ओर बढ़ता है जो जन्म के रूप में उसे सर्वप्रथम नाटककार, ततपश्चात निर्देशक और सम्मिलित जीवंत सत्ता के रूप में अभिनेताओं, अन्य रंगकर्मियों व पार्श्वकर्मियों व दर्शकों के जीवंत सम्मिलन से मिलता है। इस गूढ़ गहन संबंध प्रक्रिया में आद्यंत जीवंत इकाईयाँ जुड़ी रहती है जिनके जुड़ाव में ही रंगभाषा की यह यात्रा पूरी होती है और प्रभावान्विति अथवा रस-निष्पत्ति के रूप में मुखरित होती है।

इस प्रकार प्रेक्षागृह में रंग-प्रस्तुति के दौरान, रंगभाषा का नया रूप और अधिक समृद्धशाली होकर सामने आता है। इस नए रूप-निर्माण में दर्शकों की भागीदारी भी शत-प्रतिशत रहती है। किस क्रिया पर दर्शक ताली पीटते हैं, किस संवाद को वाह-वाह देते है और निर्देशक की रंग-सज्जा के कोने से रूप की प्रशंसा अथवा निंदा करते हैं, यहाँ तक कि दर्शकों का मौन, गंभीरता से देखना और उचित-अनुचित स्थलों पर विविध प्रकारेण प्रतिक्रिया करना, प्रस्तुति के समापन पर निर्देशक अथवा अभिनेताओं के साथ संवाद करना, सभी कुछ रंगभाषा में समाहित होता चला जाता है। प्रेक्षक गण की इस सहभागिता से नाटककार अथवा निर्देशक की रंमानुभूति को व्याप्ति मिलती है। नाटक के मूल पाठ का विस्तार होता है और निर्देशक के रंगालेख को सार्थकता प्राप्त होती है। यह नाटक का जनतंत्र है जिसे चार स्तरों पर समझना चाहिए- 1. मूल पाठ(वस्तु के रूप में) 2. निर्देशन कला(रंगालेख तथा रंगप्रस्तुति के रूप में) 3. अभिनेता(अभिनय कला के रूप में) 4 दर्शकर(रस निष्पत्ति अथवा साधारणीकरण के रूप में)। रंगानुभूति की संप्रेषणीयता ही नाटक को काल-निरपेक्ष बनाती है। शब्दों की विचारात्मक अथवा भावात्मक प्रक्रियाएं रंगालेख तथा रंगप्रस्तुति अपनी समस्त रंग-दीप्ति, भाषाई सत्ता में सूक्ष्म मानवीय भावाभिव्यक्ति की और निरंतर अग्रसारित होती है। यह समस्त रंग-प्रक्रिया अपनी अर्थ संगति में भावोद्भावन, प्रेरक मन के आंतरिक सूक्ष्म स्थायी भावों, जीवन के विविध अनुभवों, सामाजिक संबंधों के विविध रूपों तथा देह धर्म की अस्मिता को जीवंत रूप में प्रस्तुत करती है। रंगप्रस्तुति के बहुविध समवेत प्रसारण से सामाजिकों की समवेत चेतना व अंतर्मन में बसे गहनतम भाव आदि को वह जान लेना चाहती है सबकुछ, उसे जो दिखता है और उसे भी जो नहीं दिखता है, गोचर तथा अगोचर दोनों को। रंगभाषा की यह अद्वितीयता, विलक्षणता, अदभुत कुशलता ही उसे पूर्णरूपेण जीवंत सत्ता के रूप में रूपायित कर उभारती है।

रंगभाषा की पहली परत रचनाकार के मूलपाठ के रूप में सामने आती है। नाटककार द्वारा लिखित नाटक का यही मूलपाठ ही समस्त रंगभाषा अथवा रंगप्रस्तुति की रीढ़ होता है। इस रीढ़ के सब ओर शनैः शनैः अन्य दूसरे रंगकर्मी समस्त रंगप्रस्तुति रूपी देह को बुनते चलते है। मनुष्य शरीर के विज्ञान को सूक्ष्मता से समझकर हम रंगभाषा के समस्त विज्ञान को समझ सकते हैं। इस समस्त रंग उपक्रम में नाटककर ही नींव का निर्माता है। नींव जितनी सशक्त गहरी व समर्थ होती है उतना ही मजबूत भवन उसके ऊपर बनाया जा सकता है। रंगभाषा के इस प्राथमिक पाठ को समझने के लिए आवश्यक है कि परिवेश बोध के साथ नाटककार की रचनाशीलता अंतश्चेतना को गंभीरता से समझा जाए। नाटककार के भीतर स्थानीयता का एक जमा हुआ संस्कार होता है यह संस्कार उसके रक्त प्रभाव और धड़कन में बसता है। जब कोई रचनाकार किस्सागोई की वृतांतोन्मुखी शाब्दिक वर्णनात्मक प्रवृत्ति की अपेक्षा शब्दों के आलोक में नानाविध मुद्राओं, क्रियाओं, दृश्यों आदि को अनुस्यूत कर भाषा दृश्यात्मक संपूर्णता में अभिव्यक्त करता है तब नाटक का जन्म होता है। नाटक की भाषा में शब्द, मात्र शब्द ही नहीं होते, अनेक बिंबो, प्रतीकों, क्रियाओं, रंगसज्जाओं, ध्वनियों आदि के वाहक होते है जिन्हें मनस्वी निर्देशक पकड़कर रंगमंच पर साकार करते हैं रंगनाशा की यह बहुअर्थीयता किसी भी नाटक को प्रासांगिकता प्रदान करती हैं। रंगभाषा की यह बहु अर्थीयता किसी भी नाटक को प्रासांगिकता प्रदान करती है। प्रासंगिकता के चलते ही कोई भी नाटक काल निरपेक्ष बनता है। इसी अर्थ में हम भास, कालिदास, शूद्रक भिखारी ठाकुर, रासलीला रामलीला, भारतेंदु, प्रसाद, मोहन राकेश, शंकर शेष, विपिन अग्रवाल, ब्रजमोहन शाह इत्यादि के नाटकों को देख समझ सकते है। भाषा का यह स्वाभाविक गुणधर्म होता है जो लेखक की व्यक्तिगत भाव भूमि में जमा रहता है। अपनी सृजनशील अंतश्चेतना के सहारे, रचनाकार परंपराओं सिद्धांतों, मानवीय मूल्यों तथा जीवनानुभवों को अपनी रचना में अभिव्यक्त कर, समय के अनुसार नया करता चला जाता है। इस प्रक्रिया में वह पुराने शब्दों को नए अर्थ देता है और नए शाब्दिक प्रतिमान गढ़ता है। इस प्रकार वह सृजनात्मकता की लंबी कड़ी की अभिवृद्धि करता है। उसकी यह सृजनशील प्रक्रिया उतनी ही पुरानी है, जितना पुराना वह स्वयं है, उतनी ही नूतन है जितना नवीन समय है। समय ही वह रंग है जो अनेक रूपों में विभाजित होकर विविध रूपेण रंगमंच पर, रंगप्रस्तुति के रूप में फिर-फिर अभिव्यक्त होता है। रंगभाषा की इस गतिशील प्रक्रिया को नाटककार, निर्देशक, रंगकर्मी, अभिनेता, दर्शक अपनी-अपनी गहन एवं व्यापक सामाजिक चेतना की पकड़ में रचनात्मक विस्तार एवं अभिव्यक्ति देते हैं। निष्कर्षतः जितनी गहरी समझ अथवा पकड़, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियों की जिस किसी की होती है, उतना ही गहन एवं व्यापक अर्थ रंगमंच पर प्रस्तुत कर पाने में नाट्यकर्मी समर्थ होते है। परिणामतः प्रेक्षक समाज उतना ही अधिक तृप्त एंव आश्वस्त अनुभव करता है। आचार्य भरत नाट्यशास्त्र के छठवें अध्याय में जिस प्रकार भावों का सूक्ष्म

मनोवैज्ञानिक विश्लेशण करते है उससे उनके उस कथन को भलीभाँति समझा जा सकता है जहाँ वे नाटक के संबंध में "अपारे नाट्यस्य संसारे न सक्यम्गन्तुमन्तः" अर्थात नाटक के अपार संसार का पार पाना असंभव है। अभिप्राय यह हुआ कि नाटक जीवन का पर्याय है। जिस प्रकार हम जीवन को जीकर भी रणधारणतः समझ नहीं पाते हैं ठीक उसी प्रकार नाटक को देखकर पूर्णतया समझ पाना भी टेढ़ी खीर है। नाटक मंच पर जितना उजागर और उद्भासित होता है उससे कहीं अधिक मौन और रिक्तियों के मध्य प्रच्छन्न एवं अंतर्निहित रहता है। गहरे-हल्के, चमकीले-फीके रंगों को, बरखा में भीगे आले-सीले, धुले-नहाए, धूप की गरमाहट में तपे-पिघले, सूखे-भुर्भुराएँ, देह की आहट में झंकृत, आत्मा के विराटत्व में उन्मुक्त भाव से खुले-खिले रंगों को रंगमंच पर प्रस्तुत कर, प्रेक्षक समाज के अनुभव का विषय बनाना, वृहद सामाजिक चेतना के प्रकाश के बिना असंभव है। इसी अर्थ में सर्जक को बहुज्ञ कहा जाता है। अतः रंगाभिव्यक्ति से पूर्व, गहन व व्यापक समाजानुभूति की प्राप्ति करना, सच्चे रंगकर्म का अनिवार्य शर्त है। शब्दों के छविमान मुखड़ों में से अर्थ ही निःसृत नहीं होते वरन् रचनाकार की पहचान का द्योतन भी यही शब्द करते है। शब्द मंच पर समवत रूप में उन सब को चित्रित करते हैं, जो उनके चितेरे हैं अर्थात् जो उनके सर्जक हैं। चित्रांकन की इस जीवंत प्रक्रिया में शब्द नाट्यभाषा के माध्यम से वैचारिक तथा भावात्मक व्यक्तित्व ग्रहण कर लेते हैं। इस जटिल जीवंत प्रक्रिया में एक सर्वव्यापी चैतन्य साकार हो उठता है जिसके प्रकाश में समस्त रंगप्रक्रिया अपनी आकारिक बनावट के भीतर से सामाजिक सरोकार के उदात्त को उदीयमान बनाती है। उसी में से दुःख-सुख, पीड़ा-शांति, आशा-निराशा, वैमनस्य-प्रेम, मैत्री-वैर लगाव-विलगाव, राग-विराग इत्यादि असंख्य मानवीय अनुभूतियाँ प्रवाहित होती है, जिन्हें प्रेक्षक समाज अपने चैतन्य में अपने सामाजिक परिवेश तथा समय के अनुसार ग्रहण करता चलता है। यही कारण है कि रंगानुष्ठान में सामाजिक सरोकार का औदात्य, दोनों ओर से निरंतर अग्रसर रहता है। यह प्रक्रिया भीतर से बाहर की और तथा बाहर से पुनः भीतर की ओर चलायमान रहती है। इसे मूर्तन तथा अमूर्तन की परिकल्पना में समझा जा सकता है इसी अर्थ में रंगभाषा का जो मूर्त पक्ष है उसमें अमूर्त की भी अनेक परतें विद्यमान रहती हैं। इसी अर्थ में कुशल नाटककार जितना मूलपाठ में कह पाता है उससे कहीं अधिक प्रच्छन्न, अमूर्त भावों के रूप में पाठ(वस्तु) में अंतर्निहित रहता है।

****

गोरखनाथ की बानियों में सामाजिक चेतना

कृष्ण कुमार साह
शोधार्थी, हिंदी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय
पिन- 793022 मो.8967445302

शोध-सार :-गोरखनाथ हिंदी साहित्य के प्रमुख आदिकालीन कवि हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में गोरखनाथ की बानियों में सामाजिक चेतना के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। आलेख में सर्वप्रथम नाथों में गोरखनाथ का स्थान निर्धारित करते हुए उनकी रचनाओं के प्रभाव, तत्कालीन सामाजिक स्थिति एवं गोरखनाथ के रचनाकाल आदि पर चर्चा की गई है। तत्पश्चात गोरखनाथ की बानियों में अभिव्यक्त तत्कालीन सामाजिक बुराइयाँ रूढ़ियों, अंधविश्वास, धार्मिक-विवाद, बाह्याडम्बर, कर्मकांड, मूर्ति-पूजा, जातिगत भेदभाव, पशु-हिंसा आदि को विभिन्न उद्धरणों द्वारा उजागर किया गया है। साथ ही उनके द्वारा जीवन दर्शन, आचार-विचार, संयमित खान-पान, जीवन-निर्वाह, सहज व्यवहार आदि संबंधी सामाजिक चेतना को भी अभिव्यक्त किया गया है। शोध आलेख में गोरखनाथ की बानियों में सामाजिक चेतना का प्रभाव परिवर्तित संत साहित्य से जोड़ा गया है। अतः प्रस्तुत शोध आलेख गोरखनाथ की बानियों में सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करता है।

बीज शब्द:-समाज, चेतना, रचनाकाल, नाथ, सामाजिक परिस्थितियाँ, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, बाह्याडम्बर, कर्मकांड, मूर्ति-पूजा, जातिगत भेदभाव, जीव-हिंसा, मदिरा सेवन, संयमित जीवन, नीति, आचार-विचार, संत परंपरा आदि

आलेख :-भारतीय धर्म-साधन के क्षेत्र में गोरखनाथ का योगदान अद्वितीय रहा है। उन्होंने योग-साधना के क्षेत्र में अद्भुत क्रांति की है। आध्यात्मिक चिंतन को आधार बनाकर उन्होंने जन-जन को जागरूक करने का प्रयास किया। अध्यात्म द्वारा उस अलौकिक सत्ता से जुड़ने के प्रयास से नाथ संप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। वे नौ प्रमुख नाथों में सर्वश्रेष्ठ नाथ माने जाते हैं। उन्होंने नाथ संप्रदाय को भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचाया। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव तत्कालीन संपूर्ण भारत (अफगानिस्तान, पाकिस्तान और नेपाल) में फैला हुआ था। वर्तमान में भी भारत के अनेक हिस्सों एवं नेपाल आदि देशों में गोरखनाथ का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। गोरखनाथ के रचनाकाल को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। रांगेय राघव गोरखनाथ का रचनाकाल नवीं शताब्दी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी दसवीं शताब्दी और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ग्यारहवीं शताब्दी मानते हैं। गोरखनाथ की रचानाओं की भाषिक विविधता के संदर्भ में गोरख-बानी की भूमिका में बड़थ्वाल कहते हैं- "ये रचनाएँ जैसी हमें उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसी ही उस समय की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परंतु इसमें भी प्राचीन के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि संभवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती ही में हुआ हो।" गोरखनाथ का रचनाकाल सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से उथल-पुथल एवं सांस्कृतिक मंथन का काल है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी गोरखनाथ की समकालीन राजनीतिक परिस्थिति के संबंध में कहते हैं कि "गोरखनाथ का जिस समय आविर्भाव हुआ था, वह काल भारतीय धर्म-साधना में बड़े उथल-पुथल का है। एक ओर मुसलमान भारत में प्रवेश कर रहे थे दूसरी ओर बौद्ध-साधना क्रमशः तंत्र-मंत्र और टोने टोटके की ओर अग्रसर हो रही थी। दसवीं शताब्दी में यद्यपि ब्राह्मण धर्म संपूर्ण रूप से अपना प्राधान्य स्थापित कर चुका था तथापि बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक बड़ा भारी समुदाय ऐसा था जो ब्राह्मण और वेद को नहीं मानता था।" तत्कालीन समाज में अनेक प्रकार की बुराइयाँ विद्यमान थीं और समाज वर्णों में बंटा हुआ था। समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों एवं पौराणिक मान्यताओं से ग्रस्त था। रचनाकार स्वयं समाज का अंग होता है। वह अपनी सामयिक परिस्थितयों से स्वयं को अलग नहीं कर सकता। अन्य जन की अपेक्षा रचनाकार अधिक संवेदनशील होता है और उसकी चेतना पर सामाजिक पस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। साहित्य में पूरे समाज का चित्रण होता है। मनुष्य जीवन की पद्धति, धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ,

आचार-विचार, आस्था-विश्वास, रीति-रिवाज आदि का सजीव चित्र साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है । गोरख के समकालीन परिवेश ने उन्हें सामाजिक समस्याओं पर विचार करने के लिए मजबूर किया । इस संदर्भ में रांगेय राघव कहते हैं कि "यक्षवाद के विलास से यदि एक ओर उच्च वर्गों में विलास बढ़ता जा रहा था तो दूसरी ओर जन समाज में उसके प्रभाव से व्यभिचार की मात्रा बढ़ती जा रही थी । समाज भीतर ही भीतर गलता जा रहा था । जन समाज को इससे मुक्त करने वाला व्यक्ति गोरक्षनाथ था, तभी उसका नाम उसके शताब्दियों तक आदर और भय से अपने हृदय में बसा लिया।"गोरखनाथ के समकालीन इस्लाम धर्म भारतीय समाज का एक अंग बन चुका था । यहाँ का अन्न और जल बाहर से आने वाले मुसलमानों में रक्त बनकर समा चुका था । ऐसी स्थिति में उन्हें भारतीय समाज से विलग करना संभव नहीं था । फलस्वरूप हिन्दू तथा मुस्लिम में एकता लाने का प्रयत्न गोरखनाथ ने किया । गोरख कहते हैं कि हिंदू मंदिर में ध्यान लगाता है मुसलमान मस्जिद में ध्यान लगाता है मगर योगी परम ब्रेह्म का ऐसी जगह ध्यान लगाता है जहाँ मंदिर हैं न मस्जिद । हिन्दू कहते हैं राम है मुसलमान कहते हैं खुदा परंतु जोगी जिस लक्ष्य का आख्यान करते हैं वह राम है न खुदा ।

"हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत
जोगी ध्यावै परम पद जहाँ देहुरा न मसीत ।।
हिन्दू आषै कौ, तहाँ राम अछै न षुदाइ ।
प्यंडे होई तौ मरै न कोई, ब्रह्मंडे देषै सब लोई ।।"

गोरखनाथ की सामाजिक चेतना का प्रभाव संत कवियों की बानियों में मिलता है । जहाँ गोरखनाथ के समान पलटू साहब कहते हैं कि एक हिन्दू है जो मूर्ति-पूजा का ढोंग रचता है, तो दूसरा मुसलमान है जो कब्र की पूजा करता है । दोनों ही पतित हैं । ईश्वर तो दोनों के अंदर विद्यमान है परंतु बुद्धिहीनता के कारण भटक रहे हैं-

"हिन्दू पूजे देवहरा, मुसलमान महजीद ।
पलटू पूजे बोलता, जो दीद दरदीद ।"

दूसरी ओर कबीरदास की बानियों में भी गोरखनाथ की सामाजिक चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । उनकी रचनाओं में भी इस प्रकार की गाथाओं का उल्लेख है-

हिन्दू मूये राम कहि मुसलमान खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता, दुई में कदे न जाइ ।।"

गोरखनाथ हिंदू-मुस्लिम एकता पर जोर देते हैं एवं दोनों ही धर्मों में विद्यमान धार्मिक कट्टरता एवं अंधविश्वास का विरोध करते हैं । मुसलमान अल्लाह के अतिरिक्त अन्य किसी के सम्मुख सिर नहीं झुकाते थे अल्लाह को न मानने वाले की हत्या करना धार्मिक दृष्टि से सही मानते थे, इसी कारण दो जातियों के बीच विद्वेष फैलने लगा । न मुसलमानों का अत्याचार समाप्त हो रहा था न हिन्दुओं में घृणा । ऐसी स्थिति में शांति स्थापित करने की आवश्यकता थी । इस दिशा में एकता लाने का प्रयास गोरखनाथ करते हुए कहते हैं कि हे काजी मुहम्मद मुहम्मद न करो । मुहम्मद के हाथ में जो छुरी है वह न लोहे की बनी है और न किसी इस्पात की जिससे वह जीव हत्या करते । गोरख कहते हैं कि उनका नाम लेकर जो तुम जीव हत्या करते हो उसे छोड़ दो-

महंमद महंमद न करि काजी महंमद का विषम बिचारं ।
महंमद हाथि करद जे होती लोहै घड़ी न सारं ।।"

गोरखनाथ में रहस्यानुभूति के तत्व भी विद्यमान हैं । यह रहस्यवाद सामाजिक चेतना से जुड़ा हुआ । गोरख कहते हैं कि वेदों, शास्त्रों, कुरान आदि के ज्ञाता होने से कोई ईश्वर को नहीं जान सकता अर्थात धार्मिक ग्रंथों में जिस ब्रह्मपद का वर्णन नहीं पढ़ा जा सकता ऐसे धर्म ग्रंथ को कोई विरले योगी ही जानता है बाकि दुनिया तो माया में लिप्त होकर धंधों में लगी है ।

"वेदे न सास्त्रे कतेबे न कुरांणे पुस्तके न बंच्या जाई ।
ते पद जांनां बिरले जोगी और दुनी सब धंधै लाई ।।"

तत्कालीन समाज में धर्म के ठेकेदारों ने स्वनिर्मित पाखंडों एवं आडम्बरों का उत्तरदायित्व भी धर्म ग्रन्थों पर डाल दिया था । धर्म-ग्रन्थों के कारण केवल सामाजिक विश्रृंखलता ही नहीं बढ़ रही थी बल्कि इनमें निर्दिष्ट बाह्यचारों तथा विधान के कारण लोगों को व्यर्थ की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था । विभिन्न धर्मों के गुरु अपनी-अपनी समझ और इच्छा के अनुसार अपने-अपने धर्म ग्रंथों की व्याख्या कर रहे थे ।

धर्म में समाहित अंधविश्वास भी सामाजिक विषमता को बढ़ा रहे थे । धार्मिक-ग्रन्थों के व्याख्याताओं के प्रति जनता में अंध भक्ति थी इसलिए अपने स्वार्थ अनुसार इन मुल्लाओं और ब्राह्मणों ने जनता को भरमाया । गोरखनाथ इन धर्म के ठेकेदारों से सचेत करते हुए कहते हैं-

"काजी मुलौ कुरांण लगाया, ब्रह्म लगाया बेदं ।
कापड़ी संयासी तीरथ भ्रमाया न पाया निबांण पद का भेवं ।।"

अर्थात काजी मुल्लाओं ने कुरान पढ़ने का संदेश दिया, ब्राह्मणों ने वेद पढ़ने का और संन्यासियों को तीर्थ ने भ्रम में डाल रखा है, इनमें कोई भी ऐसा नहीं है जो निर्वाण पद का भेद अर्थ मार्ग जान पाया हो ।गोरखनाथ ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वास, बाह्याडम्बर, पाखंड एवं शोषण आदि का विरोध किया । उन्होंने समाज में प्रताड़ित, तिरस्कृत तथाकथित निम्नजाति के लोगों को धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में समान अधिकार दिलाने के लिए आजीवन संघर्ष किया । विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए उन्होंने अपने उपदेशों के द्वारा सामाजिक बुराइयों से लोगों को अवगत कराया। उनके उपदेशों में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के तत्व सहज ही समाविष्ट हो गये हैं। गोरखनाथ की सामाजिक चेतना के संबंध में कमल सिंह कहते हैं- "गोरखनाथ ने समाज के विभिन्न विभेदों की समाप्ति करके अंधविश्वास और मिथ्या आरोपित छद्म को चकनाचूर करके जन साधारण को गले लगाया, आश्वस्त किया । बहुत संभव है कि कतिपय इतिहास-वेत्ताओं और धर्म के आचार्यों को यह ऊँच-नीच की समानता, जाति-पाँति के प्रति उपेक्षात्मक प्रवृत्ति और शासक-शासित का समन्वय रुचिकर न लगा हो । यही कारण है कि आज इस महान योग-गुरु के विषय में ठोस एवं ऐतिहासिक तथ्य प्रायः कम ही मिलते हैं ।"गोरख के तत्कालीन समाज में बहु प्रचलित उपासना-रूपों का स्थान प्रमुख था । धर्म के ठेकेदारों ने ईश्वर को मंदिर-मस्जिद व मूर्तियों तक सीमित कर दिया था । वे भूल गए थे कि मूर्ति तो साधना-मात्र है । उन्होंने साधना को साध्य बना डाला और स्थिति यह आ गई कि जितने ईश्वर उतने ही देव हो गये । बहुदेवोपासना से सामाजिक एकता खंडित होने लगी थी । लोग ईश्वर को ढूंढने के लिए मंदिरों-मस्जिदों में भटकने लगे ऐसे समय में गोरख ने ईश्वर को घट-घट व्यापी कहा एवं उसे मंदिर-मस्जिद या मूर्तियों में ढूंढना भ्रम माना । ब्रह्म सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी है। पंडितों को संबोधित करते हुए गोरख कहते हैं- हे पंडितों, जिसको तुमने पढ़कर देखा है उस सार-ज्ञान में रखकर भी देखो । पार उतरना केवल कोरे ज्ञान से नहीं कृत्यों से ही संभव है बिना करनी के ज्ञान कोरा है । मैं कहता हूँ कि मैं साक्षी हूँ कि घट-घट में ब्रह्म की ज्योति जगमगा रही है और तुम अंध पशु के समान अपने भीतर ढूंढने के स्थान पर यहाँ वहाँ भटक रहे हो-

"पढ़ देखि पंडित रहि दोष सारं अपणीं करणीं उतारिबा पारं ।
बदंत गोरषनाथ कहि धू साषी, घटि घटि दीपक (बलै) षणि पसू न आंषी ।।

गोरखनाथ ने बाह्याचारों एवं आडम्बरों का खंडन किया। उन्होंने मांसाहारियों पर तीव्र व्यंग्य किया और जीव हत्या की जगह उन्होंने कहा कि हे शरीर धारी मनुष्य तुम जीव की हत्या क्यों करते हो ? मारना ही है तो पाँच भौतिक मन-रूप मृग को मारो जो तुम्हारी बुद्धि रूपी बाड़ी को चर रहा है । अरे योग का मूल ही दया-दान है । गोरख कहते हैं कि हे मनुष्य मुक्ति के लिए तुम इस द्रोही मन को मारो जिसका न शरीर है, न माँस है, न रक्त है न वर्ण है ।

"जीव क्या हतिये रे प्यंड धारी । मारि लै पंचभू भ्रगल ।
चरै थारी बुधि बाड़ी । जोग का मूल है दया दाण ।
कथंत गोरष मुकति लै मानवा मारि लै रे मन द्रोही ।
जाकै बप बरण मास नहीं लोही ।।"

मादक पदार्थ का सेवन समाज में सदा से विद्यमान रहा है। मदिरा आदि मादक तत्वों को मनुष्य अपने खान-पान में शामिल कर उसे अपने जीवन का हिस्सा बनाता आया है। तत्कालीन समाज में भी मादक पदार्थों के सेवन की अधिकता मुख्य समस्या बन गई थी । लोग धर्म के नाम पर मादक पदार्थों का सेवन करने लगे थे। जिस कारण आमजन इसमें डूब कर अपना जीवन खराब कर रहा था । गोरख समाज की इस मुख्य समस्या से परिचित थे एवं लोगों को इसके सेवन से बचने की सलाह देते थे । इसके प्रति लोगों को जागरूक करते हुए वे कहते हैं कि धतूरे और भाँग का सेवन नहीं करना चाहिए, धतूरे के पीने से और भाँग खाने से शरीर संयमित नहीं होगा और ध्यान भी नहीं लगेगा। गोरखनाथ कहते हैं कि हे अवधू सुनो इसके सेवन से यह शरीर पराया हो

जाएगा अर्थात इससे शरीर पर अपना बस नहीं रहता है।

"धोतरा न पीवो रे अवधू भाँगि न षावौ रे भाई।
गोरष कहै सुणौ रे अवधू या काया होयागी पराई।"

समाज में ईश्वर के नाम पर लोगों को मूर्ख बनाने वाले पंडे-पुरोहितों पर गोरख तीव्र व्यंग्य कटाक्ष करते हैं। ऐसे सामंतों, सूदखोरों एवं पंडितों, जो ईश्वर से साक्षात्कार होने के दावे करते हैं हुए, दूसरों को लूट कर अपना पेट भरते हैं उन्हें फटकारते हुए गोरख कहते हैं कि जिनके बड़े-बड़े कुल्हे और मोटे पेट अर्थात तोंद होती है, उनकी गुरु से भेंट नहीं हुई है। और जिसका शरीर खड़-खड़ है अर्थात चर्बी से मुक्त है,उसे ईश्वर के दर्शन हो गए हैं।

"बड़े बड़े कूले मोटे मोटे पेट नहीं रै पूता गुरु स भेट।
षड़ षड़ काया निरमल नेत, भई रे पूता गुरु सौ भेंट।।"

तत्कालीन समाज में लोगों के अंदर चेतना का अभाव था। ग्रामीण समाज का बहुत बड़ा हिस्सा अज्ञानता के रोग से ग्रसित था। समाज के बुजुर्ग एवं साधु-संत अनुभव से प्राप्त की गई शिक्षा लोगों को देते थे। लोक में प्रचलित बहुत सी लोकोक्तियाँ थीं जो लोगों को नीति संबंधी शिक्षा देने का काम करती थीं। गोरखनाथ ने अपने उपदेशों द्वारा प्रचलित लोकोक्तियों के माध्यम से लोगों में चेतना लाने का प्रयास किया है। गोरख कहते हैं कि मूर्खों की सभा में नहीं बैठना चाहिए, पंडितों से शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका ज्ञान गर्व दूसरे प्रकार की मूर्खता है और उसे वास्तविकता का ज्ञान ही नहीं होता। राजा से युद्ध नहीं करनी चाहिए तथा लापरवाही में नाद को नहीं छेड़ना चाहिए।

"मुरिष सभा न बैसिबा अवधू पंडित सौ न करिब बादं।
राजा संग्रामे झूझ न करबा हेलै न षोइबा नादं।।"

गोरखनाथ ने यथार्थ का वर्णन अपनी रचनाओं में किया। उन्होंने जो देखा, जो भोगा उसी से संबंधित उपदेश अपने शिष्यों एवं जन-सामान्य को दिये। जीवन दर्शन, आचार-विचार, संयमित खान-पान, जीवन-निर्वाह, सहज व्यवहार आदि संबंधी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई हैं। वाणी के संयम पर भी गोरख विशेष जोड़ देते हैं। तत्कालीन समाज में तथाकथित ऐसे पंडित जो स्वयं को ज्ञानी समझते थे और कठोर वचन बोलते थे, उनकी वाणी में सदाचरण की अपेक्षा कटुता एवं द्वेष का भाव अधिक दिखाई पड़ता था। ऐसे लोगों को गोरख अधूरे ज्ञानी मानते हैं क्योंकि जो ज्ञानी होगा वह कभी कठोर या तीखे वचन नहीं बोलेगा। गोरख कहते हैं कि जो खंडित अर्थात अधूरा ज्ञानी है वही तीखे वचन बोलता है और सत्य के शब्द का उच्छेद करता है यानी सत्य को नष्ट करता है। उसकी काया के अंदर तत्व का प्रवेश नहीं होता और शरीर के बल पर वह कठोर वचन बोलता है-

पंडित ग्यानी षर तर बोलै सति का सबद उछेदै।
काया कै बलि करड़ा बोलै भीतरि तत्त न भेदै।।"

गोरखनाथ सामाजिक चेतना के साथ वैयक्तिक चेतना पर भी विशेष जोर देते हैं। समाज को जागरूक बनाने के लिए व्यक्ति को जागरूक होना आवश्यक है। तत्कालीन समाज में इसका अभाव स्पष्ट देख जा सकता है। व्यक्ति में विद्यमान अवगुण उसकी चेतना के मार्ग में बाधक है। गोरख कहते हैं कि मन को दृढ़ करके रखो, काम, क्रोध, अहंकार को दूर कर दो यदि किसी का चित्त स्थिर हो गया, उसने काम, क्रोध अहंकार पर विजय प्राप्त कर ली तो वह देशांतर हो गया।

नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू दिढ़ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अंहकार निबारौ तो सबै दिसंतर कीया।।"

जीवन जीने के लिए नीति संबंधी ज्ञान का होना अत्यंत आवश्यक है। व्यक्ति को कब, कहाँ, कैसे रहना-बोलना, उठना-बैठना चाहिए इसका ज्ञान अवश्य होना चाहिए। यह नैतिक संबंधी ज्ञान व्यक्ति के जीवन को सही ढंग से चलाने में सहायता करता है। नीति संबंधी ऐसे ज्ञान गोरख बड़ी सहजता से देते हैं कि व्यक्ति को बिना सोचे समझे नहीं बोलना चाहिए और अचानक नहीं चल पड़ना चाहिए, जिस मार्ग पर चलना है वहाँ सोच-समझकर धीरे-धीरे कदम रखना चाहिए। अंहकार नहीं करना चाहिए व्यक्ति को सदा सहज रहना चाहिए यही गोरखनाथ का उपदेश है।

"हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा धीरै धारिबा पांव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष रावं।।

मनुष्य को इसका भी बोध अवश्य होना चाहिए कि उसे कब बोलना है कब मौन रहना है। मनुष्य की यह वैयक्तिक चेतना हमेशा सजग रूप में जागरूकता प्रदान करती है। गोरखनाथ कहते हैं कि हे अवधू इस संसार में इस तरह रहना चाहिए आँखों से देखना, कान से सुनना मगर मुख से कुछ कहना नहीं चाहिए। यहाँ गोरख लोगों को संसार में जो कुछ घटित हो रहा है उसे देखने और सुनने की बात कहते हैं क्योंकि मनुष्य जब देखेगा, सुनेगा तभी उसमें चेतना आएगी और वह उस पर आत्मचिंतन करेगा।

"गोरष कहै सुणहरे अवधू जग मैं ऐसै रहणां-
आंषै देषिबा कांनै सुणिबा मुष थै कछू न कहणां।।"

अतः स्पष्ट है कि गोरखनाथ की बानियों में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक समस्याओं एवं बुराइयों को अभिव्यक्त करते हुए कभी-कभी गोरखनाथ इतने मुखर हो जाते हैं कि ऐसा प्रतीत होता कि संत कवियों में विशेषकर कबीर में जो निर्भीकता, व्यंग्य, कटाक्ष, आक्रोश आदि का भाव आया है, वह इन्हीं के प्रभाव से परंपरा स्वरूप आया है। तत्कालीन समाज में मौजूद रूढ़ियों, अंधविश्वास, धार्मिक-विवाद, बाह्याडम्बर, कर्मकांड, मूर्ति-पूजा, जातिगत भेदभाव, पशु-हिंसा आदि के प्रति लोगों को सजग करते हैं। हिंदु-मुस्लिम एकता पर विशेष बल देते हैं, साथ ही वे जीवन के अनुभवों के आधार पर आमजन को नीतिगत शिक्षा भी देते हैं। अतः गोरखनाथ की चेतना अध्यात्मिक चेतना तक सीमित न रह कर सामाजिक चेतना के रूप में भी अभिव्यक्त हुई है।

****

संदर्भ:-

1. गोरखनाथ और उनका युग, रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, संस्करण-1963, पृ.- 29
2. नाथ संप्रदाय, आचार्य हजारी प्रसाद दिवेद्वी, हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहबाद, संस्करण-1950, पृ.- 108
3. गोरख-बानी, भूमिका, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, संस्करण- 1994, पृ.- 20
4. नाथ सिद्धों की बानियाँ, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भूमिका, मिनेर्वा प्रकाशन, जोधपुर, संस्करण- 2016, पृ.- 11
5. गोरखनाथ और उनका युग, डॉ. रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, संस्करण-1963, पृ.- 75
6. गोरख-बानी, भूमिका, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, संस्करण-1994, पद संख्या- 68, 69, पृ.-25
7. पलटू साहब की बानी, भाग-1, एडिटर संतबानी-पुस्तक माला, इलाहाबाद, संस्करण -1954, पृ. 101
8. कबीर ग्रंथावली, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण-1985, पद- 37.1 पृ.- 138
9. गोरख-बानी, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, संस्करण-1994, सबदी संख्या- 9, पृ.- 04
10. वही, सबदी संख्या- 6, पृ.- 3
11. वही, सबदी संख्या- 93, पृ.- 33
12. गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य, कमल सिंह, कुसुम प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, संस्करण-1990, पृ.- 01
13. गोरख-बानी, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, संस्करण-1994, सबदी संख्या-59, पृ.- 21
14. वही, सबदी संख्या- 228, पृ.-73
15. वही, सबदी संख्या- 241, पृ.- 76
16. वही, पद संख्या- 38 पृ.-110
17. वही, सबदी संख्या-121, पृ.- 43
18. वही, सबदी संख्या- 205, पृ.- 68
19. वही, सबदी संख्या- 29, पृ.-11
20. वही, सबदी संख्या- 27, पृ.- 11
21. वही, सबदी संख्या- 72, पृ.- 26

मैला आँचल का समाजशास्त्रीय अनुशीलन

प्रभात कुमार द्विवेदी
शोधार्थी, हिंदी
(MGCU2019HINDI6005)
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय मोतिहारी ,बिहार

शोध-सार:-फणीश्वरनाथ 'रेणु' का पूरा साहित्यिक संसार उनके भुक्त अनुभव से सृजित है। 'मैला आँचल' उपन्यास उनकी प्रथम औपन्यासिक कृति होने के बावजूद उनको रचनात्मक फलक पर पुष्ट पहचान दिलाती है। इस उपन्यास के केन्द्र में मेरीगंज गाँव है - जहाँ अशिक्षा है ; अंधविश्वास है ; कृषकों का दमन - शोषण है; स्त्रियों का यौन - उत्पीड़न है; अपराध-तंत्र है; राजनीतिक षड्यंत्र है; तहसीलदारों का भ्रष्टाचार है ; महंतों का भोग-विलास है ; रोग-व्याधि की परिव्याप्ति है; अपराधियों का बोलबाला है; हर स्त्री- पुरुष का अपना चक्कर है; जाति की जहर है; गाँववाले और आदिवासियों के बीच बाहरी -भीतरी का झगड़ा है और पूरा तंत्र लंगड़ा है। पर ऐसा भी नहीं यहाँ कुछ भी अच्छा नहीं - कमली का प्रेम है; प्रंशात का समर्पण है; ममता का मानवीय संदेश है; तहसीलदार विश्वनाथ का हृदय - परिवर्तन है; गाँधीवादी बावनदास की शहादत है; बदलाव के लिए वर्गीय संघर्ष है और सामाजिक जागरूकता की चाह है। मेरीगंज मैला जरूर है, पर उससे मुक्त होने की छटपटाहट भी है।

कोई कृति तब तक प्रासंगिक बनी रहती है, जब तक उसमें उल्लेखित समस्या बनी रहती है। मैला आँचल एक गाँव के माध्यम से उन सारे गाँवों की व्यथा-कथा है, जहाँ स्थिति आज भी ठीक वैसी है। अतः इसका अनुशीलन, आलोचन अधिकाधिक अपेक्ष्य है। साहित्य मन बदलता है और मन संसार। ग्राम्य - जीवन के चितेरे रेणु न सिर्फ़ कथ्य बल्कि नितांत देशज शिल्प को इस उपन्यास में सृजित करते हैं। यही कारण है कि आज भी मैला आँचल आलोचना के केन्द्र में है। नि:संदेह मैला आँचल ग्राम्य जीवन को वास्तविक दस्तावेज है।

बीज शब्द :-मैला आँचल, सामाजिकता, जाति, मेरीगंज, डॉ. प्रशांत, बावनदास अंधविश्वास और अशिक्षा

'मैला आँचल' का लेखक अपनी निजी साहित्यिक विचक्षणता से स्वानुभव का सामाजिक दस्तावेजीकरण किया है।यह एक गाँव की कथा नहीं,हर उस गाँव की सामाजिक व्यथा है,जिसे लेखक ने अपनी विशिष्ट लेखकीय प्रतिभा से कहन की सांद्रता के साथ प्रस्तुत की है।यही लेखक की खुसूसियत है।लेखक ने इस उपन्यास की भूमिका में इसके अभिव्यक्त को इन शब्दों में व्यक्त किया है -" इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाल भी ,कीचड़ भी है चंदन भी ,सुंदरता भी है कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं सका।" [(1)] इस पर रामेश्वर राय कहते हैं- " रेणु ग्राम्य - समाज का आदर्शीकरण नहीं करते बल्कि उस समाज की मानवीय संवेदनाओं, वैचारिक संघर्षों ,उनकी कमजोरियों और अंतर्विरोधों को पूरी सच्चाई से चित्रित करने की कोशिश करते हैं"[(2)] यहाँ ग्राम्य अपने लघ्वर्थ में नहीं, दिर्घार्थ में वर्णित है।इस संदर्भ में रामेश्वर जी का कथन बेहद अहम है- " आजादी के बाद देश भाववाचक संज्ञा न रहकर एक राजनीतिक और सामाजिक सत्ता में परिवर्तित हो गया। आजादी से पहले देश एक भाव था। 'मैला आँचल' आजादी के बाद देश को देखने और पहचानने की एक रचनात्मक कोशिश है।" [(3)] यह उपन्यास ग्राम्य - जीवन की सामाजिक संरचना की वास्तविक चित्र उकेरती है । इसीलिए इसका सामाजिक आवेक्षण अपेक्ष्य है। कोई भी लेखक अपने युग के प्रभाव से नहीं बच सकता।उसके जीवन और व्यक्तित्व समाज के भीतर रहकर ही होता है।"[(4)] रेणु जिस समाज को अपने उपन्यास में रचते हैं, वे उसके भोक्ता भी हैं। जाति सामाजिक अंग के रूप में अवस्थित है। राजपूत, तंत्रिमा, कायस्थ आदि टोलियाँ की निर्मिति जाति आधारित ही है। डॉ. प्रशांत को संदर्भित करते हुए गाँव में व्याप्त जातिगत सामाजिकता को बतलाया गया है-" यदि उसे अपनी जाति का पता होता तो शायद उसे बताने में झिझक नहीं होती।तब शायद ब्राह्मण कहने में वह गर्व अनुभव करता।" [(5)] "यौन - सम्बंधों की उन्मुक्तता दो रूपों में दर्शनीय है।एक तो नारी- पुरुष के प्रेम सम्बंधों के औदात्य और पवित्रता की टूटन के रूप में ,दूसरे शारीरिक यौन-व्यापार के नग्न और अतिशय चित्रण के रूप में।पहला रूप हमारे विकसित सामाजिक यथार्थ का रूप है और दूसरे हमारे बदलती हुई साहसपूर्ण मानसिकता का परिचायक।" [(6)] रेणु ने उपन्यास में इस कड़वे यथार्थ का साहित्यिक दर्शन करवाया है।यहाँ अनैतिक यौन सम्बंधों का स्वच्छंद वर्णन है।रमजूदास का पत्नी फुलिया के माँ-बाप से कहती है- " तुम लोगों को न लाज है और न शरम । कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगी।मानती हूँ कि बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है।मगर इतना मत दुहो कि देह का खून भी सूख जाए।"[(7)] यहाँ मठ अनैतिकता का आगार है।दासिन लछमि को महंत सेवादास और रामदास की काम- वासना का शिकार बनना पड़ता है।समस्त मेरीगंज में नैतिक प्रतिमान ढह चुके हैं - सर्वत्र स्त्री और पुरुष में किसी न किसी से अनुचित यौन सम्बंध है। कहीं नोखे की स्त्री का रामलगन सिंह के बेटे से, तहसीलदार हरगौरी का अपनी मौसेरी बहन से,बालदेव जी का लक्ष्मी कोठारिन से और कालीचरण का चरखा-स्कूल की मास्टरनी से कामासक्ति है। डॉ. प्रशांत का लगाव तहसीलदार की पुत्री काम-कुंठाग्रस्त कमली से है।विवाह-पूर्व ही डॉ. प्रशांत से कमली कमली गर्भवती हो जाती है। कुलमिलाकर स्वच्छंद यौन-सम्बंधों से मेरीगंज का आँचल को मैला हो चुका है।

स्त्री- यौन -शोषण की हैतुकी आर्थिक विपन्नता की व्यवहारिकी में ही ढूढ़ी जा सकती है।लक्ष्मी को सेवादास, नरसिंहदास, नागा बाबा, रामदास, बालदेव सभी अपने-अपने स्तर पर भोगा।उसके दुखमयी जीवन के आकर स्रोत उसकी आर्थिक विपन्नता में खोजा जा सकता है।सदाब्रिज फुलिया के पीछे पागल है।फुलिया उससे विवाह कर पेटमान के साथ भाग जाती है और होली की रात सहदेव मिसिर के साथ सहवास करती है।फुलिया की माँ सिंधवा की रखैल है। ये सारी स्थितियाँ का बीज कमजोर सामाजिक स्थिति में ही अंकुरित होता है। अवसरवादिता,सम्बंधों की मूल्यहीनता और स्वार्थपरकता भी उपन्यास में सुमिरतदास ,बालदेव आदि के माध्यम से अनावृत्त होती हैं। समस्त मूल्य-व्यवस्था का तिरोहन हो चुका है।

राजनीति सामाजिक चेतना को प्रभावित करती ही है।मेरीगंज राजनीति प्रतिबद्धता से अवगत है।इस प्रतिबद्धता की भी एक धारा है।राजनीतिक विचारधाराओं का भारत जैसे बहुवादी समाज में महत्वपूर्ण योगदान यह है कि धर्म ,जाति और आर्थिक सीमाओं के पार करके व्यक्ति को एक सूत्र में बांधने का कार्य करते हैं।"[(8)] यद्यपि रेणु कोई मतवादी नहीं, किन्तु कथा-यथार्थवादी जरूर हैं।गाँव की राजनीति का बड़ा ही सुंदर वर्णन 'मैला आँचल' में मिल जाता है।

गाँधीवादी बालदेव व बावनदास एवं तहसीलदार विश्वनाथ कांग्रेस से तथा कालीचरण, सैनिक आदि समाजवादी दल से जुड़े हुए हैं। बालदेव मेरीगंज को चन्नपट्टी जैसा बनाना चाहता है- " हम मेरीगंज को चन्नपट्टी की तरह बनाना चाहते हैं।हम अपने गाँव में झाड़ देंगे,मैला साफ करेंगे।जहाँ सफाई रहती है वहाँ का आदमी भी साफ रहता है।मन साफ रहता है।" (9) कामरेड सैनिक पूँजीवाद का विरोध इन शब्दों में करता है- " जिस तरह सूरज का डूबना एक महान सच है ,पूँजीवाद का नाश होना भी उतना ही सच है।"(10) इन सब के बावजूद -" बावणदास की उपेक्षा और परिणति मूल्यों पर केंद्रित निष्ठापूर्ण राजनीति की व्यर्थता का ही संकेत है।(11)

"धर्म मानव समाज को अपनी पूर्व पीढ़ियों से सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होता है।" (12) धर्म को आस्था का संबल प्राप्त होता है, तो विश्वास क बल भी। 'मैला आँचल' में भी ग्राम्य जीवन की धार्मिक क्रियाएँ, देवी-देवताओं सम्बंधी मान्यताएँ के दर्शन होते हैं,तो आस्तिकता और अंधविश्वास के विस्तीर्ण फैलाव भी देखे जा सकते हैं। " हर साल बरसात के मौसम में यही होता है।भगवान के हाथ की बात इंसान क्या जाने ! इंद्र भगवान से प्रार्थना की जाती है

सोशलिस्ट कालीचरण की गिरफ्तारी के लिए एस.पी. साहब के आने पर कालीचरण की माँ का सूर्य देवता के प्रति अगाध - भक्ति प्रकट होती है। उपन्यास की शहरतिया सुशिक्षित ममता डॉ.प्रशांत के पटना से गाँव आने पर प्रसाद देते हुए कहती है- " बाबा विश्वनाथ जी का प्रसाद है।बाबा विश्वनाथ तुम्हारा मंगल करें।" [14]ग्राम्य- जीवन की सामाजिकता भूत-प्रेत के अस्तित्व की अवधारणा से आबद्ध है। 'मैला आँचल' में कमली,तहसीलदार और कालीचरण को छोड़ सभी भूत,प्रेत,डाइन में विश्वास रखते हैं। "बालदेव जी ने तो बहुत बार भूत को अपनी आँखों से देखा है।भैंस के पीछे-पीछे खैनी - तम्बाकू माँगता है।" [15]बावनदास को देख गाड़ीवान भूत समझ बैठता है।मेरीगंज का जंगल भुतहा जंगल से जाना जाता है। गणेश की नानी को लोग डायन कहते हैं। चिचाय की माँ पारबती (पार्वती) की माँ के बारे में कहती है- पारबती की माँ थी।डाइन है ! तीन कुल में एक को भी नहीं छोड़ा।सबको खा गई"[16]

धर्म तर्क का नहीं,आस्था का विषय है।मेरीगंज में जब दवाखाना खोलने की बात चली,तो लोगों ने विरोध किया कि डॉक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं।हैजे के इंजेक्शन लेने से भी लोग डरते हैं।कमला को प्रशांत जिन लगने लगता है।तहसीलदार सोचने लगता है- " डॉक्टर जब से उसके परिवार में घुला मिला है, रोज अलाये-बलाये की आमदनी होती ही रहती है।" [17]गणेश की नानी डायन समझकर मारी जाती है। वृक्ष विशेष को पीर समझ चीथड़ा चढ़ाने का भी रिवाज है।'मैला आँचल' का मेरीगंज पिछड़ा गाँव है। वहाँ की स्थिति बदहाल है - " कपड़ों के बिना सारा गाँव अर्धनग्न है।मर्दों ने पैंट पहनना शुरू कर दिया है और औरतें आँगत में काम करते समय एक कपड़ा कमर में लपेटकर काम चला लेती हैं ; बारह वर्ष तक के बच्चे नंगे ही रहते हैं।" [18]प्रशांत निर्धन जनता की दयनीय स्थिति से दुखी होकर लिखता है- "क्या करेगा वह संजीवनी बूटी खोजकर?भूख और बेबसी से छटपटाकर मरने से अच्छा है मैलेग्नेण्ट मलेरिया से बेहोश होकर मर जाना।" [19]गाँव में काम नहीं।श्रमिक मजदरी करने कटिहार जाते हैं। छोटे किसान व मजदूरों का शोषण चरम पर है। रेणु लिखते हैं - "अनाज के ऊँचे दर से गाँव के तीन ही व्यक्तियों ने फायदा उठाया है-तहसीलदार साहब ने,सिंघ जी ने और खेलावन यादव ने।छोटे-छोटे किसानों की जमीनें कोड़ी के मोल बिक रही है।मजदूरों को सवा रुपये रोज मजदरी मिलती है,लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता ।पाँच साल पहले सिर्फ़ पाँच आने रोज मजदूरी मिलती थी और उसी में घर-भर के लोग खाते थे"[20]इलाज के खर्च का भोर वहन न कर पाने की स्थिति में किसान डॉ. प्रशांत से कहता है - "हुजूर, लड़की की जात बिना दवा-दारू के ही ठीक हो जाती है"[21]

मैला आँचल में जमींदारों का शोषक रूप चित्रित है।तहसीलदार विश्वनाथ मलेटरीवालों को डाली पहँचाते हैं,किन्तु उसके पैसे अपने टोले तथा लोबिन के टोले से वसूल करते हैं ।तहसीलदार, सिंघ जी और खेलावन सिंह छोटे किसानों को विपन्न करके ही सम्पन्न हुए हैं। मेरीगंज में भ्रष्ट सरकारी तंत्र को उजागर किया गया है।बावणदास इस भ्रष्ट तंत्र का शिकार होता है।पुलिस संथालों की धर-पकड़ करके नाना प्रकार से यातना देते हैं।

संस्कृति के बिना समाज नहीं हो सकता। जब व्यक्तिक संस्कार सामूहिक संस्कार में परिणत हो जाता है ,तो संस्कृति की निर्मिति होती है।रेणु के रचना-संसार में लोक -संस्कृति के प्रति संसक्ति है। लोक - संस्कृति में लोगों के रहन-सहन ,चाल-चलन, पर्व-त्यौहार,मैले-ठेले, लोक-कथाएँ, लोक -गीत ,लोक नृत्य एवं लोकोक्तियाँ शामिल हैं।मैला आँचल में होली का उल्लेख है।प्रशांत होली के अवसर पर स्वप्न -लोक में खो जाता है । "डॉक्टर को भवभूति के माधव-मालती की याद आती है। होली को पहले मदनमहोत्स्व कहा जाता था।आम की मंजरियों से मदन की पूजा की जाती थी।" [22]उपन्यास में रामनगर मेला, रातेहट मेला, लाल बाग मेला का उल्लेख भी है। रेणु के यहाँ लोक कथाओं का अपना महत्त्व है । डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त कहते हैं - लोक कथाओं के साथ भारतीय ग्रामीण जीवन की युगीन ट्रेजेडी को 'रेणु' ने इतनी कलात्मकता के साथ गूँथ दिया है कि इस उपन्यास का शिल्प महाकाव्यात्मक हो उठा है। [23] लोककथा,लोकगीत एवं लोकनृत्य की महत्वान्विति भी यहाँ है।मैला आँचल वास्तव में ग्राम्य जीवन का यर्थाथ सामाजिक चित्रण है, जिसका अपना अर्थ, अपना मूल्य है।सुकृति के अर्थ-संधान से मूल्य अभिवर्धन की संभावना हमेशा बनी रहती है। 'मैला आँचल' भी वैसी ही औपन्यासिक कृति है।

****

संदर्भ:-

1. रेणु, फणीश्वरनाथ (1975). *मैला आँचल* (आठवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या - 6). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
2. राय , रामेश्वर (2015). *हिंदी उपन्यास : गोदान से महाभोज तक* (प्रथम संस्करण ,पृष्ठ सं-107). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन
3. राय , रामेश्वर (2015). *हिंदी उपन्यास : गोदान से महाभोज तक* (प्रथम संस्करण ,पृष्ठ सं-105). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन
4. डॉ. शर्मा, ममता. *रेणु और रघुवीर सहाय के आँचलिक उपन्यास* (पृष्ठ संख्या - 95).
5. डॉ. शर्मा, ममता. *रेणु और रघुवीर सहाय के आँचलिक उपन्यास* (पृष्ठ संख्या - 49).
6. डॉ. शर्मा, ममता. *रेणु और रघुवीर सहाय के आँचलिक उपन्यास* (पृष्ठ संख्या - 106).7. रेणु, फणीश्वरनाथ (1975). *मैला आँचल* (आठवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या - 59). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
8. शर्मा, ममता. *रेणु और रघुवीर सहाय के आँचलिक उपन्यास* (पृष्ठ संख्या - 121).
9. रेणु, फणीश्वरनाथ (1975). *मैला आँचल* (आठवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या - 31). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
10. रेणु, फणीश्वरनाथ (1975). *मैला आँचल* (आठवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या - 103). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
11. मधुरेश (2009). *हिंदी उपन्यास का विकास* (प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या - 141). नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन
12. डॉ. पटेल, उत्तमभाई. *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में कृषक जीवन* (पृष्ठ संख्या -136).
13. रेणु, फणीश्वरनाथ (1975). *मैला आँचल* (आठवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या - 9). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
14. रेणु, फणीश्वरनाथ (2008). *मैला आँचल* (पेपरबैक्स संस्करण, पहली आवृत्ति, पृष्ठ संख्या - 57). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
15. रेणु, फणीश्वरनाथ (1975). *मैला आँचल* (आठवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या - 105). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन
16. रेणु, फणीश्वरनाथ (1975). *मैला आँचल* (आठवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या - 97). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन

जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' में शोक की अभिव्यक्ति

डॉ.वीणा जे.
सह आचार्या
हिन्दी विभाग,सनातन धर्म कॉलेज, आलप्पूषा

प्रस्तावना: - 'भारतीय संस्कृति के पुजारी' के रूप में हिन्दी साहित्य जगत् में ख्यातिप्राप्त श्री जयशंकर प्रसाद वास्तव में भारतीय संस्कृति के ही नहीं बल्कि 'हिन्दी साहित्य' के भी पुजारी है । हिन्दी के स्वच्छंदवादी काव्यधारा को रूपाइत करने में प्रसाद जी का योगदान चिर स्मरणीय है । उनकी सृजन प्रतिभा सर्वतोन्मुखी है। उन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास,कहानी, निबंध आदि हिन्दी साहित्य की प्राय: सभी विधाओं में अपनी तूलिका चलाई है, और उन्हें अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं के माध्यम से समृद्ध किया है। उनकी हरएक गद्य रचनाओं में काव्य गुण अधिक द्रष्टव्य है, इसका कारण केवल यह है कि वे मूलत: कवि है। इसी काव्यात्मकता उनके नाटकों एवं कहानियों में स्पष्टत: दृष्टिगोचर होते हैं। काव्यात्मकता ने इनके साहित्यिक जीवन को स्वर्णिम बना दिया है।

प्रसाद की काव्य यात्रा चित्राधार काव्य संग्रह से शुरू होकर 'प्रेम पथिक', 'कानन कुसुम', 'लहर', 'झरना' आदि काव्य संग्रहों से होकर बाद में 'आँसू' नामक खंड काव्य तथा 'कामायनी' नामक महाकाव्य तक पहुँच गया है। इनकी हर कविता में चाहे मुक्तक हो या प्रबंधात्मक मानव मन की भावनाओं की अभिव्यंजना हुई है। अपनी कविता द्वारा प्रसाद जी ने भाव जगत् से विचार विवेचन के धरातल पर पहुंचकर मानव जीवन के सैद्धांतिक पक्ष के निरूपण करने का प्रयास किया है । उनकी कविता में सुख-दु:ख का सामंजस्य , करुणा की सार्वभौमिकता, समरसता के आनंद, रहस्यमयी अद्वैत भाव आदि का अनावरण हुआ है । प्रस्तुत आलेख में प्रसादजी के विख्यात विरह काव्य 'आँसू' में चित्रित विरहजन्य शोक की अभिव्यक्ति के विश्लेषण का प्रयास है।

बीज शब्द :-

स्वच्छन्दवादी,समरसता,आत्माभिव्यंजना,आत्मवेदना,घनीभूतपीड़ा,शापोक्ति, दार्शनिकभावभूमि,दिवंगत,आत्मनिंदा,शोकाभिव्यक्ति,विधुरप्रेमी,लावण्यराशि आदि

मुख्य अंश :-'आँसू' प्रसाद जी का बहुचर्चित खंड काव्य है । यह एक गीतिकाव्य है, जिसके हर संस्करण में उन्होंने कुछ परिवर्तन और परिवर्धन किया है । इसमें आत्माभिव्यंजनात्मक विरह की अभिव्यक्ति हुई है। सुशीला भारती की राय में –"इसमें स्वानुभूति का प्रकाशन, संगीतात्मकता, आवेग, तीव्रता, भाव प्रवणता, विह्वलता तथा मार्मिकता अत्यधिक है। यह मुक्तक काव्य होते हुए भी इसमें एकसूत्रता है । यह कवि के जीवन की निकटतम अभिव्यक्ति है, साथ ही श्रेष्ठतम विरह काव्य भी ।"[१] आँसू में लौकिक प्रेम की व्यंजना हुई है, पर कवि ने इसे रहस्यवादी विचारधारा से संपृक्त कर दिया है।

प्रसाद में प्रेम आद्यंत भावबोध और काव्य चेतना का तीव्र पक्ष ही रहा है, क्योंकि प्रेम के संयोग एवं विप्रलंभ पक्ष का काफी अनुभव उनको हुआ है । 'आँसू' में किसी ऐसे विनष्ट प्रेम की वेदना का एहसास ही प्राप्त होता है, जिसे केवल काल्पनिक कहकर छोड़ नहीं सकते । इसमें अपनी प्रियतमा के चिर वियोग की चोट खाकर तड़पनेवाले विधुर प्रेमी की आत्मवेदना की अभिव्यक्ति ही प्राप्त होती है।

"इस करुणा कलित हृदय में /अब विकल रागिणी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती ?"[२]

ह्रस्वकाल के प्रेम संबंध को अकस्मात विराम चिह्न लगाकर दिवंगत हुई प्रेमिका और उसके साथ बिताए प्रैमोन्माद भरे दिनों की दुर्निवार स्मृतियों की पीड़ा से **'आँसू' मुखरित रहता है। /"जो घनीभूत पीड़ा थी**
मस्तक में स्मृति सी छाई / दुर्दिन में आंसू बनाकर
वह आज बरसने आई।"[३]

प्रसाद जी ने अपने अंतराल की समस्त उद्वेलित भावनाओं को 'आँसू' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यह उनके अन्य रचनाओं से एकदम उत्कृष्ट है। 'आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'आँसू' काव्य के बारे में इस प्रकार लिखा है – ''आँसू' प्रसादजी की पूर्व रचनाओं से बहुत आगे है । उसमें 'चित्रधार' की सी हल्की, चमत्कार चंचल दृष्टि नहीं है , न 'प्रेम पथिक' का सा रोमांटिक प्रेमादर्श का निरूपण है। वह अधिक गहरी चीज़ है। 'आँसू' कवि के जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला का आविष्कार है।"[४] 'आँसू' में कवि निस्संकोच भाव से विलास जीवन का वैभव दिखाता है, फिर उसके अभाव में आँसू बहाता और अंत में जीवन में पत्नी के समझौता करता है।कवि ने अपने जीवन में पत्नी के चिर वियोग का दीर्घ शोक प्राप्त किया। उसके मन में वियोग व्यथा रागिणी बनकर मन को बहला रही है । उनका अंतर्मन वेदना को पाकर समस्त सुख को एक अन्य की दृष्टि से देखकर अनुभव करने लगता है –

"अभिलाषाओं की करवट /फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना / भीगी पलकों का लगना।"[५]

वियोगजन्य पीड़ा के तट पर खड़े कवि के मन में अपनी प्रेयसी के रूप सौन्दर्य की यादें जाग उठती है, और उसके अभाव में वह अपने जीवन को निरर्थक महसूस करता है । इसी कारण वह अपनी प्रियतमा के साथ आत्मैक्य की अनुभूति पाने की कोशिश करके उसकी सुखद स्मृतियों के साथ कल्पना के जगत में विचरण करने लगता है, और उसकी स्मृतियों को वेदना के स्तर से अलगकर अपने शिष्ट जीवन के पथ-प्रदर्शक चैतन्य के रूप में स्वीकार कर अपनी प्रिया को उत्कृष्टता देने का प्रयास करता है । कवि अपनी प्रेयसी की उपासना को आगे रखकर स्वयं चरितार्थ होने का प्रयत्न करता है। ये पंक्तियाँ देखिए –

"सपनों की सोन जुही सब /बिखरें, ये बनाकर तारा
सीत सरसिज से भर जावे /वह स्वर्ग गंगा की धारा ।
सब का निचोड़ लेकर तुम /सुख से सूखे जीवन में
बरसों प्रभात हिमकन-सा /आँसू इस विश्व सदन में ।"[६]

प्राण प्रेयसी के वियोग से उत्पन्न वेदना के वर्षपात में अपने गतकाल के प्रेम सुरभिल जीव के जो चित्र हृदय पटल पर उभर कर आते हैं, उसकी प्रेयसी के सौन्दर्य के द्युतिमय चित्र भी है। देखिए –

"शशि मुख पर घूँघट डाले, आँचल में दीप छिपाए
जीवन गोधूली में, कौतूहल से तुम आए ।"[७]

कवि अपनी प्रेयसी को प्राकृतिक सौन्दर्य से तादात्म्य स्थापित करने केलिए 'प्रतिमा में सजीवता सी', 'जगती थी ज्योति भरी-सी', 'घन में सुंदर बिजली सी' आदि उपमाओं से अलंकृत करता है । अपनी हृदयेश्वरी में कवि यौवन सुलभ रूपोत्कर्ष की चरम सीमा का दर्शन करते हैं । कवि केलिए वह 'कला की कमनीयता है, और 'लावण्य शशी' है। उनके साथ बिताये दीवा-रात की सुखद स्मृतियों में डूबकर कवि अपने हृदय को कुछ समय केलिए आनंद सागर में डूबो देता है।

परिरंभ कुंभ की मदिरा, विश्वास मलय के झोंके
मुख चंद्र चाँदनी जलसे, मैं उठता था मुँह धोके ।"[८]

स्नान करके आनेवाली अपनी प्रेमिका की लावण्यमयी टन की शोभा कवि मन को उद्वेलित करता है –

"चंचला स्नान कर आवे /चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा/आलोक मधुर थी ऐसी ।"[९]

इस तरह प्रेम में उलझे रहना आनंददायक ही था। अपनी प्रेयसी की बिखरी अलकों की सुंदरता, उसके काली आँखों की चंचलता आदि कितनी जल्दी विनष्ट हुई। विधि ने सुख के साथ वियोग व्यथा को भी जबरदस्त चिपटा रखा। अकेलेपन के एहसास में कवि मन अत्यंत क्षब्ध हो जाता है , और कहता है-

"निष्ठुर ! यह क्या छिप जाना /मेरा भी कोई होगा ।"[१०]

यहाँ 'निष्ठुर' शब्द के द्वारा कवि अपने जीवन में घटित अपरिहार्य नष्ट के तीव्रानुभव का रोष ही व्यक्त करता है। दरअसल यह अपनी प्रेयसी की असमय मृत्यु से उत्पन्न असंतुलित एवं चंचल चित्तावस्था की झटपटाहट है। अपनी प्राण प्रेयसी के प्रति उसके अनुराग का रंग कवि हृदय को ऐसा रंजित कर गया कि आँसुओं में धुल जाने के बजाय वह निखर उठता है, उसकी वेदना को बढ़ाने केलिए। प्रणय के नशे में आमग्न कवि पर कितना कठोर आघात आ पड़ा।

"मादकता से आए तुम /संज्ञा से चले गए थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते /थे, उतरे हुए नशे से ।"[११]

बाद में चिर वियोग के सत्य से अवगत होकर आश्वस्त होने की कोशिश तो

कवि करता है। फिर भी कभी कभी वह अपना आत्म नियंत्रण खो बैठता है, और शापोक्तियाँ और ईश्वर निंदा उनके मुँह से निकल पड़ता है, फिर कवि अपने इस चित्त विक्षोप पर पछताने लगता है, और मनको अपने काबू ,में लाकर स्वयं आश्वस्त होकर कहता है – पाऊँगा कहीं तुम्हें तो ग्रह पाठ में टकराऊँगा।"[१२]

इस तरह संयोग भी वेला की सुखद स्मृति तथा वर्तमान की वियोग जन्य दुरवस्था से गुज़रते हुए कवि मन अंत में दार्शनिक भावभूमि में स्थिर होता नज़र आता है। अब शापोक्ति, देव निंदा एवं आत्म निंदा पक्व एवं स्वस्थ चित्तावस्था में बदल जाता है, और दु:ख में तपा हुआ व्यष्टि-प्रेम समष्टि प्रेम में परिणत होता है।

"सबका निचोड़ लेकर तुम सुख से सूखे जीवनमें
बरसो प्रभात हिमकन-सा आँसू इस विश्व सदन में।"[१३]

अंत में कवि अपने व्यक्तिगत दुख को एक दार्शनिक स्तर पर रख लेता है, और उस दुख को स्वार्थमुक्ति का प्रेरक तत्व स्वीकार करने केलिए तैयार होता है, इतना ही नहीं वह अपने क्षोभ एवं भावावेग पर काबू पाकर, संयम से काम लेकर समचित्त से दिवंगत प्रेमिका को मंगल मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित कर लेता है, और उसे मंगल कामनाएँ देकर कविता को समाप्त करता है।

निष्कर्ष :-'आँसू' केवल एक विरह काव्य ही नहीं बल्कि चिर वियोगजन्य पीड़ा से उत्प्रेरित काव्य कृति है। इसमें वैयक्तिक शोक का आह सुनाई पड़ता है, और इसमें वैयक्तिक शोक का आह सुनाई पड़ता है , और इसमें संवलित शोकानुभूतियाँ कवि के वैयक्तिक जीवनानुभव का सीधा-सच्चा दस्तावेज़ है। इस गीति काव्य के अंत में कवि की व्यक्ति वेदना विश्व वेदना में पर्यवासित हो गयी है। अंत में हम यहीं कह सकते हैं कि हिन्दी के गीतिकाओं में 'आँसू' अपना उत्कृष्ट स्थान रखता है।

*****

संदर्भ ग्रंथ :-

1. कामायनी इतिहास और रूपक :सुशील भारती, मिलिंद प्रकाशन,हैदराबाद पृ ३२
2. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ १
3. वही
4. आचार्य नन्ददुलारे वाजपायी , जयशंकर प्रसाद , बैन्यन ट्री पब्लिकेशन्स, पृ ५८ ३
5. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ १
6. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ. ५&६
7. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ.१
8. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ, २
9. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ, २
10. वही
11. वही
12. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ. ३
13. जयशंकर प्रसाद : आँसू (खंड काव्य) कविताकोश पृ, ६
14. आचार्य उमेश शास्त्री : प्रसाद साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिकदर्शन, देवनगर प्रकाशन जयपुर

डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचार

••• राजनीति में हिस्सा ना लेने का सबसे बड़ा दंड यह है कि अयोग्य व्यक्ति आप पर शासन करने लगता है।

••• एक विचार को प्रसार की उतनी ही आवश्यकता होती है जितना कि एक पौधे को पानी की आवश्यकता होती है। नहीं तो दोनों मुरझाएंगे और मर जायेंगे।

••• बुद्धि का विकास मानव के अस्तित्व का अंतिम लक्ष्य होना चाहिए।

••• छीने हुए अधिकार भीख में नहीं मिलते, अधिकार वसूल करना होता है।

••• मैं बहुत मुश्किल से इस कारवां को इस स्थिति तक लाया हूं। यदि मेरे लोग, मेरे सेनापति इस कारवां को आगे नहीं ले जा सकें, तो पीछे भी मत जाने देना।

••• महात्मा आये और चले गये। परन्तु अछुत, अछुत ही बने हुए हैं।

••• वर्गहीन समाज गढ़ने से पहले समाज को जातिविहीन करना होगा। .

••• राजनीतिक अत्याचार, सामाजिक अत्याचार की तुलना में कुछ भी नहीं है। समाज को बदनाम करने वाले सुधारक सरकार को नकारने वाले राजनेता की तुलना में अधिक अच्छे व्यक्ति हैं।

••• मैं समझता हूं कि कोई संविधान चाहे जितना अच्छा हो, वह बुरा साबित हो सकता है, यदि उसका अनुसरण करने वाले लोग बुरे हों। एक संविधान चाहे जितना बुरा हो, वह अच्छा साबित हो सकता है, यदि उसका पालन करने वाले लोग अच्छे हों।

••• राष्ट्रवाद तभी औचित्य ग्रहण कर सकता है, जब लोगों के बीच जाति, नस्ल या रंग का अन्तर भुलाकर उनमें सामाजिक भ्रातृत्व को सर्वोच्च स्थान दिया जाये।

••• जो कौम अपना इतिहास नही जानती है, वह कौम कभी अपना इतिहास नही बना सकती है।

••• महान प्रयासों को छोड़कर इस दुनिया में कुछ भी बहुमूल्य नहीं है।

••• एक सफल क्रांति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि असंतोष हो। जो आवश्यक है वह है न्याय, आवश्यकता, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों के महत्व पर गहन और गहन विश्वास।

••• यदि आप मन से स्वतंत्र हैं तभी आप वास्तव में स्वतंत्र हैं।

••• हमें जो स्वतंत्रता मिली है उसके लिए हम क्या कर रहे हैं? यह स्वतंत्रता हमें अपनी सामाजिक व्यवस्था को सुधारने के लिए मिली है। जो असमानता, भेदभाव और अन्य चीजों से भरी हुई है, जो हमारे मौलिक अधिकारों के साथ संघर्ष करती है।

••• अगर मुझे लगा कि मेरे द्वारा बनाये गए संविधान का दुरुपयोग किया जा रहा है, तो सबसे पहले मैं इसे जलाऊंगा।

••• स्वतंत्रता का अर्थ साहस है, और साहस एक पार्टी में व्यक्तियों के संयोजन से पैदा होता है।

••• शिक्षा महिलाओं के लिए भी उतनी ही जरूरी है जितनी पुरुषों के लिए।

••• ज्ञान हर व्यक्ति के जीवन का आधार है।

••• आज भारतीय दो अलग-अलग विचारधाराओं द्वारा शासित हो रहे हैं। उनके राजनीतिक आदर्श जो संविधान के प्रस्तावना में इंगित हैं वो स्वतंत्रता, समानता और भाई -चारे को स्थापित करते हैं और उनके धर्म में समाहित सामाजिक आदर्श इससे इनकार करते हैं।

••• यदि हमें अपने पैरों पर खड़े होना है, अपने अधिकार के लिए लड़ना है, तो अपनी ताकत और बल को पहचानो। क्योंकि शक्ति और प्रतिष्ठा संघर्ष से ही मिलती है।

••• मैं यह नहीं मानता और न कभी मानूंगा कि भगवान बुद्ध विष्णु के अवतार थे। मैं इसे पागलपन और झूठा प्रचार-प्रसार मानता हूं।

••• हालांकि मैं एक हिंदू पैदा हुआ था। लेकिन मैं सत्य निष्ठा से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हिन्दू के रूप में मरूंगा नहीं।

****

बाल मनोविज्ञान:- बाल साहित्य के सन्दर्भ में

डॉ.जी.शान्ती
(शोध निर्देशिका)
सह-आचार्य, हिंदी विभाग श्री अबिरामी इल्लम, वनप्रस्था रोड 2/179B2 ,
वडवल्लि,कोयम्बतूर - 41 तमिलनाडु

श्री विद्या पी.वी.
(शोध छात्रा)
कोयम्बतूर,तमिलनाडू

प्रस्तावना:- मानव विज्ञान की एक शाखा है बाल मनोविज्ञान जिसका एकमात्र संबंध बाल जीवन के विभिन्न पहलुओं से हैं। बाल मनोविज्ञान समर्थक या विधायक विज्ञान है, जो बच्चों की शारीरिक और मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन जन्म काल से परिपक्वता तक करता है। मनोविज्ञान इसमें बच्चे के विकास का ही अध्ययन किया जाता है। बाल मनोविज्ञान का बाल साहित्य से गहरा संबंध है। बाल साहित्य तब उत्कृष्ट माना जाता है जब वह बाल मनोविज्ञानो पर आधारित होता है। अतः बाल मनोविज्ञान की समझ रखने वाले साहित्यकार ही बाल साहित्य लिख सकता है। बालक की विभिन्न आर्जित तथा जन्मजात प्रवृत्तियों का अध्ययन करते समय देखा गया कि बाल साहित्य का अप्रत्यक्ष रूप से उनके विकास में अत्यधिक योगदान होता है। बाल साहित्य के मनोवैज्ञानिक योग के कारण बालक के व्यक्तित्व निर्माण में असाधारण महत्व होता है।

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान होता है और व्यवहार का संबन्ध अन्तर्जगत और बर्हिजगत दोनों से ही है। बालमनोविज्ञान बालक के मानसिक और शारीरिक दोनों के ही विकास का अध्ययन प्रस्तुत करता है। विकास की यह प्रक्रिया विभिन्न मानसिक और शारीरिक परिवर्तनों के फलस्वरूप होती है। बालक जन्म लेते समय उसके क्रियाकलाप चेतन मन पर आधारित होते है। विकास के साथ उसका अवचेतन-मन तथा अचेतन मन भी विकसित होता है। जिनका बालसाहित्य से गहरा संबन्ध है।

बीजशब्द :- बाल मनोविज्ञान, मूलप्रवृत्तियाँ, संवेग, चेतनावस्था, अवधान

मूल आलेख:- मानव के समूचे जीवन की आधारशिला बाल्यावस्था में ही रखी जाती है। बाल्यावस्था में उसके जीवन को विकास की सही और सन्तुलित दिशा मिलनी चाहिए। तभी स्वस्थ मानव-जीवन निर्मित हो सके। प्राचीन काल से ही बचपन की महत्ता समझी जाती रही है। फिर भी आधुनिक जीवन में बाल-मनोविज्ञान के जन्म और विकास से यह क्षेत्र विस्तृत हो गया है। बाल मनोविज्ञान को आज के युग की आवश्यकता कहा गया है। मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान होता है और व्यवहार का संबन्ध अन्तर्जगत और बर्हिजगत दोनों से ही है। बालमनोविज्ञान बालक के मानसिक और शारीरिक दोनों के ही विकास का अध्ययन प्रस्तुत करता है। विकास की यह प्रक्रिया विभिन्न मानसिक और शारीरिक परिवर्तनों के फलस्वरूप होती है। बालक जन्म लेते समय उसके क्रियाकलाप चेतन मन पर आधारित होते है। विकास के साथ उसका अवचेतन-मन तथा अचेतन मन भी विकसित होता है। जिनका बालसाहित्य से गहरा संबन्ध है।

मनोवैज्ञानिकों ने बाल-मन से लेकर बालकों के प्रत्येक व्यावहार और क्रियाओं का गहराई से अध्ययन करने के बाद बालकों के स्वस्थ मनोविकास केलिए बाल-मनोविज्ञान को आवश्यक माना है। बालसाहित्य को बाल-मनोविज्ञान ने ही जन्म दिया है। इस कारण से बालसाहित्य के अध्ययन केलिए बाल-मनोविज्ञान का संक्षिप्त परिचय आवश्यक हैं।

बालक के जीवन में क्रियात्मक-क्रियाओं का भी विशेष स्थान होता है। जिसमें अर्जित क्रियाओं से अधिक जन्मजात क्रियाओं का महत्व अधिक है। शरीर के गठन तथा मन के विकास में संवेगों का भी महत्व होता है। बालक में मुख्य रूप से भय] प्रेम और क्रोध के संवेग होते है। इनका भी प्रभाव बालक के जीवन पर पड़ता है। बालक का अधिकांश विकास वंशानुक्रम तथा वातावरण पर भी निर्भर होता है। और यह विकास उसकी स्मृति तथा कल्पना पर भी आश्रित है। सीखने की प्रवृत्ती खेलने के प्रवृत्ती आदि बालक के व्यक्तित्व निर्माण में बहुत सहायक होती है। खेलकूद बालकों केलिए इतना आवश्यक है, जितना शरीर केलिए भोजन। अतः बालसाहित्य बालकों की इन्हीं विभिन्न प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा जाता है।प्रतीक सर्जना से भी बाल-मनोविज्ञान का संबन्ध है। इसे भी एक मानसिक या मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया कहा जा सकता है। प्रतीक का आधार मन और भावना है। काव्य में प्रतीक अरूप एवं सूक्ष्म भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। जो स्थूल तथा मूर्त रूप में प्रस्तुत की जाती है। इसलिए मानसिक क्रियाओं में प्रतीक को भी एक क्रिया कहा जा सकता है। भाव या विचार व्यक्ति के मानसिक विकास पर आधारित होते है।

साहित्य के क्षेत्र में प्रतीक चेतन एवं अवचेतन मानस की विचार शक्ति द्वारा जन्म लेते है। भावनाएँ अमूर्त,सूक्ष्म एवं जटिल होती है, वे प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती है। बाल साहित्य में भी प्रतीक बालक के अचेतन मन की अनेक भावनाओं के उद्घाटन में सहायता देते हैं। बालसाहित्य सर्जन प्रायः बडे ही व्यक्ति करते है। और यदि उनकी भावनाएँ और कल्पनाएँ बालकों की भावनाओं से तादात्म्य नहीं रख पाती तो वे स्वस्थ बाल-साहित्य का निर्माण नहीं कर सकते। तब प्रतीकों द्वारा बालसाहित्य में सहयोग मिल सकता है।प्रतीकों का प्रभाव बालकों की सहज-अनुभूतियों एवं चेतना पर भी पड़ता है। साहित्य में इनके द्वारा बालकों के अनेक संवेगों और प्रवृत्तियों का शोधन होता है। बालक अपने मन की भावनाओं को साहित्य में पढकर प्रसन्नता प्राप्त करता है। इससे उसकी भावनाओं तथा संवेगों का परिष्कार होता है। प्रतीक बच्चों के चेतन तथा अचेतन मन के संवेगात्मक तनावों को काव्य में वैज्ञानिक अभिव्यक्ति द्वारा मुक्त प्रसरण प्रदान करते है।

बालसाहित्य में प्रतीकों के अध्ययन से पहले मनोविज्ञान के कुछ उन विशेष पहलुओं को समझना आवश्यक है। बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। जैसे- चेतन मन, अचेतन मन] संवेग स्मृति,कल्पना, सीखना, व्यक्तित्व वंशानुक्रम और वातावरण आदि।

मन की विभिन्न अवस्ताएँ:-मनोवैज्ञानिक मन की तीन अवस्ताएँ माने जाते हैं – चेतनावस्था, अवचेतनावस्था, एवं अचेतनावस्था। चेतनावस्था- यह मन की एक विशेष अवस्था होती है। वर्तमान ज्ञानात्मक अनुभव ही चेतना है। चेतनावतस्था मन की बाहरी अवस्था है। जिसका हमें ज्ञान रहता है और हमारी अनुभूति तथा ध्यान का विषय होती है। संक्षिप्त रूप से मन की चेतनावस्था वह है,जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन आदि मानसिक प्रक्रियाएँ होती है।- जगदानन्द पाण्डेय-मनोविज्ञान परिचय- पृष्ठ-[63] अवचेतनावस्था - यह चेतन और अचेतन मन के बीच की मानसिक अवस्था होती है। इसमें अनुभव चेतना केन्द्र के समीप ही अस्पष्ट रूप में उपस्थित होती है। इन अनुभवों पर हमारी चेतना केन्द्रित नहीं रहती। इसलिए इसका हमें ज्ञान नहीं रहता, थोड़ा सा मानसिक प्रयत्न करने पर इन अनुभवों को हम चेतना में ला सकते हैं। हमारी आदतें रूचि, कल्पना,स्मृति, स्थायी भाव, तथा संवेग आदि अवंचेतना सदैव मौजूद रहती है।

अचेतनावस्था- यह मन की आन्तरिक अवस्था है, जिसका निर्माण मूलप्रवृत्तियों के दमन या इच्छाओं के अवरोध के कारण होता है। चेतन मन अपने क्षेत्र से बाहर निकाल देने वाले सारे अनुभव अवचेतन में एकत्रित रहते है। चेतन मन से ही अचेतन मन निर्मित होता है। मानव मन के अधिकांश भाग अचेतन है, जो छिपकर या अव्यक्त रूप से हमारे व्यवहारों को प्रभावित करता है। संघर्ष या दमन के कारण जो विचार चेतन मन में आते हैं, उनको चेतन मन अपनी सीमा से हटा देना चाहता है, परन्तु उनमें सफल नहीं होता और इसकी प्रक्रिया यह होती है कि वे विचार अचेतन मन में चले जाते हैं। अचेतन मन में ये विचार भावना - ग्रन्थि के रूप में अपना स्थायी प्रभाव रखते हैं। चेतन, अवचेतन तथा अचेतन मन के विश्लेषण के बाद, बाल साहित्य पर इनका क्या प्रभाव है, इसका अध्ययन भी आवश्यक है। बालसाहित्य में बालक के अचेतन मन से संबन्धित भावनाओं का सबसे अधिक महत्व होता है। क्योंकि अचेतन मन बालक के प्रत्येक प्रकार के व्यवहार को संचालित करता है और जीवन का निर्देशन करता है। यदि बालक की भावनाओं या इच्छाओं का दमन किया जाता है तो वे भावनाएँ अचेतन मन में पहुँचकर कुण्ठाएँ और ग्रन्थियाँ बन जाती है। इससे बालक हठी, उद्दण्डी, और विकृत मानसिक स्वास्थ्य वाले हो जाते है। बालसाहित्य में बालक के अचेतन मन की भावनाओं का उचित परिष्कार हो और उन्हें अच्छी दिशा दी जा सके।

2. सहज-क्रियाएँ-मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का विज्ञान है। परिवेश से प्राप्त उत्तेजना के कारण होनेवाली प्रक्रिया व्यवहार है। इस व्यवहार की अभिव्यक्ति मनुष्य की भावात्मक, ज्ञानात्मक और क्रियात्मक आदि विभिन्न क्रियाओं द्वारा होती है। मनोवैज्ञानिकों ने क्रियात्मक क्रियाओं को दो भागों में विभाजित किया है। - जन्मजात या निर्विकल्प क्रियाएँ और अर्जित या सविकल्प क्रियाएँ। सहज क्रियाओं का अध्ययन जन्मजात क्रियाओं के अन्तर्गत किया जाता है.

3.मूल प्रवृत्तियाँ-मूल प्रवृत्तियाँ भी सहज क्रियाओं की तरह जन्मजात और स्वाभाविक होती है। इसलिए यह प्रत्येग प्राणी में सामान्य रूप से पायी जाती है। इनको भी सीखने की आवश्यकता नहीं होती है। "मूल प्रवृत्ति, परम्परागत या जन्मजात मनो-शारीरिक प्रवृत्ति है, जो प्राणी को किसी विशेष वस्तु देखने, उसके प्रति ध्यान देने, उसे एक विशेष प्रकार की संवेगात्मक उत्तेजना का अनुभव करने और उससे संबन्धित एक विशेष ढंग से कार्य करने या ऐसा आचरण करने की प्रबल इच्छा के अनुभव केलिए बाध्य करती है।" [w.mcdaugall; 'Soual-Psychology', pg-25]वुडवर्थ मूलप्रवृत्ती को 'बिना सीखा हुआ व्यवहार' कहते है। **[Robert S. woodworth aud Donald G. Margius, "Psychology", pg.272]** जेस्म के अनुसार – "मूल प्रवृत्ती किन्हीं विशेष उदेश्यों की पूर्ती केलिए आचरण करने की वह क्षमता है, जिसमें न तो लक्ष्य का पूर्व ज्ञान रहता है और न उस आचरण की शिक्षा ही मिली होती है।" [William James, 'Text-Book of Psychology' – Pg:391]स्पष्ट है कि मूलप्रवृत्ती प्राणी की वह शारीरिक एवं मानसिक प्रकृत्ति है जो उसे विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट आचरण केलिए प्रेरित करती है।

4.स्मृति:-पूर्ववर्ती अनुभवों पर आधारित मानसिक प्रक्रिया है स्मृति। इसको अतीत का विचारात्मक अथवा मानसिक प्रत्याहन भी कहते है। क्योंकि यह हमारे गत अनुभवों की मानसिक प्रतिलिपी होते है। ये हमारे विगत अनुभवों की प्रकृति या नकल होती है जो चेतन-मन में पुनः जागृत किये जाते है। डॉ. एस. रॉस के अनुसार "स्मृति एक नया अनुभव है जो पूर्व अनुभवों की स्थितियों द्वारा निर्धारित होता है और दोनों के बीच का संबन्ध प्रकट स्पष्ट समझा जाता है।" [J.S.Ross, Groundwork of Educational Psy.pg:184]"सीखे हुए अनुभवों के सीधे उपयोग को' स्मृति कहते है"। - वुडवर्थ [सुरेश भटनागर द्वारा उद्धृत शिक्षा मनोविज्ञान, पृ.202] 'चेतना से एक बार हट जाने के बाद मन की पूर्व अवस्था में पूनः ज्ञान का नाम ही स्मृति है। [बलबीर सिह द्वारा उद्धृत मनोविज्ञान के मूल सिद्धांत, पृः144] स्पष्ट है कि स्मृति के द्वारा हम अपने अनुभवों को वर्तमान का विषय प्रदान करते है अर्थात् चेतना में लाते हैं। अतः स्मृति को एक ऐसी मानसिक शक्ति कहा जा सकता है जो पूर्व-अनुभवों या विषयों को पुनःचेतना में लाने में सहयोग देती है।

5. संवेग (Emotion):-सामान्य अर्थ में संवेग से तात्पर्य उत्तेजित करना है। किसी परिस्थिति विशेष में उत्तेजित हो जाने वाले व्यक्तित्व की भावात्मक मानसिक अवस्था को संवेग कहते है। "संवेग वह भावात्मक प्रक्रिया है, जिसका आविर्भाव किसी परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण, स्मरण या कल्पना से होता है। जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति में तरह-तरह के परिवर्तन होते है और वह किसी प्रकार की प्रक्रिया करता है।" [जगदानन्द पाण्डेय] मनोविज्ञान परिचय] पृष्ठ - 230]संवेग मानव की जन्मजात प्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं। शोक, प्रसन्नता, क्रोध, भय आदि संवेग के अंतर्गत आते हैं। संवेगों का हमारी शारीरिक क्रियाओं से घनिष्ठ संबन्ध होता है। बालकों के जीवन में संवेग प्रसन्नता बढाते है तथा क्रियाशीलता का संचार करते हैं और बालकों को शक्ति प्रदान करते हैं। बालक का संवेगात्मक विकास शारीरिक तथा बौद्धिक परिपक्वता के साथ तथा शिक्षण के साथ आगे बढता रहता है। बालकों के सवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व स्वास्थ्य, थकावट, पारिवारिक स्थिति आदि है। बालसाहित्य अपनी विभिन्न विधाओं के माध्यम से बालकों के संवेगों पर उचित नियंत्रण रखकर उनका शोध करता है तथा स्वरूप दिशा प्रदान करता है।

6. अवधान (Attention):-'अवधान मानव चेतना की एक वरण प्रक्रिया है अथवा किसी विचार को मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से अंकित करने की प्रक्रिया है। यह एक सतत् क्रमबद्ध प्रक्रिया है जो मस्तिष्क में स्पष्ट रूप में स्थित नाना प्रकार की विभिन्न वस्तुओं में से कभी एक को और कभी दूसरे को चेतना के ध्यान - केन्द्र में लाकर उपस्थित करती है।' [डॉ.एस.एस. मथुर] शिक्षा - मनोविज्ञान] पृः 396]"मैकडूगल के अनुसार-अवधान केवल उस चेष्टा या इच्छा को कहते हैं, जिसका प्रभाव ज्ञान प्रक्रिया पर पड़ता" डम्बिल के अनुसार – 'अवधान अन्य वस्तुओं की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना को केन्द्रित करना हैं ' रॉस के अनुसार – 'अवधान विचार की वस्तु मन के समक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट करने की प्रक्रिया है' [सुरेश मट्टनागर द्वारा उद्धृत] शिक्षा मनोविज्ञान] पृः **224]** चेतना को किसी वस्तु विशेष पर केन्द्रित करना ही अवधान है। समान्य रूप से हम उसी वस्तु पर अपनी चेतना केन्द्रित कर सकते हैं] जिसमें हमारी रूचि होती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अवधान के दो भेद किये गये हैं] अनैच्छिक तथा एच्छिक अवधान।अनैच्छिक अवधान व्यक्ती की मूल प्रवृत्तियों और रूचियों पर आधारित होता । ऐच्छिक अवधान स्वाभाविक मूल प्रवृत्तियों या रूचि पर आधारित न होकर अर्जित रूचि पर आधारित होता है। बालक किसी भी विषय पर अधिक समय तक अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते हैं। क्योंकि वे स्वभाव से चंचल होते है। आयु की परिपक्वता के साथ बालक में ध्यान देने की शक्ति बढती जाती है। स्पष्ट है कि रूचि और अवधान का घनिष्ट सम्बन्ध है। बालसाहित्य में यह पूरा ध्यान रखा जाता है कि बालक में मूल प्रेरणात्मक रूचि उत्पन्न की जाय और उनकी जिज्ञासा आत्मप्रदर्शन और सर्जनात्मक प्रवृत्तियों को बिना किसी दबाव के सही मार्ग की ओर परिवर्तित किया जाय।

बालक का अवधान मुख्य रूप से उसकी मूल-प्रवृत्तियों पर ही आधारित होता है। उसमें जिज्ञासा की प्रवृत्ति होती है। वह नवीन वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है। जिस वस्तु पर बालक अपना ध्यान केन्द्रित करता है] उसका बडी सूक्ष्मता से नीरीक्षण भी करता है और उसके विषय में अधिक से अधिक जानना चाहता है। इसप्रकार अवधान द्वारा उसके ज्ञान में भी वृद्धि होती है। बालसाहित्य बालकों के ही स्वभाव की विशेषताओं को ध्यान में रखकर लिखा जाता है। अतः बालकों के साहित्य से बालकों की विभिन्न वस्तुओं के प्रति रूचि उत्पन्न करके उनमें ध्यान को केन्द्रित करने की शक्ति में सहायता मिलती है।

7.सीखना:-सीखने को विकास की प्रक्रिया कहा जाता है। यह प्रक्रिया निरन्तर और सार्वभौमिक होती है। मनोवैज्ञानिक गेट्स के अनुसार 'अनुभव के द्वारा व्यवहार में रूपान्तरण लाना सीखना है' वुडवर्थ के अनुसार "नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखना है।"

वस्तुतः व्यवहार में विकासात्मक परिवर्तन ही सीखना है। अर्जित क्रियाएँ बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करती है और ये अर्जित क्रियायें सीखने के फलस्वरूप ही उपलब्ध होती हैं। बालक वातावरण के अनुभव से अनेक प्रवृत्तियाँ अर्जित करता है। वह उसके व्यक्तित्व को आकार देती है। "अतः जो क्रिया हमारे जीवन को पहले की अपेक्षा किसी तरह से भी नयें रूप में बदलती है] उसे सीखना कहते हैं।" [बलवीर सिंह] मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्त] पृः125] स्पष्ट है कि सीखने की प्रक्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता है। सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करनेवाले तत्व-**1**. शारीरिक तत्व **2**. मनोवैज्ञानिक तत्व और **3**. वातावरण सम्बन्धी तत्व है।

1.शारीरिक तत्व:- बालकों के सीखने की प्रक्रिया पर उनके स्वास्थ्य का गहरा असर पड़ता है। यदि बालक का कोई संवेदन अंग दोषपूर्ण है तो उसे कोई भी कार्य सीखने में कठिनाई का अनुभव होगा। इसके साथ अस्वस्थ बालक शीघ्र थक जाता है। इससे भी सीखने में बाधा होती है।

2.मनोवैज्ञानिक तत्व:- बालक प्रेरणा के आधार पर ही सीखता है। प्रेरणा ही बालक में क्रियाशीलता उत्पन्न करती है। किसी लक्ष्य की प्रेरणा से ही बालक सीखने का प्रयत्न करता है। अतः प्रेरक बालक के सीखने में बहुत सहायता करते हैं।

3.वातावरण संबन्धी तत्व:- वातावरण भी बालक के सीखने पर प्रभाव डालता है। बालक में सीखने के विकास उसकी कुशलता के विकास के साथ-साथ होता है। बालक की कुशलता अभ्यास द्वारा विकसित होती है। नई-नई क्रियाओं को करना सीखता है। और उसके ज्ञान का विस्तार होता है। उसकी रचनात्मक प्रवृत्ति कल्पना तथा जिज्ञासा का उपयोग सीखने के द्वारा ही होता है। सीखने से ही बालक की क्रियाओं का विकास होता है। सीखना मानसिक विकास की उंदेश्यपूर्ण प्रक्रिया है। इससे बालक की रूचियों की संतुष्टी होती है। बालक के व्यक्तित्व निर्माण उसके व्यवहार में स्थायी परिवर्तन का कार्य सीखने के द्वारा ही सम्भव है।हिन्दी बालसाहित्य बालक के सीखने की प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक रूप से प्ररित एवं प्रोत्साहित करता है। इसमें ऐसी घटनाओं] भावों तथा विचारों का चित्रण होता है जो बालक को प्रेरणा देते है। उसे उदेश्यों की प्राप्ती केलिए प्रोत्साहित करते है तथा उसकी रूचि और इच्छा को बढाते हैं।

8. खेल:-सामान्य अर्थ में खेल से तात्पर्य मनोरंजन के लिए उछल-कूद या साधारण कार्य है। मैक्डूगल के अनुसार ' खेल स्वयं अपनेलिए की जानेवाली एक क्रिया है] या खेल एक निरूद्धेश्य क्रिया है जिसका कोई लक्ष्य नहीं होता है।' [Medougall – "An Outline of Psychology. Pg:171] खेल एक सामान्य तथा स्वाभाविक प्रवृत्ती होती है। यह बालक की रचनात्मक क्रियाशीलता को अभिव्यक्ती प्रदान करता है। यह बालक की मानसिक मनोवृत्ती है जो बालक के शरीर गठन और मनोविकास केलिए अत्यधिक आवश्यक है।खेल जन्मजात सहज प्रवृत्ती है। खेल स्वतंत्र और आत्मप्रेरित होता है। खेल आनन्द प्रदान करता है। खेल उदेशयहीन होता है। बालक के शरीर में आवश्यकता से अधिक एकत्रित शक्ति को व्यय करने केलिए वह खेलता हैं। शारीरिक विकास केलिए खेलों का अत्यधिक महत्व है। इनके द्वारा बालक की मांसपेशियाँ शीप्रता से विकसित होती है तथा बालक शारीरिक शक्ति उपलब्ध करता है। इससे उसकी क्रिया - कुशलता भी बढ़ती है। खेलों के द्वारा बालक के सम्पूर्ण अंगों का व्यायाम हो जाता है] जिससे बालक स्वस्थ और रोगों से बचने की शक्ति भी अर्जित करता है। खेलों से बालक प्रसन्न तथा तनाव मुक्त रहता है। इसप्रकार शारीरिक दृष्टी से खेल बालक के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।खेलों का बालक के मनोवैज्ञानिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है। खेलों के द्वारा बालक को आत्मप्रकाशन का अवसर मिलता है। बालक की मूलवृत्तियों तथा कल्पना की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। बालक के संवेगों को स्थिरता प्रदान करता है और उनके व्यक्तित्व का विकास भी होता है। खेल द्वारा बालक में मानसिक संतुलन की क्षमता आती है और उनकी मानसिक समस्याएँ सुलझती है। खेलों द्वारा वे स्वयं ही अपनी समस्याओं को सुलझाने में सफल हो जाते हैं। शारीरिक तथा मानसिक महत्व के अतिरिक्त खेलों का बालक के सामाजिक तथा नैतिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष: बाल साहित्य के मनोवैज्ञानिक योग के द्वारा प्रत्येक आयु वर्ग के बालक की रूचि प्रतिभा कल्पना जिज्ञासा आदि मानोभावों का क्रमशः विकास होता है। उनको उचित व स्वस्थ दिशा मिलते हैं ।बालक कुंठाओं, मानसिक उलझनों और दुष्ट प्रवृत्तियों से बच जाता है और उसका बौद्धिक और मानसिक विकास होता है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1. बाल मनोविज्ञान लालाजी राम शुक्ला नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
2. असामान्य बाल मनोविज्ञान पाण्डे जगदानंद प्रकाशकः ग्रंथ माला कार्यालय प्रथम संस्करण 1956
3. शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा"विशंभर नाथ त्रिपाठी प्रकाशकः बाल साहित्य मंदिर प्रथम संस्करण:1954

'खंजन नयन' उपन्यास का सामाजिक मूल्यांकन

नवीन

शोधार्थी

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

सार:-अमृतलाल नागर का उपन्यास खंजन नयन (1981) को प्रकाशित हुआ यह उपन्यास हिन्दी के सुज्ञात भक्त कवि सूरदास के जीवन चरित्र को ओपन्यासिक रूप में प्रस्तुत करता है। खंजन नयन की सार्थकता इसी में है कि जिस व्यक्ति को विधाता ने तन की आँखे नहीं दी उसी को मन की आँखे देकर दृष्टि सम्पन्न बना दिया। सूरदास ने अपने इन्हीं 'खंजन-नयनों' से इष्टदेव के दर्शन किए। 'खंजन नयन' में व्यक्त सामाजिकता के अन्तर्गत हम यह देखेंगे कि उस समय समाज की क्या स्थिति थी ? समाज में कौन-कौन से वर्ग थे, उस समय नारी की क्या दशा थी, उस समय के समाज का नारी के प्रति क्या दृष्टिकोण था क्या नारी अपने अधिकारों के प्रति अपनी स्थिति के प्रति संचेत थी ? तत्कालीन समाज में धर्म का क्या स्वरूप था ? यह सर्वविदित है कि 'साहित्य समाज का दर्पण' है। इसमें समाज का प्रतिबिंब झलकता है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, रिपोतार्ज, संस्मरण, जीवनी इत्यादि विविध विधाओं को अपने भीतर संजोए हुए साहित्य अपने वृहदाकार रुप में गतिशील है। आज 'साहित्य' शब्द का प्रयोग बड़े ही व्यापक अर्थ में किया जाने लगा है। किसी भी खास विषय की समस्त पुस्तकें उस विषय का साहित्य कहलाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "यह संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'साथ-साथ'। 'साहित्य' शब्द का अर्थ इसलिए 'साथ-साथ रहने का भाव' हुआ।" साहित्य के इसी भाव-बोध के कारण ही इसका स्वरूप विस्तृत एवं व्यापक है और साथ ही परिवर्तनशील एवं गत्यात्मक भी। साहित्य और समाज एक दूसरे केआश्रित एवं पूरक हैं। साहित्य का आधारसंपूर्ण मानव-जीवन है, जिस पर इसकी नींव टीकी है। प्रेमचंद के अनुसार, ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग़ पर असर डालने का गुण हो।''उपन्यास मानव-जीवन का एक महत्वपूर्ण साहित्यांग है जो इस परिपाटी पर खरी उतरती है। साहित्य मेंउस मानव-समाज की अभिव्यक्ति होती है जिसे स्वयं मानव ने देखा है, सुना है, भोगा है, अनुभव किया है और समझा है। इस दृष्टि से देखें तो नागर जी प्रेमचंदोत्तर परंपरा के सफल उपन्यासकार ठहरते हैं, जिनकी रचनाओं में उपरोक्त सभी गुण मूर्तिमान होते हैं। साहित्य, भाषा, समाज और संस्कृति की धरोहर है। साहित्य में किसी युग विशेष की सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। किसी भी साहित्य से हम उस युग केसमाज और संस्कृति का अनुमान लगा सकते हैं। जिस देश का साहित्य जितना ही अधिक समृद्धशाली एवं समुन्नत होगा वहाँ का समाज भी उतना ही अधिक विकासशील एवं उन्नतशील होगा। वस्तुतः समाज ही साहित्य को समृद्धशाली और समुन्नत बनाता है। जहाँ का जैसा समाज होगा, साहित्य भी वैसा ही होगा। वास्तव में वही साहित्य मूल्यवान होता है, जो समाज को सकारात्मक दृष्टि से देखता है। साहित्य में निहित जन-चेतना एवं जन-कल्याण की भावना, आदर्श समाज एवं सुसंस्कृत देश की स्थापना में महत्वपूर्ण योग देता है। अमृतलाल नागर आधुनिक साहित्य जगत् के ख्याति प्राप्त उपन्यासकारों में गिने जाते हैं। वे समाज और संस्कृति से जुड़े हुए इंसान थे। भारतीय समाज और संस्कृति की गहरी परख होने के कारण उनकी रचनाओं में इसकी घनी जड़ें विद्यमान हैं। उनका उपन्यास समाज और संस्कृति की अक्षय संपदा है जिसे भूलकर भी भुलाया नहीं जा सकता। इसे सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है। सामाजिक होने के नाते साहित्यकार का भी समाज के प्रति कुछ दायित्वहोता है जिसे वह अपनी कलम द्वारा आवाज देता है। साहित्य और साहित्यकार को सदैव प्रगतिशील होना चाहिए, अन्यथा वे समय के साथ हो रहे सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधी नवीन परिवर्तनों के प्रति पाठकों को रु-ब-रु एवं सचेत कराने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। नागर जी के अधिकांश उपन्यास समाजिक हैं जिनमें प्रेमचंद की तरह ही मानवीय मूल्यबोध दृष्टिगत होते हैं। परन्तु, प्रेमचंद की अपेक्षा नागर जी का उपन्यास सांस्कृतिक चेतना को ले अधिक उद्यत था। केदारनाथ अग्रवाल उन्हें अपने युग के हिन्दी गद्य का महान् उपन्यासकार मानते हैं। वे कहते हैं, "प्रेमचंद का उपन्यास प्रवाह मानवीय बोध का था तो जरूर लेकिन वह देश की सांस्कृतिक चेतना की विरासत से उद्यत नहीं था। यह कमी थी जिसको नागर जी ने अपने इन उपन्यासों को लिखकर दर किया।

'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन', 'एकदा नैमिषराण्ये' इत्यादि उपन्यासों में मुख्य रूप से भारतीय समाज के सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। मूल्यांकन पक्ष पर आने से पूर्व हमें भारतीय समाज एवं संस्कृति से जुड़ी सामान्य जानकारी आवश्यक होगी तभी हम भली पूर्वक इसे समझ पाएंगे और नागर जी के उपन्यासों के संदर्भ में भी मूल्यांकित कर सकने में समर्थ हो पाएंगे। समाज और संस्कृति की आपस में घनिष्ठ मित्रता है। समाज में व्यक्ति की महत्वपूर्ण होती है क्योंकि वह व्यक्ति और परिवार से मिलकर बनता है और संस्कृति के मूल में उसके जीवन-यापन या जीवन व्यवस्था की पद्धति होती है। व्याकरणिक दृष्टि से संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की 'संस्कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बनता है जो अच्छी स्थिति का बोधक है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार संस्कृति शब्द संस्कार से बना है जिसका अर्थ है 'शुद्धि की क्रिया' या 'परिष्कार'। यहाँ इसका तात्पर्य पवित्रता से नहीं बल्कि सामाजिकता से है। संस्कृति में 'सत्य, शिव और सुन्दर' का सामन्जस्य होता है। व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने में जिन भी तत्त्वों या मूल्यों का योगदान रहता है, वे सभी तत्त्व संस्कृति कहलाती हैं। संस्कृति के निर्माण में भौतिक और अभौतिक सभी कुछ आ जाते है। इसमें देश और समाज -संरचना के आधारभूत तत्त्व जिनमें भूगोल, इतिहास, पुराण, धर्म, कला-कौशल, रीति-नीति, पर्व-त्योहार, पशु-पक्षी, भाषा, वनस्पति, राजनीति, अर्थशास्त्र सभी कुछ समाहित हैं जो संस्कृति को व्याख्यायित करती है।

तत्कालीन समाज:-सूरदास के जन्म से ही इस देश में सुल्तानों का राज्य था। सूरदास का जीवन काल असाधारण रूप से दीर्घ था। एक सौ चार वर्ष पूरे करके उनका देहान्त हुआ। स्वाभाविक रूप से बहुत से सुल्तानों तथा सम्राटों का उत्थान पतन उन्होंने देखा था। उनके जन्म व विकास काल में इस देश में सिकन्दर लोधी का राज्य था जो अपने हिन्द विरोध के लिए इतिहास में कुख्यात है। इसके बाद इब्राहीम लोधी, बाबर हुमांयू और अकबर का शासन काल भी उन्होंने देखा। लेकिन उसमें लेखक ने मुख्य रूप से सिकन्दर लोधी के युग का विस्तार से वर्णन किया है। क्योंकि एक भक्त व कवि के रूप में वही सूर के संघर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल था। उस समय शासक वर्ग के मुसलमान होने के कारण हिन्दुओं की दशा बहुत दयनीय थी। उन पर रात-दिन अत्याचार किए जाते थे। लोगों की धन सम्पति लुटी जाती थी। स्त्रियों की इज्जत लूटी जाती थी। स्त्री की इज्जत व धन की लूट ही इन लोगों के लिए पुण्य कार्य बन गई थी। मथुरा व वृदांवन में हिन्दुओं के मन्दिर ज्यादा होने के कारण वहां पर अत्याचार और लूटमार कुछ ज्यादा ही हुआ करती थी। इससे पहले भी जब सिकन्दर सुल्तान गद्दी पर बैठा तो उसने भी मथुरा में भयंकर मारकाट मचाई थी और जो लोग उस समय जबरदस्ती मुसलमान बनाए गए थे वे ही उस समय शहर के सबसे अधिक आंतककारी थे। हर जगह काजियों और मुल्लाओं की जय-जयकार बोलती थी। धर्म के नाम पर मुसलमान लोग हिन्दू बस्तियों को लूट रहे थे। सरकारी अमला यों तो साथ नहीं दे रहा था पर लूट की दौलत आखिर किसे बुरी लगती है। यूं भी "काफिरों का काबा" मथुरा और मथुरावासियों को बड़ी ओछी दृष्टि से देखता था।"[1]यदि कोई व्यक्ति दूसरे धर्म को अपने धर्म के समकक्ष बता देता था तो यह बात उसे सूली चढ़ाये जाने के लिए काफी थी क्योंकि "एक बार सिकन्दर के बाप के राज में एक पंडित ने बड़े जतन से इनकी भाषा पढ़ी, उनके धर्म के सारे पौथे पढ़े फिर एक दिन सभा में उसने अपने व इस्लाम धर्म को एक समान बताया और कहा कि दोनों अद्वैत सिद्धान्त को मानते हैं। सो इनके धर्म को गलत क्यों नहीं मानना चाहिए। और बस, इसी बात पर काजी मुल्लाओं ने उस पंडित को फांसी पर चढ़ा दिया।[2]इसके अतिरिक्त उस समय हिन्दुओं के बाल बनवाने पर भी रोक थी कोई भी हिन्दू बाल नहीं बनवा सकता था यदि कोई ऐसा करता था तो उसे सजा मिला करती थी। एक जगह कालू केवट अपने आक्रोश को व्यक्त करता हुआ कहता है "जीना मुहाल हो गया है इस सिकन्दर सुल्तान के राज में। बाल नहीं बनवा सको हो-ससुरे द्रौपदी के चीर से बड़े चले गए हैं। सबके म्हौड़ान पे पूतना के से थन लटक रचे हैंगे। जमना जी में नहाईए नहीं, मुंडन आदि सभी में बाधा।"[3]उस समय ब्याह के संस्कार ऐसे थे जो छिपाये भी नहीं जा सकते थे क्योंकि हिन्दुओं को ब्याह के अवसर पर पण्डितों के साथ-साथ काजी को भी दक्षिणा देनी पड़ती थी। इसलिए आश्चर्य नहीं कि मथुरा में आंतक नृशंसता एवं विद्वेष के सहारे राज्य करता सिकन्दर लोधी सूरदास को कंस के समान लगा हो ... "महाकठिन है समय अजोग सिर पर कंस मधुपुरी बैठो।"[4]पद के आधार पर नागर जी ने सूर पर उस युग के प्रभावों का भी संकेत कर दिया है। इस पर टिप्पणी करता हुआ बूढ़ा गनेसी कहता है ... "बड़ी सच्ची बात कही तुमने। इस जबनन ने तो ऐसी परलय ढाई है कि कुछ कहत नाय बने।"[5]

इसी प्रकार एक स्थान पर सूरदास हरि को सम्बोधित करता हुआ कहता है – "हरि तुमने तो कंस को मारकर मथुरा जीत ली थी .... फिर तुम्हारी जन्म भूमि में यह नया कंस कहां से आ गया ? कैसा आहाकार मचा है कल से। किसी की पति मरा किसी का पुत्र कितनी स्त्रियों जो कल तक जो भले घर की बहु बेटियाँ थी आज अगर यदि जी रही होगी तो वेश्या से भी बुरी गति होगी। कल तक जो धनी थे वे आज भिखारी हो गए। सनाथ अनाथ हो गए।"[6]इस प्रकार यह कह सकते है कि सिकन्दर सुल्तान के राज में हर तरफ हाहाकार मचा हुआ था। किसी भी हिन्दु का जीवन सुरक्षित नहीं था। उस समय हिन्दुओं के लिए अपने धर्म की रक्षा करनी ही बहुत मुश्किल थी क्योंकि हिन्दू लोग मुसलमानों के अत्याचारों से डर कर मुस्लिम धर्म को अपना रहे थे और उनकी हिन्दू धर्म पर आस्था धीरे-धीरे कम होती जा रही थी।

सिकन्दर सुल्तान बेहद घमंडी बदमिजाज व व्याभिचारी शासक था जो अधिकांशतः स्वार्थी मुल्ला मौलवियों की आंखों में देखता था। वह हिन्दुओं के मन्दिर तोड़ता था। उन पर तरह-तरह के अत्याचार करता था। मुल्ला मोलवियों से बना उसका तन्त्र उसकी इस कारगुजारियों की ओर भी भड़काया करता था मुसलमानों के इन अत्याचारों के लिए कुछ हद तक हमारा हिन्दू समाज भी दोषी था क्योंकि हिन्दुओं में आपसी फूट थी। ये लोग आपस में एकजुट होकर मुस्लिम शासकों का सामना करने के बजाय आपस में ही लड़ते झगड़ते थे। मुस्लिम समाज के लोग तो हिन्दुओं पर अत्याचार करते ही थे पर हिन्दू समाज के भी कुछ एक लोग ऐसे थे जो हिन्दुओं पर अत्याचार करते थे। जैसे छिदेम्मी माल्लमार्तण्ड जो जाति का ब्राह्मण था उच्च कुल में जन्म लेने के बावजूद भी उसके विचार बहुत ही नीच थे। यह काशी का बेताज बादशाह था। बड़े-बड़े लोग जैसे हाकिम, हुक्काम आदि भी इससे डरते थे क्योंकि इसके पास हमेशा ही गुंडों की विशाल फौज हुआ करती थी। एक कर पठान हाकिम लिया करते थे तो दूसरा कर यह छिदम्मी। यदि कोई व्यक्ति कर नहीं देता था तो ये व्यक्ति जबरदस्ती कर की वसूली करते थे।"[7] एक तो जनता पहले ही मुसलमानों के अत्याचारों से दुखी थी दूसरे छिदम्मी जैसे लोग भी उन पर जबरदस्ती किया करते थे जिसके कारण उनकी स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। इसी तरह उस समय और भी बहुत से ऐसे लोग थे जो जनता पर अत्याचार करके अपना स्वार्थ सिद्ध किया करते थे।

इन सारे वर्णनों से हमारे सामने उस समय के समाज का जीता जागता चित्र प्रस्तुत हो जाता है कि उस समाज की कैसी स्थिति थी। उसमें रहने वाले लोगों की दशा कैसी थी ?उस समय का समाज मुख्य रूप से दो भागों में बंटा हुआ था।

1. हिन्दू समाज:-यदि हम उस समय के हिन्दू समाज पर दृष्टिपात करें तो एक बात बड़ी स्पष्ट रूप से हमारे सामने उभर कर आएगी कि उस समय हिन्दू धर्म के जो बड़े-बड़े लोग थे, एक दूसरे की उन्नति को देखकर जला करते थे तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते थे। सभी लोग तो नहीं पर कुछ एक लोग तो ऐसे अवश्य थे जो अपने भीतर इस प्रकार के विचार रखा करते थे। इनमें हम काशी के ब्राह्मण समाज को तथा अयोध्या के ब्राह्मण समाज में पुदन पण्डित व मल्लमार्तण्ड को गिना सकते हैंकाशी में जब सूरस्वामी के भजनों की धूम मचने लगी और धीरे-धीरे उनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी तो काशी का कथा वाचक ब्राह्मण समाज सूरस्वामी की इस बढ़ती हुई लोकप्रियता से जलने लगा। उनकी आंखों में सूरस्वामी कांटे की तरह खटकने लगे। एक दिन ये लोग सूरस्वामी जी को नीचा दिखाने के लिए तथा उनसे बदला लेने के लिए एक षड़यन्त्र रचते है और उन पर चरित्रहीनता जैसा घटिया व नीच इल्जाम लगाकर उनकी इतनी पिटाई करते हैं कि सूरस्वामी अधमरे हो जाते हैं और अंत में वह मथुरा छोड़ने का ही संकल्प कर लेते हैं।"[8]

इसी तरह अयोध्या का ब्राह्मण समाज भी है। जब वहां पर सूरस्वामी अपनी भाषा में भागवत लिखवाना चाहते हैं और इसके लिए पुदन पण्डित से लिखिए का प्रबन्ध भी करा लेते है तो इसी बात पर पुदन पण्डित तथा मल्लमार्तण्ड में लड़ाई झगड़ा हो जाता है, क्योंकि मल्लमार्तण्ड चाहता है कि सुरस्वामी उनके यहां ही गाए और उनके यहाँ ही भागवत लिखें। इसके लिए वह सूरस्वामी से कहता भी है :-"आपको चेताए देते हैं महाराज कासी, जौनपूर, मीरजापूर, चुनार,

अस्थानों पर आप सबसे पहले कहीं कथा बाँचेगे-गाएँगे तो वह हमारे यहाँ नहीं तो कहीं भी कथा नहीं होएगी।"[9]लेकिन दूसरी और पुद्न पण्डित जिससे स्वामी जी पहले ही बात कर चुके ये कहता है स्वामी जी क्या हमारे यहां ही लिखेंगे। तुम कुछ भी कर लो। इसी बात पर लड़ाई झगड़ा काफी बढ़ जाता है और अन्त में स्वामी जी पुद्द्र पंडित को कह देते है कि मैं अपनी कथा को रक्त रंजित नहीं बनाऊंगा यह मेरा निश्चित मत है।"[10]इस प्रकार यह लोग ही नहीं उस समाज में और भी बहुत से लोग ऐसे हैं जो आपस में इस प्रकार के भाव अपने मन में रखते थे।

2. मुस्लिम समाज:-

इसके अतिरिक्त उस समय का मुस्लिम समाज भी है जो हिन्दुओं पर अत्याचार करता है और उनको धर्म परिवर्तन करने को बाध्य करता है क्योंकि उस समय शासक वर्ग मुस्लिम समाज ही था। लेकिन इस मुस्लिम समाज में सब लोग एक जैसे नहीं थे। इनमें से कई लोग ऐसे थे जो हिन्दुओं से सहानुभूति रखते थे। उन पर किए जाने वाले अत्याचारों के विरोधी थे। इन लोगों के सबसे पहले हम रहमत खां को लगे जो दिल्ली गुड़गांव का सरदार था। इसी रहमत खाँ ने गुड़गांव में सूर के पिता के लिए पक्का घर बनवाया और सूरस्वामी जी की सेवा के लिए दास, दासियां भी रखी। काशी में मल्लमार्तण्ड से सूरस्वामी की संघर्ष की स्थिति बनती है तो इसी रहमत खाँ ने जो उन दिनों संयोगवश वहीं उपस्थित थे, सूर की रक्षा की। इतना ही नहीं उसे राज परिवार में मान-सम्मान भी दिलवाया।

इसी प्रकार सरदार अकरम खाँ भी है। अकरम खाँ जब अपने बेटे व भान्जि की मौत का बदला लेने के लिए गोपी की नगरिया में जाता है और वहां पर जब उसे पता चलता है कि उसका बेटा चरित्रहीन था तो वह चुपचाप सिर झकाकर वापिस लौट जाता है। इसके अलावा सूफी फकीर दिल खुश साह भी हैं जो अनेक मतभेदों के बावजूद सूर का सर्वाधिक प्रिय मित्र और अंतरंग सखा है। इस प्रकार हम यह नहीं कह सकते कि उस समय के मुस्लिम समाज में सारी बुराईयाँ ही थी और हिन्दु समाज में सारी अच्छाईयाँ ही थी बल्कि अच्छाई बुराई का मिश्रण इन दोनों समाज में था।

****

संदर्भ:-

1. अमृतलाल नागर, 'खंजन नयन', राजपाल एण्ड सन्स, पृ. सं. 10
2. वही, पृ. सं. 82
3. वही, पृ. सं. 12
4. वही, पृ. सं. 12
5. वही, पृ. सं. 13
6. वही, पृ. सं. 22
7. वही, पृ. सं. 144
8. वही, पृ. सं. 143
9. वही, पृ. सं. 144
10. अमृतलाल नागर, खंजन नयन, प्रथम संस्करण, 1981, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, पृ. 66

यशपाल के साहित्य-रचना के विभिन्न वर्ण्य - विषय

डॉ. अंजू बाला

गांव व डाकघर तरक्वाड़ी तहसील
भोरंज, जिला हमीरपुर (हि.प्र.)
पिन–176045 मो. 95694 31260, 94189 00837

यशपाल के साहित्यिक व्यक्तित्व की यह खासियत रही है कि उन्होंने अपने साहित्य के जरिए जीवन-दर्शन को सहेतुक प्रस्तुत किया है। मात्र मनोरंजन उनके साहित्य का कभी उद्देश्य नहीं रहा। साहित्य में मनोरंजन के साथ जीवन विकास की ओर ध्यान देने का और उसके जरिए सामाजिक उत्थान का महान् कार्य यशपाल के साहित्यक व्यक्तित्व ने किया है। साहित्यिक व्यक्तित्व को सूक्ष्मता से देखने परखने पर मालूम होता है कि सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते समय परिस्थिति एवं पारम्परिक धारणाओं से उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। उसूलों पर दृढ़ रहना उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था।' यशपाल की यह विशेषता रही है कि एक ओर उन्होंने बुलेट के प्रयोग से देशभक्ति का परिचय दिया तो दूसरी ओर बुलेटिन के जरिए उसे अमर विचारों के रूप में पेश किया। इस सन्दर्भ में प्रो० बासुदेव कहते हैं- "यशपाल उन साहित्यकारों में से हैं जो कलम और तलवार चलाने में समान सफलता प्राप्त कर चुके हैं। क्रान्तिकारियों के दल में सम्मिलित होने पर भी उनकी कलम कभी नहीं रुकी। एक ओर पिस्तौल चलाना और दूसरी ओर कलम की गति, दोनों साथ- साथ चलते रहे।"[2] यशपाल का साहित्यिक व्यक्तित्व काफी परिष्कृत है। यशपाल की यह विशेषता रही है कि भारतीय साहित्य के दायरे में ही उन्होंने कभी अपने लेखन, पठन एवं चिन्तन को सीमित नहीं रखा। विदेशी साहित्य का पठन तो जेल जीवन से ही करते रहे। इससे इस साहित्य का प्रभाव यशपाल साहित्य पर हुआ। होना स्वाभाविक भी था। परिणाम यह हुआ कि यशपाल का साहित्यिक व्यक्तित्व विश्व के साथ कदम मिलाने में सक्षम रहा। यशपालका साहित्यिक व्यक्तित्व हमेशा जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करता रहा और इसी अर्थ में वे प्रेमचन्दजी के उत्तराधिकारी माने जाते हैं। साहित्य और समाज के अटूट सम्बन्धों को यशपाल मानते थे। साहित्यकार के दायित्व को समझकर यशपाल ने अपने साहित्य का निमार्ण किया। यशपाल ने उपन्यास के विषय में अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए कहा है- " उपन्यास से मेरा अभिप्राय समाज की विचारधारा के आधार में तारतम्य को प्रकट करना है। उपन्यास में जिन घटनाओं की हम कल्पना करते हैं वे स्थान और पात्रों के परिवर्तन से प्रायः घटती ही रहती हैं। ... हम विचारों को समाज का शाश्वत बन्धन न मान बैठें, बल्कि सामाजिक जीवन में इस सत्य को अनुभव करें कि हमारा अपना जीवन ही हमारे विचारों को जन्म देता है। हमारी विचारधारा हमारे जीवन की परिस्थितियों का परिणाम है।"[3] अत: यशपाल उपन्यास में स्थान और पात्रों के परिवर्तन से घटने वाली घटनाओं में जीवन की परिस्थितियों के परिणामस्वरूप बनी अपनी विचारधारा का महत्त्व स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार उपन्यास विचारों की श्रृंखला मात्र है जो स्थान और व्यक्ति की परिवर्तित स्थिति से सम्बन्धित है। "सफल उपन्यासकार की बड़ी पहचान यह है कि वह अपने पाठकों के हृदय में उन्हीं भावों को जागृत कर दे जो उसके पात्रों में हों। पाठक भूल जाए कि वह किसी काल्पनिक चरित्र के बारे में पढ़ रहा है। उपन्यासकार औपन्यासिक पात्रों और पाठक के बीच आत्मीयता का भाव उत्पन्न करने में सफल हो जाए।"[4]"साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को गणित के फार्मूले की तरह अलग- अलग करके नहीं देखा जा सकता। लेखक का एक अपनापन उसकी सभी रचनाओं में प्रकट या प्रच्छन्न रूप में रहता है, पर साथ ही साथ समय और परिस्थितियों के प्रभाव से अनेक प्रवृत्तियाँ उभरती और मिटती रहती है। कभी-कभी तो एक ही लेखक की कृतियों में दोbया अनेक विरोधी प्रवृत्तियाँ भी स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।"[5] जिस पद्धति या विचारधारा को आधार मानकर उपन्यास लिखा जाता है, उसी के आधार पर उपन्यास का वर्गीकरण कर दिया जाता है। वर्ण्य विषय की विशेषता के आधार पर आज के उपन्यासों का विभाजन अनेक वर्गों में किया जा सकता है। यथा सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, साँस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, आँचलिक आदि। यशपाल के उपन्यासों का आत्यंतिक रूप से विभाजन कठिन है। उनके उपन्यास न तो शुद्ध राजनीतिक कहे जा सकते हैं, न शुद्ध सामाजिक और न ही शुद्ध ऐतिहासिक क्योंकि यशपाल बहुत समय तक राजनीतिक का एक सक्रिय अंग रह चुके हैं, इसलिए वे राजनीतिक वाद विवादों, कार्य-कलापों की उपेक्षा अपने साहित्य में नहीं रह सके।

मनोभावों को चित्रित करने वाले वर्ण्य-विषय:-यशपाल ने अपने उपन्यासों में पात्रों माध्यम से मनोभावों को व्यक्त किया है। 'दादा कामरेड' में हरीश के माध्यम से कहा है- "मेरी अपनी अवस्था तो तुम जानती हो प्रेम और स्वप्न के संसार की रचना करना मेरे भाग्य में नहीं परन्तु एक साथी के नाते तुम्हारे सुख-दुःख की अनुभूति बाँटना चाहूँ, उससे मैं तुम्हारा भला तो नहीं कर सकूँगा किन्तु तुमने मेरे लिए इतना किया है कि तुम्हारे बिलकुल निकट आकर तुम्हारे हृदय में झाँकने की प्रवृत्ति होती है। मेरे जीवन में तृप्ति केवल दूसरों की तृप्ति के अनुभव से हो सकती है।"[6] 'झूठा सच' उपन्यास में पुरी कनक की अनुपस्थिति में उर्मिला को पत्नी के रूप में रखे लेता है किन्तु उसका चेतन मन इस अनैतिकतापूर्ण व्यवहार के लिए स्वयं को अपराधीअनुभव करता है। उसका मन बार बार यह कहता है कि, तुमने कनक के साथ धोखा किया। इस गुरुतर अपराध भावना के बोध से अपने को मुक्त करने के लिए वह अपना दोष कनक पर मढ़ देता है। वह सोचता है - "कनक जैसे उन्मुक्त स्वभाव की एडवेंचरस (खलाड़ी) लड़की अभी तक यों ही बैठी होगी। जब तक में सामने था तब तक मुझे पा लेने की बाजी थी। उस दाँव में सफल हो गयी। तब से संसेशन और थ्रिल की खोज में दूसरा दाँव लगा चुकी होगी, वह क्या किसी की याद में बिसूरती रहने वाली है।"7 इस प्रक्षेपण का परिणाम यह होता है कि उसके मन से चिन्ता और आत्मग्लानि का बोझ उतर जाता है और वह काम में लग जाता है। इसी प्रकार 'अप्सरा का श्राप' उपन्यास में जब दुष्यन्त अपनी बड़ी रानी के भय से शकुन्तला से प्रतिज्ञाबद्ध होने पर उसे राजमहल में बुलाने का साहस नहीं कर पाता है तो उसे आत्मग्लानि होने लगती है। इस आत्मग्लानि से बचने के लिए वह अपने मनोभावों को शकुन्तला पर आरोपित कर देता है, वह सोचने लगता है कि- "हो सकता है कि वह गर्भवती न हुई हो और महर्षि ने उसका विवाह किसी अन्य व्यक्ति से कर दिया हो। "8 इस प्रकार अपने मनोभावों को शकुन्तला पर आरोपित करके वह अपने को आत्मग्लानि से मुक्त कर लेता है । 'झूठा सच' उपन्यास में जयदेव पुरी का दिवास्वप्न संक्षेपण मानसिक कार्य पद्धति का सुन्दर उदाहरण है। हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे में पुरी कनक एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। पुरी का मन डूब जाता है। अगर कनक नैनीताल से चली गयी है तो उसको ढूँढने का सूत्र ही क्या बचा ? लाहौर से अमृतसर तक की सारी घटनाएँ बाढ़ के प्रतीक के रूप में उसके समक्ष सजीव हो उठती हैं। "शून्य दृष्टि छत की कड़ियों की ओर लगाए वह देखता है- लाहौर में भयंकर बाढ़ आ गयी है। धड़ाम - धड़ाम मकान गिर रहे हैं। वह किसी काम के बाहर गया था, लौटने पर विकट स्थिति पाई है। बाजारों में तेज गहरी नहरें बन रही हैं। सब लोग बहे जा रहे हैं। उसने एक भारी शहतीर का सहारा ले लिया है। वह नहीं डूब सकता। उसने अपने परिवार को ढूँढने का यत्न किया पर वे तेज धार में बह गये थे। एक ओर कनक बहती दिखाई दी। वह भी एक शहतीर का सहारा लिए डूबने से बच हुई थी। उसने कनक को पुकारा। किन्तु पूरी घबरा गया, कनक ने उसकी पुकार नहीं सुनी। कनक के समीप ही एक भंवर में उर्मिला डूब रही थी। उर्मिला के सिर के केश उसके हाथ में आ गये।"9 'तेरी मेरी उसकी बात' उपन्यास में चन्द्रा जब निर्मल से ऊषा के विवाह की बात पक्की हो जाने का समाचार सुनती है तो उसे एक धक्का-सा लगता है। प्रसन्नता के स्थान पर कचोट होने जाती है यह लेखक के शब्दों में देखने लगती है। उस समय उसकी मनःस्थिति कैसी योग्य है- "चन्द्रा ने नाभि से गहरा साँस खींचा। निर्मल पन्त के बारे में कभी सोचा न था। ऊषा ने प्रतिद्वन्द्विता का प्रश्न न था परन्तु वह बाइस पूरे कर चुकी थी, उम्र के लिहाज से हक पहले उसका था। उस जमाने में - शायद अब भी लड़की चाहे जितना पढ़ लिख ले, अपने जीवन की परिणति और सफलता विवाह में ही समझती है। पास पड़ोस परिचय में कुवारी जवान लड़की को अपने से कम आयु की लड़की की सगाई ब्याह का समाचार सुनकर लगता है उसे धोखे या धक्के से क्यू में सीधे हटा दिया गया। अपने व्यक्तित्व की उपेक्षा या अवहेलना की कचोट । चन्द्रा ने मन को समझाया अपना - अपना चाँस प्रसन्नता प्रकट करना जरूरी था।"[10]

राजनीतिक चिन्तन से सम्पृक्त वर्ण्य-विषय:-राजनीतिक शुष्क एवं नीरस विषय है। उपन्यास के रूप में उसे सरस और पठनीय कृति उपन्यास न बनकर बनाने के लिए अन्य विषयों का ग्रहण आवश्यक है, अन्यथा, वह राजनीतिक पुस्तक बनकर रह जाएगी। "यह कहना कि राजनीतिक उपन्यास में केवल राजनीति आनी चाहिए, बहुत उचित बात नहीं। राजनीति जीवन एकाँकी होता है और जो राजनीति में भाग लेता है वह केवल राजनीति में ही भाग नहीं लेता उसके व्यक्तित्व केऔर भी पहलू है, वह प्रेम भी करता है, पुत्र भी उत्पन्न करता है और सामाजिक जीवन के और भी सम्बन्धों का निर्वाह करता है।"[11]

अत: राजनीतिक उपन्यासों में राजनीतिक गतिविध के साथ-साथ सामाजिक तत्त्व भी आवश्यक है। यशपाल के जीवन और व्यक्तित्व से यह स्पष्ट है कि उनका व्यक्तित्व सृजनात्मक होते हुए भी उनके सृजन की प्रेरणा अधिकाँशतः उनकी तार्किक वृत्ति ही है। जेल में बिताए वर्षों में यशपाल ने अपने जीवन से जुड़ी इस घटना को भुलाया नहीं । अपने सर्वप्रथम उपन्यास की रचना के लिए उन्होंने इसी घटना को आधार बनाया। 'दादा कामरेड'के 'दो शब्द' में यशपाल ने आचरण सम्बन्धी प्रश्नों को उठाया है- "दादा कामरेड की शैल स्वयं कुछ न होकर घृणा से नाक भौं सिकोड़ने वालों की अतृप्त परन्तु जागरूक सक्रिय प्रवृत्ति ही है।"[13] आचार और नैतिकता का प्रयोजन क्या हो? इसके बारे में यशपाल कहते है- "आचार और नैतिकता का प्रयोजन यदि मनुष्य को बेहतर व्यवस्था और विकास ही ओर ले जाना है तो मानना पड़ेगा कि यह उद्देश्य हमारी वर्तमान नैतिक और आचरण सम्बन्धी धारणा से पूरा नहीं हो रहा है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति उसे वासना के अंगारों पर सेंक-सेंक कर झुलसाए, उसे सदा अपराधी होने की भावना से क्लेशित करती रहे, इसका कोई उपाय क्या मनुष्य नहीं कर सकता ? [14] "प्रश्न है केवल परिस्थितियों के अनुसार नैतिक धारणा बदलने का "[15] 'पार्टी कामरेड' उपन्यास जिस वर्ष रचा गया, राजनीतिक दृष्टि से वह वर्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। बम्बई नगर में कम्युनिस्ट पार्टी का कुछ प्रभाव था। उनका प्रभाव मजदूरों में अधिक था किन्तु उपन्यास में इसके मध्यवर्ग में केन्द्रित होने का भी वर्णन है। काँग्रेस पार्टी की उत्तेजना के कारण बम्बई के केन्द्रीय कम्युनिस्ट कार्यालय पर हमला हुआ । जिसमें साठ कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता घायल हुए। पाटी कार्यकर्त्ता इस हमले का बदला लेना चाहते हैं, किन्तु कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्स इस हमले का दोष काँग्रेस पार्टी को नहीं देना चाहता। प्रान्तीय कमेटी के सदस्य का० हरि अंग्रेज़ी में कहते हैं- "जिस भीड़ ने पार्टी पर हमला किया, उसके सभी तरह के आदमी थे। कौन कह सकता है इस अवसर से लाभ उठाने के लिए मज़दूर श्रेणी के विरोधियों ने ही इस उत्पात को विकट रूप न दिया हो। "[16]

सामाजिक परिवेश से स्निग्ध वर्ण्य - विषय:-मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका सम्बन्ध मूलत: सामाजिक गतिविधियों से रहता है। साहित्यकार भी सामाजिक चेतना से उद्भूत मानव है। वह समाज के बीच रहकर भी अपनी साहित्य - सृष्टि करता है। वह भी सामाजिक समस्याओं, उन समस्याओं से उत्पन्न कुरीतियों ओर विभीषिकाओं से पूर्णत: अवगत होता है। समाज को उसकी दुर्बलताओं और सबलताओं से परिचित कराने के लिए उन सबकी साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम सामाजिक उपन्यास है। शशिभूषण सिंहल के अनुसार- "सामाजिक उपन्यास का सम्बन्ध है समाज से। स्थायी तथा सर्वसाधारण महत्त्व के कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए शान्तिपूर्वक प्रयत्नशील सहयोगी मनुष्यों का समूह समाज है। मनुष्यों या व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनकी सामान्य हित- पूर्ति की दिशा में आई अड़चने, प्रयत्न एवं निष्कर्ष ही सामाजिक उपन्यास की रीढ़ की हड्डी का कार्य करते हैं । "[17] 'झूठा सच' उपन्यास में यशपाल ने शोक संतप्त परिवार की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करने के साथ-साथ लेखक उपन्यास की कथा को केन्द्रीय चरित्रों के परिचय की ओर उन्मुख करता है। तारा रामलुभाया की बेटी है और जयदेव उसका बेटा। घोर परम्परावादी परिवार की रूढ़ियों और रीतियों में पलकर भी उनमें कई प्रगतिशील चेतना दिखाई देती है। प्रतिगामी परम्पराओं ओर रूढ़ियों के प्रति उनमें वितृष्णाभाव है किन्तु उनमें इतना साहस नहीं है कि प्रतिगामी परम्पराओं के विरुद्ध खुला विद्रोह कर सके। कॉलेज़ के स्वतन्त्र वातावरण में आकर तारा की मनःस्थिति में परिवर्तन आता है उसको रेखांकित करते हुए लेखक कहता है- "वह आत्म-सम्मान अनुभव करने लगी। रेस्टोरेंट में कभी जुबेदा, असद या जुबेद के साथ बैठकर निःसंकोच कुछ खा लेने से मिथ्या संस्कारों में मुक्ति का सन्तोष होता था। उनमें से किसी लड़के से नि:संकोच बात करते साथ- साथ चलने पर समता और आत्म-विश्वास की अनुभूति होती है। इससे पूर्व किसी लड़के से बात करना वह निन्दा का कारण और कुचेष्टा ही मानती थी ।"[18] इस उपन्यास की समाप्ति औरतों के काफिले के हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश से होती है।

ड्राइवर उपन्यास के अन्त में कहता है कि- "काफिला भी वतन छोड़कर अपने देश जा रहा है। मनुष्यों के देश धर्मों के देश बन गये। रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने बहम और जुल्म से उसे दो कर दिया।"'[19] 'झूठा सच' देश का भविष्य में सूद की पराजय के साथ पुरी का भी पतन होता है। सूद की पराजय जनता की जागरूकता और राजनीतिक चेतना को सिद्ध करती है। उपन्यास का अन्त डॉ० प्राणनाथ के इस कथन से होता है- "गिल, अब तो विश्वास करोगे, निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती है। देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों के हाथ में है।"[20] यशपाल ने 'झूठा सच' उपन्यास के शीर्षक के सम्बन्ध में समर्पण में लिखा है- "सबको कल्पना से रंगकर उसी जनसमुदाय को सौंप रहा है जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच के लिए अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नहीं छोड़ता।"21 प्रस्तुत उपन्यासों में यशपाल ने व्यक्ति और समाज में पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण उपन्यासकार ने समाजवादी विचारक की भान्ति किया है। वे व्यक्ति से समाज की ओर अग्रसर हुए हैं। उन्होंने व्यक्तियों के माध्यम से समाज की विभिन्न रूढ़ियों, आस्थाओं, अन्य - श्रद्धाओं, क्रियाओं - प्रतिक्रियाओं का चित्रण करते हुए एसे समष्टि चेतना में समाहित किया है। 'झूठा सच उपन्यास में जिस संघर्ष की सृष्टि की गई है वह एक व्यक्ति का व्यक्ति से संघर्ष नहीं है बल्कि वह एक वर्ग का दूसरे वर्ग से संघर्ष है।

यशपाल की सामाजिक कहानियों में से एक कहानी है 'दुःख का अधिकार' इसमें निम्नवर्ग की आर्थिक तंगी का हृदय विदारक चित्र है। पैसे की तंगी के कारण निम्नवर्ग न में जी भर कर रो पाता है और न खुशी से अवसर पर खुश हो पाता है। इस कहानी दुःख में बुढ़िया का इकलौता जवान पुत्र साँप के काटने से मर गया। झाड़-फूँक कराने में घर का आधा सामान समाप्त हो गया। दूसरे ही दिन खरबूजे बेचने के लिए बुढ़िया को आना पड़ा। सिर घुटने में टिकाए फफ्क-फफ्क कर रो रही थी। यह देखकर लेखक का हृदय द्रवित हो गया, और सोचता है- "उस पुत्र वियोगिनी के दुःख का अन्दाज़ लगाने के लिए। महिला पुत्र की मृत्यु के बाद अढ़ाई मास तक पलंग से उठ न सकी। उन्हें पन्द्रह-पन्द्रह मिनट बाद पुत्र वियोग से मुर्छा आ जाती थी और मूर्छा न आने की अवस्था आँखों से आँसू न रूक सकते थे। दो- दो डॉक्टर हरदम सिरहाने बैठे रहते थे।"[22] यहाँ पर गरीब के साथ सहानुभूति की जगह पर परचून वाला लाला कहता है- "कोई क्या जानता है कि इसके घर में सूतक है। है। कोई इसके खरबूजे खा ले तो उसका ईमान-धर्म कैसे रहेगा? क्या अन्धेर है। " [23] वाह रे धर्म के ठेकेदारों "जिन्दा आदमी तो नंगा रह सकता है परन्तु मुर्दे को नंगा कैसे बिदा किया जाए ? "[24] कितना करुण व्यंग्य है । परिवार स्वयं नंगा- भूखा रहकर भी गरीब समाज की परम्पराओं के लिए भी विवश है।

ऐतिहासिक इतिवृत्तों से सम्पृक्त वर्ण्य- विषय:-ऐतिहासिक सामग्री और औपन्यासिक कला के संयोग से जिस कृति का जन्म होता है, वह कृति ऐतिहासिक उपन्यास का रूप धारण कर लेती है। उपन्यासकार उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं को लेकर अपनी अनुभूति और कल्पना के माध्यम से एक नवीन कलाकृति की सृष्टि करता है, जो इतिहासकार की पहुँच से बाहर है। प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अनुसार - " उपन्यास में इतिहास मिल जाने से एक विशेष रस संचरित होता है। उपन्यासकार एकमात्र उसी ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हें कोई विशेष परवाह नहीं होती । "[25]पाश्चात्य विद्वान् हडसन ने कहा है- "उपन्यास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और सब बातें सच्ची होती हैं, इतिहास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और कोई बात सच्ची नहीं होती।"'[26] यशपाल ने भी अपने ही दृष्टिकोण से अतीत को देखा है। उनके उपन्यास युद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं हैं, वे 'ऐतिहासिक कल्पना' मात्र हैं या उन्हें ऐतिहासिक साँस्कृतिक उपन्यासों की कोटि में रख सकते हैं। यशपाल ने इतिहास का आधार मात्र ग्रहण किया है उन्हें इतिहास की नवीन व्याख्या अधिक प्रिय है। यशपाल के अनुसार- " इतिहास विश्वास की नहीं, विश्लेषण की वस्तु है, इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा में आत्मविश्लेषण है। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख ही मनुष्य विवशता अनुभव करता है, और स्वयं ही वह उसे बदल भी देता है। इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमि पर कल्पना में देखने का प्रयत्न किया है।"[27]यशपाल का प्रयत्न उनके दो उपन्यासों 'दिव्या' और 'अमिता' में देखा जा सकता है। 'दिव्या' में तो केवल विशिष्ट युग की साँस्कृतिक गतिविधि को आधार मानकर कृति की सृष्टि की है और 'अमिता' में सम्राट अशोक की कलिंग- विजय की घटना को आधार मानकर कहानी का नया रूप दिया है । उपर्युक्त उपन्यासों की परिपाटी से नितान्त भिन्न कोटि का यशपाल एक अत्यन्त लघु सामाजिक उपन्यास है-'बारह घंटे'। इसमें अनुस्मरण शैली के आधार पर सामाजिक समस्या को अनुभूति और तर्क के मिश्रण से चित्रित किया गया है। इसे तर्क प्रधान, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक उपन्यास कह सकते हैं। यशपाल का एक अद्यतन उपन्यास 'अप्सरा का श्राप' है। इसकी गाथा पौराणिक होते हुए भी उसके साथ लेखक ने स्वतन्त्रता बरती है। पतिव्रत धर्म के आदर्श को, जो शकुन्तला दुष्यन्त की गाथा से सम्बन्धित है, लेखक ने अपने युग की भावना तथा दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। इस पौराणिक गाथा को युग-बोध के अनुकूल आधुनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

विविध वर्ण्य-विषय:-यशपाल कहानीकार के रूप में समाज की वास्तविकताओं से अवगत करके पाठक को उनके प्रति सचेत करना चाहते हैं। उनकी मर्मभेदी दृष्टि समाज में होने वाले अत्याचारों, विभीषिकाओं, कुरूपताओं, अन्धविश्वासों, धार्मिक आडम्बरों, अनैतिक आचरणों का साहित्य के माध्यम से नग्न प्रदर्शन करके ही सन्तुष्ट नहीं होती, बल्कि उन पर सख्त प्रहार करती है। उनका हृदय आक्रोश कर बैठता है। विडम्बनाओं से विद्रोह करके यशपाल इन कहानियों में सर्वथा नवीन मार्ग के लिए व्याकुल दृष्टिगोचर होते हैं, लेकिन कभी-कभीकहानियों में सर्वथा नवीन मार्ग के लिए व्याकुल दृष्टिगोचर होते हैं, लेकिन कभी-कभी कहानियों में वे किसी न किसी समस्या या विडम्बना का चित्रण करके रह जाते हैं।

अर्थ की समस्या से सम्बन्धित यशपाल की कहानियों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक समाज के व्यापक धरातल पर होने वाली अर्थात् समाज में पूँजीपति और शोषक वर्ग की विषमताओं से उत्पन्न समस्याओं से सम्बन्धित कहानियाँ दूसरी सीमित परिवेश में रचित अर्थात् पारिवारिक जीवन क्षेत्र में आर्थिक समस्याओं से सम्बन्धित कहानियाँ।

यशपाल ने जिस प्रकार अर्थ की समस्या को उसके विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। उसी प्राकर सेक्स की समस्या को भी अनेक रूपों में चित्रित किया है। सेक्स के सम्बन्धित कुछ कहानियाँ अर्थ की समस्या से सम्बन्धित हैं, लेकिन अधिकाँश कहानियाँ स्वतन्त्र हैं। जो केवल - सेक्स प्रधान हैं। ऐसी कहानियाँ सामाजिक जीवन की नग्न वास्तविकताओं, दुर्दमनीय प्रवृत्तियों, नारी की विवश परिस्थितियों, विभिन्न आचार - व्यवहार, रहन-सहन सबका प्रतिनिधित्व करती हैं। यशपाल ने धार्मिक अन्ध - विश्वास, नैतिक आडम्बरों, प्राचीन मान्यताओं का खण्डन करने के लिए भी कुछ कहानियों की सोद्देश्य रचना की है। 'तूफान का दैत्य' या 'साई सच्चे', 'देवी का वरदान' 'मनु की लगाम', 'विश्वास की बात', 'कुल मर्यादा', 'उत्तमी की माँ', 'भगवान के पिता के दर्शन', 'मन की पुकार', 'चोरी और चोरी' और 'खच्चर और आदमी' आदि कहानियों में उपर्युक्त विविध दृष्टिकोणों की स्पष्ट व्यंजना है।

"मनु की लगाम' में 'देवता' के रूप में दिया गया यशपाल का भाषण अथवा आदेश यज्ञोपवीत धारण करने वालों के लिए अन्ध-विश्वास का सफलतापूर्वक खण्डन करता है। "[28] कुछ कहानियाँ सामाजिक सन्दर्भ में मात्र धार्मिक विडम्बनाओं का चित्रण हेतु लिखी हैं। 'उत्तमी की माँ' कहानी में 'सत्संग' की भक्तिनों को उत्तमी के सूखे और गढ़ों में धंसी हुई आँखों से तप का तेज टपकता दिखाई देता था। और जब प्राणायाम के लिए साँस भरने के कुछ क्षण बाद ही उत्तमी खाँसी और खून के फब्बारे के निष्प्राण हो गई, तो भक्तिनों ने 'ओइम' 'आनन्द' का जाप करते हुए निश्चय किया कि यौगिनी उत्तमी ब्रह्मा में लीन हो गई। लेकिन उत्तमी की माँ उस परम आनन्द का भाग न पाकर पागलों की तरह चीखती रही- "हाय, मेरी बेटी को, मेरी बच्ची को सबने मिलकर मार डाला।... हाय तू भूखी प्यासी तरसती ही मर गई.... ।"[29] संस्कारों में बंधा मनुष्य झूठ बोलने से डरता है। साधारण मनुष्य की सत्य - प्रियता भी कभी-कभी कितनी विडम्बना का रूप ले सकती है। 'सच बोलने की भूल' कहानी में सच बोलकर व्यक्ति ने किसान का विश्वास रखो दिया है। वह धोखा न देने के चक्कर में सच बोलकर उल्टा उसकी दृष्टि में शहरी धोखेबाज कहलाया। तभी तो उसकी पत्नी कहती है- "उन देहातियों को कंठी के बारे में बताकर खिन्न करने की क्या जरूरत थी ? कंठी मठ में चढ़ाकर उनकी भावना

सन्तुष्ट हो जाती है।"[30] लेकिन व्यक्ति संस्कार बद्ध होने के कारण न तो झूठ बोलकर स्थिति को सुधार सकता है, न ही दूसरे व्यक्ति में सत्य झेलने की क्षमता है।

अत: सारांशत: कह सकते हैं कि निबन्ध - रचना में विषय की विविधता है। आप कहानी और उपन्यास के साथ-साथ निबन्ध के माध्यम से भी सीधे तौर पर अपने विचार जनता तक पहुँचाते रहे हैं। इतने निबन्धों की चर्चा - विवेचना करने के पश्चात् भी यह कहना कठिन है कि यशपाल एक कुशल निबन्धकार हैं। कथा लेखन आपके सर्जनात्मक साहित्य के मुख्य एवं प्रधान अंग है और निबन्ध - रचना उससे अभिन्न एक गौण अंग। यशपाल के अधिकतर निबन्ध विचारात्मक हैं। नितान्त व्यक्तिपरक, संस्मरणात्मक निबन्धों में भी विचार-तत्त्व की प्रधानता है। निबन्धों में केवल भारतीय ही नहीं, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी उद्घाटन किया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति उनके विचारों से मेल न खाने के कारण प्रगति के मार्ग की अवरोधक ही नहीं, पिछड़ी सभ्यता का प्रतीक है।अत: कहा जा सकता है कि यशपाल के साहित्य में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक सभी समस्याओं की नई व्याख्या, नवीन समाधान और नव्य प्रकाश मिलता है। उनकी गहन अध्ययन भूमि एवं विचार दृष्टि पर मार्क्सवादी दर्शन आच्छादित है। सहृदयता एवं आत्मीयता ने वैचारिक गूढ़ता को सहज, सरल, सुबोध और विनोदमयी पृष्टभूमि प्रदान की है। जहाँ निम्न वर्ग की समस्याओं पर चिन्तन मनन किया गया है, वहाँ उनकी हृदय करुणा से द्रवित नहीं हो उठता बल्कि अन्याय और अत्याचार की विभीषिका को देखकर चीत्कार कर बैठता है। वह वेदनानुभूति आक्रोश का रूप धारण कर लेती है। यशपाल के निबन्ध प्राचीनता का प्रांगण लाँघ कर नवीनता की ड्योढ़ी पर पहुँचने के लिए सन्देश ही नहीं देते, बल्कि दिशा-निर्देश करने में भी सहायक हैं। यह निर्भ्रान्त रूप से मान्य है कि हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि के लिए साहित्यकार के रूप में यशपाल का योगदान सहायक सिद्ध हुआ है।

******

सन्दर्भ :-

1 यशपाल एक समग्र मूल्याँकन सुनील कुमार लवटे, पृ० 52
2 वही, पृ० 52
3. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व सरोज गुप्त, पृ० 74 से उद्धृत
4. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल : पारसनाथ मिश्र, पृ० 161
5. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व सरोज गुप्त, पृ० 75
6. दादा कामरेड: यशपाल, पृ० 34
7. झूठा सच (देश का भविष्य) : यशपाल, पृ० 238
8. अप्सरा का श्राम यशपाल, पृ० 92
9. झूठा सच (देश का भविष्य) : यशपाल, पृ० 39
10. तेरी मेरी उसकी बात : यशपाल, पृ० 204
11. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व सरोज गुप्त, पृ० 76
12. वही, पृ० 77
13. दादा कामरेड: यशपाल, दो शब्द, पृ० 11
14. वही, पृ० 11
15. वही, पृ० 11
16. पार्टी कामरेड: यशपाल, पृ० 33
17. यशपाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सरोज गुप्त, पृ० 77
18. झूठा सच (वतन और देश) : यशपाल, पृ० 22
19. वहीं, पृ० 460
20. झूठा सच (देश का भविष्य) : यशपाल, पृ० 616
21. झूठा सच यशपाल, समर्पण
22. ज्ञानदान: यशपाल, पृ० 49
23. पृ० 48
24. वही, पृ० 48
25. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व : सरोज गुप्त, पृ० 78
26. वही, पृ० 78
27. दिव्या : यशपाल, भूमिका
28. ओ भैरवी, यशपाल, पृ० 48
29. उत्तमी की माँ : यशपाल, पृ० 23
30. सच बोलने की भूल: यशपाल, पृ० 18

वैयक्तिक प्रगीत कविता में बिम्ब-विधान

रेणु बाला

एसोशिएट प्रोफेसर,
आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज,पता- 109, मनचाहत अपार्टमेंट, प्लॉट- 42, सेक्टर- 10, द्वारका,नयी दिल्ली-110075,मो. 9818877429

छायावादी कविता की अन्यतम विशेषता व्यक्तिवाद है जिसका प्रतीक है 'मैं' और इस 'मैं' का उचित प्रतिनिधि कामायनी का मनु है। इस 'मैं' के साथ ईर्ष्या और अहंकार दोनों हैं, जिसके फलस्वरूप इसकी अनिवार्य परिणति पीड़ा में होती है । छायावादोत्तर वैयक्तिक प्रगीत कविता का केन्द्रीय कथ्य भी यही व्यक्तिवाद है, परन्तु "यह व्यक्तिवाद अध्यात्मिक नहीं, भौतिक है। छायावाद में भिन्न-भिन्न दार्शनिक प्रभावों के कारण एक विश्वात्मा की स्वीकृति कम से कम सिद्धान्त रूप में अवश्य थी, परन्तु इस कविता का ऐसा कोई आस्तिक आधार नहीं है। इसका व्यक्तिवाद मान्य आस्थाओं के प्रति संदेह और विद्रोह को लेकर चला है। उसके मूल में एक ओर सूक्ष्म अध्यात्मिक विश्वासों के प्रति सन्देह और दसरी ओर नैतिक और सामाजिक विधान के प्रति असन्तोष का भाव है।" इस कविता में एक ओर व्यक्ति की निर्बन्ध इच्छाएं हैं जो सारी सीमाओं को तोड़ देना चाहती हैं, दसरी ओर सीमित, संकीण परिवेश है जो इन इच्छाओं की पूर्ति को असम्भव बना रहा है। यहां परिवेश और समाज खलनायक की भूमिका निभाते हैं। कवि अपने और समाज के तनाव को स्पष्ट रूप में अनुभव करता है -

"है चिता की राख कर मैं,
मांगती सिन्दूर दुनिया,
आज मुझसे दूर दुनिया।"

इस व्यक्तिवादी अनुभवयात्रा का स्वाभाविक पर्यवसान होता है इस विश्वास में कि जीवन क्षणभंगुर है, उसमें अवसाद की प्रधानता है, यह कुछ क्षण उल्लास के मिल जाते हैं तो उन्हें निर्द्वन्द्व होकर भोगो। प्रेम में भोग की तीव्रता एक प्रकार के उन्माद को जन्म देती है। इस कविता में उन्माद एक मूल्य बन गया है। मस्ती जगत की व्यवस्था और रूढ़ियों को भूला देती है और उन्माद एक मिथ्या सृष्टि करता है। जिसमें अपने आप को भूले रहना पागल होना है। यह उन्माद और मस्ती का मूल्य कहीं-न-कहीं स्वाधीनतो के मूल्य से जुड़ा हुआ है, क्योंकि प्रेम जब उतना एकांतिक नहीं रह गया था । भारतेन्दु काल से ही प्रेम और सामाजिकता एक दूसरे में घुलने-मिलने लगे थे। इन कवियों का प्रेम इसी स्तर का है जिसमें विद्रोह, असन्तोष, सामाजिकता सभी कुछ है, परन्तु वैयक्तिकता के स्तर पर ।ये कवि छायावाद की अध्यात्मिक जीवन-दृष्टि और प्रगतिवाद की समाजवादी जीवन-दृष्टि दोनों से रहित होने के कारण निपतिबोध से ग्रस्त हैं। उनका विद्रोह एक भावुक एवं रोमानी व्यक्ति का विद्रोह है जिसमें वैचारिकता का अभाव है । समाज का गठन अमानवीय है, उसे टूटना चाहिए वह चेतना तो विद्यमान है किन्तु किस प्रकार टूटेगा इसकी चिन्ता नहीं है। "कहने की आवश्यकता नहीं कि यह विद्रोह सर्वथा कुण्ठित था, इसमें गति न होकर हुंकार-भर थी, इसका वेग बाहर न होकर अन्दर ही था, इसमें बाह्य जीवन का संघर्ष न होकर अन्तर्मन की टकराहट थी, जो अत्यन्त प्रबल उक्तीतों में अभिव्यक्त हुई। इस प्रकार इस कविता में आर्थिक संघर्ष का बाह्य सामूहिक रूप अंकित नहीं किया गया, उसका एकान्त वैयक्तिक आन्तरिक रूप ही व्यक्त किया गया।" स्वच्छंद प्रेम और आहत अहं इस कविता के दो मुख्य विषय हैं। प्रेम इनकी केन्द्रीय वृत्ति है। किन्तु इनका प्रेम छायावाद की तरह आध्यात्मिक और वायवीय न होकर लौकिक और ठोस है। छायावादी कवि स्वच्छंद होकर सौन्दर्य-अनुभव को भोगना और व्यक्त करना चाहता है किन्तु नैतिकता के भय से अपनी भावनाओं को रहस्य के आवरण में लपेट कर व्यक्त करता है। किन्तु इनका प्रेम लौकिक है। प्रेम का आलम्बन लौकिक होने के कारण उसका स्वरूप अधिक मूर्त और मांसल है इसलिए इनके बिम्ब भी अधिक मूर्त और मांसल हैं। यह सही है कि इनके बिम्ब छायावादी कवियों के बिम्बों के समान सूक्ष्म, संश्लिष्ट और गहरे नहीं है किंतु उनमें अनुभव का खरापन मिलता है. अनुभव की प्रामाणिकता और तीव्रता के कारण इनके बिम्ब नवीन सौन्दर्य-बोध की सृष्टि करते हैं। परन्तु इनके अनुभव जीवन के ठोस यथार्थ के संश्लिष्ट अनुभव न होकर एक भावुक व्यक्ति के रोमानी अनुभव हैं, इसलिए ठोस और जटिल यथार्थ के विविध स्वरों का उद्घाटन करने के स्थान पर वैयक्तिक राग-विराग, उल्लास-विषाद का अंकन करते हैं ।ये सभी कवि प्राय: मध्यवर्ग के हैं। इनकी प्रेम विषयक आशा-आकांक्षा तो नई है

परन्तु परिवेश परम्परागत और रूढ़िबद्ध है। इसलिए इनकी स्वच्छंद वृत्ति प्रेम और सौन्दर्य की भूख लिए उड़ती तो थी पर तृप्त नहीं हो पाती थी। प्रेम और सौन्दर्य की यह आकांक्षा सामाजिक बंधनों की कठोरताओं से टकराकर विषाद के सघन स्वर में बदल जाती थी। कवि को लगता था मानों इस वृद्ध जग को मेरी क्षणिक जवानी खटक रही है, मेरे अनुभव-गान को यह वासनामय समझ रहा है। विषाद का यह स्वर केवल व्यक्तिगत असफलताओं का परिणाम नहीं था वरन् उस समय के सम्पूर्ण राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में व्याप्त था। राजनीतिक स्तर पर दूसरे सत्याग्रह आन्दोलन और गाँधी-इरविन समझौते की असफलता और सामाजिक स्तर पर रूढ़िबद्धता, आर्थिक रिक्तता ने इस विषाद के स्वर को तीव्रता प्रदान की। जिसके फलस्वरूप "सूक्ष्म आदर्शपरक जीवन के प्रति अनास्था और स्थूल यथार्थपरक जीवन के प्रति आस्था बढ़ने लगी। विश्वास की भूमि डगमगाने लगी और विद्रोह एवं संदेह के अंकुर फूटने-फैलने लगे।'प्रतिक्रिया स्वरूप' नैतिक आदर्श का स्थान वैयक्तिक विद्रोह ने ले लिया और आध्यात्मिक अनुभूतियों का स्थान जीवन में कटुतिक्त अनुभवों ने। अनन्त और असीम सिमटकर व्यक्ति के निजी परिवेश में विलीन हो गये। प्रेम की ऊर्ध्वमुखी अमूर्त कल्पना मूर्त और मांसल भोगवृत्ति के रूप में परिवर्तित हो गयी।" इनकी प्रवृत्तियां कहीं ठहरना नहीं जानती, इसलिए उनमें गतिशीलता और विद्रोह तो है, किन्तु सामाजिकता, समवर्तिता और व्याप्ति नहीं। इनका जीवन दर्शन बहुत कुछ यौवन-सुलभ कल्पना के आश्रित है। इसमें अनुभूति और कल्पना का रंगीन मिश्रण है, परंतु छायावादी कल्पना के ऐश्वर्य का नितान्त अभाव है। इन कवियों की अनुभूति कल्पना दोनों ही सरल एवं ऋजु हैं। इसलिए बिम्ब भी जटिल और मिश्रित न होकर सरल एवं इकहरे हैं।

हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वरशुक्ल अंचल और दिनकर इस धारा के महत्वपूर्ण कवि हैं। इस युग की वैयक्तिक आशा-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति इन्हीं कवियों की रचनाओं में हुई है। दिनकर ओज के कवि हैं और राष्ट्रीय विषयों पर ही अधिक कविताएं इन्होंने लिखी हैं परन्तु एक प्रच्छन्न श्रृंगार भावना इनमें आरम्भ से ही रही है। इस श्रृंगार-भावना की स्वाभाविक परिणति 'उर्वशी' है। परन्तु 'उर्वशी' में 'काम-भावना' का सामन्यीकरण होने के कारण बिम्बों का अभाव मिलता है। 'अंचल' में 'भोग की आकांक्षा' अपने उद्दाम रूप में व्यक्त हुई है। 'अंचल' अपने स्फुट और विशृंखल चित्रों को बिम्बात्मक परिपूर्णता प्रदान करने का प्रयत्न नहीं करते। बिम्बों की दृष्टि से नरेन्द्र शर्मा और बच्चन का काव्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। बच्चन का भी प्रारंभिक काव्य नहीं, क्योंकि "आरम्भिक हालावादी कविताओं में प्रतिक्रियात्मक उत्साह अधिक था। अतः उनमें अभिव्यक्ति की बारीकी और संवेदनात्मक तीव्रता उतनी नहीं है। नये, प्रभावशाली बिम्बों की दृष्टि से उनकी बाद की कविताएं अधिक महत्वपूर्ण हैं। विशेषतः 'निशा-निमन्त्रण' और 'एकान्त-संगीत' का बिम्ब-विधान राग-बोध की एक नयी दिशा का सूचक है।" छायावादी कवि के निकट चांदनी दृश्य-सत्ता से अधिक अमूर्त अनुभव की वस्तु थी। वे चांदनी का चित्र प्रस्तुत करने की बजाय उसके प्रभाव का बिम्ब अंकित करते थे। परन्तु, बच्चन के लिए चांदनी उनके सुख-दुख में हिस्सा लेने वाली एक सजीव सत्ता है। छायावादी कवि के निकट चांदनी दृश्य-सत्ता से अधिक अमूर्त अनुभव की वस्तु थी। वे चांदनी का चित्र प्रस्तुत करने की बजाय उसके प्रभाव का बिम्ब अंकित करते थे। परन्तु, बच्चन के लिए चांदनी उनके सुख-दुख में हिस्सा लेने वाली एक सजीव सत्ता है-

"दे रही कितना दिलासा
आ झरोखे से जरा-सा
चांदनी पिछले प्रहार की पास में जो सो गया है।"

इस बिम्ब में चांदनी में मानवीय स्पर्श होने के कारण एक अद्भुत ऐन्द्रिय तीव्रता है।

"तुम आती हो तो बादल-सा हट जाता है
सब आसमान खुल जाता है।
खिल जाती है पल में प्रसून-सी नरम धूप।"

कवि ने प्रिया के आगमन को सहसा बादल के हट जाने से खुल गए आसमान जैसा कहा है। इसमें कहीं कवि के मन पर पड़े हुए विषाद के भी हट जाने का संकेत है, किन्तु अन्तिम पंक्ति में धूप के लिए एक सर्वथा भिन्न उपमान लेने के कारण बिम्ब का समग्र प्रभाव खण्डित हो जाता है। 'नरम-धूप' में स्पर्श-बिम्ब है, पर मिश्र बिम्ब जैसा संवेदनाओं के मिश्रण का घनत्व नहीं है। नरेन्द्र शर्मा ने बिम्बों का चयन मुख्यतः प्रकृति से किया है। आषाढ़ के आगमन का रूप-बिम्ब देखिए-

"पकी जामुन के रंग की पाग
बांधता आया लो आषाढ़।"

ये कवि मूलतःआत्मानुभूति के कवि हैं इसलिए जिन कविताओं में आत्मानुभूति की सघनता है, वे अपने प्रभाव में तीव्र और मर्मस्पर्शी हैं। काव्य का परिवेश निजी अनुभूतियों पर टिका होने के कारण हमें रूप-रस-गंध की एक ठोस दुनियां देखने को मिलती है किन्तु समग्र सृष्टि का अभाव खलता है-

"संध्या सिन्दूर लुटाती है।
रंगती स्वर्णिम रज से सुन्दर
निज नीड़-अधीर खगों के पर,
तरुओं की डाली-डाली में कंपन के पात लगाता है।"

इस चित्र में प्रकृति की यथातथ्यता को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति अधिक है। संध्या का सिंदूर लुटाना, अपने-अपने नीड़ों में पहुंचने के लिए व्याकुल खगों के परों का स्वर्णिम रज से रंगकर सुन्दर हो जाना, पत्तों का कंचनवर्णी हो जाना, सभी हमारे जाने पहचाने व्यापार हैं; किन्तु कवि ने उन्हीं को एक नया क्रम देकर इस प्रकार उपस्थित किया है कि वह सर्वथा अछूता बिम्ब बन गया है -

"कोई पार नदी के गाता।
भंग निशा की नीरवता कर/इस देहाती गाने का स्वर
ककड़ी के खेतों से उठकर, आता यमुना पर लहराता"

ककड़ी की सुगंध भी गाने के स्वर के साथ-साथ उठ रही है जिसमें किशोर स्मृतियों की गंध भी कहीं-न-कहीं विद्यमान है, जो कवि को अवसाद से भर देती है।

"क्या तुम्हें भी कभी आता है ध्यान हमारा।
नाम ले-लेकर हमारा/खींचता आंचल तुम्हारा
क्या कभी सुनसान।"

अकेलेपन की शून्यता का यह स्मृति-बिम्ब अपनी मार्मिकता के कारण हृदय को छू लेता है।इन कवियों की अनुभूतियां यद्यपि बहुत निजी हैं, परन्तु जिस परिवेश के माध्यम से इन्होंने अपनी निजी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है, वह हमारा जाना-पहचाना है। अतएव इनके बिम्ब भी मांसल और मूर्त प्रतीत होते हैं। वस्तुतः यह काल आदर्शवादी छायावाद और भौतिकतावादी प्रगतिवाद के बीच की कड़ी है। डॉ. नगेन्द्र ने इसे साम्यवाद की आंशिक अभिव्यक्ति माना है "साम्यवाद की रूपरेखा भारतीय नवयुवकों के मन में स्पष्ट नहीं थी। उसकी धुंधली झलकभर उन्होंने देखी थी, प्रकाश उनकी आंखों में नहीं उतरा था। उसका असन्तोष, विद्रोह और अनास्था तो उन्होंन ग्रहण कर ली थी, परन्तु उसकी सामाजिक चेतना का आभास उन्हें नहीं हुआ।" इस सामाजिक चेतना का अभास सन् '36' के आस-पास प्रगतिवाद के आगमन पर हुआ।

**** *******

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कविता की मुख्य प्रवृतियाँ, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-७८-७९
2. निशा निमंत्रण, हरिवंशराय बच्चन, पृष्ठ-१०५
3. कविता की मुख्य प्रवृतियाँ, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-७६-७७
4. कविता की मुख्य प्रवृतियाँ, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-७०
5. आधुनिक कविता में बिम्ब-विधान, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ-२६३
6. अधिनिक कविता में बिम्ब-विधान, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ-२६६
7. निशा निमंत्रण, हरिवंशराय बच्चन, पृष्ठ-७९
8. पलाशवन, नरेंद्र शर्मा, पृष्ठ-२
9. पलाशवन, नरेंद्र शर्मा, पृष्ठ-६५
10. निशा निमंत्रण, हरिवंशराय बच्चन, पृष्ठ-२९
11. निशा निमंत्रण, हरिवंशराय बच्चन, पृष्ठ-५१
12. प्रवासी के गीत, नरेंद्र शर्मा, पृष्ठ-५२
13. आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृतियाँ, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-७०

मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में चित्रित मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक समस्याएं

शमीम पी.
सहायक आचार्य-हिंदी विभाग
सरकारी ब्रेनन कॉलेज
धर्मडम, तलशेरी, कन्नूर – 670106 मो. 7356108164

वर्तमान समय में संख्या की व्यापकता, विशालता और सक्रियता की दृष्टि से मध्य वर्ग समाज का प्रमुख वर्ग है। यह वर्ग पूंजीपति तथा श्रमिक वर्ग के बीच एक दीवार की तरह स्थित है। मध्य वर्ग की परिभाषाएं करते हुए विद्वानों ने उसकी विशेषताओं, सीमाओं सभी का उल्लेख किया है। मध्य वर्ग एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक ,सांस्कृतिक ,धार्मिक सभी कारणों से दूसरे वर्गों से भिन्न है। हिंदी साहित्य कोश में मध्य वर्ग की विशेषताओं के संदर्भ में कहा गया है - "मध्यवर्ग सामंती व्यवस्था में नहीं पाया जाता, क्योंकि उस समय जमींदार तथा किसान का सीधा संबंध था किंतु पूंजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बना दिया है कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संगठन सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक और अन्य साधारण लोग आते हैं।मध्यवर्ग विशेषत: बुद्धि प्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रांति के प्राय: समस्त विचारों का सृजन मध्य वर्ग में होता है "I [1] यह वर्ग अनेक आर्थिक समस्याओं से जूझता है। जिस समाज की आर्थिक स्थिति जितनी अच्छी होगी उस समाज के विकास की गति उतनी ही अधिक होगी। मध्यवर्ग की आर्थिक महत्वाकांक्षाए असीमित है। वर्तमान पूंजीवादी युग में समाज में नैतिकता का पतन है तथा धन को प्रभुत्व मिलने लगा है। मध्यवर्ग की विषम आर्थिक स्थिति से आर्थिक तंगी, आवास समस्या ,संबंधों में अजनबीपन का भाव, नैतिक मूल्यों का क्षरण ,पारिवारिक विघटन तथा दिखावे की प्रवृतियां हावी हो रही हैं जो अनेक मानसिक संघर्षों के लिए उत्तरदाई होती है। इसके साथ ही मध्यवर्गीय जीवन में प्रतियोगिता ,स्पर्धा के आधिक्य के कारण जीवन जटिल बनता जा रहा है। वर्तमान में सर्वाधिक अंतर्द्वंद से ग्रसित वर्ग मध्यवर्ग है। यह समाज का सबसे बड़ा वर्ग है जो एक और आधुनिक और विकासशील होने का दावा करता है तो दूसरी ओर परंपरा के अत्यधिक मोह के कारण उतना ही दकियानूसी दिखाई देता है। "यह माथे पर अपने जीवन के अनेक रंगों को लेकर समाज के विस्तृत फलक पर छाया हुआ है। यह मध्यमवर्ग अपने जीवन के अनेकानेक पहलुओं को लेकर हमारे सामने आ जाता है, इससे उसका जूझना भी चित्रित है और हथियार डालना भी जहां उसके जीवन की एकरसता चित्रित है वहां जीवन में भरी विविधता भी"। [2] इसी मध्यवर्गीय मनोवृति का चित्र समकालीन परिवेश और सामाजिक रचना संदर्भ में समकालीन रचनाकारों ने किया है।\ मशहूर रचनाकार मंजूर एहतेशाम जी ने भी तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति अपने लेखन में मध्यवर्गीय पात्रों के माध्यम से की है। उन्होंने अपनी रचनाओं में मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज के संघर्ष को चित्रित किया है, । समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा मध्य वर्ग से संबंधित है जो परंपरागत मूल्यों का निर्वाह करता है और दूसरी ओर उच्च वर्ग का अंधानुकरण के कारण निरंतर आर्थिक समस्याओं से घिरा होता है।व्यक्ति की सीमित आय, बढ़ती महंगाई, बढ़ते परिवार और बढ़ती अपेक्षाओं के कारण मध्यमवर्गीय व्यक्ति के जीवन में तनाव बना रहता है। सारा संघर्ष मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति अर्थात रोटी, कपड़ा और मकान को लेकर है। सूखा बरगद उपन्यास के पात्र अब्दुल वहीद खान एक ईमानदार वकील है I वह ना तो फिजूल खर्च मिजाज के हैं और ना ही समझौता परक इंसान हैं, इसलिए उनके परिवार को भी आर्थिक परेशानी का सामना करना पड़ता है। ईमानदार होने के कारण इतना पैसा नहीं कमा पाते कि परिवार को ऐशोआराम की जिंदगी दे सके।आर्थिक तंगी के कारण वहीद खान बच्चों की फीस समय पर नहीं जमा करवा पाते हैं।उन की बेटी रशीदा जब भी चपरासी के हाथों में फीस की लिस्ट देखती है तभी मौन हो जाती थी। उसे हर समय डर लगा रहता था कि नंदा टीचर उसे फीस के लिए कक्षा में उठाएगी और फीस न दे पाने का कारण पूछेगी। स्वतंत्र भारत का मध्य वर्ग चाहे हिंदू समाज हो या मुस्लिम आजादी से पहले भी आर्थिक विषमता से जूझ रहा था और आजादी के बाद भी आर्थिक परेशानियों का सामना कर रहा है। उसके जीवन में किसी भी स्तर पर बदलाव नहीं आया है सूखा बरगद उपन्यास के पात्र रशीदा इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहती है कि उनकी खुशियां का आधार बाजार की उठती गिरती कीमतों तक ही सीमित हो जाती है। वह कहती है "अव्वल तो यहां कोई पढ़ लिख सकता ही नहीं था -जब तक कि उसका ताल्लुक शाही खानदान से ना हो, या सरकार की तरफ से वजीफा ना मिले , और अगर कोई सिरफिरा फिर भी किसी तरह पढ़ -लिखकर लायक हो जाए तो उसे नौकरी नहीं दी जाती थी"[3] उपन्यास के जरिए लेखक ने भारतीय समाज के निम्न मध्यम वर्ग में, गरीबी, शोषण, धार्मिक उन्माद, अशिक्षा, सांप्रदायिकता, सामाजिक कुरीतियां ,जातीयता आदि के परिप्रेक्ष्य में मध्यवर्गीय जीवन की विडंबना को दर्शाया है।रशीदा स्वयं को मध्य वर्ग से संबंधित मानते हुए कल्लू और कुसुम का उदाहरण देती है। "हम लोग कल्लू और सईदा आपा, हब्बा बुआ और शब्बा आपा की दुनिया और कुसुम, नसीमा या दीपक के पास खुद को पाते किसी पल एक द म फिर ऊपर की दुनिया के पास पहुंच पातेमैं सोचती हूं जहां मैं थी वहां से कल्लू या कुसुम तक बराबरी की ही दरी थी"। [4] रशीदा के माध्यम से मंजूर जी इस बात की पुष्टि करते हैं कि हमारे समाज में किसी भी व्यक्ति या परिवार का निर्धारण उसकी आर्थिक स्थिति के अनुसार होता है।

आर्थिक अभाव के कारण शिक्षा में भी बाधा उत्पन्न होती है। पैसे की कमी के कारण होनहार छात्र को भी अपने सपनों को त्यागना पड़ता है और चाह कर भी कुछ परिस्थितियों के साथ समझौता कर लेना ही उसका कर्तव्य बन जाता है ।सूखा बरगद उपन्यास के पात्र रशीदा कहती है ठीक है अभी तक मैं साइंस के स्टूडेंट थी कॉलेज में आर्ट्स में भी एडमिशन ले सकती हूं जरूरी थोड़ी है कि हर लड़की पढ़ लिखकर डॉक्टर ही बने और फिर अब्बू से मैं यह अपेक्षा कैसे कर सकती हूं कि वह मेरे लिए मेरे मेडिकल केरियर के लिए फीस जमा करें, उनके पास जो कुछ भी है हमारे सामने ही तो है.[5] इस प्रकार विकट परिस्थितियों के कारण होनहार बच्चे अपने सपनों को पूरा नहीं कर पाते और अपने आर्थिक परिस्थितियों से समझौता करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। अपने पिता की मृत्यु के साथ गिरती आर्थिक स्थिति परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा भी गिर जाती है। रिश्तेदारों में भी पहले जैसा सम्मान नहीं रह जाता।

कुछ दिन और उपन्यास में आर्थिक समस्याओं का कारण पुरुष की निष्क्रियता होती है।इस उपन्यास का नायक राजू अपने भविष्य की सुंदर सपनों को संजोते हुए अपने वर्तमान को बुरी तरह ध्वस्त कर लेता है उसका जीवन हमेशा असंतुष्ट बना रहता है ।वह बेकार ही नहीं बेगार भी है। अपने पूर्वजों की संपत्ति को एशोआराम में उडाता है। राजू की अनेक कोशिश के बावजूद भी आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती चली जाती है और वह जिंदगी से परेशान हो उठता है। इस स्थिति में वह कहता है- "रेगिस्तान में प्यासा ऊंट जब तक चलता है तो चलता जाता है एक बार बैठा तो फिर उठ नहीं पाता "। [6] राजू की अनेक कोशिशों के बाद भी परिस्थितियां बिगड़ती चली जाती है इसके लिए वह अपने पत्नी को जिम्मेदार मानने लगता है ।आर्थिक परेशानियों के चलते मां -बेटे द्वारा बार-बार बहू को ही जिम्मेदार समझा जाता है जैसे सारा किया धरा उसी का हो। उसकी पत्नी गर्भवती हो जाती है लेकिन राजू बच्चे का पालन पोषण करने में भी असमर्थ है ।इस दूसरे बच्चे पर राजू अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहता है "तुम तो नौ महीने बाद छुटकारा पा लोगी, उसके बाद तो मुझे ही पालना है , मुझे अपना खून पानी करना है और फिर गलती क्या है? हम लोगों ने शादी की है, हम चाहेंगे तो बच्चा होगा I,अरे यार इन थ्योरीस को छोड़ो जब हम पाल ही नहीं सकते ...। परिवार में आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर एक बच्चे का पालन पोषण भी भारी लगने लगता है ।आर्थिक स्थिति के नाजुक चलते पारिवारिक संबंधों में भी उसका प्रभाव देखने को मिलता है इससे संबंधों में भी दूरियां आने लगती हैं। धीरे-धीरे राजू और उसकी पत्नी के बीच भी दूरियां बढ़ने लगती हैं। वह अपने परिवार की देखभाल न कर पाने में असमर्थ राजू को त्याग कर जाने का निर्णय लेती है।वह कहती है- "शिकायत वहां होती है जहां कोई समझौता संभव हो मेरा अब

तुम से कोई संबंध नहीं तुम चले जाओ यहां से"।[7] मध्यवर्गीय परिवार में आर्थिक संकट के कारण पति - पत्नी में दूरियां बढ़ जाती है I 'बशारत मंजिल' उपन्यास के माध्यम से भी समाज की आर्थिक स्थिति का चित्रण हुआ हैं। मिर्जा जमाल बैग अपने जमाने के जाने-माने लोगों में गिने जाते हैं। आजादी की पहली लड़ाई में ही अपनी जान को बचाकर भोपाल शहर में आ बसे थे। दिल्ली का खात्मा उन्होंने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। इस लड़ाई में उनके तीनों बेटे मौत के घाट उतार दिए गए थे I दामाद जीशान अली भी मार दिए गए थे ।केवल बची थी जहांआरा बैग और दो लड़के बंदा अली खान और संजीदा सोज़ । मिर्जा जमाल बेग के सामने की हवेली बशारत मंजिल टुकड़ों -टुकड़ों में बिक जाती है। प्रकार मानव की सबसे बड़ी आवश्यकता है अपने लिए दो वक्त की रोटी जुटाना और छोटे का जुगाड़ करने के लिए धन एकत्र कर पाना I अंतिम समय में बशारत मंजिल भी अपनी पहचान खोती चली जाती हैI उसकी पहचान ही अर्थ के रूप में बिखरती चली गई थी जो कि अपने जमाने में एक पहचान हुआ करती थी। संजीदा अपने शायरी के माध्यम से पैसे कमा कर अपनी बेटियों का पेट भरता है किंतु संजीदा का भाई उसके इस काम का विरोध करता है। इस कारण से संजीदा के घर की स्थिति बहुत कमजोर हो जाती है ।उसके परिवार वाले इस अवस्था को न समझ कर उसकी बेटियां भी उस पर ताने कसने लगती हैI "दहेज में देने दिलाने के लिए कुछ तो हो वे शादी सोचे -खाली पीली किसी का हाथ पकड़कर तो वह जाने से रही"।[8] आर्थिक कमजोरियों के बढ़ते परिवार के सदस्यों में भी दूरियां आने लगती हैंI पारिवारिक विघटन की समस्या परिवार के सदस्यों के विचारों की भिन्नता या व्यक्तिगत कमजोरी हो के कारण ही नहीं बल्कि आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करती है। व्यक्ति चिंता, क्षोभ, कुंठा आदि से ग्रस्त हो जाता है और युवा वर्ग में मानसिक कमजोरियां बढ़ने लगती हैं।

'दास्तान ए लापता' उपन्यास में भी जमीर अहमद खान अपने पिता शराफत मियां के खर्चे पर जीता है I शराफत मियां कबाड़ी की दुकान चलाते हैं जिसमें जमीर के हाथ न बटाते देख विरोध करते हैं। इस उपन्यास के पात्र जमीर एवं उसकी पत्नी के बीच संघर्ष का वातावरण पैदा हो जाता है जब वह आर्थिक जिम्मेदारियों से मुंह फेरने लगता हैI जमीर अहमद की प्रकृति आशावादी लेकिन अकर्मण्य है I उसकी पत्नी राहत परिवार की आर्थिक स्थिति एवं पति के नकारात्मक रवैया से चिंतित होती है I वह सोचती है कि उसका पति छोटा-मोटा ही सही पर कोई काम धंधा शुरू करें ताकि उसके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी हो सकेI राहत जमीर खान से प्रश्न करती है " घर में बंद होकर पुरानी किताबें - रिसाले पलटते रहने या रात को देर देर तक घर से बाहर रहने से सब ठीक हो जाएगा"। [9] इस प्रकार उपन्यासकार परिवार में आर्थिक पक्ष के मजबूत होने के महत्व का जिक्र करते हैं I आज के जमाने में लोग धन को अपनी प्रतिष्ठा का प्रतीक मानते हैं और दिखावे में उसका अधिक प्रयोग करते हैं I कुछ लोग सामाजिक कार्य व धार्मिक कार्यों में भी पैसे खर्च करते हैं I इसी उपन्यास के पात्र दुल्हन चची अपने मकान को बेचकर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए इसका कुछ अंश खर्च करती हैI उससे दो काम करती है हज करना और दूसरा अपने गांव के बाडे में एक कुआं खुदवाना जिससे पानी पीने वाली आगामी पीढ़ियों की दुआएं और उसके नतीजे उनको मिलते रहे I इस प्रकार सामाजिक प्रतिष्ठा और दिखावे के लिए भी लोग इस तरह के कार्य करते हैंआज मध्यवर्ती समाज की नारी भी शिक्षित एवं आत्मनिर्भर हो चुकी है ।वह विवेकशील और परिवार के प्रति पूर्णतया समर्पित है और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी हैं ।सूखा बरगद उपन्यास की रशीदा रेडियो स्टेशन पर नौकरी करती है और अपनी पिता की मृत्यु के बाद अपने घर की पूरी जिम्मेदारी उठाने की कोशिश करती है। 'दास्तान ए लापता' उपन्यास में राहत अपने पति जमीर अहमद खान के व्यवहार से परेशान होती है और अपने परिवार की भलाई के लिए घर अपनी जिंदगी का बहुत बड़ा फैसला करती है और अपने पति से कहती है मैं "आपसे तलाक मांग रही हूं, आगे जो मेरी मर्जी होगी करूंगी किसी तरह इन बच्चों की जिम्मेदारियों से सुबुकदोश होने की कोशिश करूंगी"I [10] 'कुछ दिन और' उपन्यास मे राजू की पत्नी उसकी अकर्मण्यता और बर्ताव से परेशान होकर उससे अलग होने का निर्णय लेती है I 'मदरसा' उपन्यास में मरियम के प्रति साबिर को मरियम से बहुत शिकायतें थी दूसरी औलाद के लिए रजामंद होना, बिना उसे बताएं अबॉर्शन करा लेना, इसके बाद भी साबिर की मर्जी के खिलाफ बेटी की शादी करना, ऐसे कार्य वह स्वयं अपनी जिम्मेदारी समझकर निभाती हैI

इसके लिए वह अपने पति पर निर्भर नहीं होती I पूर्णतया स्वयं निर्णय लेने और अपने बल पर जीने की हिम्मत सभी पात्रों में दिखाई देती है।

समाज की दैनिक स्थिति का एक कारण महंगाई भी है I हर क्षेत्र में कीमतें आसमान को छू रही हैं। समाज का कोई भी वर्ग हो चाहे मध्यवर्ग या निम्न वर्ग , सभी पर महंगाई का प्रभाव दिखाई देता है ।सूखा बरगद उपन्यास के माध्यम से मध्यवर्गीय परिवार पर महंगाई का प्रभाव देखा जाता है ।अब्दुल वहीद खान की मृत्यु के पश्चात घर की सारी जिम्मेदारी रशीदा के कंधों पर आ जाती है। रशीदा का अल्प वेतन घर की रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने तक ही सीमित हो जाता है। रशीदा कहती है घर - घर में ऐसा क्या था, जिसे उल्लेखनीय कहा जा सके ? हमारा सरोकार तो सचमुच बाजार की उठती गिरती कीमतों तक ही था।

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि सामाजिक परिवेश और मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक स्थिति में जीवन को कैसे प्रभावित किया है चाहे वह प्रभाव शिक्षा के कारण हो , जहां महंगाई के कारण हमारे सामाजिक संबंधों में भी इसका गहरा असर पड़ा है I इस प्रकार आर्थिक स्थिति के कमजोर होने के साथ-साथ मानव जीवन में कुंठा, तनाव, पारिवारिक रिश्तो में विघटन, पति-पत्नी संबंधों में विघटन, मानसिक संघर्ष बढ़ने लगता है I मनुष्य निरंतर हीनता बोध से ग्रस्त हो जाता है। मंजूर एहतेशाम जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मध्यवर्ग के जीवन की सच्चाइयों को बड़ी गंभीरतासे चित्रित किया है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. संपादक डॉक्टर धीरेंद्र वर्मा ,हिंदी साहित्य कोश 2
2. डॉ प्रतिभा धारासूरकर,आठवें दशक की कहानी,पृ 39
3. मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृ 61
4. वही, पृ संख्या 34
5. वही, पृ 76
6. कुछ दिन और, पृ15
7. वही, पृ 51
8. बशारत मंजिल पृ 200
9. 'दास्तान ए लापता' पृ 59
10. वही, पृ 27

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की आलोचना दृष्टि और 'निराला'

मनीष कुमार भारती
शोध छात्र
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय,मोतिहारी बिहार

छायावादी कवि निराला के अपने जीवन के उत्तरार्ध में लिखी गयी कविता जिसका प्रणयन उन्होंने शरणागति की भावना से प्रेरित होकर किया था, अधिकतर आलोचकों के द्वारा खारिज करने का प्रयास किया गया और कहा गया कि निराला अपने जीवन के उत्तरकाल में विपथगामी हो गये हैं। 1950 से 1961 तक रचित इन कविताओं का संकलन अर्चना, अराधना, गीतगुंज और सान्ध्यकाकली में हुआ है।

बहुतों की दृष्टि में निराला इसलिए बड़े कवि हैं क्योंकि वे सरोज-स्मृति, तुलसीदास और राम की शक्तिपूजा की कविताएं लिखी। प्रगतिवादी और मार्क्सवादी की दृष्टि में निराला इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उन्होंने कुकुरमुत्ता, नये पत्ते, बेला की कविताएं लिखी। किंतु आलोचक विष्णुकांत शास्त्री की दृष्टि निराला की उत्तरकालीन काव्य पर जाती है जिसकी प्रेरणा शरणागति की भावना रही है। वे कहते हैं निराला का उत्तरकालीन काव्य उनकी काव्य-यात्रा का सहज विकास था, पाछे लौटना या विपथगामी होना नहीं।

प्रगतिवादी आलोचक तो निराला के इस रूप को देखकर क्रोधित हो गये क्योंकि कुकुरमुत्ता, नये पत्ते, बेला के रूप में उसे प्रगतिवादी घोषित करने के उपरांत यह भक्ति विभोर शरणागत रूप अचंभित करने वाला था। अपनी झुँझलाहट प्रकट करते हुए उन्होंने निराला को पलायनवादी, विपथगामी कहा। कहा कि निराला पीछे लौट रहे हैं, जो ईश्वर को केवन कल्पना मात्र समझते हों उनके लिए यह मानना असंभव सा प्रतीत होता है। वे तो इसे व्यक्तिगत स्वार्थ के रूप में देखते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि-

*"निराला के इन गीतों को आत्मप्रवंचना के अंतर्गत हठधर्मिता के कारण लिखा हुआ मानते हैं, निराला काल्पनिक इच्छापूर्ति, आत्प्रंचना और रहस्यवादी रूढ़ियों के कवि भी हैं। उनके साहित्य में इस तरह की प्रवृतियाँ उनकी साम्राज्य विरोधी क्रांतिकारी चेतना, उनके यथार्थोन्मुख मानवतावाद के आड़े आती है, उसे कमजोर बनाती है।"*निराला के वेदांत निरूपण और रहस्यवाद के प्रति विरूप टिप्पणी के उपरांत उनके भक्ति गीतों पर सीधा हमला करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि-*"एक स्तर भक्ति का है जहां प्रभु से या शक्ति की देवी से ऐसी प्रार्थना की गयी है, जिसका होना अनिवार्य है निराला के विनयगीत दो तरह के हैं। एक गीत ऐसे हैं जहां उनके दुख और संघर्ष की तीव्र अभिव्यक्ति है, दूसरे वे जहां उनेक आराध्य प्रभु या दैवी संसार के दुख-सुख से दूर अपना चिन्मय प्रकाश फैलाए रहते हैं अथवा कवि की प्रार्थना मानकर बहुत आसानी से उनके जीवन को आनंद और प्रकाश से भर देते हैं।"*

विचारणीय बात यह है कि तुलसीदास की भक्ति को उच्च कोटि का मानने वाले रामविलास शर्मा निराला की भक्ति को मानवतावाद में बाधा पाते हैं। निराला के गीतों को छायावादी काव्य की पलायन वृत्ति मानते हैं। डॉ. नंदकिशोर नवल लिखते हैं कि-*"निराला के उत्तरकालीन धार्मिक काव्य हमें उद्विग्न करता है, आध्यात्मिक शांति नहीं प्रदान करता। यह शांति निराला को कभी नहीं मिली क्योंकि इस लोक से उन्होंने कभी मुँह नहीं मोड़ा।"*नामवर सिंह भी अपने कई व्याख्यानों में निराला की उत्तरकालीन कविता को निराला के अस्वस्थ तन-मन की देन बताया है। वे अपनी पुस्तक में छायावादी कवियों की इस प्रवृति की आलोचना करते हुए लिखते हैं –*"जिस छायावाद का आरंभ सामाजिक स्वाधीनता के लिए व्यक्ति के विद्रोह से हुआ, उसी का पर्यवसान समाज से व्यक्ति के पलायन से हुआ। सभी छायावादी कवि अंत तक आते-आते या तो अपने जीवन की पराजय का अनुभव करने लगे अथवा समाज को अपना शत्रु समझने लगे।"*जब व्यक्ति बुद्दि और बल के सहारे लड़ते हुए थकने लगता है तब उसे परमात्मा का ध्यान आता है। यद्धपि प्रभु स्मरण को पराजय की भवना से जोड़ना उचित नहीं है पर कभी-कभी जीवन की विभीषिकाओं से श्रान्त-भ्रांत व्यक्ति भक्ति के संबल से नई शक्ति अवश्य प्राप्त करता है। जीवन पक्ष के विजेता भी भक्ति के द्वारा शांति, शक्ति और नवोत्साह प्राप्त करते हैं। जीव-जगत और ब्रह्म के स्वरूप को जानने की कामना और एक विशिष्ट रीति से उसके समाधान का प्रयास ही दर्शन है। सृष्टि-प्रलय, जन्म-मरण, सुख-दुख, पाप-पुण्य, बंधन-मुक्ति, आदि अनेक प्रश्न दर्शन के साथ जुड़े हुए हैं। निराला का संबंध रामकृष्ण आश्रम से रहा है। स्वामी विवेकानंद के नव्य वेदांत का उन पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। दर्शन और भक्ति का समन्वित रूप उनकी कविताओं में आरंभ से लेकर अंत तक मिलता रहा है। आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का मत है-

"निराला का उत्तर कालीन काव्य उनकी यात्रा का सहज विकास था, पीछे आगामी होना नहीं। आस्तिक संस्कारों में पले तुलसी भक्तों निराला रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद के साहित्य तथा स्वामी प्रेमानंद, माधवानंद जी के साहचर्य के प्रभाव से नव्य वेदांती दृष्टि को अपना मान कर कर्म क्षेत्र में उतरे थे। यह नव्य-वेदांत एक तरफ संसार को माया मानता था अतः मोक्ष को परम पुरुषार्थ के रूप में ग्रहण करता है। तथा दूसरी ओर श्री रामकृष्ण परमहंस देव के निर्देशानुसार जगत् के जीवों को विश्व मानकर उनकी सेवा को व्यवहारिक साधना के रूप में स्वीकार करता था।" 'आत्मनः मोक्षार्थ जगद्धिताय च' आदर्श वाक्य को स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मठ के सन्यासियों के लिए कर्म वाक्य घोषित किया था। शायद इसी आदर्श वाक्य की प्रेरणा, मानव कल्याण की प्रेरणा का परिणाम बादल राग, विधवा, भिक्षक, तोड़ती पत्थर जैसी कविताओं में हुआ है। निराला की यह साम्राज्य विरोधी मानववादी चेतना भी मूलतः विवेकानंद की देन है जैसा कि कहावत है 'संगत से गुण होत संगत से गुण जात' मार्क्सवादियों के संपर्क में आने पर थोड़ा रंग मार्क्सवादी का भी दिखाई पड़ता है।हमें यह स्मरण रखना चाहिए- *"कि जिस निराला ने जूही की कली के साथ 'केलि' से काव्य यात्रा आरंभ किया था, आगे चलकर तुलसीदास की भांति रत्नावली से मुक्त होकर देश-काल की चिंता करने निकल पड़े। जो पहले यमुना के प्रति अधिक स्वप्नशील थे, वही वन-बेला में देश और समाज के पिस्सुओं की चिंता करने लगे। रेखा में जिन्होंने बड़ी उमंग के साथ लिखा था कि-प्रथम जीवन में,जीवन ही मिला मुझे, चारों ओर उन्हीं को मरण-दृश्य भी आगे चलकर देखना पड़ा। जिनके लिए कभी संपूर्ण प्रकृति और सृष्टि मनोहर थी तथा उसी में दिन-रात डुबे रहते थे, उन्हीं को फिर सरोज की स्मृति में आंसुओं से तर्पण करना पड़ा। सौंदर्य के उपासक को राम की शक्ति पूजा का विधान करना पड़ा। जो कभी आकाश की चांदनी को ही सबकुछ समझते थे, उन्हें अब धरती का नरगिस श्रेष्ठ प्रतीत होने लगी। तात्पर्य यह कि निराला के काव्य का विस्तार हुआ। प्रकृति-प्रेम और निजी प्रणय की सीमा से निकलकर जीवन-संघर्ष में आए और उसमें लड़ते हुए उन्होंने अनेक अनुभवों को काव्य का रूप दिया।"*

निराला के काव्य में आरंभ से ही प्रेम, सौंदर्य, देशभक्ति, मानव कल्याण आदि के साथ-साथ अध्यात्म चेतना की अभिव्यक्ति होती रही है जो अंत तक चलता रहा। डॉ. नंदकिशोर नवल इस सत्य को स्वीकार करते हैं- *"आमतौर पर यह समझा जाता है कि निराला के काव्य का तीसरा चरण उनके दूसरे चरण के यथार्थवादी काव्य से भिन्न है क्योंकि इसमें पुनः भक्ति और अध्यात्म के गीत रचने लगते हैं। वास्तविकता यह है कि वे कुकुरमुत्ता और नए पत्तों की रचनाओं के दौर में भी भक्ति और अध्यात्म के गीत रचे रहे थे जो कि अणिमा और बेला में संकलित है।"* इसके बाद भी डॉ. नवल निराला की कुछ पंक्तियों को उद्धृत कर यह मंतव्य प्रकट करते हैं कि- *"जो कवि इस लोक को माया समझेगा वह कभी नहीं चाहेगा कि साहित्य और विज्ञान दोनों का उपयोग उत्पादन वृद्धि और फिर उससे होने वाले कल्याण के लिए हो। मार्क्स ने लिखा है, धार्मिक वेदना एक साथ ही वास्तविक वेदना की अभिव्यक्ति और वास्तविक वेदना के विरुद्ध विद्रोह भी है निराला के चरण के काव्यों को हमें इसी आलोक में देखना चाहिए।"* आचार्य विष्णुकांत शास्त्री डॉ. नवल की "

बातों का खंडन करते हुए कहते हैं कि- *यह उक्ति मार्क्सवादी आलोचना की दयनीयता को उजागर करती है। श्री नवल इस प्रस्तुत संदर्भ की सच्चाई को नकार भी नहीं सकते, पूरी तरह स्वीकार भी नहीं कर सकते अतः मार्क्स का उद्धरण देकर वे इन कविताओं की विकृत व्याख्या करने का प्रस्ताव करते हैं। मैं उनकी जानकारी के लिए यह जोड़ सकता हूँ कि संसार को माया मानते हुए भी रामकृष्ण मिशन के स्कूल-कॉलेजों में ना केवल विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। बल्कि अनेक क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि के लिए विद्यार्थियों को तकनीकी शिक्षा भी दी जाती है। अपना मोक्ष और जगत् का हित दोनों जिनका काम्य है उनके लिए भक्ति और उत्पादन वृद्धि के प्रयास पूरक हैं, परस्पर विरोधी नहीं। निराला इसी परंपरा को साहित्य में आगे बढ़ाते हैं।''*

निराला के उत्तरवर्ती शरणागति काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता है उसमें भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों में स्वाभाविकता का होना। निराला अपने को सर्वथा निराश्रित, बेसहारा मानकर प्रभु की शरण में आते हैं। उनके प्रभु की संकल्पना भी व्यापक है। किसी भी सांप्रदायिक आग्रह से सर्वथा मुक्त है। उनका वेदांत ज्ञान जैसे उन्हें अपने नाम रूप से आवत रहने नहीं देता वैसे ही प्रभु के किसी विशेष नाम रूप से भी उन्हें नहीं बांधता। जगत कि आपात रमणीयता में निहित विकरालता को वे भलीभांति पहचान चुके हैं और उसके किसी भी आकर्षण से वे बंधना नहीं चाहते। कितनी निश्छल वाणी में निराला प्रभु से शरण की याचना करते हैं-

"दरित दर करो नाथ, अशरण हूँ गहो हाथ।
हार गयी जीवन रण, छोड़ गये साथीजन,
एकाकी नैश क्षण, कंटक पथ विगत पाथ,
देखा है प्रात किरण, फूटी है मनोरमण,
कहा तुम्हीं हो अशरण-शरण, एक तुम्हीं साथ।
जब तक शत मोह जाल, घेर रहे हैं कराल,
जीवन के विपुल व्याल, मुक्त करो विश्वनाथ।"

निराला के उत्तरकालीन भक्ति-रचनाओं में माधुर्य भाव की कविताएं अपेक्षाकृत रूप से बहुत कम हैं। कवि के रूग्णमन, विषगण जीवन बार-बार उसे अपनी लघुता का स्मरण कराते हैं और अपने को वह छोटा, दीन बनाना चाहता है क्योंकि वह और छोटा होकर प्रभु में समाना चाहता है। व्यक्तिगत वेदना को व्यक्त करने में निराला की वाणी को जितना संकोच हुआ उसके विपरीत दूसरों की पीड़ा देखकर उसकी वाणी उतनी ही प्रखर हो उठती थी। छायावादी कवियों में निराला की सामाजिक चेतना निस्संदेह सर्वाधिक व्यापक रही है। जब साहित्य में भिक्षुकों, दीनों, किसानों, मजदूरों की वेदना को किसी ने नहीं सुना था उस समय निराला की वाणी ने ही उसकी वेदना, उसकी दयनीय स्थिति को ध्वनित किया था। जन-कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहने वाले निराला यह जानते थे कि अंततः सब कुछ प्रभु पर ही निर्भर है। अतः सब कुछ उसी को समर्पित करते हुए प्रभु से निराला के प्रार्थना है-

"दलित जन पर करो करूणा
दीनता पर उतर आये
प्रभु तुम्हारी शक्ति अरूणा।"

निराला के अंतिम कविता के शब्द-शब्द में निहित अटूट आस्था उनकी जीवनव्यापिनी साधना का ही फल है। अपनी स्थिति की निष्कपट विवृति देते हुए निराला ने यह पंक्तियां लिखी थी-

"पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है,
आशा का प्रदीप जलता है हृदय कुँज में,
अंधकार पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है
दिडनिर्णय ध्रुव से जैसे नक्षत्र-पुंज में।"

किसी प्रिय वस्तु के गुम हो जाने पर जीवन बड़ा उद्वेलित हो जाता है निराला का जीवन बड़ा ही संघर्ष भरा, आर्थिक कठिनाइयों से भरा रहा वह समझ चुके थे कि अब कुछ भी नया नहीं होने वाला उसके जीवन में। उनकी शारीरिक शक्ति भी क्षीण हो चुकी है जिसे वह पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ कहते हैं। लेकिन उसके हृदय में आशा का एक दीप जल रहा है। आचार्य विष्णुकांत शास्त्री लिखते हैं- *''निराला के लिए यह लीला संवरण का समय है। जैसे फूल फलों के रूप में फलकर या बिना फल बने ही पत्तों पर झड़ जाते हैं, वैसे ही निराला का जीवन फूल झरने वाला है और वे भीष्म की तरह कठिन शर-शैय्या पर लेटे हुए सिद्ध योगियों या साधारण मानव की तरह उसे देख रहे हैं। यह सब साधना से जुड़े शब्द हैं और संकेतित करते हैं कि इस स्थिति में भी निराला प्रभु से मिलने के लिए उत्कंठित हैं, लालायित हैं। वे सिंहावलोकन करते हैं ऋतुओं के माध्यम से अपनी जीवन क्रीड़ा का इच्छित फल प्राप्त न कर पाने के कारण उन्हें ब्रीड़ा...लज्जा सी लग रही है फिर भी वे निराश नहीं हैं, न सही इस जीवन में अगले जीवन में सही, उनका उद्घोष है, सवेरा एक और तेरा है जी का।'' ''निराला की विवशता की यह पीड़ा भी सत्य है और शरणागति की भावना भी सत्य है, निराला की शरणागति की यह आकुल व्याकुल चेष्टा सिद्धि प्राप्त न कर सकी तो क्या उसकी इस चेष्टा को आत्मप्रवंचना कहा जाए। निराला के काव्य का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आरंभ में ज्ञान और कर्म की भावना ही प्रधान रही है, भक्ति अपेक्षाकृत रूप से क्षीण और किंचित आवृत सी रही है। किंतु वह उत्तरोत्तर वह सान्द्र होती गयी है और सम्प्रति वही उनका जीवनधार बन गयी है।''*

अंत में यह कहा जा सकता है कि निराला ने साहित्य कर्म को ज्ञान योग की साधना के रूप में स्वीकारा है। निराला वाद की सीमा से परे रहकर युग की चेतना को आत्मसात कर आवश्यकतानुरूप साहित्य का निर्माण किया। निराला का जीवन खंडित चित्रों की विवशे प्रदर्शनी जरूर है किंतु जीवन की विषमताओं ने जिस तरह उनका पीछा किया। उनके बावजूद निराला ने इन संघर्षों में अपराजेय योद्धा की तरह खड़े रहे, कभी निराश नहीं हुए। व्यक्तित्व की जैसी निर्बाध अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में हुई है, वैसी अन्य छायावादी कवियों में नहीं।

****

सन्दर्भ सूची:-

1.रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना(द्वितीय खंड), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1981,पृ.-216
2.वही, पृ.-216
3.डॉ. नंदकिशोर नवल, निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1983, भूमिका से
4.नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बाईसवाँ संस्करण-2020,पृ.-140
5.विष्णुकांत शास्त्री, आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,प.-184
6.नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बाईसवाँ संस्करण-2020,पृ.-137
7.डॉ. नंदकिशोर नवल, निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1983, भूमिका से
8.डॉ. नंदकिशोर नवल, निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1983, भूमिका से
9.विष्णुकांत शास्त्री, आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,प.-184
10.विष्णुकांत शास्त्री, आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,प.-195
11.विष्णुकांत शास्त्री, कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबंध, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण,प.-17
12.विष्णुकांत शास्त्री, आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,प.-207
13.विष्णुकांत शास्त्री, आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,प.-207
14.विष्णुकांत शास्त्री, आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,प.-206

डॉ.कमल किशोर गोयनका की दृष्टि में प्रेमचंद की भारतीयता

अनिल कुमार पाण्डेय
डी. ए- वी. पी. जी. कालेज कानपुर, उत्तर प्रदेश

डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद पर केवल एकाग्र होकर जो काम किया, वैसा काम दूसरा देखने में नहीं आया। हालांकि प्रेमचंद को कई साहित्यकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से देखा और उनके व्यक्तित्व व कृतित्व पर अपने विचार रखे। स्वयं प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने अपने पिता प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' लिखी तो प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी ने 'प्रेमचंद घर में' पुस्तक लिखकर प्रेमचंद को अपनी दृष्टि से देखा। इसी क्रम में हंसराज रहबर की पुस्तक प्रेमचंद : जीवन, कला और कृतित्व भी उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में सैकड़ों छात्रों ने प्रेमचंद की रचनाधर्मिता पर शोधकार्य भी किया गया है। इन सबके बावजूद डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद और उनके साहित्य को जिस दृष्टि से देखा वह सर्वथा अनूठी और भारतयीता से भरी हुई है। गोयनका जी ने प्रेमचंद के साहित्य का इतना गहन अध्ययन, शोध और विश्लेषण किया कि उन्हें प्रेमचंद गोयनका, कमलकिशोर प्रेमचंद जैसे नामों से पुकारा जाने लगा।1 डॉ. गोयनका के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए डॉ. चंद्रपाल शर्मा लिखते हैं, "डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद साहित्य पर इतना गंभीर कार्य किया है कि संभवतः आगे कुछ नवीन कहने को शेष नहीं है।"[2]डॉ.कमलकिशोर गोयनका सुदीर्घ अध्ययन के धनी, मूर्धन्य समीक्षक, वरिष्ठ लेखक और साहित्य चिन्तन के शिखर पुरुष कहे जाते हैं। जिस प्रकार निराला के साथ डॉ. रामविलास शर्मा का नाम जुड़ा हुआ है उसी प्रकार प्रेमचंद कथासाहित्य का कहीं भी कोई संदर्भ आये, उसके साथ कमलकिशोर गोयनका का नाम अवश्य उल्लिखित होता है। गोयनका जी ने मुंशी प्रेमचंद के व्यक्तित्व, कृतित्व, कथा-प्रणयन, समाजचिन्तन, शैली-निर्माण, रूढ़ियों पर प्रहार आदि सभी आयामों पर जो साहित्य लिखा है, वह साहित्य-जगत में सुविदित है। इस प्रकार की अलग पहचान बहुत कम समीक्षकों को मिलती है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री लिखते हैं, "…गोयनका जी को प्रेमचंद की जन्मपत्री बनाने वाला माना जाता है...।"[3]

कमलकिशोर गोयनका के इस कार्य से पूर्व प्रेमचंद पर कई समीक्षकों-आलोचकों ने अपने-अपने ढंग से कार्य किया लेकिन प्रायः सभी ने प्रेमचंद को यथार्थवादी कथाकार सिद्ध करने का ही उद्यम किया। गोयनका जी ने एक नयी दृष्टि से प्रेमचंद साहित्य का अध्ययन-मनन किया। उन्होंने प्रेमचंद साहित्य की पर्याप्त छानबीन की और उन्हें अपने इस अनुसंधान कार्य के दौरान प्रेमचंद से संबंधित जो नये तथ्य मिले, जिन्हें उन्होंने उजागर किया। डॉ. कमलकिशोर गोयनका का नाम, कालजयी प्रेमचंद के क्षितिज-व्यापी अवदान के साथ आक्षितिज जुड़ा हुआ है, इसलिए बहुत बड़ा नाम है। किस तन्मयता के साथ वे प्रेमचंद के समग्र कृतित्व के साथ तल्लीन हैं—यह तथ्य अपने आप में चौंकाने वाला है। कैसे कोई विद्वान अपना समूचा जीवन सिर्फ एक महान लेखक के विपुल रचना-संसार के उत्खनन में पूरी शिद्दत, भरपूर निष्ठा, अध्ययनशील-चिन्तनपरक विवेक और ईमानदार सच्चाई के साथ झोंक देता है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका इस अकाट्य सत्य को सिद्ध करने में सम्पूर्णतया समर्थ और सक्षम हुए हैं कि प्रेमचंद का क्षितिज-व्यापी रचनासंसार किसी लेबल के संकीर्ण दायरे में सिमट नहीं सकता। सार्वभौम है—प्रेमचंद की रचनाधर्मिता। कमलकिशोर गोयनका किसी विचारधारा विशेष के आग्रह से बँधकर प्रेमचंद के यथार्थ की या आदर्श की खोज नहीं करते, बल्कि वे तो प्रेमचंद जैसे महान कथाकार के उस कलात्मक यथार्थ को उद्घाटित करते हैं, जो मनुष्य में मनुष्य होने का संवेदन भी है, सौन्दर्य भी, उत्पीड़न, शोषण और निर्धनता में भी जहाँ जीने की उदास ही सही, मगर वांछित ललक है। यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि हिन्दी आलोचना हमारे महान, यहाँ तक कि कालजयी रचनाकारों की विचारधारा को कभी वामपंथी, कभी दक्षिणपंथी, कभी कलावादी, कभी यथार्थवादी आग्रहों के आधार पर उन्हें बाँटकर देखती है या उन्हें साहित्य के धरातल से बेदखल कर राजनीतिक धरातल से जोड़ देती है। कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद को लेकर ऐसा कोई दुराग्रह नहीं अपनाया और न अधिक रेटरिक के साथ विचारधारागत प्रेमचंदीय आलोचना को निरस्त किया और यह भी सच है कि उसके प्रति आकर्षण या कोई प्रतिबद्धता भी नहीं दिखायी।

कमलकिशोर गोयनका ने जितना और जैसा गूढ़ कार्य प्रेमचंद पर एकाग्र होकर किया, वैसा काम हिन्दी में शायद ही किसी आधुनिक कथाकार पर हुआ हो। कहा जाता है कि शेक्सपीयर, फ्रांस की राज्य-क्रान्ति और नेपोलियन पर योरप में सर्वाधिक लिखा गया, लेकिन किसी एक ही लेखक ने इनमें से किसी पर लगातार पच्चीस से भी अधिक पुस्तकें लिख दी हों, ऐसा उदाहरण शायद ही कहीं हो। प्रेमचंद के पाठकों और शोधार्थियों के लिए यहाँ कमलकिशोर गोयनका के प्रेमचंद अध्ययन और लेखन की सूची देना उपयुक्त होगा—प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान, प्रेमचंद : कुछ संस्मरण, प्रेमचंद पॉकेट बुक, प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी, प्रेमचंद-अध्ययन की नई दिशाएँ, रंगभूमि : नये आयाम, प्रेमचंद विश्वकोश (दो खण्ड), प्रेमचंद—चित्रात्मक जीवनी, प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य (दो खंड), प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ, प्रेमचंद रचना संकलन, प्रेमचंद देशप्रेम की कहानियाँ, प्रेमचंद के नौम पत्र, प्रेमचंद बाल साहित्य समग्र, प्रेमचंद की अप्राप्य कहानियाँ, प्रेमचंद और रंगभूमि उपन्यास, प्रेमचंद पत्रकोश, प्रेमचंद : नई पहचान, प्रेमचंद कहानी रचनावली (छह खंड), प्रेमचंद : अनछुए प्रसंग, प्रेमचंद : वाद, प्रतिवाद, संवाद, प्रेमचंद : मोनोग्राफ, प्रेमचंद : प्रतिनिधि संचयन, गोदान : प्रथम संस्करण, कफन कहानी : आत्मा की तलाश, प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन इत्यादि।

प्रेमचंद पर इतना विशद कार्य करने के साथ गोयनका जी ने अन्य साहित्यकारों पर भी अत्यन्त गंभीर कार्य किया। उनकी ऊर्जा और लेखन की यह अबाध निरन्तरता देखकर लगता है कि मनुष्य अपनी आयु को अक्षर से ही मात दे सकता है। अक्षर का जिस प्रकार क्षरण नहीं होता, वैसे ही लेखन यदि उसी अक्षरात्मा से किया गया है तो वह भी क्षरित या लुप्त नहीं होता।

अमृतराय ने 'कलम के सिपाही' नामक से कई वर्ष पूर्व प्रेमचंद के कृतित्व पर एक आलोचनात्मक ग्रंथ प्रस्तुत किया, वह साहित्य जगत में बहुत चर्चित रहा। प्रेमचंद की पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद : घर में' शीर्षक पुस्तक प्रस्तुत की, जिसमे अधिकतर उनके व्यक्तित्व का विश्लेषणात्मक परिचय मिलता है। इनके अलावा प्रेमचंद के कथासाहित्य पर विद्वानों ने विपुल मात्रा में आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे हैं और भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में उनके कृतित्व पर शोधकार्य हुए हैं, परन्तु उसमें से अधिकांश ग्रंथ या तो केवल परिचयात्मक रहे अथवा उनके एकाध पक्ष पर गंभीर अध्ययन प्रस्तुत हुए थे। उन ग्रंथों में से जो मान्यताएँ प्रतिपादित हुई थीं, उन पर गहराई से विचार करके गोयनका ने जहाँ उनमें त्रुटियाँ पायीं, उनका खण्डन किया और नये निष्कर्ष प्रतिपादित किये।

प्रेमचंद के समग्र साहित्य के नये दृष्टिकोण से अध्ययन करने का संकल्प करके डॉ. गोयनका ने देशकाल एवं स्थितियों का सूक्ष्म परिशीलन किया और उस आलोक में उनकी प्रत्येक रचना की तह तक पहुँचकर, उसके तथ्य एवं यथार्थ का विश्लेषण किया। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद के साहित्य पर गंभीर अध्ययन करके पीएच. डी. तथा डी. लिट्. के लिए अपने शोध-प्रबंध प्रस्तुत किये। इस शोध-कार्य के दौरान उनकी दृष्टि ऐसे आयामों पर केन्द्रित हुई, जिन पर अब तक विचार नहीं किया गया था। इस प्रयास में प्रेमचंद के साहित्य के सृजन के मूल में स्थित अनेक अनछुई दिशाएँ खुलती गयीं। उन पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करके गोयनका जी ने प्रेमचंद की रचनाओं के विविध पक्षों का विश्लेषण किया। प्रेमचंद के कृतित्व के सम्बन्ध में अपनी मान्यताएँ स्थापित करने हेतु डॉ. गोयनका के उनकी जीवन एव कृतित्व संबंधी प्रामाणिक सामग्री संचित की। इस सामग्री की प्राप्ति के लिए उन्होंने तत्सम्बन्धी स्रोतों का पता लगाया और आखिर उसकी प्राप्ति में सफल हुए। उन्होंने प्रेमचंद को भारतीय समाज का कुशल चितेरा मानते हुए कहा है, "प्रेमचंद भारतीय जीवन के कहानीकार हैं। उनकी जड़ें भारतीय जीवन, परिवेश और संस्कृति में हैं। भारतीय जीवन के जो मूलभूत तत्व हैं, विचार -सूत्र हैं, उसके मन्तव्य और लक्ष्य हैं, प्रेमचंद उन्हें स्वानुभव एवं स्वपरीक्षण से अपनी कहानियों में अवतरित करते हैं।"[4]जहाँ तक कमलकिशोर गोयनका के साहित्य पर शोधकार्य का प्रश्न है तो वह अभी न के बराबर ही हुआ है। हालांकि कि देश की कई पत्रिकाओं ने उन पर केन्द्रित अंक निकाले हैं

लेकिन विश्वविद्यालयी स्तर पर गोयनका जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अभी कोई पूर्ण शोध प्रकाश में नहीं आया है। उनके व्यक्तित्व और साहित्यिक अवदान को केन्द्र में रखकर कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं जिनमें गोयनका जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर देश के अनेक विद्वानों के आलेखों को संकलित किया गया है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद साहित्य की निष्पक्ष समीक्षा करके प्रेमचंद के जीवन, विचार एवं साहित्य को बिना किसी आग्रह या वाद में पड़कर पाठकों के समक्ष रखा। उन्होंने प्रेमचंद सम्बन्धित अपने सृजन में यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि प्रेमचंद किस प्रकार सही मायनों में भारतीयता के प्रतिनिधि थे। उनकी रचनाओं को माध्यम से गोयनका जी ने प्रेमंचद के व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करने का प्रयास किया। कमलकिशोर गोयनका को अपने शोधकार्य के दौरान प्रेमचंद के बारे में जो तथ्य व मान्यताएँ गठित थीं, उनसे अलग नये तथ्यों की तलाश की भी बड़ी संभावनाएँ दिखीं, अतः डॉ. गोयनका निष्क्रिय न बैठकर प्रेमचंद साहित्य पर और अधिक मौलिक शोधकार्य की संभवनाएँ तलाश करने लगे। इस कारण वे पूरे मनोयोग से प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा के अध्ययन में जुट गये। इसका यह परिणाम हुआ कि उन्हें प्रेमचंद विषयक वे जानकारियाँ मिलीं जो अभी तक यहाँ-वहाँ बिखरी पड़ी थीं एवं जिस पर आलोचकों का ध्यान नहीं गया था।

गोयनका जी ने प्रेमचंद के साहित्य पर पच्चीस से भी अधिक पुस्तकों का सृजन किया है। इसकी सूची ऊपर दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य साहित्यकारों पर भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। जिसमें प्रमुख रूप से प्रभाकर माचवे—प्रतिनिधि रचनाएँ, जगदीश चतुर्वेदी : एक विवादास्पद रचनाकार, जिज्ञासाएँ मेरी : समाधान बच्चन के, रवीन्द्रनाथ त्यागी—प्रतिनिधि रचनाएँ, यशपाल : कुछ संस्मरण, लघुकथा का व्याकरण, मंजुल भगत-समग्र तथा कथा साहित्य एवं गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान आदि उल्लेखनीय हैं।

गोयनका जी के समकालीन लेखकों और आलोचकों में गोयनका जी का क्या स्थान है? शायद ही आज के आलोचकों में कोई ऐसा आलोचक होगा जिसे गोयनका जी जैसा स्थान प्राप्त होगा। प्रेमचंद के साहित्य की जब चर्चा चलती है गोयनका जी का नाम अवश्य आता है। उनके समकालीन लेखक उन्हें प्रेमचंद मर्मज्ञ, प्रेमचंद गोयनका[5], चलता-फिरता प्रेमचंद कोश6, प्रेमचंद के अभिनव उन्मेषक7, मानवतोन्मुखी साहित्य की परम्परा के वंशज8 आदि-आदि कहते हैं।

कथा-सम्राट् प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर करीब पचास वर्षों से गहन अध्ययन और अनुसंधान कर, कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद के कालजयी साहित्य और साहित्यकार प्रेमचंद की विचारधारा पर विमर्श के लिय नये गवाक्ष खोले हैं। प्रेमचंद पर उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। प्रेमचंद विश्वकोश, प्रेमचंद : अध्ययन की नई दिशाएँ, प्रेमचंद कथाकृतियों का कालक्रमानुसार वर्णन, प्रेमचंद अप्राप्य साहित्य आदि-आदि। उन्होंने अथक परिश्रम और निष्ठा से प्रेमचंद साहित्य का तार्किक परीक्षण कर, उनकी विचारधारा, साम्यवाद और समाजवाद सम्बन्धी उनकी सोच का शोधात्मक आकलन किया है।

गोयनका जी ने प्रेमचंद की जीवन-दृष्टि के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उजागर करने के बाद उनकी हिन्दी-उर्दू मे लिखित तमाम कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया। यह विश्लेषण इतना विस्तृत और गहन है कि उसकी समस्त खूबियों को यहाँ बता पाना संभव नहीं है। डॉ. मिथिलेश दीक्षित को दिए अपने एक साक्षात्कार में डॉ. गोयनका कहते हैं, "...मैं प्रेमचंद को प्रगतिशील, साम्यवादी, मार्क्सवादी लेखक नहीं मानता, क्योंकि प्रेमचंद भी स्वयं को ऐसा नहीं मानते औऱ उनका साहित्य भी इसका समर्थन नहीं करता।"[9]गोयनका जी ने भारतीय संस्कृति के संदर्भ में भी काफी शोध किया है। यद्यपि उनका प्रमुख कार्य उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद के साहित्य और विचारधारा से जुड़ा अनुसंधान है। प्रेमचंद की वंचितों के प्रति गहरी संवेदनशीलता, राष्ट्र एवं समाज के प्रति व्यापक सोच, आत्म-परिष्कार और जीवन मूल्यों में विश्वास ने ही शायद उनकी रुचि प्रेमचंद-साहित्य के प्रति जगायी हो। गोयनका जी साहित्य में आज की बदलती परिभाषाओं के बावजूद साहित्य में सत्य और सुन्दर के साथ शिवत्व के तत्व को आवश्यक समझते हैं। साहित्य मनुष्य को बेहतर इंसान और श्रेष्ठ प्राणी बनाने की क्षमता रखता है, इस विश्वास को वे आज भी बरकरार रखे हुए हैं। शायद यही कारण है कि मूल्यक्षरण के इस समय में, उन्हें प्रेमचंद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद सार्थक और प्रासंगिक लगता है। प्रेमचंद की गांधी जी और गांधी दर्शन में गहरी आस्था थी। उनकी कई रचनाओं में गांधी-दर्शन की अभिव्यंजना हुई है। गोयनका जी प्रेमचंद के गांधी और गांधीदर्शन के प्रति आस्था के विषय में लिखते हैं, "प्रेमचंद की गांधी एवं गांधी-दर्शन से ऐसी आत्मीयता, आस्था तथा कहानियों में किया गया उनका चित्रण उन्हें गांधी-युग का प्रमुख कहानीकार बना देता है।"10

गोयनका जी ने प्रेमचंद साहित्य को जिस अद्भुत कलाकार से व्यवस्थित किया है, उसमें उनकी अजस्र ऊर्जा विद्युत्गति से प्रवहमान है। अपने संपादन एवं कृतियों में इन्होंने प्रेमंचद के राष्ट्रीय राग, सामाजिक सुधारवादी क्रिया-कलापों, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, पूँजीपतियों की नीचताओं, जमींदारों की हैवानियत और समाजों के निम्नवर्गीय जीवन की जटिलताओं, प्रेम-विधवा -विवाह की समस्याओं का जिस बारीकी से विवेचन किया है, वह अन्यों से अलग एक नया चिन्तन और दृष्टिकोण लिये हुए है। गोयनका जी द्वारा प्रेमचंद विषयक कार्य की प्रशस्ति में डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी कहते हैं, "डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद की मूल्यान्वेषी और मूल्य समावेशी कहानी-यात्रा को भारतीयता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा-परखा है तथा यह अनुभव किया है कि उनकी रचनात्मकता भारतीय चेतना तथा विवेकधर्मिता से अनुप्राणित है।"11

निश्चय ही गोयनका जी ने प्रेमचंद व उनके साहित्य को समझने के लिए एक अलग दृष्टि दी है। यह दृष्टि प्रेमचंद की वामपंथी कथाकार की छवि को हटाकर उन्हें भारतीयता और भारतीय जनमानस का कथाकार सिद्ध करती है। इतना विशद कार्य प्रेमचंद पर करने के साथ गोयनका जी ने अन्य साहित्यकारों पर भी अत्यन्त गंभीर कार्य किया है। उनकी ऊर्जा और लेखन की यह अबाध निरन्तरता देखकर लगता है कि मनुष्य अपनी उम्र को अक्षर से ही मात दे सकता है। अक्षर का जिस प्रकार क्षरण नहीं होता, वैसे ही लेखन यदि उसकी अक्षरात्मा से किया गया है तो वह भी क्षरित या लुप्त नहीं होता।

******

संदर्भ:-

1. डॉ. रमेश दवे, कमलकिशोर उर्फ प्रेमचंद गोयनका, प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ : डॉ. कमलकिशोर गोयनका, संपा0 डॉ. मिथिलेश दीक्षित, उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, संस्करण 2015, पृ. 34
2. डॉ. चंद्रपाल शर्मा, डॉ. गोयनका—बहुआयामी व्यक्तित्व, प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ : डॉ. कमल किशोर गोयनका (संपा0) डॉ. मिथिलेश दीक्षित, पृ. 95, उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण 2015
3. देवर्षि कलानाथ शास्त्री, सुदीर्घ साहित्य साधना के धनी गोयनका जी, प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ डॉ. कमलकिशोर गोयनका, संपा0 डॉ. मिथिलेश दीक्षित, पृ. 22, उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, संस्करण 2015
4. डॉ. कमलकिशोर गोयनका, प्रेमचंद कहानी रचनावली : खंड छह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 62, संस्करण 2010
5. डॉ. रमेश दवे, वही, पृ. 33
6. हरीश नवल, वही, पृ. 51
7. डॉ. रामबहादुर मिश्र, वही, पृ. 155
8. पुष्पिता अवस्थी, वही, पृ. 189
9. प्रेमचंद पर डॉ. कमलकिशोर गोयनका से डॉ. मिथिलेश दीक्षित की बातचीत, वही, पृ. 199
10. डॉ. कमलकिशोर गोयनका, प्रेमचंद कहानी रचनावली : खंड छह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 31
11. डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, एक नये प्रेमचंद से परिचित कराने का प्रयास, प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ : डॉ. कमलकिशोर गोयनका, संपा0 डॉ. मिथिलेश दीक्षित, पृ. 138, उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, संस्करण 2015

ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में सामाजिक जीवन

प्रो. राजू एस. बागलकोट,
मार्गदर्शक, हिंदी विभग
कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय,
विजयपुर, कर्नाटक

स्वालियाबेगं आर कोप्पल
शोधछात्रा, हिंदी विभग
कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय,
विजयपुर, कर्नाटक

सारांश: मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए समाज के कुछ अलिखित नियमों का पालन उसे करना पडता है। उसे अनेक सम्स्याओं का सामना करना पडता है। समस्याएँ जब संपूर्ण समाज को प्रभावित करती हैं तो वे वैयक्तिक न होकर सामूहिक स्वरूप धारण करती है। इसलिए डब्लू, वेलेसवीवर ने कहा है कि "सामाजिक समस्या एक ऐसी दशा है जो चिंता, तनाव, संघर्ष अथवा कुंठा को जन्म देती है। और आवश्यकता पूर्ति में अवरोध उत्पन्न करती है।

कूट शब्द : नाशीरा शर्मा, सामाजिक जीवन, उपन्यास

प्रस्तावना:

मनुष्य द्वारा बनाया गया समाज, एक ऐसी संस्था होती है जिसमें प्रत्येक वर्ग का मनुष्य समाज का अंग होता है। समाज में सभी धर्म एवं जाति के लोग अपनी समस्त भावनाओं एवं आशाओं के साथ अपने ढंग का जीवन यापन करते हैं। उत्तरशती के हिन्दी उपन्यासों में भारतीय मुस्लिम जन-जीवन के विविध पक्ष मुखरित हुए हैं। सुख - दुख, आशा - निराशा जैसी समस्याओं से जुड़े मुस्लिम जन- जीवन का यथार्थ चित्रण उत्तरशती के उपन्यासों में हुआ है।

भारतीय समाज में अनेक धर्म, मत, जातियाँ, भाषाएँ तथा सम्प्रदाय हैं। किन्तु इन सबके मूल में कुछ ऐसी विशेषता है जो इन सब को एक सूत्र में बाँधे हैं। यही बात भारतीय मुस्लिम समाज में भी देखने को मिलती है। मुसलमानों में शेख, सैयद, मुगल, पठान, शिया, सुन्नी और अनेकानेक शाखाएँ पाई जाती हैं। लेकिन इस्लाम धर्म के तहत अल्लाह की नज़र में सभी मुसलमान समान हैं। इस्लाम इन्सानों को जातियों में विभक्त नहीं करता। सभी मुसलमानों को अपने धार्मिक स्थल मस्ज़िद में नमाज़ पढ़ने का बराबर का हक़ है।

'ठीकरे की मंगनी' नारी प्रधान उपन्यास है। उपन्यास में एक ऐसी अकेली नारी की व्यथा है जिसे परम्परागत मुस्लिम परिवार के संस्कारों को छोड़ने के लिए मजबूर करके आधुनिक जीवन जीने के सपने दिखाये जाते हैं। जब उसके सपने टूटते हैं तो उसे सिर्फ दुख , व्यंग्य - बाण एवं तानों के सिवा कुछ नहीं मिलता। लेकिन वह कमज़ोर स्त्री नहीं है और एक छोटे - से गाँव में नौकरी करके अपना जीवन अकेले ही गुज़ार देती है। वह | सोचती है कि उसका दुख स्वयं उसका अपना दुख है। अतः उसमें वह किसी को भी शामिल नहीं करती।

"रफत भाई की बेवफाई से मोहभंग हो जाने के बाद महरूख एकदम टूट गई थी। उसे रफत से नफरत हो गई। लेकिन अपने क्रोध को प्रकट करने के लिए रफत उसके सामने नहीं था इसीलिए उसका क्रोध पिघलकर दुख का रूप ले लेता है जिसे सिर्फ महरूख को ही झेलना पड़ता है- "अब वहाँ नफरत और हिकारत का आसमान फैला हुआ था, जो महरूख को बताता कि सबने उसे छला है, कभी प्यार के नाम पर, कभी जिम्मेदारी के नाम पर, कभी रिश्तेदारी के नाम पर।"[१] महरूख को हकीकत को कबूल करना था इसीलिए उसने सब कुछ वक्त पर छोड़ दिया है और अपने को और ज्यादा बिखरने के बदले समेटने लगी थी लेकिन जब कभी वह अकेली होती तो अतीत की यादें आ जाती जो उसे सिर्फ दुख के सिवाय और कुछ नहीं देती, "जब रिश्तों का भ्रम टूट जाए तो फिर जीने का लुत्फ ही गया। इन्सान के अन्दर की ललक और उमंग कहीं दम तोड़ देती है। इस गाँव में जब तक पढ़ाती हूँ, बहली रहती हूँ मगर जहाँ तन्हा हुई पिछला गुजरा न चाहने पर भी ज़हन पर छाने लगता है। हमेशा | अपने से जवाब तलबी और जवाबदेही की यह आदत आज कितना दुख पहुँचा रही है। न जुर्म का पता चलता है, न मुजरिम का। किसे सजा दें, किसे माफ करें। एक खोखलापन है जो दीमक की तरह उसे खाए जा रहा है। एक बेकली, बेचैनी उसे दीवाना बनाए रखती है। वह अपने को समझाने लगती है कि यह तन्हाई का अहसास कुछ दिन बाद खत्म हो जाएगा। वक्त सबसे बड़ा मरहम होता है।"[२] जब भी वह छुट्टियों में घर जाती वो सभी भाई - बहन मिलकर बचपन की यादों में खो जाते थे। बचपन में महरूख का सभी बच्चों पर राज़ था। वह जैसा कहती उन्हें वैसा ही सुनना पड़ता। जो खेल वह खेलना चाहती वही सभी को खेलना पड़ता था वरना सब धुआंधार पिटते इसीलिये गुलनार ने महरूख से फौलाद की बनी होने की उपमा देदी थी। यह सुनकर महरूख का दबा हुआ दुख सैलाब की तरह उमड़ आया और आँसुओं को बहाते सोचने लगी, "कभी - कभी छोटी - छोटी लड़ाइयाँ जीतने वाला बड़ी लड़ाई हार जाता है।"[३]

महरूख वह स्त्री थी जो अतीत के दुख को अपने सीने में छिपाए अकेलेपन से जूझ रही थी लेकिन शायद यह समाज किसी को अपने ढंग से जीने नहीं देता। गाँव के स्कूल के सहयोगियों द्वारा उसके खिलाफ हमेशा कोई न कोई व्यंग्य सुनाते या फिर षड्यंत्र रचे जाते। ऐसे ही कुछ दिन महरूख को बेरंग खत मिलने लगे। उन खतों को देखकर वह दुखी मन से अपने आप से सवाल करती है - " क्या मैं पूरी यूँ ही झेलती जाऊँगी या फिर कभी मुझे खड़े होने के लिए ठोस ज़मीन नसीब भी होगी?"[४]

महरूख ने शायद दुख सहने के लिए जन्म लिया है। रफत भाई ने अमेरिका में शादी रचाकर महरूख की भावनाओं को जो चोट पहुँचाई उसे झेलने के लिए नौकरी का सहारा लिया। लेकिन छः साल बाद पुनः रफ़त उससे विवाह का प्रस्ताव करता है, बदले में महरूख क्रोध में तमतमाया हुए चेहरा द्वारा अपने दुख को खोलकर रख देती है- "मैंने कितना सहा, कितना टूटी मेरा सुकून और सब कुछ मुझसे दूर चला गया था। आपकी ख्वाहिशों के पुल से गुजरती हुई मैं जिस हाल में पहुँची थी, वहाँ सिर्फ दलदल थी ... सिर्फ दलदल।"[५] हालात से समझौता करके महरूख अपने आप को समझाती है कि अब वह अपना दुख, जीवन का दर्दनाक पहलू को दूसरों के सामने कमज़ोर होकर नहीं जियेगी। महरूख रफत मियाँ से कहती है - "आपकी शादी की बात सुनकर मैं टूटी थी, फिर मेरी ज़िन्दगी का खूबसूरत लम्हा सबसे बदसूरत और डरावना होकर मेरे सामने खड़ा हो गया था। जिसके बारे में मैंने सोचा नहीं था और मेरे अन्दर की औरत उसी लम्हें मर गई थी। इसीलिए वह रफत से शादी के लिए साफ इनकार कर देती है।"[६]

महरूख के साथ- साथ पूरा परिवार इस दुख को झेल रहा था, खासकर महरूख के माता - पिता और शाहिदा खाला। रफत की हरक़त ने सभी के दिलों को तोड़ दिया था। सगी बहन एक दूसरे से आँखें चुराने लगी जैसे उन्होंने ही कोई अपराध किया है। लेकिन महरूख के माता - पिता के दुख को शब्दों में बतलाना कठिन था- "बहन तो जानती खुद है कि रफत मियाँ की इस हरकत ने सबके दिलों को काट कर रख दिया था, फिर माँ - बाप का दिल तो ऐसे मौकों पर खून के आँसू रोता है। जब उनके जिगर के टुकड़ों को दुख पहुँचे। यहाँ तो पहलौठी की लड़की, वह भी चार पुश्तों के बाद पैदा हुई, सौ उसकी | जिन्दगी बर्बाद होकर रह गई थी। उसका जितना भी दुःख मनाया जाता कम था।"[७] ठीकरे की मंगनी ' उपन्यास में दिल्ली महानगरी के जीवन - शैली को देखकर महरूख को लगता है कि यहाँ के लोग सभी आकाश में चलते हैं। ज़मीन पर कोई नहीं चलता। बड़ी - बड़ी बातें, बड़े शब्दों का प्रयोग, बलिदान, संघर्ष जैसे शब्द सिर्फ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पाने के लिए हैं। एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में सही - गलत ढंग, जीवन के सिद्धान्तों को पीछे छोड़ दिया है। इन सवालों से महरूख ये मन में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है- "इन सवालों की टकराहट उसको जवाब नहीं देती है, बल्कि उसे तो इन्हीं सवालों से टकराकर अपने को बदलना है। यही जमाने का तकाज़ा है, जिसके लिए रफत भाई उसे कस्बे से निकालकर महानगरी की तरफ लाये हैं। वह चकराते सर को दोनों हाथों से पकड़कर बैठ जाती।"[८] रफत की इच्छानुसार ही महरूख अपने आप को बदलने की कोशिश कर रही थी। लेकिन मन में एक अन्तर्द्वन्द्व चलता है हर औरत को शादी के बाद अपने को मिटाकर अपने वजूद को इसका मतलब

हुआ शौहर के वजूद में मिलाना पड़ता है। दिल्ली आकर महरूख रफत के कहे अनुसार जीन्स पहनना , ऊँची ऐड़ी की सैंडिल पहनना शुरू कर दिया था । सबसे घुल- मिलकर हँसकर बातें करने लगी थी। यहाँ तक कि अब वह वाद - विवाद, तर्क - वितर्क भी आत्मविश्वास के साथ करने लगी थी । पुरुष और महिला दोस्तों के साथ चाय या कॉफी पीने जाने लगी थी। उसे हैरानी होती है कि शहर के लोग कितने स्वच्छन्द हैं । यहाँ कोई किसी का शोषण नहीं करता, सबको जीने की पूरी आज़ादी है । कॉलेज में महरूख और रवि भी अच्छे दोस्त बन जाते हैं लेकिन रवि दोस्ती का गलत फायदा उठाने की कोशिश करता है तो महरूख उसके इरादों पर पानी फेर देती है और उसके अन्दर एक अन्तर्द्वन्द्व की ज्वाला भड़क उठती है- " यह महानगरी है या कोई समन्दर, जहाँ बड़े - बड़े घड़ियाल कभी इच्छाओं के, कभी महत्वाकांक्षाओं के, कभी भावनाओं के इन्सानों को निगलने के लिए इधर से उधर मुँह मारते रहते । उनसे बचना एक कशमकश है । कहाँ तक कोई जद्दोजहद करे यह तो सब हर पल निगलने पर तुले हैं, मेरे खुदा ।"[९]महरूख को लगता है कि गाँव हो या शहर औरत को देखने का नजरिया एक सा है - "उसे हैरत होती कि इस विश्वविद्यालय में भी औरत को देखने वाली नज़रों का वही पुराना दृष्टिकोण है । तो फिर यह किस अर्थ में अपने को स्वतंत्र प्रगतिशील और शिक्षित कहते हैं ? उसके किसी सवाल का जवाब इस माहौल ने नहीं दिया । यहाँ पर तो सिर्फ सवालों की फसल उगती है, सिर्फ सवालों की ।"[१०] शहरी वातावरण, महानगर की भीड़, दौड़ भाग की जिन्दगी, सिर्फ अपने लिये जीना किसी के सुख- दुख के लिए समय का अभाव, आदि बातों को देखकर छोटे से कस्बे से आई महरूख के मन में हमेशा एक द्वन्द्व चलता रहता है ।

****

संदर्भ ग्रंथ:

नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. ६२
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. ६३
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. ६९
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. १०२
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. ११७
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. १२७
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. १११
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. ३६
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. ४९
नाशीरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ. सं. ४९

अग्निशेखर की रचनाओं में विस्थापन जनित मानवीय वेदना

डॉ.एस. प्रीति
{शोध निर्देशिका}
हिंदी विभागाध्यक्षया-विज्ञान एवं मानविकी संकाय एस आर एम आई एस टी कट्टनकुलातुर [चेन्नई]

गीता शास्त्री
[शोधार्थी] PA1833024013001
एस आर एम आई एस टी
कट्टनकुलातुर [चेन्नई]

भूमिका :-संवेदनाओं को शब्दों में ढालना या पीरो लेना ही कविता है। जब कविता ऐसे कालबोध की उपज बनती है जिसमें भय ,आतंक धार्मिक ,कट्टरता ,बर्बरता की त्रासदी का जीवंत चित्रण हो तो मानवीय समुदाय के निर्वासन के नए आयाम को उद्घाटित करती है| हिंदी साहित्य में अग्निशेखर बहुमुखी प्रतिभा संपन्न ,साहित्य ,समाज एवं संस्कृति के प्रति समर्पित प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। अमानवीय स्थितियों में षड्यंत्र के शिकार हो रहे और हो चुके कश्मीरी समुदाय की स्थितियां उनके साहित्य के केंद्र में हैं। इन्होंने कविताओं वार्ताओं, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक लेखों ,कहानियों आदि में अग्निशेखर ने मनुष्य की गरिमा एवं मनुष्यता को सर्वाधिक गरिमा प्रदान की है। इन सब में विस्थापन जनित संत्रस्त यथार्थ न्यस्त है। अतः अग्निशेखर अपने समय में ही नहीं आज भी उतने ही प्रासंगिक है क्योंकि आज भी निर्वासित कश्मीरी पंडितों का पुनर्वासन नहीं हुआ है। कवि अग्निशेखर मातृभूमि कश्मीर से निर्वासित कवि हैं इसीलिए कवि के निर्वासन से उनकी कविताओं में मातृभूमि से बिछड़ने की वेदना स्थान चेतना के साथ-साथ मार्मिकता से उभरती है। आतंक और शक्ति की मनुष्य विरोधी संरचना के विरुद्ध अपनी जलावतनी की जटिल वेदना को गहरी टीस के साथ वे रचते हैं ।

आतंकवाद और अलगाववाद के मजहबी कट्टरता सामुदायिक घृणा और हिंसा से घिरे क्रूर समय में अपने जड़ जमीन से बेदखल कर दिए जाने की व्यथा इनकी कविताओं का केंद्रीय स्वर है। इनकी कविताओं में व्यक्त संवेदना अपने तथा पूरे समुदाय के वजूद का अर्थ और उसे खो देने की कचोट विभिन्न आयामों के द्वारा निर्वासन के मनोभाव को प्रेषित करता है। प्रत्येक साहित्यकार का साहित्य उस कालखंड की आर्थिक राजनैतिक सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का देन होता है अग्निशेखर का साहित्य अपने समय की त्रासदी कठोरताओं गंभीरताओं और अमानवीय स्थितियों के संघर्ष को अभिव्यक्त करता रहा है। वे अपनी साहित्यिक कृतियों में दोहरी मानसिकता, निकृष्ट राजनीति ,और जड़ व्यवस्था का विरोध करते हैं। निर्वासन से जनित सामाजिक, मानवीय संवेदना, उनकी कविताओं में मुखरित है ।साहित्य में अग्निशेखर की नाम से लोकप्रिय डॉ कुलदीप सुबंली कश्मीर के विस्थापित कवि के रूप में जाने जाते हैं। वे कहते हैं कि मैं पापुलु बदौलत बरकत से लेकर काजी नज़रुल इस्लाम से निराला तक से प्रेरित हूँ उनके निर्वासन में लिखे गए साहित्य का वैश्विक निर्वासन के साहित्य से समानता है- जैसे फिलिस्तीन साहित्य ,अश्वेत साहित्य, अरबी साहित्य आदि में धार्मिक मजहबी ,कट्टरता नस्लभेद, की घृणा से उपजी निर्वासन की क्रूरता के चित्रण मिलते हैं ।अग्निशेखर के समग्र रचना संसार में निर्वासन का दर्द शब्दश: उभरता है उनकी रचनाएं अपने समुदाय को निर्वासित संघर्ष से मुक्त करने के लिए ध्वनित हैं ।32 वर्षों से लगातार मातृभूमि से बिछड़े कश्मीरी पंडितों के अभाव, तनाव ,घुटन ,षड्यत्र, स्वार्थ भरी स्थितियों को सच्चाई से दर्ज करते हैं। समकालीन भारतीय साहित्य में निर्वासन चेतना एक नई विधा के रूप में उभरी | वर्ष1990 में कश्मीर घाटी में आतंकवाद ,अलगाववाद का हिंसक रूप सामने आया,जिसने धर्म के आधार पर वहाँ के मूलनिवासियों को एक षडयंत्र के तहत अपनी भूमि से बेदखल कर दिया गया |अपनी मातृभूमि से बाहर आकर शेष हिंदुस्तान में जम्मू और अन्य दूरदराज इलाकों में आकर के अपने ही देश में शरणार्थी जीवन जीने को अभिशप्त होना पड़ा।इस तरह स्वतंत्र भारत में जो की धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्र की आधारशिला पर निर्मित हुआ था,उस भारत में यह एक विडंबना ही कही जाएगी कि एक मानवीय त्रासदी के रूप में ये निर्वासन सामने आया।इस निर्वासन में जो प्रभावित लोग थे उनकी सोच,उनका जीवन दर्शन और उनकी स्थापनाओं को आमूल चूल बदल कर रख दिया।निर्वासन साहित्य भले ही आज साहित्य की मुख्यधारा से न जुड़ा हो लेकिन इसकी नाभि नाल साहित्यिक परंपराओं के नादिम और लल्द्यद जैसे

आदिम कवियों और लेखकों से जुड़ा हुआ है ।निर्वासन कब हुआ , क्यों हुआ , कैसे हुआ और सबसे बड़ी बात कहाँ हुआ जैसे प्रश्नों को बहुत पीछे खदेड़ती हुई यह , वह पीड़ा है जिसे अपने जड़ों से अलग किए हुए या भोगे हुए तमाम शरणार्थी ही समझ सकते हैं जिन्हें किसी भी कारण से अपना घर , गाँव या देश छोड़ कर दूर बहुत दूर जाना पड़ा |यहाँ एक बात स्पष्ट कर दूं की पलायन , विस्थापने और निर्वासन अलग - अलग चीजें हैं। पलायन में भी दुख है लेकिन लौटने की संभावना वहाँ हैं |यह वस्तुतः अल्पकालिक होती हैं |विस्थापन का ताजा उदाहरण लॉकडाउन के दौरान दिहाड़ी मजदूरों का वापस अपने गाँव आना था, उनकी भी सामान्य स्थिति हो जाने पर लौटने की संभावना बनी रहती है । लेकिन जब कि निर्वासन मे लौटने कि सम्भावना नहीं होती ,निर्वासन वह शब्द है जिसका अर्थ बस 'मृत्यु' होता है ।आप चाह कर भी अपने मूल वतन नहीं लौट सकते अपनी चीज को अपना नहीं कह सकते। आपकी नदी , पेड़ , पहाड़ और जंगल सब छीन लिए जाते हैं|1990 में लाखों कश्मीरी पंडितों का अपने जड़ों से टूट कर जम्मू की शरणार्थी कैंपों में रातो रात आ कर रहना किसी भी कीमत पर पलायन नहीं था । तीस वर्षों के लंबे अंतराल में भी स्थिति जस की तस है तो समझा जाना चाहिए कि कश्मीरी पंडितों ने अपने ही देश में जो निर्वासन का दंश सहा है ,वह किसी जिनोसाइड से कम नहीं , जहाँ उन्हें समूल नष्ट कर दिया गया हो तब से अब तक तीन दशक बीत गए,2019में अर्टिकल 370के हटने के बाद भी कश्मीरियों का पुर्नवासन नहीं हुआ है।

डॉ अग्निशेखर की कविताओं में निर्वासन की पीड़ा-डॉ अग्निशेखर कश्मीरी मूल के होने के कारण उन्होंने भी 1990 में हुए बलात जलावतनी की पीड़ा और वेदना भोगी है। इसीलिए उनकी कवितओं में निर्वासन के अन्याय और अत्याचार का दर्द झलकता है। वे मातृभूमि से बिछड़ने की वेदना को मार्मिकता से कहते हैं;

छलनी छलनी मेरे आकाश के ऊपर से
बह रही है /स्मृतियों की नदी
ओ मातृभूमि !/क्या इस समय हो रही है
मेरे गाँव मे वर्षा .....

यहाँ आकाश का बिम्ब कवि पात्र की ज़मीन से अलगाव की पीड़ा के लिए व्यक्त हुआ है और नदी उसकी स्मृति के लिए आकाश यानि स्वतंत्रता के छलनी छलनी होने का दुःख सीधे अपनी ज़मीन और संस्कृति से छूटने का दुःख है। कविता में ज़मीन से नदी न बहकर आकाश के ऊपर से बहना जिस प्रक्रित्यात्मक विलोम में अर्थ स्फ़ीतियाँ उत्पन करती है ,उसकी व्याप्ति कवि के उस अवचेतन मन अर्थात उसकी स्मृति में है। जिसमें वह अपने छूटे हुए गावँ में वर्षा की आशा करता है और इसके मानिंद अपनी मातृभूमि से सवाल भी करता है ,इस तरह यहाँ एक ही बिम्ब से जातीय प्रेम के साथ निर्वासन की पीड़ा को सामने लाने का दुहरा काव्य उपक्रम किया गया है। इस कविता में व्यक्त अंतहीन पीड़ा की झलक हम निर्वासन के घटना की अभिव्यक्ति राजनैतिक सांस्कृतिक एवं अन्य स्तरों पर देखते है |इसकी अभिव्यक्ति साहित्य में,कलाओं मे,पेंटिंग संगीत उपन्यासों ,नाटकों और कहानियों इत्यादि में हम देखते हैं।पिछले तीस वर्षो में जो निर्वासन, सहित्य में रचा गया उसमें निर्वासन चेतना केन्द्रीय बिम्ब बना |कवि अग्निशेखर की कविताएँ बहुत सधे हुए स्वर में हमसे अपने भीतर झाँकने को कहती है ...ये हमसे एक ऐसे जगह की तलाश करने को कहती है जहाँ से अन्याय के प्रति विरोध शुरू किया जा सके |अग्निशेखर की निर्वासन की कविता 'मुझसे छीन ली गई मेरी नदी' में अपने जड़ो से कट जाने की ,बेघर हो जाने के दर्द को इस प्रकार व्यक्त करती है |

"एक दिन चुचाप बदल दिए गए मेरे सैकड़ो गावों के नाम
जैसे आखं मूंदकर पहुँचा दिया गया हो
किसी अरब देश में
मुझसे छीन ली गई मेरी भाषा
छीलकर फैंक दी गई उसकी लिपि
मुझसे छीन लिया गया मेरा चेहरा
और सब तरफ से पहचान लिए जाने के डर से
मैने बदल दिया हुलिया"

उन लोगों से अपने गावँ भाषा लिपि को भी छीन लिया गया है |भाषा संस्कृति का मूल अधार है भाषा नहीं है तो संस्कृति भी नहीं बच पाती है ,इस तरह अपनी स्वत्व को भी छीन कर मिट्टी से मिला दिया है |इसमे अपने मूल मिट्टी से निर्वासित हो जाने की तड़प दीखता है | अपने ही देश में शरणार्थी हो जाने की घटना को कविताओं के माध्यम से कवि अपने अंतःकरण की आर्त पुकार के रूप में रचता है ।कवि 1990 की स्वयं अनुभूत जलावतनी का वर्णन करते हुए कहता हैं कि -

" लाँघ गए अंधेरे में पर्वत
खाई जंगल
नदियाँ कर डाली पार
सुध-बुध खोकर
कुछ टूट गए वृक्षों की भाँति
भस्म हुए कुछ
क्षुधा की अग्नि में

कुछ धँस गए क्लांत समूह हजारों हिमराशि के नीचे।

यहां कवि ने निर्वासन एवं जलावतनी को गहराई से काव्य भाषा में उतारा है पीढ़ी दर पीढ़ी आतंक से त्रस्त समूचे समुदाय के मूलोच्छेदन का योजनाबद्ध षड्यंत्र ही निर्वासन और नरसंहार की परिणिति बनी। माहौल जिस तरह देश विरोधी बनाया गया उसका सशक्त विरोध कविताओं के माध्यम से किया है ।इसलिए वे कहते हैं -

" मैं इस नीति का भी क्या करूं लिखता हूं कविताएं
वह बन जाती है आवाज
तमाम जलावतनों की
जानते हैं सरोकार मेरे
कर नहीं सका कोई खामोश मुझे खरीद भी नहीं पाया
मैं जिया रात दिन जम्मू में
हजारों विस्थापितों के बीच"
("जलता हुआ पुल"एक कवि नियति पृ.29)

इन पंक्तियों में कवि निर्वासन के पीड़ा की पुकार को संघर्ष करते हुए समुदाय की व्यथा से जोड़ा है । इस त्रासदी में कवि का साथ कविताएं देती हैं। कश्मीर के भयावह वातावरण में मानव की रक्षा के लिए पीड़ित साथियों को सहारा बनकर कविता लिख रहा है। इसलिए कवि का कहना है कि " हाँ हम एक उदाहरण बन कर रह गए हैं किसी हत्याकांड के घटित हो जाने पर सहानुभूति जताने की एक औपचारिकता मात्र " नौकरशाही एवं राजनेताओं की दोहरे व्यक्तित्व को उभाड़कर रख देने वाला यह कथन विस्थापन एवं जलावतनी के प्रश्नों प्रश्नों से लोगों को परिचित कराती है। और मानवीय बर्बरता को उजागर करती है।इतना ही नहीं कवि आत्मरक्षा के लिए लोगों को सावधान कर रहे हैं। निर्वासन से मिली उपेक्षा घृणा एवं सत्ता हथियाने के षड्यंत्र के शिकार कवि अग्निशेखर के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत के बचे रहने पर प्रश्न करते हैं।"लेखक उदय प्रकश कहते है की अग्निशेखर की कविताओं में अपनी घोसलों और वनों से विस्थापित कर दिए गए उन पक्षियों के उत्पीड़ित समवेत चेतना कि वह विचलनकारी व्याकुल चीख है, जो राजनीतिक सताओं द्वारा निषिद्ध और वर्जित कर दी गई अपनी उपत्यका में फिर अपनी वापसी चाहते हैं और अपने छीन लिए गए वृक्षों और घोसलों में फिर बसना चाहते हैं।विस्थापित आहत चेतना अपनी व्याकुलता के भाव आवेग में अपने तर्कशील,आधुनिक और सभ्य विवेक को स्थगित करते हुए, विकल्प की तलाश में,प्रतिशोध या प्रतिहिंसा की किसी सकरी, पूर्व आधुनिक या मध्यकालीन बर्बरगुफा की ओर नहीं जाती,बल्कि अपनी बेदखली और निर्वासन के पक्ष में मिथक, इतिहास,लोकसंस्कृति, और स्मृतियों के छूटे हुए घरौदों को एक मौलिक एकांतिक और आत्मानुभवों से

संपन्न कविता के मार्मिक स्थापत्य में हमारे सामने रचती- बनाती है|"

"इच्छाएँ मेरा घर थी
तमाम उम्र रहा अकेला उनमें
संसार की तमाम कब्रों में.....
दफ़न हूँ मै
आकांक्षाओं के साथ
सपनो की मिट्टी है मेरे ऊपर"....

यहाँ कवि के गहन विचार उनकी मातृभूमि से बंधे हुए है ,उनकी कवितओं से गुजरते हुए ऐसा लगता है इसमे विस्थापन उनके जीवन का भुक्त यथार्थ है ,इनमें निर्वासन की असहनीय पीड़ा की टीस दिखाई देती है |उनकी काव्यात्मकता के द्वारा उनके संघर्ष के व्यथा कथा को समझने में मदद मिलती है |इनकी एक और कविता मुझसे छीन ली गई मेरी नदी में ये कहते हैं की .....

"मुझसे छीन ली गई मेरी नदी
बदल दिया गया उसका नाम
बंद हो गया उसमे दियो का बहना
मुझसे छीन ली गई चिनार की छांह
उसका कर दिया लिंग परिवर्तन
वह थी मेरी भुवन व्यापिनी माँ
उसके रोम रोम से मुस्कुराती थी
मेरे सपनो की कोंपलें" .....

इन कवितओं में हृदय विदारक भाव है कवि अपने मातृभूमि कश्मीर की चिनार ,वितस्ता नदी और वहाँ की मिट्टी उन सबमे इतने गहरे से जीते हैं की तीन दशकों के बाद भी ऐसा लगता है कि कल ही निर्वासन हुआ हो |

निष्कर्ष :

कवि अग्निशेखर की कवितओं में जिया हुआ यथार्थ है, जो हमें कागजी कविताओं से न केवल अलग करता है, बल्कि उस भावजगत से हमारा साक्षात्कार भी कराता है जहाँ विस्थापन का गहराता हुआ मर्मभेदी लोकस्वर है, दूर से निकट आती और बरजती हुई, क्रमशः तेज होती, कुरेदती हुई, हिलोती हुई, झिंझोरती हुई बेकस ध्वनियाँ हैं। अग्निशेखर की कविताओं से गुजरते हुए हमें मानव-निर्वासन के जिस रूप और रीति का साक्षात्कार होता है, वह केवल मर्म ही नहीं, मर्माहत भी करता है। वह प्रभावोत्पादकता में जितनी वीभत्स रूप का वरण करती है, उतना ही करुणामय और हृदयविदारक भी महसूस होती है। अग्निशेखर की कविताओं में प्रतिशोध की ज्वाला बहुत कम ही देखने को मिलती है|इनमें विस्थापन उनके जीवन का वह भुक्त यथार्थ है, जिसमें न सिर्फ़ समय की बेतरतीब टीस मौजूद है, जो हमें कारुणिकता से आप्लावित कर देती है, बल्कि उनकी काव्यात्मकता भी हमें उतनी ही मोहती और बेचैन करती है। यह लोकजीवन के उस संघर्ष की व्यथा -कथा है, जो द्वंद्व के उस छोर पर लाकर हमें खड़ी करती है, जहां हम मानवीय मूल्यों की शिनाख्त के लिए बेचैन हो उठते हैं। लेकिन. इनके निर्वासन की आंच इतनी गहरी है कि उससे गुजरे बिना उनकी कविताओं को छुआ नहीं जा सकता |

**** ******

सन्दर्भ सूची:-

1. जवाहर टनल ,
2. मुझसे छीन ली गई मेरी नदी ,३.काल वृक्ष की छाया में डॉ.अग्निशेखर
3. उद्धरित-
4. .श्री सुशील कुमार परिंदे पत्रिका में छपा हुआ लेख
5. श्री उदय प्रकाश जवाहर टनल में प्रकाशित भूमिका
6. डॉ रतनलाल शांत समीक्षा
7. सीमा संगसार किसी भी समय -कविता संग्रह ,समीक्षा
8. श्री केदार नाथ सिंह मेरे समय के शब्द पृष्ठ ६९

भारत की आजादी में छत्तीसगढ़ के साहित्यकारों का योगदान

डॉ.रेशमा अंसारी
प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर, छत्तीसगढ़

कई वर्षों की अंग्रेजी हुकूमत की गुलामी से देश को पूरी तरह आजाद कराने में देश के अनेक महापुरुषों, वीर सपूतों और स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की अहम भूमिका रही है। छत्तीसगढ़ के इन दुलारे बेटों को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। छत्तीसगढ़ के कोने-कोने से देश में आजादी की पुकार थी। यहां जन्में आंदोलनकारी चाहे वह पत्रकार हों, साहित्यकार हों या आम जनता, सभी ने अपनी भूमिका बखूबी निभाई है। आप भारत का इतिहास उठाकर देखिये, आजादी के लिए अपने प्राण फूंक देने वालों की दास्तां जब हम पढ़ते हैं या फिल्मों में उसके कुछ अंश को देखते हैं तो हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जब देश में चारों तरफ स्वतंत्रता की लड़ाई चल रही थी, देश के अलग-अलग राज्यों के लोग एकजुट होकर अपना योगदान दे रहे थे, उसमें छत्तीसगढ़ पीछे नहीं रहा। छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध हुए विभिन्न विद्रोह में प्रमुख एवं प्रथम विद्रोह में हम सोनखान विद्रोह का उल्लेख कर सकते हैं।

सोनखान रायपुर जिला बलौदाबाजार तहसील के अंतर्गत जमींदारी थी तथा राम रायजी यहां के जमींदार थे। राम राय जी वीर नारायण सिंह के पिता थे, इन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के साम्राज्यवादी आकांक्षा को भांप लिया था परंतु अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सीमित शक्ति के कारण उनका विद्रोह लंबे समय तक नहीं चला और वे छत्तीसगढ़ इतिहास के संधि युग की राजसी पुरुष बन गये। पिता की मृत्यु के बाद वीर नारायण सिंह वहां के जमींदार बने।

अगस्त 1856 में सोनखान जमींदारी में भीषण अकाल पड़ा। लोग भूखे मरने लगे। लोगों की जान बचाने के उद्देश्य से वीर नारायण सिंह ने कसडोल के एक व्यापारी के गोदाम का अनाज अपनी भूखी प्रजा में बंटवा दिया। तथा इसकी सूचना डिप्टी कमिश्नर को भी दी। डिप्टी कमिश्नर ने इनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी कर उन्हें जेल भेज दिया। इसके पश्चात उन्हें राजद्रोह का आरोप लगाकर फाँसी की सजा सुना दी गई और 10 दिसंबर 1857 को रायपुर के जयस्तंभ चौक में वीर नारायण सिंह को सार्वजनिक रूप से फाँसी दे दी गई। इसके पश्चात छत्तीसगढ़ में अनेक आंदोलन प्रारंभ हो गये। जिसमें विभिन्न विभूतियों ने अपना अमूल्य योगदान दिया। इनमें पं. सुंदरलाल शर्मा. पं. रविशंकर शुक्ल, माधवराव सप्रे, वामन राव लाखे, ई राघवेंद्र राव, बैरिस्टर छेदीलाल, यदुनंदन प्रसाद शर्मा, घनश्याम सिंह गुप्त, रत्नाकर झा, गंगा प्रसाद चौबे, रामप्रसाद देशमुख, ठाकुर प्यारेलाल सिंह, शिवलाल मास्टर, बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव, नारायण राव मेघावाले, सुरेंद्र साय, हनुमान सिंह का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले वीर सपूत क्रांतिकारी होने के साथ ही साहित्यकार भी थे। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू होते ही जब राष्ट्रवादी विचार उभरने लगे और विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने आधुनिक युग में प्रवेश करने लगा; तब अधिक से अधिक वीर सपूत और साहित्यकार देशभक्ति पूर्ण उद्देश्यों के लिए साहित्य को प्रयोग में लाने लगे। इनमें पं. माधवराव सप्रे, डॉ. खूबचंद बघेल, पं. सुंदरलाल शर्मा, हरि ठाकुर, ठाकुर प्यारेलाल सिंह, केयूर भूषण सहित अनेक साहित्यकारों ने अमूल्य योगदान दिया है। इनमें महिला साहित्यकारों का नाम भी उल्लेखनीय है; श्रीमती रोहणी बाई परगनिहा, श्री फूलकुंवर, डॉ राधा बाई, श्रीमती बेला बाई, श्रीमती केकती बाई इत्यादि प्रमुख हैं। माधव राव सप्रे प्रसिद्ध कहानीकार एवं साहित्यकार थे। उन्होंने राष्ट्रीय कार्य के लिए उपयुक्त अनेक प्रतिभाओं की परख कर उनका उन्नयन किया। स्वतंत्रता संग्राम में भी उनकी अग्रणी भूमिका थी। पंडित माधव राव सप्रे भारतेंदु युग के लेखकों की तरह पत्रकार, साहित्यकार एवं कहानीकार थे। छत्तीसगढ़ मित्र से ही अविभाजित मध्यप्रदेश में पत्रकारिता की शुरुआत हुई। पंडित सप्रे की

मैट्रिक की पढ़ाई बिलासपुर में हुई और 1899 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से उन्होंने लोकमान्य तिलक के मराठी के पुत्री के रूप में छापना शुरू किया। उन्होंने हिंदी साहित्यकारों और लेखकों को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की। इसी क्रम में नागपुर से हिंदी ग्रंथ माला का प्रकाशन किया। अनवरत अंतिम समय तक वे अपने लेखन के माध्यम से जनता को जागरूक करते रहे। छत्तीसगढ़ की राजनीति व देश के स्वतंत्रता आंदोलन में पंडित सुंदरलाल शर्मा का ऐतिहासिक योगदान है। पंडित सुंदरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ में जन जागरण और सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे। वे एक कवि सामाजिक कार्यकर्ता, समाज सेवक, इतिहासकार, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्हें 'छत्तीसगढ़ का गांधी' भी कहा जाता है। पंडित सुंदरलाल शर्मा के सम्मान में उनके नाम पर पंडित सुंदरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़ की स्थापना की गई है। 19 वीं सदी के अंतिम चरण में देश में राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना की लहरें उठ रही थी। समाज में समाज सुधारकों, चिंतकों तथा देशभक्तों ने परिवर्तन के इस दौर में समाज को नयी सोच और दिशा दी। छत्तीसगढ़ में उन्होने सामाजिक चेतना का स्वर घर-घर पहुंचाने में अविस्मरणीय कार्य किया। पंडित सुंदर लाल शर्मा ने राष्ट्रीय कृषक आंदोलन, मद्यनिषेध, आदिवासी आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन जुड़े और स्वतंत्रता के यज्ञवेदी पर अपना सब कुछ अर्पित कर दिया। छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचलों में व्याप्त रुढ़िवादिता, अंधविश्वास, अस्पृश्यता तथा कुरीतियों को दूर करने के लिए सुंदर लाल शर्मा ने काफी प्रयास किया। उनके हरिजनोद्धार कार्य की प्रशंसा महात्मा गांधी ने मुक्त कंठ से करते हुए, इस कार्य में पंडित सुंदर लाल शर्मा को गुरु माना था। 1920 में धमतरी के पास कंडेल नहर सत्याग्रह में भी सुंदर लाल शर्मा नेतृत्व में सफल रहे। उनके प्रयासों से ही महात्मा गांधी 20 दिसम्बर 1920 को पहली बार रायपुर आए थे। असहयोग आंदोलन के दौरान छत्तीसगढ़ से जेल जाने वाले व्यक्तियों में वे प्रमुख थे। जीवन-पर्यन्त सादा जीवन, उच्च विचार के आदर्श का पालन करते रहे। छत्तीसगढ़ शासन ने उनकी याद में आंचिलक साहित्य के लिए 'पंडित सुंदरलाल शर्मा सम्मान' स्थापित किया है। उनका छत्तीसगढ़ी-दीन-लीला छत्तीसगढ़ का प्रथम लोकप्रिय प्रबंध काव्य ग्रंथ है। उन्होंने लगभग 18 ग्रन्थ लिखे जिनमें चार नाटक;दो उपन्यास तथा शेष काव्य रचनाएं हैं। काव्य संग्रह छत्तीसगढ़ी दानलीला, राजिम प्रेमपियुष, काव्यामृवाषिणी, करूणा पचीसी, एडवर्ड राज्याभिषेक, विक्टोरिया वियोग, खंडकाव्य कंस वध, नाटक सीता परिणय, पार्वती परिणय, प्रहलाद चरित्र, ध्रुव आख्यान, विक्रम शशिकला, उपन्यास श्रीकृष्ण जन्म आख्यान, सच्चा सरदार इन सभी रचनाओं के माध्यम से सुन्दर लाल शर्मा ने देशवासियों को जागरूक करने मे अपना अहम योगदान दिया।

स्वर्गीय हरि ठाकुर एक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, इतिहासकार, पत्रकार, लेखक सामाजिक कार्यकर्ता और छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण आंदोलन के अग्रणी नेता भी थे। छत्तीसगढ़ के इतिहास और यहाँ की कला-संस्कृति, बोली और भाषा का उन्होंने गहन अध्ययन करते हुए कई गंभीर आलेख भी लिखे। उनका रायपुर में हुआ था। उनके पिता स्वर्गीय प्यारेलाल सिंह ठाकुर एक महान श्रमिक नेता, आजादी के आंदोलन के महान योद्धा, सहकारिता आंदोलन के कर्मठ नेता, पत्रकार, विधायक और रायपुर नगर पालिका के तीन बार निर्वाचित अध्यक्ष रह चुके थे। हरि ठाकुर को देश और समाज के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेरणा अपने क्रांतिकारी पिता जी से विरासत में मिली थी और वे देश को आजाद कराने की दिशा मे अनवरत लगे रहें। ठाकुर प्यारेलाल सिंह का जन्म 21 दिसंबर 1891 को छत्तीसगढ़ में राजनांदगांव जिले के 'दैहान' नामक ग्राम में हुआ था। बाल्यकाल से ही ठाकुर प्यारेलाल मेधावी, सच्चे स्वदेशी, और राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत थे। 16 वर्ष की उम्र से ही स्वदेशी कपड़े पहनने लगे थे। उस वक्त में वे कुछ क्रांतिकारियों से मिले जो बंगाल से थे, तब से उन्होंने ठान लिया था कि देश सेवा ही इनके जीवन का महत्वपूर्ण अंग होगा। 1916 में प्यारे लाल जी ने दुर्ग में वकालत शुरु की थी, पर 1920 में जब नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने 'असहयोग आंदोलन' छेड़ने की घोषणा की तो ठाकुर प्यारेलाल ने अपनी वकालत छोड़ दी और जिले भर में असहयोग आंदोलन करने के लिए निकल पड़े। असहयोग आंदोलन के दौरान कितने विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल छोड़ दिए, कितनों ने वकालत छोड़ दी। ठाकुर प्यारेलाल के भाइयों ने भी स्कूल छोड़ दिया। स्कूल छोड़े हुए विद्यार्थियों के लिए ठाकुर प्यारेलाल सोचने लगे कि क्या किया जाए और इसके बाद में उन विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना की गई। प्यारे लाल जी ने खुद में एक माध्यमिक स्कूल की स्थापना की। धमतरी राष्ट्रीय विद्यालय का दायित्व प्यारे लाल जी के पिता दीनदयाल स्कूलों के डिप्यूटी इंस्पेक्टर थे, जो राजनांदगांव, छुईखदान और कवर्धा रियासतों के थे। ठाकुर प्यारे लाल वकालत छोड़ने के बाद गांव-गांव घूमकर चरखी और खादी का प्रचार करने लगे। पर प्रचार केवल दूसरों के लिए ही नहीं था, प्रचार तो अपने आप के लिए भी था। ऐसा कहते हैं कि उन दिनों प्यारे लाल जी सिर्फ एक ही खादी की धोती पहनते थे; उसी को पहन कर स्नान करते थे। धोती का एक छोर पहने रहते तो दूसरा छोर सूखाते; दूसरा सूखने पर उसे पहन लेते और पहला छोर सूखाते थे। लगातार 3 साल तक प्यारे लाल जी ने उसी एक धोती को पहनते रहे। ठाकुर प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में राजनांदगांव में छात्र आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, अत्याचारी दीवान हटाओ आंदोलन चले। इन आंदोलनों में उन्हें सफलता भी मिली। राजनांदगांव में वकालत करते हुए ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने मिल के मजदूरों को संगठित किया। उनके नेतृत्व में 1919 में मजदूरों ने देश की सबसे पहली और लंबी हड़ताल की जिसका परिणाम यह रहा कि उन्हे रियासत से निष्कासित किए जाने की सजा मिली थी। इस घटना से ठाकुर साहब एक श्रमिक नेता के रूप में देश में काफी प्रसिद्ध हो गए। वे 1920 में पहली बार महात्मा गांधी के संपर्क में आए और उन्होने असहयोग और सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया और गिरफ्तारी देकर जेल भी गए। उनके नेतृत्व में मजदूरों ने हड़ताल की। श्रमिकों पर लाठियाँ और गोलियां बरसाई गई। लेकिन हड़ताल जारी रही। ठाकुर साहब को दोबारा राजनांदगांव से निष्कासित कर दिया गया। रायपुर में उन्होंने पंडित सुंदरलाल शर्मा के साथ जुड़कर 'अछुतोद्धार' के कार्यों में सहयोग प्रदान किया। भारत की आजादी के आंदोलन में सक्रिय योगदान देकर एवं तत्कालीन भारत में चल रहे राजनैतिक-सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक मुक्ति आंदोलन में हिस्सा लेकर जिन्होंने इतिहास रचा है, उनमें एक सशक्त हस्ताक्षर डॉ. खूबचंद बघेल जी का भी है। छत्तीसगढ़-राज्य जो अस्तित्व में नवम्बर 2000 से आया है, उसके प्रथम स्वप्न दृष्टा, डॉ. खूबचंद बघेल जी ही थे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिये त्याग और बलिदान करने वालों में डॉ. साहब का नाम अग्रिम पंक्ति पर है। छत्तीसगढ़ी साहित्य के क्षेत्र में उनका विशेष योगदान रहा है। डॉ. बघेल मौलिक चिंतक थे। उिनकी लेखनी काफी सशक्त थी। डॉ. बघेल को हर वक्त छत्तीसगढ़ियों की आर्थिक गुलामी की पीड़ा सताती थी। छत्तीसगढ़ी में उन्होंने तीन नाटक लिखे पहला 'ऊंच-नीच' समाज में व्याप्त छुआ-छूत और जातिवाद पर करार प्रहार करते हुये। दूसरा 'करम-छँड़हा' छत्तीसगढ़ के आम आदमी की गाथा उसकी बेबसी का वर्णन एवं तीसरा ''जनरैल सिंग'' जो छत्तीसगढ़ के दब्बुपन को दूर करने का रास्ता सुझाया। इन नाटकों को मंचित करने का दायित्व भी उन्होंने स्वयं निभाया। 1962 के भारत-चीन युद्ध के समय ''भारत माता'' नामक नाटक लिखकर मंचित करवाया। मंचन के माध्यम से पथरी, कुरुद आदि गाँवों से धन एवं सहयोग एकत्रित कर प्रधानमंत्री राहत कोष में भिजवाया। रायपुर के समाचार-पत्रों; अन्य प्रचार माध्यमों में लेख लिखकर हमेशा अपने विचारों से लोगों को अवगत कराते रहते थे। महात्मा ज्योतिबा फुले, महात्मा गाँधी एवं डॉ. राममनोहर लोहिया की विचारधाराओं से ओत-प्रोत ये लेख रायपुर से प्रकाशित साप्ताहिक ''राष्ट्रबंधु'' के माध्यम से प्रसारित होते रहते थे। केयूर भूषण जाने-माने छत्तीसगढ़ी साहित्यकार रहे। उनका छत्तीसगढ़ी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य में उनके योगदान को देखते हुए छत्तीसगढ़ शासन के पं. रविशंकर शुक्ल सद्भावना पुरस्कार 2001 से उन्हें सम्मानित किया गया। उनकी प्रमुख छत्तीसगढ़ी रचनाओं में लहर (कविता संग्रह), कुल के मरजाद (उपन्यास), कहां बिलागे मोर धान के कटोरा (उपन्यास), नित्य प्रवाह (प्रार्थना एवं भजन), कालू भगत (कहानी

संग्रह), आंसू म फिले अचरा (कहानी संग्रह), मोर मयारुक, हीरा के पीरा (निबंध संग्रह), डोंगराही रद्दा (कहानी संग्रह), लोक-लाज (उपन्यास), समें के बलिहारी (उपन्यास), छत्तीसगढ़ के नारी, संपादन-साप्ताहिक छत्तीसगढ़, साप्ताहिक छत्तीसगढ़ संदेश, त्रैमासिक हरिजन सेवा (नई दिल्ली), मासिक अंत्योदय (इंदौर) आदि शामिल हैं। केयूर भूषण का पत्रकारिता में भी काफी योगदान रहा हैं। उन्होंने साप्ताहिक छत्तीसगढ़, साप्ताहिक छत्तीसगढ़ संदेश, त्रैमासिक हरिजन सेवा (नई दिल्ली) और मासिक अन्त्योदय (इंदौर) का संपादन भी किया।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्व. केयूर भूषण ने 11 साल की उम्र से ही आजादी की लड़ाई में भाग लेना प्रारंभ कर दिया था और जब वे सिर्फ 18 साल के थे तब उन्होंने 1942 के आंदोलन में भाग लिया और लगभग 9 महीने तक जेल में रहे थे। बाद में वे किसान मजदूर आंदोलन से जुड़े। केयूर भूषण गांधीवादी चिंतक थे। उन्होंने संसद में 1980 से 1989 तक दो बार रायपुर लोकसभा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया। वे छात्र जीवन से ही राजनीति और समाजसेवा में आगे रहे जिसके कारण मिडिल स्कूल से आगे नहीं पढ़ सके। इसके बाद उन्होंने कांग्रेस, कम्यूनिस्ट पार्टी और सर्वोदय में कार्य किया। वे हरिजन सेवक संघ के पदाधिकारी रहे। इस दौरान उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। धनश्याम सिंह गुप्त राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान दुर्ग जिला का प्रतिनिधित्व करने वालों में प्रमुख थे; उनकी कृतियों में महाराजा प्रताप सिंह की तलवार; शिवाजी का स्मरण; गांधीजी की नजर में हिंदी के प्रमुख रचनाओं मे से एक थी।मुंशी अब्दुल रऊफ मेहंदी राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान रायपुर का प्रतिनिधित्व करने वालों में से एक थे। इनकी रचनाएँ पठनीय रही हैं। वामन राव लाखे जी ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान रायपुर जिला का प्रतिनिधित्व करते हुए बहुत ही उल्लेखनीय कार्य किया। रायपुर जिले में सहकारिता के जनक वामन राव जी ने कई संस्थाओं की स्थापना भी की थी। पं रत्नाकर झा, क्रांति कुमार भारतीय; यति यमनलाल, गुन्डाधुर आदि महान हस्तियों ने भारत की आजादी में अपना महत्तवपूर्ण योगदान दिया

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. छत्तीसगढ़ी वृहद संदर्भ, त्रिपाठी संजय, त्रिपाठी चंदन, उपकार प्रकाशन 2001.
2. छत्तीसगढ़ सांस्कृतिक, पटेल डी सी, मुस्कान प्रकाशन 2015.
3. छत्तीसगढ़ सम्पूर्ण अध्ययन, ब्रम्हशास्त्र प्रकाशन 2020.
4. छत्तीसगढ़ सामान्य ज्ञान, ल्यूसेन्ट पब्लिकेशन 2015.

लोक गायन शैली-कजरी

डॉ.दीप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर(संगीत-गायन)
राजकीय महिला महाविद्यालय झाँसी - उत्तर प्रदेश

सारांश - कजरी ऋतु गीत है इस का गायन समय सावन के महिने में वर्षा ऋतु में मान्य है । कजरी प्राकृतिक जीवन की सुषमा का संगीत है,जीवन की समरसता का संदेश है और प्राकृतिक सहज स्वाभाविक सौंदर्य के माधुर्य की अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। ग्राम्य जीवन की झांकी और झंकृत कर देने वाली मन की जिज्ञासा एवं अभिलाषा है कजरी । मिर्जापुर की कजरी संपूर्ण भारत वर्ष में एक अलग स्थान रखती है। अगर कहा जाये तो कजरी का इतिहास काफी पुराना है तो इसका अनुमान इसके आधार पर भी लगाया जा सकता है कि लोक संगीत के दूसरे रूप में बहुत ज्यादा बदलाव आया लेकिन कजरी जस की तस रही ।

मुख्य शब्द-लोकानुरंजन, निःसृत, विंध्याचल, वियोग, चबूतरा, पटेंगा, रतजगा, श्यामल, कालीमा, पोखरा, जरई ।

प्रस्तावना - कजरी लोक की संपदा है पर उसमें वेद है, पुराण है, शास्त्र है, उपनिषद है तथा लोकानुरंजन के साथ-साथ अध्यात्म, ज्ञान ,विज्ञान, धर्म-कर्म, पुरुषार्थ, राष्ट्रीयता ,राजनीति, शिक्षा, साहित्य, संगीत, कला, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र,, पर्यावरण, ज्योतिष, नक्षत्र शास्त्र, अर्थशास्त्र, कृषि, व्यापार, उद्योग तथा वाणिज्य सब कुछ इसमें भरा पड़ा है। इस कारण इसमें मस्ती है, मस्ती का आलम है, आनंद ही आनंद है ,हर्ष उल्लास तथा अल्हाद है। इसमे दया,करुणा, प्रेम, परोपकार, सहानुभूति, सदाचार, सदव्यवहार तथा शिष्टाचार है। इसमें अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, बलात्कार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, असत्य, आलस्य, निद्रा, भय, क्रोध के लिए कोई स्थान नहीं है।

मान्यता के अनुसार कजरी का उद्भव मां कज्जला मां विंध्यवासिनी की प्रशस्ति गान के लिए हुआ था जो कालांतर में कज्जला से कजरी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। साहित्यकार रविनंदन सिंह बताते हैं कि मिर्जापुर स्थित विंध्याचल देवी जिन्हें कज्जला देवी भी कहा जाता था वहीं से कजरी अस्तित्व में आया । कुछ लोगों का मानना है कि कांतिक राज्य के राजा की लड़की का नाम कजरी था। वह अपने पति से बेहद प्यार करती थी जिसे किसी कारण उसे अपने पति से अलग कर दिया जाता है तो उनकी याद में वह जो प्यार के गीत गाती थी उसे मिर्जापुर के लोग कजरी नामक विधा के नाम से याद करते हैं। वह इन्हीं की याद में कजरी महोत्सव का आयोजन भी करते हैं।

ईशा देवी के अनुसार" सावन शुरू होते ही काले कजरारे बादलों को देखकर लोक हृदय से निःसृत गीत के रूप में कजरी लोकगीत उत्पन्न होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुसार मध्य प्रदेश के दादराय नामक लोकप्रिय राजा की मृत्यु के बाद वहां की स्त्रियों ने एक नए गीत की तर्ज का आविष्कार किया जिसका नाम कजली अथवा कजरी पड़ा।कजली का संबंध एक धार्मिक तथा सामाजिक पर्व के साथ जुड़ा हुआ है।कजरी पूर्वी उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर का प्रसिद्ध लोक गीत है। मिर्जापुर पूर्वी उत्तर प्रदेश के गंगा के किनारे बसा जिला है। मिर्जापुर के सभी गांव में कजरी लोक गायन का गायन बहुत ही धूमधाम से किया जाता है। प्राचीन काल से ही मिर्जापुर जनपद मां विंध्यवासिनी के शक्तिपीठ के रूप में आस्था का केंद्र रहा है। अधिसंख्य प्राचीन कजरियों में शक्ति स्वरूपा मां विंध्यवासिनी का गुणगान तथा वर्णन मिलता है। आज कजरी का वर्ण्य विषय काफी विस्तृत है परन्तु कजरी का प्रारंभ देवी गीत द्वारा ही होता है।

मिर्जापुर के एक गांव रामगढ़ की रहने वाली मुन्नी देवी जो की कजरी गायन की अच्छी कलाकार है ,वह बताती हैं की कजली अथवा कजरी महिलाओं द्वारा गाया जाने वाला लोकगीत है। मिर्जापुरी कजरी में भगवान कृष्ण भगवान राम तथा अन्य कई देवी-देवताओं का विवरण मिलता है। इसके अतिरिक्त श्रृंगार ,वियोग तथा करुण रस में कजरियों की रचना की जाती थी।कजरी गायन वह शैली है जिसमें परदेस कमाने गए पुरुषों की अकेली स्त्रियाँ अपनी विरह वेदना और अकेलेपन का दर्द व्यक्त करती है।मिर्जापुर गांव प्रतापपुर की रहने वाली गायिका राधिका देवी से जब हमने इस विषय पर चर्चा किया उन्होंने बहुत सारी कजरी की पुरानी यादों के बारे में बताया। उन्होंने बताया कि मिर्जापुर की कजरी सिर्फ कजरी ही नहीं वहां की धरती पर पूज्य

सभी देवी देवताओं की एक झलक है। नवविवाहित महिलाएं कजरी के माध्यम से मायके से छूट गए रिश्तो की उपेक्षा की वेदना प्रकट करती है। उन्होंने यह भी बताया कि हम लोग कजरी गायन करते हैं तो उसमें रामायणी कजरी, महाभारती कजरी को भी गाते हैं। उन्होंने हुए रामायणी कजरी की कुछ लाइनें भी सुनाया जिसके शब्द कुछ इस प्रकार थे -

मुनि के संग रंग भूमि में रघुराई गए,
छोटे लखन भाई गए ना,
आए जनक जी के धाम नृप बैठे तमाम,
देखे सूरत जनक जी हरषाई गए,
मुनि के संग रंगभूमि में रघुराई गए,
छोटे लखन भाई गए ना।।

मिर्जापुर के ही एक गांव रामगढ़ की भक्तान टोला की कजरी की अच्छी गायिका विजयलक्ष्मी से भी हमने लोक गायन कजरी पर चर्चा किया तो उन्होंने बताया कि स्वतंत्रता संग्राम के नायक से भी संबंधित कजरियों का गायन भी उनके गांव में होता था। उन्होंने गुनगुनाते हुए 2 लाइनें कजरी की सुनाई-

कवने रंग गांधी बाँबा कवने रंग नेहरू,
मोर भारतवासी नेतवा कौने रंग ना ,
साती रंग गांधी बाबा साती रंग नेहरू,
जय हिंद रंगना मोर भारतवासी नेतवा जय हिंद ना।।

विंध्य क्षेत्र अर्थात मिर्जापुर में गाए जाने वाली मिर्जापुरी कजरी में सखी -सहेलियां ,भाभी-ननद ,देवरान - जेठान तथा पत्नी- पति के आपसी रिश्तों की मिठास - खटास के साथ सावन की मस्ती का रंग घुला होता है। महिलाओं द्वारा समूह में गाई जाने वाली कजरी को ढूनमुनिया कजरी कहा जाता है। भारतीय पंचांग के अनुसार भाद्रपद मास कृष्ण पक्ष की तृतीया को संपूर्ण मिर्जापुर पूर्वांचल में कजरी का गायन किया जाता है। कहा जाता है कि कजरी त्यौहार से पहले ही ससुराल में नई नवेली शादीशुदा विवाहिता की विदाई की तिथि रख दी जाती थी। उनके मायके से माता-पिता उनके सास ससुर से बात करके सावन में अपनी लड़की को मायके लाने की तिथि पक्की कर लेते थे। कम से कम एक महीने के लिए माता-पिता अपनी लड़की को घर लाने का समय लेते थे। विदाई की तिथि पक्की होते ही महिला के मन में मायके की भावनाएं जन्म लेने लगती थी और वह चाहती थी कि कितनी जल्दी विदाई हो और वह अपने मां बाबूजी के घर पहुंचे तथा अपनी भावनाओं को अपनी सहेलियों के साथ बाँट सके।

अगर कहा जाये तो कजरी का इतिहास काफी पुराना है तो इसका अनुमान इसके आधार पर भी लगाया जा सकता है कि लोक संगीत के दूसरे रूप में बहुत ज्यादा बदलाव आया लेकिन कजरी जस की तस रही ।कजरी का एक प्राचीन उदाहरण तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो की रचना है, ***अम्मा मेरी बाबा को भेजो जी की सावन आया।*** इसके अतिरिक्त मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर की एक रचना- ***झला किन डारो रे अमराइयाँ*** आदि गीतों से भी सावन महीने में गाए जाने वाले गीतों की प्राचीनता का एहसास किया जा सकता है।सावन का महीना आते ही महिलाएं खुशी से आनंदित हो जाती है बाबुल के घर जाने का उतावलापन उनमे देखते ही बनता है। इस माह में नीम, जामुन तथा आम के पेड़ों में झले पड़ जाते हैं। कजरी में विवाहिता के साथ ही साथ कुंवारी लड़कियां भी हाथों में मेहंदी लगाकर झला झलती है गीत गाती है। कहते हैं कि पहले पर्दा प्रथा के चलते औरतें अपनी वेदना भावनाओं को नहीं कह पाती थी और सावन में अपने मायके आते ही खुले मन से अपने विचार गा गाकर के कजरी के माध्यम से सुनाती थी।पपीहे दादर तथा मोर के मधुर आवाजों के बीच अपने मायके आने की खुशी को शब्दों में पिरोती थी। वह अपने पति के वियोग को गाकर सहेलियों को सुनाती थी।सावन का महीना लगते ही महिलाएं गाती बजातीहुई कजरहवा पोखरा से जरोई की मिट्टी लेने जाती है ।मिट्टी लाकर उस मिट्टी को एक मिट्टी के बर्तन परई में रखकर त्रिभुज आकार का बना देती हैं तथा इसमें चारों और तरफ से जौ के दानों को लगाती हैं फिर इसे हर रोज थोड़ा - थोड़ा करके पानी देती रहती हैं और एक तरफ कजरी गांव में इस समय जोरों पर होता है। धीरे-धीरे जौ का बीज अंकुरित होकर पौधे का रूप ले लेता है। जब जौ का पौधा आठ से 10 अंगुल का हो जाता है तो महिलाएं इसे मिट्टी के बर्तन सहित लेकर गंगा नदी के तट पर जाती है और धीरे-धीरे जौ के पौधे से मिट्टी को गंगा नदी में धूल देती हैं। इसके पश्चात सिर्फ जौ का पौधा घर वापस लेकर आती है और भाइयों के कानों में जौ का पौधा फसाकर इस कजरी के त्यौहार को धूमधाम से मनाती है। कजरी गीतों में एक और स्त्री अपने पति के प्रदेश आगमन पर झूम उठती है और गीत सुनाती है - अरे चले पुरवईया ,अब पिया मोरे सौवे ए हरि , कलियां चुनी चुनी सेज बनवली ,सईया सुतले आधी रात । इस दूसरी ओर दूसरी प्रियतमा के प्रियतम परदेश से नहीं लौटते , इस पर सभी सखियां तो मगन है और वह अकेली बिरहा में तप रही है और गुनगुनाती है- बादल बरसे , बिजुरी चमके, जियारा ललचे मोर सखिया, सईया घरे ना अइले पानी बरसन लागे मोर सखियां। शायद ही ऐसा कोई विषय बचा होगा जिस पर कजरी लिखी ना गई हो। राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं, गांधीजी के

अहिंसा आंदोलन, गोरक्षा, ऐतिहासिक लड़ाईयों के साथ-साथ ताश के खेल , कुश्ती के दांव - पेंच , मिठाई एवं फलों के प्रकार आदि पर भी शायरों ने कजरी लिखी है। देवी देवताओं की प्रार्थना के रूप में भजन और निर्गुण में भी मिलता है।मिर्जापुर के एक गांव मंगरहा की रहने वाली क्षेत्रीय गायिका कमला जी के अनुसार- कजरी का एक शुद्ध प्रकार ढूनमुनिया कजरी गाने वाली गांव की बालाएं आमने सामने दो कतार में खड़ी होकर बिना किसी साज के बारी - बारी से एक कदम आगे बढ़कर थोड़ा झुक कर गाती है।वे गाते समय एक दूसरे के हाथ को भी थामें रखती हैं तथा गोलाकार घूमती रहती है वह गीत की एक कड़ी पूरी हो जाने के बाद पुनः पीछे हट जाती है। उनका कहना था कि कजरी गाने के लिए महिलाएं किसी भी चबूतरे या कुए पर उपस्थित होती थी तो कजरी के साथ ही साथ वह नकल भी निकालती थी। उनके कथन अनुसार नकल का अर्थ होता है कि महिलाएं एवं लड़कियों में से ही कोई राधा तो कोई कृष्ण और कुछ गोपियों का रूप वस्त्रों के माध्यम से धारण करती थी तथा कजरी गीत के साथ साथ अपना भाव प्रदर्शित करती थी । आगे वह बताती है की सावन के महीने में अगर किसी महिला का पति अपने ससुराल आता था तो जब रात्रि में वह घर के चबूतरे पर चारपाई पर सोता था तो यह नकल करने वाली पूरी टीम घोर निद्रा में उसके साथ मजाक रूप में कई तरीके अपना कर उसे तंग करती थी। यह छेड़छाड़ अत्यधिक मनोहर प्रतीत होता था। इसी कारण कहा जाता है कि मिर्जापुर में सावन के महीने में किसी महिला का पति अपने ससुराल नहीं जाता था। बस इसी नकल मंडली से भयभीत होकर। इन्होंने कजरी की कुछ लाइनों को गुनगुना कर भी सुनाया , जिनके शब्द इस प्रकार हैं -

माता यशोदा से कृष्ण भगवान करें/रो-रो बयान करे ना।
सुनो सुनो मोरी माई तोहरे गांव की लुगाई ,
सब रोज-रोज हमें परेशान करें ,/रो-रो बयान करें ना।

उनके अनुसार सावन के महीने में रतजगा वाले दिन गांव की सभी महिलाएं रात भर जागती थी तथा कजरी गाती थी । इस दिन सभी महिलाएं खाने जैसे कुछ बना बना कर रात में कजरी गाने के लिए जब चबूतरे अथवा कुवे पर उपस्थित होती थी तो लेकर आती थी और आपस में मिल बांट कर खाती थी तथा गाती थी । कुछ महिलाएं नीम के पेड़ों में पड़े झूले पर इसमें कम से कम 7 से 8 फीट का एक लकड़ी का पटरा लगा होता था उस पर कम से कम चार से छह महिलाएं बैठतीं थी तथा उसमें से दो महिलाएं दोनों किनारों पर खड़ी होकर पटेंगा मारती थी। इससे झूला तेज गति से आगे पीछे होता था और इसी प्रकार कजरी गीत भी सहसा जब मैंने अपनी माता जी से इस कजरी पर चर्चा किया तो मेरी माता जी ने कजरी का पूरा इतिहास जो उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में देखा था तथा गाया था एवं महसूस किया था उसके बारे में मुझे काफी रोचक तरीके से बताना शुरू किया।बीच बीच में माता जी ने दो चार कजरियो को गा कर हमें सुनाया। उनमें से एक कजरी के बोल कुछ इस प्रकार हैं-

मन की मन में रही हो कजरी बीत गई,/पहले बिपतिया पड़ेला राजाराम पर,/सीता के हरेला रवणवा,/कजरी बीत गई मन की मन में रही।।

माता जी ने यह भी सुनाया तथा बताया कि मोहल्ले की जो उम्रदराज महिलाएं थी उनमें से कुछ चार से पांच दादी लोगों को इतनी इतनी संख्या में कजरियाँ याद होती थी कि अगर वह हफ्ते भर लगातार गाती रहे तो भी उससे ज्यादा थी। सभी लोग पढ़ी-लिखी कम थी परंतु जब कजरी गायन करने लगती थी उनके कजरी में देवी कजरी,मां भारती कजरी सभी की झलक दिखाई पड़ती थी। माता जी के द्वारा सुनाई गई एक कजरी के शब्द कुछ इस प्रकार हैं-

राम राम लागे मुहवा से प्यारा पिया ,
दिल कहे हमारा पिया ना,
सुनके सबरी के नाम,/गए मिलने को राम,
तब सबरी के चमकेला सितारा पिया,
दिल कहे हमारा पिया ना,
राम-राम लागे मुहवा से प्यारा पिया,
दिल कहे हमारा पिया ना।।

सरस सावन आप हो को सुख पहुंचाने वाली मखमली हरियाली,रिमझिम फुहार इनका असली चित्र वस्तुतः कजरी में हीं होता है। वर्षा ऋतु के आगमन पर लोगों के मन में उल्लास एवं उमंग का संचार होता है उसको अभिव्यक्त करती है कजरी। इसी कारण इसे वर्षा के साथ मनुष्य के तादात्म्य का सुर में साज़ में और छंद में आलाप कहा गया है। सावन भादो के महीने में बनारस, गाजीपुर, चंदौली ,जौनपुर तथा मिर्जापुर के निकटवर्ती इलाके कजरी से गूंजते हैं। न केवल स्त्रियां बल्कि पुरुष भी गाते हैं। ऋतु संबंधी गीतों में कजरी का विशेष महत्व है। मुख्यतः सावन मास में काले काले बादल उमड़ घुमड़ करते हुए श्यामल श्यामल घनघोर घटा से घिर जाते हैं। तब धरती हरे-भरे रंग-बिरंगे पुष्पों से सुगंधित होती है। संपूर्ण धरा सप्त रंगों की मखमली सौंदर्य से सुसज्जित होता है। ऐसे मनमोहक वातावरण में प्रफुल्लित हृदय ही नहीं बल्कि नीरस हृदय में भी रस का संचार उमड़ पड़ता है। बादलों की कालीमा समेटे हुए श्रावण में घिरने वाली काजल की भांति कजरारे बादलों की कालीमा से उमड़े सौन्दर्य के कारण ही कजरी गीत विधा का नामकरण हुआ है।

कजरी लोकगीत शैली की उत्पत्ति की बात की जाए तो इसका सही अनुमान लगा पाना लगभग कठिन प्रतीत होता है परंतु अगर इस मनोरंजक, चित आकर्षक तथा कर्णप्रिय लोक गीत शैली के प्रचार- प्रसार तथा प्रसिद्धि की बात की जाए तो यह मिर्जापुर से उत्पन्न होकर उत्तर प्रदेश संपूर्ण पूर्वी क्षेत्र के जिले तक अधिक प्रचलित है। कजरी का गायन जब गांव में महिलाओं के द्वारा चबूतरो पर तथा कुवे पर या तालाबों पर किया जाता है।इसमें किसी भी प्रकार के वाद्य यंत्र का प्रयोग नहीं होता है परंतु जब धीरे-धीरे क्षेत्र का विकास होने लगा तो उसमें वाद्य यंत्रों का भी समावेश किया जाने लगा था। जब कजरी ने बनारस की तरफ रुख किया तो वहां शास्त्रीय रूप मिला और वहां कजरी नए रूप में प्रस्तुत गीतों के शब्दों को पढ़कर सुनकर ही उनके मधुरता चंचलता तथा उसमें छिपी हुई एवं भावादी को महसूस किया जा सकता है जो इस प्रकार है—

अजहूं ना आयल तोहार छोटी ,
ननदी बरसत सावन तरसत बीता,
कजरी के आईल बहार छोटी ननदी
1.सब सखी झला झूलन लागी,
सावन में गावत कजरी मल्हार छोटी ननदी।
सावन घिर आया बरसे बदरिया
सजन चले आओ नगरिया,
रिमझिम फुहार पड़े रस की बौछार पड़े,
पपीहा बोलन लगे कोयल कूहकन लागी,
पिया बिन तुम्हारे सुनी सेजरिया।

***2.* घेरी घेरी आई सावन की बदरिया ,**
हे बदरिया ना हो बदरिया ना।
बरसे बदरा से पानी धरती लागे धानी धानी,
धरती लागे धानी धानी धरती लागे धानी धानी।
इ लजाए जैसे नवकी दुल्हनिया ना।।

3. सावन के आईल महीनवा हो सखी गाव कजरीया ,
गाव कजरिया हो गाव कजरिया।
निहुरी निहुरी करे धान की रोपनीया ,
खेतवा के राजा केहू हमनी के रनिया।
इहे धरतीया रतनवा हो, सखी गाव कजरिया।
दिन भर के थकल मादल घरे जब आइल,
सेजिया अगोरी नयनवा हो सखी गाव कजरिया।।

उद्देश्य- इस शोध पत्र के माध्यम से लोग लोक गायन के अन्तर्गत कजरी विधा को समझ सकेंगे एवं उसके महत्त्व को समझ सकेंगे।

निष्कर्ष - कजरी के क्षेत्र में अजीता श्रीवास्तव जो कि मिर्जापुर में स्थित कन्या विद्यालय में शिक्षिका है वह कजरी यानी कजली गायन शैली को जिंदा रखने की कोशिश में 1977 से जुटी है।अजीता श्रीवास्तव की इस विशेष योगदान देने के चलते उन्हें भारत सरकार ने 2021 में पद्मश्री सम्मान से नवाजा है। अजीता श्रीवास्तव पर्यटन विभाग और सूचना विभाग के सहयोग से कजरी को देश विदेश में पहचान दिला रही हैं। वर्तमान समय में लोक गायिका जिन्हें पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है मालिनी अवस्थी भी लोक गायन के अंतर्गत कजरी विधा को अपने गायन के माध्यम से देश एवं विदेश में पहचान है। किस तरह कजरी गीतों का अपना एक अलग रंग है स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाली कजरी में अभी वास्तविक सौंदर्य तथा माधुर्य सुरक्षित है। वर्तमान में कजरी का प्रचलन पूर्व की तरह नहीं रहा परंतु आज भी इस लोक शैली को क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर जीवित रखने वाले कलाकारों में राधिका देवी, विजयलक्ष्मी सिंह, कमला देवी, उर्मिला श्रीवास्त,शारदासिन्हा,उदयचंद्र परदेसी,,रानी सिंह, ईशा देवी, मालिनी अवस्थी, शांति जैन, अजीता श्रीवास्तव अग्रणी हैं।

****

संदर्भ सूची -

1 केसरी दास अर्जुन,गावै कजरी मल्हार नईहरवा, साहित्य अकादमी नई दिल्ली पेज - 2
2 विश्वकर्मा रामनरेश, पूर्वी लोकगीत (जन्म से मृत्यु तक), संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलाहाबाद,प्रकाशन वर्ष - 2011, पेज नं.-78
3 पांडेय सत्य प्रिय, प्रथम स्वाधीनता आंदोलन और लोकगीतों की संवेदना, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2014, पेज नं-56
4 साक्षात्कार मुन्नी देवी - 1 नवंबर 2021
5 साक्षात्कार - राधिका देवी 8 नवंबर 2021
6 साक्षात्कार - विजयलक्ष्मी सिंह 15 नवंबर 2021
7 त्रिपाठी डॉ. रंजना, पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोकगीतों में संगीत शास्त्रीयता, हिंदुस्तानी एकेडमी
प्रयागराज, प्रकाशन वर्ष -2009, पेज नं.-198
8 जैन डॉ. शांति,कजरी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रकाशन वर्ष- 2014, कजरी , पेज नं.-53
9 वही- पेज नं - 64
10 वही- पेज नं - 29
11 साक्षात्कार- कमला देवी 21 नवंबर 2021
12 वही- कमला देवी 21 नवंबर 2021
13 साक्षात्कार- ईशा देवी 5 दिसंबर 2021
14 साक्षात्कार- ईशा देवी 5 दिसंबर 2021
15 डॉ सुमन, ऋतु कालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत तत्व(उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में),नैतिक प्रकाशन उत्तर प्रदेश, प्रकाशन वर्ष – 2012, पेज नं.-62
16 त्रिपाठी डॉ. रंजना, पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोकगीतों में संगीत शास्त्रीयता, हिंदुस्तानी एकेडमी प्रयागराज,प्रकाशन वर्ष -2009, पेज नं.-198
17 वही-पेज न.-199

'काली बिल्ली' कहानी संग्रह में चित्रित सामाजिक चेतना

हरिजन प्रकाश यमनप्पा
शोध छात्र
हिंदी विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय
मानसगंगोत्री, मैसूर

इस समाज में अनेकों दशकों से स्त्री प्रताड़ना होते ही आ रहा है। शारीरिक, मानसिक अनेक तरीकों से स्त्री पर अत्याचार चलता ही आ रहा है। अमरीक सिंह दीप जी अपने 'काली बिल्ली' कहानी संग्रह में स्त्री पर हो रहे अन्याय अत्याचार को अपने कलम के द्वारा समाज के सामने रखते है। 'काली बिल्ली' कहानी में अंजू नव कन्या है, दुनियादारी से अनभिज्ञ है। यवनोन्माद में सही और गलत की पहचान करने में असमर्थ है। झठा प्यार में फसकर अपना भविष्य को खुद बरबादी की ओर मोड़ लेती है। प्यारे का नाटक करता लड़का अंजू को वेश्या गृह में बेचने की तैयारी में रहता है मगर ठीक वक्त पर अंजू का बाप और भाई दोनों अंजू को वहाँ से ले आकर उसका विवाह कर देते हैं।

"इस आफत को क्यों ले आई हो फिर अपने साथ? उस दिन घर से तो यह भाग निकली थी। अगर वक्त पर तुम्हारा आदमी और बेटा उन लड़कों के ठिकाने पर न पहुँच गए होते तो अगले दिन ले उड़े होते वे इसे। फिर क्या इज्जत रह जाती तुम्हारी। तुम्हीं ने तो बताया था कि वे लड़के लड़कियाँ बेचनेवाले गिरोह के आदमी थे। यह तो कहो, गाँव ले जाकर फौरन गौना कर दिया तुम लोगों ने इसका नहीं तो आज यह किसी चकले की शोभा बड़ा रही होती। इस हादसे को अभी छह महीने भी पूरे नहीं हुए और तुम फिर लिवा लाई हो इसे ससुराल से?"[1] समाज में स्त्री, पुरुष द्वारा अनेक कृत्यों का शिकार होकर समस्याओं में फस जाती है। कामुक लोग अबला नारियों को अपनी वासना का शिकार बनाने हेतु हर तरह प्रयास करते है। इसलिए ऐसे दुष्ट ननो का मुकों से दूर रहते हुए सचेत बने रहने की परमावश्यकता है।

"हमारे मुहल्ले की हर जवान हो रही लड़की की हालत चील के घोंसले में माँस जैसी है। हमारे पड़ोस में एक विधवा औरत अपनी तीन जवान बेटियों के साथ रहती है। एक रात कोई शोहदा उनके घर के दरवाज़े पर एक कागज चिपका गया.... यहाँ माल मिलता है – बड़ी पचास रुपये में और छोटी सौ रुपये में।"[2] 'काली बिल्ली' कहानी के माध्यम से अमरिकसिंह जी ने स्त्री प्रताड़ना, आम आदमी की पीड़ा, बेमेल और बाल विवाह की भी उजागर करने का प्रयास किया है। आज के बाजारीकरण व्यवस्था आम आदमी को अत्यंत दुर्बल तथा असहायक बना दिया है। आम आदमी की स्थितिगतियाँ इनकी नाजूक बन चुकी है कि वह विवशता में आकर व्यवस्था के साथ हाथ मिलाते हुए अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्यरत होता जा रहा है।

अंजू के पिता सुखदेव एक असहायक दुर्बल बाप है, जो नाबालिग लड़की का विवाह तुरंत करने की विवशता में है, इसका मुख्य कारण है वहाँ के निवासियों का अव्यवहार तथा अव्यवस्थ समाज। "मौजूदा हालत में जब मुल्क की ज्यादातर मलीन बस्तियाँ बूचड़खानों में तब्दील होती जा रही हों तो ऐसे में सुखदेव जैसे गरीब बेटियों को पिता क्या करें? वे देश के कानून को शिरोधार्य कर बेटियों की आयु अट्ठारह वर्ष क होने तक उनको इस बूचड़काने में हलाल होते देखते रहें? अपनी इज्जत-आबरू को भूलकर रेत में सिर गाड़ लें? या फिर पांडवों की तरह बेटियों का चीरहरण होते देखते रहें? या फिर देश के कानून की ताक पर रखकर कम उम्र में उनकी विवाह कर अपनी इज्जत-आबरू की रक्षा करें? सच तो यह है कि इस देश में आए उदारीकरण ने गरीब आदमी से उसका रोजगार छीनकर उसके पेट पर लात ही नहीं मारी बल्कि शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी जनसुविधाओं का बाज़ारीकरण कर गरीब आदमी के बच्चों का भविष्य भी खा लिया है। गरीब आदमी न घर का रहा न घाट का।"[3] बाज़ारीकरण के कारण उत्पन्न विपरीत परिस्थितियां तथा गरीब असहायक जनता की विवशता को ध्यान में रखते हुए लेखक महोदय देश के आम जनता की विवशता, उनकी पीड़ा, वेदना के प्रति अपना विचार प्रकट करते है कि, "यह मेरा लोकतांत्रिक देश है या गरीब स्त्री की अस्मिता का मेगा मॉल? उदारीकरण की कोख में जन्मि पूँजीवादी व्यवस्था ने इस देश की गरीब आदमी को गुलामों की मंडी में बिकने वाली जिंस बना दिया है और गरीब औरत को मेगा मॉलों में एक सामान के साथ एक सामान फ्री वाली स्कीम में बिकने वाली चीज़...दासी के साथ दासी का जीस्म फ्री। बाजारवाद के चलते परोक्ष रूप से दास प्रथा फिर लौट आई है इस मुल्क में।"[4] आज के बाजारीकरण नीति तथा बाजारवाद संस्कृति के खिलाफ आम आदमी सचेत बने रहने की परमावश्यकता है।

'काली बिल्ली' कहानी में लेखक महोदय ने बेमेल और बाल विवाह जैसे कठोर प्रथा को उजागर कर, उसका कठोर विरोध किया है। पुष्पा और सुखदेव दंपतियों ने बेटी अंजू का विवाह तेरह साल की उम्र में करने पर तुले है। उसके खिलाफ लेखक महोदय अपना आक्रोश प्रकट करता हुआ दोनों दम्पतियों को समझाने का प्रयास करना है और बेमेल और बाल विवाह को किसी तरह रोकने का प्रयास करता है। "पगला गए हो तुम लोग क्या? तेरह साल की नाबालिग लड़की की शादी? किस युग में रह रहे हो तुम लोग? जानते नहीं हो यह कानूनी तौर पर जुर्म है, पाप है, अपराध है, अन्याय है-उस मासूम जान के साथ जो शादी का मतलब तक अभी नहीं जानती और जिसका अभी तक न शरीर परिपक्व हुआ है, न दिमाग। उसकी उम्र अभी पढ़ने और खेलने-कूदने की है।"[5] बाल विवाह करना कानूनन अपराध है, विशेष रूप से नाबालिक कन्या मानसिक एवं दैहिक स्तर से शोषण का शिकार बन जाती है, नाबालिग कन्या का स्वास्थ्य के लिए भी यह घोर मारक है। इस तथ्य को जानते हुए भी गरीब परिवार के कन्याओं की दःस्थिति और ऊपर से वहाँ के जनता का कुकृत्य तथा समाज की अनीति, अव्यवहार में सुधार लाये बिना बाल विवाह रोकना बड़ा सवाल बन जाता है। लेखक सुखदेव को बार-बार समझाने का प्रयास करता है कि अंजू और प्रभा दोनों नाबालिग होने के कारण उनका स्वास्थ्य और भविष्य को ध्यान में रखते हुए बेमेल और बाल विवाह के खिलाफ बने रहने का आग्रह करता है—

"ठीक है, यह शादी तुम मुझसे मिलने से पहले तय कर चुक हो इसलिए इसे मैं रोकूँगा नहीं, लेकिन तुम्हें एक वादा करना होना की प्रभा का विवाह तुम छोटी उम्र में नहीं करोगे और अंजू का गौना अट्ठारह साल की उम्र से पहले नहीं होगे। प्रभा की पढ़ाई-लिखाई का जिम्मा मेरा रहा।"[6] समाज में व्याप्त अनीति, अत्याचार, कामुकता, विशेष रूप से ऐसे वातावरण में निवास करने वाले आम जनता अपने बेटियों के भविष्य के प्रति चिंतित बने रहे है। बेटि वाले बेटियों की इज्जत तथा घर का मानसम्मान को सुरक्षित रखने के प्रायस में बेटियों का विवाह तुरंत करके इज्जत और आबरू बचाना चाहते हैं। "अगले दिन सुखदेव कर्ज़ काढ़कर अपने पूरे परिवार को लेकर गाँव चला गया और चौदह वर्षीय अंजू का गौना निपटाकर ही वापस लौटा था।"[7]

समाज में व्याप्त अनीति, अत्याचार, कामुकता को मिटाये बिना बालविवाह को रोकना असंभव है। सामाजिक स्वास्थ्य बनाये रखे बिना बेटियों का भविष्य निर्माण करना बड़ा कठिन है।

****

संदर्भ:-

'काली बिल्ली' कहानी संग्रह –अमरीक सिंह दीप, पृ.सं.17
वही, पृ.सं. 22
वही, पृ.सं. 23
वही, पृ.सं. 23
वही, पृ.सं. 21
वही, पृ.सं. 24
वही, पृ.सं. 27

डॉ. श्रीराम परिहार के ललित निबंधों में अभिव्यक्त पर्यावरण चेतना

डॉ. जितेंद्र पीतांबर पाटिल
हिंदी विभाग
संगमनेर नगर पालिका कला, दा. ज. मालपाणी वाणिज्य एवं
ब. ना. सारडा विज्ञान महाविद्यालय संगमनेर

शोध सार -आज विश्व भर में अन्य समस्याओं के साथ - साथ पर्यावरण की समस्या पर अधिक चिंता व्यक्त हो रही है 1 आज सामान्य समाज की दृष्टि से मानवी मूलभूत अधिकार रोटी, कपडा, मकान की समस्या जितनी गंभीर बनती जा रही है उससे कई अधिक मात्रा में पर्यावरण की समस्या चिंतनीय बन गई है 1 कुछ वर्षो से पर्यावरण विमर्श का मद्दा विचारकों एवं पर्यावरणीय नियोजकों की चिंता का मुख्य विषय बनता जा रहा है 1

कुछ वर्ष पहले मानव समाज वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रांति और विकास को मानव जाति की सहज स्वाभाविक उपलब्धि मानकर चल रहा था 1 अब इस विकास का कोई अंत नहीं दिखाई दे रहा है 1 कोई सीमा नहीं है 1 आज यही औद्योगिक विकास सबसे बडी गंभीर समस्या का रूप बनकर मानव जाति को चुनौती दे रहा है 1 विकासशिल देशों में पर्यावरणीय समस्याएं गरिबी और बढती आबादी की समस्यओं से भी गंभीर रूप धारण कर चुंकी हैं 1

वस्तुतः हर औद्योगिक विकास पृथ्वी की प्राकृतिक वस्तुस्थितीयों में , पर्यावरणीय संतुलन में किया गया एक हस्तक्षेप ही हैं 1 हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में पर्यावरण विमर्श पर कई साहित्यकारों ने सृजनात्मक सरस अभिव्यक्ति की हैं 1 हिंदी साहित्य में पर्यावरण का विशेष स्थान रहा है 1 काव्य , कहानी, उपन्यास, नाटक, ललित निबंध, आदि विविध विधाओं में पर्यावरण विमर्श पर गहरा चिंतन प्राप्त होता है 1 डॉ श्रीराम परिहार जी के ललित निबांधों में पर्यावरण विमर्श की चिंता आस्था के साथ अभिव्यक्त हुई है 1

बीज शब्द- पर्यावरण, प्रकृति, पर्यावरण असंतुलन, नदी, औद्योगिक विकास, प्रदूषण, पेड, जल,जंगल, जमीन,हवा, आदि.

हिंदी साहित्य और प्रकृति, पर्यावरण इनके बीच आस्था संबंध रहा है 1 प्रकृति और मानवी जीवन का मुख्य विषय रहा है 1 मानव जीवन और प्रकृति का अटूट रिश्ता रहा हैं 1 प्रकृति से मानव समाज ने हमेशा ही प्रेरणा प्राप्त की है, और अपना जीवन समृध्द बनाया है 1 भारतीय संस्कृति में मानव जीवन की दृष्टि से प्रकृति,हवा,नदी, जल,जमीन,जंगल,आदि पर्यावरणीय तत्वों को महत्वपूर्ण माना गया हैं1

हिंदी साहित्य में काव्य , कहानी, उपन्यास,नाटक, ललित निबंध आदि विविध विधाओं में अनेक साहित्यकारों ने पर्यावरण विमर्श पर अपना चिंतन सशक्तता से व्यक्त किया है 1 छायावाद का साहित्य प्रकृति और पर्यावरण विमर्श की दृष्टि से अनुपम उपलब्धि हैं 1 छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने कामायनी महाकाव्य में तो पर्यावरण, प्रकृति की महत्ता को सुंदरता से चित्रित किया है 1 पर्यावरण के ऱ्हास को लेकर चिंता व्यक्त करते हुए चिंता सर्ग में लिखा है.....

"हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर,
बैठा शीला की शीतल छाह l
एक पुरुष भिगे नयनों से ,
देख रहा था प्रलय प्रवाह l" [1]

जय शंकर प्रसाद इन पक्तियों द्वारा विनाशकारी जल - प्रलय की भयाववहता को चित्रित करते हैं lआधुनिक कालीन कवि केदारनाथ सिंह के काव्य में भी भी पर्यावरण संबंधी चिंता बहुत ही मार्मिकता से चित्रित है, जो हमें सोचने पर मजबूर करती है 1 उनकी ' पानी की प्रार्थना ' यह कविता घटता जल स्रोत एवं जल प्रदूषण पर गहरी चिंता प्रस्तुत करती है 1 आज आधुनिक काल में मानवी जीवन में प्रकृति का ऱ्हास एवं पर्यावरण प्रदूषण का संकट इस सदी की प्रमुख चुनौतियों में से एक प्रधान समस्या है 1 पर्यावरण की अनेक समस्याओं ने मनुष्य का जीवन बाधित कर दिया है 1 मनुष्य ने अपने स्वार्थांधता के कारण तथा औद्योगिक विकास की होडा - होडी के कारण प्रकृति औरं1 पर्यावरण का ऱ्हास करते हुए अपने ही पैरों पर कुल्हाडी मार ली है 1 आज पर्यावरणीय समस्याओं के कारण मानव समुदाय अस्तित्व ही खतरें में आ गया हैं 1

आधुनिक काल के ललित निबंधकार डॉ श्रीराम परिहार जी के ललित निबंधों में पर्यावरणीय इसी चिंता को बडेंही सजगता के साथ प्रस्तुत किया गया है 1 डॉ श्रीराम परिहार जी का मानना हैं कि औद्योगीकरण , पूंजीवाद, भूमंडलिकरण एवं बढती उपभोक्तावादी संस्कृति ने पर्यावरणीय संकट बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं 1

डॉ श्रीराम परिहार जी ने अपने ललित निबंध साहित्य में पर्यावरण , प्रदूषण पर चिंता व्यक्त करते हुए बडा ही मार्मिक चित्रण किया है 1 आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य उपभोक्ता वादी बन गया है 1 वह प्रकृति के संसाधनों का स्वार्थांधता के कारण आवश्यकता से बाहर उपयोग कर रहा है 1 धरती को छाती फाडकर वह धरती में होनेवाले चिजों को लूट रहा हैं,परिणाम स्वरूप प्रकृति में पंचतत्त्वो में असंतुलन पैदा हो गया है 1 इस संदर्भ में डॉ परिहार अपने ' आंच अलाव की ' निबंध में लिखते हैं "आज धरती के अंकुर कुचले जाते है , फसले रौंदी जाती हैं lपेडों की शाखें काटी जा रही हैं 1 खेत बदरंग हो रहे है 1 सडके, गली, चौराहे, लाल रंग से लथ - पथ है 1 नदी - नहरों में गंदा पानी बह रहा है 1 " [2]

आज मानवी जीवन में हर बात को बुध्दी की कसौटी पर कसा जा रहा है 1 मानवी बुध्दी के द्वारा नए - नए अविष्कार किए जा रहे है 1 परिणाम स्वरूप सहृदयी भारत देश पीछे छूट गया है 1 मनुष्य आज बडे ही उत्साह से आसमान में उडान ले रहा है 1 अपने अस्तित्व एवं वर्चस्व सिद्ध करने के लिए मानव समुदाय आज सैंकडों नए यान , ग्रह, उपग्रह , आकाश में छोड रहा हैं 1 पूरा आकाश आज कालिख के प्रदूषण से भर गया है 1 ऐसे में पशु पंछी कैसे जीवित रह सकते है ? पेड शुद्ध वायु कहां से प्राप्त करें ? आज मनुष्य अपने फेफडों की दीवारों पर विनाश के नारे लिख रहा है 1 परिहार जी यह चिंता बचालो थोडी सी धरती थोडा सा आकाश इस निबंध में व्यक्त हुई है वें लिखते हैं "अखिल ब्रह्मांड में, आकाश में आकाश की छायी निरभ्रता के बीच मानव निर्मित सैंकडो यान, ग्रह,उपग्रह, धुएं की उलटी कर रहे हैं 1 नभ के शुभ्र वस्त्र कालिख से धुआं - धुआं हो जाते है 1 पक्षी सांस कैसे लें ? पेड प्राणवायु कहां से प्राप्त करें ? मजे की बात यह है कि कोई अपराधी को पकड नहीं पा रहा है , क्योंकि प्रत्येक का हाथ एक दूसरे की जेब में डला हुआ है 1 ऐसे समय में जो हाथ स्वतंत्र है, कर्म संस्कारित है , उन हाथों से थोडी सी जमीन और मुठ्ठी भर शांत और नीला आकाश बचाने की आवश्यकता है 1" [3]डॉ परिहार जी ने प्रदूषण की इस चिंता को बडे ही सजगता से अभिव्यक्त किया है 1

भारतीय संस्कृति में नदी को मां के समान महत्वपूर्ण माना गया है 1 हमने नदी को गंगा मैया कहकर मानवी जीवन में उसे अनन्यसाधारण महत्व दिया है 1 नदी मानवी जीवन का स्रोत है 1 ऊर्जा है 1 नदी मानवी जीवन के विकास की गवाह है 1 वह हमारे पुरखों की विरासत की पहचान हैं 1 परंतु आज औद्योगिक विकास के नाम पर नदी के जलों को गंदा किया जा रहा हैं 1 नदी के अस्तित्व पर ही प्रहार किया जा रहा है 1 इस पर परिहार जी चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं "एक वनमानुष आकर नदी जलों में मलमूत्र कर रहा हैं 1 नदी के पवित्र जल में कारखानों का नरक घोला जा रहा है 1 मनुष्य नदी के जलों को बांध रहा है 1 नदी की पवित्र धारा को जल नहीं , रुपया , पैसा समझकर उसे लूटा जा रहा हैं 1 हम सजग रहकर बचा लें झारी भर निर्मल नीर 1

गागर भर पवित्र जल l घुंटभर पानी l" [4]

भारतीय संस्कृति में पेड - पौधों का महत्वपूर्ण स्थान हैं l हमारे उत्सव , पर्व में भी यह पेड चेतना के स्रोत है l पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए पेडों का योगदान महत्वपूर्ण है l एक समय था की पेड के निचे कथा - वार्ता , शिक्षा - दीक्षा , ज्ञान- ध्यान की बातें होती थी l परंतु आज पेडों को काटकर बेचा जा रहा हैं l जंगल तोडे जा रहे है l परिणाम स्वरूप पानी की पुकार हो रही है l नदियों के देश में पानी बिकने लगा है l पेड का महत्व प्रतिपादित करते हुएं डॉ परिहार लिखते हैं...." आदमी पौधों को अपनी आकांक्षाओं की तरह रोपता था और बेटी - बेटे की तरह उन्हें पालता था l पेडों के नीचे पंचायत बैठती थी l पेडों कें नींचे गाँव का सुख - दःख बाटा जाता था l पेडों पर सावन के झुले पडते थे l पेडों के नीचे ज्ञान - ध्यान की बातें होती थी l आज यह सब स्वप्नवत हो गया है l मनुष्य ने अपनी ही विरासत पर स्वार्थांधता की कुल्हाडी चलाकर विनाश की यात्रा पर वह चल पडा है l आज देश में पानी बेचे जाना पर्यावरण असंतुलन का ही परिणाम है l" [5]

प्रकृति और मनुष्य का गहरा संबंध था l लेकिन आज मनुष्य ने अपने लालच के कारण प्रकृति के साथ विध्वंस की पहल शुरू कर दी है l वह प्रकृति से अलग हो गया है l जिसके परिणाम स्वरूप प्रकृति और मनुष्यों का सदियों से होनेवाला गहरा रिश्ता आपदा में आ गया l जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति के जीवन मे खालीपन आ गया पहले मनुष्य समूह से अलग हुआ , फिर बाद में प्रकृति से दूर चला गया l जिसके कारण पर्यावर्णीय असमतोल बढकर प्रदूषण युक्त नाश का युग आरंभ हुआ l इस संदर्भ में परिहार जी लिखते हैं.."आदमी की दृष्टि में फांक पड गई है l प्रकृति से उसके रिश्ते सवालिया हो गए है l अभी तक मनुष्य प्रकृति की अँगुली पकडे हुए था , इसलिए सजीव था l उसके साथ वह हरा - हरा था , नम था l नम्र था l प्रकृति की गोद में मनुष्य मां की ममता का सुख पाता था , पर आज मनुष्य की सोच बदल गई है l उसकी मानसिकता में दरारें पैदा हुई l विध्वंस की पहल शुरु हुई l वह प्रकृति से अलग छिट गया l प्रकृति से दूर जाने के कारण उदासी और विनाश आदमी के पास आ गए l एक प्रदूषण युक्त नाश युग का आरंभ हुआ l मनुष्य जिस शाख पर बैठा था उसे ही उसने अपने हाथों से काट दिया l" [6]डॉ परिहार जी प्रकृति और पर्यावरण में रमनेवाले साहित्यकार हैं l प्रकृति , पर्यावरण पर आनेवाले गहरे संकट के कारण वे चिंताग्रस्त हैं l पुनः प्रकृति की ओट में मनुष्य को ले जाना चाहते हैं l पर्यावरण का समतोल साधने की प्रेरणा देना चाहते हैं l प्रकृति और मानवी रिश्ते को पुनः सजीव बनाकर मानव जीवन में चेतना भर देना चाहते हैं l उनके ललित निबंध साहित्य में पर्यावरण विमर्श पर गहरी आस्था के साथ सशक्त एवं समृध्द अभिव्यक्तिकरण हुआ है l

****

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जयशंकर प्रसाद - कामायनी, चिंता सर्ग,राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. क्र. 33
2. डॉ श्रीराम परिहार - आंच अलाव की, पंकज प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. क्रमांक 29.
3. डॉ श्रीराम परिहार - हंसा कहो पुरातन बात,2006, आलेख प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली पृ. क्रमांक 30.
4. डॉ श्रीराम परिहार - हंसा कहो पुरातन बात ,2006, आलेख प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली पृ. क्रमांक - 31,32 .
5. डॉ श्रीराम परिहार - बजे तो वंशी गुंजे तो शंख ,1999,रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म. प्र.) पृ. क्रमांक 17,18.
6. डॉ श्रीराम परिहार - धूप का अवसाद ,1998 आस्था प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. क्रमांक 96..

कनुप्रिया : विशिष्टाद्वैत की आड़ में

डॉ.आण्टणी पी.एम.

देवगिरी कॉलेज
कोषिकोड -673008
मो.9249258700

हिंदी के एकालाप काव्य जगत में कनुप्रिया कालातीत रचना है l इसकी अंदरूनी भावधारा में विशिष्टाद्वैत दर्शन का संगुंफन अवश्य पाया जा सकता है l आत्मा – परमात्मा का अलग स्वत्व परिलक्षित करते हुए विशेष रूप में इनका उभय मिलन विशिष्टाद्वैत में परिलक्षित है l इसका प्रवर्तक – दार्शनिक रामानुजाचार्य है l कार्य और कारण का अभेद अद्वैत है , भेद द्वैत l विशिष्टाद्वैत तो इन दोनों के भेदाभेद का विशेष साहचर्य है l परम पुरुष केन्द्रित शैवधर्म का सैद्धांतिक आधार इसपर निर्भर है l कनुप्रिया के रचनाकार , धर्मवीर भारती का शोध कार्य सिद्ध साहित्य में था l सिद्ध साहित्य का मूलाधार विशिष्टाद्वैत है l इसलिए भारती जी की रचनाओं में विशिष्टाद्वैत का प्रभाव होना स्वाभाविक भी है l कनुप्रिया में ही इसका सर्वाधिक प्रभाव देखा जा सकता है l चिंतनशील भावुक मानव के विकास परिणाम में अपने भौतिक – आध्यात्मिक , लौकिक-पारलौकिक , सूक्ष्म-स्थूल के भाव मंडल की व्यतिरेकी मान्यताओं का सूक्ष्मतर रेखांकन इस काव्य में हुआ है l इसकी राधा (कनुप्रिया) स्थूल भावनाओं से ओतप्रोत सूक्ष्म का प्रतीक है l कृष्ण (कान्ह) तो सूक्ष्म होते हुए भी राधा के लिए स्थूल प्रतिमान की प्रत्याशी प्रतीत है l राधा का अनुभव स्थूल और मांसल है l उनकी भावुकता सूक्ष्म है जो कालातीत है l यहाँ पर विशिष्टाद्वैत दर्शन का संगुंफन दर्शाया जाता है l

विशिष्टाद्वैत का मूलमंत्र – चित् अचित् विशिष्टतम अद्वितीयम ब्रह्मं l[1] यहाँ विवेकी मानव चित् है , अर्थात् चैतन्यवान है l अचेतन प्रकृति अचित है l इन दोनों का भेदाभेद ही ब्रह्म है l यह भेद विजातीय नहीं है (उदा - जानवरों में हाथी और बकरी) , सजातीय भी नहीं (उदा - सिंधी गाय और वेच्चूर गाय) l लेकिन स्वगतभेद अवश्य है l (उदा – गाय के अवयव) [2] चित – अचित ब्रह्म में ही निर्लिप्त है l सृष्टि के समय ये नानारूप धारण करते हैं l तब भी ये ब्रह्मसापेक्ष है l लेकिन इनका कोई प्रभाव ब्रह्म पर नहीं होता l जैसे प्रजा का दुःख राजा को प्रभावित नहीं है l तब भी ब्रह्म निर्गुण नहीं है l फिर भी वह अवश्य ही दुर्गुण से मुक्त है l सकल सृष्टि में वह सूक्ष्मतर अंतर्यामी बन विराजमान भी है l यही वह कारण ब्रह्म है l कार्य ब्रह्म तो सृष्टि में स्थूलता या साकार बन विराजमान है l अन्तः शरीर – आत्मा – ब्रह्म , इनका विशेष एकक या समीकरण ही विशिष्टाद्वैत है l अथवा सृष्टि रुपी इसका परिणाम अपने ही हितानुसार संभव होता है l

सृष्टि ईश्वर की स्वेच्छा का परिणाम है l इसमें स्वतःपूर्ण सत्ता का गुंजाइश तक नहीं है l इसलिए यह हमारी चिंतन शक्ति , युक्ति – बुद्धि के परे की बात है l महाप्रलय के अवसर में सत्व-रज-तमोगुण संतुलित होकर ब्रह्म में ही निहित रहते हैं l सृष्टि के अवसर पर इनका संतुलन खो जाता है l तब प्रकृति कार्यरत-कर्मठ रहती है l फलतः प्रकृति अग्नि-जल-पृथ्वी के भिन्न अनुपात में संयोजित समेकित हो जाती है l तब भेद अवश्य होता है , फिर भी अभेद है l तत् त्वम में ज़रा भेद अवश्य है , फिर भी अभेद है l यही वस्तुतः विशिष्टाद्वैत का मूल दर्शन है l कर्मक्षेत्र में मानव की पूरी स्वतंत्रता है l कर्म की भलाई – बुराई का वह शिकार भी है l फलतः उपलब्ध दंड-पुरस्कार सुनिश्चित है l पुनर्जन्म के स्तर का यही मापदंड है l यह तर्कबुद्धि में खरा उतरेगा नहीं l मर्कड किशोर न्याय और मार्जार किशोर न्याय यहाँ स्मर्तव्य है l[3] अथवा कौन किसको याम लेता है – यही मूल विषय है l विशिष्टाद्वैत में इसका संत्वलित समीकरण अवश्य परिलक्षित है l'कनुप्रिया' में राधा की बहिरंतर , संपूर्ण , भाव चेतनाओं के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर आवेगों का चित्रण प्राप्त है l अथवा मानव के रागात्मक भावात्मक संबंधों के कतिपय, क्रिया कलापों का आकलन , स्थूल-सूक्ष्म की संपूर्णता में

चित्रित पाता है l राधा अनपढ़ , गंवारू , ग्वाल बालिका है , साथ ही योगमाया भी है l स्थूल , सूक्ष्म की संपूर्णता में चित्रित पाता है l स्थूल - सूक्ष्म का यह तालमेल विशिष्टाद्वैत का विशेष साहचर्य है l राधा पूर्ण समर्पिता है l वह कृष्ण को संपूर्णता की लोभी मानती भी है l साथ के साथ स्वयं वह उस विराट पुरुष शक्ति तथा ऊर्जा का मूल उत्स भी मानती है l भरती जी के भावमंडल की व्याप्ति का यह मिसाल प्रतीत है l

कनुप्रिया का मूल भाव भावाकुल तन्मयता है l अथवा राधा भावातुर प्रतीत है l काव्य का शुभारम्भ – पूर्वराग से होता है l यहाँ राधा जन्मान्तरों से जन्मान्तर तक कान्ह में अनुरक्त और विलीन होने के लिए दृढसंकल्प प्रतीत है l अशोक वृक्ष का फूलना सयानी या त्रतुमति हो जाने का प्रतीक है l वह ऐसे होने की प्रेरणा कृष्ण के स्वर्णिम संगीत मानती है l यह संगीत अशोक वृक्ष का फूलना सयानी या त्रतुमति हो जाने का प्रतीक है । वह ऐसे होने की प्रेरणा कृष्ण के स्वर्णिम संगीत मानती है। यह संगीत वह अपनी ह्रदय वीणा में झंकृत पाती है। फलतः एक सहज तन्मयता वह अनुभव करती है । फिर भी एक निर्लिप्त वीतराग और निश्चलता का वह शिकार होती है। अपने प्रत्यंग की हर गति में यह उसे बंधा महसूस है । यमुना के पानी में अपना वस्त्रहीन प्रतिबिंब को लहर रुपी कसकते आलिंगन में पाकर स्वयं भावविभोर हो जाती है। कृष्ण को वह निर्लिप्त बीतराग मानती हुई भी उसके आलिंगन में उसे बेहोशी या तत्मयता अनुभूत है। विशिष्टाद्वैत की पृथकता एंव तन्मकता का विशेष साहचर्य यहाँ निरूपित है।

मंजरी परिणय में चरम साक्षात्कार के क्षणों में अनुभूत मादक - रसमय तन्मयता और परिणामस्वरूप उत्पन्न नीरवता निस्पंदता की सूक्ष्मतर व्याख्या प्रस्तुत है । सहज मिलन के क्षणों में राधा एक मुग्धा नायिका की मानसिकता - मधुमय अनजाना संशय , आग्रहभरा गौपन , निर्व्याख्या वेदना आदि [4] से अभिभूत पाती है l आम के बौर से क्यारी राधा की माँग भर पाना , चन्दन बाँहों में भर जीने का अदम्य आग्रह आदि स्त्री सुलभ सूक्ष्मतर मानसिकता का बेजोड़ सन्दर्भ है l द्वैत होते हुए भी अद्वैत बन जाने का अदम्य आग्रह , आत्मा का दृढसंकल्प यहाँ सुव्यक्त है l आत्मा रुपी राधा को सदा नए रूप में ढालना परमात्मा रुपी कृष्ण का निरंतर श्रम है l इसके लिए स्वयं राधा अपना अम्लान सौन्दर्य , अचुंबित अधर , अच्छुता जिस्म , सब समर्पित कर चुकी है l फलतः आत्मविस्मृत होकर वह मक्खन के बजाय 'श्याम ले लो , श्याम ले लो' कहती हुई हाट – बाट में नगर-डगर में [5] घूमती है l आत्मा परमात्मा का यह विशेष अभेद-भेद सम्पूर्णतः बाँध कर सम्पूर्णतः छोड़ते वक्त दर्शाया जाता है l कृष्ण को राधा अपना अन्तरंग सखा रक्षक , बंधु , लक्ष्य , आराध्य और गंतव्य तक मानती है l [6] कृष्ण को वह सीमातीत महासागर की मापहीन गहराई भी मानती है l अथवा व्यख्यातीत परमात्मा में विलीन होकर वह स्वयं अकूल महसूस करती है l सांसारिक जीवन के तहत वह छोकरा कृष्ण को अपने आंचल में छुपाकर सुनसान जंगल की मूसलदार वर्षा से बचाकर सुरक्षित स्थान पर ले आती है l तब वह स्वयं कृष्ण की शक्ति मानती है l साथ ही वह विराट कृष्ण की अन्तरंग सखि भी मान लेती है l यह सूक्ष्म साक्षात्कार ही उसे अपने दुरूह संबंधों की धूमानदार पगडंडी प्रतीत है l

सृष्टि - स्थिति-संहार ब्रह्म का ही रुपांतर है । सृष्टि ब्रह्मा की इच्छा हैं । स्थिति आत्मा परमात्मा के अभेद- भेद का तालमेल है । संहार तो संज्ञा - प्रज्ञा की शून्यता है। सृजन में राधा कृष्ण से तन्मय प्राप्त करती है । भारतीजी ने बताया है कि कृष्ण की सभी इच्छाएँ और संकल्प भी मात्र राधा है। उन दोनों की तन्मय-उद्धाम क्रीडा में निरत प्रत्यंग ही सृष्टि में परिव्याप्त है। अथवा निखिल सृष्टि राधा के अंगों का विस्तार है जिस के साथ कृष्ण अपना रागात्मक संबंध जुडा लेता है। राधा - कृष्ण का यह अव्याख्येय रागात्मक तन्मय संबंध - राधा की भाव सत्ता पर निर्भर है। गीत का टूट जाना , पात्र रीत जाना , पाकर खो जाने की व्यथामय तन्मय संबंध - राधा की भाव सत्ता पर निर्भर है। अथवा ये प्रतीतियाँ टूट राधा महसूस करती है। विशिष्टाद्वैत का यह विशेष अनुभव है । अथवा राधा परम साक्षात्कार के लिए , अभेद केलिए , दृढसंकल्प आत्मा है ।वास्तव में कृष्णावतार का लक्ष्य महाभारत युद्ध है। इसलिए उन्हें अपनी लीलाभूमि को छोड़ देना अनिवार्य है l इस लीलाभूमि में ही रह रहने के लिए बाध्य राधा को कृष्ण के साथ के चरम साक्षात्कार के क्षण , कृष्ण के कर्म से अधिक सार्थक और आवेगमय प्रतीत है। नीचे घाटी से ऊपर की शिखरों तक की यात्रा [7] में कृष्ण महान इतिहास पुरुष बन जाते हैं l तन्मयता के रसीले , गहनतम मुहूर्तो की याद में , अपने को भूलकर राधा अनजाने ही कनु का नाम लिखती-मिटाती हैं l [8] इस संदिग्ध – मुहूर्त में वह उदास -निराश होकर पूछना चाहती है – तुम्हारे महान हो जाने में क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है l [9] उसे मालूम नहीं है कि युद्ध भूमि या लीला भूमि अधिक सार्थक है l धर्माधर्म , पाप-पुण्य के रणक्षेत्र की तुलना में निर्व्याज प्रणय के लिए अपना सर्वांग सदा के लिए समर्पित लीला भूमि ही राधा रुपी आत्मा को अधिक सार्थक और संगत अनुभूत है। अपने जीवन की सहजता-रागात्मकता कर्मक्षेत्र से उसे जूझने वाली प्रतीत है l उसे आत्मा को अधिक सार्थक और संगत अनुभूत है। अपने जीवन की सहजता-रागात्मकता कर्मक्षेत्र से उसे जूझने वाली प्रतीत है। आत्मा की सीमा में परिमार्जित यह अलगाव या द्वैत भाव के ये विशिष्ट , बेदनामय विरह क्षण है l पार्थक्य के इन विशेष संदर्भो में भी राधा में असंपृक्तता का एहसास यादों की बारात बन सजीव है l विशिष्टाद्वैत की यह विशेष मानसिकता हैं।

कुलमिलाकर, संक्षेप में कहें तो जीवात्मा का अलग लगन है , अलग संवेदना भी है। यह राधा के चरित्र में परिपक्व पाता भी है l लेकिन विशिष्टाद्वैत की दार्शनिकता के आधार पर यह पृथकता कर्मफल का परिणाम है। आत्मा रुपी अनपढ़ राधा परमात्मा में सदा के लिए विलीन रहना या परमात्मा को अपने ही रागात्मक संबंध के बंधन में सदा के लिए पाना चाहती है l इसलिए वह समस्त प्रकृति को अपने ही अंगों का विस्तार मानती है l मार्जार किशोर न्याय यहाँ प्रस्तुत है l कृष्ण की सृजन शक्ति का मूल उत्स वह अपने को ही मानती है l इसलिए अपना यह संबंध स्थायी बनाए रखने के लिए वह सदा श्रमरत है l यह जीवात्मा का दृष्टिकोण है l परमात्मा की रीति-नीति आत्मा के परे की बात है , दुरूह है l आत्मा के लिए चरम साक्षात्कार संभव भी है l पूर्ण समर्पित , तन्मय,रागात्मक संबंधों के क्षणों में राधा यह अनुभव करती भी है l अन्यत्र अनुपलब्ध उभय विशिष्टाद्वैत का विशेष स्तर है l इसका अतर्क संगुंफन कनुप्रिया में दृष्टव्य है l स्थूल – सूक्ष्म , अभेद-भेद , द्वैत – अद्वैत आदि के विशिष्ट तन्मय समेकिकण अवितर्क रूप में पा जाने के नाते कनुप्रिया कालातीत , निराला काव्य प्रतीत है l सूक्ष्म के प्रति जीवात्मा राधा का तन्मय संघर्ष विशिष्टाद्वैत के दुरूह , पेचीदे संदर्भो का काव्यमय सत्यांकन प्रतीत है l

****

सन्दर्भ :-

1.डॉ.जे. कट्टक्कल अक्वीनाज , शंकर , रामानुज , मध्व दर्शन , नेशनल बूक्सस्टाल कोट्टायम , 1984 पृ. 197
2. वही , पृ. 198
3. वही , पृ.229
4. धर्मवीर भारती , कनुप्रिया , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन , 1997 , पृ.21
5. वही , पृ. 31
6. वही , पृ.38
7. वही , पृ.60
8.वही , पृ.74
9. वही , पृ. 63

कुल जमा बीस: वर्चुअल दुनिया की चकाचौंध में फँसे युवाओं का मार्मिक आख्यान

राजेश चौहान
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
एल० आर० कॉलिज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

डॉ. अर्चना शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
एल० आर० कॉलिज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

इक्कीसवीं सदी तकनीकी और संचार क्रांति की सदी है। सूचना क्रांति के इस विस्फोट ने मनुष्य एवम् समाज को न केवल नए-नए आयामों से जोड़ा है, अपितु उनके जीवन में यांत्रिकता का भी संचार किया है। परिणामस्वरूप एक समय में जहाँ मनुष्य अपने निर्वहन और संचरण हेतु परस्पर एक दूसरे पर निर्भर था, वहीं अब सूचना तकनीकी से जनित विकल्पों का आदी हो गया है। मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति मानवीय संसार में ही हो सकती हैं, न कि यांत्रिक जीवन-शैली में। वह इससे बेखबर होकर वर्चुअल दुनिया का प्राणी बनता जा रहा है। इंटरनेट युग ने आज आधुनिक मनुष्य को ऐसे अनेक प्लेटफार्म उपलब्ध करा दिए हैं कि वह उन्हीं में मदमस्त होकर वास्तविकता से दूर होता जा रहा है। सोशल मीडिया की यह आभासी दुनिया आज मनुष्य एवम् समाज को बहुत तेजी से अपने आगोश में ले रही है। आभासी दुनिया में जी रहे मनुष्य को यह क्षणिक अनुभूतियाँ ही उसे अपना तत्कालीन सुख प्रतीत होती हैं मगर सत्य इसके बिल्कुल विपरीत है। जब तक वह यह सच जान पाता हैं तब उसके पास सिवाय पश्चाताप के कोई और विकल्प नहीं बचता। रजनी गुप्त के उपन्यास 'कुल जमा बीस' का अंतर्लोक सोशल नेटवर्किंग साइट्स के इसी आभासी संसार में खोए युवाओं के जीवन दर्शन से मिलकर बना है। उपन्यास में आधुनिक युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र आशु और उसके अन्य दोस्त इंटरनेट की इसी आभासी दुनिया में विचरण करने वाले मदमस्त युवा हैं, जिनकी समूची दुनिया इन्हीं सोशल साइट्स पर टिकी हुई है। ये लोग जिस भ्रम को सत्य का अमली जामा पहनाए हुए हैं, उसका सच बहुत शीघ्र ही इनके समक्ष आ जाता है लेकिन तब इनके पास सिवाए अफसोस के कुछ नहीं बचता। उपन्यासकार रजनी गुप्त ने अपने उपन्यास 'कुल जमा बीस' में सोशल साइट्स के भंवर में फँसे ऐसे ही युवाओं की दिशा हीनता को परत-दर-परत उद्घाटित किया है तथा उसमें बहुत हद तक सफल भी हुई है।

'कुल जमा बीस' रजनी गुप्त एक पठनीय उपन्यास है तथा अपने नए विषय के कारण एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। रजनी गुप्त मूलत: आधुनिक जीवन बोध की सिद्धहस्त रचनाकार हैं इसलिए उनके लेखन का दायरा आधुनिक मानव जीवन-शैली और उसके निहितार्थों के इर्द-गिर्द बुना गया है। उनका यह उपन्यास उत्तर-आधुनिक समाज में आए इन्हीं बदलावों की गहरी छानबीन करता है। इन्हीं बदलावों पर प्रकाश डालते हुए कथाकार राकेश कुमार सिंह उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं- "आभासी (वर्चुअल) दुनिया के दलदल में तिल-तिल डूबते जा रहे किशोरों के जीवन को वहां पहुँचकर दर्ज किया गया है जहां बूढ़े पुराने मूल्य खंडित हो रहे हैं। पुराने प्रतिमान ढह रहे हैं, रिश्तों के मयार बदल रहे हैं और कपड़े बदलने की भाँति बदल रहे है यौन साथी। मौज-मस्ती और इंटरनेट के संजाल में गर्क हो रही हैं वर्जनाएं। भौतिकतावादी हो रहे भारतीय समाज में देह, भोग और आत्मतुष्टि के पाटों में पिस रहा है पीर परायी अनुभव करने का चलन।"[1]

सूचना क्रांति के युग में मानव जीवन में आए बदलावों और वर्चुअल दुनिया के भंवर में फँसी युवा पीढ़ी के जीवन के आंतरिक पहलुओं में झाँकता यह उपन्यास आधुनिकता बनाम वास्तविकता के बीच महीन तन्तुओं का अनावरण करता हैं, जिसमें आधुनिक युवा पीढ़ी की संस्कार हीनता, दिशा हीनता तथा मूल्य विघटन की गहरी पड़ताल की गई है।

लेखिका ने उपन्यास के कथानक को दो कथाओं के बीच जोड़ा है। पहली कथा में प्रथम पीढ़ी के डॉ० अनिल और रोजी की कहानी को बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में दिखा कर परिवार की जटिल गुत्थियों में आ रही जकड़न के बीच टूटते एवम् बिखरते संबंधों के साथ देखा-परखा गया है, तो वहीं उसी के समांतर खड़ी हुई दूसरी पीढ़ी की संतानों विशेषकर किशोरों के जीवन में व्याप्त दिशाहीनता को रेखांकित किया गया है।

उपन्यास का आरंभ अनिल कुमार और रोजी के प्रेम प्रसंगों से होता है। गांव के साधारण से परिवार का युवा अनिल उर्फ राजू शहर में आकर जिस मेडिकल कॉलेज में अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई करता है तत्पश्चात् डॉक्टर भी बनता है, वह वही पर कार्यरत रोजी की तरफ आकर्षित हो जाता है। रोजी उपन्यास में अनेक बॉयफ्रेंड से दोस्ती रखकर जीवन को गति देनी वाली आधुनिक युवती है परन्तु अनिल का रोजी के प्रति सच्चा प्रेम और आकर्षण उसकी सबसे बड़ी कमजोरी बन जाता है, जिसका फायदा रोजी और उसका परिवार उठाता है। वह स्वयं इस संबंध से बाहर निकलना चाहता है मगर निकल नहीं पाता है। अंततः बेमन से उसे रोजी के बहकावे और उसके परिवार के दबाव में आकर रोजी से विवाह करना पड़ता है। डॉ० अनिल का रोजी से प्रेम करने के बावजूद भी यह शादी-शादी कम समझौता ज्यादा बनकर रह जाती है इसलिए पुत्र आशु और पुत्री कुन्नू के जन्म के बावजूद भी उन दोनों के बीच मतभेद समाप्त नहीं होता है और इसी अंतर्कलह में डॉ० अनिल की कार दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है। डॉ० अनिल के असमय चले जाने का सबसे ज्यादा प्रभाव उनके बच्चों पर पड़ता है।

आधुनिक जीवन शैली में जीवन यापन करने वाली रोजी पति के मरणोपरांत बच्चों में रुचि न लेकर अपने स्वार्थ में संलिप्त रहती है तथा अपने स्वार्थ के चलते ही वह दूसरा विवाह करने का मन बनाती है। पिता के विछोह से टूटा आशु नए पिता को किसी भी रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं है। वह अपने पिता का स्थान किसी को नहीं देना चाहता वहीं दूसरी ओर स्वार्थ में डूबी माँ अपनी स्वतंत्रता के कारण आशु के भविष्य की चिंता का ढोंग कर उसे देहरादून हॉस्टल भेज देती है तत्पश्चात् दूसरा विवाह रचाती है।

आशु का इन सोशल नेटवर्किंग साईट्स से पहली बार वास्ता तब पड़ता है, जब वह पढ़ने के लिए देहरादून हॉस्टल आता है, यहाँ अपने ही हम उम्र किशोरों द्वारा उसे इन सोशल साइट्स की लोक लुभावन दुनिया की सैर सबसे पहले कराई जाती है। इस सम्बंध में पवन का संवाद इस प्रकार है- "ऐ आशु, कहाँ खो गए? चल, आज तुझे कुछ नयी-नयी साइटें दिखानी हैं। तू भी याद रखेगा मुझे?... कितनी खूबसूरत होती हैं लैपटॉप की दुनिया? कितनी रंगबिरंगी दुनिया नेट की? जानता भी है कुछ?।"[2] दोस्तों द्वारा दिखाई गई यह आभासी दुनिया आशु को मन: स्तर पर प्रभावित करती है, जिसका वर्णन करती हुई लेखिका कहती है- "पोर्न की रंगीन साइटें और लड़के-लड़कियों की वे अश्लील तस्वीरें देखकर हैरान था वो, विचलित था। परेशान था वो। आवाक था वो। स्तब्ध था। और इस तरीके से जाने-अनजाने वह एक ऐसी तिलस्मी दुनिया में घुसता जा रहा था, जहां एक बार घुसना तो आसान है, मगर वहां से बाहर कोई नहीं निकल पाता, चाहकर भी।"[3] दोस्तों की रंगत का असर आशु पर इस कदर हावी होने लगा था कि वह दिन-रात इस मायावी दुनिया में डूबा रहता अब यह दुनिया ही उसके लिए सब कुछ थी स्वयं लेखिका के शब्दों में- "अमीषा के संसर्ग में डूबे आशु की दुनिया धीरे-धीरे बदलने लगी। सुबह 6 बजे से देर रात तक वक्त-बेवक्त उसे हरदम अपना मोबाइल बजता सुनाई देता। किसी भी समय कभी भी वे अपना सब कुछ शेयर करते रहते। एक से बढ़कर एक खूबसूरत और मनभावन लफ्जों को सजा-संवाकर शेरो-शायरी की शक्ल में ढाल दिया जाता और एस० एम० एस० की आवाजाही से दोनों खूब खुश रहते। वे जितनी बार भी मिलते, समय कम पड़ जाता। कई बार अमीषा तमाम खतरों की तरह आशु का ध्यान खींचती, लेकिन किसी चतुर सेल्समैन की तरह वह उसे अपने आगोश में खींच लेता, 'डॉन्ट वरी डिअर', मैं हूँ न? ज्यादा से ज्यादा क्या होगा? जो भी होगा, देखा जाएगा। मैं तुम्हारे साथ हूँ हर पल, बस यही है सच इस पल का सच और हमारे बीच का भी पूरा सच।"[4] भारतीय समाज में प्रेम और दैहिक संबंधों को स्त्री-पुरुष दोनों की पूर्णता: का पर्याय माना गया है, जबकि पाश्चात्य जीवन-दर्शन इसके बिल्कुल विपरीत है यहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों को दैहिक सुख की प्राप्ति भर माना गया है। आधुनिक भारतीय समाज भी पाश्चात्य सभ्यता की स्वच्छंदता से अनुप्रेरित है। आधुनिक युवा पीढ़ियाँ इसी जीवन दर्शन का अनुगमन कर रही हैं इसलिए उनके जीवन में प्रेम की आलौकिकता और स्थायीकरण की कोई जगह नहीं बची हैं। उनके लिए प्रेम का मतलब दैहिक तृप्ति तक सिमट कर रह गया है। उपन्यासकार रजनी गुप्त ने उपन्यास के पात्र आशु और उसके दोस्तों के प्रेम प्रसंगों में दैहिक सम्बन्धों के उन्मुक्त स्वरूप का चित्रण करके इसी ओर ध्यान आकर्षित किया है। उपन्यास में अजीत की प्रेमिका अमीषा के द्वारा एक के बाद एक बॉयफ्रेंड बदलने, मोबाइल फोन पर घंटों चिपके रहने तथा अपनी अर्धनग्न तस्वीरें सोशल

नेटवर्किंग साइट्स पर शेयर करने के प्रकरण आते हैं यथा- "उसने दावा किया था कि उसके कुछ दोस्तों ने अपनी गर्लफ्रेंड के एम० एम० एस० तैयार किए, फिर आपस में शेयर करके इंटरनेट पर डाल दिया। यही सब देख-देख कर वे लड़कियों को लेकर कामुक कल्पनाएं करते रहते और फिर कंप्यूटर पर लोड करके पोर्नोग्राफिक क्लिप्स और तस्वीरों की वीडियों बनाकर मार्केट में ऊंचे दामों पर बेच देते। पॉकेट पोर्न तेज इंटरनेट स्पीड के माध्यम से न जाने क्या-क्या करते होंगे, कैसे-कैसे इस्तेमाल करने के तरीके। ओफ्फो! क्या से क्या हो गया उसके साथ?"[5] अमीषा जिन सोशल मीडिया के माध्यमों के द्वारा मौज-मस्ती की दुनिया में खोई थी, अंततः उन्हीं माध्यमों के द्वारा छली जाती है। उपन्यासकार ने यह हाल केवल अमीषा का ही नहीं दर्शाया है बल्कि उपन्यास के अन्य युवा पात्र फिर वह चाहे लड़का हो या लड़की सभी को इन्हीं माध्यमों के पीछे पागल होते एवम् रिक्त होते दिखाया है।उपन्यास का पात्र आशु भी इसी लत का शिकार है वह सोशल मीडिया की अलग-अलग साइट्स पर अपने लिए लड़कियां तलाशता है। उसकी इन साइट्स पर कई लड़कियों से दोस्ती भी होती है मगर वह हर किसी लड़की से शीघ्र -अतिशीघ्र संसर्ग मिलन चाहता है। आशु की इस वर्चुअल दुनिया में रिनी, मिनी, नितिका, अमीषा, आयुषि आदि लड़कियां आती हैं लेकिन किसी के साथ भी वह अपने संबंधों को स्थायी रूप नहीं दे पाता है। उसकी नजर में नेट पर मिलने वाली प्रत्येक लड़की मात्र उसके मनोरंजन का साधन है, जिसको लेखिका ने आशु के माध्यम से इस प्रकार दृष्टिगत किया है- "वैसे भी दोस्ती करने के लिए नेट का इस्तेमाल करने में क्या बुराई है? कितना थ्रिल, कितना रोमांच और कितनी मजेदार दुनिया है नेट की? कल निखिल बता रहा था 'शादी डॉट कॉम' पर अपना बायोडाटा डाल दो, लाइन लग जाएगी लड़कियों की।...फिर लेते है मज़ा इस दुनिया का? आखिर बुराई क्या है? सचमुच बड़े रंगीन नजारे देखने को मिलते हैं इस नेटनुमा मायाजाल में।"[6] वस्तुतः इंटरनेट की यह आभासी दुनिया एक ऐसा व्यूह है जिसमें एक बार व्यक्ति फँस तो जाता है परंतु उसके लिए इस स्वप्नमयी दुनिया से निकलना बहुत मुश्किल हो जाता है। यहाँ हर व्यक्ति स्वयं को विजेता मानने के दंभ में जीवन जीता है। मगर सच में वह एक हारा और हताश व्यक्ति होता है, जिसके पास सब कुछ होकर भी कुछ भी नहीं होता।

जिस तरह उपन्यास का पात्र आशु इंटरनेट पर एक के बाद एक गर्लफ्रेंड बनाकर खुश होता रहता है उसी प्रकार उसकी ये गर्लफ्रेंडस भी उसी की तरह एक साथ कई-कई लड़कों से दोस्ती रखती हैं। आशु की यह हकीकत रिनी को उसके दोस्त आलोक का फोन सुनने पर पता चलती है। इस सन्दर्भ में वह अपनी और अपने दोस्त आशु दोनों के जीवन की निरर्थकता को इंगित करते हुए कहती है- "उसकी टूटती-बिखरती बातों की लड़ियों को जोड़ते हुए वो इस नतीजे पर पहुंची कि तमाम लड़कों को खुद नहीं पता कि अपनी जिंदगी में क्या खो रहे है वो। इतना बेशकीमती समय किस कदर सर्र-सर्र छूटता जा रहा है, तो क्या इसी तरह गुजरता जाएगा वक्त और वह अकेली पड़ी-पड़ी एक दिन बूढ़ी हो जाएगी मैडम कुसुम की तरह। सोचते हुए उसके दिमाग में दिनभर की घटनाएं एक-एक करके याद आती रहीं। आखिर इतना जटिल जीवन क्यों जीते हैं ये लोग? क्यूँ ये सब अपना जीवन यूं ही जाया कर रहे हैं। अब इसी को लो, इतने महीनों की दोस्ती और प्यार के बावजूद भी है अभी तक किसी फैसले पर क्यों नहीं पहुँच पाया?।"[7]

उपन्यास के अन्य पात्रों का भी यही हाल है। अधिकांशतः युवा पात्र इन आपसी संबंधों की विश्वसनीयता और स्थायीयता प्रदान करने से कतराते रहते हैं। वे लिव इन में रहकर एक-दूसरे का साथ तो चाहते हैं मगर शादी की जवाबदेही से कतराते रहते हैं। रिनी द्वारा आशु से बार-बार शादी के लिए कहने पर भी आशु उसके लिए तैयार नहीं होता और हर बार की तरह वह फिर से अकेला हो जाता है- "रिनी, हर बात को शादी से जोड़कर क्यों देखने लगती है तू? शादी को लेकर आखिर क्यों तेरे पेट में इतना दर्द होने लगता है, बोल न? यूँ ही सब ठीक-ठाक तो चल रहा है न, फिर काहे को शादी जैसा सिरदर्द मोल लेने की ठान ली है तूने?...अच्छा, तू खुद ही सोच, हम ऐसे ही अच्छा-भला जीवन गुजार तो रहे हैं, फिर खामख्वाह के बंधनों को क्यों ओढ़ें? ऐ सिली गर्ल, प्लीज मुझे समझने की कोशिश कर।"[8] यहाँ उपन्यासकार रजनी गुप्त ने इंटरनेट की आभासी दुनिया में खोई ऐसी ही दिशाहीन पीढ़ी का चित्रण किया है जिसके लिए प्रेम-संबंध सिर्फ दैहिक सुख की प्राप्ति तक ही सिमट कर रह गए हैं।सोशल मीडिया के दिल फेंक आशिक आशु जिसकी खुद इंटरनेट पर अनेक लड़कियों से दोस्ती होती है वह भी अपनी होने वाली पत्नी जिससे उसकी शादी की बात चलती है उस लड़की के वर्चुअल रूप को सहन नहीं कर पाता है और उसे जैसे ही पता चलता है कि उसकी कई लड़कों से दोस्ती थी तो वह उसके विषय में अनाप-शनाप कयास लगाने लगता है। वह अपनी दादी से इस विषय में कहता भी है और अंततः इस विवाह से इंकार कर देता है तत्पश्चात सोशल साइट्स पर इस्तेमाल करो और फेंक दो के आधार पर पल भर में बनती और बिगड़ती दोस्ती पर विचार विमर्श करता हुआ अपनी मनो: स्थिति में खो जाता है- "अनायास उसे पिछले दो सालों से नेट पर हुई दोस्तियां याद आनी लगीं-सबकी फुलझड़ी जैसी चमकदार बातें, जो अगले कुछ महीनों में एक-एक करके फुस्स होने लगतीं। सबके सब फोन पर खूब मीठी-मीठी रसभरी बातें करेंगे, महीनों। लेखिका ने इस सन्दर्भ में दिखाना चाहा है कि दिन-रात वर्चुअल दुनिया में रमे रहने वाले आशु के लिए भी इस आभासी दुनिया का साथ असहनीय है। यहाँ उपन्यासकार रजनी गुप्त ने आधुनिक युवा पीढ़ी के उन्मुक्त भोग विलास और यथार्थ के बीच हुए अंतर्द्वंद्व का भी चित्रण किया है।

सोशल मीडिया और इंटरनेट की दुनिया का सबसे घातक प्रभाव शिक्षा पर पड़ रहा है। इंटरनेट की मायावी दुनिया में भटक रहें किशोरों को ऑनलाइन गेम्स, फेस बुक, ओरकुट, शादी डॉट कॉम, ब्लू फिल्में, सेक्स एवम् हिंसा को दर्शाती ढेरों अश्लील सामग्री तथा यू ट्यूब पर आधारित अन्य सामग्री आदि की लत ने किस प्रकार पठन-पाठन से दूर कर दिया है और वे पढ़ने के समय को इन माध्यमों पर बर्बाद कर रहे हैं उपन्यास में उपन्यासकार ने इन स्थितियों की घातकता का वर्णन उपन्यास के पात्र निखिल के माध्यम से इस प्रसंग में व्यक्त किया है माँ द्वारा डांटे जाने पर- "उसने एक गुपचुप रास्ता निकाला। वह रात 2 बजे से उठकर सुबह 5 बजे तक फेसबुक से चिपका रहता है। धीरे-धीरे कंप्यूटर की दुनिया उस पर हावी होने लगी थी। टीएनए, बीएच-1 और ऑनलाइन गेमिंग साइट नारुतो सीरीज तक पहुँच रखने वाला निखिल डीप प्रोट सकूरा पर क्लिक कर लेता। फ्री इंटरएक्टिव पोर्न साइट पर पहुँच वे दोनों सकूरा को अपने संग प्रेम करते देखते रहते। इसी तरह रोमांच संग रोमांस की भरी-पूरी दुनिया में मस्ती करते घंटों बिता देते हैं।"[1]

इन आपराधिक गतिविधियों के द्वारा बहुत कम समय में अधिक धन की प्राप्ति होने से इनमें एक और विकार जन्म ले लेता है और ये लोग नशाखोरी की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं- "क्वालिस से उतरता, शराब के नशे में झमता हर्षित अपने दो साथियों के साथ वहाँ आया और वे आपस में बतियाने लगे।"[12] इस तरह जिस वर्चुअल दुनिया को ये लोग अपने आनंदोत्सव का मुख्य जरिया मानते हैं अंततः वही इनके हाथों से छिटक कर गिर जाता है। उपन्यास में इस तरह सोशल मीडिया के चुंगल में फंसें युवाओं की दिशाहीन जिंदगियों का चित्रण; उनके जीवन को इस नरक की गर्त से निकालने का सार्थक अनुक्रम है। जिसे उपन्यासकार रजनी गुप्त ने पूरी शिद्दत से प्रस्तुत किया हैं। उपन्यास के इसी वैशिष्ट्य को अनंत विजय ने इस रूप में रेखांकित किया है- "कुल मिलाकर रजनी गुप्त ने एक ऐसे विषय को चुना है जिस पर हिन्दी लेखकों का ध्यान कम जा रहा है वह तो यथार्थ की जमीन तोड़ने में लगे हैं। जमाने की रफ्तार के साथ रजनी जी ने विषय को पकड़ा है और उम्मीद की जानी चाहिए कि पाठकों को रजनी गुप्त का यह उपन्यास काफी पसंद आएगा।"[13] अस्तु 'कुल जमा बीस' बीस की उम्र के आस-पास के युवाओं के बनने-बिगड़ने और बहकने की कथा एक साथ प्रस्तुत करता है।आधुनिक युवा पीढ़ियों का जीवन, समाज और आपसी संबंधों के प्रति बदली यह मानसिकता; पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का ही प्रेदय है। उपन्यासकार रजनी गुप्त ने उपन्यास में संचार युग में डूबी युवा पीढ़ी के जीवन की आंतरिक तहों का अनावरण किया है, जिसकी हर एक परत सिर्फ और सिर्फ भ्रम और आभास से मिलकर बनी हैं। सत्य और स्थायी इसमें कुछ भी नहीं हैं। आज जब देश-भर में इंटरनेट क्रांति की जय-जयकार है, ऐसे समय में इसके नकारात्मक स्वरूप पर न केवल प्रश्नचिन्ह लगाना अपितु इसकी संपूर्ण भयावहता को पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत करना उपन्यासकार की साहित्यिक प्रतिबद्धता को दर्शाता है। संभवतः इस विषय को इतनी स्पष्टता से साहित्य धरातल पर उकेरने वाली, रजनी जी पहले ही साहित्यकार है।

****

सन्दर्भ सूची:-

1. रजनी गुप्त, कुल जमा बीस, सामयिक प्रकाशन, आवरण पृष्ठ
2. रजनी गुप्त, कुल जमा बीस, पृ० सं० 101
3. वही, पृ० सं० 101
4. वही, पृ० सं० 152
5. वही, पृ० सं० 168-169
6. वही, पृ० सं० 179
7. वही, पृ० सं० 192
8. वही, पृ० सं० 190
9. वही, पृ० सं० 197
10. वही, पृ० सं० 159-160
11. वही, पृ० सं० 174-175
12. वही, पृ० सं० 174
13. अनंत विजय, बीस की कहानी, http://haahaakar.blogs pot.com 29 अगस्त 2013 से उद्धृत

विनय पत्रिका में उदात्त तत्व

डॉ.आशा बिष्ट
गेस्ट प्रवक्ता हिन्दी विभाग
बी.जी.आर. परिसर पौड़ी एच.एन.बी.ग.वि.वि. श्रीनगर गढ़वाल

विनय पत्रिका तुलसी के आत्मनिवेदन परक गीतों और स्त्रोतों का संग्रह है। यह ब्रज भाषा में रचित है। तुलसी की प्रमुख रचनाओं में विनय पत्रिका का भी महत्वपूर्ण स्थान है। विनय पत्रिका तुलसी के मानस से प्रवाहित वह पावन सुरसरि है। विनयपत्रिका में 279 गेय पद है। जो विभिन्न शास्त्रीय रागरागनियों में निबद्ध है। तुलसी के हृदय स्थल, कोमल भाव विनयपत्रिका के रूप में मुखरित हो उठे है। यह गीतिकाव्य है। इसी रचना को तुलसी ने सम्यक ग्रन्थ के रूप में की है। उनका हृदय तत्कालीन राजनीति, समाज, धर्म तथा संस्कृति और साहित्य में फैली भीषण दुर्व्यवस्था और उच्छृखलता से जब व्यवस्थित हो उठा तब कलयुग का अभिशाप समझकर एक पुत्री में उस व्यवस्था को तुलसी ने राजा राम के दरवार में उपस्थित होकर व्यक्त किया है।1 विनयपत्रिका जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि विशद आवेदन पत्र है, जो सोपान-क्रम से प्रेषित किया गया है। तथा जिसका आत्मनिवेदन इतना प्रभावी एवं उत्कृष्ट है कि वह माधिकारी (राम) द्वारा सहर्ष स्वीकृत किया गया है - संसार साहित्य में ऐसा महान आवेदन पत्र कहीं और कभी नहीं लिखा गया है।[2]

तुलसी की विनयपित्रका में विनय भक्ति की भावना को देखा गया है। विनय की सातों भूमिकाएं भी इसमें हमें स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है-दैन्य, मान मर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य, और विभारणा। तुलसी की विनयपत्रिका में प्रेमरूपा भक्ति के छः वर्गों का भी उल्लेख है। कृपा सज्जन, धर्म, राम से रागात्मक सम्बन्ध, विषय, वैराग्य, ज्ञान और नवधा भक्ति। क्योकि संत्सग के बिना विवके नहीं आता है और विवके के बिना इस संसार में मुक्ति असम्भव है।[3]

विनयपत्रिका' पत्रात्मक शैली में लिखित गीतात्मक प्रबन्ध काव्य है। पत्र लिखने की प्राचीन भारतीय पद्वति है। विनय पत्रिका के प्रारम्भ में ही, गणेश, सूर्य, शिव, देवी, गंगा, यमुना, काली, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन और सीता की स्तुतियां की गयी है। आगे चलकर बिन्दु माधव भगवान विष्णु की भी स्तुति की गयी है। तुलसी स्मार्त वैष्णव थे और राम के परम भक्त भी। स्मार्त वैष्णवो में वर्णाश्रम धर्मनिष्ठा और पंचदेव की पूजा को प्रधानता दी जाती है। तुलसी ने भी विनयपत्रिका के प्रारम्भ में ही गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा, तथा विष्णु पंचदेवों की स्तुति करके अपनी साम्प्रदायिक निष्ठा का परिचय दिया है।[4] - तुलसी ने सर्वप्रथम श्री गणेश नमः लिखकर पत्र का आरम्भ किया जाता है। श्री गणेश का अर्थ आरम्भ करना, शुरू करना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। प्रारम्भ देखिए, श्री गणेश स्तुति से किया है -

गाइए गनपति गबंदना। संकर-सुवन भवानी-नंदन।
सिद्ध सदन, जगवंदन, विनायक, कृपासि सिंधु, सुंदर सबलायक।।
मोदक प्रिय, मुदमंगल दाता। विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता।
मांगत तुलसीदास कर जोरे। बसहि राम सियमानव मोरा।।

तुलसी उनसे (गणेश) हाथ जोड़कर प्रार्थना बस इस कार्य के लिए कर रहे हैं कि राम-सिया (सीता) उनके मानस में सदा निवास करे। तुलसी विनय की कला में निष्णात थे। वे प्रभु राम की वन्दना के पूर्ण उनकी सभी दरवारियों की वंदना कर लेना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि यदि प्रभु खुश भी हो जाते और दरवारी नाखुश रहते तो सबके विरोध पर उनका आवेदन निष्फल हो जाता। इसलिए बड़ी चातुरी और सोच समझ से भक्त तुलसी ने इन सबकी स्तुतियां एवं प्रार्थनाए की, किन्तु सबसे एक ही याचना है उन्हें राम भक्ति मिल जा,। सूर्यदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं-

दीन-दयालु दिवाकर देवा। कर मुनि, मनुज सुरासुर सेवा।
हिम-तम-करि-केहरि करमाली। दहन दोष-दुःख दुरित रूजाली।
कोक-कोकनद लोक प्रकासी। तेज-प्रताप-रूप-रस रासी।
सारथि-पुखु दिव्यरथ गामी। हरिशंकर विधि मूरति स्वामी।
वेद पुरान प्रगट जस जाणे तुलसी राम भगति बर मांगे।

शिव की प्रार्थना में भी देखिए, तुलसी ने राम भक्ति मांगी है-
दीन दयालु भगत आरति हर, सब प्रकार समरथ भगवान,
कालकूअ-जूर जरत सुरासुर, निज पनलागि किये विष पान,,
सेवत सुलभ उदार कलपतरू, पारवती पति परम सुजान,
देहु काम रिपु राम चरन रति, तुलसीदास कैह कृपा निधान,,

इस प्रकार तुलसी ने राम के दरवारी सभी देवी देवताओं की स्तुति कर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सबको एक जुट होकर राम से उन पर कृपा करने के लिए कहा है।5 गंगा की स्तुति कर तुलसी ने प्रकृति चित्रण कर उदान्त का एक सुन्दर निदर्शन किया है -

तुलसी तब तीर-तीरे, सुमिरत रघुवंश वीर,
विचरत मति देहि मोहि महिष कालिंका।[6]

काव्य में उदात्त प्रकृति चित्रण है। जहां विशिष्टतम स्तरीय वर्णन अपनी लोकोत्तर गौरव-गरिमा अथवा लौकिक असमान्यता से विस्मयाविष्ट कर लें। ऐसा प्रकृति चित्रण संसार साहित्य में बहुत अधिक नहीं हुआ है। लेकिन तुलसी ने विनयपत्रिका में कुछ स्थलों पर उदात्त प्रकृति चित्रण में विश्व स्तरीय सफलता प्राप्त की है। दोनों सुरम्य फूलों पर हरित-गम्भीर वाली (बेत) के बन प्रसरित है। जिनके मध्य विश्व सुखद विशल उज्जवल धारा विद्यमान है- मानो नील पर्वत पर सहस्त्र फंण शेषनाग शयन कर रहे हैं - गंगा स्तुति का यह वर्णन उदान्त प्रकृति चित्रण का सुन्दर वर्णन है।[7]

इन स्तुतियों में सम्बन्धित देवताओं के प्रति महत्ता और दीन दयालुता के गीत गाये है। प्रत्येक स्तुति के अन्त में प्रार्थना की गई है कि वह देवता तुलसी को भगवान राम के चरणों में रति का वरदान दें। इन देवताओं में तुलसी का सहज प्रेम दिखलाई पड़ता है। देवताओं का वर्णन कर आलम्बन और उद्दीपन रूप में भगवद्रित का विभाव प़क्ष खड़ा किया है, इस प्रकार इन स्तुतियों का उद्देश्य भी राम रति की प्राप्ति करना है, वे सब देव रतियां, दास्य रामरति का अंग बनकर आयी और उसका पोषण करती है। अतः सभी देवरतियों में रामरति गुणी भूव व्यंग्य' के रूप में आयी हैं। अतः इन सभी स्तुतियों में भक्ति रस का ही परिपाक हुआ है। रामरति व्यंग्य तो रहती है किन्तु भावकोटी से आगे नहीं बढ़ पाती है। इस प्रकार दास्य रति की भावधारा में जो विविध प्रकार की मनोरम उर्मियां विनयपत्रिका में उच्छलित होती हैं। पाठक उसमें रसमग्न हो जाता है। विनयपत्रिका का मुख्य प्रतिपाद्य दास्य रति होने के कारण उपर्युक्त सभी प्रकार की भाव लहरियां दास्य भक्ति के अन्तर्गत ही आती है।[8]

विनयपत्रिका में कई एक ऐसे पद है। जिसकी अनुभूति ज्ञान, विवेक एवं तत्व प्रदान है। शील, दया और उदारता का भी पूरा आख्यान है। भक्ति का अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें तुलसी की जीव-जगत ब्रह्म सम्बन्धी धारणाएं बहुत स्पष्ट हो गयी हैं। इसमें साधुमत पर अधिक ध्यान दिया गया है। लोकमत पर वैसा नहीं जैसा रामचरितमानस में, वे केवल रामभक्ति को ऊँचा तथा रामनाम का स्मरण के लिए सर्वोपरि स्वीकार करते हैं-

भरसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम, कल्पतरू कलि कल्याण करो।
क्रम उपासन वेद मत सो सब भाँति खरो।
मेहि तो सावन के अंधहि ज्यो सूझत रंग हरो।

तुलसी भारतीय परम्परा के अनुसार बहुत बड़े आशावादी थे। उन्होनें अपने मानस लोक में उक्तीचता के अंतर यह मधुर कल्पना कर रही है कि प्रार्थना

करके भगवान ने सब प्रकार के दोष दूर कर दिए -
विनती सुनी सानंद हेरि हंसि करूनाबारि भूमि भिजई है,
रामराज भयो काज सुमन सुभ राजा राम जग विजई है,,[9]

विनयपत्रिका की कुछ विशेषताएं है जो इस रचना को श्रेष्टतम रचना सिद्ध कर देते है। इसमें नारी के प्रति युगा ग्रह या शुद्र के प्रति युगयथार्थ की सीमाओं के दर्शन नहीं होते यह सर्वभौम भक्ति का प्रशांत-गहन उद्गार है। विनयपत्रिका

अभिव्यक्ति की दृष्टि से विश्व की एक महानतम कृति है। जिसमें संस्कृत, संस्कृतनिष्ठ-ब्रजभाषा एवं यत्र-तत्र भोजपुरी की रंगत तो मिलती है, जिसका प्रभाव भी अप्रतिहत एवं अप्रतिम हैं - छंदावली हो या पदावली सर्वत्र प्रौढतम अभिव्यक्ति के दर्शन होते है। उन्होनें योगियों ,यतियों ,ज्ञानियों, ध्वनियों, विद्वानों एवं काव्य मर्मज्ञों के लिए लिखी थी। यदि रामचरितमानस तुलसी का श्रेष्ठ ग्रन्थ है तो विनयपत्रिका गहनतम।[10]

तुलसी अपने वर्णनों में पाठक के लक्ष्य पर पूर्ण अधिकार कर लेते है। यह अधिकार इतना है कि जब कही तुलसी एक भाव की व्यंजना करते है तो पाठक का दृश्य उसमें लीन हो जाता है, आज के युग में बहुत बदलाव आ गया है जीवन मूल्य भी बदल रहे है फिर भी तुलसी के युग की अनेक मान्यताओं के बदल जाने पर भी तुलसी ने जो भी रचनाएं लिखी है। जिसमें विनयपत्रिका तुलसी के उदान्त दृष्टिकोण से आज भी हम प्रभावित हुये बिना नहीं रहते है उन्होनें विभिन्न भावों और दृष्यों का चरमोत्कर्ष का वर्णन विनयपत्रिका में किया है जो हमारे जीवन के लिए आर्दश है तुलसी ने उदान्त प्रतिभा की शक्ति से विनय की भक्ति की है विनय पत्रिका में पत्रिका शब्द हम एक प्रार्थना पत्र से लेते है इसमें कलयुग के अत्याचारों से त्रस्त तुलसी ने दःखभरी गाथा को राम जी के सामने प्रस्तुत की है रोते गिडगिड़ाते हुए राम के गुण गाते हुए अपनी मुक्ति की अर्जी विभिन्न पात्रो की जानकारी देते हुए, राम जी से विनय कर रहें है। यह अर्जी (प्रार्थना पत्र) पदों में दी गई है।

विनयपत्रिका गोस्वामी जी की सबसे प्रौढ़तम रचना मानी जाती है। आरम्भ में देवस्तुति की है। वह बहुत कम ग्रंथों में दिखाई देती है। हिन्दी साहित्य में प्रस्तुत होने वाली यह रचना भारतीय साहित्य में विनय (भक्ति) सम्बन्धी एक विशिष्ठ रचना है। जो हर मनुष्य को भक्ति की तरफ अग्रसर करती है। इसमें दस्य भक्ति रस, शान्त भक्ति रस के उदाहरण मिलते है। वैसे सभी पदो में अनुभूति की गहरी व्यंजना हुई है, जिसमें दीनतार्पूण ,आत्म निवेदन, सहज और प्रवाहर्पूण , रामरति की गहराई एवं सहजता का जैसा चित्रण विनयपत्रिका में मिलता है। वैसे अन्य भक्ति ग्रंथ में नहीं मिलता है। अर्थात वह सच्चे भक्त हृदय की विनय की पत्रिका है। तत्कालीन युग में व्याप्त कलिकाल की चपेट सामाजिक अव्यवस्था और उदार दृष्टिकोण का परिचय देता है। जो मानव को भक्ति की ओर अग्रसर करने की प्रेरणा देता है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1- डॉ0 जगबहादुर पाण्डेय-रामचरितमानस में रस योजना-पृ0 सं0 -136
2- डॉ0 राम प्रसाद मिश्र-तुलसी एक अध्ययन -पृ0 सं0 -83
3- डॉ0 नरेन्द्र कुमार शर्मा-तुलसी काव्य मणी-पृ0सं0-41
4- डॉ0 नारायण सिंह दूबे-तुलसी की रस परकल्पना-पृ0 सं0-142
5- डॉ0 जगबहादुर पाण्डेय-रामचरितमानस में रस योजना-पृ0 सं0-137
6- विनयपत्रिका - पृ0 सं0-17
7- राम प्रसाद मिश्र - तुलसी के अध्ययन की नई दिशाएं-पृ0सं0 - 74
8- डॉ0 नारायण सिंह दूबे - तुलसीदास रस परकल्पना- पृ0सं0 - 143
9- अ0 विश्वनाथ प्रताप मिश्र - हिन्दी साहित्य का अतीत- पृ0सं0- 331-336
10-डॉ0 राम प्रसाद मिश्र - तुलसी के अध्ययन - पृ0 सं0- 43

सुशीला टाकभौरे के नाटकों में चित्रित सामाजिक मूल्य: एक अनुशीलन

डॉ.दोड्डा शेषु बाबु

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, गच्ची बावली,हैदराबाद-500032
मो- 9985281090

भारतीय समाज विभिन्न संस्कृतियों, जातियों, धर्मों और प्रांतों का समाहार है। इतनी सारी विभिन्न रीतियों के बीच एकता की आवाज उठाना या एकरूपता लाना साहित्य या साहित्यकार का मुख्य लक्ष्य है। इसी उपलक्ष में सुशीला टाकभौरे भी अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक एकता या सामाजिक समानता लाने की दिशा में अग्रसर है। कविता, कहानी, आत्मकथा तथा उपन्यास विधा के साथ-साथ नाटकों के द्वारा भी इसी उपलक्ष में आगे बढ़ रही है। नंगा सत्य, रंग और व्यंग्य आदि नाटक सग्रह इन्ही मूल्यों के साथ आगे बढ़ते हैं। जाति उन्मूलन, धार्मिक समरसता, सामाजिक एकता, जातिगत भेदभाव,स्त्री अस्मिता, स्त्री पुरुष, संबंध , शिक्षा एवं रोजगार आदि विषयों के संदर्भ में इनके नाटक अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं। अपने जीवन में घटित विभिन्न घटनाओं को सामाजिक नीतियों के साथ जोडकर सुशीला जी ने एक आदर्शवादी रचना शैली के साथ आगे बढ़ी है।

सुशीला टाकभौरे की रचनाएं प्रगतिशील विचारधारा को प्रस्तुत करती है। समसामयिक सामाजिक परिदृश्य को प्रस्तुत करने के साथ-साथ दलित समाज की सामाजिक संवेदना भी इनकी रचनाओं का मुख्य विषय रहा है। अंबेडकरवादी विचारधारा को अपनाने के कारण, जातीवादी रीति पर प्रहार करना तथा धार्मिक अंधविश्वासों पर आक्रोश प्रकट करना इनकी रचनाओं में हम देख सकते हैं। जातीय भेदभाव के कारण उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं को विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से समाधान भी प्रस्तुत करना सुशीला टकभौरे की रचनाओं का मुख्य कर्तव्य रहा है। जाति एक ऐसा विचार है जो मनुष्य में पशुत्व की भावना पैदा करती है। मानवीय मूल्यों को भूल कर जातीय श्रेष्ठता के आधार पर दलितों पर उच्च वर्ण के लोगों द्वारा कराए जाने वाले अत्याचार इसके मुख्य उदाहरण है। नाटक के बुद्धिराम रात के समय धनसिंह के खेत में सिंचाई का काम करता है। दिन के वक्त अपने घर में रहता है। यही बात धनसिंह को पसंद नहीं होती है। दिन रात खेत में ही रहकर काम करने का आदेश देता है। आदेश का अनुपालन ना होने पर बुद्धिराम को देखकर गुस्सा करते हुए धनसिंह कहता है कि "अरे बुधुवा….. तेरी रात कब होगी रे? तुझे कई बार बताया है दिन-रात खेतों में ही रहा कर। (गुस्से से) समझाना पड़ेगा तुझे?"[1] इतना ही नहीं बुद्धिराम माफी मांगने पर भी गुस्सा करते हुए धनसिंह कहता है कि "नहीं, तुझे समझाना ही पड़ेगा। करिया…इसे अच्छी तरह समझा दे…."[2] कहने पर करिया ने "बुद्धिराम पर लाठी बरसाता है। बुद्धिराम तड़प-तड़प कर चीखता- चिल्लाता है बाकी सब उसे चुपचाप देखते रहते हैं। मार खाकर बुद्धिरामबेदम होकर गिर जाता है। करिया उसे घसीट कर पर्दे के पीछे ले जाता है"[3] यही वर्तमान समाज की सच्चाई की है। ऐसे उदाहरण वर्तमान में हमें अनेक मिलते हैं। "कोतवाली देहात इस्लाम गंज गांव बेगारी करने से मना करने पर दबंगों ने दलित महिलाओं की जमकर पिटाई की। विरोध करने पर तमंचा सटा महिलाओं से जेवरात छीन लिए गए और शिकायत करने पर जान से मारने की धमकी दी। पुलिस ने पीड़ितों की तहरीर तो ले ली पर ना चोटों का डॉक्टरी परीक्षण कराया और ना ही मुकदमा पंजीकृत किया।"[4] इसी प्रकार जौनपुर क्षेत्र किरतापुर में मजदरी करने के लिए ना आने पर दलितों के घर में घुसकर हमला किया गया है। "गांव निवासी पुष्पा देवी ने कोर्ट में अर्जी देकर आरोप लगाया कि टेंट व्यवसाई मनोज कुमार, शुभम आदि मनबढ़ व दबंग किस्म के हैं। मनोज ने बीती 18 जनवरी को उनके बेटे प्रदीप को टेंट में काम करने के लिए बुलाया था। कॉलेज जाने के कारण वह मनोज का काम नहीं कर सका। इस बात पर मनोज नाराज हो गया और धमकी दी कि इसका अंजाम बुरा होगा। इसी रंजिश को लेकर 19 जनवरी को ही शाम 5:00 बजे मनोज लाठी व रॉड लेकर प्रदीप को जान से मारने के लिए घर पर चढ़ आए। गाली का विरोध करने पर पुष्पा को भी मारने के लिए दौड़ा लिया। जान बचाने के लिए वह घर में भागी तो आरोपित घर में

घुसकर लाठी, रॉड से पीटने लगे। उनको बचाने प्रदीप व पड़ोसी आए तो उन पर भी जानलेवा हमला कर दिया। मारपीट से पुष्पा बेहोश हो गई। होश में आने के बाद अपने बेटे व पड़ोसियों के साथ जफराबाद थाने में सूचना देने गई, लेकिन पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की।"[5] केवल काम के लिए मना करने पर ही नहीं, काम की मजदरी मांगने पर भी दलितों पर हमले होना स्वाभाविक विषय है। इस जीतिवादी व्यवस्था में देख सकते हैं। बीबीसी हिंदी के अनुसार "मध्य प्रदेश के रीवा जिले में मजदरी मांगने पर जिस दलित मिस्त्री के हाथ काट दिए गए थे उसकी हालत काफी बेहतर है। वही डॉक्टर ने उनके कटे हाथ को जोड़ दिया है। रीवा जिले के सिरमौर थाने के ढोल गांव में अशोक साकेत का हाथ काटे जाने की घटना की काफी चर्चा हुई थी। रिपोर्ट में बताया गया कि 20 नवंबर को दबंग बताए जाने वाले कुछ लोगों ने मजदरी के ₹5000 मांगने पर हुए विवाद के बाद उसका हाथ काट दिया।" [6] इसका मुख्य कारण है वर्णवादी विचारों वाली सामाजिक व्यवस्था। उच्च वर्ग के लोग जन्मत: अपने आप को श्रेष्ठ समझने के कारण इस तरह की घटनाएं घटती रही है। इसी कारण नाटक के धनसिंह अपने स्वामित्व को अपने कारिंदों के द्वारा प्रकट करना चाहता है। अपना कारिंदा बहादुर धनसिंह की बातों का अनुपालन करते हुए दलित व्यक्ति सुनीत को डराने की चेष्टा करता है कि "(गुस्से से चिल्लाते हुए, सुनीत को बंदूक के कुंदे से ठेलते हुए इधर-उधर धकेलता है-) ओये, ज्यादा समझ में आ गई है क्या? जानता नहीं, यह गांव ठाकुर धनसिंहका गांव है? आज भी यहां उन्हीं की जमींदारी चलती है। वे पूरे गांव के मालिक है।……अबे समझता नहीं है क्या?..... तेरा बाप चेतिया चमार……कुनबे सहित मार दिया जाएगा….. चला जा यहां से……"[7] इसी प्रकार के सामाजिक शोषण को खत्म करना सुशीला टाकभौरे का मुख्य उद्देश्य है। इनके नाटकों का दूसरा विषय है धार्मिक अंधत्व को खत्म करना तथा दलितों को अंबेडकरवादी विचारधारा से परिचित करवाना। यही बात रंग और व्यंग्य नाटक में सुनाई पड़ती है। पूजा-पाठ की दान दक्षिणा भी बहुत देगी……मुझे तो लगता है मुंह मांगी दक्षिणा देगी …….सोच लो पंडित जी…."[8] उनकी बातों पर गुस्सा प्रकट करते हुए हैं सीताराम कहता है कि "बिल्कुल नहीं, ऐसे विषय में अपना लाभ नहीं देखा जाता। यह हमारे धर्म और संस्कृति का प्रश्न है। हमारी संस्कृति, वर्णभेद और जातिभेद पर आधारित है। इसमें यह कैसे संभव है? हम अपनी संस्कृति नहीं छोड़ सकते……हम अपनी संस्कृति की रक्षा करेंगे, तभी हमारी श्रेष्ठता की रक्षा हो सकेगी"[9] संस्कृति, वर्णभेद, जातिभेद आदि बातें सुनकर रामसनेही हंसते हुए कहता है कि "वर्णभेद और जाति भेद की संस्कृति आप पकड़े रहिए। देख लेना कोई ना कोई पंडित वहां पहुंच जाएगा और छऊवा के मंदिर में भगवान कृष्ण और राधा की प्राण प्रतिष्ठा कर देगा। देख लेना पंडित जी (मसखरी के साथ हंसता है।)"[10] यही सामाजिक वास्तविकता है। संप्रदाय, रीति-रिवाज़, संस्कृति केवल अपना अस्तित्व और अहंकार दिखाने के लिए ही है। धनार्जन के संदर्भ में कुछ लोग भूल जाते हैं। इतने प्रयास से बने मंदिर में पूजा पाठ के लिए पुजारियों को अधिक मात्रा में दक्षिणा देकर बुलाना पड़ता है। इसी कारण पूजा पाठ रोज नहीं होता है। जब छऊवा इस प्रकार की कठिनाइयों से विचलित होती है तो समाज की वास्तविक सच्चाईयों के बारे में जानना शुरू करती है। सामाजिक रीतियां, धर्म और जाति प्रधान व्यवस्था की बातें सुनकर वह एक तरह से विचलित हो जाती और भगवान से भी दूर हो जाती है। साथ-साथ इनके भगवान के संदर्भ में भी अजीब शब्द निकलने की बातें छऊवा पर बहुत असर करता दिखाई देते है। इतना ही नहीं अपनी पोती शालू के संदर्भ में घटित घटनाएं भी उन्हें पुनः विचार करने के लिए मजबूर करती है। जब शालू खेलकूद में भाग लेने के लिए शहर जाती है तब वहां विराम के समय अपनी सहेली हेमलता के साथ उसकी मौसी के घर जाने पर उन्हें अछूत कहकर घर के बाहर ही रोका गया है। शालू की जाति का नाम जानकर हेमलता की मौसी कहती हैं कि " (गुस्से के साथ उनकी आवाज में) तुमको हमारी जात मालूम है या नहीं? तुम अछूत हमारे घर में कैसे आ सकती हो? तुम्हें अपने रिश्तेदारों के घर ही जाना चाहिए। हम तुमको वहां पहुंचा देंगे। (हेमलता शुभा लता और रजनी सिर झुका कर अंदर चली जाती है मौसी जी शालू को गुना के भाव से देखती है शालू सिर झुकाए खड़ी रहती है।"[11] इसके साथ-साथ जब शालू पानी पीने के लिए कुँए के चबूतरे पर चढ़ती है तो वहां से भी उनको भगाया जाता है कि वह अछूत है ,और उनको रस्सी बाल्टी को भी नहीं छूना चाहिए। इस संदर्भ में बकरी वाली खिमिया शालू और उनके दोस्त को गाली देते हुए कहती है कि "देख ले तारा तेरी मोडियों ने का कियो है? हमारी रस्सी बाल्टी खराब कर दई, हमारे कुआं पे चढ़ गईं…देख चल के देख…यह लड़कियों ने हमारी रस्सी बाल्टी छूकर खराब कर दई.."[12] इस प्रकार के अपमान और अवहेलना की घटनाओं को सुनकर छऊवा विचलित होती और अंबेडकर के रास्ते पर जाने के लिए तैयार हो जाती है। इस संदर्भ में छऊवा कहती है कि "मैंने तेरी सब बातें सुन ली है। तेरे जैसे सब समझदार हो जाए तो समाज का नक्शा ही बदल जाए। बेटी..मैंने भी बड़ी गलती की है। अपना रुपया पैसा पूजा-पाठ और भगवान के नाम पर बर्बाद किया है। अब मैं अपनी मेहनत की कमाई अपनी जात- समाज को सुधारने में लगाऊंगी।"[13] इसी बात को आगे बढ़ाते हुए और कहती हैं कि "मंदिर को विद्या का मंदिर बना देंगे। इस मंदिर में अपने मोहल्ले के बच्चों की पाठशाला लगा करेगी। पढ़े लिखे, समझदार, अच्छे लोग आकर अपने बच्चों को अच्छी बातें सिखाया करेंगे। दुनिया में अच्छे लोगों की कमी नहीं है। जो हमारी भलाई चाहते हैं, वह हमारे लोगों को समझाकर अच्छी राह बताएंगे।"[14] यही एक प्रकार से बड़ा क्रांतिकारी कदम है। हजारों सालों से धर्म, संस्कृति आदि के नाम पर जिस तरह से लोगों को अंधविश्वासों में रखकर उन्हें समानता, सम्मानता से दूर रखा गया है उन सभी नीतियों से बाहर लाने की बात यहां की विशेषता है।भाइयों ने हमेशा लक्ष्मण रेखा की सीमा में रखा…. हमेशा बंधन -बंधन…..। कभी कोई बात अपने मन से सोच नहीं सके और ना ही कभी अपने मन का कोई काम कर सके..।(पति के सामने आकर) विवाह के बाद जैसा तुमने चाहा वही किया। स्त्री की संवेदना को उसने सही ढंग से कभी भी समझने की चेष्टा नहीं की है। इस नाटक में भी राधा अपनी वेदना जताने पर उन्हें नौकरी करने की इजाजत तो देता है लेकिन अपनी सीमा में रहकर जीने की बात करता है। पुरुषवादी मानसिकता की यही एक मुख्य प्रवृत्ति है। पत्नी जब मान- सम्मान और अस्मिता की बात करने लगती है तो पति गुस्सा प्रकट करते हुए कहता है कि "अच्छा बहुत बातें आने लगी है तुझे….? बहुत ज्ञान बढ़ गया है तेरा….। आजकल तेरा घमंड बढ़ता जा रहा है। मैं सब देख रहा हूं, सब कुछ समझ रहा हूं। ऑफिस के गैर मर्दों के साथ रहकर तेरा आत्मविश्वास बहुत बढ़ गया है……क्या समझती है तू अपने आप को?(गुस्से से ऊंची आवाज में) तू मेरे सामने कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं….यह मेरी मेहरबानी है जो मैं तुझे नौकरी के लिए घर से बाहर जाने देता हूं। मेरी कुछ मजबूरी है। मकान का कर्जा भरना है और इस महंगाई का सामना करना है। नहीं तो मैं आज ही तेरी नौकरी छुड़वा देता…तू समझता क्या है अपने आपको.. (पत्नी को गुस्से के साथ देखता है"[16] सुशीला जी अपने नाटकों में समस्याओं के प्रति संवेदना जताना ही नहीं उसका समाधान भी देती रही है। नंगा सत्य में धनसिंह को अंबेडकरवादी विचारधारा के बारे में समझा कर सामाजिक न्याय की ओर उन्हें आगे बढ़ाती है। चश्मा नाटक में भी चश्मा बदलकर स्त्रियों की समस्याओं के प्रति पुरुषों को अवगत कराने की चेष्टा भी करती है। इसी प्रकार इनके सभी नाटकों में समस्या और समाधान स्पष्ट रूप से दिखाई देने के प्रयास हमेशा होते रहे है। अतः निष्कर्ष की बात यह है कि सुशीला टाकभौरे ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक संवेदना को सही ढंग से समाज के सामने प्रस्तुत करने में सक्षम रही है।

******

संदर्भ:-

डॉ. सुशीला टाकभौरे, नंगा सत्य, शरद प्रकाशन, नागपुर,प्र. 2007, पृष्ठ 28
डॉ. सुशीला टाकभौरे, नंगा सत्य, शरद प्रकाशन, नागपुर,प्र. 2007, पृष्ठ 28
डॉ. सुशीला टाकभौरे, नंगा सत्य, शरद प्रकाशन, नागपुर,प्र. 2007, पृ.29
जागरण, सोमवार, 12 नवंबर, 2022, ऑनलाइन एडिशन
पत्रिका, 29, सितम्बर, 2019 आनलईन एडिशन
बीबीसी न्यूज़ हिंदी, 23 नवंबर, 2021 ऑनलाइन एडिशन
डॉ. सुशीला टाकभौरे, नंगा सत्य, शरद प्रकाशन, नागपुर,प्र. 2007, पृ.33
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ. 19
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ.20
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ.20
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ.29
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ. 32
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ.38
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर,प्र. 2006, पृ.38
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ.81
डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्र. 2006, पृ.88

डॉ.शान्ति सुमन के गीत:एक अध्ययन

मोहन कुमार
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी मो. 7839045007

प्रस्तावना- शांति सुमन हिंदी गीत काव्य की अनन्य साधिका हैं। उनके गीतों के विषय वैविध्यपूर्ण हैं तथा उनकी भाषा सरल, सहज, लययुक्त और आडंबर से मुक्त है। शांति सुमन बहुमुखी प्रतिभा संपन्न प्रातिभ रचनाकार हैं। उनके गीतों की दुनिया बहुत विस्तृत और व्यापक है। उनमें जीवनानुभूति, मध्यवर्ग की हिस्सेदारी की चिंता, किसान-मजदूर जीवन के विभिन्न जीवंत चित्र, समय, समाज और जीवन से एकरूपता, सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ का वर्णन, जड़ होते व्यापक मानवीय परिवेश में सार्थक हस्तक्षेप, लोकजीवन के संस्कार, गृहस्थिक प्रेम और सौंदर्य का वर्णन, व्यवस्था की विसंगतियों का वर्णन और मनुष्य के हक और हित में सतत् परिवर्तन की आवश्यकता पूरी रचनात्मक प्रतिबद्धता और वैज्ञानिक रचना-दृष्टि के साथ उपस्थित है।

बीज शब्द- नवगीत, लोक-जीवन , जनवादी गीत, संघर्ष-प्रतिरोध, प्रेम-सौंदर्य, जीवन-यथार्थ, आदि।

मुख्य अंश- नवगीत की पहली कवयित्री-गीतकर्त्री के रूप में प्रतिष्ठित और चर्चित शांति सुमन (15 सितम्बर 1942 ई.) को हिंदी गीतों की रचना में जैसी कुशलता, सफलता और प्रसिद्धि प्राप्त हुई है, वह अद्भुत है। शांति सुमन के गीतों में मिथिलांचल के गांवों की मिट्टी की सुगंध और उसकी पहचान मौजूद है। मिथिलांचल के ग्रामीण जीवन और वहां के लोगों के श्रम, दु:ख-दर्द, जीवन-शैली और लोक संघर्ष की स्पष्ट झलक शांति सुमन के गीतों में मिलती है।"जिस प्रकार महाश्वेता देवी के कथा साहित्य का केंद्रीय विषय आदिवासी समाज है, उसी प्रकार शांति सुमन के गीतों के केंद्र में बिहार के किसान और मजदर और विशेषकर खेतिहर मजदर हैं। ये वे मजदर हैं जो दिन-रात अपना खून-पसीना बहाकर धरती को उर्वर बनाते और अन्न उगाते हैं, किंतु स्वयं अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसते-तड़पते हैं, जिनके लिए रोटी, कपड़ा और झोपड़ी के सपने भी सपने ही रह जाते हैं।"[1] आम जनमानस की पीड़ा, व्यथा, दु:ख और संवेदना की व्यापक अभिव्यक्ति शांति सुमन के गीतों में हुई है। नये बिम्ब और प्रतीक, नवीन भाव और कल्पना की कोमलता के साथ-साथ जन-समस्याओं और जनपक्षधरता, पर गंभीर चिंतन शांति सुमन के गीतों में दिखाई पड़ता है। एक ऐसे समय में जब मानवीय रिश्तों और मनुष्यता पर तमाम तरह के आधुनिक संकट उत्पन्न हो गए हैं, शांति सुमन ने मनुष्यता के श्रेष्ठ और सुंदर भाव तथा मानवीय संबंधों तथा पारिवारिक रिश्तों को बचाने और बनाये रखने की कोशिश अपने गीतों के माध्यम से लगातार की है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ शिवकुमार मिश्र शांति सुमन के गीतों की व्यापकता और समृद्ध दुनिया के विषय में लिखते हैं कि-"उनके ये गीत हमारे समय का आईना भी हैं, और उसमें एक सार्थक हस्तक्षेप भी।" हिंदी गीत काव्य की अनन्य साधिका शान्ति सुमन के प्रमुख गीत-संग्रहों में ओ प्रतीक्षित, परछाई टूटती, सुलगते पसीने, पसीने के रिश्ते, मौसम हुआ कबीर, भीतर-भीतर आग, एक सूर्य रोटी पर, धूप रंगे दिन, नागकेसर हवा, लय हरापन की, लाल टहनी पर अड़हुल तथा सान्निध्या महत्वपूर्ण है। शान्ति सुमन का पहला नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' वर्ष 1970 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में भाषा की एक नयी व्यवस्था, नयी टेकनीक के परिचायक के रूप में नवगीत को परिभाषित किया गया है। तत्कालीन असंतोष, क्षोभ, घुटन, ऊब और कुण्ठा के परिवेश में नवगीत एक विवशता के रूप में फूट पड़ा था। प्रेम-सौंदर्य, जीवन, समय तथा समाज के यथार्थ का व्यापक चित्रण 'ओ प्रतीक्षित' के नवगीतों में हुआ है। मानव मन की गहराई की परतें खोलतीं इन दिनों में आधुनिक मानव जीवन का यथार्थ और उसकी विद्रूपताएँ स्पष्टता के साथ व्यक्त हुई हैं। 'परछाई टूटती' के नवगीत और अधिक सुपरिणत, मँजे हुए तथा श्रेष्ठ हैं। भारतीय मध्यवर्गीय समाज के जीवन-यथार्थ, उनकी तकलीफों, दु:ख-दर्द और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करते इस संग्रह के गीत नवगीत के भविष्य की संभावनाओं के तत्वों और संकेतों को प्रकट करने वाले साबित हुए। मध्यवर्गीय जीवन के आत्मीय प्रसंगों, अनुभूति की गहराई, सौंदर्यबोध और गांव-घर के साधारण जन के जीवन से जुड़े बिम्बों के कारण 'परछाई टूटती' के नवगीत अत्यधिक लोकप्रिय हुए:

"जब कभी कोई बच्ची /वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है।"[3]

शान्ति सुमन के बहुत से नवगीत अद्वितीय प्रेम गीत भी हैं। 'परछाई टूटती' में संकलित एक ऐसा ही प्रेम गीत अत्यधिक प्रसिद्ध है:

"केसर रंग-रंगा मन मेरा/सुआ पंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में/लिखा तुम्हारा नाम है।"[4]

शान्ति सुमन के नवगीतों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वे लगातार अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। इन गीतों में सामाजिक-जीवन, पारिवारिक संबंधों, प्रेम और आत्मीयता के साथ जीवन-यथार्थ और श्रम-सौंदर्य का भाव मिश्रित है:

"मां की परछाई-सी लगती/गोरी दुबली शाम
पिता-सरीखे दिन के माथे/चूने लगता घाम।"[5]

शान्ति सुमन के ये नवगीत केवल गीत विधा में नयेपन को लाने के लिए नहीं लिखे गए बल्कि सामाजिक जीवन के संवेदनशील पलों और स्वतंत्रता के बाद के भारतीय मध्यवर्गीय समाज के मोहभंग की मन: स्थिति के विभिन्न पहलुओं को गीत विधा में दर्ज करने का महत्वपूर्ण कार्य भी इन गीतों के माध्यम से हुआ है:-

"तुम न बोलोगे तुम्हारी बात बोलेगी
उम्र भर ठहरी हुई बरसात बोलेगी।/उंगलियों में दर्द का कुछ
मौन मधु बजता/देश सुरभित रोशनी का
ताल-सा लगता/बैजनी-कत्थई उदासी साथ बोलेगी।"[6]

शान्ति सुमन के इन नवगीतों के माध्यम से तत्कालीन समय के नवगीतों की रचना-संगति, उपलब्धि, सार्थकता और प्रासंगिकता की पहचान की जा सकती है। शान्ति सुमन ने अपनी रचना-यात्रा की शुरुआत गीत-नवगीत लिखने से की थी। परंतु शीघ्र ही वह नवगीत की अगली कड़ी जनवादी गीतों की रचना में भी सक्रिय हो गईं। नवगीत विधा के भीतर से जनवादी गीत की रचना का उभार अचानक नहीं था अपितु इसके अपने अपरिहार्य कारण थे। एक विशेष तरह की सामाजिक-राजनीतिक समझदारी और वैज्ञानिक

दृष्टिकोण जनवादी गीत-रचना की पृष्ठभूमि में कार्य कर रही थी। बहुत से जनवादी गीतकारों ने अपनी गीत रचना,-यात्रा का आरंभ नवगीत लिखने से किया। शान्ति सुमन भी ऐसी ही गीतकार है। लेकिन उनकी विशेषता यह है कि वे नवगीत के साथ-साथ हिंदी की जनवादी गीत की भी सशक्त और श्रेष्ठ हस्ताक्षर हैं। दो नवगीत संग्रह के प्रकाशन के बाद सात वर्षों के भीतर उनके तीन जनवादी गीत संग्रह प्रकाशित हुए। 'सुलगते पसीने','पसीने के रिश्ते' तथा 'मौसम हुआ कबीर'। इन संग्रहों में श्रमजीवी- संघर्षरत वर्ग के श्रम-सौंदर्य से भरे जनवादी गीत संकलित हैं। आम आदमी के जीवन-यथार्थ और भूख, गरीबी तथा बेबसी के बहुत से करुण चित्र इन गीतों में दिखाई पड़ते हैं। एक तरफ समाज के चुनिंदा लोगों के एक वर्ग के पास आवश्यकता से अधिक उपलब्ध होने की विडंबना है तो दूसरी तरफ उसी समाज के बहुसंख्यक लोगों के घर आवश्यक न्यूनतम संसाधनों और सुविधाओं के उपलब्ध न होने की दारुण स्थिति है। ऐसी ही एक मध्यवर्गीय मजदूर परिवार की स्त्री और एक मां की बेबसी का मार्मिक वर्णन शान्ति सुमन की इस गीत में मिलता है:

"फटी हुई गंजी न पहने/खाये बासी भात न
बेटा मेरा रोये, मांगे/एक पूरा चंद्रमा।"[7]

व्यवस्था की लापरवाही और भेदभाव पूर्ण नीतियों के कारण चतुर चालाक महाजन, साहूकार और सूदखोर लोग भोले-भाले गरीबों-मजदूरों का शोषण करते रहे हैं जिसके कारण समाज में शोषण का दंश बढ़ता चला गया और आम श्रमिक-मजदूर वर्ग के जीवन में अभाव, विपन्नता और गरीबी चिरस्थायी हो गई। शान्ति सुमन के जनवादी गीतों में व्यवस्था के भ्रष्टाचार और शोषण से उत्पन्न विडंबना का बेबाक चित्रण हुआ है:

"थाली उतनी की उतनी ही
छोटी हो गई रोटी/कहती बूढ़ी दादी अपने गांव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गांव की..."[8]

शामिल शान्ति सुमन के जनवादी गीत उस स्थिति की पड़ताल करते हैं, जहां रोटी एक सवाल की तरह हो गई है, जिसे पाने के लिए शोषण के खूनी जबड़ों को तोड़ना आम आदमी की मजबूरी हो गई है। 'पसीने के रिश्ते' में संकलित जनवादी गीतों में नयी जिंदगी की तलाश में अंधेरे के खिलाफ संघर्ष करते हुए लोगों के हौसले को बल देने की पुरजोर कोशिश की गई है। ये जनवादी गीत हर प्रकार के शोषण और अन्याय के अंधेरे के खिलाफ मनुष्य मात्र के अधिकार, समानता और न्याय के पक्षधर गीत हैं:

"लड़ते हैं अंधेरे के खिलाफ/उजाले से घिरे हुए लोग
नयी जिंदगी की तलाश में/ताकतों से भरे हुए लोग"[9]

'मौसम हुआ कबीर' के गीतों में शोषित-पीड़ित जनता के दःख -दर्द और उनके संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। 'पसीने के रिश्ते' के गीतों में शोषित-पीड़ित आमजन, किसानों, मजदूरों की सामूहिक एकता के माध्यम से शोषणकारी व्यवस्था का विरोध और उसको बदलने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। 'सुलगते पसीने' के गीत इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक चेतना और साहस को प्रदान करने का भी कार्य करते हैं। शान्ति सुमन के जनवादी गीतों में जनता की बदहाली और शोषण के कारणों की शिनाख्त है, उससे संघर्ष करने की इच्छा है, आगे निकलने के मार्ग भी हैं, परंतु कहीं भी निराशा का वातावरण नहीं है अपितु जन-संघर्ष और उसकी शक्ति पर अटूट विश्वास है। शान्ति सुमन के गीतों में शिकायत करने के नहीं बल्कि साहस और शक्ति के सूत्र तलाशने पर जोर है क्योंकि इसी परिश्रम,साहस और संगठित शक्ति के माध्यम से ही हर तरह के शोषण और अन्याय के विरुद्ध एक सफल क्रांति संभव है:

"नहीं चाहिये आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले, हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का गीत अब न गायेंगे
ताकत नई बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे।"[10]

शान्ति सुमन के गीत-संग्रह 'भीतर-भीतर आग' का प्रकाशन 2002 ई. में हुआ। इस संग्रह के पचहत्तर गीत 'आइने दर तक', 'पूरी पृथ्वी मां', 'भीतर-भीतर आग' और 'नदियां इंगुर की' शीर्षक से चार खंडों में विभक्त हैं। इस संग्रह के गीतों में कई विशेषताएँ एक साथ दिखाई पड़ती हैं। शान्ति सुमन के इन नवगीतों में मन के कोमल भावों की अभिव्यक्ति के साथ गांव की चिंता, परंपरा और संस्कार के अमूल्य धरोहरों को सहेजने की और उन्हें अगली पीढ़ी तक पहुंचाने की चिंता भी व्यक्त की गई है:

"दरवाजे का आम-ऑंवला/घर का तुलस-चौरा
इसीलिये अम्मा ने अपना/गांव नहीं छोड़ा.."[11]

मिथिलांचल के स्त्रियों के जीवन, उनके रीति-रिवाज और संस्कृति के सौंदर्य का, भारतीय समाज में परिवार और विवाह आदि विभिन्न संस्कारों का, बेटी-बहु के महत्व का, माता-पिता, बुजुर्गों की देखभाल और जिम्मेदारियों का, उनके द्वारा संतानों को दिए जाने वाले सीख और संस्कार का बहुत ही गीतात्मक वर्णन इन गीतों में हुआ है:

"धीरे पांव धरो!/आज पिता-गृह धन्य हुआ है
मंत्र-सदृश उचरो!/ऑंचल भरकर दूब-धान
सिन्दूरी नमन करो!/पितरों के गौरी-गणेश को
पूजो, वरन करो!/धीरे पांव धरो!"[12]

शान्ति सुमन की जनवादी चेतना संपन्न गीतों का संग्रह 'एक सूर्य रोटी पर' 2006 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में शामिल गीत भूख के ककहरे पढ़ती जनता के भीतर धार और आग उत्पन्न करने वाले गीत हैं। शान्ति सुमन के ये गीत जन-मुक्ति के आकांक्षा और श्रम-सौंदर्य की सार्थक अभिव्यक्ति हैं। शान्ति सुमन के गीतों में गरीबी और अभाव में जलते भारत के आम-जनमानस के जीवन का दाह व्यक्त होता है:

"यह भी हुआ भला/कथरी ओढ़े तालमखाने
चुनती शकुन्तला।/मुड़े हुए नाखून
ईख-सी गांठदार उँगली/टूटी बेंट जंग से लथपथ
खुरपी-सी पसली/बलुआही मिट्टी पहने
केसर का बाग जला..."[13]

नब्बे गीतों के संग्रह 'धूप रंगे दिन' के गीतों को 'एक सूर्य रोटी पर' के गीतों की अगली कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। शान्ति सुमन के ये गीत समय और समाज सापेक्ष होने के साथ ही जीवन की बोलती तस्वीरों की तरह हैं। भारत के किसान-मजदूर और मध्यवर्ग के लोग किस तरह मुसीबतों से घिरे जिये हुए जिंदगी को बार बार जीते हुए अपना गुजारा करते हैं, उनकी संघर्षपूर्ण जीवन-दशा का चित्रण इस संग्रह के गीतों में हुआ है। देश की समस्याओं का हल मजदूर-किसानों और नौजवानों के पास है। वही श्रम और संघर्ष के वास्तविक ध्वजवाहक हैं। इसलिए देश की करोड़ों जनता की आवश्यकताओं और उनकी समस्याओं का समाधान भी उनके बीच से ही निकलेगा। शान्ति सुमन के गीतों में इस भाव की उपस्थिति है। वहां देश के किसानों-मजदूरों और नौजवानों से जागने, श्रम करने और देश के पौरुष की पहचान बनने के लिए आह्वान

किया गया है:

"जागते रहो जवान देश के
ओ मजूर ओ किसान देश के
पहरेदारी करती है गर्म हवा
टूटेगी मौसमों की मनमानी
शिरा-शिरा अभी कौंधती बिजलियां
खून नहीं रचा करता है पानी
पौरुष की पहचान बनो देश के
ओ मजूर ओ किसान देश के..."[14]

कथ्य, शिल्प और संवेदना के स्तर पर 'धूप रंगे दिन' संग्रह के गीत मन को गहराई तक छूते हैं। 'नागकेसर हवा' के ये गीत कथ्य और शिल्प की दृष्टि से सुस्पष्ट हैं। वे स्वयं कहती हैं– "मेरे मन में अपने गीतों को लेकर कोई दुविधा नहीं है। देश-दुनिया के संघर्षजीवी जन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आशाकांक्षा और बेहतर जिंदगी, बेहतर दुनिया के लिए उनकी मुक्ति-चेतना ही मेरी प्रतिबद्धता है।"[15] अपने गीतों के विषय में शान्ति सुमन की यह उक्ति उनके इस संग्रह के गीतों के लिए बिल्कुल सटीक बैठती है। इस संग्रह में नदी, पोखर और पानी से संबंधित कई गीत हैं। 'कोसी महरानी' शीर्षक गीत कोसी के बाढ़ की विभीषिका के कारण होने वाले पलायन और बर्बादी की स्मृतियों को ताजा कर देता हैं:

"बालू उगल गई गुस्से में
यह कोसी महरानी
अँतरी दाबे तीन दिनों से
भोला तीन परानी...
घटना केवल एक रात-दिन
रह-रह नीर बहाना
अभी गांव मत आना..."[16]

सदियों से समाज में आग बचाए रखने की जिम्मेदारी स्त्रियों के हिस्से में रही है। दुनिया भर की स्त्रियाँ श्रम करते हुए, संस्कृति, परंपरा और लोक के तत्वों को बचाने और बनाये रखने का अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य बड़ी खामोशी से करती आई हैं। शान्ति सुमन का एक प्रसिद्ध गीत है 'इसी शहर में'। यह गीत एक मजदूर स्त्री के स्वप्न, आशा-आकांक्षा, दमन-शोषण, उसके जीवन-संघर्ष और श्रम की पराकाष्ठा तथा एक बेहतर जिंदगी के लिए किये जाने वाले संघर्ष का ऐसा करुण चित्र उपस्थित करती है कि मन बेचैन हो उठता है। रसोईघर से लेकर समाज और जीवन तक में आग बचाये रखने का कार्य स्त्रियों ने अनेक तरह के विषम परिस्थितियों के बीच से गुजरते हुए बखूबी किया है। शान्ति सुमन के गीतों का संग्रह 'लय हरापन की' 2015 ई. में प्रकाशित हुआ। अनुभव और संवेदना के आँच पर पके हुए इन गीतों में अद्वितीय सौंदर्यबोध उपस्थित है। ये गीत ताजे बिम्ब-प्रतीकों और मिथिलांचल के टटके शब्दों के कारण अपनी अलग पहचान बनाते हैं। इन गीतों में एक नये तरह की ताजगी है, हृदय के कोमल भावों और संवेदना की गहरी पैठ है। शान्ति सुमन के ये गीत उनकी अपनी पीड़ा है, अपने शब्द और अपने बिम्ब हैं, जो अपनी पृथक पहचान रखते हैं। ये गीत दु:ख और संघर्ष से भरे जिंदगी के मरुस्थल में प्रेम और संवेदना की हरापन के लौटने की आस के गीत हैं:

"लौटती है जिंदगी में
नयी लय हरापन की
नाचती कभी नीदों में
ऑख की भीगी पुतलियॉं
छींटती बीज आशा के
धूप-हवाओं की परियॉं
जुड़ती कथाओं में कथा
रचती है जीवन की!"[17]

इस संग्रह में संकलित गीतों में अर्थ की गहराई की व्यापकता समाहित है, जो गीत को पढ़ने के बाद ठहरकर सोचने को विवश करती है। ये गीत बॉंसुरी के मद्धिम ध्वनि की तरह है, जो धीमे-धीमे मन-मस्तिष्क पर असर करते चले जाते हैं। इन गीतों में दु:ख, करुणा और संघर्ष की स्थिति को स्वीकार करने का साहस भी है और वह आवश्यक उम्मीद भी जो इस घेरे से बाहर निकलकर सुख के धरातल पर पहुंचने के लिए अनिवार्य है:

"ऐसा ही जीकर देखेंगे
दुख को कर भीतर देखेंगे
थोड़ी सी उम्मीद बची है
फिर से कोयल भी कूकेगी..."[18]

निष्कर्ष- शान्ति सुमन हिंदी गीत काव्य के क्षेत्र में महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी हैं। भारत के आम जनमानस के जीवन-यथार्थ और उनके संघर्ष से सहानुभूति रखता शान्ति सुमन का गीत अपनी जनपक्षधरता के कारण और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। हिंदी नवगीत और जनवादी गीत में अपनी एक समान महत्वपूर्ण और विशिष्ट पहचान निर्मित करने वाली शान्ति सुमन के गीत हिंदी गीत काव्य की समृद्धि और सामर्थ्य के परिचायक हैं।

****

संदर्भ-ग्रंथ:-

1. .वशिष्ठ अनूप, गीत का आकाश, प्रकाशन केंद्र, सीतापुर रोड, लखनऊ-226020, प्रथम संस्करण, 2010 ई.,पृ.204-205
2. दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' (संपादक), शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि, सुमन भारती प्रकाशन, 1/26, काशीडीह, जमशेदपुर-831001, प्रथम संस्करण, 2009,पृ.31-32
3. शान्ति सुमन, परछाई टूटती, ईशान प्रकाशन, मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना, मुजफ्फरपुर-2, द्वितीय संस्करण, 2010, पृ.79
4. वही,पृ.75
5. वही,पृ.72
6. वही,पृ.66
7. शान्ति सुमन, मौसम हुआ कबीर, ईशान प्रकाशन, मीठनपुरा, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर-842002, द्वितीय संस्करण, ई.,पृ.20
8. शान्ति सुमन, पसीने के रिश्ते, नव-जनवादी सांस्कृतिक मोर्चा, पटना, प्रथम संस्करण, जुलाई 1980,पृ.60-61
9. शान्ति सुमन, सुलगते पसीने, 292 आर. एफ.,लोहिया नगर पटना, प्रथम संस्करण, 1979, पृ.67
10. मधुसूदन साहा (संपादक), तब रहे कचनार, श्री प्रकाशन, 385/2-बी/1-सी, अर्जुन गली, विश्वास नगर शाहदरा, दिल्ली-पृ.23-24
11. वही, पृ.114-115
12. शान्ति सुमन, एक सूर्य रोटी पर, अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-842002, प्रथम संस्करण, 2006,पृ.13
13. वही,पृ.26
14. शान्ति सुमन, नागकेसर हवा, ईशान प्रकाशन, मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना, मुजफ्फरपुर-842002(बिहार),प्रथम संस्करण, पृ.7
15. वही,पृ.77
16. वही,पृ.102
17. शान्ति सुमन, लय हरापन की, समीक्षा प्रकाशन, जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी, मुजफ्फरपुर प्रथम संस्करण, 2015,पृ.145
18. शान्ति सुमन, लाल टहनी पर अड़हुल, समीक्षा प्रकाशन, जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी, मुजफ्फरपुर (बिहार)-842001, प्रथम संस्करण, 2016,पृ.34

समकालीन हिंदी-कन्नड़ उपन्यासों में पर्यावरण विमर्श
('रेखना मेरी जान' और गालक्के सिक्का चंदिर के संदर्भ में)

प्रो. संजय.एल.मादार
शोध निर्देशक
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद

रूपा प्रभु बी.
शोध छात्रा
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद

शोध सार:- साहित्य में उत्तर आधुनिकवाद के युग में पर्यावरण संबंधी विषय की चर्चाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। हिंदी-कन्नड़ साहित्य के जितने भी पर्यावरण केंद्रित संवेदनाएँ है उन्हें एकीकृत करके देखने पर यह बात सामने आती है कि यह विमर्श अस्मिता विमर्श है जहाँ केंद्र में प्रकृति है। 'साहित्य में पारिस्थितिक दर्शन' के नाम से एक नया और अलग दर्शन का अविर्भाव हुआ है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्धेश्य हिंदी-कन्नड़ उपन्यासों में निहित पर्यावरण संबंधित वैश्विक समस्याएँ तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति मनुष्य के दायित्व को उजागर करना है।

बीज शब्द:- पर्यावरण (Environment), भूमंडलीय ऊष्मीकरण, (Global warming), पर्यावरण प्रदूषण (Environment), दवानल(Forest Fire), वायु मालिन्य(Air Pollution)

शोध विस्तार:- भारतीय संस्कृत में प्रकृति की पूजा की जाती है। यहाँ जल, वायु, धरती, आकाश और वनस्पतियों को दैवत्व प्राप्त है। मनुष्य का जीवन प्रकृति से ही निर्मित होकर उसके पोषक तत्वों से विकसित होकर अंत में उसी के पंच तत्वों में विलीन हो जाता है। मनुष्य का अस्तित्व ही प्रकृति से जुड़ा हुआ है। समस्त जीवराशियों के लिए प्रकृति ने एक संतुलित पर्यावरण का निर्माण किया है। यह पर्यावरण धरती का रक्षा कवच है। प्रकृति और मनुष्य का सह संबंध स्वस्थ जीवन के लिए अनिवार्य अंग है। जैसे-जैसे मनुष्य आधुनिक बनता गया, वैसे-वैसे वह प्रकृति पर अधिकार स्थापित करता गया। इतने में यह रुका नहीं है। वह आगे बढ़ते हुए वर्तमान में अब तो उत्तर आधुनिकतावाद (Post modernism) की ओर जा चुका है जहाँ 'विश्व ग्राम' की परिकल्पना ने 'विश्व बाज़ार' का रूप ले लिया है। पश्चिमी सभ्यता की ओर उन्मुख होकर भारतीय सभ्यता में प्रकृति के प्रति श्रद्धा घट रही है। मनुष्य के लोभी मानसिकता के कारण पर्यावरण का दोहन हो रहा है। साहित्य ने सदैव समाज को जागृत एवं मार्गदर्शन देने का काम किया है। आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक साहित्यकार और प्रकृति के बीच एक रागात्मक संबंध है। लेकिन यह भी सच है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समाज में कुछ चिंतनों द्वारा जागरूकता आयी है। अब पारिस्थितिक चिंतन का समय है। वर्तमान साहित्य में पर्यावरण संबंधी चर्चाएँ जोरों से चल रही हैउत्तर आधुनिक काल में रचित साहित्य में 'पर्यावरण विमर्श' नामक एक नए विमर्श का अविर्भाव हुआ है। यह विमर्श अस्मिता विमर्श है। जहाँ केंद्र में प्रकृति को रखा गया है। पर्यावरण विमर्श को समझने के लिए हमें कुछ विद्वानों की परिभाषाओं को देखना उचित होगा।

डॉ. पी गीता के अनुसार - "पारिस्थितिक विमर्श वर्तमान सापेक्ष से ज्यादा भविष्योमुखी है। पारिस्थितिक चिंतन सिर्फ मनुष्य केंद्रित चिंतन नहीं है बल्कि इसके केंद्र में पूरी दुनिया की चेतन-अवचेतन वस्तुएँ आ जाती है। जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध मानवराशि से है।"[1]पर्यावरण विमर्श जिसे अंग्रेजी में इको क्रिटिसिज्म (Ecocriticism) कहते है। यह साहित्यिक अध्ययन के लिए एक नया क्षेत्र है। इसके छोटी और सटिक परिभाषा शेरिल ग्लोत्फेलति (Cheryll Glotfelty) ने दी है। वे कहते हैं कि "Ecocriticism is the study of the relationship between literature and the physical environment"[2] अर्थात पर्यावरण विमर्श साहित्य और भौतिक पर्यावरण के संबंध का अध्ययन है।हिंदी-कन्नड़ उपन्यासों में पर्यावरण केंद्रित कई उपन्यास हैं, जो मुख्य रूप से पर्यावरण संतुलन, मनुष्य से उसका तादात्मय पर बल देते हैं।इक्कीसवीं सदी में 'विकास बनाम विनाश' के कारण मानव सभ्यता के सामने कई चुनौतियाँ आ खड़ी हुई है। उनमें बढ़ती हुई आबादी भी पर्यावरण प्रदूषण का कारण है, इसे हम झुटला नहीं सकते। साथ ही वर्तमान समय की सबसे बढ़ी चुनौती है 'विश्व तापाधिक्य' अथवा 'भूमंडलीय ऊष्मीकरण'। अंग्रेजी में इसे ग्लोबल वार्मिंग (Global warming) कहते है। पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि के कारण हिमनदियाँ तेजी से पिघल रही है और परिणाम स्वरूप समुद्रों के जल-स्तर में वृद्धि होती हुई दिखाई दे रही है। विश्व के कई सागर तटीय देशों के डूबने की संभावनाएँ बन रही है।'रत्नेश्वर' जी का हिंदी उपन्यास 'रेखना मेरी जान' इसी वैश्विक समस्या पर आधारित है। यह उपन्यास बांग्लादेश की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। वैश्विक तापाधिक्य के कारण ग्लेशियरों का बड़ा हिस्सा पिघल जाता है और समुद्र का जल स्तर बढ़ जाता है। और लगता है कि बांग्लादेश समुद्र में समाहित होने के कगार पर है। इस गंभीर समस्या और भयंकर आपदा का मार्मिक चित्रण उपन्यास में दृष्टिगोचर हुआ है। इस उपन्यास का एक अंश यह भी है कि किसी भयंकर आपदा से जनता को हानि नहीं पहुँचे इसीलिए सरकार ने एक उचित कदम उठाया है जिसका चित्रण उपन्यास में हुआ है। जैसे "अब बांग्लादेश के पास बहुत कम समय बचा है। इस बीच अधिकांश देशों ने बांग्लादेशियों को विज़ा देना बंद कर दिया है। हवाई जहाज भी बंद हो गया है। बांग्लादेश बातचीत कर रहा है कि ऐसे प्राकृतिक त्रासदी में भारत मानवीय आधार पर बांग्लादेशियों को अपनी सीमा में प्रवेश की इज़ाजत दे दे"[3] जल प्रलय के स्थिति आने पर सबसे अधिक तकलीफ सामान्य जनता को ही उठानी पड़ती है।वैज्ञानिक अध्ययनों से ग्लोबल वार्मिंग के लिए एक तथ्य को जिम्मेदार ठहराया गया है, वह है ग्रीन हाउस गैसों का बड़े स्तर पर वातावरण में उत्सर्जन। "दुनिया भर के शोधकर्ता ग्लोबल वार्मिंग के लिए विकसित देशों एवं कुछ विकासशील देशों के औद्योगिकरण एवं विलासितापूर्ण जीवन-शैली से उपजे कार्बन और उत्सर्जन को दोषी ठहरा रहे हैं।"[4] जलवायु परिवर्तन के कारण पूरे विश्व में पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। इसी समय बांग्लादेश पर 'मेरी जान' नामक विपदा आ जाती है। टी.वि पर आ रहे ब्रेकिंग न्यूज़ ने सबका ध्यान अपनी और खींचा।

"अंटार्कटिका आइस-शीट से एक लाख वर्ग किलोमीटर हिस्से के सिसकने का संकेत। उसने समुद्र तल को प्रभावित किया है। 'मेरी जान' तूफान बरगुना में ज़मीन से टकराया। तीन दिन बाद आने वाला तूफान समय से पूर्व ही बांग्लादेश के निचले हिस्से में घुसा"[5] मनुष्य ने अपनी बौधिक क्षमता के आधार पर बहुत से अविष्कार किए हैं। प्रकृति में होने वाली आपदाओं की जानकारी वह पहले से ही पता लगा लेता है, लेकिन बहुत बार प्रकृति के आगे मनुष्य को झुकना ही पड़ता है। प्रकृति के सामने मनुष्य के आविष्कार भी काम नहीं आते है। विकास के नाम पर पर्वतीय प्रदेशों में वृक्षों का हनन करते बड़े-बड़े इमारतें बनाई जाती है, इससे भूस्खलन हो जाता है और क्षण भर में पुल, इमारतें धाराशाही हो जाते है। आजकल प्राकृतिक विपदाएँ बढ़ गई है। सैलाब, तूफान, भूकंप, जल प्रलय मानो सामान्य से लग रहे है और इसका एक प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन भी है। मनुष्य ने हमेशा ही गर्व के साथ कहा है कि वह पृथ्वी का सबसे बुद्धिमान जीव है और उसे अपने अविष्कारों पर गर्व भी है। लेकिन प्रकृति का कहर जब बरसता है तब मनुष्य उसके सामने त्रण समान बन जाता है।'रेखना मेरी जान' के एक अंश इस प्रकार है " आज प्रकृति का ऐसा भयावह तांड़व! संगीत का एक नया सुर था या ढोल के चमड़े पर डंडे के बजड़ की जोरदार आवाज़! लोग बचेंगे तब न संगीत का नया सुर तलाशेंगें "[6]लेखक के इनह विचारों से स्पष्ट होता है कि मनुष्य जीवन की हानि होना निश्चित है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जगदीश बाबू के साथ घटी हुई घटना है।जगदीश बाबू जो उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है उनके पास एक विशेष गाड़ी थी 'जल थल' जो पानी में भी चल सकती थी। उन्हें लगता था कि यह गाडी उन्हें जल प्रलय से बचा सकती है, परंतु पानी की तेज धार वह सह नहीं सकी और पलट गई। "अततः जल थल का भरोसा भी जगदीश बाबू का साथ छोड़ चुका था, जिसे ख़ास तौर पर इंग्लैण्ड से मंगवाया था उन्होंने। जिस कश्ती के सहारे वे बेड़ा पार करने का सपना बुने हुए थे, पल भर में वह टूटकर बिखर गया था।"[7] 'रेखना मेरी जान' हिंदी उपन्यासों में ग्लोबल वार्मिंग पर अत्यंत सशक्त एवं जीवतं रूप से लिखा गया उपन्यास है।कन्नड़ उपन्यासों में भी इस विषय पर विस्तार से लिखा गया है। जैस सविता श्रीनिवास जी का उपन्यास 'गालक्के सिक्क चंदिर' एक वैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं पर तथा वैज्ञानिक आविष्कारों से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण है।चंद्रमा हमेशा साहित्य का अविभाज्य अंग रहा है।

कवियों के लिए प्रेरणादाई भी है। चंद्र को सौंदर्य की दृष्टि से ही साहित्य में बिंबिता किया गया है। यह उपन्यास में चंद्र सौंदर्य का उपमा नहीं मनुष्य का कॉलोनी बन गया है। विश्व के देशों ने चंद्र पर अपनी कॉलोनी बना ली है। इनका लक्ष्य है चंद्र को वास के लिए योग्य बनाना और आस पास के क्षुद्र ग्रहों से खनिजों का खनन करना। इरा और अवधूत इस उपन्यास के दो प्रमुख पात्र है। ये दो वैज्ञानिक चंद्रमा पर मानव द्वारा निर्मित कृत्रिम पर्यावरण में दो साल से रह रहे है। धरती पर वापस जाने की इच्छा तो उनमें सदैव से ही थी परंतु पर्यावरण प्रदूषण के कारण बिगड़ता हुआ पारिस्थितिक तंत्र को देखकर वे चिंतित भी होते है। इस उपन्यास के कुछ अंश इस प्रकार है " भूमिय मेलिन वायु मालिन्य हेच्चागिद्दरिंद हिम प्रदेश गलल्लि उषनांशद ऐरूपेरागि मंजु करगुत्तिदे। इदरिंद समुद्र मदृऊ ऐरूतिद्दु,तीर प्रदेशगलल्लिन जनरन्नु तेरवुगोलिसुव कार्य आगले शुरूवारिरबेकु"[8] वायु प्रदूषण, दवानल, विश्व तापाधिक्य के कारण हरे भरे जंगल भस्म हो रहे हैं समुद्रिक डूब की स्थिति उत्पन्न हो गई है और उन्हें लगता है कि चंद्र पर स्थित वे ही शायद भाग्यशाली होंगे। " विकास के मामले में मनुष्य ने एक लंबी यात्रा तय कर ली है, परंतु दुर्भाग्यवश हमने इस यात्रा के दौरान प्रकृति से जुड़ी चिंताओं को पीछे छोड़ दिया है। "[9] मनुष्य ने स्वयं को प्रकृति के केंद्र में रखा है लेकिन यह निर्विवाद सत्य है कि यह धरती समस्त जीवराशियों की है। धरती पर एकाधिकार स्थापित करने की जिद के कारण मनुष्य अन्य जीवों के लिए जीवन दुस्तर बना रहा है। पर्यावरण प्रदूषण से कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही है। दवानल से विश्व तापमान वृद्धि, वायु मालिन्य के साथ-साथ हजारों वन्य जीवी तथा वन संपत्ती भी नष्ट हो रही है। " अरण्य प्रदेशवादरे सहस्रारू प्राणि पक्षिगलु सस्य संकुल नाशवगिरबेकु"[10] वैश्विक गर्मी के कारण जलीय जीवों, पक्षियों तथा भूचरों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है।

निष्कर्ष :–'रेखना मेरी जान' और 'गालक्के सिक्क चंदिर' उपन्यासों ने समसामयिक परिस्थितिक यथार्थ के प्रति पाठकों को सतर्क बनाने की सार्थक कोशिश की है। पर्यावरण चिंतन समस्त जीवों के अस्तित्व से संबंधित विचार है। जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, जैसे वैश्विक समस्याओं को उदृघाटित करते हुए मनुष्य के 'विकास बनाम विनाश' मॉडल के प्रति प्रतिरोध भी वक्त करते है। पाठकों को धरती के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को याद कराते हुए आगामी पीढ़ियों के लिए धरती को सुरक्षित रखने पर बल देती हैं।

*****

संदर्भ ग्रंथ:-

1.साहित्य के पर्यावरण विमर्श, डॉ. रंजित , डॉ. सूर्या बोस, पृ.सं. 69, जवाहर पुस्तकालय, 2021
2.साहित्य के पर्यावरण विमर्श, डॉ. रंजित , डॉ. सूर्या बोस, पृ.सं. 19, जवाहर पुस्तकालय, 2021
3.रेखना मेरी जान, रत्नेश्वर, ब्लूवर्ड, पटना 2017, पृ.सं. 23
4.ग्लोबल वार्मिंग खतरे और समाधान, अरुण कुमार पाठक, शिवम् प्रकाशन इलाहाबाद पृ. सं. 21
5.रेखना मेरी जान, रत्नेश्वर, ब्लूवर्ड, पटना 2017, पृ.सं. 87
6.रेखना मेरी जान, रत्नेश्वर, ब्लूवर्ड, पटना 2017, पृ.सं. 134
7.रेखना मेरी जान, रत्नेश्वर, ब्लूवर्ड, पटना 2017, पृ.सं. 138
8.गालक्के सिक्क चंदिर, सविता श्रीनिवास, टोटल कन्नड़ बेंगलूरू 2020 पृ.सं. 176
9.पर्यावरणीय विमर्श, सैद्धांतिकी एवं अनुप्रयोग डॉ. प्रीति अग्रवाल, डॉ. अलका तिवारी, पृ.सं.9, वान्या पब्लिकेशंस कानपुर 2021
10.गालक्के सिक्क चंदिर, सविता श्रीनिवास, टोटल कन्नड़ बेंगलूरू 2020 पृ.सं. 176

श्री जवाहर ज्योति महाकाव्य में वर्णित परिस्थितियों का संक्षिप्त मूल्यांकन

डॉ.नीलम गुप्ता
शोध निर्देशिका
अरूणाचल यूनिवर्सिटी आफ स्टडीजए
नानसाईए अरूणाचल प्रदेश

विनीता शर्मा
शोधार्थिनी
अरूणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ़
स्टडीजए नानसाई अरूणाचल प्रदेश

सार:-रचनाकार ने इस महाकाव्य की रचना स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री विश्व राजनीति के शिखर पुरूष पं॰ जवाहरलाल नेहरू के कार्यवृत्त के साथ-साथ उनकी दूरदर्शी और पारदर्शी जीवन दृष्टि का काव्यात्मक भाषा में अनुकरणीय प्रेयोग किया है। संस्कृत महाकाव्य रचना की संस्कृत साहित्य में जो परम्परा रही है, कवि ने उस परम्परा को ही आगे नहीं बढ़ाया है अपितु महाकाव्य के रचना विधान को परम्परागत महाकाव्य की रचना प्रक्रिया से मुक्त रखकर महाकाव्य रचना के नवीन आदर्शपूर्ण प्रतिमानों की स्थापना की है। यह महाकाव्य 21 सर्गों में विभाजित है। प्रथम सर्ग का आरम्भ मंगलाचरण से किया है। कवि ने अपने मंगलाचरण में रचना विधायिनी शक्तिरूपा बुद्धि की वंदना की है। इस प्रकार महाकाव्य रचना का आरम्भ ही परम्परा मुक्त रचना पद्धति से किया है।

प्रस्तावना- श्री जवाहर ज्योति महाकाव्य में प्रयुक्त परिस्थितियों को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. भारत के स्वाधीनता-संग्राम से पहले की परिस्थितियाँ 2. स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद की परिस्थितियाँ भारत अंग्रेजों के अधिपत्य में होने के कारण अपने देश के इतिहास, भूगोल और संस्कृति से विमुक्त हो गया था। उसकी उदार और उदात्त संस्कृति साम्राज्यवादी मानसिकता से कलुषित और दूषित हो गयी थी। उसकी शिक्षा, उसका साहित्य, उसकी चिकित्सा, पद्धति और उसकी कलायें और उसका शिल्प सभी अपनी राष्ट्रवादी और मानववादी पहचान खो चुके थे। धर्म, दर्शन, शिल्प, व्यापार और राजनीति सभी ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रक्रिया से पराभूत विरूपित और विकृत हो गये थे। उनके पुनरूत्थान और पुर्जीवन की आवश्यकता थी। रचनाकार ने अपने महाकाव्य में ब्रिटिश साम्राज्य से अपने देश को स्वाधीन कराने के लिए स्वाधीनता संग्राम की आवश्यकता थी, इसका इतिहास-सम्मत यथार्थपरक काव्यमयी भाषा में वर्णन किया है। महात्मा गाँधी, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय और श्री अरविन्द आदि तपोनिष्ठ ऋषितुल्य महापुरूषों और दार्शनिकों के सत्प्रयत्नों से भारत दासता से मुक्त हुआ। इस मुक्ति आन्दोलन में सबसे अधिक रचनात्मक भूमिका तत्कालीन भारत के इतिहास-पुरूष जवाहरलाल नेहरू ने निभाई। उन्होंने विदेश में रहकर भारतीय संस्कृति के साथ-साथ विश्व सभ्यता और विश्व दर्शन का भी अध्ययन किया था। उन्होंने अध्यात्मकवाद और विज्ञानवाद दोनों में सामंजस्य स्थापित किया। भारतीयों को पश्चिम के विज्ञान से जुड़कर अपने रूढ़गतिहीन जीवन मूल्यों को प्रगतिशील बनाने की प्रेरणा दी। रचनाकार ने इस महाकाव्य में यह भी स्पष्ट किया है कि भारत को आजाद कराने में जितने महापुरूष उस समय सक्रिय थे, वे सभी पूरी तरह से राष्ट्रवादी थे। उनका चिन्तन भारत के अध्यात्मवाद से अनुशासित था। नेहरू ही एक ऐसे सजग और सतर्क, विद्रोही और क्रान्तिकारी नेता थे; जिनका चिन्तन गतिरूद्ध अध्यात्मवाद से पृथक विज्ञानोन्मुख मूल्यबोध पर आधारित था। उन्होंने भारतीयों को अपनी उदार और उदात्त परम्पराओं को बनाये रखते हुए वैज्ञानिक चिन्तन की ओर उन्मुख किया। नेहरू औद्योगिक क्रान्ति के प्रवर्तक रहे। संचार माध्यमों और परिवहन के क्षेत्र में पश्चिम की वैज्ञानिक तकनीक से जुड़े रहे। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए वह अनेक बार जेल गये। महात्मा गाँधी के द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन में नेहरू ने सक्रिय रूप से भाग लिया। नेहरू राजनीति के क्षेत्र में प्रखर चिन्तन और रचना धर्मी सोच वाले पहले व्यक्ति रहे; जिन्होंने अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ अनेक बार जेल की यातनायें भी सहीं। तत्कालीन समाज व्यवस्था, राजनैतिक विचार धारा, आर्थिक विषमता और शैक्षिक असमानता ने नेहरू को विश्व स्तरीय मानवीय मूल्यों से जोड़ा। नेहरू वैचारिक स्तर पर ऐनीबेसेन्ट की विचारधारा से भी प्रभावित हुए। उन्होंने विज्ञान से पुष्ट अध्यात्मवाद पर आधारित समाजवाद को महत्त्व दिया। हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के विकास के साथ-साथ

अंग्रेजी भाषा और उसके अध्यापन के मार्ग प्रशस्त करके भारतीयों को समन्वयवादी शिक्षा प्रक्रिया से जोड़ा। स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्य-समाज-सम्बन्धी सामाजिक आन्दोलन और राजा राममोहन राय के सती प्रथा विरोधी आन्दोलन ने नेहरू के समाजवाद को और गतिशील बनाया।रचनाकार ने अपने महाकाव्य में नेहरूकालीन भारत की सभी प्रकार की परिस्थितियों का यथार्थमूलक प्रयोग किया है। पूर्व और पश्चिम की विचारधारा के अन्तर को भी रचनाकार ने स्पष्ट किया है।

राजनीतिक-पं० रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने अपनी प्रसिद्ध काव्यकृति श्री जवाहर ज्योति महाकाव्य में स्वाधीनताप्राप्ति से पहले की राजनैतिक परिस्थितियों के साथ-साथ स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के भारत के राजनैतिक परिदृश्य का मार्मिक चित्रण किया है। ब्रिटिश सरकार के लोकतन्त्र विरोधी कार्य से मुक्त होने के लिए जवाहर लाल नेहरू ने उस समय के सबसे बड़े राजनैतिक दल कांग्रेस पार्टी से जुड़कर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वाधीनता -प्राप्ति की लड़ाई लड़ी। अंग्रेजों ने प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाकर बोलने की आजादी को छीन लिया था। भारत के कृषक वर्ग का जमींदारों द्वारा आर्थिक, शारीरिक और नैतिक शोषण हो रहा था। नारी-मर्यादा विखंडित हो रही थी। श्रमिकों से बेगार ली जाती थी।अंग्रेजों ने किसानों द्वारा उत्पादित अन्न के भंडार सुरक्षित रखे थे। अनाज के भाव तेज हो गये थे। परिणाम स्वरूप अंग्रेजों की इस खाद्यनीति ने बिहार में भुखमरी पैदा की। नेहरू ने तत्कालीन ब्रिटिश सरकार सरकार को पराजित करने के लिए कृषक वर्ग और श्रमिक वर्ग को संगठित किया। उस समय के पूँजीपति वर्ग को राष्ट्रभक्ति और मानव सेवा से जोड़ने के लिए आर्थिक सहयोग के लिए प्रेरित किया। उनसे एकत्रित धनराशि को दक्षिण अफ्रीका के विपन्न और त्रस्त भारतीयों की सहायतार्थ भेजा। कांग्रेस में विभिन्न राजनैतिक दलों को संगठित करने का प्रयत्न किया। नेहरू ने पूर्ण स्वाधीनता का लाहौर अधिवेशन में प्रस्ताव पारित कराया। उन्होंने समाजवादी, माक्र्सवादी और मुस्लिम लीग आदि राजनैतिक दलों को एकजुट होने का आह्वान किया। नेहरू के राजनैतिक आन्दोलन का सूत्रपात तत्कालीन सामाजिक विषमता और आर्थिक असमानता से हुआ। नेहरू वर्ग चेतना की अपेक्षा जाति चेतना में विश्वास करते थे। देश के सभी सामाजिक वर्गों को संगठित करके ही स्वाधीनता प्राप्ति की लड़ाई लड़ी जा सकती थी। वास्तव में इस सन्दर्भ में नेहरू का चिन्तन रूस के साम्यवादी नेताओं लेनिन और स्टालिन की विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित था। नेहरू यह समझते थे कि अकेले पूँजीपति वर्ग अथवा अभिजात वर्ग को साथ लेकर स्वाधीनता की लड़ाई नहीं जीती जा सकती। देश की सम्पूर्ण जनता को संगठित करके ही देश को विदेशी शासन से मुक्त कराया जा सकता है। नेहरू की यह समाजवादी विचारधारा तत्कालीन भारत के लिए ही नहीं आधुनिक भारत के लिये भी उपयोगी और प्रासंगिक है। समस्त राजनैतिक आन्दोलनों का उन्होंने बड़े ही दूरदर्शिता सूझबूझ के साथ संचालन किया। यह ही नहीं जिनेवा सम्मेलन और ऐलिजाबेथ के राज्याभिषेक में सम्मिलित होना और विश्व के अनेक देशों की यात्रा ने नेहरू के राजैतिक विचारों को केवल उग्र ही नहीं बनाया अपितु उनका परिमार्जन और परिष्कार भी किया। रचनाकार ने अपने महाकाव्य में यह बताया है कि नेहरू ने 18 वर्ष की आयु में ही राजनैतिक संघर्ष में भाग लिया। उन्होंने राजनैतिक संघर्ष में स्वयं रचनात्मक भूमिका का निर्वाह किया। साथ ही भारतीय युवा वर्ग को स्वाधीनता प्राप्ति के संघर्ष में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित भी किया, यथा-

अष्टाविंशतिवर्षाणि वयसः श्री जवाहर राजनैतिक संघर्षे यापयामास भारते।

रचनाकार ने अपने विवेच्य य महाकाव्य में यह स्पष्ट किया है कि नेहरू अपने जीविका-यापन के क्षेत्र को त्याग कर कांग्रेस से सम्बद्ध होकर स्वाधीनता प्राप्ति के संग्राम में कूद पड़े और पटना में बांकीपुर स्थान पर आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में भारतीय राजनीति का अध्ययन करने के उद्देश्य से सक्रिय भाग लिया। इससे उनके राजनैतिक अध्ययन का पता चलता है। यथ-

तदा पाटलिपुत्रडभूत् कांग्रेसस्याधिवेशनः
अध्येतुं राजनीतिं सः तत्र सम्मिलितोऽभवत्।

नेहरू का राजनैतिक चिन्तन गहन और व्यापक बन गया था। एक बार प्रयोग में उनके राजनैतिक भाषा का आयोजन हुआ। वहाँ एकत्रित जनसमुदाय में से जिन्होंने भी उनका भाषण सुना वे सभी उनके भाषण से अभिभूत हुये और सभी ने मुक्तकंठ से उनके भाषण-कला की प्रशंसा की और उनके राजनीति से जुड़े उत्साह को प्रशस्त किया। यथा-

आकर्णितं प्रयोगे यैस्तत्कृतं भाषणं तदा
तैस्तस्यापूर्व उत्साहः प्रशस्तो बहुभिर्जनैः

रचनाकार ने अपने इस महाकाव्य में जवाहरलाल नेहरू की उन राजनैतिक विशारदों में गणना की है जो भारत में प्राचीनकाल से ही पैदा होते रहे हैं और जिन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करते हुए उत्कृष्ट साहित्य की रचना की है। रचनाकार ने यह संकेत दिया है कि राजनीति से जुड़ा व्यक्ति सामान्य रूप से उत्कृष्ट साहित्य की रचना नहीं कर सकता परन्तु नेहरूजी ऐसे योग्य और दूरदर्शी राजनेता रहे हैं जिन्होंने विश्व राजनीति में अपना शीर्षस्थ स्थान बनाया और राजनीतिक कार्यों में व्यस्त रहते हुये भी उन्होंने मानवीय मूल्यों पर आधारित श्रेष्ठ साहित्य की रचना की। यथा-

साहित्योत्कृष्टसृष्टारः कुशला राजनीतिषु
देशेडस्मिन् बहवश्चासन् प्राचीनादेव कालतः

सामाजिक:-पं० रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने अपनी काव्यरचना श्री जवाहर ज्योति महाकाव्य में ब्रिटिशकालीन भारत की सामाजिक परिस्थितियों के स्वरूप को स्पष्ट किया है। उन्होंने इस महाकाव्य में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि अंग्रेजों के शासनकाल में भारत का आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक शोषण सुनियोजित ढंग से हुआ। ब्रिटिश सरकार ने जातिवाद और धर्म पर आधारित सम्प्रदायवाद को विकसित किया। साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था की सफलता सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने में निहित है। अंग्रेज शासकों ने भसारतीय किसानों का, देश के मजदरों का और विभिन्न कार्यक्षेत्रों से जुड़े कर्मकारों का निर्दयतापूर्वक शोषण किया। भारत में अंधविश्वासों, आडम्बरों, कुरीतियों और कुप्रथाओं को बढ़ावा दिया। उनका एक ही लक्ष्य था कि भारतीयों को जाति-पात, ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी, धार्मिक संकीर्णताओं में उलझाये रखना ब्रिटिश साम्राज्य की सफलता का आधार मानी जायेगी। नेहरू और महात्मा गाँधी ने अंग्रेज शासकों की स्वार्थपूर्ण कूटनीति को समझा और भारत को राजनैतिक और आर्थिक स्वाधीनता दिलाने का ही संकल्प और प्रयत्न नहीं किया अपितु भाषायी और सांस्कृतिक स्वाधीनता प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त किया। महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू दोनों ही सम्पर्क भाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। वे जानते थे कि सम्पर्क भाषा हिन्दी द्वारा ही भारत की जनता को एकजुट किया जा सकता है। इससे गोपाल कृष्ण गोखले के साथ-साथ नेहरूजी का देशप्रेम और देशवासियों की सेवा का कार्य व्यंजित होता है। नेहरू की परोपकारी निष्ठा, लोकहित की भावना और विश्वबन्धुत्व की भावना भी व्यंजित होती है। यथा-

यदा गोपालेन निजभरतभूमेः प्रसताम्
हितं ध्यात्वार्थार्थे समितिमुपयाताः
निगदिताः सहस्रं पंचाशहन मुपगतौऽसौ
निजभुव ददावफ्रीकार्थ भरतभूविरत्नः स नेहरूः'

नेहरूजी समरसावादी समाज के समर्थक रहे हैं। भारतीय समाज के निर्माण और विकास में कृषकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। नेहरू ने अवध क्षेत्र के किसानों के साथ रहकर उनकी सेवा ही नहीं की अपितु उन्हें अपनी जीवनशैली और कार्यशैली से सबसे अधिक प्रभावित किया। सन् 1919 ई० में नेहरू ने अवध क्षेत्र के किसानों को संगठित करके स्वाधीनता संग्राम की सफलता की पृष्ठभूमि तैयार की। यथा-

अड.क्चन्द्रांक चन्द्राब्दे (1919) कृषकेश्वधस्य च
अनेन यत्कृतं कार्य तेनासन् ते प्रभाविताः

नेहरू के समाजसेवी क्रान्तिकारी कार्यों से ब्रिटिश शासक विचलित हुये। उनकी समाज में बढ़ती हुई लोकप्रियता को बाधित करने के लिए अंग्रेज शासकों ने नेहरू को सन् 1921 ई० में छह मास के लिये प्रयाग स्थित कारागार में डाल दिया। यथा-

चन्दायुग्माड.क चन्दाब्दे (1921) गृहीतः
शासकैस्तदा षण्मासान्तं प्रयोगेडयं कारागारे तदाडवसत्

रचनाकार ने अपने महाकाव्य में यह दिखाया है कि नेहरू देश के शिखरपथ पर सीधे नहीं पहुँचे। पहले उन्होंने प्रयाग जनपद में स्थित नगर पालिका के प्रधान पद अध्यक्ष पद को अलंकृत किया। स्थानीय प्रशासन को साफ दूरदर्शी

और पारदर्शी बनाकर नेहरू ने अपनी लोक सेवा और समाज निष्ठा का संकेत दिया-

युग्मयुग्माड.क् चन्द्राब्दे (1922)
प्रयागनगरस्य चय पालिकायाः
प्रधानेडसी स्थानेडध्यक्षत्वमाप्तवान्

नेहरू ने दलितों के प्रति समाजसेवा के भाव से आकर्षित होकर सन् 1920 ई॰ में ब्रुसेल्श नगर में जब वहाँ के दलितों का वृहद् सम्मेलन हुआ तब उस सम्मेलन की सूचना पाकर भारत की कांग्रेस सत् सभा में श्री जवाहर लाल नेहरू को अपना प्रतिनिधि बनाकर उस सम्मेलन में भाग लेने हेतु भेजा। यथा-

रसयुग्माड.क चन्द्राब्दे (1920) ब्रुशेल्सनगरे यदा
तत्रत्यदलितानां यदभूत् सम्मेलनं महत्
तदास संसूचिता तेन देशकांग्रेससत्सभा
अयं तत् प्रातिनिध्येन तत्र सम्मिलितोडभवत्:

नेहरू दलित और निर्धन वर्ग की सेवा के लिये ही सन्नद्ध नहीं थे अपितु श्रमिकों की सामाजिक स्थितियों और उनकी दयनीय दशा में सुधार लाने के लिये भी उद्यत रहे। श्रमिकों को संगठित करने की भावना से सन् 1929 ई॰ में नागपुर क्षेत्र में सम्मेलन का आयोजन हुआ। सुयोग्य और मर्मज्ञ नेहरू ने भारतीय श्रमिकों के सम्मेलन की अध्यक्षता की। इससे उनका श्रमिक प्रेम और श्रम के प्रति निष्ठावान् व्यंजित होता है। यथा-

अस्मिन् वर्षे सुयोग्योऽयं नेता भारतवासिनाम्
क्षेत्रे नागपुरडध्यक्षः श्रमिणां सदसोऽभवत्

नेहरू की समाजसेवा उनकी सहृदयता और सदाशयता की बोध है। नेहरू पीड़ित जनसमुदाय के संरक्षक और उद्धारक रहे हैं। बिहार में भूकम्प पीड़ित देशवासियों की बिहार के मुजफ्फरपुर जनपद में जाकर तन, मन से सेवा की और इसके बाद जवाहर लाल नेहरू ने प्रयाग आकर वस्त्र, धन और अन्न एकत्रित करके भूकम्प पीडितों की सहायतार्थ बिहार भेजे। इसके साथ ही साथ जवाहर लाल नेहरू ने भारत में पाकिस्तान से आये शरणार्थियों से करूण कथा सुनकर और उनकी दयनीय दशा देखकर जवाहर लाल अश्रुपूरित नेत्रों से रूदनरत हो गये। इससे नेहरू की करूणा, परोपकार और अहिंसा की भावनायें व्यंजित होती हैं। यथा-

अनन्तरं विहारस्य भूकम्पेनातिपीडितां मुजफ्फरपुरं गत्वा सिशेवे
पीडितानयम् प्रयागे पुनरागम्य वस्त्राणि धनधान्यकम्
एकीकृत्य बिहाराय प्रैयॉछीजवाहरः शरणार्थिदशां दृष्ट्वा श्रुत्वाऽथ
करूणां कथाम् श्रूणां धारया यै हिं रूदन दृष्टो जवाहरः

विचारात्मक:-पं.रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने अपने प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ श्री जवाहर ज्योति महाकाव्य में उन परिस्थितियों का भी चित्रण किया है जिन्होंने तत्कालीन भसारत के प्रबुद्ध वर्ग को वैचारिक स्तर पर प्रेरित और प्रभावित किया। भारत में वेद, उपनिषद और गीता आदि धर्म ग्रन्थों के रचनाकाल से ही द्वैतवादी और अद्वैतवादी विचारधारा में प्रयोग और प्रचलन में विद्यमान थी। रचनाकार ने 'निम्बार्क शतकम्' और वल्लभाचार्य शतकम्' शतक काव्य कृतियों की रचना करके भारत की स्वाधीनता से पूर्व दार्शनिक पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है। इन्हीं दार्शनिक भक्त रचनाकारों से प्रेरित और प्रभावित होकर पराधीन भारत में समाज सुधार सम्बन्धी अनेक सामाजिक संस्थायें वैचारिक क्रान्ति के स्तर पर प्रयत्नशील रही। राजाराम मोहनराय का सती- प्रथा विरोधी वैचारिक संघर्ष, स्वामी दयानन्द सरस्वती का मूर्तिपूजा और अवतारवाद का निषेध करने वाला वेदों में वर्णित एकेश्वरवादी वैचारिक संघर्ष और 'ऐनी बेसेन्ट' का थियोसोफिकल संस्था से सम्बद्ध वैचारिक क्रान्तिमूलक संघर्ष भारत के बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरक और प्रोत्साहक सिद्ध हुये। महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू दोनों ने इन सभी को वैचारिक क्रान्ति का पोषक माना। महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू दोनों ही यह समझने लगे कि ब्रिटिशकालीन व्यवस्था को बदलने के लिए भौतिक आन्दोलन से पहले वैचारिक क्रान्ति आवश्यक है। वैचारिक स्तर पर एकरूपता पराधीन देश से मुक्ति का माध्यम बन सकती है। नेहरू भारतीय जीवन-पद्धति और विचारधाराओं से अवगत होते हुए भी वैचारिक स्तर पर फ्रांस की राज्यक्रान्ति और रस की सामाजिक क्रान्ति से सर्वाधिक प्रभावित हुए। उन्होंने वर्ग चेतना के साथ-साथ सर्वस्पर्शी राष्ट्रीय चेतना को सर्वाधिक महत्त्व दिया। सर्वस्पर्शी विचारधारा वाले बुद्धिजीवी सामाजिक क्रान्ति के संवाहक बन सकते हैं। रचनाकार ने नेहरूजी के इन्हीं वैचारिक संघर्षों और उनकी कार्यशील प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया है।नेहरूजी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के समय से ही वैचारिक स्तर पर अपने गृह-शिक्षक ब्रुक महोदय से सर्वाधिक प्रभावित हुये। उनके आरम्भिक शैक्षिक जीवन में ब्रुक महोदय के सहयोग से थियोसोफिकल सोसायटी के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। इसके पश्चात् इस संस्था की संस्थापक 'ऐनीबेसेन्ट' के आरम्भिक भाषणों ने नेहरू को गहराई तक प्रभावित किया। उनका जीवन-दर्शन थियोसोफिकल समिति के विचारों से अनुशासित और संचालित हुआ। यथा-

श्रीब्रुक्ससहयोगेन श्री जवाहर जीवने थियोसोफिकल
विचाराणां प्रभावः सुमहानभूत्
ऐनीबेसेन्ट प्रारब्धैर्भाषणैश्चापि भावितः
थियोसोफिविचाराणामयं श्री मान जवाहरः

नेहरू जी अपने जीवन में दार्शनिक स्तर पर रूस की साम्यवादी विचारधारा से सर्वाधिक प्रभावित रहे। यह साम्यवादी विचारधारा अपनी प्रकृति में सोम्यभाव की होने के कारण समतामूलक है। सर्वहारावर्ग की पीड़ा से उत्पन्न साम्यवादी विचारधारा समतामूलक समाजवाद का आधार है। नेहरूजी भारत में इसी विचारधारा का प्रसार करने के समर्थक रहे। उन्होंने विश्वशान्ति का आधार भी इसी विचारधारा को माना। विश्वशान्ति हेतु विश्व के विभिन्न देशों के सुधी विचारकों ने विश्व में समता, स्वाधीनता, और भ्रातृत्व भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से राष्ट्रसंघ की स्थापना की। इसकी स्थापना से नेहरूजी की हार्दिक अभिलाषा पूरी हुई। विश्व भ्रमण करने के बाद विश्व के प्रमुख प्रखर चिन्तकों से विचार विमर्श करने के बाद नेहरू के मन में यह धारणा स्थिर हुई कि विश्व के समस्त देश परस्पर विरोध और वैमनस्य के भाव त्यागकर यदि एकजुट हो जाते हैं तो सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है। साम्यवादी विचारधारा से जुड़कर और विश्व शान्ति की भावना से प्रेरित होकर समस्त विश्व के देशवासी यदि समता मूलक विचारों में आस्थावान् हो जायें तो समस्त विश्व में सुख,-शान्ति, सद्भावना और समरसता का आविर्भाव हो सकता है और विश्व के सभी देश वैचारिक स्तर पर प्रगतिशील जीवन मूल्यों से जुड़ सकते हैं। यथा-

देशाऑपि तथैवास्य विश्वस्य न विरोधिनः परस्परं भवेयुश्चेन्तदा शान्ति
सुनिश्चिता तदालोकस्य राष्ट्राणां सर्व एव हि मानवाः वसेयुः सुखतो लोके
समस्ते इति निश्चितम्।

जवाहरलाल नेहरू साम्यवादी विचारधारा के साथ-साथ अपने देश के पुराण ग्रन्थों में वर्णित विचारधारा से भी प्रभावित हुये। उन्होंने अपने बाल्यकाल में जिन पुराण ग्रन्थों का अध्ययन किया उनमें वर्णित विचारधारा उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में समाहित हो गयी और इनकी विश्व नीति का आधार स्रोत भी बनी। यथा-

पुराणादिप्रसिद्धा हि स्वबाल्ये या कथाः श्रुताः
श्रीजवाहरलालेन विस्मृता जीवने न ताः

जवहरलाल नेहरू की विदेशनीति मानवतावादी मूल्यों से निर्मित और विकसित हुई। विश्व के सर्वहारा वर्ग की शोषण की प्रक्रिया ने उनकी विदेश नीति को मानवीय मूल्यों से सम्बद्ध और पुष्ट किया। नेहरू सम्पूर्ण विश्व को एक आदर्शपूर्ण प्रगतिशील इकाई के रूप में देखने के पक्षधर रहे। अतः उनकी विदेश नीति ने सम्पूर्ण देश के चिन्तकों, बुद्धिजीवियों और सुधी राजनेताओं को आकर्षित किया और विश्व के सभी राष्ट्राध्यक्ष नेहरू द्वारा प्रतिपादित विदेश नीति के प्रशंसक, संरक्षक और सम्वर्द्धक रहे। यथा-

श्रीजवाहरलालस्य नीतिर्वैदेशिकी तथा
श्रेष्ठाऽभूदन्यराष्ट्रणि ह्याकृष्टाणि तयाऽभवन्

आन्दोलनात्मक:- रचनाकार ने अपने इस महाकाव्य में अहिंसात्मक आन्दोलनों की परिणति स्वाधीनताप्राप्ति में दिखाई है। नेहरू ने महात्मा गाँधी के आन्दोलनों से जुड़ी मानवतावादी विचारधारा का अपने सम्पूर्ण राजनैतिक जीवन में पूरी ईमानदारी और सॉचाई के साथ पालन किया। महात्मा गाँधी के नीतिनिर्देशक तत्वों को भारतीय संविधान के आधारभूत तत्व माना और अपने प्रधानमंत्री काल में विश्व को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए इन्हीं नीति निर्देशक तत्वों को आधारभूमि के रूप में अपनाया। जवाहर लाल नेहरू के बाद श्री लाल

बहादुर शास्त्री ने महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित और जवाहर लाल नेहरू द्वारा संचालित नीति निर्देशक तत्वों का अपने सम्पूर्ण राजनैतिक जीवन में पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ पालन किया। लाल बहादुर शास्त्री तक यह परम्परा जीवन्त और गतिशील रूप में बनी रही। इन्दिरा गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में इसका परिपालन नहीं हुआ। महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करने से पहले ही गतिरोध उत्पन्न हुआ।भारत के सभी कार्य अवरूद्ध हुये। इन अवरोधों को दूर करके समस्त कार्यों को गति देने के उद्देश्य से ही सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ। महात्मा गाँधी के मार्गदर्शन में नेहरूजी ने तत्कालीन असहयोग आन्दोलन को नई गति तथा नया मार्ग प्रदान किया। महात्मा गाँधी ने अंग्रेज शासकों के आश्वासन से स्थगित सविनय अवज्ञा आन्दालन को छह सप्ताह के बाद पुनः आरम्भ किया। जवाहर लाल नेहरू ने महात्मा गाँधी के परामर्श से देश में प्रथम मन्त्रिमण्डल का गठन किया। नेहरूजी ने प्रधानमंत्री पद का निर्वाहअपनी पूर्ण योग्यता और महानता के साथ जीवन पर्यन्त किया। अपने आन्दोलनों के क्रम में ही नेहरू ने महात्मा गाँधी के साथ सन् 1930 ई॰ में दांडी यात्रा का अनुगमन किया। यह यात्रा स्वदेशी आन्दोलन को प्रभावी बनाने के लिए अपने देश में ही नमक बनो के उद्देश्य से आरम्भ हुई थी।

निष्कर्ष-रचनाकार ने अपने विवेच्य महाकाव्य में पराधीन भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक आन्दोलनों को जन्म देने वाली परिस्थितियों का सजग होकर सजीव चित्रण किया है। स्वाधीनता से पूर्व भारत में अनेक समाज सुधार- सम्बन्धी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। उस समय के सबसे बड़े राजनैतिक दल कांग्रेस ने अन्य राजनैतिक दलों के साथ अनेक प्रकार के राजनैतिक आन्दोलनों का समारम्भ और संचालन किया। नेहरू सामाजिक आन्दोलनों से प्रेरित और प्रभावित हुए। उन्होंने तत्कालीन राजनैतिक जड़ता और अदूरदर्शिता को दूर करने के लिए अहिंसात्मक आन्दोलनों का आश्रय लिया। नेहरू से पूर्व भारत की राजनीति में गोपालकृष्ण गोखले और महात्मा गाँधी अहिंसात्मके आन्दोलन की सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार कर चुके थे। महात्मा गाँधी के राजनैतिक विचारों से प्रभावित लाला लाजपत राय, मदनमोहन मालवीय और मोतीलाल नेहरू भी महात्माजी के अहिंसात्मक आन्दोलनों से जुड़े। महात्मा गाँधी के सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलनों ने उस समय के प्रबुद्ध वर्ग को ही प्रभावित नहीं किया अपितु समस्त देश की जनता को भी अपनी ओर आकर्षित किया। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और स्वदेशी की भावना ने भारत की जनता में देशप्रेम और समाजसेवा के भाव उत्पन्न किये। इस प्रकार महात्मा जी द्वारा प्रवर्तित और पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा संचालित तत्कालीन भारत का असहयोग आन्दोलन सर्वस्पर्शी और सर्वोतोमुखी बन गया। महात्मा गाँधी का स्वर भारत की जनता का स्वर बन गया। उनका एक-एक कदम भारत की जनता के कदमों का प्रतिनिधि बन गया। नेहरू आन्दोलन स्तर पर महात्मा गाँधी के प्रशंसक और समर्थक ही नहीं रहे अपितु उनकी विरासत के संरक्षक और उत्तराधिकारी भी बने।

******

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. अंजु रस्तोगी (1988) भास, कालिदास, और भवभूति की पात्र कल्पना एवं चरित्र चित्रण, चै॰ चरण सिंह विश्वविधालय, मेरठ।
2. कुमारी रेखा रानी शर्मा (1984) हरविजयम् महाकाव्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, चै॰ चरण सिंह विश्वविधालय, मेरठ।
3. डा जीतराम कश्यप (1998) किरातार्जुनीयम के पात्रों का वनपर्व के सन्दर्भ में राजनीतिक विश्लेषण हिमाचल प्रदेश विश्व विधालय, शिमला।
4. डा दीनानाथ (1995) किरातार्जुनीयम एक संस्कृति अध्ययन हिमाचल प्रदेश विश्व विधालय, शिमला।
5. डा॰ आशा (1986) कालिदास के क्रियारूप का एकभाषिक अध्ययन, हिमाचल प्रदेश विश्वविधालय, शिमला।
6. मंजु उपाध्याय (1992) स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनैतिक चेतना आ॰मु॰वि॰वि॰ अलीगढ़।
7. रामभरोसे शर्मा (1980) महाकवि परिमल गुप्त द्वारा प्रणीत 'नवसाहसांक चरितम्' महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, चै॰ चरण सिंह विश्वविधालय, मेरठ।
8. वीना अग्रवाल (1978) अश्वघोष और कालीदास के जीवन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन आ॰मु॰वि॰वि॰ अलीगढ़।
9. सुरेन्द्र कुमार (1984) औचित्स सिद्धान्त की दृष्टि से किरातार्जुनीयम महाकाव्य का अध्ययन, चै॰ चरण सिंह विश्वविधालय, मेरठ।

सूत्रधार: भारतेन्दु

पूनम शर्मा

शोधसार:- नाटक में सूत्रधार अपनी विशेष भूमिका में आकर नाटक को उसकी सारस्वता के साथ दर्शक/पाठक तक पहुँचाता है। नाटक अपनी सम्पूर्णता में कुछ गहरे उद्देश्यों को लेकर चलता है। भारतेन्दु ने भी अपने साहित्य कर्म में सूत्रधार की भूमिका निभाते हुए पाठक/दर्शक को एक सूत्र से जोड़े रखा, जहाँ केवल निशाना मछली की आँख पर ही था। भारत की पतनशील अवस्था के कारणों को कहीं गहरे में जाँच चुके थे भारतेन्दु इसलिए भारतेन्दु ने अपने साहित्यकर्म में उन सभी बिन्दुओं को उठाया जहाँ भारतीय संस्कृति की जड़े कहीं गहरी थी किन्तु उन जड़ों को काटने वालों की कमी भी नहीं थी। पश्चिमी संस्कृति के पदार्पण और भारतीय युवाओं का उसके प्रति लगाव भारतेन्दु को खल रहा था इसलिए वे लगातार इस पक्ष को सामने रख रहे थे कि उपनिवेशवादी सोच, मदिरा, आलस्य, विवेकहीनता के क्या परिणाम हो सकते हैं? 'भारत-दुर्दशा' नाटक में 'भारत भाग्य' का कटार मारकर आत्महत्या कर लेना भारतेन्दु की उस दूरदृष्टि का परिचायक है जहाँ पहुँचने में हमें सालों लग गए। स्त्री की समाज में भागीदारी, पश्चिमी अवसरों का लाभ उठाने की सोच देना ही उन्हें कालजयी सिद्ध करता है। समय की सीमाओं से परे उनकी रचना प्रत्येक कालखंड में अपनी सजीव उपस्थिति दर्ज कराती है।

बीज-शब्द:- सूत्रधार, सारस्वता, उपनिवेशवादी, अस्मिता, विश्वगुरू, प्रेक्षकागृह

नाट्य सहित्य में सूत्रधार की महत्त्पूर्ण भूमिका होती है, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। जब भी हम नाटक पढ़ने अथवा देखने बैठते हैं तो सूत्रधार ही सबसे पहले आकर नाटक से हमारा परिचय करवाता है और नाटक के बीच-बीच में आकर कुछ ऐसे ताने-बाने बुनता है कि परिस्थितियाँ, घटनाएँ अथवा पात्रों की मनोदशा शीशे के समान साफ दिखाई देने लगती है। जब भी भारतेन्दु को पढ़ने बैठी तो भारतेन्दु मुझे सूत्रधार की भूमिका का निर्वाह करते दिखाई दिए। सूत्रधार की मुस्तैदी दर्शकों/पाठकों को एक सूत्र से बाँधे रखती है, उन्हें नई-नई स्थितियों की जानकारी देती रहती है। भारतेन्दु ने भी अपने साहित्यकर्म के माध्यम से भारतीयों को उनकी यथार्थ स्थिति से अवगत करवाया सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कोई पक्ष उनकी सूक्ष्म दृष्टि से छूट नहीं पाया। भारतीय समाज की विकट स्थिति, उसमें फैली धर्मान्धिता, जातिगत संकीर्णता भारतेन्दु को क्षुब्ध कर रही थी, जिसके खिलाफ एक ऐसे जनमत निर्माण की आवश्यकता थी जो अपनी सारस्वता के साथ नवनिर्माण करे। जब भारतेन्दु की बात करते हैं तो उसके पीछे उन आन्तरिक कारणों की पड़ताल आवश्यक हो जाती हैं जो कहीं-न-कहीं भारतीयों को आगे बढ़ने से रोक रही थी।

"रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माहि घुसाये,
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटहिं चलाये।
जाति अनेकन कही नीच अरू ऊँच बनायो,"
खान-पान सम्बन्ध सो बरनि छुड़ायो।"[1]

आगे आने वाली युवा-पीढ़ी का अपने समय के समाज को एक-नई दिशा देना आवश्यक था इसलिए सूत्रधार के रूप में भारतेन्दु हमारे सामने यह विचार रख रहे थे कि जातिगत भेद-भाव से ऊपर उठकर सोचने की आवश्यकता है। फैशन, सिफारिश, मदिरा में हम पाश्चात्य की नकल करते हैं किन्तु धार्मिक संकीर्णताओं को अपनाते वक्त हमें पश्चिम स्मरण नहीं होता। भारतेन्दु पश्चिम की भोगवादी प्रवृति के पक्षधर नहीं थे लेकिन उनकी अच्छाईयों से मुँह भी नहीं मोड़ना चाहते थे इसलिए 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' में कहते हैं "अंगरेजों के राज्य में सब प्रकार का सामान पाकर अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करैं तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है ग् ग् ग् ग् ग् वैसे ही अंगरेजों के राज्य में भी जो हम कुएं के मेंढक, काठ के उल्लू, पिंजड़े के गंगाराम ही रहैं तो हमारी कमबख्त कमबख्ती फिर कमबख्ती है।"[2] इस तरह के संदर्भो के तहत उन पर अंग्रेज भक्त होने का आरोप भी लगाया जाता है किन्तु यहाँ भारतेन्दु अंग्रेजों की भक्ति नहीं कर रहे बल्कि सूत्रधार की भाँति हाथ लगे अवसरों को जाम्बवन्त की भाँति हनुमान को उनकी शक्ति से परिचित करवा रहे हैं और यह शक्ति का स्मरण केवल विचार देकर ही नहीं रह जाता बल्कि उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं - "बहुत लोग यह कहेंगे ग् ग् ग् ग् इंग्लैंड का पेट भी कभी यो ही खाली था। उस ने एक हाथ से अपना पेट भरा, दूसरे हाथ से

उन्नति की राह के काँटों को साफ किया।''[3] भारतेन्दु दूरदर्शी थे पूँजीवादी साम्राज्यवाद के खतरे को भाँप गए थे, सामाजिक दृष्टि से फैली विषमता उनकी आँखों के सामने थी, आर्थिक दृष्टि से जो देश सोने की चिड़िया कहलाता था वो चिड़िया कहीं सुदूर पार जा बसी थी। पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते चरणों ने भारतीय संस्कृति को अपाहिज कर दिया था, सामान्य नागरिक देखकर भी इसे अनदेखा कर रहा था या यह कह लीजिए कि 1857 की क्रांति ने उन्हें थका दिया था उस थकी-हारी जनता, जिसमें प्रहार करने की क्षमता ही नहीं थी उसमें शक्ति का संचार, चेतना जगाने का काम भारतेन्दु कर रहे थे। भारतेन्दु का प्रयास भारतीयों के अन्तस में उस बीज को बोना था जो बड़ा होकर मजबूत संस्कृति युक्त तना धर्म रूपी शाखाएँ, स्वावलम्बन की हरी पत्तियों से भरा होगा इसलिए भारतेन्दु बार-बार भारतीयों के स्वाभिमान पर चोट करते हैं। 'भारत-दुर्दशा' नाटक में भारत ''फटे कपड़े पहने, सिर पर अर्द्धकिरीट और हाथ में टेकने की छड़ी लिए दिखाई देता है जो साक्षात् उसके परावलम्बन की ओर संकेत करती है। भारत की ऐसी दुर्दशा देखकर कोई भी प्रेक्षक, प्रेक्षकाग्रह से खाली नहीं जा सकता, वह अपने साथ यह विचार लेकर ही जाएगा कि अब भारत को इस स्थिति से मैं निकालूँगा ही। भारत को स्वावलम्बी बनना ही होगा और जैसे ही दर्शक के मन में भारत के प्रति उत्साह, अपने को उस स्थिति से बाहर निकालने की चाह पैदा होती है वहीं भारतेन्दु जीत जाते हैं। भारतेन्दु का सपना बड़ा था, वह कुछ लोगों के बल पर पूरा नहीं हो सकता था किन्तु उस समय करने की बात तो दूर कहिए ऐसा सोचने की इजाजत भी नहीं थी। 'भारत-दुर्दशा' का छठा अंक जहाँ कुछ सभ्य लोगों की कमेटी इस पर विचार कर रही है किन्तु डिसलायल्टी आकर उन्हें पकड़ने का उपक्रम करती है इसलिए भारतेन्दु ने नाटकों के माध्यम से अपनी बात जन-जन तक पहुँचानी चाही। साहित्य सृजन की इच्छा और उसे समाजोपयोगी बनाने की चाह ने भारतेन्दु से ऐसे नाटक लिखवाये जिन्होंने समाज को एक नयी दिशा दी। उनके साहित्य-सृजन की इच्छा के पीछे समाज संस्कार और देश-वत्सलता का उद्देश्य था। अंग्रेजो के राज में जहाँ भारत का सारा धन विदेश ले जाया जा रहा था वहाँ समाज में फैली कुरीतियों ने भी, देश के सांस्कृतिक वैभव को नष्ट किया था। आलस्य, मदिरा, जात-पात, रोग, सिफारिश, फैशन के बढ़ते चलन ने अज्ञानता और बुद्धिहीनता को जन्म दिया था, जिसके चलते भारत की अस्मिता की रक्षा आवश्यक थी। धर्म के नाम पर होने वाले माँस-भक्षण और उसे युक्तियुक्त सही ठहराया जाने ने कहीं-न-कहीं भारतेन्दु को विचलित कर दिया था, ऐसे पाखण्ड फैलाने वालों का विरोध भारतेन्दु साहित्य के माध्यम से करते हैं-

''ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरू सैयद सिख पठान,
दे बताइ मोहि कौन जो करत न मदिरा पान।
पियत भट्ट के ठट्ट अरू गुजरातिन के वृन्द,
गौतम पियत अनन्द संग पियत अग्र के नन्द।
ब्राह्मण सब छिपि छिपि पियत जामे जानि न जाय,
पोथि के चोंगान भरी बोतल बगल छिपाय।।''[4]

भारतेन्दु ने समझ लिया था कि भारत की संस्कृति को पल्लवित करने वाली धार्मिक मान्यताएँ अब गल चुकी है। ऊँच-नीच, पण्डित-भड़ुए सभी एक समान हो गए हैं। समाज में फैली झठी-प्रतिष्ठित होने की मान्यता, स्वार्थ-लिप्सा की भावना, अपने बोलबाले के साथ मौजूद हैं परन्तु टके सेर बिकने वाली भाजी और खाजा, 'भाजी' अर्थात् जिनका कोई मूल्य नहीं 'खाजा' अर्थात् हमारी अमूल्य सांस्कृतिक परम्पराएँ, नैतिक मूल्य। सभी का मूल्य समान करके अंग्रेजी सत्ता ने हमारी अस्मिता पर धावा बोल दिया था, जिससे भारतेन्दु ने हमें परिचित करवाया और भाजी और खाजा का मूल्य टके सेर होने से पश्चिम की जिस उपनिवेशवादी सोच की ओर भारतेन्दु संकेत कर रहे थे, वह कोई दूरदर्शी ही कर सकता था। पग-पग पर भारतेन्दु भारतीयों के मार्गदर्शक बनें क्योंकि इस उपनिवेशवादी सोच के तहत भारत की न्याय-व्यवस्था, नैतिक व्यवस्था चौपट हो रही थी। जब हम 'अंधेर नगरी' की बकरी मरने वाले दृश्य को देखते हैं तो वहाँ का रक्षक ही भक्षक बन जाता है। वहाँ आम-आदमी को जीने तक का अधिकार नहीं दिया जाता क्योंकि कब वह व्यवस्था के चक्रव्यूह में अभिमन्यु की भाँति फँसा छटपटा रहा होगा, वह स्वयं नहीं जानता। गोबरधनदास की भी वही स्थिति है, वह इस अंधेर नगरी में टके सेर मिलने वाली सुविधाओं से खा-खा कर मोटा हो गया है, और बकरी मरने के अपराध में किसी-न-किसी को तो दण्ड देना ही है इसलिए फाँसी का फंदा केवल गोबरधनदास के गले में ही फिट बैठता है। 'अंधेर-नगरी' के इस अंधेर में से यदि कोई भारत को निकाल सकता है तो वो भारतेन्दु ही थे और भारतेन्दु ने महन्त के रूप में आकर रास्ता दिखा भी दिया यदि भारतीयों ने विवेक से काम नहीं लिया तो अन्त निश्चित है परन्तु भारतेन्दु को इस तरह का अन्त ग्राह्य नहीं था इसलिए उन्होंने पीड़ा और भययुक्त जनता को लोकमंगल का रास्ता दिखाया और उस बुद्धिहीन राजा को ही सूली पर चढ़ा दिया। यहाँ केवल नृशंस, अन्यायी राजा ही सूली पर नहीं चढा बल्कि बैर, फूट का बीज बोने वाले, रिश्वत का चूरन खाकर हजम करने वालों का अन्त भी भारतेन्दु दिखाते है। किसी भी सहित्यकार की साहित्य के प्रति ईमानदारी आवश्यक है, भारतेन्दु ने इस ईमानदारी को निभाया है। भारतीय समाज ने स्त्री को दोयम दर्जे में रखा, जिससे उनका पिछड़ना अवश्यम्भावी था इसलिए भारतेन्दु, 'नीलदेवी' की भूमिका में लिखते हैं- ''जिस भाँति अंग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी-लिखी होती हैं, घर का काम-काज सम्भालती हैं, अपने सन्तानगण को शिक्षा देती है। अपना स्वत्व पहचानती हैं। अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति-विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को व्यर्थ गृह-दास्य और कलह ही में नहीं खोती''[5] भारतेन्दु स्त्री जाति को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते दिखाई देते हैं क्योंकि उनके अनुसार समाज-संस्कार और देश-वत्सलता भी नाटक के उद्देश्य हैं। देश के प्रति गहरा प्रेम और समुन्नत समाज की स्थापना के लिए वे किसी राजनीतिक कुचक्र के तहत लोभ-लालच का शिकार नहीं होते बल्कि अंग्रेजों की चाटुकारिता कर पदक प्रान्त करने वालों को आइना अवश्यक दिखाते हैं। 'प्रेमयोजिनी' में वे लिखते हैं-

''अमीर सबै झठे और निन्दक कर घात-विश्वासी।
सिपासी डर पुंकने सिह बोलै बात अकासी।''[6]

भारतेन्दु का सहित्य समाज में आविर्भाव उस समय हुआ, जब भारतीय समाज को उनकी आवश्यकता थी। अंग्रेजी राज में अपनी बात रखना उतना आसान नहीं था, जिसका स्पष्ट उल्लेख हमें 'भारत-दुर्दशा' में मिलता है और फिर यदि कहीं अपनी बात कह भी दी जाए तो कितने लोगों तक पहुँचेगी? भारतेन्दु, भारत की दुर्दशा को जन-जन तक पहुँचा उन्हें जागृत करना चाहते थे जो उस समय बिल्कुल आसान नहीं था इसलिए उन्होंने 'कविवचन सुधा' की विज्ञप्ति में अपनी बात रखी-''भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय होने की आवश्यकता है। इस विषय में बड़े-बड़े लेख और काव्य-प्रकाश होते हैं किन्तु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तके बनें और वे सारे देश और गाँव-गाँव में साधारण लोगों में फैलेंगी, इसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्राम गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है, उनता साधारण शिक्षा से नहीं होता।''[7] इस प्रकार सर्वसाधारण तक अपनी बात को पहँुचाने का जो अचूक तरीका भारतेन्दु ने निकाला, वह अप्रतिम रहा। अपनी भाषा को व्यवहार में लाने की जो मुहिम भारतेन्दु द्वारा आरम्भ की गई थी, वह आज भी प्रासंगिक है।

भारतेन्दु बाबू का नाटक ''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' मांस-मदिरा में लिप्त समाज की चिन्ता में लिखा गया दिखाई देता है, जहाँ वे माँस भक्षण के पीछे शास्त्र के तर्क भी रखते हैं। पुरोहित जब यमराज के सम्मुख उपस्थित होता है तो उसके तर्क देखिए- ''मैने जो बकरे खाये वह जगदम्बा के सामने बलि देकर खाये अपने हेतु कभी हत्या नहीं की ग् ग् ग् ग् और महाराज, मैं अपनी ग्वाही के हेतु बाबू राजेन्द्रलाल के दोनों लेख देता हूँ, उन्होंने वाकय और दलीलों से सिद्ध कर दिया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं, आगे के हिन्दू सब खाते-पीते थे। आप चाहिए एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल मंगा के देख लीजिए।''[8] और भारतेन्दु यमराज के मुख से कहलवाकर उसे सूचीमुख नामक नरक में डलवा देते हैं भारतेन्दु का पूरा प्रयास समाज की उस प्रत्येक गतिविधि को सुधारने का था, जो हमें अधोगति की ओर ले जा रही थी।युद्ध चर्चा के दौरान नीलदेवी अपने स्वत्व का परिचय देती दिखाई देती है-''नीलदेवी' तो भी इन दुष्टों से सदा सावधान ही रहना चाहिए।''[9]किन्तु पुरूषसत्ता उसकी सोच को उतना महत्त्व नहीं देती यदि समय रहते सूर्यदेव ने रानी नीलदेवी की बात को प्राथमिकता दी होती तो भारत का इतिहास बदल गया होता। बेशक से सूर्यदेव के पास असाधारण राजपूती उत्साह और शक्ति तो थी परन्तु नीलदेवी जैसी स्त्री सुलभ सतर्क रहने की अन्तर्भेदी दृष्टि नहीं थी, इसलिए हमें सूर्यदेव जैसा वीर

शासक खोना पड़ा तब रानी नीलदेवी अधीनस्थता की स्थिति से बाहर निकलकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व का परिचय देती है। जातीय अस्मिता, रक्षा और स्वतंत्रता का प्रश्न अपने पूरेपन के साथ नाटक में उभरता है। भारतेन्दु भारत को उसके पूरे सम्मान के साथ प्रतिस्थापित करना चाहते थे इसलिए नीलदेवी भी अधर्मयुद्ध से पीछे नहीं हटती क्योंकि विदेशी आक्रान्ताओं को अपनी मातृभूमि का अपमान करने की इजाजत देने से तो बेहतर होगा अधर्मयुद्ध की शरण में जाना। भारतेन्दु भी अंग्रेज़ो की कुटिल और अधर्म की नीतियों को बेहतर तरीके से समझ रहे थे इसलिए वे सभी को एकमत होने पर जोर देते हैं, इस घोर निराशा की स्थिति में अपने पुरूषत्व अथवा अहम् को प्राथमिकता देने की आवश्यकता नहीं अन्यथा सूर्यदेव की भाँति नेतृत्वहीनता के संकट को झेलने की स्थितियाँ पैदा हो जाएँगी। भारतेन्दु की क्रियाशील लेखनी सदैव संस्कृति की रक्षा में तत्पर दिखाई देती है। इस संस्कृति की रक्षा में वे मनुष्य को केन्द्र में रखकर चलते हैं क्योंकि यदि मनुष्य अपनी संस्कृति और सही-गलत को पहचान लेगा तो सभी समस्याओं का समाधान सम्भव है इसलिए उनका सारा प्रयास मनुष्य को जगाने का है-

"जागो जागो रे भाई !सोअत निसि बैस गँवाई। जागो जागो रे भाई।"[10]

भारतेन्दु जानते थे कि यदि भारतीय अपनी आत्मिकता की रक्षा करते हैं, उसके उत्थान का प्रयास करते हैं तो संस्कृति की रक्षा स्वयंमेव ही हो जाएगी क्योंकि हमारी संस्कृति ही हमारी ताकत है, उस ताकत को बरकरार रखने के लिए बदलावों की मुहिम चलनी चाहिए, इसलिए भारतेन्दु भारत की तत्कालीन स्थिति का यथार्थ वर्णन करते हैं, भारतेन्दु पददलित, आत्मगौरवहीन भारतीय जाति को देख रहे थे, अंग्रेज़ो के आने से भारतीयों का आत्मसम्मान खत्म हो चुका था लेकिन उस आत्मगौरव की रक्षा होनी चाहिए अन्यथा भारतीय केवल इतिहास बनकर रह जाएंगे। आत्मगौरव की इसी सुरक्षा के लिए भारतेन्दु ने अतीत के उन गौरव क्षणों को लेखनीबद्ध किया, जिन्होंने भारत को जगतगुरू के रूप में स्थापित किया था

"सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो।।"[11]

इस अतीत गौरव-गान के माध्यम से भारतेन्दु भारत के प्रति वह प्रेम और आस्था का भाव जागृत करना चाहते हैं जिसके बल बूते पर पुनः स्वतंत्रता प्राप्ति हो सकती है। वर्तमान सन्दर्भो में जब भारत की आबो-हवा बदल रही है। पश्चिम की प्रत्येक गतिविधि, भारत में अपने पैर पसार रही है, वहाँ इन गतिविधियों के तहत स्वार्थ, अकेलेपन, एकल परिवार, निज भाषा के स्थान पर पश्चिम की भाषा पर निर्भरता तथा अविश्वास ऐसे यक्ष प्रश्न है जिनके हल भारतेन्दु ने अपने समय में ही दे दिए थे । देर से ही सही स्वतंत्रता मिली परन्तु आज स्वतंत्र भारत को भारतेन्दु की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। एकता, विवेक, संस्कृति की रक्षा, नारी के महत्व जैसे गुरूमंत्र वे हमें देकर गए है, जिसके बल पर भारत विश्वगुरू की उपाधि प्राप्त करेगा यह निश्चित है। प्रत्येक नाटक में सूत्रधार के रूप में उपस्थित भारतेन्दु शखनाद कर राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाते हैं जो सार्वकालिक और सार्वभौमिक है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1.भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली-1, सम्पादक ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली-2, 2008, पृष्ठ 118
2.भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली भाग-6, सम्पादक ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली-2, 2008 भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है, पृष्ठ 67
3.वही, पृष्ठ 66
4.भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली भाग-1, सम्पादक ओमप्रकाश सिंह, नाटक - भारत दुर्दशा, पृष्ठ 124, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली-2, 2008
5.वही, नाटक - नीलदेवी - भूमिका भाग, पृष्ठ 303
6.वही, नाटक - प्रेमजोगिनी, पृष्ठ 95
7.भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली भाग-6, संपादक ओम प्रकाश सिंह, जातीय संगीत, पृष्ठ 102, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली-2, 2008
8.भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली भाग-1, सम्पादक ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली-2
9.वही, नाटक नीलदेवी, पृष्ठ 305
10.वही, नाटक भारतदुर्दशा, पृष्ठ 132
11.वही, नाटक भारतदुर्दशा, पृष्ठ 113

येछे दरजे ठंचि के उपन्यास 'लिङझिक' में परिलक्षित पीढ़ियों के बीच संघर्ष

प्रफुल्ल कुमार नाथ
प्रोफेसर, असमीया विभाग
गुवाहाटी विश्वविद्यालय

डिम्पी रानी बर्मन
शोधकर्ता, असमीया विभाग
गुवाहाटी विश्वविद्यालय

शोध सारांश: समाज गतिशील है। समय के साथ लोगों में बदलाव आया है और समाज में प्रचलित मानदंड भी बदल गए हैं। शिक्षा प्रणाली के विस्तार और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आगमन के साथ, लोगों ने आधुनिक युग के साथ तालमेल बिठाने के लिए खुद को ढाल लिया है। हालाँकि, कभी-कभी समाज में आवश्यकता से अधिक परिवर्तनों के कारण संघर्ष पैदा हो जाता है। जो लोग पुराने जमाने के रीति-रिवाजों, मूल्यों और विश्वासों का पालन करते हुए बचपन से लेकर बुढ़ापे में चले गये हैं, उन्हें रातों-रात उनके दिमाग से मिटाना आसान नहीं है। हालांकि, अगर हम इसे जल्दी और जबरन बदलने की कोशिश करते हैं, तो यह कभी-कभी लोगों और समाज के विवेक को नष्ट कर सकता है। समाज के इस पहलू के आधार पर विभिन्न भाषाओं में साहित्य की कई अलग-अलग श्रेणियां हैं। अरुणाचल प्रदेश के लेखक येछे दरजे ठंचि, जिन्होंने कई किताबें लिखी हैं और असमीया साहित्य पर अपनी छाप छोड़ी है,उनके उपन्यास "लिङझिक" इसी पहलू पर आधारित है। हमारा पेपर इस उपन्यास में परिलक्षित पुरानी और नई पीढ़ियों के बीच संघर्ष पर प्रकाश डालने का प्रयास करेगा।

बीज शब्द: पीढ़ी, समाज, परिवर्तन, प्रथा, संघर्ष

प्रस्तावना: एक समाज बच्चों, युवा और बूढ़े से बनता है। कुछ नई पीढ़ी आती है और कुछ बुजुर्ग बन जाते हैं। समाज के विकास के लिए दोनों वर्ग की सोच जरूरी है। बुजुर्गों के आजीवन अनुभव और युवाओं के नए विचारों और आदर्शों के साथ समाज प्रगति की ओर बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक हमेशा दूसरी पीढ़ी का पूरक होता है। हालांकि, कभी-कभी जी दो पीढ़ियों के बीच बड़े समय अंतराल के कारण संघर्ष होता है। यह संघर्ष एक ही घर में रहने वाले माता-पिता और बच्चों के बीच भी हो सकता है। जब युवा पीढ़ी किसी ऐसे मूल्य से घृणा करती है और नए दृष्टिकोण से देखकर उसे स्वीकार नहीं करता है जिसे बड़ों ने जीवन भर अच्छा समझ के पालन करके आ रहे हैं और यदि बुजुर्ग समझने के बजाय इस बात से अपमानित महसूस करते हैं तब समाज को टूटने में देर नहीं लगता है। दो वर्गों के बीच यह अंतर अतीत में मौजूद रहा है और भविष्य में भी बना रहेगा, क्योंकि समय हमेशा बदलाव लाता है। येछे दरजे ठंचि का उपन्यास "लिङझिक" समाज के इस पहलू पर प्रकाश डालता है। उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के चेरदुकपेन समाज के विभिन्न पहलुओं और विश्वासों को उनकी शादियों और अन्य के माध्यम से चित्रित करता है। उनका उपन्यास परंपरा को लेकर दो पीढ़ियों के बीच संघर्ष की एक ज्वलंत तस्वीर पेश करता है।

"लिङझिक" उपन्यास का विषय: उपन्यास का मुख्य पात्र, प्रेम टाछि, अरुणाचल प्रदेश में एक ई.ए.चि. के रूप में काम करता है। उनके रीति-रिवाज के अनुसार अपनी बुआ के बेटे दरजे चेवाङ के लिए उनकी शिक्षित बहन डिमा लामु का अपहरण का बात सुनकर अरुणाचल प्रदेश में बाहर से काम करने आए कुछ लोग प्रेम टाछि का तिरस्कार करते हैं और इसलिए वह गुस्से में विरोध करने के लिए घर पर एक पत्र लिखता है। घर लौटकर, उसने दोनों पक्षों के बीच बातचीत की और दरजे चेवाङ को झठ बोलकर किन्नर घोषित किया और अपनी बहन को घर वापस लाया। बाद में दरजे चेवाङ को इस बारे में पता चला और वे क्रोधित हो गए। दरजे चेवाङ ने एक पुरानी परंपरा को तोड़ने के लिए प्रेम टाछि के कार्यों का बदला लेने के लिए एक और परंपरा को चोट पहुँचाता है। चेरदुकपेन जनजाति मान्यता के अनुसार लड़की के जीवित रहते हुए विवाहित पुत्री के ससुर के घर से 'गा-धन' मांगना अपराध है। एक विवाहित लड़की की मृत्यु के बाद ही उसका जन्म परिवार उस पर 'गा-धन (पैसा, अन्य मूल्यवान चीजें आदि) ' का दावा कर सकता है। लेकिन वो प्रतिशोधी दरजे चेवाङ ने प्रेम टाछि के घर से 'गा-धन' की मांग की, जबकि उसकी बुआ अभी भी जीवित थी। शुरू में उनके पिता पेनजे ने अपने बेटे के कार्यों का समर्थन नहीं किया, लेकिन बाद में उन्होंने परिवार की सलाह का पालन किया और अपनी माँ जैसी बहन से 'गा-धन' के लिए कहा। दोनों पक्षों ने बातचीत की, संपत्ति को विभाजित किया, लिङझिक स्थापित किया(पत्थर के खंभे; एक भूमि सीमा या बड़े निर्णय के

निशान के रूप में, चेरडुकपेन ने एक पत्थर के खंभे को दफन कर दिया, ताकि यह भविष्य के वंशजों को उस निर्णय के बारे में याद दिला सके) और दो समूहों के बीच हमेशा के लिए विवाह और आना-जाना सभी को रोक दिया। प्रेम टाछि के परिवार ने उसे इस घटना के लिए जिम्मेदार ठहराया और उसे शाप दिया। इस दःख को सहन करने में असमर्थ होने के कारण कुछ दिनों बाद उसकी माँ की मृत्यु हो गई। अपनी माँ की मृत्यु के बाद, प्रेम टाछि को अपनी गलती का एहसास हुआ और वे पछतावे से जल गए। यह महसूस करते हुए कि एक परंपरा को रातोंरात नहीं तोड़ा जा सकता है, उन्होंने सभी से माफी मांगी और बाद में अपनी बहन डिमा लामु को दरजे चेवाङ की पत्नी बनने की अनुमति दी।

पीढ़ीगत संघर्ष: "लिङझिक" उपन्यास का मुख्य पात्र प्रेम टाछि आधुनिक शिक्षा से शिक्षित एक युवा है। वह काम के माध्यम से असम के बाहर कई लोगों से परिचित है और समय-समय पर वह और उसके सहयोगियों ने अपने-अपने समाज और संस्कृति के बारे में चर्चा की है। जब वह अन्य समाजों के लोगों की संस्कृति के बारे में सीखता है, तो उसे लगता है कि उसकी अपनी संस्कृति हीन है। जब उनके सहयोगियों ने उनके चेरदकपेन समुदाय की शादी की परंपरा के लिए उनका उपहास किया, तो उन्हें अपनी परंपरा के बारे में बहुत शर्म और अपमानित महसूस हुआ। वह अपनी शिक्षित बहन डिमा लामु को अपने जैसे बनाना चाहता था ,लेकिन जब उसे परंपरा को बचाने के नाम पर अपनी बुआ के बेटे दरजे चेवाङ के लिए सड़क से उठाया था, उस बात से वह चुपचाप परेशान थेजब उसके साथियों ने बाद में इसके लिए उसका उपहास किया तो वह दखी होता है और साथ ही साथ अपने माता-पिता से भी नाराज होता है। उसने इसके बारे में सोचा: "जब तक लड़कियों को शादी के लिए पकड़ने की हमारी प्रथा जारी है, हमारे जनजाति में महिलाओं को उच्च शिक्षा में कोई चेहरा नहीं दिखाई देगा। क्योंकि जब एक लड़की शिक्षित होती है और थोड़ा उच्च वर्ग प्राप्त करती है, उसे उन लड़कों के माता-पिता द्वारा देखा जाता है जो उससे शादी करने जा रहे हैं और एक दिन, सभी की जानकारी के बिना, उन्होंने लड़की को पकड़ने के लिए पुरुषों को भेजते हैं।" (लिङझिक, पृष्ठ संख्या २३) उसने अपने साथ हुए अन्याय का विरोध करने के लिए घर पर एक पत्र लिखा और कुछ दिनों बाद घर लौट आए।

दरजे चेवाङ के पिता पेनजे ने प्रेम टाछि के माता-पिता को अपने बेटे के लिए डिमा लामु के अपहरण के बारे में पहले से सूचित नहीं किया था। क्योंकि उनकी परंपरा के अनुसार लड़की के माता-पिता को इसके बारे में बताने या पूछने का कोई कारण नहीं है। अगर किसी लड़की के माता-पिता इसके खिलाफ बोलते हैं, तो उन्हें लगता है कि यह समाज के खिलाफ है। इस बात से परेशान होने के बजाय कि उसे दरजे चेवाङ के लिए ले जाया गया था, उसके माता-पिता खुश थे। डिमा लामु की मर्जी समझे बिना, उनके माता-पिता ने अपनी बेटी को अपने भाई पेनजे की बहू के रूप में देकर अपने भाई के लिए एक अच्छा न्याय समझा। हालांकि, डिमा लामु अपनी पढ़ाई के अंत के लिए बहुत आहत हुई थीं, लेकिन बाद में उन्होंने स्थिति के अनुसार खुद को ढाल लिया। समुदाय के बुजुर्गों ने सोचा कि प्रेम टाछि भी शादी में शामिल थे और उनकी प्रशंसा की। एक उच्च शिक्षित लड़के प्रेम टाछि को अपनी बहन की शादी पारंपरिक तरीके से करते हुए देखकर, उन्होंने सोचा कि इस प्रयास में उनका समर्थन है और उनकी प्रशंसा की। पुरानी परंपरा को बनाए रखने में बुजुर्गों को गर्व है। उपन्यासकार ने इस विचार को बूढ़े आदमी दारजा के शब्दों में खूबसूरती से व्यक्त किया है" हमें पड़ोसी जातियों ने राजा माना है, उन्होंने हम से रीति-रिवाजों, नियमों और विनियमों का पालन करके अपनी जाति को जीवित रखा है। आज की पीढ़ी भारतीय शिक्षा प्राप्त करके हमारे अपने रीति-रिवाजों, अपनी संस्कृति को फेंकने जा रही है। यह बहुत ही हमारे लिए दुख की बात है। मेरी राय में, हमारे समाज में ऐसा कोई नियम नहीं है जिसे फेंक दिया जाए। चूंकि हमारे पूर्वजों ने उन कानूनों को रखा है, इसलिए हमें उन्हें रखना चाहिए और मैं सभी को इसका पालन करने के लिए कहता हूं।" (लिङझिक , पृष्ठ संख्या २५)

इस समाज में अधिकांश लोग निरक्षर हैं और उन्होंने बाहरी समाज का प्रकाश नहीं देखा है, और इसलिए युवा से लेकर वृद्ध तक अधिकांश लोग सही-गलत का फैसला नहीं करते और बड़ों की बातों के अनुसार जीते हैं। हालाँकि, कुछ युवा शिक्षा के प्रकाश से परिचित हो गए हैं और इन परंपराओं को सही या गलत का न्याय करके मापने की कोशिश कर रहे हैं और उनकी आँख बंद करके पालन नहीं कर रहे हैं। उनमें से प्रेम टाछि आधुनिक शिक्षा से शिक्षित एक उदार युवक है। वह उन नियमों का विरोध करता है जो समाज के लोगों के विकास में बाधक परंपराओं की आंख मूंदकर पालन करते हैं। लेकिन वह यह भी समझते हैं कि जिन नियमों का पालन बुजुर्ग इतने लंबे समय से करते आ रहे हैं, इन अशिक्षित लोगों की मानसिकता को इतनी आसानी से नहीं बदला जा सकता है। इसलिए उसने सोचा कि उसे केवल यह कहना ही नहीं है, बल्कि अपने हाथों से करना है और अपने घर से इस बदलाव की शुरुआत करना है, लेकिन प्रेम टाछि ने विवाह प्रणाली को बदलने के लिए जो तरीका अपनाया, उसने दो करीबी परिवारों को शाश्वत शत्रुओं में बदल दिया। प्रेम टाछि ने अपनी बहन के साथ जो हुआ भविष्य में किसी और के साथ ऐसा होने से रोकने के लिए यह कदम उठाया। यद्यपि उनके इरादे महान थे, एक दिन में सब कुछ ठीक करने के उनके जल्दबाजी के प्रयास ने दो घरों और दो समुदायों में भी तूफान ला दिया।

'नरबु चिरिङ' उपन्यास का एक और चरित्र है। वह एक कॉलेज शिक्षित युवक है जो अस्पष्ट रीति-रिवाजों और बुराइयों के खिलाफ है। वे दरजे चेवाङ के परिवार द्वारा 'गा-धन' की मांग का विरोध कर रहे हैं, क्योंकि उनकी बुआ अभी भी जीवित हैं। जब नरबु चिरिङ की टीम इस मामले पर चर्चा करने के लिए दरजे चेवाङ के घर जाती है, तो दोनों पक्षों के बीच का तर्क पुराने और नए के बीच संघर्ष को खूबसूरती से प्रस्तुत करता है।

"आजोम ने लगभग नाराज़ होकर कहा, 'हम समाज के लाभ और हानि के बारे में चिंता नहीं करते हैं। हम जो कर रहे हैं वह हमारे अपने घर का मुकदमा है, किसी को भी बोलने का अधिकार नहीं है? "चाहे वह घरेलू मुकदमा हो, समाज के हित भी शामिल हैं। आप एक मृत रिवाज को उसकी कब्र से खोदकर उसे बहाल करने जा रहे हैं।' नरबु ने कहा 'उन रीति-रिवाजों को समाज की भलाई के लिए विकसित किया गया था। तो हम अपने दादा-दादी के दिनों से चली आ रही रीति-रिवाजों को कैसे खराब मान सकते हैं? '

'बेशक, हमें अपने दादा-दादी के रीति-रिवाजों को नहीं फेंकना चाहिए, लेकिन क्या आपने सोचा है कि यह आज उस युग से कितना अलग है? क्या उस युग के लोग आज के लोगों के समान हैं? हमारे दादा-दादी के दिनों में बीमार होने पर दवा की कोई आवश्यकता नहीं थी, वे बिना पैसे के अपने परिवार का समर्थन करने में सक्षम थे। क्या आप आज की दुनिया में ऐसा कर सकते हैं? ' नरबु ने पूछा पेनजे ने आहें भरते हुए कहा,' हम नहीं कर सकते, उन दिनों और आज के बीच कोई तुलना नहीं है।" (लिङझिक, पृष्ठ संख्या ८०-८१) तब नरबु ने उन्हें यह अच्छी तरह से समझाया ।उन्होंने समझाया कि जैसे-जैसे समाज बदलता है, समाज के विकास के लिए कुछ अस्पष्ट रीति-रिवाजों को अपनाने के बजाय त्यागने की जरूरत है। इसलिए अंत में उन्होंने कहा कि वे जिस प्रथा को फिर से शुरू करने जा रहे थे वह खराब थी और उन्हें सलाह दी कि वे इसे फिर से शुरू न करें। नरबु चिरिङ के इतनी अच्छी तरह समझाने के बाद, पेनजे को अपनी गलती का एहसास हुआ, लेकिन उनके बेटे के प्रतिशोधपूर्ण रवैये के कारण यह बेकार था। दोनों पक्षों के झगड़े के परिणामस्वरूप, दोनों समाज हमेशा के लिए शत्रु बन गए। आधुनिक शिक्षा के साथ शिक्षित होने और समाज के बाहर के लोगों के साथ बातचीत करने के बाद, कई युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति के कुछ पुराने जमाने के रीति-रिवाजों का पालन करने के लिए अनिच्छुक और शर्मिंदा है। पाश्चात्य संस्कृति का अंधाधुंध अनुकरण करने के फलस्वरूप अनेक युवा अपनी संस्कृति का अपमान कर उसका परित्याग करना चाहते हैं। युवा पीढ़ी के बीच एक गलत धारणा है कि संस्कृतियों के बीच उच्च और निम्न है। वास्तव में, संस्कृति के समृद्ध या कम समृद्ध होने जैसी कोई बात नहीं है। हर किसी की अपनी जाति और जनजाति के अनुसार अपनी विशेषताएं और तत्व होते हैं। इसलिए, हमें दूसरों की संस्कृति की आंख मूंदकर नकल नहीं करनी चाहिए और अपनी संस्कृति का त्याग नेहीं करना चाहिए। उपन्यास " लिङझिक" में केजाङ के संवाद इस बात की तस्वीर पेश करते है कि कैसे युवा पीढ़ी स्कूल जाकर अपनी संस्कृति और आदिवासी पहचान का अनादर करती है" हम अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे हैं क्योंकि सरकार के दिन आ गए हैं। स्कूल में रहते हुए वे हमारे अपने तेर-तरीकों, काम को भूल गए । उन्होंने अपने हाथों में धनुष और तीर नहीं लिए हैं, वे अब अपने कमरबंद पर चाकू नहीं रखते हैं, उन्होंने अपने सिर पर टोपी नहीं पहनी है, वे बुनाई या काटना भूल गए हैं। परिणामस्वरूप माता-पिता, दादा-दादी, चाचा और चाची में से कोई भी उनसे

मांस या मछली खाने की उम्मीद नहीं कर सकता था।" (लिङझिक, पृष्ठ संख्या ८८) दो परिवारों के बीच झगड़े के परिणामस्वरूप अपनी माँ को खोने के बाद,प्रेम टाछि को अपने किए पर खेद हुआ। अपने समाज की दूसरों से तुलना करने के गलत कदम का खामियाजा पूरे परिवार को भुगतना पड़ा। डिमा लामु के श्राप को सुनकर प्रेम टाछि जो कहते हैं उसमें उपन्यासकार उस पीढ़ी के रवैये का स्पष्ट चित्रण करता है। "तुम्हें पता है डिमा मुझे लगा कि मैं बहुत ऊँचा हूआंख खोलने के बजाय शिक्षा ने मुझे अंधा कर दिया ।बाहर की चमक ने मुझे और भी अँधेरे में धकेल दिया ।मैंने अपने समाज को नीचा दिखाना शुरू कर दिया क्योंकि मैं खुद को शिक्षित, उच्च अधिकारी और अन्य लोगों से अलग समझता था। मैं खुद को उच्च समाज के स्तर पर ले जाने की कोशिश करने लगा। मैंने अपने समाज में सुधार के अपने मिशन के मूल में मैंने अपने पाखंड का मुखौटा उतार कर फेंक दिया है।" (लिङझिक, पृष्ठ संख्या १४५) कभी-कभी युवा पीढ़ी के कई लोग यह सोचकर बहुत जल्दी निर्णय लेते हैं कि वे बहुत कुछ जानते हैं और बाद में उन्हें इसका खामियाजा खुद भुगतना पड़ता है। हालाँकि वृद्ध लोग आमतौर पर अनुभव से पोषित होते हैं और इसलिए वे निर्णय लेने से पहले बहुत सोचते हैं। उपन्यास में प्रेम टाछि के जल्दबाजी में लिए गए निर्णय के विपरीत, दरजे चेवाङ के पिता पेनजे ने शुरू में बहन से गा-धन लेने के बारे में सोचा। उसने शुरू में अपने परिवार से कहा कि बात ठीक नहीं होगी लेकिन अपने जिद्दी बेटे की वजह से वह इसे नहीं रख सका। उपन्यास में अन्य दो पात्र, प्रेम टाछि के माता-पिता "केजाङ" और "लामदैमा" भी पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे अपनी बेटी की इच्छाओं के बारे में नहीं सोच रहे थे, लेकिन वे दरजे चेवाङ के माता-पिता को दरजे चेवाङ के लिए उसे ले जाने में उनका समर्थन कर रहे थे। इसके विपरीत जब उन्होंने अपने बेटे को इसका विरोध करते देखा तो वे उनसे नाराज हो गए। यह स्पष्ट रूप से दो पीढ़ियों के बीच सोच के अंतर को दर्शाता है। उपन्यास दो पीढ़ियों के बीच उम्र, विचारों आदि के अलावा प्यार में अंतर की एक झलक भी देता है। युवा आसानी से जाति की परवाह किए बिना अपनी पसंद की लड़की से शादी करना स्वीकार करते हैं।

'मैं इसे क्यों नहीं प्राप्त कर सकता मुझे कहना होगा कि मुझे मिल गया।उसके पास पहले से ही कुछ विदेशी मेमसाहब हैं। उसने हमारे नाम काट दिए, अब वह अपने माता-पिता का सिर खाएगा।' आजोम ने घृणा में अपनी नाक रगड़ी "(लिङझिक, पृष्ठ संख्या ५९) उपन्यास के अंत में, जब उसकी माँ बीमार होती है, तो वह प्रेम टाछि को आदेश देती है उस लड़की से शादी करने के लिए जिसे उसने पास में पसंद करके रखा था। अपनी बीमार माँ की इच्छाओं को रखने के लिए, वह अपनी पसंद की लड़की को छोड़ देता है और अपनी खुशी के बारे में सोचे बिना उसकी इच्छा के अनुसार दूसरी लड़की से शादी कर लेता है। यह पर, एक साधारण युवा का अपनी माँ के लिए प्यार और जिम्मेदारी नजर आती है।

निष्कर्ष: एक समाज में लोगों के कई वर्ग होते हैं, ठीक वैसे ही उपन्यास में लोगों के तीन वर्ग हैं। प्रथम और युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व प्रेम टाछि और नरबु चिरिङ द्वारा किया जाता है। दूसरी ओर पुरानी श्रेणी का प्रतिनिधित्व दरजे चेवाङ के माता-पिता और प्रेम टाछि के माता-पिता द्वारा किया जाता है। और अंतिम और युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व दरजे चेवाङ और डिमा लामु द्वारा किया जाता है। प्रथम वर्ग समाज में एक शिक्षित वर्ग है जो समाज के विकास में बाधा डालने वाले कुछ नियमों को बदलना चाहता है और इसे दोषों से मुक्त करना चाहता है। दूसरी श्रेणी समाज के पुराने रीति-रिवाजों का बहुत ईमानदारी से पालन करना चाहती है और वे इसे बुरा नहीं मानते। उनके लिए परंपरा से बड़ा कुछ नहीं है। और अंतिम वर्ग भले ही पढ़े-लिखे हैं लेकिन परिस्थितियों के गुलाम हैं। समाज को बदलने की उनकी अपनी कोई इच्छा नहीं है, उनका जीवन परिवार के लोगों की इच्छा-अनिच्छा पर निर्भर करता है। उपन्यास "लिङझिक" हमें सिखाता है कि कोई भी परंपरा रातों-रात समाज से खत्म नहीं हो सकती। और समय की मांग के अनुसार समाज के विकास के लिए कुछ परंपराओं को बदलने की जरूरत है। इसलिए, समाज में शांति से रहने के लिए, युवा और बूढ़े को एक-दूसरे के विश्वासों और मूल्यों का सम्मान करना चाहिए और सभी के बीच समझ होनी चाहिए।

*****

सन्दर्भ:
1. ठंचि, येछे दरजे (२०२०) लिङझिक। बनलता प्रकाशन।
2.ठाकुर , नगेन (संपा.) (२०१८)। एश बछर असमीया उपन्यास। ज्योति प्रकाशन
3.तालुकदार, प्रान्जल (संपा.)। (२०२१)। असमीया साहित्यर भिन्न पबी। पूर्वायन प्रकाशन।

हिंदी कथा साहित्य में लघु कथाकारों का योगदान

डॉ.मीना मिलिंद ठाकूर
हिंदी विभाग
श्री शाहू मंदिर महाविद्यालय, पर्वती, पुणे.
मोबा.9850211439

हिंदी साहित्य में लघुकथा समकालीन एवं नवीनतम विधा है. हिंदी की प्रथम लघुकथा के बारे में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत है. हिंदी के अन्य सभी विधाओं की तुलना में अधिक लघु आकार होने के कारण समकालिन पाठकों के ज्यादा करीब है. और सिर्फ इतना ही नही यह अपनी विधागत सरोकार की दृष्टि से भी एक पूर्ण विधा के रूप में हिंदी जगत में समाहत हो रही है. हिंदी लघुकथा को स्थापित करने के लिए कथाकारों ने अपना योगदान दिया है. उनमें प्रमुख रमेश बतरा, जगदीश कश्यप, कमलेश, भगीरथ, सतीश दुबे, बलराम अग्रवाल, विष्णु प्रभाकर, हरिशंकर परसाई आदि है.

हिंदी कहानी के विधिवत जन्म लेने से काफी पहले पाश्च्यात्य विद्वान एडगर एलन पो 1809 ते 1849, ओ हेनरी 1862 ते 1910, गाइ द मोपांसा 1850 ते 1893 तथा एन्टन पाब्लोविच चेखव 1860 ते 1904, के माध्यम से कहानी अपने उत्कृष्टतम स्वरूप को प्राप्त कर चुकी थी. भारतीय भाषाओं में बंगला कहानी भी खुली हवा में अपना परचम लहरा चुकी थी. हिंदी में परिमार्जित कहानी के रूप में जो रचनाए प्रकाश में आई है. आमतौर पर सन 1900 के आसपास प्रकाशित हुई. अलग - अलग कारणों से पहली हिंदी कहानी की दौड में जो कहानियाँ शामिल है, उन्हें उनके प्रकाशन काल में निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है. रविंद्रनाथ ठाकूर की बंगाली लघुकथाएं सामाजिक प्रतिबद्धता को स्पष्ट करती है. प्रणयिनी परिचय 1887 किशोरीलाल गोस्वामी , छली अरब की कथा 1893 संभवतः लोककथा, सुभाषित रत्न 1900 माधवराव सप्रे, इन्दुमती 1900 किशोरीलाल गोस्वामी, मन की चंचलता 1900 माधवप्रसाद मिश्र, एक टोकरी भर मिट्टी 1901 माधवराव सप्रे, ग्यारह वर्ष का समय 1903 रामचंद्र शुक्ल, लडकी की कहानी 1904 माधवप्रसाद मिश्र, दुलाई वाली 1907 राजेंद्र बाला उर्फ बंग महिला, राखीबंद भाई 1907 वृन्दावन लाल वर्मा, ग्राम 1911 जयशंकर प्रसाद, सुखमय जीवन 1911 चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, रक्षा बंधन 1913 विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, उसने कहा था 1915 चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, भगत की गत हरिशंकर परसाई आदि.

डॉ. अजय तिवारी ने इस क्रम में सन 1871 ई में प्रकाशित रेवरेंड जे न्यूटन की कहानी ' एक जमींदार का दृष्टांत ' को भी जोडा है. 'वर्तमान साहित्य ' के शताब्दी कथा विषेशांक (जनवरी - फरवरी 2000) में उन्होंने उसका पाठ भी प्रस्तुत किया है. " तिवारी जी द्वारा प्रस्तुत उक्त कहानी की भाषा आज जितनी परिमार्जित है जो की निश्चित रूप से 1871 ई में प्रचलित नहीं थी. अतः यह प्रयास एक दुष्प्रयास ही अधिक होता है. खैर, यहां पर हमारा उद्देश्य मात्र इतना बताना है हि ' पहली ' हिंदी कहानी की पंक्ति में इस समय तक सन 1871 ई से लेकर सन 1915 तक प्रकाशित विभिन्न कथाकारों की 15 कहानियाँ उपलब्ध है. हरेक के बारे में उसके प्रस्तोता का ठोस साक्ष्य अथवा तर्क उपस्थित है. परन्तु हिंदी लघुकथा की स्थिती इससे एकदम भिन्न है. ' पहली ' हिंदी लघुकथा के बारे में अब तक जो भी नाम सुझाए गए हैं, उनमें किसी दृष्टि विशेष का ध्यान नहीं रखा गया. इस मामले में सिर्फ दो बातों को आधार माना गया हैं. 1 एक रचना का कहानी के फार्म में होना तथा 2से, उसका लघु आकारीय होना कोई सार्थक दृष्टि इस बारे में नही अपनाई गई" [1] पहली ' हिंदी लघुकथा की प्रस्तुति की शुरूवात सरस्वती 1916 में प्रकाशित पदुमलाल बख्शी की कथा रचना ' झलमला ' की गाजियाबाद से प्रकाशित पत्रिका ' सर्वोदय विश्ववाणी ' में इसके पुनर्प्रकाशन से हुई. बाद में, इसके कुछ अंशों को ताराशंकर प्रो. कृष्ण कमलेश ने इस ' पहली हिंदी लघुकथा ' के लघुकथा विशेषांक में प्रकाशित किया. उन दिनों निश्चित रूप से आज जितना शोध हिंदी लघुकथा में नहीं हुआ.

यद्यपी यथेष्ट शोध तो अभी भी वांछित है और आगे भी हमेशा रहेगा तथापि पहले की तुलना में आज हम स्वयं को कुछ अधिक स्पष्ट ढंग के व्यक्त कर पाने में सक्षम अवश्य पाते है. अब तक जिन गद्य कथा-रचनाओं को पहली लघुकथा होने की दौड में गिना जाना चाहिए, वे प्रमुखतः निम्नप्रकार हो सकते है, अंगहीन धनी परिहासिनी 1876, भारतेंदु हरिश्चंद्र, अभ्दुत संवाद परिहासिनी 1876 भारतेंदु हरिश्चंद्र, बिल्ली औरबुखार प्रामाणिकता अप्राप्य माखनलाल चतुर्वेदी, एक टोकरीभर मिट्टी छत्तीसगढ मित्र 1901 माधवराव सप्रे, विमाता सरस्वती 1915 छबीलेलाल गोस्वामी, झलमल सरस्वती 1916 पदमलाल पुन्नावाला बख्शी, बूढा व्यापारी 1919 जगदीश्चंद्र मिश्र, प्रसाद प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, गुदइ साई प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, गुदडी में लाल प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, पत्थर की पुकार प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, उस पार का योगी प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, करूणा कि विजय प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, खण्डहर की लिपी प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, कलावती की शिक्षा प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, चक्रवर्ती का स्तम्भ प्रतिध्वनी 1926 जयशंकर प्रसाद, बाबाजी का भोग प्रेम प्रतिमा 1926 प्रेमचंद, वैरागी आकाशदीप 1929 जयशंकर प्रसाद, सेठजी 1929 कन्हैयालाल मिश्र ' प्रभाकर ' पहली हिंदी कहानी ' के आकलन का आधार अभी तक तय नहीं हुआ. शायद इसीलिए सर्वमान्य रूप से कोई एक कहानी भी अभी तक ' पहली हिंदी कहानी ' होने का खिताब नहीं पा सकी है, अनेक कहानियॉ इस दौड में शामिल है. आगे कुछ और नाम इस सूचि में जुड सकते है, इंकार नहीं किया जा सकता. कथा और कथाकार की साहित्यिक-स्थिती के आकलन में राजेन्द्र यादव यों कहते है - प्रतिभा अपने विस्फोट के नहीं, नैरन्तर्थ से अपने आपको प्रमाणित करती है और कहानीकार का स्थान एक कहानी से नहीं, अनेक कहानियों से विकसित होती उसकी जीवन-दृष्टि से निर्धारित होता है, अपनी विधा के प्रति आत्मीय लगाव से निश्चित होता है. इसी भूमिका में वह आगे लिखते है. "कुछ ने इस नैरन्तर्थ को प्रामाणित करना आवश्यक नहीं समझा तो कुछ ने प्रामाणित नहीं किया." [2]

अगर उपर उपर्युक्त अंश के प्रकाश में देखा जाए तो आकलन हेतु विचारणीय कथाकार में इन गुणों का होना आवश्यक है:- 1 प्रतिभा-स्फोट, 2 नैरन्तर्य तथा, 3 जीवन-दृष्टि. यद्यपी यह तो तय है कि नैरन्तर्य की शर्त उन लेखकों पर लागू नहीं होनी चाहिए जिन्हें दुर्भाग्यवश दीर्घ-जीवन प्राप्त नहीं हुआ. उदाहरणार्थ, ' गुफाओं से मैदान की ओर ' में संकलित कैलाश जयसवाल अपनी लघुकथा ' पुल बोलते है ' की रचना के बाद संभवतः कुछ और वही लिख सके और दिवंगत हो गए. इधर, जैसे-जैसे हिंदी लघुकथा का विधापरक स्वरूप स्पष्ट और मान्य होता जा रहा है, वैसे- वैसे ' पहली हिंदी कहानी ' की चिंता भी उत्पन्न होने लगी है. यह स्वाभाविक ही है. समाज द्वारा स्वीकृत विधा का अकादमी में प्रवेश निश्चित है और अकादमी में उसके पठन-पाठन शोध और अध्ययन आदि के अपने कुछ निश्चित तौर-तरीकों, कुछ निश्चित अनुशासन है. ' प्रथमतः ' की खोज भी उन तौर-तरीकों और अनुशासनों के अन्तर्गत अपनी पैठ बनाए हुए है.

'सर्वोदय विश्ववाणी' में पहली हिंदी लघुकथा के तौर पर ' झलमला ' की प्रस्तुति के उपरान्त दूसरा सदप्रयास बलराम ने किया - माखनलाल चतुर्वेदी की लघुकथा ' बिल्ली और बुखार ' को पहली हिंदी लघुकथा घोषित करके, परन्तु यह रचना प्रस्तुतिकरण के समय से ही विवादों के घेरे में रही और आज तक भी है. इसको प्रथमतः प्रकाशित करने वाले पत्र-पत्रिका-पुस्तक की प्रति तथा इसका ठीक-ठाक प्रकाशन-काल अभी तक निश्चित नहीं है. तीसरे स्थान पर माधवराव सप्रे की, उन्हीं के द्वारा सम्पादित पत्र ' छत्तीसगढ मित्र ' के वर्ष 2, अंक 4 में प्रकाशित दो पृष्ठीय कहानी ' एक टोकरीभर मिट्टी ' का नाम आता है. इसके प्रस्तोता डॉ. कमल किशोर गोयनका रहे. बाद में ' बिल्ली और बुखार ' से अपग्रेड होकर बलराम ने भी इनका अनुसरण प्रारम्भ किया और डॉ. अशोक भाटिया ने भी. हिंदी में लघुकथा-आलोचना, शिक्षण, शोध, और पत्रकारिता आदि से जुडे तीन-तीन दिग्गज जब एक ही बात कर रहे हों तो संदेह की गुंजाइश बचनी नहीं चाहिए. लेकिन कुछ सवाल है जो ' पहली हिंदी कहानी ' को तय या घोषित करते हुए स्वाभाविक रूप से उभरते हैं, उभरने चाहिए. यह कि, किसी कथा-रचना को ' पहली हिंदी कहानी ' घोषित करने का आधार क्या माना गया है? उसका लघु आकारीय होना मात्र ही पर्याप्त माना गया है या उसमें उन आधारभूत गुण-तत्वों का होना भी आवश्यक माना गया है जिनके कारण कोई कथा-रचना ' कहानी ' न होकर ' लघुकथा ' होती है? दूसरे, उस रचना का (अ) मौलिक (आ) तत्कालीन पत्र-पत्रिका-पुस्तिक में प्रामाणिक रूप से प्रकाशित तथा (इ) देश व काल सापेक्ष जीवन-दृष्टि से युक्त होना आवश्यक माना गया है या नहीं? तीसरे, रचनाकार के लेखकीय इतिवृत्त की समीक्षा करने को उपयुक्त माना गया है या नहीं? परंपारिक लघुकथा के समकालीन लघुकथा के अलगाव के आधार के बारें में पहला तथ्य यह है कि डॉ. कमल किशोर गोयनका के अनुसार, लघुकथा एक लेखक विहिन विधा है अर्थात रचना में पाठक को लेखक की उपस्थिति का आभास नहीं होना चाहिए. दूसरा सर्वमान्य तथ्य यह है कि लघुकथा एक निदानात्मक रचना है. प्रारम्भ से लेकर अंत तक लेखक अपनी उपस्थिति इसमें बनाए रखती है. इस रचना का अंत यों होता है - जमींदार साहब धन-मद के गर्वित हो अपना कर्तव्य भूल गये थे, पर विधवा के उपरोक्त वचन सुनते ही उनकी ऑखें खुल गई. कृतकर्म का पश्चाताप कर उन्होंने विधवा से क्षमा मॉगी और उसकी झोपडी वापस कर दी."3 बोलो, सियावर रामचन्द्र की जय. परमात्मा, जैसे उस गरीब विधवा के दिन फिरे, वैसे ही सबके दिन फिरें...!! स्पष्टताः यह एक उपचारात्मक (ज्तमंजउमदज च्तवकनबपदह) दृष्टान्तपरक कथा-रचना है. विधवा के एक पंच (प्रहारपूर्ण वक्र वाक्य) से जमींदार साहब (ना की सिर्फ जमींदार) का हृदय-परिवर्तन हो जाता है. शायद यही इसका हेतु भी है कि जमींदार (साहबों) के हृदय में व्याप्त कोमल मानवीय भावनाओं से भी आमजन का परिचय कराया जाए, बताया जाए कि जमींदार (साहब) मात्र शोषक व पाषाण-हृदय नहीं होते. निर्बलों और दिनों से वे सिर्फ छीनते ही नहीं है, बल्कि उन पर दया भी दिखा सकते है. उनके हृदय की कोमलता को कोई जगाने वाला होना चाहिए, बस. कुछ सुधी आलोचक यह भी कह सकते हैं कि इस रचना में जमींदार के साथ ' श्रीमान ' या ' साहब ' विशेषण व्यंजनापरक है, सम्मानसूचक नहीं. चलो, मान लेते है, परन्तु, प्रेमचंद की कहानी ' घासवाली ' (1929) में भी जमींदार है- चैनसिंह. उसका भी हृदय-परिवर्तन होता है; परन्तु, दलित, दमित और शाषित पात्र मुलिया के ' शठे शाठयं समाचरेत ' व्यवहार के द्वारा या उसे परलोक का डर दिखाकर नही. जमींदार के लिए किसी व्यंजनाापरक विशेषण की आवश्यकता प्रेमचंद ने महसूस नहीं की. वह बेहद गरीबीं में पले थे; उनका या उनके किसी पूर्वज का कोई सम्बन्ध किसी राजा, राजकुमार या राज-परिवा से नहीं रहा. उल्टे अंग्रेज-अधिकारी के द्वारा उन्हें अपमान झेलना पडा था. हम जानते हैं कि दृष्टांतपरक, बोधपरक, नीतिपरक आदि गद्यात्मक व पद्यात्मक दोनों प्रकार की लघु-कथाओं की सुदीर्घ परम्परा हिंदी को संस्कृत वाङमय (वांग्मय) और अन्य विश्व कथा-साहित्य से प्राप्त है. परन्तु आज, लघुकथा ' से हमारा तात्पर्य आधुनिक यथार्थ-बोध की लघ्वाकारीय गद्य कथा-रचना से होता है. पारम्पारिक दृष्टांतपरक, बोधपरक, नीतिपरक लघु-कथा रचना से नहीं. अगर किसी दृष्टांतपरक कथा-रचना को ' पहली हिंदी लघुकथा ' कहा जा सकता है तो फिर ' एक टोकरीभर मिट्टी ' ही क्यों? कोई और क्यों नहीं? क्या सिर्फ इसलिए कि इसे हिंदी साहित्य में पैठ रखने वाले पं. माधवराव सप्रे ने लिपिबध्द किया है? या फिर इसलिए कि इसका प्रकाशन-काल (सन 1901 ई) लघुकथा के विद्यार्थियों, शिक्षकों और शोधर्थियों को याद रखने-रखाने की दृष्टि के सुविधाजनक है?'अदभुत संवाद ' संवाद-शैली की लघुकथा है. वस्तु-संप्रेषण के लिए मसखरे का प्रयोग किया गया है. व्यवस्थाजन्य खतरों से बचने के लिए लेखक को ऐसे प्रयोग अक्सर ही करने पड जाते है. ईसपर अपने अमीर मालिकों और राजाओं की कोपदृष्टि से बचने के लिए अपनी कहानियों में सदा ही मानवेतर पात्रों का प्रयोग किया, ऐसा माना जाता है. निराला जी ने भी वस्तु-प्रेषण हेतु अपनी एक कहानी में एक नारी पात्र को ' पगली ' दिखाया. ' अदभुत संवाद 'में पारसीकल टोन है. भारतेंदु नाट्य विधा के विद्वान थे. हिंदी रंगमंच और नाट्य-लेखन, दोनों को ही उनका अभूतपूर्व योगदान है. वस्तु-संप्रेषण की उनमें अदभुत और अनुपम क्षमता थी. ' अदभुत संवाद ' का स्थूल कथानक

कल्पना करिए कि उस काल में, जब कि ब्रिटिश-व्यवस्था ने रईसों, जमींदारों और नवाबों को असीम अधिकार दिए हुए थे, किसी आदमी का उन्हें बेगार देने से मना करना उसके लिए कितना घातक सिध्द हो सकता था. और उस पर लेखक के हाल की भी कल्पना करना मुश्किल नहीं है जो अपनी रचनाओं के माध्यम के आमजन को बेगार न देने कि लिए भडका रहा हो. अतः भारतेंदु को यह काम मसखरे के माध्यम क करना पडा.

'अंगहीन धनी ' का प्रत्यक्ष कथानक बताने की आवश्यकता नहीं है. उससे संदेश को समझाने की आवश्यकता है. यह भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस के जन्म से कई वर्ष पूर्व की रचना है. गुलाम-देश के कुछ रईस और नवाबजादे ऐशगाह में मौज-मस्ती कर रहे है. बाहर आदेशपूर्ति के लिए नौकरों की भीड तैनात है. भीतर से बुलावें की घंटी बजती है और काम सिर्फ इतना है कि ऐशगाह में जलती एक बत्ती को बुझाना है. ये लोग जो अपने ही कमरे या हाल में लडेंगे? यह उस काल की शाश्वत-चिंता है जिसे भारतेंदु गंभीरतापूर्वक स्वर देते है. लघुकथा के आधारभूत गुण-तत्वों पर भी यह रचना पूरी तरह खरी उतरती हैः इसप्रकार, ' अंगहीन धनी ' गुरू-गंभीर चेतन-दृष्टी से युक्त सकारात्मक यथार्थ वाली ऐसी लघुकथा है जो अपने समय के सरोकारों से पाठक को जोडने का दायित्व सफलतापूर्वक निभाती है. आगे, यह भारतेंदु की मौलिक रचना है, न कि किसी लोककथा या पौराणिक दृष्टांत का पुनर्लेखन. बहुत सम्भव है कि ' परिहासिनी ' में संकलित करने से पहले भारतेंदु ने इसे किसी तत्कालीन पत्र-पत्रिका में भी प्रकाशित कराया हो. तब इसका प्रकाशनकाल ' परिहासिनी ' के प्रकाशनकाल से पहले का नियत होगा. न भी प्रकाशित कराया हो तो हम इसका प्रकाशनकाल 1876 ई तो मान ही सकते है. देश व काल सापेक्ष जीवन-दृष्टि ही नहीं, इसमें तत्कालीन दासता से मुक्ति हेतु संघर्ष की जमीन की ओर भी संकेत मिलता है. रचनाकार के तौर पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का नैरन्तर्य, प्रतिभा-स्फोट और जीवन-दृष्टि सब कुछ स्वयंसिध्द है. इन समस्त व्याख्याओं और तर्कों के आधार पर निश्चित रूप से ' अंगहीन धनी ' हिंदी की पहली लघुकथा सिध्द होती है और ' अदभुत संवाद ' दूसरी.' अंगहीन धनी ' और अदभुत संवाद, ' परिहासिनी 'में इन दो रचनाओं की स्थिति वस्तुतः कटोरा-भर अनार के दोनों में समरूप मोतियों जैसी है. तदनुरूप पहचान के अभाव में ऐसे न जाने कितने ही और मोती अनारदानों के साथ चबाए जाकर नष्ट हो रहे होंगे. इन्हें पहचाने और बचाए जाने की आवश्यकता है. एक बात और, यह आकलन अभी तक ज्ञात लघुकथाओं के विवेचन पर आधारित है. लघुकथा अभी भी निरंतर विकासशील विधा है. "4 भविष्य में, हो सकता है कि इनमे इतर कोई अन्य लघुकथा प्रकाश में आ जाए जो पहली हिंदी लघुकथा के पूर्व-घोषित सभी दावों पर भारी पड़े. तब निश्चय ही, वही हिंदी की पहली लघुकथा होगी. लघुकथा ' गागर में सागर ' भर देनेवाली विधा है, जो लघुकथा एक साथ लघु भी है, और कथा भी. यह न लघुता को छोड सकती है, न कथा को ही. इसप्रकार हिंदी साहित्य में लघुकथाकारों ने प्रासंगिक औश्र समकालीन कथा-रचनाओं को लिखा प्रस्तुत किया और अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता समझकर हिंदी लघुकथा साहित्य में प्रेमचंद, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर इन महान कथाकारोंने अनेक कथा आंदोलनों क माध्यमसे पाठकों को सामाजिक विषमता, झठी परम्पराएं, जातिभेद, धर्मन्धता आदि विषयों पर अपनी लघुकथा को प्रकाशित किया है.

****

संदर्भ सूची -
1 ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी - बलराम अग्रवाल पृष्ठ क्रं 13
2 समकालीन लघुकथा और प्रेमचंद - बलराम अग्रवाल पृष्ठ क्रं 77
3 सरसों के फूल - बलराम अग्रवाल पृष्ठ क्रं 124
4 चन्न चरनदास - बलरात अग्रवाल पृष्ठ क्रं 55
5 हंस-प्रेमचंद, मार्च 1997
6 समकालिन साहित्य समाचार, 8 मार्च 2002
7 हिंदी कहानी रचना प्रक्रिया - श्रीवास्तव परमानंद, ग्रंथम प्रकाशन दिल्ली

ममता कालिया के दौड़ उपन्यास में चित्रित महानगरीय जीवन

डॉ.अजय जी कम्मत
शिव कूपा , मट्टानचेरी, एर्नाकुलम
कोचीन, केरला मो. 9895819691

महानगरीय बोध अर्थ और स्वरुप:-आधुनिक युग यांत्रिकता,औद्योगीकरण , बौद्धिक समृद्धि , हृदय कि संकीर्णता और मूल्यों के विघटन का युग है। आज मनुष्य बाह्य रूप से संपन्न है। मनुष्य कि अंत यात्रा और बाह्य संघर्ष में बाधा आ रहा है। आज़ादी के बाद पुरानी परम्पराएँ टूटी और कुछ नवीकृत किया गया। इसका प्रभाव महानगर और साहित्य पर भी पड़ा।

नगरीकरण:-आधुनिक युग नगरों के विकास का युग है। आधुनिक जीवन का आधार नगर एवं उसमे विकसित जीवन प्रणाली है। आधुनिक समाज में जीवन के प्रतिमानों को निश्चित करने में नगर का अत्यधिक महत्व है। डॉ. देव के अनुसार " नगर एवं नगर जीवन के विकास के रूप में ' नगरीकरण ' मनुष्य के सामजिक एवं वैयक्तिक जीवन पर प्रभाव दाल रहा है। "

नगरीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा परम्परागत ग्रामीण समुदाय का कुछ भाग अथवा सम्पूर्ण भाग भिन्न जीवन के तरीके को अपनाने केलिए गतिशील होता है। बंगाल के अनुसार " नगरीय जीवन को ग्रहण करने के तरीके को नगरीकरण कहते है।" नगरीकरण के विकास उस दृश्या में कहा जा सकता है जब कि कुल जाना संख्या में वृद्धि हो रही है। इसके दो स्रोत होते है।

नगरों में विभिन्न वर्गों की जीवन शैली एवं आवश्यकताएँ समाज में नए संदर्भों को जन्म दे रही है। नगरीय समाज में सामजिक प्रतिष्ठा का आधार व्यक्ति विशेष का व्यवसाय और पूंजी की शक्ति हो गया है। नगरीकरण के कारण अनेक सामाजिक समस्याओं से भी मनुष्य आक्रान्त हुआ है।स्पष्टतः कहा जा सकता है कि गाँव से नगर की और लोगों के चले जाने का नाम नगरीकरण है , जहां आर्थिक गतिविधियां , व्यापार , निर्माण , उद्योग और प्रबंध पर केंद्रित है।

गाँव का स्वरुप:-गाँव मुख्य रूप से किसान लोगों का समूह है। ममता कलियाँ के अनुसार " ग्रामीण समाज मुख्यतः सहयोग पर निर्भर करता है ।" ममता कालिया जी के दौड़ नामक उपन्यास में पवन के माता पिता ग्रामीण लोग थे। बाद में वे शहर में रहने लगे। स्पष्टतः गाँव की जनसंख्या का आकार छोटा है। गाँव के लोगों का सीधा संपर्क प्रकृति अर्थात भूमि , पशु और वनस्पति जीवन से जुड़ा रहता है। कृषि उनका प्रधान पेशा है।

कस्बे का रूप:-कस्बा मानवीय अवस्थापना का स्वरुप है जो अपनी जीवन शैली में ग्रामीण व शहरी या नगरीय दोनों प्रकार के लक्षणों को अपने में समाहित रखता है। क्षमा गोस्वामी के अनुसार " जब ग्रामों पर केन्दीय ग्रामों की क्रिया एवं प्रवृत्तियां नगरीय गतिविधियों को धारण करना प्रारम्भ कर देती है , तो ये क्षेत्र क़स्बा रूप धारण कर लेता है ।" कस्बा वस्तुतः वह स्थान होता है , जो पडोसी ग्रामों केलिए बैंक , बीमा , यातायात और स्वास्थय सम्बन्धी कार्यों को करता है। इस दृष्टी से कस्बा अपने कार्यों द्वारा आस - पास के ग्रामीण क्षेत्रों को संतुष्ट कर देता है , ऐसे पवन भी इन्ही कस्बों से आया है।

नगर का स्वरुप कसबे का उत्तरोत्तर विकास नगर के रूप में होता है। नगर अपने कस्बों के ऊपर आधिपत्य का काम करता है । नवींद्रनाथ मुखर्जी के अनुसार " नगर सामाजिक विभिन्नताओं का वह समुदाय है जहाँ द्वितीयक समूहों और नियंत्रणों,उद्योग और व्यापार,धनि आबादी और अवैयक्तिक संबंधों की प्रधानता हो। " अतः नगर एक ऐसा जान समुदाय होता है जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ होती है। यद्यपि आधुनिक काल में विकासशील देशों में ग्रामीणता के तत्वों की नगरों में भी दीखते है। सार्वभौमिक रूप से ' नगर ' उस बस्ती का नाम है जहां का जान समूह कृषि कार्यों के स्थान पर अन्य उद्योगों में व्यस्त रहते है। इसी प्रकार नगर क्षेत्र व्यवसाय,उद्योग के बिना अपूर्ण है। नगर शब्द विशिष्ट मानसिक व्यवस्था का भी द्योतक है। नगरीय जीवन की आर्थिक एवं सामाजिक जटिलता के कारण यहां का व्यक्ति अनेक संघर्षों तथा मानसिक टनाओँ से घिरा रहता है

महानगर:-नगर का उत्तरोत्तर विकास ही अपने क्षेत्र को महानगर में परिवर्तित कर देता है। ' महानगर ' शब्द अंग्रेजी के ' मेट्रोपोलिटन ' का हिंदी पर्यायवाची शब्द है इसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा के मेट्रोपोलिस शब्द से हुई है। यह सामाजिक शब्द मेटर तथा पोलिस शब्दों के योग से बना है। नगेंद्र के अनुसार " प्राचीन काल के इन नगरों की सांस्कृतिक आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था का आधार मातृ प्रधान

विशेषता रही है ।" नगरों की तुलना में महानगरों में जनसंख्या का आधिक्य बढ़ता जाता है।

दौड़ उपन्यास में महानगरीकरण एवं महानगरीय जीवन का वर्णन:- आज भारतीय समाज को आधुनिक समाज कहा जा सकता है। महानगरीकरण में विकसित ज्ञान - विज्ञान तथा तकनिकी उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में ही विकसित हुआ है। यह आधुनिक जीवन के विचार बिंदु है। इसमें परम्परागत सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव डाला है । जिससे नवीन समस्याएँ महानगरीय जीवन में विकसित हुई है।महानगर का अर्थ है ऊंची ऊंची इमारतों , बड़े कल कारखानों ,दुकानों तथा दौड़ते वाहनों आदि से पूरित घनी आबादवाला शहर न्यूयॉर्क , लन्दन , टोक्यो , पेरिस आदि विश्व के कुछ महानगर है। भारत में दिल्ली , मुम्बई, कोलकता आदि को महानगर की संज्ञा दी जा सकते है। महानगरीय जीवन अनेक रूपों में मनुष्य केलिए किसी वरदान से काम नहीं है , पर वही दूसरी ओर त्रासदी या अभिशाप भी है। ममता कलियाँ का उपन्यास ' दौड़ ' में महानगरीय जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया है। ऐसे जीवन के कारण होने वाली मूल्य विघटन के बारे में बताया गया है । दौड़ उपन्यास के समूचे पात्र एक नगर में रहने वाले है। पवन एक पढ़ा - लिखा युवा है , उसे अच्छी नौकरी केलिए अहम्दाबाद जैसे महानगर में जाना पड़ता है। ।उस सन्दर्भ में पवन अपने दोस्त से कहता है - " अहम्दाबाद तो एक ऐसा शहर है , जहां आने के बाद सभी मनुष्य उसके चकाचौंध भरी दुनिया में सभी लोग अपने रिश्तों को भूल जाते है। " इस कथन का अर्थ यह है कि ऐसे महानगरों के सुख सुविधा पाकर मनुष्य अपना सर्वस्वा भूल जाते है।

पारिवारिक जीवन:-परिवार एवं जाति व्यवस्था भारतीय जीवन कि केंद्र बिंदु है। नगरीय परिस्थितियों के कारण संयुक्त परिवार विभिन्न खंडों में विभाजित हुआ है। महानगरीय जीवन के सन्दर्भ में भारतीय परिवारों का अध्ययन यह बताता है " वर्त्तमान स्थिति ने परिवर्तन के नाम पर परिवार को विशेष रूप से जटिल बना दिया है।" ममता कालिया जी ने दौड़ उपन्यास में पारिवारिक जीवन की जटिलताओं को भी दर्शाया है पवन को मूल्य विघटित बनाने वाले महानगरीय सभ्यता पर आकृष्ट होकर अपने बेटे को भारतीय संस्कृति को न समझाने वाले माता पिता है।

शिक्षा व्यवस्था:-शिक्षा व्यवस्था का विकास महानगर में बड़ी ही तेज़ी से होता आ रहा है। इसका स्पष्ट उदाहरण लेखिका ने अपने उपन्यास दौड़ में दिया है। उपन्यास में पवन के माता - पिता उसे अच्छी शिक्षा देकर एक मैनेजर बनाने का सपना देखते है ओर उसे पढ़ाई केलिए छात्रावास भेजते है। पवन पढ़ने वाले कॉलेज के बारे में यह कहता है " इलाहाबाद गाँव नहीं शहर है , केवल टाउन। शिक्षा में उसे पूर्व का ऑक्सफ़ोर्ड कहते है।"

अर्थ व्यवस्था:-महानगरीय जीवन में अर्थ व्यवस्था का स्थान सर्वप्रमुख है। मध्य और निम्न वर्ग के लोगों के पास अर्थ की कमी होती है। इसी सन्दर्भ में पवन के पैसे की कमी के बारे में कहता है तो वह उत्तर देता है कि - " नहीं सर , आप एक दिन क्याम्प के मैडिटेशन में भाग लीजिए ।" अर्थात मध्यवर्गी लोग पैसे की कमी के कारण सब काम को रोक लेते है।

महानगरीकरण के कारण:-महानगरीकरण के बहुत से कारण हो सकते है , जैसे रोज़गार की खोज , नौकरी - पेशा , उद्योग - धंधा और राजकीय प्रशासन आदि।

रोज़गार की खोज:-महानगरीकरण के मुख्या कारण के रूप में रोज़गार की खोज कहा जा सकता है। इस सन्दर्भ में पवन कहता है - "यहाँ मेरे लायक सर्विस कहाँ ? यह बेरोज़गारों का शहर है ।" वर्त्तमान पीढ़ी की सोच कुछ ऐसा है कि शहर जाकर या विदेश जाकर काम करने से जल्दी ही अमीर बन जाते है। इसी कारण वह अपने गांव में कुछ काम करना या कुछ रोज़गार ढूंढना पसंद नहीं करता। वे पढ़ाई समाप्त कर या अपूर्ण शिक्षा के साथ ही रोज़गार केलिए शहर आते है। लेकिन उनको अपने मन पसंद काम न मिलने से निराश भी होना पड़ता है। ऐसी एक कहानी है मकानों का जंगल , जिसमें गिरधर इस प्रकार कहता भी है - " या को मतलब यो नहीं कि हम परदेशी है। आर खाने कमाने के वास्ते यान की धुल फांक रहे हैंतो हम बिलकुल ही गिरे हुए हैं ।" मेहनत से काम करके रोज़गार ढूंढने वाले सत्यव्रत अपनी ईमानदारी से नाखुश सहकर्मियों से अपमानित हो जाता हैं उसे ' मुस्कराहट जो लौट आई ' नामक कहानी में देख सकते हैं। ऐसे ही अपनी नौकरी केलिए परिश्रम करने वाले , कष्ट झेलने वाले, दुरितपूर्ण ज़िन्दगी जीने वाले , अपमान व शोषण सहने वाले समाज को भगवानदास मोरवाल ने अपने पटाक्षेप, खँडहर, बियाबान ,टूटे तटबंध , सूतक , जैसी कहानियों में दिखाया है।

नौकरी - पेशा व उद्योग धंधा:-महानगरीकरण की एक अन्य कारण है नौकरी - पेशा। यहाँ युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी उपयुक्त नौकरी प्राप्त करने में असमर्थ है। अच्छी तरह पढ़ने के बावजूद भी उन्हें सदा ऐच्छिक काम ढूंढना पड़ता है। युवा पीढ़ी उद्योग धंधा खोजने एवं खोलने में सक्षम होते है , मगर उसे विजई बनाने का ताकत वे नहीं रखते। इस सन्दर्भ में लेखिका कहती है कि -" अपने अन्य कामयाब साथियों की तरह उसने सोच रखा था कि अगर साल बीतते - बीतते उसे पद और वेतन में उच्चतर ग्रेड नहीं दिया गया तो वह कंपनी छोड़ देगा ।" ममता कालिया ने अपनी उपन्यास दौड़ में महानगरीय जीवन के हर एक पक्ष को पात्र व घटनाओं के द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। वे ऐसी सभ्यता के कारण भी पाठकों को समझाने का सफल प्रयत्न किया है।

धार्मिक विचार की अधिकता:-महानगरीय जीवन के अनेक पहलुओं पर अपना प्रभाव डालने में पारिवारिक पात्रों के धार्मिक विचारों के अधिकता से हुई है। महानगर में रहने के बावजूद भी दौड़ उपन्यास के रेखा और राकेश जो पवन के माँ - बाप है धार्मिक विचार रखने वाले थे। राकेश पवन से कहता है - " केवल अर्थशास्त्र से जीवन नहीं होता पवन , उसमे थोड़ा दर्शन और देसी संवेदना भी पनपनी चाहिए ।" अर्थात धार्मिक विचार धरा को प्रायोगिक बनाने से मनुष्य सफल बन सकता है। पवन पिताजी के इस प्रश्न पर उत्तर देते हुए कहता हैं -" आपको पता नहीं दुनिया कितनी तेज़ी से आगे बढ़ रही है , अब धर्म , दर्शन और अध्यात्म जीवन में हर समय रिसनेवाले फोड़ नहीं है। आप सरल मार्ग के शिविर में कभी जाकर देखिये , चार - पांच दिन का कोस होता है , वहां जाकर आप मेडिटेट कीजिए और छाते दिन अपने काम में वापस लग जाइये ।" आज के नवयुग के प्रतिक के रूप में पवन को ममता कालिया ने प्रस्तुत किया है। आज की युवा पीढ़ी धर्म के विचार को नकारात्मक रूप में देखते हैं। उनका सोचना है कि धर्म में पद रहने से उनका कोइ भी विकास नहीं हो पाएगा। गुजरात में हो रहे धर्म के प्रभाव को दिखाते हुए पवन अपने दोस्त से कहता है - " पता अनहि यह जैन धर्म का प्रभाव था या गांधीवाद का , गुजरात में मांस और अंडे कि दुकानें बड़े मुश्किल से देखने को आती है ।" गुजरात के लोग धर्म को उच्च स्थान देने वाले है। इसलिए वे मांस खाने वालों को भारतीय संस्कृति के विरुद्ध की जाने वाले बातों के रूप में देखते है। अहिंसा और भारत के स्वतन्त्रता के उन्नायक मोहनदास करम चाँद गाँधी भी धार्मिक विचार रखने वाले व्यक्ति थे। महानगर होने के बाद भी ऐसे विचार को आधार बनाकर आगे चलने से देश के विकास में उत्तेजक कार्य होने की संभावना होता है।

ममता कालिया ने अपना उपन्यास दौड़ में अभिवयक्त महानगरीय जीवन का काफी सुन्दर चित्रण किया है। इस सन्दर्भ में यह तथ्य सार्थक ही है। उन्होंने आर्थिक उदारीकरण द्वारा होने वाली बाज़ारवादी व्यवस्था के ताकत को पूर्ण रूप से इस उपन्यास में समाहित किया है।

महानगरीय जीवन से लाभ और हानि:-कहा जाता है भारत गाऊं का देश है , और सही भी है क्योंकि यहाँ की अधिकतर जनसंख्या गाऊं में वास करती है। भारत वासी अपने विकास केलिए कृषि पर ही निर्भर करते है। सादा जीवन उच्च विचार यही भारतीय गाऊं की पहचान है । जब भी मन में भारतीय ग्राम का विचार आता है , तो खेतों में दूर - दूर तक लहलहाती हुई हरी फसलें , कड़ी धुप और खुले आसमान के निचे काम करने वाले किसान घरों की भागदौड़ संभालने वाली औरतों की छवि आंखों के सामने आ जाती है पेड़ों की ताज़ी हवा , ताज़ा और शुद्ध दूध , रसायनों से मुक्त ताज़ी सब्जियाँ , गावों चौपालों की रौनक आदि चीज़ें आज भी भारत वासियों को गाँव की और खींच ले जाती है। वे अपने खेतों में अनाज और सब्जियां उगाने केलिए कठिन परिश्रम करते है। वे फसलों की सिंचाई केलिए तालाबों और नहरों में पानी के संरक्षण करते है। किसानों के शहरों की आते भागदौड़ एवं हलचलों से दूर तथा प्रकृति के करीब होता है। वहां शांति और सौहार्द देखने को मिलता भी है। शहरों में लोग समय को पकड़ने केलिए दौड़ते रहते है। वहां हमेशा अच्छा प्रदर्शन करने का जबरदस्त तनाव बना रहता है और व्यस्त शहरी जीवन की अपनी समस्याएँ है।वहां अक्सर भूमि के मालिकाना हक़ एवं जाती से सम्बंधित झपड़ें होती रहती है।

कई गाओं में भी शिक्षा , रोज़गार , स्वास्थय , परिवहन और बिजली जैसी बुनियादी सुविधाओं का भी अभाव है। ग्रामीण जीवन शहरों की अपेक्षा काफी शांतिपूर्ण हैं और यहाँ लोग में व्यस्त जीवन नहीं देखा जाता । यहाँ का हवा प्रदूषित नहीं है और वही दूसरी तरफ शहरों में काफी प्रदूषण एवं भीड़ है ।ग्रामीणों का जीवन साधारण होता है वहाँ शहरी जीवन व्यवस्था एवं तनाव से भरा हुआ होता है।

गाओं में ज़्यादातर आधारभूत सुविधाओं जैसे बिजली , स्कूल , नर्सिंग होम एवं कारखाने जहाँ लोगों को रोज़गार मिलता है आदि की कमी होती है। इन सभी सुख - सुविधाओं की तलाश में गाओं के लोग बड़े पैमाने पर शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे है। भारत की आधे से अधिक आबादी गाओं में रहते है , गांधीजी ने कहा था कि - " असली भारत गाओं में बस्ता है । ग्राम्य सादगी और प्राकृतिक सौंदर्य भारतीय संस्कृति और विरासत कि द्योतक है । " गाओं में मेलों और त्योहारों कि भरमार होती है , यहाँ त्योहारों को परम्परागत तरीके से भाईचारे कि भावना के साथ मनाया जाता है । होली , बैसाखी , पोंगल , ओणम दशहरा , दीपावली या ईद कोई भिओ त्यौहार हो लोक संगीत की धुनों पर पूरा गाँव एक साथ नाचता है। सादगी ही ग्रामीण जीवन की पहचान है। लेकिन ग्रामीण जीवन में भी परेशानियां बहुत है । वहां अक्सर भूमि से संबंधित विवाद होते रहते है और कई बार एक ही गोत्र में प्रेमविवाह की वजह से भी रक्तपात एवं हिंसा की घटनाएं हो जाती है। ग्राम पंचायत भी विविध विवादों पर विचार - विमर्श करते हुए बहुत कठोर और निर्मम निर्णय सूना देते है जिनसे लोगों का जीवन दुःख और दर्द से भरी हुई एक कहानी बनके रह जाती है।

महानगरों में जीवन बिताते समय मनुष्य को अनेक तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सामाजिक समस्याओं के साथ - साथ अनेक साधारण समस्याएँ भी होती है । ऐसे अनेक समस्याओं का समावेश करते हुए ममता किया जी ने दौड़ उपन्यास की सृजन की है। दौड़ भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण से उपजे मुक्त भारतीय बाज़ार के दस्तावेज़ है। नायिका स्टेला पूर्णतः आधुनिक नारी है। संगणकीय दुनिया से सम्बन्ध , लाखों के कारोबार को खुद संभालनेवाली स्टेला बदलते परिवेश में नारी के श्रेष्ठ व्यक्तित्व देख सकते हैं। स्वतंत्र चिंतन एवं आर्थिक स्वावलम्बन ने उसे निजी अस्मिता बनाए रखने में मदद दी है। पवन माँ से कहता है - " तुम्हें तो हर लड़की सिलबिल नज़र आती है। इसका लाखों का कारोबार है ।" अर्थात आधुनिक लड़कियाँ कुछ भी कर सकती है। आधुनिक सोच - विचार के कारण स्टेल्ला विवाह से पूर्व पवन के साथ रहती है। परम्परागत मान्यताओं को नकारकर वह अपनी शादी सरल मार्ग शिविर में करती है। जहाँ पवन की माँ का विरोध सह लेती है। उपन्यास की निम्न लिखित पंक्ति स्टेल्ला के स्वच्छंद जीवन शैली के द्योतक है - "मैंने तो ऐसी कोई लड़की नहीं देखि जो शादी के पहले पति के घर में रहने लगे ।" स्टेल्ला के तौर - तरीके से पूर्णतः आधुनिक स्त्री की झलक मिलती है । वह कम्प्यूटर की दुनिया से उसे मिला रही है , इसलिए घरेलु कामकाज के चक्कर में पड़ना उसका इरादा नहीं है। दौड़ की स्टेल्ला स्वतंत्र सोच एवं आत्मनिर्भरता के बूते निजी अस्मिता ज़ारी रखने में सफल दिखती है । निजी ज़िन्दगी में वह स्वनिर्णय को ही महत्व देती है । विवाहोपरांत भी वह अपने व्यवसाय से सदा जुडी रहती है । स्टेल्ला में निजी अस्मिता को सर्वाधिक महत्व देनेवाली सुशिक्षित आधुनिक लड़की की एक आदर्श है।

****

ग्रन्थ सूची

१. प्रेमचंदोत्तर साहित्य में ग्राम्य जीवन - डॉ. देव
२. दौड़ - ममता कालिया
३. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नागेंद्र
४. नगरीकरण और हिंदी उपन्यास - क्षमा गोस्वामी
५. भारत में सामजिक परिवर्तन - रवीन्द्रनाथ तिवारी
६. भाषा विज्ञान - डॉ. तिवारी

मनुष्य के अपराजित हौसले की कहानी 'अपाहिज'

डॉ.विश्वजीत कुमार मिश्र
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग,
राजीव गांधी विश्वविद्यालय,
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
अरुणाचल प्रदेश

मदालसा मणि त्रिपाठी
पी-एचडी शोधार्थी
राजीव गांधी विश्वविद्यालय,
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
अरुणाचल प्रदेश

शोध सार: यह लेख लेखक प्रबोध कुमार गोविल के द्वारा रचित कहानी 'अपाहिज' में चित्रित युवा लड़के के जीवन में आने वाली कठिनाइयों का विश्लेषण करता है। इस 'अपाहिज' कहानी के माध्यम से हम मनुष्य की मेहनत और सकारात्मक सोच को समझ सकते हैं, उसके कभी न हार मानने वाले हौसले से रूबरू हो सकते हैं। प्रबोध कुमार गोविल की इस कहानी के माध्यम से हम यह बखूबी समझ सकते हैं कि शरीर के किसी अंग के कट जाने से ही कोई भी व्यक्ति 'अपाहिज' नहीं होता है बल्कि व्यक्ति की सीमित सोच ही उसे अपाहिज बना देती है। लेखक ने 'अपाहिज' कहानी के माध्यम से यह उजागर करने का प्रयास किया है कि मनुष्य को भाग्य के भरोसे बैठ कर, नियति को दोष नहीं देना चाहिए, बल्कि इसके विपरीत अगर मनुष्य को प्रकृति को भी चुनौती देनी पड़े तो उसे उससे भी पीछे नहीं हटना चाहिए। जिंदगी में आई कोई भी कठिनाई या मुश्किल मनुष्य के हौसलों को कम नहीं कर सकती, सही राह के चुनाव से ही पूर्ण मनुष्य का निर्माण होता है और यही इस कहानी का सार है।

बीज शब्द: मानवीय संवेदना, अपाहिज, हौसला, मध्यमवर्ग, स्वाभिमान, नियुक्ति पत्र, क्षोभ, औचित्य, अदम्य जिजीविषा, दुर्घटना, मनुष्य।

आधुनिक साहित्य में कहानी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहानी का वास्तविक संबंध युगीन जीवन से होता है, यह मानवीय संवेदना की हार्दिक अभिव्यक्ति है। कहानी साहित्य की एक ऐसी विधा है जो जीवन के किसी भी क्षण को पूर्णता प्रदान करने का सामर्थ्य रखती है। कहानी विधा के देदीप्यमान सूर्य, मुंशी प्रेमचंद जी के अनुसार,"सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।" मनोविज्ञान पर आधारित होने के कारण प्रेमचंद की कहानियों में हमें यथार्थता के साथ ही आशावादिता एवं आदर्शवादिता के भी प्रमाण मिलते हैं। कहानी विधा की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इसकी कोई निश्चित परिभाषा अथवा सूत्र नहीं है। हर व्यक्ति का कहानी कहने का, कहानी लिखने का, अपना अलग ढंग होता है। इसलिए, कहानियाँ बँधती नहीं, बाँधती हैं। प्रबोध कुमार गोविल वरिष्ठ साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्य की लगभग हर विधा में अपनी लेखनी समर्पित की है। उपन्यास, कहानी संग्रह, कविता संग्रह, संस्मरण, नाटक एवं बाल साहित्य, सभी में उनकी कलम ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। "अपाहिज" कहानी प्रबोध कुमार गोविल जी के प्रथम कहानी संग्रह 'अंत्यास्त' की पहली कहानी है। दिशा प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित इस कहानी संग्रह में कुल दस कहानियाँ संग्रहित हैं। गोविल जी की कहानी 'अपाहिज' पढ़ते हुए एक सरसता का आभास होता है। यह कहानी मनुष्य के जीवन के संघर्ष और उससे उबरने की कहानी है। इस कहानी द्वारा यह पूर्णतः सिद्ध किया जा सकता है कि "मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है।"[1] प्रबोध कुमार गोविल की यह कहानी मनुष्य के दृढ़ और स्वाभिमानी स्वभाव को उजागर करती है और मनुष्य को किसी भी परिस्थिति में हार न मानने के लिए प्रेरित करती है। "अपाहिज" कहानी एक ऐसे लड़के की कहानी है, जो एक मध्यमवर्गीय परिवार का सबसे बड़ा लड़का है। उसके जीवन में घटी कुछ आकस्मिक घटनाएँ उसके जीवन और उसकी सोच को किस तरह प्रभावित करती हैं, यही कथानक है। उसके परिवार में उसके अलावा उसके माता-पिता और दो छोटे भाई हैं, यही उसकी दुनिया थी। उसके पिता, एक सरकारी मुलाज़िम हैं जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है और उसकी माता गृहणी है। उसके बाकी दोनों भाई अभी पढ़ने-खेलने की उम्र के थे। 'अपाहिज' कहानी के इस मुख्य पात्र 'युवा लड़के' की कोई ज्यादा ऊँची सोच नहीं थी, उसकी तो बस मात्र एक सरकारी नौकरी में आने की चाहत थी। एक सामान्य परिवार में जन्मे बालक की तरह, वह भी सरकारी नौकरी की सहायता से अपना और अपने परिवार का भविष्य सुरक्षित करने की चाहत रखता था, और बड़े होने की जिम्मेदारी तो थी ही उस पर। प्रशासन न सही, तहसीलदारी से भी वह संतुष्ट था। सुरक्षा और संतुष्टि, मध्यमवर्गीय परिवार के यही तो दो स्तंभ हैं। कहानी की शुरुआत में ही आई यह पंक्तियाँ इस युवा लड़के के जीवन का सार

लगती हैं -"शुरू ही से कोई बहुत ज्यादा रंगीन ख्वाब नहीं देखे उसने। न ही कभी पंख लगाकर उड़ा। आकाश छूने की न उसकी बिसात रही और न साथ। ज़मीन मापने को निकला, तो भी नज़रिया यही, कि बस ज़रूरत भर को चाहिए। शान्ति सन्तोष को कभी बड़ी-बड़ी बातों में नहीं खोजा उसने। रोजमर्रा में तसल्ली ढूंढना तो कोई पाप नहीं है।"[2] मनुष्य मात्र को क्या चाहिए, मात्र एक तसल्ली। तसल्ली इस बात की जीवन की यह नैय्या सही सलामत भव-सागर पार कर जाए। सभी जीवनपर्यंत इसी जद्दोजहद में रहते हैं। उसने जी तोड़ मेहनत की, समझदारी में भी उसके कमी नहीं थी, परंतु इतनी मेहनत करने के बाद भी सरकारी नौकरी के लिए दी गयी परीक्षा में उसका चयन नहीं हुआ। पिता ने तसल्ली दी, माँ ने परीक्षा को गाली। दूसरी बार फिर से एक साल के बेरोजगारी के ठप्पे के साथ वो परीक्षा में बैठा परंतु इस बार एकाएक उसकी ज़िंदगी बदल गई। एक हादसा, जिसने एक ही दिन में कई जिंदगियाँ समाप्त कर दीं। एक दिन वह और उसका पूरा परिवार एक शादी से लौट रहे थे कि तभी जिस गाड़ी में वह आ रहे थे वह गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है। उस दुर्घटना ने उससे उसके माता-पिता और उसके मंझले भाई को छीन लिया और अपनी एक टांग खोकर अपने छोटे भाई के साथ बचा वो "अपाहिज"।

एक ही दिन में वह मात्र भाई से अपने छोटे भाई का माँ- बाप और पूरा परिवार बन गया। अब पूरी जिंदगी एक बैसाखी और छोटे भाई के सहारे गुज़ारनी थी। उस लड़के की एक टांग कट जाती है, वह अपाहिज हो जाता है परंतु इसके बावजूद जिंदगी जीने के उसके हौसलों में कमी नहीं आती है। वह अपाहिज बनकर जिंदगी जीने के पक्ष में नहीं है इसलिए वह सोचता है कि "किसी एक अंग के न रहने से आदमियत पर आँच नहीं आती। जब तक आदमी का दिल सलामत है, दिमाग सलामत है वह क्यों किसी एक अंग की परवाह करे? पेड़ की एक शाख झरने से समूचा पेड़ तो नष्ट नहीं हो जाता?"[3] जिंदगी को बेचारा बन के जीने का पक्षधर वह नहीं है। कहानी में प्रबोध कुमार गोविल उस लड़के के माध्यम से कहते भी हैं कि- "आदमी मात्र अपने अंगों से कहीं बढ़कर है।"[4] वह फिर से जी-जान लगाकर परीक्षा की तैयारी करता है, "उसने पूरी मेहनत की थी। रात को रात और दिन को दिन नहीं समझा। अपने साथ–साथ छोटे को भी पढ़ाया था।"[5] अंततः वह परीक्षा में सफल हो जाता है, परंतु उसका चयन होता है विकलांगों के लिए आरक्षित श्रेणी में। यह बात उसकी मानसिक चेतना पर आघात करती है। उसे यह उपकार का प्रतीक लगता है। वह अंत में नियुक्ति पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर देता है और स्वाभिमान से नया जीवन शुरू करने का सकारात्मक संदेश देता है।

जीवन में हादसे हमें आकाश से धरती पर ला पटकते हैं। परंतु 'अपाहिज' कहानी के मुख्य पात्र के जीवन में घटी त्रासदी तो उसे धरती से पाताल में ला पटकती है। उसके जीवन में आकाश पाना तो मात्र सपना ही था। वह तो मात्र अपने धरातल के सपने पर अपना एक छोटा-सा सुखी आशियाँ बनाना चाहता था, परंतु नियति को यह भी कहाँ मंज़ूर था। उसकी यह त्रासदी हर मनुष्य को अपने जीवन के विषय में सोचने को मज़बूर करती है। हर व्यक्ति के जीवन में किसी न किसी रूप में कोई-न-कोई हादसा उसके जीवन प्रवाह को अवरोधित करता है, उसे 'अपाहिज'कर देता है, परंतु उस क्षण में जो व्यक्ति इस कहानी के मुख्य पात्र की भांति एक आशा की किरण ढूंढ लेता है, वह आगे के जीवन को जीने का तरीका भी खोज ही लेता है। कहानी में वर्णित भी है - "अपाहिज होने का सारा क्षोभ सारी वेदना भुला देता वह, जब देखता कि छोटे की बैसाखी यही अपाहिज काया है। यह विकलांग शरीर किसी मासूम जीवन की पूर्णता है, आधार है।"[6] "अपाहिज" वह मानवीय कहानी है जो सामाजिक के साथ ही वैचारिक पक्ष पर अपना मत रखती है। लेखक के विभिन्न पात्र अपने प्रतीत होते हैं। कहानी के पिता एक जिम्मेदार पिता हैं जो अपने बड़े बेटे को जीवन जीने के रहस्य को समझाने का प्रयास करते हैं। वह एक सामान्य पिता है जो अपने पुत्र की असफलता पर उसे सकारात्मक रहने का संदेश देते है, पिता का यह कथन जीवन जीने का मंत्र प्रतीत होता है- "आसमान में छोड़ा तीर न तो शिकार कर पाता है, न वापस ही आ पाता है। और यदि शिकार घायल भी हो जाये तो अपने हाथ नहीं लग पाता है लिहाजा आसमान की बातें की जा सकती हैं, आसमान धरती पर नहीं उतारा जा सकता। पर साथ ही वे यह भी कहते थे कि पैरों तले आंखें गड़ा लेना कोई बुद्धिमानी नहीं है। आखिर यह आँखों का भी तो अपमान है।"[7] कहानी की माँ एक सामान्य गृहणी है जिसका प्रेम परिवार है।

माँ अन्नपूर्णा है और बेटे की जी तोड़ मेहनत से उसके स्वास्थ्य के प्रति चिंतित है। सभी लोग अपने जीवन में ऐसे कितने ही प्रसंगों से रुबरू होते हैं जहाँ सरकारी ज्यादती के कारण हमारा नुकसान होता है और वह कुछ नहीं कर पाते। यह कहानी उस युवा को दर्शाती है जो जीवन की कठिनाइयों से लड़ना जानता है, उसमें भी चुनना जानता है। यह उस इंसान की कहानी है जिसे लाचारी का जीवन स्वीकार नहीं। वह समाज में दया का पात्र नहीं बनना चाहता। वह कड़ी मेहनत के बाद जब परीक्षा में सफ़ल होता है और आरक्षित वर्ग में अपना नाम पाता है तो उसे यह उसकी मेहनत का परिणाम नहीं, अपितु उसकी लाचारी का प्रमाण सा प्रतीत होता है। उसे यह स्वीकार नहीं की उसे उसकी शारीरिक अक्षमता के कारण यह नौकरी सांत्वना रूप में भेंट की जाए। वह स्वाभिमानी है और जीवन की जिजीविषाओं ने उसे स्वावलंबी भी बना दिया है। हर व्यक्ति अक्सर अपने जीवन के कई मोड़ों पर ऐसे ही ऊहापोह में फंस जाता है जहां उसे इस प्रकार के फ़ैसले करने पड़ते हैं। जीवन की इतनी मुश्किल घड़ी में, जहाँ एक सरकारी नौकरी उसके पूरे जीवन को एक मज़बूत आधार देने वाली थी, उसने अपनी स्वावलंबी सोच का चुनाव किया। इस कहानी के प्रमुख पात्र को शारीरिक अपाहिज होना तो स्वीकार है, पर मानसिक अपाहिज नहीं। उसका अंत में नियुक्ति पत्र के टुकड़े-टुकड़े करना उसकी सक्षमता एवं संपूर्णता के आगमन का प्रतीक है। कहानी की अंतिम पंक्तियाँ, "जैसे उसके भीतर बैठा आदमी अपाहिज होते होते बच गया हो।"[9]प्रकृति के अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य में चेतना शक्ति की प्रबलता होती है। मनुष्य ने कभी हार मानना नहीं सीखा है, वह हर क्षण प्रकृति को चुनौती देता है और जब प्रकृति उसे चुनौती देती है तो वह उसका बखूबी सामना भी करता है। मनुष्य के इसी अदम्य जिजीविषा को देखते हुए मैथिलीशरण गुप्त अपनी कविता 'मनुष्यता' में कहते हैं- "चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुए विपत्ति, विघ्न जो पड़े उन्हें ढकेलते हुए।"[10]

प्रबोध कुमार गोविल की कहानी "अपाहिज" के मुख्य पात्र को जब प्रकृति चुनौती देती है तो वह भी हार मानने से इंकार कर देता है। वह हाथ पर हाथ धरे रहना नहीं जानता था। दुर्घटना के कारण जब वह अपाहिज होता है तब भी वह संघर्ष का रास्ता ही चुनता है। वह चाहता तो विकलांग आरक्षित कोटे में मिली नौकरी को ले सकता था और आराम का जीवन व्यतीत कर सकता था परंतु वह गाँव में एक छोटी दुकान करने का फैसला करता है। उसे एक पल के लिए भी किसी के रहमोकरम का ताबेदार बनना मंजूर नहीं था। इस कहानी के माध्यम से प्रबोध कुमार गोविल 'अपाहिज' शब्द की परिभाषा देते हुए भी नज़र आते हैं। गोविल जी की इस कहानी के मुख्य पात्र का मानना है कि शारीरिक दुर्बलता के कारण व्यक्ति अपाहिज नहीं माना जा सकता, व्यक्ति अपनी मानसिक गुलामी के चलते अपाहिज होता है। उसके अनुसार "दुनिया तो उनसे परेशान है जो अपने विचारों को पंगु बना लेते हैं, अपने इरादों को अपाहिज बना लेते हैं, अपने सोचने-समझने के नजरिये को विकृत बना लेते हैं। वही बोझ है समाज पर। एक मामूली से अंग की शारीरिक क्षति भला कौन-सा दोष है? और फिर जो समूची काया ही वक्त की मोहताज हो, नियति की अमानत हो, उसके एक टुकड़े पर दुखड़ा कैसा?"[11]

निष्कर्ष: 'अपाहिज' एक वैचारिक खोज की कहानी है। विश्व भर में सहयोग, समरसता और शान्ति उत्पन्न करते हुए मानव को पूर्णता कि ओर ले जाना, नर को नारायण बनाना ही प्रबोध कुमार गोविल की 'अपाहिज' कहानी का संदेश है। जिंदगी झंझावात मनुष्य के जीवन जीने की शैली, उसके हौसलों को, उसकी सोच को प्रभावित नहीं कर सकतीं। इसलिए अंततः इस कहानी के सम्पूर्ण सार को इस वाक्य में समाहित किया जा सकता है, जिंदगी हमें क्या देती है यह हमारे पक्ष में नहीं, परंतु हम जिंदगी से क्या चुनते हैं यह अवश्य ही हमारे पक्ष में है।

संदर्भ सूची :-

1.मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है, जेम्स ऐलन, छात्रहितकारी पुस्तकमाल, प्रयागराज
2.अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन,1983, पृष्ठ संख्या 13-14
3.अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 21
4.अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 21
5.अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 22
6.अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 20
7. अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 14
8. अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 16
9. अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 23
10. मनुष्यता, मैथलीशरण गुप्त, NCERT, पृष्ठ संख्या 21
11. अपाहिज, अंत्यास्त (कहानी सं), प्रबोध कुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ संख्या 21

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी कहानियों में संवेदना के विविध रूप

राठोड़ ज्योति चंद्रकांत
शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500046 मो.9642723220

प्रस्तावना :-समाज विभिन्नता से बना है। मनुष्य समाज को बनाता है। भिन्न-भिन्न मनुष्य की भिन्न-भिन्न धारणाएँ होती है। धारणाओं की व्युत्पत्ति मन से होती है। यही मन विभिन्न भावों से तैयार हुआ है। मनुष्य के इन्हीं विभिन्न भावों को संवेदना कहा जाता है। संवेदना मन तथा हृदय को एक साथ लेकर चलती है। अपेक्षित व अनपेक्षित घटनाओं को देख हृदय भावनाओं की संवेदनाओं का निर्माण करता है। संवेदना मनुष्य के ज्ञान प्राप्ति की पहली सीढ़ी है। जिसे मनुष्य धीरे-धीरे मनुष्य जीवन से मनुष्य अंत तक चढ़ने का कार्य करता है। संवेदना मानसिक प्रक्रिया है, जो मनुष्य को सभी भावों से अवगत कराती है। संवेदना सहानुभूति का सच्चा भाव है। सहनशीलता से ही मनुष्य की सही पहचान होती है। संवेदना मनुष्य की संवेदनशीलता की पहचान बन जाती है।

संवेदना एक भाव है जो मानव हृदय से निर्मित होता है। मनुष्य की भावना विविध रूप से प्रकट होती है। इसलिए मनुष्य को संवेदनशील प्राणी भी कहते हैं. या हम यूँ भी कह सकते हैं कि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। मनुष्य अपने विचारों को कागज पर उतारने के लिए कलम की सहायता लेता है। लेखक की यही भावना या सोच-विचार कलम बनकर कागज पर उतरती है। वह मनुष्य की संवेदना होती है। प्रत्येक मनुष्य, साहित्यकार-कथाकार की अपनी एक शैली होती है, उसकी एक अलग-अलग कल्पना, भावना, वैचारिक क्षमता ऐसे विविध भाव हैं, जो संवेदना का रूप धारण करते हैं। सुख-दुख की भावना जो एक-दूसरे के प्रति हम महसूस करते हैं। संवेदना के विभिन्न रूपों से मनुष्य परिचित हुआ है जैसे आदिवासी संवेदना, दलित संवेदना, स्त्री संवेदना, अल्पसंख्यक संवेदना, वृद्ध संवेदना, आदि। संवेदना और मनुष्य दोनों के सहयोग से रची गई कहानी की मौलिकता ही भिन्न होती है।

बीज शब्द :-संवेदना, मनुष्य, आदिवासी, दलित, स्त्री, संवेदना के रूप, मजदूर, वृद्ध, संवेदना और साहित्य, इक्कीसवीं सदी, कहानी, मनुष्य संवेदनशील प्राणी , आदि।

मूल आलेख :-संवेदना मन की एक अनुभूति है जो हमें यथार्थ से मिलवाती है ।संवेदना मनुष्य के अंतर्मन का गहरा विचार है। संवेदना मनुष्य को जीना सीखाती है। संवेदना के अनेकों भेदों से संवेदना की भिन्नता को समझ सकते हैं। हिन्दी कहानी जगत बहुत विस्तृत है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में कुल कितनी कहानियाँ प्रकाशित हुई इसकी मेरे समक्ष कोई गिनती नहीं है। प्रत्येक कहानी की अपनी एक विशेषता तथा भिन्नता है। किसी कहानी को भी एक-दूसरे के साथ जोड़ नहीं सकते। प्रत्येक कहानी पाठक वर्ग को कोई न कोई संदेश जरूर देती है जिसे पाठक वर्ग को समझने की आवश्यकता है। कहानी प्रेम भाव की होती है, देश भक्ति की होती है, स्त्री पर आधारित होती है, विज्ञान पर आधारित होती है। विविध विषयों को लेकर कहानीकार अपनी कहानी लिखता है। आदिवासी संवेदना के अंतर्गत आदिवासियों की मनोस्थिति का वर्णन है। वर्तमान समय में भी आदिवासी कितना भटका हुआ है। उसके अधिकार उससे छिन लिए जा रहे हैं। आज भी वह लड़ रहा है अपने जंगलों के लिए अपने घर के लिए। दलित संवेदना के अंतर्गत मानवता खत्म हो चुकी है, यह देख सकते हैं। इक्कीसवीं सदी का समय भी जातिवाद, छुआछूत के जालों में फंसा हुआ है। रास्ते पर चल रहे जानवरों की भांति दलितों को देखा जाता है जिससे उनके मन-मस्तिष्क में समाज के खिलाफ आक्रोश फैलना तो जायज ही होगा ना। स्त्री संवेदना अपनी अस्मिता के लिए स्त्री का चित्रण है। स्त्री कोई भी जाति या वर्ण की हो, उसे तो हमेशा अपमान ही सहना है। हमेशा पुरुष प्रधान समाज में उनकी दासी बनकर जीना है। भारत अभी इतना संपन्न देश नहीं हुआ जहाँ प्रत्येक स्त्री को सम्मान और आदर प्राप्त होता हो। वृद्ध संवेदना एक मार्मिक विषय है ऐसा कहना गलत ना होगा। क्योंकि वृद्धावस्था जीवन संध्या की आखिरी बेला है। सब पत्ते झड़ चुके हैं। फूलों सी महक अब इनमें नहीं है। सुख के चार पल अच्छे से जीकर खुशी से आँख बंद हो जाए बस इतनी ही आशा होती है। जो आज का नया आधुनिक समाज उन्हें वह भी नहीं दे सकता। किन्नर संवेदना जो तृतीय लिंगी लोगों की भावनाओं को रेखांकित करता है। किन्नर समुदाय की त्रासदी का तो कोई अंत ही नहीं है। जहाँ जाए बस गाली-गलौज और धिक्कार बस यही उनके नाम लिखा गया। अपने जीवन के प्रत्येक कठिनाइयों को किन्नर समुदाय हँस के पार कर लेता है, क्योंकि उन्हें पता है, उनका रखवाला कोई नहीं है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों का मूल स्वरूप कहीं खुशी झलकाता है, तो कहीं दुख दिलाता है। कहानियों में समाज का यथार्थ छुपा हुआ होता है। कहानी मनुष्य जीवन का पूर्ण हिस्सा है, क्योंकि सुबह से उठकर रात तक की बात जब हम किसी को बताते हैं तो उसका रूपांतरण कहानी में ही हो जाता है। मनुष्य संवेदनशील प्राणी है, उसका जीवन संवेदनाओं से भरा हुआ है।

संवेदना कहानी के प्रत्येक परिवेश में दृष्टिगत होती है। चाहे वह कहानी की राजनैतिक जटिलता हो, आर्थिक सार्थकता हो, प्राकृतिक चित्रण हो, धार्मिक तथा सामाजिक स्तर पर मनुष्य की मानसिकता हो, आदि प्रत्येक स्तर पर संवेदना होती है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में इसी विविधता को देखा गया है। कहानी का समय इक्कीसवीं सदी है जो आधुनिकता के मार्ग पर चलता समय है। आज की विचारधारा पहले दशक से थोड़ी भिन्न दर्शित होती है। कहानी के पात्र अधिक शिक्षित, समझदारी से निर्णय लेते तथा अपने आक्रोश भरे विचारों को पाठक वर्ग को दिखाई देते हैं। मैंने कहानी की 2001 से 2010 तक का समय सीमांकन चुना है। यह समय युवा कथाकारों से पूर्ण है। नयी सोच, नया समाज, नया आक्रोश आदि विविधताओं को हम इक्कीसवीं सदी की कहानियों में देख सकते हैं।

आदिवासी संवेदना आदिवासी शब्द से ही पता चल जाता है जो आदि से 'वास' करता आया है। वह आदिवासी है। आदिवास शब्द का मूल अर्थ जो पहले निवास करता आया हो, अर्थात 'आदिवास' अर्थ 'मूल निवासी' होता है। आदिवासी समाज पहले से ही शहरी समाज से दूर रहता आया है। या यूँ कहें सभ्य समाज ने उन्हें कभी अपने समाज में शामिल ही नहीं किया है। आदिवासी समाज जंगल का रक्षक है। आदिकाल से उनके जीवन में जंगल ही उनका देवता रहा है। आदिवासी समाज की संस्कृति सवर्ण समाज से बहुत ही अलग होती है। आदिवासी का खान-पान, रहन-सहन, उनके त्यौहार यह सब भिन्न-भिन्न होते हैं। इसी विविधता के लिए आदिवासी पहचाने जाते हैं। पूर्ण भारतवर्ष में आदिवासियों की बहुत-सी उपजातियाँ हैं। जैसें खोंड, डाफला, खासी, गारो, भेरिया, वाली, कोटा, थारू, नागा, कऊंबा, गुरूंग, लेपचा, गोंड, बंजारा, कबूतरा, उरांव आदि है। आदिवासी लोकगीत, लोककथाएँ, लोक संस्कृति, लोक पर्व, आदिवासी लोक साहित्य इन सब विशेषताओं से आदिवासी समाज संपूर्ण है। हमारे महापुराणों में आदिवासी समाज का जिक्र है। अर्थात हम यह समझ सकते हैं कि आदिवासी सदियों से जंगल, नदी की रक्षा करने वाला समाज है जो विभिन्न प्रकृति से बनने वाली वस्तुओं पर अपना जीवन व्यतीत करता है। आदिवासी कभी भी बिना जंगल, पेड़-पौधों या नदियों के बिना रह नहीं सकता है। भारत के सभी राज्यों में आदिवासी रहते हैं। उनके रहने का स्थान जंगल होता है। परंतु आदिवासी जिस राज्य में रहते हैं, उसी राज्य का प्रभाव वहाँ के आदिवासियों पर दिखाई देता है। इसलिए संपूर्ण भारत के आदिवासी एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। आदिवासियों की बोली उनकी मुख्य पहचान है। प्रत्येक आदिवासी समूह की अपनी एक भाषा और अपनी एक शैली होती है, जो उन्हें एक-दूसरे से भिन्न बनाती है। पेड़-पौधे, नदी, पत्थर, पहाड़, चाँद-सूरज इन सबको आदिवासी अपना देवता मानते हैं। आदिवासी धर्म उनका जंगल ही होता है। केदार प्रसाद मीणा के अनुसार- "आदिवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य इनकी बड़ी महत्वपूर्ण देन है। अपनी सहज रूप से विकसित होती समझ से इन्होंने एक ऐसा समाज और सांस्कृतिक मूल्य विकसित किए हैं जिनमें मनुष्य मात्र को जगह प्राप्त है। दुनिया भर में सामाजिक-सांस्कृतिक आडंबर की सबसे बड़ी वजह धर्म इनके यहाँ प्रकृति से जुड़ा रहा है। अर्थात जो मनुष्य के लिए प्रतिदिन के जीवन में उपयोगी है, उसे बेहतर बनाता है, किसी दूसरे को कोई कष्ट नहीं देता है, वह धर्म है और इनकी नजर में ऐसा तत्व प्रकृति ही है। चाँद और सूरज

बारी-बारी मनुष्य के जीवन में दिन-रात के रूप में आते हैं। इसलिए ये इनके सबसे बड़े देवता हैं- सिंगबोंगा, चांदबोंगा।"1

दलित संवेदना हम हमारा देश बहुभाषिय, बहुसंस्कृति को मानते हैं। हम यह भी कहते हैं कि यहाँ विविधता में एकता है। यह कथन सही है, यह भी हम कह सकते हैं। विविधता में एकता वाला यह देश सभी कुल जाति को सुई-धागे की तरह एक के साथ एक जोड़ता आया है। परंतु यही विविधता हमें शायद उन दलित समाज से नहीं जोड़ती जहाँ मनुष्य ही जन्म लेता है। वह भी हाड़-मांस से बना है। उसे चोट लगने से उसका भी लाल रंग का रक्त ही बहता है। क्यों दलितों को हर वस्तु के लिए क्रांति या आंदोलनों का सहारा लेना पड़ता है। धरती पर जन्मे प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार होता है कि वह अपने तरीके से अपना जीवन व्यतीत करे। किसी भी मानदंड में गिनने से पहले मनुष्य की जाति या वर्ग को ही क्यों पूछा जाता है। हमारे भारतीय समाज में जातियों को चार वर्णों में बाँट दिया जाता है। वह है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। 'शूद्र' एक ऐसा शब्द है जो मनुष्य को मनुष्य से दूर करता है। दलितों को शूद्र या पिछड़ा वर्ग ऐसे संबोधित करते हैं। दलित अछूत होता है, उनके स्पर्श मात्र से ही साधारण सवर्ण मनुष्य अछूता बन जाता है। यह कहना कहाँ तक सही होगा? मनुष्य जानवर को छूते हैं, उन्हें खाना, घास डालते हैं तो क्या उनके स्पर्श मात्र से मनुष्य जानवर बन जाता है। किसी भी प्राणी को छूने से हम अपवित्र नहीं होते, तो मनुष्य के छूने से अपवित्र कैसे हो सकते हैं। ऐसे ही सभी प्रश्न शायद दलितों के मन में भी बार-बार तलवार की तरह चुभते होंगे। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'तलाश' जो छुआछूत का जातिवाद का एक प्रबल और उदाहरण देते हैं - "आप नहीं जानते साहब, रामबती चूहड़ी है। एक चूहड़ी से खाना बनवाएँगे आप? माँस मछली पता नहीं क्या-क्या खाती है। मुझे तो सोचकर ही घिन-सी आ रही है और वह रसोईघर के अंदर घुसकर सब चीजों को छूएगी।"2

स्त्री संवेदना स्त्री की अपनी एक विडंबना है, जो समाज उसे देता है। स्त्री के लिए समाज ने कुछ दायरे बनाके रखे हैं। उसे पतिव्रता रहना है। घर संभालना है। समाज के नीति नियमों का पालन करना है। ऐसे और बहुत कुछ नियम समाज ने एक औरत के लिए बनाकर रखे हैं। इन्हीं में वह अगर रहेगी, तो सुखी रहेगी। इनका उल्लंघन अगर किसी स्त्री ने किया तब वह पछताती है। जया जादवानी की कहानी 'कोई है... ?' एक स्त्री की कहानी जो एक अंधकार में फंस चुकी है। उसका मन प्रत्येक क्षण उसपर जैसे कोई निगरानी कर रहा हो, जासूसी कर रहा हो ऐसा प्रतीत होता है। दरवाजे के उस पार क्या हो सकता है यह जानने को आतुर नायिका अपने-आप से अनेक प्रश्न पूछती रहती है। वह समझ नहीं पाती आखिर कौन उसकी परीक्षा लेना चाहता है, कौन उसे इतना बेबस कर रहा है कि वह दरवाजे के अंदर जा नहीं सकती बाहर वह रह नहीं सकती- "हटती हूँ पीछे .... नहीं, अब नहीं, थपेड़े खा लिए बहुत .... ढूँढा बहुत .... खोजा बहुत.... कोई नहीं था, कोई नहीं है.... अब बस। पर किसका वश? रोका जितना, वही उतने ही वेग से। तो क्या चाहा था? बहना? और ये आखिरी शिखर है झरने का .... ऊपर देखा, आसमान पर धूप खिली है .... बाँहें फैला दीं अपनी। अँधेरा .... सीलन... घुटन... यही तो जाना था आज तक।"3 कहानी की नायिका खो गई है अपने आप में। उसे पता नहीं चल रहा वह कौन सी दुनिया का हिस्सा है। जहाँ सब कुछ अच्छा है।

वृद्ध संवेदना समाज बनता परिवार से है। परिवार बनता है घर में रहने वाले व्यक्ति से। छोटे-बड़े सबको मिलाकर एक संसार बनता है। उस संसार की नींव घर के बड़े होते हैं। दादा-दादी, नाना-नानी यह सब घर को संभाले रखते हैं। नाती-पोतों को अपने दादा-दादी, नाना-नानी की गोद में खेलते देखना जैसे कोई सुखभरी नदी में नहाने जैसे लगता हो। परंतु आज दुनिया बहुत आगे बढ़ चुकी है। आधुनिकीकरण ने सब कुछ बदल दिया है। आज की पीढ़ी नौकरी, व्यवसाय के लिए गाँव से दूर जाना चाहती है। उन्हें जाना भी पड़ता है। माँ-बाप वही गाँव में रह जाते हैं और बाकी परिवार शहर या उनकी नौकरी की जगह बस जाते हैं। यहीं से रिश्ते में अलगाव का निर्माण होता जाता है। घर की नींव जिसे हम कहते हैं वह अकेला पड़ता जाता था। भारतीय संस्कृति यहाँ के मनुष्य को बड़े के प्रति आदर सम्मान की भावना सिखाती है। जो पहले जमाने में मानते भी थे। बड़ों काहुक्म ही सब कुछ होता था। परंतु आज की स्थिति ऐसी नहीं। आज के मॉडर्न जमाने ने सारे आदर सम्मान को नष्ट कर दिया है। संयुक्त की जगह एकल परिवार की धारणा सब तरफ दिखाई देती है। सेवानिवृत्ति उस क्षण तक नहीं हो सकती जब तक मनुष्य का मन पूर्ण हो चुका है, उसके कार्य पूर्ण हो चुके इसका आभास न करा दे। 'पितृमुखी' कहानी में कहानीकार अपनी विवशता जाहिर करते हुए लिखते हैं-

"...कभी-कभी वे स्वयं ऊबकर कहते कि, सब बेकार है, क्या लाभ इतना अध्ययन करने से इससे तो जीवन में और अशांति बढ़ती है। जितना समझो, दुनिया उतनी ही पेचीदा होती जाती है, मैं जानता हूँ तुम्हारी माँ के तनाव में रहने की वजह ... वही तो सब करती हैं, घर से बाहर तक .... उनसे थोड़ा समझौता हमें करना ही चाहिए....।"4 इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ लेखक के मन का भाव सामने लाकर रख देती है। वृद्ध वर्ग आज के दशक में क्या भावना व्यतीत कर रहा है, उसका मार्मिक चित्रण कहानीकार कहानी के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा है।

अल्पसंख्यक संवेदना अल्पसंख्यक अर्थात अल्प का अर्थ थोड़ा या कम होता है। अल्पसंख्यक मतलब जिनकी संख्या कम हो। भारतीय समाज बहुत विस्तृत है। बहुसांस्कृतिक देश भारत को मानते हैं। विविधता से पूर्ण अपने रंगों में भारतीय समाज सबको ढाल लेता है। जनगणना की दृष्टि से अगर भारत देश को देखा जाए तो शायद आज 'चायना' को भी 'भारत' ने मात दे दी होगी। भारत में बहुत से धर्म तथा जातियों की मान्यता है। इसमें विविध धर्म आते हैं। जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि अल्पसंख्यक से तात्पर्य है कि जिनकी संख्या भारत देश में कम है। इसके अंतर्गत मुस्लिम, सिख, ईसाई, फारसी आदि सभी धर्म आते हैं। इसलिए इन्हें अल्पसंख्यक कहा जाता है। परंतु अल्पसंख्यक वर्ग के अंदर आए समाज हमें दूर किया जा रहा है ऐसी भावना का निर्माण करते हैं। जिससे मनुष्य-मनुष्य में अंतर बढ़ जाता है।

किन्नर संवेदना किन्नर शब्द जिसे सुनते ही सबके मन में तिरस्कार की भावना उत्पन्न होती है क्योंकि बचपन से सीखाया जाता है। किन्नरों से दूर रहना नहीं तो अभिशाप दे देंगे। जो सच होते हैं। वह जो अपने मुँह से एक बार कह दे, उसे छुटकारा पाना मुमकीन नहीं। किन्नर जिसे हम तृतीय लिंगी भी कहते हैं। ऐसी व्यक्ति जिसकी गणना न पुरुषों में की जाती है न ही औरतों में, स्त्री हो या पुरुष दोनों ही किन्नर हो सकते हैं। स्त्री किन्नर को 'हिजड़ी', पुरुष किन्नर को 'हिजड़ा' कहा जाता है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि विमर्शों की चर्चा दशकों से होती आ रही है परंतु किन्नर विमर्श को कभी इतनी महत्ता नहीं दी गई। इक्कीसवीं सदी से किन्नरों की चर्चा अधिक होने लगी। किन्नर विमर्श जैसे शब्द हर जगह सुनाई देने लगे। हिन्दी कहानियों में अगर देखा जाए तो इतनी कहानियाँ लिखी नहीं गई हैं। परंतु किन्नर साहित्य में उपन्यासों की रचना अधिक है। किन्नर विमर्श का शुरू होना एक महायुद्ध को फिर से शुरू करना होगा। किन्नर विमर्श का दुख दलित तथा आदिवासी समाज से अधिक है, क्योंकि किन्नरों को समाज का हिस्सा ही नहीं समझा जाता है

निष्कर्ष :-संवेदना कहानी का प्राण है। संवेदना से पूर्ण रचना समाज के यथार्थ को बयान करती है। संवेदना प्रत्येक कहानी का मूल तत्व होता है जिसे विभिन्न स्तरों पर विभाजित करके अपना एक नया अभिप्राय रचा जाता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना के विविध धरातलों को चित्रित किया गया है। संवेदना को समझकर संवेदना को विश्लेषित किया गया है। संवेदना का स्वरूप विस्तृत है। संवेदना का सीधा-सीधा संबंध मनुष्य हृदय तथा उसके मस्तिष्क से होता है। मनुष्य अपनी भावनाओं को समझकर उसमें समर्पित होने का प्रयास करता है। संवेदना प्रत्येक क्षण में संभावित होती है। जिससे मनुष्य का अंतर्भाव समझने में आसानी होती है। मनुष्य गतिशील प्राणी है। उसके विचार गगन छूते हैं। विचारों को गति देने वाला घटक ही संवेदना है। मनुष्य हृदय की अभिव्यक्ति, मनुष्य मस्तिष्क से होकर बाहर आती है। इसीलिए संवेदना इतनी महत्वपूर्ण बन जाती है। कहानी समाज का यथार्थ चित्रण चित्रित करती है। यथार्थ को सार्थकता संवेदना देती है। कहानीकार की संवेदना उसके शब्द बनकर कहानियों में उतरते हैं। कहानीकार के विचारों की पृष्ठभूमि समाज होता है। समाज में घटित सभी घटनाओं को लेखक अपने विचारों से उसे पूर्णता प्रदान करता है। यही पूर्णता संवेदना से उत्पन्न होती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदनाओं के विभिन्न प्रकार को रेखांकित किया गया है।

****

संदर्भ सूची :-

1. आदिवासी कहानियाँ, संपादक- केदार प्रसाद मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण पृ.सं. 5
2. तलाश, जयप्रकाश कर्दम, विक्रम प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2005, पृ.सं. 26
3. उससे पूछो, जया जादवानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.सं. 122
4. हंस पत्रिका (मई 2008) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 30
5. कामरेड का बक्सा - सूरज बड़त्या कामरेड का बक्सा, सूरज बडत्या, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013, पृ.सं. 26

हरियाणवी लोकगीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ.एन.पी.प्रजापति
शोध-निर्देशक
शासकीय अग्रणी महाविद्यालय बैढन,जिला-सिंगरौली
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

श्रवण कुमार
शोधार्थी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

लोक साहित्य का अध्ययन, अध्यापन में सबसे पहला उठता है कि 'लोक क्या है', इसे परिभाषित करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल 'हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन' में लिखते हैं, ''लोक क्या है? यह जो गाँवों और नगरों में, खेतों और कारखानों में, गिरी कन्दराओं और मैदानों में, नदियों के गुहाने से लेकर पर्वत शिखरों तक, मधुमक्खी के छत्ते की तरह असंख्य जनता फैली है। वेदव्यास ने जिसके बारे में कहा था कि मैं तुम्हारे अत्यंत गुप्त रहस्य की बात बताता हूँ। इस दुनिया में सबसे बड़ा मनुष्य है, उससे बड़ा कोई नहीं। चण्डीदास ने जिसके बारे में गाया 'सुनाह मानुष भाई, सवार ऊपर मानुष सत्य ताहर, ऊपर नाहीं। हे भाई सुनो! मनुष्य से बड़ा और कोई सत्य नहीं है।''

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने धातु में 'धञ' प्रत्यय लगाने से बना है। इस धातु का अर्थ है देखना जिसका लटलकार में अन्य पुरुष एकवचन का रूप लोकते हैं। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ- देखने वाला। इसलिए वह समस्त समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा।

लोक मानव जीवन का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता समाज और पाण्डित्य की चेतना से शून्य है यह एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक से अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक तत्व कहलाते हैं।

''शब्दकोशों में 'लोक' शब्द के अनेक अर्थ हैं। जिनमें से साधारणतया दो अर्थ अधिक प्रचलित है एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है, दूसरा अर्थ जनसामान्य है इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ को 'वाचक' लोक शब्द साहित्य का विशेषण है किन्तु इतने में लोक का वह अभिप्राय प्रकट नहीं हो पाता जो साहित्य विशेष के रूप में वह प्रदान करता है।''

अर्थात् लोक एक प्रकार से साहित्यिक संस्कारों से अनभिज्ञ होता है। लोक साहित्य को लोकवार्ता का ही एक अंग माना जा सकता है। लोक साहित्य को लोक संस्कृति के प्रौढ़ रूप में भी समझा जा सकता है। लोक में समस्त जन समुदायों का आविर्भाव होता है।

'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। उपनिषदों में अनेक स्थानों में लोक शब्द व्यवहृत हुआ है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में कहा गया है कि लोक अनेक प्रकार में फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में वह प्रभूत व व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह जान सकता है? साधारण जनता के अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध है।

ऋग्वेद की अन्य सूक्ति में लोक व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है-यथा।

नाम्या आसीदंतरिक्ष शीर्ष्णों द्यौं समवर्तत्।
पद्यां भूगिर्द्दिशः श्रोता, तथा लोकां अकल्पयत।

अर्थात् भगवान की नाभि से अन्तरिक्ष की सृष्टि हुई। उनके मस्तक से स्वर्ग उत्पन्न हुआ। उनके चरणों से भूमि की सृष्टि हुई। उनके कान से दिशायें उत्पन्न हुई तथा सारे लोकों का निर्माण हुआ।''

भारत में जब आर्यों का आगमन हुआ तब आर्य एवं आर्येत्तर जातियों के बीच 'वेद' और वेदेत्तर स्थिति का आविर्भाव हुआ। उस दशा में 'लोक' शब्द का प्रयोग वेदेत्तर अथवा 'शास्त्रेत्तर' के लिए होने लगा। यहाँ 'लोक' शब्द वेद विरोधी अर्थ का सूचक है। किन्तु आगे चलकर 'लोक' शब्द संस्कृति की संकुचित सीमा तोड़कर ऊँचा उठ गया। वेद के तुल्य ही शब्द अपने स्वतंत्र अस्तित्व का अधिकारी हो गया।

लोक शब्द अंग्रेजी के श्थ्वसइश् का पर्याय होते हुए भी उसकी संकुचित भावना में सर्वथा युक्त है और उसका प्राचीन रूप पूर्व में हमारे यहाँ प्राप्त होता है जिसमें संस्कृति और परिष्कृत प्रभावों से मुक्त पुरातन जीवन के दर्शन होते हैं एवं जिसका अपना निश्चित स्वरूप उपलब्ध होता है। साहित्य में लोक शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। कुछ विद्वानों ने 'लोक' को जन कका पर्यायवाची माना है तो कुछ ने 'ग्राम' या 'नगर' की सीमित परिधि के अन्तर्गत बांधा है। कुछ विद्वान अशिक्षित और अल्पसभ्य व्यक्तियों के वर्ग को लोक के अन्तर्गत मानते हैं परन्तु हमारे दृष्टिकोण में 'लोक' शब्द की व्याप्ति में नगर-गाँव आदि सब कुछ आ जाता है। इसे नगर या गाँव की सीमित परिधि के अन्तर्गत बॉधना उचित नहीं है और न ही इसे जन का पर्याय मानना भी उचित है। ग्राम या जन शब्द लोक के समक्ष संकुचित अर्थ एवं क्षेत्र वाले प्रतीत होते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि ''लोक मानव समाज का वह वर्ग है, जो अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति आस्थावान है, वह आधुनिक सभ्यता एवं कृत्रिमता से दूर अपनी प्राचीन संस्कृति, मान्यताओं एवं परम्पराओं को नहीं तोड़ता। वास्तव में लोक वही है जिसमें युग की मनोवृत्तियों के कुछ न कुछ अवशेष उपलब्ध हो।''

****

संदर्भ:-

1. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन, पृष्ठ संख्या-21
2. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या-10
3. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन, पृष्ठ संख्या-21
4. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या-10
5. विद्या चौहार, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या-40

सुल्ताना का स्वप्न

माधवी लता
सहायक प्राध्यापक-अंग्रेजी
फैकल्टी ऑफ़ आर्ट बनारस हिन्दू विश्विद्यालय बनारस-221005
Mob.9532115478

प्रस्तुत कहानी 'सुल्ताना का स्वप्न' रोक्या सखावत हुसैन द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखी गयी है जिसका हिन्दी रूपान्तरण मेरे द्वारा किया गया है। यह कहानी देश की आजादी के पहले 1905 में प्रकाशित हुई थी। रोक्या सखावत हुसैन का जन्म बंगाल (अब बांग्लादेश) में 9 दिसम्बर 1880 में हुआ था। वह महिलाओं की हितैषी (खासकर मुस्लिम लड़कियों) एंव उनके लिए एक मुखर आवाज थी। उन्होंने शुरू से लड़कियो की पढ़ाई पर बहुत बल दिया। वह एक समाज सुधारिका, नारी समाज की हिमायती एंवं उनकी सामाजिक, आर्थिक उत्थान के लिए जानी जाती है। [9] दिसम्बर बांग्लादेश में आज भी रोक्या दिवस के रूप में मनाया जाता है।

'सुल्ताना का स्वप्न' यूटोपियन संकल्पना पर आधरित फेमिनिज्म को बयां करती है, इसके साथ ही साथ इसमे 'फेमिनिस्ट विजन ऑफ सांइस' भी देखा जा सकता है। इस कहानी में यह संदेश भी प्रेषित है कि स्त्रियाँ भले ही शारीरिक बनावट में कमजोर क्यों न हो पर अपनी बुद्धिशक्ति से किसी भी समस्या का समाधान सहजता से कर सकती हैं। कहानी को सुनने और सुनाने वाली दोनो ही महिला है- सुल्ताना (जो कि शायद लेखिका स्वयं है) एवं उसकी सहेली (काल्पनिक)-सारा।यह कहानी पाठक को ऐसे काल्पनिक देश में ले जाती है जिसका नाम 'लेडी लैण्ड' है, और यहाँ की सबसे अच्छी बात है यह है कि यहाँ सभी काम महिलाओं द्वारा किया जाता है।

एक शाम अपने कमरे में आराम से बैठे हुई यूँ ही मैं भारतीय नारी की स्थिति के बारे में सोच रही थी। मुझे याद नही कि आराम दायक कुर्सी पर बैठे-बैठे कब आँख लग गई, परन्तु जहाँ तक मुझे याद है मैं पूरी तरह जगी हुई थी। मैंने देखा कि आकाश में तारे ऐसे टिमटिमा रहे थे जैसे बेशकीमती हीरे। अचानक मैने अपने सामने एक स्त्री को खड़े पाया, वह अंदर कब और कैसे आ गई मुझे पता ही नहीं चला, फिर मैंने आश्चर्य से खुद को बताया- अरे ये तो मेरी सहेली सिस्टर सारा है। 'सुप्रभात' सिस्टर सारा ने कहा। मैं मन ही मन मुस्कुराने लगी क्योंकि ये सुबह नही शाम हो रही थी, फिर भी मैंने उत्तर देते हुए पूछा, ''कैसी हो सारा?'' अच्छी हूँ, 'सारा ने जवाब देते हुए मुझसे पूछा, 'क्या तुम मेरे साथ योड़ी देर के लिए बगीचे में सैर के लिए चलोगी?'

खिड़की से बाहर आकाश में चाँद को देखते हुए मैने सोचा अभी इतनी देर भी नहीं हुई, और बाहर सैर पर जाने में कोई हर्ज नही है। नौकर भी जा ही चुके थे, सारा के साथ एक अच्छी सैर हो जाएगी और बातचीत भी, यह सोचकर मैं सैर के लिए तैयार हो गयी। मन मे सोचते हुए (दार्जिलिंग में हम दोनो साथ-साथ ऐसे ही सुनहरी सैर पर जाया करते थे)।

बगीचे मे टहलते हुए मैं आश्चर्य चकित रह गई, क्योंकि यहाँ तो सुनहरी सुबह खिली थी। पूरा कस्बा, गली, मुहल्ला शोरगुल मे व्यस्त दिखाई दे रहा था। मैं थोडी शरमायी एवं सकुचाई नजरो से देख रहीं थी कि सड़क पर एक भी आदमी नही दिखाई दे रहा, सबकी सब महिलाएँ ही आ जा रही हैं। थोड़ी देर बाद, कुछ राह चलती महिलाएं मुझे देख कर मेरा मजाक उड़ा हसने लगी। यद्यपि मै उनकी भाषा नही समझ रही थी, पर इतना जरूर था कि वो सब मुझे देखकर हसें जा रही थी। ''ये लोग मुझे देखकर हंस क्यों रही है?'' मैनें सारा से जानना चाहा।''तुम मर्दाना लग रही हो'', उसने जवाब दिया। ''मर्दाना''? ऐसा क्यों, इसका क्या मतलब? मैने फिर पूछा। सारा ने जवाब दिया, ''वह सब हँस रही है क्योंकि तुम आदमियों की तरह शरमा रही हो''। आदमियों की तरह शरमा रही हूँ, यह सुनकर मुझे थोड़ा अजीब लगा। थोडी देर बाद मुझे एहसास हुआ कि मेरे साथ चलने वाली स्त्री सारा नही अपितु एक अजनबी महिला है। मेरे हाथ (जो कि हम दोनों एक दूसरे का पकड़ के टहल रहे थे) जब थोडा नर्वस होने के कारण हिलने लगे तो उसने मुझसे पूछा-''क्या बात है, सखी?''मैने थोड़ा नर्वस होते हुए जवाब दिया, ''न न नही, बस थोड़ा असहज महसूस कर रही हूँ, क्योंकि बिना पर्दा (नकाब) के चलने की आदत नहीं है''। अरे डरने की कोई बात नही है, यहाँ कोई मर्द नही आ सकता क्योंकि यह ''लेड़ी लैण्ड'' (औरतो की जमीं) है। यहाँ तो बरक्कत नेकी, अमन पूरे 'लेडी लैड' में दिखायी देता है। यह सभी बुराइयों, दोषों से मुक्त देश है, सारा ने खुशी से बताया। धीरे-धीरे मुझे बगीचा बहुत मनमोहक लगने लगा। हरे रंग की घास मानो मुलायम वेलवेट की तरह पूरे जमीन पर फैली हो और मैं उस पर चल रही हूँ। सिस्टर सारा (मैंने नाम को जारी रखा क्योंकि वह भी मुझे सुल्ताना ही बुला रही थी) ने मुझसे पूछा, ''अच्छा लगा?''''हाँ, बहुत अच्छा लग रहा है''।परन्तु मेरी उत्सुकता अभी भी बरकरार थी कि आखिर सारे मर्द गए कहाँ और मैंने आखिर में सारा से पूछ ही लिया और जवाब आया, ''जहाँ होने चाहिए, अपनी सही जगह, कमरें में बंदा।''''जैसे हम लोग पर्दे में रहती है, उस तरह?'' मैंने उत्सुकता से पूछा।''हाँ, ठीक उसी तरह''।यह कहकर मैं और मेरे साथ सारा भी दोनों ज़ोर से हस पड़े। आगे मुझे समझाते हुए थोड़ा गुस्से से सारा ने कहा, ''यह कितना गलत है कि जो किसी भी तरह के नुकसान से परे है (औरते) उन्हें अंदर बंद करके रखो और जो सबसे ज्यादा (मर्द) हिंसक है, उन्हें खुला छोड़ दो।''क्यों? हम लोग परदे से बाहर निकल कर क्यों नहीं आ सकती, क्योंकि हम प्राकृतिक रूप से कमजोर हैं?हाँ, जब तक ये हिंसक आदमी खुले आम टहल रहे हैं तब तक हम सुरक्षित नहीं है।फर्ज़ करो कि कुछ पागल, पागल खाने से छूट कर सड़क पर, जानवरों, इंसानों को नुकसान पहुंचा रहे हैं, ऐसी दशा में तुम्हारे लोग क्या करेंगे?मैंने सोचते हुए जवाब दिया कि, ''वो उन्हें पकड़कर वापस वहीं पहुंचा देंगे जहां से आए थें।''सारा ने मेरा जवाब सुनकर मुझसे कहा, ''वास्तव में तुम्हारे यहां बिल्कुल ऐसा ही है, जिसके नुकसान करने की कोई सीमा नहीं है, उन्हें सड़क पर खुले आम छोड़ दिया जाता है और मासूम औरतों को घर के अन्दर परदे में बंद कर दिया जाता है। तुम लोग कैसे उन जाहिल आदमियों पर भरोसा कर सकती हो?''

मैंने थोड़ा सोचते हुए जवाब दिया, ''क्योंकि हमारे यहां सामाजिक ताने-बाने में हमारी कोई गिनती नहीं है क्योंकि हर आदमी अपने आपको मालिक एवं कर्ताधर्ता समझता है। सारे अधिकार उसने खुद जब्त कर रखे हैं और औरतों को पर्दानशी कर घर में कैद कर दिया।'' एक शेर की ताकत आदमी से ज्यादा होती है किन्तु इसका मतलब ये तो नहीं कि वे उसे अपने ऊपर हावी होने दे। तुम सभी औरतों ने स्वयं ही से बैठे पाया।अपने अधिकारों, हितों के प्रति आँख बंद कर ली है, सारा ने बताया।'लेकिन दोस्त सारा, तुम्ही बताओ अगर हम सब काम खुद करने लगेंगी तो आदमियों के लिए क्या रहेगा करने को?''कुछ नहीं, उन्हें कुछ करना भी नहीं चाहिए क्योंकि वे किसी काम के योग्य है ही नहीं। उन सभी को पकड़ कर घर के भीतर पर्दानशीं कर दो।'इतना आसान नहीं है ये करना, मैंने उत्तर दिया और अगर ऐसा हो भी जाए तो क्या उनके साथ सारे राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक एवं ज्ञान-विज्ञान ये सब बंद हो जाऐंगे? सिस्टर सारा थोड़ा मुस्कुराई और कोई उत्तर देना व्यर्थ समझा और मन में सोचा कि उस मेंढक को क्या समझाना जो कभी कुएं से बाहर निकला ही ना हो।

थोड़ी देर बाद हम दोनों टहलते-टहलते सारा के घर पहुच गए। घर बहुत साफ-सुथरा और सजा था। बातचीत के दौरान ही सारा अपनी बुनाई वाली सलाई लेके बुनने लगी और मुझसे पूछा, ''तुम बुन लेती हो?। मैंने कहा, ''हां'' और फिर मैंने बहुत आश्चर्य से सारा से पूछा, (क्योंकि उस घर में सभी सामान बुनाई वाले कपड़े से ढके थे) कि तुम इतना समय कैसे निकालती हो? तुम्हें तो ऑफिस का भी काम करना पड़ता है (क्योंकि यह लेडी लैण्ड है और यहां आदमियों को घर में रहना पड़ता है, पर्दानशी)''मैं ऑफिस का काम तो दो घंटे में ही खत्म कर लेती हूं, उसने बताया।'' सिर्फ दो घण्टे? मैंने आश्चर्य से उसकी तरफ देखा। मेरे यहाँ तो सारे अधिकारी हर रोज सात घण्टे काम करते हैं तब भी काम खत्म नहीं होता। सारा ने कटाक्ष करते हुए कहा, ''तुम्हें लगता

है वो सब सात घण्टे काम करते हैं,?''हाँ'', मेरा जवाब था।'नहीं, सुल्ताना, ऐसा नहीं है। वे सब अपना अधिकतर समय सिगरेट पीने और गप्पे हाँकने में बिता देते हैं। सोचो ज़रा, अंदाजन अगर एक सिगरेट पीने में आधे से एक घण्टे लगते हैं और एक आदमी औसतन दिन भर में 12 सिगरेट तो पीता ही है, तो ऐसे में लगभग छः घण्टे वह सिर्फ और सिर्फ धूम्रपान में व्यर्थ गवाँ देता है।' हम दोनों थोड़ी देर तक अन्य विषयों पर बातचीत करते रहे और इस दौरान मुझे यह जानकर काफी हैरानी हुई कि यहाँ लेडी लैण्ड में किसी को किसी भी तरह की बीमारी नहीं होती, और तो और यहां के लोगों को मच्छर भी नहीं काटते। उससे भी आश्चर्यजनक बात कि यहां पर कोई भी युवावस्था में नहीं मरता, सिवाय किसी दुर्घटना के।''मेरा रसोईघर देखना चाहोगी, सारा ने पूछा''

''हाँ, बिल्कुल'' सारा ने पहले ही सभी आदमियों को वहां से हटने का आदेश दे दिया था। किचन बहुत ही सुन्दर, बगीचे के बीचोबीच था। खिड़कियों पर बाहर से फूल लदे थे। पर मुझे कहीं भी कोयला, धुआँ या चिमनी दिखाई नहीं दिया, मैंने पूछा, ''तुम खाना कैसे पकाती हो,''

''सोलर से'' सारा ने कहा।'लेकिन सूर्य की रोशनी कैसे इकट्ठा होती है?'सारा ने कहानी बताते हुए कहा, तीस साल पहले जब रानी साहिबा तेरह साल की थी तो उन्होंने सिंहासन सँभालते ही ये आदेश दिया कि सभी लड़कियों को शिक्षा का अवसर प्रदान किया जाए और उन्हें शिक्षित बनाया जाए। रानी साहिबा को विज्ञान में अधिक रूचि थी। उनके आदेश स्वरूप दूर-दूर तक लड़कियां शिक्षण ग्रहण करने लगी और बाल विवाह पर रोक लग गई और शादी की उम्र 21 वर्ष कर दी गई। आह! नहीं तो इसके पहले हम लोग परदे (जनाने) में ही रहती थीं, सारा ने एक लम्बी सांस लेते हुए बताया।''यह चमत्कार कैसे हुआ? मैंने हंसते हुए पूछा।''''कहां, अभी भी तो वही भेदभाव है।'' कुछ सालों बाद हमारी यूनिवर्सिटी बन गई, जहाँ किसी पुरुष को आना मना था। ये दो यूनिवर्सिटियाँ थीं, जिसमें से एक ने बहुत ही अनोखा आविष्कार किया, एक गुब्बारा और उसमें लगाये बहुत सारे पाइप्स, जो आकाश में तैरते रहते थे और इसमें लगे पाइप्स की मदद से हम पानी खींचकर एकत्रित कर लेते हैं और इस तरह यहां की प्रिंसिपल ने यहाँ पर अत्यधिक बारिश होने और तूफान को आने से रोक दिया।''ओह! तभी मैं कहूं कि यहाँ पर कीचड़ क्यों नहीं है, मैंने अचंभित हो जवाब दिया।'' सारा ने आगे बताते हुए कहा और जब दूसरी यूनिवर्सिटी को इसका पता चला तो वे ईर्ष्यावश और अधिक नया आविष्कार करने में जुट गए, फलस्वरूप एक ऐसा गुब्बारा बनाया जो अधिक से अधिक सूर्य ताप को खींच सके और ऐसा करके उन्होंने काफी मात्रा में सूर्य ताप इकत्रित कर लिया, आवश्यकतानुसार दूसरों को, जिनको जरूरत हो, देने के लिए।और जब यहाँ की महिलाएँ इस तरह की वैज्ञानिक आविष्कार में व्यस्त थी तो उस समय सभी पुरुष अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में लगे हुए थे। जब उन्हें पता चला कि ये दो महिला विश्वविद्यालयों ने जल एवं सूर्य की ऊर्जा एकत्रित करने वाले यंत्र बनाए हैं तो उन्होंने उपहास उड़ाते हुए इसे 'भावनात्मक दुःस्वप्न' (म्उवजपवदंस छपहीजउंतम) करार दिया।''वास्तव में यह सब बहुत अद्भुत है, परन्तु मुझे यह बताओ कि तुम सब महिलाओं ने यहां के मर्दों को ''जनाने'' में कैसे कैद किया? क्योंकि ऐसा बिल्कुल नहीं हो सकता कि वे सब अपनी स्वेच्छा से अपनी स्वतंत्रता त्याग कर स्वयं ही तैयार हो गए हो चहरदीवारी में कैद होने के लिए, सुल्ताना ने उत्सुकता पूर्वक कहा 'जरूर उनको किसी तरह से हराया गया होगा।'

''हाँ'', बिल्कुल हराया गया उन्हें।'', सारा ने बताया''परन्तु किसके द्वारा, लेडी वॉरियर्स द्वारा, मेरे ख्याल से''?''नहीं, उन्हें पौरूष शक्ति से नहीं बल्कि बुद्धि शक्ति से हराया गया।''''अहा!''''हाँ, ऐसा हो भी नहीं सकता कि उन्हें शारीरिक बल से हराया जा सके क्योंकि आदमियों की शारीरिक शक्ति औरतों से अधिक एवं अलग होती है। यहाँ तक कि उनका दिमाग भी औरतों से अधिक तेज़ एवं चतुर हैं, ऐसा माना जाता है। क्यों, क्या ऐसा नहीं है?''''हाँ, होते हैं, तो क्या हुआ, हाथी का दिमाग इन्सानों के दिमाग से कई गुना भारी और बड़ा होता है फिर भी इन्सान उसे कैद करके रखता है, रखता है कि नहीं?''''बात तो बिल्कुल सही है!'' अच्छा, सही-सही बताओ ये चमत्कार कैसे हुआ, मैं जानने के लिए मरी जा रही हूँ।और फिर सारा ने बताना शुरू किया:औरतों का दिमाग आदमियों से तेज़ चलता है। इसका प्रमाण है कि आज से दस साल पहले जब आदमियों ने हम दोनों ही यूनिवर्सिटियों केवैज्ञानिक आविष्कारों का मज़ाक उड़ाते हुए इसे नकार दिया तो हम महिलाएं उन्हें करारा जवाब देगी, मन में ठान लिया।किन्तु हमारी प्रिंसिपल ने हमें ऐसा कुछ भी करने से मना कर दिया और कहा, ''अवसर मिलने पर हम अपने कार्यों से जवाब देंगे ना कि शब्दों से।''

''अतिसुन्दर, अद्भुत! मैंने ताली बजाते हुए खुश होकर कहा।''

सारा ने कहना जारी रखा-एक बार हमारे पड़ोसी मुल्क से कुछ लोग आकर हमारे देश में शरण लिए और यही रहने लगे। वे सब किसी राजनीतिक अपराध से जुड़े मामले में सम्मिलित थे। राजा, जिसको बजाए बेहतर शासन के अपनी राजनीतिक शक्ति की इच्छा थी, ने रानी साहिबा से कहा कि उन शरणार्थियों के उनके हवाले कर दे। किन्तु रानी साहिबा ने ऐसा करने से मना कर दिया, क्योंकि वह अपने आदर्शों के विरूद्ध नहीं जा सकती थीं। जिसके फलस्वरूप राजा ने हमारे मुल्क के ख़िलाफ युद्ध घोषित कर दिया। हमारे सैनिकों ने साहसिक रूप से दुश्मनों का सामना किया, परन्तु गृह-युद्ध का लाभ दूसरे देशों ने उठाते हुए हमारे मुल्क पर आक्रमण कर दिया। लगभग सभी नागरिक युद्ध में लड़ने गए, यहाँ तक कि सोलह वर्षीय बालक ने भी युद्ध में भाग लिया। अन्ततः अधिकतर सैनिक बुरी तरह घायल हो गए और दुश्मन हमारे मुल्क की राजधानी के काफी समीप आ गये।कोई उपाय नाँ देखते हुए तब रानी साहिबा ने कुछ बुद्धिजीवी महिलाओं के साथ मीटिंग की और उनसे सुझाव मांगे की अब लेडी लैण्ड को बचाने हेतु क्या उपाय किया जाए।तरह-तरह के सुझावों के बीच एक नायाब तरीका यह आया-

''हम महिलाएँ शारीरिक रूप से भले ही कमज़ोर क्यों न हो, किन्तु हम यह युद्ध अपनी बुद्धि शक्ति से जीत सकते हैं।''यह सुनने के पश्चात् काफी देर तक सन्नाटा पसरा रहा। तब रानी साहिबा ने कहा, ''अगर मैं लेडी लैण्ड नहीं बचा पाई तो अपनी जान दे दूंगी।''तभी दूसरी यूनिवर्सिटी की लेडी प्रिंसिपल (जिसने सूर्य ताप इकट्ठा किया था) ने कहा, ''यद्यपि कि जब हम हार के काफी करीब है और हमारे सभी प्रयास नाकाम रहे, ऐसे में मेरे पास एक आखिरी उपाय है और अगर ये तरकीब भी फेल जो जाती है तो हम सबके पास अपने आपको खत्म करने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं होगा।'' क्योंकि सबने कसम खाई थी कि वे कभी अपने आपको दुश्मनों के हवाले नहीं करेंगी, चाहे कितनी भी विषम परिस्थितियाँ क्यों ना हो।

रानी साहिबा ने मीटिंग में आए सभी लोगों का धन्यवाद करते हुए लेडी पिंरसिपल को वो आखिरी उपाय अपनाने के लिए आदेश दिया। प्रिंसिपल खड़ी हुई और बोली, ''इससे पहले कि यह उपाय अपनाया जाय मैं चाहती हूँ कि सभी पुरुषों को ''जनाने'' (परदे) में जाने का आदेश दिया जाए और ऐसा मैं पर्दा प्रथा (जो कि महिलाओं के लिए है) के कारण कह रही हूँ।''

''अवश्य'', रानी ने उत्तर दिया। और दूसरे ही दिन सभी पुरुषों को अपनी ''प्रतिष्ठा'' और ''स्वतंत्रता'' के लिए 'जनाने' (परदे) में जाने का आदेश दिया।थके और घायल सभी पुरुषों के लिए यह आदेश वरदान माफिक साबित हुआ और बिना किसी शिकायत के वे सभी ''जनाने'' की तरफ पर्दे में यह सोचते हुए चले गए कि अब इस देश की सभी उम्मीदें खत्म हो चुकी है।

इसके पश्चात् लेडी प्रिंसिपल मैंने अपने दो हज़ार विद्यार्थियों के साथ युद्ध क्षेत्र में पहुँच गई और वहाँ पहुँचते ही उन्होंने सूर्य ताप से भरा गुब्बारा दुश्मनों की तरफ छोड़ दिया। जिसके फलस्वरूप दुश्मन इससे पहले कि ''ये क्या है'' एवं इसका सामना कैसे करे'' ये समझ पाते सब युद्ध भूमि से अपने हथियार छोड़ भाग खड़े हुए और जो बच गए वे बुरी तरह से झुलस गए''और तब से किसी भी देश ने हम पर आक्रमण करने की कभी कोशिश नहीं की, सारा ने बताते हुए अन्त किया।''

''आह! तो इस तरह इस देश के सभी पुरुष जनाने (जिसको अब मर्दाना कहा जाने लगा) में चले गए और फिर कभी बाहर आने की कोशिश नहीं की।'''हाँ, बिल्कुल सही क्योंकि वे स्वतंत्र रहना चाहते थे'' सारा ने कहा।कुछ समय पश्चात् कुछ जिला जज एवं पुलिस कमिश्नर ने रानी साहिबा से अनुरोध किया कि सैनिकों को उनकी असफलता के लिए दण्ड देते हुए उन्हें अपने-अपने दफ्तरों में वापस लौटने का आदेश दे।रानी साहिबा ने उनके अनुरोध का प्रत्युत्तर देते हुए लिखा कि जब उनकी जरूरत होगी उन्हें बुला लिया जाएगा, फिलहाल अभी वो वहीं रहेंगे जहाँ हैं ..... ''जनाने'' में ।''और अब वो सब पर्दा प्रथा के इतने आदि हो चुके है कि किसी तरह की शिकायत करना छोड़ दिए।''और 'जनाना' प्रथा का नाम बदलकर हमने 'मर्दाना' कर दिया।''मैंने सारा से फिर पूछा, ''लेकिन बिना जज और पुलिस के अपराधियों को कैसे दण्ड कैसे दिया जाता है।''जबसे 'मदार्ना प्रथा' स्थापित हुई तब से देश में कोई अपराध या बुराई नहीं रह गयी, इसलिए इनको पकड़ने के लिए न तो पुलिस की जरूरत है और न ही दण्ड देने के लिए जज की।'''यो तो वाकई ही बहुत अच्छी बात है! और अगर फिर भी कोई अपराधी है तो उसे अच्छे से सबक सिखा सकते हैं, बिन खून खराबे के, जैसे आप लोगों ने दुश्मनों को हराया और इस तरह अपराध और अपराधी दोनों का समाधान हो गया।'''प्रिय सुल्ताना, क्या यहां थोड़ी देर बैठोगी? मैं बैठते हुए प्रसन्नचित्त अंदाज में वहाँ का नजारा देखते हुए बोली, ''तुम्हारा किचन तो किसी रानी के सज्जा कक्ष से कम नहीं लग रहा।''

''अब हमें चलना चाहिए क्योंकि सभी मर्द मन ही मन मुझे कोस रहे होंगे कि मैंने उन्हें इतनी देर किचन से बाहर क्यों रखा।'' और हम दोनों एक साथ हस पड़े। मेरे देश के कितने लोग अचंभित होंगे तब मैं उन्हें बताऊँगी कि दूर देश लेडी लैण्ड में सब काम औरतें स्वयं करती हैं और आदमी बच्चों की देखभाल, खाना पकाना एवं घर के अन्य कामकाज करते हैं।''हाँ, और वो सब कुछ भी बताना जो तुमने यहाँ देखा।'''कृपया मुझे ये बताओ की खेत की जुताई, बुवाई और दूसरे कार्य कैसे होते हैं यहाँ?'''हम लोग खेती का सारा काम इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से करते हैं और साथ ही साथ कुछ वायु यंत्र भी है। यहाँ कोई सड़क और रास्ते नहीं है।'''इसलिए यहाँ कोई रेल एक्सिडेंट भी नहीं होता।''क्या यहाँ कभी पानी की कमी नहीं होती?'''नहीं, जबसे जल से भरे गुब्बारे का आविष्कार हुआ है तब से पानी की कोई कमी नहीं होती। देखों ये गुब्बारे में लगे ढेर सारे पाइप्स जिसकी मदद से हमें जब जितने पानी की आवश्यकता होती है हम आसमान से खींच लेते हैं और इस तरह न तो यहां कभी बाढ़ आती है और न ही तूफान और हम प्रकृति से अधिक से अधिक साधन भी जुटा लेते हैं।हम कभी आपस में झगड़ते भी नहीं क्योंकि हमारे पास फालतू बैठे रहने का समय नहीं होता। रानी साहिबा को वनस्पति विज्ञान का बहुत शौक है। उनकी आकांक्षा है कि एक दिन पूरा देश एक भव्य बगीचे की तरह सुंदर दिखे। ये विचार तो सचमुच बहुत ही उम्दा है।'''यहाँ का प्रमुख भोजन क्या है?'''फल।''गर्मियों में हम पानी वाले गुब्बारे की मदद से धरातल को पानी की छींटो से ठण्डा रखते है और जाड़े के दिनों में ताप वाले गुब्बारे की मदद से गरम।''अ ह हा, क्या बात है, यहां के लोग बिना किसी अभाव के बहुत खुशहाल रहते है। ''अच्छा अगर मैं पूंछू की तुम्हारा धर्म क्या है,''?''हमारा धर्म 'प्रेम' और 'विश्वास' है।

हम आपस में एक-दूसरे के साथ पूर्ण सच्चाई और प्रेम से पेश आते हैं, और यही हमारा धर्म है।अगर कोई कभी झठ बोलता है तो ..... तो क्या उसे मौत की सजा हो जाती है?'''अरे नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है। भगवान के बनाए नुमाइंदे (खासकर इंसान) को मारने में हम यकीन नहीं रखते।'''झठ बोलने वाले को देश निकाला दे दिया जाता है।'''किसी अपराधी को क्या कभी माफी नहीं दी जाती?'''जरूर दी जाती है, अगर वो सच्चे मन से अपने पापों का प्रायश्चित करे तो।'''अच्छा ये बताओ कि क्या सचमुच तुम अपने सगे-सम्बन्धियों के इतर किसी अन्य आदमी से नहीं मिलती?''नहीं, सिर्फ अपने सगे, सम्बन्धी और कोई नहीं।'' ''परन्तु हमारे यहाँ तो सगे बहुत ही कम है, यहाँ तक कि चचेरे भी सगे नहीं होते।'''और हमारे यहाँ बहुत ज्यादा है। हम अपने दूर के चचेरे भाई को भी अपने सगे भाई की तरह मानते हैं।'''अरे ये तो बहुत ही अच्छा है। मैं कह सकती हूँ कि इस देश में तो पवित्रता स्वयं समाई हुई है। ऐसी रानी जो इतनी दूरदर्शी और सहृदय वाली है, जिसने ऐसे अद्भुत नियम बनाए, उससे मैं जरूर मिलना चाहूंगी।''

''हाँ, क्यों नहीं जरूर!'' सारा ने कहा। तब उसने दो गनुमा सीट लेकर एक तख्त नुमा पटरे से जोड़ दिया और उस पर दो मुलायम, पॉलिश किए हुए हाइड्रोजन रूपी गुब्बारे को, जिसमें कि अलग-अलग भार सहन करने की शक्ति थी, को सीट से जोड़ दिया और फिट बताया कि ये गुब्बारे गुरूत्वाकर्षण बल (को नियंत्रित करते हैं, फिर एक हवाई कार में दो ब्लेड की तरह पंख लगा दिए जो कि बिजली से चलते थे। हम दोनों आराम से हवाई कार पर बैठ गए और सारा ने एक बटन दबाया जिसके फलस्वरूप वो ब्लेड रूपी दोनों पंख धीरे-धीरे हवा में घूमने लगे और फिर हवाई कार तेजी से उठती हुई ऊपर उड़ गई। इससे पहले मुझे आभास होता कि मैं ऊपर हवा में उड़ रही हूँ, हम रानी साहिबा के बगीचे में पहुंच चुके थे। मेरी सहेली सारा ने हवाई कार के मशीन को पीछे करते हुए धीरे से जमीन पर उतारा और हम दोनों नीचे उतर गए।

मैंने हवाई कार से ही देख लिया था कि रानी अपनी चार वर्षीय बेटी और कुछ (रानी की सेवा में कार्य करने वाली) स्त्रियों के साथ, बगीचे में टहल रही है।

''हैलो, सारा, तुम यहाँ कैसे?'', रानी ने खुशी जाहिर करते हुए पूछा।मेरा परिचय भी रानी साहिबा से करवाया गया, और वो बहुत ही आत्मीयता के साथ मुझसे मिली। रानी साहिबा से मिलकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। बातचीत के दौरान ही रानी साहिबा ने बताया कि 'उन्हें अपने देश के लोगों को दूसरे देशों से व्यापार के लिए अनुमति देने में कोई हर्ज नहीं किन्तु जहाँ स्त्रियों को ''ज़नाने'' (परदे) में रखा जाता हो, ऐसे देश से व्यापार करना हम बिल्कुल उचित नहीं समझते।' और कहा, ''आदमियों की नैतिकता बहुत ही तुच्छ है जिसकी वजह से हमें उनसे कोई ताल्लुकात रखना पसंद नहीं। हम दूसरे की जमीन हड़पने में यकीन नहीं रखते और ना ही हम हीरे के एक टुकड़े (जो भले ही कोहिनूर से हजारो गुना बड़ा और चमकीला क्यों न हो) के लिए झगड़ना पसंद करते हैं और साथ ही साथ हम दूसरे के मयूर सिंहासन के प्रति कोई दुर्भावना भी नहीं रखती।'' ''हम ज्ञान रूपी समुद्र में गाते लगाते हुए बेहुमूल्य बेशकीमती जवाहरात (जो प्रकृति ने हमारे लिए भण्डार के रूप में सहेज के रखा है) की खोज करते हैं।

''हम प्रकृति के वरदानों का अधिक से अधिक उपयोग कर सुख की अनुभूति करते हैं।''

रानी से जाने की अनुमति लेने के पश्चात्, मैंने दोनों प्रसिद्ध यूनिवर्सिटियाँ भी देखी और वहाँ बने अनुसंधान, प्रयोगशालाएं आदि भी देखे और उसके बाद मैं सारा के साथ वापस हवाई कार में बैठी और जैसे ही ये चलना शुरू करती, मैंने देखा कि मैं फिसल गई। गिरने से मैं चौक गई और सपने से बाहर आ गई। आंख खुली तो मैंने अपने आपको अपनी आरादायक कुर्सी पर यों ही आराम से बैठे पाया।

****

'ञिशी जन-जाति के मौखिक साहित्य का स्वरूप

प्रो.शिवम चतुर्वेदी
शोध निर्देशक (एसोसिएट प्रोफेसर)
हिन्दी विभाग अरूणाचल युनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज नामसाई

तेची यापेरा
शोधार्थी
हिन्दी विभाग अरूणाचल युनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज नामसाई

लोक साहित्य जन-जन के साहित्य को कहा जाता है। लोक साहित्य अविभाव सामन्य जन के द्वारा किया जाता है तथा सामान्य जन के बीच में ही इसका उपयोग किया जाता है। जैसे-जैसे मानव के सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया उसी तरह इनके द्वारा अभिव्यक्ति की गयी। भावनाओं को साहित्य के रूप में सुरक्षित किया गया है। मनुष्य अपने सांस्कृतिक विकास से नगरीय संस्कृति एवं ग्रामीण संस्कृति के रूप में विकसित हुआ। नगरीय संस्कृति द्वारा शिष्ट साहित्य का विकास किया गया है तथा ग्रामीण संस्कृति के द्वारा लोक साहित्य का विकास किया गया। प्रत्येक संस्कृति अपने रीति-रिवाज, मान्यताएँ, लोक विश्वास, खान-पान, पहनावा और वेष-भूषा के कारण जाना जाता है। भारत को अनेकता एमें एकता के रूप में जाना जाता है। यहाँ देश के अलग-अलग भागों में लोगों की अपनी अलग-अलग संस्कृति है जिसके कारण उनकी अपनी स्वयं की पहचान बनती है तथा सभी संस्कृति में लोगों की अपनी बोल-चाल में लोक साहित्य का विकास हुआ है।'ञिशी जन-जाति भारत के अरूणाचल प्रदेश के प्रमुख जन-जाति के रूप में जानी जाती है। इसकी स्वयं की अपनी खान -पान, रहन-सहन आदि के करण जानी जाती है। इनके बोली है वह क्षेत्रीय स्तर पर इन्हीं जनजातियों के बीच यही प्रयेग में लायी जाती है। अरूणाचल प्रदेश में अन्य जन-जातियों की तरह इनकी बोली तो है परन्तु लिपि का विकास नहीं हो पाया है। जिसके कारण इनका लोक साहित्य मौखिक रूप में ही पाया जाता है तथा प्रचीन काल से ही ये अपने लोक-साहित्य को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित करते रहें हैं। ''ञिशी जन-जाति की स्वयं की एक संस्कृति संरचना है जिसमें अन्य समाज की तरह इनका समाज भी एक सुव्यवस्थित रूप से जीवन यापन करता है। इनके समाज में अनेक प्रकार के तीज-त्योहार एवं सामाजिक उत्सव मनाये जाते हैं। ये लोग भी अपने हृदय की भावनाओं को अलग-अलग अवसरों पर लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिस प्रकार हिन्दी भाषीयों के द्वारा लोक गीत, लोक कथा, लोक गाथा, लोक नाट्य, लोक नृत्य एवं लोक सभासित के रूप में लोक साहित्य प्रस्तुत किया जाता है उसी प्रकार 'ञिशी जन-जाति के द्वारा भी लोक साहित्य के सभी विधाओं में प्रस्तुत किया जाता है।

इनके मौखिक साहित्य की उत्पत्ति मानव जीवन के साथ मानी जा सकती है। अरूणाचल प्रदेश बहूसंख्य जन-जाति ''ञिशी की जो साहित्य है वह मौखिक रूप में है। इस जन-जाति की भी अपनी बोली है किन्तु इसकी कोई लिपी नहीं है। इसी कारण से इन जन-जाति की जो उपलब्ध साहित्य है वह मौखिक रूप से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हजारों वर्षों से आज तक जीवित है। इस समाज की जो मौखिके साहित्य है इसका सीधा संबंध इस समाज के जीवन से जुड़ा है और इन साहित्यों को रचने का कार्य अधिकतर स्त्रियों द्वारा ही किया गया है।''ञिशी समाज का जो मौखिक साहित्य है उसमें कल्पना कम और वास्तविकता अधिक है। क्योंकि वह जीवन को बहुत करीब से देखता है और उसमें वही व्यक्त करता है जो वह अपने आँखों से देखता है। अर्थात् उसमें कोई भेद-भाव नहीं होता है।'ञिशी के मौखिक साहित्य को हम निम्नलिखित रूम से बाँट सकते हैं-

1.''ञिशी लोक कथा
2.'ञिशी लोक गीत
3.''ञिशी मुहवरे
4.'ञिशी 'पहेलियाँ आदि।

'ञिशी 'लोक कथा -किसी भी समाज के बारे में अध्ययन करना हो तो हमें उस समाज के लोक साहित्य को समझना जरूरी है। अर्थात् लोक कथा उस लोक साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। भारत में कथा परम्परा बहुत ही प्राचीन है और वह मौखिक रूप में ही थी। किन्तु सबसे प्राचीनतम साहित्य जा था वह मौखिक ही था। कथा साहित्य जो ''ञिशी समाज में है वह मौखिक है। किन्तु इनकी मौखिक साहित्य अत्यंत समृद्ध है जो किसी विकसीत साहित्य से किसी भी स्तर पर कम महत्व नहीं रखता है।''ञिशी समाज की जो संस्कृतिक परम्परा, आचार-विचार को हम इन मौखिक कथा-कहानी द्वारा ही जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इन कथा-कहानी में ञिशी समाज से जुड़े जीवन की प्रत्येक क्षेत्र उपलब्ध हैं। इन प्रचलित कथाओं के माध्यम से हम ''ञिशी समाज के लोक मान्यताओं, लोक विश्वासों को हम देख एवं महसूस कर सकते हैंइन मौखिक कथाओं में इस समाज की जन प्रतिबिम्ब की झलक देखी जा सकती है। इसमें वीरता है, पीड़ा है, प्रेम इत्यादि है।

1. आबूतानी ला दोनी याई चूमची:''आबूतानी ग आन ऐमिन न 'चंङत्गेन' आने अतीग कोह ङाम मी 'म अक नाज पा होग ऐमिन ने दो' याय चूमची। आबूतानी ग ला याय चुमची ग कोह आक वेलिन नाम, होग ऐमिन ने 'या तालो। आबूतानी बेगूम मह सोग 'या तालो नंन सोया मोहूब ङो मई लूद लूरयो नेंन बोता देन हेब भाब याय चुमछी बेगूम मह कोह शाम डूनी सोतिह तुजू सोन बो नामा जाकाम आलो। लागता आ एदुब आल मापा। हब माब ते' बेगूम मे ङो ड़ो सोटो एया दो कोह साम लेघी ङाम सो' राम हो गाब ङो मुई लद ' बोता देन आबू तानी एयो कल बेनाम माम तामा जा यीकाम याय चुमची बेपा ङो बेताब ऐदे जा क'लो हेंगाब जा लामता आले ऐला को पेत्ता कूबू ङा बेजा काम होग गोकाम बिरी माबका चुय का जाब ने लमता आलो एला का।''

यह कहानी 'ञिशी जान-जाति के प्रथम मानव आबूतानी और दो यायी चुमची की कहानी है। आबूतानी और दो' याय चुमची का विवाह हो जाता है। शादी कुछ समय बाद दो' याय चुमची गर्भवती हो जाती है और एक पुत्र का जन्म हो जाता है। एक दिन आबू तानी और उसकी पत्नी मिलकर तय किया कि बच्चे की देखभाल के लिए मौसी 'लूद लूरमो' को घर लाने का निश्चय किया। किन्तु उस 'दोनी गह नामलो' (सूर्य साम्राज्य) की यात्रा आसान नहीं थी। इसलिए आबूतानी की पत्नी ने उससे जाने से गाना करते हुए काह-

''आन चित्र लीन सोसू तुजूक्का
आब सोतलिन सोसू तुजूका।

अर्थात् उस संकटपूर्ण रास्ते पर चलने से अच्छा हम माता-पिता दोनों मिलकर अपने बच्चे का पालन पोषण करेंगे। अतः दोनी याय चुमची आबूतानी को अपनी छोटी बहन 'लूद लूरयो' को लेने जाने से मना कर देती है। लेकिन आबू तानी उसकी ये फैसले को ना मानते हुए जिद्द करने लगता है और वह अपनी पत्नी से कहता है कि हमारे बच्चे को ऐसी एक व्यक्ति की आवश्यकता है जो प्यार भरी लोरियाँ सुनाकर सुला दे। अर्थात् आबूतानी अपनी साली 'लुदू लूरयो' को लाने कि निश्चय कर लेता है। दोनी गह नाम लो (सुर्य साम्राज्य) तक पहुँचे ने के लिए दो मार्ग थे। 'हेच सोको' एक मार्ग है जहाँ दुख दर्द एवं गरीबी का राजा 'योमा तादा' की राज्य है और दुसरा मार्ग है 'अत्र सोको' जहाँ पर शान्ति आनन्द एवं समृद्धि है।

आबूतानी की पत्नी दोनी याय चुमची अपने पती को इसलिए जाने से मना कर रहें थे क्योंकि उसे इस बात का डर था कि उसकी पति कहीं भटककर 'होच सोको' ना चले जाऐं। इसलिए वह आबूतानी से चेतावनी पूर्ण अग्रह करती है कि वह 'हेच सोको' भूलकर भी उस मार्ग पर न जाए। अगर रास्ता भटक भी जाऐ तो 'योमा तादा' की किसी भी आवाज का उत्तर न दें। आबूतानी अपनी पत्नी के मना करने के बावजूद लापरवाही से उस रास्ते पर चला जाता है जिस रास्ते पर चलने से मना किया था अर्थात् 'होच सोको' मार्ग पर प्रवेश होते ही दुख, दर्द की अनुभूति होने लगी। आबूतानी अपनी पत्नी के मना करने के बावजूद 'योमा तादा' की जाल में फस चुका थो। इस प्रकार उसकी पत्नी दो' याय चुमची द्वारा पहनाए आभूषणों को भी 'योमा तादा' छल पूर्वक छीन लेता है। उस समय आबूतानी घर लौटने का निश्चय कर लेता है किन्तु वस्त्रहीन, दीन-हीन और दुखी आबूतानी को अपनी इस हालत से इतना पश्चाताप होता है कि वह अपनी पत्नी याय चुमची को मानव रूप में आकर मिलने कि हिम्मत नहीं जुटा पाता। बल्कि वह एक कमजोर कुत्ते का रूप धारण कर उसकी पत्नी के पास जाता है। फिर भी उसकी पत्नी याय चुमची को सत्य का पता चल जाता है। अतः आबूतानी को क्रोध होकर दोनी याय चुमची उसे छोड़कर चली जाती है।

2. आबू तानी ला जीत आने:दुःखी अपमानित दीन-हीन तेनी अब इस पृथ्वी में अकेले जीवन व्यतीत करने लगा। पत्नी याय चुमची के क्रोधित होकर चले जाने से आबूतानी अब इस ब्रह्माण्ड में अर्थहीन लगने लगा। आबूतानी अपने पूर्व कर्मों से क्रोधित होकर वह इस पृथ्वी को नाश करना चाहा। क्रोधित आबूतानी के इस फैसले से सारा बह्माण्ड में हलचल मच गई। ऐसे में सब मिलकर आबूतानी के क्रोध को शान्त करने के लिए उससे पुनर्विवाह की सलाह देते हैं। अतः इस सलाह से आबूतानी शान्त हो जाता है। आबूतानी को मन ही मन में इस बात की चिंता हुयी कि इस ब्रह्ममाण्ड में अब ऐसा कोई भी नहीं है जो उससे फिर से शादी करें क्योंकि आबूतानी दोनी याय चुमची के पूर्व हर एक जीव से विवाह कर चुका था जिसमें मुर्गा, मेक्खी, मिथून सुअर आदि थी। किन्तु इनमें से कोई भी आबूतानी का समर्थक नहीं बन पाया। आबूतानी का विवाहित जीवन हमेशा असफल ही रहा। किन्तू 'चितूम बोता' को इस बात की जानकारी थी कि आबूतानी सास के पास एक और पूत्री है और वह सबसे सून्दर है उसका नाम 'जित्त आन' है। इस प्रकार 'चितुम बोता' ने जित्त आन की सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा-

"आयु दो ग दो तह
जिकूम जित्त आन दो हो।"

इस आबूतानी में भी 'जित्त आन' की सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर विवाह करने के लिए इच्छा उत्पन्न हो जाती है। लेकिन आबूतानी के मन में इस बात की संका हुयी की जित्त आन सूर्य साम्राज्य की पुत्री होने के कारण उसके विवाह प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगी। इसलिए बुद्धिमान आबूतानी उस सून्दरी को फसाने की एक योजना बनाते है और फिर सफल हो जाते हैं। योजना के अनुसार आबूतानी एक छोटी सी चिड़िया बनकर जित्त आन के पास पहुँचता है फिर उसे नृत्य द्वारा अपने ओर आकर्षित करता है। फलस्वरूप जित्त आन के साथ उसका विवाह हो जाता है।

3. बालि लोरा:बलि लोरा हेनम आक नाम पूम हो दोपान युक म गह आन काम दो' आब का दोमा, नाम पूम हो होपीन गोब सल दोई बा'। आल डाम ऐकार पाकार ने देगाहपा। आल लोग होग बालि लोरा हेनाम हेम ह ऐकार पालाई दोद दक हो पात्त आक खुगुम पिसो दब कापा पा। कापा है कलाम पात्र ह बेगूम मे नों जो डाम तुर्त जा बेका डो शी फोल बड़ी पाकू ताच आक डाम चेगाब पेपा कू। पत्र है बालि लोरा नेनं बेपा नो डाम सोगे नालीन जीबालोकाम नाम डो लोहियाम भोंरो होगे सुदम, पत्ता, कूबू मेंग लाइल दग तान। हेब माब म पात्र है बालि लोरा नेंन बेपा सोगे साम हिये नेकाम नामपूम हो ' आप बेतुम माबला हल।

प्रस्तुत कथा 'जिशी समाज की सबसे लोक प्रिय एक प्रसिद्ध कहानी है। यह एक अनाथ की कहानी है। बालि लोरा नामक एक अनाथ लड़का था। उसके माता-पिता दोनों की मृत्यु हो चुकी थी। उससे खाना-पिना कोई नहीं देता था। इसलिए वह दिन भर मछली पकड़कर खाता था। एक दिन ज बवह मछली पकड़ रहा था तब उसी बीच अचानक से एक बाघ उसके सामने आया। उसने देखा की वह बाघ बहुत ही भूखा और प्यासा है और बालि लोरा से आग्रह करने लगा कि मुझे इस कचरे से छुड़वा दो अगर तुमने मुझे छुड़वा दिया तो मैं तुम्हे हर रोज शिकार करके दूंगा किन्तु यह बात किसी को पता नहीं चलनी चाहिए। यह सुनकर बालि लोरा उसे बचाता है। बचाने काबद उसे वही सुख सुविधा मिलती है जो बाघ ने उससे पहले उसे वादा किया था। अब इस बनाथ बच्चे के पास हर तरह की मांस प्रति दिन बाघ लाकर देने लगा।

''जिशी लोक गीत:- 'जिशी समाज के सुख-दुख, जन्म-मृत्यू, खान-पान, रहन-सहन इत्यादि के संबंधित सभी बाते जो उपलब्ध हैं वह मौखिक रूप में ही हैं, किन्तु इन मौखिक साहित्य भी किसी विकसित समाज के साहित्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। (1) 'म खाबनाम- यह गीत अकसर शादी के अवसर पर गाया जाता है। ये संवाद द्वारा दोनों पक्ष वर और वधू प्रश्नोत्तर शैली में गाये जाते हैं-

'तम्मी लो आबा/तम्मी ने दुमा बो
लपा लो रीच आ/चरता डो रीच ग चिलागह
चीत्त शे मत्रमा तेबा/आन डो रीच गह दुन्यि गह
तागिन ने चीर डा रिकूनी/डाके आन डो देंह लप्पा गह
हेम्मा सोताम डो गग ताजिन/चाइरा रिकूनि।

प्रस्तुत गीत में वधू की विदाई के समय माँ जो व्यथा है उसका वर्णन है। माँ अपनी बेटी से कहती है तुम मेरे, लिए इस दुनिया की सबसे सुन्दर माला के समान हो मैनें तुम्हे सबकी नजरों से दुर अपनी सबसे प्रिय वस्तु मानकर रखा।

मैंने तुम्हे सबसे सुन्दर धागा समझकर सबसे नजरों से दूर रखा। नागा बूया (नये घर में प्रवेश के अवसर पर गाया जाने वाला गीत)यह गीत नये घर में प्रवेश के समय में समूह द्वारा हाथ पकड़कर नृत्य के साथ गाये जाते हैं। जिशी जन-जाति के लाग इससे बहुत उत्सव के साथ अपन रिस्तेदार, गाँव, परिवार के लोगों के साथ गाया जाता है।

3. आन दो' नाम खुमदन (सूर्य देवी की प्रार्थना)-

आन दो' नाम्न/डुल खुमदन/आन दो' नाम्न/
डूल पादनसोल डूलाम तमसिर तबे/नो डूलाम/लेच्छी तबे।

प्रस्तुत गीत में सूर्य देवी की प्रार्थनाओं का वर्णन है। 'जिशी ' जन-जाति के लोग सुर्य माँ के उपासक है। इसमें सूर्य देवी के उपासक द्वारा जो प्रार्थना याचना करते थे उसका वर्णन है।

(4) बाजुम बेनाम- इस गीत को एक ही सुर में एक ही व्यक्ति द्वारा गाया जाता है। यह गीत जिशी'समाज की एक प्रचीनतम गीत है जो आदि मानव लोग गाते थे और यह गीत आज भी घर-घर में किसी भी समय गाया जाता है। उदाहरण-

आन बुगेह हिन्यी डो/सोलू बुगे आल ना अ
दूम्पर गदी ना सबिये डाम/बाहं लिना ना देकबो।

प्रस्तुत गीत में स्त्री अपने पीड़ा को इन गीतों के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहती है कि मैं आज चल नहीं पा रही हूँ आज कोई मेरा सहारा नहीं है। बल्कि आज लाठी मेरा सहारा बन गयी है।

''जिशी मुहावरे-लोक सुभाषित- लोक सुभाषित से तात्पर्य लोकोक्ति-मुहावरों एवं कथाओं से है। हिन्दी लोक सुभाषित की तरह जिशी बोली में भी आम बोल-चाल में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग किया जात है जिसके माध्यम से अपनी बातों को सशक्त रूप में लोक सुभाषित करते हैं। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

1.नुपूम 'माह लगाब-अँप्पो 'माह 'पूमजब लोग अपने ही परिवार से लड़ते है वह अपने नाम एवं पाँव को स्वयं मारने के बराबर होता है।
2.दिबे कासा काप्प-यापा मदा मप्पपहड़ों को देखना आसान है किन्तू उस पर चढ़ना उतना ही मुश्किल है। उसी प्रकार जवानी में सोचना सब कुछ आसान लगता है।
3.योरो चडंदो आचिंग-शा हेरघा लो ओपो लिंगनामएक अच्छी स्त्री की पहचान उसकी खाना बनाने की प्रक्रिया से पता चलती है।
4.दगे बेहाम व्याके-तंगे बेहाम कायजिसकी मदद कि वही धोखा दिया।
5.हिराम अबतुग तुम्ब चातूमएक दृष्ट महिला के प्रवेश होने पर सब कुछ नष्ट।
6.चंत्ते होकूलों चोंछि हेबा मा-दोत्ते ओपो लिंक लो दर्खी हिबामाकन्जूस होना अच्छी बात नही है।
7.हाजंग ताक्की किहा न्योमा-हारा ताक्की किहा न्योमाकिसी को बुरा कहना आसान होता है किन्तु उसे भुलना मुश्किल है।
8.पुप कोअ होकूम सतारेन

सिने कोअ पात्त सतारेनगरीब का बच्चा अमीर हो जाऐगा और अमीर के बच्चे गरी। वक्त की बहुत ताकत है।

उपसंहार:-इस तरह से हम देख सकते हैं कि ''जिशी लोक साहित्य भले ही मौखिक हो किन्तु किसी विकसित समाज की साहितय से कम नहीं है इसमें भी वही सच्चाई, वही पूर्णता है। अन्य समाज की तरह 'जिशी ' समाज के भी अपने समृद्ध संस्कृति परम्परा आदि जाने जाते हैं। इसलिए ''जिशी साहित्य का अध्ययन'जिशी समाज का अध्ययन है। प्राचीनकाल से ही ये अपने लोक साहित्य को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अग्रवर्ती करते रहे। इन्ही मौखिक साहित्य में इस समाज का समस्त जीवन दर्शन की झलक है। इस समाज की इच्छा, आकांक्षा, लोक विश्वास, लोक मान्यतायें इन्ही मौखिक साहित्य में समाहित हैं। प्रायः इन्हीं मौखिक साहित्य द्वारा हम इस समाज का अध्ययन कर सकते हैं।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. डॉ.शिवम चतुर्वेदी: लोक साहितय और व्यावहारिक भाषा, फर्स्ट प्रिन्ट पब्लिकेशन, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।
2.बद्री नरायण: लोक संस्कृति और इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरतारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, प्रयागराज।
3.तोब तारीन तारा: ''जिशी वार्ल, दी.बी. प्रिंटर्स नं. एच, बांडेर देव, लोखिमपुर।
4.डॉ.परवीन निजाम अंसारी: लोक साहित्य के विविध आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स नं0 1149, विशाल जी भवन, चौक, वाराणसी।
5.डॉ.जोराम अनिया ताना:न्यीसी लोक गीतो का सांस्कृतिक अध्ययन,गौतम बुक डिपो,नई दिल्ली।
6.भगवती प्रसाद द्विवेदी: भोजपुरी लोक कथा मंजूषा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, 12 डी. कमला रेहरू मार्ग, प्रयागराज।

पाश्चात्य स्त्री-विमर्श का इतिहास

डॉ.महेश दवंगे
सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे-07
मो. 9822880790

प्रस्तावना :- मनुष्य समाज स्त्री और पुरुष इन दो वर्गों में विभाजित है. लेकिन इनमें समानता नहीं है. प्राचीन समय से ही स्त्री और पुरुष के बीच में असमानता की दीवार खड़ी है. पुरुष के लिए सभी क्षेत्र खुले हैं और स्त्री घर में कैद. वस्तुतः मानव जाति के विकास का मूल स्रोत स्त्री है. वह मनुष्य के सामाजिक जीवन की नींव है. उसी के कारण पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था का विकास हुआ है. इसीलिए परिवार एवं समाज में उसका स्थान एवं महत्व अनन्य साधारण है. वस्तुतः स्त्री या पुरुष में से किसी का भी महत्व किसी से कम नहीं आंका जा सकता. समस्त सृष्टि के कण-कण में स्त्री-पुरुष के युग्म का अस्तित्व और महत्व दृष्टिगोचर होता है. ये दोनों भी एक-दूसरे के अभाव में अधूरे ही है. किंतु पुरूषवादी समाज में धीरे-धीरे स्त्री के अधिकार सिकुड़ते गए और वह परिवार तक ही सीमित रही. स्त्री को इन बंदिशों को तोड़ने में काफी संघर्ष करना पड़ा. स्त्री की यह लड़ाई आज भी जारी है. इस संघर्ष पूर्ण लड़ाई में पाश्चात्य स्त्रियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है.

शब्द संकेत :- स्त्री संघर्ष, अस्मिता, सामाजिक आंदोलन, समानता, मूलभूत अधिकार, पुरूषवादी मानसिकता.

मूल आलेख :- स्त्री-विमर्श एक ऐसा सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन है, जो समाज में पुरुषवादी संरचना को समाप्त कर स्त्री-पुरुष भेद रहित समाज रचना की वकालत करता है. यह आंदोलन स्त्रियों को पुरुषों के बराबर हक़ एवं अधिकार दिलवाने की पहल कराता है. वर्त्तमान समय में संवैधानिक रूप से स्त्री को काफी हदतक पुरुषों के साथ समान अधिकार प्राप्त हुए हैं, किंतु यह महज़ काग़ज़ों पर ही है. आज भी उसे अपने मूलभूत अधिकारों केलिए संघर्ष करना पड़ता है. इसका प्रमुख कारण है कि अधिकार चेता स्त्री को आज भी समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता. अतः इन अधिकारों के प्रति स्त्रियों में जागरुकता तथा स्त्रियों के संदर्भ में समाज की मानसिकता को बदलना स्त्री-विमर्श का उद्देश्य है. स्त्री-विमर्श प्रथमतः स्त्री को घर के सीमित दायरे से बाहर निकालकर स्वस्थ वातावरण में खड़ा करता है. उसे शिक्षा एवं समस्त सामाजिक अधिकार दिलाकर राजनीति, व्यापार, क्रीडा, प्रशासन, साहित्य, कला, विधि, धर्म, विज्ञान, संरक्षण, मीडिया, अध्यापन आदि हर एक क्षेत्र में व्यक्तित्व विकास के लिए पुरुष के समकक्ष स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित करता है.

स्त्री -विमर्श स्त्रियों के अस्तित्व संपन्न होने की प्रक्रिया है. समाज में स्त्री जितने खंडों में बाँटी गयी है, उस विभाजन के विरुद्ध एक समग्र पहचान, शक्ति का बोध और सत्ता का रहस्य जानने की आकुलता है स्त्री-विमर्श. लेकिन इसकी शुरूआत आसानी से नहीं हुई. मनुष्य की निर्मिति से लेकर वर्तमान समय तक स्त्री का स्थान दय्यम ही रहा. यही कारण था कि स्त्री को अपने अस्तित्व एवं विचारों की अभिव्यक्ति की आवश्यकता महसूस हुई. दरअसल विश्व की अधिकांश संस्कृतियाँ पुरुष प्रधान रही हैं इसीलिए विश्व की सांस्कृतिक व्यवस्था में स्त्री का स्थान दूसरे दर्जे का ही रहा है. सभी संस्कृतियों में पुरुष हित को ही ध्यान में रखा गया है. जिससे हमेशा ही स्त्री पर अन्याय होता आ रहा है. इसी अन्याय के कारण अनेक शताब्दियों से वह पीड़ित है. पुरुषवादी संस्कृति ने स्त्री के अस्तित्व को नकारकर उसे घर की चारदीवारी में ही कैद किया. स्त्री पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस बंधन में बंधी रही. जब उसने इसका विरोध आरंभ किया तो पुरुष ने स्त्री को इतना उँचा उठाया कि वह अपना स्थान छोड़ नहीं सकी. उसे भगवान के समान पूजनीय बनाया. संस्कृति का वहन करने की सारी जिम्मेदारियों से उसे जोड़ दिया. अतः समाज पारंपारिक विचारों को लेकर चलता ही रहा और स्त्री का स्थान भी निम्न रहा. किंतु आधुनिक समय में स्त्री ने इन सड़ी-गली परंपराओं के खिलाफ़ विद्रोह आरंभ किया, इसकी शुरुआत पाश्चात्य देशों से हुई ऐसा हम मान सकते हैं.सन 1863 से पहले ही पाश्चात्य स्त्री ने अपने हक हेतु लढना आरंभ किया था. वैसे स्त्री-विमर्श की सबसे पहले शुरूआत अमरिका में हुई थी. विश्व के धनाढ्य देशों की प्रथम पंक्ति में स्थित अमरिका जैसे देशों में भी स्त्रियों की स्थिति बिलकुल पिछड़ी थी. वह न पुरुषों के समान गिनी जाती थी न उसे किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त था. यहाँ तक कि पोप ने भी स्त्री को निम्न स्थान दे रखा था. किंतु बाद में 18 वीं शताब्दी में स्त्री चेतना का आंदोलन उदित होता है, जो आगे जाकर मताधिकार की उपलब्धि हासिल करता है. यह मुक्ति आंदोलन इतिहास में 'मताधिकार आंदोलन' के रूप में जाना जाता है. दरअसल 1974 में सर्वप्रथम मार्गारेट बेटन ने मेरी लैंड विधानसभा में स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग की जिसे ठुकराया गया. 1830 से 1840 के बीच स्त्रियों के मताधिकार लिए कई आंदोलन चलाए गए. इनमें ईनस्टाईन रोज, एलिझाबेध कॅडी स्टॅटन, पॉलिनाराईट, डेन्हीस ल्युक्रेशिया मॉट, ल्युसी स्टोन, मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट, मार्थाराईट इब्सेन, ज्यूलिया वॉर्डे आदि ने स्त्री के हक में कई आंदोलन चलाए. इन आंदोलनों का मूल उद्देश्य स्त्री अधिकारों से जुड़ा था. इस आंदोलन के साथ अन्य आंदोलन भी हुए जिनमें अश्वेत आंदोलन एवं मजदूर आंदोलन मुख्य थे. इस समय स्त्रियों की दशा चिंतनीय थी. इन आंदोलनों को और ताकदवर बनानेवाली महिलाओं में साराह और एंजीलाग्रीमा का नाम लिया जाता है. 'साराह' ने अपने जीवन चरित्र में स्त्री की पूर्व स्थिति के संदर्भ में लिखा है कि "पुरुष वर्ग ने स्त्री वर्ग पर अपने पति होने का नाजायज फायदा उठाया है, जिस कारण स्त्रियों को समानता के दर्जे में रखने के बदले उन्हें अधीन रखने का प्रयत्न किया और जिस कारण स्त्रियाँ भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व, स्वतंत्रता, नैतिकता आदि को पुरुष रूपी प्रति दृष्टिकोण से देखने लगी."[1] अतः इनके द्वारा चलाए गए आंदोलनों के परिणाम स्वरूप कई देशों में स्त्री को कम-अधिक मात्रा में अधिकार प्राप्त हुए. इसके साथ ही 1869 में अमरिकन वुमन सफ्रेज असोसिएशन की स्थापना भी हुई.इस तरह अनेक प्रयास करने के बावजूद भी सन् 1918 तक स्त्री को अपने अधिकारों से वंचित ही रखा गया किंतु प्रथम विश्व युद्ध के दौरान स्त्री ने भी अपनी सहभागिता दर्ज की. मनुष्य रूप में जीने के लिए स्त्री को भी स्वतंत्रता की जरूरत है, यह उसने सिद्ध किया. इसके बाद कॅनडा, ब्रिटन, अमरिका, फ्रान्स एवं युरोपियन देशों में स्त्री को राजनीति में प्रवेश एवं मताधिकार (सन् 1918 में) प्राप्त हुआ.फ्रेंच स्त्री 'ऑलिम्प -द-गॉजेस' में नेशनल असेंब्ली के सामने सत्रह निवेदन प्रस्तुत किए. उसमें स्त्री के लिए स्वतंत्रता एवं समानता का समर्थन किया. वह लिखती है, "स्त्री ने अपनी बुद्धि क्षमता दिखाई तो निश्चय ही वह सफल होगी, अन्यथा फ्रेंच राज्यक्रांति केवल दिखावा बन जाएगी."[2] फ्रेंच राज्यक्रांति के बाद पूरे विश्व में सामाजिक लोकतंत्र का महत्व बढ गया था. स्त्री की दृष्टि से यह समय बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि इस समय स्वतंत्रता, समानता, बंधुता एवं न्याय आदि का महत्व स्थापित हुआ था. हॅरिएट टेलर ने 'द एन्फ्रान्चिसमेंट ऑफ वुमेन' एवं जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' इस ग्रंथ में मनुष्य के रूप में स्त्री और पुरुष समान है, आदि का प्रतिपादन किया. इसी के परिणामस्वरूप 1945 में फ्रान्स में स्त्री को मताधिकार प्राप्त हुआ. साथ ही शिक्षा, राजनीति एवं प्राथमिक रूप में भी अधिकार प्राप्त हुए. इन सभी अधिकारों का समर्थन करते हुए ओल्मपीडी गोउस ने लिखा है, "स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार मिलना चाहिए क्योंकि स्त्रियाँ भी मुक्त जन्मी हैं और उनको भी पुरुष के समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए ... हर नागरिक का कानूनी अधिकार भी समान होना चाहिए. साथ ही स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार भी मिलना चाहिए."[3] इसप्रकार पाश्चात्य स्त्री ने अपने अधिकार हेतु लढकर व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं विचार स्वातंत्र्य को हासिल किया. फ्रेंच राज्यक्रांति के उद्गाता लौक, रुसो, बेंथम ने सभी लोगों के लिए समानता का पुरस्कार किया किंतु स्त्री के संबंध में परंपरागत विचारों का ही समर्थन किया. इसी कारण स्त्री विचारकों को ॲरिस्टॉटल जैसे विद्वान के विचारों का भी खंडन करना पड़ा. इनमें से कुछ तत्ववादियों के स्त्री संबंधी विचार निम्नतरहसे प्रस्तुत हैं -ॲरिस्टॉटल :- "स्त्रियों में जो कमज़ोरी होती है उसी में उसका स्त्रीत्व होता है."

रुसो :– स्त्री कमज़ोर होती है. विकारों को नियंत्रित करने और पितृत्व सिद्ध करने

केलिए एक ही पुरूष के साथ एकनिष्ठ रहना स्त्री का कर्त्तव्य है. स्त्रियों के चंचल स्वभाव के कारण उन्हें नियंत्रित करने का काम पुरूष का होता है.
ऑगस्ट कॉम्प्ट :- "स्त्रियों का दीमाग पूरूष की तुलना में छोटा होता है, इसीलिए स्त्रियों का स्थान निम्न होता है."[4] इन विद्वानों के विचारों को जानने के पश्चात फ्रेंच राज्यक्रांति से स्त्री को प्रेरणा मिली, लेकिन प्रत्यक्ष रूप में इस क्रांति ने स्त्री को कुछ दिया नहीं, ऐसा हम कह सकते हैं. इन्लैंड में भी केटमिलेंट, मेरी एलमान, सिमॉन द बोउवार, हेलन सिक्सन, व्हर्जिनिया वुल्फ, ज्युलिया क्रिस्तिब, मेरी फर्ग्युसन बेटी, फ्रीडन, फ्रायड स्टोन मिचेल एवं मार्क्सवादी स्त्रियों ने स्त्री के अधिकारों के लिए कई आंदोलन शुरू किए. स्त्री-पुरुष समानता को लेकर पुरुषप्रधान वर्चस्व का विरोध किया. इसी दरमियान सन् 1928 में इंग्लंड में भी स्त्री को मताधिकार प्राप्त हुआ.

इन सभी स्त्रियों ने सिर्फ आंदोलन ही नहीं किए बल्कि लेखनी द्वारा समाज प्रबोधन भी किया. जिस समय स्त्री को विचार एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य नहीं था, उस समय में लेखिकाओं ने समाज की परंपरागत मानसिकता को नकारते हुए लेखन कार्य किया. इसी लेखन ने स्त्री के आत्मविश्वास एवं अस्तित्व को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.

मेरी वालस्टान क्राफ्ट का नाम स्त्री-विमर्श के संदर्भ में सर्वप्रथम आता है. हालाँकि इससे पहले लेखन के कुछ प्रमाण मिलते हैं, लेकिन व्यवस्थित रूप से लिखने का श्रेय मेरी को ही जाता है. यूरोप में मेरी ने 'द इन्डिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ वुमैन' शीर्षक से एक निबंध लिखा. यहाँ उसने सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्त्रियाँ नैसर्गिक रूप से पुरुष से हीन नहीं हैं. ऐसा दिखता इसलिए है क्योंकि वहाँ शिक्षा का अभाव है. अतः स्त्री आंदोलन के संदर्भ में यह रचना महत्वपूर्ण मानी जाती है. इसमें स्त्री-शिक्षा, मध्यवर्गीय स्त्रियों की स्थिति और खोखले आदर्शों में जकड़ी स्त्री की समस्याओं को उजागर किया गया है. प्रसिद्ध विचारक मार्गारेट फुल्लर ने 'वुमेन इन द नाईटीएथ सेंच्युरी (1845) एवं ब्रिटेन के प्रसिद्ध विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमैन' (1869) नामक किताब में स्त्रियों की पराधीनता के कारणों का बेबाकी से वर्णन किया है.

सन् 1949 में प्रकाशित फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द बोउआ की प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सेकेण्ड सेक्स' ने महिलावादियों को बहुत प्रेरित किया. वह जोर देकर लिखती है, "स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है।"[5] उनका यह कथन स्त्री के जैविक रूप पर नहीं है, बल्कि सामायिक रूप पर है. उन्होंने स्त्रियों की आर्थिक स्वायत्तता को लेकर पहली बार इस बात की घोषणा की कि "आर्थिक स्वायत्तता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धांतिक रह जाती है।"[6] उन्होंने लिखा है कि आखिर औरतों को हीन और आदमियों को उच्च कैसे साबित किया गया? अतः समाज स्त्री को स्त्री बनाए रखने के लिए निरंतर वातावरण तैयार करता रहता है और उसकी मानसिकता को प्रतिबिंबित करता रहता है.

स्त्री-विमर्श की दृष्टि से वर्जिनिया वुल्फ एक समर्थ विचारक है. जिन्हें केम्ब्रिज युनिवर्सिटी से आनेरी डाक्टरेट भी मिली. स्त्री-विमर्श के संदर्भ में उनकी 'A Room ones one'(1919) यह किताब प्रसिद्ध है. समाज व्यवस्था में स्त्री को बंदिस्त बनाया गया, इसीलिए वह अपने कर्तृत्व को सिद्ध नहीं कर सकी. सभी क्षेत्रों में पुरुष प्रधानता के कारण वह मूक बनकर तमाशा देखती रही आदि विचार वह प्रस्तुत करती है. इसके साथ ही केट मिलेट का 'सेक्युअल पालिटिक्स' (1970) एवं जर्मन ग्रीअर का 'द फिमेल यूनक' आदि ग्रंथों में स्त्री-विमर्श के विचारों की अभिव्यक्ति हुई है.

बेट्टी फ्राइडन ने स्त्री विमर्श को एक नई दृष्टि प्रदान की है. राजनैतिक स्तर पर भी उन्होंने स्त्री-विमर्श को उभारा है. इन्होंने 1966 ई. मे. 'नेशनल ऑर्गनाइजेशन ऑफ वुमैन' की स्थापना की. साथ ही अपनी कृति 'दि फेमिनिन मिस्टिक' (1963) में उन्होंने स्त्री के मानसिक द्वंद्व की स्थिति को दिखाया है. लेखिका की यह विशेषता है कि उन्होंने पारंपरिक नैतिकता बोध का सदा ध्यान रखा और नारी स्वतंत्रता के पक्ष में भी रही. वह पारिवारिक जीवन को ठुकराने के मत की समर्थक नहीं है.मेरी वोल्टसन क्राफ्ट, ऑलिम्प द गॉजेस, हॅरिएट टेलर, जॉन स्टुअर्ट मिल, सीमोन द बोउवार, वर्जिनिया वुल्फ एवं जर्मन ग्रीअर आदि कई महिलाओं की साहसिक रचनाओं ने पूरे विश्व में क्रांति ला दी और समाज में पुरुष के वर्चस्व को हिलाकर रख दिया. यही साहित्य पश्चिमी स्त्री-मुक्ति आंदोलन का आधार बना. इसका प्रतिफलन तब हुआ जब 1970 में अमरिका की सड़कों पर लाखों महिलाएँ 'हमें मुक्त करो' के नारे लगाती एक साथ चली.

इस तरह पाश्चात्य स्त्री-विमर्श से कई सवाल समाज व्यवस्था के सामने खडे हुए. स्वातंत्र्य, समानता एवं शिक्षा का स्त्री के संदर्भ में विचार होने लगा. हमें भी पुरुष के समान व्यक्ति स्वतंत्रता चाहिए यह दृष्टि विकसित हुई. परंपरा से ही घर यही स्त्री का कार्यक्षेत्र है, यही समाज की धारणा थी अतः घर एवं मातृत्व को ही इन स्त्री-विमर्श के विचारकों ने नकारा. उनकी नजर में घर का अर्थ कारावास और मातृत्व का अर्थ सामाजिक जीवन का अंत यही था. इसीलिए घर, परिवार एवं मातृत्व को सभी स्त्रियों ने विरोध किया. इसका कारण यह था जब स्त्री अपने स्वातंत्र्य, समता एवं हक के प्रति जागृत हो रही थी, तब घर, परिवार एवं मातृत्व ही उनकी सबसे बडी समस्या थी. इसीलिए उन्होंने इसे तीव्र विरोध किया जिसे 'जहाल स्त्रीवाद भी कहते हैं किंतु बाद में 'बेट्टी फ्राइडन' ने 'सेकंड स्टेज' इस किताब में मातृत्व यह प्रकृति ने स्त्री को दी हुई जिम्मेदारी है और सामाजिक हित के लिए उस जिम्मेदारी को निभाना आवश्यक है, ऐसा प्रतिपादन किया. वह लिखती है, "नारी मुक्ति आंदोलन भावनाओं से पीछा छुडाना नहीं, अपितु भावना के धरातल पर रहते हुए अपनी एक पहचान बनाना है।"[7] दरअसल पाश्चात्य स्त्री ने सामाजिक एवं रचनात्मक आंदोलन चलाते हुए समाज की ग़लत धारणाओं का विरोध किया. यही वजह है, स्त्री रूप में अपनी पहचान पाने में पाश्चात्य स्त्री काफ़ी हद तक सफ़ल हुई.

निष्कर्ष :-

मुक्ति की कामना प्रत्येक व्यक्ति की आंतरिक कामना होती है. अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति का स्वतंत्र होना आवश्यक है, जिस के लिए स्त्री भी अपवाद नहीं है. किंतु परंपरागत विचार एवं पुरुषप्रधान व्यवस्था के कारण स्त्री का स्थान गौण ही रहा. अतः विश्व में स्त्री मुक्ति के संघर्ष का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना स्त्री शोषण का इतिहास. इसके विरोध में कई पाश्चात्य स्त्रियों ने आंदोलन किए और इस स्थिति को बदलने के लिए मजबूर किया. जो स्त्रियाँ आंदोलन में जुट रही थी वे ही कलम द्वारा स्त्री अस्तित्व के प्रश्नों को उजागर कर रही थीं अतः स्त्री-विमर्श की पहल भी हमें पाश्चात्य स्त्री-विमर्श में ही दिखाई देती है. इसमें जॉन स्टुअर्ट मिल, सीमोन द बोउवार, वर्जिनिया वुल्फ, मेरी वोल्टसन क्राफ्ट आदि लेखिकाओं का योगदान अवर्णनीय है. इनके कार्य के फलस्वरूप ही स्त्री-विमर्श विश्वव्यापी रूप धारण कर चुका है.

***** ******

संदर्भ संकेत :-

1. दसवे दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी चेतना, वसाणी कृष्णावती पी. पृ. 19
2. स्त्रीवादी संकल्पना एवं स्वरुप-, डॉ. वंदना महाजन, पृ. 14
3. दसवें दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी चेतना, वसाणी कृष्णवंती पी. पृ. 19
4. मराठी कादंबरीतील स्त्रीवाद, डॉ. वंदना महाजन स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे प्रथम, 2010. पृ. 15
5. स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृ. 02
6. वहीं, पृ. 03
7. समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श, सं. श्रीराम शर्मा, पृ. 95

भारत में स्त्री शिक्षा और उनके अधिकार

डॉ.मोहन लाल'आर्य'
आचार्य,शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय,मुरादाबाद (उ0प्र0) भारत

आज विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग पचास प्रतिशत हिस्सा स्त्रियों का है, किन्तु उन्हें वह एक समान दर्जा अभी तक प्राप्त नहीं है, जो पुरुषों को प्राप्त हो चुका है। स्त्रियों के विषय में यह स्थिति केवल भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में देखने को मिलती है। सम्पूर्ण विश्व में स्त्रियाँ सामाजिक स्थिति ठीक नहीं मानी जाती हैं। हमारे समाज में आदिकाल से ही स्त्रियों के प्रति उपेक्षा का भाव देखने को मिलता रहा है। जिसके लिए शिक्षा, संस्कृति एवं सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं तथा संस्थाओं के प्रत्येक दायरे में निरन्तर क्रान्ति की प्रक्रिया को जारी रखे बिना समाज की विषमताओं एवं उत्पीड़न के विविध सूक्ष्म एवं स्थूल रूपों को समाप्त नहीं किया जा सका है। स्त्रि-पुरुष असमानता, स्त्रि उत्पीड़न आदि ऐसी ही सामाजिक बुराईयाँ हैं, जिन्हें समाजवादी समाज के भीतर निरन्तर सांस्कृतिक क्रान्तियों से गुजरने के बाद भी निर्मूल किया जा सकेगा। भारत के पितृसत्तात्मक प्रधान समाज में प्रभुत्व सदैव से पुरुषों के हाथ में रहा है। पुरुषों ने सभी फैसले इस तरह से लिए हैं, कि स्त्रियों के अधिकारों की चाबी हमेशा पुरुषों के हाथों में रही है वह चाहे कितनी भी स्वतन्त्र क्यों न हो जाये। स्त्रियों की स्वतंत्रता को स्वीकार और बर्दाश्त करने के लिए पुरुषों को अपना मन तैयार करना बहुत जरुरी है। यह देखा गया है कि स्त्री मुक्ति की मुहिम को अक्सर पुरुषों के समर्थन की आवश्यकता होती है, क्योंकि समानता के अधिकार को समाज स्वीकृत करेगा। पुरुष सत्ता के लिए स्त्री जन्म ले या नहीं, वह जीवित रहे या नहीं, पढ़े या न पढ़ें, वह घर के बाहर रहे या अन्दर, वह कब और किससे विवाह करे आदि विभिन्न व्यवस्थाओं का संचालन पुरुष ने किया है या फिर पुरुष प्रधान समाज ने किया है। यह हम देख रहे कि शिक्षा के बिना स्त्री मुक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए शिक्षा को स्त्री मुक्ति का आधार एवं हथियार बनाया जाने की आवश्यकता है। शिक्षा ही वह साधन है, जिसके द्वारा स्त्रियाँ अपनी सशक्त सम्मान एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। स्त्रियों की मुक्ति के लिए ऐसे अनेक प्रयास करने की बहुत आवश्यकता है, जिसमें स्त्री मुक्ति की अवधारणा, सम्पूर्ण मनुष्य की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-देह, स्वास्थ्य वैचारिकता, शिक्षा, आर्थिक, स्वालंबन, आत्मनिर्णय, ईमानदारी, बहादुरी, साहस, शौर्य की जैसे महत्वपूर्ण गुणों से लैस एक व्यक्तित्व की अवधारणा के रूप में स्वीकार करना और उसके भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक स्तर पर समानता के स्तर तक पहुँचने के लिए सक्षम बनाना है।

शिक्षा से ही स्त्रियों में आत्मविश्वास अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होने की तथा अन्याय से लड़ने की शक्ति पैदा होती है। वे अपने प्रति हो रहे सामाजिक, आर्थिक, भेदभाव को पहचान कर उसका प्रतिकार करने के योग्य बन सकती हैं। शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि, ''पढ़ते-पढ़ते हम यह भी जान गए हैं इस जमाने की चाल आपसे मंदिर के पट खुलवा रही है, क्योंकि विधानसभा और संसद में अब असुर पहुँचने लगे हैं सो हमारी समझ में यह तो अच्छी तरह आ गया कि हम यहाँ किसी देवता के सहारे नहीं आए।'' वर्तमान समय में भी स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। परन्तु यह भी सच है कि आज स्त्रियाँ हर स्थान पर पहुँच रहीं हैं। इस विषय पर मृदुला सिन्हा का कहना है कि ''इन दिनों शिक्षा और विकास के अन्य अवसर पाकर आगे बढ़ रही युवतियों में एक होड़ प्रत्यक्ष देखी जा रही है- वह है पुरुषों के क्षेत्र में प्रवेश की होड़। बड़े फक्र से कहा सुना जा रहा है- इस क्षेत्र में पुरुषों का ही वर्चस्व था।''आज स्त्रियों ने प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सभी स्त्रियों को समानता का हक मिल गया है ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत आज भी बहुत ही कम है जो हर मुकाम पर पहुँच पाती हैं। ''नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि गत सात वर्षों में गाँवों में साक्षरता 12.1 प्रतिशत तक बढ़ गई है जबकि शहरों की लड़कियों की साक्षरता मात्र 7 प्रतिशत ही बढ़ पाई है।'' आज भी ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो पढ़ना लिखना चाहती है। आगे बढ़ना चाहती हैं, परन्तु उन्हें साधन उपलब्ध नहीं होते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश में बस इतना अन्तर आया है कि पहले जिन स्थानों पर एक फीसदी स्त्रियाँ भी नहीं पहुंचती थीं, जहाँ सिर्फ पुरुष ही कार्य करते थे, आज ऐसे क्षेत्रों में स्त्रियाँ भी कार्यरत हैं। स्त्रियाँ का प्रतिशत कम होने के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं, लेकिन इसका मुख्य कारण आज भी पितृसत्तात्मक प्रधान समाज है, जिसके कारण स्त्रियों को समाज में स्वतंत्र गतिशीलता नहीं मिल रही है जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक रूप से सामाजिक बंधनों की जकड़ ढीली हो रही है। किसी भी समाज में साक्षरता को सामाजिक व आर्थिक विकास का प्रतीक माना जाता है। सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक चेतना और आर्थिक विकास के लिए उच्च साक्षरता दर और शिक्षा की गुणवत्ता आवश्यक है, लेकिन इन दोनों में ही हमारा देश बहुत बुरी तरह से पिछड़ा हुआ है।

"मानव विकास रिपोर्ट 2000 के अनुसार भारत में महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत है, जो कि अफ्रीका देशों से भी कम है।" विभिन्न सरकारी प्रयासों के बावजूद भी स्त्री शिक्षा की दिशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। भारतीय समाज में आज भी स्त्रियों के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती है। आज भी लोगों की संकीर्ण सोच है कि लड़की को पढ़ा लिखा कर क्या करना है, क्योंकि लड़की तो पराया धन होती है, उसे दूसरे घर जाना होता है, इस कारण से उनकी शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता है। आज अशिक्षा के कारण स्त्रियाँ स्वाबलम्बी नहीं बन पा रही हैं। पूरी जिन्दगी आर्थिक रूप से परतंत्र रहती हैं जिसके कारण वह स्वयं ही यातना और प्रताड़ना को अपनी नियति मान लेती हैं। पहले स्त्रियों की शिक्षित करने का उद्देश्य उनके लिए योग्य, पढ़ा-लिखा वर ढूँढना था। और अभी कुछ समय पहले स्त्रियों को शिक्षित तो किया जाता था, लेकिन उनसे नौकरी करवाना परिवार की शान के खिलाफ समझा जाता था, परन्तु आज इस विचारधारा में परिवर्तन हो रहा है। अच्छी शिक्षा द्वारा स्त्रियों को पूर्ण सशक्तीकरण किया जा रहा है और कालेजों से पढ़ लिखकर निकली स्त्रियाँ अच्छी नौकरियों के क्षेत्र में पुरुषों के साथ-साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे चल रहीं है। आज लड़कियों को अपनी मर्जी से विषय चुनने और अपनी इच्छा से नौकरी करने की आजादी दी जाने लगी है। वर्तमान समय में स्त्रियाँ उच्च व व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करके समाज में अपनी एक विशेष पहचान बना रही हैं। आज जिन बालिकाओं को शिक्षा का अवसर मिला, वे प्राइमरी या माध्यमिक स्तर पास करके रुकना नहीं चाहतीं। वे उच्च शिक्षा के अवसर के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। आज कल तकनीकी शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा का भी काफी प्रचार-प्रसार हुआ है। अनेकों स्त्रियॉ सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। आज शिक्षा को जीवन की आम समस्याओं को सुलझाने के लिए अत्यंत आवश्यक मानकर लड़कियों को उच्च शिक्षा दी जा रही है। आधुनिक समय में लड़कियाँ, इंजीनियरिंग, कृषि, वाणिज्य, विधि, प्रबंधन, राजनीति, जनसंचार जैसे गैर परम्परागत क्षेत्रों में भी आगे आ रही हैं, लेकिन ज्ञान की आकांक्षा में स्कूल-कॉलेज और व्यावसायिक शिक्षा के लिए स्त्रियॉ जिस संख्या में प्रवेश लेती हैं, उनमें से आर्थिक आत्मनिर्भरता और पद कितनी ग्रहण कर पाती हैं? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न बना हुआ है।

स्त्रियाँ पहले आर्थिक मजबूरी के कारण घर की चाहरदीवारी को लाँघकर व्यावसायिक क्षेत्र में सक्रिय होती थी, लेकिन अब स्त्रियाँ पढ़-लिखकर अपने फैसले खुद लेने में सक्षम हो गयी हैं, वे आर्थिक मजबूरी के कारण या विवाह के लिए योग्य वर की लालसा के लिए नहीं पढ़ना चाहती हैं। विवाह से अब "गम्भीर और पढ़ी लिखी लड़कियों का मन हट गया है। वे पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी होती हैं वे विवाह नहीं करना चाहतीं हैं। स्त्रियों का एक दूसरा वर्ग ऐसा भी है जो इससे भिन्न स्थान रखता है। 'स्त्रियों का दूसरा वर्ग घर-परिवार के दायरे से निकलकर कैरियर की नयी-नयी ऊँचाईयां छूकर उपलब्धियों को अंबार लगाना चाहता है। साथ ही साथ वह अपनी सभ्यता-संस्कृति के प्रति आस्था और घर परिवार के बीच पूरी तरह जीने का सामाजिक सरोकार भी

बरकरार रखने का इच्छुक है। कामकाजी स्त्रियों के प्रति पुरुषों के रुख में भी अब सकारात्मक बदलाव आया है। कामकाजी स्त्रियों की समस्याओं को समझकर परिवार की ओर से उन्हें पूरा सहयोग दिया जाता है, उनकी घरेलू जिम्मेदारियों को सीमित किया जा रहा है।

आज हमारे समाज में स्त्री की स्थिति को देखते हुए यह बहुत आवश्यक हो गया है कि स्त्री शिक्षित होकर आत्मनिर्भर बन जायें। विवाह से पूर्व पिता के ऊपर आश्रित रखने वाली स्त्री, विवाह के पश्चात पति का आश्रय पाती हैं। ऐसी स्थिति में जब स्त्री अशिक्षित होती है तब, उसका जीवन अंधकारमय हो जाता है लेकिन आज स्त्री के जीवन और उसकी स्थिति में एक नया मोड़ आया है। स्त्री यदि शिक्षित होंगी तो वह अपनी योग्यतानुसार कोई भी नौकरी प्राप्त करके आत्मनिर्भर बन सकती है। आधुनिक समाज में शिक्षा ही एकमात्र साधन है, जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति विकास के अवसरों का लाभ उठाकर सफलता प्राप्त कर आत्मनिर्भर बन सकता है। वे विकास के अवसर कौन-कौन से हैं, सबसे पहले तो यही जानने के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि "शिक्षा ने जहाँ समझ बढ़ाई है, वहीं पर थोथी भावुकता को भी कम किया है। मगर यह बदलाव उन स्त्रियों में नहीं आया है जो अशिक्षित हैं और लम्बे समय से एक रिवायती जीवन व्यतीत कर रही हैं।''

शहरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में तो स्त्री को प्रारम्भिक शिक्षा से भी वंचित होने के कारण शोषण व अत्याचार का शिकार बनाया जाता है। आज स्त्रि का पूरा संघर्ष अपने उस छोटे से हिस्से को बचाने में है। जिस पर उसके दोनों पांव टिके हैं। उस हिस्से को बचाए रखना उसकी पहली प्राथमिकता है। इसे बचाए रखने की ताकत शिक्षा से ही मिलेगी, इसलिए बहुत आवश्यक है कि गांव हो या शहर या महानगर में बसे छोटे-छोटे उपनगर, भारत के प्रत्येक राज्य में लड़कियों के लिए प्रत्येक जगह शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य हो। यह एक ऐसा कार्य है जिसको पूरा करने के लिए स्वयं स्त्रियों के साथ-साथ समाज में सभी वर्गो के लोगों और सरकारी संगठनों को मिलकर प्रयास करने होंगें। आज हमारे देश में स्त्रियाँ कृषि, वैज्ञानिक, कृषि, पुलिस, सेना, सूचना, तकनीशियन, व्यापार-व्यवसाय आदि सभी क्षेत्रों में कार्यरत है, लेकिन नये क्षेत्रों में और विभिन्न उच्च पदों पर स्त्रियों की संख्या आज भी संतोषजनक नहीं है। उच्च शिक्षा में भी स्त्रियों की संख्या बहुत कम हैं। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पढ़ लिखकर स्त्रियाँ सरकारी और गैर-सरकारी तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं, लेकिन यह अवसर बहुत ही कम स्त्रियों को मिला है। स्त्रियों की शिक्षा को लेकर आज भी लोगों का नजरिया काफी पक्ष-पात पूर्ण है। शिक्षा के सन्दर्भ में आज भी वे सामाजिक व आर्थिक दबावों की शिकार हैं। इसलिए स्वतंत्रता 75 वर्षों के बाद भी पढ़ी-लिखी स्त्रियों का अनुपात लगभग 2.5 प्रतिशत तक ही पहुँचा है। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान स्त्रियों की शिक्षा दिलाने में प्रयत्नशील अवश्य हैं, परन्तु उसमें या तो योजनाएं एवं कार्यक्रम अपर्याप्त है या फिर उनका अपेक्षित लाभ स्त्रियों तक नहीं पहुँच रहा है। शिक्षा जगत में भी कई नई-नई नीतियों में यह बात जोर-जोर से उठाई जा रही है। परन्तु स्त्रियों की स्थिति में आज भी सुधार नहीं हो पा रहा है।

****

संदर्भ सूची:-

1. अरोड़ा सुधा, आम औरत और जिन्दा सवाल, वही, पृ0सं0-98।
2. अनामिका, स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, वही, पृ0 सं0-115।
3. अग्रवाल रोहिणी, स्त्री लेखन, स्वप्न और संकल्प, वही, पृ0 सं0-41।
4. गुप्ता रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, वही, पृ0 सं0-31, 102, 110।
5. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, वही, पृ0 सं0-45, 110।
6. सिन्हा मृदुला, मात्र देह नहीं है औरत, वही, पृ0 सं0-146, 174।
7. पाण्डेय मृणाल, जहाँ औरते गढ़ी जाती है, वही, पृ0 सं0-140।
8. पुष्पा मैत्रेयी, खुली खिड़कियाँ, वही, पृ0 सं0-33, 65।
9. शर्मा क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, वही, पृ0 सं0-39, 43।
10. शर्मा नासिरा, औरत के लिए औरत, वही, पृ0 सं0-25, 73।

भारतीय नारी और सामाजिक मान्यताएं

डॉ.अरविंद अंबादास घोडके

यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई

सहायक प्राध्यापक-हिंदी विभाग मो.8208918100

भूमिका:- " मूर्ख स्त्री चुप रहो, नहीं तो जुबान खींच लूंगा स्त्री हो, स्त्री की तरह मर्यादा में रहकर आचरण करो।"[1] पौराणिक महाकाव्य रामायण से भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति और मान-सम्मान का बोध उपर्युक्त वाक्य से होता है। साहित्य समाज का प्रतीक होता है और समाज का प्रभाव साहित्य पर होता है। तत्कालीन समाज व्यवस्था में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था का चित्रण साहित्य के माध्यम प्रभावित होता रहता है। वही प्रवाह पौराणिक महाकाव्य रामायण लेकर आज के साहित्य में दिखाई देता है। विदुषी गार्गी के प्रति राजा जनक की राज्यसभा में जो बात हो गई थी वह आज के आधुनिक युग में भी हर भारतीय नारी के साथ होती हुई दिखाई देती है। प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय समाज में पुरुष व्यवस्थाने न कभी स्त्री को अपने बराबर का स्थान दिया है और न कभी देने के लिए अपनी मर्जी से राजी हो गा। सदियों से पुरुष व्यवस्था ने स्त्री पर अपना वर्चस्व बनाने की भरसक कोशिश की है जो आज भी जारी है। अलग अलग सामाजिक मान्यताओं में स्त्री को बांधकर उसे हमेशा अपने से छोटा साबित करने की कोशिश करता आया है। गार्गी ने केवल एक सवाल का जवाब पुरुष प्रधान व्यवस्था का प्रतिनिधि याड्वल्क दे नहीं पाता है किंतु अपनी इस हार को पुरुष प्रधान व्यवस्था के सहारे स्त्री को अपमानित कर उसे व्यवस्था के हाथों पराजित करता है।आज भी यादन्यबल्क जैसे हजारों पुरुष व्यवस्था के प्रतिनिधि स्त्री को सदियों से पुरुषव्यवस्था के हाथों पराजित करने की व्यवस्था में लगे हुए दिखाई देते हैं। स्त्री का वर्चस्व न परिवार में सहन किया जाता है और न कभी कामकाज की जगह पर। गांव से लेकर देश की राजधानी दिल्ली तक पुरुष प्रधान व्यवस्था के सहारे स्त्री को दबाने की चेष्टा पारंपारिक सामाजिक मान्यताएं करती हुई दिखाई देती है। नारी को कोमल, कामिनी का लेबल लगाकर उसे अन्य कार्य से दूर करते हुए, उसे सिर्फ पुरुष भूख की व्यवस्था मिटाने वस्तू बनाने रखने की कोशिश पुरुष मानसिकता सदियों से करती आई है। आज के आधुनिक साहित्य में भी हजारों रचनाकार आज भी पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं में जीवन जीने वाली, अपने अपेक्षाओं का गला घोट कर परिवार और समाज के प्रति अपना सब कुछ दांव पर लगाकर दर्दनाक जीवन जीने वाली स्त्री को नैतिक और प्रतिष्ठित समझा जाता है।

शब्द :- सामाजिक मान्यताएं, नैतिक- अनैतिक, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित, आबरू-बेआबरू, संस्कृति, पुरुष वर्चस्वादी सामाजिक नियम, पौराणिक, संगीत आदि।

उद्देश्य :-आधुनिक महिला कहानीकार मनिका मोहिनी की कहानी में स्त्री को दबाने की चेष्टा पुरुष प्रधान व्यवस्था कैसे करती है इसका सजीव और बेबाक चित्रण होता हुआ दिखाई देता है। ' दो पाटन के बीच' कहानी में पुरुष प्रदाय व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया गया है। भारतीय सामाजिक मान्यता नारी को परिवार छोड़कर अन्य कोई काम करना एक प्रतिष्ठित मानती है। कहानी की नायिका 'सुरभि' शरद से प्रेम करती थी किंतु शरद की तरह अपने संगीत को उतना ही चाहती थी। शरद सुरभि को शादी के बाद में संगीत को बनाए रखने का वादा करता है किंतु जैसे ही शादी नजदीक आती है तो उस वादे से मुकर जाता है। शरद को डर लगता है कि सुरभि अगर लोगों में बैठकर संगीत का कार्यक्रम करेगी तो उसकी समाज में बेआबरू होगी, इसलिए पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं को बनाए रखने के लिए शरद सुरभि से शादी के कुछ दिन पहले कहता है कि, "जहां पति को परमेश्वर माना जाता है। एक अच्छी पत्नी बनने के लिए समझौता नहीं करना चाहोगे ? तुम्हें किसी चीज की कमी नहीं होगी, तुम राज करोगी शुरू, मेरे दिल पर मेरे घर पर, औरत हो, शादीशुदा औरत यू पराए मर्दो के बीच बैठकर कैसे गा सकती हो। तुम्हें वही करना चाहिए जो तुम्हारे पति और ससुराल वाले चाहे । "[2] परंपरा से लेकर आज के आधुनिक युग में भी सामाजिक मान्यताएं नारी विरोधी दिखाई देती है। 'दो पाटन के बीच' कहानी में शरद और शरद के पिता के माध्यम से संकुचित भारतीय मानसिकता का तथा स्त्री विरोधी सामाजिक मान्यताओं का यथार्थ चित्रण होता है। पुरुष प्रधान सामाजिक मान्यताओं में भारतीय स्त्री किस तरह मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार हो चुकी है और हो रही है इसका सजीव चित्रण आधुनिक रचना में अनेक रचनाकारों ने किया है।

आधुनिक स्त्रीवादी रचनाकारों की रचनाओं में भले ही स्त्री के प्रति न्याय की भूमिका रही हो किंतु आज तक बहुसंख्य रचनाओं में सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक मान्यताओं का पालन तथा निर्वाहन करने वाली स्त्री को पतिव्रता, चरित्रवान , नैतिकता की राह पर चलने वाली समाजमान्य नारी बताने की कोशिश की गई है। रामायण की सीता हो, महाभारत की द्रोपती हो, युगंधर की राधा हो इन सभी स्त्री पात्रों को सामाजिक व्यवस्था में रहकर अपनी भावनाओं को दबाकर समाज अर्थात पुरुष प्रधान व्यवस्था के लिए अपनी शारीरिक और भावनिक ईच्छा का गला घोट कर जीवन जीना पुरुषप्रधान सामाजिक मान्यताओं में श्रेष्ठ एवं महान दिखाया गया है। पति को परमेश्वर मानकर पति के सुख में ही अपना सुख और पति के दुख में अपना दुख यह धारणा पौराणिक महाकाव्य में स्त्री कर्तव्य के प्रति चिपकाए गई थी, यह धारणा समय -समय पर तत्कालीन समाज में भी जीवित रखने की कोशिश पुरुष प्रधान व्यवस्था करती आई थी। भारतीय सामाजिक मान्यता में स्त्री पुरुष के प्रति स्वीकृत दुबली और अन्य व्यक्ति का यथार्थ चित्रण मनिका की कहानी 'कोई सजा नहीं' में हुआ है। पति को परमेश्वर मानकर सदियों से पुरुष हवस का शिकार होकर अपना शारीरिक और मानसिक शोषण बनाए रखने वाली नारी आज भी अपने इस अन्याय का प्रतिकार करने में असमर्थ दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति और सामाजिक मान्यताओं में पुरुष द्वारा नारी का शारीरिक और मानसिक शोषण करने के बाद भी इसी सामाजिक मान्यता में अत्याचारी पुरुष को उसके अपराध के लिए किसी सजा का प्रावधान आज भी समाज में नहीं है। दहेज, स्त्री विनयभंग, पति द्वारा होने वाला शारीरिक, मानसिक अत्याचार आदि के लिए भले ही कानून में सजा का प्रावधान होता होगा किंतु भारतीय समाज व्यवस्था में आज भी ऐसे पति को किसी सजा का प्रावधान दिखाई नहीं देता है जिसका सजीव चित्रण कोई सजा नहीं कहानी में हुआ है। कहानी की नायिका मीरा का पति मीरा का शारीरिक और मानसिक शोषण करता था। पति के अन्याय से डर कर अपने बहन के पास चली आती है किंतु पति उसे वहां भी लेने के लिए आता है और कहता है कि "मीरा तू भारतीय नारी है, तुझे इस प्रकार घर छोड़ना शोभा नहीं देता, पति परमेश्वर समान होता है। धैर्य और सहनशीलता ही नारी का प्रमुख धर्म है। तू अपनी मर्यादा मत खोना, मैं तेरा पति हूं तेरे लिए परमेश्वर समान हूं। मैंने तुझे घर दिया है, एक नाम दिया है, बच्चे दिए हैं। अगर मैंने तुझे कभी कुछ कह भी दिया तो क्या हो गया ? क्या तूने देखा नहीं कि हमारे घर में औरतें ऐसी पीटीआई है आखिर औरत औरत है मर्द की गुलामी नहीं करेगी तो क्या सिर पर चढ़ेगी ? पति को हर तरह खुश रखना ही पत्नी का धर्म है "[3] ' कोई सजा नहीं' कहानी में मीरा का पति भारतीय सभ्यता का वास्ता देकर उसे अपने घर वापस ले जाना चाहता है और अपनी व्यवस्था के अनुरूप उसे अपनी हवस का शिकार बना सकता है। कहानीकार आगे लिखती है कि कुछ ही दिनों के बाद मीरा आत्महत्या करती है किंतु यह मेरा की आत्महत्या न होकर सामाजिक व्यवस्था के हाथों के हाथों मीरा की हत्या ही है।

स्त्री विरोधी सामाजिक मान्यताओं का प्रतिकार अनेक स्त्री-पुरुष रचनाकार तथा समाज सुधारकों ने किया है। "कितने दिन हम महिलाओं के नक्शे, कांति, शारीरिक संबंध की चर्चा करने वाले हैं ? उसके अस्तित्व के बारे में चर्चा करने वाले है या नहीं ?" [4] अपनी मुलाकात के दौरान राजनीतिकार चित्रा वाघ ने महिलाओं बारे में अपनी बेबाक बात रखकर सनातनी समाज व्यवस्था और नारी विरोधी सामाजिक मान्यताओं के वैचारिक धरातल को ही हिलाने की चेष्टा की है। नारी को कोमल, कामिनी का लेबल लगाकर उसे अन्य कार्य से दूर करते हुए, उसे सिर्फ पुरुष भूख की व्यवस्था मिटाने वस्तू बनाने रखने की कोशिश पुरुष मानसिकता सदियों से करती आई है। आज के आधुनिक साहित्य में भी हजारों रचनाकार आज भी पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं में जीवन जीने वाली, अपने अपेक्षाओं का गला घोट कर परिवार और समाज के प्रति अपना सब कुछ दांव पर लगाकर दर्दनाक जीवन जीने वाली स्त्री को नैतिक और प्रतिष्ठित समझा जाता है। साहित्य समाज का भविष्य होता है किंतु साहित्य में भी अगर स्त्री के प्रति अन्यायी दृष्टिकोण अपनाया जाता रहा हो, तो फिर वर्तमान समाज में भी स्त्री के साथ कैसा न्याय होगा? । आज के स्त्रीवादी रचनाकार स्त्री को पुरुषों की तरह उन्मुक्त, निडर और स्वच्छंद जीवन जीता हुआ दिखाई लगे है। स्त्रीवादी रचनाकार को भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। स्त्री भावनाओं को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करने वाले रचनाकार को आलोचक पुरुष दृष्टिकोण अश्लील मानकर उसका उपहास कर देते हैं।

पुराणों से लेकर आज तक अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं को आलोचकों के लिए नहीं बल्कि अपने स्वच्छंद विचारों के लिए रचनाओं का निर्माण किया है। अपनी रचनाओं में स्त्री समस्याओं का चित्रण कर सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते हुए नारी के प्रति सहानुभूति का स्वर अपनाकर नारी विरोधी समाज व्यवस्था का विरोध करने के लिए प्रेरित किया है। सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए विवाह को एक संस्कार के रूप में देखा जाता है किंतु नारी के ऊपर अधिक मात्रा में विवाह और परिवार व्यवस्था में सर्वाधिक अन्याय अत्याचार होते हुए दिखाई देते हैं। शोषित नारी को इसी अन्यायी व्यवस्था का विरोध करने के लिए विवाह बंधन से ही मुक्त होने की सलाह कुछ रचनाकार अपनी रचनाओं में देते हुए दिखाई देते हैं। मनिका जी की कहानी 'बीमार' विवाह व्यवस्था से परेशान आधुनिक नायिका की कहानी है जो अपने पति का हर रात बलात्कार का शिकार होती आई है। किंतु सामाजिक प्रतिष्ठाओं के लिए तथा अपनी मां की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए इस बलात्कार को चुपचाप सहती आई है। सामाजिक मान्यता और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए पति का चुपचाप अन्य सहनेवाली रीमा एक दिन अपने मम्मी से कहती है " विवाह कितनी गलत और गैर जरूरी संस्था है मम्मी, रीमा के चेहरे पर एक ठहराव था, उसके आंसू सूख चुके थे और निर्णय की दृढ़ता से उसकी आंखें न निश्चितता से चमक रही थी। दो जून रोटी और एक रात का सेक्स का जुगाड़ बैठाने के लिए इतना बड़ा झंझट ? "[5] बीमार कहानी की तरह ही विवाह संस्था को ठुकराने वाली नारी 'दो पाटन के बीच' कहानी में भी दिखाई देती है। सामाजिक मान्यता और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए शरद सुरभि को संगीत छोड़ने की बात कहता है, जो संगीत सुरभि के लिए जान से प्यारा था। शरद के लिए समाज महत्वपूर्ण था किंतु सुरभि नहीं, सुरभि को लगता था समाज से परे होकर शरद उसे चाहता होगा, लेकिन इस शरद का असली चेहरा जब उसके सामने आता है तब सुरभि शादी का फैसला बदल देती है। शरद की बारात लौटाने का निश्चय कर लेती है। विवाह करने से इंकार कर देती है और अपनी इच्छा के लिए संगीत को अपनाने के लिए तैयार हो जाती है। "यदि उसने खुद को खो दिया तो अन्य चीजें पा कर क्या करेगी ? हां प्यार भी उसके लिए संगीत के आगे अन्य चीज है। उसने एकाएक महसूस किया उसके भीतर एक अलग तरह की नारी जन्म ले रही है। जो दौलत और प्यार को सहज ही ठुकराने का साहस रखती है, जिसे अपनी पहचान, सिर्फ अपने बल पर बनानी है।"[6]

निष्कर्ष:-

पारंपरिक सामाजिक मान्यता में विवाह संस्कार अगर स्त्री के लिए बंधन होगा, तो वह ठुकराना उचित है किंतु परिवार और कुटुंब व्यवस्था समाज को बनाए रखती है। सिर्फ एकांगी और अन्ययी सामाजिक मान्यताओं के कारण अगर यह विवाह संस्था को ठेस पहुंचती है तो समाज व्यवस्था के लिए बड़ा धोका होगा। विवाह के बाद जो नारी विरोधी सामाजिक मान्यताएं है। उसे बदलकर स्त्री- पुरुष समानता कि धरातल पर सामाजिक मान्यताएं अपनाना जरूरी है। साहित्य समाज का दृष्टा भी है और सृष्टा भी है। इसलिए सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए नारी विरोधी सामाजिक मान्यताओं में फेरबदल होना जरूरी है।

****

संदर्भ :–

1.गार्गी से याड्वलक ने कहा- हिंदी उपन्यास का स्त्री पाठ -भूमिका - रोहिणी अग्रवाल पृष्ठ. 5.
2. जग का मुजरा - दो पाटन के बीच - मनिका मोहिनी -पृष्ठ. 110.
3. -अन्वेषी -कोई सजा नहीं-माणिका मोहिनी- पृष्ठ.77.
4. चित्रा वाघ टीवी मराठी- 14 जुलाई 2021 बुधवार 11:28 a.m.
5. अन्वेषी मनिका मोहिनी बीमार पृष्ठ 120.
6. जो का मुजरा दो पाटन के बीच मनिका मोहिनी पृष्ठ 110.

'औरतें': स्त्री जीवन की व्यथा का ब्यौरा

डॉ. अन्सा ए
सहायक आचार्य,हिन्दी विभाग
सरकारी ब्रेण्णन कॉलेज, धर्मडम पी.ओ तलश्शेरी,
कण्णूर, केरल- 670 106 मो:9995083552

भारतीय संस्कृति की प्राचीन परंपरा में स्त्री को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है| वेद, पुराण, उपनिषद आदि इस बात को जाहिर करती है| वैदिक काल से लेकर अब तक की स्त्री की जो गतिविधियाँ थीं उस पर नज़र डालने से विदित होता है कि समाज में स्त्री को जो हैसियत व मान्यताएँ प्राप्त थीं, ये सब ह्रास होते हुए समय से हम गुज़र गए हैं|

हिन्दी साहित्य में स्त्री-जीवन की अभिव्यक्ति प्राचीन काल से रही, अपितु वह सतत व सक्रिय नहीं रही| मध्यकाल में मीरा बाई से लेकर आधुनिक काल में महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान से गुज़रती हुई, विकसित कविता प्रयोगवाद में शकुंतला माथुर तथा कीर्ति चौधरी के माध्यम से आगे बढ़कर अब वर्तमान कवि गणों से होकर गुज़र रही है| यह काल नारी लेखन का उत्कर्ष का काल है| हिन्दी साहित्य जगत की सभी विधाओं में स्त्री रचनाकारों के द्वारा ही नहीं किन्तु पुरुष रचनाकार द्वारा भी नारी जीवन की तीव्र अभिव्यक्ति हो रही हैं| ऐसे देखें तो वर्तमान साहित्य के नामी चेहरे कवि वर उदय प्रकाश का अग्रणीय स्थान हैं| इनकी कविताओं में पुरुष व समाज द्वारा पीड़ित नारी, अपनी अस्मिता व अधिकारों के लिए संघर्ष रत नारी, नारी मुक्ति की चाह आदि की खुली अभिव्यक्ति मिलती हैं|

विवेच्य कविता 'औरतें' उदय प्रकाश का तीसरा काव्य-संग्रह 'रात में हारमोनियम' में सम्मिलित है जिसमें आपने औरतों के ऊपर पुंसवादी समय व समाज द्वारा थोपे जाने वाले जुल्मों व नृशंसताओं को सीधा सादा हमारे सामने खोलकर रख दिया है|

आज नारी वर्ग-विभाजित शोषण व्यवस्था में सबसे बड़ा शिकार होती है| उदय प्रकाश ने प्रस्तुत कविता में छोटे-छोटे ब्यौरों के माध्यम से स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों एवं अनीतियों का भयावह चित्र दर्ज कराया है| कविता के पहले चरण में कवि कहते हैं कि एक औरत पर्स से खुदरा नोट निकाल कर कंडक्टर से अपना घर जाने का टिकट ले रही है, उसके साथ ज़रा देर पहले बलात्कार हुआ है| उसी बस में कुछ अन्य स्त्रियाँ भी उपस्थित हैं जो प्रमोशन व महँगाई भत्ते के बारे में आपस में बातें कर रही हैं| यहाँ कवि ने स्त्री की पीड़ा एवं उसकी दर्दनाक हालत का चित्रण की है|

अगले चरण में कवि ने एक ऐसी औरत का चित्र खींचा है जो अपने पति की आयु बनाए रखने के लिए तथा सुहागन बने रहने के लिए करवाचौथ का निर्जल व्रत लिया है, शायद यह इसलिए कि वह अपने पति या सास के हाथों से मार दिए जाने से ड़री हुई है| एक दूसरी औरत की छवि इस प्रकार है कि वह बालकनी में आधी रात खड़ी हुई है| वह अपनी पति की प्रतीक्षा कर रही है, जो किसी दूसरी स्त्री के घर से लौटने वाले शराबी दिखाई देता है| यहाँ नारी की बेबसी का चित्रण मिलती है|साधारणतः पति पत्नी पर तनख्वाह पर आलोचना व विचार-विमर्श करते हुए दिखाई पड़ता है| लेकिन अगर पत्नी पति से ऐसा प्रश्न करें तो स्थिति गति बिगड़ जाएगी| ऐसा एक तस्वीर कवि ने यहाँ खींचा है-

"संदेह, असुरक्षा और ड़र से घिरी एक औरत
अपने पिटने से पहले
बहुत महीन आवाज़ में पूछती है पति से-
कहाँ खर्च हो गए आपके पर्स से
तनख्वाह के आधे से ज्यादा रुपए?"[२]

कुछ जली हुई औरत का उल्लेख भी कविता में हैं- तवे में से हाथ जलने वाली है, खौलता हुआ कड़ाही से तेल गिरने वाली है तथा स्टोव्ह फटकर हाथ फूटने वाली है| साथ ही प्रति दिन हज़ार प्रतिशत जली हुई औरतों का कोयला अस्पताल में दर्ज भी कराता रहता है| लेकिन इन औरतों की मृत्यु-पूर्व बयान कि किसी ने उसे जलाया नहीं है, बदकिस्मत वश उसके ही हाथों से ये कृत्य हुआ है| उसके अलावा शेष सब निर्दोष है, यह सच्चाई न होते हुए भी उसके परिजनों द्वारा इसे सच स्थापित कर लेता है| इस तरह का नारी उत्पीड़न बंधु जन व समाज द्वारा उस पर किए जाने वाले अत्याचारों एवं थोपे जाने वाले क्रूरताओं व बर्बरताओं का सबूत है|नाक से बहता खून पोंछती हुई बोलने वाली औरत का निदर्शन यहाँ प्रस्तुत है| उसका कहना है-

"कसम खाती हूँ, मेरे अतीत में कहीं नहीं था प्यार
वहाँ था एक पवित्र, शताब्दियों लंबा,
आग जैसा धधकता सन्नाटा
जिसमें सिंक रही थी आपकी खातिर मेरी देह|"[२]

यहाँ स्त्री की दयनीयता व विवशता प्रकट होती है| बस अड्डे या प्लेटफॉर्म पर खड़े होकर अपनी राह पूछती हुई वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों का दृश्यांकन भी यहाँ दर्ज है-

"बिना बाल काढ़े बिना किन्हीं कपड़ों के
कुछ औरतें बस अड्डे या
प्लेटफॉर्म पर खड़ी पूछती हुईं
कि उन्हें किस गाड़ी में बैठना है
और कहाँ जाना है इस संसार में|"[३]

आज कल प्रेमी-प्रेमिकाएँ प्यार करते वक्त सोशयल मीडिया के ज़रिए आपस में अपने फोटो वगैरह भेज देते हैं| प्रेमी द्वारा अपनी प्यारी स्त्री का फोटो व पत्र सार्वजनिक कर देने के कारण सीलिंग की कड़ी में दुपट्टा बांधकर खुदकुशी करने वाली नारी की करूणाजनक चित्रण भी कविता में उभर गया है|

आगे कवि एक ऐसे नारी का चित्रण करते हैं जिसको तेजाब से जलकर अपनी एक आँख खोनी पड़ती हैं| उस नारी का शेष जीवन वेदनाजनक व दुविधाग्रस्त है| फिर भी वह इस बात पर खुश है-

"एक औरत जो तेजाब से जल गई है
खुश है कि बच गई है उसकी दायीं आँख|"[४]

इस तरह अपना आधा जीवन विनष्ट करके सब वेदना सह कर औरों के खुशहाल संभालने वाली नारी के और एक दृष्टांत देखिए-

"एक औरत तंदर में जलती हुई
अपनी उँगलियाँ धीरे से हिलाती है
जानने के लिए कि बाहर कितना अँधेरा है|"[५]

नारी के अभिशप्त जीवन के अत्यंत दारुण व हृदयभेदी चित्रण कवि ने निम्न चरण के द्वारा दर्शाया है-

"एक औरत का कलेजा जो छिटक कर
बोरे से बाहर गिर गया है
कहता है- मुझे फेंक कर किसी
नाली में जल्दी लौट आना
बच्चों को स्कूल जाने के लिए जगाना है
नाश्ता उन्हें ज़रूर दे देना, आटा में गूँथ आई थी|"[६]

प्रस्तुत कवितांश दिल को सीधे कुरेदने वाली हैं| यह पढ़कर नारी की नियति और उसके आत्मत्याग, खुद को मिटकर भी अपने परिवारों के ऊपर बरसने वाली अथाह स्नेहपाश का मार्मिक निरूपण की अभिव्यक्ति मिलती है|

आगे के चरणों में कवि ने अपने बच्चे को बोरे पर सुलाकर सडक का काम करने वाली स्त्रियों का दर्दपूर्ण चेहरे को हमारे सम्मुख पेश किया है| साथ ही साथ उन्होंने फर्श धोकर राष्ट्रीय चैनल पर फैशन परेड देखने वाली महिला का जिक्र भी किया है| यहाँ कवि ने एक ओर एक औरत के काम का और दूसरी ओर दूसरों के सामने देह का प्रदर्शन करने वाली नारियों का उल्लेख किया है|

इनके अतिरिक्त उदय प्रकाश जी ऐसे अनगिनत औरतों की छवि खींचते हैं जिनमें किसी पार्क में मरी पड़ी औरत हैं, शरणस्थल खोजने वाली हैं, अपनी विवशता में ही किसी न किसी तरह हिम्मत बटोरकर जीने की अदम्य लालसा रखने वाली हैं, फोन पकडते हुए सड़क पर रोने वाली हैं, पुलिस थाने के फाटक पर एक-दूसरे को छूती हुई ज़मीन पर बैठी स्त्रियाँ हैं, बर्तन माँजने वाली हैं, पोंछा लगाने वाली हैं और कपड़े पछींटने वाली हैं| सच में इनका हाहाकार समूचे ब्रह्मांड में गूँज रही हैं, अपितु इन पर होने वाले जुल्मों का कोई आँकड़ा सुनिश्चित नहीं है| समय के साथ यह भी बढ़ते प्रतीत होते हैं| आखिर कवि इस ओर भी हमारा ध्यान खींचते हुए कहते हैं कि -

"हज़ारों-लाखों छुपती हैं गर्भ के अंधेरे में
इस दुनिया में जन्म लेने से इंकार करती हुयीं
वहाँ भी खोज लेती हैं उन्हें भेदिया ध्वनि तरंगें
वहाँ भी, भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटार|"७

यहाँ कवि ने हमारे समाज में पनपती स्त्री भ्रूण हत्या की ओर इशारा किया है|

अतः कहें तो इस तरह की दुनिया में स्त्री जी न पाती| शायद यह कविता लिखते वक्त कवि के मन में यह शंका जाग उठती है कि क्या स्त्री का होना एक अभिशाप है| कवि का संकेत है कि स्त्रियों को हृदय होने से कोई फायदा नहीं है क्योंकि हृदय होकर भी वे अपनी संवेदना को दबकर यांत्रिक जीवन बिता रही है| औरों द्वारा अभिशप्त जीवन बिता रही है अर्थात बिताने के लिए विवश होनी पड़ती है| अपने पैरों पर खड़े रहने की हिम्मत होते हुए भी उन्हें पुरुष व समाज सदैव दबाते रहते हैं| हमारे इर्द-गिर्द नारी मुक्ति की नारा की अनुगूँज सर्वत्र सुनाई पड़ती है| फिर भी वे बंधन मुक्त नहीं हो पाई है| उनका जीवन घर के चहारदीवार के अंदर सिकुड़ जाती है यानीकि बच्चों को जगाना, नाश्ता तैय्यार करना, घर- बार संभालना आदि क्रिया-कलापों में सिमटती रहती हैं|

स्पष्टतः 'औरतें' शीर्षकीय कविता में कवि उदय प्रकाश ने विभिन्न प्रकार के नारी जीवन की स्थितिगतियों, उत्पीड़नों, आशा, निराशा और उनकी मानसिकता व आतंकजनित चुप्पी की दिलतोड़ अभिव्यक्ति करते हुए पुरुष व समाज द्वारा उन पर किए जाने वाले अतिक्रमणों, क्रूरताओं, विद्रूपताओं, विषमताओं एवं दबाव का जीता- जागता चित्रण उपस्थित किया है| पुरुष वर्चस्व के जमाने में मिट रही स्त्री की हृदय-विदारक छवि का उद्घाटन कवि ने अत्यंत सजीवता से किया है| दर असल यह कविता स्त्रियों पर होने वाले खतरनाक अन्याय का कठोर विरोध तथा इन पर विचार-विमर्श करने में हमें मज़बूर बना देते हैं|

****

संदर्भ सूची :-

1. उदय प्रकाश- रात में हारमोणियम, औरतें, पृ. सं. ३१
2. वही, पृ. सं. ३२
3. वही, पृ. सं. ३२
4. वही, पृ. सं. ३३
5. वही, पृ. सं. ३३
6. वही, पृ. सं. ३३
7. वही, पृ. सं. ३३
8. उदय प्रकाश- रात में हरमोणियम, वाणी प्रकाशन, ४६९५, २१-ए, दरियागंज, नई दिल्ली ११० ००२, आवृत्ति संस्करण २०१५

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'गुनाह बेगुनाह' में नारी चेतना

अंजलि
शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश-हर युग में नारी की स्थिति परिवर्तित हुई है। कभी समाज ने उसकी प्रशंसा की है तो कभी उसे दासी समझकर उसकी अवहेलना की है। मनुस्मृति में लिखा है -''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवतः। यत्रे तास्तु न पूज्यंते सर्वास्तत्राफलः क्रिया।'' अर्थात् जहां स्त्री की पूजा की जाती है, वहाँ देवता वास करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। भारत में नारी जागरण या नारी स्वतंत्रता संबंधी जैसे आंदोलन शुरू हुए, वैसे नारी में ''स्व'' की भावना जागृत होने लगी है। अब वह अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है। मैत्रेयी पुष्पा नारी को शोषण से मुक्त कराने और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री की छवि को अंकित किया है जो स्वयं संघर्ष करती है। अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री चेतना के विविध आयाम दिखाई देते है। स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याएँ, संघर्ष, स्वतंत्रता, अधिकार चेतना, स्वालंबन, अस्तित्व और अस्मिता आदि स्त्री चेतना के कई तथ्य सामने आते है। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएँ अपनी अनुभूति पर आधारित है। इसलिए उनकी रचनाओं में जीवन की वास्तविकता का चित्रण हुआ है। घटनाओं की सत्यता और पात्रों की सजीवता यह उनके साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में समाज की नारी समस्या, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

मूल शब्द-मैत्रेयी पुष्पा, नारी, नारी चेतना।

प्रस्तावना-''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता'' अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है। वहां देवता निवास करते है। यदि ईश्वर प्रकाश पुंज है, तो नारी उसकी किरण, जो प्रकाश को चारों और बिखेर देती है। यदि ईश्वर शब्द है, तो नारी उसका अर्थ। नारी-पुरूष एक-दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरे का अभीष्ट प्राप्त नहीं हो सकता। हिन्दू आदर्श के अनुसार पत्नी को अर्धांगिनी कहा गया है। वह लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा एंव काली आदि रूपों में धन, विद्या, शांति तथा शक्ति का प्रतीक मानी गई है। नारी को करूणामई, ममतामई, वात्सल्यमई जैसे अनेक अलंकारों से विभूषित किया गया है। पहले नारी एवं पुरूष क्रमशः हव्वा व आदम जाति के युग से नारी पुरूष के साथ सहचारिणी का जीवन और सहधर्मिणी का जीवन यापन करती है। नारी और पुरूष दोनों ही रथ के दो पहियों की तरह काम करते है। दोनों के मिलने से ही जीवन की सरंचना संभव है। दोनों ही अपनी जगह कार्यभार संभालते है। दोनों का स्थान महत्वपूर्ण है लेकिन फिर भी समाज ने अपनी सुविधा अनुसार नारी का शोषण किया तथा नारी को कभी उचित महत्व नहीं दिया। जिस स्त्री को हम देवी स्वरूप मानते हैं, शक्ति स्वरूपणी कहा गया है, उस स्त्री को निर्बल समझकर सहनशील बना दिया जाता है।1 साहित्य समाज का दर्पण है। जब वह युगीन यथार्थ को प्रतिबिम्बित करता है तो उसका लक्ष्य दोहरा होता है। एक युगीन विकृतियों, विसंगतियों और रूगणताओं को विश्लेषण का विषय बनाकर उनके निवारण हेतु समुचित समाधान खोजना। दूसरा अपने अनुभव सत्य से गुजरकर बेहतर भविष्य के निर्माण हेतु भावी पीढ़ी को दिशा निर्देश करना।[2] **चेतना का अर्थ एवं स्वरूप-**नालंदा विश्व कोश के अनुसार - ''चेतना शब्द की उत्पति 'चित् युच अन टाप' के सहयोग से हुई है।'' अर्थात् जिसका अर्थ ज्ञानात्मक मनोवृति से समझा जाता है। चेतना को समझने के लिए हमें चेतना के क्रिया व्यापारों को समझना आवश्यक है। हम दैनिक जीवन में जो प्रवृतियाँ करते हैं, उसके मूल में हमारी चेतना रहती है। 'चेतना' मानव में एक ऐसी क्रियाशक्ति है, जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। चेतना का आशय यह है कि किसी भी विषय में सावधानी, होशयारी और सजगतापूर्वक कार्य करना आवश्यक है। चेतना मानव प्राणी में ही संभव है।[3]

चेतना की परिभाषा -रामदरश मिस्र के अनुसार - ''चेतना वह तत्व है जिसमें ज्ञान का भाव और व्यक्ति क्रियाशीलता की अनुभूति है। जब हम किसी पदार्थ को जानते हैं, तो उसके स्वरूप का ज्ञान होता है।'' अर्थात् चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे

शब्दों में हम उसे मनुष्य की जीवन क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते है।[4] धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार-''चेतना का अर्थ हम मानव मन की समझाने-बूझाने की शक्ति से, बौद्धिक प्रवणता, प्रवीणता, प्रेरणा अथवा भावना के रूप में प्रयुक्त करते हैं। चेतना का सीधा संबंध मानव की बुद्धि से होता है और मानव प्राणी में ही संभव है।'' चेतना मानव में ही जागृत होती है अर्थात् चेतना स्वयं को अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।[5]

हिन्दी साहित्य में नारी चेतना -हर युग में नारी की स्थिति परिवर्तित हुई है। कभी समाज ने उसकी प्रशंसा की है तो कभी उसे दासी समझकर उसकी अवहेलना की है। अन्य साहित्य की भांति स्त्री साहित्य का आरम्भ कविता से हुआ है। किंतु आधुनिक काल में गद्य का आविर्भाव और अभिव्यक्ति के लिए एक और माध्यम उलब्ध हुआ। कविता की धारा अपनी दिशा में बहुत रही किन्तु लय के माध्यम से स्त्रियों में अपना संघर्ष जारी रखा। भारतीय समाज में स्वतंत्रता के बाद महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए प्रयास होने लगे। स्त्री के पाँव हर क्षेत्र में पड़े और इससे यह भ्रम टूटने लगा कि नारी होने मात्र से उसे किसी कार्य को करने से रोका नहीं जा सकता। स्वयं महिलाओं में यह चेतना जागी है। उन्होंने आत्मसजग होकर व्यक्तित्व को विकसित करने का ध्येय रखा। इन महिला रचनाकारों के संबंध में डॉ. शोभा वेरेकर का कथन है- ''जाहिर है, महिला-लेखन में विलक्षण पठनीयता, विश्वसनीयता, जिजीविषा और मार्मिकता के कारण ही इसे विशाल पाठक वर्ग मिला है। आत्म अभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ-साथ आत्म सजगता और परिवेश चेतना महिला कहानीकार के रचनात्मक सरोकार का केन्द्रीय बिन्दु रहा है।'' अर्थात् इसी आत्मसजगता और व्यक्तित्व की खोज में बड़ी संख्यां में महिला रचनाकार सामने आई।6 स्वातंत्रयोत्तर काल में स्त्री साहित्य ने जीवन के गंभीर विषयों को भी बड़ी सहजता और सामान्य रूप से उठाया है। इस युग की सशक्त लेखिकाओं में शिवानी, उषा पियवंदा, कृष्ण सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, नमिता सिंह, चित्रा मुदगिल, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, कमल कुमार आदि अनेक लेखिकाओं ने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को बड़ी गहराई से उकेरा है। आज नारी अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए परम्परागत मूल्यों से लड़ रही है। इन लेखिकाओं की नारियाँ ''आँचल में दूध और आँखों में पानी'' लेकर नहीं बढ़ती, बल्कि अधिकांश रचनाओं की नारी अपने अधिकारों के लिए विद्रोह करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'गुनाह-बेगुनाह' में नारी चेतना-साठोत्तर काल के नए रचनाकारों की रचना दृष्टि पूर्णतः नवीन है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में परिवारगत संदर्भों में स्त्री-पुरूष के बदलते संबंधों को चित्रित एवं विश्लेषित किया है। वे अपनी रचनाओं में दुर्बल नारी के अतिरिक्त आर्थिक एवं मानसिक गुलामी से मुक्ति पाने की छटपटाहट को महसूस किया है और अपने स्वावलंबन का परिचय देने वाली नारी का चित्रण भी करती है। उनकी कुछ रचनाओं में नारी स्वतंत्र है कि विवाहित होते हुए भी पराए-पुरूष के साथ संबंध स्थापित करने में कोई हिचक नहीं दिखाती। जबकि अधिकांश रचनाओं में उसे भावनाओं और इच्छाओं को प्रकट करने की भी स्वतंत्रता नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपने इर्द-गिर्द का परिसर जो नारी को संदेह की दृष्टि से देखता है, उनके प्रति वह रोष व्यक्त करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरूषों के सामने स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। भारत में नारी जागरण या नारी स्वतंत्रता संबंधी जैसे आंदोलन शुरू हुए, वैसे नारी में 'स्व' की भावना जागृत होने लगी है। अब वह अपनी अस्मिता को पहचानने लगी है। वह नारी को शोषण से मुक्त कराने और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसी नारी की छवि को अंकित किया है जो स्वयं संघर्ष करती है। अपनी लड़ाई खुद लड़ती है और अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है। स्त्री को अपने यथास्थिति से उभरना जरूरी है, तभी उसका अस्तित्व और अस्मिता बच पायेगी। वह अपनी स्थिति से तब बाहर आयेगी जब उसमें आत्मविश्वास, साहस, अटूट धैर्य तथा भीतरी आत्मनिष्ठा हो। गुनाह बेगुनाह उपन्यास की स्त्रियां अनेक संघर्षों से जूझती हैं। सीमानी रेशमी, सुरेंदर कौर, शारदा एवं इला चैधरी आदि पुरूष के अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करती हैं। लेकिन अन्ततः बेगुनाह से गुनाहगार साबित कर दिया जाता है। लेखिका के शब्दों में - ''सुरिन्दर कैसे कहे, किसको बताए कि औरत प्रधान हो या सरपंच फंसाना और नंगा करना मर्दों का पुराना नुस्खा है।...यह पक्की बात है कि अगर औरत सरपंच न होती तो पुलिस को इससे इतनी नफरत भी न होती। नारी और पुरूष एक-दूसरे के पूरक हैं, परन्तु इस पुरूष प्रधान संस्कृति में पुरूष ने हमेशा ही स्त्री को दासी समझा है। पुरूष ने जब नारी पर शोषण और अत्याचार करना प्रारंभ किया, उसे व्यक्ति से वस्तु समझा, तभी नारी ने उसके अत्याचारों और शोषण का सक्रिय विरोध करने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का प्रयास किया। इसी स्वावलंबन ने उसका सर्वांगीण विकार कर, उसे पराधीन तथा अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाने की ताकत दी। मैत्रेयी पुष्पा की बहुत सी रचनाओं को नारी परिवार द्वारा शोषित और पीड़ित होने के बावजूद वह अंत तक संघर्ष करते दिखाई देती है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी रचनाओं में नारी चेतना के अंतर्गत नारियों को अपने उतरदायित्व के प्रति प्रेरित किया है। किशोरियों से लेकर अधेड़ उम्र की महिलाओं तक अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग हो उठी है। विवाह के प्रति वर्तमान नारी का दृष्टिकोण बदलने लगा है। अब वह विवाह को बंधन के रूप में स्वीकार न कर, उसकी महता को समझने का प्रयास कर रही है। अब स्त्रियां स्वयं प्रेम-विवाह को अनिवार्य न मानकर गौण मानने लगी है। वे शिक्षा तथा युगबोध से प्रभावित होकर विवाह को जीवन का केन्द्र मानने से अस्वीकार कर रही है। वह विवाह के लिए आत्म निर्णायक बनने लगी है।

किस तरह नारी को परम्परागत तरीके से तड़फ तड़फ कर जीने के लिए विवश किया जाता है। उसे गुलामों की जिंदगी जीने के लिए कैसे विवश किया जाता है। यह हमें मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास गुनाह-बेगुनाह में साफ साफ द्रष्टव्य है। एक स्त्री से उसके पर्दा न करने को लेकर उसे सम्पूर्ण परिवार ही नहीं बल्कि समाज भी उसे घेर लेता है, जैसे कई सालों से कोई नरसंहारक पकड़ा गया हो। इस तरह से सामाजिक दुर्व्यवहार नारी को सांस्कृतिक कैद करने की नायाब कोशिश लगता है, लेखिका ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है -

"हँसकर पूछा इला ने, 'क्या नाम है इसका?'
नामालूम-सी मुसकान आई अर्चना के चेहरे पर-समर्थ नाम है।
'जॉब करती हो न/'हाँ, बैंक में नौकरी है।'
'कितना वेतन मिलता है?'/'पन्द्रह हजार।'

नुकीली नाक और भरे-भरे होंठों वाली खूब गोरी लड़की से और क्या पूछा जाए। बहुत कुछ एफ0आई0आर0 में लिखा है-पर्दा करने की बार पर अक्सर कलह होती है। वेतन के अलावा मायके से बड़ी रहम लाने के लिए सास-ससुर दबाव डालते हें पति उनका साथ देता है या चुप रहता है जैसे उसने ही अपने माँ-बाप को अपना एजेंट बनाकर मेरे पीछे लगाया हो। रोज-रोज लड़ाई के बहाने फिर मारपीट का सिलसिला, बैंक जाने लायक चेहरा नहीं रहता। सकहने की भी कोई सीमा होती है। कठोर तकाजों की दहशत जानलेवा है, तभी तो मैंने कह दिया-दहेज वसूली का मुकदमा कर दूंगी।''[7]हम उसी समाज में रहते है जहाँ अय्यासी, दारू-नशा, गाली, आदि को पुरुष के लिए गर्व समझा जाता है। और समस्त पुरुष वर्ग उस व्यक्ति को श्रेष्ठ साबित करने में लग जाता है। ऐसी निकृष्ट सोच का समावेश है समाज में। मैत्रेयी पुष्पा ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है - "टार्चर में कोई कमी नहीं आई। मेरा वेतन हर महीने लेकर भी पेट नहीं भरता था। मैं पैसे-पैसे को मोहताज रहती। पति की ऐयाशी में कमी नहीं आती। शराब पीना ओर फिर बीवी को पीटना जुल्म नहीं माना जाता, आदमी के लिए रिवाज है। रिवाज टूटता नहीं। मुझे बिना नागा पिटना है। यही मेरी सहनशक्ति का बड़ा गुण है।"[8]औरत अगर कमाती भीं हो तो भी समाज को उसका बाहर निकलना पसंद नहीं। पर होता यह भी है कि ऐसी जिंदगानी में हर स्त्री अपना संघर्ष अलग अलग रहकर करती है। जैसे एक मुर्गे को जब कसाई मार रहा होता है तो वहीँ दूसरा मुर्गा अपने मतलब से दाने चुग रहा होता है। यहीं मतलबी जिंदगी नारी-जीवन में कैक्टस बो रही है। समाज में कमाकर लाने वाली नारी को भी इज्जत नहीं मिलती। उसे भी प्रताड़ित होना पड़ता है। अच्छी-खासी कमाई के बाद भी उसे तलाक लेने को मजबूर किया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा इस बारे में समाज कि यथार्थता इस प्रकार प्रकट करती है -"मै तलाक लूंगी, जरूर लूंगी।' यह अर्चना थी, हरे रंग की चूड़ीदार में।

इला चुप। 'दीदी, मर्दों के घेरे में नाइनसाफी मिलती है औरत को तो सब्र आ जाता है कि वे नहीं समझ सकते, जो हम पर बीत रही है। पर औरतों के बीच ....इस वुमेन सेल में.....ऐसी नासमझी के लिए जगह नहीं होनी चाहिए।"[9]स्त्री पर दोष मढ़कर पुरुष की पुरुष-वर्ग में इज्जत दोगुना हो जाती है। यदि स्त्री लोकलाज से या घर में क्लेश खत्म हो जाए किसी तरह, यह सोच माफी मांग भी ले तो भी उसे बख्शा नहीं जाता। बल्कि पुरुष की शान बढ़ जाती है, वह दोगुने उत्साह-जोश से स्त्री पर अत्याचार शुरू कर देता है। स्त्री दो घरों को संभालने की पूरी कोशिश करती है, पर पुरुष सामाजिक इज्जत के लिए दो घरों में क्लेश करवाता है। इसी चक्कर में स्त्री का दोगुना शोषण होता है। स्त्री की ऐसी सामाजिक यातना को मैत्रेयी पुष्पा ने इस प्रकार स्पष्ट किया है -"मेरी बेटी ने बेकार के इलजामों के बाद भी शान्ति के लिए पति के पांव पकड़े। बस यही गलती हो गई। यहीं मर्द शेर हो जाता है औरत को झुकते देखकर। उसे झुकना नहीं, अड़ना था, वह अड़ी नहीं। 'बस, गुनाहगार मान ली गई और पति ने आराम से हत्या कर दी।"[10] स्त्री को अपने बलबूते पर भी नहीं जीने दिया जाता है समाज में। सम्मान, सुरक्षा को बहुत दूर की बात हो जाती है। स्त्री अगर दोगुनी कमाई भी करें तो भी उसकी समाज की नजर में 'पैर की जूती' वाली इज्जत ही है। उसकी उम्मीद इच्छाएं सपने इस पुरुष-प्रधान समाज में व्यर्थ है। इसका यथार्थ चित्रण उपन्यास 'गुनाह-बेगुनाह' में इस प्रकार दिखलाई पड़ता है -"कितना कुछ जान गई है इला, बहुत सारी बातें! हरियाणा की औरतों का ज्ञान-कोष। पराधीनता का लोकतंत्र। ऐसे ही माहौल में पैदा होकर बड़ी हुई है। औरतों की जिन्दगी का भेद पता ही तो चल गया था नही तो अपनी दीदी के साथ अपने भी मंडप की बात सुनकर घर से भाग जाती? भागने के मूल में क्या था? मां जानती हैं, वह थी लड़की की लालसा। लालसा अच्छा खाने की नहीं, रेशमी कपड़ों की नहीं, गहने-जेवर की नहीं, मौज-मस्ती की नहीं, साधन-सुविधा की नहीं, प्रियतम-पति की नहीं, संरक्षण और सुरक्षा की नहीं, बस वह थी अपने बूते सम्मानपूर्वक जीने की लालसा। बस इतना कि अपने जीवन के प्रति खुद ही जिम्मेदार होकर जिन्दगी की सफर तय करे।"[11]सामाजिक द्वंद्व से परेशान को आत्महत्या भी करती है स्त्री। स्त्री पर अत्याचार के आपराधिक आंकड़ें भी चैकाने वाले है। पर अधिकतर स्त्रियां यातनापूर्ण जिंदगी जीती है। और इसी में मर जाती है। सुकून से साँस तक नहीं लेने दिया जाता, ऐसी स्थिति-परिस्थिति में जिंदगी तो बहुत लम्बी हो जाती है। ऐसी सामाजिक स्थिति की यथार्थता इस प्रकार द्रष्टव्य है -"औरत पूरा दम लगाकर अवसन्न चेतना मे चिंघाड़ी-'मुझे जान से मार डालो, पर एक ही बार में। मेरे सिर पर हथौड़ा मारो, मारो, मोरो.....।'अब औरत का चेहरा रंगत खो चुका था। यह वही औरत है, जिसके साथ सुरेन्दर दस दिन रही थी। चोरी के माल की दरियाफत में खेतों, मूंज के झुंडों और करील की झाड़ियों से गुजरते हुए यह सरपंच औरत दोनों महिला सिपाहियों का खरोंच लगने से बचाती रही थी। खाने और साने की चिन्ता में अच्छे-से-अच्छा इन्तजाम करती थी। लगता था, वह इन लड़कियों की मां है।-सुरेन्दर कौर की आंख नम हो आई। 'थर्ड डिग्री!' किसने हुक्म दिया?"[12]मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं की नारी भले ही गाँव की हैं, किंतु वह अपना जीवन स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है। आधुनिक नारी आज नई संकल्पशक्ति के साथ जीने लगी है। समाज में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा के लिए नारी को कदम-कदम पर विद्रोह और संघर्ष करना पड़ रहा है। आज की नारी शिक्षित होने के कारण अपने व्यक्तित्व को जानने लगी है। पुरूष की भाँति वह भी समाज में स्वायतता स्थापित करना चाहती है। अपने अधिकारों के प्रति वह सचेत हो चुकी है। निर्मल वर्मा के अनुसार - ''नारी अपने अधिकारों की इच्छा करें, अधिकारी भी बने, अधिकारी के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। अर्थात् इच्छा पूर्ण करने के लिए कृति की आवश्यकता होना जरूरी है।''[13] मैत्रेयी पुष्पा साठोतर हिन्दी कथा साहित्य में उदीयमान होते हुए साहित्य के क्षितिज पर ध्रुव तारों की तरह जगमगाई। मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री केन्द्रित है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री स्वयं के लिए स्वतंत्रता के लिए आयाम निर्धारित करती है। वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दृढ़ता से समाज का सामना करने हेतु सदैव तत्पर रहती है। यही उनकी लेखनी का मूलमंत्र है। मैत्रेयी पुष्पा ने बुराई नहीं की। सदियों से स्त्री पुरूषों के द्वारा उतनी शोषित नहीं हुई जितनी प्रताड़ना एक स्त्री ने दूसरी स्त्री को दी है। सही मायनों में एक पुरूष किसी स्त्री की शह पाकर ही दूसरी स्त्री को प्रताड़ित करने की हिम्मत कर पाता है। एक औरत अपने पति के द्वारा मारपीट सहते हुए भी उसके गुण में, कमी नहीं रखती। मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य के अधिकांश पात्र सामान्य तथा बुद्धिजीवी होने के कारण उनकी रचनाओं में साहित्यिक परिवेश की छटा भी दिखाई देती है। साहित्य मैत्रेयी की स्मृति में रचा बसा है। बचपन से लेकर अब तक की साहित्य से जुड़ी हुई घटनाओं को उन्होंने अपनी रचनाओं में किसी न किसी पात्र के माध्यम से अंकित किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मैत्रेयी के कथा साहित्य में सफलतापूर्वक परिवेश का चित्रण हुआ है। रचनाओं में परिवेश के सजीव चित्रण से कथा और पात्र अधिक स्वाभाविक हो उठे है।

निष्कर्ष:-

इस तरह मैत्रेयी पुष्पा के समग्र साहित्य में नारी चेतना के विविध आयामों को प्रस्तुत किया। नारी चेतना के विशेष संदर्भ में उनका योगदान असाधारण है। उन्होंने अपने साहित्य में बुंदेलखण्ड की प्रादेशिक बोलियों तथा भाषाओं का बड़ा ही स्वाभाविक प्रयोग किया, जिससे वहां के वातावरण का सजीव चित्र पाठक के मस्तिष्क में उपस्थित हो जाता है। भाषा की सरलता और सहजता पाठक को अपनी और आकर्षित करती है। दृश्य, वातावरण और परिस्थितियों को प्रामाणिक धरातल पर प्रस्तुत करने में मैत्रेयी पुष्पा का योगदान उल्लेखनीय है। प्रेमचंद और रेणु की परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य मैत्रेयी पुष्पा कर रही है। प्रेमचंद के पात्र आदर्शवादी थे, मैत्रेयी पुष्पा के पात्र वास्तववादी है। प्रेमचंद की नारी पुरूष की अनुगामिनी थी। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में वर्णित नारी पुरूष सहगामिनी बनना चाहती है। रेणु की तरह स्वतंत्र रूप में आँचलिक उपन्यास तो नहीं लिखा है, लेकिन ग्रामीण जीवन के उपन्यासों में आँचलिकता का अस्तित्व पाया जाता है। ग्रामीण जीवन का जीवंत चित्र इनके उपन्यासों की बड़ी विशेषता है। पात्रों तथा परिवेश की जीवंतता का मानो चलचित्र का आभास देती है।

******

संदर्भ:-

1. मानव विकास रिपोर्टः मौर्य राशि एवं नुपूर कुकरेती द्वारा संकलित एवं ''संपादित सुरक्षा के दायरे'' भाग-1 प्रकाशक (सहयोगिनी ट्रस्ट छतरपुर 1900 आलेखित)।
2. रोहिणी अग्रवाल, 'स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ - 26
3. नवलजी, 'नालंदा विश्व कोश', ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 1917, पृष्ठ - 138
4. रामदास मिश्र, 'साहित्य संदर्भ और मूल्य', ज्ञानपूर्णा प्रकाशन, जयपुर, 1960, पृष्ठ - 95
5. धीरेन्द्र वर्मा, 'आधुनिक हिन्दी शब्द कोश', ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ - 289
6. शोभा वेरेकर, 'नारी विमर्श, अभय प्रकाशन, कानपूर, 2010, पृष्ठ - 85
7. मैत्रेयी पुष्पा, गुनाह-बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 87-88
8. मैत्रेयी पुष्पा, गुनाह-बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 88
9. मैत्रेयी पुष्पा, गुनाह-बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 89
10. मैत्रेयी पुष्पा, गुनाह-बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 147
11. मैत्रेयी पुष्पा, गुनाह-बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 179
12. मैत्रेयी पुष्पा, गुनाह-बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 208
13. निर्मल वर्मा, 'महादेवी एक मूल्यांकन', लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ - 208

'हंडा में दबी हुई स्त्री'

डॉ.मिनी ए.आर
सहायक प्राध्यापक
पययनूर कालिज,कण्णूर मो.+91 90744 89360: केरला

सारांश:-हंडा दब उस नवविवाहिता के साथ मायके से आया था तो इसमें उसकी सपने भरे थे। अब कभी अनाज, कभी पानी भरा जाता है। धीरे-धीरे युवती चली गई, लेकिन स्मृतिशेष जीवन की तरह धर भर में डोलता हंडा रह गया।

भूमिका:-'हंडा' लोकस्मृतियों में बसा पुरातन रहस्यमयी चीज़ है। स्त्री का जीवन भी उसी तरह था। इतिहास में स्त्री के दमन और अत्म बहिष्कार चलते भी रहे थे। इस कविता में हंडा और स्त्री दोनों मन प्रभाओं को खोल देती है।

"बच रह सके मासूम सपने,
इसी उधेड़बुन में
सारे घर में लुढ़कता फिरता है हंडा"

हंडा तो केवल बच रह सके, हंडे के साथ आई युवती चली गई। यहाँ हंडा और स्त्री से क्या संबंध? 1997 में भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित नीलेश रघुवंशी की एक गंभीर कविता है 'हंडा'। उस कविता के शीर्षक और सत्ता दोनों में संबंध काफी है। हंडा लोक स्मितयों में बसा पुरातन गेप्य, रहस्यमय चीज़ है। इस हंडे में नारी जीवन का सारा सारांश समेट कर रख दिया है। औरत के सच को दर्शाती है यहाँ। आम औरत तो उम्र भर यही करती आयी है। हंडा कविता की पंक्तियाँ सुनते वक्त मन में संदेह उत्पन्न होता है कि, यह किस समय की कविता है। आज तो समय बीता हुआ है। युगांतकारी परिवर्तन आ गया है। पीछे की ओर मुड़ जाये तो हम रघुवंशी के साथ हैं।

"एक पुराना और सुंदर हंडा
भरा रहता जिसमें अनाज
कभी भरा जाता पानी
भरे थे इससे पहले सपने"।

एक समय 'पुराना' और 'सुंदर' उस हंडा सपनों से भरे रहते थे। अब उसमें कभी अनाज भरा रहता है, कभी पानी। पुराना और सुंदर में कोई संबंध है? किसी चीज पुराना आते वक्त उसकी सुंदरता कम हो जाती है। लेकिन यहाँ उस हंडा पुराना होने पर भी अत्यंत सुंदर लगती है। क्यों? क्योंकि इतने समय तक उस हंडे के अंदर सपनों भरा रहता था। एक स्त्री की प्रतीक्षा की किरणें, उस हंडे के अंदर दबाकर रखी थी। ये किरणें तो अत्यंत अनुपम होगी। इसी कारण से वह हंडा पुराना होते हुए भी सुंदर लगता है। एक नारी जब नारी बन गयी है, उनकी बचपन से लेकर जब वह अपने घर छोड़कर नववधू बनकर मायके जाते हैं, तब तक हंडा हंसकर ही रहती थी। बचपन की उस दशा में हंडा में तारों से भरे उस छोटी लड़की की खशियाँ भरी दिन था। छोटी लड़की तो उस दशा में सबके आंखों के तारे होगे। "नहीं रही युवती नहीं रहे तारों से भरे ददन बच नहीं सकें उमंग से भरे सपने" यहाँ हम चिंताधीन होते हैं। एक स्त्री की प्रतीक्षा शादी के बाद टूट जाते हैं। नहीं एक समय था, अपने आप में विलीन होकर रहती थी। स्त्री स्वतंत्र नहीं थी। अपने लिए मुंह खोलने का अवसर भी उसको नहीं था। घर के चार दीवारों में अपने सपनों के हंडे में दबाकर वह जीवन बिताती थी। यहाँ कहती हैं कि उस हंडा तो बेचारा स्त्री अपने सपनों को भरकर लायी थी, लेकिन अब उसमें सपने नहीं, ससुराल और मायके का जीवन मात्र है।

यहाँ एक प्रश्न उठती है.. उस स्त्री की सपनों कहाँ गयी? किसी ने लेकर चली गई। नहीं, वह स्त्री परिवारवालों के याद में सबकुछ से बिछुडन पाया। ससुराल जाते वक्त उस परिवार संभालने की दायित्व तो केवल उसी के कंधे पर हो गई। उस घर को संभालना ही उसका दायित्व हो गई है। कृष्ण की याद में गोपिकाओं ने मुग्ध होकर जिस प्रकार स्वयं दीन बन गयी, उसी प्रकार दूसरों के लिए जीते-जीते स्वयं बेचारा अपने में लीन हो गयी।

अपने सपनों को वह स्त्री वहाँ छोडा। दूसरों के सपनों की पूर्ति भी उनका लक्ष्य था। अपने सपनों की पूर्ति स्त्री को नहीं मिलती। उसीके सपने अब भी सुरक्षित रहे हैं। उस हंडे के अंदर में ही। 'हंडा' नीलेश रघुवंशी ने एक पराधीन स्त्री की पयार्य के रूप में चित्रित की हैं। कविता की अंतिम पंक्ति में वह यह बताती है कि "टूटा नहीं, बिखरा नहीं"? क्यों? उस हंडे के टूटने से बिखर ने से हंडे के अंदर फंसा हुआ उसीके सपने पंखे फैलाकर चारों ओर उड सकते। उसकी सपनों की पूर्ति करने का अवसर भी यहाँ खोया हुआ है। इस पर यह संदेह प्रकट करना है कि यहाँ पराधीन स्त्री के रूप में हंडे को चित्रित की है। रघुवंशी अत्यंत समकालीन कवयत्री है। इस समय पराधीन, स्वाधीन का कोई भेदभाव है? मनुस्मृति में कहनेवाली ये उक्ति, "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" ये तो यहाँ सार्थक नहीं। क्रांतिकारी परिवर्तन के इस समय पराधीन शब्द तो शब्दकोश से भी निकालना है। केवल स्वाधीन शब्द मात्र गूंजना है। यदि कवि स्त्री की अतीत को देखकर यह कहें तो अत्यंत उचित होगा। समय के साथ साहित्य भी बदलता है। सुमित्रानंदन पंत की 'मुक्त करो नारी को मानव' में वे युग युग की बर्बर कारा से मुक्त कराना चाहती है। एक स्त्री होने के नाते जो कुछ पीडाएं वे सहनी पडी है उस पर स्त्री द्वारा जीवन देते तो अत्यंत सफल होगा। आज पुरुष के साथ स्त्री सबकुछ करने केलिए तैयार में हैं। परिवार संभालना मात्र उनका लक्ष्य नहीं। वे मुंह खोलना सीखा। शिक्षा करना सीखा, जब वह घर के चार दीवारी के अंदर थी, अब वह उस दरवाजा खोलकर नगर चलना भी सीखा।

qअब यह पराधीन शब्द के लिए क्या युक्ति? स्त्री पराधीन है। मेरे राय में स्त्री को पूरी तरह आजादी मिली है। मुंह खोलने की अवसर जब तक मिली तब तक वे आजादी के एक सीढ़ी भी पार कर ली। इसलिए 'हंडा' कविता पढने से मेरा मत यह है कि एक स्त्री की अभिलाषा हंडे में नहीं फंस रहे हैं। आकाश में फैला जा रही हैं। जब तक सागर की तरह वह बढना चाहतीं हैं, तब तक समाज और परिवार उसके साथ में भी है। शंका की बात नहीं। अंत में यह कहना चाहूंगी कि हंडा को नहीं तोडना। हंडा पुराना होगा, हंडे से स्त्री की सपनों को बिना छोड़ निकालना है। उस सपनों की पूर्ति के लिए एक-एक स्त्री के साथ हम भी उडना है। पंखों को काटने के लिए कोई परिंदे नहीं आयेगी। अपनी नैतिकता को कायम रहकर पुरुष के साथ, घरवालों के साथ आनंददायक जीवन बिताने योग्य है स्त्री। अतीत की ओर कान देते वक्त ये गूंजता है, 'मुझे बहने दो' एक-एक स्त्री की पुकार। उस पुकार को कान देना और सुनना है। अवसर अभी आया है। परिवर्तन चलता रहा है। समय के साथ साथ साथ..।

निष्कर्ष:-

दिशा और दशा बदल गए। क्रांतिकारी परिवर्तन के साथ बदलाव हो गये। स्त्री के बिना पुरुष अधूरा है, यह सच्चाई को वास्तविक जगत में लाने का प्रयास अब चल रहा है। सफल होगा या नहीं, आशा मात्र है।

******

संदर्भ सूची:-

1. नीलेश रघुवंशी, हंडा, साहित्य वीथिक वाणी प्रकाशन, पृ.43
2. नीलेश रघुवंशी, हंडा, साहित्य वीथिक वाणी प्रकाशन, पृ.42
3. नीलेश रघुवंशी, हंडा, साहित्य वीथिक वाणी प्रकाशन, पृ.42
4. नीलेश रघुवंशी, हंडा, साहित्य वीथिक वाणी प्रकाशन, पृ.43

दलित स्त्री आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में चित्रित सांस्कृतिक परिदृश्य

नूरजहान रहमातुल्लाह
शोध-निर्देशक
हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी

नीतामणि बरदलै
शोधार्थी
हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी

आलेख सारांश : दलित साहित्य की सबसे सशक्त विधा के रूप में दलित आत्मकथाएं है। ये आत्मकथाएं दलित जीवन की करुण गाथा है। दलित समाज के प्रति लोगों के हीन मनोभाव को दलित आत्मकथाओं में उजागर किया गया है। दलित आत्मकथाकारों ने दलित समाज व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था के माध्यम से समाज के कटु सत्य को उजागर किया। दलित समाज के प्रति अमानवीय दृष्टिभंगी अथवा पशुसुलभ व्यवहार दलित साहित्य के माध्यम से ज्ञात हुये है। संस्कृति मानव जीवन की एक अभिन्न अंग है। मनुष्य को संस्कृति प्राचीन युग से परंपरागत धरोहर के रूप में मिली है। संस्कृति में मनुष्य जीवन के समस्त कार्यकलाप लक्षित होते हैं। संस्कृति वास्तव में एक देश तथा राष्ट्र, एक प्रदेश और एक जाति की जीवन पद्धति है।

बीज शब्द : दलित, संस्कृति, परिदृश्य।

भूमिका : साहित्य का संबंध अनन्य है। साहित्य समाज के वह आईना स्वरूप है जिसमें समाज की अच्छाई और बुराई का प्रतिबिम्ब प्रतिफलित होती है। आत्मकथा जीवन के सत्य घटना पर आधारित है। आत्मकथा विधा में लेखक स्वयं आत्मकथा का नायक होता है। साहित्य के अनेक विधाओं में आत्मकथा अन्यतम है। आत्मकथा साहित्यकार के भोगी हुई पृष्ठभूमि है, इसमें व्यक्तिगत जीवन के साथ साथ तत्कालीन समाज भी अंकित होती है। दलित साहित्य दलित जीवन के संग्राम और दु:खद परिस्थिति को उजागर करती है। दलित साहित्य की सबसे सशक्त विधा के रूप में दलित आत्मकथाएं है। ये आत्मकथाएं दलित जीवन की करुण गाथा है। दलित समाज के प्रति लोगों की हीन मनोभाव को दलित आत्मकथाओं में उजागर किया गया है। दलित आत्मकथाकारों ने दलित समाज व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था के माध्यम से समाज के कटु सत्य को उजागर किया। दलित समाज के प्रति अमानवीय दृष्टिभंगी अथवा पशुसुलभ व्यवहार दलित साहित्य के माध्यम से ज्ञात हुये है। कौसल्या बैसंत्री कृत आत्मकथा **'दोहरा अभिशाप'** में समाज के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिदृश्य प्रतिफलित हुई है। हिन्दी दलित स्त्री आत्मकथाकार बहुत सीमित है। मराठी साहित्य तथा मराठी भाषा के माध्यम से हिन्दी में महिला दलित आत्मकथा का आगमन हुआ। हिन्दी की पहली दलित स्त्री आत्मकथा है **'दोहरा अभिशाप'** जिसकी रचयिता है कौसल्या बैसंत्री। दोहरा अभिशाप का प्रकाशन सन 1999 ई में हुआ। कौसल्या बैसंत्री ने यह आत्मकथा 68 वर्ष की आयु में लिखी। प्रस्तुत आत्मकथा में दलित समाज की सांस्कृतिक स्वरूप यथार्थ रूप में प्रतिफलित हुई है।

संस्कृति केवल एक व्यक्ति में ही सीमित नहीं रहता। वह समस्त राष्ट्र और समाज में समाहित है। असल में संस्कृति मानव जीवन तथा समाज की एक अमूल्य रत्न स्वरूप है, अमूल्य निधि है। सांस्कृतिक परम्परा के अंतर्गत विवाह, नामकरण, खान-पान, रहन-सहन, कर्म-कांड, व्रत आदि मुख्य परम्पराएँ सम्मिलित है। 'दोहरा अभिशाप' में सांस्कृतिक परम्पराएँ किस प्रकार प्रतिफलित हुई है वह निम्नांकित है –

जन्म संस्कार : जन्मसंस्कार भारतीय संस्कृति की परंपरा के एक अनन्य अंग है। शिशु के जन्म समय में विभिन्न संस्कार भारतीय परम्पराओं में दिखाई देती है।'दोहरा अभिशाप' में भी जन्म संस्कार के संबंध में दिखाया गया है। कौसल्या बैसंत्री के जन्म के तुरंत बाद ही मंत्र-तंत्र और जादू-टोने किए गए थे। कौसल्या के जन्म लेने के बाद ही पाँच धातु जैसे सोना, चाँदी, लोहा, तांबा, पीतल आदि की नथ से कौसल्या की नाक छेदी गयी थी। कौसल्या बैसंत्री के जन्म के समय किसी ब्राह्मण के घर से जूठी पत्तल लाकर उसके ऊपर कौसल्या को पाँच बार घुमाया था। बच्चे अधिक उम्र प्राप्त करे इसलिए मंदिर में मन्नत भी मांगी जाती थी। उस समय दलित लोगों को मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी जिसके कारण वे मंदिर से बाहर रहकर ही भगवान से प्रार्थना करते थे। कौसल्या बैसंत्री लिखती है – "बड़ी बहन जनाबाई के बाद लगातार एक भाई और दो बहनों की मृत्यु हो गई थी इसलिए आजी और माँ ने शिवजी भगवान से मंदिर के बाहर खड़े होकर प्रार्थना की और भगवान से मन्नत मांगी कि अगर मैं दस वर्ष की हो जाऊँगी और मेरे बाद जो बच्चे पैदा होंगे वे जीवित और स्वस्थ रहेंगे तो वह शिवजी के मंदिर में जाकर बकरे की बली देगी और मेरे वजन के बराबर चावल और गुड़ चढ़ाएगी"।(बैसंत्री,1999:28) इसप्रकार 'दोहरा अभिशाप' में दलित समाज के जन्म संस्कार का चित्रण किया गया है।

विवाह संस्कार : कौसल्या बैसंत्री ने अपने आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में दलित समाज की विवाह संस्कार को दिखाया है। उन्होनें अपने आजी के समय के विवाह संस्कार का भी उल्लेख किया है। आजी के जन्म के समय समाज में बाल विवाह का प्रचलन था। तेरह –चौदह उम्र में गौना होने के बाद लड़कियों को ससुराल में भेज दिया जाता था। आजी की नियति अत्यंत ही दु:खदायक थी। गौना होने से पूर्व ही उनके पति की अकाल मृत्यु हो गई। अछूत समाज में स्त्रियों की तथा विधवा को दुबारा विवाह करने के लिए समाज मान्यता देते थे। दूसरी विवाह को दलित समाज में पाट कहा जाता था। इस पाट की विधि में एक विधवा नारी को मंगलसूत्र, बिछुए, बिंदी से सजाकर सिंदूरी रंग की सारी पहनाकर रात के अंधेरे में पति अपने घर लाता था। रात के अंधेरे में एक विधवा स्त्री को इसलिए लाया जाता था ताकि कोई सधवा उसे देख न ले। पाट होने के समय ही विधवा स्त्री के गले में चाँदी अथवा सोने की पेडेंट पहनाया जाता था ताकि कोई देखे तो वह विधवा है यह समझे ले। विधवा अथवा तलाक़शुदा स्त्री किसी भी कुवारे के साथ विवाह नहीं कर पाती थी। इसप्रकार दलित समाज में अनेक विवाह से संबन्धित रिवाज तथा संस्कृति विद्यमान थे परंतु काल क्रमानुसार ये समाप्त होने लगे। कौसल्या बैसंत्री के विवाह के समय में भी दलित समाज में अंतरप्रांतीय और अंतर्विवाह मान्य नहीं था। कौसल्या ने ये सब बंधनों को त्यागकर अंतरजातीय और अंतरप्रांतीय विवाह की। उन्होनें अपने मन से देवेंद्र कुमार को पसंद किया और शादी की। इसप्रकार दोहरा अभिशाप में विवाह से संबन्धित रीति – परम्पराओं को चित्रित किया गया है।

खान-पान: खान-पान मानव जीवन के एक अनिवार्य अंग है। खान पान भी एक संस्कृति तथा जाति की परिचायक है। विभिन्न लोगों के, विभिन्न जाति और धर्म के खान-पान अलग होती है। विभिन्न संस्कृति के खान- पान में भिन्नता दिखाई देती है। खान पान का संबंध सांस्कृतिक तथा सभ्यता के साथ अनिवार्यता से जुड़ा हुआ है।खान-पान का संबंध प्रदेश विशेष पर निर्भर रहता है। व्यक्ति की अर्थनैतिक अवस्था पर भी खान-पान निर्भर करती है। कौसल्या बैसंत्री ने दोहरा अभिशाप में उल्लेख किया कि उनके घर में केवल रविवार के दिन ही रोटी का नाश्ता बनती है। साथ ही रविवार के दिन काम खत्म होने के बाद रात के बची हुई दाल से सबको एक एक रोटी खाने के लिए देती है। साथ ही वे लोग भात का भोजन करते थे। कौसल्या बैसंत्री और उनके बस्ती के लोग गाय का मांस खाते थे। गाय की मांस सस्ता होने के कारण ही वे लोग गाय का मांस खाते थे। उनके बस्ती में कसाईखाना भी थे। वे मांस को खूब मसले के साथ खाते थे। कौसल्या बैसंत्री लिखती है- " हम मांस में ज्यादा मिर्चे डालकर पकाते थे। माँ ने मसाला भूनकर मांस को चूल्हे पर चाढाया और मांस पकने तक बाबा और माँ कुछ छोटे-मोटे काम में लग गए"। (बैसंत्री,1999: 23)छुट्टी के दिनों में कौसल्या के घर भात, रोटियाँ और मांस बनते थे। कौसल्या बैसंत्री के घर में प्रत्येक दिन केवल भात और मिर्च-मचाले वाली दाल ही बनती थी। "आज छुट्टी का दिन था, इसलिए भात, रोटियाँ और मांस बना था, रोज सिर्फ भात और मिर्चे – मसाले वाली दाल बनती थी। कभी-कभार बेसन की कढ़ी, या आलू- बैंगन की रसेवाली सब्जी, कभी रसेवाली बड़ियों की सब्जी ही बनती थी, क्योंकि भात के साथ रसा तो चाहिए ही।"(बैसंत्री,1999: 13) कौसल्या बैसंत्री बचपन में मैदानों में साग तोड़ने भी जाती थी। वे चरोता, चौलाई, पातुर, खपखुटी, आदि साग लाती थी और सब्जी बनाती थी। इमली के बीजों को भी वे आग में भूनकर खाती थी। इसप्रकार कौसल्या बैसंत्री ने दोहरा अभिशाप में अपने समाज की खान-पान के संबंध में विस्तृत वर्णन की है।

रहन–सहन : भारत एक विशाल देश है। भारत में अनेक संस्कृति तथा अनेक विविधताएँ दिखाई देती है। संस्कृति के अनुसार ही व्यक्तियों की रहन - सहन भी भिन्न है। प्रदेशानुसार भौगलिक छवि अलग अलग होती है। भौगलिक परिवेश के

अनुसार ही व्यक्ति के रहन-सहन मे विभिन्नता दिखाई देती है। प्राकृतिक परिवेश, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति के कारण रहन–सहन में विविधता पाई जाती है। कौसल्या बैसंत्री ने 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा में रहन सहन का सुंदर चित्रण उपस्थापित किया है। उन्होनें अपने घर के वातावरण को आर्थिक रूप से जर्जरित दिखाया। घर की स्थिति में सुधार नहीं था परंतु वे अत्यंत साफ-सुथरे से रहते थे। उनकी बस्ती के लोग प्रायः गंदगी में रहते थे। कौसल्या बैसंत्री की रहन-सहन तथा जीवन शैली अत्यंत ही सहज था। उन्होनें अपनी आजी के समय तथा समाज को चित्रण करने से उनकी रहन–सहन को भी दर्शाया। उनकी आजी बचपन में खेत में अपने भाइयों के साथ चलती थी। उनकी द्वितीय पति भी साहूकार थे। वह कारोबार के सिलसिले में बाहर जाते समय लाल रंग की पकड़ी, काले रंग का कोट और सफ़ेद धोती पहनते थे। उनकी पहली पत्नी भी अच्छी रहन-सहन में रहती थी। वह गले में सोने की लाख पर जड़ी मटरमाला, कान में सोने के कर्णफूल तथा तरपा, पाव में चाँदी के तोड़े, कान के ऊपर सोने की बालियाँ पहनती थी। साथ ही नाक में बड़ी बड़ी नथ भी पहनती थी। उनकी आजी अत्यंत ही साधारण जीवन जीती थी। वह केवल कान में दो दो बालियाँ और हाथ में चाँदी की कड़े पहनती थी। साथ ही कलेमानी पिरोया मंगलसूत्र भी पहनती थी।

उत्सव-पर्व : तीज-त्योहार लोगों को निश्चल बनाते है, पवित्र बनाती है समाज में विभिन्न पर्वो –त्योहारों का आयोजन भी मुख्यतः इसी कारण से किया जाताहै , जिसमें लोग एक समूह होकर आमोद-प्रमोद में भाग लेते हैं इसी कारण त्योहारों को बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है"। कौसल्या बैसंत्री ने अपने आत्मकथा में उत्सव पर्व का सजीव वर्णन किया है। कौसल्या बैसंत्री के समाज में गणपती पुजा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। साथ ही अस्पृश्य समाज में मरीमई, खंडोबा, देव दल्ला, वाघोबा आदि देवताओं की पुजा की जाती थी। साथ ही कौसल्या बैसंत्री की बस्ती में नाग पंचमी में नाग पुजा भी की जाती थी। लोगों के घर में दीवार पर नाग चिह्न बनाया जाता था। नाग पंचमी के दिन सारा घर में धन छिड़क दिया जाता था और घर के एक कोने में किसी बर्तन में दूध रखा जाता था। बस्ती के लोग सोचते थे कि नाग देवता आकर दूध पिएंगे। कौसल्या के बस्ती में कृष्ण जन्माष्टमी भी बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। शिवरात्रि के दिन शिव पुजा भी कौसल्या की बस्ती में की जाती थी। साथ ही दिवाली, होली आदि पर्व भी बहुत ही स्नेह पूर्वक मनाया जाता है। कौसल्या बैसंत्री की बस्ती में बाबा साहब अंबेडकर की जन्म जयंती भी बहुत ही उत्साहपूर्वक मनाया जाता था।

कला संगीत- : संस्कृति की एक अभिन्न अंग है कला और संगीत। संस्कृति में संगीत का महत्व अनन्य है। संगीत में गायन, वाद्य और नृत्य को भी सम्मिलित किया जाता है। कौसल्या ने 'दोहरा अभिशाप' में चित्रित किया कि उनकी माँ की आवाज अत्यंत मधुर है। वह बहुत सुंदर ढंग से ओवि गाती थी। कौसल्या की माँ को संगीत से बहुत लगाव था। कौसल्या ने स्कूल में रहते समय एकबार नाटक भी किया था। लोगों ने उनकी अभिनय और गानों कि तारीफ की थी। कौसल्या को संगीत से भी अत्यंत लगाव था। कौसल्या के बस्ती में कुछ लोग पोवड़े, भजन, लावणी, गीत , गोंधल आदि भी गीत गाते थे। मांग जाति के लोग बहुत सुंदर रूप से शहनाई बजाते थे। साथ ही कुछ लोग मृदंग भी बजाते थे।

निष्कर्ष : इसप्रकार कौसल्या ने 'दोहरा अभिशाप' में सांस्कृतिक परिदृश्य प्रतिफलित की है। संस्कृति मानव जीवन की क्रीड़ाओं का दर्पण है। संस्कृति और समाज का संबंध अनन्य है। संस्कृति के बिना एक समाज पत्ते विहीन पेड़ सा है। कौसल्या बैसंत्री ने अपने आत्मकथा में सम्पूर्ण दलित समाज की जन्म संस्कार, विवाह-संस्कार रहन-सहन, खान-पान, उत्सव पर्व आदि का वर्णन किया है। इसप्रकार दोहरा अभिशाप में सांस्कृतिक परिदृश्य प्रतिफलित हुई है।

******

संदर्भ ग्रंथ : -

1.बैसंत्री, कौशल्या. (2015). दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन: दिल्ली.

सहायक ग्रंथ :

1.प्रो. चमन लाल. (2014). दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, राजपाल एंड सन्ज: दिल्ली.
2.चौबे, देवेंद्र. (2009). आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, ओरियंट ब्लैकस्वान:दिल्ली.
3.साखरे, डॉ सुनीता. (2009). दलित साहित्य : विविध आयाम, अमन प्रकाशन: कानपुर.
4.दुबे,अभय कुमार.(2005).आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन: दिल्ली.
5.सिंह,हरपाल .(2005). दलित साहित्य की भूमिका, जवाहर पुस्तकालय: मथुरा .
6.स्नेही,प्रो कालीचरन. (2013). दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, ज्ञान विज्ञान संस्थान: दिल्ली.

लोक कथाओं में चित्रित स्त्री जीवन: मिज़ो लोक कथाओं के संदर्भ में

डॉ.वंदना भारती
सहायक प्राध्यापक
पी. जी. हिंदी विभाग पूर्णियां वि.पूर्णियां बिहार

हम सभी जानते हैं कि, मन की गति असीमित होती है ; ठीक इसी प्रकार लोक कथाओं के प्रसार पर भी अगर हम गौर करें तो यह असीमित है। इसको बाँध कर नहीं रखा जा सकता, यह पाखी की भांति पंख पसारकर निर्विरोध यात्रा करता है। इस यात्रा का ही परिणाम है कि आपको एक प्रदेश की लोककथा में दूसरे देश-प्रदेश की झलक अक्सर ही मिल जाया करती हैं।

अक्सर हीं देखा गया है कि लोककथा में नीति कथा पर हमारा अधिक ध्यान जाता है। हम यह भी जानते हैं कि स्त्रियाँ ही लोककथाओं की जननी हैं। दादी-नानी, माताओं के पास किस्से (खिस्से) कहानियों की भरमार रहती हैं। लेकिन क्या कभी हमने यह सोचा है कि जो दादी-नानी, माँ इन किस्से कहानियों की मूल स्रोत हुआ करती हैं उन्होंने अपनी जिंदगी को इन कथाओं में कैसे पिरोया होगा ? भारत जैसे पुरुष प्रधान समाज में जहां स्त्रियों का नाम बदलकर लिखने की परंपरा रही हो वहाँ क्या इसलिए हमारी पुरखिन लोक कथाओं की ओर तो नहीं मुड़ी क्यूंकि यहाँ उनके लिए एक खुला आसमाँ था और अपनी कथा – व्यथा को बताने के लिए निर्बाध वितान। यही मुख्य कारण था कि मेरी स्वतः इच्छा लोक कथा में स्त्री जीवन को रेखांकित करने की हुई। दरअसल लोक कथाओं की अपनी एक अलग प्रकार की यादें हैं जो कि हमारे मन मस्तिस्क पर छाई होती हैं। आज के उत्तर आधुनिक समाज में जहाँ कथा – कहानियों को कहने और बरतने का प्रचलन थम गया हो, किस्से – कहानियाँ बीते कल की बात लगने लगी हो उस दौर में यह हमारा समाज के प्रति एक महती जिम्मेवारी भी बनती है कि अपनी जड़ों की ओर लौटें। जाहिर है हमारी जड़े बीते कल की किस्से – कहानियों में रची – बसी हुई हैं। "यह सही है कि आदिवासी स्त्रियाँ गैर आदिवासी स्त्री से कहीं अधिक स्वतंत्र होती हैं। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलकर घर बाहर दोनों काम संभालती हैं। एक तरफ तो आदिवासी समाज कहता है --"देकर और बांटकर खाना ही जीवन है, अकेले खाना मृत्यु" "जमा खोरी करने वाला मरेगा और बाँट कर खानेवाला जिएगा।" "अपने खानदान या मूल को कभी बुरा मत कहो।" दूसरी तरफ आज से नहीं पुरातनकाल से ही उसी आदिवासी पुरुष समाज में पुरुष शाऊनिज़्म जड़ जमाये बैठा है। स्त्रियों के लिए काम का बंटवारा हो या उनके प्रति दृष्टिकोण का, सभी में पुरुष का वर्चस्ववाद और अहंकार हावी रहता है। उदाहरणस्वरूप कुछ कहावतें प्रस्तुत हैं-

1. औरतों और केकड़ों का कोई धर्म नहीं होता।
2. कुत्तों और औरतों को अपनी मर्जी के अनुसार भूँकने दो।
3. औरतों की अक्ल गाँव के पनघट से आगे नहीं जाती।
4. लापरवाह लंपट औरत पूरे गाँव की प्रतिष्ठा धूल में मिला सकती है।
5. दो औरतों के झगड़ें मे मर्द कभी अपनी अपनी टांग न अड़ाए।
6. औरत पुरानी बाड़ की तरह बदल देने योग्य होती है।

(भारत का आदिवासी स्वर; P-184, रमणीका गुप्ता, अनन्य प्रकाशन (प्रथम संस्करण 2018))

मिज़ो कहावतों के विपरीत मिज़ो लोक-कथाओं में स्त्री का चरित्र अधिकतर खूबसूरत, ममतामयी, बुद्धिमती स्त्री और साहसी स्त्री के रूप में ज्यादा देखने को मिलता है। हालांकि अन्य लोक-कथाओं की तरह यहाँ भी सौतेली माँ का रूप दिखाया गया है जो कि अपनी सौतेली बेटी को बहुतेरे तरीके से परेशान करती है और उसका जीना दूभर कर देती है। ऐसी ही एक लोक-कथा है – 'मउरुआंगी'। यह एक ऐसी प्यारी लड़की की कथा है जिसको उसकी सौतेली माँ येन – केन – प्रकारेण बस परेशान करती रहती है। उसे ढंग से खाना नहीं देती है और अन्य अनेक प्रकार से तंग करती है। उसकी माँ जिसे मार दिया गया था वह एक डॉल्फिन बन जाती है और 'मउरुआंगी' का ख्याल रखती है। उसे भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वादिष्ट खाना खिलाती है जिससे मउरुआंगी का शरीर फिर से अच्छा होने लगता है। उसकी सौतेली माँ को आश्चर्य होता है।

वह अपनी बेटी बिंगतेई को उसका पीछा करने के लिए कहती है। बिनतेई अपनी माँ को सारी बात बताती है कि कैसे एक डॉल्फिन मउरुआंगी का ख्याल रखती है। यह सुनकर उसकी माँ गाँव के सारे लोग को बुलाती है और डॉल्फिन के बारे मे बताती है। गाँव के लोग डॉल्फिन को पकड़ कर उसका माँस खा जाते है। फिर मउरुआंगी की माँ एक पेड़ बन जाती है। उस पेड़ की ठंडी छाँव और हवा से पुनः मउरुआंगी का शरीर स्वस्थ होने लगता है। यह देखकर फिर से उसकी सौतेली माँ गाँव वालों को बुलाकर उस पेड़ को कटवा देती है। इसी बीच नॉन मिज़ो का मुखिया मउरुआंगी को देखकर रीझ जाता है और उससे शादी का प्रस्ताव रखता है। उसकी सौतेली माँ अपने बेटी की शादी उससे कर देती है लेकिन मुखिया उसको वन मे अकेला छोड़कर मउरुआंगी को लेकर अपने गाँव चला जाता है और वहाँ सुखी-सुखी रहने लगते हैं। कहने का आशय यह है कि सौतेली माँ जिस तरह से अंगिका, भोजपुरी या मगही कहानियों मे चित्रित है करीब-करीब उसी रूप में मिज़ो लोक-कथाओं में भी चित्रित हैं।

(Mizo Folklore _ I, Folktales of Mizoram: by Dr. Laltulangliana Khiangte, Muruangi, P-141 – United Publishers – Guwahati-1992)

मिज़ो लोक-कथाओं में स्त्री के विभिन्न रूपों को दिखाया गया है। सौभाग्यशाली प्रेमिका के रूप में उसका अत्यधिक चित्रण मिलता है। साथ ही बुद्धिमती स्त्री के रूप में भी कई लोक-कथाओं में चित्रण मिलता है। ऐसी ही एक प्यारी कथा है जोलपला और तुआलवुङी की। जोलपला की पत्नी तुआलवुङी इतनी सुंदर थी कि उसे देखने दूर-दूर से लोग आते थे। एक दिन फुनटिहया राजा के आने पर जोलपला ने गर्व में आकार उसे अपनी बहन बता दिया। अपनी इस नादानी की कीमत उसे मुँहमाँगे वधू-मूल्य पर राजा को अपनी पत्नी सौंपकर भुगतनी पड़ी। पति -पत्नी में इतना प्रेम था कि जोलपला अपनी पत्नी का वियोग बहुत दिनों तक नहीं सह सका और एक दिन उससे मिलने राजा के महल में चल गया। फुनटिहया की अनुपस्थिति में तुआलवुङी ने जोलपला को सावधान रहने को कहा और समझाया कि उसे राजा यदि कुछ खाने को दे, तो वह न खाए। बाद में एन दिन तुआलवुङी जब खेत में गई थी तब फुनटिहया ने अवसर देखकर उसे आग में भुनी अरबी और कच्ची शराब परोस दी । जोलपला ने तुआलवुङी की नसीहत को भूलकर उसे खा लिया। तुआलवुङी जब वापस आई तो उसने पाटो को बहुत ही खराब स्थिति में देखा और उसे वापिस अपने घर को किसी तरह भेज दी। लेकिन उसकी मृत्यु हो जाती है जिसे देखकर तुआलवुङी उसके कब्र पर जाती है और वहाँ एक बुढ़िया से अपने को भी कटार द्वारा मरवा लेती है। बाद में, जब फुनटिहया को यह पता चला कि तुआलवुङी की भी मृत्यु हो गई तो उनके कब्र तक पहुँच कर आत्महत्या कर लेता है। 'जोलपला और तुआलवुङी' ने तितली का रूप धारण कर लिया और उड़कर आकाश चले गए। जब फुनटिहया ने उन दोनों को तितली के रूप में देखा तो वह भी तितली का रूप धरण कर उन दोनों का पीछा करने लगा। आज भी मिज़ो निवासी जब दो खूबसूरत तितली के पीछे कोई काली तितली देखते हैं तो वे इन तीनों की आत्माओं को समझते हैं.''

(Mizo Folklore _ I, Folktales of Mizoram: by Dr. Laltulangliana Khiangte, United Publishers – Guwahati-1992)

स्त्री बुद्धिमत्ता को रेखांकित करने वाली एक और लोककथा 'डूरछिड़ी और हरेताया' की। उस कथा में दो अलग-अलग गाँव के लोग एक साथ बैठकर शराब पीते हुए अपनी-अपनी जादुई कला का प्रदर्शन करते हैं और एक-दूसरे से प्रभावित होकर दोस्त बन जाते है। इसी क्रम में वे एक-दूसरे के परिवार के बारे में जानकर अपने बेटे और बेटी की आपस में शादी करने की इच्छा भी प्रकट करते हैं। एक दिन हरेताया का पिता उसे लड़की को देखने के लिए दूसरे जादूगर के गाँव भेजता है। वहाँ तरह-तरह से उसके वीरता और जादुई विद्यो की परीक्षा ली जाती है। सभी तरह की बाधाओं को पार कर वह आखिर में डूरछिड़ी से मिलने में कामयाब रहता है और कुछ दिन वहाँ रहकर उसके मन में प्रेम जगाकर चला आता है। बाद मे डूरछिड़ी की इच्छा से दोनों परिवारों की सहमति से उनकी शादी हो जाती है।

कुछ समय तक हंसी-खुशी पारिवारिक जीवन बिताने के पश्चात एक दिन हरेताया पास के एक गाँव में अपनी जादुई कला का प्रदर्शन करने जाता है। वहाँ वीरता और जादू के मुकाबले में वह वहाँ के स्थानीय लोगों से इक्कीस ही पड़ता है। यह वहाँ का मुखिया बर्दास्त नहीं कर पाता है और एक भोज समारोह का आयोजन करता है जिसमें अभिमंत्रित शराब हरेताया को पिला देता है। इस तरह छलपूर्वक उसकी हत्या कर दी जाती है। अपने पति की मृत्यु का समाचार पाकर डूरछिड़ी उसकी लाश लेने के लिए उस गाँव में जाती है और चीड़लुहफिर की सभी चालों को विफल करती हुई अपनी सावधानी, बुद्धिमत्ता और जादुई कला पर पति को पुनः जीवित कर अपने साथ अपने गाँव लेकर आती है। स्त्री बुद्धिमत्ता का एक और बेहतरीन उदाहरण है। कबीले का हर युवक चाहता था कि, काश थांगी से ही उसका विवाह हो जाए ! पर थांगी को तो बस गरीब और नेकदिल चला ही अच्छा लगता था। दोनों के विवाह की तारीख भी घोषित हो गई। अगली पूर्णिमा को उनका विवाह था। इसके लिए तैयारियां शुरू हो गई। पर तभी तियंगाई राज्य के दुष्ट और अत्याचारी राजा केंयुप ने अचानक उसके गाँव पे आक्रमण कर दिया। चला अपने साथ के युवकों को लेकर दुष्ट राजा केंयुप से भिड़ने पहुँच गया। उसके तीरों ने दुश्मन की बड़ी सेना के आगे एक दीवार सी खड़ी कर दी। राजा केंयुप ने चला को घेरने की बहुत कोशिश की, पर चला की वीरता के आगे उसकी एक न चली। चला के डर से उसे मैदान छोड़कर भागना पड़ा।

महीनों हो गए थे चला को उसी तरह भटकते हुए। थांगी की तलाश में भटकते-भटकते वह एक बीहड़ जंगल पेततांगी में आ गया था, जहां रात-दिन बस अंधकार ही रहता। पता नहीं वह कितने दिनों तक भूख-प्यास यूँ ही भटकता रहा। आखिर में वह दुर्बलता की हालत में एक जगह बेहोश होकर गिर गया। थोड़ी देर बाद होश आया तो फिर अंदर हिम्मत जुटा कर चलने लगा। तभी उसे एक बहुत सुरीला गीत सुनाई दिया, जिसमें से दर्द छलछला रहा था। कोई स्त्री बड़ी ही मीठी आवाज में गा रही थी।

'हम साथ थे, मिलकर गाते थे गाने,
जैसे नदियों की हँसी, फूलों की मुस्कानें।
मिलकर करते थे खेतों में काम,
पर आई ऐसी आंधी एक रोज,
उड़ा ले आई मुझे यहाँ ...
पता नहीं चला है कहाँ?
कभी तो मुझे वह करता होगा याद।
ओह, क्या वह मुझे करता होगा याद?''

(एक था चला, एक थी थांगी, पु. –पूर्वोत्तर राज्यों की भावपूर्ण लोककथाएं, डॉ. सुनीता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण – 2018)

चला ने सुना तो झट पहचान लिया कि थांगी की ही पुकार है। सुनते ही वह दौड़कर थांगी के पास पहुँच जाना चाहता था। पर उसे लगा, इस बुरी हालत में क्या थांगी मुझे पहचानेगी भी? तो क्यूँ न मैं भी एक गीत से ही अपने मन की व्यथा पिरो दूँ ? सोंचकर उसने जवाब में उसी समय एक वेदनापूर्ण गीत की रचना की और गाने लगा।

''आई आंधी तो सब कुछ उड़ा
खड़ा हुआ अचल परबत भी बहा
भूख-प्यास भूलकर चल दिया चला,
जहां खड़ी थांगी
अब चला भी वही है ... !
आँख खोलकर तो देखो, चला अब यहीं है!''

(एक था चला, एक थी थांगी, पु. –पूर्वोत्तर राज्यों की भावपूर्ण लोककथाएं, डॉ. सुनीता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण – 2018)

थांगी को आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। चला की आवाज पहचानने में भला वह कैसे भूल कर सकती थी ? जो आवाज हमेशा संगीत की तरह उसके कान में गूँजती रहती थी उसे वह कैसे भूल सकती थी? उसने बड़ी तेजी से चौकती निगाह डालकर चारों तरफ देखा। एक पेड़ के नीचे बैठा एक थका-हारा, दुर्बल युवक उसे दिखाई दिया।

जिसके हाँथ में तीर-कमान था। थांगी पहचान गई, यही चला है। और फिर जैसे ही उसे चला की एक झलक मिली, वह तेजी से दौड़ पड़ी। चला के पास आकार वह रुक गई और करुण आँखों से उसे देखती हुई बड़े ही दुखभरे स्वर में बोली, "अरे चला तुमने अपनी यह कैसी हालत बना ली है? कितनी मुश्किल से मैं तुम्हें पहचान पाई। तुम्हारे माथे पर बचपन से ही तीर से लगे घाव का निशान था, उसी से मैंने दूर से ही तुम्हें पहचान लिया कि तुम्हीं चला हो। और फिर तुम्हारा ये तीर-कमान तुम्हारे बचपन का साथी।" फिर थांगी ने अपनी दुख-दर्द भरी कहानी सुनानी शुरू की। दुश्मनों ने थांगी और उस जैसी और युवतियों को लेकर झूम की खेती मे लगा दिया। थांगी को काम से बिल्कुल थकान नहीं होती थी। पर अपनी माँ, गाँव की सहेलियों, चला और नागी अम्मा की उसे रह-रहकर बहुत याद आती थी। दोनों जब थोड़ा सचेत हुए तो वहाँ से बच निकलने की योजना बनाने लगे। इस समय शत्रु सैनिक खाना खाकर आराम कर रहे थे। गहरी नींद में उन्हे चला के आने का पता ही नहीं चला। चला और थांगी तेजी से अपने गाँव के ओर चल पड़े। चलते-चलते वे त्यांगों नदी के तट पर आ गए। बारिशों के दिन थे और त्यांगों नदी अपने पूरे उफान पर थी। गाँव के तालाब के पास जहां चला ने आखिरी साँस ली, वहाँ वसंत के आने पर दो पीले फूल खिल उठे। ऐसे वनफूल वहाँ पहले कभी नहीं खिले थे। लोग कहने लगे, शायद चला और थांगी फिर से आ गए है। इस बार फूल बनकर सबका मन रिझाने के लिए। मिजोरम में आज भी चला और थांगी के वे गीत अमर हैं। हवाओं में आज भी मानों वे गूँजते हैं। वसंत ऋतु में वहाँ पीले रेंग के इतने फूल खिलते हैं कि लोग कह उठते हैं "देखो, चला और थांगी अब जंगल-जंगल, गाँव-गाँव और घर-घर में आकार लोगों को खुशियां बाँट रहे हैं।"ऐसा नहीं है कि मिज़ो लोक कथाओं मे सिर्फ त्याग प्रेम से ही लबरेज हैं। जैसा कि मैंने पहले भी लिखा है कि मिजोरम पितृसत्तात्मक समाज है और स्त्रियों की स्थिति वहाँ भी दयनीय है। पुरुष अहंकार का सामना अक्सर वहाँ भी स्त्रियों को सहना पड़ता हैं। ऐसा मैं अपने निजी अनुभव से भी कह रही हूँ। 'भारत का आदिवासी स्वर' पुस्तक में रमणीका गुप्ता जी प्रो. एल. टी. लियाना खियांगते के हवाले पुरुष अहंकार का एक और दर्दनाक किस्सा अपनी पुस्तक में साझा किया है। किस्सा यूँ है कि पिहमुअकी मिजोरम की एक बेहतरीन कवयित्री थी। पिहमुआकी का उदाहरण देते हुए गुप्ता जी लिखती हैं कि, ""... किस्सा यूँ है कि पिहमुआकी हर अवसर के लिए सुंदर-सुंदर गीतों की रचना शुरू कर दी। मिज़ो समाज को लगा कि यदि ये स्त्री ही सारी कविताएं रच देगी तो उनके लिए क्या बचेगा? फलस्वरूप, उस कवयित्री को जिंदा दफ्ना दिया गया। उस कवयित्री की संवेनदंशीलता की पराकाष्ठा देखिए की दफनाते वक्त भी वह कविता मे ही बोली –""ऐ नवयुवकों जरा नफासत से दफनाओ।"

(भारत का आदिवासी स्वर; P184, रमणीका गुप्ता, अनन्य प्रकाशन (प्रथम संस्करण 2018))

खियांगते आगे उदाहरण देते हुए अंत में कहते हैं –"यह सच है कि औरतों पर आदिवासी कबीलों में भी जुर्म होते रहे हैं लेकिन औरतों ने केवल प्रतिरोध ही नहीं किया बल्कि अपनी बात पूरे तर्क के साथ रखी। इतना ही नहीं आदिवासी वीरांगनाओ ने वक्त आने पर समाज और देश को बचाने के लिए तीर भी संभालें और तलवार भी। खियांगते ने मिज़ो वीरांगनाओं में पीहमुअकी, रूपहोलियानी, दरपोड़ी, ललथेरी, लियानछायारी और सैकुती आदि नामों का उल्लेख भी किया है जो विदुषी भी थीं और वीरांगनाएं भी।"

(भारत का आदिवासी स्वर; रमणीका गुप्ता, अनन्य प्रकाशन (प्रथम संस्करण 2018))

यह सब दर्शाता है कि आदिवासी स्त्रियाँ एक तरफ बहुत ही कर्मठ , प्यार करने वाली प्रेमिका के रूप में दिखती है तो दूसरी तरफ अन्याय के प्रति सदियों से जूझती आ रही हैं और अपनी बुद्धिमत्ता का उपयोग कर अपने परिवार की रक्षा करती आ रही हैं। लोक-कथा के माध्यम से एक तरह से उन्होंने अपनी ही व्यथा-कथा को उकेर दिया है।वहीं दूसरी तरफ हिन्दी पट्टी के समाज पर हम ध्यान दें तो हम देखते हैं कि यह पुरुष प्रधान समाज है जहाँ स्त्रियों को ना तो निर्णय की आजादी है और ना ही संपत्ति पर मालिकाना अधिकार। स्त्रियों की स्थिति आज भी यहाँ दोयम दर्जे का ही माना जाता है जहाँ पुरुषों की स्थिति समाज में सर उठा कर चलने वाली है लेकिन लड़कियों को अभी भी इसी नसीहत के साथ जीना पड़ता है कि, कम बोलो, धीरे बोलो, पैर पटक-पटक कर मत चलो, चित मत लेटो, ज्यादा हंस-हंसकर मत बात करो, आदि आदि। शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाओं की स्थिति बहुत बढ़िया नहीं है। यहाँ के समाज में दामाद तो पढ़ा-लिखा होना जरूरी है लेकिन बेटियों के पढ़ाने पर कुछ खास जोर नहीं दिया जाता है। छठ के गीत में तो दामाद के रूप में ऐसे ही ज्ञानी ध्यानी की कामना की गई है:-

"रूनकी झुंकी बेटी मांगीला,
पढल-पंडित वा दामाद
गंगा मैया दर्शन दिहिन आज"

(साहित्य का नया लोक – अनामिका, P-72, नयी किताब प्रकाशन, 2019 प्र.स.)

ध्यातव्य हो कि यहाँ एक स्त्री अपनी पुत्री के लिए पढ़े-लिखे दामाद की तो कामना जरूर करती हुई नजर आती है लेकिन पुत्री के लिए ऐसी कोई मांग नहीं दिखती, उसके लिए सोना-चांदी जैसा द्रव्य ही काफी है। मिज़ो लोक कथा के संदर्भ में स्त्री बुद्धिमत्ता की बात मैंने की है। उन अर्थों में अगर देखें तो स्त्री की बुद्धि-विवेक के प्रति आस्था सिर्फ पूर्वोत्तर की लोक कथाओं में ही देखने को नहीं मिलता है बल्कि हिंदी प्रदेश की लोक कथाओं में भी स्त्री को पुरुष से अधिक बुद्धिमान माना गया है। विशेषकर तब, जबकि पुरुष किसी समस्या में फंसा हो या कोई ऐसी विषम परिस्थिति आन पड़ी हो जहाँ पुरुष अनिर्णय की स्थिति में फंस जाता हो वहाँ स्त्रियाँ उन्हे इस भँवर जाल से बाहर निकलती हैं। सामान्य परिस्थितियों में हम जानते हैं कि पुरुष अपने आप को अधिक चतुर और क्षमतावान मानता है और मानने की परंपरा हिंदी पट्टी में कुछ ज्यादा ही है लेकिन विशेष परिस्थितियों में स्त्री का बुद्धि-चातुर्य ही उसके काम आता है। बड़े-बड़े चतुर पुरुषों, यथा-बीरबल और तेनालीराम तक के संबंध में प्रचलित कथा किंवदंतीयों में उनको कठिन परिस्थितियों से उबारने वाली उनकी बेटी, बहन या पत्नी आदि होती हैं। जहाँ-जहाँ पुरुष ने स्त्री की उपेक्षा की है वहाँ-वहाँ उनको मुंह की खानी पड़ी है चाहे रावण, बाली, युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र जैसे मिथकीय प्रातः ही क्यों ना हो।

मिजोरम और हिन्दी भाषी समाज और भाषाई संस्कृति में काफी वैविध्य है। दोनों समाज में जहाँ स्त्री के बुद्धिमत्ता की अनेकों लोक कथाएं प्रचलित हैं वहीं उनको कामचोर, आलसी, झगरालू आदि अनेक नकारात्मक छवियों में भी दिखाया गया है। दोनों ही जगह की लोक कथाओं में स्त्री रूप की तो खूब प्रशंसा होती रही है लेकिन उसके साहस की बात बहुत ही कम की गई है। इसलिए भी लोककथाओं को पढ़ने – समझने की जरूरत है ताकि हम समाज के अंदर धँसी हुई उन परतों को भी देख सकें जिनपर सामान्यतया हमारी दृष्टि नहीं ठहरती है।

****

संदर्भ ग्रंथ एवं सूची :-

1 . भारत का आदिवासी स्वर : पृ . – 179 , रामणिका गुप्ता , अनन्य प्रकाशन , प्रथम संस्करण , 2018।

3 . Mizo Folklore _ I, Folktales of Mizoram: by Dr. Laltulangliana Khiangte, United Publishers – Guwahati-1992

4. एक था चला, एक थी थांगी, पृ. –पूर्वोत्तर राज्यों की भावपूर्ण लोककथाएं, P175 डॉ. सुनीता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण – 2018

5 . भारत का आदिवासी स्वर; P184, रमणिका गुप्ता, अनन्य प्रकाशन (प्रथम संस्करण 2018

6 . साहित्य का नया लोक : अनामिका , नयी किताब प्रकाशन , पृ . 72

आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्ष और स्त्री संघर्ष: महिला उपन्यासकारों के विशेष संदर्भ में

डॉ. मंजुला तोमर
शोध निदेशक, हिन्दी विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

सुशीला
शोध छात्रा,हिन्दी विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

शोध सार:-

वर्तमान में नारी अपनी व्यक्तित्व की खोज और अस्मिता की पहचान बनाने के प्रयास में लगी हुई है। व्यक्ति नारी को सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, कानूनी व वैक्तिक तौर पर कौन-कौन से समझौते करने पड़े, कौन-कौन सी उपलब्धियाँ हुई, कौन-कौन सी समस्याओं व अन्तर्विरोध उत्पन्न हुए। इस पर बीसवीं षताब्दी की अन्तिम दषक की महिला उपन्यास लेखिकाओं ने विभिन्न दृश्टि से दृश्टिपात किया है। नारी-विमर्ष केवल 'नारी-मुक्ति' की व्याख्या करना ही नहीं है। यह षब्द तो नारी मुक्ति या नारी चेतना, नारी स्वातन्त्र्य के साथ-साथ उसकी अस्मिता, स्वाभिमान को भी अपने में निहित कर लेता है। नारी का अपने षरीर सैक्स, जीवन जीने के तरीके के बारे में अपने को कर बनाने का प्रयास, आत्मनिर्णय की ताकत हांसिल करना आदि नारी-विमर्ष के अन्तर्गत आता है।

शब्द कुंजी:- सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, अन्तर्विरोध, स्वातन्त्र्य, आत्मनिर्णय.

प्रस्तावना :- आदिकाल से ही स्त्री मनुश्यता के इतिहास की जननी मानी गई है। राश्ट्रों के उत्थान और पतन, धर्मों का अभ्युदय और पराभव, मानव का हास और रूदन उसके आंचल से बंधा रहा है। उसकी एक मुस्कान ने यदि चराचर को मुग्ध किया है तो उसकी बंकिम दृश्टि ने रौद्ररूप में सृश्टि के प्रलय की भूमिका निभायी है। पुरूश-स्त्री को षक्ति समझकर पूर्ण हो सकता है। नारी की सफलता पुरूश को बांधने में है। वह पुरूश को पूर्णतय प्रदान करती है।

समकालीन सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियाँ साहित्य की सभी विधाओं में दृष्टिगत होती हैं। स्त्री-विमर्श उन्हीं विसंगतियों की देन है। विगत दशकों में 'स्त्री विमर्श' और 'दलित विमर्श' ने साहित्यकारों, पाठकों, आलोचकों और समाजशास्त्रियों का ध्यान सबसे अधिक अपनी तरफ आकर्षित किया है। स्त्री-विमर्श के विषय में स्त्री लेखिका व पुरुष लेखक दोनों ने अपनी-अपनी परिभाषाएँ दी हैं, उसमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार है -

''लिंग के आधार पर अनुभूति को अलगाने वाला विवेचन ही स्त्री-विमर्श है। स्त्रियों की दशा भी दलितों जैसी दयनीय है। यही कारण है कि दलित विमर्श के समानान्तर स्त्री विमर्श भी आन्दोलन की राह पर कदम से कदम मिलाकर बढ़ता रहा है।'' ''स्त्री विमर्श में नारी मुक्ति की समस्या को उठाया गया है। नारी-शोषण की समस्या एकांगी नहीं है, वह युगीन शोषण तन्त्रों, सामाजिक, राजनीतिक ढाँचों, आर्थिक परिस्थितियों और उन सबकी उपज सांस्कृतिक, धार्मिक मूल्यों और नैतिक अवधारणाओं का एक अंग है।''

''स्त्री जीवन और शरीर पर स्त्री के अधिकारों का ही दावा होना चाहिए। पुरुष समाज के विधान में परवेश होकर एक गुलाम और शोषित का वह जीवन धर्म क्यों स्वीकार करे? स्त्री विमर्श में इसी विचारधारा का चित्रण होता है।''

''अति विलास, अति वैभव, अति सफलता और उसके लिए चुकाए जाते मूल्य, किये जाते घिनौने समझौते अन्ततः नारी को कितना खोखला, कितना कंगाल, कितना दयनीय बना देते हैं, उसका मूर्तिमत्त उदाहरण है, स्त्री विमर्श।''

''स्त्री पददलित है। स्त्री की कोई जाति नहीं होती, उसका कोई धर्म नहीं होता। वह सिर्फ इस्तेमाल की वस्तु है। चूँकि धर्म में उसके इस्तेमाल का प्रावधान है। इसलिए मैं नास्तिक हूँ, धर्म के खिलाफ हूँ। धर्म से पुरुष तन्त्र मजबूत होता है। मैं पुरुषों के खिलाफ नहीं हूँ किन्तु धर्म-अनुमोदित पुरुष-तन्त्र के खिलाफ हूँ।'' नारी मुक्ति की अवधारणा के इर्द-गिर्द रचा गया साहित्य स्त्री-विमर्श माना गया है। स्त्री पितृसत्ता निर्मित मूल्यों, रिवाजों एवं परम्पराओं का अनुसरण करते-करते नष्ट हो जाती है। हमारे रीति-रिवाज स्त्रियों को ही क्यों अनुशासित करते हैं? क्या वे पितृक निर्मित नहीं हैं? आज तक सामाजिक, पारिवारिक मूल्यों के नाम पर जो इतनी स्याही उड़ेली गई है। वह क्या पितृसत्तात्मक नहीं है ? स्त्री विमर्श ने ही ऐसे जबर्दस्त अन्तर्विरोधों को सामने रखकर, प्रश्नचिह्न लगाये हैं, उन पर अपनी तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। उनके विरोध में डटकर खड़ी हुई हैं।

साहित्य पुनरावलोकन :- सन् 1867 में बम्बई में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना की। ''आर्य समाज ने एक आचार संहिता बनाई थी, इसमें जाति भेद और मनुष्य-मनुष्य या स्त्री-पुरूष में असमानता के लिये कोई स्थान नहीं था।''45 आर्य समाज ने बाल-विवाह का बहिष्कार और विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया। आर्य समाज द्वारा अनेक कन्या पाठशालाएँ भी खोली गई। इसी प्रकार 'थियाँसाफिकल सोसाइटी' की स्थापना सन् 1875 में मदाम बलावस्तु और ओल्कार्ट द्वारा न्यूयार्क में हुई थी। इस संस्था द्वारा भी कई शिक्षण संस्थायें खोली गई। इसी से सम्बद्ध श्रीमती एनी बेसेंट सन् 1893 में भारत आयी और सोसाइटी के विकास में तन-मन से जुट गई।

भारतेन्दु जी द्वारा सम्पादित 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका नामक पत्रिका में 1875ई. में प्रकाशित एक कहानी के लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग किया गया हिन्दी प्रदीप नामक मासिक पत्रिका के 1879 ई. के एक अंग से बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'रहस्य कथा उपन्यास' छपना प्रारंभ हुआ। डॉ.गोपाल राम गहरी ने देवरानी जेठानी की कहानी को हिन्दी का पहला उपन्यास माना है जो 1870 ई. में छपी थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवास दास कृत परीक्षा गुरू 1882 ई. को हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया है। इन सभी कृतियों में मध्य वर्ग के जीवन के केन्द्र बनाया गया है। श्रद्धाराम फुल्लोरी कृत ''भाग्यवती' (1877) में नारी की पारिवारिक स्थिति, बाल-विवाह, अशिक्षा एवं शोषण का वर्णन किया गया है। लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरू' (1882) में आदर्श एवं त्यागमयी नारी का चित्रण किया गया है। ठाकुर जगमोहनसिंह के उपन्यास 'श्यामा स्वप्न'(1885) में प्रेम विवाह एवं नारी स्वतंत्रता, किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'लवंगलता' एवं 'चपला' नारी प्रेम पर केन्द्रित हैं। ब्रजनन्द राय सहाय कृत 'विस्मृत सम्राट' (1910) की नूरजहां जितनी सुन्दर थी उतनी राजनीति में निपुर्ण एवं कूटनीति की पंडिता थी। पं0 लज्जाराम मेहता के 'स्वतंत्र रमा ओर परतन्त्र लक्ष्मी' उपन्यास में भारतीय नारी के पातिव्रत्य की महत्ता सिद्ध की गई है। उनके सौ अजान एक सुजान' एवं 'आदर्श दम्पति' उपदेशपरक एवं सुधारवादी उपन्यास है। अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत 'पेरमकांता' (1814), 'राधारानी' (1887) 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899) एवं 'अधखिला फूल' (1907) में भारतीय नारी के स्वरूप को चित्रित किया गया है। देवकीनन्दन खंत्री के उपन्यास चन्द्रकांता (1892) में चन्द्रकांता साहसी, आत्मविश्वासी, कर्मशीला के रूप में मर्यादित क्षत्राणी का चित्रण किया गया है।

शोध का महत्व एवं आवश्यकता:

सन् 1970 से 1980 तक अधिकतर नारीवादी सिद्धान्तों की प्रमुख समस्या थी कि स्त्री को पुरुश अधीनता से मुक्ति मिले और इसके लिए बहुत से नारीवादियों ने माक्र्स को एक मसीहा के रुप में पाया। यह वही दौर था जब जातिवादी वामपंथी सक्रिय थे। प्रभा खेतान के अनुसार, ''पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ जिनमें से अधिकतर स्कूल कॉलेजों में टीचर और प्रोफेसर थीं तथा उन्हें माक्र्सवाद से पूरी सहानुभूति थी। उनके अनुसार माक्र्सवाद सामाजिक संरचना में निहित दलन का विष्लेशण बड़े व्यवस्थित तरीके से करता है। किन्तु नारीवाद माक्र्सवाद का पर्याय नहीं बना और न ही उसने माक्र्सवाद की एक षाखा के रूप में स्थापित होना चाहा।'' नारी-विमर्ष के इस धरातल पर यह सवाल भी उठता है कि नारी की मुक्ति पुरूश सकारात्मक समाज से है या अपने अहं और स्वतन्त्र व्यक्तित्व को ही वह (नारी) नारी-विमर्ष का नाम देती है। अनामिका के उपन्यास 'अवान्तर कथा' में प्रेम का वही त्रिकोण है जिसे अक्सर मृदुला गर्ग चित्रित करती है। 'अवान्तर कथा' की नन्ना अपने पति दीनानाथ से स्नेह तो करती है पर प्रेम नहीं और प्रोफेसर सुधाकर के साथ ही जीवन को सार्थक, सरस और सोद्देष्य समझती है, यद्यपि अपने पति से उसे कोई षिकायत नहीं है। 'नन्ना' के लिए यह कोई नई बात नहीं थी क्योंकि नन्ना का दादी ने दो-दो मर्द बड़े 'इक्विलिबियम' से पाले थे'' और इसिलिए वह कहती भी है ''एक खास तरह का सह-अस्तित्व भी कोई असम्भव स्थिति नहीं, बस एक अलग तरह का सच है- इस सदी का सच। दो या तीन बच्चे हो सकते हैं तो दो या तीन प्रियजन क्यों नहीं हो सकते।'' इसका अर्थ है कि लेखिका अप्रत्यक्ष रूप से पुरूशों के इस चरित्र को भी स्वीकारती है, जहाँ वह अक्सर दो महिलाओं (पत्नी/उप-पत्नी) से जुड़ा रहता है

और जिसकी समाप्ति अक्सर इस कहावत से होती है- ''धोबी का .....'' यह पथ पुरूश स्त्री के परस्पर समर्पण को नहीं अपितु स्त्री द्वारा पुरूश के तिरस्कार की ओर ले जाता है। वास्तव में, ''नारी आन्दोलन पितृसतात्मक समाज में पल रहे स्त्री सम्बन्धी पूर्वाग्रहों से पुरूशों की क्रमिक मुक्ति को असम्भव नहीं मानता। दोशी पुरूश नहीं, वह पितृसतात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरूशों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियाँ उनसे होनहार हैं, उनके भोग के साधन मात्र। आन्दोलन की सार्थकता इसमें है कि वहाँ-वहाँ अँगुली रखें, जहाँ-जहाँ मानदण्ड दोहरे हैं। विरूपरण, प्रक्षेपण, विलोपन (डिस्टार्षन, प्रोजेक्षन, एबोलिषन) के तिहरे शड्यन्त्र स्त्री के खिलाफ लगातार कारगर हैं। जिनमें निस्तार मिलना ही चाहिए और सारा संघर्श इसी बात का है।'' इसी प्रकार 'उसके हिस्से की धूप' (मृदुला गर्ग) की ममता और 'उम्र एक गलियारे की' (नासिरा षर्मा) की सुनन्दा पर-पुरूश की ओर झुकती है। 'पर-पुरूश से बेहिचक और बिना किसी पाप-बोध से ग्रस्त हुए अस्थाई और स्थायी यौन सम्बन्धों की बहुलता को देखकर इस नतीजे पर पहुँचना कठिन नहीं है कि नगर जीवन में नैतिकता के पुराने प्रतिमान ध्वस्त हो रहे हैं। पत्नीव्रत/पतिव्रत और आत्मिक प्रेम जैसे मूल्यों को हिलाकर सैक्स का तुफान नगर और महानगरीय जीवन पर छाा जाना चाहता है।''इसके विपरीत मैत्रेयी पुश्पा ने प्रेमचन्द वाला रास्ता चुना है-जहाँ स्त्री को पूर्ण सम्मान और स्वतन्त्रता मिलती है। प्रेमचन्द के गोदान का पात्र गोबर विधवा झुनिया से सम्बन्ध बना लेता है, बिना विवाह के वह गर्भवती हो जाती है। इस स्थिति में धनिया और होरी उसे बहु के रूप में पूर्णतः स्वीकार कर लेते हैं, बिना समाज की परवाह किये।

शोध का उद्देश्य: -प्रस्तुत षोध का अध्ययन निम्नलिखित उद्देष्यों पर आधारित है:-

- हिन्दी महिला उपन्यासकार एवं स्त्री विमर्श की अवधारणा का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में विवाह संस्था एवं दाम्पत्य जीवन तथा आधुनिकता के बोध की वास्तविकताओं का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में आधुनीक एवं आत्मनिर्भर स्त्री का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री एवं भारतीय परम्पराओं का बदलते स्वरूप का अध्ययन करना
- हिन्दी महिला उपन्यासों में पर पुरूश सम्बन्धों का सामाजिक, पारिवारिक व मानसिक जीवन पर प्रभावों का अध्ययन करना

शोध की परिकल्पना :-

- हिन्दी महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में स्त्री विमर्श की अवधारणा का उल्लेख मिलता है।
- हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री एवं भारतीय परम्पराओं का बदलते स्वरूप का विशेष महत्व है।

आंकड़ों का स्त्रोत (विधितंत्र) :-इस अध्ययन क्षेत्र, षोध कार्य के लिए विभिन्न जानकारी एवं आंकड़े द्वितीयक स्तर पर एकत्रित किये गये हैं। प्रस्तुत अध्ययन में अधिकांषतः द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है जिसमें विभिन्न समकालिन हिन्दी नारी साहित्य की सहायता ली गई हैं।

निष्कर्ष :- पुरूष प्रधान समाज में नारी आज भी दोयम दर्जे की प्राणी बनकर रह गई है। एक ओर तो हमारा समाज नारी को समान अधिकार देने की वकालत करता है तो दूसरी ओर उसके अधिकारों का उपयोग भी वह अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करता है। समाज यदि नैतिकता की बात करता हैं तो उसका अभिप्राय केवल नारी की नैतिकता से होता है। पुरूश की नैतिकता से नहीं। नैतिकता के ये दोहरे मानदण्ड विवाहित पुरूश को छूट देते हैं पत्नी के अतिरिक्त नारी से सम्बन्ध बनाने की।

******

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची:-

1. उषा प्रियंवदा अन्तर्वंषी वाणी प्रकाषन, दिल्ली 2000
2. कुसुम अंसल रेखाकृति अभिव्यंजना प्रकाषन, दिल्ली, 2000
3. कृश्णा सोबती दिलोदानिश राजकमल प्रकाषन, दिल्ली, 1993
4. कृश्णा सोबती समय सरगम राजकमल प्रकाषन, दिल्ली 2000
5. क्रान्ति त्रिवेदी चिरकल्याणी पांडुलिपि प्रकाषन, दिल्ली, 1994

बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के अनमोल वचन

••• मंदिर जाने वाले लोगों की लंबी कतारें, जिस दिन पुस्तकालय की ओर बढ़ेंगी। उस दिन मेरे इस देश को महाशक्ति बनने से कोई रोक नही सकता है।

••• इस पूरी दुनिया में गरीब वही है, जो शिक्षित नहीं है। इसलिए आधी रोटी खा लेना, लेकिन अपने बच्चों को जरूर पढ़ाना।

••• ज्ञानी लोग किताबों की पूजा करते हैं, जबकि अज्ञानी लोग पत्थरों की पूजा करते हैं।

••• जिसे अपने दुखों से मुक्ति चाहिए, उसे लड़ना होगा। और जिससे लड़ना है उसे उससे पहले अच्छे से पढ़ना होगा। क्योंकि ज्ञान के बिना लड़ने गए तो आपकी हार निश्चित है।

••• समाजवाद के बिना दलित-मेहनती इंसानों की आर्थिक मुक्ति संभव नहीं।

••• कुछ लोग सोचते हैं कि धर्म समाज के लिए आवश्यक नहीं है। मैं यह दृष्टिकोण नहीं रखता। मैं धर्म की नींव को समाज के जीवन और प्रथाओं के लिए आवश्यक मानता हूं।

••• शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।

••• मैं एक समुदाय की प्रगति को उस प्रगति की डिग्री से मापता हूं जो महिलाओं ने हासिल की है।

••• यदि हम आधुनिक विकसित भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों को एक होना पड़ेगा।

••• समाज को श्रेणीविहीन और वर्णविहीन करना होगा क्योंकि श्रेणी ने इंसान को दरिद्र और वर्ण ने इंसान को दलित बना दिया। जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे लोग दरिद्र माने गए और जो लोग कुछ भी नहीं है वे दलित समझे जाते हैं।

••• संविधान केवल वकीलों का दस्तावेज नहीं है बल्कि यह जीवन जीने का एक माध्यम है।

••• एक इतिहासकार सटीक, ईमानदार और निष्पक्ष होना चाहिए।

••• जो झुक सकता है वो झुका भी सकता है।

••• संवैधानिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं हैं जब तक आप सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर लेते।

••• अच्छा दिखने के लिए नहीं, बल्कि अच्छा बनने के लिए जिओ।

••• जीवन लंबा होने के बजाय महान होना चाहिए।

••• क़ानून और व्यवस्था, राजनीतिक शरीर की दवा है। जब राजनीतिक शरीर बीमार पड़े तो दवा ज़रूर दी जानी चाहिए।

••• देश के विकास के लिए नौजवानों को आगे आना चाहियें।

••• जो धर्म जन्म से एक को श्रेष्ठ और दूसरे को नीच बताये वह धर्म नहीं, गुलाम बनाए रखने का षड़यंत्र है।

••• यदि हम एक संयुक्त एकीकृत आधुनिक भारत चाहते हैं, तो सभी धर्मों के धर्मग्रंथों की संप्रभुता का अंत होना चाहिए।

••• धर्म मनुष्य के लिए बना है न कि मनुष्य धर्म के लिए।

••• मैं राजनीतिक सुख भोगने नहीं बल्कि नीचे दबे हुए अपने भाईओं को अधिकार दिलाने आया हूँ।

••• हो सकता है कि समानता एक कल्पना हो, पर विकास के लिए यह ज़रूरी है।

••• मेरी प्रशंसा और जय-जय कार करने से अच्छा है, मेरे दिखाये गए मार्ग पर चलो।

••• भाग्य से ज्यादा अपने आप पर विश्वास करो। भाग्य में विश्वास रखने के बजाय शक्ति और कर्म में विश्वास रखना चाहिए।

••• आप स्वाद को बदल सकते हैं परन्तु जहर को अमृत में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

••• एक सुरक्षित सेना एक सुरक्षित सीमा से बेहतर है।

••• धर्म पर आधारित मूल विचार व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिए एक वातावरण बनाना है।

••• शिक्षा वो शेरनी है। जो इसका दूध पिएगा वो दहाड़ेगा।

****

'दक्षिणी कामरूप की गाथा'उपन्यास में पुरुषतांत्रिक समाज व्यवस्था का वर्णन

किरण कलिता
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
असम विश्वविद्यालय, सिलचर, असम मो. 9101722532

प्रस्तावना :-पुरुषतांत्रिक समाज में सदियों से पुरुष सामंती प्रथा का ही बोलबाला रहा है। सामंती युग तक समाज में नारी को भोग-विलास की सामग्री के रूप में साहित्य में चित्रित किया गया। इसका प्रमाण हमे हिंदी साहित्य में मुख्यतः रीतिकाल में देखने को मिलता है। रीतिकाल के काव्य में स्त्री को मुख्य स्थान दिया गया है। रीतिकालीन दरबारी कवि होने के कारण वह सम्राट को खुश करने के लिए प्रेम की श्रृंगारमूलक रचना करते थे, जिसमें स्त्री के शरीर और रूप को माध्यम बनाया जाता था। अधिकांश मुगल सम्राटों का स्त्रियों के प्रति कोप दृष्टि होने के कारण समाज में स्त्री को सुरक्षित रखने के लिए ही पर्दा प्रथा, सती प्रथा तथा बाल विवाह जैसी प्रथाओं का प्रचलन हो गया। मूलतः सामंती युग में नारी की स्थिति दयनीय रही थी। क्रमशः यह व्यवस्था भारत में कायम होती चली गयी ।आधुनिक काल तक आते-आते पितृसत्तात्मकता की जकड़ ऊपर से ढीली दिखने लगी पर भीतर से वही परंपरावादी स्वर ही गूंजता रहा। भारतीय समाज पुरुष वर्चस्व समाज है जिसका सीधा अर्थ है कि जिस समाज में हम रहते हैं, उसकी व्यवस्था पुरुषों द्वारा निर्मित की गई है तथा इसमें पुरुषों को प्रधानता मिलती है, अन्य सदस्य उनके अधीन रहते हैं और उनकी आज्ञा के बिना कुछ भी करने में असमर्थ रहते है।

पितृसत्तात्मक समाज में अन्य दिशाओं की तरह ही साहित्य भी पुरुषसत्तात्मक मूल्यों द्वारा परिचालित होती है। यहां तक कि भारतीय समाज में, साहित्य में लेखिकाओं ने भी बहुत हद तक अपने जीवन को पुरुष सत्ता के अधीन सामाजिक मूल्यबोध से खुद को देखा है। लेकिन लेखिकाओं द्वारा रचित विभिन्न रचनाओं में उनके नारी समाज का वर्णन पुरुष लेखकों के लेखन से अधिक मुक्ति की कामना तथा नारीवादिता का स्वतंत्र स्वर लेकर साहित्य में नारी मुक्ति आंदोलन के रूप में विकसित हुआ है। असमीया साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों के कई स्त्री पात्र पुरुषतांत्रिक समाज में रहें है। परंपरा की जड़ो में जकड़े ये चरित्र जानते हैं कि वर्षों से चली आ रही पितृसत्तात्मक समाज के बंधन कितने मजबूत हैं, जिनसे स्त्री चाहकर भी मुक्त नहीं हो सकता। इंदिरा गोस्वामी द्वारा रचित 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' (दताल हातीर उँये खोवा हाओदा) उपन्यास में भी पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के वास्तविक जीवन पर आलोकपात किया गया है।

बीज शब्द:- समाज, विधवा, पौराणिक विचार, रीति-रिवाज, नई सोच, संघर्ष, मानवता, आत्महत्या, प्रतिवाद, बदलाव।

'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में वर्णित पुरुषतांत्रिक व्यवस्था:-मामनी रयसम गोस्वामी (14 नवंबर 1942 - 29 नवंबर 2011) जो साहित्य की दुनिया में इंदिरा गोस्वामी और असमीया समाज में बाइदेउ यानी बड़ी दीदी कही जाती है, हिंदी के पाठकों के लिए एक परिचित नाम है। दक्षिणी कामरूप की गाथा (दताल हातीर उँये खोवा हाओदा) में ब्राह्मण विधवाओं के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इंदिरा गोस्वामी आधुनिक, मननशील, यथार्थवादी उपन्यास रचना में अद्वितीय हैं। वह अपने आसपास के समाज में दृष्टिगत होने वाली विभिन्न समस्याओं को बिल्कुल उसी रूप में अपने उपन्यासों में उतार देती है, जिस तरह वह समाज में अपना जीवन जी रहे है। विषयवस्तु की विचित्रता और व्यापकता उनके रचनाओं की अन्यतम विशेषता है। विधवा जीवन पर आधारित उनका एक प्रमुख उपन्यास है 'दक्षिणी कामरूप की गाथा'। मूल रचना असमीया में 'दताल हातीर उँये खोवा हाओदा' शीर्षक से सन् 1988 में प्रकाशित हुआ था। श्रवण कुमार जी ने असमीया से 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' नाम से हिंदी में अनुवाद किया है। यह उपन्यास असम के कामरूप जिले के एक दूर-दराज कोने में बसे एक छोटे से गांव के सत्र(वैष्णव मठ) से संबंधित है। दरअसल, यह एक गोसाई परिवार की गाथा है और इसकी समयावधि 19वीं शताब्दी के आरंभिक काल (1820) से शुरू होकर भारत के ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता पाने तक (1947- 48), यानी सवा सौ वर्ष तक फैली हुई है।इस उपन्यास में सत्र के अधिकारों (सत्र प्रमुख) के विलासपूर्ण जीवन का वर्णन मिलता है, जो धीरे-धीरे कम होता जाता है। यह उपन्यास इन अधिकारों के आखिरी दिनों की कहानी कहता है। इसका मुख्य पात्र है 'इंद्रनाथ' जो एक आदर्शवादी युवा गोसाई हैं, जिन्हें अपने पिता की के मृत्यु पश्चात सत्र के अधिकार की गद्दी संभालनी है, अपनी ही रैयत के हाथों मारा जाता है। इस उपन्यास में ब्राह्मण समाज के रीति- रिवाजों को विस्तृत रूप से स्पष्ट किया गया है। विधवा जीवन पर आधारित यह उपन्यास ब्राह्मण समाज के प्रचलित रीति-रिवाजों पर वज्रपात है। इस उपन्यास में लेखिका ने मुख्य रूप से इंद्रनाथ की बहन 'गिरिबाला' पर ध्यान केंद्रित किया है। कथा की मुख्य पात्र विधवा गिरिबाला पुरुषतांत्रिक समाज के द्वारा थोपे गए रीति-रिवाजों को ग्रहण नहीं कर पाती है। पुरुषतांत्रिक समाज की ऐसी प्रचलित नैतिकता ने उसकी तरह, अन्य विधवाओं के जीवन से भी आशा-आकांक्षा, कामना-वासना को अवदमित कर दिया है। गिरिबाला भीतर ही भीतर कुंठित हो जाती है। उसे इस समाज द्वारा निर्धारित किए गए निर्मम नियम मंजूर नहीं है। उसका हर चाल-चलन पुरुषतांत्रिक समाज द्वारा नियंत्रित है। जिस दायरे से वह बाहर नहीं निकल सकती। उस समाज के नियमों के मुताबिक ब्राह्मण विधवा स्त्री मांस-मछली, लहसुन-प्याज खाना तो दूर की बात इनकी गंध तक लेना भी पाप है। पर बूढ़ा गोसाई (इंद्रनाथ के दादा) के वार्षिक श्राद्ध में गिरिबाला असंभव कार्य कर बैठती है। श्राद्ध में यजमानों के लिए बनाया गया मांस का व्यंजन वह चुपके से खाने लगती है। उपन्यास में इसका उल्लेख इस प्रकार है--"गिरिबाला ने थोड़ा मांस और उसका शोरबा एक बार फिर लिया, काफी मात्रा में। उसके मन में अजीबोगरीब विचार आ रहे थे। लेकिन उसने खाना बंद नहीं किया। उसने बरतन को लगभग खाली ही कर डाला। पहली बार किसी गोसाईं की बेटी ने उसी सत्र की एक हवेली में इस तरह का कुकर्म किया था।"[1] गिरिबाला को इस प्रकार विभोर होकर मांस का व्यंजन खाती देखकर उसकी विधवा बुआ दुर्गा बेहोश होकर गिर पड़ती है। इस प्रकार दुर्गा का बेहोश होकर गिर पड़ना गिरिबाला द्वारा किए गए घोर अपराध को दर्शाता है। काफी देर तक शुद्धिकरण और विधि-विधान सम्मत प्रायश्चित का वह नाटक चलता रहा। उसके बाद परिवार के सदस्यों द्वारा दी जाने वाली नसीहतों, कठोर चेतावनियों और नैतिक प्रवचनों का सिलसिला भी चलता रहा ताकि गिरिबाला ऐसा घिनौना पाप फिर कभी न करे। देखा जाता है कि दुर्गा जैसी स्त्रियां खुद विधवा होकर भी किसी अन्य विधवा की व्यथा को, उसकी इच्छाओं को नहीं समझ पाती है। वे सिर्फ समाज द्वारा निर्धारित रूढ़ पारंपरिक सीमा तक ही रह जाती है और दूसरे को भी उससे बाहर निकलने नहीं देती है। इस प्रकार की मानसिकता के पीछे भी पुरुषतांत्रिक समाज व्यवस्था का असर है। दूसरी तरफ गिरिबाला अमेरिकन ईसाई युवक मार्क साहब के प्रति आकृष्ट होकर खुद को उनके समक्ष समर्पित करती है। मार्क साहब असम में आकर सत्र संस्कृति पर शोध कर रहे थे तथा सत्र का इतिहास लिख रहे थे साथ ही उस समय के असम में व्याधि रूप में फैल चुकी अफीम की बुराइयों से लोगों को सचेत कर रहे थे। घनघोर बारिश में एक रात गिरिबाला सन्यासी मार्क के कोठरी में पहुंचती है और प्रायः नग्न होकर वह मार्क के सामने कहती है--"मैं किसी तरह भी उसे अपने से बांध न पायी। न शरीर से न मन से। लेकिन उस औरत का मांस। क्या उसमें ऐसी शक्ति थी कि उसके सामने गुण और सदव्यवहार, जीवन की सभी मूल्यवान वस्तुएं, सड़क की मिट्टी की तरह बेकार और बेमानी हो गयीं! मन का समूचा धन उस मांस के कारण मिट्टी की तरह बर्बाद हो गया। क्या कोई इस पर विश्वास कर सकता है? ओह ! मेरे प्राणप्यारे साहिब, मेरा स्पर्श करो और एक बार... केवल एक बार उसे अनुभव करो। "[2]पुरुषतांत्रिक समाज द्वारा बनाये गये नियमों के तहत चलते-चलते बर्दाश्त की सीमा पार कर आज वह लज्जा और शील के सभी बंधन तोड़ रही है। उस क्रिश्चियन युवक के सामने आकर विधवा गिरिबाला यह भी कहती है कि उनके ससुर ने दो आदमी भेजे हैं उन्हें वापस मृत स्वामी के घर ले जाने के लिए। गाड़ी पर सजावती कपड़े की छाजन लगाने का

काम लगभग पूरा हो चुका है। लेकिन वह नहीं जाना चाहती है। वह उस कब्रिस्तान पर वापस नहीं जाना चाहती। उससे अच्छा वह मरना पसंद करेगी। इसीलिए वह लज्जा-मान सब छोड़कर उस मार्क साहब के सामने अपने आप को समर्पित करती है। लेकिन मार्क साहब जो एक सन्यासी था, वह कभी उस स्थिति की कामना नहीं कर रहे थे। मार्क उस समय न गिरिबाला की ओर बढ़ पाया था न ही वह उसे अपने बाजुओं में उठा पाया था। वे अधिकार महाप्रभु की उस अभागी बेटी को उठाने से इंकार कर रहे थे। मार्क वही का वही खड़ा था, जैसे कि वह कोई लोहे का ढांचा हो जो न आगे बढ़ सके और न पीछे हट सके। उसी समय तीन या चार गठीले बदन के व्यक्ति और साथ में पुरुषोत्तम भगवती पुजारी यम की तरह प्रवेश करते हैं। गिरिबाला की अवस्था को देखकर वे लोग झूठे अनुमान करके मार्क को म्लेच्छ कहकर बांधने लगे और बाहर घसीटकर ले गए। सत्र गोसाई के परिवार में यह घटना पहली बार घटी थी। अब आयी गिरिबाला को प्रायश्चित करने की घड़ी। बांस और लकड़ियों से बनाए गए एक झोपड़ी में प्रवेश कराकर पुजारी मंत्र पढ़ने लगे। शुद्धि वाला पर्व समाप्त होने पर पुजारी गिरिबाला को झोपड़ी से बाहर आने को कह रहे थे। क्योंकि गिरिबाला के आते ही उस अपवित्र झोपड़ी को आग लगा दिया जायेगा। गिरिबाला ने कहा कि आग लगा दो मैं निकल जाऊंगी। पास खड़ा युवक पहले से ही तैयार था, उसने जल्दी से दियासलाई से आग लगा दी। वह भीतर है, जल्दी करो, छत जल रही है, उसे बचाओ आदि कहकर पुजारी चिल्लाने लगे पागलों की तरह। पर गिरिबाला अब ऊंची-ऊंची उठती लपटों में गायब हो चुकी थी। वायुमंडल में और आकाश में केवल जल रहे मांस की गंध थी, केवल मानव मांस की गंध। उसी शुद्धिकरण रूपी कर्मकाण्ड के दौरान गिरिबाला को लगा कि इससे तो मृत्यु ही बेहतर होगी।पुरुष सत्तात्मक समाज का सर्व सुलभ आखेट हमेशा 'स्त्री' रही है। पुरुषतांत्रिक समाज के इस प्रकार का व्यवहार यहां इस उपन्यास में केवल गिरिबाला के साथ नहीं बल्कि उसकी बुआ दुर्गा और चाची छोटी गोसाइन के साथ भी होता दिखाई देता हैं। उपन्यास की कथावस्तु में ही विधवा दुर्गा का वर्णन इस प्रकार हुआ है-"वह पहले की तरह ही घुटनों पर अपना माथा टेके निष्क्रिय हो रही थी। इस तरह बैठे रहना उसकी आदत हो गयी थी। चिंताओं से घिरी, दुनिया-जहान से परे, ऐसे ही बैठी रहती, बिना एक पल भी सोये।... दुर्गा फिर अपने ख्यालों में खो जाती। उसका मन, दरअसल श्मशान भूमी बन गया था। उसे हर रोज कोई न कोई ऐसा कारण ढूंढना पड़ता जिससे वह अपने आपको कायम रख सके। यह काम बड़ा दुस्साध्य था।"[3]

इस उपन्यास में और एक पीड़ित विधवा चरित्र है छोटी गोसाइन, जो गिरिबाला और दुर्गा की ही तरह अपने पति की मृत्यु उपरांत बंदी जैसी जीवन व्यतीत कर रही थी। अपनी मृत्यु से पहले उसके पति गोसाई ने उससे कहा था- "देखो, डरना नहीं। देश को आजादी मिलने के साथ ही हमारे सभी लोग, बूढ़े और जवान, अपने अधिकारों के प्रति सजग हो जायेंगे। यहां भी, देश के दूर-दराज हिस्से में हमारे लोगों में काफी सजगता आयेगी। पर मेरे चले जाने के बाद यदि तुम अकेली भी हुई हमारे अनुयायी तुम्हारे प्रति और अधिक सरोकार दिखाने लगेंगे और तुम्हें वही सम्मान देंगे और वही भक्तिभाव दिखायेंगे...।"[4]पर वास्तव में हुआ बिल्कुल वही जो सदियों से पुरुष सत्तात्मक समाज चाहता था। उपन्यास का मूल पात्र इंद्रनाथ 'ईलीमन' नाम की एक लड़की से प्रेम करता हैं। उनका प्रेम बिल्कुल आंतरिक प्रेम है। उसने उस लड़की को अभी तक स्पर्श नहीं किया है। पर पहले से बनाये गये नियमों के तहत वह उस फूल जैसी कोमल निष्पाप लड़की को ब्राह्मण लड़की होने के नाते गोसाई परिवार की बहु नहीं बना सकता। नियम ऐसा है कि गोसाई परिवार के लिए गोसाई समाज की लड़की ही होनी होगी। गिरिबाला हो या दुर्गा या छोटी गोसाइन इन सब के प्रति इंद्रनाथ नए विचार रखने वाले युवक के तहत सद्भावना व्यक्त करना चाहता है। उन्हें उनके मन मुताबिक चलने के लिए वह अनुमति प्रदान करना चाहता हैं, पर वह नियमों की जंजीर से बंधा हैं। एक स्थान पर मार्क साहब छोटी उम्र वाली विधवा गिरिबाला के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए इंद्रनाथ से गुजारिश करते हैं कि वह बहन गिरिबाला के लिए कुछ व्यवस्था करा दे जँहा वो पढ़ाई लिखाई करके अपने जीवन में कुछ गति पा सके। पर अपनी विवश स्थिति का एहसास दिलाते हुए इंद्रनाथ मार्क साहब से कहता है- "मैं जानता हूं तुम क्या कहने जा रहे हो! तुम्हारी भाषा में- हम उसकी कब्र खोद रहे हैं। यही कहना चाह रहे थे न तुम? मार्क, तुम एक यायावर विद्वान हो। तुम ज्ञान की तलाश में भटकने वाले एक घुमंतू हो। जगलिया के तट पर तुम्हे ऐसे कई अनुभव हुए होंगे। गिरिबाला एक अनुभव-मात्र है। तुम यही मानकर चलो।"[5] इंद्रनाथ का इस कथन से एक ओर पुरुषतांत्रिक भाव चलता है और दूसरी ओर प्रचलित समाज व्यवस्था के आगे उनकी विवश स्थिति का भी पता चलता है। उपन्यास के अंत में समाज में आये बदलाव को दिखाया गया है। इस बदलाव में लगातार जनता में फैली विप्लव की भावना है। शिष्यों के ऊपर गुरु का प्रभुत्व समाप्त होता जा रहा हैं। राज-राजेश्वर की तरह दिन बिताने वाले सत्र के अधिकार के विरुद्ध गांव के रायत विद्रोही हो उठे हैं। प्रचलित आडंबरपूर्ण नियम तथा आभिजात्यता के खिलाफ इंद्रनाथ जो कुछ दिन बाद अधिकार का आसन ग्रहण करने वाले है, वह भले ही खड़े हो गये थे पर उस प्रचलित परंपरा का वह भी एक प्रतिनिधि होने के नाते पुरानी व्यवस्था को बदलने की फिराक में इंद्रनाथ को अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ता है। उसे जनता में फैल रहे विद्रोह का शिकार होना पड़ता है। समाज में फैल रहे कम्युनिष्ट का प्रभाव और जनता में बढ़ती नाराजगी का उसे शिकार होना पड़ता है। इस उपन्यास की कहानी में 'जगन्नाथ' नाम के एक हाथी का भी वर्णन है जो एक समय अधिकार परिवार के गौरव का केंद्र हुआ करता था, वही जगन्नाथ एक समय पर पागल हो जाता हैं और आम जनता को मारना शुरू कर देता हैं। इसे देखते हुए उस हाथी को सरकार द्वारा गोली मारने का आदेश दिया जाता है। जगन्नाथ नामक हाथी को मारने के लिए दिये गये आदेश से पुरानी व्यवस्था का पतन जरूरी है यह संकेत लेखिका ने यहाँ दिया है। जो इंद्रनाथ परिवर्तित समाज व्यवस्था के साथ चलना चाहता था, जनता को उनकी जमीन लोटाना चाहता था उसे विद्रोहियों ने मार डाला। अपने पूर्वजों की भूलों के कारण इंद्रनाथ को अपनी जान गवानी पड़ी। सदियों से चली आ रही उस पुरुषतांत्रिक समाज व्यवस्था के खोखले विचारों, खोखले रीति-रिवाजों ने एक नई सोच रखने वाले युवक को मरने के लिए विवश किया। वही इंद्रनाथ स्त्रियों पर हो रहे अमानवीय व्यवहार पर सुधार की उम्मीद रखता था। विधवा बहन गिरिबाला, बुआ दुर्गा और चाची छोटी गोसाइन के दुख भरी जिंदगी के बारे में सोच कर इंद्रनाथ खुद अपनी प्रेमिका को अपनाने का विचार छोड़ देता है।

निष्कर्ष :-निष्कर्षतः हम कह सकते है कि इस उपन्यास में पुरुषतांत्रिक समाज व्यवस्था में सत्र परिवार के रूढ़िवादी संस्कारी परिवेश में मानवता की मृत्यु गाथा है। उपन्यास में परंपरा और आधुनिकता, व्यक्ति के अन्तर्मन का संघर्ष, समाज का विरोध, व्यक्ति का संघर्ष आदि दिखाया गया हैं। उपन्यासकार ने एक ओर गिरिबाला की आत्महत्या के जरिए प्रचलित समाज व्यवस्था के प्रति विरोध जताया है, साथ ही समाप्त होते जा रहे पौराणिक विचार, रीति-रिवाजों की जगह, नये युग के नये विचार वाली पुकार को अत्यंत जरूरी माना है। आत्महत्या भी प्रचलित व्यवस्था के खिलाफ एक हथियार साबित हो सकते यहाँ वह दिखाया गया है। आधुनिक काल में जीने के बावजूद भी लोगों की मानसिकता अब भी नहीं बदली है, यह एक अत्यंत गंभीर समस्या है। उसी समस्या का हल ढूंढते-ढूंढते यहां गिरिबाला, दुर्गा और छोटी गोसाइन जैसे चरित्र का निर्माण हुआ है जो उस व्यवस्था के आगे लाचार है। यह समस्या बहुत हद तक आज के इक्कीसवीं सदी में भी कायम है। देश की बेटियां आज आकाशमार्ग से होकर राष्ट्रपति का आसन तक सुशोभित कर रही हैं पर फिर भी हमें अब भी समानता के नारे लगाने पड़ रहे है। बेटियों को अब भी कुर्बानी देनी पड़ रही हैं। इस व्यवस्था में सच्ची में परिवर्तन आये इसी प्रयास में इंदिरा गोस्वामी का यह उपन्यास बिल्कुल प्रासंगिक है।

******

संदर्भः-

1. दक्षिणी कामरूप की गाथा, प्रथम संस्करण (पेपर बेक) 2018, साहित्य अकादमी, पृष्ठ- 112,
2. वही, पृष्ठ- 224,
3. वही, पृष्ठ- 14,
4. वही, पृष्ठ -162,
5. वही, पृष्ठ-198,

हिंदी के समकालीन स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त स्त्री-संघर्ष

डॉ.मेरली के पुन्नूस
सेंट.स्टीफन कॉलेज, उषवूर, कोट्टयम

सेलीष्या जोसफ
निर्मला कॉलेज मूवाट्टुपुषा, एरनाकुलम

दुनियां की आधी आबादी स्त्री आज अपने अधिकारों केलिए संघर्ष कर रही हैं। लिंग-भेद की नीति ने उसका जीवन दुश्वार कर दिया था। वह समाज के मुख्यधारा से हटा दी गयी थी। उसका कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित था। भूमंडलीकरण की इस दौर में स्त्रियों केलिए दायरे विस्तृत हुए है। लेकिन आज भी यही सच्चाई देखने को मिलती है कि स्त्री मात्र देह है। स्त्री की देह से परे जाकर उसे इंसानीयत के रूप में स्वीकारने केलिए समाज आज भी तैयार नहीं है। हाल ही में अखबारों में जो सूचनाएँ देखने या पढने को मिलती है हर एक दिन कितनी मासूम बच्चियों पर बलात्कार किए जा रहे है और उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाता है। यह वास्तव में इसी ओर इशारा कर रहा है कि आज भी स्त्री चाहे वह पढी-लिखी ही क्यों न हो, शिक्षित हो, कामकाजी हो, अपनी पैरों पर खडी क्यों न हो फिर भी वह मात्र एक देह है, एक जिन्स है। जिसका मनचाहा इस्तेमाल पुरुषवर्चस्ववादी समाज करने का अधिकार रखता है। उसके इसी वर्चस्व के खिलाफ हिंदी साहित्य के क्षेत्र में स्त्री विमर्श उभरा है। स्त्री विमर्श के द्वारा पुरुष का विरोध नहीं किया जा रहा बल्कि उस मानसिकता और वर्चस्ववादी समाज का विरोध किया जा रहा है जिसने स्त्री को अपने पैरों तले दबा कुचल डाला है। चंद्रकांता के राय है –"जिस शिद्दत से महिला रचनाकारों ने स्त्री के पारिवारिक-सामाजिक और दैहिक शोषण को संवेदी स्वर और आक्रोशी तेवर दिए हैं, दोयम दर्जे की स्थिति को नकारकर शोषणधर्मिता के विरुद्ध आवाज़ बुलंद की है वह जहाँ स्त्री मानस की अनकही पीडा का महाआख्यान है, वहीं उसकी संघर्ष चेतना और स्त्री-विरोधी व्यवस्था से रू-ब-रू होकर, अपनी लडाई आप लडने की सामर्थ्य का सशक्त दस्तावेज़ भी है।"[1] इन मुद्दों को केंद्र में रख स्त्री द्वारा आत्मकथायें लिखी जा रही हैं। सर्वप्रथम आत्मकथा लिखकर स्त्री की दुनिया को उदघाटित करने का कार्य जानकी देवी बजाज ने किया है। इसके अलावा दिनेश नंदिनी डालमिया, कुसुम अंसल, कृष्णा अग्निहोत्री, मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, चंद्रकिरण सौनरेक्सा आदि लेखिकाओं द्वारा भी आत्मकथायें लिखे गये हैं। दलित स्त्रियों ने भी आत्मकथा लिखकर इस सच्चाई से हमें रू-ब-रू कराया है कि समाज में हर तबके की स्त्री शोषित-पीडित है। और आत्मकथाओं के द्वारा स्त्री विमर्श के विभिन्न पहलुओं को उदघाटित करने का कार्य लेखिकाओं द्वारा किया जा रहा है। हम भी इंसान है। हमें इंसान के रूप में समझा जाए, पहचाना जाए। भूमिकाओं से परे भी हमारी एक पहचान है। इन सच्चाइयों को उभारते हुए आज स्त्री अपनी ओर से मांग उठाने की काबिल हो रही है। यह आत्मकथाएँ इसी का दावा करते हैं। प्रभा खेतान ने तो आत्मकथा को स्ट्रीप्टीस का नाच कहा है। "वैसे आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीप्टीस का नाच है। आप चौराहे पर एक-एक कर कपडे उतारते जाते हैं।"[2] आत्मकथा लेखन में आत्मप्रदर्शन का भाव मौजूद रहता है।

लेखिकाओं की आत्मकथाओं में उनके बचपन पर प्रकाश डाला गया है। अकेलापन और असुरक्षा के बोध से पीडित स्त्री-जीवन को दर्शाया है। जातिभेद और आर्थिक विवशता के कारण अभावों में पली-बढी सुशीला टाकभौरे के बचपन में पारिवारिक संघर्ष देखने को मिलता है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में शिकंजों में जकडे उनके जीवन की आह को उभारने के साथ-साथ उनके संघर्ष को भी चित्रित किया है। उन्हें माँ-नानी की सुरक्षा के घेरे में रहना पडा ताकि सवर्ण लोगों की नज़र उन पर न पडें। लडकियों की इज़्ज़त को बचाने केलिए उन पर पाबंदियाँ थोपी गयी। इसी वजह से कई लडकियाँ अशिक्षित रह गयी। इस सच्चाई को लेखिका ने उदघाटित किया है। खुद उनकी अपनी माँ और उनकी नानी इसकी मिसाल रही है। इसी असुरक्षा के घेर के कारण आजीवन उन्हें अशिक्षित रहना पडता है। और सवर्ण लोगों की सफाई की काम करते हुए वह अपनी अंतिम सांसें गिनती है। यही नानी के जीवन की असलियत हैं। लेकिन नानी अपने जीवन में चाहती है कि अपनी बेटी जो है पढ-लिखकर समाज में एक सम्मान हाज़िल कर पाए। और इसी उद्देश्य से वह आजीवन संघर्ष भी करती है - "नानी और माँ ने खुद केलिए भी और अपनी बेटियों केलिए भी हमेशा सुरक्षा का घेरा बनाये रखा था। उसी सुरक्षा के घेरे के शिकंजे में मेरा बचपन बीता, किशोर अवस्था बीती, और युवावस्था का आरंभ भी इसी शिकंजे के बीच हुआ।"[3] 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान ने फ्लैशबैक शैली में अपने अनाथ बचपन की याद छेडी है। मारवाडी समाज में जन्मी प्रभा खेतान का बचपन सुखमय नहीं था। माँ की नज़र में स्त्री होना ही पाप है, और परिवार या समाज केलिए स्त्री गुलाम है जो बिना मालिक के जी नहीं पायेगी। प्रभा खेतान दिखने में साधारण सी, काली-साँवली लडकी थी, इसलिए प्रेम और वात्सल्य के अभाव में उपेक्षित सा जीवन उन्हें जीना पडा। लिंग-भेद की मानसिकता से स्त्री का जीवन तनावपूर्ण रहता है। कदम-कदम पर उसके साथ भेदभाव किए जाते है चाहे वह घर के बाहर ही हो या अंदर भी। कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' में छोटी बहन के जन्म से दुखी परिवारवालों के बारे में लिखा है। घर में हमेशा लडकों को ही सम्मान मिलता हैं और माँ भी हमेशा भाइयों के पक्ष में ही थी। रसोईघर को स्त्री का कार्यक्षेत्र माना जाता है। इसलिए बचपन से ही उसे पाककला में दक्ष बनाने की कार्य किए जाते है। शिक्षा से वंचित रखा जाता है। और पढ-लिखकर नौकरी करना तो स्त्रियों केलिए उचित नहीं माना जाता। इसी मानसिकता की उपज थी कृष्णा अग्निहोत्री की माँ और प्रभा खेतान की माँ। और दोनों ही अपनी बेटियों को इस नज़र से पाल-पोसकर बडा करने की मंशा रखनेवाली थी। 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी का बचपन लडकियों की सीमाओं तक ही बंधा रहा। लडकियों को अकेले बाहर जाने की इज़ाज़त नहीं थी। उनकेलिए बाहर जाने की सीमा घर और मोहल्ले तक थी। कृष्णा अग्निहोत्री को सडक पर नीची नज़र कर चलने की सीख दी जाती। 'पिंजरे की मैना' में चंद्रकिरण सौनरेक्सा को भी अकेले बाहर नहीं जाने दिया जाता था। लडकियों के अकेले जाने से बदनामी की संभावना थी। लडकियों को माता-पिता के सामने सिर उठाकर बात करने का अधिकार तक नहीं था। 'कस्तूरी कुंडल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा ने कस्तूरी के बचपन का चित्रण किया है। शाप हो या गालियाँ, हँसते हुए सहने की सीख उसे दी गयी थी। मैत्रेयी पुष्पा का बचपन पितृहीन बेटी के दुखों से भरा है, तो वहीं मातृहीन बेटी के संघर्षों को कुसुम अंसल ने 'जो कहा नहीं गया' में दर्ज किया है।

स्त्री-आत्मकथाओं में अकेली स्त्री की त्रासदी को बखूबी दर्शाया गया है। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को जिन भूमिकाओं में कैद रखा उससे परे जाकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने की कोशिश समकालीन संदर्भ में वह कर रही है। प्रभा खेतान किसी पुरुष के नाम से अपने को नहीं बाँधती। अकेली स्त्री होकर वह आत्मनिर्भर है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र है। व्यावहारिक क्षेत्र में वह अपनी पहचान खुद बनाती है। यहाँ तक कि डॉ.सर्राफ के परिवार का भी देखभाल करती है। मन्नू भंडारी दाम्पत्य जीवन को बनाए रखने केलिए अपना बलिदान नहीं करती। वह राजेंद्र से अलग रहकर खुद की दुनिया बनाती है, अकेले घर और अपनी बच्ची को संभालती है। साहित्य के क्षेत्र में नाम कमाती है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में माँ के अकेले जीवन को दिखाया है। पति की मृत्यु के बाद कस्तूरी दूसरी शादी न करके अपने बलबूते पर आगे बढती है। रियासत के खिलाफ जाकर वह पढ-लिखकर नौकरी करती है। अपनी बेटी को शिक्षा देती है। बेटी केलिए उपयुक्त वर ढूँढने में वह कामयाब होती है। कृष्णा अग्निहोत्री भी दांपत्य बंधन से छुटकारा पाकर अकेले रहने का निर्णय करती है। 'और और औरत' कृष्णा जी के अकेले जीवन की संघर्ष गाथा ही है। तलाकशुदा स्त्री का सामाजिक-पारिवारिक-साहित्यिक जीवन दुखपूर्ण होता है। किसी के आश्रय या सहारे के बिना स्त्री का अकेला जीवन जीना उसके घरवालों तक को भी नहीं भाता। रमणिका गुप्ता भी रिश्ते-नाते के बंधनों से दूर रहकर कार्य करने की इच्छा रखती है। 'हादसे' में उन्होंने अपने अकेले जीवन, सामाजिक व राजनीतिक संघर्षों पर लेखनी चलाई है। स्त्री कैसे भी हो उसका यौन शोषण सभी स्तर पर किया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा अपनी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' में इसका चित्रण करती है। बचपन में वे जिन-जिन घरों में रुकी है, वहाँ उसे यौन शोषण का शिकार होना पडा। संयोजिकाजी के घर का सबसे छोटा बेटा, रात-भर मैत्रेयी को सोने नहीं देता।

मैत्रेयी कहती है "मैं यहाँ नहीं रहूँगी, गाँव भाग जाऊँगी। शहर के लोग कैसे हैं, रात में पेट पर हाथ धरते हैं। छाती नोंचते-बकोटते हैं।"[4] स्त्री को मात्र देह मानने की मानसिकता को रमणिका गुप्ता ने 'आपहुदरी' में भी दिखाया है। बचपन में नौकर और मास्टर से उन्हें यौन उत्पीडन सहना पडा। सालों तक वह यह सब सहती रही क्योंकि शिकायत करने पर उस पर ही पाबंदियाँ लगा देने का डर था। नाना द्वारा मौसी के यौन शोषण की वह इकलौती गवाह रही है। मौसी का नाना के कमरे से सलवार टूंगते या गाल पोंछते बाहर आना उसकेलिए साधारण सा दृश्य था। प्रभा खेतान ने स्वयं अपने साथ हुए पारिवारिक यौन शोषण का उल्लेख 'अन्या से अनन्या' में किया है। नौ साल की साँवली लडकी प्रभा का बलात्कार उसका अपना सगा भाई ही करता है। अपने घर का यह असुरक्षित माहौल उनके जीवन को तोड देता है। सुरक्षा की तलाश में वह डॉ.सर्राफ के करीब आ जाती है। संपूर्ण जीवन में दैहिक शोषण को झेलते हुए वह अपने अस्तित्व की स्थापना करती है। कृष्णा अग्निहोत्री की दोनों आत्मकथाएँ 'लगता नहीं है दिल मेरा', 'और और औरत' में स्त्री को भोग्या माननेवाली सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। बचपन में छोटी बुआ के नौकर द्वारा छ-सात वर्ष की मासूम बच्चियों को नंगा करके अपने ऊपर सुलाना, उन्हें चूमना वह याद करती है। शादी के बाद उनके पति अग्निहोत्री उनके शरीर से खिलवाड करते है। पति को शारीरिक सुख देने केलिए नृत्य सीखना और शराब पीना कृष्णा अग्निहोत्री की विवशता थी। मार-पीटकर पत्नी को भोगना, वेश्यालयों में जाना और कई स्त्रियों से यौन संबंध बनाना उनके पति की आदत थी।

आर्थिक या शैक्षिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी स्त्री की हालत बेहतर नहीं होती। नौकरीपेशा स्त्रियों के संघर्ष को लेखिकाओं ने आत्मकथाओं के द्वारा पेश किया है। आज के वैज्ञानिक युग में स्त्री हर क्षेत्र में पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ रही है। वह कितनी भी आगे बढे घर को संभालने की ज़िम्मेदारी मात्र स्त्री की है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में राजेंद्र की गैर-ज़िम्मेदारी को स्पष्ट रूप से दिखाया है। राजेंद्र का सरोकार मात्र अपने निजी संबंध और लेखन तक ही सीमित था। घर की सारी ज़िम्मेदारियाँ मन्नू भंडारी ही निभाने को विवश थी। अध्यापन कार्य के साथ लेखन कार्य और घर तथा बेटी की देखभाल उन्होंने ही संभाला। राजेंद्र को बिना बताए वह प्रेमचंद सृजंपीठ के अध्यक्ष पद को स्वीकारती है। कामकाजी स्त्रियों की सफलता पुरुषों को चुभता है। मन्नू भंडारी की प्रशंसा होने पर राजेंद्र के अहम को चोट लगता है। उनकी प्रशंसा वह सह नहीं पाते। इसके पीछे एक पति होने के बावजूद भी उनकी मानसिकता यह है कि पत्नी होने पर भी मन्नू भंडारी साहित्यिक जगत में लेखिका के रूप में उनसे आगे बढ नहीं पाए। राजेंद्र यादव का अहम ही उनके परिवार को चकनाचूर कर देता है। 'पिंजरे की मैना' में चन्द्रकिरण सौनरेक्सा रेडियो में काम करती है। साथ-ही-साथ उनका अध्यापन कार्य भी जारी है। लेकिन परिवार में स्त्री के बाहरी श्रम और थकान पर कोई ध्यान नहीं देता। बिना बताए सौनरेक्सा जी अपने दोस्तों को घर ले आते है और दिन भर के कामकाज से निपटने के बाद लेखिका को उनकी खातिरदारी भी करनी पडती है। कृष्णा अग्निहोत्री द्वारा पढाई करने, नौकरी करने से उनके पति नाखुश रहते हैं। इसका ज़िक्र उनकी आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' में मिलता है। अपने पति से अलग होने के बाद जब कृष्णा अध्यापन कार्य करती है तब वहाँ के पुरुष कर्मचारियों द्वारा उन्हें उनके भेदभाव का शिकार होना पडता है। कृष्णा पर अधिक काम सौंपा जाता है। और अन्य पुरुष कर्मचारी मुक्त होकर घूमते है। उनके हिम्मत को तोडने केलिए कई लांछन, अपमान, अफवाहें फैलाई जाते है और उन्हें कम वेतन भी दिया जाता है। 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान के आत्मनिर्भर होने की बात कही है। पहले तो वह डॉ.सर्राफ के यहाँ मात्र तीन सौ रुपए की नौकरी करती है। बाद में वह चमडे की व्यापार करती है। लेकिन उनकी कमाई पर भी डॉ.साहब का अधिकार था। अपने कमाए पैसों को पसंद की बैग खरीदने केलिए खर्च करने पर डॉ.सर्राफ उन्हें विदेश में सडक पर अकेला छोडकर चले जाते है। वह अपने पसंद की एक बैग तक नहीं खरीद पाती। खुद की कमाई पर बैग खरीदने की सज़ा उन्हें भुगतनी पडती है। डॉ.सर्राफ उन्हें विदेश में सडक पर अकेला छोडकर चले जाते है। व्यापार के क्षेत्र में मीटिंग के वक्त चाय बनाने का दायित्व उन्हीं का होता है क्योंकि वह स्त्री है। 'आपहुदरी' रमणिका गुप्ता के जीवन संघर्षों का जीवंत दस्तावेज़ है। इंश्योरेंस के क्षेत्र में उनकी नौकरी लगने पर सह-कर्मचारियों ने उनका फायदा उठाया। वे रमणिका को अलग-अलग लोगों के पास भेजते हैं। स्त्री के देह को उसकी कामयाबी से बढकर महत्व देनेवाले समाज की सोच यहाँ सामने आती है। दलित स्त्रियों को तो कार्यक्षेत्र में भी जातिभेद को सहना पडता है। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में इसे दर्शाया है। जब सुशीला के साथ काम करनेवाले लोग एक-दूसरे के घर जाने का निर्णय करते है, तब कुछ लोग कोई बहाना बनाकर सुशीला के घर नहीं आते, आये लोग खाना नहीं खाते ऐसे कडवे अनुभवों से उन्हें गुज़रना पडता है।

धार्मिकता और अंधविश्वासों से भरा समाज स्त्री केलिए अधिक कष्टदायी होता है। धार्मिक ग्रंथों के अनुसार शादी के पहले स्त्री का आरक्त होना पाप माना जाता है और इससे माँ-बाप के सर पर पाप का बोझ बढ जाने का विश्वास है। मासिक धर्म के दौरान लडकियों को अछूत माना जाता है। 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान को आरक्त होने पर माँ द्वारा उसे कमरे में बंध करना इसी अंधविश्वास का परिणाम है। गाँवों में ऐसे विश्वासों के चलते स्त्रियों का जीवन बद से बदत्तर हालत में है। ऐसे विश्वासों का विरोध शिक्षित प्रभा और उसकी बडी बहन करती है। मासिक धर्म के दौरान भी वे रसोईघर में घुसने की हिम्मत करती है। दहेज प्रथा पर भी स्त्री आत्मकथाएँ विचार-विमर्श करती हैं। 'लगता नहीं है दिल मेरा' में मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी बिना दहेज दिए पढे-लिखे नौकरीपेशा लडके से मैत्रेयी की शादी कराती है। कृष्णा अग्निहोत्री की शादी में घरवालों ने ससुरालवालों की इच्छा पूरी करने में ध्यान दिया है। लेकिन रमणिका गुप्ता की शादी बिना दहेज के होती है। यह उनके द्वारा लिया गया एक ठोस कदम है, जिसे समाज केलिए आदर्श माना जाना चाहिए। स्त्री आत्मकथाओं के द्वारा समाज में व्याप्त बुराइयों को चित्रित कर यह दर्शाने का कार्य किया है कि यह समाज में व्याप्त बुराइयाँ ही स्त्री केलिए बेडी बन जाती है, जिसमें कैद होकर स्त्री आजीवन चटपटाती रहती है। इन दोहरे मानसिकता से मुक्ति, समाज में व्याप्त बुराइयों का खात्मा ही स्त्री को समाज की मुख्यधारा से जोडने में कामयाब होगा। उसकी मानवीय पहचान को निखारकर उसकी पहचान दिलाने में सफलता मिलेगी।

संक्षेप में स्त्री आत्मकथाओं में चित्रित स्त्री का जीवन उसकी पीडा, शोषण, घुटन से लिप्त करुणा गाथा है। अशिक्षा, दहेज-प्रथा,अनमोल विवाह, घरेलू हिंसा, आदि के कारण स्त्री-जीवन दुखमय रहता है। कामकाजी स्त्रियों का संघर्ष और आधुनिक शिक्षित स्त्री का प्रतिरोध स्त्रीविमर्श को महत्वपूर्ण बनाता है। हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में उनके जीवन के सभी पक्षों का यथार्थ अंकन पाया जाता है। स्त्री-जीवन के अनकहे-अनसुने सच्चाई का पर्दाफाश करने में स्त्री आत्मकथायें सफल हुए हैं। यह स्त्री विमर्श की दिशा में एक कारगर कदम है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. चंद्रकांता – स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिंदी साहित्य – पृ.18
2. प्रभा खेतान – अन्या से अनन्या – पृ.255
3. सुशीला टाकभौरे – शिकंजे का दर्द – पृ.111
4. मैत्रेयी पुष्पा – कस्तूरी कुंडल बसै – पृ.51

अल्मा कबूतरी उपन्यास में कबूतरा स्त्री

डॉ.जीतेंद्र गुप्ता
शोध निर्देशक (कॉटन विश्वविद्यालय) मो.6001266914

मयुरी मजुमदार
शोधार्थी (कॉटन विश्वविद्यालय)

शोध-सार : आधुनिक जीवन से कोसों दूर आदिवासी समुदाय सामूहिक जीवन यापन करते हैं। मुख्यधारा के समाज की तुलना में आदिवासी समुदाय में स्त्रियों की स्वतंत्रता ज्यादा होती है। प्राय: आदिवासी समाज मातृप्रधान होते हैं। इसी कारण किसी-किसी समुदायों में घर की मुखिया भी स्त्री होती है। फिर भी आदिवासी स्त्रियों को सभ्य समाज से केवल शोषण ही प्राप्त है। कोई भी आदिवासी स्त्री इस सभ्य समाज में सुरक्षित नहीं हैं और हमेशा की तरह वर्त्तमान समय में भी आदिवासी स्त्रियों को यौन शोषण का सामना करना पड़ता है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास *अल्मा कबूतरी* कबूतरा आदिवासियों पर केन्द्रित है। *अल्मा कबूतरी* उपन्यास में दो समाजों का तुलनात्मक वर्णन है एक आदिवासी कबूतरा समाज और दूसरा सभ्य समाज जिसे कबूतरा आदिवासी कज्जा कहते हैं।

बीज शब्द – आदिवासी, कबूतरा, स्त्री, स्वतंत्रता, शोषण

भूमिका : मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास *अल्मा कबूतरी* कबूतरा आदिवासियों पर केन्द्रित है साथ ही यह एक स्त्री प्रधान उपन्यास है। अल्मा कबूतरी उपन्यास का पहला प्रकाशन 2000 ई. में हुआ था और दूसरा संस्करण 2001 ई. में हुआ। यह उपन्यास कबूतरा जनजाति के ऊपर लिखा गया एक आदिवासी प्रधान उपन्यास है। जन्म से ही अपराधियों की एक जाति 'कबूतरी' तीन स्त्रियों को केंद्र में रखकर लिखी गई है जो ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक बदलाओं की वाहिकाएँ हैं। कबूतरा जातियों की जीवन निर्वाह, जीने के लिए किया गया संघर्ष आदियों का यथार्थ वर्णन किया गया है। आजादी के 50 साल बाद आदिवासियों के ऊपर हो रहे अत्याचारों का वर्णन इस उपन्यास में यथार्थ चित्रण किया गया है। कबूतरा जाति के लोग मूलतः राजस्थान से हैं और वे राजपूतों के वंशज हैं। इस उपन्यास में झाँसी, ललितपुर, टीकमगढ़ आदि इलाकों में बसी कबूतरा लोगों को आधार बनाकर उपन्यास लिखा गया है। कबूतरा जाति के पुरुष और औरत चौरी-डकैती, लूट, हत्या, मारपीट जैसे कार्यों में ही लिप्त रहते हैं। ऐसा है कि जन्म से ही इनलोगों को चोरी का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ये लोग बहुत परिश्रमी और सहनशील हैं, चोरी करना इनलोगों के बाएँ हाथ का खेल हैं।

कबूतरा आदिवासी समाज में पंचायत व्यवस्था है। आदिवासी समाज में प्रमुख व्यक्ति को 'मुखिया' कहा जाता है। अल्मा कबूतरी उपन्यास के प्रमुख पात्र कदमबाई और अल्मा कबूतरी हैं। । अल्मा कबूतरी उपन्यास में उपन्यासकार ने पात्रों को यथार्थ चित्रण किया है।

विश्लेषण :- उपन्यास में उल्लेखित कबूतरा समाज के स्त्रियों को अपने पति से मिलने के लिए तरसना पड़ता हैं। चोरी डकैती कबूतरा मर्दों के जीवन जीने की पेशा है। चोरी करने के बाद पुलिस के पकड़ने की डर से अपने बस्ती से दूर भागना पड़ता है। कदमबाई के साथ भी वही हुआ, जंगलिया चोरी करके कुछ दिन के लिए अपनी जान की खातिर भूमिगत हो गया। एकदिन भजनी मंसाराम से अनुरोध किया कि एक रात के लिए ही सही जंगलिया को आने दे। जब जंगलिया मारा गया तब कदम बाई को लाश को पहचानने के लिए पुलिस थाने बुलाया गया लेकिन उसने लाश को पहचानने से भी इनकार कर दिया क्योंकि वह कबूतरा है। कबूतरा समाज हो या अन्य आदिवासी समाज सभी समाजों में स्त्रियों की आदर ना कि बराबर है, स्त्रियाँ तो सिर्फ मर्दों के आगोश को शांत करानेवाले एक चीज की तरह है। कबूतरा समाज कि स्त्रियाँ कहीं पर भी सुरक्षित नहीं हैं। जब बस्ती पर पुलिस आती हैं सारे मर्द खेतों की तरफ भागते हैं और वहाँ पर छुप जाते हैं। स्त्रियाँ बस्ती पर ही रह जाती हैं और पुलिसवाले उन्हें बेरहमी से अत्याचार करते हैं। इस समाज की स्त्रियाँ दारु बेचते हैं। होली के समय की बात... शाम होते ही पुलिस की जीपें आयी। डेरों पर हल्ला मच गया। जमुनी पेट से थी, जीवन बचाने के खातिर गेहूँओं के खेत में चिप गई। जमुनी दर्द से खेतों के बीच चिंघाड़ रही थी लेकिन उसके पास कोई नहीं था सभी अपने-अपने जीवन के खातिर छुपे हुए हैं। अंत में जमुनी नवजात के साथ अपने जीवन से हार मान गई, दोनों की लाश खेत में ही पड़ी मिलती है। कदमबाई के साथ ही कबूतरा समाज की सभी स्त्रियाँ डेरों में छिपी है, डेरों पर एक भी मर्द नहीं। लाश को जलाए कौन, धर्म के अनुसार औरतें लाश नहीं जला सकती हैं। जिस खेत पर जमुनी की लाश पड़ी थी उसका मालिक आकर डेरों पर गालियाँ देते रहे, "कहता गया कि कबूतरा साले लुगाइयों के संग मौज करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं। मरते ही उसकी मिट्टी को पहचानते तक नहीं। सरमना...तू नहीं उठा सकता तो अपनी लुगाई को भेज। फसल खराब हो रही है मादरचो...रपट करूँगा कि तुमने औरत मारकर फेंकी है।"[1] मालिक के गालियाँ सुन कदमबाई बुदबुदाने लगी, "रे...रपट से कौन-सा नया कहर टूट पड़ेगा ? सब तो गुजर गया। लाठी-कुल्हाड़ी चलने में माहिर हमारे मर्द घायल ढोर से लाचार और हम जैसी औरतें नंगी गोपिका-सी छिपने के बेबस...। हरामी, हम अपनी बेटियों की उघड़ी योनि और बेपर्दा छातियों के कारण उन्हें अँधेरे में पटके पड़े हैं।"2 कबूतरा आदिवासियों की स्त्रियाँ जैसे मर्दों की छाती को शांत करने के लिए ही बने हुए हैं। कबूतरा आदिवासियों के मर्द सिर्फ नाम के साथ जीता आया हैं जब उनलोगों के प्रयोजन होते हैं उस समय जंगल में जाकर छिपे रहते हैं और सारी मुश्किलों का सिर्फ स्त्रियों को ही सामना करना पड़ता हैं। कदमबाई आज भी उसदिन को याद करते थर्रा जाती है, "सरमन की औरत और वह जमुनी को खेत से खींच लाई थीं। राणा की बाँहों में मरा हुआ बच्चा।... चिथड़े-चीर लपेटे हुई औरतों ने काँटेदार सूखी झाड़ियाँ, सूखा गोबर और रोटी के लिए जोड़ा तमाम ईंधन डालकर जमुनी को उसके बेटे के संग फूँक डाला था। कुछ कसर रह गई, खेतों से मद उखाड़कर चिता पर उड़ेल दिया।"[3]

कबूतरा समाज में भूरी एक ऐसी स्त्री है जो पूरे समुदाय के स्त्रियों से अलग थी। भूरी एक आजाद मन की स्त्री थी, जिसे इन परम्परावादी रूढ़ियों पर विश्वास नहीं था। कबूतरा आदिवासियों का जो परंपरागत व्यवसाय चोरी-डकैती, दारु का धंधा है, उसमे भूरी और उसे पति वीरसिंह को बिलकुल दिलचस्प नहीं थी। भूरी की सास दोनों के अपनेपन को देखकर कहती है, "हाय, मेरा पूत ही क्या कम था कि यह बहू और आ गई नीम पर करेल की बेल। दोनों मिलकर तो हमारी दुनिया तबाह कर डालेंगे।"4 सास की धमकी से डरकर नहीं अपनी मर्जी से भूरी मायके चली गयी। अपनी पति के साथ भूरी राजा को देखने झाँसी चली जाती है। दोनों राजा को देख आते है और डेरों पर उसकी ही बातें करती रहती है। एकदिन वीरसिंह की मृत्यु हो गई, भूरी विधवा हो गई। एक कबूतरा मर्द होने के कारण और शिक्षित न होने के कारण ही उसे मृत्यु का सामना करना पड़ा।भूरी की आँखों में आँसू न थे, न ही वह रोई थी, उसे वीरसिंह की कही एक बात याद थी, "पढ़े-लिखे अनपढ़ों की किस्मत लिखें तो अनपढ़ क्या पाएँ ?"[5] चार महीने के रामसिंह को अपनी गोद में लेकर भूरी वीरसिंह की यादों में समा गई। भूरी कहती है, "पतिविरता लुगाई अपने आदमी के संग सती होती है। मैं अपने मर्द की ब्याहता खुद को तब मानूँगी, जब रामसिंह को पढ़ा-लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दों के नीचे से गुजरना पड़े। पद्मिनी की कथा मैंने सुनी है।"[6] डेरों में सबने भूरी को पागल, पापिन कहा। कबूतरा आदिवासियों के नियमानुसार कबूतरा स्त्री बिना मर्द के नहीं रहती है। बड़े बुजुर्गों ने भूरी को समझाने की कोशिश की। बच्चा भी छोटा था उसके रक्षण के लिए भी तो कोई होना चाहिए। अपने मर्द की मृत्यु के एक महिना बाद विधवा ब्याह कर सकती है। लेकिन भूरी ने किसी के बातों को नहीं सुना अपनी बातों में स्थिर रही। भूरी इन सभी बातों को जवाब देते हुए बोली, "में किसी मर्द की बाँह पकड़कर क्या रामसिंह के बाप को भूल जाऊँगी ? भूल भी जाऊँ तो उसकी कही बात नहीं भूल पाऊँगी। बात नहीं भूल पाऊँगी सो बिरादरी के चलते पाप करती ही रहूँगी। जिस दिन रामसिंह ने बाप का लाल खून नीली स्याही में बदलकर अपने हक़ में चार आँक लिख लिए, समझूँगी मुझमें राई भर कलंक नहीं। विद्या रतन के आगे देह का खजाना कुछ भी नहीं... ।"[7] कबूतरा समाज में भूरी एक ऐसी औरत थी जिसे विद्या के प्रति सम्मानथा, विद्या की मोल उसे समझ आती थी।

जिस समय आदिवासी स्त्रियाँ घूँघट के नीचे रहना पसंद करती थी उस समय भूरी विद्या के लिए अपनी समाज से लड़ाई करती थी । उसे यह ज्ञात था कि इस दरिद्रता से सिर्फ ओर सिर्फ विद्या ही मुक्ति दिला सकती है ।डेरों में भूरी एक ऐसी माँ थी जिन्होंने अपने बेटे को हाथों में कुल्हाड़ी-डंडा नहीं पोथी-पाटी पकड़ाई । कबूतरी कज्जा लोगों को कभी 'न' नहीं कह सकते, भूरी को 'न' कहना भारी पड़ रहा था । लेकिन कबूतरा जीवन की बोझ बेटा जीवनभर न धोए इसी कारण भूरी बदनामी का वजन लेने के लिए तैयार हो गई ।भूरी गर्भ न रहने के लिए रुखरी चबाया करती थी । जो रिवाज कबूतरा समाज में पूर्व से प्रचलित होते आये हैं उसे भूरी तोड़ रही है, शादी-ब्याह का मतलब ही नहीं रहेगा । बिरादरीवालों का मानना हैं कि भूरी पूरे कबीले को विनष्ट करने पर तुली हुई है । इसके लिए उसकी सजा जल समाधि, अग्नि परीक्षा । भूरी ने परीक्षा के पहले ही कह दिया कि वह परीक्षा योग्य नहीं है, वह एकदम अपवित्र है । बिरादरीवालों ने उसे सोते समय उठाकर लाना ही उचित समझा । इसी क्षण पुलिस वहाँ पर आ गई । सजा देनेवालों की हालत खराब हो गई, भूरी को बोझ की तरह पटक दिया । पुलिसवालों ने उसे जिंदगी दे दी । लेकिन भूरी पूरे जीवन माते, पुजारी, सिपाही, मास्टरों के जरिए अपने बेटे के इज्जत खरीदने के लिए बेहिचक बेइज्जत होती रही । फिर भी वह हार नहीं मानती है । अपने बेटे को भी यही शिक्षा दी कि विद्या जीवन में कितना महत्वपूर्ण होती है । खुद पढ़ लिख न सका तो किया हुआ अपने बेटे को इस कबूतरा समाज से बाहर निकालना है । और यही उसकी संकल्प थी । भूरी की कथा से कदमबाई को बहुत अनुप्रेरणा मिली । कदमबाई अपने आप को बहुत कोसा क्यों वह अपने बेटे को पढ़ाई के क्षेत्र में समर्थन नहीं कर सकती । जो राणा की सबसे बड़ी इच्छा है । कबूतरा समाज में कदमबाई एक ऐसी स्त्री थी जो किसी से परवाह नहीं करती थी । पति मर गए थे उन्होंने अकेले ही अपने बेटे को पाला, न कि मंसाराम उसे सहारा देने आये थे । कदमबाई ने फैसला ले लिया कि राणा गोरामछिया जाएगा रामसिंह के पास । जब राणा रामसिंह के पास चला गया उस समय कदमबाई कि ममता जाग उठी, राणा के बिना वह कैसे रहेगी । पति के मृत्यु के बाद राणा ही उसका एकमात्र सहारा था । कदमबाई अपने बेटे के लिए ही जी रही थी । लेकिन उसके भविष्य के खातिर अपने कलेजे को रामसिंह के हाथों सौंप दिया । उपन्यास की प्रमुख पात्र अल्मा कबूतरी जो एक कबूतरा स्त्री है । अल्मा कबूतरी के साथ हो रही घटनाएँ उपन्यास में एक नया मोड़ आ जाता है । धीरज जो कि एक कज्जा लड़का है और मंसाराम का भांजा है । अपनी नौकरी के खातिर सूरजभान के वहाँ काम करने जाता है । नौकरी के प्रथम दिन के दृश्य को देखते ही उसका शरीर काँपने लगते है, "नथ्यू ने स्विच खोलकर बल्ब जला दिया – लाल ब्लाउज, हरा घाघरा पहने हुए सत्रह-अठारह वर्ष की-सी लड़की खटिया से बंधी हुई लेती है । बाँह हाथ से पकड़े हुए कसमसा रही है । शरीर साँपिन की तरह बल खा रहा है ! धीरज का सर्वस्व काँप गया । पेट पर बटी हुई रस्सियाँ...चेहरे पर नजर डाली – गोरा मुँह, रोते हुए भरे-भरे होंठ, आँखें आँसुओं में डूबी हुई । पंक्तिबद्ध दाँत खुले हुए ।"[8] अल्मा कबूतरा समाज की एकमात्र एक पढ़ी लिखी स्त्री है । पिता के मृत्यु के बाद उसके जीवन का रास्ता पूरी तरह बदल जाता है । पिता उसे कज्जाओं की तरह बनाना चाहते थे । लेकिन पिता डाकुओं और पुलिसों के क्रूरताओं की बलि हो गये । सूरजभान की कर्ज चुकाने के लिए अल्मा को उसके पास गिरवी रहना पड़ा । हर रोज सूरजभान की कैद में उसे बलात्कार सहना पड़ा, "गर्भ में राणा के अंश के गोले थे – चार महीने । दारु के नशे में लड़खड़ाते सूरजभान ने ऐसी ताकत से भोग-संभोग किया कि अल्मा खून की पोखर हो गई । कबूतरी नाम लिख दिए था ।"संग में परसराम था । वे इसके कपड़े खोलते, यह उन पर धावा बोलती । उछलकर लात मारी थी परसराम की छाती पर । तब परसराम भी बिफर गया था, रेशा-रेशा नोंचा । हमसे तो देखा न गया बाबूजी ! खुद ही आँखें मुँद गई । कबूतरी है, पर है तो इंसान की बच्ची ही । परसराम ने इसे छोड़ कनपटी पर पिस्तौल धर दी थी, बोला – 'साले मैतर, तू क्या इसकी माँ का खसम लगता है ? सुअर कैसे काटता-छीलता होगा, देख कहीं कुल्हाड़ी-छुरी तो नहीं छिपाए है ? साली हम्ला करती है ।"[11] सूरजभान की कैद में हमेशा अल्मा बलात्कार की शिकार होती रही । एकदिन धीरज की मदद से अल्मा सूरजभान के कैद से मुक्त होकर भाग गयी । इतने पर भी अल्मा की बदकिस्मती ने उसका साथ नहीं छोड़ा । नथ्यू ने भी भरोसा दिलाकर उसे दूसरे चक्र में फँसा दिया । पशुओं से भी बत्तर जीवन जी रही थी अल्मा, लेकिन अल्मा ने जीवन से हार नहीं मानी । अल्मा अपने तकदीर को बार-बार कोसती है उसका भाग्य उसके देह पर ही लिखा है शायद, "खूबसूरत शरीर बदसूरत भविष्य गढ़ता रहता है ।"[12] इसबार अल्मा समाज कल्याण मंत्री श्री राम शास्त्री के कैद में पहुँच गयी । यहाँ भी अल्मा का भरपूर यौन शोषण होता है । श्री राम शास्त्री को खुश करने के लिए अल्मा को परोसा जाता है । संतोले की बहू ने उसे जबरदस्ती शास्त्री के कमरे में पटक दिया और अल्मा के कपड़े को फाड़कर वस्त्रहीन कर दिया । नंगा होना जैसे अल्मा की आदत सी हो गई ।"सूरजभान तलाशी लेने बहाने इस देह का रोम-रोम नाप चुका था । उसके साथी परसराम ने शरीर का नग-नग टटोला था । नंगापन पहली बार लगता है, बार-बार नहीं, इस बात को हर औरत जानती है । अल्मा खड़ी हो गई । समझ रही थी, खड़े होकर ज्यादा नंगी हो जाती है देह... । जो अंग छिपाने चाहिए, वे उवड़े पड़े हैं तो सिर झुकाकर भी क्या होगा ?"[13] मंत्री के घर में अल्मा के साथ सदा हो रहे अत्याचारों को शोषण करते हुए उन्होंने परिस्थितियों के साथ समझौता कर लिया । अल्मा को यह समझ में आ गया कि भागना व्यर्थ है अब उसे आगे बढ़ने का रास्ता अपनाना है । शास्त्री जी के मृत्यु के बाद बबीना विधानसभा की खाली सीट के लिए अल्मा का नाम घोषित कर दिया गया, "कल दूसरी खबर होगी – श्रीराम शास्त्री के निधन के कारण खली हुई बबीना विधान सभा सीट के लिए सत्तारूढ़ पार्टी की और से श्रीराम शास्त्री की निकटतम सहयोगी और निष्ठावान गाइड अल्मा उम्मीदवार होंगी ।"[14] उपन्यास में अल्मा एक ऐसी स्त्री है जो सहनशील, विवेकशील साथ ही बुद्धिमती है । उन्होंने अपने प्राय: आधा जीवन शरीर को दूसरों के सामने समर्पित करती ही गई थी । अल्मा कबूतरा समुदाय में बुरी तरह से यौन शोषित एक स्त्री है, जिसको बचानेवाला कोई नहीं ।

निष्कर्ष:- अल्मा कबूतरी उपन्यास में कबूतरा आदिवासी के लोगों के जीवन संघर्ष का चित्रण यथार्थ रूप से किया गया है । चोरी कबूतरा जनजाति के पहचान बन चुकी है । उपन्यासकार ने अल्मा के माध्यम से कबूतरी जाति की वेदना और संघर्ष को जीवित दस्तावेज दर्शाया है । अंग्रेजों द्वारा अपराधी जाति के रूप में घोषित कबूतरा भारत की आजादी के 65 साल बाद भी अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर है । यह उपन्यास कबूतरा आदिवासी के जीवन का यथार्थ आईना है । उपन्यास का कथानक नारी चरित्र प्रधान होते हुए भी इसमें सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों, विसंगतियों विद्रूपताओं, व्यभिचार आदि का खुलकर चित्रण किया गया है ।

****

सन्दर्भ सूची:

1. मैत्रेयी पुष्पा, *अल्मा कबूतरी*, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2000, पृ.47
2. पूर्ववत्, पृ.47
3. पूर्ववत्, पृ.48 पूर्ववत्, पृ.74
4. पूर्ववत्, पृ.277
5. पूर्ववत्, पृ.344
6. पूर्ववत्, पृ.282
7. पूर्ववत्, पृ.291
8. पूर्ववत्, पृ.358
9. पूर्ववत्, पृ.360-361
10. पूर्ववत्, पृ.390
11. पूर्ववत्, पृ.72
12. पूर्ववत्, पृ.74
13. पूर्ववत्, पृ.74
14. सहायक ग्रन्थ सूची
15. मैत्रेयी पुष्पा, *अल्मा कबूतरी*, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2000
16. डॉ. प्रीति यादव, *मैत्रेयी पुष्पा नारी संवेदना के स्वर*, कानपुर,विनय प्रकाशन, 2018
17. डॉ. आकांक्षा श्रीवास्तव, *हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन*, कानपुर, ज्ञानोदय प्रकाशन,
18. रमणिका गुप्ता, *आदिवासी समाज और साहित्य*, नई दिल्ली, कल्याणी शिक्षा परिषद्, 2015

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन

डॉ.समयलाल प्रजापति
सह प्राध्यापक
ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा
जिला रीवा (म.प्र.)

विनीता ठकरेले लोधी
शोधार्थी
एम.ए., एम.पी. सेट (हिन्दी)
अवधेश प्रताप सिंह, वि.वि. रीवा (म.प्र.)

प्रस्तावना:-हमारा भारतीय समाज आंचलिकता से भरा पड़ा है। सभी समुदाय के लोगों का जीवन यापन अधिकांश ग्रामीण अंचल क्षेत्र में ही हुआ है। देश की लगभग 80प्रतिशत जनसंख्या अंचल में ही निवास करती है। अंचल में विभिन्न धर्म, जाति, वर्ग, समुदाय के लोग निवास करते हैं। उनका जीवन स्तर निम्नता तथा समस्याओं को लिए रहता है। अंचल क्षेत्र का उत्तरोत्तर विकास ही भारत का उत्तरोत्तर विकास माना जाता रहा है, क्योंकि इन क्षेत्रों में अधिकांश जनसंख्या अपने जीवनयापन के लिए कृषि पर निर्भर रहती है। इन सब में पुरुषों के साथ- साथ नारियों का भी योगदान अहम रहा है। आंचलिक उपन्यासों में नारी विभिन्न रूपों में शोषित हुई है, जिसका विस्तृत उल्लेख विभिन्न आंचलिक उपन्यासों में प्रतिबिंबित किया गया है।

अंचल शब्द का अर्थ:- 'अंचल शब्द संस्कृत के अच् धातु से 'अलच' प्रत्यय लगाने से बना है। अंचल शब्द का अर्थ 'वस्त्र', 'साड़ी का पल्ला' या 'छोर, 'किनारा', 'तट', सीमा के समवर्ती , भू-भाग, 'जनपद', 'प्रदेश', 'देश का', 'प्रांतर' भाग है।1

'हलयुध' कोष में अंचल शब्द की व्युत्पत्ति और व्याख्या इस प्रकार दी है-

''अंचलः पु. (अंचति प्रांत भागं गच्छति अंच$अलच्)
वस्त्र प्रांत भागः अंचल इति भाषा
उरु कुरड.ग का दृशश्चकंचलचेलांचलो भाति''
इति साहित्य दर्पण।
कर्पास वादरं प्रोक्तं वस्त्रयान्तों मतेऽअंचल''[2]

डॉ. आदर्श सक्सेना - अंचल को एक इकाई मानते हुए लिखते हैं- ''कोई भी विशेष भाग जिसकी अपनी संस्कृति हो अपनी एक भाषा हो, अपनी एक समस्याएँ हो, संक्षेप सामान्य देश भी जहाँ विशिष्टता का आभास दे, अंचल कहा जा सकता है।''3 अंचल में सामाजिक मान्यताएँ, , प्रथाएँ, परम्पराएँ, उत्सव, लोकनृत्य, लोक-गीत का चित्रण होता है, जिसमें अंचल की भाषा होती है। आंचलिक समाज पुरुष प्रधान समाज है जिसमें नारी जीवन अस्मिता से भरा होता है। नारी की विभिन्न समस्याएँ होती हैं, जिनमें विधवा समस्या, अवैध यौन संबंध, बलात्कार , वेश्यावृत्ति, नारी शोषण, नारी परित्यक्ता, अंधविश्वास प्रमुख है।

'अंचल' में नारी का स्वरूप - प्राचीन काल में नारी शिक्षा क्षेत्र से वंचित थी, विभिन्न चुनौतियों से भरी पड़ी थी। नारी को गुलाम बनाना प्रमुख प्रवृत्तियॉ रही हैं, जिसे अंधकार युग कहा जाता है, क्योंकि समाज में नारी का शोषण अधिक हुआ है। ग्रामांचलिक नारी जीवन शोषित एवं प्रताड़ित रही है। समाज के उच्च कुलीन जमींदार तथा अमीर वर्ग सताते रहे हैं। संजीव द्वारा रचित 'धार' उपन्यास में आदिवासी स्त्रियाँ अमीरों के हवस का शिकार बनती रही। जेल से छूटते ही मैना मंगर को बताती है- ''आपको विश्वास न होता हो तो जेल भी चलने को तैयार है, जेल में जेलर ने हमरा साथ जबर्दस्ती किया, उसी खातिर बच्चा उसका मुँह पर मार के हम चला आया''[4]'अल्मा कबूतरी'मैत्रेयी जी द्वारा लिखित उपन्यास में कबूतरा जनजाति की स्त्रियों का शोषण सभ्य समाज के लोग करते हैं, वे लोग औरतों पर अपना अधिकार समझते हैं। मंसाराम कदम बाई को अपनी हवस का शिकार बनाता है, कमजोर स्त्रियॉ विरोध नहीं कर पाती है, इसका वर्णन करती हुई लेखिका डॉ शीला पटेल लिखती है कि ''हाय, सदा घाघरा उतारता आता था।''[5]

'कसप' मनोहर श्याम जोशी द्वारा रचित उपन्यास में बेबी गुलनार , बबली-दी, शास्त्राणी दया और गुडिया आदि नारी पात्र है। गुलनार अपने सौतेले पिता से शोषित है। वह अपनी शोषित कथा सुनाती हुई कहती है- ''मैं जानती हूँ कि इस नुस्खे का मर्द किस तरह उपयोग करते हुए आये हैं, औरत के शोषण के लिए''।[6] इस प्रकार की घटना समाचार पत्रों एवं संचार माध्यमों में पढ़ने तथा सुनने में आती है, सौतेले पिता या भाई अपनी बहु-बेटियों के साथ शारीरिक शोषण करते हैं, इसकी प्राथमिकी भी कई थानें में दर्ज हुई है।' क्याप' उपन्यास में मनोहर जोशी लिखते है कि एक भोली लड़की एक दलित युवक से प्रेम करती है। वह अपने प्रेमी के साथ भाग जाना चाहती है। वह युवक उसकी भावना के साथ खेलता रहता है, किंतु भागने के लिए तैयार नही होता है, तब वह लड़की आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाती है, इस प्रकार नारी का कई रूपों में शोषण तथा धोखा हुआ है।''पहाड़ चोर' सुभाषपंत द्वारा रचित उपन्यास में नारी शोषण को वर्णित किया है, जिसमें पुनिया का छोटा भाई जीत्ते, रधिया को चोट पहुँचाते हुए भाग जाता है। गाँव में पुलिस आती है, पुनिया के प्रति दरोगा जी सहानुभूति दिखाते हैं। तलाशी लेने के बहाने पनिया को घर के अंदर बुलाते हैं। इस प्रकार यहाँ शोषण का इरादा स्पष्ट होता है- ''वहीं तो नहीं छिपा बैठा हरामी''मै तलाशी लेकर आता हूँ , वहीं छिपा होगा। चल लड़की किधर है तेरा घर?'' इस प्रकार दरोगा की ओछी नियत प्रदर्शित होती है। नारी हमेशा भारतीय समाज में उपेक्षित रही है तथा शोषित हुई है।

अवैध यौन सम्बंध-ग्रामीण जीवन में सबल वर्ग का व्यक्ति दुर्बल वर्ग की औरतों से अवैध सम्बंध रखते हैं, जबकि सजातीय विवाह आदर्श माना जाता है, किंतु इसका उल्लंघन करते हैं। जमीदारों द्वारा दुर्बल नारी को रखैल रखने की प्रवृत्ति पाई जाती रही है। डॉ. विमलाशंकर नागर लिखते हैं कि -''जो पुरुष अथवा महिला सजातीय विवाह का पालन न कर विजातीय महिला अथवा पुरुष से यौन सम्बंध स्थापित करता है, उसे समाज दण्डित करता है तथा कभी -कभी शारीरिक एवं आर्थिक दण्ड भी दिया जाता है।''[8] आंचलिक जनजीवन में अवैध यौन सम्बंधों की समस्या उभर रही है। स्त्री -पुरुष के सम्बंधों को लेकर नैतिकता का ह्रास ग्राम चित्र नए कथा साहित्य में अंकित हुए हैं। ग्रामांचल में गरीबी के कारण यह काम मजबूरी में करना पड़ता है जो उपन्यास में चित्रित हुआ है।

नारी शोषण की समस्या-ग्रामांचल में नारी शोषण की ज्वलंत समस्या रही है। भारतीय समाज पुरुष प्रधान होने के कारण स्त्री का स्थान गौण है। भारतीय संविधान में नारी को समान अधिकार उपलब्ध करा दिया है किंतु इसका लाभ अधिकांश केवल शहरी नारियों को ही मिलता है। ग्रामीण और मजदूर स्त्रियॉ इससे उपेक्षित रही हैं। नारी शिक्षा का प्रचार प्रसार का लाभ भी सामान्य नारियों को नहीं मिल सका है। भारतीय समाज में नारी का जीवन घर से बाहर तक शोषित एवं प्रताड़ित रहा है। आज नारी का शोषण घर से लेकर बाहर तक सभी स्तरों पर दिखाई दे रहा है। समाज का उच्चकुलीन जमीदार और अमीर वर्ग सताता है। इस संदर्भ में श्री गोपालराय का मत है कि- ''बलात्कार, पति द्वारा पत्नी का मानसिक-शारीरिक उत्पीड़न परम्परागत नारी संहिता को स्वीकार करने की स्त्री की मजबूरी स्त्री को आर्थिक- राजनीतिक अविष्कारों से वंचित रखने की साजिश आदि नारी शोषण और दमन के प्रमुख रूप है।''[9] इस प्रकार नारी का शोषण होता रहा है, उसका प्रतिफल वह अत्याचार, अनाचर और वासना का शिकार बनती रही। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में नारी शोषण की स्थिति ने घर से बाहर तक अशान्ति और बेचैनी का माहौल बना दिया है। यह आंचलिक उपन्यासों में प्रतिबिम्बित होता है। मैत्रेयी पुष्पा कृत 'चाक' उपन्यास में स्त्रियों के शोषण को प्रदर्शित किया है। यहाँ धर्म और संस्कृति के नाम पर नारी शोषण के माध्यम से नारी की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है। रूकमणि का फाँसी लगना, रामदेई का कुएँ में कूदना, नारायणी का करबन नदी में कूदना, नारी शोषण के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ''इस गॉव के इतिहास में दर्जे दास्ताने बोलती हैं, रस्सी के फंदे पर झूलती रूक्मणी, कुएँ में कूदने वाली रामदेई, करबन नदी में समाधिस्थ नारायणी.....ये बेबस औरतें सीता मइया की तरह 'भूमि प्रवेश' कर अपने शील-सतीत्व के लिए कुरबान हो गई। ये ही नही, और न जाने कितनी।''[10]बाल विवाह की समस्या देश के विभिन्न क्षेत्रों में बसे पिछड़े अंचलों में बाल विवाह का अत्यधिक प्रचलन पाया जाता है। ''राजस्थान में आखातीज पर 30-40 हजार बालविवाह एक दिन में सम्पन्न हो जाते हैं। मजेदार बात यह है

कि इन बाल विवाहों में मंत्री और सरकारी अधिकारी भी उपस्थित होकर बाल विवाह के नासूर को बढ़ाते हैं।''[11] सोनामाटी उपन्यास में करइल की अंचल की निम्न जाति के लोगों में बाल विवाह आम बात है। हलवाहा दिपवा, गरीब, अशीक्षित और अज्ञानी है। यही कारण है कि अपनी लड़की भंगरी की शादी बचपन मे ही सम्पन्न कराकर उत्तरदायित्व से मुक्त होता है। ''इसकी शादी तब हो गयी जब यह माँ की गोद मे थी''[12] बचपन मे ही माता-पिता अपने बच्चों के सपने तथा जीवन को कैद कर देते हैं। यह सभी अज्ञानता के कारण होता है। नाबालिक ससुराल में समायोजन करने में असमर्थ पायी जाती है तथा उनका जीवन अंधकारमय हो जाता है। आंचलिक जीवन में अशिक्षा, परंपरा, अज्ञानता अनेक मानसिकताओं के कारण बाल विवाह किये जाते हैं, जिससे नारियां शोषित हो जाती हैं। वर्तमान में शिक्षा के प्रचार प्रसार से बाल विवाह करने में कुछ कमी आई है।

विधवा विवाह-प्रारम्भिक भारतीय जीवन में विधवा का पुनर्विवाह निषिद्ध था। यदि बचपन में विधवा हो जाए तो नारी को सती होना पड़ता था या आजीवन उपेक्षित अभिशप्त जीवन जीना पड़ता था। 'विकल्प' उपन्यास में सूरती चौबे का विधवा, राजपूतानी से प्रेम हो जाता है। अपनी जाति एवं बिरादरी के बंधनों से आंतकित है। इसी कारण से पलायन कर विधवा के साथ शादी करते हैं। ''राजपूत परिववार की जवान विधवा से चौबे की आसनाई हो गई। दोनों कहीं भाग गये।''[13] वे अपनी पहली पत्नी को त्याग देते हैं। इस प्रकार नारी के साथ धोखा तथा शोषण होता है।

दहेज प्रथा-भारतीय समाज विभिन्न कुरीतियों से भरा पड़ा है। उनमें से एक ज्वलंत समस्या है- दहेज प्रथा। इसी कारण से बालिका के जन्म लेते ही उसे परिवार के लोग आगे की दहेज सम्बन्धी समस्या को देखते हुए बालिका के जीवन का अंत करने का दुष्कृत्य कर देते है। यह नही सोचते कि उस बालिका का जीवन कितना महत्वपूर्ण है। ''आज के युग में दहेज ने सुरसा का मुँह बना लिया है।, वर्तमान में यह एक सौदा हो गया है।''[14] शिक्षित युवा दहेज का विरोध करने के बजाय किसी अन्य बहाने से दहेज लेने के पक्ष में होते हैं। लड़कियों की शादी अच्छे परिवार में न होने के कारण कई लड़कियां आत्महत्या तक कर लेती हैं। यह प्रथा सभी धर्म एवं जातियों में विद्यमान है। कहीं इसका रूप प्रकट होता है तो कहीं छिपा हुआ है। इसमें अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, हिन्दू मुसलमान सभी शामिल हैं। उच्च वर्गीय परिवार 'धारा' उपन्यास में महेन्द्र बाबू अपनी लड़की मनोरमा की शादी अच्छे सम्पन्न परिवार के एक एस.पी. लड़के से करना चाहते हैं। दहेज में दस लाख रुपये की मांग होती है। यह सुनकर महेन्द्र बाबू की पत्नी स्तब्ध होकर कहती है-''दस लाख! बाप ना देखलस, आजा ना देखलस! ई देखी जमाता के हाल! दस-दस लाख तिलक दहेज! अ कालिहए लड़की के जरा के मार डाले तो .....''?[15]आंचलिक समाज में नारी का स्थान निम्न कोटि का रहा है। हमेशा नारियाँ प्रताड़ित होती रही हैं। घर संभालने के बावजूद उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। नारी का जीवन अतिशोचनीय तथा असुरक्षित है। ''शोषण के विरूद्ध आवाज उठा सकना भी उसके बस की बात नहीं है।''[16] अन्याय एवं अत्याचार सहना उसकी नियति है। 'महर ठाकुरों का गांव' उपन्यास में पहाड़ी अंचल में रूग्ण मानसिकता के कारण नारी का स्थान निम्न है। इनकी दुनिया घर एवं कृषि तक ही सीमित है। बरसों से नारी को अबला और असहाय समझकर शोषित करते रहे हैं। गांव एवं अंचलों में इसके भयावह दर्शन होते हैं। ''भारत के सरकारी आंकड़े बताते हैं कि हर 51 मिनट में एक औरत के साथ बलात्कार होता है, हर 54 मिनट में एक औरत के साथ अपराधिक जघन्य कुकृत्य होता है और हर 21 मिनट में एक औरत दहेज के कारण जलाकर मार दी जाती है या उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित किया जाता है।''[17] यह सत्य है कि नारी चाहते हुये भी अपने आपको सुरक्षित नहीं रख पाती है।

नारी जीवन में चेतना का संचारनारी की प्रकृति हमेशा से ही सहनशील रही है जहाँ तक हो वह पीड़ा सहती रहती है बर्दाश्त के बाहर होने पर उसकी प्रतिक्रिया का ज्वालामुखी प्रस्फुटित होता है। वर्तमान नारी अपने अस्तित्व एवं अधिकार के प्रति सजग हो गई है। शिक्षा ने उसे नई मानसिकता प्रदान की है। उसकी दशा में परिवर्तन और दुनिया में विस्तार हो गया है। परंपरागत और शोषित जीवन को वह अब नहीं मानती बल्कि उसका विरोध करने लगी है। गाँव तथा पिछड़े अंचलों की नारी भी अपने अधिकार एवं अस्तित्व के प्रति संचेत हो रही है।'' ''ग्रामीण नारी अपने कार्य व्यवहार एवं वैचारिक चिंतन में नई मानसिकता लिए हुए हैं। परंपराओं के सारहीन संदर्भ आज उसे मान्य नहीं। वह जीवन के विविध क्षेत्रों में अपनी निजता का अहसास निरंतर जगा रही है। भारत के वज्र देहातों या उन जनजातियों की नारियाँ भी जहाँ शैक्षणिक चेतना का प्रसार अभी नहीं हो पाया है, अपने मानवीय अधिकारों के प्रति जागरूक दृष्टिगत होती हैं।''[18]

अंचलों में नारी शिक्षा की गति अत्यंत धीमी है। उच्च वर्ग एवं उच्च जातियों में परिवर्तन पाया जाता है लेकिन निम्न वर्ग और आदिवासी नारी शिक्षा से अछूती पाई जाती हैं। अशिक्षा के कारण उसे अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है।

निष्कर्ष :-

आंचलिक उपन्यासों में प्रदर्शित नारी का जीवन बहुत यातना भरा रहा है। नारी की अस्मिता की धज्जियां विभिन्न रूपों में धनी वर्ग, जमींदार, बड़े अफसर, पुलिस प्रशासन आदि के द्वारा उड़ाई गई है, किंतु आज की नारी के हृदय में समानता की भावना पायी जाती है। आधुनिक युग में अंचल की नारियों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति आ गई है तथा वह पुरुष के समान ही आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में समानता की माँग करने लगी है। आज उसका जीवन क्षेत्र विशाल और व्यापक हो गया है। ग्रामीण महिला विभिन्न क्षेत्रों में विकास करना चाहती है, डॉक्टर, इंजीनियर, टीचर बनना ही नही यहाँ तक कि विमान चालक, रेल चालक, मोटर, बस चालक और कंडक्टर भी बनना चाहती हैं। जागरूक नारी जटिल परिस्थितियों में पूर्ववर्ती नारी के समान घुटने टेकने की बजाय अपार बल एवं शक्ति से उसका निराकरण करते हुए अपने जीवन को सुखमय बनाने में प्रयासरत है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1.उपाध्याय, मृत्युंजय, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृष्ठ 996
2.जोशी, जयशंकर, हलायुध कोश, पृ. 11
3.सक्सेना, डॉ. आदर्श, हिंदी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि, पृ. 20
4.संजीव 'धार' उपन्यास पृष्ठ 12
5.पटेल, डॉ. शीला, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में युगबोध पृ. 28
6.जोशी, मनोहर श्याम 'कसप' पृष्ठ 159
7.पंत सुभाष 'पहाड़ चोर' पृ. 194
8.नागर, डॉ.विमलाशंकर, हिन्दी के आँचलिक उपन्यास: सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ।
9.अक्षय, गोपालराय, बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिन्दी उपन्यास, मार्च-अप्रैल , 2003
10.पुष्पा, मैत्रेयी , चाक उपन्यास, पृ. 7
11.माहेश्वरी, रामगोपाल, नवभारत बुधवार, 14 अप्रैल 1999 (सुरुचि) (18 अप्रैल अक्षय तृतीया पर, सुशील कुमार वर्मा)
12.विवेकीराय, सोनामाटी उपन्यास, पृष्ठ 268
13.शुक्ल, रामदेव, विकल्प उपन्यास
14.आहूजा, डॉ. राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, पृष्ठ 180
15.संजीव, धार उपन्यास, पृष्ठ 166
16.डॉ. निरूपमा
17.यादव, डॉ. कालीचरण, मड़ई-11 पृ. 141 (लोक में नारी जीवन की व्यथा-कथा, डॉ. सूरज पालीवाल)
18.गुप्त, डॉ. ज्ञानचंद, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृ. 133

इक्कीसवीं सदी के हिंदी लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी

बबीता कुमारी
कर्नाटका केन्द्रीय विश्वविद्यालय
मो.9948019718

सारांश : प्रस्तुत शोध पत्र में नारी विकास किस प्रकार समाज में निहित उस पर केन्द्रित किया गया है। भारतीय समाज में यह सच्चाई सर्वविदित है कि नारी को हाशिये पर रखा गया है परन्तु अपने को निर्बल न समझ इक्कीसवीं सदी की नारी ने अपना आत्मबल बढ़ाकर समाज में अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हुई। जिससे नारी और पुरुष के संबंध में सामंजस्य के भाव उत्पन्न हुए। अब नारी इस युग में नव पुरुष की कामना करती है। अगर वह मिले तो ठीक नहीं तो 'एकला चलो रे' अब वह रुकेगी नहीं।'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है। वहां देवता निवास करते हैं नारी निर्माणकर्ता है उसकी अवहेलना करके समाज का विकास किसी भी दृष्टिकोण से संभव नहीं हो सकता है।

शब्द कुंज : अस्मिता, अस्तित्व, सशक्तिकरण, जागरूक, सौहार्द, बुर्जुआ, पुरातनपंथी, चेतना , क्रांतिकारी, पितृसत्ता, नारी ,विकास ,दृष्टीगत,आत्मबल।

प्रस्तावना : नारी और पुरुषों के संबंधों का मुल्यांकन समाज में हमेशा से पुरुषवादी दृष्टिकोण से होता आ रहा है। समानता, स्वतन्त्रता और सौहार्द्र की बुनियाद के दम पर हाशिए पर खड़ी नारी को केंद्र में लाया गया। नारी के उत्थान में पूरा विश्व अग्रसर हुआ जिससे भारतीय नारी चेतना का स्वर तेज हुआ है। साहित्य का समाज के विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है वह भविष्य के आईने को दिखाने का कार्य करती है।

विषय वस्तु : भारतीय समाज की ऐतिहासिक सच्चाई है कि नारी को हमेशा से दोयम दर्जे का समझा गया परन्तु इक्कीसवीं सदी में उस स्थिति से दुखी होने के बजाए उन कारकों का खोज निकालना है जो उस दयनीय स्थिति को बनाने और पालन करने के उत्तरदायी है।उनके प्रति जागरूक होना ही नारी विमर्श की संघर्ष चेतना है। तुलनात्मक और आर्थिक परिस्थिति नारी शोषण को पैदा करता है। उसे सही करने के लिए सामाजिक संरचना में परिवर्तन लानी होगी।रेखा कस्तवार का कहना है –**"यह स्वयं चेती स्त्री के पाए हुए स्वाधिकार है जहाँ उसे अपने खिलाफ होने हर गैर वाजिब सुलूक से खुद निपटना है।"१**

भारतीय दृष्टिकोण –भारतीय संस्कृति का स्थान विश्व की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति में गौरवमयी रही है। भौगोलिक स्थितियों और इतिहासों में इसकी विशिष्ट पहचान रही है। वैदिक काल में नारी को सम्मानीय स्थान प्राप्त था। जो उनके विकास के मार्ग को प्रशस्त करते थे। यज्ञ कार्य उनके बिना पूर्ण नही होते थे। नारियों द्वारा रचित ऋचाओं का पाठन होता था। पितृसत्तात्मक समाज में आदर्श विचार और मान्यताओं के कृत्रिम प्रभाव से मुक्त स्त्री के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास दृस्तिगत हुआ। जिसका मुख्य कारण था साहित्य में नारी की सहभागिता। जिसके कारण नारियों को समाज में अधिकार मिला।

वैदिक काल - वैदिक ग्रंथो में लिखा है कि कोई भी बिना शिक्षा ग्रहण किए हुए नहीं रह सकता। माता –पिता पुत्री प्राप्ति हेतु पूजा – पाठ करते थे। वैदिक काल में मैत्रेयी ,गार्गी व लीलावती जैसी विदुषियों ने ही वेदों और ऋचाओं की रचना की थी। पुत्र –पुत्री के पालन –पोषण ,शिक्षा –दीक्षा में कोई भेद –भाव नहीं था। आजीवन कुमारी रहने पर पुत्री को पिता की संपत्ति में अधिकार प्राप्त था। वह उन्मुक्त वातावरण में जीवन व्यतीत करती थी। **वैदिकोत्तर काल-** वैदिकोत्तर काल में शादियाँ प्रतियोगिता के आधार पर किया जाता था। आर्य समाज में समय के साथ स्त्रियों में परिवर्तन आया।निम्न व उच्च जाति की नारियों में भेद –भाव शुरू हुआ।

रामायण काल -रामायण काल में सीता को तो राम के संदेह का शिकार होना पड़ा। वाल्मिकी और व्यास ने स्त्री और उसके चरित्र के कितने ही उच्च आदर्श से परे होने के वावजूद पुरुष के रूप में स्त्री पर अपना पूर्ण स्वामित्व जताते थे।

महाभारत काल-महाभारत काल की द्रोपदी को पांडवों के शतरंज के दांव का हिस्सा बनना पड़ा था। सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ी और द्रोपदी को वस्तु के रूप में दांव पर लगा कर भरी सभा में चिरहरण किया गया परन्तु सीता स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण निर्भीक निर्णय का तेज दिखाया सीता अपने समय की पहली नारी थी, जिसने पति के साथ ही सही घर की चौखट लांघकर अपनी आँखों से दुनिया देखी थी परंतु सीता का सबसे बड़ा सच यह है लक्ष्मण रेखा लाँघ जाना यानि आपात स्थिति में अपने विवेक के हिसाब से नियमावलियों में परिवर्तन का साहस। सीता के धरती में समा जाने जैसा प्रतिरोध पितृसत्ता का विरोधी ध्वनि सुनाई पडती है। द्रोपदी भी निर्भय एवं स्वतंत्र होकर उस सभा के विरुद्ध आवाज उठायी। सावित्री का तेज भी कम विलक्षण नहीं है। यम एक पर पुरुष के रूप में ही थे मर्यादा के अनुसार परछाई भी सावित्री पर नहीं पड़नी चाहिए पर सावित्री ने हिम्मत की और नियमविरुद्ध उनके पीछे चल पड़ी उन्हें तर्क से हराया और वरदान प्राप्त करके लौटी ।नारी की सामाजिक स्थिति बदलने का प्रयास अहीर कन्याओं ने कठोर बंधन तोड़कर कृष्ण से प्रेम करने का साहस दिखाया। आर्य ब्राह्मण समाज ने पुरुष सत्ता को सर्व शक्ति रूप बनाकर नारी के वजूद को अपाहिज बना दिया जो मनु स्मृति में दिखलाई पड़ता है –

"न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति/शुद्रो नाधियाना मिति श्रुति "

आदि कठोर सूत्रों से नारी के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न किया। मनु द्वारा निर्मित धर्मसूत्रों के अनुसार स्त्री बचपन में पिता के अधीन ,युवावस्था में पति के अधीन और वृधावस्था में पुत्र के अधीन रहती है अर्थात् पूरा जीवन पराधीन रहती है।मनु द्वारा निर्मित सूत्रों ने नारी की दयनीय स्थिति को स्थापित किया।मनु ने बल विवाह ,अनमेल विवाह आदि को उचित ठहराया। विधुर दूसरा विवाह कर सकता है लेकिन विधवा के लिए सोचना भी पाप माना जाता है नारी का धर्म पति सेवा माना जाता है।बौध धर्म एवं जैन धर्म में नारियों की स्थिति पराकाष्ठा पर पहुंच गई। नर्त्तकियां ,वैश्याएँ ,नगर वधूएँ ये सभी पुरुषाधीन हो गई। जिसका परिणाम हुआ कालान्तर में युद्ध की स्थिति बनी शत्रु की संपत्ति की तरह नारियों को लुटा जाने लगा। उनके स्वत्व, अस्मिता की रक्षा पुरुष या फिर भाग्य के भरोसे रहने लगी।

मध्यकाल-मध्यकाल में नारियों पर अत्याचार होने लगी वे बंदिशों में रहने लगी। नारियों का अपना कोई वजूद ही नहीं रहा परन्तु आधुनिक काल में जागृति आयी। ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार ,शासन ,प्रशासन के माध्यम से पश्चिमी औद्योगिक क्रांति और वैज्ञानिक सोच ,नई शिक्षा प्रणाली का नवजागरण आया। तब मानवतावादी विचारकों का ध्यान नारियों की दुरावस्था पर गया। राजा राममोहन राय ,स्वामी दयानन्द सरस्वती ,गोविन्द रानाडे आदि जैसे चितकों ने स्त्री के दमन तथा घुटन से उबरने का प्रयास शुरू किया। तब जाकर नारियों में धीरे –धीरे आत्मविश्वास और आत्मचेतना के भाव जगे। १८५७ ई . के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई ,जीनत महल ,बेगम हजरत महल जैसी वीरांगनाओं ने अपने तेजस्विता से इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों से अपना नाम अमर किया। नारी को मनुष्यता की महान नैतिक शक्ति के रूप में रेखांकित किया गया और घोषित किया गया कि नारी अब पुरुषों द्वारा दबी –कुचली दासी नहीं बल्कि सहगामिनी है। "दस द्वारे का पिंजरा" उपन्यास में अनामिका ने रमाबाई के द्वारा यह दृस्तिगत करने का प्रयास करती है कि वह पितृसत्ता के विरोधी थी वह सदाव्रत से प्रेमविवाह करना चाहती थी जिसका विरोध करते हुए उनकी माता का सोचना था कि **"सदाव्रत का इनके साथ – साथ फिरना भी ठीक नहीं है, लोग बातें बनाएंगे प्रेम विवाह उनका भी हुआ था, पर जाति के बाहर अज्ञातकुल बालक से बेटी की शादी मस्तिष्क में अटती ही नहीं थी।"२**

सं .१८५६ ई .में ईश्वरचंद विद्यासागर ने विधवा विवाह को क़ानूनी मान्यता दिलायी। अनामिका का उपन्यास "दस द्वारे का पिंजरा" में मैसूर की पंडिता रमाबाई ने नारी उन्मेष के लिए व्यापक जनमत बनाया और नारियों के मताधिकार के लिए संघर्ष किया। उनके अनुभव के अनुसार शिक्षित होकर आत्मनिर्भर बने बिना स्त्री मुक्ति संभव नहीं हो सकता। यानि कब तक मुझे रोकोगे को नारियों ने सिद्ध कर दिया। नारियों में स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता की शुरुआत हुई। विधवा होना अभिशाप न मानकर विधवाओं की भलाई के लिए काम करने का निश्चय किया। सन १८८२ ई .में पुणे में आर्य महिला सभाओं की स्थापना की। विधवा की दुर्दशा देखकर विधवा आश्रम बनाने के लिए धन जुटाने के लिए सन १८८३ में पंडिता रमाबाई ब्रिटेन गई। इसके

खर्चे के लिए 'स्त्री धर्म नीति' नामक पुस्तक लिखी। 'द हाई कास्ट हिन्दू विमेन 'इस पुस्तक में इन्होने भारतीय नारी की दशा का वर्णन किया। अमेरीकी महिलाओं के सहयोग से 'अमरीकन रमाबाई एसोसिएशन' बनाया। इसका उद्देश्य भारत में विधवा आश्रम चलाने के लिए निरंतर धन का प्रबंध करना था। सन .१८८९ ई .में पूना में विधवाओं और निराश्रितों के लिए 'शारदा भवन 'की स्थापना की। 'मुक्ति सदन 'और 'कृपा सदन 'खुले जिसमें विधवाओं और विवाहित नारियों को सिलाई – कढाई प्रशिक्षण दिया जाता था। जिससे कि नारी स्वावलंबी बन सके। उसीप्रकार "मिलजुल मन" की मोगरा और गुल की मार्फत से लेखिका ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि समाज में नारी को अपना स्थान बनाने के लिए शिक्षित होना जरूरी है जैसे –"और लो ,शुभ दिन है, लड़की हुई तो क्या, बड़ा काम किया है, शाबाशी मिलनी चाहिए।"३ जब गुल ग्यारहवीं में प्रथम आयी तो उस वक्त मसूरी घुमने गयी थी वही पर उसे अपना रिजल्ट मालूम हुआ अत: शिक्षा के द्वारा नारी को समाज में सम्मान मिलता है। श्री डॉ .के .कर्वे और रविन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा और नारी जागरण के क्षेत्र में भागीदारी दी। सन १९११ ई .में श्री डॉ .के कर्वे ने महिला महाविद्यालय की स्थापना की और सन .१९१६ ई .में महिला विश्वविद्यालय की स्थापना किया गया। सरला देवी ,एनी बेसेंट ,सरोजिनी नायडू ,कमला देवी चट्टोपाध्याय ने भी औरतों में जागृति फैलाने का कार्य किया। सन .१९७० ई .में पूना में सत्य शोधक समाज की स्थापना की जिसका मूल उद्देश्य था नारी शिक्षा। उन्होंने ब्राह्मण ,जातिवादी पितृसत्ता का बहिष्कार किया जो दलितों पर अत्याचार करते थे। ज्योतिबा फुले का मानना था शुद्र और स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से इसलिए वंचित रखा ताकि वे मानवाधिकारों की समानता और स्वतन्त्रता के महत्व को न समझे और क़ानूनी रीति रिवाज की व्यवस्था के कारण निम्न स्थिति को स्वीकार कर विकास न कर सकें। सन .१९७३ में सोशलिस्ट पार्टी की मृणाल गोरे और सी .पी .आई की अहिल्या रांगनेकर मूल्यवृद्धि के खिलाफ महिलाओं में जागृति लाने तथा उन्हें इकटठा करने का प्रयास किया। सन .१९७४ ई .में गुजरात में 'नवनिर्माण' आन्दोलन में भी महिलाओं का भागीदारी था। इसी वर्ष हैदराबाद में पहला सचेतन नारी संगठन (Progressive organization of women)अस्तित्व में आया ।सन .१९७५ ई .में यूनाइटेड नेशन्स ने अंतराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया ८ मार्च को महिला दिवस के रूप में मनाया गया। सन .१९८० के बाद महिला संगठन जिसमें मुफ्त क़ानूनी सलाह ,स्वास्थ –संबंधी मशविरा और रोजगार सम्मत प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

पाश्चात्य दृष्टिकोण:–आदिम कालखंडों से लेकर मध्ययुग तक पश्चिमी राष्ट्रों में भी स्त्री स्वतंत्र नहीं थी उस पर अनेकों बंदिशे लगाई गई। पुरुष उन्हें स्वतंत्र करने से घबराता। उसकी इसी मानसिकता को सिमोन द बोउवार स्पष्ट करती है – "पुरातनपंथी बुर्जुआ अब भी सोचता है कि औरत की स्वतन्त्रता पुरुष के स्वार्थों और नैतिक मूल्य के लिए खतरनाक साबित होगी ।कुछ पुरुष औरत की प्रतियोगिता से घबराता है कुछ यह कहते है कि औरत के नौकरी करने से वे अपनी नौकरी के अधिकारों से वंचित होते हैं। ये पुरुष औरत के अधिकारों पर तो प्रश्न उठाते है किन्तु अपने अधिकारों के बारे में बिल्कुल आश्वस्त रहते हैं। औरत के दामन में दमनकर्ता का और भी स्वार्थ छिपा हुआ है । दमन की इस प्रक्रिया में एक छिछला पुरुष भी औरत की तुलना में अपने आपको श्रेष्ठ समझने का पाया जाता है ,उसके अहम को तुष्टि मिलती है।"[४] जब तक पुरुषों के नजर में नारी संपत्ति तक रहेगी तब तक उसका अपमान ,अवहेलना ,व्यभिचार ,तथा बलात्कार जैसे शोषण होते रहेंगे ।अत : इस अपराधी प्रवृति में परिवर्तन लाने के लिए पुरुषों की सोच में परिवर्तन लाने होंगे इस सन्दर्भ में सिमॉन कहती है – "जब तक समाज में निजी संपत्ति की अवधारणा प्रचलित रहेगी और पुरुष स्त्री को अपनी संपत्ति मानेगा ,तब तक स्त्री द्वारा किया गया व्यभिचारी हीनतम अपराध माना जाएगा। ऐसा कोई दंड विधान पुरुष पर लागू नहीं होता। "[५] पाश्चात्य देशों में सामाजिक नियम कठोर थे दोनों के लिए सामाजिक नियम अलग थे ।जिस धर्म का अन्वेषण पुरुष ने किया ,वह उसकी अधिपत्य की ईच्छा का अनुचिंतन है। "[६] 'मेरी वोल्सटन की प्रसिद्ध पुस्तक (Vindication of the Right of Women) सन १७९२ ई .में लंदन में प्रकाशित जिसमें स्त्री को मनुष्य के प्राकृतिक हक मिलने की बात की है।पश्चिमी में नारी विमर्श को राजनैतिक,सांस्कृतिक आंदोलनों के द्वारा प्रकट किया गया। वैयक्तिक स्वतन्त्रता की मांग सबसे पहले 'बेकन ह्यून वाल्टर रूसों द्वारा उठाया गया। सिमॉन द बोउवार की पुस्तक 'The Second Sex'में नारी विमर्श के प्रश्नों को उठाया गया। जान स्टूवर्ड मिल ने स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को समान मताधिकार की मांग को उठाया। पश्चिमी राष्ट्रों में विमर्श द्वारा सामाजिक ,राजनैतिक ,आर्थिक ,सांस्कृतिक अधिकारों की मांग की गई ।जिसे स्त्री विमर्श के साहित्य के क्षेत्र में भी पाया गया। पहले साहित्य में स्त्री –पुरुष संबंध में लिंग भेद की राजनीति रही पुरुष विमर्श के रूप में। कैथनीन एक रोजर की पुस्तक 'Thinking about Women'और केट मिलट की पुस्तक Sexual Politics'की विचार ने लिंग भेद की राजनीति के खिलाफ जो नारी विमर्श उभरे उसको दबाने के लिए ही पुरुष विमर्श सक्रिय हो गये ,पश्चिम में नारी इन्ही पुरुषों के अनुशासन ,व मूल्य व्यवस्था को तोड़ने के लिए ही सार्वजनिक रूप से बाहर आ गई ।प्रभा खेतान के अनुसार –"पश्चिमी समाज में समानता का नारा बुलंद रहा है ,लेकिन उसी समाज में स्त्री –पुरुष में कदम पर भेदभाव पूर्ण व्यवहार भी है लेकिन उसी समाज में स्त्री –पुरुष में कदम –कदम पर भेदभाव पूर्ण व्यवहार भी ज्वलंत यथार्थ है। "७ सिमॉन ने दर्शाया कि पुरुष ने स्त्री का विश्लेषण स्वयं के लिए किया है वे कहती है –"मानवता का स्वरूप ही पुरुष है और पुरुष औरत को औरत के लिए नहीं परिभाषित करता है पुरुष से संबंधित। वह औरत को स्वायन्त व्यक्ति नहीं मानता । यहाँ तक कहा जाता है कि औरत अपने बारे में सोच नहीं सकती है और वही बनी रह सकती है जो पुरुष उसे आदेश देता है । इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यता पुरुष के लिए भोग की वस्तु है वह पुरुष के सन्दर्भ में भी परिभाषित और विभेदित की जाती है। "८ पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव इसप्रकार हुआ कि आज नारी स्वछन्द होकर अपना स्वरूप बना रहीं है जो कि नासिरा शर्मा के उपन्यास "शब्द पखेरू" में शैलजा के द्वारा निम्न प्रकार से दिखाई पड़ता है –"मुझे भी उनकी राह अपनानी चाहिए। तुम यही समझाना चाह रही हो मुझे न ? लेकिन वैसी स्वतन्त्रता वह हमें नहीं देते है। यह मै उस दोपहर समझ गयी हूँ अब मुझे उनकी तनिक भी परवाह नहीं। वह मम्मा के साथ सुख से रहें और मै अपना रास्ता खुद खोजने की कोशिश में हूँ ताकि आर्थिक रूप से स्वावलंबी बन सकूं। अपना व्यक्तित्व ठोस और शानदार बना सकूं।"९ आज के समय में शैलजा अपना अस्तित्व बनाने के लिए तकनीकी सुविधा का प्रयोग कर पाश्चात्य शैली का अनुसरण कर रही है। वह आत्मनिर्भर बनने का प्रयास कर रही है। जो की समाज के लिए एक जागरूक संदेश होगा। अब के समय में अपना निर्णय खुद लेने से ही विकास कायम हो सकता है।

निष्कर्ष - नारी विमर्श के अंतर्गत अब पुरुष के बन्धनों में कैद रहना नारी को स्वीकार नहीं है वह आजाद होना चाहती है। वो पुरुषों को सुधारने का उद्देश्य कम रखती है वे पुरुष व्यवस्था या पुरुषों को त्यागकर अपने स्वतंत्र निर्मित जीवन का स्वप्न देख रही है। जहाँ पुरुषों का हस्तक्षेप न रहे ,जो कि प्रकृति के विरुद्ध है यह अप्राकृतिक व्यवस्था को नारी के दासत्व से बेहतर समझती है। जबकि यह दासत्व तभी मिटेगी जब सभी की सोच में परिवर्तन आएगा। स्त्री –पुरुष विभाजन न करके प्रेमपूर्वक समान सौहार्द संबंध बनें। यहीं विमर्श का सही परिणाम माना जाएगा। भारत में नारी का सर्वोपरी स्थान बन गया है। राष्ट्रीय महिला आयोग का इसी निरंतर प्रयास से देश में नारियों की स्थिति में बहुत सुधार हुआ है। आज वह संसद सदस्यों ,राजनीतिक दलों एवं अन्य संबंधित अभिकरणों एवं व्यक्तियों से भी सहायता ले रहा है। देश के नौ राज्यों में आयोग की पहल पर महिला आयोग का गठन हुआ है। नारी का विभिन्न सम्मेलन ,गोष्ठियों में भी सम्मिलित होने लगी है। यही उनके विकास के स्वरूप को दर्शाता है।

****

सन्दर्भ-ग्रन्थ:-

1. रेखा कस्तवार :स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ पृष्ठ .सं .२६।
2. अनामिका :दस द्वारे का पिंजरा पृष्ठ .सं .४२।
3. मृदुला गर्ग : मिलजुल मन पृष्ठ .सं .११०।
4. पूर्णिमा शर्मा ,स्त्रीभी मानव प्राणीहै :सिमॉन द बोउवार (प्र .सं .)ऋषभ देव शर्मा :स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम पृष्ठ .सं .१०५।
5. सिमोंन द बोउवार,स्त्री उपेक्षिता (अनु .प्रभा खेतान)पृष्ठ .सं .५७।
6. प्रभा खेतान ,प्रगतिशील वसुधा -७८ जुलाई सितम्बर २००८ पृष्ठ .सं .४३।
7. सिमोंन द बोउवार,स्त्री उपेक्षिता (अनु .प्रभा खेतान)पृष्ठ .सं .५८।
8. सिमोंन द बोउवार,स्त्री उपेक्षिता, पृष्ठ .सं .३०।
9. नासिरा शर्मा ,शब्द पखेरू पृष्ठ. सं. ९३१।

नारी-अस्मिता के प्रश्न और 'ध्रुवस्वामिनी'

डॉ.समरेन्द्र कुमार
एशोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, श्यामलाल कॉलेज-दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना : जयशंकर प्रसाद हिंदी के अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाकारों में हैं। वे गहन उदात्त मानवीय भावों के रचयिता हैं। प्रेम और सौंदर्य के मनोरम रूप का वर्णन करने के साथ-साथ वे भारतीय संस्कृति और परंपरा को भी अपने साहित्य में उद्घाटित करते हैं। अपने नाट्य-लेखन के माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान एक ओर भारत के गौरवशाली अतीत को आम लोगों तक पहुँचाया है तो दूसरी ओर स्वतंत्रता की आवाज को भी बुलंद किया है। केवल अतीत को दोहराना उनका लक्ष्य नहीं रहा, बल्कि समकालीन जीवन की समस्याओं, युगीन चुनौतियों और उत्पन्न प्रश्नों के समाधान की खोज उनका उद्देश्य रहा है। 'ध्रुवस्वामिनी' जयशंकर प्रसाद की अंतिम नाट्य-रचना है और रंगमंचीय प्रस्तुति के अनुकूल भी है। पूर्ववर्ती नाटकों की तुलना में इसका कलेवर संक्षिप्त है, लेकिन विषय, कथ्य और संवाद-योजना की दृष्टि से यह नाटक कहीं अधिक जटिल एवं द्वन्द्वपूर्ण है। प्रसाद जी ने आधुनिक दृष्टि के अनुरूप नाटक में स्त्री-जीवन के विभिन्न प्रश्नों को बहुत ही सहृदयता के साथ उठाया है।]

बीज शब्द : स्त्री-अस्मिता, पितृसत्तात्मक, वैयक्तिकता, सामंती, परंपरा, पुरुषवादी

जयशंकर प्रसाद शाश्वत मानवीय मूल्यों के कालजयी रचनाकार हैं। उन्होंने न केवल विभिन्न साहित्यिक विधाओं को अपनी सृजनात्मकता से समृद्ध बनाया है अपितु उनके रचनात्मक प्रतिमान भी स्थापित किए। भारतीय संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट तत्वों का अपनी रचनाओं में समावेश करते हुए उन्होंने मानवीय प्रवृत्ति के विविध रूपों को जीवंत किया है। नाटक के क्षेत्र में उनकी भूमिका युग-प्रवर्तक की है। उनके नाटक स्वतंत्रता-आंदोलन की पृष्ठभूमि में स्वाधीनता की चेतना और चुनौतियों से निर्मित हैं। अपनी रचनाओं के लिए इतिहास से सामग्री ग्रहण करते हुए प्रसादजी ने इसके माध्यम से एक ओर जहाँ अतीत को पुनः नये सिरे से परिभाषित किया है वहीं दूसरी ओर समकालीन समस्याओं के समाधान की तलाश एवं भविष्य-निर्माण की परिकल्पना भी प्रस्तुत की है। इस संदर्भ में प्रसाद साहित्य के मर्मज्ञ नंददुलारे वाजपेयी का कहना है, "प्रसाद जी का साहित्य सच्चे अर्थ में नवीन जीवन से संबद्ध है और वह आधुनिक समस्याओं को प्रतिबिंबित करता है। वह साम्प्रतिक जीवन का उन्नायक है।" 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के संबंध में यह कथन अत्यंत प्रासंगिक है।

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद का अंतिम नाटक है तथा रंगमंच के अनुकूल और यथार्थ के सबसे निकट भी। पूर्ववर्ती नाटकों की तुलना में 'ध्रुवस्वामिनी' का महत्व इस रूप में है कि इसमें सामाजिक-धार्मिक परंपराओं के संदर्भ में नारी-जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए उसके समाधान का प्रयास किया गया है। नाटक का आरंभ ही पितृसत्तात्मक समाज में नारी के अस्तित्व की तलाश के साथ होता है। नाटक का आरंभिक संवाद ही सीधे-सीधे समाज और परिवार में स्त्रियों के स्थान का प्रश्न उठाता है, ध्रुवस्वामिनी कहती है, "सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता, अभ्रभेदी-उन्मुक्त शिखर! और, इन क्षुद्र कोमल निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिए न!" इस कथन के माध्यम से नारी-अस्मिता के विभिन्न प्रश्नों को ग्रहण करते हुए तथा उनसे टकराते हुए नाटक आगे बढ़ता है और संपूर्ण नारी-समाज के लिए उस द्वार को खोलने का प्रयास करता है जहाँ वह सदियों की पराधीनता से मुक्त होकर अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर सके, अपने अस्तित्व और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए आवाज उठा सके तथा उन्हें हासिल कर सके।

ध्रुवस्वामिनी सदियों से सामाजिक परम्पराओं के हाथों पीड़ित होती रही ऐसी स्त्री के प्रतीक के रूप में उपस्थित है, जिससे पुरूषवादी समाज सदैव अपेक्षा करता है कि वह दासी बनकर उसके चरणों में लेटी रहे। समाज ने स्त्री को घर की सीमाओं के अंदर कैद करके रखने के तमाम उपक्रम किए और धर्म, संस्कृति, परंपरा आदि के नाम पर उन्हें एक दायरे में सीमित कर दिया गया। 'स्त्री के सतीत्व' की संकल्पना एक ऐसी ही निर्मिति थी जहाँ पवित्रता के आवरण के पीछे उसकी स्वतंत्रता को खत्म कर दिया गया। क्या नारी की यही नियति है कि वह अपने स्वत्व को विस्मृत कर पितृसत्तात्मक तंत्र के बनाए नियमों को आजीवन ढोती रहे? यदि ऐसा है तो फिर इस स्थिति को बदलने में उसकी क्या भूमिका है, उसकी आकांक्षा और चाह के लिए समाज तथा परिवार में कोई 'स्पेस' है अथवा नहीं? 'ध्रुवस्वामिनी' नारी की इस नियति के विरुद्ध खड़ी होती है, इस स्थिति को बदलने के लिए संघर्ष करती है और अपनी अस्मिता की तलाश के क्रम में एक ओर अपने आप को पति कहलाने वाले व्यक्ति से जूझती है तो दूसरी ओर पुरूषवादी मानसिकता के खिलाफ आवाज उठाती है। अपने अस्तित्व की पहचान, समाज-परिवार में अपनी स्वतंत्र स्थिति तथा सम्मान के साथ जीवन जीने की आकांक्षा लिए ध्रुवस्वामिनी निरंतर चुनौतियों से टकराती है। विपरीत परिस्थितियों के सामने वह झुकती नहीं अपितु दृढ़तापूर्वक उनके सामने खड़ी होती है और सदियों की रुढ़िग्रस्त मान्यताओं की श्रृंखला को तोड़ने के लिए कृतसंकल्प होती है। सदियों से अनवरत चली आ रही शोषण-प्रक्रिया की परंपरा का विरोध करती हुई ध्रुवस्वामिनी कहती है, "पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा - नारी का गौरव - नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।"

इस नाटक में ध्रुवस्वामिनी अपने अस्तित्व को लेकर अत्यंत सजग है, एक ओर जहाँ रामगुप्त के शंकालु चरित्र, अपने ऊपर रखी जा रही निगरानी और राजकुल में अपने स्थान को लेकर वह कहती है, "किन्तु मेरा नीड़ कहाँ?" तो वहीं दूसरी ओर वह समाज में अपनी स्वतंत्र पहचान को लेकर भी सचेत है, "आज यह निर्णय हो जाना चाहिए कि मैं कौन हूँ?" यही सजगता इस नाटक की संवेदना को आधुनिक स्त्री-विमर्श के निकट लाती है। मानव सभ्यता के विकास के साथ सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन के परिणामस्वरूप समाज में स्त्री के स्थान में निरंतर गिरावट आई। इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए सीमोन निष्कर्ष के रूप में कहती हैं कि "पितृप्रधान समाज के पूर्ण रूप से व्यवस्थित हो जाने पर पुरुष-अस्तित्व के साथ स्त्री-अस्तित्व का पूर्ण विलयन हो गया। उसके स्वतंत्र अस्तित्व का अब प्रश्न ही नहीं उठता था।" इसलिए वर्तमान स्त्री-विमर्श स्त्री की स्वतंत्र पहचान की बात करती है, समाज में उसके अपने 'स्पेस' की बात उठाती है। ध्रुवस्वामिनी अपने अस्तित्व को रामगुप्त जैसे क्लीव, अविश्वासी और रुग्ण मानसिकता वाले व्यक्ति के लिए विलीन नहीं करना चाहती। वह अपनी निजी वैयक्तिकता को हासिल करना चाहती है, वह प्रेम करना चाहती है लेकिन अपने पसंद के पुरुष से, मनोनुकूल व्यक्ति से। जैसा कि चन्द्रगुप्त के प्रति अपनी प्रेम-भावना को अभिव्यक्त करते हुए वह कहती है, "कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन! कितने-कितने संतोष से भरा था! नियति ने अज्ञात भाव से मानो लू से तपी हुई वसुधा को क्षितिज के निर्जन में सायंकालीन शीतल आकाश से मिला दिया हो।....कुमार! तुमने वही किया जिसे मैं बचाती रही। तुम्हारे उपकार और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। ओह, इस वक्षस्थल में दो हृदय हैं क्या? जब अंतरंग हाँ करना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यों कहला देता है?" प्रेम करना स्त्री के अस्तित्व और 'स्पेस' का ही एक हिस्सा है। यह उसका अपना अधिकार है, उसका अपना निर्णय है कि वह किसका वरण करना चाहती है। ध्रुवस्वामिनी भी अपने पसंद के पुरुष के साथ प्रेम करना चाहती है और इसको लेकर उसके मन में किसी प्रकार की कोई कुंठा अथवा अपराध-बोध नहीं है। एक ओर जहाँ वह चन्द्रगुप्त को अपनी भुजाओं में पकड़कर उसे शक-दुर्ग में जाने से रोकते हुए कहती है कि मेरे लिए इतने बड़े बलिदान की आवश्यकता नहीं, वहीं पति कहलाने वाले रामगुप्त को धिक्कारते हुए कहती है, "यह पाप है? जो मेरे लिए अपनी बलि दे सकता हो, जो मेरे स्नेह....अथवा इससे क्या? शकराज क्या मुझे देवी बनाकर भक्ति-भाव से मेरी पूजा करेगा? वाह रे लज्जाशील पुरुष!" सीमोन द बोउवार का मानना था कि धर्म और सामाजिक रुढ़ियों ने स्त्री को समाज में दोयम दर्जा दिया है, जिसके पीछे पुरुष वर्चस्व की सामंती ठसक है। सीमोन लिखती हैं, "पुरुष ने सभ्यता के आदिकाल से अपनी शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता स्थापित की। उसने जो धर्म बनाये, जिन मूल्यों को गढ़ा, जिन आचरणों को मान्यता दी, वे सब उसकी अपनी सुविधा के लिए थे। उसके इस एकछत्र राज्य को औरत ने

पहले कभी चुनौती नहीं दी।...पुरुष ने औरत का सब कुछ अपने हाथों में रखा।" स्त्री को अपने अधिकार पाने के लिए पुरुष द्वारा बनाये गए इन धार्मिक-सामाजिक रुढ़ियों से मुक्ति के लिए लंबी लड़ाई लड़नी है। भारतीय समाज नारी को एक वस्तु के रूप में देखने का अभ्यस्त रहा है। अपनी संरचना में सामंती मानसिकता रखने वाले भारतीय पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री के लिए तमाम प्रकार के रीति-रिवाजों को प्रचलित करके उनको एक सीमित दायरे में बंद कर दिया, जहाँ वह पूरी तरह से पुरूषों के द्वारा नियंत्रित होने के लिए अभिशप्त है। इस नाटक में ध्रुवस्वामिनी और मंदाकिनी समाज में स्त्री की गरिमा के लिए आवाज उठाती है और स्त्री को गुलाम समझने वाली रुग्ण मानसिकता का विरोध करती है। ध्रुवस्वामिनी स्त्री के मन में बैठा दी गई पराधीनता-बोध को समाप्त करने के उद्देश्य से कहती है, "पराधीनता की एक परम्परा-सी उनकी नस-नस में - उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गई है।" जब तक स्त्री के मनोमस्तिष्क से पराश्रित होने का यह भाव खत्म नहीं होता, तब तक उसकी अपनी पहचान कायम नहीं हो सकती। ध्रुवस्वामिनी इस भाव-बोध के विरुद्ध पूरी दृढ़ता से खड़ी होती है। धार्मिक रुढ़िग्रस्त मान्यताओं के आवरण में परमेश्वर के रूप में स्थापित पति अपनी पत्नी से तो पूर्ण समर्पण की अपेक्षा रखता है, लेकिन जरूरत पड़ने पर अपने हित में अपनी पत्नी को भी दांव पर लगाने से पीछे नहीं हटता। स्त्री को भोग -विलास के तत्व के रूप में देखने एवं अपनी सम्पत्ति और वस्तु समझने की मनोवृत्ति वाले रामगुप्त जैसे पुरुषों के विरुद्ध अपनी मर्यादा और गौरव की रक्षा के लिए ध्रुवस्वामिनी विद्रोह कर बैठती है। उसका विद्रोह आधुनिक युग की उस चेतना को प्रकट करता है जिसमें स्त्री की अस्मिता का सवाल सबसे प्रमुख है। रामगुप्त शकराज के कलुषित संधि-प्रस्ताव को स्वीकार कर ध्रुवस्वामिनी को उसके पास भेजने के लिए तत्पर हो जाता है, क्योंकि उसके लिए अपनी सत्ता को बचाना सर्वोपरि लक्ष्य है। लेकिन, स्त्री की मर्यादा और गौरव को स्थापित करती हुई ध्रुवस्वामिनी आक्रोश भरे स्वर में रामगुप्त से कहती है, "निर्लज्ज! मद्यप! क्लीव! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं, अपनी रक्षा मैं स्वयं करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं करूँगी।" स्त्री की अपनी पहचान और गरिमा की स्थापना स्त्री-विमर्श का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और नाटक में ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से प्रसाद इसी को स्थापित करते हैं।नाटक में प्रसाद जी ने आधुनिक बौद्धिक-चेतना संपन्न नारी पात्रों की सृष्टि की है, जिनमें अपमान को चुपचाप सहने की मध्ययुगीन प्रवृत्ति मौजूद नहीं है, बल्कि वह अपने प्रति हो रहे अन्याय के प्रति सजग है और उसका प्रतिकार करने की क्षमता रखती है। समाज में पुरुषों की प्रभुता और वर्चस्व के परिणामस्वरूप स्त्री को निरंतर उपेक्षा, तनाव और पीड़ा झेलना पड़ता है। इसके बाद भी पुरुष उससे एकनिष्ठ समर्पण चाहता है। स्त्री पारिवारिक दवाबों, सामाजिक परम्पराओं और धार्मिक मान्यताओं के निर्वाह के लिए अपनी असहाय अवस्था में एकनिष्ठ भाव से पुरुष के प्रति समर्पित भी रहती है; अपनी खुशी के स्थान पर वह अपने पिता, पति या प्रेमी एवं संतान की प्रसन्नता को प्राथमिकता देती है, लेकिन उसके बाद भी उसके इस त्याग और बलिदान का कोई महत्व पुरुष का अहंवादी मन स्वीकार नहीं करता। एक ओर जहाँ ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त के हाथों प्रताड़ित होती है, वहीं दूसरी ओर निष्काम प्रेम और समर्पण के बाद भी कोमा को शकराज से उपेक्षा और दुःख ही मिलता है। इसे लक्षित करते हुए ही मंदाकिनी कहती है, "स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलंब खोजनेवाले हाथों से ये पुरुष के चरणों को पकड़ती हैं और वे सदैव इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करते हैं.....।" भारतीय परंपरा में विवाह-संस्था की जड़ें बहुत गहरी रही हैं। भारतीय हिन्दू जीवन में विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में मान्य है, जिसे पूरे विधि-विधान के साथ संपन्न किया जाता है। धार्मिक स्वरूप देने के पीछे उद्देश्य दाम्पत्य जीवन को स्थिरता, गरिमा और सुरक्षा प्रदान करना था। लेकिन मानव जाति और मानवीय सभ्यता के विकास के साथ ही इस संस्कार में निहित उदात्त दृष्टिकोण समाप्त होता चला गया एवं अंततः यह भी पुरुषवादी समाज की स्वार्थ-वृत्ति का साधन बनकर रह गया। भारतीय समाज में विवाह के बंधन में बंधने के पूर्व स्त्री की सहमति नहीं ली जाती, उसके पसंद-नापसंद का कोई मूल्य नहीं होता, परिवार के बड़े-बुज़ुर्ग और पुरुष जैसा चाहता है, जिस रूप में भी चाहता है निर्णय ले लेता है और उस निर्णय को मानने के लिए स्त्री को बाध्य होना पड़ता है। इस नाटक में मंदाकिनी के माध्यम से विवाह के संदर्भ में स्त्री के आत्मनिर्णय का प्रश्न भी उठाया गया है। धर्मशास्त्रों द्वारा अनुमोदित रुढ़िग्रस्त रीति-रिवाजों एवं मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए वह पूछती है कि धर्म क्या केवल स्त्रियों के अधिकारों का हनन करने के लिए ही है या उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी है? मंदाकिनी कहती है, "जिन स्त्रियों को धर्म-बंधन में बाँधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार - कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलम्ब माँग सकें। क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं।"

बेमेल विवाह, उससे मुक्ति और फिर पुनर्विवाह के प्रश्नों के माध्यम से प्रसाद जी ने नारी-स्वातंत्र्य और आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वर दिया है। भारतीय संस्कृति और परंपरा के गहन अध्येता जयशंकर प्रसाद ने नाटक की भूमिका में नारद और पराशर स्मृतियों तथा आचार्य कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अंशों को उद्धृत करते हुए भारतीय समाज में स्त्री के मोक्ष (तलाक) और पुनर्विवाह की स्वीकृति को सिद्ध किया है। धार्मिक-विधान और परंपरागत रीति -रिवाजों की हमारी जातीय जीवन में व्यापक स्वीकृति है। अतः स्त्री-स्वतंत्रता का पक्ष लेते हुए संबंध-विच्छेद (तलाक) और पुनर्विवाह की समस्या के समाधान के लिए नाटककार ने पुरोहित को चुना है। पुरोहित को समाज में धार्मिक-विधान का नियामक तथा धर्मशास्त्र का व्याख्याता माना जाता है। पुरोहित इस समस्या का शास्त्रानुसार लेकिन प्रगतिशील हल प्रस्तुत करते हुए कहता है, "विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रांतिपूर्ण बंधन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पद-दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म-विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते; परंतु यह संबंध उन प्रमाणों से भी विहीन है।.....यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं, पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषि - क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।.....मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।" पुरोहित की यह घोषणा वस्तुतः रूढ धार्मिक विधानों और परंपरागत मान्यताओं से स्त्री की मुक्ति का उद्घोष है।

वस्तुतः 'ध्रुवस्वामिनी' नारी-अस्मिता को स्थापित करने वाला नाटक है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के बीच परंपरागत धार्मिक रूढ़ियों एवं सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए यह नाटक स्त्री-जीवन की समस्याओं को उद्घाटित करती है। ध्रुवस्वामिनी अपनी वैयक्तिकता और अपनी अस्मिता के प्रति सजग आधुनिक स्त्री का प्रतीक है, जिसके पास अपने साथ होने वाले अन्याय का प्रतिकार करने का साहस है तथा जो समाज और धर्म से स्त्री के साथ होने वाले भेदभाव को लेकर तर्क कर सकती है, प्रश्न पूछ सकती है। नाटक के माध्यम से जयशंकर प्रसाद की प्रगतिशील चेतना स्त्री के लिए समान अधिकार और न्याय की माँग करता है, जिससे पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे ने नारी को हमेशा वंचित रखा है। आधुनिक युगबोध के अनुरूप प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से स्त्री की पहचान, गरिमा और अधिकार को स्वर दिया है।

******

संदर्भ-सूची:

1. नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, (राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद, सं. शंभुनाथ, संस्करण-2013, नयी किताब, दिल्ली), पृ. 31
2. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ. 11, संस्करण-2005, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. वही, पृ. 23
4. वही, पृ. 14
5. वही, पृ. 52
6. सीमोन द बोउवार, स्त्री:उपेक्षिता, (अनुवाद-प्रभा खेतान) पृ. 57, हिंद पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण-1998
7. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ. 29
8. वही, पृ. 28
9. सीमोन द बोउवार, स्त्री:उपेक्षिता, (अनुवाद-प्रभा खेतान) पृ. 65
10. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ. 48
11. वही, पृ. 24
12. वही, पृ. 47
13. वही, पृ. 46
14. वही, पृ. 54

अब बाजार स्त्री के कदमों में है : अनीता वर्मा की कविता

कार्तिक राय
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता मो. 6290941652

समकालीन हिंदी स्त्री-कविता की परंपरा में अनीता वर्मा सघन संवेदना और ऐन्द्रियबोध की कवयित्री हैं। भाषा, भाव और बिंब के साथ प्रतीकों की अलग आभा उनकी कविताओं को दुर्लभ अर्थ छवियों से जोड़ती है। परिवार, समाज, राष्ट्र आदि के भीतर दरक रही मनुष्यता को कवयित्री ने अलग-अलग दृश्य-बिंबों में गूँथने की कोशिश की है। कविता उनके लिए बाज़दफा मानवीय करुणा की सहयात्री है। प्रेम, प्रकृति में घुस आए बाजारू नुमाइश और पीढ़ी-दर-पीढ़ी विनष्ट होती मानवता की साख हृदय को व्यथित ही नहीं करती वरन भविष्य के प्रति चिंतित भी करती है। झूठे, प्रपंच और प्रच्छन्नचारी विज्ञापन की दुनिया हो या अपराध के नये-नये तरीके अथवा मानवीय संबंधों का यांत्रिकीकरण आदि ने सामाजिक जीवन को नीरस, उबाऊ और हिंसक बना दिया है। जीवन की निस्सारता को एक अर्थपूर्ण दिशा देना कवयित्री का मूल लक्ष्य है। 'एक जन्म में सब' (2003) और 'रोशनी के रास्ते पर' (2008) उनके दो महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है।'एक जन्म में सब' की कविताएं जीवन के भीतर उतरते हुए जीवन के दुर्निवार पक्षों को एक नयी भाषा व शिल्प प्रदान करती है तथा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होने वाले बदलावों को, उसके विस्मयकारी प्रारूपों को मानवीय सहानुभूति से संस्पर्श करती है। बतर्ज़ ललित कार्तिकेय ""एक जन्म में सब' में हमें दुर्लभ हो चली नैतिक काव्य-संवेदना का स्पर्श निरंतर महसूस होता रहता है और अंत में हम पाते हैं कि उस स्पर्श ने हमारे जीवनबोध को सयाना बना दिया है और हमें भीतर से अपेक्षाकृत निष्कलुष। इस संकलन की कविताओं को पढ़ना एक पवित्र और निष्पाप आलोक में घिरने जैसा अनुभव है। ये कविताएं हमारे भीतर एक नीरवता रचती हैं और उस नीरवता में अपनी बात कहती हैं।"[1]

'रोशनी के रास्ते पर' की कविताएं यथार्थ को आईना दिखाते हुए जीवन की सहजता, व्याकुलता तथा निष्कलुष भाव को युगीन चुनौतियों के साथ प्रस्तुत करती है। कवयित्री का ज़ोर भावों की शुद्धता पर जितना है उतना ही भाषा की आत्मीय रूपों पर भी। स्त्री की अनुभूतित यथार्थ की प्रतिछाया उनकी कविताओं को अतिसंवेदनशील बनाती है। कविता में आवाजाही करते विश्व प्रसिद्ध कवि, चित्रकार, दार्शनिक, चिंतक आदि उनके काव्य मानस के स्थायी सदस्य हैं। प्रथम द्रष्टया उनकी कविताएं व्यक्ति की निजता, एकांतता एवं मननशीलता के तत्व मीमांसीय प्रश्नों के सदृश्य प्रतीत होते हैं। लेकिन जल्द ही कविता उस मर्मस्थल तक ले जाती है जहां बिंब-वृतांत, स्मृति-स्वप्न, अनुभूति-यथार्थ आदि प्रत्यय अपनी सघनता में सुंदर विन्यास का प्रतिरूप लगते हैं। उनकी 'बूढ़ानाथ की औरतें', 'अपने घर', 'भय', सभागार में', 'माँ का हाथ', 'अनिंदों दा के साथ', 'मंच पर', 'वानगाँग के अंतिम आत्मचित्र से बातचीत', 'यह हंसी बहुत कुछ', 'छतरियाँ', 'बाईस जनवरी' आदि कविताएं मोनोलॉग में लिखी प्रतीत होती है। इन कविताओं में भावों की शुद्धता और गहरे आशावाद के साथ ही संसार को देखने का एक नया दृष्टिकोण भी सन्निहित है। घुप्प अँधेरे में उम्मीद की एक किरण और अंधकार को चीरने के लिए एक रोशनी कवयित्री के अंतर्मन में चल रहे बेचैनी को ही नहीं दिखाती है बल्कि जीवन के वास्तविक अर्थ को भी बताती है :

"मुझे अचानक दिखाई दिये कहीं खिले हुए कुछ फूल
और तभी कोई लालटेन का शीशा साफ कर
उसे जलाकर रख गया था।"[2]

ये पंक्तियाँ जीवन में पुनः विश्वास भरने वाली पंक्तियाँ हैं।

अनीता वर्मा की दृष्टि उन नीतियों अथवा कूटनीतिक रवायतों पर भी जाती है जो स्वतंत्रता और आजादी के नाम पर पुनः स्त्री-पुरुष संबंधों को जटिलतम बनाने पर तुली हुई है। बाजार और पूँजी ने स्त्री-देह का इस्तेमाल कर उन्हें एक उत्पाद में बदलते हुए उनकी भूमिका को रसोई ; बिस्तर और लालन-पालन में सन्नद्ध कर दिया है। टेलीविज़न और विज्ञापन की चमकदार प्रस्तुति पूंजीवादी पितृसत्ता की नयी खोल है और शोषण की नवीन पद्धति। 'खुशी के रहस्य', 'स्त्रीका चेहरा', 'निर्णय', 'ईर्ष्या', 'स्त्रियों से', 'विज्ञापन' और 'इस्तेमाल' आदि कविताओं में पूंजीवादी पितृसत्ता में अनुकूलित हो चुकी स्त्री का चेहरा साफ दिखता है, जिसमें स्त्री से अधिक पुरुषवादी आग्रहों को दिखाया जाता है। नवउदारवादी नीतियों एवं उद्योग संस्कृति में किसी भी सामग्री को बेचने या खरीदने या उसे घर-घर पहुंचाने का माध्यम स्त्री ही बनती है। पर्दे पर स्त्री की छवि को इस तरह गढ़ा जाता है जैसे वह उत्पाद के साथ-साथ स्वयं को भी बेच रही हो। सारा ध्यान स्त्री के देह व उसके अंग विशेष अथवा यौवन/ रूप सौंदर्य पर ही होता है। 'विज्ञापन' और 'इस्तेमाल' कविता में कवयित्री उस फूहड़ता और कुंठित मानसिकता को उजागर करती है जो लगातार पर्दे के पीछे से इसे परोस रहा होता है। आज 'विज्ञापन' ने पूरी सभ्यता-संस्कृति को बाजार के अनुकूल व्यवहार करने के लिए बाध्य कर दिया है। आप क्या खायेंगे, कैसे खायेंगे, क्या पसंद करेंगे, क्या खरीदना है, कैसे चलना है, क्या बोलना है...आदि सभी व्यक्ति मन के प्रश्नों पर उनका पहरा है और हम उनके अभ्यस्त हो चुके हैं। विज्ञापन हमारी भावनाओं का समुचित व्यापार करता है :

"आप दूध पियेंगे तो पहले देखिए उसके तरीके
वह जो चाय के बारे में बता रही है नई-नई बहू
उसने आजमाए हैं उम्र कम करने के नुस्खे
फोड़ देते हैं पर्दे पर चायदानी यह निषेध का विस्फोट है
सब कुछ दिखता है कहकर भी पर्दे के पीछे का सच नहीं दिखाया जाता।"[3]

मौजूदा दौर में विज्ञापन सबसे मजबूत माध्यम है। एकसिरे से झूठ की आँधी चलायी जाती है। दिनभर में सैकड़ों बार हमें बताया जाता है कि हम बदसूरत हैं, हममें यह कमी है, हम असफल है आदि-आदि और आप यह प्रोडक्ट प्रयोग करें सफलता, सुंदरता व समृद्धि आपके कदमों में। एक ही विज्ञापन में, एक ही थीम को हजारों बार महीनों तक दोहराया जाता है ताकि मानव-मस्तिष्क उसके लिए अनुकूलित हो जाए। शृंगार, हास्य, व्यंग्य, प्रेम, घृणा, जुगुप्सा आदि रस के जितने भी भाव-अनुभाव हैं वे सभी एक ही विज्ञापन में समादृत होते हैं। विज्ञापन को और भी आकर्षक बनाने के लिए स्त्री-देह और उसके कामुक रूप-सौंदर्य का इस्तेमाल किया जाता है। पर्दे पर चल रहा यह धूरखेल परिवार-समाज की कटुता को दूर करने के बजाय उसमें प्रतिस्पर्धा ला देता है। इस कविता की अंतिम पंक्ति उस पराकाष्ठा को उजागर करती है जहाँ संवेदनाएं भी बाजार की गुलाम हो जाएगी :

"कुछ दिनों बाद शायद बनाए जाएं विज्ञापन
खरीदिए एक पूरा आदमी भाव प्रेम और संवेदना से भरपूर।"[4]

इसी तरह 'इस्तेमाल' कविता में स्त्री-देह के इस्तेमाल पर कवयित्री का कटाक्ष उस षड्यंत्र को सामने लाता है जिसकी शिकार स्त्रियाँ भी हो रही है। बाजार ने मनुष्य के भीतर पैठे काम वासना को बुरी तरह से उत्तप्त किया है :

"वह फैली हुई थी समूचे घर में
अब बाजार स्त्री के कदमों में है
उसके केश सहलाता उतारता कपड़े
सामान कोई भी हो बेच जाती है हमेशा
वह बाजार को ले आती है घर में
खरीदनी है अगर दवा तो देखो स्त्री को
दर्द से ज्यादा असरदार है उसकी कमर
तेल से ज्यादा सुंदर हैं केश कपड़ों से ज्यादा देह।"[5]

बाजारवाद का यह भयावह चेहरा प्रायः अप्रत्याशित शोरगुल और चकाचौंध में छिप जाता है। इस चकाचौंध में प्रेम-परिवार, परंपरा-संस्कृति, रिश्ते-नाते आदि सब बिकाऊ है, सबकी एक कीमत है और एक क्षण की खुशी, जिसके पश्चात घोर उदासी और मानसिक यातना के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता। विज्ञापन व जनसंचार माध्यमों ने स्त्रियों के बीच रंगभेद की एक गहरी लकीर खींच दी है जिससे बहनापा का भाव कुंद पड़ता जा रहा है। कवयित्री की सूक्ष्म दृष्टि घर और

संबंधों में घुस आए बाजारवादी प्रवृत्तियों को सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि के साथ ही पर्यावरणीय दृष्टि से भी देखती हैं। विकास की अंधी दौड़ और उद्योग संस्कृति की विनाशकारी नीतियों ने हजारों-लाखों लोगों को विस्थापित किया, उनके संसाधनों पर कब्जा कर पर्यावरण को गहरी हानि पहुंचाई है। स्त्री-देह का बाजारीकरण हो या अमीर-गरीब की बढ़ती खाई या बूढ़े -बच्चों-स्त्रियों और दलितों के साथ होने वाले अन्यायों तथा क्रूरताओं आदि पर उनका एक अपना पक्ष है। पितृसत्ता के हिमायती और पुरुष वर्चस्व वाले इस समाज में मनुष्य एक नागरिक न होकर उपभोक्ता भर रह गया है। अनीता वर्मा की कविताओं का एक दूसरा पक्ष भी है – उनकी आंतरिक संसार की निर्मिति। यहाँ वे दर्शन, रहस्य और उन भावों का अन्वेषण करती हैं जिससे एक मानव हृदय पल-पल संचालित होता है। यहाँ उनकी संवेदना के घेरे में स्त्रियाँ, बच्चे-बूढ़े, उनका स्थानीय परिवेश आदि के साथ ही हृदयगत भावों का चित्रांकन हुआ है। कई कविताओं में स्वयं की उपस्थिति भी उनकी तादात्म्य भाव को ज़ाहिर करती है। 'प्रार्थना', 'प्रेम', 'व्यर्थ', 'अभी', 'भीतर', 'पानी के दरवाजे', 'खेल', 'वह', 'विकलता', 'सुंदरता', 'अवसान', 'पृथ्वी के ऊपर', 'जुलाई', 'चुंबन', 'स्पर्श', 'लक्ष्यहीन', 'इसी तरह' और 'न बोलो' आदि कविताओं का स्वर समकालीन हिंदी कविता में लीक से हटकर है। इन कविताओं की बिंबधर्मिता हृदयगत भावों को समझने का एक ज़रिया है। इसी तरह की कविताओं पर टिप्पणी करते हुए कवि-आलोचक विष्णु खरे लिखते हैं : "चित्रांकन और बिंबसृष्टि अनीता वर्मा को बहुत आकृष्ट करते लगते हैं और वे कभी-कभी अभिव्यक्तिवादियों-बिंबवादियों-प्रतीकवादियों की तरह उनके तर्कातीत सौंदर्य के लिए एक निजी, स्वायत्त, परिष्कृत भाषा के प्रयोग का खतरा उठा लेती हैं और हिंदी की नई उद्रेक-क्षमता को उजागर करती हैं। लेकिन ऐसी कविता में हर्ष-विषाद तथा प्रेम की अनूठी, यथार्थ अभिव्यक्तियाँ भी है।"[6] एक मननशील आत्माभिव्यक्ति इन कविताओं को खास बनाती है इस संकल्प के साथ कि दुनिया में तमाम जहालतों के बावजूद दुनिया को सुंदर बनाने की, मनुष्यता को बचाने की ताकीद करनी ही है :

"जब कुछ ही समय बाद डूब जायेगी यह पूरी सदी
बीज और घास की किस्में हमें पुख्ता कर लेनी हैं।"[7]

मनुष्यता को बचाने की एकमात्र राह प्रेम ही है। कवयित्री की चेतना में नफरती उबार फैलाने वालों तत्वों और हिंसक हो चुकी विचार पद्धति का कोई स्थान नहीं है। वे 'पृथ्वी' की विराटता को मातृहृदय के रूप में देखती हैं तो बलात्कृता लड़की की निगाह से हिंसक दुनिया को। मनुष्यता को बचाने के लिए वे बार-बार पुराने संबंध तलाशती है :

"नयी परिभाषाओं की भीड़ में
संभाले जाने चाहिए पुराने संबंध
नदी और जंगल के
रेत और आकाश के
प्यार और प्रकाश के।"[8]

घृणा, पाखंड, अविश्वास, बर्बरता आदि को प्रेम और उदारता के आग्रह से ही बदला जा सकता है। आत्माभिव्यक्ति के ऐसे सैकड़ों उद्गार कवयित्री की सूक्ष्म दृष्टि व भाव संवेदना का द्योतक है। विषय आत्मगत हो या वस्तुगत अनीता वर्मा का कवि मन प्रत्यक्ष से अधिक परोक्ष को उद्घाटित करता है। सवाल जेंडर संबंधी हो या स्त्रियों की सामाजिक भूमिका अथवा लिंग वर्चस्व आदि मुद्दों को कवयित्री उसे सांस्कृतिक विमर्श का रूप देना चाहती है। इसलिए बाहर और भीतर निरंतर एक आत्मसंघर्ष जारी रहता है :

"आईने की तरह है स्त्री का चेहरा
जिसमें पुरुष अपना चेहरा देखता है
बाल संवारता है मुँह बिचकाता है
अपने ताक़तवर होने की शर्म छिपाता है"[9]

अपना पेड़', 'देखते हुए', 'मैं खोजती हूँ', 'अपनी तरह', 'निर्णय', 'बहस', 'निर्णायक', 'कहीं और', 'दोष', 'अभी', 'तर्पण', 'बलात्कार', 'पृथ्वी', 'एक दुर्घटना और' आदि कविताएं स्त्रीत्व बोध से जनतांत्रिक बोध की कविताएं हैं। इनमें स्त्रीत्व के परिसर के विस्तार व सहअस्तित्व के भाव को सहजता से जाना जा सकता है। इन कविताओं की पंक्तियाँ भारतीय समाज के परिवेश को दिखाते हुए आम जनजीवन की बदहाली व चुनौतियों को भी समेटती है।

स्त्री पक्षधरता की परिसीमा को विस्तार देते हुए कवयित्री ने एक अंतरंग रिश्ता कायम किया है। जिजीविषा उसका मूल भाव है : *"जो कहते हैं कि वे खुश हैं*

उन्हें देख उदास हो जाता है मन
झूठ अपने मुलम्मे में भी दिख जाता है
जिन सफ़ेद फूलों के सपने देखे थे
वे अब भी सिरहाने आ बैठते हैं
दूर बहता पानी और हिम शिखर
वह सब अच्छा लगता है
जो उपस्थित नहीं होता।"[10]

समकालीन हिंदी कविता के वैविध्य भरे संसार में अनीता वर्मा की कविताएं सामाजिक यथार्थ के नए शेड्स को मुखरता से व्यक्त करती है। कविता और जीवन को निर्विकार या रहस्य बनाने वाली विचार पद्धति से अलग उसे चिंतन के केंद्र में लाना अनिवार्य है तभी हम उसके होने के अर्थ को समझ पायेंगे :

"रहस्यों को समझने से ज्यादा जरूरी है
चीजों के होने को समझना
मजबूती से खड़े हैं पहाड़
समुद्र में आता है ज्वार
पृथ्वी घूमती है लट्टू की तरह
मनुष्य गिरता जाता है गर्त में"[11]

उक्त पंक्तियाँ न सिर्फ आलोचनात्मक दृष्टि के परिचायक हैं बल्कि सभ्यता की बर्बर पहलुओं के क्रम को समझने की एक दृष्टि भी देती हैं। सामाजिक-राजनीतिक वर्चस्व की दुर्नीतियों ने प्रकृति में मनुष्य की सत्ता को कमजोर कर उसे हिंसक पशु में परिवर्तित कर दिया है। कवयित्री की चेतना इस हिंसाविह्वल परिवेश के खिलाफ सामाजिक सौहार्द और मानवीय सहानुभूति का संचार करने को तत्पर है।काव्य-भाषा एवं शिल्प प्रयोग के स्तर पर अनीता वर्मा की कविताएं कला एवं मानवता को वैश्विक संदर्भों से जोड़ती है। वाक्य विन्यास और शब्द चयन में अतिरेक या जल्दबाज़ी नहीं दिखती, एक शांत-मंथर भाव-बिम्ब उनकी कविताओं को विशिष्ट बनाता है। अदेखे, अनजान रह गये भावों को अनोखे ढंग से उनकी कविताएं अबेरता है। युवा आलोचक पंकज चतुर्वेदी उनकी काव्य भाषा की सादगी पर महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं : "खास बात यह है कि उन्होंने अभिव्यक्ति की एक चटक, अलंकृत या दबावदार शैली का मोह संवरण करते हुए भरसक सादा गंभीर और गरिमामय ढंग को अपनाया है। उनकी कविता में एक पारदर्शी और मननशील संवेदना का ताजगी-भरा संस्पर्श है। इसलिए प्रकृति के दुर्लभ दृश्यों की ओर उनकी निगाह जा पाती है और आत्मा के अब तक अदेखे या अनजान रह गये आयामों की ओर भी।"[12] प्रकृति के दुर्लभ दृश्यों के साथ-साथ हृदय के अंतःस्थलों के भाव बिम्बों को कविता में पिरोती उनकी काव्यभाषा समसामयिक काव्य मुहावरों को एक चुनौती देती है। उनकी काव्य-संवेदना का मूल उत्स उनकी पारदर्शी भाषा शैली है जो जीवन के रहस्यों को पूरी बेबाकी से खोलती है।

******* ******

संदर्भ :-

1. वर्मा, अनीता (2008). रोशनी के रास्ते पर, राजकमल प्रकाशन : नयी दिल्ली, फ्लैप से उद्धृत
2. वही, पृ. 66
3. अनामिका (संपा.) (2015).बीसवीं सदी का हिंदी महिला-लेखन, साहित्य अकादमी : नयी दिल्ली, पृ. 312
4. वही, पृ. 312
5. वही, पृ. 316
6. वर्मा, अनीता (2003). एक जन्म में सब, राजकमल प्रकाशन : नयी दिल्ली, फ्लैप से उद्धृत
7. वर्मा, अनीता (2008). रोशनी के रास्ते पर, राजकमल प्रकाशन : नयी दिल्ली, पृ. 77
8. वर्मा, अनीता (2003). एक जन्म में सब, राजकमल प्रकाशन : नयी दिल्ली, पृ. 60
9. वर्मा, अनीता (2008). रोशनी के रास्ते पर, राजकमल प्रकाशन : नयी दिल्ली, पृ. 31
10. वर्मा, अनीता (2003). एक जन्म में सब, राजकमल प्रकाशन : नयी दिल्ली, पृ. 74
11. वर्मा, अनीता (2008). रोशनी के रास्ते पर, राजकमल प्रकाशन : नयी दिल्ली, पृ. 62
12. वही, फ्लैप से उद्धृत

1.

पंकज सुबीर की कहानियों में स्त्री छवि

डॉ.जी.शान्ती
(शोध निर्देशिका)
सह-आचार्य, हिंदी विभाग श्री अबिरामी इल्लम, वनप्रस्था रोड 2/179B2 ,
वडवल्लि,कोयम्बतूर - 41 तमिलनाडु

डिन्सी जोर्ज
पीएचडी-शोध छात्रा
कोयम्बतूर - 41 तमिलनाडु

शोध सार:-पंकज सुबीर समकालीन हिन्दी के अनमोल कथाकार हैं। जिन्होंने ईस्ट कंपनी नामक कहानी संग्रह के माध्यम से सामाजिक परंपराओं एवं आचार विचार में बंधित स्त्री की छवी सामने लाने का प्रयास किया है। साथ ही समाज पर स्त्री स्वतंत्रता का पक्ष लेकर तमाम असहाय स्त्रीयों को भी स्वाभिमानी और आत्मनिर्भर बनाने की एक सुदर्शन चक्र छोडा है। इस सुदर्शन चक्र स्त्री-पुरुष के मन तथा सामाजिक परंपराओं के दीवारों को तोड़कर स्त्रीयों को अपनी शक्तियों की पहचान करके कमज़ोरियों को सुधारने के और एक उज्जवल भविष्य प्राप्त करने का अवबोध उजागर किया है।

बीज शब्द:-पंकज सुबीर, समकालीन कहानी, स्त्री छवि, आत्मनिर्भर, स्वतंत्रता, अस्तित्व, भावुकता, भविष्य, परंपरा, बंधन, मानवी।

मूल आलेख:- युवता और निजता का प्रस्थान लेकर समकालीन हिन्दी कहानी नवीन दशक में पर्याप्त उर्जावान हुई है। अब उन लेखकों की पहचान हो चुकी है, जिनकी रचनाशीलता विश्वास जगाती है। पंकज सुबीर इन लेखकों में अग्रणी है। यह भी कह सकता है कि युवा कथकारों के समूह में पंकज सुबीर अलग खडे दिखाई देता है। एक भिन्न पहचान के साथ। उनके तीन कथा संग्रह और दो उपन्यास इस बात का प्रमाण है। विषय का चयन , शैली, शिल्प और सूक्षम दृष्टि सुबीर जी की कहानियों की बडी ताकत है। कथ्य की नवीनता और उतनी ही कुशलता से उसका निर्वाह एक चुनौतिभरा काम है जिसे पंकज सुबीरने सहजता से किया हैं। पंकज जी की रचना वैभव और कथ्य शैली के बारे में प्रमुख लेखिका चित्रा मुद्गल के राय है कि, ''कथा तत्व का वैविध्य और कहन का बांधलेनेवाला सर्वधा अनूठा अन्दाज - उनकी रचनाओं की विशषता ही नहीं, आकषित करने वाली एक ऐसी खासियत है जो पाठक को हथेली पर विचारों के कुछ सूत्र चिन्तन मनन के लिए अनजाने ही रख देती है जो निरंतर उसका पीछा करते हुए उसे आत्मविश्लेषण के लिए प्रेरित करते हैं। मीडिया की दुनिया की ऐसी ही विचारात्मक तथ्यात्मकता, उनकी कथात्मकता को नयी तराश से पूरती है -नयी निर्मितियॉ बुनती हुई .... बहुत उम्मीदें हैं उनके लेखन से।''[1]युवा कथाकार पंकज सुबीर का ' ईस्ट इंडिया कंपनी' अनोखा कहानी संग्रह हैं। कथ्य और शिल्प दोनों ही मामले में यह संग्रह लाजवाब हैं। भारतीय ज्ञानपीठ से पुरस्कृत एवं नवलेखन पुरस्कर के लिए अनुशासित इस कहानी संग्रह कहानिकार पंकज सुबीर का पहला कहानी संग्रह हैं। पसरा हुआ समकालीन जीवन की चित्रण संग्रह की हर कहानियों का विषय है। इतिहास कहावतें और मुहावरों आदि का वे इन कहानियों में यथातथ्य बेजोड इस्तेमाल करते हैं। जीवन की छोटी छोटी घटनाओं के माध्यम से पूरे दुनिया को सच्चाई और स्वतंत्रता का ज्योती दिलाने की महत्वपूर्ण परिश्रम हर एक कहानियों में देख सकते हैं। उन्होंने समय के इस दबाव को और प्रतिबद्धता को गहरेपन से महसूस करते हैं। इसलिए उनके इस संग्रह की कहानियॉ समाज में व्याप्त विद्रूपता विसंगतियों एवं समस्याओं को बडी बारिकी से अभिव्यक्ति करने में सफल रही हैं।पूरे कहानी संग्रह की जो सबसे बडी विशेषता यह है कि कहानिकार ने अपने आस पास की हर विसंगति पर कलम चलाई है। हर समस्या को कहानी में चित्रित है, फिर वो चाहे सांप्रदायिकता हो साहित्य के क्षेत्र की राजनीति हो ,पत्रकारिता का पतन हो या स्त्री समस्या जैसे समकालीन विषय हो, लेखक हर समस्या का पडताल करना चाहता है और कहानियों में जो आक्रोश दिखाई देता है उससे पता चलता है कि लेखक किसी को भी माफ करने के लिए तैयार नहीं है। वो अपने आक्रोश को न केवल अभिव्यक्त कर रहा है बल्कि उसके लिए दोषियों को समाज के सामने खडा कर रहा है। 'ईस्ट इंडिया कंपनी' नामक कहानी संग्रह में 11 कहानियॉ हैं। समाज के हर विषय के साथ संग्रह में स्त्रियों के अनुभव संसार या स्त्री जीवन की से संबधित अनेक यथार्थ चित्रण वस्तुपरक और युक्ति के साथ प्रस्तुत किया हैं। तमाशा , घुग्घु , घेराव , रामभरोस हाली की हत्या और एक सीप में तीन लडंकियॉ रहती थी आदि कहानियॉ इसका प्रमाण हैं।इन कहानियों में स्त्री छवि का आधार समाज है।समाज की जिस प्रकार की छवी थी उसे पंकज सुबीर ने उसी रूप में ग्रहण करते है और अपनी कहानियों में उस छवि को नयी वास्तविकता के साथ चित्रित करते हैं।उनकी कहनियों में स्त्री की छवि की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। इस व्यापकता को पकडने के लिए परिपक्वता और पैनी नज़र की आवश्यकता होती हैं।लेखक ने स्त्री के प्रत्येक पक्ष को देखते है। वे स्त्री के प्रत्येक पक्ष को देखते हैं। वे स्त्री के पारिवारिक सामाजिक और राष्टीय स्तर की समस्याओं को अपनी कहानी का विषय बनाते है। 'पंकज जी की कहानियों में जो स्त्री की छवी निर्मित हुई है इस छवी केवल अबला, दुर्बला और चार दीवारी के अन्दर बैठकर रोती हुई स्त्री की नहीं बल्कि अपनी भविष्य और स्वप्न भी खुद निर्माण करने वाली सशक्त स्त्री की छवी है।'सुबीर जी की लेखन की विशेषता यह है कि उन्होनें प्रेमचन्द की तरह स्त्री की सामाजिक मुक्ति की बात करते हैं। जैनेन्द्र की तरह उसकी मानसिक गुत्थियों को समझने की कोशिश करते हैं। और महिला कथाकारों की तरह स्त्री की आर्थिक और निजी जीवन की स्वतंत्रता की बात करते हैं। जिसके कारण उनका स्त्री के प्रति व्यापक दृष्टिकोण लक्षित होता हैं। '[2]संग्रह की एक कहानी है 'घेराव'। इसमें राजनीति, प्रशासन पुलीस और पत्रकारिता सभी प्रश्न चिह्न लगाती है। कहानी की नायिका अपने पिता को लेकर बहुत आक्रोशित है और वो उसे माफ करने के लिए तैयार भी नहीं हैं।वह कहते है कि ''जब किसी बच्ची को पिता की उँगली थामे जाते तो पूछती थी मॉ से, दादी से कि कहॉ है ये पुरुष जो बाकी के सब घरों में नहीं हैं। उस समय मुझे पता नहीं था कि जिस पुरुष को लेकर मैं इतना परेशान हो रही हूँ वही पुरुष मुझे तमाशा नाम देकर चला गया है।''[3]कहानी की नायिका के माध्यम से पितृसत्ता या पुरुषों द्ववारा किए गए अनेक अन्यायों के विरोध आवाज उठाने का कोशिश किया है। क्यों कि तमाशा सिर्फ एक लडकी की कहानी नहीं बल्कि हमारे समाज के हजारों स्त्रीयों की प्रतिनिधि हैं।कहानी आगे बढती है तो देख पाती है किवह एक तमाशा नहीं बल्कि पढी लिखी शिक्षित लडकी बन चुकी हैं। स्त्री स्वतंत्रता की बात करती संग्रह की एक कहानी है 'घुग्घू। कहानी में 'घुग्घू' एक प्रतीक है। स्त्रीयों के लिए पुरुषों द्वारा बनाया गया नियमों या परंपरा की सीमाओं के अन्दर छिपाकर रहनेवाली स्त्री की प्रतीक है। इसमें संस्कारों और परंपराओं के बीच उलझी हुई स्त्री की दैहिक स्वतंत्रता के बारे में चर्चा करती है। रूढिवादी और परंपरावादी परिवार से अए नायिका के सामने शहर में आाने के बाद मिल रहे अनेक खुशियॉ और दैहिक आमंत्रण हैं। वो इन सबमें डूबकर अपनी स्वतंत्रता मनाने चाहती है फिर भी उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि या सामाजिक परंपराओं के यादें उसे रोक देती है। ''वास्तव मे घुग्घु एक कीडा होता है जो धूल में शंकू के आकार का छेद बना कर रहता है। कहानी में कई बार बच्चे उसे खेल -खेल में तिनका डालकर निकालने का प्रयास करते है।'[4] उसी घुग्घु को प्रतीक बनाकर पंकज सुबीर ने समकालीन समाज में स्त्री जीवन की वास्तविकता को याद दिलाने का परिश्रम किया है। कहानी के अंत में जब नायिका अपने सारे बंधन को तोड़कर अपने दैहिक स्वतत्रता को भोग लेती हैं। कहानी के अंत में ऐसा कहता है कि ''उसे लगा कि शंकू के बाहर की दुनिया उतनी बुरी नहीं है जितना वो समझती थी।'[5] समाज या धर्म स्त्री से सदैव अनछुआ या पवित्र रहने की आदेश की जाती है।केवल स्त्री अपने भावनाओं या स्वतंत्रता पर संयम रखे रहे पुरुष नहीं। पुरुष दस स्त्रीयों से शारिरिक संबध बनाने के बाद भी पवित्र मानते हैसमाज या पूरे दुनिया उसे आदर करता है लेकिन स्त्री किसी भावनात्मक रूप से जुडे

होने पर अपवित्र मानी जाती है। घुग्घू कहानी के माध्यम से समाज की ऐसी व्यवस्था को तोडने की परिश्रम किया है। स्वतंत्रता सिर्फ दैहिक विषय के बारे में नहीं बल्कि अपनी विचारों को प्रकट करने में जीवन साथी या काम चुनने की स्वतंत्रता पुरुषों के तरह समाज में मान्यता और समता लेने की स्वतंत्रता स्त्री को मिलनी चाहिए। और परंपरागत नारी संहिता को जड से ठुकराते हुए स्वतन्त्र ज़िन्दगी जीने का अवसर मिलना चाहिए।स्त्री जीवन के बारे में या स्त्रीयों के स्वपनों के बारे में विचार विश्लेषण करते है 'एक सीप में तीन लडकियॉ रहती थी' नामक कहानी के माध्यम से लेखक पंकज सुबीर। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है। कहानी में नायिका के लिए कोठ नाम नहीं रखा है। बल्कि बिंबात्मक शैली में तीन रंगों की नाम रखा है। सबसे बडी लड़की जो हरी है ,उसके पास पंख नहीं है। हरी लड़की की सपने भी हरे थे इसलिए वह हमेशा बूदों से भरा रहना चाहते थे। क्यों कि हरे रंग के हरियाणी रहने के लिए बरसात और बूदों की हमेशा ज़रूरत रहती है। अपने हिस्से की बूँद लेने के लिए वो उडकर बादलों के पास पहुँच जाने के लिए चाहती है लेकिन उसके पास पंख नहीं है। दूसरी है नीली लडकी। उसके पास स्वप्न है और पंख भी है।और तीसरी है पीली लडकी । उसके पास पंख है लेकिन वह ज़िन्दगी के बारे में कोई सपने नहीं देखती है। एक ही कहानी की की अन्दर स्त्री जीवन की विवध परिस्थितियॉ पंकज सुबीर ने व्यक्त किया हैं। आधुनिक युग में स्त्री अपने जीवन को आगे बढाने के लिए चाहती है। लेकिन उनके पास पंख यानी अवसर नहीं।' समाज की सबसे बडी विडम्बना है कि हम कितने ही शिक्षित और प्रगतिशील क्यों न हो जाऐं, परन्तु हम कुप्रधाओं को नहीं छोड पाते।"[6]आज भी समाज स्त्री स्वतंत्रता के बारे में बडी बडी बातें करते है, फिर भी स्त्री को आसमान तक उडाने की रस्ता किसी भी तरह बॉधकर रखा है।इसका उत्तम उदाहरण है हरी लडकी। उसके पास सपनें बहुत है लेकिन पंख नहीं है।इसलिए कहानी के अंत में लेखक इसी प्रकार लिखती है कि '' आजकल कोई हरीवाली लडकी नहीं बनाना चाहते है।''[7]

किस्सोगोई शैली में लिखी हुई एक कहानी है 'रामभरोस हाली का मरना'। इस कहनी के माध्यम से लेखक ने सांप्रदायिक तनाव को विषयबनाकर पाठकों को जाग्रत करने का प्रयास किया है। हर एक स्त्री चाहती है कि पुरुष उसके साथ अच्छा व्यवहार करे। आजसमाज में स्त्री सभी अर्थ में समान अधिकारों की हकदार है लेकिन समानता की उसकी आवाज़ को भी दबाया जाता है। क्यों कि पुरुष के मन में स्त्री की वही पारंपरिक छवि छिपी हुई है कि वह एक सम्पूर्ण व्यक्ति न होकर सिर्फ एक औरत है। 'पुरुषों की प्रेम शून्यता ,संवेदन शून्यता, भाव शून्यता को लेकर सच में ही स्त्रीयों को शिकायत रहती हैं। इसलिए पुरुष और स्त्री एक दूसरे को समझ लें तभी संतुलन बनाया जा सकता है। लेखक स्त्री के प्रति इतना उदारवादी लगती है कि स्त्री के पालायन, विवेहतर यौन संबध गलत नहीं मानता क्यों कि यह पुरुष के व्यवहार से उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया है।'स्त्री की प्रेम रहस्य को पुरुष समझ नहीं पायेंगे तो इस संवेदनशील बिन्दु पर स्त्री स्वयं उपेक्षित महसूस करती है। इसी अकेलीपन से तलाक या पालायन की भावना शुरू होती है। लेखक हमारे समाज के सामने यही भी प्रश्न रखती है कि अगर असंतुष्ट पत्नी परिवर्तन का चयन करती है तो उस पर प्रश्न चिह्न नहीं लगना चाहिए। अगर पुरुष परस्त्री से संबध बना सकते है तो नारी क्यों नहीं।'[8]

निष्कर्ष:- लेखक ने स्त्री की स्वतंत्र इच्छाओं को अभिव्यक्ति देकर कहना चाहता है कि,स्त्री केवल वस्तु मानकर व्यवहार करने वाले पुरुषीय दृष्टिकोण को नकारते हुए स्त्री देह की या मन की भावना और वासना के अनुभवों को खुलकर चित्रित कर रही है। स्त्री केवल सुन्दरता से भरा हुआ तन या कोमल मांस नहीं मानवी है। भावना अभिलाषा और सभी विचारों से युक्त मानवी।

****

सन्दर्भ:-

1.राकेश कुमार,विमर्श दृष्टि-पंकज सुबीर की कहानियॉ से, शिक्षा प्रकाशन,सीहोर (म.प्र.), 2020, पृ. 10
2.राकेश कुमार ,विमर्श दृष्टि-पंकज सुबीर की कहानियॉ से,शिक्षा प्रकाशन,सीहोर (म.प्र.), 2020, पृ. 81
3.पंकज सुबीर,तमाशा, ('ईस्ट इंडिया कंपनी कहानी संग्रह से), शिक्षा प्रकाशन, सीहोर(म.प्र), 2019, पृ.13
4.राकेश कुमार (विमर्श दृष्टि-पंकज सुबीर की कहानियॉ से) शिक्षा प्रकाशन,सीहोर (म.प्र.), 2020, पृ. 80
5.राकेश कुमार (विमर्श दृष्टि-पंकज सुबीर की कहानियॉ से) शिक्षा प्रकाशन,सीहोर (म.प्र.), 2020, पृ. 81
6.पंकज सुबीर, घुग्घू, शिक्षा प्रकाशन,सीहोर (म.प्र), 2019, पृ. 49
7.पंकज सुबीर, एक सीप में तीन लडकियॉ रहती थी शिक्षा प्रकाशन, सीहोर (म.प्र), 2019, पृ. 49
8.डॉ. अमरसिंह वधान का नारी विमर्श, प्रा.शकुन्तला प्रताप वाघ,अमन प्रकाशन, कानपूर, 2014 पृ. 71

मैला आँचल के स्त्री पात्र

डॉ. माया सगरे-लक्का

सह-आचार्य,
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग,
रेवा विश्वविद्यालय, बैंगलोर. मो.9449987351

प्रास्ताविक :-रेणु के उपन्यासों के केंद्र में कोई व्यक्ति न होकर एक सम्स्या, एक प्रदेश या अंचल रहा है और उसके वास्तविक एवम् निर्मम चित्रण में उपन्यास के पात्रों , उनके जीवन की विविध घटनाओं अथवा स्थितियों का प्रयोग साधन के रूप में किय गया है। आंचलिक उपन्यास के उदय से उपन्यास की भाषा ने एक और मोड़ लिया और उसका स्पष्ट दर्शन **मैला आँचल** उपन्यास में मिलता है। रेणु के उपन्यासों में अन्य सभी तत्व गौण होकर देशकाल के चित्रण और वातावरण की दृष्टि से सफलता की कसौटी पर खरा उतरता दिखाई देता है। उपन्यासकार ने मेरीगंज की भौगोलिक सीमाओं को निर्धारित करते हुए मेरीगंज का परिचय इस प्रकार दिया है – 'यह है मैला आंचल, एक आंचलिक उपन्यास, कथानक है पूर्णिया | पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है | इसके एक ओर नेपाल दूसरी ओर पोकिस्तान और पश्चिम बंगाल | विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है | जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखाएं खींच देते हैं | मैंने इसके एक हिस्से की एक ही गांव को पिछड़े गांव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाया है |"

कुंजीरूप शब्द - मिथिला का अंचल, मूलस्वर, भाषाशैली, परिवेश, नारी के रूप – माता, पत्नी, कन्या, बहन, भाभी, सास-बहू |

सन 1954 में प्रकाशित फणीश्वरनाथ रेणु का "मैला आंचल" हिंदी का बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास है | उपन्यास की भूमिका में रेणु ने इसे आंचलिक कहकर आंचलिक उपन्यास विधा के नामकरण को आधार प्रस्तुत किया | उपन्यास का कथांचल है बिहार राज्य के पूर्णिया जिले का 'मेरीगंज' गांव | उपन्यासकार ने मेरीगंज की भौगोलिक सीमाओं को निर्धारित करते हुए मेरीगंज का परिचय इस प्रकार दिया है – **"यह है मैला आंचल, एक आंचलिक उपन्यास, कथानक है पूर्णिया | पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है | इसके एक ओर नेपाल दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल | विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है | जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखाएं खींच देते हैं | मैंने इसके एक हिस्से की एक ही गांव को पिछड़े गांव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाया है |"**[1]

इस प्रकार मेरीगंज को भौगोलिक सीमाओं में बांधकर रेणु ने अपने कथांचल का विशिष्टिकरण किया है और इस गांव की विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए लिखा है, - **"इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है और चंदन भी, सुंदरता भी है और कुरूपता भी - मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया |"**[2]

उपन्यास - दो खंडों में व्याप्त है | प्रथम खंड में मेरीगंज के सामाजिक यथार्थ का चित्रण है तो दूसरे खंड में सामाजिक सुधार, धार्मिक आडंबर की अभिव्यक्ति, राजनीतिक चेतना और जातीय संघर्ष को अभिव्यक्त किया गया है | तथा संतुलन की दृष्टि से प्रथम खंड की अपेक्षा दूसरा खंड अधिक सफल रहा है | उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक ने गांव के लोगों के अज्ञान तथा उनके अंधविश्वास रूढी-परंपरा का वर्णन करते हुए पिछड़े गांव का यथार्थ परिचय दिया है | गांव के लोग अज्ञानी तो है ही, भयंकर अंधविश्वासी, रूढ़ीवादी, झाड़-फूंक, जाद्-टोना आदि पर विश्वास करने वाले हैं | गांव में जातिवाद का बोलबाला है और प्रत्येक टोला किसी न किसी जाति के नाम से पहचाना जाता है | गांव की राजनीति प्रारंभ से ही जातिवाद, भ्रष्टाचार और दल बंदी से भ्रष्ट हो गई है | गांव पर जमींदारों का वर्चस्व है जो जनता का अमानुष शोषण करते हैं | मेरीगंज का अंचल का जीवन गरीबी, अज्ञान, भूख, बीमारी और अंधविश्वास से पूर्ण है | भूख से तड़पते यहां के लोग आम की सूखी गुठली के गुदे पर जिंदा रहते हैं और सात मास के छोटे बच्चे बथुए के साग पर पलते हैं | किसानों के पास जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हैं और जमींदार उन्हें हड़पना चाहते हैं | गरीब दिन-ब-दिन गरीब होते जा रहे हैं और रोजी-रोटी की तलाश में शहर की ओर भाग रहे हैं | मेरीगंज इन सारी समस्याओं से ग्रस्त है |'मैला आंचल' में मेरीगंज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण तटस्थता से किया है |

उपन्यास का प्रत्येक पात्र किसी ना किसी समस्या से जुड़ा हुआ है | मेरीगंज एक ऐसा गाँव है, जहाँ सप्ताह में एक बार डाक आती है | गाँव में बारह बरन के लोग हैं तथा चार दल प्रमुख हैं – कायस्थ, राजपूत, यादव और ब्राह्मण | इसके अलावा अन्य जातियों के छोटे-मोटे टोले हैं, जिनमें आपसी बैर पलता है | जातिवाद, भ्रष्टाचार, अनैतिकता का यहां बोलबाला है | नोखे की स्त्री का रामलखनसिंह से, उचितदास की बेटी का सरबन महतो से, हरगौरी सिंह का अपनी मौसेरी बहन कुसुमी से अनैतिक संबंध है | बालदेव लछमी दासी से फंसा है तो कालीचरण ने चरखा सेंटर की मंगला देवी को अपने घर में रख लिया है | शिवशंकरसिंह रमजूदास की स्त्री के साथ बदनाम हो चुका है | डॉ प्रशांत कमला से उलझा है तो फूलिया सहदेव मिश्र के साथ गुलछर्रे उड़ा रही हैं | मठ के महंत भी भ्रष्ट है, जो दोसियां रखते हैं | कुल मिलाकर उपन्यास में सेक्स कथाओं, अनैतिक स्त्री-पुरुष संबंधों का, काम कुंठाओं और स्वैराचारों का इतना बोलबाला है कि वह मैला आंचल शीर्षक को सार्थक करता है | इन प्रेम संबंधों को देखते हुए डॉक्टर लक्ष्मीकांत सिन्हा का यह कथन, **"रेणु जी को पूर्णिया गांव में मैथुन ही सबसे प्रधान आकर्षण मिला |"**[3] गलत नहीं लगता |आर्थिक दृष्टि से गाँव की हालत बहुत ही ख़राब है | गिने चुने लोग ही जमींदार है बाकि मजदूरी करते हैं, जिनका शोषण ये जमींदार करते हैं | राजनीती की दृष्टि से मेरीगंज में जाग्रति निर्माण हो रही हैं | धर्म भी पाखंडियों के हाथ में पड़कर दिखावा मात्र रह गया है | डॉ प्रशांत अपने आदर्शवादी विचारों के कारण इस पिछड़े गाँव में मलेरिया और काला आजार रोगों का अनुसन्धान करने आता है | आंचलिक उपन्यासों में भाषा महत्वपूर्ण घटक तत्व होता है | भाषा आंचलिकता का महत्वपूर्ण आकर्षण भी होती है और प्रमुख साधन भी | आंचलिक भाषा प्रयोग की दृष्टि से रेणु सिद्धहस्त रचनाकार माने जाते हैं | चाहे अखाड़े का वर्णन हो या तहसील कचहरी संबंधित शब्दावली हो, मठ की आचार-व्यवहार की भाषा हो या राजनीति की शब्दावली रेणु के पास शब्दों का अक्षय कोश हैं |

मैला आंचल में स्त्री के विविध रूप:-मैला आंचल उपन्यास में नारी के प्रेमिका रूप का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में नारि क चरित्र तीन वर्गों में मिलता हैं। मैला आंचल के नारी पात्र अपनी शिक्षा दीक्षा परंपरागत संस्कार तथा बाहरी शब्द संस्कार के संपर्क के कारण अपना वैशिष्ठ्य रखते हैं | इनमें उच्च वर्ग के पात्रों का कहीं ना कहीं नागरिक परिवेश से जुड़ा होता है और अधिकांश सिद्धांतवादी होने से प्रगति के समर्थक भी होते हैं | मैला आंचल की कमला को इस वर्ग के अंतर्गत रखा जा सकता है | यहां एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उच्च वर्ग के पात्रों का आंचलिक जीवन से संबंध बहुत कम होता है क्योंकि उनमें आंचलिक जीवन की विशिष्टता नहीं के बराबर होती है | यह विशिष्टता मध्यवर्ग में थोड़ी अधिक और निम्न वर्ग में सबसे अधिक होती है | वैसे भी आंचलिक जीवन का आधार निम्न वर्ग ही होता है | इस वर्ग के अंतर्गत कोठारिन लछमी दासी और मंगला को रखा जा सकता है | एक अन्य वर्ग उन नारियों का है जो न अपना व्यक्तित्व स्थापित कर पाती है और न किसी प्रकार का संघर्ष कर पाने में समर्थ है | इन मध्यवर्गीय पात्रों में, फूलिया, रमजूदास की स्त्री, रमपियरिया, पार्वती की मां आदि को रखा जा सकता है |संपन्न परिवार की नारियां मानसिक और शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त तथा संपन्नता के अभिशापों को वहन करने को अभिशप्त होती है | मध्यवर्गीय नारियां धर्म, राजनीति, शिक्षा और सामाजिकता के नाम पर शोषित और पीड़ित होती है | इनकी मुख्य समस्या भरण पोषण के अलावा स्वत्व रक्षा की है | यह नारियां उच्च वर्ग की तुलना में सपने कम देखती है किंतु मानवीय मूल्यों से बंधी रहना चाहती है | सहज मानवीय जीवन की अभिलाषा रखने वाली यह नारियां मानवीय सन्दर्भो की दृष्टि से जागृत होती है | यह नारियों की जीने की अभिलाषा उनसे वह सब करवाने को बाध्य करती है जो सामाजिक मूल्यों के विपरीत है | सभी प्रकार से शोषित, पीड़ित, दयनीय जीवन मैला आंचल की रेखाओं को प्रस्तुत करती है। जहां तक मानवीय जीवन के शाश्वत मूल्यों का प्रश्न है रेणु जी ने तीनों वर्गों के नारी पात्रों के उज्जवल तथा धूमिल पक्ष को साक्षात किया है | नारी की दयनीय दशा के लिए पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था की असहिष्णुता वृत्ति, रुढियों, धार्मिक पाखंड एवं आर्थिक परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया है |**कमला (प्रेमिका) -**उपन्यास की प्रमुख कथाओं में से एक कथा के प्रमुख पात्र के रूप में कमला का चरित्र प्रस्तुत हुआ है | एक संपन्न परिवार की युवती के रूप में उसका चरित्र अनेक आयामों से गुजरता है | वह मेरी गंज के सबसे अमीर व्यक्ति तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की एकमात्र कन्या है | 16- 17 की इस युवती की विडंबना यह है कि वह मानसिक परेशानियों की शिकार है | रोग क्या है ? **"मेडिकल स्टूडेंट की निगाह में हिस्टीरिया, फोबिया, काम विकृति और हट प्रवृत्ति |"**[4] कुछ भी हो सकता है | उसे डर लगता रहता है | हिस्टीरिया के दौरे के पीछे काम-शमन भी है | उसकी ये परेशानियां उस समय और भी बढ़ जाती है | जब उसके विवाह की बात चलती है | विवाह तय हो जाता है फिर टूट जाता है | **" तीन जगह बात चली | पहली जगह ठीक तिलक के दिन लड़के की मां मर गई | दूसरी जगह बातचीत हुई तो घर में आग लग गई | तीसरे लड़के को मैया हो गया | अब कोई लड़के वाला तैयार नहीं होता | अब उसे बेहोश होने की बीमारी लग गई है | प्रेम सागर में मन नहीं लगता | चीर हरण लीला की तस्वीर देखकर कमली का जी न जाने कैसे करने लगता है |"**[5]

डॉ प्रशांत के उपचार में कमली को सौंप दिया जाता है और प्रशांत का स्नेह और युक्त व्यवहार उसके लिए वरदान सिद्ध होता है | अब तक दवाई ना खाने वाली कमला डॉ प्रशांत के कहने पर दवाई खाने लगती है | प्रशांत का सानिध्य बढ़ता गया और धीरे-धीरे कमला के मन में उसके प्रति आकर्षण बढ़ता गया | वह अपनी भावुकता इस प्रकार प्रकट करती है – **"डॉक्टर की मुस्कुराहट बड़ी जानलेवा है | जब आवेगा तो मुस्कुराते हुए आएगा | डर लगता है | हां-हां डर लगता है तो तुमको क्या ? तुमको तो मजा मिलता है न | मुस्कुराए जाओ | गले में आला लटकाए फिरते हैं बाबू साहब | छाती और पीठ में लगाकर लोगों के दिल की बात ... बीमारी को पता लगाते हैं | झठ! इतने दिन हो गए, मेरे दिल की बात, मेरी बीमारी को कहां जान सके |"**[6] डॉक्टर प्रशांत को भी कमला के यहां जाना अच्छा लगता है | कमला और प्रशांत का प्यार भावात्मक शिखर पर पहुँच जाता है | एक प्रेमिका के रूप में कमला एक सफल नारी चरित्र माना जा सकता है | विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा प्रशांत को देखकर कमला सोचती है कि होली खेल रहा है यह या इंजेक्शन दे रहा है | परेशान की इस अवस्था को देखते हुए कमला कहती है, **"चुटकी में अभी रखकर ऐसे खड़े हैं जैसे किसी की मांग में सिंदूर देना हो|"**[7] कमला के स्वभाव में यह परिवर्तन प्रशांत को अच्छा लगता है |

लछमी दासी:- मेरीगंज के महंत सेवादास के मठ की लछमी कोठारिन है | वह मठ को समर्पित, सत् शील, निर्भीक और स्वत्व को बनाए रखनेवाली नारी है | उसका जीवन एक अन्य वर्ग के नारी की दुविधा, धर्म- निष्ठा और मूल्य प्रियता का परिचय देता है | मठ की कोठारिन होने से उसका सारा समर्पण महंत के प्रति है | मठ और ग्रामीण समाज के बीच वह संपर्क सूत्र का काम करती है | इसी कारण उपन्यास के अधिकांश पात्र उससे जुड़े हुए हैं | बचपन में अनाथ होने से वह मटकी शरण पाती है | उसके पिता रामचरण महंत राम गुसाई के सेवक रहे हैं और वह राम गुसाई का स्नेह पाती रही | परंतु हैजे में पिता और महंत की मृत्यु हो जाती है और उसे परसाहा मठ से वसुमतिया मठ की शरण में जाना पड़ता है | परंतु लंबे मामले के मुकदमे के बाद सेवादास ने लछमी पर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया | वकील ने लछमी को सेवादास के सुपुर्द करते हुए कहा था ... **"इसे ठीक से पढ़ा-लिखा कर इसकी शादी करवा दीजिए |"**[8] और महंत सेवादास ने वचन दिया था कि.. **"वकील साहब लछमी हमारी बेटी की तरह रहेगी |"**[9] लेकिन आदमी की मति को क्या कहा जाए ? मठ पर लाते ही उन्होंने किशोरी लछमी को दासी बना दिया | पशवृत्ति के कामुक को सेवादास ने लछमी की असहाय अवस्था का लाभ उठाकर उसका भरसक शोषण किया | यादव टोली का किसनो जो 5 साल तक मठ में काम कर चुका है, मठ में होनेवाले पापाचार को प्रस्तुत करता है |रामदास कभी भी लक्ष्मी को अपनी वासना का शिकार बना नहीं सका | लछमी बालदेव के प्रति आकृष्ट होती गई जबकि लछमी के मन में संप्रदाय और मठ के महंत के प्रति पूर्ण भक्ति भाव रहता है | सेवादास के समय में ही उसने उनकी दर्दशा का कारण माया मोह बताकर उन्हें सतगुरु की सेवा करने का आग्रह किया था फिर भी सेवादास एक रात लछमी को पुकारते हैं | तो वह सेवा में अवश्य होती है परंतु .. **"उस दिन बीजक छूकर कसम खाए थे आज फिर पुकारने लगे | महंत साहब को शांत कीजिए |"**[10] कहकर उन्हें जिताने का प्रयास करती है | सेवादास की दासिन होकर भी पद से हटने पर उन्हें दिखाने से नहीं चूकती | रामदास महंत बनने पर बलात्कार की नियत से उसकी कोठरी में घुसकर उसका

हाथ पकड़ लेता है तब उसका रूप देखने योग्य है,... **"रामदास हाथ छोड़ो | बैठो| आखिर तुम को नहीं संभाल सके, माया से कोई परें नहीं | माया को कोई जीत नहीं सकता | तुम नरक की ओर पांव बढ़ा रहे हो | अब भी चेतो |"**[11] परंतु रामदास चेतने की स्थिति में नहीं है, वासना का भूत उस पर सवार है | लछमी अपना हाथ छुड़ाकर उसके गाल पर थप्पड़ मारते हुए उससे मुक्त होती है |लछमी प्रेम का अर्थ समझती है | सेवादास की दृष्टि से वह भले ही दासिन रही हो लेकिन सेवादास से उसने बच सच्चे दिल से प्रेम किया है | सेवादास के बाद उसके आकर्षण का केंद्र बलदेव रहा है | बलदेव लछमी के शरीर की विशिष्ट गंध का पुजारी है | गांधीवादी बाल दिवस सफेद साड़ी में निकले उसके रूप को देखकर भावविभोर हो जाता है | लछमी एक क्षमाशील नारी है | उपन्यास की दूसरी प्रमुख कथा में उसका यह रूप अत्यंत छाया है | सेवादास की बुराइयों पर पर्दा डाल कर उसके मरने पर वह उसकी प्रशंसा ही करती है और उसके दोषों को अपने ऊपर लेती है |

मंगला:-मंगला वीर लछमी दासी की तरह मध्यवर्गीय पात्र है | वह एक अध्यापिका है जिसका अपना कोई घर नहीं है | उसे घर छोड़े 5 साल हो गए हैं | बालदेव ने मेरीगंज में एक चरखा सेंटर खोला है जिसकी देखभाल मंगला करती है | पटना से उसके साथ एक करघा मास्टर और एक चरखा मास्टर भी आए हैं | जिनसे मंगला देवी का झगड़ा हो गया है | मंगला ने दुनियादारी को अच्छी तरह देखा और समझा है | आदमी के अंदर के पशु को अनेक रूपों में व्यक्त होते उसने देखा है | वह विधवा आश्रम में रही, अबला आश्रम में भी उसने दिन बिताए, आया के रूप में सम्राट परिवारों में उसने काम किया | परंतु सर्वत्र मर्दों ने उसे असहाय और अकेली पाकर उसका उपयोग करना चाहा | उसका मानना है कि, **"अबला नारी हर जगह अबला है | रूप और जवानी !... नहीं यह भी गलत | औरत होना चाहिए, रूप और उम्र की कोई कैद नहीं | एक असहाय औरत देवता के संरक्षण में भी सुख चैन से सो नहीं सकती |"**[12] यहां रेणु ने मंगला के अनुभव के माध्यम से समाज के चरित्र की व्याख्या की है और पुरुषों की काम प्रवृत्ति का निम्नतम रूप प्रस्तुत किया है | मंगला के चरित्र के संबंध में दूसरी ही कहानी सुनाते हैं | टुनटुन जी मंगला को पटना से जानते हैं | उनके अनुसार गांव तरक्की सेंटर में भी तभी से उड़ती थी | व्यवस्थापिका जी इनके मिलने वालों से परेशान रहती थी | रोज नए-नए लोग | बहुत बार मंगला देवी को चेतावनी भी दी गई लेकिन इनके आचरण में कोई परिवर्तन नहीं आया | अंततः व्यवस्थापिका जी हार मान कर चुप हो गई | रेणु जी ने मंगला देवी के आंतरिक रुप के साथ ही बाह्य रूप का भी चित्रण किया है | गांव में हैजा फैलने पर वह रात दिन लोगों की सेवा करती है | स्वयं बीमार होकर कालीचरण की सेवा का लाभ पाती है | और यही वह कालीचरण के व्रत, खान-पान, कर्तव्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उसके प्रति समर्पित हो जाती है और उसके साथ रहने लग जाती है |

फुलिया:-निम्नवर्गीय पात्रों में फुलिया महंगू दास की जवान बेवा बेटी है | सहदेव मिश्र से उसके अनैतिक संबंध है | उसके मां बाप-बेटी के अनैतिक कृत्यों को जानते हुए भी मौन है | मां-बाप आर्थिक मजबूरियों में इस तरह फंसे हैं कि उन्हें यह यथार्थ भी स्वीकार है | सहदेव मिश्र के अलावा अन्य व्यक्तियों से भी उसके संबंध थे | इन संबंधों से तंग आई हुई फुलिया स्थिर जीवन चाहती है | सहदेव मिश्र ने कोरे कागज पर महंगू दास के अंगूठे की टिप ले रखी है | उसे कभी भी नालीस करवा सकता है | इसके साल भर से घर का खर्चा भी वही चलाता है | इसके बदले वह फुलिया का खुलकर उपभोग करता है | फुलिया अस्थिर और चंचल स्वाभाव की है | मैला अंचल में और भी स्त्री पात्र हैं जो गौण पात्र में आये है | जिनमें रमजूदास की स्त्री, रामपीयारिया और उसकी माँ, फुलिया की माँ, ममता आदि |

निष्कर्षत: रेणु जी ने मैला आँचल में 3 वर्गों की नारियों द्वारा उनके चरित्रों द्वारा विभिन्न वर्ग की नारी की प्रकृति, स्त्री-पुरुष संबंधों, मूल्यबोध का सजीव प्रसंग प्रस्तुत किया है|

******** ******

सन्दर्भ :-

1-2. मैला आँचल – भूमिका
3. हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास – डॉ. लक्ष्मीनारायण सिन्हा – पृ. 17
4-12. मैला आँचल - फणीश्वरनाथ रेणु – पृ. 70,80,127, 25-26,115,58-59

हिन्दी और तेलुगु के नारी उपन्यासों में सामाजिक आन्दोलन का प्रभाव
(चुने हुए उपन्यासों के संदर्भ में)

बी.रविंदर
शोध छात्र, हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500046 मो: 9573374049

प्रस्तावना:-प्रत्येक समाज चाहे वह सभ्य हो या असभ्य, आदिम हो या आधुनिक, उसमें किसी ना किसी प्रकार की समस्याएं पाई जाती हैं। सामाजिक आंदोलन के उद्भव और विकास के साथ-साथ अनेक प्रकार की आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, जैसे असमानता, शोषण, दमन, अत्याचार जैसी आर्थिक समस्याओं का जन्म हुआ है वही वर्ग और वर्ण-व्यवस्था ने कई प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न किया है। वास्तव में सामाजिक आंदोलन की प्रकृति काफी व्यापक है जैसे पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों, जन जातियों, दुर्बल वर्ग और महिलाओं से जुड़े आंदोलन की प्रकृति समान नहीं है। सभी प्रकार के आंदोलन अपने वर्ग, जाति संप्रदाय की मांगों की पूर्ति हेतु संघर्ष करते हैं। यही कारण है कि इन समस्याओं के समाधान के लिए समय-समय पर आंदोलन होते रहे हैं।

समाज में शताब्दियों की दासता, हीनता, प्रताड़ना व असंतोष से तड़पती नारी जाति ने जब मुक्ति के लिए जागृत होकर संघर्ष का बिगुल बजाया तब-तब यह संघर्ष समय गुजरने के साथ-साथ नारी जाति से संबंधित आंदोलन के रूप में भी परिवर्तन परिलक्षित हुआ। इस आंदोलन के माध्यम से स्त्रियों ने अपने लिए बनी बनाई सीमाओं का अतिक्रमण करना शुरू किया तथा पुरुष सत्ता वाले मानदंडों को तोड़कर स्त्री जाति के विश्वव्यापी संघर्ष को रूपायित किया। इस क्रम में स्त्री को जागरूक सचेत व एकजुट होकर संघर्ष करने का रास्ता दिखाया। बाद में स्त्री का यह संघर्ष व्यक्तिगत संघर्ष ना रहकर पूरी स्त्री जाति का संघर्ष आधी दुनिया के रूप में सामने आया।

बीज शब्द : सामाजिक आंदोलन, समाज में नारी शोषण, नारी मुक्ति संघर्ष, दलित नारी जीवन संघर्ष, नारी अस्तित्व, आदिवासी स्त्री संघर्ष और सामाजिक चेतना आदि |

मुख्य अंश:नारी आंदोलन मुख्य रूप से, काम के अधिक घंटे, असमान वेतन, काम की जगह पर कोई सुविधा नहीं, घर का काम, बच्चों की देखभाल, परिवार का शोषण, पति द्वारा शोषण आदि के खिलाफ इन स्त्रियों ने संगठित होकर आवाज उठाई जिसे 'नारी आंदोलन' का नाम दिया गया। पाश्चात्य और भारतीय स्त्रियों की स्थितियों में काफी अंतर दिखाई देता है। उनके रहन सहन रीति-रिवाज परिवेश संस्कृति सभ्यता परंपरा सामाजिकता में अत्यधिक भिन्नता नजर आती है। जिस प्रकार पाश्चात्य देशों की स्त्रियों ने समय-समय पर होते आए शोषण के खिलाफ आंदोलन किए हैं। भारत में इस प्रकार की स्थिति कम नजर आती है जहां पाश्चात्य स्त्रियों ने समानता के लिए सदियों से आंदोलन किए, पर भारतीय स्त्री को मात्र आजादी के कुछ वर्षों में समानता का अधिकार प्राप्त हुआ है।

भारतीय स्त्रियों ने स्त्री मुक्ति संघर्ष में सहयोगी और मार्गदर्शक की भूमिका निभाई है, सार्वजनिक, राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रियों को पुरुष वर्ग ने ही प्रेरित व प्रोत्साहित किया है। राष्ट्रवादियों ने स्त्री को प्रेरणा दी कि राष्ट्र के दायित्व को समझे और स्वतंत्रता संग्राम में भाग ले। स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियों का योगदान प्रशंसनीय रहा है। नारी आंदोलन की सार्थकता इसी में है कि आज स्त्री के अधिकारों को व्यापक मान्यता मिली है। वैवाहिक जीवन उसके लिए कारागर नहीं बल्कि व्यक्तित्व को निखारने का अवसर है। काम उसकी मजबूरी नहीं, बल्कि आत्मनिर्भर बनने का साधन मात्र है। वह प्रायः हर क्षेत्र में असरदार ढंग से भाग ले रही है व विकास में योगदान दे रही है। आज उनको किसी काम को करने से मात्र नहीं रोका जा सकता है कि वह स्त्री है। परंतु अभी भी स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याएँ कई क्षेत्रों में सामने आती हैं।

उद्देश्य:-प्राचीन भारत में कुंती, गांधारी, द्रोपदि जैसी स्त्रियाँ है जिन्होंने समाज की बनी बनाई लकीर पर चलने से इनकार किया। मध्यकाल में मीरा, सहजोबाई, जनबाई, अक्कामहादेवी, सुलेसनकवा गंगासती, रतनबाई, आतुकरी मौल्ला बहिणबाई जैसी नायिकाओं ने सामाजिक अवधारणाओं का विरोध किया था।

अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में दुर्गावती, चांद बीबी, रानी न्नम्मा, लक्ष्मी बाई, जीनत महल, अवंतिका बाई लोधी, ईश्वरी कुमारी, तेज भाई आदि जैसी स्त्रियाँ थीं जो रानियाँ थीं, लेकिन आत्मसम्मान के लिए संघर्षश्त रही हैं। जिनके नाम इतिहास के पन्नों में तो दर्ज है, मगर उन जैसे महान स्त्रियों के बारे में हमारे पास जानकारी उपलब्ध नही हैं। नवजागरण की सुधारवादी लहर में बहुत स्त्रियाँ शामिल थी जैसे सावित्रीबाई फूले, पंडित रमाबाई और ताराबाई शिंदे इत्यादि। सन् 1975 में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष से पूर्व स्टेट्स ऑफ वूमेन इन इंडिया नामक रिपोर्ट भी आ चुकी थी इस दौरान बहुत से स्त्रीवादी संगठन बने। सिर्फ और सिर्फ संसद में स्त्रियों को 33 प्रतिशत आरक्षण के मुद्दे पर ही देख रहे हैं। लेकिन बीसवीं शताब्दी को स्त्री जागरण का युग कहा जाता है। क्योंकि इसका अंतिम दशक स्त्री जागरणों के विमर्शों पर केंद्रित रहा है इस में स्त्री अस्तित्व, स्वतंत्रता और गरिमा जैसे विषयों पर गंभीर चिंतन और विमर्श हुआ है। इक्कीसवीं सदी को स्त्री की सदी कहा जा सकता है। आज स्त्रियों के संगठित आंदोलन हर दिशा में हो रहे हैं। अपने नागरिक अधिकारों के लिए वह लड़ रही है। वह न केवल सवाल उठा रही है, बल्कि जवाब भी ढूंढ रही है। स्त्री समाज और परिवार में सुरक्षित स्थिति के लिए, रोजगार और आत्मनिर्भरता के लिए वे निरंतर संघर्ष कर रही हैं।

हिन्दी और तेलुगु के नारी उपन्यासों में सामाजिक आन्दोलन का प्रभाव

प्राचीन काल से भारत में नारी का एकमात्र कार्यक्षेत्र परिवार और गृहस्थी माना गया। नारी को किसी भी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। नारी जीवन की सत्यकथा उसके पत्नी व माता रूप में ही देखी जाती थी। इस प्रकार स्त्री पुरुषों में प्रारंभ से ही भेदभाव की स्थिति विद्यमान थी। ज्यों-ज्यों समाज सभ्य होता गया, पुरुष परिवार एवं समाज प्रमुख शक्ति बनता गया और नारी आश्रिता बनती गई। प्राचीन काल से भारतीय नारी बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, अनमेल-विवाह, कन्या-भ्रूण हत्या, सती-प्रथा जैसी अमानुषिक स्थितियों को सहती रही। इन कुरीतियों के संकेत धर्मसूत्र, मनु संहिता, अर्थशास्त्र, रामायण, महाभारत, स्मृति ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। नारी की स्थिति गिरावट के कारण से यह अनुमान लगाया गया है कि शारीरिक दृष्टि से दुर्बल घोषित होने तथा आर्थिक रूप से परावलम्बी बनने के कारण नारी जीवन के समस्त सूत्र पिता, पति तथा पुत्र के हाथों में केंद्रित हो गये। फलतः अपनी मानवीय पहचान खोकर वह पुरुषों की संपत्ति मात्र बनकर रह गई। परिणाम स्वरूप पुरुष प्रधान समाज अस्तित्व में आया और नारी की पुरुष सापेक्ष स्थिति स्वीकार कर ली गई।

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास साहित्य में उत्तर वैदिक काल से आधुनिक काल तक भारतीय नारी की स्थिति लगभग एक सी रही। नारी जीवन में चेतना व जागृति उत्पन्न करने वाले प्रमुख तत्व शिक्षा, स्वतंत्रता, पाश्चात्य प्रभाव और समाज सुधार आंदोलन आदि रहे हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली से तथा विभिन्न पाश्चात्य चिंतकों जैसे जॉन स्टुअर्ट मिल, कार्ल मार्क्स, फ्रायड, और सीमोन दी बाउवर आदि के विचारों से प्रभावित भारतीय नारी समाज में नवीन चेतना उदित हुई।

हिन्दी और तेलुगु महिला उपन्यासकारों ने नारी जीवन से सम्बन्धित विसंगतियों एवं समस्याओं को दर किया है। मुख्यतः हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में प्रमुख रूप से भारतीय नारी की मूल संघर्ष को दिखाते हुए उन संघर्षों में स्त्री जीवन किस प्रकार नष्ट होता है इस क्रम में हिन्दी में चित्रा मुद्गल द्वारा लिखा गये 'आंवा' उपन्यास की नायिका नमिता है जो कामगार आघाडी के महा सचिव देवी शंकर पाण्डेय की बड़ी पुत्री है। इस उपन्यास में भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के साथ होने वाले विविध प्रकार के शोषण का चित्रण यथार्थ रूप में किया गया है। बचपन में मौसा द्वारा, मजदूर कार्यालय में चित्र तुल्य अन्ना साहब द्वारा और उसके बाद कैरियर का प्रलोभन देखकर संजय द्वारा किराए की कोख के लिए किए गए शोषण से स्त्री शोषण के विविध स्वरूप स्पष्ट होते हैं। लेकिन सुनंदा और नमिता दोनों द्वारा किया गया संघर्ष और उनका साहस स्त्री मुक्ति चेतना की राह दिखाता है। नमिता मेहनती है वह निरंतर परिश्रम करके समस्याओं का समाधान खोजती है। परिवार की जिम्मेदारी का उसे एहसास है। उसे अपने आप पर विश्वास है। वह कुछ करके दिखाना चाहती है। नमिता के शब्द में "लिख लूंगी। देखूंगी, एक दिन अच्छी नौकरी ही नहीं करूंगी, छूटी पढ़ाई भी पूरी करूंगी।"1 नमिता और स्मिता जैसी युवतियों की पढ़ाई आर्थिक स्थिति के कारण छूट जाती है। इस सउपन्यास में सिध्दार्थ, नमिता से कहता है कि "फोटो फोलियो बनाने की एवज में तुम्हें मेरे साथ दैहिक संबंध रखने होंगे। हिसाब बराबर और कोई चिन्ता है ?"2 इस प्रकार पुरुष नारी को बेसहारा के नाम पर, कभी इंसानी फर्ज का झूठा बहाना बनाकर, हर जगह नारी का शोषण करता दिखाई देता है।

'वह लड़की' सुशीला टाकभौरे द्वारा लिखे गए उपन्यास में दलित नारी जीवन की संघर्ष की कथा है। इस उपन्यास में दलित नारी जीवन की समस्याओं को उकेरा गया है। दलित नारी को हर जगह समाज की मनु वादी स्थितियों से दो-चार होना पड़ता है। हमारे समाज में नारी को हमेशा से ही हाशिए पर रखा गया है। सामाजिक परिस्थितियों के कारण न तो वह अपना विकास कर पाती है और ना ही शिक्षा ग्रहण कर पाती है। उसका हमेशा शोषण होता है। इस उपन्यास के माध्यम से यह पता चलता है कि स्त्रियाँ अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करते हुए लड़ रही हैं, फिर भी समाज में स्त्रियों पर अन्याय, अत्याचार लगातार हो रहे हैं। उन पर आज भी अनेक प्रकार के बन्धन लगाए जा रहे हैं, जिसके फल स्वरूप अभी भी स्त्रियों के अस्तित्व और व्यक्तित्व का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पा रहा है। शैला चाहती है कि "समाज में ऐसी जागृति लानी चाहिए जिससे गुनहगार को, अन्यायी-अत्याचारी को कड़ी से कड़ी सजा दी जाए, ताकि किसी की बेटी को, इस तरह जिन्दगी से और मौत से न जूझना पड़े।"3 आज भी समाज में लड़कियों पर अत्याचार हो रहे हैं। कहीं मायके में कहीं ससुराल में, कहीं नारी होने के कारण, कहीं जाति के कारण। हर जगह लड़कियों का शोषण हो रहा है। हिंसा, अपमान और बलात्कार हो रहे हैं जिन्दा रहने का हक छीना जा रहा है, उन्हें मौत के घाट उतारा जा रहा है। समय बदलना चाहिए प्रत्येक नारी को अपना जीवन अपने ढंग से जीने का अधिकार मिलना चाहिए। 'दिलो दानिश' उपन्यास की रचनाकार कृष्णा सोबती है। यह नारी अस्तित्व पर घटित उपन्यास है। इसमें नारी को विभिन्न दृष्टिकोण के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। चाहे नारी का कोई भी रूप हो जैसे माता, पुत्री, बहन, पत्नी या फिर रखैल, प्रस्तुत सभी रूपों में उसे पुरुष समाज निचोड़ना ही चाहता है। कृति की विकास यात्रा में स्त्री लगातार अपनी पहचान, अधिकार, अस्मिता, अहं आदि पर कुठाराघात सहते-सहते हताश हो उठती है। अंत में वह विद्रोह कर बैठती है। नारी का यही विद्रोह उपन्यास के समापन का भी महत्त्वपूर्ण बिन्दु बन जाता है। अतः यह उपन्यास नारी दशा या फिर नारी दिशा को प्रस्तुत करता है। बूआजी एक कड़वे सच से रू-ब-रू करवाती है कि "हमसे पूछो तो मर्द को गुमराह करने वाले फक्त हुस्न और जवानी नहीं, उसकी कमाई है जो इसे खुदमुख्बारी देती है।"4 इस उपन्यास में मूल्यों से अंतः संघर्ष करते हुए नारी पात्रों को देखा गया है। महक, कुटुम्ब, मासूमा आदि को अपने संघर्ष में कुछ पाने की इच्छा में कुछ न कुछ खोते हुए ही देखा गया है। इनके साथ-साथ तेलुगु साहित्य के नारी केन्द्रित उपन्यासों में 'रागो' उपन्यास की लेखिका साधना है। यह उपन्यास गोंड जनजाति कि संस्कृति का आख्यान एवं जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। इस उपन्यास कि नायिका रागो है। रागो आस पास के गाँव जाकर वहाँ के लोगों की समस्याएँ सुनती थीं। रागो एक दिन लोगों की समस्याएँ जानने के लिए अपने गाँव जाती है, उसे देखकर वहाँ के लोग खुश हो जाते हैं। इस प्रकार वह अनेक गाँवों, बस्तियों में अंधविश्वास को दूर करने का बीड़ा उठाती हैं। यह उपन्यास गोंड जनजाति की संस्कृति का आख्यान एवं जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। इसमें बताया गया है कि आदिवासी स्त्री किस प्रकार नक्सल आंदोलन से जुड़ती है तथा आदिवासी स्त्रियों को उनकी समस्याओं से मुक्त कराने का प्रयास करती है। उपन्यास का प्रधान पात्र रागो के माध्यम से बताया गया है।

'एल्ली' उपन्यास अरुणा द्वारा रचित है जो तेलुगु आदिवासी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह उपन्यास आदिवासी स्त्री समस्या पर केंद्रित है। इस उपन्यास में 'ओलि' (वधू मूल्य) की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही आदिवासियों में बढ़ रही पुरुषवादी मानसिकता एवं पंचायत में होनेवाले भेदभाव को रेखांकित किया गया है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र एल्ली है। इस उपन्यास में आदिवासी स्त्री की दशा एवं दिशा का चित्रण मिलता है । आदिवासी स्त्री पर होने वाले शोषण और अन्याय-अत्याचार को कैसे सहती है इस कथन से स्पष्ट होता है। "उस माँ की आँखों से बहनेवाले आँसू, आँसू हैं। इस दुखके बारे में किसी को पता न चले इसलिए वह अपने दुःख को हृदय में ही समा लेती है। जिससे उसका हृदय भर जाता है। इस के बारे में सभी को बताने से क्या लाभ है ? थोड़े समय तक दिखाएँगे जो कुछ बतायेंगे अपनी जाति बिरादरी को ही

यह दुनिया तो अंधी है। दो दिन के बाद यह दया धुंधली हो जाएगी।"[5] नीलि के ससुराल वाले नीलि से वधू मूल्य वापस देने की माँग करते हैं। इसी बीच नीलि की माँ की मृत्यु हो जाती है। पंचायत से उन को बुलावा आता है। पंचायत तय करती है कि उन्हें ओलि की रकम और जुर्माना भी देना होगा। पंचायत के इस निर्णय से नीलि दुखी हो जाती है। 'वोल्गा' द्वारा लिखा गया उपन्यास 'सहजा' है। इस उपन्यास में भारत सरकार द्वारा विविध सामाजिक एवं आर्थिक संशोधनों के परिणाम स्वरूप तरह-तरह की नीतियाँ अपनायी गई हैं। कहती है । प्रसाद, सहजा को समझाता है कि "तुम्हें अज्ञानता के प्रति गुस्सा आना ठीक है लेकिन अज्ञानता से पीड़ित लोगों के प्रति गुस्सा आना ठीक नहीं है। जो लोग इस अज्ञानता का फायदा उठाते हैं उनसे द्वेष करो और जो अज्ञानता से पीड़ित है उनसे प्रेम करो।"[6] प्रसाद भी सहजा की वेदना को समझकर उसे दूर करने की कोशिश करता है। ऐसे बहुत कम मर्द होते हैं जो औरत की सहायता के लिए तत्परता से आगे बढ़ते हैं। प्रसाद और सहजा दोनों समाज को स्वस्थ बनाने का प्रयास करते हैं। इसी व्यथा और एकाकीपन को लेखिका वोल्गा ने बड़े मर्मिक रूप से चित्रित किया है।

भारतीय समाज के मूल्य बदलने लगे, अर्थ बदलने लगा और मान्यताएं बदलने लगीं। स्वाभाविक रूप से इन सबका प्रभाव स्त्री जाति पर पड़ने लगा। इस प्रभाव से उनकी विचारधारा में परिवर्तन आने लगा। इसका सबसे बड़ा कारण स्त्री-पुरुषों के आपसी संबंधों में बदलाव था। इस प्रकार से वह अनेक अधिकारों को अपने हाथ में लेने में सफल होने लगी। फिर भी उनकी मूल स्थिति में विशेष अंतर नहीं है अब भी नारी के भीतर छिपी असुरक्षा की भावना तथा उसके आश्रित होने की नियति में है। हिन्दी और तेलुगु की महिला उपन्यासकारों ने नारी की इस शोषित स्थिति को अपनी रचनाओं में बेबाकी से चित्रण करने का प्रयास किया है जैसे नारी-शोषण, विद्रोही-नारी, संघर्षशील-नारी, स्वाभिमानी-नारी और नारी-समानता आदि समस्याओं को देखा जा सकता है। हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाएँ, अलग-अलग भाषा परिवार से संबंधित होने पर भी हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में स्त्री शोषण को मार्मिक ढ़ंग से दिखाने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष:-सामाजिक दबाव से नारी आंदोलन उभरा है। जिसमें स्त्रियों के अधिकारों, विचारों तथा उनसे जुड़े विविध पहलुओं से नए विचार के साथ नारी की चर्चा की जा रही है। यह विमर्श दिन-ब-दिन अधिक प्रासंगिक होते दिखाई दे रहा है। हम स्त्री से जुड़े विविध पहलुओं को साहित्य में एक विमर्श के रूप में पढ़ रहे हैं लेकिन स्त्री को लेकर उठने वाले यह सवाल आज के नहीं है। कई दौर बीत चुके हैं लेकिन आज भी पूर्ण रूप से जागृति नहीं आयी। आज भी स्त्री पर पुरुष सत्तात्मक समाज में शोषण कम नहीं हुआ। उस पर होने वाले अन्याय-अत्याचार रुकने का नाम नहीं ले रहे हैं। लगातार दिन-ब-दिन उसे प्रताड़ित किया जाता है। इस तरह की अनेक समस्याओं को उजागर करने का काम आंदोलन के जरिए हो रहा है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.आवां, चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष-1999.
2.वह लड़की, सुशीला टाकभौरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2018.
3.दिलो-दानिश, कृष्णासोबती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-1992
4.रागो, सादना, नवोदया बुक हाउस, हैदराबाद, वर्ष-1993.
5.एल्लि, अरुणा, न्यू सेलबंस लिटरेचर प्रकाशन, विजयवाड़ा, 2001.
6.सहजा, वोल्गा, स्वेच्छा पब्लिकेशन, हैदराबाद-2005.
7.भारत में सामाजिक आन्दोलन, वी. एन. सिंह, जनमेजय सिंह, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 8.स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2003.
9.हिंदी के महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन, डॉ. मुनेश यादव, बुकपब्लिकेशन, लखनऊ
10.बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य, डॉ. आई. एन. चन्द्र शेखर रेड्डी, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली-2003.
11.आँवा, चित्रा मुद्गल, पृ. सं. 47
12.आँवा, चित्रा मुद्गल, पृ. सं. 293.
13. वह लड़की, सुशीला टाकभौरे पृ. सं.30
14. दिलो-दानिश, कृष्णा सोबती, पृ. सं. 83.
15.एल्लि-अरुणा, पृ. सं. 30
16. सहजा, वोल्गा, पृ. सं. 69.

महात्मा बुद्ध के शैक्षिक विचारों में नारी शिक्षा की स्थिति का एक अध्ययन

प्रो.रामबली यादव
शोध निर्देशक
शिक्षाशास्त्र विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

प्रज्ञा बौद्ध
शोधार्थिनी.
शिक्षाशास्त्र महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

सार-प्रस्तुत शोधपत्र में बौद्ध दर्शन में स्त्री शिक्षा का अध्ययन पर प्रकाश डाला गया है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में धार्मिक आन्दोलन का प्रबलतम रूप हम बौद्ध धर्म की शिक्षाओं तथा सिद्धांतों में पाते है जो पालि लिपि में संकलित है, जैन परंपरा को ईसा की पाचवी शताब्दी में लिखित रूप प्रदान किया गया, इस कारण बौद्ध धर्म से संबंद्ध पालि साहित्य वैदिक ग्रंथों के बाद सबसे प्राचीन रचनाओं की कोटि में आता है। बौद्ध धर्म के समुचित ज्ञान के लिए इस धर्म के त्रिरत्न -बुद्ध. धर्म तथा संघ तीनों का अध्ययन आवश्यक है। शिक्षा मनुष्य के सर्वांगिण विकास का माध्यम है इससे मानसिक तथा बौद्धिक शक्ति तो विकसित होती है भौतिक जगत का भी विस्तार होता है। गुरूकुल परंपरा में चली आ रही प्राचीन शिक्षा पद्धति का बौद्ध काल में परिवर्तन हुआ और अब मठो तथा विहारों में दी जाने लगी। आत्मसंयम एवं अनुशासन की पद्धति द्वारा व्यक्तित्व के निर्माण पर बल दिया जाने लगा। शुद्धता एवं सरल जीवन इसका प्रमुख उद्देश्य था। गुरू शिष्य के बीच सद्भावना और सन्मार्ग था। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को समाज का योग्य सदस्य बनाने और फिर भारत को मजबूत बनाने का प्रयास किया जाता था। शिक्षा के विषय और पद्धति बौद्ध काल में काफी परिवर्तित हो चुकी थी। स्त्री शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाने लगा।

प्रस्तावना:-वैदिक कालखंड में वैदिक धर्म प्रारंभ में अत्यंत सरल था। बाद में गुरुकुल पद्धति और ब्राह्मणों के एकाधिकार के कारण अनेक कर्मकांडों का समावेश हुआ। फलतः वैदिक धर्म जटिल होकर लुप्त होने लगा। जनता वास्तविक धर्म को भूलती गई। इस तरह वैदिक कालखंड के अंत में धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार की समस्याएँ आने लगीं। इन्ही समस्याओं एवं विषमताओं के सुधार के लिए बौद्ध धर्म का उदय हुआ। जिसका प्रभाव तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था पर पड़ा। बौद्ध धर्म तत्कालीन जनता की भाषा में प्रचारित होने वाला तथा जन साधारण वाला धर्म था इसलिए बौद्ध धर्म का प्रचार और बौद्ध शिक्षा का विकास हुआ। गौतम बुद्ध के समय नारी की स्थिति अति हेय एवं दयनीय हो उठी थी। बुद्ध के उपदेशों में स्त्रियों पर प्रचुर रूप से आक्रोश की वर्षा हुई है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों की दशा उतनी हीन न थी, जितनी तत्कालीन साहित्य में वर्णित है। गौतम बुद्ध ने युवा वर्ग को भिक्षु जीवन की ओर आकर्षित करने की दृष्टि से एवं माया केन्द्र नारी से विरक्त करने का यही उपाय निकाला था कि नारी का अतिनारकीय स्वरूप ही समाज के सम्मुख रखा जाय, ताकि पुरूष वर्ग स्वयं ही नारी से घृणा करने लगे। जो नारी वैदिक युग में लक्ष्मी मानी जाती थी एवं घर की रानी समझी जाती थी, बौद्ध युग में मात्र 'वासना की पुतली' के रूप में प्रस्तुत की गई थी। गौतम बुद्ध ने स्वयं कहा, जैसे नदी, पथ, शराब खाने, धर्मशालाएँ, प्याऊ आदि सबके लिए होते है, वैसे ही लोक स्त्रियाँ भी सबके लिए होती है। पालि साहित्य में स्त्री का मात्र कुत्सित रूप ही प्रतिबिम्बित होता है। जातक में ऐसी स्त्रियों के 25 लक्षण बताए गए हैं। गौतम बुद्ध नारी-समाज को भिक्ष धर्म में दीक्षित करने के पक्ष में नही थे किन्तु अपने प्रिय आनन्द के अनुरोध पर नारी प्रव्रज्या की अनुमति दी थी लेकिन इसके साथ आठ शर्ते भी लगा दी। प्रतिबन्ध लगाते हुए तथागत ने आनन्द से कहा हे आनन्द! यदि स्त्रियों को गृहस्थ जीवन का परित्याग कर तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म तथा चिर-स्थायी होता है। हे आनन्द! अब स्त्रियों को वह अधिकार प्रदान कर दिया गया, अतः यह विशुद्ध धर्म, आनन्द अब मात्र पाँच सौ वर्षो तक स्थिर रह पाऐगा।

नारी शिक्षा का पाठ्यक्रम:-पुराणों से विदित होता है कि नारी शिक्षा के दो रूप थे, एक आध्यात्मिक और दूसरा व्यवहारिक। आध्यात्मिक ज्ञान में बृहस्पति-भगिनी भुवना, अपर्णा, एकपर्णा एकपाप्ला, मेना, धारिणी, संनति, शरूपा आदि कन्याओं के नामों का उल्लेख है, जो ब्रह्मवादिनी थी। आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि योग और तप पर निर्भर करती थी जिसमें स्त्री ब्रह्मचर्य, सदाचरण, गृहस्थिक शिक्षा से भी अवगत हुआ करती थी। ललित कलाओं में भी वे निपुण होती थी। कौशलपूर्वक नृत्य करती थी तथा ऋग्वेद की ऋचाओं का गान करती थी।

उत्तर वैदिक कालीन व्यवहारिक शिक्षा में वे नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि की भी शिक्षा ग्रहण करती थी। प्रमदाओं की कमनीय भाव-भंगिमा और आकर्षक नृत्यकला शोभा और सुन्दरता का केन्द्र बिन्दु थी। चित्रकला का समुचित विकास हो चुका था। सुस्थ रेखांकन रंगों का अपेक्षित प्रयोग तथा आकृति का अभिव्यक्तिकरण चित्रकला के प्रधान आधार थे। इस सम्बन्ध में अनेक पौराणिक संदर्भ मिलते है। वाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की कन्या की सखी चित्रलेखा ने चित्रपट पर अनेक देवों, गंधवों और मनुष्यों की आकृतियो का अंकन किया था, जिसमें अनिरूद्ध का भी चित्ताकर्षक चित्र था। नारी शिक्षा, को निम्नलिखित उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है।

1. वैदिक काल में नारी शिक्षा की स्थिति
2. बौद्धकाल में नारी शिक्षा की स्थिति
3. नारी शिक्षा का पाठ्यक्रम
4. स्त्रियों का उपनयन एवं प्रव्रज्या
5. समावत्र्तन

1. वैदिक काल में नारी शिक्षा की स्थिति:-

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर थी। वह पुरूषों के समकक्ष बिना भेद-भाव के शिक्षा प्राप्त करती थी। बुद्धि और ज्ञान में अग्रणी थी। पुत्र की तरह पुत्री का भी विद्यारम्भ से पूर्व उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था तथा वह भी ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई विभिन्न विषयों का अध्ययन करती थी। उसे यज्ञ सम्पादन और वेदाध्ययन का पूर्ण अधिकार था, दर्शन और तर्कशास्त्र में स्त्रियाँ निपुण थी। सभा व गोष्ठियों में वे ऋग्वेद की ऋचाओं का गान किया करती थी। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि कतिपय विदुषी स्त्रियों ने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं के प्रणयन में योग दान प्रदान कियाँ था। पति के साथ समान रूप में वे यज्ञ में सहयोग करती थी। सूत्रकाल तक भी स्त्रियाँ यज्ञ सम्पादित करती थी। उत्तर वैदिक युग में भी स्त्री ब्रह्मचर्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करती थी। वैदिक काल के अतिरिक्त वह ललित कलाओं में भी पारंगत होती थी। महाभारत से ज्ञात होता है कि पांडवों की माँ कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत ब्रह्मचर्य का पालन करके ही एक गुरू अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान कर सकता है; उसी प्रकार एक युवा पुत्री को अपने ब्रह्मचर्य का पालन करने के उपरान्त किसी युवक से विवाह करना चाहिए। वेद युग में पर्दा प्रथा का पूर्णतः अभाव था। कन्याएँ निर्मुक्त होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थी, आम सभाओं में भाग लेती थी। ऋग्वेद में वर्णित है कि जिस प्रकार घी में डूबा हुआ चम्मच बाहर निकलकर यज्ञानिल में घी अर्पित करता है, उसी प्रकार घर के अन्दर रहने वाली कन्या जन साधारण के मध्य आती थी एवं सभाओं में भाग लेती थी। वेद युगीन स्त्रियाँ जनतंत्रीय सभाओं की शासन सम्बन्धी बहसों में भी भाग लेती थी। वैदिक नारियाँ वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन करती थी, एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थी। यज्ञ करने वाली स्त्रियों में विश्ववारा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एक कन्या द्वारा घर में यज्ञ करने का वर्णन वेद में मिलता है। पत्नी ही यज्ञ में सोमगीतों का गान करती थी। यज्ञ के लिए चावल बनाती, पशु को स्नान कराती थी, वेदी का निर्माण करती थी। अग्नि तैयार करती थी। यज्ञ की समाप्ति पर पत्नी ही मंत्रोच्चारण करती थी। जब पत्नी को मंत्र याद नहीं रहते थे तब वह सुन-सुनकर दोहराती थी।यदि पति विदेश में हो तो पत्नी को अकेले ही यज्ञ सम्पन्न करना पडता था। यह विधान 'सूत्र-काल' तक जीवित था। यदि किसी कारणवश पति के रहते हुए यज्ञ में उसका सहयोग प्राप्त न हो तो भी पत्नी को स्वतः यज्ञ सम्पन्न करना होता था। इन्द्राणी ने अनेक यज्ञ सम्पन्न किए थे। ऋग्वैदिक ऋषियों ने निम्न वर्णीय पत्नी को भी यज्ञाधिकार प्रदान किए थे। उत्तर वैदिक काल के परवर्ती युग से नारी की दशा अवनति की ओर अग्रसर होने लगी। उसके लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा। उसे असत्य भाषी तथा अमृत कहा गया। उसे पुरूषों के साथ यज्ञ में सोम का भाग लेने से वंचित कर उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया गया। भीष्म का मत है कि स्त्रियाँ स्वभावतः अपनी लिप्सा को दबा नही पाती, इसलिए उन पर किसी पुरूष का नियन्त्रण अनिवार्य है। स्त्रियों के दो प्रकार है-साध्वीं और असाध्वीं। साध्वीं स्त्रियाँ पृथ्वी की माता तथा उसकी संरक्षिका हैं और असाध्वीं स्त्रियाँ अपनी पापी गतिविधियों से विख्यात। धर्मसूत्रों और स्मृतियों के युग में स्त्री की दशा पूर्णतः पतनोन्मुख हो गई। स्त्री के साथ भोजन करने वाले पुरूष को गर्हित आचरण करने वाला व्यक्ति घोषित किया गया।

उस स्त्री की प्रशंसा की गई जो 'अप्रतिवादिनी' (प्रतिवाद न करने वाली) थी। उसका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया तथा उसके शरीर पर उसके पति का स्वामित्व माना गया। पितृसत्तात्मक समाज होने के कारण उसकी स्थिति निरन्तर ह्रासोन्मुख होती गई। उसकी स्वतत्रंता तथा उन्मुक्तता पर अनेक प्रकार के अकुश लगाए जाने लगे। मनु जैसे स्मृतिकारों ने उसे कभी भी स्वतंत्र न रहने के लिए निर्देशित किया तथा यह विचार प्रकट किया कि स्त्री कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नही है। जब तक वह कन्या रहे उस पर पिता का संरक्षण रहे, जब विवाह हो जाये तब उस पर भर्ता (पति) का संरक्षण रहे और जब स्थविर (वृद्धावस्था) हो तब उस पर पुत्र का संरक्षण रहे। दूसरी सदी ई०पू० तक स्त्री का उपनयन व्यवहारतः बन्द हो चुका था तथा विवाह के अवसर पर ही उसका उपनयन संस्कार सम्पन्न कर दिया जाता था। कालांतर से शूद्रो की ही तरह वेदों के पठन-पाठन और यज्ञों में सम्मिलित होने के अधिकार से वह वंचित कर दी गई तथा शिक्षण संस्थानों और गुरूकुलों में जाकर ज्ञान प्राप्त करना कन्या के लिए अतीत की बात हो गई थी।

2. बौद्धकाल में नारी शिक्षा की स्थिति:-गौतम बुद्ध के समय नारी की स्थिति अति हेय एवं दयनीय हो उठी थी। बुद्ध के उपदेशों में स्त्रियों पर प्रचुर रूप से आक्रोश की वर्षा हुई है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों की दशा उतनी हीन न थी, जितनी तत्कालीन साहित्य में वर्णित है। गौतम बुद्ध ने युवा-वर्ग को भिक्षु-जीवन की ओर आकर्षित करने की दृष्टि से एवं माया केन्द्र नारी से विरत करने का यही उपाय निकाला था कि नारी का अतिनारकीय स्वरूप ही समाज के सम्मुख रखा जाय, ताकि पुरूष वर्ग स्वयं ही नारी से घृणा करने लगे। जो "नारी वैदिक युग में लक्ष्मी मानी जाती थी एवं घर की रानी समझी जाती थी, बौद्ध युग में मात्र 'वासना की पुतली' के रूप में प्रस्तुत की गई थी। गौतम बुद्ध ने स्वयं कहा, "जैसे नदी, पथ, शराब खाने, धर्मशालाएँ, प्याऊ आदि सबके लिए होते है, वैसे ही लोक स्त्रियाँ भी सबके लिए होती है।" पालि साहित्य में स्त्री का मात्र कुत्सा रूप ही प्रतिबिम्बित होता है। जातक में ऐसी स्त्रियों के 25 लक्षण बताए गए है। गौतम बुद्ध नारी-समाज को भिक्षु धर्म में दीक्षित करने के पक्ष में नही थे किन्तु अपने प्रिय आनन्द के अनुरोध पर नारी प्रव्रज्या की अनुमति दी थी लेकिन इसके साथ आठ शर्ते भी लगा दी। प्रतिबन्ध लगाते हुए तथागत ने आनन्द से कहाः "हे आनन्द! यदि स्त्रियों को गृहस्थ जीवन का परित्याग कर तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म तथा चिर-स्थायी होता है। हे आनन्द! अब स्त्रियों को वह अधिकार प्रदान कर दिया गया, अतः यह विशुद्ध धर्म, आनन्द अब मात्र पाँच सौ वर्षो तक स्थिर रह पाएगा।" यद्यपि गौतम बुद्ध स्त्री प्रव्रज्या से खुश नही थे तथापि बौद्ध ग्रन्थों में अनेक ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ प्रायः शिक्षित और विद्वान हुआ करती थी। विद्या, धर्म और दर्शन के प्रति उनकी अगाध रूचि होती थी। बौद्ध आगामों की शिक्षिकाओं के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवियित्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी और विवाहित भिक्षुणियाँ थी। उनमें शुभा, सुमेधा, और अनुपमा उच्च वंश की कन्याएँ थी, जिनसे विवाह करने के लिए राजकुमार और संपत्तिशाली सेठों के पुत्र उत्सुक थे। भिक्षणी खेमा उस युग की उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री थी, जिसकी विद्वता की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। संयुक्तनिकाय से ज्ञात होता है कि सुभद्रा नामक भिक्षुणी व्याख्यान देने में प्रसिद्ध थी। राजगृह के सम्पत्तिशाली सेठ की पुत्री भद्राकुण्डकेशा अपने विद्या और ज्ञान से सबको आकृष्ट करती थी। ये उद्धरण इस बात के प्रमाण हे कि उस युग में साधारणतः स्त्रियाँ ज्ञान-पिपासु थी तथा उनके अन्वेषण और प्राप्ति में तल्लीन रहती थी।

3. नारी शिक्षा का पाठ्यक्रम:-पुराणों से विदित होता है कि नारी शिक्षा के दो रूप थे, एक आध्यात्मिक और दूसरा व्यवहारिक। आध्यात्मिक ज्ञान में बृहस्पति -भगिनी भुवना, अपर्णा, एकपर्णा एक पाप्ला, मेना, धारिणी, संनति, शरूपा आदि कन्याओं के नामों का उल्लेख है, जो ब्रह्मवादिनी' थी। आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि योग और तप पर निर्भर करती थी जिसमें स्त्री का ब्रह्मचर्य, सदाचरण, गृहास्थिक शिक्षा से भी अवगत हुआ करती थी। ललित कलाओं में भी वे निपुण होती थी। कौशलपूर्वक नृत्य करती थी तथा ऋग्वेद की ऋचाओं का गान करती थी। उत्तर वैदिक कालीन व्यवहारिक शिक्षा में वे नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि की भी शिक्षा ग्रहण करती थी। प्रमदाओं की कमनीय भाव-भंगिमा और आकर्षक नृत्यकला शोभा और सुन्दरता का केन्द्र बिन्दु थी। चित्रकला का समुचित विकास हो चुका था। सुस्थ रेखांकन रंगों का अपेक्षित प्रयोग तथा आकृति का अभिव्यक्तिकरण चित्रकला

के प्रधान आधार थे। इस सम्बन्ध में अनेक पौराणिक संदर्भ मिलते है। वाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की कन्या की सखी चित्रलेखा ने चित्रपट पर अनेक देवों, गंधवों और मनुष्यों की आकृतियों का अंकन किया था, जिसमें अनिरूद्ध का भी चित्ताकर्षक चित्र था। कन्याओं को मुख्यतः हस्तकला (खिलौने बनाने की कला एवं सिलाई आदि), सुगम कला (गायन, वादन एवं नर्तन), चित्र कला, बागवानी, पाक विद्या, एवं वेदाध्ययन कराया जाता था। इसके अतिरिक्त कन्याओं को सम्यक् रूप में अतिथि-सत्कार करने एवं गृहस्थी का कुशलतापूर्वक संचालन करने की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। वेद युर्गीन छात्राओं को दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है-ब्रह्मवादिनी एवं सद्योद्वाहा। ब्रह्मवादिनी नारियाँ अपना सम्पूर्ण जीवन गुरूकुल को ही समर्पित कर देती थी। वे अविवाहित रहते हुए जीवन-पर्यन्त अध्ययन एवं अध्यापन करती रहती थी।

4. स्त्रियों का उपनयन एवं प्रव्रज्या-वैदिक काल में स्त्री का प्रारम्भ (उपनयन) - कोई भी व्यक्ति तब तक वैदिक मंत्रों का जाप नहीं कर सकता था या वैदिक यज्ञ नहीं कर सकता था जब तक उसका उपनयन संस्कार न हुआ हो। इसलिए यह स्वाभाविक है कि वैदिक काल में स्त्रियों का भी उसी प्रकार उपनयन संस्कार होता था जैसा लड़को का। अर्थववेद ;गपण् 5.18द्ध में इस सन्दर्भ में कहा गया है कि कंुवारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य संस्कार से गुजरना पड़ता था। मनु ने भी स्त्रियों के उपनयन संस्कार को आवश्यक बताया हैबौद्धकाल में नारी शिक्षा का प्रारम्भ (प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा) - 'चुल्लवग्ग' में वर्णित है कि स्त्री प्रव्रज्या के सम्बन्ध में तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म तथा विनय के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति नही दी गई होती तो वह विशुद्ध धर्म चिरस्थायी होता। अब स्त्रियों को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया, अतः यह विशुद्ध धर्म आनन्द, अब मात्र पाँच सौ वर्षो तक स्थिर रह पाएगा। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध स्त्री प्रव्रज्या से बहुत संतुष्ट नही थे, तथापि बौद्ध आगामों की शिक्षिकाओं के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवियित्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी और 18 विवाहित भिक्षुणियाँ थी। उनमें शुभा, सुमेधा और अनुपमा उच्च वंश की कन्याएँ थी, जिनमें विवाह करने के लिए राजकुमार और सम्पत्तिशाली सेठों के पुत्र उत्सुक थे। संयुक्त निकाय से ज्ञात होता है कि सुभद्रा नामक भिक्षुणी व्याख्यान देने में प्रसिद्ध थी। इससे स्पष्ट है कि बौद्ध शिक्षा के अन्तर्गत नारी शिक्षा प्रारम्भ करने हेतु प्रव्रज्या संस्कार लड़कों के समान ही लड़कियों का भी सम्पन्न किया जाता था। प्रव्रज्जित नारी भिक्षुणी कहलाती थी। जो भिक्षुणी आजीवन भिक्षुणी बने रहकर संघ की सेवा करना चाहती थी उनका 'उपसम्पदा' संस्कार भी भिक्षुओं के समान सम्पन्न किया जाता था।

5. समावत्र्तन -गृहसूत्रो से विदित होता है कि स्त्रियों का उपनयन संस्कार के साथ-साथ समावत्र्तन संस्कार भी लड़को जैसा ही सम्पन्न होता था। समावत्र्तन संस्कार ब्रह्मचर्य जीवन की समाप्ति के बाद होता था। इस प्रकार उपनयन शिक्षा का प्रारम्भ तथा समावत्र्तन शिक्षा की समाप्ति पर सम्पन्न किया जाता था। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक कालीन शिक्षा के अन्तर्गत नारी शिक्षा की समाप्ति समावत्र्तन संस्कार से होती थी तथा बौद्धकालीन शिक्षा के अन्तर्गत प्रव्रज्या सम्पादन के पश्चात् यदि भिक्षुणी आजीवन भिक्षुणी बने रहना चाहती थी तो उस अवस्था में उनका उपसम्पदा संस्कार सम्पन्न किया जाता था; लेकिन गृहस्थ जीवन यापन करने की स्थिति में इस संस्कार का सम्पादन नही किया जाता था।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शर्मा, आर0 एस: मैटेरियल बैकमाउन्ड आफ ओरिजिन आफ बुद्धिष्ट, सेन एण्ड राव (संस्करण) नई दिल्ली, 1998
2. शाक्य, राजेन्द्र प्रसाद: बौद्ध दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2001
3. कविता रानी गहलौत: वैदिक एवं बौद्ध कालीन नारी शिक्षा, सिंघानिया विश्वविद्यालय पचेरीबड़ी झुन्झुनू, राजस्थान, 2016
4. थापर, रोमिला: भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1988
5. सिंह, महेन्द्र नाथ: बौद्ध तथा जैन धर्म, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1990
6. सिंह, डा0 अनिल कुमार: बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2008
7. पाण्डे गोविन्द चन्द्र: बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1963
8. श्रीवास्तव, के0 सी0: 'प्राचीन भारत का इतिहास' यूनाइटेड बुक डिपो इलाहाबाद, 1993
9. दीक्षित, उपेन्द्र नाथ: 'भारतीय शिक्षा की प्रमुख समस्याएँ, राजस्थान उदयपुर, 1985
10. टी0 डब्ल्यू0 रिजडेविड्स: बुद्धिष्ट इंडिया, कलकत्ता, 1950
11. ओड, लक्ष्मी कान्त के0: 'शिक्षा के दार्शनिक आधार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1983

तथागत बुद्ध के सिद्धांत

पंचशील बौद्ध धर्म की मूल आचार संहिता है जिसको थेरवाद बौद्ध उपासक एवं उपासिकाओं के लिये पालन करना आवश्यक माना गया है।भगवान बुद्ध द्वारा अपने अनुयायिओं को दिया गया है यह पंचशील। हिन्दी में इसका भाव निम्नवत है-

1. हिंसा न करना, 2. चोरी न करना, 3. व्यभिचार न करना, 4. झूठ न बोलना, 5. नशा न करना।

पालि में यह निम्नवत है-

1- पाणातिपाता वेरमणी-सिक्खापदं समादयामि।।
2- अदिन्नादाना वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।
3- कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।
4- मुसावादा वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।
5- सुरा-मेरय-मज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।

बौद्ध धर्म में आम आदमी भी बुद्ध बन सकता है उसे बस दस पारमिताएं पूरी करनी पड़ती हैं

एक आदर्श मानव समाज कैसा हो?

दुनियां का हर मनुष्य किसी न किसी दुःख से दुखी है. तथागत बुद्ध ने बताया कि इस दुःख की कोई न कोई वजह होती है और अगर मनुष्य दुःख निरोध के मार्ग पर चले तो इस दुःख से मुक्ति पाई जा सकती है. यही चार आर्य सत्य हैं:

अर्थात

1. दुःख है.
2. दुःख का कारण है.
3. दुःख का निरोध है.
4. दुःख निरोध पाने का मार्ग है.

बौद्ध धर्म के चौथे आर्य सत्य, दुःख से मुक्ति पाने का रास्ता, अष्टांगिक मार्ग कहलाता है. जन्म से मरण तक हम जो भी करते है, उसका अंतिम मकसद केवल ख़ुशी होता है. स्थायी ख़ुशी सुनिश्चित करने के लिए हमें जीवन में इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए.

1. सम्यक दृष्टि : चार आर्य सत्य में विश्वास करना
2. सम्यक संकल्प : मानसिक और नैतिक विकास की प्रतिज्ञा करना
3. सम्यक वाक : हानिकारक बातें और झूठ न बोलना
4. सम्यक कर्म : हानिकारक कर्म न करना
5. सम्यक जीविका : कोई भी स्पष्टतः या अस्पष्टतः हानिकारक व्यापार न करना
6. सम्यक प्रयास : अपने आप सुधरने की कोशिश करना
7. सम्यक स्मृति : स्पष्ट ज्ञान से देखने की मानसिक योग्यता पाने की कोशिश करना
8. सम्यक समाधि : निर्वाण पाना और अहंकार का खोना

पञ्चशील

बौद्ध धर्म के पांच अतिविशिष्ट वचन हैं जिन्हें पञ्चशील कहा जाता है और इन्हें हर गृहस्थ इन्सान के लिए बनाया गया है.

1. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदम् समदियामी
मैं जीव हत्या से विरत (दूर) रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ.

2. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदम् समदियामी
जो वस्तुएं मुझे दी नहीं गयी हैं उन्हें लेने से मैं विरत रहूँगा,ऐसा व्रत लेता हूँ.

3. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदम् समदियामी
काम (रति क्रिया) में मिथ्याचार करने से मैं विरत रहूँगा ऐसा व्रत लेता हूँ.

4. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदम् समदियामी
झूठ बोलने से मैं विरत रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ.

5. सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदम् समदियामी
मादक द्रव्यों के सेवन से मैं विरत रहूँगा, ऐसा वचन लेता हूँ

****

मेहरून्निसा परवेज के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

दुर्गावती
शोधार्थी-
3/42 साकेत नगर, हाउसिंग बोर्ड, ब्यावर
पिन न. 305901 जिला - अजमेर

भूमिका - साहित्य समाज के विकास और संस्कृति के इतिहास का संचित धन हैं। समाज के विकास का एक पहिया स्त्री है तो दूसरा पुरूष। स्त्री-पुरूष के कार्य व्यापार ही समाज की स्थिति-गति का निर्देशन करते है। प्रत्यक्ष जगत है और भाव जगत दोनों में स्त्री-पुरूष आकर्षण की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं। स्त्री के प्रति पुरूष का आकर्षण ही कलाओं को जन्म दे सका। वह कविता या साहित्य के मूल में है और सभी युगों में अपने-अपने ढंग से उसकी महत्ता स्वीकार की गई हैं। नारी शोषण आज से नहीं अपितु सृष्टि के आरम्भ से होता आ रहा हैं। चाहे युग कोई भी रहा हो युगों के हिसाब से केवल नारीपात्र बदल गये है लेकिन उनकी स्थिति नहीं। उस पर धर्म, संस्कृति, संस्कार, नैतिकता के नाम पर अनेक नियम और बंधन लाद दिये गये हैं। स्त्री का जीवन तो हमेशा संघर्षों की गाथा रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुनिया के हर देश, वर्ग, नस्ल और संप्रदाय की स्त्री पराधीनता के एहसास से अवश्य गुजर चुकी है। चाहे उसके विरोध के तरीके भिन्न हो, लेकिन स्त्रियाँ वस्तु से व्यक्ति बने की ओर अग्रसर होती है और जिन्हे ये सुविधा सहज उपलब्ध नही थी वे मन ही मन इसकी आकांक्षा अवश्य कर रही थी। समाज और साहित्य में स्त्री की सामाजिक स्थिति के केन्द्र में उसकी दैहिक संरचना को रखा जाता है। दैहिकता को शील, नैतिकता और चरित्र से जोड़ा जाता है उसे ममतामयी, करूणामयी, कोमलांगी, बलिदानी बताकर उसकी स्वाभाविक प्रकृति और आकांक्षाओं को उससे छीना जाता है। इन सारे प्रपंचो में सदियों से स्त्री का मानसिक, शारीरिक, सामाजिक व आर्थिक शोषण होता हैं। समाज बुनियादी तौर पर स्त्री-पुरूष में भेदभाव करता है, यदि स्त्री कभी विरोध भी करती है तो शास्त्र, अनुशासन और समाज उसे चुप करा देते है। स्त्री -पुरूष प्राकृतिक विभाजन है। किन्तु स्त्रीत्व और पुरूषत्व सामाजिक निर्मिति हैं। श्रीमती मेहरून्निसा परवेज का लेखन स्त्री जीवन की समग्रता का प्रस्तुतीकरण लेकर पाठक के सामने आता है यह आधुनिक युग की सृजनशील लेखिका हैं इन्होने अपने लेखन का केन्द्रीय बिन्दु "नारी" को बनाया है इनका साहित्य (कहानी, उपन्यास, लेख, शोध, कविता, संस्मरण) अनुभूति पर आधरित है क्योंकि स्वयं नारी होने से नारी की समस्याओं से ज्यादा वाखिफ है नारी को नजदीकी से महसूस किया हैं। इनकी रचनाओ में नारी जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया है। आधुनिक युग के उत्तरार्द्ध में नारी जीवन में व्याप्त दुःख, हताषा, व्यथा, घृणा, तृष्णा, उदासी, अवसाद, निराषा, निम्नतर स्तर की गरीबी, यौन शोषण, मानसिक द्वंद्व, संघर्ष की कहानी जिसमें पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समस्याओं से जुंझ कर समाज को रूढ़ परम्पराओं को तोड़कर अनीति व अत्याचारों का विद्रोह कर अपने अस्तित्व को कायम रखने वाली नारी चेतना को जाग्रत करने, वैचारिक दृढ़ता एंव संवेदनात्मक गहराई प्रदान करने वाली लेखिकाओं में मेहरून्निासा परवेज का नाम प्रमुख है।"

बीज/मुख्य शब्द-नारी चेतना, संवेदना, उत्पीड़न, यौनशोषण, विधवा, तलाक, बाझंपन, अत्याचार, वैष्यावृति, अनमेल विवाह, तनाव, घुटन, अलगाव, सहिष्णुता, कुण्ठा, पीड़ा आदि।

स्त्री विमर्श का अर्थ और परिभाषा :- आधुनिक महिला कथाकारों ने अपने उपन्यासों का विषय "नारी" को बनाया है वर्तमान में इस पर काफी विमर्श हुआ। हिन्दी शब्दकोष में विमर्श का अर्थ विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्कज्ञान आदि है। उसके शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने तथा उसके अधिकारों और उसके सम्मान के लिए संघर्षकरने से है। जिस साहित्य में स्त्री से जुड़े मुद्दों को उठाना, व स्वयं सकी पहचान करना वही साहित्य स्त्री विमर्श का साहित्य कहलाता है। स्त्री विमर्श से तात्पर्य है स्त्री को अपने "स्व" के प्रति जाग्रत करना। उसे अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत करना। स्त्री की अस्मिता को जगाना।प्रो.रोहिनी अग्रवाल के अनुसार "स्त्री को केन्द्र में रख कर समाज, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया हैं।" [1]डॉ. दयाशंकर के अनुसार - "नारीविमर्श पुरूष वर्चस्व से मुक्त ऐसे नारी व्यक्तित्व की बात करता है । जिसमें स्वयं अपने मनुष्य होने का बोध हो। जिसका पुरूष के व्यक्तित्व से अलग अपना व्यक्तित्व है।"[2]

स्त्री विमर्श की अवधारणा :- नारी विमर्श का प्रारम्भ यूरोप व अमेरिका जैसे महाद्वोपों में बीसवी शताब्दी के अन्त में जोर पकड़ने लगा। कुछ लोग इसका प्रारम्भ फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउवा की पुस्तक "द सैकण्ड सेक्स" 1949 के प्रकाशन वर्ष से मानते है इसी समय से यहाँ पर स्त्री की अलग से पहचान, मताधिकार, स्वतन्त्र अस्तित्व और उसके अधिकारों से सम्बन्धित समास्याओं को उठाया। नारीवादी सिद्धान्त का ज्यादातर हिस्सा महिलाओं के अधिकारों और हितों को बढ़ावा देने पर केन्द्रीत है। नारीवादी सिद्धान्तों में खोजें गये विषयों में भदेभाव, रूढ़िवादिता, यौन उत्पीड़न और पितृसत्ता शामिल है। रोहिणी अग्रवाल इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखती है कि "स्त्री विमर्ष अपनी मूल अवधारणा में सदियों से मौजूद सामाजिक कुरूतियो के संग साथ यौन हिंसा, घरेलू हिंसा और कन्या भ्रूण हत्या जैसी संजीदा विकृतियों के संदर्भ में स्त्री की मानवीय अस्मिता पर विचार करने का अभियान है।"[3]

भारत में स्त्री विमर्श के इतिहास का अवलोकन करे तो नवजागरण काल में राजाराम मोहनराय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा पुले, सवित्री बाई फुले, स्वामी विवेकानन्द आदि ने स्त्री अधिकारों के विकास में योगदान दिया है। डॉ मीनाक्षी जोशी के अनुसार "यद्यपि नारी चेतना का उन्मेष अतीत में गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया मध्ययुग में मीरा, रत्नावली, रानी दुर्गावती, अहिल्या बाई आदि के द्वारा आरम्भ हो चुका था किन्तु यह जागरूकता और चेतना सामजिक, राजनीतिक संबंध से ही जुड़ी थी। साहित्यिक संदर्भ में इसी चेतना का उत्कर्ष रूप बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में देखा जा सकता है। यशोधरा के माध्यम से गुप्त जी ने कह ही दिया कि पत्नी, पति के प्रगति मार्ग में बाधक नहीं हैं। लेकिन साकेत के माध्यम से कैकेयी और उर्मिला की पीड़ा को भी मुखरता प्रदान की। रचानात्मक स्तर पर इसे आगे बढ़ाया निराला ने।"4 अर्थात नारी शोषण प्राचीन काल से चलकर आधुनिक काल में चरमवस्था में आ जाने से स्त्री विमर्श की आवश्यकता हुई।

मुख्य अंश :- मेहरून्निासा परवेज के रचना साहित्य के प्रारम्भ में प्रथम कहानी 1963 में उन्नीस वर्ष की उम्र में "जंगली हिरणी" लिखी जो धर्मयुग पत्रिका में छपी जिसमें एक आदिवासी लड़की की व्यथा है ये नायिका प्रधान कहानी है फिर इन्होने 1969 में प्रथम उपन्यास आँखों की दहलीज लिखा यह भी नायिका प्रधान उपन्यास हैं जिसमें तालिया, जमीला व शशि की कहानी है इससे स्पष्ट होता है कि यह शुरूआत से ही नारी उद्धारक रही है। इनके उपन्यासों का कथ्य नारी विमर्श को स्पष्ट करता है।" आँखों की दहलीज उपन्यास में नारी जीवन की अहम् समस्या बाझंपन को उठाया है। यह भारतीय नारी की विड़म्बना है कि शादी के बाद सन्तान पैदा करने में असमर्थ है तो उसे कई यातनाएँ सहन करनी पड़ती है स्त्री-पुरूष दोनों में से कोई भी असमर्थ हो दोष तो स्त्री को दिया जाता है समाज में उसे बांझ कहा जाता है। शादी को समय निकलने के बाद तालिया शमीम के साथ डॉक्टर के पास जाती है डॉ. कहता है

अफसोस "मिस्टर शमीम आपको बच्चेका सुख नहीं मिल सकता है उम्मीद मेरे ख्याल से बेकार है।"[5] इस बात को सुनकर तालिया दुःखी रहने लगती है। यह शमीम देख नही पाता है तो उसे कुछ दिन के लिए मायके भेज देता है वहाँ उसकी मुलाकात जावेद से होती है और उससे प्रेम करने लगती है लेकिन कुछ समय बाद जावेद दुरियाँ बना लेता है। शमीम लेने आता है तो शमीम को देख कर आत्मग्लानि मेहसूस कर आत्महत्या करने की कोशिश करती है। वहीं शशि को प्यार नहीं मिलता है तो वह कहती है "तालिया हम हिन्दुस्तानी लड़किया कितनी बदनसीब होती है हर लड़की मोहब्बत का पेड़ लगाती है उसमें फूल लगने वाले ही होते है कि वह दूसरे से बांध दी जाती है ठीक अवसर पर उसे उन्हीं फूलों की माला पहनाई जाती है। कितने बेरहम है ये लोग।"[6] जमीला के पिता के देहान्त के बाद जमीला के घर की आर्थिक स्थिति खराब होती है तो पढ़ाई छोड़कर एक क्लर्क की नौकरी करती है।

उसका घर - उपन्यास में लेखिका ने तलाक व उसके बाद के जीवन में आने वाली समस्याओं को उठाया है। गलती चाहे महिला की हो या पुरूष की सहना महिला को ही है। पति, पत्नी को छोड़कर दूसरा विवाह करता है तो समाज में उसकी आलोचना नहीं होती है। लेकिन महिला ऐसा करती है तो उसे अपराध समझा जाता है। उपन्यास की नायिका ऐलमा का आत्मकथ्य है। ऐलमा एक ऐसी नारी है जो अपने घर की तलाश में भटकती है जिसे अपना कह सके। लेकिन अन्त तक उसे अपना घर नहीं मिलता। ऐलमा दमें की मरीज है उसका पति उससे तलाक चाहता है इस पर ऐलमा सहज भाव से कहती है "सोचना क्या है रेश्मा, यह तो दिल के सम्बन्ध होते है पत्नी को भीख में माँगा हुआ अधिकार कभी सुखी नहीं करता । जब मैं उनके मन से ही उतर गई तो जबर्दस्ती करके वह अधिकार या सम्मान पाया तो जायेगा नही।[7] "इस उपन्यास में अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया जिससे जातिवाद व दहेज प्रथा की समस्या कम होती है। अपने इस उपन्यास में रेश्मा क्रिश्चिन माँ और हिन्दू पिता की संतान है वह भी अन्तर्जातीय विवाह कर लेती है जिसे माँ नहीं चाहती है। वह एक बच्चें की माँ बन जाती है और कहती है "मैं तो देव को, इस घर के दामाद का सम्मान दिलाऊँगी और खुद भी मैं सम्मान से विदा होकर जाऊँगी।[8] "ऐलमा का विलासी भाई अपने बॉस से ऐलमा की भेंट करा देता है, बॉस आहुजा ऐलमा का इस्तेमाल केवल वासना पूर्ति के लिए करता है।

सोफिया भी यौन उत्पीड़न को सहती हुई कहती है "औरत हमेशा मर्द से घर का सुख मांगती है पर मर्द हमेशा उसे बाजारू सुख देता है मैंने कितने मर्द बदले है पर क्या उन्होनें मुझे प्यार दिया? नहीं, सब शरीर के सुख को चाहते है, स्मार्ट नजर आने वाले मर्द अन्दर से वही एक से रहते है औरत को वे खा जाने वाली निगाह से देखते है ऐलमा बाद में बड़ी कोफ्त सी होती है कि इसी के लिए इतने महीनों और हफ्तों के इषारे और प्रेम चल रहा था? वहीं गीलापन वहीं आलिंगन सब एक सा।"[9]

कोरजा - उपन्यास में मुस्लिम समाज की स्त्रियों की पीड़ादायक व्यथा का चित्रण हैं। पुरूष समाज द्वारा नारियों का यौन शोषण गरीबी के निम्नतर स्तर अकेलेपन का शिकार, टूटन, घुटन का वर्णन किया गया है। उपन्यास की पात्र साजोखाला जो पति की मृत्यु के बाद विकट परिस्थितियों में जीती है अपना व अपने तीनो बच्चो का पेट पालने की लाचारी एवं बेरहम समाज में सिर से छत छिन जाने की मजबूरी के कारण पिता समान जम्मुन के घर रात को जाती है और वह अत्याचार की हदे पार कर देता है। तब वह अपनी माँ को कहती है "अम्मा वह बूढ़ा मुझे नंगी करके सारी रात खड़ा रखता है मेरे बदन को झिंझोड़ता है मैं विरोध नहीं करूँ, इसके लिए मुझे खम्भे से बांध देता हैं।"[10] गरीबी इतनी की बच्चों की फीस भी नहीं भर सकती है किताबें नहीं खरीद सकती है। दो महिनें से फीस न जमा होने के कारण स्कूल से निकाल दिये हैं। तब साजो कहती है "इस तरह बच्चे बिना पढ़े रह जाए यह मुझसे नहीं देखा जाएगा।"[11] माँ-बेटी की बहस में साजो कहती है "क्योंकि सुसराल का उलाहना देती हो यहाँ कोई तुम्हारा दिया नहीं खा रहे है मैं भी अपना शरीर बेच-बेच कर दीवारों का सहारा रखे हुए हूँ वरना सड़क पर बैठने की नौबत थी तुम लोगों की।"[12] इस कदम से पूरे घर को सड़क पर आने से रोक दिया नहीं तो मारे-मारे फिरते।

नाहिद बाजी गरीबी में पली बड़ी होने के कारण कुछ कर गुजरने का हौसला रखती है अभाव ग्रस्त जिन्दगी में भी एक डाWक्टर बन जाती है और परिवार की रीढ़ की हड्डी बन जाती है। वह सामजिक मान्यताओं को खोखला तथा बेबुनियाद मानती है इसलिए वह डाW. महेश अग्रवाल से शादी करती है। नाहिद बाजी स्त्री सबलीकरण के लिए स्त्री का आत्मनिर्भर होना आवष्यक मानती है उसके अनुसार "औरत के बाहर काम करने से उसके मन मे आत्मविश्वास आ जाता है।"[19] वह तहमीना को समझाती है कि "तुम्हारा डर अब नौकरी करने से धीर-धीर खत्म हो जायेगा और तुम घरेलू और दब्बू किस्म की औरतों की हदों से बाहर आ जाओगी।"[20] अर्थात् आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में स्त्री को समानता का दर्जा मिले नाहिद बाजी स्त्रियों के सुधार के लिए प्रयास करती है कि परम्पराओ, रूढ़ियों से ऊपर उठ कर स्वयं के लिए जीये।

निष्कर्ष:-मेहरून्निसा परवेज के उपन्यासों में स्त्री जीवन इस दृष्टि से अत्यन्त प्रमाणिक और यथार्थ आधारित है। भारतीय स्त्री के यातनापूर्ण जीवन, सामाजिक बन्धनों, जबर्दस्ती से लादे गये संस्कारों और परम्परागत नियमों के साथ उन्होनें उसकी सहिष्णुता तथा मातृत्व की छवी का विविध रूपों मे अंकन किया हैं। जहां लेखिका ने अबला नारियों के दर्द को उभारा है वहीं पारम्परिक स्त्री संहिता का विरोध करती नारियों की तेजस्विता को प्रदर्शित करती है चाहे उसका घर की रेश्मा हो या कोरजा की फातिमा, रब्बो, कम्मो, रन्नो या अकेला पलाष की तहमीना, नाहिदबाजी, तरू या समरांगण की पृथा या पासंग की बुलाकी बेगम कनी, कुलसुम, साबरा हो इन सभी पात्रों ने परम्परा से चले आ रहे पुरूष सत्तात्मक नियमों का विरोध कर स्त्री जागरूकता का परिचय दिया हैं। इसी तरह आत्म निर्णय व आत्म निर्भरता के अधिकार के लिए सतर्क स्त्री पात्रों में इनके नाम प्रमुख हैं। इन उपन्यासों में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर शशि, रेश्मा, तहमीना, नाहिदबाजी, जमीला, कम्मों, मोनादी, आदि सभी आत्मनिर्भर स्त्रियाँ तो दिखाई पड़ती है लेकिन उन्हे कई स्थलों पर शोषित व पीड़ित दिखाया है जो यथार्थ को ध्वनित करता है जिसमें साजोखाला, अरमान बी, रब्बों, सुहासनी, लता, ऐलमा, तालिया, विमला, आदि सभी पीड़ाग्रस्त है। वर्तमान समाज में रूढ़ियों व परम्पराओं का विद्रोह करती हैं तथा परिवर्तन के लिए तत्पर एवं अस्मिता व अस्तित्व को बचाए व बनाए रखने के लिए सतत् प्रयत्न रत रहती हैं।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. हिन्दी साहित्य वैचारिक पृष्ठ भूमि, सम्पादक लाल चन्द गुप्त मंगल, पृ.स. 229
2. हिन्दी साहित्य में युगीन बोध, सम्पादक डॉ. शैलाजा भारद्वाज, पृ. 454
3. हिन्दी कहानी, वक्त की शिनाखत और सृजन का राग, रोहणी अग्रवाल पृ. 174
4. स्त्रीवादी साहित्य का वर्तमान, मीनाक्षी जोशी नवम्बर-दिसम्बर 2010, पृ. 38
5. आँखों की दहलीज - मेहरून्निसा परवेज, अक्षरप्रकाशन 2/36 अंसारी रोड़, नई दिल्ली (1969), पृ. 5
6. वहीं, पृ. 82
7. उसका घर - मेहरून्निसा परवेज, नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली पृ. 22
8. वहीं, पृ. 27
9. वहीं, पृ. 83
10. कोरजा - मेहरून्निसा परवेज, वाणी प्रकाशन 21ए. दरियागंज नई दिल्ली पृ. 72
11. अकेला पलाश - मेहरून्निसा परवेज, वाणी प्रकाशन 21 दरियागंज नई दिल्ली पृ. 81
12. समरांगण - मेहरून्निसा परवेज, वाणी प्रकाशन 21ए. दरियागंज नई दिल्ली पृ. 71
13. वहीं, पृ. 202
14. वहीं, पृ. 206
15. वहीं, पृ. 319
16. पासंग - मेहरून्निसा परवेज, वाणी प्रकाशन 21ए. दरियागंज नई दिल्ली पृ. 109
17. वहीं, पृ. 247
18. वहीं, पृ. 316
19. वहीं, पृ. 31

'हमारे हिस्से का सूरज' में अभिव्यक्त दलित चेतना एवं सामाजिक परिवर्तन

डॉ.जी. व्ही. रत्नाकर
(एसोसिएट प्रोफेसर व अध्यक्ष)
हिंदी विभाग मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी,
गच्ची बावली , हैदराबाद, तेलंगाना - 500032मो. 7013507228

प्रस्तावना :-

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य की अपनी एक अलग पहचान है। दलित साहित्य के प्रेरणास्त्रोत बाबा साहेब भारत रत्न भीमराव रामजी अम्बेडकर हैं । दलित साहित्य के अंतर्गत दलित स्त्री लेखिकाओं का अपना अलग महत्त्व हैं। इसमें मुख्य रूप से सुशीला टाकभौरे, अनीता भारती, रजत रानी मीनू , रजनी तिलक, रमणिका गुप्ता इत्यादि हैं। यहाँ पर हम सुशीला टाकभौरे के कविता संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' में अभिव्यक्त दलित चेतना एवं सामाजिक परिवर्तन पर विचार करेंगे। दलित साहित्य लेखन में सहानुभूति और स्वानुभूति के आधार पर किया गया लेखन दिखता है। सुशीला टाकभौरे जी का लेखन बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर की चेतना से ओतप्रोत या यह कहें कि सामाजिक परिवर्तन का भाव लिए हुए दलित चेतना से ओतप्रोत है।

बीज शब्द –

कविता, दलित कविता, चेतना, दलित चेतना,सहानुभूति, स्वानुभूति, अम्बेडकरवादी विचारधारा, सामाजिक परिवर्तन।

मुख्य अंश –

हिंदी साहित्य के इतिहास में कविता पर और उसके साहित्य पर विभिन्न आलोचकों ने विचार किया है। कविता का क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत और गूढ़ होता है। कविता के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपनी बात रखी है। उसमें सबसे प्रसिद्ध और सटीक टिपण्णी आचार्य रामचंद्र शुक्ल की हैं। वे लिखते हैं -"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, इसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।" इस प्रकार कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठकर लोक सामान्य की भाव-भूमि पर ले जाती है। असल में कविता का पूरा संबंध प्रारंभिक रूप से हृदय से होता है। बाद में इस हृदय की भावना को अभिव्यक्ति देने के लिए मस्तिष्क की आवश्यकता होती है।

कविताएँ हमारे भावनात्मक पल के भीतर ठहरे अंतराल से निकलकर आती हैं। जब मनुष्य एक भावना में डूबता है तब उसकी खुद की पहचान मिट सी जाती है। सिर्फ रह जाता है कि, हम क्या महसूस करते हैं। खुद के बारे में दूसरे के बारे में या समस्त पृथ्वी के बारे में। यदि हम दलित कविता की बात करें तो दलित कविता आज भी आन्दोलनरत हैं। दलित कविता में यदि हम दलित कवियित्रियों के बारे में देखे तो ये कवयित्रियाँ व्यक्तिगत और समस्तगत सच्चाई का जितना बेबाक चित्रण करती हैं उतना बहुत कम दलित कवियों के काव्य में हुआ है। दलित कवयित्री की कविता आज इसलिए मूल्यांकन की मांग करती हैं, क्योंकि उनकी कविता उस मार्मिकता के तहत भावुकता तथा भावात्मक रूप से करती है जो तथ्य की कसौटी पर खरी उतरती है। दलित कविताओं में कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो स्वानुभूति के आधार पर लिखी गई हैं। उसको लिखने वाली लेखिकाएँ भले ही जन्मतः दलित नहीं है। लेकिन उन्होंने दलित और दलित स्त्री पीड़ा का अनुभव आवश्य ही किया है। सुशीला टाकभौरे जी का लेखन स्वानुभूति के आधार पर किया गया लेखन हैं। दलित साहित्य के लेखन में कई कवयित्रियों ने लेखन किया है। उन्हीं में से एक शख्सियत तथा प्रसिध्द कवयित्री सुशीला टाकभौरे जी हैं। जिन्होंने अपनी कविताओं में सामाजिक परिवर्तन की मांग की है। दलित कविता में समाज के दलितों की जो वास्तविक स्थिति है, उसको व्यक्त करने की एक चेष्टा है। देखा जाए तो सुशीला टाकभौरे जी ने 'हमारे हिस्से का सूरज' काव्य संग्रह में दलित जातियों की यातनाओं, समस्याओं और वर्तमान स्थिति को स्वर दिया है। अपना वाजिब हक़ पाने के लिए सचेत किया है। इसी के साथ-साथ समस्याओं का हल भी सुझाया है। आज भी दलितों को भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार होते हैं। कहीं उन्हें जिन्दा जलाया जाता है, तो कहीं उनकी बस्तियों में आग लगा दी जाती है। कानून और पुलिस की सुरक्षा व्यवस्था सवर्णों की मदद पहले करती है। दलितों को कहीं न्याय नहीं मिलता। भारतीय सामाजिक संरचना में विषमवादी तत्व के पीछे मनुस्मृति रही है। 'कवयित्री ने स्वयं को पहचानो' शीर्षक कविता में इसी ओर ईशारा किया है।

"हमारी जाति हमारा धर्म
हमारा भविष्य/हमारा कर्म
मनुस्मृति काल से आज तक
अपनी जगह पर अटल"

इस कविता में मनुस्मृति के आधार पर आज तक जो दलित अपने हक़ से वंचित रहे, उसकी आवाज को लेखिका ने मुखरित किया है। मनुस्मृति के कारण ही दलित पिछड़ता चला जा रहा है। उसे समाज में वह सम्मान प्राप्त नहीं हो पा रहा है, जो उसे मिलना चाहिए। अपने आक्रोश को प्रकट करती हुई 'अब तो शर्म करो' कविता में कवयित्री लिखती हैं।

"बनाकर उन्हें अछूत
बताकर उनकी छाँह को
भी अपवित्र/गाँव-शहर से दूर
रहने पर किया मजबूर
उतरन और जूठन पर जीने के लिए
बनाते रहे आज तक लाचार
अब तो शर्म करो "

सुशीला जी ने हिन्दू वर्ण व्यवस्था से पीड़ित दलित समुदाय की व्यथा को आक्रोश भरे शब्दों में मार्मिक ढंग से प्रस्तुत कर रही है। दलित वर्ण व्यवस्था को समझते हुए, आज मूक बनकर उस वेदना को सह रहे है। उस पर मन की गहराईयों से लिखी अपनी आक्रोशता की भावना को मूर्त रूप दिया है। हालांकि दलितों में भी सामाजिक परिवर्तन हुए है। समय-समय पर दलितों को जागरुक करते हुए बहुत से कवियों तथा कवयित्रियों ने लेखन किया है। सुशीला टाकभौरे दलित कविताओं के माध्यम से सदियों से चले आ रहे शोषण के खिलाफ आवाज उठाते हुए कहती हैं।

"सदियों की गुलामी है
ऊपर देखने की आदत ही नहीं है
कैसे देखेंगे क्रांति सूर्य को/कैसे समझेंगे
जागृति और परिवर्तन के प्रकाश को "

लेखिका ने सरल तौर पर कहा है समय के साथ शताब्दियाँ बीत रही हैं। मगर दलितों में दलित कहे जाने वाली जातियों की सामाजिक आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और धार्मिक स्थिति में परिवर्तन नहीं हो सका है। दलित जातियां भी अलग-अलग धर्मों तथा नामों से जानी जाते हैं। इस पर कवयित्री कहती हैं –

"जिस धर्म का आधार/अन्याय अत्याचार है
शोषण और आडम्बर/ऐसे धर्म का धिक्कार है "

कवयित्री समाज में फैली धर्म के आधार पर कुरीतियाँ, शोषण, आडम्बर, अत्याचार और सामाजिक विषमता पर व्यग्यं करती हुई दिखाई देती हैं और उसे स्वीकार करने की अपेक्षा धिक्कारने में ही भलाई समझती हैं। वे समाज की वेदना को समझती हैं। सदियों से सहते आये दलितों को शोषण के प्रति जागरुक भी करती हैं। 'मेरा अस्तित्व' नामक कविता में दलितों के अस्तित्व में अपना अस्तित्व मानते हुए वे लिखती है –

"हिन्दू धर्म-नीति के बहकावे में
नहीं देख सके अपना वर्तमान और भविष्य
आज भी पिछड़े हैं, अछूत, अन्त्यज
देख रहे हैं राह, किसी नये सूर्योदय की "

कवयित्री कहना चाहती है, कि दलित हिन्दू धर्म के द्वारा दिए गए प्रपंचों के कारण

देववाद, हिंदुत्ववाद पर भरोसा रखकर ऊँचा उठने का साध्य नहीं करते, जिससे उनके सामने कवयित्री भी स्वयं को अपमानित महसूस करती है। दलित समाज के लोग अभावों में जीते हैं। छुआछूत भी इनकी जिंदगी के अंग की तरह ही है। इसी छुआछूत के खिलाफ डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म का रास्ता दिखाया था। लेकिन फिर भी दलित जातियां हिन्दू धर्म से मुक्त नहीं हो पाई हैं। इन धारणाओं से मुक्त होने के लिए कवयित्री ने 'साहस' नामक कविता लिखी

"सागर बड़ा है
उसका तट बड़ा है
उसी तरह
गुलामी की हमारी बेड़ियाँ
अन्याय अत्याचार की दाढ़ियाँ बड़ी है।"

दलित साहित्य का उद्देश्य रहा है- दलितोत्थान। इस सन्दर्भ में विमल कीर्ति लिखते हैं- "दलित समाज में सामाजिक क्रान्ति की चेतना की मानसिकता परिवर्तन की मानसिकता पैदा करना, अन्याय के खिलाफ संघर्ष की भावना पैदा करना, उसी प्रकार सकारात्मक बोध पैदा करना सृजन शीलता को बढ़ावा देना दलित साहित्य का उद्देश्य है।" डॉ. अम्बेडकर ने दलित जातियों का उद्धार किया। बाबा साहेब अम्बेडकर को अपना प्रेरणा स्त्रोत मान कर सुशीला जी ने भी दलित समुदाय की स्थिति को समझा और उनके उद्धार के लिए समाज को अपना योगदान प्रदान किया। 'दलित चेतना' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ जागृति और सुधार का संदेश देती हैं।

"दलितोत्थान का लक्ष्य
दलित आन्दोलन की सफलता
तुम्हारे हाथों में हैं।"

कवयित्री ने दलित समाज को यही कहा है कि दलितों जागो अपने जीवन में एक नई ऊर्जा को भरो। अपने समाज के प्रति कुछ कार्य करो जिससे हम बाबा साहेब द्वारा बताए गए मार्ग को अपने जीवन में अपना सकें।

निष्कर्ष – देखा जाए तो पूरे काव्य संकलन 'हमारे हिस्से का सूरज' में कवयित्री ने दलितों के भोगे हुए यथार्थ को तलाश कर अपनी लेखनी में उतारने का प्रयास किया है। उनकी हर कविता सामाजिक परिवर्तन के साथ एक चेतना का आह्वान कहती हुई दिखाई देती है। कविताओं में नूतन बिम्बों का भी समावेश किया है। जो कविताओं में बिल्कुल सटीक है। उनकी कविताएं दलित समुदाय को अपनी स्थिति का एहसास कराती है। वही दलित स्त्री का भी संत्रास है। सुशीला जी का यह काव्य संकलन समाज में दलितों को सामाजिक परिवर्तन की मांग करता है। उनकी कविताएँ कुछ कर गुजरने का और मानव जीवन को सार्थक करने का जज्बा पैदा करती है। अंततः 'हमारे हिस्से का सूरज' कविता संग्रह मानवीयता को स्थापित करते हुए गहरे दायित्व का बोध कराता है।

******

संदर्भ सूची-

चिंतामणि भाग -1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 106

हमारे हिस्से का सूरज (कविता संग्रह) – सुशीला टाकभौरे, पृ. 138

वहीं, पृ. 36

वहीं, पृ. 117

वहीं, पृ. 38

वहीं, पृ. 118

वहीं, पृ. 72

बयान पत्रिका, मार्च – 2015, पृ. 31

हमारे हिस्से का सूरज (कविता संग्रह) – सुशीला टाकभौरे, पृ.63

पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए डॉ. बी. आर. आंबेडकर प्रतिपादित विकास रणनीति की समीक्षा

डॉ.धीरज कदम

सहायक प्राध्यापक
अर्थशास्त्र विभाग,राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज विद्यापीठ
नागपुर Mob.- 9922281541

प्रस्तावना:-आर्थिक जगत में विकास और असमानता एक वास्तविकता है। विकास में असमानताएँ अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और साथ ही समाज के विभिन्न वर्गों के स्तर पर पाई जा सकती हैं। यह सामाजिक संरचना में, या विकास की प्रक्रिया में उत्पन्न हो सकती है। असमानता की स्थिति में, समाज पिछड़े और उन्नत, अमीर और गरीब, विशेषाधिकार प्राप्त और वंचित समूहों में विभाजित होते है। यह स्थिति तनाव और कई समस्याओं के निर्माण की ओर ले जाती है। इसके बावजूद अंतरराष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वर्ग स्तर पर विकास विश्लेषण में असमानता को केंद्रीय समस्या नहीं माना जाता है। ऐसा असमानता का गहन विश्लेषण करने वाले प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुनार मिर्डल का प्रतिपादन है Gunnar, Myrdal (1955)। उनके द्वारा प्रयुक्त सैद्धांतिक अवधारणाओं की सहायता से प्रस्तुत निबंध में डॉ. बी. आर. आंबेडकर के विचारों पर चर्चा की गई है। पिछड़े वर्गों के विकास की रणनीति के रूप में आरक्षण नीति के विशेष संदर्भ में, पिछड़े वर्गों और समग्र रूप से समाज के संदर्भ में इसके निहितार्थ और परिणामों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

असमानता की उत्पत्ति और प्रकृति:-भारत में पिछड़े वर्गों के पिछड़ेपन की समस्या मूल रूप से सामाजिक संरचना में वर्ग स्तर पर निर्मित असमानता की समस्या है और इसकी जड़ें सामाजिक संरचना की अनम्यता या कठोरता में देखी जाती हैं। प्रत्येक समाज ने अपनी सुविधा के लिए श्रम विभाजन की कुछ विशेष व्यवस्था को अपनाया है। प्राचीन भारत में इसे अनिवार्य रूप से योग्यता और कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था के रूप में अपनाया गया था *(श्रीमद भगवत गीता अध्याय १८)*। श्रम का विभाजन विभिन्न चरित्रों के विभिन्न व्यवसायों के रूप में हुआ। शिक्षा, प्रशिक्षण, कौशल, व्यावहारिक कार्य अनुभव, वित्तीय सुरक्षा आदि आसानी से पैतृक या पारंपरिक व्यवसायों में प्राप्त हो जाते हैं। अन्य व्यवसायों में कौशल प्राप्त करने की आवश्यकता के कारण अन्य व्यवसायों को प्राप्त करने के प्रयास नहीं किए गए। इसप्रकार पारंपरिक व्यवसायों की सामान्य प्रवृत्ति एक वर्ग के व्यक्तियों को अन्य व्यवसायों से वंचित करने थी। कौशल की कमी और अन्य व्यवसायों की अस्वीकृति ने खुले बाजार में प्रतिस्पर्धा की कमी को जन्म दिया और अन्य व्यवसायों की अस्वीकृति की प्रक्रिया को तेज कर दिया। समय के साथ, एक व्यक्ति का पेशा उसके झुकाव और योग्यता से नहीं बल्कि जन्म से अनिवार्य होने लगा। और इस व्यवस्था के लाभधारको द्वारा इसे धार्मिक कर्मकांडो में लिपटकर मनुस्मृति जैसे ग्रंथ के माध्यम से दृढ़मूल किया गया। समाज में अपरिवर्तनीय सामाजिक प्रतिबंध अस्तित्व में आए। आंबेडकर अपनी किताब 'फ़िलॉसफ़ी ऑफ हिंदइज़्म' में लिखते हैं, *"मनु ने चार वर्ण व्यवस्था की वकालत की थी। मनु ने इन चौर वर्णों को अलग-अलग रखने के बारे में बताकर जाति व्यवस्था की नींव रखी. हालांकि, ये नहीं कहा जा सकता है कि मनु ने जाति व्यवस्था की रचना की है. लेकिन उन्होंने इस व्यवस्था के बीज ज़रूर बोए थे।"*श्रम विभाजन ने ही श्रीमिको के बीच विभाजन का रूप ले लिया। वर्ग स्तर पर असमानता बढ़ी। समाज में और समाज के विकास में समानता के स्तर पर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जहाँ निम्न या पिछड़े वर्गों के लोगों को शामिल नहीं किया जा सके। असमानता ने समाज में विशेषाधिकार प्राप्त और वंचित वर्गों का निर्माण किया। एक पिछड़ा वर्ग और विभाजित समाज का उदय हुआ। असमानता का उन्मूलन और समान समाज का निर्माण एक तत्काल आवश्यकता के रूप में सामने आया। असमानता को समाप्त करने की नीति असमानता की प्रकृति और परिणामों को ध्यान में रखे बिना नहीं बनाई जा सकती है। नीतिगत प्रश्न कार्य-कारण से संबंधित है और इसी तरह, यह साध्य-साधन भाव से जुड़ा है। असमानता के स्वरूप और परिणामों को सामाजिक रूप से समझना होगा। असमानता को खत्म करके हम वास्तव में क्या हासिल करना चाहते हैं? यह किन उद्देश्यों को प्राप्त करने का इरादा रखता है? यह पहले निर्धारित करना आवश्यक है। फिर हमें यह विचार करना होगा कि संबंधित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कौन से उपकरण

उपयोगी और प्रभावी हैं। संसाधन संबंधी विचारों में असमानता को कम करने के उपाय अपेक्षित हैं। उसके लिए, असमानता पैदा करने वाली प्रणाली से जुड़े कार्य-कारण को ध्यान में रखना होगा। अपनाए गए उपायों के अल्पकालिक और दीर्घकालिक प्रभावों के पूर्वानुमान भी आवश्यक है। इस पर भी ध्यान देना पड़ेगा कि क्या वे स्वीकृत मानकों के अनुरूप हैं या नहीं। एक कठोर वर्ग-आधारित सामाजिक संरचना में, व्यवसायों तक पहुंच में समान अवसर की कमी ने असमानता और एक कमजोर, अन्यायग्रस्त पिछड़े वर्ग के अस्तित्व को जन्म दिया। उनका पिछड़ापन किसी विशेष मामले से जुड़ा नहीं था। उनके पास रोजगार के निम्न स्तर के और कम अवसर थे। उनकी शैक्षिक और आर्थिक स्थिति दयनीय थी। राजनीतिक अधिकार शून्य थे। सामाजिक प्रतिष्ठा का अभाव था। वे सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में पीछे थे। इसीलिए, समाज में विशेषाधिकार प्राप्त और वंचित वर्गों की व्यवस्था को समाप्त करते हुए, सभी पहलुओं में असमानता को नष्ट करके और उन्हें सभी क्षेत्रों में आवश्यक अवसर प्रदान करके, पिछड़े वर्गों के प्रति असमानता को नष्ट करने का प्रयास केवल गरीबी उन्मूलन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक पुनर्गठन का प्रश्न है। यह डॉ. आंबेडकर की भूमिका अत्यधिक सही प्रतीत होती है।

विश्लेषण का आधार चक्रीय संचयी कारण का सिद्धांत:-

सामाजिक पुनर्गठन का प्रश्न स्वाभाविक रूप से एक बहुआयामी प्रश्न है। ये विभिन्न पहलू अन्योन्याश्रित और एकदूसरेको प्रभावित करने वाले हैं। आंबेडकर के अनुसार पिछड़े वर्गों के हिस्से में गरीबी और आर्थिक निर्भरता रही है। इसके परिणामस्वरूप अच्छा रोजगार प्राप्त करने के लिए कौशल, ज्ञान और शैक्षिक अवसरों की कमी हुई। इसके कारण उनका मानसिक और सांस्कृतिक विकास नहीं हो सका। परिणामस्वरूप, उन्हें समाज की संरचना में हाशिए पर स्थान मिला। उसके लिए आवश्यक कौशल हासिल करने के अवसर को भी नकार दिया गया। इस प्रकार कई कारक कार्य-कारणाभाव से संबंधित हैं। उनकी आर्थिक स्थिति के कारण सामाजिक और राजनीतिक प्रकृति के हैं और सामाजिक स्थिति के कारण आर्थिक और सांस्कृतिक प्रकृति के हैं। वे दोनों एक दूसरे के कारण और परिणाम हैं। इसलिए असमानता और पिछड़ेपन की समस्या का विश्लेषण केवल आर्थिक कारक तक सीमित नहीं रह सकता। जैसा कि वाल्टर हेगनबुश ने कहा है, आर्थिक स्थितियों के कारण, केवल आर्थिक प्रकृति के नहीं हैं। साथ ही आर्थिक कारणों के प्रभाव न केवल प्रकृति में आर्थिक होते हैं। गुनार मिर्डल के अनुसार सामाजिक कारकों के आर्थिक और गैर-आर्थिक विभाजन के बजाय, उन्हें संबंधित और असंबंधित कारकों या कम और अधिक संबंधित कारकों में विभाजित करना उचित होगा। डॉ. आंबेडकर ने पिछड़े वर्गों के अल्प विकास की वास्तविकता को समस्या के सभी पहलुओं के अनुरूप माना। इसलिए पिछड़े वर्गों के संबंध में असमानता को दूर करने के प्रश्न को सामाजिक पुनर्गठन का प्रश्न माना गया।

सामाजिक संरचना से संबंधित कारकों की अन्योन्याश्रयता एक दुष्चक्र का निर्माण करती है। एक दुष्चक्र से तात्पर्य एक दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करने वाली शक्तियों के एक वृत्ताकार चक्र से है। एक चक्र में सभी तत्व एक दूसरे के कारण और प्रभाव दोनों हैं, एक चक्रीय और संचयी प्रक्रिया का निर्माण करते हैं। चीजें वही रहती हैं लेकिन अधिक से अधिक हीन होती हैं। जैसा कि गरीबी के दुष्चक्र में है, देश गरीब है क्योंकि वह गरीब है। यहाँ गरीबी का कारण और परिणाम गरीबी है। इसी प्रकार पिछड़ा वर्ग पिछड़ा होने के कारण पिछड़ापण ही है। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि चक्रीय कार्य-कारण संबंध के कारण ही दुष्चक्र को एक सुष्ट-चक्र में परिवर्तित किया जा सकता है।

वृत्तीय प्रक्रिया की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं:-

पिछड़ेपन के दुष्चक्र के अस्तित्व को देखते हुए, इस चक्र के सभी कारक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और परिणामस्वरूप संचयी प्रक्रिया का निर्माण होता है। इसलिए पिछड़े वर्गों को समाज में दूसरों के साथ समानता के स्तर पर लाने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं साथ ही वे कैसे उपयुक्त और प्रभावी होंगे, यह समझने के लिए चक्रीय संचयी प्रक्रिया की कुछ विशेषताओं पर ध्यान देना होगा।

1) **प्रक्रिया की प्रकृति और परिणाम:-**

चक्रीय प्रक्रिया के किसी एक घटक में सुधारात्मक परिवर्तन से दूसरे घटक में भी सुधार होता है। एक तत्व में परिवर्तन लगातार दूसरे तत्व की प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है। प्राथमिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप सुधार की ओर इस ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया का अर्थ है कि संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था प्राथमिक परिवर्तन की ओर बढ़ने लगती है और बहुत आगे तक जाती है। संचय का सिद्धांत यह दावा करता है कि निवेश पर प्रतिफल, प्रयास या सुधार की लागत से कई गुना अधिक होगा। सही घटक की विवेकपूर्ण ऊर्ध्वगामी गतिशीलता से प्राप्त अंतिम संचयी सामाजिक लाभ बहुत अधिक होंगे।

2) विभिन्न तत्वों की भिन्न तीव्रता और अंतरंगता:-

संचयी कार्य-कारण के सिद्धांत के अनुसार, सामाजिक व्यवस्था में कई बिंदुओं में से किसी एक पर की गई कोई भी कार्रवाई समग्र रूप से व्यवस्था में एक ऊपर की ओर गति शुरू कर सकती है। उदा. पिछड़े वर्गों के विकास के लिए शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक कारकों में से किसी एक में कोई भी परिवर्तन संचयी कार्य-कारण के द्वारा पिछड़े वर्गों के सुधार के लिए एक ऊर्ध्वगामी संचयी प्रक्रिया शुरू करेगा। हालाँकि, विकास के मुद्दे से कैसे और कहाँ निपटा जाए, इसे द्वितीयक मुद्दे के रूप में नहीं माना जा सकता है। क्योंकि व्यावहारिक क्षेत्र में कोई रामबाण उपाय नहीं हैं। इसका प्रतिरोध भी है। इसलिए, एक कारक को बदलकर रणनीति आमतौर पर सफल नहीं होती है। इसके अलावा, हालांकि विभिन्न तत्व परस्पर जुड़े हुए हैं, उनका अंतर्संबंध सूक्ष्म अध्ययन का विषय है। विभिन्न कारकों के बीच संबंधों की तीव्रता और निकटता कम और अधिक होती है। जितना अधिक हम समझते हैं कि प्रत्येक कारक में कब और क्या प्रभाव पड़ता है, हम बेहतर तरीके से तय कर सकते हैं कि कौन सी नीति अपनानी है और प्रभाव को अधिकतम कैसे करना है।

3) परिणामों और उसके स्थायित्व के लिए समय:-

उर्ध्वगामी प्रक्रिया शुरू करने के लिए किस कारक का उपयोग करना है, यह तय करने में समय भी एक महत्वपूर्ण कारक है। कुछ कारक अल्प कालावधि में बदलते हैं और कुछ दीर्घ कालावधि में। कुछ परिवर्तन अल्पकालिक होते हैं और कुछ लंबे समय तक रहते हैं। ये कारक लगातार सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित कर रहेते हैं और साथ ही इसमें बलों की संरचना को बदल रहेते हैं। समय के इस तत्व के कारण, चक्रीय प्रक्रिया के विभिन्न घटकों पर हुए आघातों का प्रभाव अल्प और दीर्घ समय के पैमाने पर फैल जाता है। उदा. रोजगार के परिणामस्वरूप, कुछ वस्तुओं का उपभोग स्तर तुरंत बढ़ जाएगा, जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे कारकों के स्तर को बदलने में अधिक समय लगेगा। सभी कारकों को ध्यान में रखते हुए, ऊपर की प्रक्रिया शुरू करने के लिए सही सामग्री का सावधानीपूर्वक चयन करना होगा।

डॉ. आंबेडकर द्वारा सुझाए गए उपाय और नीतियां:-

यदि हम उपरोक्त चर्चा की पृष्ठभूमि में डॉ. आंबेडकर द्वारा सुझाए गए समाधान की समीक्षा करते हैं, तो ऐसा लगता है कि उन्होंने सामाजिक पुनर्गठन के तहत पिछड़े वर्गों के अविकसित होने की वास्तविक समस्या के विभिन्न पहलुओं पर वास्तविक रूप से विचार किया। संचयी प्रक्रिया के प्रमेय के अनुसार, किसी एक तत्व में सुधारात्मक परिवर्तन करके ऊपर की ओर प्रक्रिया शुरू की जा सकती है। लेकिन डॉ. आंबेडकर का जोर अनेक उपायों पर है। जिससे संचय की प्रक्रिया गतिशील तथा गतिमान रहे, और पिछड़े वर्गों का तेजी से और चिरंतन विकास हो। उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ बौद्ध धम्म अपनाया जो समानता और सांसारिक जीवन को धर्म के रूप में मानता था, भाईचारे की भावना पैदा करता है। उन्होंने वयस्क मताधिकार के साथ आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से राजनीतिक क्षेत्र के विकल्प के रूप में देश के निर्णय लेने और कार्रवाई करने वाले प्राधिकरण में भाग लेना महत्वपूर्ण माना। चूंकि शिक्षा से शारीरिक समृद्धि के साथ-साथ मानसिक और सांस्कृतिक विकास होता है, इसलिए पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रोत्साहन के साथ शिक्षा में आरक्षित सीटों की व्यवस्था की गई। डॉ. आंबेडकर का जोर विभिन्न तत्वों की परस्परनिर्भरता को ध्यान में रखते हुए समाधानों की बहुलता और समावेशिता पर है। हालांकि, उन्होंने व्यावहारिक रूप से उर्ध्व प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए आर्थिक कारकों और उपायों को विशेष महत्व दिया। यद्यपि सामाजिक पुनर्गठन के लिए वांछित परिवर्तन लाने में केवल

आर्थिक कारक ही एकमात्र कारक नहीं है, लेकिन अनिवार्य है, उसके बिना परिवर्तन लाना कठिन है। इसमें अन्य कारकों को प्रभावित करने की अधिक शक्ति होती है, जिससे यह प्रक्रिया तेज और लंबे समय तक चलती है। उन्हें लगता है कि काम का बुनियादी अधिकार, कृषि और उद्योग में राज्य समाजवाद, यांत्रिकीकरण जैसे उपाय पिछड़े वर्गों की स्थिति को देखते हुए विशेष रूप से उपयोगी होंगे।

पिछड़े वर्ग के विकास प्रक्रिया के लिए संस्थागत व्यवस्था:

विशेषाधिकारविहीन वर्ग संरचना और समानों का समाज बनाने के लिए, दूसरे शब्दों में, असमानता को मिटाने और विकास में पिछड़े लोगों के उत्थान के लिए व्यक्तिगत और साथ ही सामाजिक स्तर पर प्रयास करने की आवश्यकता होती है। इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी है कि विषमता को नष्ट कर पिछड़े वर्ग के विकास के लिए किस तत्व पर जोर दिया जाए, इसी तरह किस संस्था के माध्यम से यह कार्य किया जाए या किस प्रणाली के माध्यम से उपायों को लागू किया जाए, यह भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। पिछड़े वर्ग के व्यक्ति या स्वयंसेवी संगठन इस संबंध में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास कर सकते हैं। हालांकि, डॉ. आंबेडकर ने इस संबंध में सरकार को एक विशेष जिम्मेदारी सौंपी थी। उनके लिए सरकारी दखल जरूरी है। उनका कानूनी और संवैधानिक तरीके पर विशेष जोर हैसरकारी संस्थाएं बाजार शक्तियों में सभी संगठित हस्तक्षेपों के समन्वयक हैं। आधुनिक समय में, राज्य संस्थाएँ वास्तव में संगठित समाज का आविष्कार हैं। इसे देश के अधिकांश संगठनों और शक्तिशाली समूहों के हस्तक्षेप को नियंत्रित करने के लिए एक रूपरेखा के रूप में भी स्थापित किया गया है। डॉ. आंबेडकर के अनुसार उनके लेखन से प्रतीत होता है कि पिछड़े वर्गों के विकास के लिए संस्थागत प्रयासों की जिम्मेदारी का केंद्रबिंद सरकार ही है। उन्होंने महसूस किया कि समाज के दमनकारी होने के उनके अनुभव के कारण सरकार एक उपयुक्त संस्था होगी। कोई मजबूत वैकल्पिक संगठन भी नहीं था जो पिछड़े वर्गों को पिछड़ेपन से बाहर निकाल सके। सरकार द्वारा संवैधानिक और कानूनी चैनलों का उपयोग और इसकी अनिवार्य प्रकृति सभी महत्वपूर्ण थे। अधिकार और संसाधनों के कारण, सरकार के प्रयास अधिक प्रभावी होंगे और परिणाम व्यापक होंगे, सलिए उन्होंने उपायों के कार्यान्वयन के लिए सरकारी संस्था को उपयुक्त समझा। उनके अनुसार, सरकार का कार्य लोगों को भूख, बेरोजगारी, भय, अभाव जैसी सामाजिक बुराइयों से बचाना या एक ऐसा सामाजिक वातावरण बनाना है जहाँ व्यक्ति एक आदर्श जीवन व्यतीत कर सके। सरकार के कामकाज से संबंधित उनकी भूमिका ने पिछड़े वर्गों को समानता के स्तर पर लाने की जिम्मेदारी भी उन्होंने सरकार पर सौंपी।

पिछड़े वर्गों के विकास की चक्रीय संचयी कार्य-कारण प्रक्रिया



यह देखते हुए कि एक चक्रीय कारण संबंध और संचयी प्रकृति की एक प्रक्रिया है, यह निश्चित है कि उपरोक्त निर्णय शक्ति, शिक्षा और रोजगार में आरक्षण के उपायों के साथ विकास की एक ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया शुरू करेगा। चूंकि विभिन्न कारक परस्पर जुड़े हुए हैं, संचयी प्रक्रिया भी सभी कारकों में परिवर्तन की दर को तेज करेगी। पिछड़े वर्गों में स्पर्धाक्षमता निर्माण होगी और बढ़ेगी। अवसर की प्रभावी समानता उसका परिणाम होगा। समय के साथ विशेष रियायतों की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी इस तथ्य से डॉ. आंबेडकर अवगत थे। इसलिए, उन्होंने अस्थायी, समयबद्ध रूप में आरक्षण नीति की सिफारिश की।

परिणामों का अवलोकन:

पिछड़े वर्गों के विकास के संबंध में डॉ. आंबेडकर की उपर्युक्त नीति पर विचार करने के बाद, अब सामाजिक पुनर्गठन के सन्दर्भ में पिछड़े वर्गों पर आरक्षण की इन रियायतों के प्रभावों और इसके परिणामों पर विचार करना आवश्यक है। जब समाज को विकसित और पिछड़े वर्गों में विभाजित किया जाता है, तो सभी पिछड़े वर्ग अन्य वर्गों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते हैं। सरकार के रणनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त स्थिति में, विकास के अवसर, सुविधाएं और लाभ विकसित वर्ग में केंद्रित होंगे और पिछड़ा वर्ग और और पिछड़ता रहेगा। मिर्डल के अनुसार, दो विषम वर्गों को प्रतिस्पर्धी स्थिति में रखकर विकास करनेवाली अर्थव्यवस्था में, उन्नत वर्ग अन्य वर्गों की कीमत पर, पिछड़े वर्गों को सापेक्ष गतिहीनता की स्थिति में लाकर अपनी प्रगति और विकास को अधिक मजबूत कर, बनाए रखते हैं। ऐसे में पिछड़ों को विशेष सुविधाएं देना जायज है। लेकिन विकास कारकों को गतिशील करके विकास की ऊर्ध्वगामी संचयी प्रक्रिया शुरू करने के बाद, यह स्थिति पिछड़े वर्ग के अपेक्षाकृत अधिक कमजोरों के लिए समय के साथ स्थिति कितनी अनुकूल होगी? यह विचार करना भी आवश्यक है कि, एक समान समाज के लक्ष्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है कि यह प्रणाली असमानता की स्थिति में कमजोर और वंचितों तक पहुँच प्रदान करने के लिए है। इसका विश्लेषण करते समय विकास की ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया शुरू होने के बाद होने वाले प्रतिगामी प्रभावों (Back wash) को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। विकास के केंद्र में एक उछाल से विकास के उस केंद्र के बाहर सभी संबद्ध प्रतिकूल प्रभावों को प्रतिगामी प्रभाव कहा जाता है। वे प्रकृति में केन्द्रापसारक हैं।

अप्रतिबंधित अंतर-वर्ग प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप, एक विकसित केंद्र का उसी विकसित वर्ग के भीतर एक अविकसित समूह पर प्रतिकूल या प्रतिगामी प्रभाव पड़ेगा। असमान विकास की स्थिति में, पिछड़े वर्गों में उन्नत समूह एक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बन जाता है और अपने ही वर्ग के अन्य लोगों को पिछड़ी स्थिति में रहने का कारण बनता है। संचयी प्रक्रिया के सिद्धांत के अनुसार, रियायतों के पारस्परिक कार्य-कारणभाव के कारण, अवसर सुविधाओं का अधिक से अधिक कुशलता से उपयोग किया जा सकता है। सीमित अवसर के कारण, सभी तत्वों में अनुकूल परिवर्तन होंगे और वे बहुत आगे बढ़ेंगे। प्राप्त अवसरों और एक ही वर्ग में अपेक्षाकृत अविकसित समूह पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और उनके विकास में अवरोध उत्पन्न होंगे।

जब रियायतें पहली बार मिलती हैं, तो उनका उपयोग पिछड़ेपन को दूर करने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग सापेक्ष श्रेष्ठता की ओर ले जाता है जब पिछड़ेपन से बाहर वालों के लिए समान अवसर उपलब्ध होते हैं। यह सिद्धांत कि, पिछड़े वर्गों को विशेष रियायतें दी जानी चाहिए ताकि वे वास्तव में समाज में आम तौर पर उपलब्ध अवसरों का लाभ उठा सकें, पिछड़े वर्गों के उन्नत और पिछड़े समूहों (एक निश्चित अनुपात के आरक्षण के अधीन) पर भी लागू होता है। पिछड़े वर्गों के अविकसित समूहों को इन विशेष सुविधाओं का लाभ उठाने और उनका आनंद लेने में सक्षम होने के लिए, पिछड़े वर्गों के बीच विकसित या उन्नत समूहों को उन रियायतों के अपने अधिकार को छोड़ देना चाहिए। क्योंकि निरपेक्ष हीनता या पिछड़ेपन की अवस्था को पार करने के बाद उस रियायत का उपयोग सापेक्ष श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए किया जाता है। किसी भी समाज में विभिन्न क्षेत्रों में सापेक्ष हीनता महसूस की जा सकती है। इसलिए रियायतों को अपने दम पर छोड़ने की कोई प्रवृत्ति नहीं है। पिछड़े वर्गों को असमानता की स्थिति में लाभान्वित करने के लिए, उन लाभों के अनुपात का त्याग, कम से कम अस्थायी रूप से तो भी, उन्नत या विकसित वर्गों द्वारा किया जाना चाहिए। इस बलिदान को करने के लिए बौद्धिक उदारता का लक्ष्य समाज

उन्नत तबकों द्वारा अपनाना चाहिए ऐसा माना जाता है। हालांकि, सापेक्ष श्रेष्ठता का लालच यह असंभव बना देता है कि उन्नत पिछड़ा वर्ग स्वेच्छा से अपने वर्ग के निचले तबके के विकास के लिए आवश्यक काम करने की बुद्धिमान उदारता को स्वीकार करेगा। क्या हम इस तथ्य से इनकार कर सकते हैं कि पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का लाभ इसी वर्ग के अपेक्षाकृत विकसित समूह अधिक उठा रहा है?

निष्कर्ष:

अतीत में सामाजिक प्रतिबंधों के कारण कुछ वर्ग पिछड़ गए, पिछड़े हो गए। समय के साथ वे समाज में उपलब्ध सामान्य सुविधाओं और अवसरों का उपयोग करने में असमर्थ हो गए। इसलिए, यह मानते हुए कि अधिकार सुविधाओं के समान उपयोग के लिए आरक्षण सुविधाएं प्रदान करने के पीछे विशेष अधिकार की भूमिका है, हमने देखा है कि सामाजिक पुनर्गठन का लक्ष्य प्रतिबन्ध विरहित, न्यायसंगत सामाजिक पुनर्गठन और समान समाज है। पिछड़े वर्गों को विशेष रियायतें देकर उनका पिछड़ापन दूर करके, उन्हें दूसरों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखा जाए कि इनके विकास पर कोई रोक न लगे। इस प्रकार जन्म जाति के कारण किसी पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए, इसलिए समय के साथ किसी को विशेष रियायतें देने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। रियायतों की जरूरत वाले वर्ग के सिकुड़ने और गायब होने की अपेक्षा रहती है। यदि लक्ष्य समानों का समाज बनाना है तो ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें वास्तव में पिछड़े लोगों को ही रियायतें मिलें और पिछड़ेपन से बाहर आने वालों को नहीं।

पिछड़े वर्गों में पिछड़ेपन से उभरने वाले समूहों को व्यापक समाज में समानता की भूमिका में एकजुट होना चाहिए। अन्यथा यह उन्नत समूह एक ओर पिछड़े वर्गों के वास्तविक पिछड़े वर्ग को विकास के अवसरों से वंचित कर देगा। दूसरी तरफ व्यापक समाज और अपेक्षाकृत पिछड़े लोगों की तुलना में विशेष रियायतों और अधिकारों वाला वर्ग होगा। समानता का समाज नहीं बनाया जा सकता। इतना ही नहीं, जो रियायतें पिछड़ेपन के अंत के बाद भी जारी रहती हैं, वे विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को एक वर्ग के रूप में स्थापित कर देंगी, जिससे समाज के अन्य वर्गों को अपेक्षाकृत नुकसान होगा।

पिछड़ा वर्ग जन्म जाति से निर्धारित होता है, पिछड़े वर्गों को पिछड़े वर्गों में शामिल नहीं किया जा सकता है और पिछड़े वर्गों से उन्नत को हटाने की कोई व्यवस्था नहीं है। यह फिर से समाज में अपरिवर्तनीय प्रतिबंधों या छूटों के अस्तित्व को जन्म देगा। यदि स्थिति में सुधार के बाद संबंधित समूहों को पिछड़े वर्गों से बाहर रखने का कोई प्रावधान नहीं है, तो इसका मतलब यह होगा कि हम जानबूझकर जन्म जाति व्यवस्था को स्वीकार कर रहे हैं और जारी रख रहे हैं। इसका अर्थ यह भी है कि सामान्य और विशेषाधिकार प्राप्त लोग इस तरह से समाज के वर्गीकरण में प्रत्यक्ष और सक्रिय रूप से योगदान करते हैं। यह समान समाज के लक्ष्य के अनुकूल नहीं है। क्या हमें नीतिगत उपायों के लक्ष्यों और परिणामों के बीच इस विसंगति से अवगत नहीं होना चाहिए?

*****

संदर्भ सूची: -

1.Ganguli B.N. (1977): Indian Economic Thought, Tata Mcgraw Hill.

2. Govt. of Maharashtra, Dept. of Education (1989): Dr. Babasaheb Ambedkar, Writings, and Speeches (Vol. IV) Govt. of Maharashtra.

3. Keer Dhananjay (1961): Ambedkar - Life and Mission, Popular Prakashan, Mumbai.

4. Kuber W.N. (1991): Ambedkar: A critical study, People's Publishing House, New Delhi.

5. Myrdal Gunnar (1955) Economic theory and underdeveloped regions.

6. Nagar V.D. (1992), Economic thought and Policy of Dr. Ambedkar, Segments Books, New Delhi.

7. Ambedkar, B.R. (1948): Untouchables: Who were they and why they became untouchables, Amrit Book Co. Snaught circus, New Delhi

8. Gov of Maharashtra (2014): Dr. Babasaheb Ambedkar Writings and Speeches, Vol. 3.

9. जहागिरदार मुक्ता (2013): डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के आर्थिक विचार - एक विश्लेषण, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर कॉलेज महाड और मराठी अर्थशास्त्र परिषद द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित राज्य स्तरीय संगोष्ठी में प्रस्तुत व्याख्यान।

डॉ.तुलसी राम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' में अंधविश्वास

डॉ.मृत्युंजय कोईरी

रांची, झारखंड मो.7903208238

आधुनिक युग में भी मनुष्य वहम, शकुन-अपशकुन, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, भूत-प्रेत में विश्वास करते हैं। तर्कहीन बातों और घटनाओं में विश्वास करके कई बार मनुष्यों को मुसीबतों का सामना भी करना पड़ता है। फिर भी देश के दलित समुदाय और ग्रामीण समाज वहम, शकुन-अपशकुन, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना और भूत-प्रेत आदि में आस्था बरकरार है। डॉ. तुलसी राम ने अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में दलित समाज में कायम अंधविश्वास को उजागर किया है।

डॉ.तुलसी राम ने 'मुर्दहिया' को सात खण्डों में विभक्त करके लिखा है। जिसमें विशेष रूप से भूतही पारिवारिक पृष्ठभूमि, अकाल में अंधविश्वास और भुतनिया नागिन खण्ड का नाम ही अंधविश्वास पर रखा है। इसके अलावे बाकी खण्डों में भी अंधविश्वास निहित है। देश ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ चुका है। पर समाज में अंधविश्वास जस-का-तस कायम है। जिसका मुख्य कारण अशिक्षा है। लेखक ने मूर्खता को जन्मजात विरासत माना है। समाज में कायम अंधविश्वास देखिए-"सदियों पुरानी इस अशिक्षा का परिणाम यह हुआ कि मूर्खता और मूर्खता के चलते अंधविश्वासों का बोझ मेरे पूर्वजों के सिर से कभी नहीं उतरा.....।"[1]

बहरहाल शुरूआत यदि दादाजी से किया जाए तो लेखक के दादाजी जूठन गांव से थोड़ा-सा दूर झाड़ियों वाले टीले के छोटे से खेत में मटर की फलियाँ जानवरों से रखवाली करने के उद्देश्य से गये थे। जहाँ जानवर समझकर साही नामक भूत पर लाठी से बार कर दिया था। फिर डरकर तुरंत घर भाग आया था। इसी बीच एक दिन दादाजी खलिहान में रात को सोये हुए थे और साही नामक भूत आकर लाठी से पीट-पीटकर मार डाला। तब से लेखक के परिवार भूत से बहुत डरने लगे और भूतबाबा की पूजा करना प्रारंभ कर दिया। घर में गुनी-ओझा को बुलाने लगे। किसी का सिर दर्द होने पर भी ओझैती-सोखैती को बुला लाते। साही नामक भूत पर लेखक का तर्क देखिए- "दादा जी को मैंने कभी देखा नहीं था, क्योंकि उनकी यह भुतही हत्या मेरे जन्म से अनेक वर्ष पर्व हो चुकी थी। इस हत्या की गुत्थी मेरे लिए आज भी एक उलझी हुई पहेली बनी हुई है। तर्कसंगत तथ्य तो शायद यही होगी कि दादा जी की गाँव के ही किसी अन्य व्यक्ति से अवश्य ही दुश्मनी रही होगी और उसने साही भूत का मनोवैज्ञानिक बहाना निर्मित कर उन्हें मार डाला हो। सच्चाई चाहे जो भी हो, इस भुतही प्रक्रिया ने मेरे खानदान के हर व्यक्ति को घनघोर अंधविश्वास के गर्त में धकल दिया।"[2]

दादी मुसड़िया की उम्र सौ वर्ष से भी ज्यादा हो चुकी है। उसके चेहरे तथा बाँहों से चमड़े लटकते हुए नजर आ रहे हैं। दादी के सौ वर्ष से ज्यादा जिन्दा रहने पर भी ग्रामीण समाज में किंवदंती फैलाई जाती है। ज्ञान-विज्ञान के इस युग में भी लोगों की मानसिकता देखिए- "गाँव वालों का कहना था कि मेरी दादी ने कौआ का मांस खाया है, इसलिए वह मरती नहीं है। गाँव में यह किंवदंती फैली हुई थी कि कौवे का मांस खाने वाला बहुत दिन तक जिन्दा रहता है।"[3] लेखक के पिता तेरसी ने डॉ. तुलसी राम के जन्म उपरांत ही गाँव के तलाब से एक जिंदा मछली पकड़कर चारपाई के नीचे डाल दिया था। ताकि बड़ा होकर पिता जैसा मछरमरवा के रूप में पौराणिक ख्याति मिल सके। हमेशा पिता से मछवारे पानी छू देने की प्रार्थना करते हैं। ताकि सभी को मछलियाँ मिल जाए। मछवारे का ये अंधविश्वास देखिए- "मेरे पिताजी को मछली मारने में महारत हासिल थी। वे किसी भी जलस्रोत से बड़ी आसानी से मछलियां मार लाते थे। 'मछरमरवा' के रूप में उन्हें उस क्षेत्र में पौराणिक ख्याती मिली हुई थी। लोग कहीं भी मछली मारने जाते, वे पिताजी से प्रार्थना करते थे कि साथ चलकर वह पानी छू भर दें, बस मछली सबको मिल जाएगी।[4]" लेखक जब तीन साल के थे, तब गांव में चेचक की महामारी आई थी। चेचक के प्रकोप से लेखक मरणासन्न हो गया था। घरवाले चिकित्सकीय इलाज कराने के बजाय देवी-देवताओं की मनौती करते हैं। चमरिया माई, डीह बाबा और शीतला माई आदि की पूजा-पाठ करते हैं। लेखक की दादी चमरिया माई की अटूट भक्तिन थीं, कंडे की आग में घी डाल-डालकर जय चमरिया माई, जय चमरिया माई की रट लगाती हुई विनती करती थीं। परिवार वालों का अंधविश्वास देखिए-" घर वाले घोर अंधविश्वास के कारण –

दवा लेने से हठ के साथ इंकार कर देते थे। वैसे भी उन दिनों चेचक लाइलाज बीमारी थी। घर वाले इसे शीतला माई का प्रकोप समझते थे। पास के गांव से एक ओझा आता और कभी भी स्पष्ट न होने वाले कथित मंत्रों को बड़बड़ाते तथा लौंग तोड़ते हुए झाड़-फूंक करता था। वह नीम के पेड़ की छोटी डाल तोड़कर पत्ते समेत पूरी देह पर फेरता रहता था। [5]"बहरहाल लेखक के बचने पर घर वाले अटूट विश्वास को मानते हैं। साथ ही अपनी पूजा-पाठ और विभिन्न मनौतियों में सूअरों, बकरों और भैंसा की बलि की मन्नत रखते हैं। इन अंधविश्वासों के बीच लेखक बच जाते हैं, किंतु पूरे देह में गहरे घाव के दाग पड़ गया और दाईं आंख की रोशनी हमेशा-हमेशा के लिए लुप्त हो गई। समाज से लेकर घर परिवार में भी लेखक अपशकुन का पात्र बनकर रह गया। यथा-" इस पूरे प्रकरण में मेरे शेष जीवन पर अत्यंत दूरगामी प्रभाव डालने वाली घटना घटी चेचक से मेरी दाईं आंख की रोशनी हमेशा के लिए विलुप्त हो गई। भारत के अंधविश्वासी समाज में ऐसे व्यक्ति' अशुभ' की श्रेणी हमेशा के लिए सूचीबद्ध हो जाते हैं। ऐसी श्रेणी में मेरा भी प्रवेश मात्र तीन साल की अवस्था में हो गया। अतः घर से लेकर बाहर तक सबके लिए मैं' अपशकुन' बन गया। [6]"

गांव के कई व्यक्तियों को अपशकुन की श्रेणी में रखा गया है। करीब अस्सी वर्ष के बूढ़े ब्राह्मण जंगू पांडे, जो आजीवन कुंआरा रह गये। समाज में उनका अपना कोई नहीं है। वह जब भी दलित बस्ती में आ जाते ही अनेक परिवारों में खलबली मच जाती है। लोगों का मानना है कि जंगू पांडे की निगाह पड़ते ही बहुओं का अनिष्ट हो जाती हैं। वे कभी मां नहीं बन सकती है। जंगू पांडे के प्रति लोगों का अंधविश्वास देखिए-'' मेरे घर के पास एक आम के पेड़ में खूब बौर आए थे। अचानक जंगू पांडे आकर आम के बौरों को देखने लगे क्योंकि बौर बहुत अच्छे लग रहे थे। मेरे घर वालों ने कहना शुरू कर दिया कि जंगू पांडे की नजर लग गई। अब फल नहीं आएंगे। जबकि बाद में खूब फल आए।"[7]

इतना ही नहीं समाज में लोगों की मानसिकता इस कदर अंधविश्वास की जाल में उलझ गई थी कि किसी कुंवारे वृद्ध या विधवा वृद्ध के प्रति संवेदनशून्य हो गए थे। गांव में बुढ़िया ब्राह्मणी थी। जिसे लोग पंडिताइन के नाम से जानते थे। पंडिताइन निर्वंश विधवा होने के कारण समाज में अपशकुन की श्रेणी में मान लिया गया था। घर से कहीं जाते वक्त पंडिताइन की दर्शन हो जाने पर वह व्यक्ति अपना घर की ओर लौट आता है। समाज में पंडित और पंडिताइन को बहुत अपमानित किया जाता है। गांव के ब्राह्मण जमींदारों के खेतों पर बंधुआ मजदूर का काम लेखक के दादा-परदादा से करते आ रहे हैं। गांव के अन्य दलित भी उन्हीं जमींदारों के यहां हरवाही करते हैं। जहां लेखक के पिताजी खानदानी हरवाही से मुक्त नहीं होना चाहते हैं। उन्हें लगता है यदि हम हरवाही का काम छोड़ दे तो ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। अशिक्षा के कारण दलित समाज में कायम अंधविश्वास देखिए-" यदि हरवाही छोड़ दूंगा तो' ब्रह्महत्या' का पाप लगेगा। अत्यंत धर्मांध होने के कारण वे हरवाही को अपना जन्मसिद्ध अधिकार एवं पवित्र कार्य समझते थे।8"अशिक्षित से ग्रसित दलित समुदाय ने अंधविश्वास की सारी हदों को पार कर दी है। किसी युवती का गांव के किसी अन्य व्यक्ति के साथ यौन संबंध या उसका बिन विवाह गर्भवती हो जाना, समाज के लिए पाप है। समाज के ठेकेदारों ने उनके परिवार का हुक्का-पानी बंद कर देता है। गांव से बहिष्कार कर दिया जाता है। उसे कुजाति घोषित किया जाता है। यदि वह परिवार बिरादरी में वापस आने की इच्छा व्यक्त करता है तो दंडस्वरूप उसे पूरे ग्राम समाज को सूअर-भात खिलाना पड़ता है। समाज अंधविश्वास के कारण क्रूर एवं असंवेदनशील हो गया है। यथा-" दंडस्वरूप उसे पूरे ग्राम समाज को सूअर-भात खिलाने का दिन तय किया जाता। इस बीच यदि अवैध यौन संबंध के चलते वह युवती गर्भवती रहती तो उसका गर्भपात स्वयं गांव की महिलाएं, जो बच्चा पैदा करवाने में अनुभवी होती थीं, पेट दबा-दबाकर अत्यंत क्रूर ढंग से करवा देती थीं। फिर भोज के निर्धारित दिन सूअर-भात पंचों को परोसने के समय चौधरी की अनुमति से युवती के ऊपर गंगाजल छिड़ककर उसे पवित्र घोषित कर दिया जाता था। इसके बाद कुजाति परिवार के पाप को माफ करने के लिए भोज में उपस्थित पंचों से अपील की जाती। सभी पंच एक साथ जोर का नारा लगाते' ;बोला बोला सीताराम' इसके बाद वे कहते कि पाप माफ कर दिया गया। इसके साथ ही वह परिवार-बिरादरी में वापस आ जाता था।[9]"गांव के अमिका पांडे के पास एक पंचांग था, जो गांव के लोग रहस्यमयी पतरा समझते थे। पंचांग में चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण एवं त्यौहार-पर्व की तिथि एवं शुभ मुहूर्त अंकित है। इतना ही नहीं दलितों के बीच यह भी अटूट विश्वास था कि अमिका पांडे के उसी पतरे में सारे वेद पुराण छुपे हुए थे। जिसे लोग आसमानी देवलोक से ब्रह्मा जी द्वारा गिरा दिया गया मानते हैं पर यथार्थ कुछ और है। लेखक के शब्दों में-" इन सारे चमत्कारों की हकीकत यह थी कि उनका वह रहस्यमयी पतरा एक छपा हुआ पंचांग था जो वाराणसी से हर साल प्रकाशित होता था। इसी हिंदू पंचांग में चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा सभी त्योहारों आदि का दिन छपा हुआ रहता था।[10]"

दलित समुदाय के नवजात शिशुओं के कमर में अधन्नी, एकन्नी तथा दोअन्नी वाले गिलट के सिक्के चांदी के सिक्के को छेंद करके बांध दिया जाता है, जो बहुत शुभ माना जाता है। लोग सिक्कों को घर के अंदर जमीन में गाड़ देते थे। कभी-कभी कोई व्यक्ति परिवार वाले को बताए बिना ही मर जाता था और वह घर जब गिर जाता है। तब उसी जमीन पर नया मकान बनाने के वास्ते नींव खोदे जाते हैं। उस समय मिट्टी की बनी हड़िया में सोना मिल जाता है। इस तरह के छिपे हुए खजाने की तलाश में व्यक्ति अंधविश्वास के सहारे सारी हदें समाप्त कर देता हैं। वह अपना बच्चा तक को बलि पर चढ़ाने के लिए तैयार हो जाता है। यह अंधविश्वास लेखक के शब्दों में देखिए- "कभी-कभी गांवों में अक्सर सुनने को मिलता था कि घर गिर जाने पर पुनः निर्माण के लिए नींव खोदते समय ये सिक्के मिट्टी की बनी हड़िया में मिल जाया करते थे। ऐसी हड़ियों में कभी-कभी सोनो-चांदी के गहने भी मिला करते थे। ऐसे ही छिपे हुए खजानों की तलाश के लिए गांवों में उस समय रहने वाले ओझा और तांत्रिकों के चक्कर में कई व्यक्ति अपने बच्चों की बलि तक चढ़ा देते थे। इस तरह की खबरें आज भी कभी-कभी अखबारों में मिल जाती हैं।"[11]

दलित समाज के अशिक्षा का प्रभाव ही है कि वे मुड़कटवा बाबा, धोकरकसवा बाबा तथा लकड़सुंघवा बाबा के डर से शाम होते ही अपने-अपने घरों-झोपड़ियों में बंद हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि गांव के पीपल पेड़ पर भूतों ने अपना अड्डा बना लिया है, जो नौ ग्रहों के मेल होने पर हुआ है। हिंदू अंधविश्वास के अनुसार किसी गांव में आपदा बीमारी या महामारी दक्षिण दिशा से आती है। इसीलिए दक्षिण दिशा में ही चमारों को बसाया जाता है। ताकि सबसे पहले वे चपेट में आयें। गांव में यदि हैजा से एक व्यक्ति की मौत होती थी। तब अफवाह पचास व्यक्ति के मरने की फैलाई जाती थी। जिससे गांव में बड़ा चिंताजनक स्थिति पैदा हो। क्योंकि महामारी में मरने वाली औरत नागिन बन कर घूमती फिरती हैं। उनके काट लेने पर व्यक्ति दवा से तो बच ही नहीं सकता है लाख झाड़-फूंक से भी नहीं बचाया जा सकता है। रात में सियारों का हुआं-हुआं करना भी अंधविश्वास ही लगता है। लेखक के शब्दों में-" उधर रातों में मुर्दाखोर सियारों का हुआं-हुआं वाला शोर बच्चों को बहुत डराता था, किंतु मेरी दादी कहती कि मुर्दहिया के सारे पुराने भूत अपनी बढ़ती हुई आबादी से खुश होकर नाचते हुए सियारों जैसा गाना गाते हैं। दादी द्वारा प्रस्तुत भूतों की इस नृत्य विद्या तथा गायन शैली से मैं बहुत घबरा जाता था। दादी यह भी कहती थी कि महामारी में मरने वाली औरतें नागिन बनकर घूमती हैं। उनके काटने से कोई भी जिंदा नहीं बचता। दादी मुझे अक्सर याद दिलाती कि किसी झाड़ी-झंखार से गुजरते हुए' जै राम जमेदर' जरूर दोहराते जाना। ऐसा कहने से नाग-नागिन भाग जाते हैं।"[12]एक बार गांव में फक्कड़ बाबा नामक भूत को कुछ लोगों ने मार दिया था। फक्कड़ बाबा की हत्या से गांव में बड़ी दहशत फैल जाती है। अफवाह फैलाई जाती है कि इस इलाके के सारे भूत मिलकर गांव के सभी लोगों को चुन-चुनकर बाबा की हत्या का बदला लेंगे। दादी का मानना है कि फक्कड़ बाबा की हत्या का बदला लेने वाले कोई अन्य भूतों से हमारी खानदानी भूतबाबा रक्षा करेंगे। यदि हम उनकी पूजा-पाठ करेंगे तब। लेखक के परिवार में फक्कड़ बाबा की हत्या से अंधविश्वास देखिए -" हमारे घर के भूतबाबा वहीं पड़ोसी गांव दौलताबाद के पास वाले पुराने पीपल के पेड़ पर रहते थे। उस भूतबाबा को खुश करने के लिए फक्कड़ बाबा की हत्या के बाद पहली बार मुन्नर चाचा मुझे अपने साथ ले गए। हम लोग साथ में एक हंड़िया दूध एक सेर चावल तथा कुछ भोली और गाय बैल के गोबर से बने हुए सूखे गोइंठे को भी ले गए थे। गोइंठे का अहरा लगाकर हंड़िया के दूध में चावल और भोली डालकर जाउर (खीर) पकाई गई, जिसमें से थोड़ा उस भूतबाबा वाले पीपल के पेड़ की जड़ पर चढ़ाया गया था।

एक लंगोट उसकी एक डाली में उस पर चढ़कर मैंने बांध दिया। शेष जाऊर को घर लाया गया जिसे परिवार के सभी लोग प्रसाद के रूप में खाये।13

ग्रामीण समाज में पशु-पक्षी द्वारा किसी के शरीर में बैठ जाना या चोंच मारना बहुत बड़ा अपशकुन माना जाता है। जो समाज के अशिक्षित होने का प्रमाण है। अपशकुन खत्म करने की विधि देखिए-" जब कभी कोई उड़ता हुआ कौआ किसी को पैरों या चोंच से मार देता था, तो इसे भी अपशकुन माना जाता। यह अपशगुन इतना खतरनाक माना जाता था कि तुरंत घर के किसी व्यक्ति को सबसे नजदीकी रिश्तेदार के घर भेज कर यह संदेश दिया जाता कि अमुक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। मृत्यु की खबर सुनकर रिश्तेदार औरतों का तत्काल रोना शुरू हो जाता, लेकिन शीघ्र ही उन्हें बता दिया जाता कि मृत्यु नहीं, बल्कि कौए ने चोंच मारी है। इस विधि से कौए का अपशगुन दूर किया जाता था।"

हिंदू धर्म के अनुसार खरमास को बहुत बड़ा अपशकुन का महीना माना जाता है। एक बार सुदेस्सर नामक ब्राह्मण की हरवाही करने वाले की मां मर जाती है तब अमिका पांडे ने अपना पतरा देख कर कहता है। अभी पन्द्रह दिन खरमास है। इस समय मृत मां का दाह-संस्कार करने से माताजी नरक भोगेंगी। इसलिए अभी मुर्दहिया में कब्र खोदकर गाड़ दिया जाए और खरमास समाप्त होने के उपरांत कब्र से निकालकर हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार दाह-संस्कार किया जाएगा। पंडित के आदेशानुसार ऐसा ही किया जाता है। लेखक के शब्दों में ये अंधविश्वास देखिए-" मुर्दहिया के संदर्भ में सन 1957' भादो' का महीना मेरे जीवन का एक विशेष यादगार वाला महीना है। उस समय हिंदू धर्म के अनुसार' खरवांस' यानी बहुत अपशकुन वाला महीना था। इस बीच मेरे पिताजी जिस सुदेस्सर नामक ब्राह्मण की हरवाही करते थे, उनकी बुढ़िया मां मर गई। उनके ही पाट्टीदार अमिका पांडे ने' पतरा' देखकर बताया कि अभी पन्द्रह दिन खरवांस है, इसलिए मृत मां का दाह-संस्कार नहीं हो सकता। यदि ऐसा किया गया तो माताजी नर्क भोगेंगी।[15]"

ग्रामीण समाज का अंधविश्वास विचित्र है। चेचक का टीका लगाने वाले कंपाउंडर को सिरगोदवा बाबा के नाम से गांव में बड़ा आतंक फैला दिया जाता है। कंपाउंडर स्कूल में आकर बच्चों को टीका लगाने का काम करते थे। अशिक्षित समाज के द्वारा फैलाई गई अफवाह के कारण बच्चे भाग जाते थे। यथा-" कई बार स्कूल में अफवाह उड़ गई कि सिरगोदवा बाबा आने वाले हैं। इतना सुनते ही सैकड़ों बच्चे स्कूल से भागकर दूर-दूर फैले गन्ने के खेतों में जाकर दिन भर के लिए छिप जाते। शाम होने पर सभी डरते हुए घर जाते। कई बार मैं भी गन्ने के खेतों में छिपा रहा। वास्तव में यह सिरगोदवा बाबा कोई और नहीं बल्कि स्कूलों में सरकार द्वारा भेजे गए चेचक का टीका लगाने वाली कंपाउंडर होते थे।[16]"

देश में अकाल को लेकर ग्रामीण समाज का अंधविश्वास है कि नौ ग्रहों के मिलने से अकाल पड़ता है। घर में किसी को मनोरोग हो जाने पर भी चुड़ैल और भूत-प्रेत ही दिखता है। ये डॉक्टर के पास ले जाने के बजाय ओझा के पास ही चले जाते हैं। ओझा दवा के नाम पर भभूत देता है। चुड़ैल से छुटकारा पाने पर ग्रामीण समाज का विचित्र अंधविश्वास देखिए-"उधर बस्ती में जब भी कोई बीमार पड़ता, इसकी सारी जिम्मेदारी उसी कुएं वाली चुड़ैल पर थोप दी जाती, खास करके जब छोटे बच्चे ज्वर से पीड़ित होते, तो यह अंधविश्वास बहुत गहरा हो जाता था। एक अंधविश्वास के चलते लोग बत्तख नामक पालतू पक्षी को बच्चे के ऊपर बैठने पर मजबूर करते। इसमें मान्यता यह थी कि चुड़ैल भाग जाएगी। इन बीमार बच्चों को कोई दवा नहीं दी जाती। इस तरह कई बच्चे मर जाते, फिर हल्लड़ मच जाता कि चुड़ैल ने बच्चे को खा डाला।"[17]

गांव बीमारी और भूत-प्रेत से बचने के वास्ते हर साल जेठ के महीने में स्थानीय देवी-देवताओं को सूअर की बलि दी जाती थी। लेखक के चौधरी सोम्मर चाचा कोढ़ रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। घरवाले डॉक्टर से दवा दिलाने के बजाय गांव के पौहारी बाबा से आग से बनी राख को प्रसाद के रूप में खाने के लिए दिया जाता था। अनेक पूजा-पाठ, यज्ञ, बलि देने के बाद भी सोम्मर चाचा की मौत हो जाती है। लेखक के परिवार अशिक्षित होने के कारण भूत-प्रेत, शकुन-अपशकुन और तंत्र-मंत्र में अधिकांश विश्वास रखते थे। इसलिए लेखक ने अपने परिवार को भूत-प्रेत, देवी-देवता आदि का अजायबघर कहा है। लेखक के शब्दों में -" इस तरह हमारा परिवार संयुक्त रुप से बृहद् होने के साथ-साथ वास्तव में एक अजायबघर ही था, जिसमें भूत-प्रेत, देवी-देवता, संपन्नता-विपन्नता, शकुन-अपशकुन, मान-अपमान, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुख आदि-आदि सब कुछ था, किंतु शिक्षा कभी नहीं थी।[18]

आधुनिक युग में भी ग्रामीण समाज में अंधविश्वास कायम है। अंधविश्वास का मुख्य कारण शिक्षा, गरीबी और भूख है। आज भी दलित समुदाय में विशेष रूप से मुर्दहिया के तमाम अंधविश्वास देखने को मिलते हैं। लेखक डॉ. तुलसी राम ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से दलित समुदाय और ग्रामीण समाज में कायम अंधविश्वास को उजागर करके सचेत करना चाहते हैं। ताकि ऐसे अंधविश्वास की जाल में न फंसे। यही इस आत्मकथा की सार्थकता है।

****

संदर्भ-संकेत-:

1. मुर्दहिया, डॉ. तुलसी राम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवां संस्कार: 2021, पृ09-.
2. उपरिवत्, पृ10-9-.
3.उपरिवत्, पृ.-10
4.उपरिवत्, पृ10-.
5.उपरिवत्, पृ12-11-.
6.उपरिवत्, पृ12-.
7.उपरिवत्, पृ12-.
8.उपरिवत्, पृ14-.
9.उपरिवत्, पृ17-.
10.उपरिवत्, पृ22-.
11.उपरिवत्, पृ27-.
12.उपरिवत्, पृ42-.
13.उपरिवत्, पृ47-.
14.उपरिवत्, पृ49-48-.
15.उपरिवत्, पृ50-.
16.उपरिवत्, पृ56-.
17.उपरिवत्, पृ74-.
18.उपरिवत्, पृ21-.

विमर्श नहीं, 'दलित चेतना' है मुक्ति का आधार
(ऐतिहासिक व सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य)

डॉ.रविन्द्र गासो

दलित-मुक्ति के प्रश्न :-

'दलित मुक्ति' के प्रश्न को ऐतिहासिक-सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर की दार्शनिक निष्पत्तियों की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता। उनके दो लेख 'भारत में जाति-प्रथा' (1916) तथा 'जाति-प्रथा उन्मूलन' (1936)[1] इस सन्दर्भ में पूरे मामले की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इन दो लेखों को पढ़े बिना 'दलित' पर बात नही हो सकती। डॉ॰ अम्बेडकर ने हिन्दू-समाज की आधारभूत संरचना का वैज्ञानिक मूल्यांकन करते हुए इस प्रश्न पर विचार किया है कि चतुर्वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था कैसे समाप्त हो? - दलित-मुक्ति की दार्शनिक-भूमि यही है। इन लेखों में अम्बेडकर ने सिद्ध किया है कि चतुर्वर्ण-व्यवस्था अवैज्ञानिक है। गुण-कर्म के आधार पर व्यक्तियों का चार वर्णों में स्थायी विभाजन नहीं किया जा सकता है। इस विभाजन का कोई तर्क-संगत वैज्ञानिक आधार नहीं है। यह व्यवस्था सभी वर्णों एवं व्यक्तियों को विकास के समान अवसर दिये जाने के नियम के विरुद्ध है, सामाजिक भेदभाव को बढ़ावा देती है, ब्राह्मणों को विशेषाधिकार तथा शूद्रों की दासता का प्रतीक है, असमान दण्ड निर्धारण, वर्गीय असमानता का समाज-दर्शन है, पृथक्ता एवं विघटन को बढ़ावा देती है तथा मनुष्य की सृजनशील शक्तियों को कुण्ठित करती है। डॉ.अम्बेडकर ने आश्रम-व्यवस्था को भी दोषपूर्ण माना है। यह विधान मात्र शासक वर्ग के लिए शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करता है। जबकि सार्वभौमिक अनिवार्य शिक्षा तथा सभी को जीविका प्रदान करने की गारण्टी के बिना इस व्यवस्था का कोई तुक नहीं। डॉ.अम्बेडकर लिखते है कि - ''जब व्यक्ति सांसारिक सुखों का पूर्णतया भोग कर लेता है और आगे उसका भोग करने के योग्य नहीं रह जाता, तब यह कहना कि उसने स्वेच्छा से सांसारिक सुखों का परित्याग कर वानप्रस्थ एवं संन्यास ले लिया है, कोई अर्थ नहीं रखता। विवाह को अनिवार्य बनाने के उपरान्त व्यक्ति के लिए इस बात का प्रावधान करना कि अन्तिम क्षणों में वह पत्नी का परित्याग कर मुक्ति प्राप्त करे - यदि यह अपराध नहीं तो निर्दयता अवश्य है।''[2] 'जाति-प्रथा' सामाजिक भेदभाव का मूल कारण है। विभेद और वर्चस्व तथा ऊँच-नीच के सिद्धान्तों पर टिकी यह व्यवस्था दलितों तथा स्त्रियों की गुलामी का ही नहीं, बल्कि समूचे समाज की दुर्दशा का कारण बनती है। डॉ॰ अम्बेडकर इसकी उपयोगिता एवं उपलब्धियों पर तथ्यात्मक तथा तार्किक ढंग से प्रश्न चिह्न लगाते हैं। दिमाग का काम करने वाले समाज-पुरुष को सिर अर्थात् ब्राह्मण तथा श्रम को पैर अर्थात् शूद्र ठहराने वाली यह व्यवस्था मानव की महानता का अवमूल्यन है। श्रम मानव जाति, जीवन व समाज का नियामक है। श्रम की घोर उपेक्षा, अपमान करने वाली उसकी गरिमा, अस्मिता को चकनाचूर करने वाली यह व्यवस्था इतिहास के निर्माता मानव की महान संघर्ष चेतना तथा विकास-यात्रा से अपना सम्बन्ध विच्छेद करती है। डॉ.अम्बेडकर के अनुसार 'जाति' समाज में जनसंख्या का निश्चित, स्थायी एवं अन्तर्विवाह के नियम पर आधारित अनुलंघनीय इकाईयों (या समूहों) में विभाजन है। उन्होंने 'जाति' की उत्पत्ति की समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत करते हुए बताया कि प्रमुख चार वर्गों में से कालांतर में पुरोहित वर्ग (ब्राह्मण वर्ग) ने समाज में अपनी श्रेष्ठटता एवं वर्चस्व को बनाए रखने के लिए अपने वर्ग में अन्य व्यक्तियों के प्रवेश को पूर्णतया निषिद्ध कर दिया। जिससे ब्राह्मण वर्ग के स्थान पर ब्राह्मण जाति का निर्माण हुआ। इसी उद्देश्य से सजातीय (अन्तर्विवाह) विवाह का नियम कठोर किया गया। सती-प्रथा, विधवा -विवाह-निषेध, बाल-विवाह प्रथाओं का चलन भी 'जाति' से बाहर विवाह की संभावनाओं को समाप्त करने के लिए किया गया। जाति के नियमों के उल्लंघन पर बहिष्कृत के पास एक नई जाति का निर्माण करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। इसी कारण जातियों की संख्या बढ़ती गई।'जाति' शाश्वत या ईश्वरीय नियम नहीं है। डॉ. अम्बेडकर ने सिद्ध किया कि यह शक्तिशाली तथा अधिकार-सम्पन्न स्वार्थी तत्त्वों द्वारा बनाया गया नियम है। अर्थ-शास्त्रीय व्याख्या करते हुए डॉ.अम्बेडकर ने कहा कि जाति श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन करती है। जन्मजात पेशों के कारण व्यक्ति की उद्यमशीलता, रुचि और पहल करने की क्षमता नष्ट हो जाती है। यह राष्ट्रीय एकता में बाधक है। डॉ॰ अम्बेडकर ने कहा कि जन-भावना और जन-आत्मा का गला घोंटने वाली जाति व्यवस्था सामाजिक संकीर्णता और मानसिक बीमारी की सूचक है।

त्रासदी यह भी है कि घोर निर्योग्यताएं लगाने वाली जाति-वर्ण व्यवस्था और आश्रम-धर्म में स्त्री की कोई बराबरी या हिस्सेदारी नहीं है। जाति-व्यवस्था समाप्त करने के लिए अन्तर्जातीय-विवाह को मूल निदान मानते हुए डॉ॰ अम्बेडकर कहते हैं कि 'जब तक बुद्ध एवं नानक की भांति शास्त्रों की सत्ता को नकारा नहीं जाता, शास्त्रों का बहिष्कार नहीं किया जाता, तब तक समाज में अन्तर्जातीय विवाहों के लोकप्रिय होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।'3 सामाजिक परिवर्तन के लिए चिन्तन की स्वतन्त्रता धर्म-ग्रन्थ नहीं देते। 'जाति' की अनैतिकता व अतार्किकता को तोड़ने के लिए डॉ.अम्बेडकर इसीलिए वेदों और शास्त्रों को डाइनामाइट से उड़ाने की बात कहते हैं।4 विमर्श नहीं चेतना : विमर्श (डिस्कोर्स) या आख्यान या कलाम पारस्परिक संवाद की एक संरचना है जो अभय कुमार दुबे के अनुसार भाषा के जरिये सामाजिक संदर्भ में एक विषय के इर्द-गिर्द बहस द्वारा व्याख्याओं, तात्पर्य और मान्यताओं के निर्माण की प्रक्रिया है।[5] 'विमर्श' केन्द्रित व सन्दर्भों से जुड़ा समाज-शास्त्रीय पद है। यह प्रदत्त स्थितियों से जुड़ा है। जबकि 'चेतना' बहुआयामी, समग्र, भविष्यमुखी, परिवर्तनशील तथा परिवर्तनकामी है जो विचार-दर्शन की निर्मात्री है। चेतना के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका के बावजूद 'विमर्श' दलित मुक्ति के सन्दर्भों में सीमित असर रखते हैं। 'चेतना' ऐतिहासिक व राजनीतिक प्रक्रिया व जन आंदोलनों में से विकसित होती है। दलित अस्तित्व व अस्मिता के संघर्ष में दलित क्रान्ति चेतना 'जहां जन्मना लांछन एवं अपवर्जन के खिलाफ संघर्ष है, वहीं सामाजिक एवं धार्मिक आधार पर पूर्व में स्थापित अस्मिताओं को खण्डित करने (तोड़ने) का भी प्रयास है।[6] दलित-चेतना साहित्य के आधार हैं-''- अम्बेडकर का समग्र चिन्तन - बौद्ध धर्म व दर्शन तथा बौद्ध धर्म ग्रहण करते हुए अम्बेडकर की बाईस प्रतिज्ञाएं- प्रगतिवाद तथा वैज्ञानिकता''[7] इतिहास 'परिवर्तन एवं विकास' का ही दूसरा नाम है। वैज्ञानिक इतिहास-बोध के निर्माण में मिथकीय चेतना सबसे बड़ी रुकावट है। मिथकों, मिथकीय-ग्रन्थों, पौराणिकता द्वारा वैज्ञानिक यथार्थ-चेतना के निर्माण को रोकने के लिए सैंकड़ों वर्षों से विघ्नकारी संरचनाएं गढ़ी जा रही हैं। वर्तमान में वैश्विक पूंजी के तमाम माध्यम भी यही कर रहे हैं। वर्चस्व चाहे ब्राह्मणवाद का हो या साम्राज्यवाद का - दोनों दलित चेतना के शत्रु हैं।

******

सन्दर्भ :-

1. बाबा साहेब डॉ॰ अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-तृतीय; संस्करण 1998; डॉ॰ अम्बेडकर प्रतिष्ठान (कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार), नई दिल्ली
2. रामगोपाल सिंह; डॉ॰ अम्बेडकर का विचार दर्शन; प्रथम संस्करण 2002; मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल; पृ॰ 75
3. डॉ॰ अम्बेडकर; सम्पूर्ण वाङ्मय, पृ॰ 92
4. वही, पृ॰ 99
5. अक्षय कुमार दुबे; आधुनिकता के आईने में दलित; तीसरा संस्करण 2005; वाणी प्रकाशन, दिल्ली; पृ॰ 413
6. डॉ॰ विवेक कुमार; अपेक्षा (पत्रिका) जुलाई-सितम्बर 2004 में लेख - अम्बेडकरवादी लेखन का समाज-शास्त्र, पृ॰ 21
7. जय प्रकाश कर्दम; 'परम्परागत हिन्दी साहित्य और दलित चेतना; राष्ट्रीय सहारा (हस्तक्षेप परिशिष्ट), 18 जनवरी, 1997

'सामाजिक न्याय और अस्मिता संघर्ष के लिए "मादिगा दंडोरा" आंदोलन'

डॉ. जी. राजु
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभागइलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद मो.9059379268

आज भारतीय समाज अस्तित्व एवं समानता की लड़ाई में शामिल है। वह जातिगत विषमता, अस्पृश्यता एवं असमानता की जंजीरों को तोड़ने और एक नया समाज जो डॉ. बाबा साहब अंबेडकर का सपना था 'समतामूलक समाज' के निर्माण की ओर एक जुट होकर संघर्ष कर रहा है। इसमें दलित समाज के लोगों का योगदान सर्वमान्य है। विभिन्न दलित वर्गों का मुक्ति आंदोलन वास्तव में 1920 से सामाजिक सुधार, जातिगत विषमता के विरोध के संदर्भ में शुरू किया गया। पंजाब का आदि धर्म आंदोलन, महाराष्ट्र का महार आंदोलन, आंध्र का आदि हिंदु आंदोलन, तमिलनाडु का आदि द्रविड़ आंदोलन, कर्नाटक का कर्नाटक आंदोलन आदि जाति व्यवस्था के विरोध में एक ऐतिहासिक संघर्ष को अनजाम देने के क्रम में उठाए गए कदम थे। जिनमें मादिगा(चमार) समुदाय आंध्र(पृथक तेलंगाना से पहले) के 59 दलितों की उप जातियों में से एक है जो सम्मानजनक पहचान के लिए 1920 से संघर्ष कर रहा है। लेकिन आगे चलकर इस आंदोलन ने एक अद्वितीय संघर्ष जो 'मादिगा रिज़र्वेशन पोराटा समिति' (MRPS) का रुप धारण कर लिया है। बहुत जल्द ही इस आंदोलन ने दंडोरा के नाम से लोकप्रियता प्राप्त कर ली है। मादिगा चेतना की सम्मानजनक पहचान के लिए की गयी पहल कई दशकों के गुजर जाने के बाद एक आंदोलन के शिखर पर पहुंचा हुआ नज़र आता है। M.R.P.S. पिछले 12 सालों से मंदा कृष्ण मादिगा के नेतृत्व में 59 अनुसूचित जातियों के समूहों को ए.बी.सी.डी. समूहों के रूप में वर्गीकृत कर सभी उप जातियों के बीच आरक्षण के लाभ के समान वितरण के लिए संघर्ष कर रहा है। आंध्र में M.R.P.S. के मुकाबले में माला(महार) जो दलितों में एक उप-जाति है वह अपने समुदाय के फायदे के लिए माला महानाडु की स्थापना कर उसके तत्वावधान में इस वर्गीकरण के विरोध में आवाज बुलंद कर रहा है। माला समुदाय एकता की आड़ में आरक्षण के लाभ का बड़ा हिस्सा हासिल करने के लिए वर्गीकरण के खिलाफ़ सभी असंवैधानिक तर्कों के साथ आगे बढ़ रहा है। M.R.P.S. की मांग को समुचित मानकर चंद्रबाबू नायडु के नेतृत्व में आंध्र की सरकार ने आनुसूचित जाति को एबीसीडी समूहों में वर्गीकृत करने का आदेश जारी किया था। महार समुदाय(माला) ने दलितों को विभाजित करने के इरादे को असंवैधानिक मानते हुए अदालत में वर्गीकरण को चुनौती दी है। अब चमार(मादिगा) समुदाय भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय में न्याय के लिए लड़ रहा है। अपने अधिकारों के लिए लड़ने में अपनी लोकप्रियता एवं शक्ति के साथ उच्च स्तर पर चेतना प्रदर्शन करने के लिए 'दंडोरा' विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन कर रही है। आंध्र प्रदेश में कोया जनजाति के तुडुमदेब्बा, लंबाड़ा जनजातियों की बंजारा भेरी और यादवों की डोलुदेब्बा के नाम पर आदिवासियों के बीच इसी तरह की उप जाति आंदोलन चल पड़ा है।

प्रारंभ से ही मादिगा समुदाय सम्मानजनक पहचान के लिए संघर्ष कर रहा हैं जबकि ब्राह्मण वर्ग ने उन्हें कम या भ्रष्ट के रूप में मनोनीत किया था। अरुंधतीय महासभा का पहला अग्रणी संघ था जो मादिगा की जागृति और सम्मानजनक पहचान के लिए खोज शुरू कर दिया था। पहली मादिगा शिक्षित पीढ़ी उनके सम्मानजनक पहचान और उनकी उत्पत्ति का पता लगाने के लिए साहित्य की मौखिक और पौराणिक परंपरा के माध्यम से आगे बढ़ी थी। मादिगा समुदाय ने महसूस किया है कि पृथ्वी पर सबसे पहली धर्मपरायण महिला अरुंधति और वशिष्ठ की जो प्रेम कहानी है, उनसे उनकी उत्पत्ति का पता चलता है। चमारों का यह विश्वास है कि वे आदिवासी राजा जांबवन और कार्तम प्रजापति की बेटी अरुंधति की भव्य संतान हैं, यह अरुंधति की प्रेम कहानी पर आधारित है। उनका विश्वास है कि अरुंधति और जांबवन उनकी उत्पत्ति की पहचान है और वे भारत देश के पहले शासक थे। लेकिन कालांतर में उनकी स्थिति बदतर होने लगी और वह शासक से गुलाम बनते चले गये। एल.सी. गुरुस्वामि ने मादिगाओं की सम्मानजनक पहचान के संघर्ष के लिए 1920 में मद्रास प्रेसीडेंसी में 'अरुंधतीय महासभा' की स्थापना की। गुरुस्वामि ने मादिगाओं की स्वयं की छवि को ऊंचा स्थान देकर पेश करने के लिए अरुंधति और वशिष्ठ की कहानी को प्रचारित करने के साथ-साथ ब्राह्मणों के साथ वैवाहिक संबंधों का भी जिक्र किया है। अरुंधति और जांबवन की कहानी मादिगाओं के लिए गर्व की बात बन गयी। आज पौराणिक महिला अरुंधति भारत में सभी हिंदुओं के लिए एक आदर्श और धर्मपरायण महिला है। आज भी मादिगा समुदाय के लोग बताते हैं कि कैसे ब्राह्मणों ने अछूत कहकर, अनदेखा कर, उनके साथ मर्यादाहीन व्यवहार करते हैं। इन्हीं के चलते आज एम.आर.पी.एस. समुदाय विशेष की पहचान से जुड़ी तीन बातों को लेकर आगे बड़ रहा है- अरुंधति-जांबवंत, मादिगा और दंडोरा के सम्मान जनक स्वाभिमानी चिह्नों को प्रस्तुत करते हुए आंध्र और तेलंगाना के इस समाज के लोगों में एक संघर्षात्मक चेतना को जगाते हुए समाज में उच्च स्थानों में अपने को रखने का प्रयास कर रहा है। यहां इनकी पहचान और प्रतीकों के साथ एम.आर.पी.एस. बहुत तेजी के साथ अपने लक्ष्य की साधना में सफल होता गया। ऐसा चमत्कार होने लगा कि लाखों की संख्या में मादिगा समाज जुड़कर इस आंदोलन का समर्थन करने लगे साथ ही ए.बी.सी.डी. वर्गीकरण और समान हकों के लिए एक जुट होते गये। समाज में सम्मानजनक स्थानों पर कब्जा करने के लिए भी सब को एक जुट करने में यह सहायक बन पाया है। एम.आर.पी.एस. के हर कार्यक्रम में यह घोषित किया करते थे कि वे प्राचीन भारत के राजा जांबवन की संतान हैं और यह गर्व की बात है कि वे हमारे परदादा हैं जो एक महान योद्धा एवं शासक थे। वे अपने समाज को इस तरह से शिक्षित करते थे कि हमें गर्व है कि हमारी पौराणिक एवं सम्मान जनक माता के रुप में अरुंधति का आज बहुत नाम है। उन्हें आज भी हिंद धर्म के विवाह के उपलक्ष में अरुंधति नक्षत्र के रुप में देखने की प्रथा जारी है, इसके बिना वह शादि की रस्म पूरी नहीं हो पाती है।

दंडोरा के नेताओं ने यह निर्णय लिया है कि मादिगा शब्द का उपयोग पूरे गर्व के साथ व्यहार में लायेंगे। इसके लिए उन्होंने मादिगा शब्द की व्युत्पत्ति परक अर्थ को सामने ले आये हैं। मादिगा का अर्थ- महा(बहुत)- आदि(प्रारंभ से)- गा(गतिशील)- इसका तात्पर्य यह है कि – वास्तविक रुप से बहुत पहले से इस पृथ्वी पर रहने और गतिशील रहने वाले आदिजीव हैं। एम.आर.पी.एस. ने यह निर्णय लिया है कि जिस तरह समाज में अन्य जाति के लोगों के नाम के साथ जो जाति सूचक शब्द का उपयोग होता है जैसे- शर्मा, रेड्डी और नायुडु। उसी तरह मादिगा शब्द को भी चमार जाति के लोग अपने नाम के साथ जोड़ें और यह अन्य नामों की तरह समाज में प्रचलित अपनी पहचान बनायें। उन्होंने यह घोषणा कर दी है कि अपने नाम के साथ जाति को जोड़ने में कोई अपमान की भावना रखने की जरूरत नहीं है। ऐसा करने में हमें गर्व का एहसास होना चाहिए। इस निर्णय के साथ मादिगा जाति के लोगों में एक तरह के आत्मसम्मान की भावना जागृत हुई और इसके फलस्वरूप वे समाज में अपने प्रति होने वाले अन्याया एवं असमानता के विरोध में आवाज बुलंद करने में सफल हो पाए। एम.आर.पी.एस. अपने इस संघर्ष के माध्यम से भारत के मूल निवासी राजा होने का दावा कर स्वभिमान और मर्यादा को पाने में सफल हुआ है। इसके साथ वे अपने अंदर के आत्म-न्यूनता के भाव को मिटा कर मादिगा पहचान को मुखरित करने में सफलता प्राप्त कर चुका है।

चमारों में जो ढोल बजाने की प्रथा है वही आगे चलकर दंडोरा के नाम से अभिहित होने लगी जिसका अर्थ है- प्रसारित करना या सूचना देना। एम.आर.पी.एस. ने अपने सांप्रदायिक उपकरण ढोल का उपयोग न्याय के लिए चीखने व चिल्लाने के प्रतीक के रूप में अपना लिया है। मादिगाओं के पास पारंपरिक संदेशवाहक रहते थे जो गांव के प्रशासन के लिए संदेशकर्ता के रुप में सड़कों पर ढोल पीटते हुए चिल्लाया करते थे। गांव में इस ढोल बजाने की प्रथा को पारंपरिक व्यवसाय बनाकर उन्हें कुचलकर सेवक बनाये जाने के

लिए एक जजमानी व्यवस्था को बनाया गया था। अब वे ढोल बजाते हैं तो मादिगाओं के दासत्व मुक्ति और न्याय के लिए। आज सामाजिक आंदोलन, प्रतिरोध, रैलि और संघर्ष करने के लिए दंडोरा को एक पर्याय के रुप में सामने ले आये हैं। एम.आर.पी.एस. के अधिनेता श्री. मंदकृष्ण मादिगा ने यह घोषणा की है कि- हमारा हत्यार बंदूक नहीं ढोल है। हम अपने ढोल को इसलिए जोर से बजाते हैं ताकि जो शासके वर्ग है वह हमारी ओर ध्यान दे या फिर उनके कानों के पर्दे फट जाए। आंध्र में 1930 से ही दलित आंदोलन का प्रारंभ हआ। जैसे आदि आंध्र, अरुंधतीय सभा आदि। इनके द्वारा दलितों के आत्मसम्मान की बात पर अधिक जोर दिया जा रहा था। इस चेतना एवं संघर्ष के पीछे डॉ. बी.आर.अंबेडकर के दलित आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखई देता है। आंध्रप्रदेश में माला, मादिगा के बीच असमानता को लेकर भेदभाव का चलन रहा है, इसका कारण है पिछड़ेपन का फायदा सिर्फ माला समुदाय ही उठाता रहा है। परिणामतः दलितों में जितनी भी उप-जातियां हैं वे सारी जातियां दलित होने का कोई फायदा नहीं उठा पायी है। यही एक सबसे बड़ा कारण है इस दंडोरा आंदोलन का और वर्गीकरण व विभाजन की लड़ाई का। जिसके फलस्वरुप वर्गीकरण से लाभ उठाने का अवसर अन्य दलित जातियों को भी प्राप्त हुआ। यह वर्गीकरण दलित उपजातियों के लिए वरदान बन रहा था लेकिन माला समुदाय का कहना है कि यह उनके हिस्से के लाभ को भी दूर करता जा रहा है, इसीलिए इस वर्गीकरण का विरोध करना आरंभ किया जोकि आज भी जारी है। वे सिर्फ और सिर्फ अपना ही फायदा चाहते हैं। वे कभी इस अवसर को खोना नहीं चाहते हैं और ना ही किसी अन्य उपजाति को देना चाहते हैं। यह वही बात होने लगी जो एक सवर्ण मानसिकता का व्यक्ति करता है। वे भी कभी दलितों को अपने साथ समान दर्जा या अपने से ऊपर देखना नहीं चाहते। कहने का तात्पर्य यही है कि दंडोरा आंदोलन कोई सामान्य मुद्दे को लेकर नहीं वरन् एक स्वाभिमान एवं समानता की बात को लेकर समाज के सामने उपस्थित हुआ है। जिसका पूरा श्रेय उन महान व्यक्तियों को जाता है जिन्होंने इस असमानता व अत्मसम्मान की भावना को पहचाना और अपनी खोई हुई पहचान को फिर से हमें दिलाने में अथक प्रयास किये हैं। उनके प्रति समर्पित मन से अभिवादन व आदर व्यक्त किया जा सकता है।

दंडोरा आंदोलन का मूल लक्ष्य यही है कि समाज में सभी को एक जैसा जीवन मिले और पहचान मिले। वह उस एकाधिकार के खिलाफ आवाज उठाता है जहां ब्राह्माणीय समाज के द्वारा या अनुसूचित जाति द्वारा किया जाता हो। अगर ऐसा नहीं किया जायेगा तो वह सिर्फ एक ही समुदाय की उन्नति होगी जो पहले से जागरुक है और सशक्त है। वर्गीकरण से इस एकाधिकार व एकाधिपत्य का विखंडन होगा और उन सभी वंचित जातियों के लिए अवसर प्राप्त होगा जिन्हें आज तक इसके फल नहीं मिले थे। दलित समाज के लिए डॉ. बी.आर.अंबेडकर का दर्शन ही पथ-प्रदर्शक है, लेकिन आज हम उनके द्वारा प्राप्त सभी सुविधाओं का भोग करते हुए अपने साथी भाईयों को ऊपर उठने में सहायता नहीं दे पा रहे हैं। अंततः यह कह सकते हैं कि आंध्र में जो आंदोलन चला वह एक ऐतिहासिक आंदोलन का रुप ले चुका है। वह आत्मसम्मान और समान पहचान की लड़ाई है ना कि किसी समुदाय व वर्ग के प्रति विरोध की। पूर्व मंत्री और आज के उप राष्ट्रपति माननीय श्री वेंकय्य नायुडु ने भी उपराष्ट्रपति बनने से पहले मंदकृष्ण मादिगा द्वारा आयोजित बहुजन महासभा में आश्वासन दिया था कि आने वाली संसदीय बैठक में इस पर चर्चा होगी और सभी दलों की सहायता से वर्गीकरण को अंजाम दिया जायेगा। लेकिन आज तक इस मुद्दे पर कोई विकास का कदम नहीं उठाया गया। तेलंगाना राज्य सरकार ने मंदकृष्ण मादिगा के हर आंदोलन, कार्य पर रोक लगा दी है। यहाँ तक कि उन्हें दो बार जेल में भी रखा गया। यह राज्य द्वारा शांतिपूर्वक आंदोलन को हिंसात्मक रूप देकर उसे रोकने की साजिश है। राज्य द्वारा जितने जोर से दबाये जाने की कोशिश होगी उतनी ही जोर से वह लावा बनकर फूटेगा। और आज हर व्यक्ति, हर संगठन और हर राजनीतिक एवं सामाजिक दल इस लड़ाई के साथ है। इस सामाजिक न्याय की लड़ाई की सच्चाई और गहराई को पहचानकर वर्गीकरण की मांग को पूरा करने का दायित्व केंद्र एवं राज्य सरकार पर है।

****

डॉ.अंबेडकर के द्वारा नारी उत्थान हेतु किये गये प्रयासों एवं हिंदू कोड बिल का संक्षिप्त मूल्यांकन

डॉ.अनिल कुमार दीक्षित
शोध निर्देशक
राजनीति विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लेखनऊ

गृहशोभा
शोध अध्येता,
राजनीति विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़इनफार्मेशन

डॉ.आंबेडकर द्वारा स्त्रियों के पक्ष में की गई यह ओजपूर्ण टिप्पणी उनके स्त्री चिंतन की परिचायक है। डा आंबेडकर का नाम ज़हन में आते ही अक्सर उनकी बहुआयामी प्रतिभा को एक 'दलित उद्धारक'तक सीमित कर दिया जाता है। यद्यपि जितने तल्लीनता से आंबेडकर ने दलितों का उद्धार किया उतनी ही तल्लीनता के साथ भारत की आधी जनसंख्या अर्थात स्त्री उद्धारक के रुप में भी अपनी भूमिका निभायी। अछूतों के पश्चात् वे हिंदू नारी को ही सर्वाधिक अपेक्षित, अपमानित तथा प्रताड़ित जन समझते थे। उसके लिए कत्तव्यों की कोई कमी नहीं ओर अधिकारों का कोई नामोनिशान न था। इसलिए आंबेडकर को दलित मसीहा के साथ-साथ स्त्री मसीहा की उपमा देना गलत न होगा। अनुच्छेद 14,15 एंव 16 के माध्यम से संविधान में लिंग के आधार पर स्त्री-पुरुष के बीच भेदभाव समाप्त करते हुए दोनों को समान दर्जा प्रदान किया। किंतु गंभीर मुद्दा यह है कि स्वतंत्रता के 65 वर्ष पश्चात भी डॉ. आंबेडकर के व्यापक महिलावादी दृष्टिकोण को पर्याप्त तवज्जो नहीं मिली है। यद्यपि आज नारी स्वंतत्रता की जितनी बातें की जाती है, उसकी नींव तो आंबेडकर के विचार ही है। नारी चाहें किसी भी वर्ग की हो बाबासाहब के इस ऋण से जन्म से मृत्यु तक ऋण नहीं हो सकती। वे स्त्रियों को वे समस्त अधिकार देने के पक्ष में थे जो पुरुषों को प्राप्त है। नारियों की उन्नति एंव उनके संगठित होने में आंबेडकर गहन विश्वास रखते थे।

आंबेडकर द्वारा नारी उत्थान हेतु किये गये प्रयास:-

वैदिक, बुद्ध एंव कौटिल्यकालीन अध्ययन कर आंबेडकर ने पाया कि तीनों ही काल में राजनीति को छोड़ दें तो बौद्धिक एंव समाजिक क्षेत्र में निःसंदेह ही स्त्री बेहतर स्थिति में थी। किंतु कालातंर में मनु के आगमन से उसकी स्थिति दयनीय होती चली गयी, जिसे लेकर आंबेडकर बेहद ही चिंतित थे। आंबेडकर ने धार्मिक अंधविश्वास और धर्मशास्त्रों पर आधारित भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा का गहनता से वैज्ञानिक विश्लेषण कर तत्कालीन समय में चल रहे समाज सुधार आंदोलन से आगे बढ़कर स्त्रियों को अधिकार वापस दिलाने हेतु ठोस प्रयास किये। वे स्त्रियों के प्रति मनु के संकुचित विचारों को प्रकाश में लेकर आए और स्पष्ट किया कि मनुस्मृति सामाजिक-आर्थिक असमानता पर आधारित चातुर्यवर्ण के सिद्धांत को प्रतिपादित करने के साथ-साथ पितृसत्तात्मक आंबेडकर ने 'रीडल आफ वूमेन', 'नारी एंव प्रतिक्रांति', 'हिन्दू नारी का उत्थान एंव पतन' जेसे लेखों के माध्यम से दिखाया कि किस तरह हिन्दू ब्राह्मणवादी व्यवस्था एंव सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों ने कृत्रिम तौर पर लिंग एंव उसके भेद का निर्धारण कर महिला को पारंपरिक व्यवहार अपनाने को बाध्य किया। अर्थात् उन्हें घर की इज्जत, धैर्यधारिणी तथा धरती की उपमा से सुशोधित कर उन्हें निष्क्रिय एंव दब्बू बनाने का प्रयास किया। यहां आंबेडकर सीमोन दी बोअर के कथन'औरत पैदा नहीं होती अपितु बना दी जाती है'के नज़दीक आ जाते है। एक शोधकत्ता की भांति उन्होंने धर्म में स्त्री के स्थान का गूढ़ता से अध्ययन कर इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया कि 'आखिर मनु ने स्त्री का पदानवत क्यों किया ? आंबेडकर ने तर्क दिया कि बौद्ध कालीन मुख्यतः दो वर्ग (स्त्री एंव शूद्र) बुद्ध के अनुयायी बन रहे थे जिससे ब्राह्मण धर्म की नींव डगमगाने लगी थी। अतः बौद्ध धर्म की निरंत रुलाती जा रही शाखाओं को रोकने हेतु मनु ने स्त्रियों की स्वंतत्रता पर निशाना साधते हुए उन्हें इससे वंचित कर उन पर इतनी अयोग्ताएँ थोप दी कि वे पूर्ण रुप से हमेशा के लिए पंगु हो गयी। मनु इतने पर ही नहीं धमे, बौद्ध धर्म को पाखंडी संप्रदाय कऱार देते हुए इसकी शरण में जाने वाली, गर्भपात, सुरापान, तथा प्रतिघात करने वाली महिलाओं को पिंडोदक क्रिया से भी वंचित कर दिया। आंबेडकर यह भी प्रकाश में लेकर आए कि स्त्रियों के प्रति 'मनुस्मृति' में प्रदृत विधायें कोई नयी

या मनु के द्वारा इजाद न होकर बल्कि ब्राह्मण एंव ब्राह्मणवाद की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती हैं। मनुस्मृति के पूर्व भी ये विधायें समाजिक मान्यताओं के रुप में विद्यमान थी। मनु ने मात्र इन्हें धर्मशास्त्र एंव राज्य विधान का हिस्सा बनाया और शनै -शनै ये विधान ही कठोर नियमों में परिवर्तित होकर अकाट्य होते चले गए। इन्हीं परिस्थितियों ने आंबेडकर को स्त्री चिंतन हेतु विवश किया और उन्होंने नारी के उत्थान हेतु शिक्षा, विवाह, परिवार नियोजन, प्रसूति अवकाश एंव हिन्दू कोड बिल आदि क्षेत्रों में अथक प्रयास किए जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है-शिक्षाः आंबेडकर को आभास था कि शिक्षा ही वह ताकत है जो सभी बेड़ियों को काट सकती है। किसी भी देश अथवा समुदाय की वास्तविक प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि उनके सभी नागरिक शिक्षित हो। नारी मुक्ति के वाहक डॉ. आंबेडकर ने स्वतंत्रता, समानता तथा स्वाभिमान से जीवन जीने की शिक्षा देते हुए दो मूल मंत्र दिए- प्रथम, शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो तथा द्वितीय 'अत्त दीपो भव' अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो। उन्होंने प्रश्न उठाया कि ज्ञान और विद्या पर केवल पुरुषों का एकाधिकार क्यों? जबकि "घर में एक पुरुष पढ़ता है और यदि घर में स्त्री पढ़ती है तो पूरा परिवार पढ़ता है"।

4 अगस्त, 1913 में न्यूयार्क में अध्ययन के दौरान आंबेडकर ने कहा था "हमें कर्म सिद्धांत त्याग देना चाहिए। यह गलत है कि माँ-बाप बच्चों को जन्म देते हैं, कर्म नहीं देते। माँ-बाप बच्चों के जीवन को उचित मोड़ दे सकते हैं, यह बात अपने मन पर अंकित कर यदि हम लोग अपने लड़कों के साथ-साथ लड़कियों को भी शिक्षित करें। हमारे समाज की उन्नति तीव्र होगी। इसलिए नज़दीकी रिश्तेदारों में यह विचार तेजी से लाना चाहिए"।

शिक्षा की नींव को सशक्त करने हेतु आंबेडकर जाति, लिंग तथा धर्म सभी प्रकार के भेदभाव को नकारते हुए 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को समान, अनिवार्य एंव निःशुल्क आरंभिक शिक्षा को संविधान के भाग-तीन में वर्णित मौलिक अधिकारों का हिस्सा बनाना चाहते थे किंतु तत्कालीन समय में पर्याप्त समर्थन के अभाव में उनका यह प्रयास अधूरा सिद्ध हुआ। 2002 में 86वें सवैंधानिक संशोधन विधेयक के माध्यम से भारतीय सरकार ने अनुच्छेद 21 (क) के तहत् 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य एंव निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान कर मौलिक अधिकार के रुप में मान्यता प्रदान कर उनके सपने को साकार तो किया किंतु आंबेडकर के योगदान को श्रेय दिये बिना। अधिकार से आगे ले जाते हुए 86वें सवैंधानिक संशोधन के माध्यम से ही प्राथमिक शिक्षा को मौलिक कर्तव्यों से जोड़कर इसे माता-पिता या संरक्षक का दायित्व करार दिया। इस सवैंधानिक सशोंधन के 6 वर्ष बाद केंद्र सरकार ने 2008 में इसे शिक्षा के अधिकार में तब्दील कर दिया है। मौलिक अधिकार का हिस्सा बनने के बाद भी प्राथमिक शिक्षा की राह इतनी आसान नहीं लगती। वर्तमान में नारी शिक्षा की स्थिति यह है कि स्वतंत्रता के छः दशक बाद भी अनेक योजनाओं/परियाजनाओं ओर प्रयासों के बावजूद देश की 75 प्रतिशत महिलायें अभी भी अशिक्षित हैं, वे अक्षर ज्ञान से वंचित हैं तथा देश के आधे हिस्से से 15 प्रतिशत महिलायें ही शिक्षित हैं। इसके अतिरिक्त वे लड़के-लड़कियों की सह-शिक्षा के भी प्रबल पुरोधा रहे किंतु कटट्रपंथियों के विरोध कुलस्वरुप उनका यह सपना साकार न हो सका पर आज इसकी झलक स्पष्ट रुप से देखने को मिलती है।

विवाहः बाल विवाह का विरोध करते हुए उचित उम्र में महिलाओं के विवाह का आंबेडकर ने पुरजोर विरोध किया। उन्होंने माना कि शादी एक जिम्मेदारी है, इसलिए माता-पिता को अपने बच्चों पर इसे थोपना नहीं चाहिए जब तक वे आर्थिक रुप से शादी से उत्पन्न होने वाली जिम्मेदारी को संभालने योग्य न हो जाए। विवाह जेसे मुद्दे पर भावी जीवन साथी के चयन में लैंगिक असमानता को दूर करते हुए पुरुषों के समान महिलाओं के अधिकारों की वकालत की। उन्होंने कहा "पत्नी केसी होनी चाहिए इस बारे में पुरुषों का विचार जाना जाता है वैसे ही पति केसा हो इस बारे में पत्नी का मत जान लेना भी जरुरी है। स्त्री भी व्यक्ति है और उसे भी व्यक्तिक स्वतंत्रता होनी चाहिए"।

प्रसूति अवकाशः गर्भावस्था के दौरान महिला श्रमिकों का अपने श्रम से वंचित होना आंबेडकर के लिए एक अन्य बेहद चिंतनीय समस्या थी। विकास के रथ का दूसरा पहिया होने के नाते यह आवश्यक था कि वे श्रम खोने के भय से मुक्त होकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग दें। चूंकि बच्चे भावी राष्ट्र का एक अच्छे संसाधन होते हैं इसलिए आवश्क है कि प्रसवपूर्व एंव प्रसवोपरांत उनकी बेहतर परवरिश हेतु माँ को भी सहयोगी स्थितियाँ प्रदान की जायें। इन्होंने कारखाना व अन्य सरकारी/गैर-सरकारी संस्थानों में कार्यरत श्रमिक महिलाओं के लिये वेतन सहित प्रसूति अवकाश का समर्थन करते हुए 1928 में मुंबई विधानपरिषद् में प्रसव लाभ विधेयक के प्रति पूर्ण सहमति यक्त करते हुए दू कर कार्य स्थल पर आने को विवश नहीं कर सकता तथा अनुपस्थिति के दौरान उसे कार्य से बेदख़ल नहीं कर सकता। हाल ही में मातृत्व लाभ (संशोधन बिल) 2016 के दायरे में छोटे बच्चे को गोद लेने तथा सेरोगेसी द्वारा मातृत्व का सुख लेने वाली महिलाओं को भी जगह दी गई है। यद्यपि इनके लिए मात्रा 12 माह के अवकाश का प्रावधान किया गया है। प्रसव के बाद महिला को कुछ समय तक ऐसा कोई काम नहीं दे सकता जिसमें उसे लंबे समय तक खड़े होकर कार्य करना पड़े, ज्यादा शारिरीक श्रम करना पड़े अथवा कोई भी ऐसा कार्य करना पड़े जो उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो। इस अधिनियम से पूर्व महिला कर्मचारियों का गर्भावस्थाकालीन अवकाश पूर्णतः नियोक्ता के स्वविवेक पर निर्भर करता था तथा कई दफा तो उन्हें अपने श्रम से भी हाथ धोना पड़ता था। तथ्य यह है कि डा. आंबेडकर के इस क्रांतिकारी कदम का परिणाम यह है कि लगातार इसके बाद महिला श्रमिकों के लिए लाभकारी कानून बनने लगे। आज महिला श्रमिकों को उद्योग में ही नहीं सरकारी सेवाओं में भी मातृत्व लाभ संबधी अनेकानेक सुविधाएँ दी जा रही है। इसका सकारात्मक परिणाम यह है कि दिनोंदिन रोज़गार से संबधित सभी क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की संख्या बढ़ रही है। हिन्दू कोड बिलः भारतीय समाज में नारी की उपेक्षित एंव दयनीय स्थिति में सुधार कर उन्हें समाज में पुनः प्रतिष्ठित करने हेतु स्वंतत्रता उपरांत कानून मंत्री का पद ग्रहण करते ही ज्यादा समय न लेते हुए आंबेडकर हिंदू कोड बिल को साकार रुप देने में पूरी तरह से जुट गए। चूंकि उस समय हिंदू कानून सभी हिंदूओं के लिए एकसमान न थे अर्थात् बिखरे हुए थे अतः वे इन्हें 'कोड' कर समय के साथ पूर्ण रुप से सड़-गल चूके हिंदू समाज में सुधार कर उसे दुरुस्त करना चाहते थे। 11 जनवरी, 1950 को आंबेडकर ने सिद्धार्थ महाविद्यालय में हिंदू कोड बिल का सशक्त समर्थन करते हुए कहा "यह कहना गलत है कि, हिंदू कोड बिल आमूलचूल परिर्वतन करने वाली या बहुत बड़ी क्रांतिकारी घटना है। यद्यपि इस विधेयक में पुराने रीति-रिवाज़ का विरोध नहीं है, नये संविधान ने सारे देश के लिए दीवानी संहिता बनाने का आदेश दिया है। कुछ शाखाओं के लिए हिंदू एकसूत्रीकरण करना और कुछ बातों में कानून में सुधार करना ही हिंदू कोड बिल का उद्देश्य है। हिंदुओं के सामाजिक-धार्मिक जीवन पर नियंत्रण करने वाले सारे देश के एक ही पद्धति के कानून हों, यह देश की एकता की दृष्टि से हितकारी ही है। हिंदू संहिता दीवानी संहिता की एक सी उनका मानना था हिंदू शास्त्रों का सहारा लेते हुए समस्त नारी जाति (शुद्र सहित) के साथ चाहें वह किसी भी वर्ण की हो, पर अत्याधिक ज़ुल्म किया गया है।

हिंदू कोड बिल-

हिंदू कोड बिल जब ,गठनोपरांत, संसदीय पटल पर चर्चा हेतु रखा गया तो इसे मिश्रित प्रतिक्रियाएँ मिली। यद्यपि प्रशंसा से अधिक इसकी भत्र्सना की गई। एन.वी.गाडगिल एंव हृदय नाथ कुंजरु ने बिल के पक्ष में अपना मत रखते हुए कहा कि वर्तमान व्यवस्था को सही करने के लिए बिल का अधिनियमित होना बहुत आवश्यक है। अखिल भारतीय महिला काँग्रेस ने भी उस समय जगह-जगह गोष्ठियाँ करके हिंदू कोड बिल की सराहना की। दुर्गाबाई देशमुख, हंसा मेहता, राजकुमारी अमृतकौर महिला आवाज़ का प्रतिनिधित्व कर रही थी। राजेंद्र प्रसाद एंव सरदार पटेल हिंदू कोड बिल के कट्टर आलोचक रहे। राजेंद्र प्रसाद ने तत्कालीन प्रधानमंत्री को सचेत किया कि हिंदू कानूनों में ये आधारभूत परिवर्तन एक 'अत्यंत छोटे से अल्पसंख्यक वर्ग' के प्रगतिशील विचारों को पूरे हिंदू समाज पर थोपने के बराबर है। इसके अतिरिक्त बिल के विरोध में अपने त्यागपत्र की धमकी देकर तो उन्होंने इसका गला ही घोंट दिया। ठाकुर दास भार्गव ने पंजाब में इस बिल के लागू होने पर विरोध प्रकट किया। सिक्खों के प्रवक्ता सरदार हुकुम सिंह ने तो इसे सिक्ख समाज पर आघात करने का हिंदू समाज का एक षडयंत्र बताया। 22 मार्च 1949 में संसद के बाहर गठित एक 'अखिल भारतीय हिंदू संहिता कानून विरोधी

कमेटी' ने विधेयक के प्रति कड़ा विरोध प्रकट करते हुए कहा कि- संविधान सभा को हिंदुओं के निजी हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है जो धर्मशास्त्रों पर कायम है। विधेयक विरोधी आंधी को आर.एस.एस. ने भी हवा दी। 11 दिसंबर 1949 को दिल्ली के रामलीला मैदान में आयोजित जनसभा में एक वक्ता ने तो इसे हिंदू समाज पर 'एटम बम के प्रहार' की संज्ञा तक दे डाली।

हिंदू कंजरवेटिव श्रेणी के अंतर्गत आने वाले इतिहासकार राधा कुमुद मुखर्जी ने विधेयक की आलोचना अत्यंत तीखेपन में न करके विचारणीय तरीके से किया। उन्होंने मुख्यतः तलाक संबंधित भाग पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा यह- "हिंदू सभ्यता की मूल आत्मा के खिलाफ थे..... यह विधेयक जीवन के पश्चिमी दृष्टिकोण से ज्यादा प्रभावित है जो विवाह के उद्देश्य और निष्कर्ष मातृत्व और पितृत्व की तुलना में वैवाहिक जीवन के रोमांस और पति-पत्नी संबधों पर ज्यादा बल देता है। मातृत्व और पितृत्व को हिंदू व्यवस्था एक स्थायी, अपरिवर्तनीय और अनुल्लंघनीय व्यवस्था मानता है.....यह विधेयक विवाह और परिवार के प्रति आम जनमानस के मनोविज्ञान को बदलना और पारिवारिक बंधनों को है। यह एक स्त्री और पुरुष को माता-पिता के रुप में देखने की बजाय पति और पत्नी के रुप में देखने पर ज्यादा बल देता है। जबकि पति और पत्नी को आखिरकार अपने बच्चों और समाज के भविष्य के लिए एक-दूसरे को एक-दूसरे में स्थायी रुप से समाहित कर लेना है।" हिंदू कोड बिल के विरोधियों को करारा जवाब देते हुए आंबेडकर ने कहा "हिंदू संहिता सारे हिंदुस्तान में समान रुप से लागू कि जाएगी। सिक्ख, बुद्ध एंव जैन जेसे लोगों के बारे में हिंदू संहिता लागू करना एक एतिहासिक परिणिति है जिसका विरोध करना उचित नहीं है"। इसी तरह विधेयक के तहत उल्लेखित महिलाओं के विवाह-विच्छेद एवं पुन्रविवाह अधिकार को आलोचकों द्वारा नकार दिया गया तथा कहा कि पति की अर्धांगिनी होने के नाते वह इसकी हकदार नहीं हो सकती। आंबेडकर ने इस पर कटाक्ष करते हुए कहा कि पत्नी पति की अर्धांगिनी तभी हो सकती है जब पति भी एकपत्नीत्व का अनुसरण करे और अन्य विवाह से दूर रहे। विधेयक पर यह आरोप भी मड़ा गया कि पुत्र के समान पुत्री को पिता की संपत्ति में समान वारिस बनाने का अर्थ होगा, भाई-बहन के पवित्र रिश्ते में दरार। इसका खंडन करते हुए आंबेडकर ने कहा कि जब संपति दो भाइयों के बीच बंटती है तो क्या भाई-भाई का स्नेह एक दूसरे के प्रति कम हो जाता है"। यद्यपि आंबेडकर का यह बलिदान व्यर्थ न गया और उनकी मृत्यु से लगभग 5 दिन पूर्व 17 जून, 1956 में संपत्ति के अधिकार से जुड़े हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम को पारित कर सरकार ने प्रगतिशील कदम तो उठाया किंतु लैंगिक समानता को दरकिनार करते हुए। इसलिए सुधार की लड़ाई के अंतिम महत्तवपूर्ण क्षणों में आंबेडकर महज एक मूक दर्शक बने रहे और मौन बने रहे। 1956 के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के तहत् हिंदू महिला की 'सीमित सम्पदा'समझी जाने वाली संपत्ति को समाप्त कर पुत्री को पुत्र के समान वारिस मानते हुए जहाँ एक ओर हिंदू अधिनियम में सुधार किया गया वहीं दूसरी ओर प्रवर समीति के अनुमोदन को अनदेखा करते हुए मिताक्षरा सह-उत्तराधिकारी प्रणाली को यथावत् बनाये रखा। जिसके तहत् बेटी को घर या संपत्ति में निवास का अधिकार तो था किंतु स्वामित्व के अधिकार से वह वंचित रखी गयी। इसी तरह अधिनियम की धारा 4(2) के अंतगर्त कृषि भूमि से जुड़े महिलाओं के अधिकारों, विशेषतः काश्तकारी हस्तांतरण से संबंधित, को पूर्ण रुप से अनदेखा करना अधिनियम में व्याप्त लैंगिक असमानता को दर्शाता है। 1956 के उत्तराधिकार अधिनियम ने पिता की संपत्ति में पुत्री को सह-उत्तराधिकारी सयुंक्त परिवार की मान्यता तो दी किंतु उसे उसके भाई के समान हिस्सेदार नहीं बनाया जो जन्म से ही अपने पिता के समान हिस्से का हकदार होता है। अतः इन लैंगिक भेदभावों को ध्यान में रखते हुए भारतीय संसद ने 2005 मे हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (संशोधन 39-ज्ञ) में बदलाव लाकर चल-अचल पैतृक संपत्ति में (माता और पिता) पुत्री को पुत्र के बराबर हिस्सेदार बनाया। सयुंक्त परिवार में बेटी अब एक बेटे की तरह सयुंक्त संपत्ति में जन्म से ही समान उत्तराधिकार है। तथा मुख्यतः कृषि संबंधित भूमि पर भी महिला को पुरुष के समान अधिकार की बात कही गयी है।

निष्कर्ष:-

इस तरह कहा जा सकता है कि आंबेडकर महिलाओं के हितों व उनके अधिकारों के प्रति एक ऐसे संवेदनशील योद्धा एंव पुरोधा थे जिन्होंने स्त्री से जुड़े लगभग सभी क्षेत्रों- शिक्षा, विवाह, पुन्रविवाह, परिवार नियोजन, संपति आदि को अपने चिंतन का हिस्सा बनाकर नारी मुक्ति का आह्वान किया। प्रसूति लाभ के मुद्दे पर 1928 में आंबेडकर ने आवाज़ बुलंद कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। उनके अथक् प्रयास के परिणामस्वरुप ही सरकार को प्रसव प्रसुविधा अधिनियम, 1961 पारित करना पड़ा जिसने रोजगार के लगभग सभी क्षेत्रों में महिलाओं के शोषण का अंत कर उनके सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त किया। इसी तरह कटट्रपंथियों के कड़े विरोध के कारण आंबेडकर द्वारा पोषित संपत्ति के अधिकार में महिलाओं की हिस्सेदारी को मान्यता चाहें उस समय न मिली किंतु 2005 में संशोधित संपत्ति विधेयक के माध्यम से इसे वास्तविकता में बदल दिया गया। इसके अतिरिक्त शिक्षा का आधिकार, 2009 के तहत् 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को संविधान के भाग-तीन का हिस्सा बनाकर सरकार स्वयं ही अपनी पीठ थपथपाती नहीं थकती है, जबकि इसका बीजारोपण आंबेडकर ने ही किया था। अतः आंबेडकर ने महिलाओं से जुड़ी समस्याओं के प्रति जो भी समाधान रखे उन्हें एक-एक कर भारतीय सरकार अपनाकर अपनी उपलब्धियों में वृद्धि तो करती जा रही है किंतु उनमें आंबेडकर नदारद है। वास्तव में नारी मुक्ति का जो वर्तमान में महल खड़ा दिखाई देता है और भविष्य में जो भी महल बनेंगे, उसकी नींव की ईंट तो आंबेडकर ही है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भीमराव अंबेडकर.'हिंदू नारी का उत्थान ओर पतन', गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 24।
2. बाबासाहब आंबेडकर. 2013 (तृतीय संस्करण), ' क्रांति और प्रतिक्रांतिः बुद्ध अथवा कार्ल माक्र्स आदि में नारी एंव प्रति क्रांति', संपूर्ण वाड्मय, खंड-7, डा. आंबेडकर प्रतिष्ठानः नई दिल्ली, पृ. 335-336।
3. भीमराव अंबेडकर. 'हिंदू नारी का उत्थान ओर पतन', गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 14।
4. एस. विक्रम. 2010, दलित महिलाएँ: इतिहास वर्तमान ओर भविष्य (संपा.) में आभालता चैधरी नारी स्वतंत्रता ओर डा अंबेडकर, नटराज प्रकाशनः दिल्ली, पृ. 168।
5. कुसुम मेघवाल. 2008, 'हिंदू कोड बिल ओर डॉ. अंबेडकर', तेज सिंह (संपा.), अंबेडकरवादी विचारधारा ओर समाज, स्वराज प्रकाशनः दिल्ली, पृ. 228-32।
6. एस. विक्रम.दलित महिलाए : इतिहास वर्तमान ओर भविष्य (संपा.) में मंजू चंद्रिका पुरे 'स्त्रियों के उत्थान में आंबेडकर का योगदान, नटराज प्रकाशनः दिल्ली, पृ. 142।
7. रामचंद्र गुहा. 2012, भारत गांधी के बादः लोकतंत्र का विशालतम इतिहास (अनु. सुशांत झा), पैंग्वुइन बुकस् इंडियाः दिल्ली, पृ. 31।
8. धनंजय कीर. 1996, डा. बाबा साहिब आंबेडकर जीवन चरित (अनु. गजानन सुर्वे), पाप्युलर प्रकाशनः नई दिल्ली, पृ. 396-397।

समतावाद की नींव रखता 'प्रत्यंचा' उपन्यास'

प्रो.दिनेश कुशवाह
शोध निर्देशक- आचार्य एवं अध्यक्ष,(हिन्दी विभाग)
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

आशा त्रिपाठी
शोधार्थी-(हिन्दी विभाग)
अवधेश प्रताप सिंह वि.वि. रीवा (म.प्र.) मो.8269881014

शोध सारांश-कोई भी रचनाकार जब कोई कहानी या उपन्यास लिखता है, तो कुछ वैचारिक आग्रह उसके सामने होते हैं जिसे वह कथा प्रसंगों के माध्यम से एक सांचे में ढालकर साहित्य का निर्माण करता है। संजीव का उपन्यास 'प्रत्यंचा' उसी समतावाद विचार का परिणाम है। जिसमें सभी को समान अधिकार एवं सर्वसुलभ सुविधाएं प्राप्त हो सकें। शाहूजी महाराज इस उपन्यास के केन्द्रीय पात्र हैं, उन्हीं के माध्यम से लेखक ने अपने विचारों को प्रकट किया है। परिस्थितियों और घटनाओं का विवरण उस समय की वर्तमान घटनाओं के आधार पर किया गया है। भारतीय समाज हमेशा से ही कई वर्गों में विभाजित रहा है, विभाजन की यह प्रक्रिया समाज के व्यक्तियों द्वारा ही शुरू किया गया। समाज में हो रहे बदलाव और उनसे बदले व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा उनसे ही प्रभावित होता। यह समाज , आज के आधुनिक समय में हर क्षेत्र में बदलाव हो रहे हैं, किन्तु इन सब के बाद भी क्या हमने समाज की मानसिकता, रूढ़ि सोच को बदल पाये है आज भी समाज में अनेक प्रकार की रूढ़ि मानसिकता से ग्रस्त लोग हैं। समाज के गठन के साथ ही यह प्रश्न विचारणीय होता है कि क्या समाज में आज सभी को समान अधिकार मिल रहे हैं। आजादी के 75वीं वर्षगाठ का उत्सव हम मना रहे है, किन्तु आजाद हम किस चीज से हुए हैं। मानसिक गुलामी से या शारीरिक गुलामी से ? आज भी समाज मानसिक रूप से गुलाम है वह चाहे जातिवाद की संकीर्णता से हो या धार्मिक उन्माद से हम अब भी उस गुलामी से निकल नहीं पाये हैं। या फिर निकलने का प्रयास ही नहीं कर रहे हैं। ऐसा क्यों हो जाता है कि जिस प्रथा से हम दूर जाना चाहते हैं वह कहीं-न-कहीं हमारे अंदर ही अपना घर बना लेती है। साहित्य समाज के उस यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जिसे हम देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। समतावाद पर जाने कितने कानून और अधिकारों का हवाला दिया जाता है किन्तु यथार्थ की भूमि पर वह आज भी कोसों दूर है। समान अधिकार, सुलभ सुविधाओं का भोग, छुआ-छूत से दूर, आपस में मिलकर जीवन व्यतीत करने का सुख हमें कब मिलेगा?

संजीव वर्तमान समय के कल्पनावादी रचनाकार नहीं है। आज के समय में यथार्थ को लिखना और लिखा हुआ लोगों तक पहुँचाना लेखक की सबसे बड़ी उपलब्धि हो सकती है। इतिहास में वर्तमान को झाँकना, एवं सिलसिलेवार उस समय के समाज को वर्तमान से जोड़ना निश्चित रूप से किसी भी लेखक की दूरदर्शिता को प्रकट करता है। संजीव का उपन्यास 'प्रत्यंचा' में लेखक ने सदियों से मृत पड़े समाज पर शब्द-संधान की प्रत्यंचा चलाई है। अपने इस संधान में इतिहास के उन पक्षों से वह हमें अवगत कराते हैं जिससे हम अनभिज्ञ है। लेखक के शब्दों में 'प्रत्यंचा' उपन्यास 'छत्रपति साह' जी महाराज की जीवनगाथा है। किन्तु मेरे विचार से यह शाहूजी महाराज के संघर्ष की जीवनगाथा है। जिसमें शाहूजी महराज को अपनी प्रजा और समाज में समता लाने के लिए अपने ही लोगों से संघर्ष करना पड़ता है शाहूजी, महराज, यानी छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज। शिवाजी को अंग्रेजों से लोहा लेना पड़ा। शाहूजी महाराज को अपने समय के तत्कालीन ब्राम्हण समाज से। संजीव ने शाहूजी महाराज के अप्रतिम व्यक्तित्व और मनुवादी व्यवस्था में किये गये उनके संघर्ष को उजागर करते हैं, भारतीय समाज की यही वर्णवादी जातिवादी जटिलताएँ शाहूजी महाराज के सामने थी राजा वे थे किन्तु 17वी शदी के ब्राम्हणों के लिए शूद्र थे। इसीलिए उन्होंने शिक्षा पर जोर दिया। वे सोचते राज्य के सबसे बड़े पद पर आसीन होने के बाद भी ब्राम्हणों की नज़र में शूद्र हैं तो आम जनता का क्या हाल होता होगा? अपनी सोच को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा संबंधी सुधार करने वे शुरू कर देते है। भारत का पिछड़ा समाज, पद दलित समाज कैसे सामान्य जन के साथ जीवनयापन कर पाता होगा यह तथ्य सोचनीय है। इस विरोधाभास को कैसे दूर किया जाये? यह प्रश्न शाहूजी महाराज के मन गूंजा करे। विदेश भ्रमण में उन्होंने यह अनुभव किया पिछड़ने का मूल कारण अशिक्षा है। इसलिए राज्य का आर्थिक राजस्व कम होने के बाद भी उन्होंने शिक्षा के हर प्रयास किये। भेदभाव को समाप्त कर एक समतामूलक साम्राज्य की स्थापना का लक्ष्य, अपनी प्रजा की बेहतरी के लिए वे हर संभव प्रयास करते हैं । उपन्यास का यह कथन यह बताता है कि-''हिन्दू मुसलमान में कोई भेद न छत्रपति शिवाजी महाराज के दिल में रहा, न छत्रपति शाहूजी महाराज के दिल में। महाराज ने अपनी पूरी प्रजा की बेहतरी के लिए जो बीड़ा उठाया, उससे मुसलमान अलग न थे। उनकी नज़र बराबर समाज के सबसे पिछड़े तबके पर टिकी रहती। इस लिहाज़ से अछूतों और पिछड़ों को उन्होंने ज्यादा तबज्जो दी। रही बात मुसलमानों की तो अछूतों पिछड़ों की तरह मुसलमानों को भी ज्यादा तबज्जो इसलिए दी जा रही है कि उन्हीं की तरह वे भी न सिर्फ ज्यादा पिछड़े है बल्कि अपनी - अपनी तरक्की के प्रति बेपरवाह भी।''[1]जिस समय शाहूजी महाराज जातिवाद, वर्णव्यवस्था के विरोध में शिक्षा सम्बन्धी सुधार कर रहे थे। ठीक उसी समय महाराष्ट्र अन्य कई आन्दोलनों को भी चलाया जा रहा था। एक तरफ शुद्धि आन्दोलन चल रहे थे तो दूसरी तरफ बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, ज्योतिबा फुले, दयानंद सरस्वती भी अपने आन्दोलनों के माध्यम से बदलाव लाना चाहते थे। किन्तु शाहूजी महाराज के विचार इनसे भिन्न होते हुए भी भिन्न था भारत के पद दलित समाज को कैसे आगे बढ़ाया जाये यह इनके लिए प्रमुख था। 'स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' जैसे महान उद्घोष को भी वह एकांगी बना देता है। जीवन की स्वतंत्रता से महत्वपूर्ण है। विचारों की स्वतंत्रता संजीव ने उन तमाम अंतर्विरोधों पर खुलकर लिखा है। ब्राम्हणों पण्डितों द्वारा उपनिषदों का सहारा लेकर ब्राम्हण वर्ग अंधविश्वास फैलाते है। तथा अपने स्वार्थानुकूल उसे बदलते है। लेखक ने अनेक कथा-प्रसंगों के माध्यमों से अपने विचारों को पाठक के सामने प्रस्तुत किया है। विचारों की आग शाहूजी महाराज के मन में उठती रहती है। कभी तिलक से टकराव होता तो कभी ब्राम्हण साथियों से। तिलक से विचारों की टकराहट को संजीव इस तरह प्रगट करते हैं-''आपका राष्ट्रप्रेम प्रणम्य है लोकमान्य अलबत्ता सिर्फ राष्ट्र का जन नहीं। जन वहाँ ब्राम्हण है, शूद्र है। हृदय आपका उदार है। इस अंतर्विरोध से जूझते रह जायेगें। पार नहीं पाएंगे। राष्ट्र का जन राष्ट्र से अलग होता है क्या? सिर्फ कंकड़-पत्थर भूगोल, इतिहास परंपराएँ? ''मैं आप जैसे अंग्रेज, भक्त से राष्ट्र का पाठ पढ़ने नहीं आया।'' फिर मुझ शूद्र के यहाँ अपवित्र होने आप क्यों?...घृणा की खेती कब तक करते रहेंगे। इस खेती के आपसे भी बड़े सेतकरी खुद को आपसे बड़ा हिन्दू मानते हैं। लोकमान्य से अन्तर्विरोध होने पर भी वे अपने को धरती पुत्र ही मानते थे। जनकल्याण और मनुवादी, विरोध, दोनों की इस उपन्यास में अपनी-अपनी भूमिका है। शाहूजी महाराज के व्यक्तित्व में बहुलतावादी बौद्धिकता निवास करती है। सभी संस्थाओं तथा व्यक्तित्वों से प्रभावित होने के बाद वे सर्वाधिक समतावादी बाद से प्रभावित रहे। विवेकानंद, टैगोर, विद्यासागर से प्रभावित होने के बाद भी वे एक ऐसे धर्म-संस्कृति समाज की संरचना करना चाहेंगे जिसमें समाज के पिछड़ों और दलितों को भी समानाधिकार मिल सके।

संजीव के शब्दों में-शाहू का लक्ष्य एक और सिर्फ एक था-''सामाजिक मुक्ति, समाज जिसमें शूद्रो और अति शूद्रो के साथ अन्याय हो रहा था।''3 तमाम सामाजिक संकीर्णताओं पर प्रहार करता है यह उपन्यास 'स्वराज' सही अर्थ क्या होता है। इस पर शाहूजी महाराज का कथन है-''मैं चाहता हूँ कि स्वराज मिले पर चंद शिक्षित ब्राम्हणों को शक्ति सौंपे जाने के विरुद्ध हूँ।''[4] ब्राम्हणों का बोलबाला था। अपने राजा तक वो ब्राम्हण मानने को तैयार नहीं थे। अपने श्रम और पुरूषार्थ से शाहूजी महाराज अपने सपनों का क्रिवान्वयन कर पाते हैं। किन्तु इन सबके बाद भी उन्हें तमाम अर्न्तविरोधों को झेलना पड़ता है।ब्राम्हणों से जातिप्रथा एवं कर्मकाण्डों पर अनेकनेक तर्क प्रस्तुत किये गये। उनके विचार से-''आदमी कर्म से ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र होता है जन्म से नहीं।''[5]'प्रत्यंचा उपन्यास' को आधार बना संजीव ने उन सभी धर्मांध लोगों की खिलाफ प्रत्यंचा खींची जो अपने को सर्वश्रेष्ठ समझते थे। उपन्यास के 38 वे भाग में अम्बेडकर के विचारों में प्रस्तुत किया है संजीव ने इस भाग में अम्बेडकर के व्यक्तित्व तथा उनकी सामाजिक स्थिति एवं छुआ-छूत और जातिवाद की सभी मानसिकता पर शाहूजी के व्यक्तित्व से कहलाया है। वे कहते हैं कि-''महार युवक

जो जगह-जगह जाति का ज़हर पीते हुए विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त कर बंबई लौट आया है। और कहता है कि -''जाति को खत्म किये बिना होमरूल का किसी भी रुल का कोई अर्थ नहीं?''[6] अम्बेडकर के सामाजिक अवदान एवं उनकी श्रेष्ठता को लेखक ने शब्दों की जो माला पहनाई वह अतुलनीय है।

दरअसल शाहूजी महाराज के बहाने संजीव की कथा दृष्टि भारतीय इतिहास के उन कालखण्डों का विवेचन करती है। जिनमें राजनीतिक ही नहीं सामाजिक आन्दोलन भी जारी था। और उनके साथ धर्म और जाति की आधारमूल संकीर्णताऐं भी जुड़ी हुई थी।संजीव इन धार्मिक और जातीय विडम्बनाओं की गहराई में जाते हैं, और निम्न माने जाने वाले जातियों की विडम्बनाओं को शब्दबद्ध करते हैंसे पहले जो जातीय संकीर्णता थी वह आज भी विद्यमान है। अपने जातीय दंभ पर शोषण की पराकाष्टा बताती है कि निम्न से निम्न समझने वाले भी अपने नीचे एक जाति खोज लेते हैं। दरअसल-शाहूजी महाराज के बहाने संजीव की कथा दृष्टि भारतीय इतिहास के अत्यंत महत्वपूर्ण कालखण्ड का विवेचन करती है। यह उस इतिहास का कथांतरण कहा जा सकता है जिसमें राजनीतिक ही नहीं सामाजिक आन्दोलनों को और उनके साथ धर्म और जातियों से जुड़ी हुई आधारभूत जड़ता को प्रकट किया गया है। संजीव इन सब सामाजिक व्यवथायों की गहराई में जाते हैं। और निम्न माने जाने वाली कामगार जातियों की विडम्बनाओं को भी शब्दबद्ध करते हैं। इन जातियों का शिकार दूसरों के सिवाय उसी जाति के लोग भी कर रहे हैं। इसलिए शाहू महाराज का यह सोचना और मानना गलत नहीं लगता कि-''सवर्ण ही अकेले दोषी नहीं असवर्ण भी कुछ काम नहीं। एक ही जाति की उपजातियों तक में ऊँच-नीच है। छुआछूत है''यह उपन्यास शाहू महाराज के गौरवबोध से जुड़े होने के साथ-साथ विभिन्न जातियों के जातिगत संस्कार, मनोविज्ञान, तथा ब्राम्हण होने का गौरवबोध, उनकी आकांक्षा, इच्छा, आदि सच्चाई को भी प्रस्तुत करता है अपनी -अपनी जाति की श्रेष्ठता का प्रदर्शन एवं दलितों, वंचितों की आकांक्षाओं का सम्मिलित रूप का दिग्दर्शन इस उपन्यास में होता है। इन सब के बावजूद शाहू महाराज का समूचा जीवन ब्राम्हणवादी श्रेष्ठताबोध के सक्रिय प्रतिरोध का उदाहरण है। उनका व्यक्तित्व समाज में समानता की स्थापना करना एवं अपने राज्य में उसे संवैधानिक दर्जा दिलाना ही प्रमुख रहा है। अपने जीवनकाल में शाहू महाराज दोहरी लड़ाई लड़ रहे थे। पहली अपने ही समाज के पुरातन पंथियों से, समाज में फैली अस्पृश्यता एवं जातीय भेदभाव वही दूसरी ओर अंग्रजों से आजादी पाने की। इन सब के बाद भी दलितों के उद्धार के लिए शाहू महाराज ने जो कदम उठाये गए वे साहसिक थे। क्योंकि उस समय के समाज और गुलामी की दशा में यह सोचना और कार्य रूप में उसे लागू करना साहसिक व्यक्ति के जिंदादिली का ही परिणाम रहा।

निष्कर्ष- संजीव का उपन्यास 'प्रत्यंचा' पाठक के सामने एक ऐसे व्यक्ति के गौरवगाथा को प्रस्तुत करता जो अपने से ज्यादा राज्य और देश के उद्धार के लिए कार्य करता है। शाहूजी महाराज क्षत्रिय होकर अपना सर्वस्व जीवन सवर्ण, असवर्ण, ब्राम्हण अब्राम्हण की दीवार गिराने में लगा दी। जिस समानता की बात संविधान में आजादी के बाद उठाई गयी। वह बात शाहूजी महाराज ने बहुत पहले ही सोच ली गरीबी, असहायता छुआछूत आदि बाह्यियाडम्बरों को देखकर ही उनके सुधार की संभावना व्यक्त की सम्पूर्ण उपन्यास में शाहूजी महाराज का ब्राम्हणों से वाद-प्रतिवाद होता है। अनेक उदाहरणों से यह बात स्पष्ट की है। संभवतः संजीव ने समाज को प्रस्तुत करना चाहा है। क्योंकि आज भी समता और अपने अधिकार के लिए उतना ही संघर्ष करना पड़ता है। कहीं-न-कहीं इतिहास के परिप्रेक्ष्य में संजीव ने आज के समाज का दिग्दर्शन कराना उनका लक्ष्य रहा है।

****** ******

संदर्भ सूची:-

1.संजीव -उपन्यास, प्रत्यंचा वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2019-पृ0 211
2. संजीव -उपन्यास, प्रत्यंचा-90-91
3. संजीव -उपन्यास, प्रत्यंचा-189
4. संजीव -उपन्यास, प्रत्यंचा-189
5. संजीव -उपन्यास, प्रत्यंचा-67
6. संजीव -उपन्यास, प्रत्यंचा-200
7. संजीव -उपन्यास, प्रत्यंचा-79

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में दलित-चेतना

सुनीता सिंह
सहायक प्राध्यापक एवं शोधार्थी
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय
लालू नगर, मधेपुरा (बिहार) - 852113
मो.- 9614055380, 8293545381

प्रस्तावना:-भारत विभिन्न धर्म धर्मावलियों का देश है। प्राचीन काल से ही भारत में जटिल वर्ण व्यवस्था प्रचलित है। यह वर्ण व्यवस्था वैदिक युग में कार्य के आधार पर शुरू हुई थी । धीरे-धीरे यह वर्ण व्यवस्था जटिल से जटिल रूप धारण करता रहा। वर्ण व्यवस्था ने हिंदू समाज को चार भागों में विभाजित किया। इस वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्रह्मण को समाज में सबसे श्रेष्ठ और प्रभावशाली स्थान मिलने लगा। समय के परिवर्तन के साथ-साथ ब्राह्मणों का समाज में प्रभुत्व बढ़ने लगा। शूद्रों को क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य- इन तीन जातियों के सेवक माना गया । उत्तर वैदिक काल में कार्य और गुण को छोड़कर वर्ण भेद वंशानुक्रम के आधार पर किया जाने लगा। अर्थात यह मान लिया गया कि केवल ब्राह्मण पुत्र ही वेद का अध्ययन कर सकेगा और पुत्र जीविका अर्जन के लिए शूद्र के पारंपरिक कार्य को ही करने के लिए बाध्य रहेगा। समय बदलता गया और शूद्र में भी विविध जाति- उपजातियों की सृष्टि हुई। इन जाति-उपजातियों के लोगों को दलित माना गया। उदाहरणार्थ दास प्रथा में दास, सामंतवादी व्यवस्था में किसान, पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर समाज का दलित वर्ग कहलाता है ।(1) आधुनिक समाज में दलित शब्द का अर्थ है जिसका उत्पीड़न किया गया हो। उत्पीड़न उसी का किया जाता है जो दवा, कुचला, अपमानित और प्रताड़ित है। आज दलित कहने से हम अनुसूचित जातियों और जनजातियों के रूढ़ अर्थ में करने लगे हैं। अर्थात जिसे दबाया गया हो, जो शोषित हो,जो उपेक्षित, अपमानित, वंचित, घृणित हतोत्साहित हो वही दलित है। महाराष्ट्र में 1970 में दलित मुक्ति संग्राम के राजनीतिक दल ने दलित शब्द का सबसे अधिक प्रयोग किया और लोगों में दलित शब्द का प्रचलन बढ़ गया। आज दलित कहने से केवल अनुसूचित जनजातियों को समझा जाता है। कँवल भारती के अनुसार "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की सिर्फ वही दलित है।" (2)

दलित शब्द साहित्य के साथ जोड़कर एक ऐसी नवीन धारा बनता है जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओ की यथार्थवादी अभिव्यक्ति करता है। दलित लेखक डॉ. श्योराज दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं - "दलित साहित्य उन अछूतों का साहित्य है जिन्हें सामाजिक स्तर पर सम्मान नहीं मिला उनकी छटपटाहट ही शब्दबद्ध होकर दलित साहित्य बन रही है।" (3) आज दलित साहित्य चर्चा के केंद्र में है। दलित साहित्यिक विधाओं में हिन्दी कहानी कारों की कहानियों में दलित चेतना का स्वर मिलता है।

स्वतंत्रता से पहले भंगी, चमार, जुलहा जैसे जाति में जन्म लेना पाप समझा जाता था। इन्हें मंदिरों में या फिर कुएँ के पास जाने नहीं दिया जाता था। प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं', 'मंदिर' शीर्षक कहानी में इसका वर्णन मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक सुधार आंदोलन भी जोरों पर था। जिनमें से दलित मुक्ति आंदोलन भी प्रमुख था। दलित चेतना पर महात्मा ज्योतिबा फुले,सावित्रीबाई फुले, महात्मा गांधी,अंबेडकर, ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने महत्वपूर्ण पदक्षेप लिए। महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने पुणे में 'सत्यशोधक' समाज की स्थापना कर दलितों की शिक्षा और उनके अधिकारों के लिए अपने घर का कुँआ खोल दिया। महात्मा गांधी अछूतोद्धार और अस्पृश्यता को वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था को खत्म किए बिना करना चाहा जिसका नतीजा आज भी हमारे भारतीय समाज में दिखाई पड़ता है । उसी समय महाराष्ट्र में डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में दलित चेतना के लिए चल रहे दलित मुक्ति आंदोलन का प्रभाव समाज में पड़ा। अंबेडकर ने संविधान में आरक्षण का मुद्दा जोड़कर हरिजनों के अन्याय पर मरहम लगाने का कार्य किया। इस प्रकार लंबे समय के अंतराल कानून सम्मत आंदोलन और सकारात्मक सचेतना भरी।हिन्दी साहित्य के आदिकाल में सिद्धातों ने समाज में वर्ण भेद के प्रति चेतना जगाई। भक्ति काल में रैदास, कबीर, जायसी

आदि ने वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा को खत्म करने का भरसक प्रयास किया। हिंदी साहित्य मैं इन दोनों को दलितों का अग्रदूत कहा गया है।दलित लेखकों का कहना है कि दलित साहित्य, दलितों द्वारा उनके समस्याओं को केंद्र कर लिखा गया साहित्य है। वास्तव में दलित साहित्य समाज के किसी दलित के अन्याय के विरुद्ध विद्रोह और आक्रोश का नाम है। विद्वानों का मानना है कि दलित साहित्य केवल एक दलित साहित्यकार ही लिख सकता है। इस विषय में कुँवर भारती का मानना है कि - "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसी की अभिव्यक्ति करता है.....।" (4) परंतु यह सत्य नहीं है। प्रेमचंद, निराला, रेणु, नागार्जुन जैसे दलितेत्तर साहित्यका ने दलित ना होते हुए भी दलितों की व्यथा की कथा को बड़ी संवेदना के साथ उठाने का प्रयास किया और उनकी वास्तविक आवश्यकताओ को अभिव्यक्त कर चेतना के स्वर को आधार प्रदान किया।

आधुनिक काल के कहानीकारों में प्रेमचंद ने कहानियों के माध्यम से दलितों की समस्याओं को उनके दुख, दर्द, पीड़ा को समाज के सामने रखा। दलितों को अपने हक के बारे में सोचने के लिए मजबूर किया। इनकी कहानियों में चित्रित दलितों की दुख, दर्द ने उनके जीवन की कड़वाहट से भर दिया जिसके के फलस्वरुप दलित के जीवन में खटास ने सामाजिक-आर्थिक विषमता, शोषण, मूल्यगत जड़ता का ऐसा चित्रण हुआ जो दलित चेतना के विद्रोही स्वर बना। वर्तमान समय के कुछ दलित साहित्यकार प्रेमचंद को दलित विरोधी मानते हैं। प्रेमचंद की आरंभिक आदर्शवादी कहानी 'बूढ़ी काकी' में प्रेमचंद द्वारा कहा गया यह कथन ' एक ब्राह्मणी दूसरों का झठा पतल चाट ले इससे अधिक शोककमय दृश्य असंभव था।" (5) वही दूसरी कहानी सद्गति में प्रेमचंद द्वारा यह कहा जाना "दुखी चमार द्वार पर झाड़ लगा रहा था और उसकी पत्नी झुरिया घर को गोबर से लीप रही थी। दोनों अपने-अपने काम से फुर्सत पा चुके थे,तो चमारीन ने कहा तो जाके पंडित बाबा से कहा आओ ना ऐसा ना हो कहीं चले जाए।" (6) दोनों कहानी में उनके द्वारा कही गई कथनों में दलितों के लिए जिस दृष्टिकोण का पता चलता है उससे यही कहा जा सकता है कि कहीं ना कहीं तत्कालीन समाज की ब्राह्मणवादी व्यवस्था का प्रभाव उनके चरित्र में भी विद्यमान रहा होगा, परंतु प्रेमचंद की कुछ चर्चित कहानी जैसे 'सद्गति' ,'सौभाग्य के कोड़े' 'दूध का दाम' में सवर्णों के विरोध में दलितों के द्वारा विद्रोह को ही देखा जा सकता है। जैसे-दलितों का विरोध स्वरूप दुखी चमार के लाश को ना उठाना और दलित वही हंगामा ना कर दे इस डर से पंडित जी उस दलित की लाश को रस्सी के फंदे से बांधकर घसीटते हुए गांव से बाहर खेत में फेंक आते हैं। जिसकी लाश को छूना पंडित जी को पाप लगता है वही उसकी लाश को डर के मारे अपने कंधे के सहारे खींचते हुए ले जाते हैं।

'दूध का दाम' कहानी में मंगल द्वारा यह कहा जाना "मैं कब कहता हूं कि मैं भंगी नहीं हूं लेकिन तुम्हें मेरी ही मां ने अपना दूध पिला कर पाला है। जब तक मुझे भी सवारी करने को ना मिलेगी मैं घोड़ा ना बनूंगा।" (7) उसी कहानी के अंत में मंगल द्वारा यह कहना "लोग कहते हैं, दूध का कोई दाम नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।" (8) इन दोनो कथनों में मंगल द्वारा दलित की विद्रोही चेतना का ही स्वर मिलता है। 'सौभाग्य के कोड़े' कहानी को आलोचक एक क्रांतिकारी कहानी मानते हैं जिसमें नथुआ शिक्षा प्राप्त कर मर्यादित पुरुष बन जाता है जिसे समाज में सभी मान सम्मान देते हैं। यहां तक की जिस हवेली में नथुआ को पहले कोड़े से मारा जाता है उसी हवेली का वह एक दिन मालिक बन जाता है। इस कहानी द्वारा 'शिक्षा' को प्रेमचंद दलितों के लिए मुक्ति का मार्ग बताते हैं। उनका कहना है कि जब तक दलित शिक्षित नहीं होंगे उन्हें उनका अधिकार नहीं मिलेगा न वे विद्रोह कर सकेंगे। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में समाज के जिन दलितों से संबंधित घटनाओं पर लिखा है बहुत से लेखकों के लिए उसकी कल्पना करना भी निर्थक है।

आज दलित साहित्य चर्चा के केंद्र में है आजादी के 75 साल बाद भी दलितों की स्थिति में खास बदलाव नहीं आया है। स्वतंत्रता के बाद के दलितेत्तर और दलित कहानीकारों ने अपनी कहानी के माध्यम से दलित मुक्ति को स्वर दिया है। दलितेत्तर कहानीकारों में फणीश्वर नाथ 'रेणु' की "रसप्रिया',शिवमूर्ति की कसाईबारा' शैलेश मटियानी की 'अहिंसा','सतजूतिया', 'परिवर्तन' , दूधनाथ सिंह की 'धर्मक्षेत्रे- कुरुक्षेत्रे' एवं दलित कहानीकारों में बाल्मीकि की 'यह अंत नहीं' ,'अम्मा' मोहनदास नैमिशराय की 'मैं, शहर और वे', रामनिहोर विमल की 'अब नहीं नाचब', सूरजपाल की 'बदबू' सुशीला टाकभोरे की 'टूटती बहस' कहानियों में दलितों के दबे-कुचले रोष और अपमान की दर्द भरी कथा का वर्णन है, साथ ही समाज में व्याप्त असमानता, छुआ-छूत परम्परागत रूढिवादी सोच का खुलकर विरोध किया गया है।

दलित कहानी दलित मुक्ति आंदोलन का ही एक हिस्सा है स्वतंत्रता ; समता और बंधुत्व की मूल भावना दलित कहानी की मूल चेतना है। दलित कहानी एक सामाजिक आंदोलन है।वर्ण व्यवस्था के समर्थकों ने उन्हें शिक्षा से दूर रखने के कानून बनाकर अपना वर्चस्व बनाए रखा। दलित कहानी अज्ञानता के इस अंधेरे से बाहर आने में मदद करता है। उन शोषितों, पीड़ितों की इच्छाओं, आकांक्षाओं का चित्रण करके उनके भीतर उम्मीदें जगाता है।

मुख्य अंश:- रेणु मुख्य रूप से आंचलिक कथाकार है। नयी कहानी के दौर में ग्राम अंचल की विशिष्ट अनुभूति और अलग पहचान दी है। प्रेमचंद के बाद रेणु ने भारतीय ग्रामीण जीवन का उसके संपूर्ण यथार्थ के साथ चित्रित किया है। स्वतंत्रता से पहले जिस अखण्ड भारत की कल्पना भारतवासी कर रहे थे, वह केवल मात्र सपना बनकर रह गया।भारतीय समाज में दलितों की स्थिति जैसी थी वैसी ही रह गई। औद्योगीकरण के कारण शहरों में कुछ बदलाव आया परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। रेणु की चर्चित कहानी 'रसप्रिया' में भारतीय ग्रामीण सामाजिक जीवन को जीवंत रूप में दिखाया गया है। रेणु ने ग्रामीण क्षेत्र मैं व्याप्त जात- पात,ऊंच-नीच के भेदभाव के साथ दलित उत्पीड़न जैसे अनेक समस्याओं को उजागर किया है। दलित चेतना की दृष्टि से आपकी कहानी 'रसप्रिया,महत्वपूर्ण है। गाँव वाले पंचकौड़ी मिरदंगिया को नाचने-गाने के कारण हीन दृष्टि से देखते तब वह लोगों से कहता है-" किशन कन्हैया भी नाचते थे। नाचना तो एक गुण है..... अरे जातक कहो या दसदुआरी।। चोरी, डकैती और आवारागर्दी से अच्छा है अपना- अपना 'गुन' दिखाकर लोगों को रिझा कर गुजारा करना।" (9)

मिरदंगिया एक गुणी व्यक्ति भी है जो डॉक्टर की उपाधि वाली योग्यता हासिल कर लेता है। इसलिए अपने साथ हमेशा नमक- सुलेमानी,पाचन, कुनैन की गोली भी रखता है। मोहना के पतले-दुबले शरीर को देखकर कहता है- "मोहना जैसे लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पेर ही गलती है।" क्या होगा पूछ कर की दवा क्यों नहीं करवाते।" (10) इस कथन द्वारा एक दलित को अपने अधिकार के प्रति जागृत किया गया है। जब मोहना मिरदंगिया को भिखारी कहता है तो उसके आत्मसम्मान को ठेस लगता है। वह रोष में कहता है-" किसने कहा तुमसे कि मैं भीख माँगता हूं ? मिरदंग बजाकर, पदावली गाकर, लोगों को रिझा कर पेट पालता हूँ....तुम तुम बैठो मैं रसपिरिया सुना दूँ।" (11) रेणु मिरदंगिया के इस कथन के माध्यम से दलितों में आत्मविश्वास को जगाना चाहते हैं। पंचकौड़ी मिरदंगिया जोधन गुरु से झठ बोलकर संगीत की शिक्षा लेता है। जोधन गुरु अपनी बेटी रमपतिया की विवाह की बात जब मिरदंगिया से करता है तो वह भाग जाता है। वह रमपतिया से प्रेम तो करता है पर दलित होने के कारण उसे अपना नहीं सकता। रामपतिया को ना अपना पाना उसकी बेबसी है तो झठ बोलकर उससे दूर भाग दूर भाग जाने सवर्णों के प्रति उसकी विद्रोही भावना भावना है।

शैलेश मटियानी की कहानी साहित्य मुख्य रूप से जीवन संदर्भों से जुड़ा हुआ है। इन्होंने अपनी कहानी में भारत के विभिन्न क्षेत्रों और संप्रदाय से संबंधित जीवन संदर्भों का चित्रण किया है। इन्होंने अपनी कहानी साहित्य में समाज के दबे, कुचले,शोषित ,अपमानित निम्न वर्गीय जीवन संदर्भों को ही अधिक चित्रित किया है। इनमें अपनी आंखों देखी जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित करने की अद्भुत क्षमता है। इन्होंने अपनी दलित कहानी में दलित से संबंधित चरित्र को तीन रूपों में व्यक्त किया है। पहला- वह जो जो सदियों से चले आ रहे हैं समाज व्यवस्था की अमानवीय से लाचार होकर समझौता करता है। दूसरा- सवाल व्यवस्था के प्रति आक्रोश को व्यक्त करता है ए अंत में हारमानकर समझौता कर लेता है। तिसरा- मानमर्यादा एंव अपने हितों के लिए समाज व्यवस्था से सीधे टकराता है। प्रेमचंद के बाद दलितेत्तर कहानीकारों में शैलेश मटियानी ने दलितों के दर्द और भावनाओं को वाणी देने का प्रयास किया। शैलेश मटियानी की 'सतजूतिया' कहानी दलित चेतना की दृष्टि से चर्चित कहानी है।इस कहानी में वर्षों से प्रताड़ित एवं शोषित दलित वर्ग की नई पीढ़ी ने सामाजिक व्यवस्था के

प्रति विद्रोह को व्यक्त करता है। कहानी का पात्र दलित हरराम पुरानी परंपराओं से बंधा हुआ है , उससे वह मुक्त नहीं हो पाता है। अपने बेटे द्वारा मरी भैंस को न खींच पाने के कारण इसे ब्रह्मदोष मानता है लेकिन बेटा परराम इस विचार का विरोध करते हुए कहता है " सभी इस बात से सहमत थे कि जब अपना खून-पसीना निचोड़कर पेट पालते हैं, तो कम से कम इतनी तो आजादी होनी चाहिए कि जो का रुचि करें। भैंसखोर मानकर, देह छूते ही सवर्ण उन्हें दुराते थे। इससे इन सभी को ठेस पहुंचती थी, जिनके हरराम जैसे रूढ़ संस्कार नहीं।" (12)

'हत्यारे' कहानी में सवर्णों के प्रति दलितों के विद्रोह को चित्रित गया है। इस कहानी का पात्र अपनी बीमार पत्नी के केय लिए मेहनत -मजदूरी करता है। अस्पताल के कर्मचारी और डॉक्टरों की लापरवाही के कारण उसकी पत्नी की मृत्यु हो जाती है। इस कहानी में एक और दलित वर्ग की भारतीय समाज में दयनीय परिस्थिति का यथार्थ चित्रण है तो वहीं दूसरी और दलित विद्रोह का स्वर भी है।कहानी का प्रमुख पात्र दलित चेतना से युक्त है इसलिए उसमें विद्रोह की भावना जलती रहती है। वह प्रतिशोध के लिए डॉक्टर की हत्या कर देता है।

शिवमूर्ति की कहानी 'कसाईबाड़ा' दलित चेतना की कहानी है। यह कहानी उत्तर भारत के ग्रामीण जीवन की एक तस्वीर हैयह एक ऐसी तस्वीर है जिसमें स्वतंत्रता के पहले से चली आ रही है वर्ग और जाति भेद के कारण समाज में दलित को सवर्णों के द्वारा प्रताड़ित होने की कथा है। यहाँ पारिवारिक और सामाजिक विघटन भी है। स्वतंत्रता के बाद भी यह एक ऐसा गांव है जिसे पंचवर्षीय योजना के नाम पर गांव को लूट कर नगरीय जीवन को अधिक विकसित किया है। कसाईबाड़ा में गांव का प्रधान छोटी जातियों की बेटियों को दहेज मुक्त विवाह और जाति विरोधी विवाह का ढोंग रच कर शहर में शरीर व्यापार की मंडी में बेच देता है। सनी तो जा बात का पता चलता है तो वह विरोध स्वरूप अनशन पर बैठ जाती है। प्रधान षड़यंत्र कर शनिचरी को मार कर उसकी लाश को फेक एक देता है। डालता है। अधरंगी इस घटना से क्रोधित होकर शनिचरी के चिता पर प्रधान और उसके बेटे को टांग पकड़ कर फेकता है। चिल्लाता हुआ कहता है "ले जाओ, ले जाओ उसे भुना जाएगा जब बिल्डिंग को तोड़कर चिता बनाई जाएगी।" (13)

दधनाथ सिंह की धर्मक्षेत्रे- कुरुक्षेत्रे में दलित स्त्री के आत्मपरक प्रवृत्तियों की यथार्थ अभिव्यक्ति है। इस कहानी में जंजीर से बंधी हुई स्त्री अपने अपहर्ताओं में से एक की मर्दानगी को चुनौती देकर उसे उसके बाप से लड़वाने न में सफल हो जाती है। शिव महतो अपने ही बाप का विरोध करता और इसी धर्मक्षेत्र में मर-मिटता है। इस तरह वह स्त्री अपनी और अपने नवजात शिशु की रक्षा करती है और हमेशा के लिए इनके चंगुल से आज़ाद हो जाती है।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी है 'मैं शहर और वे' मैं एक दलित युवक की कहानी है जो उच्चशिक्षित होकर भी नौकरी की तलाश में दर-दर भटक रहा है ।इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने आरक्षण विरोधी आंदोलन के सक्रियता को देखकर अभावग्रस्त बेरोजगार दलित युवक के मोहभग का चित्रण किया है। इस कहानी के द्वारा कहानीकार आरक्षण विरोधियों के आंदोलन की पोल खोलते हैं।

'यह अंत नहीं' ओमप्रकाश वाल्मीकी की दलित परिवार के जीवन में आए एक दिन अचानक ऐसी घटना है जिसके कारण सारा परिवार भूचाल के झटके में आ जाता है। यह कहानी मंगलू और सरवती की बेटी बीरमा के संघर्ष को उजागर करती हैं इस कहानी में सवर्ण सचिन्दर बिरमा के साथ छेड़खानी करता है। बिरमा के मां-बाप चाहते थे कि वह इस बात का जिक्र किसी से न करें परंतु वह इस अपमान को सहन नहीं कर सकती थी। दलित स्त्री के सम्मान का सवाल था। बिरमा अपने अपमान का बदला लेने के लिए पंचायत से न्याय की अपील करती है। उसमें यह साहस अपने भाई किशन और उसके कॉलेज के साथियों की बातचीत से मिलती है। इस कहानी में दलित की नई पीढ़ी पर लिखकर सवर्णों के अत्याचार के विरोध में खड़े होकर अपनी बिरादरी स्त्री की मान सम्मान बचाने के लिए संघर्ष करने को तैयार है। दलितों की नई पीढ़ी में अन्याय अत्याचार के खिलाफ एकजुट होकर अपनी हार को जीत में बदलने का विश्वास दृष्टिगत हुआ है। अब नहीं नाचब' राम निहोर विमल की दलित संवेदना का चित्रण करने वालका वाली चर्चित कहानी है।इस कहानी में दलितों के शोषण दमन उत्पीड़न के साथ उनके प्रतिशोध की झलक मिलती है। दलित अपने प्रतिशोध के आड़े शिक्षा को आने नहीं दिया। इस कहानी में दलित यह बता देना चाहते हैं कि चमार जमींदारों के इशारे पर नाच नाच कर थक गए हैं, अब उन्होंने निर्णय लिया है कि 'अब हम नहीं नाचेंगे' दलित संगठित होकर जमींदारों के विरोध में आंदोलन करने का एलान करते हैं। सवर्णों द्वारा चमारों को गेहूं ना देने के कारण पंचायत यह फैसला लेती है कि कोई चमार जमींदारों को खेत की खेती पर काम नहीं करेगा य। सभी चमार एकजुट होकर प्रण लेते हैं- सभी गांव के चमार एकमत होकर रहेंगे, आपस में कोई भी किसी का तरह का मनमुटाव नहीं रखेगा। अभी से थोड़ी -थोड़ी इस तरह की बचत करेंगे कि आषाढ़ में जब हल जोतने का समय आएगा,तो सभी हलवाहें, अपने-अपने मालिकों के यहाँ जाएंगे लेकिन हल को हाथ नहीं लगाएंगे। यह आंदोलन तब तक चलेगा जब तक बामन, क्षत्रिय लोग, अपनी-अपनी गलती मान कर माफी मांगने के साथ ही चमारों को गेहूं देने को राजी ना हो जाए।" राम निहारे विमल अपनी इस कहानी के माध्यम से सवर्णों को यह बता देना चाहते हैं कि अब ब्राह्मणों के इशारों पर दलित नहीं नाचेंगे। अब हमारे शरीर पर हमारा सर होगा, हमारे सर में हमारा भेजा होगा हम निर्णय खुद लेंगे।

संजीव की कहानी 'प्याज के छिलके', 'जब नशा फटता है' में सवर्णों के ऊपरी दिखावे एवं छुआ-छूत और जात-पात जैसी समस्याओं का चित्रण मिलता है।'जब नशा फटता है' कहानी का मेहतर समाज धर्म परिवर्तन कर लेता है। 'अपराध', 'प्रेतमुक्ति', 'तीस साल का सफरनामा' आदि कहानियों में संजीव ने उच्च वर्ग के अन्याय के खिलाफ आवाज उठाते दृष्टिगोचर हुए हैं। इन कहानियों में लेखक ने हिंसा तथा अहिंसा दोनों ही रूपों में विद्रोह को स्पष्ट किया है। " संजीव की कहानियां किसानों ,मजदूरों न, निम्नवर्गीय लोगों, आदिवासियों और नारियों के दोहन और शोषण का यथार्थ चित्रण ही नहीं करती इनमें संघर्ष की शक्ति का संचार भी करती है। जब कभी भारतीय इतिहास में समा उपेक्षितों और पीड़ितों का प्रवेश होगा,तो संजीव की कहानियों के साक्ष्य की आवश्यकता होगी।" (14)

निष्कर्ष :-समाज में रहने वाले सभी मनुष्य को अपनी पूरी गरिमा, सम्मान, समानता, से जीने का, शिक्षा प्राप्त करने का, कार्य करने का एंव अपने परिवार का भरण-पोषण का अधिकार है फिर वह एक सामान्य मनुष्य क्यों ना हो ! आज के समाज में सामाजिक एवं आर्थिक विषमता से उत्पन्न दलितों के अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का झण्डा फहराने वाली दलित कहानियों की प्रेरणा स्रोत भीमराव अंबेडकर का दलित मुक्ति विचार है, जो भारतीय समाज में सदियों से प्रताड़ित, हीन, उपेक्षित गुलामी वाली जिन्दगी जीने का कड़वा एहसास कराता है और साथ ही इस यातना से मुक्ति की प्रेरणा भी देता है। वास्तव में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सताए गए दलितों और उसकी पीड़ा को विद्रोही स्वर मिली है। आज के संदर्भ में वर्णव्यवस्था को जड़ से खत्म करने के विरुद्ध में संघर्ष करने की एलान करती है। आज की कहानी को दलित चेतना के उभार के रूप में देखा जा सकता है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिंदी साहित्य कोश:भाग-1, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, ज्ञान मंडल प्रकाशन, वाराणसी, 2015, पृष्ठ सं. -204
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र,ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ,पृष्ठ -13
3. वही, पृष्ठ सं. -15
4. वही, पृष्ठ सं. -14
5. बूढ़ी काकी- प्रेमचंद, पृष्ठ सं.-10, https://www.academia.edu
6. सद्गति-प्रेमचंद,अविनाश सैनी, हरियाणा, 2002, पृष्ठ-6, https:best motivational Story hindi files world press. Com
7. मानसरोवर: भाग-2, दो बैलों की कथा तथा अन्य कहानियां, प्रेमचंद, भारत पुस्तक , पृष्ठ -138
8. वही, पृष्ठ-142
9.प्रतिनिधि कहानियाँ रेणु, राजकमल प्रकाशन, 2018, पृष्ठ सं. -12
10. वही, पृष्ठ-13
11.वही, पृष्ठ-14
12.शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-3, पृष्ठ सं. - 455
13. कसाईबाड़ा – शिवमूर्ति, https://www.sahityashilpi.com/2011/10/blog-post_121.html?m=1
14. हिन्दी का गद्य साहित्य-डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ सं. - 415.

मुसहर समुदाय का जीवन-संघर्ष

रामनाथ कुमार
शोधार्थी(पीएच. डी), हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
हैदराबाद, पिन कोड -500046

प्रस्तावना :-भारत प्राचीनकाल से विविधताओं का देश रहा है। भारत जैसे बहुभाषिक व बहुसांस्कृतिक देश के निर्माण एवं समृद्धि में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सभी समुदायों का सहयोग निहित है। साहित्य मानव के लिए प्रेरक और उपयोगी रहा है, चाहे वह आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल या हिन्दी का नवजागरण काल हो, हर परिस्थिति में साहित्य अपने देश काल के हिसाब से अपने स्वरूप का विस्तार करता आया है। प्रस्तुत आलेख में, मुसहर समुदाय एवं तथाकथित मुख्यधारा समाज एक-दूसरे के सहजीवी होते हुए भी कैसे अपमान की स्थिति में हैं? इस आलेख में इन्हीं कारणों की पड़ताल की गई है । 'मुसहर' का शाब्दिक अर्थ 'मूस' (चूहा) में 'हर' (विशेषण, हरने वाला) प्रत्यय लगने से मुसहर यानि 'चूहा मारकर खाने वाला' समझा जाता है । बिहार सरकार ने इस समुदाय को महादलित (अनुसूचित जाति) की श्रेणी में रखा है। इनकी स्थिति दलित समझी जाने वाली अन्य सभी जातियों से भी सबसे निम्नतर स्थिति में है, इनका जीवन आज भी खाद्य-संग्राहक के रूप में है। मुसहर समुदाय का प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों से संपर्क नहीं बनने के कारण कुपोषण एवं कालाजार जैसी बीमारियाँ इस समुदाय में सामान्य हैं। इस समुदाय को मुसहर, सदा, सदाय, बनवासी, भूईयाँ, माँझी, ब्रह्मर्षि, रजवार इत्यादि नाम से जाना जाता है। यह समुदाय भारत के विभिन्न राज्यों जैसे बिहार, उत्तरप्रदेश, झारखंड, पश्चिम बंगाल, नेपाल, अंडमान-निकोबार इत्यादि जगहों में खासी जनसंख्या में निवास करता है।

बीज शब्द : मुसहर समुदाय, कुपोषण, दीकू, भूस्वामी, सवर्ण, भूमि की समस्या, शिक्षा की समस्या, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता

मूल आलेख : ब्रिटिश नृवंशविज्ञानशास्त्री हर्बर्ट होप रिस्ले ने बंगाल प्रेसिडेंसी की जातियों और जनजातियों का अध्ययन के दौरान अपने सर्वेक्षण (1881) में मुसहर समुदाय को छोटानागपुर, झारखंड के मुण्डा आदिवासी समुदाय के करीब का माना है। इसी कड़ी में डॉ शेफाली चतुर्वेदी ने 'ब्रज लोकगाथाओं का विश्लेषण एवं भाषिक चिंतन' शीर्षक पुस्तक में मुसहर समुदाय द्वारा मुण्डारी भाषा बोले जाने का जिक्र करते हुए कहती हैं कि "...वैज्ञानिक मुसहर लोगों का उदाहरण देते हैं। इसके लोग उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, छतीसगढ़ तथा मध्य प्रदेश में रहते हैं। ये लोग पहले ऑस्ट्रो एशियाटिक परिवार की मुण्डारी भाषा बोलते थे पर अब अधिकांश भारतीय यूरोपीय परिवार की भाषाएँ बोलते हैं।" उपरोक्त कथन इस प्रकार से तर्कसंगत प्रतीत होता है कि मुसहर समुदाय का संबंध मुण्डा समुदाय से माना जा सकता है। 12वीं शताब्दी के समय वनों की कटाई के बाद मुसहर समुदाय कृषि कार्य में संलिप्त होने को विवश हुआ था। इससे पूर्व यह समुदाय पूर्णरूपेण जंगल पर आश्रित था, आजीविका हेतु आवश्यकता अनुरूप जंगल से उपयोगी चीजें संग्रह करता और वन का संरक्षण करता था। कथाकार निलय उपाध्याय ने 'पहाड़' शीर्षक उपन्यास में 'जितिया बाबा' नामक मुसहर पात्र के माध्यम से मुसहर समुदाय की जंगल पर निर्भरता और महत्व को दर्शाया है। दशरथ नामक पात्र, जितिया बाबा से जानने को उत्सुक है कि क्या मुसहर समुदाय जंगल में लकड़ी काटने का काम करता था? तो जितिया बाबा बताते हैं- "हम लकड़ी काटते नहीं थे, हम तो जंगल साफ करते थे। जंगल हमारा घर था। जंगल में हमारे देवता थे। जैसे खेत में मकई के संग मोथा निकल आता है वैसे ही जंगल में बरसात के बाद कई पेड़ निकल आते हैं और बड़े पेड़ों की खुराक खा जाते हैं। हम उनको साफ करते थे ताकि पेड़ बड़े हों। सूखे पेड़ इसलिए काटते थे कि नए पेड़ों के लिए जगह बने। पेड़ की बनराई डालों को इसलिए काटते थे कि तना मजबूत हो। लकड़हारा जंगल का हत्यारा होता है, हम रखवार होते थे...(निलय, 127)।" इस उद्धरण के माध्यम से लेखक ने बताया है कि मुसहर लोग वनों की रक्षा सकरते हुए, उसकी उचित देखभाल करते थे। परंतु पठारी भाग में रहने वाले गाँव के बाशिंदे जंगल के पेड़ों को काटने के लिए लकड़हारों को भेजते थे। कालांतर में कृषि योग्य भूमि बनाने के लिए वनों की लगातार कटाई होती रही, जिससे वहाँ रह रहे आदिवासी प्रभावित हो गंगा के पठारी मैदान की ओर पलायन को विवश हुए और बाकि आदिवासी समूह जंगल की ओर सिमटते चले गए। प्रसन्न कुमार चौधरी ने 'बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम' शीर्षक पुस्तक में मुसहरों का जंगल से पठारी मैदानी भाग तक आने की पीड़ादायक सफर का वर्णन किया है। " दरभंगा महाराज ने कोसी अंचल के एक बड़े भू-भाग को (जहाँ की बलुआही मिट्टी में खेती लाभदायक नहीं थी) अपने कुछ स्वजातीय मैथिली ब्राह्मणों और पछिमा राजपूतों को पट्टे पर दे रखा था।...इस तरह मलेरिया-कालाजार के कारण कालापानी के रूप में कुख्यात पूर्णिया की परती जमीन को, कोसी के बार-बार धार बदलने के कारण दूर-दूर तक फैली बलुआही जमीन को कृषि-योग्य बनाने में इन्हीं मुसहर-सँथाल और अन्य दलित पिछड़ी-जातियों के रैयतों का हाथ था...।" इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि मुसहर समुदाय को यत्र-तत्र खेती एवं निवास के लिए 'धूसर जमीन' प्राप्त हुआ। बाद में उपजाऊ होने पर वह जमीन भू-स्वामियों द्वारा फिर से छीन लिया जाता था। मधुकर सिंह ने 'लह पुकारे आदमी' नामक शीर्षक कहानी में नगीना राम मुसहर और भैरव तिरपाठी नामक पात्र के माध्यम से मुसहर के यथार्थ को चित्रित किया है। नगीना और भैरव दोनों एक ही कॉलेज में मित्र हैं। तथाकथित सवर्ण जाति के लोगों को रास नहीं था कि भैरव जैसा ब्राह्मण का लड़का किसी नगीना जैसे अछूत मुसहर के साथ रहे। बात इतनी बिगड़ गई कि मुसहर बस्ती जला दिए गए। इस घटना को लेखक ने संजीदगी से चित्रित करने का प्रयास किया है – "वे लोग जब गाँव पहुँचे तो मुसहर टोली में आग लगी हुई थी और तमाम बच्चे, औरतें, मर्द चिल्लाते हुए गाँव छोड़कर भाग रहे थे, नगीना राम और भैरव तिरपाठी बहुत ऊँचे तूफान को सीने के अंदर रोककर गाँव के किनारे सड़क पर रुके हुए थे।" प्रस्तुत उद्धरण से निश्चित रूप से सामाजिक पिछड़ापन का दृश्य उद्घाटित होता है। वर्तमान समय में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति ऐसी ही प्रतीत होती है, जिससे सामाजिक असंवेदनशीलता का आँकलन भलीभाँति किया जा सकता है।

जंगलों का ह्रास होने के बाद जीविकोपार्जन के लिए विवश होकर मुसहर समुदाय ने खाद्यपूर्ति निमित्त मुख्यधारा समाज से जुड़ने का प्रयास किया। इस समाज में इसे मदद एवं सहानुभूति के बदले छुआछूत एवं नीचता का दंश मिला। समुचित खाद्य-सामग्री के अभाव में मुसहर समुदाय किसानों द्वारा खेतों से अनाज का बोझा उठाने के बाद संयोग से छूटे हुए अनाज बटोर कर एवं खेत से चूहा मारकर सेवन करने के लिए अभिशप्त हैं। प्रख्यात साहित्यकार मुद्राराक्षस ने 'दण्ड-विधान' नामक शीर्षक उपन्यास में बेदाना नामक मुसहर पात्र को केंद्र में रखकर खाद्य संबंधी समस्या का उजागर किया है – "...बेदाना जैसे चूहे और खरगोश के मांस पर जीने वाले लोगों के लिए इस तरह गेहूँ मिल जाना आमतौर पर खासे उत्सव की चीज होता था। अकसर वे इसकी रोटियाँ बनाने के बजाय इसे भुनवा लेते थे और थोड़े-से गुड़ के साथ एक दुर्लभ मिठाई की तरह जायका लेकर खाते थे। मगर इस उपलब्धि के साथ एक अजीब-सी कहावत जुड़ी थी - पड़ा हुआ सोना और गड़ा हुआ गेहूँ मिलने पर दुर्दिन आते हैं।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि मुसहर समुदाय वर्तमान में भी खाद्य समस्या से गंभीर रूप से जूझ रहा है और इसका जीवन खाद्य-संग्राहक के रूप में ही कट रहा है। साहित्यकार मुद्राराक्षस ने मुसहर समुदाय के अंतर्गत व्याप्त मूलभूत समस्याओं पर दृष्टिपात किया है और बताने का प्रयास किया है कि मुसहर समुदाय के लिए हर दिन दुर्दिन होता है, पड़ा सोना या गड़ा गेहूँ मिलने पर दुर्दिन का तात्पर्य यह है कि सोना मिलने पर अगर मुसहर बाजार में बेचने जाता है तो उसे निश्चित रूप से चोर समझकर उसके साथ दुर्व्यवहार की जाने की संभावना होती है, गड़ा गेहूँ से आशय है कि खेत में फसल पकने के उपरांत चूहा अनाज को ढोकर माँद में ले जाता है उसी अनाज को मुसहर समुदाय खोदकर निकालता है।

इस क्रम में जब कोई किसान या भूस्वामी मुसहर को देख लेता है तो उसके साथ गाली-गलौज एवं मार पीट करता है। वस्तुतः समाज में मुसहर 'गरीबी और भुखमरी' का पर्याय बन गया है। मुसहर समुदाय के लिए सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकार व सुविधाएं अथवा आरक्षण आदि दिवास्वप्न के समान है, इन सुविधाओं की न इन्हें जानकारी है और न ही इन तक पहुँच। सामाजिक संरचना में गरीबी और असमानता अतिव्याप्त है। प्रायः देखा जाता है कि देश की संपति एवं पेशावृति के साधन तथाकथित उच्च जातियों के नियंत्रण में है, वहीं अन्य जातियों की अपेक्षा मुसहर सबसे निचले पायदान पर अपनी आजीविका चलाने में असक्षम प्रतीत होता है। हरीनारायण ठाकुर ने 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र' की भूमिका में उद्धृत किया है कि "भारतीय समाज-व्यवस्था में इस भेदभाव का शिकार न केवल दलित जातियाँ रही हैं; बल्कि पिछड़ी कही जानेवाली असंख्य जातियाँ भी इस सामाजिक विसंगति की शिकार हुईं। दलित चेतना साहित्य की परिभाषा में तो केवल अनुसूचित जाति, जनजाति या अछूत कही जाने वाली जातियों की हीनावस्था से उत्पन्न चेतना है। किन्तु व्यापक स्तर पर इनमें भारतीय समाज की पिछड़ी जातियाँ भी आ जाती हैं। पुस्तक में साहित्य की दलित-दृष्टि को अक्षुण्ण रखते हुए भी दलित दायरे में पिछड़ों को भी समेटा गया है।" उपरोक्त प्रसंग से स्पष्ट होता है कि सामाजिक विसंगतियों में जाति रूपी विसंगति समाज के खोखलेपन के लिए उत्तरदायी है। वरिष्ठ आलोचक हरीनारायण ठाकुर जाति-व्यवस्था पर कुठाराघात करते हुए पिछड़ी जातियों को भी शोषित रूप में देखते हैं जो उचित ठहरता आभास होता है। अब जिस समाज में दलित एवं पिछड़ी जातियों के साथ शोषण होता रहा हो, वहाँ बिहार राज्य में महादलित वर्ग में आनेवाले मुसहर समुदाय की स्थिति शुरुआत से अभी तक क्या रही होगी? यह अत्यंत विचारणीय है। यह समुदाय प्रायः सर्वहारा श्रेणी में विदित है। सर्वहारा और दलित शब्द एक दूसरे के पूरक होते हुए अंतर्विरोधी प्रतीत होता है। इस अंतर्विरोध को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' शीर्षक पुस्तक में उद्धृत किया है- "प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते...अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।" इस प्रसंग में आलोचक स्पष्ट करते हैं कि ऐसा वर्ग या समुदाय जिनकी पूरी जनसंख्या भयावह अर्थाभाव एवं अपनी पहचान की संकट से जूझ रहा हो , वह सर्वहारा कहे जाने को अभिशप्त है, इसमें भी संदेह है। दलित अवधारणा की बात हो या लिखित या मौखिक साहित्य के समाहार की बात हो मुसहर समुदाय का जिक्र तक नहीं आता। मुसहर समुदाय समाज में महज गाली, अपमान और गलीच ही समझे को संत्रस्त हैं। तथाकथित मुख्यधारा समाज भी इस समुदाय को सहजता से स्वीकारने को तैयार नहीं हैं। 'पहाड़' उपन्यास में दशरथ मांझी नामक पात्र के माध्यम से कथाकार निलय उपाध्याय ने इस समुदाय के जीवन यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया है। उत्तर भारत के ईंट भट्ठों पर कृषि कार्य के अभाव में मुसहर समुदाय ईंट पाथने का कार्य करता है। दशरथ मांझी को ईंट पाथने के लिए ईंट भट्ठे पर ले जाने हेतु भट्ठा का बसई मेट (ठिकेदार) आता है। परंतु दशरथ मांझी भट्ठे पर नहीं जाना चाहते हैं क्योंकि वे ईंट भट्ठे पर मालिकों एवं इससे जुड़े लोगों द्वारा मजदूरों के साथ होने वाले कुकृत्यों एवं शोषण से अनभिज्ञ नहीं थे। भट्ठे पर जाने के आगाह पर दशरथ मांझी एक छेदी नामक पात्र की ओर मुड़े और उसे दिखाकर कहने लगे- "छेदी लोहार है, मेरी आंखों के सामने इसने मुखिया के हल का फाल टेढ़ा कर दिया और इलाके के सबसे बड़े जमींदार मुखिया को झुका दिया... गांव का नाई जंगली तीन महीने के लिए गांव छोड़कर चला गया और गांव भर के चेहरे को जंगल में बदल दिया। गांव में नाई, धोबी, लुहार, सोनार, कोहार सबके पास अपना कोई न कोई काम है, इसलिए उनके काम की इज्जत है... रजा है, आपलोग हमसे पहले ये बताइए कि मांझी का इस समाज में क्या काम है ? तब हम काम करेंगे, नहीं तो नहीं करेंगे।" कथाकार ने इस उद्धरण के माध्यम से इस समुदाय की पेशागत संकट को उजागर किया है। तथाकथित सभ्य समाज में जाति अनुरूप काम का बँटबारा हुआ, फिर भी मुसहर समुदाय के लिए समाज में कोई निश्चित काम नहीं है। हालाँकि भूमंडलीकरण के इस दौर ने जाति आधारित भारतीय पेशा को खंडित कर दिया है फिर भी कला-कौशल के अभाव ने मुसहर समुदाय को भूस्वामियों पर आश्रित होने को विवश कर दिया। कला-कौशल के अभाव के कारण इन्हें किसी प्रकार का शारीरिक श्रम का काम मिल पाना भी चुनौतीपूर्ण होता है, जिन्हें मिल भी जाता है तो भूस्वामियों द्वारा उसे समुचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता है। कथाकार निलय उपाध्याय ने अपने 'पहाड़' नामक शीर्षक उपन्यास में इस चिंताजनक स्थिति को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। मौला मांझी नामक पात्र को दिखाकर दशरथ सबको बताते हैं कि " इनका जवान लड़का मजदूरी करने के लिए भट्ठा पर गया था। पीट-पीट कर मार डाला था उसे इन्हीं मलिकानों ने। लाश भिजवा दी मगर मजदूरी नहीं दी।" कथाकार इस समुदाय के माध्यम से उन प्रत्येक मजदूरों की कहानी उकेरता प्रतीत होता है जो मजदूरी के लिए मालिकों पर निर्भर होते हैं। मुसहर समुदाय में स्त्रियों की दुर्गति वर्तमान समय में भी चिंतनीय है। बेनीमाधो नामक पात्र के माध्यम से मधुकर सिंह ने लिखा है - "यही देवा भौजी के ससुर थे बेनीमाधो बाबू। बेनीमाधो ने रघुनी के फुआ को खेत में ही पटक दिया, रघुनी के बाप के आँखों के सामने ही। बाप आँखें मूँदकर अरहर के खेतों में भागा था। तभी से फुआ बेनीमाधो की रखैल थी- रात-दिन बेनीमाधो रघुनी के घर में ही पड़े रहते। आठ-दस साल का रघुनी घर से बाहर निकल जाता। दादी खेत पर ही जान-बूझकर समय काटती रहती। जब समझ जाती की कि बेनीमाधो चले गए होंगे, तभी घर लौटती।" यह दुर्घटना मुसहर समुदाय में पैठे भय और आतंक को इस कदर दर्शाता है कि उनके समाज की 'रघुनी के फुआ' जैसी कितनी ही स्त्रियों का शोषण उनके सामने किया जाता है बावजूद इसके उनके समुदाय के पुरुष लाचार और बेबस इतने हैं कि वे अपनी ही बहन, पत्नी और बेटियों के बचाव के लिए आगे तक नहीं आ सकते। उनके वर्ग की स्त्रियों की लूटती आबरू का संरक्षण करना भी दुःसाहस ही है। मुद्राराक्षस ने 'दण्ड-विधान' नामक उपन्यास में बेनीमाधो जैसे मानसिक क्रूर भूस्वामियों के जालसाजी एवं मुसहर स्त्रियों की जबरदस्ती लुटती आबरू का पर्दाफाश किया है – "गाँव के भूस्वामियों ने इधर एक नया तरीका निकाल लिया था। औरतों की मजदूरी अब रात में होती थी। इससे एक बड़ी सुविधा हो गयी थी। मालिक अब रात के वक्त उनमें से किसी भी औरत को इत्मीनान के साथ रखवाली के लिए बनायी झोपड़ी में ले जा सकता था। इस तरह काम आने वाली औरत को एक गट्ठा अनाज अतिरिक्त मिलने लगा था।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि जातिवाद के खोंखलेपन से ऐसी अनगिनत स्त्रियाँ दमित होने को अभिशप्त प्रतीत होती हैं। 'भोजन का अधिकार' शीर्षक नामक किताब में उद्धृत है कि "दलितों की महत्वाकांक्षा और केन्द्रीय समस्या न सिर्फ जीवन की गुणवत्ता के पारंपरिक सूचकांकों में सुधार व आर्थिक सशक्तीकरण की रही है, बल्कि पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में समानता और प्रतिष्ठा पाने की भी, जिसने सदियों तक उन्हें न्याय और आत्मसम्मान से वंचित रखा। इससे इनकार कतई नहीं किया जा रहा कि 'अशुद्धता' के स्रोत ही 'गरीबी' के भी स्रोत हैं।" इस उद्धरण के माध्यम से आभास होता है कि भारत के परिप्रेक्ष्य में गरीबी का केन्द्रीय कारण ब्राह्मणवादियों की अशुद्धतावादी कूटनीति है।

गरीबी व सामाजिक, राजनीतिक अनदेखी ने महादलित श्रेणी में आने वाले मुसहरों की शिक्षा दर को पनपने नहीं दिया है। इस समुदाय में शिक्षा का स्तर जगजाहिर है। पुरुषों की शिक्षा दर लगभग तीन प्रतिशत, जहाँ स्त्रियाँ एक प्रतिशत शिक्षित हैं। सरकार भी इस समुदाय तक शिक्षा पहुँचाने में असक्षम प्रतीत होती है। शिक्षा की बदहाली का आलम भोजन का अधिकार शीर्षक नामक रचना से समझा जा सकता है। 'भोजन का अधिकार' पुस्तक में सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों की उत्तर प्रदेश सलाहकार अरुंधती धुरु ने मार्च 2008 में बिहार के गोपालगंज जिले के अपने दौरे में पाया था कि "मुसहर बस्तियों की आंगनबाड़ियों में जहां आंगनबाड़ी कार्यकर्ता दूसरी जातियों या दूसरे गांवों के थे, वे केंद्र बंद पड़े थे। चूंकि, इस समुदाय की सौदेबाजी की ताकत बहुत कम होती है, इसलिए उन्होंने कभी भी आंगनबाड़ी रोज खोलने का दबाव ही नहीं बनाया। ऐसे कई मुसहर इलाके हैं जहां आंगनबाड़ी मौजूद नहीं है और करीब के केंद्रों तक उनके बच्चों की पहुंच नहीं।" इस प्रकार मुसहर समुदाय के शैक्षिक स्तर पर दृष्टिपात किया जा सकता है। जैसा कि प्रस्तुत उद्धरण से प्रत्यक्ष होता है कि समाज में जिसे सरकार अंगनबाड़ी की शिक्षा मुहैया कराने में विफल है, उसके लिए प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च माध्यमिक,

उच्चतर शिक्षा इत्यादि कोरी कल्पना मात्र प्रतीत होता है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रूप में हम पाते हैं कि मुसहर समुदाय के पिछड़ेपन का मुख्य कारण भूमिहीनता और अशिक्षा है। भूमि नहीं होने की स्थिति में इन्हें आवास की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पंचायत और प्रखण्ड स्तर पर संचालित होने वाली योजनाओं की जानकारी के अभाव में यह समुदाय इसका समुचित लाभ नहीं उठा पाता है। मुसहर समुदाय का आर्थिक स्तर दिन पर दिन बिगड़ता प्रतीत होता है और शिक्षा जैसे मूलभूत अधिकार से भी वंचित होता जा रहा है। इन समस्याओं के कारण इस समुदाय का समाज में अन्य जातियों के साथ तादात्म्य नहीं बैठ पाता है, इसलिए राजनीतिक भागीदारी में भी यह समुदाय पिछड़ा हुआ है। ऐसे भारत में जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून पारित हुए दशकों बीत गए हैं, परंतु सामाजिक उदासीनता और सरकार की अनदेखी के कारण अपने खून पसीने से खेतों को सींचने वाला खेतिहर मजदूर वास्तविक रूप में भूमिहीन है। सरकार इनके लिए भोजन,आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएँ चला रही हैं। लेकिन सबसे पीछे हाशिये पर खड़े इस मुसहर समुदाय के लिए ये सारे कानून एवं योजनाएँ बही -खाता तक ही सीमित है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि मुख्यधारा समाज और सरकार इस समुदाय के प्रति असंवेदनशील दिखाई देती है।

****

सन्दर्भ :-

1. चतुर्वेदी, डॉ.शेफाली, *ब्रज लोकगाथाओं का विश्लेषण एवं भाषिक चिंतन*, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, संस्क. 2021, पृ. 17
2. उपाध्याय, निलय, *पहाड़*, राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली, संस्क. पृ. 127
3. चौधरी, प्रसन्न कुमार, *बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्क. 2001, पृ. 17
4. सिंह, मधुकर, *पहली मुक्ति*, क्षितिज प्रकाशन, दिल्ली, संस्क. 2005, पृ. 41
5. मुद्रराक्षस, *दण्ड-विधान*, राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली, संस्क. 1986, पृ. 16
6. ठाकुर, हरीनारायण, *दलित साहित्य का समाजशास्त्र*, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्क. 2009, पृ.14
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्क. 2019, पृ.14
8. उपाध्याय, निलय, *पहाड़*, राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली, संस्क. 2011, पृ.82
9. वही, पृ.82
10. सिंह, मधुकर, *पहली मुक्ति*, क्षितिज प्रकाशन : दिल्ली, संस्क. 2005, पृ. 9
11. मुद्राराक्षस, *दण्ड-विधान*, राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली, संस्क. 1986, पृ.18
12. नौटियाल, सं. सुरेश, *भोजन का अधिकार,* ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, नई दिल्ली, संस्क. 2010 पृ.396
13. वही, पृ.404

तथागत गौतम बुद्ध के अनमोल वचन

1- कई हजार खोखले शब्दों से अच्छा, केवल वह एक शब्द है जो मन में शांति लाए.

2- आपका असत्यवादी होना ही आपकी विफलता का मुख्य कारण हैं.

3- अगर आप सच में अपने आप से प्रेम करते है तो आप कभी भी दूसरों को दुःख नहीं पहुंचा सकते.

4- आकाश के लिए पूरब और पश्चिम में कोई भेद नहीं है, परन्तु लोग अपने मन में भेदभाव को जन्म देते हैं और यही सच है ऐसा विश्वास करते रहते हैं.

5- हम जो भी और जैसा भी सोचते हैं, वही बनते जाते हैं.

6- अगर आपको मन की शांति चाहियें तो दूसरों से ईर्ष्या करना छोड़ दें.

7- यदि आप अपना मार्ग नहीं बदलेंगे तो निश्चित ही आप वही पहुँच जायेंगे जहाँ आप जा रहे हैं.

8- बिना स्वास्थ्य के जीवन बेकार है, वह केवल एक पीड़ा की स्थिति और मौत की छवि के समान है.

9- जिस तरह एक जलते हुए दीपक से हजारों दीपक रौशन किए जा सकते है, उसी तरह खुशियाँ बाँटने से बढ़ती जाती हैं, कम नहीं होती.

10- मैं यह कभी नहीं देखता की क्या किया जा चुका है, मैं सदैव देखता हूं कि अभी और क्या किया जाना बाकी है.

11- छोटी छोटी नदिया शोर मचाती है जबकि विशाल महासागर शांत रहता है.

12- भले ही आप पूरे ब्रह्माण्ड में कहीं भी ऐसे व्यक्ति को खोज लें जो आपको आपसे ज्यादा प्यार करता हो, लेकिन आप पाएंगे कि जितना प्यार आप खुद से कर सकते हैं उतना कोई आपसे नहीं कर सकता.

13- आप कितना भी शांति को तलाशते रहें पर वो आपके अंदर ही है.

14- समस्या क्रोध नहीं है बल्कि आपके विचार हैं, जैसे ही आप क्रोध के विचारों को भुला देंगें वैसे ही क्रोध गायब हो जाएगा.

15- क्रोध को शांति से जीतो, बुराई को अच्छाई से जीतो, कंजूसी को दरियादिली से जीतो, और असत्य बोलने वाले को सत्य बोलकर जीतो.

16- जो क्रोधित करने वाले विचारों से मुक्त हैं उन्हें निश्चय ही शांति प्राप्त होगी.

17- यदि आप क्रोध करेंगे तो शायद इसके लिए आपको दंड नहीं मिले, पर क्रोध ही आपका सबसे बड़ा दंड है.

18- चाहे आप कितने भी पवित्र शब्दों को पढ़ लें या बोल लें, पर जब तक आप इन शब्दों को प्रयोग में नहीं लाएंगे तब तक ये शब्द आपका कुछ भी भला नहीं कर सकते.

19- ध्यान के द्वारा आप ज्ञान प्राप्त करते हैं, और बिना ज्ञान के आप अज्ञानी हैं, आप इस बात को अच्छी तरह जानो की क्या आपको आगे ले जाता है और क्या आपको रोके रखता है, केवल उस मार्ग को चुनो जो आपको बुद्धिमत्ता की और ले जाता हो.

20- वह व्यक्ति जो पचास लोगों से प्रेम करता है उसके पास पचास संकट हैं, और जो व्यक्ति किसी से भी प्रेम नहीं करता उसके पास कोई संकट नहीं है.

21- यह परम सत्य है कि घृणा का अंत घृणा से नहीं अपितु प्रेम से ही संभव है.

22- जंगली जानवर की बजाय एक कपटी और दुष्ट मित्र से ज्यादा डरना चाहिए क्योंकि जानवर तो बस आपके शरीर को ही नुकसान पहुंचा सकता है, लेकिन एक कपटी और दुष्ट मित्र आपकी बुद्धि को हानि पहुंचाएगा.

23- आप अपने क्रोध के कारण नहीं बल्कि क्रोध की वजह से दंड भुगतते हो.

24- जब भी हम क्रोधित होते हैं हम सच का मार्ग छोड़ देते हैं.

****

दलित साहित्य की वैचारिकी

अंकित कुमार वर्मा
सहायक प्रोफेसर 'हिंदी'
जतन स्वरूप पीजी कॉलेज-सिकंद्राबाद, बुलंदशहर- 203205

भूमिका :- दलित साहित्य की वैचारिकी का मूल आधार जातिविहीन, वर्गविहीन एवं वर्णविहीन समाज की आकांक्षा है। यह आकांक्षा हिंदूवादी व्यवस्था की अनैतिक एवं अनाचारी व्यवस्था (तानाशाही व्यवस्था) के बदले शोषणरहित मानवीय व्यवस्था के उद्घोष की है। जब भी बात समाज में क्रांतिकारी व्यवस्था की स्थापना की आती है तब-तब वर्ण, वर्ग एवं जाति सामाजिक परिवर्तन के रास्ते में बाधा बनकर खड़े हो जाते हैं। और समाज में आमूल-चूल परिवर्तन होने नहीं देते हैं। ये सब रोड़े हिन्दू व्यवस्था की देन हैं। जिसे हिन्दुओं ने सभ्यता के आवरण में ढक रखा है। जिसे वे संस्कृति के नाम पर महान बताते आ रहे हैं। कहते हैं कि भारत में क्रान्ति तथा प्रतिक्रांति की धारा आपस में हमेशा से वैचारिक धरातल पर युद्धरत रही है। आज जब दलित साहित्य लेखन अपने प्रकर्ष पर है तब इन धाराओं का अवलोकन करना प्रासंगिक बन पड़ा है। प्रस्तुत आलेख में हिन्दुओं की ऐसी ही आततायी श्रेणीबद्ध वैचारिकी की पड़ताल की गयी है। तथा उसके अनन्तर चलने वाली समतावादी दलित दृष्टि का मूल्यांकन किया गया है।

बीज शब्द:-दलित, श्रेणीबद्धता, वर्चस्ववाद, वर्णव्यवस्था, समतावादी, सौंदर्यशास्त्र, दमन, उत्पीड़न, वैचारिकी, गरिमापूर्ण, मानवता आदि।

मूल आलेख:-हिन्दुओं की सभ्यता दलितों के दमन की एक ऐसी आततायी व्यवस्था है जिसमें दलित घुटन तथा अपमान की जिन्दगी जीते आये हैं। अम्बेडकर मानते हैं कि इस सभ्यता तथा संस्कृति पर गर्व करने की नहीं अपितु शर्म करने की बात है। जिसने एक बड़े भारी समाज को अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य बनाए रखा है। अब सवाल विभाजन की सबसे मजबूत कड़ी जाति व्यवस्था का उठाया जाए। जिसने मनुष्य-मनुष्य के बीच रागात्मक संबंधो का हनन करके श्रेणीबद्धता को बनाए रखने में अक्षुण्ण योगदान दिया है। उस पर अम्बेडकर लिखते हैं। "जाति एक ऐसा राक्षस है, जो आप का रास्ता रोकेगा ही नहीं, बल्कि काटेगा भी जब तक आप इस दैत्य का वध नहीं करते, आप न राजनीतिक सुधार कर सकते हैं और न ही आर्थिक सुधार" इस जाति व्यवस्था ने दलितों को कहीं का नहीं छोड़ा है। जाति व्यवस्था तथा उससे उपजी अस्पृश्यता आज सामाजिक छुआछूत के रूप में उतनी नहीं जितनी मानसिक रूप में मौजूद है। जो पल-पल पर लोकतान्त्रिक व्यवस्था को चकनाचूर करके असमानतावादी व्यवस्था को बनाए रखने में अभिन्न कारक बनी हुई है। शिक्षण संस्थानों से जबकि इससे इतर जहाँ तक वर्ण व्यवस्था का सवाल है तो आजीवक किसी भी वर्ण को नहीं मानते हैं। उनकी लड़ाई सभी वर्णों से है। वे अपने आपको अवर्णवादी मानते हैं। यशवंत वीरोदय मानते हैं कि आजीवक अपने आप में पूर्ण धर्म हैं। उसकी लड़ाई बौद्धों एवं जैनों से भी है। बौद्ध धर्म वर्णव्यवस्था को कर्मणा मानता है।"न जन्यावसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मण कम्मनावसलो होति कम्मना"यही बात चौथीराम यादव 'लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा' में लिखते हैं। "वर्णव्यवस्था के समर्थन और विरोध के इस संघर्ष में तुलसीदास शंकराचार्य के साथ खड़े दिखाई देते हैं तो कबीर और रैदास बुद्ध के साथ।वर्णव्यवस्था और जन्मना के सिद्धांत का खंडन करते हुए बुद्ध ने कहा-

"न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणों।
कम्मुग हि वसलो होति, कम्मुग होति ब्राह्मणों।।"

सवाल, यही है कि वर्णव्यवस्था को ही क्यों माना जाए? ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को भीश्रेष्ठ क्यों माना जाए? सबसे अच्छा है कि सम्पूर्ण वर्णव्यवस्था को ही चुनौती दी जाए। आज दलित किसी भी वर्णव्यवस्था को नहीं मानते हैं। लेकिन बुद्ध वर्णव्यवस्था के साथ रहना चाहते हैं, जैसे कि गाँधी रहना चाहते थे। बुद्ध ब्राह्मण को सीख दे रहे हैं। "जो भोगों को छोड़, बेघर हो, सन्यासी हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।" निश्चित ही यह कोई समाधान नहीं है कि कर्म के आधार पर ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय को उच्च माना जाए। बुद्ध ने इतना किया कि उन्होंने ब्राह्मण की जगह क्षत्रिय को बैठा दिया लेकिन इससे नीचे का वर्णकर्म तो वही बना रहा है। ब्राह्मण श्रेष्ठता को चुनौती देने के कारण बुद्ध भी दलित वैचारिकी की जाति में बिठा दिए गए हैं। लेकिन कबीर और रैदास नामक दो धर्मगुरुओं की जोड़ी ने दलितों की अस्मिता को स्पष्ट कर दिया है। दलित वैचारिकी तथा ब्राह्मणवादी व्यवस्था से विद्रोह स्पष्ट रूप में पहली बार यहीं मुखर होकरआया है। रैदास ने जाति, वर्ण तथा आधुनिक शब्दावली के वर्गगत भेद को मिटाने की पुरजोर कोशिश की है।

"जात-पात के फेर में, उरस रहे सब लोग।
मानुषता को सब खात है, रैदास जात का रोग।"

वे इस पद में जाति व्यवस्था को मनुष्यता के लिए बाधक मानते हैं।तथा वर्ण व्यवस्था को ब्राह्मणों द्वारा बनायीं गई व्यवस्था मानते हैं, वे उस पर चलने वाले को उचित ही मूर्ख कहते हैं।

'रैदास इकही बूँद सों, सब ही भयो बिस्तार।
मूरख हैं जो करत हैं, बरन अबरन विचार"।।

कबीर तथा रैदास समतावादी व्यवस्था के आग्रही हैं। लेकिन उनके यहाँ ईश्वर का नकार नहीं है। यह संभव भी नहीं था कि वे जिस समय की आततायी धर्मांधतथा राजशाही व्यवस्था में रह रहे थे। उस समय बिना ईश्वर के आलंबन में कुछ कह पाते। कबीर साईं से उतना ही मांगते हैं जिसमें से उनकी तृप्ति हो जाए। वे इसके बदले साधु को भी अभावहीनरखना नहीं चाहते हैं। रैदास भी ऐसे ही श्रम विभाजन के पक्षधर हैं वे इसपर विचार प्रकट करते हैं।

"ऐसा चाहूँ राज मैं, जहा मिले सबन को अन्न।
छोट बड़ो सब सम बसैं, रैदास रहे प्रसन्न।।"

इसलिए दलित साहित्य आजीवक से लेकर बौद्धतथा मध्यकालीन दलित संतों से भी प्रेरणा ग्रहण करता है। आगे इसी लोकधर्म का विद्रोही स्वर ज्योतिबा फुले के यहाँ मिलाता है।ज्योतिबा फुले शूद्रों तथा अतिशूद्रों के विभाजन को ब्राह्मण धर्म के संघर्ष रूप में देखते हैं। उनके अनुसार बाहरी आक्रान्ताओं के दमन एवं शोषण से यहाँ की मूलनिवासी जातियों का उत्पीड़न होता रहा। क्योंकि उन्होंने प्रत्यक्ष शोषण के साथ-साथ ईश्वर तथा शास्त्रों के भय से, यहाँ गुलामी के बीज बोए तथा ऐसे दमनकारी शास्त्र बनाए जिससे शूद्रों को नीचे रखकर स्वार्थलाभ लिया जा सके। फुले जातीय उत्पीड़न एवं वर्णव्यवस्था को समूल नष्ट करके समतामूलक समाज बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने ब्राह्मण धर्म की कुरीतियों और अन्धविश्वासों की जमकर खिल्ली उड़ायी।तथा शिक्षा व्यवस्था को मजबूत करके ज्ञान की अलख जगाने का सम्पूर्ण प्रयास किया।ज्योतिबा फुले के सामाजिक दर्शन पर सरोज आगलावे की टिप्पणी दृष्टव्य है।"ज्योतिबा फुले सही अर्थों में सत्य की खोज करने वाले महान विचारक थे। प्रत्येक व्यक्ति को सत्य की खोज करके उसी के अनुसार आचरण किया, तो समस्त मानव समाज सुखी होगा, ऐसा उनका विश्वास था।" वास्तव में यही वह सत्य है कि_ सभी मनुष्य बराबर हैं।इसी से अनुप्राणित मानवता ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। इसी वाक्य का संधान करते हुए ही वे दलित मुक्ति के प्रतिष्ठापक के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। वे ब्राह्मण व्यवस्था से पार पाने के लिए ही शिक्षा व्यवस्था को सर्व सुलभ करना चाहते थे।वे लिखते हैं_

"विद्या बिना मति गई। मति बिना गति गई।
नीति बिना गति गई। गति बिना वित्त गया।
वित्त बिना शूद गया। इतने अनर्थ एक अविद्या ने किये।"

यह कितना सत्य है कि फुले जिस सामाजिक परिस्थित से आते थे, वह वर्ग शोषण का कितना शिकार रहा है। वे शिक्षित बनकर भावी पीढ़ियों के लिए

शिक्षित होने का अनमोल वचन दे गए हैं। और सिर्फ वचन ही नहीं उन्हेंविद्यालय तथा सत्यशोधक समाज भी दे गए। यह कितना महासमर है कि ब्राह्मणों के तुलसीदास निम्न वर्ग में शिक्षा का प्रसार नहीं होने देना चाह रहे हैं।

"अधम जाति में विद्या पाए,भयहु यथा अहि दूध पिलाए"

ज्योतिबा फुले ने जिस तरह से महाराष्ट्र में ब्राह्मणवाद के खिलाफ बिगुल फूंक रखा था। वही बिगुल बाद में पेरियार ने दक्षिण भारत में फूंक दिया। पेरियार, फुले के बाद ऐसे क्रांतिकारी महापुरुष थे जिन्होंने साहित्य के सौन्दर्यशास्त्रीय ढांचे पर भी विचार किया है। उन्होंने राम के मिथकीय चरित्र पर ही सवाल खड़ा कर दिया है। जब उन्होंने आर्य एवं द्रविड़ दो नस्लों के आधार पर विवेचन किया है। विद्रोह का स्वर उनका फुले की भांति ही है, और यह समझने का नजरिया भी वस्तुपरक एवं यथार्थपरक है कि प्रारंभ में यहां जातीय संस्कृतियों की टकराहट से ही यहां की मूल जातियों का शोषण हुआ है। उनका चिंतन हिन्दुओं के उस मर्म पर आघात करता है। जिसके आधार पर वे बहुजनों को छलते आयें हैं। इसलिए पेरियार उस भगवान को ही प्रश्नांकित करते हैं। "ईश्वर नहीं है, जिसने ईश्वर का आविष्कार किया वह दुष्ट है और जिसने ईश्वर की पूजा की वह असभ्य है...।" उनकी यह सोंच कबीर, रैदास एवं फुले के एकेश्वरवाद से इतर सबसे क्रांतिकारी एवं यथार्थपरक थी। क्योंकि इस वैचारिकी से ब्राह्मणवाद भस्म हो जाता है। सूरज बड़त्या ने फुले एवं पेरियार की विद्रोही चेतना की श्रृंखला को, कड़ियों के सहारे सही ही पिरोया है। "दलित चेतना के विकास में महाराष्ट्र में फुले के साथ-साथ तमिलनाडु में भी ब्राह्मणवादी सत्ता विरोधी चेतना और दलित चेतना का प्रादुर्भाव होते हुए दिखाई देता है। एक तरफ ब्राह्मण वर्चस्व का विरोध है तो दूसरी तरफ ईश्वर के नकार की विरोधी चेतना है। सामाजिक परिवर्तन के सवाल को तमिलनाडु के ई.वी.आर नायकर ने उठाया"

गैर हिंदी प्रान्तों के अलावा उत्तर भारत के फर्रुखाबाद में स्वामी अछूतानंद ने भी हिन्दुओं के दमनात्मक शोषण के खिलाफ सामाजिक, राजनीतिक बगावत की। उन्हें ब्राह्मणवाद की वर्चस्ववादिता तथा आर्य समाजियों की धार्मिक उदारता का सहज ज्ञानबोध था। वह इन दोनों के झांसे में आने वाले नहीं थे। उनकी लड़ाई मजलूमों के हक़ कीथी। जिस पर सवर्णों ने अनाधिकृत चेष्टा बरक़रार रखी थी। अछूत जाति में जन्म तथा जातीय उत्पीड़न उनके सहज ज्ञान का आधार बना। इसी आधार पर वे आर्य हिन्दूतथा आदि हिन्दू (मूलवंशी) का विभेद कर सके।वे इसी आधार पर अपनी साहित्य सर्जना को लोकपरक बनाना चाहते थे। जिससे जनजागरण की मुहिम चलायी जा सके। यह उनके सहजबोध का परिणाम था। वे जितने साहित्यिक व्यक्ति थे उतने ही राजनीतिक थे। उन्होंने 'आदि हिन्दू'पत्र के माध्यम से सशक्त राजनीतिक हस्तक्षेप किया।तथा दिल्ली आकर एक संस्था का निर्माण किया जिसका नाम (अखिल भातीय अछूत महासभा) रखा।यह सब उनके क्रांतिकारी दर्शन का सहज प्रमाण था। उनकी बुलंदियों से ही प्रभावित होकर अम्बेडकर से उनका पत्राचार हुआ होगा।वे समाज व्यवस्था में बने वर्णभेद तथा उससे उपजी विषमता को इन शब्दों के साथ बयान करते हैं।

"निसदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है।
ऊपर न उठने देती नीचे गिरा रही है।
ब्राह्मण व क्षत्रिय सबको बनाया अफसर
हमको पुराने उतरन पहनो बता रही है।"

उन्होंने ठीक ही विश्लेषित किया है कि मनुस्मृति नामक विधान ने, ऊँच-नीच की गहरी खाई में,'आदि हिन्दुओं' कोगर्त में ढकेल दिया है। तथा उसने सवर्णों को तो विशेषाधिकार दे दिए लेकिन हमारे लिए अर्थात् (दलितों के लिए) उनके द्वारा त्याज्य कपड़ो का विधान रच रखा है। दलितों में नयी चेतना भरने वाले हरिहर के बारे में कँवल भारती ने उचित ही टिप्पणी की है। "स्वामी जी के आदि हिन्दू आन्दोलन ने जहाँ दलितों में नई चेतना पैदा कर दी थी, वही उससे कांग्रेस और हिन्दुओं की नींद हराम हो गयी थी। आदि हिन्दू की अवधारणा और वेद-शास्त्रों की निंदा न सनातनियों को पसंद आ रही थी और न आर्य समाजियों को।"

सारांश यह है कि अंतिम समय में उदारवादी तथा कट्टरपंथी दोनों एक हो जाते थे तथा हिन्दू बने रहते थे। और समय आने पर यही हिन्दू अछूतानंद तथा उनके साथियों पर अंग्रेज का पिट्ठू कहते थे। अम्बेडकर के प्रादुर्भाव में तथा उनके सामाजिक राजनीतिक हस्तक्षेप में यही पूरी परम्परा विद्यमान है। इस परम्परा को आत्मसात करके ही उन्होंने विद्रोह का स्वर मजबूत किया था। यह विद्रोह मानवतावादी प्रेरणा से ओतप्रोत तथा सामाजिक समता की मांग से आबद्ध था।यह अनायास नहीं है कि उन्होंने बुद्ध, फुले तथा कबीर को ही अपना गुरु क्यों माना? तथा पुस्तक अंटेचवल रैदास को क्यों समर्पित की? वास्तव में वे अपनी परम्परा के प्रति भिज्ञ थे। और इसी आधार पर दलित समाज को शोषण, दमन से बचाकर मानवीय गरिमापूर्ण जिंदगी जीने के लिए प्रतिबद्ध थे। दलित साहित्य की वैचारिकी पर स्पष्ट राय देते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- "दलित साहित्य का वैचारिक आधार डॉ. अम्बेडकर का जीवन-संघर्ष एवं ज्योतिबा फुले और बुद्ध का दर्शन उसकी दार्शनिकता का आधार है।अब जाना यह जाए कि दलित साहित्य में एक दूसरी विचारधारा है जो कि बुद्ध की वैचारिकी को उतना महत्त्व नहीं देती। इस बहस में यह कहा जाता है कि आधुनिक दलित समाज मूल रूप से चार्वाक, लोकायत के रूप में आजीवक का वंशज है। इसलिए यह परम्परा बुद्ध को आंशिक रूप में या पूर्णतः नकार के साथ बुद्ध की वैचारिकी से असहमत है। धर्मवीर कहते हैं"बुद्ध भी समाज में चातुर्वर्ण व्यवस्था को मानते हैं। प्रमाण त्रिपिटक ही है। इसके लिए सौ उदाहरण न देकर यहाँ यही बता दिया जाए कि संघसेन सिंह ने इस तथ्य को 'वज्रसूची' का अनुवाद करते हुए स्पष्ट लिख दिया है- "बौद्ध परम्परा में वर्णों का क्रम इस प्रकार दिया गया है- क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र" इस उद्धरण से सारी बात ख़त्म हो जाती है। इससे पता चलता है ये चार वर्णों की समाज व्यवस्था से नहीं लड़ रहे थे बल्कि उसके भीतर वर्णक्रम से लड़ रहे थे।" बुद्ध से असहमति उनकी वर्णक्रम विचारधारा से सम्बंधित है।जहां इनके अनुसार आजीवक सम्पूर्ण वर्णकर्म को चुनौती देता है वहां बुद्ध क्यों आंशिक सुधार देकरयथास्थितिवाद ही पोषित करना चाहते हैं। इन सबका शेषफल यही है कि अछूत जातियां मूल रूप से कौन हैं? यही प्रश्न तक इनकी अंतिम परिणति है। अम्बेडकर ने अछूत जातियों को मूल रूप से बौद्ध माना है। उनके अनुसार पहले बसी बस्तियों तथा बाद में बसी बस्तियों में एक तरफ कबीला पहले ही बस गया। लेकिन बाद वाले कबीले को गाँव के बाहर बसना पड़ा। ये गाँव के बाहर बसने वाले व्यक्ति छितरे हुए हैं। "ये छितरे हुए आदमी ब्राह्मण से घृणा करते थे, क्योंकि ब्राह्मण बौद्ध-धर्म के शत्रु थे और ब्राह्मणों ने इन छितरे हुए आदमियों को अछूत बनाया, क्योंकि ये बौद्ध धर्म छोड़ने को तैयार नहीं थे।" धर्मवीर इनको कामगार तथा भारतीय मूल की आजीवक जातियां मानते हैं। वहीँ ईश कुमार गंगानियां का 'दलित नहीं, आजीवक हैं हम' लेख में मत है। "...जिनके नगरो को बार-बार जलाया और षडयंत्रपूर्ण तरीके से विजय हासिल की, गौरवमय अस्मिता को नेस्नाबूद किया और असुर, दैत्य, अस्पृश्य, हरिजन, दलित और चांडाल आदि नकारात्मक संज्ञाओं से लादा, वे ही गौरवमय सिन्धुघाटी सभ्यता के पोषण अंकित हैं। ये छल-कपट और षडयंत्रो के शिकार नैतिक व शांतिप्रिय भारत के मूलनिवासी हैं अर्थात आजीवक हैं।"यहाँ भी यही स्पष्ट किया गया है कि दलित आजीवक हैं।असल में बौद्ध और आजीवक की अस्मिता का यह द्वन्द ऐसे वाक्यों का सृजन करता है जिससे अम्बेडकर के धर्मान्तरण पर प्रश्नचिन्ह लगता है। एक बानगी यह है। "दलित चिंतन को सबसे बड़ा और भारी धक्का ढाई हजार साल पहले बुद्ध के चिंतन के रूप में लगा था। इस धक्के और धोखे से दलित चिंतन आज भी उबार नहीं सका है। उलटे डॉ. अम्बेडकर के रूप में वह इस धोखे में फंसता ही जा रहा है।...वास्तव में बुद्ध ने केवल अपनी लड़ाई लड़ी थी। उनका दलित की समस्या से कुछ लेना-देना नहीं था। बुद्ध की समस्या एक साधन संपन्न व्यक्ति की थी। ऐसी समस्या का समाधान दलित के लिए किसी मतलब का नहीं हो सकता है।" इस चिंतन में इस बात को व्याख्यायित किया गया है कि बुद्ध ने क्षत्रिय होने के नाते अपनी लड़ाई लड़ी थी और यह लड़ाई वर्णधर्म में ऊपर रहने, और शीर्षता प्राप्त करने की थी। दलित चिंतन ऐसी वैचारिकी को पहचान नहीं पाया इसलिए पराए बुद्ध के हाथों में जाकर मूल चेतना को खो बैठा।स्पष्ट है कि यहाँ मूल सवाल अम्बेडकर के धर्मान्तरण को लेकर उठाया गया है। प्रश्न के तह में जाकर ही इस प्रश्न का अवलोकन करना उचित होगा। जिससे अम्बेडकर की इतिहास दृष्टि तथा धर्मान्तरण करने के कारण को स्पष्ट किया जा सके।यथार्थ यह है कि अम्बेडकर का धर्मान्तरण उनका निजी फैसला नहीं था, इस फैसले में दलितों की वेदना, पीड़ा एवं

यातना का मार्मिक स्वर विद्यमान था। इस फैसले में अपनत्व की भावना थी, और यह अपनत्व सीमांत पर रह रहे समाज के प्रति था। उन्होंने धर्मान्तरण के बारे में बहुत कुछ सोचा-समझा है, उसे तर्कों द्वारा स्पष्ट भी करना चाहा है, उनके तर्कों में अंतर्विरोध भी है, लेकिन इन सबके बाद भी उनके इस कृत्य में दलित समाज के प्रति भलाई की भावना है।

अम्बेडकर द्वारा बौद्ध धर्म अंगीकार करने की एक वजह उनका इतिहासबोध भी है। असल में अम्बेडकर दलितों को छितरा हुआ व्यक्ति मानते हैं जो कि एक समय बौद्ध थे। ब्राह्मणवादी इन्हें अछूत बनाने पर तुले हुए थे। और ये अपना धर्म नहीं छोड़ना चाहते थे। इन मूल जातियों में पहले से बसी बस्तियों से इस बात में फर्क था कि ये गोमांस खाती थीं। वे मानते थे कि सभी जातियों का विकास एक ही नस्ल से हुआ है। तथा ये जातियां पहले घुमंतू थीं। इनमें जो पहले बस गए उन्होंने खुद को विकसित कर लिया तथा जो बाद में बसे उन्होंने मजबूरीवश गाँव के बाहर बसना पड़ा। वे लिखते हैं- "'अछूत' किसी समय के छिन्न-भिन्न हुए परास्त आदमी भर हैं। और क्योंकि वे भिन्न-भिन्न हुए परास्त लोग थे, इसलिए वे गाँव के बाहर बसे।" सवाल यही है कि अम्बेडकर ने पूरे युद्ध को ब्राह्मण एवं बौद्धों के संघर्ष के रूप में देखा है। उनकी बात में इस बात की कल्पना भर भी नहीं हैं कि यहाँ बहुत से दर्शन एवं विचारधारा की टकराहट रही है। लोकायत से होते हुए आजीवक तथा जैनों की भी संस्कृतियाँ विद्यमान थी। लेकिन इस पूरे विमर्श को अम्बेडकर सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय के युद्ध की दृष्टि से देखते हुए नजर आये हैं। वे पहले सिद्ध करते हैं कि शूद्र क्षत्रिय हैं। फिर अंत तक आते हैं कि "....शूद्र नाम का कोई चौथा वर्ण नहीं था, केवल तीन वर्ण थे।" उन्होंने 'बुद्ध और उनका धम्म' में बुद्ध का वर्ण "क्षत्रिय" तथा गोत्र "आदित्य"बताया है। अम्बेडकर द्वारा बुद्ध तथा उनकी माँ का यह संवाद लिखा गया है। "वह उससे तर्क करती - "तुम भूल गए हो कि तुम एक क्षत्रिय कुमार हो। लड़ना तुम्हारा 'धर्म' है।" तब सिद्धार्थ कहते हैं। "तो माँ एक क्षत्रिय को क्यों लड़ना चाहिए।" सारांश यह है कि उनके मतानुसार वर्ण सिर्फ तीन हैं। बुद्ध क्षत्रिय हैं। शूद्र क्षत्रिय है, अछूत क्षत्रिय हैं, खैर क्षत्रिय तो क्षत्रिय है हीं। अब सवाल उठता है कि सम्पूर्ण लड़ाई क्या ब्राह्मण एवं क्षत्रिय में ही हुयी है? जैसा कि अम्बेडकर कहते हैं। इतिहास सिद्ध है कि कालांतर में ही सही यहा, हूण आये तथा शक आये, यवन आये, क्या कोई पहले बाहरी आक्रान्ता नहीं आये होंगे? क्या अन्य छोटे-छोटे धर्मो का अस्तित्व नहीं रहा होगा? इन सवालों के द्वारा ही इन प्रश्नों पर बात हो सकती है। वे इस विषय पर स्वयं लिख चुके हैं। "मेरे अध्ययन में दूसरी बात यह है कि मेरे आलोचक ध्यान दे, मैं ऐसा नहीं हूँ, कि अपने कथन को 'अंतिम सत्य' मान बैठूं। मैं किसी से इसे 'अंतिम शब्द' मानने की प्रार्थना नहीं करता। मैं आलोचकों का निजी निर्णय प्रभावित नहीं करना चाहता। वे अपने निर्णय पर पहुचने के लिए स्वतंत्र हैं।" अम्बेडकर ने सही ही कहा है कि मैं किसी को मनवाने के लिए मेरी स्थापना नहीं है। आलोचक अपनी व्याख्या करने के लिए स्वतंत्र हैं। और जो कह रहा हूँ वही सत्य नहीं है।

निष्कर्ष : इसलिए दलित साहित्य को, उन विचारकों को भी सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए।जिन्होंने बुद्ध को कठघरे में खड़ा किया है। अंतिम दोनों का दर्शन समता पर ही आधारित है। और ब्राह्मण वर्चस्ववाद के खिलाफ प्रतिशोध करता है। तथा इस प्रतिशोध की धारा में गोसाल से लेकर बुद्ध तथा कबीर, रैदास, फुले, पेरियार, अछूतानन्द से अनुप्रमाणित दलित वैचारिकी या अम्बेडकरवादी विचारधारा से ब्राह्मणवाद के खिलाफ बिगुल बजाना चाहिए।

****

सन्दर्भ : -

1. डॉ. भीमराव आम्बेडकर : जाति का विनाश, फारवर्ड प्रेस, साउथ गणेश नगर, दिल्ली, संस्करण, २०१८, पृष्ठ संख्या- ५७
2. २.डॉ. भीमराव आम्बेडकर : जाति का विनाश, फारवर्ड प्रेस, साउथ गणेश नगर, दिल्ली, संस्करण, २०१८, पृष्ठ संख्या- ५७
3. ३.अजमेर सिंह काजल : दलित आत्मकथाएं वेदना, विद्रोह और सांस्कृतिक रूपांतरण, अनामिका प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण,२०१८, पृष्ठ संख्या- १७५
4. डॉ. धर्मवीर : महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१७, पृष्ठ संख्या- भूमिका से
5. संपादक : दिनेशराम, बहुरि नहिं आवना, सयुक्तांक १७, जनवरी, २०२१-जून, २०२१ अंक, पृष्ठ संख्या- १६
6. चौथीराम यादव : लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा, अनामिका प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१३, पृष्ठ संख्या- २९
7. डॉ. विलक्षण रविदास : अछूत जातियाँ और बौद्धधर्म, नई किताब, रोहिणी, दिल्ली, संस्करण, २००९, पृष्ठ संख्या- १०४
8. डॉ. धर्मवीर : कबीर बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २००८, पृष्ठ संख्या- ०८
9. डॉ. धर्मवीर : महान आजीवक कबीर रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१७, पृष्ठ संख्या- ४९९
10. वही, पृष्ठ संख्या- ५००
11. कँवल भारती : आजीवक परम्परा और कबीर अर्थात् दलित धर्म की खोज, स्वराज प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१०, पृष्ठ संख्या- ९१
12. वही, पृष्ठ संख्या- ५०३
13. डॉ. सरोज आगलावे : जोतीराव फुले का सामाजिक दर्शन, सम्यक प्रकाशन, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली, संस्करण, २०१०, पृष्ठ संख्या- ०५
14. सूरज बड़ात्या : सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, अनामिका प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१०, पृष्ठ संख्या- ११०
15. ओमप्रकाश वाल्मीकि : मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१९, पृष्ठ संख्या- ३९
16. पेरियार ई. वी. रामासामी : सच्ची रामायण, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली, संस्करण, २०२०, पृष्ठ संख्या-३२
17. सूरज बड़त्या : सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, अनामिका प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१०, पृष्ठ संख्या- १११
18. वही, पृष्ठ संख्या- १११
19. मोहनदास नैमिशराय : भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास,(खंड- २) राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१३, पृष्ठ संख्या- २०८
20. श्वयौराज सिंह बैचेन : समकालीन हिंदी पत्रकारिता में दलित उवाच, अनामिका प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या- २१४
21. कँवल भारती : स्वामी अछूतानन्दजी 'हरिहर' संचयिता, स्वराज प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०११, पृष्ठ संख्या- १२८
22. वही, पृष्ठ संख्या- २६
23. वही, पृष्ठ संख्या- २६
24. ओमप्रकाश वाल्मीकि : मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१९, पृष्ठ संख्या- ५५
25. संपादक : दिनेशराम, बहुरि नहिं आवना, सयुक्तांक १७, जनवरी, २०२१-जून, २०२१ अंक, पृष्ठ संख्या- १६
26. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : अछूत कौन और कैसे, गौतम बुक सेंटर , शाहदरा, दिल्ली, संस्करण, २०१९, पृष्ठ संख्या- ७३
27. वही, पृष्ठ संख्या- ७३
28. डॉ. धर्मवीर : महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१७, पृष्ठ संख्या- भूमिका से
29. सं द्वारिका प्रसाद चारुमित्र : दलित विमर्श और साहित्य, साँचा प्रकाशन, रोहिणी, दिल्ली, संस्करण, २००९, पृष्ठ संख्या- १०६
30. डॉ. धर्मवीर : दलित चिंतन का विकास अभिशप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०२०, पृष्ठ संख्या- ७८
31. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : अछूत कौन और कैसे, गौतम बुक सेंटर , शाहदरा, दिल्ली, संस्करण, २०१९, पृष्ठ संख्या- ८
32. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : अछूत कौन और कैसे, गौतम बुक सेंटर , शाहदरा, दिल्ली, संस्करण, २०१९, पृष्ठ संख्या- ३९
33. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : शूद्रों की खोज, गौतम बुक सेंटर, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण, २०१६, पृष्ठ संख्या- ६९
34. वही, पृष्ठ संख्या- ६९
35. डॉ. धर्मवीर : थेरीगाथा की स्त्रियाँ और डॉ. अम्बेडकर, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, २०१२, पृष्ठ संख्या- ५१
36. वही, पृष्ठ संख्या- ५३
37. वही, पृष्ठ संख्या- ५२
38. वही, पृष्ठ संख्या- ५२
39. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : अछूत कौन और कैसे, गौतम बुक सेंटर , शाहदरा, दिल्ली, संस्करण, २०१९, पृष्ठ संख्या- ११

हिन्दी दलित नाटकों में अस्मिताई संघर्ष

विभीषण कुमार
(जूनियर रिसर्च फेलो)शोधार्थी, हिन्दी विभाग
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा (बिहार) - 852113
मो० - 9162958215

भूमिका : हिन्दी दलित साहित्य में अन्य विधाओं की अपेक्षा दलित नाटक अस्मिता के सवाल को ऐतिहासिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर अधिक उठाता है। धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, परम्पराओं जातिवाद, भेदभाव आदि सामजिक कुरीतियों के प्रश्न को लेखक मंच के माध्यम से समाज के समक्ष लाता है। शिक्षित और अशिक्षित दलित बहुजन समाज में अस्मिता का बोध कराता है। जिससे उसमें अस्मिता की चेतना जगती है और यह वंचित समाज मुख्यधारा के समक्ष अपनी जोरदार उपस्थिति दर्ज करता है। दलित नाटकों के द्वारा नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों के माध्यम से दलितों में अस्मिताई चेतना के भाव को जगाने का काम किया है।

बीजशब्द : नाटक, दलित-अस्मिता, स्त्री-अस्मिता, संघर्ष, विमर्श, समाज, राजनीति, संस्कृति।

उद्देश्य : प्रस्तुत शोध आलेख के माध्यम से दलित विमर्श की अवधारणा के आलोक में हिन्दी दलित नाटकों का ऐतिहासिक, तुलनात्मक और व्याख्यात्मक अध्ययन करते हुए दलित जीवन के विविध संदर्भों को उद्घाटित करना, नाटकीय योगदान का मूल्यांकन तथा दलितों की अस्मिताई संघर्ष को रेखांकित करना है।

निष्कर्ष : हिन्दी दलित नाटकों के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि विविध संदर्भों में दलितों के अस्मिताई संघर्ष का चित्रण हैं।

शोध आलेख :नाटक साहित्य का सबसे प्रभावपूर्ण विधा माना जाता है। इसमें पाठक या दर्शक अपने को पात्र या अभिनेता के प्रत्यक्ष पाता है। इसमें समाज के विविध संदर्भों का उद्घाटन मंचों के माध्यम से होता है। दलित नाटक सरल और सहज भाषा में हर्ष, विषाद और उल्लास या हर प्रकार की मनःस्थिति को अभिनेता, दर्शक के साथ साधारणीकरण कर देता है। इसमें व्यक्तिगत जीवन जीनेवाला नायक पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता है। दर्शकों में अस्मिता का भाव जागृत करने में नाटक और भी कारगर साबित होता है।

पूरा दलित साहित्य महात्मा बुद्ध के जीवन-दर्शन और भीमराव आम्बेडकर के जीवन-संघर्ष से प्रेरित है। यह साहित्य आदर्श का प्रतिवाद कर यर्थाथ को स्वीकृति देता है। विभिन्न विधाओं में यह साहित्य दलितों में अस्मिता के लिए संघर्ष भरने काम करता है, जिस संघर्ष के बदौलत दलित बहुजन समाज अपने हक और अधिकार के लिए लड़ता है और अधिकार पाता भी है। सदियों से साहित्य में जो छिट-पुट दलित अभिव्यक्ति होती आ रही थी, वह आज स्वतंत्र विमर्श करते हुए मुख्यधारा के परम्परागत हिन्दी साहित्य के समक्ष चुनौती पेश करता है। भारतीय रंगमंच पर रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का नाट्य रूपांतरण सदियों से प्रस्तुत हो रहा है। जिसके रचनाकार भले दलित ही थे, लेकिन वे स्वंय अपनी या अपनी जाति की व्यथा को रंगमंच पर नहीं उतार पाए। इसी दो महाकाव्य के उपेक्षित, शोषित और दलित पात्र एकलव्य और शंबूक जैसे पात्रों पर दृष्टिपात नहीं किया। अभिज्ञानशाकुंतलम् का धीवर, विशाखदत्त के मुद्राराक्षस का चन्द्रगुप्त आदि पात्र आज का दलित ही है। शूद्रक के मृच्छकटिकम् नाटक में भी चित्रित पहले अंक से दसवें अंक तक विट, चेट, संवाहक, वीरक आदि पात्र आज की शब्दावली में दलित है। हिन्दी दलित साहित्य आत्मकथा, उपन्यास, कहानी और कविता के माध्यम से परम्परागत हिन्दी साहित्य के समक्ष जोरदार उपस्थिति दर्ज की है। साहित्य की सबसे प्रभावपूर्ण विधा नाटकों में दलितों की पीड़ा और वेदना अभिव्यक्त न हो सके। अन्य भारतीय भाषाओं में दलित नाटकों की भी संख्या ठीक-ठाक है, लेकिन हिन्दी दलित साहित्य में नाटकों का अभाव देखा जा सकता है। फिर भी पड़ताल करने पर ऐसे नाटकों की अच्छी-खासी संख्या मिल सकती है। दलित नाट्य लेखन की एक अलग धारा है जो मुख्यधारा के नाटकों को एक चुनौती देता है। मुख्यधारा के नाटकों में जहाँ अतिनाटकीयता होती है वहीं दलित नाटकों में ऐसा नहीं होता। भाषा भी संस्कृतनिष्ठ या मुहावरेदार नहीं होती, बल्कि सहज, सरल और सीधी होती है। इन नाटकों को रंगमंच पर उतारने के लिए लेखकों को कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। मोहनदास नैमिशराय ने भी दलित नाटकों के मंचन की समस्या पर शंका व्यक्त की है - "दलित नाटकों के मंचन की समस्या अन्य नाटकों से कहीं अधिक है। इसका एक कारण यह भी है कि दलित कलाकारों के बीच व्यवसायिक आधार पर प्रतिस्पर्धा का अभाव है, जिसकी अहम भूमिका रिहर्सल से लेकर मंचन के अंतिम दिनों तक होती है।"[1]भारत की संस्कृति भी लोक-संस्कृति है। लोक साहित्य भारतीय साहित्य को बहुमुखी और विविधमुखी बनाता है। इस संस्कृति में लोक-नाट्य की परम्परा सदियों से चली आ रही है।

गाँव-कस्बों में लोक नाट्य को खेलने वाली मंडलियां ऐसे नाटकों को नुक्कड़ नाटकों के रूप में खेलते और मनोरंजन किया करते थे। बिहार में जट-जटिन, झारखंड का करमा सरहुल, उत्तर प्रदेश का रासलीला तथा नौटंकी आदि लोक नृत्य से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति दलित वर्ग से ही आता है। भारतीय लोक नाट्य परंपरा में आल्हा-ऊदल का नाम भी प्रमुखता से लिया जा सकता है। इसके बाद लोक नाट्य की परम्परा बिहार के मिथिला क्षेत्र में 'राजा सल्हेस' का मंचन भी काफी लम्बे समय से होता आया है। जिसमें राजा सल्हेस वीर, पराक्रमी और प्रजारक्षक है। लोक नाटकों को खेलने या खेलने में संसाधनों को जुटाने का काम भी दलित वर्ग ही किया करते थे। लेकिन ऐसे लोक-नाटकों को मुख्य धारा के हिन्दी साहित्य या दलित साहित्य में स्थान नहीं मिल सका।

परम्परागत साहित्य के नाट्य साहित्य सभ्रांत लोग ही लिखते और मंचन किया करते थे। यह कहा जाय कि उस समय ये नाटक आम जन-जीवन से दूर होकर खास लोगों का हीं बना रहा। आजादी के बाद दलितेतर नाटककारों और रंगकर्मियों ने दृष्टि बदलते हुए अपने नाटकों में उपेक्षित पात्रों की कथा-व्यथा को मंच तक लाने का काम किया। भीष्म साहनी, स्वदेश दीपक, नरेन्द्र कोहली, शंकर शेष और नाग बोडस आदि नाटककारों ने दलित अभिव्यक्ति के नाटक लेखन-मंचन में अभिरूचि लेने लगे। भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बज़ार में' महत्वपूर्ण नाटक हैं, जिसमें ऐतिहासिक मिथक पात्र कबीर के माध्यम से उनके काल की धर्मांधता, अनाचार, तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके सत्यान्वेषी प्रखर व्यक्तित्व को दिखाया गया है। कबीर का वहीं अंदाज, रूतबा, फक्कड़पन और साहित्यिक चोट, किस तरह उनका कवित्त हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों के मठाधीशों को अखड़ता है। यह इस नाटक में अंकित है। अंतिम अंक में सिकंदर और कबीर के बीच के संवाद को लेखक ने कल्पना के सहारे धर्म रहित दिखाया है। कायदे से यही अंक कबीर को सही मायने में स्थापित करता है। स्वदेश दीपक भी अपने नाटकों में सामंतीय सोच और पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध जनता का पक्ष रखते हैं तथा वे नौकरशाही और अवसरवादी राजनीति को उघाड़ते हैं। नक्सलबाड़ी आंदोलन, स्त्री-जीवन की त्रासदी, सामंती मानसिकता का परिचय, भाई-भतीजावाद तथा उँच-नीच, वर्ण-संघर्ष और भेद-भाव का उद्घाटन करते हुए दलित जीवन के यर्थाथ को भी पाठकों के सामने रखते हैं। 'कोर्ट मार्शल' इनका सबसे चर्चित नाटक है। इस नाटक में खोखले न्यायिक प्रक्रियाओं के बीच दलित पात्र रामचन्दर अकेला संघर्ष करता है। अपनी अस्मिता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए फाँसी को भी स्वीकार करता है। जहाँ तक दलित लेखकों के द्वारा लिखे नाटकों के लेखन तथा मंचन की बात है तो यह कार्य शुरु होने में भी लम्बा वक्त लगा। 1958 ई. में दिल्ली में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की स्थापना हुई, जिसमें अभिनय, निर्देशन, प्रकाशन योजना, मंच सज्जा आदि की शिक्षा मिलती थी। इस संस्था से जुड़कर कई दलित युवा रचनाकारों ने नाटकों की तरफ रूख किया। राजस्थानी पृष्ठभूमि के लेखक रत्नकुमार सांभरिया 'समाज की नाक', मिश्रीलाल मीणा का 'उदयन मानव धर्म' तथा 'प्रतिष्ठा' नामक एकांकी नाटकों का संग्रह 1984 ई. के आस-पास तथा प्रेम कुमार का 'बाल दहन' नामक एकांकी प्रकाशित हुआ। इसमें सांभरिया जी ने गली-मुहल्लों की कहानियों को बटोरते हुए सहज और सरल तरीके से सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिणिक स्थिति को संवेदना के धरातल पर तराशा है। मिश्रीलाल मीणा और भीमसेन संतोष के नाटिकाओं में दलित चेतना और अस्मिताई संघर्ष को अनुभव के धरातल पर उभारा गया है। दलित नाट्य मंच के माध्यम से कर्मशील भारतीय ने 1989 ई. में 'मेरा वजूद' नामक शीर्षक नाटक का मंचन आम्बेडकर भवन, दिल्ली में 'दलित नाट्य मंच' के बैनर तले किया जो पूरी तरह अव्यवसायिक था। इसके बाद दलित सवालों को लेकर कई नाटक लिखे जाने लगे। स्वयं भारतीय जी ने 1990 ई. में दलित दूल्हे को घोड़ी से उतारने को लेकर 'मान-सम्मान', 1992 ई. में बंधुवा मजदूरी पर 'श्रेष्ठ कौन', मेहराजा कांड पर 'फाँसी', कुम्हेर कांड पर 'आजादी किसकी', तथा 1993 ई. में दलित महिला को नंगा करने के प्रश्न को लेकर 'झठा अहंकार' आदि नाटकों का लेखन तथा मंचन किया। इसके बाद हिन्दी दलित नाटक लेखन का नया दौर चला, जिसमें वरिष्ठ दलित साहित्यकार स्वामी अछूतानंद 'हरिहर', माता प्रसाद, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चैहान, बिहारी लाल 'हरित' आदि नाटककारों ने सशक्त नाटकों की रचना की है। माताप्रसाद जी के अनुसार हिन्दी दलित साहित्य के पहले नाटककार स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' हैं। जिनके नाटक हैं 'रामराज्य न्याय'। बिहारी लाल हरित का 'देवासुर संग्राम' और 'गुरु दक्षिणा' भी

प्रकाशित हैं।हिन्दी दलित नाटकों की सर्वाधिक रचना माताप्रसाद जी ने की है। 'अछूत का बेटा', 'धर्म के नाम पर धोखा', 'तड़प मुक्ति की', 'वीरांगना झलकारी बाई', 'वीरांगना उदा देवी पासी', 'अंतहीन बेड़ियां', 'दिल्ली की गद्दी पर खुसरो भंगी', 'दलितों का दर्द', 'राजनीतिक दलों में दलित एजेंडा', 'घुटन', 'महादानी राजा बलि', 'धर्म परिवर्तन' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। इनके नाटकों में स्त्री अस्मिता, शिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, राजनीति, समाज और सरकारी नौकरियों में भागीदारी आदि चित्रित है। इनके नाटकों में उच्च वर्गों से बदला लेना नहीं, बल्कि मानवता और भाईचारे को स्थापित करना है। मोहनदास नैमिशराय जी ने दो नाटकों की रचना की है - 'हेलो कामरेड' और 'अदालतनामा'। 'हेलो कामरेड' नाटक की पृष्ठभूमि में भारत की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का संघर्ष हैं। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से दलित समाज के संघर्ष की आवाज को बुलंद किया है। इस नाटक की नायिका दलित होने के कारण सवर्णों के शोषण का राजनीतिक शिकार होती है। नायिका वामपंथी पार्टी की कार्यकर्ता है, जिस पार्टी का वरिष्ठ नेता पदोन्नति के नाम पर उसकी इज्जत के साथ खिलवाड़ करता है। अन्य दलित पात्र रवि की पत्नी के साथ तथा बिमला के साथ भी इसी तरह की घटना होती है। अरविन्द बिमला का बलात्कार कर देता है। बिमला का भाई अजय अरविन्द का खून करके जेल चला जाता है। उसके बाद बिमला का पिता तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ देता है। इस तरह राजनीति का अजगर एक परिवार को किस तरह निगल जाता है, लेखक ने इसका तथा नेताओं के दोहरे चरित्र को इस नाटक में चित्रित किया है। दलितों के शोषण की व्यथा तथा उससे उपजी क्षोभ को भी व्यक्त किया है। उच्च वर्ग की सवर्णवादी मानसिकता तथा उसके विरूद्ध अस्मिता की चेतना की चिंगारी को अजय के इस संवादों में देखा जा सकता है -

"अजय: भाड़ में जाए देश और यह पाखंडी समाज(क्रोध में) तुम और समाज का हित सोचते रहो और इस देश और समाज के ठेकेदार हमारी माँ-बहनों की इज्जत लूटते रहें(उदास भाव में हँसता है) वाह रे आजाद भारत के दलित.....। तू निर्बल है ना.....कमजोर.....। (जोर देकर) लेकिन मैं नहीं तो निर्बल हूँ और न कमजोर.....। मैं हर हालत में सबक सिखाउंगा जिसने मेरी बहन की इज्जत लूटी है।"[2]ओमप्रकाश वाल्मीकि के भी दो नाटक हैं - 'दो चेहरे' और 'उसे वीरचक्र मिला था'। गोदान के तर्ज पर चर्चित उपन्यास 'सूअरदान' की रचना करने वाले प्रसिद्ध दलित साहित्यकार रूपनारायण सोनकर जी ने भी नाटकों की रचना की है। सोनकर जी किशोरावस्था से ही रंगमंच से जुड़े रहने के साथ-साथ फिल्मों में भी सफल अभिनय भी किया है। 'एक दलित डिप्टी कलेक्टर' उनका महत्वपूर्ण सामाजिक नाटक है, जिसमें स्वयं लेखक ने अभिनय किया है। इसमें पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति के आकंठ में डूबे एक दलित डिप्टी कलेक्टर की कथा है। भोग-विलास और अमानवीयता किस कदर भारतीय संस्कृति पर हावी है। सोनकर जी ने इसी संस्कृति को उजागर करते हुए इस नाटक के दलित पात्र को ही नंगा कर दिया है। ऐसा कोई विरले साहित्यकार ही कर पाता है। इस नाटक में दूसरे के खेतों में मजदूरी करके जीविकोपार्जन करने वाले दलित परिवार का बेटा रतनलाल जब पढ़-लिख कर डिप्टी कलेक्टर बन जाता है तो वह अपने पिता को भूल जाता है और वह एक सवर्ण लड़की रश्मि से बहुत सारा दहेज लेकर तथा उनसे शादी करके शहर में ही बस जाता है। एक दिन गाँव आकर वह अपनी पत्नी अनसुईया को थप्पड़ जड़ते हुए नाबालिग पुत्री जानकी के साथ उसे घर से निकाल देता है। क्योंकि जानकी पढ़ी-लिखी नहीं थी। मचाचा रामदीन के द्वारा रोके जाने पर भी नहीं रूकता। अपनी अस्मत बचाने के लिए अनसुईया चंडी बन जाती है, जब ठाकुर कहता है -"...तू मेरी गोद में आ जा। मेरी सेवा कर। तेरे पतिव्रता धर्म में निखार आ जाएगा। मैं इस काम के लिए दोगुनी मजदूरी दूंगा।अनसुईया: (बिगड़ते हुए) आप मेरी मजबूरी का फायदा मत उठाईये, ठाकुर। मेरी मेजदूरी दे दो। मेरे पति रतनलाल ने मुझे छोड़ जरूर दिया है लेकिन उन्होंने मुझे तलाक नहीं दिया है। मै अब भी उनकी पत्नी हूँ मैं एक पतिव्रता औरत हूँ। मुझे हाथ मत लगाना नहीं तो जल जाओगे। ठाकुर: मैं जलना चाहता हूँ। मैं देखना चाहता हूँ कि तुझमें कितनी आग है। एक पतिव्रता औरत को पाकर मैं तर जाउंगा। अनसुईया: काली, चण्डी, दुर्गा का मैं रूप हूँ। दुर्गा, काली, चण्डी सभी दलित महिलाएं थी। जो भी कामुक व दुराचारी व्यक्ति उनके पास गया था वह तरा नहीं, मरा था।"[3] इसके बाद अनसुईया अपनी इज्जत बचाते-बचाते ठाकुर को गड़ासे से मारकर खुद भी मर जाती है। रतनलाल की पुत्री जानकी भी कॉलगर्ल और समाज में सेक्स का प्रदूषण फैलाने के जुर्म में पिता के ही कोर्ट में पेश की जाती है। कितनी बड़ी विडंबना है कि एक दलित स्त्री को दलितों के बीच भी संघर्ष करना पड़ता है और सवर्णों के बीच भी। सूरजपाल चौहान की तीन लघु नाटिकाओं का संकलन है - 'छू नहीं सकता'। 'छू नहीं सकता' के माध्यम से लेखक ने शैक्षणिक संस्थानों में छुआछूत, भेदभाव और जातिपाँति की संकीर्ण मानसिकता के प्रति दलित-अस्मिता को चित्रित किया है। पाठशाला में शिक्षा विभाग की ओर से निरीक्षण करने के लिए आये इंस्पेक्टर के सामने कई प्रश्नोत्तर के बाद अध्यापक आखिरी प्रश्न करता है - "बताओ ऐसी कौन सी चीज है जिसे हम देख तो सकते हैं, लेकिन छू नहीं सकते ? सभी बच्चे वही रटा-रटाया हुआ उत्तर देते हैं - सूर्य। लेकिन एक बालक भीमराव ऐसा दलित पात्र है जो बड़े अदब से कहता है - मुझे इस सवाल का दूसरा उत्तर भी मालूम है। इंस्पेक्टर उत्सुकता से पूछता है - अच्छा, बताओं तो सूर्य के अलावा ऐसी कौन सी चीज है, जिसे देख तो सकते हैं, लेकिन छू नहीं सकते ? बालक कक्षा में एक कोने में पड़े मटके की ओर हाथ उठाते हुए कहता है - सर वह पानी से भरा मटका जिसे मैं देख तो सकता हूँ, लेकिन छू नहीं सकता।"[4]हिन्दी दलित साहित्य में नाटकों का रोना रोया जाता है और जब नाटक लिखे जाते हैं तो उसकी उपेक्षा की जाती है। जब बहुजनों का संघर्ष चरम पर होता है तब उस समय ललई सिंह यादव हिन्दी दलित नाटकों के एक बड़े अभाव को पूरा करता है। उनके 1946 ई. में 'सिपाही की तबाही' नामक एकांकी ने उस समय तबाही मचा दी थी। उन्होनें आर्यों का पोल खोलते हुए हिन्दू धर्म में व्याप्त आडंबर का पर्दाफाश किया और सामाजिक चेतना के उद्देश्य से दर्जनों पुस्तकें लिखे। 'सच्ची रामायण', 'आर्यों का नैतिक पोल प्रकाश', 'सामाजिक विषमता कैसे समाप्त हो', 'शोषितों पर धार्मिक डकैती' आदि रचना उल्लेखनीय है। नाट्य रचना में 'संतमाया बलिदान', शंबूक वध, 'एकलव्य', 'अंगुलिमाल' और 'नागयज्ञ' आदि जन-जागृति को लेकर लिखा गया नायक प्रधान नाटक हैं। 'शंबूक वध' नाटक की रचना पैरियार ललई सिंह यादव और राम अवतार पाल ने संयुक्त रूप से की है। इस नाटक में दलित, पिछड़े और आदिवासी पात्रों के माध्यम से लेखकों ने अपनी क्रांतिकारी विचारधारा को पाठकों के समक्ष रखा है। वे पिछड़ों की अस्मिता को ध्यान में रखकर लिखते हैं - "आप यदि गुलाम, नीच या मुर्दा बनकर जीवित रहना चाहते हैं, तो ऐसे जीवित रहने से मर जाना सर्वश्रेष्ठ है। जियो शेर बनकर जियो, बकरी बनकर मत जियो। शेर की बलि किसी देवी-देवता के नाम पर भी नहीं दी जाती, बकरी की बलि दी जाती है। जियो स्वस्थ(तंदुरुस्त) आदमी बनकर जियो। ऊंच-नीच, छुआछूत व जाति-पांति की संकीर्ण, कोढ़ वाली बीमारी की आपसी फूट ने भारत को हजारों साल गुलाम बनाकर रखा है। आजादी जिसे मिली, उसे मिली। हम अब भी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक गुलाम सवर्ण हिन्दुओं(ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों) के हैं। हमें अपनी आजादी स्वत: प्राप्त करना है, स्वत: रक्षा करना है। अन्य के भरोसे नहीं रहना है।"[5] इन दोनों लेखकों का संयुक्त रूप से लिखा गया दूसरा नाटक 'एकलव्य' है, जिसमें शोषित, पीड़ित, दलित आदिवासियों का सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बहिष्कार को चित्रित किया गया है। छुआछूत और भेद-भाव का भी सामाजिक दुर्व्यवस्था को दिखाया है। अनार्यों में आपसी फूट और खत्म हो रहे भाईचारे का भी अंकन लेखक ने इस नाटक में दृश्यगत किया है। नाटक में द्रोण और अभय(एकलव्य) के संवाद से द्रोण की घृणित मानसिकता को देखा जा सकता है - "द्रोण: (क्रोधित होकर) दूर हट बदमाश! धृष्ट!! पतित!!! शूद्र होकर छू लिया। मुझे अपवित्र कर दिया। स्नान करना पड़ेगा। (फिर अपने शिष्यों की ओर देखते हुए) शिष्यों! निकाल दो इसे पकड़कर पाठशाला से बाहर। (दो-तीन शिष्य पकड़कर बाहर निकालने की कोशिश करते हैं। किन्तु; अभय हठ करता है।)द्रोणा: यदि हठ करे तो इसे घसीट कर बाहर निकाल दो। नारायण ! नारायण!! नारायण!! इस दुष्ट शुद्र के प्रवेश से सम्पूर्ण पाठशाला अपवित्र हो गयी। धुलवाना पड़ेगा। (छात्रों ने निषाद-राजकुमार अभयुद्युन अभय को घसीट कर पाठशाला के बाहर निकाल दिया।) अभय: (दोनों हाथ जोड़कर) गुरुदेव ! प्रणाम। जाता हूँ। किन्तु मैं आपको ही गुरु मान कर स्वाध्याय के बल पर शिक्षा ग्रहण करूंगा। मुझे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती।"एकलव्य प्रतिज्ञा करते हुए अपनी प्रतिभा के बल पर अर्जुण से भी सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बन जाता है। ललई सिंह यादव के सभी नाटक सही अर्थों में कही आर्य-अनार्य संस्कृति की विभाजक रेखा के प्रति क्षोभ व्यक्त करता है तो कहीं इन विभाजक रेखा को मिटाने का भी भरसक प्रयास करता है.वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी दलित साहित्यकारों ने नाटकों की रचना कर अपनी पहचान कायम करने के लिए उसे समाज के सामने प्रस्तुत किया है। अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक अस्मिता की तलाश में नाट्य सशक्त और कारगर साबित होगा।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.हिन्दी दलित साहित्य, मोहनदास नैमिशराय, साहित्य अकादमी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 229.
2.हेलो कामरेड, मोहनदास नैमिशराय, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2016, पृष्ठ सं. - 71
3.एक दलित डिप्टी कलेक्टर, रूपनारायण सोनकर, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2002, पृष्ठ सं. - 28
4.छू नहीं सकता, सूरजपाल चैहान, सम्यक प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2001, पृष्ठ सं. – 15-16
5.शंबूक वध, ललई सिंह यादव, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2021, पृष्ठ सं. - 12
6.एकलव्य, राम अवतार पाल, ललई सिंह यादव, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. - 35

पूनम वासम की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन-दृष्टि

लाली कुमारी
शोधार्थी,हिंदी-विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची

बस्तर की लोक संस्कृति एवं उसकी जनचेतना को कलेवर बना कर आदिवासी कवयित्री पूनम वासम ने अपनी कविता संग्रह 'मछलियां गाएंगी एक दिन पंडुमगीत' में आदिवासी जीवन दृष्टि के वृहदतर रूप को स्वर-शब्द दिया है। वस्तुतः मछलियां प्रतीक हैं आदिवासीयों की, आदिवासी अस्मिता की । जिस प्रकार जल मछली के अस्तित्व का मूलभूत आधार है, जल से विलग होते हीं वे निष्प्राण हो जाती हैं ठीक उसी प्रकार आदिवासी जंगलों, पहाड़ों, नदियों से निर्मित अपनी संस्कृति से विलग नहीं हो सकता। प्रकृति से विलग होने का अर्थ है उसके जीवन का निष्प्राण हो जाना, संस्कृति एवं परंपरा का विलीन हो जाना। उनके व्यावहारिक दर्शन का निस्पंद हो जाना। मूल्यों का खत्म हो जाना। आदिवासी का प्रकृति से दूर हो जाना उसका मछली नहीं मेंढ़क हो जाना है और व्यक्तित्व के इस दोहरेपन के लिए आदिवासी जीवन दृष्टि में कोई महत्व नहीं है।

आदिवासी जीवन दर्शन प्रकृति एवं उसके तत्वों को नितांत भिन्न दृष्टिकोण से देखता है। वह सृष्टि के प्रत्येक इकाई के अस्तित्व को समानता की दृष्टि से देखता है। सूर्य, चंद्रमा, नदी, पहाड़, वृक्ष, पशु, मनुष्य, कीट सभी का महत्व बराबर है। न कम, न अधिक । आदिवासी जीवन दृष्टि में न कोई श्रेष्ठ है न कुछ निम्न। सबकुछ सुंदर, सबकुछ अर्थवान, सभी महत्वपूर्ण। आदिवासी जीवन दृष्टि में श्रम का सर्वाधिक महत्त्व है। आदिवासी समाज में कोई भी सांस्कृतिक क्रिया, श्रम एवं दिनचर्या से पृथक नहीं होती। श्रम जिसमें स्त्री- पुरुष समान रूप से सम्मिलित होते हैं। यहां तक कि सौंदर्य की भी महिमा तभी तक है जब वह श्रम सीकरों से सिक्त हो। मात्र गौरवर्ण, धवल आनन और नैनों के कटाक्ष से सौंदर्योत्पत्ति असंभव है। पूनम अपनी कविता 'मिथक नहीं हैं जलपरियां' में श्रम के इस सौंदर्य को संदर्भित करती हुई कहती हैं -

"कि दिख जाती हैं जलपरियां /दिन भर की दिहाड़ी के बाद
तेज़ धूप में झुलसी त्वचा पर
खेत की गीली मिट्टी का लेप लगाती ...
अक्सर दिख जाती हैं जलपरियां जाल फेंकती हुई
केकड़े का शिकार करती हुई/हांडी बर्तन धोती
खेतों की मेंडों पर नाचती"[1]

जीवन के प्रति अदम्य जिजीविषा आदिवासी जीवन दृष्टि का अहम हिस्सा है। आज व्यक्ति जहां वर्तमान जीवन की आधुनिकता के कारण समाज से विलग होकर संत्रास, पीड़ा, दुख से संपुटित एकाकीपन और निराशा के अथाह सागर में डुबता चला जा रहा है वहीं आदिवासी जीवन दर्शन तमाम विपरीत परिस्थितियों आभावों में भी सामुहिकता और सहजीविता के द्वारा अदम्य जिजीविषा को संवाहित कर रहा है। कवयित्री इसी जिजीविषा को अपनी कविता 'इच्छाएं' में स्वर देती हुई कहती हैं –

"शव और भी भारी हों/प्रतीक्षाएं और भी विकट
... पर आंखों में जब भी झांका जाए
मिले वहां इच्छाओं का जोर मारता/एक आकाश"[2]

परिस्थितियां चाहे कितनी हीं विपरीत क्यों न हों आदिवासी संस्कृति उनकी जिजीविषा को दम नहीं तोड़ने देती। वे तब भी गीत गाते हैं, वे तब भी नृत्य करते हैं । नगाड़े और मांदर तब भी वन्य प्रांतर में गुंजायमान होते रहते हैं। इस जिजीविषा के साथ हीं वे दमनकारी बंदूकों के बारूद का पानी-पानी हो जाने की कामना करते हैं। प्रकृति के विरुद्ध तने सारे बारूदों के कोयले में बदल जाने का आह्वान करते हुए कवयित्री कहती है-

"मैं चाहती हूं लौट आओ तुम सोमारू / किसी ऐसे मन्तर जादू टोने के साथ
कि तमाम बन्दूकों का बारूद पानी पानी हो जाए"[3]

'धनकुल के सुर' शीर्षक कविता में कवयित्री आर्थिक कारणों से पलायन कर चुके अपने लोगों से वाचिकता के साथ-साथ संस्कृति को बचाए रखने की प्रत्याशा में कह उठती है –"तुम्हारे लौट आने मात्र से लौट आएगा
गांव का पुराना तालाब/हंसने लगेगा महुए का पेड़
तिरडुडी भी अपना मौनव्रत तोड़कर/एक साथ छनक उठेंगी"[4]

वस्तुतः आदिवासी जीवन दृष्टि में नृत्य और गायन मात्र मनोरंजन नहीं है। ये एकजुटता एवं सामूहिकता की अभिव्यक्ति है, उनके मूल्यों का बोधन है। यहां नृत्य एकल या युगल नहीं सामूहिक है जिसमें कोई दर्शक और नर्तक नहीं है कोई अलग संगीतकार नहीं है। सभी सहभागी हैं । सभी पर्फार्मर हैं। दर्शक और नर्तक का विभेद आदिवासी जीवन दृष्टि में मान्य नहीं है। यह विभेद अभिजात्य समाज की सामंतवादी व्यवस्था में हीं जन्मित, पुष्पित और पल्लवित है।

प्रकृति और मनुष्य का साहचर्य आदिवासी जीवन दृष्टि में मात्र उत्पाद और उपभोक्ता का नहीं है। यहां प्रकृति और मनुष्य का संबंध अधिक अटूट अधिक आत्मीय है। आंगन में उग आए बांस के झुरमुट में एक आदिवासी गृहणी सौंदर्य उद्दीपक नहीं देखती बल्कि अपने हीं पिता एवं बच्चों की प्रतिच्छवि देखती है। अपने परिवार की सादृश्यता को वह उसमें सहज हीं पहचान लेती है । वह बांस का झुरमुट उसे पिता की तरह पोषण करने वाला लगता है, जो उनके रूखे-सूखे भोजन को सुस्वादु बनाएगा। आंगन का वह बांस उनके दुःख को अधिक आत्मीयता के साथ समझता है।

"घर के बाड़े में उग आए बांस के झुरमुट
किसी पिता की तरह लगते हैं/जो बिना कुछ कहे उठा लेते हैं
अपने कंधों पर आधा बोझ"[5]

जब बांस के उस झुरमुट में नन्हें नवांकुर फूटते हैं और स्त्री उन्हें अपनी टोकरी में भरकर सौदे के लिए निकलती है तो वह उस करील की जगह अपने भविष्य के सुनहरे सपनों को देखती है।

"कभी - कभी बांस का यह झुरमुट
मनकी को किसी कल्पवृक्ष की तरह लगने लगता है"[6]

प्रकृति से इस बराबर की आत्मीयता के वशीभूत हीं मनकी का हृदय बांस के नवांकुरों का सौदा करते समय अपराध बोध – सा महसूस करता है। वह सोचती है कि पेट की आग से बड़ा कुछ नहीं होता, नहीं तो उसे अपनी कोख को सूखने से बचाने के लिए किसी की कोख की फसल को काटकर बेचना नहीं पड़ता। प्रकृति के प्रति ऐसी आत्मीयता के उदाहरण अन्यत्र मुश्किल से हीं दिखाई पड़ते हैं। शायद इसीलिए कवयित्री बांस को जीवन का झुरमुट कहती है।आदिवासी जीवन दृष्टि को संजोए रखने का जो कार्य उनके पुरखों द्वारा किए गए थे आज वर्तमान में उसे महत्व नहीं दिए जाने पर कवयित्री चिंतित दिखाई देती है। वह उनके इतिहास के प्रति इस नैराश्यता को देखती है और कहती है –

" वैसे भी खून का तिलक करने/देश पर मरने वाले
इतिहास बन जाते हैं/और इतिहास आज के समय का
सबसे उबाऊ विषय है "[7]

लुप्त होती संवेदना को पूनम बस्तर की रेतीली नदी के भीतर खोदकर देखती हैं। जहां उबलते खून की हंडियां मिलती हैं। जूतों के नीचे खुदे हजारों हजार कुंऐ मिलते हैं। वहां से संवेदना लेकर अपनी जीवन दृष्टि बचाए रखने की बात पूनम वासम अपनी कविता 'बस्तर एक उबाउ इतिहास' में करती हैं।आज बाजारवाद दुनियां भर में फैल चुका है। प्राकृतिक संसाधन तेजी से समाप्ति की ओर बढ़ रहे हैं। प्रत्येक चीज उपयोगितावादी दृष्टि से देखी जा रही है । विकास के नाम पर प्रकृति का दोहन सर्वाधिक तीव्रता से किया जा रहा है। चहुंओर मचती इस लूट ने मानव हीं नहीं संपूर्ण सृष्टि के भविष्य को खतरे में डाला है। प्राकृतिक असंतुलन ने दुनिया भर के लोगों और जीवों के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। आदिवासी जीवन दृष्टि इस बाजारवादी मानसिकता का नकार करती है। आदिवासी जीवन दृष्टि में प्रकृति संरक्षण का महत्व सर्वोपरि है। विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों के निचोड़े जाने पर कवयित्री रोष प्रकट करते हुए कहती है – **"जब भी कोशिश की बस्तर ने**
सूरज से सीधे सांठ - गांठ की/निचोड़कर सारा रस
तेंदु साल बीज की टहनियों का तब-तब
टांग दिया गया बस्तर को सुखने के लिए "[8]

आज सभ्य लोगों की सभ्यता प्रकृति के ह्रास से शुरू होती है विकास की नई-नई इबारत जंगल - जंगल उजाड़ कर लिखी जा रही है। समाज के विकासशील से विकसित होने की होड़ इस कदर मची है कि उसे यह भी स्मरण नहीं कि प्राणवायु प्रदायिनी भी वही प्रकृति है, जिसका वह विनाश किए जा रहा है। फलत: जब इसका बोध उसे होता है तब तक वह प्रकृति से बहुत दूर जा चुका होता है। प्रकृति से पुनः जुड़ाव की बात विश्व संगठनों में होती है और विस्मय की बात यह है कि पर्यावरण की रक्षा की खोखली बात करने वाले व्यक्ति प्रशंसा के पात्र बन लोकप्रियता हासिल करते हैं। वहीं आदिवासी जीवन दृष्टि जो प्रकृति को अपना पर्याय मानता आ रहा है और इतना हीं नहीं इसकी प्राणतुल्य रक्षा के लिए हर एक आदिवासी कटिबद्ध है, की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। प्रकृति के प्रति यह विडंबनापूर्ण वस्तुस्थिति शोचनीय है।

आदिवासी और जंगल एक दूसरे में उसी प्रकार गूंथे हुए हैं जैसे दो छोरों से बंटी रस्सी एक दूसरे में गूंथी होती है। एक दूसरे से पूर्णता प्राप्त करते और एक दूसरे में समाहित। 'सामान्य-सी बात है' शीर्षक कविता में इस संबंध की अभिव्यक्ति हुई है। आदिवासी स्त्रियों के कार्य-व्यापार जंगल की प्रकृति के लिए उतने हीं सामान्य हैं जितने अन्य जीवों का कार्य - व्यापार। वे एक दूसरे के सहचर हैं। उन्हें एक दूसरे से कोई डर या खतरा नहीं है। यह जंगल उनका सहचर हीं नहीं उनकी पहली पाठशाला भी है। यहीं से वे प्रकृति के नियमों को अपने जीवन में समाहित करना सीखते हैं। जलप्रपात की तेज धार, संगीत से उनका प्रथम साक्षात्कार कराती है। विज्ञान से लेकर इतिहास तक सबकुछ की परिभाषा और किस्से पहाड़ों और जंगलों से प्राप्त होते हैं।

"बैलाडीला के पहाड़ संभाले हुए हैं
अपनी हथेलियों पर आदिम हो चुके
संस्कारों की एक पोटली
धरोहर के नाम पर पुचकारना, सहेजना, संभालना
और तन कर खड़े रहना
सीखते हैं हम बस्तर की इन उंची पहाड़ियों से"[9]

पूनम वासम की कविताओं में आदिवासी जीवन दृष्टि का कलेवर सांस्कृतिक ताने-बाने से बुना गया दिखाई देता है। 'मस डांड', 'पान टुटानी', 'देव ढंगई' के साथ-साथ इनकी कविताएं 'मरमी पाटा', और 'फूल खोंचने' के पारंपरिक दृश्यों को समाविष्ट करती चलती है। खलिहान में धानों की सुरक्षा के लिए किए जाने वाले टोटके हों या वर पक्ष से रिश्ता तय करने आते बुजुर्ग, विशिष्ट दान्डामी नृत्य की बात हो या विवाह के गीत , पूनम की कविता जीवन के अधिकतर पहलूओं को न केवल छूती है बल्कि उन्हें आगे की पीढ़ियों को धरोहर के रूप में आत्मसात करने की इच्छा भी प्रकट करती है।

तुम्बा बस्तर के आदिवासी शिल्प का प्राचीन और बेहतरीन नमूना है। कवयित्री तुम्बे की आदिकथा को याद करते हुए कहती है कि तुम्बा सर्वप्रथम आदिपुरुष भीमादेव को नदी में तैरते मिला था। उसके बीजों को बो कर खेती की शुरुआत हुई थी और तब से पेड़ पौधे, जड़ी बूटियों, घास फूस इस धरती पर लहलहा रहे हैं। तुम्बा आदिवासी जीवन का प्रतीक है जो उनके जीवन में वैसे हीं बसा हुआ है जैसे हवा और पानी शरीर में। इसलिए कवयित्री इसे आदिवासी आस्था का केंद्र बताती है। उसके लिए तुम्बा मात्र एक पात्र नहीं है क्योंकि –

"बचा रहेगा तुम्बा तो कह सकते हैं
बची रहेगी आदि जातियां/गोंड भतरा मुरिया
और वजूद में रहेगी जमीन और जंगल की संस्कृति"[10]

शायद यही कारण है कि पूनम तुम्बा के टूटने को अपशकुन बताती हैं। बस्तर के आदिवासी जीवन दृष्टि को समेटती पूनम वासम अपनी कविता 'मृतक स्तंभ' में मृत्यु पश्चात् होने वाले रिवाजों को स्वर देती दिखाई देती हैं। आदिवासी संस्कृति में मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की परिकल्पना नहीं है। मान्यता है कि मृतक व्यक्ति अपने परिवार जनों के बीच हीं अदृश्य रूप में रहता है उसके मेनहीर (स्मृति पाषाण) में उसकी सभी रुचिकर वस्तुएं रख दी जाती हैं। त्यौहारों एवं वैवाहिक समारोहों में पूर्वजों को भी न्यौता भेजा जाता है जिससे वे अपना आशीर्वाद वर्तमान और भावी पीढ़ियों पर बनाए रखें। मृत्यु के अवश्यंभावी होने के बावजूद आदिवासी उन्हें अपने जीवन में निरंतर बनाए रखते हैं। वस्तुतः आदिवासी दर्शन स्वर्ग और नर्क की परिकल्पना को मान्यता नहीं देता है। इसलिए आदिवासी संस्कृति में मृतक की समाधि पर पानी का घड़ा, ताड़ी, सल्फी, आदि रख दी जाती है। खटिया, तुम्बा फूल, हंसिया, टंगिया तम्बाकू की पुड़िया, गमछा, कौए आदि की आकृति उकेर दी जाती है, ताकी दैनिक जीवनचर्या में किसी प्रकार का व्यावधान महसूस न हो।

"तुम चिन्ता न करना बीज पन्डुम में तुम्हें न्यौता भेज देंगे
तुम्हारे बिटिया के ब्याह का तुम जाओ खुशी-खुशी
हमें पता है मेनहीर का आकार सालों बढ़ेगा तेजी से
कि तुम मरने के बाद भी
अपने गांव की मिट्टी के लिए शुभ संकेत छोड़ जाओगे
मृतक स्तंभ के रूप में
तुम्हारा जाना पूर्व निर्धारित होने के बावजूद
हम तुम्हें जाने नहीं देंगे कभी हमारे बीच से"[11]

प्राचीन काल से लेकर अब तक मुख्यधारा का समाज स्त्रियों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करता आया है। स्त्रियां पुरुषों के मुकाबले हमेशा हीं कमतर आंकी जाती रही हैं। भ्रूणहत्या जैसे अपराध कन्याओं के प्रति घोर अनिच्छा का हीं परिणाम है। दहेज जैसी कुप्रथा इसके मूल में विद्यमान है। किंतु आदिवासी जीवन-दृष्टि इन तमाम लैंगिक भेदभाव का नकार करता है, इसलिए यहां न दहेजप्रथा है और न भ्रूणहत्या। यहां युवतियों के पास वैवाहिक स्वच्छंदता है। वे स्वयं वर का चुनाव कर सकती हैं। आदिवासी समाज के साथ -साथ आदिवासी संस्कृति में भी किसी प्रकार का लैंगिक भेदभाव नहीं देखा जाता है। श्रम से लेकर नृत्य तक स्त्री-पुरुष दोनों की सहभागिता अनिवार्य रूप में देखी जाती है। एकल नृत्य के बजाय युगल नृत्य या सामूहिक नृत्य - संगीत की परंपरा आदिवासी जीवन दृष्टि में हीं दृष्टिगोचर होती है, जो मुख्यधारा के संकुचित होते मानवतावाद एवं तेजी से पनप रहे एकाकीपन की संस्कृति को आइना दिखाती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आदिवासी कवयित्री पूनम वासम की कविताओं में आदिवासी जीवन दृष्टि के विविध पहलू परिलक्षित होते हैं। एक ओर जहां अहिंसा और सहजीविता की पुकार है तो दूसरी ओर प्रकृति से आत्मीयता भरे संबंध। एक स्थान पर परंपरा एवं वाचिकता का संगीत है तो दूसरी ओर बाजारवादी मानसिकता के विरुद्ध स्वर -निनाद। कहीं श्रम सिक्त सौंदर्य की अभिव्यक्ति है तो कहीं अपनी संस्कृति को अगली पीढ़ी को स्थानांतरित करने की आकांक्षा। कहीं आदिवासीयों के हितार्थ जल, जंगल, जमीन की रक्षा की पुकार है तो कहीं रूढ़िगत मान्यताओं से आगे बढ़ कर नवीनता का आग्रह भी है। 'मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत' के विश्वास के साथ कवयित्री पूनम वासम अपनी कविताओं में आदिवासी जीवन दृष्टि के साथ - साथ आदिवासी समस्याओं, मान्यताओं और आकांक्षाओं को भी स्वर देती हुई दिखाई देती हैं। नगरीय एवं अभिजात्य संस्कृति के संक्रमण के बावजूद आदिवासी जीवन दृष्टि वर्तमान के कई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते नजर आते हैं जिनपर ध्यान देने की आवश्यकता है।

****** *******

संदर्भ: –

1. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं. 24-25.
2. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021 पृ.सं.141
3. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं.29
4. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं.13
5. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं.53
6. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं.54
7. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं.49
8. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ. सं.89
9. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं.65
10. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021,पृ.सं.63
11. वासम, पूनम, मछलियां गायेंगी एक दिन पंडुमगीत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं.81

राष्ट्र निर्माण के कार्य मे आदिवासी नायकों का योगदान

डॉ.मनोहर भी.येरकलवार
सह-आचार्य, समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र विभाग,
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविध्यालय, अमरकंटक मध्यप्रदेश मो.8625977458

सारांश -:
राष्ट्र निर्माण का कार्य सिर्फ जमीन के टुकड़े से नहीं होता। उस जमीन का संरक्षण और संवर्धन करके राष्ट्र के बढ़ती हुई आबादी को जीवित रखने के लिए धन-धान्य की उपलब्धि करना भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। आदिवासियों ने हजारों सालों से जल, जंगल और जमीन के साथ नैसर्गिक संसाधन का संवर्धन और इसको निरंतर काल तक जीवित रखने का प्रयास किया है। इनके समृद्ध इतिहास को अन्य लोगोंने किताबों, दास्तावेजो और शिलालेखों में जिंदा नहीं रखा है। लेकिन आदिवासीयोंद्वारा उनके लोकगीतों, लोककथाओं, कहानियों, किवदंतियों, मुहावरो, उनके पर्वो और उत्सवों में जिंदा रखा है। दरअसल उनकी जीवनशैली किसी से घृणा करना नहीं सिखाती है। वह प्रकृती और अपने पूर्वजों का आदर करना सिखाती है। उनकी संस्कृति दूसरों की आस्थाओं का भी उतना ही आदर करती है, जितनी अपनी आस्थाओंका करती है। आदिवासियों ने अपने अस्तित्व, अस्मिता और आत्मसम्मान के लिए सदैव जागृत रहते हैं। वे सामूहिक सोच, सामूहिक जीवनशैली, समूहिक कार्य के साथ-साथ सामूहिक जिंदगी जीते हैं। जहां ऊंच-नीच और जात-पात का सवाल ही नहीं होता है। यह समाज लोकतंत्र का पोषक है। नीचे से लेकर ऊपर तक उनकी चयनित व्यवस्था जो भाईचारा, समानता और आजादी के खंभों पर टिकी हुई नजर आती है। भारत को एक विशाल राष्ट्र बनाने के लिए आदिवासी महानायकोंद्वारा हजारों सालों से बाहरी आक्रमणकारियों से इस धरती की होनेवाले विध्वंसों से बचाने के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करके राष्ट्र की संपन्न वनसंपदा को बचाकर रखते हुए राष्ट्र निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

बिज शब्द -:आदिवासी नायक, राष्ट्रनिर्माण, सामाजिक चेतना, आंदोलन.

प्रस्तावना -:

आज हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं और एक तरफ जनजाति क्षेत्रों का विकास जितना होना चाहिए उतना नहीं हो पाया है। इस कारण कई जनजाति लोगों को रोटी, कपड़ा, मकान के साथ-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार की समस्याओं से भी लड़ना पड़ रहा है। देश मे हजारों की संख्या में भूख से मौत हो रही है। सरकारी नीतियों के कारण आदिवासी लोग त्रस्त है। प्राकृतिक रूप से कोई भी मौसम हो, चाहे चिलचिलाती धूप हो, या मंशा की बर्फीली जड़े की रात, या फिर बरसातों में बाढ़ से तबाही इन सभी प्राकृतिक आपदाओं में वे लोग भूखे है और बिना छत के खुले आसमान में जीवन जीने को मजबूर होते हुए दिखाई देते है। आदिवासी लोग घर बनाने के लिए या उपजीविका चलाने के लिए यदि जंगल काटते हैं, तो सरकार का वन अधिनियम इन पर कड़ा प्रतिबंध लगा देता है। और वन्य पशुओं को मार कर खाते हैं, तो भी उन्हें गिरफ्तार किया जाता हैं। गिरफ्तार करने के बाद इतनी निर्दयता से उनको यातनाएं दी जाती है की, जिसके बारे मे हम सोच भी नहीं सकते। उन्होने ही हजारो सालो से भारतीय जल, जंगल और जमीन को बचाके रखा है। उनको ही उसका उपयोग करने से इस तरह से सजा दी जाती है । अतीत से वर्तमान तक जब भी कोई आंदोलन हुआ है, तो उसके मूल में सामाजिक व आर्थिक संरचना की कमजोर कड़ी अवश्य शामिल रही है। क्योंकि शताब्दी पूर्व अरस्तु ने कहा था कि, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही अपने सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। लेकिन यदि भारतीय सामाजिक संरचना का गहनता से अध्ययन किया जाए तो वही मिलता है कि, कुछ जातियां प्राचीन काल से ही कई सारे समस्यों से प्रताड़ित रही है। उन्हे अस्पृश्य, जंगली, वनवासी कहाँ जाता है। इस तरह से हजारों सालों से इस तरह की पीड़ा, वेदना को झेलते हुए भारत की कई सारी जनजातियां सदैव अपने आत्मसम्मान की लड़ाई लड़ते हुए दिखाई देते हैं। इस धरातल पर ऐसा भी एक समाज है की, जो अनाज को आने से पहले, या धरती को जोतने से पहले उनसे दुख पहुंचाने के लिए क्षमा मांगता है। इनके प्राचीन 'खासी - गारो परंपरा में राज्य या राजा द्वारा कर लगाने की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। यहां तक कि जनता द्वारा चुना हुआ, राजा जो एक राजा की हैसियत रखता था। राजा को प्रजा पर टैक्स या कर लगाने का अधिकार नहीं था। वह बाजार - हाट से उपहार के रूप में मिले सामान से अपनी गुजर करता था और प्रशासकीय गतिविधियां चलाता था।"[1] इस तरह से प्राचीन काल मे भी आदिवासी समुदाय लोकतंत्र के माध्यम से राजपाठ चलाते थे। धिरे- धिरे उनके राजव्यवस्था पर अन्यों द्वारा हमला होने लगा। जब-जब अन्याय हुआ है, तब-तब वह अपने न्याय के लिए लढ़े है। उनके पास समझ थी, विचार थे, न्याय-अन्याय का विवेक था और उचित-अनुचित, सही-गलत की परख थी। मुक्त रहने की अवधारणा और सहयोग की क्षमता भी थी । इसीलिए तो वे मुघल और विदेशी अंग्रेज शासकों के विरुद्ध सबसे पहले विरोध का झंडा बुलंद कर दिया था।

भारतीय आदिवासियों के इतिहास को मैदानी लोगों ने दास्तावेजो और शिलालेखों में जिंदा नहीं रखा है। लेकिन उनके द्वारा लोकगीतों, लोककथाओं, किवदंतियों, मुहावरो और उनके पर्वो व उत्सवों में जिंदा रखा है। दरअसल आदिवासी जीवनशैली किसी से घृणा करना नहीं सिखाती है। वह प्रकृती और अपने पूर्वज का आदर करना ही सिखाती है। उनकी संकृती दूसरों की आस्थाओं का भी उतना ही आदर करती है, जितनी अपनी आस्था की करती है। वे अपने अस्तित्व, अस्मिता और आत्मसम्मान के लिए सदैव जागृत रहते हैं। उनके अस्मिता की रक्षा के लिए उनकी भाषा और उनकी संस्कृति का जिंदा रहना बहुत जरूरी है। जल, जंगल और जमीन के बिना आदिवासी समुदाय की कल्पना करना भी असंभव है। आदिवासी समाज आज की नई व्यवस्था के विरुद्ध में विद्रोह कर रहा है। क्योंकि यह सभ्य कहे जानेवाली व्यवस्था उसके अस्तित्व और अस्मिता दोनों की जीवनदाई शक्तियों और स्रोतों का विनाश कर रही है। उन्हे गवार, असंस्कृत और असभ्य कह रहे है। इसतरह से उन्हे पलायन, विस्थापन और बेरोजगारी के लिए विवश कर रही है। इसी कारण आज जंगल का मोह टूट रहा है। हालांकि जंगल सदियों से उनके जीवन का अविभाज्य अंग रहा है।

अध्ययन के उद्देश -

राष्ट्र निर्माण के कार्य मे आदिवासी नायकों के योगदान को जानना।

तथ्य संकलन -

अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। शोध पत्रों, समाचार पत्रों, इंटरनेट, संदर्भग्रंथ, शोध पत्रिकाओं का उपयोग किया गया है।

राष्ट्र निर्माण के कार्य मे आदिवासी नायकों का योगदान -

राष्ट्र निर्माण का कार्य सिर्फ जमीन के टुकड़े से नहीं होता। उस जमीन का संरक्षण और संवर्धन करके राष्ट्र के आबादी को जीवित रखने के लिए धन-धान्य की उपलब्धि करना भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। हजारों सालों से जल, जंगल और जमीन के साथ नैसर्गिक संसाधन को बचा के रखना और इस संसाधन को निरंतर काल तक जीवित रखने का प्रयास हजारों सालों से जंगल के दावेदार आदिवासी द्वारा ही किया गया है। इसके संरक्षण और संवर्धन के लिए उन्हें अभी तक अंग्रेजों से लड़ना पड़ा। अंग्रेजों से पहले मुगलों से भी लढते लढते अपने प्राण न्योछावर करके धरती को बचाने के लिए प्रयासरत थे। आज देश को आजादी मिलने के बाद भी उन्हें वनसंवर्धन को संझाए रखने के लिए ठेकेदार, शासन और प्रशासन से भी लड़ना पड़ रहा है। आज आज़ादी को 75 साल पूरे हो गए हैं और देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है। तो एक तरफ इसी देश के मूल निवासी जिन्होने आजादी का बिगुल सबसे पहले लगाई थी वह इस आजादी के अमृत महोत्सव काल में कहां है? बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, रोजगार, आरक्षण का लाभ, जमीन के पट्टे इस तरह से कई सारी समस्याओं का सामना आज भी उनको करना पड़ रहा है। उनकों आज भी ठेकेदार, साहूकार, सरकारी व्यवस्था और पुलिस

प्रशासन से आजादी का ठीक से श्वास लेना भी मुश्किल लगता है। राष्ट्र निर्माण के कार्य में हजारों सालों से आदिवासी इस देश की, इस धरती की सेवा की है और मातृभूमि को बाहरी आक्रमणकारियों से कड़ा मुकाबला करके राष्ट्र के संपत्ति का रक्षण किया है। यही उनका राष्ट्र निर्माण में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान साबित होता है। आजादी मिलने के बाद सरकारी अधिकारी, शासन, प्रशासन, राजनीतिक लोग भी राष्ट्र निर्माणकर्ताओं के तरफ जल, जंगल और जमीन की तरफ बुरी नजर से देखते हुए उन्हें समस्याओं की ओर ले जा रहे हैं। मुस्लिम शासकों के पहले से ही आदिवासी समाज अपने स्वयं शासन द्वारा निर्देशित और नियंत्रित होती थी। जिसमें उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक नीति शामिल थी। मुसलमानों के पहले छोटानागपुर क्षेत्र में नागवंशी राजा मुंडा तथा उरांव के प्रमुख रूप में हुआ करते थे। 16 वीं सदी के अंत में उन्हें मुगल शासकों द्वारा उनके राज्यों को तंग किया जाना प्रारंभ हुआ। 1564 में मुगल सेना ने आदिवासियों के गढ़ को अपने अधीन कर लिया और अंत में गोंडवाना के गोडों को मुगल सम्राटों की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी। उन्होंने छोटानागपुर व अन्य क्षेत्रों के उरांव, मुंडा तथा हो आदिवासियों के ऊपर आतंक फैलाया जाने लगा। इसके बाद तो सामाजिक, संस्कृति हमले होते रहे और मुसलमान शासक मुगल बादशाह आलम द्वितीय ने 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दी। इस तरह मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन कार्य में आ गए। "भारत में 1857 की लड़ाई से बहुत पहले 1774 में ही जैंतिया राजा के साथ अंग्रेजों को युद्ध लड़ना पड़ा था। 1822 में गारो जैंतिया पर हमले शुरू हुए, तो 1826 में जैंतिया सरदारों ने अंग्रेजों को बाहर निकालने की योजना बना ली और राजा तिरोत सिंह ने युद्ध छेड़ दिया।"[2] वह कई वर्षों तक चला, पर भारतीय इतिहासकारों ने इसे दर्ज नहीं किया है। '1859 की अबरदीन की लड़ाई में अंग्रेजी फौजों ने हजारों की तादात में ग्रेट अंडमानी ट्राइब के लोग मार दिए थे।' [3] यह लड़ाई अंग्रेजों के बन्दुको और अंदमान जनजातियों के तीर कमान के बीच में हुआ था। इस लड़ाई में आदिवासियों ने अपनी जान खतरे में डालकर तीर कमान से लड़ाई की। मगर बंदूक की दनदनाते गोलियों के आगे तीर कमान कहां तक चल सकत है। इस तरह इस युद्ध में हजारों की तादात में ग्रेट अंडमानी आदिवासी लोग मारे गए। कुछ लोग घायल हुए और कुछ लोग जंगलों में छिपते रह गए। इस तरह से इस युद्ध में जनजातियों का हजार सालों का प्राकृतिक जीवन नष्ट हो गया। युद्ध में मारे जाने के कारण आदिवासी शारीरिक और मानसिक रूप से जंगल के बाहर भी नहीं आ सके। इस तरह अंडमान द्वीप समूह मे उनकी जनसंख्या दिन-ब-दिन घटती चली गई।

प्राचीन काल में भारत की जनजातियां इतनी पीड़ित नहीं थी। इसका कारण यह था कि, पुराने समय में जल, जंगल और जमीन पर किसी सरकार या राजा का शासन नहीं चलता था। इसलिए जंगल की यह जनजातियां अपने-अपने इलाकों में अपने-अपने तौर-तरीकों से स्वच्छंद जीवन जीने के लिए स्वतंत्र थे। इस तरह प्राचीन काल में आदिवासी जनजातियां आदिम स्वरूप में ही रहा करती थी। "आदिवासियों का प्रथम आंदोलन चुहाड विद्रोह था। जो सन् 1768 से 1790 के दौरान हुआ था। जो मिदनापुर, बांकुरा, वीरभूम और ढलभूम तक फैला हुआ था।"[4] इतिहास के दौर में आदिवासियों को प्राचीन काल से लेकर आज तक बाहरी आक्रमण का सामना करना पड़ा है। हर बार उन्होंने अपनी बहादुरी के साथ आक्रमणकारियों का कड़ा मुकाबला किया है। लेकिन उनकी शौर्यगाथाओं को इतिहास के पन्नों में वह जगह नहीं मिल पाई जिसकी वे हकदार थे। आदिवासी समाज अपने इतिहास को लिपिबद्ध करने में असमर्थ था, क्योंकि उनके पास न लिपि थी और ना ही शिक्षा थी। और वे इतने जागरूक भी नहीं थे। इसलिए आदिवासी शूरवीर योद्धाओं का इतिहास भारत के इतिहास में सही तरह से नहीं लिखा गया है। फिर से अनुसंधान करके आदिवासी योद्धाओं का सही इतिहास लिखने की सख्त जरूरत महसूस होती है। आदिवासी शूरवीरों के बारे में अंग्रेज अधिकारियों ने अपने डायरी में इनके बारे में जो नोट किया गया था, उसी के आधार पर इतिहास में इनकी दखल ली गई है यह परिपूर्ण नहीं है। अंग्रेज अधिकारियों ने अपने दस्तावेज में खुद यह तथ्य दर्ज किया है कि, "दूर से नगाड़े बजने की आवाज आती थी। सैनिक गोलियां चलाते थे। कुछ देर बाद नगाड़े बजने बंद हो जाते थे। फिर कुछ देर बाद दूसरी और नगाड़े दनदनाते थे। अंग्रेजी सेना उसी दिशा में गोलियां बरसती थी। सभी मारे जाते थे। पर वे युद्ध भूमि छोड़कर भागते नहीं थे।"[5] यह तथ्य सामने आता है कि, अंग्रेज सैनिक उन निर्दोष लोगों को मारकर अपने कर्म पर शर्मिंदा होते थे। यह अंग्रेज अधिकारियों के डायरी में दर्ज है। इस तरह से कई आदिवासी योद्धा है, जिन्होंने आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन को बचाकर रखने के लिए अंग्रेजी शासन के खिलाफ जंग लढते शहीद हुए हैं।औपनिवेशिक काल में जितने भी विद्रोह आदिवासी नायकों ने किए हैं। उतने विद्रोह भारत की किसी भी जाति या शूरवीरों द्वारा नहीं किया गया। इसका कारण था कि, औपनिवेशिक काल में अंग्रेजोंद्वारा आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन का वास्तविक आधार ही छीन लिया गया था। इसीलिए आदिवासियों ने उसकी रक्षा के लिए अंग्रेजों से पहली बार युद्ध का ऐलान किया। भारत में अंग्रेजो के खिलाफ सबसे ज्यादा विद्रोह तो झारखंड में ही हुआं है। इसमें मुंडा, संथाल, हो और भूमिज आदिवासियों ने निर्णयकारी भूमिका ली और यह आंदोलन सबसे लंबा काल तक चला। आदिवासी आंदोलन के विद्रोह स्वरूप को देखकर लेफ्टिनेंट क्लीवलैंड ने भारत के आदिवासियों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए और 'फोडो और जोड़ो' इस नीति के अनुसार उन्होंने "आदिवासी सरदार और मानसी को लाल पगड़ी और नीले कपड़ों के साथ क्रमशः माहवार दस और दो रूपए वेतन देना प्रारंभ किया। सन 1780 में 400 आदिवासियों की सिपाही के रूप में भर्ती हुई थी।"[6] इस तरह से उसने इन सिपाहियों का इस्तेमाल उनके अपने लोगों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए किया गया। इस काल में शोषण और अत्याचार के विरोध में अनेक आदिवासी विद्रोह का वर्णन इतिहास में तो नहीं मिलता। मगर अंग्रेजों की डायरी मे और सरकारी बजट मे या लोककथाओं में उसके बारे में जानकारी पाई जाती है।

आदिवासी नायकों का जनआंदोलन अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ उभरा था। इतिहास से यह प्रमाणित होता है कि, संताल-हुल आंदोलन आजादी के लिए लड़े गए सिपाही विद्रोह की ही एक कड़ी थी। इस आंदोलन के बारे में "कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक नोट्स ऑन इंडियन हिस्ट्री में इस विद्रोह को भारत की पहली जनक्रांति बताते हैं।"[7] 1830 के कोल विद्रोह के प्रवर्तक बुधु भगत की मिसाल तो इतिहास में कहीं नहीं मिलती। शायद विश्व में पहली बार किसी वीर की रक्षा के लिए उनके साथियों ने कतार लगाकर एक मानव दीवार खड़ी कर दी थी। एक एक योद्धा मारा जा रहा था। पर कोई भी बुधु भगत के पास अंग्रेजी सेना को आने नहीं दे रहे थे। सभी साथी मारे गए तो बुधु भगत ने खुद अपना गला काट लिया क्योंकि उन्होंने प्रण किया था कि, वह कभी भी जिंदा अंग्रेजों के हाथ नहीं आएंगे। इस तरह भारत के आदिवासी आखिरी दम तक युद्ध लड़ते थे और मारे जाते थे। पर कोई आत्म समर्पण नहीं करते थे। यही आदिवासियों की वीरगाता है। इसलिए इनका इतिहास में कोई नाम नहीं है। ऐसे कई हजारों आदिवासी योद्धा हुए जिन्होंने अंग्रेजो के खिलाफ अपनी जान जाने तक लड़े मगर अंग्रेजों के शरण नहीं गए। ऐसे आदिवासी वीरों की इतिहास में नाम नहीं लिया जाता है। जो कभी इतिहास लिखने वालों के सामने नहीं आए। वे अपने वतन के लिए लड़ते थे, मरते थे। ओपनिवेश काल मे वह अपने ही घर में बेगाने हो रहे थे। महाजनों द्वारा उनकी जमीनें हड़पने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। इसके विरोध में बिरसा मुंडा ने 1895 में अंग्रेजो के खिलाफ युद्ध की धुन बजाई और उन्हें जेल में डाल कर मार देने का व्यूहरचना अंग्रेजों ने रचाई। इस तरह से आदिवासियों के संघर्षों को रोकने के लिए अंग्रेजों को कानून बनाकर आदिवासियों को छूट देना ही पड़ा। इसके बाद में आदिवासियों के साथ कतार ही लग गई विद्रोह की। सशस्त्र संघर्ष का यह सिलसिला 1908 तक चलता रहा। एक से बढ़कर एक आदिवासी योद्धा अंग्रेजों से लड़ते लड़ते शहीद हो गए। उन्होंने कभी समर्पण नहीं किया। पहाड़ियों से तंग आकर अंग्रेज कमिश्नर व अधिकारियों को तो आदिवासी वीरों की शर्त मानकर स्वायत्त शासन की छूट देनी पड़ी। इस तरह का आदिवासी वीरों का दरार था।

स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा आदिवासियों की संस्कृति का हिस्सा ही नहीं, बल्कि उनकी आदत है, जीवन शैली है। उपनिवेश काल में आदिवासियों ने अपनी इज्जत, और जल, जंगल, जमीन को बचाने के लिए

हाथ में बंदूक थाम ली। कालांतर में ब्रिटिश सरकार ने जब अपने शासन को सुदृढ़ बनाने की कोशिश की तब जाकर उन्होंने भारत के तमाम वंचित तबकों के बारे में सोचना शुरू किया और आदिवासियों को डिस्प्रेड क्लास की श्रेणी में रखकर इनके हितों के संरक्षण की योजना बनाने की शुरुवात की, लेकिन तक यह जनजातियां ब्रिटिश शासन की दमनकारी व्यवस्था से बचकर रहने के लिए शहरी क्षेत्रों से दूर हो चुकी थी। वे खुद ही अपने को इस व्यवस्था से जोड़ना नहीं चाहती थी। उन्होंने अपने लिए एक स्वतंत्र और पृथक क्षेत्र का निर्माण करना चाहती थे। इसलिए वे दूरदराज के जंगलों में रहकर अपने आप में खुशहाली और आनंद मैं निसर्ग के साथ जीवन जीना पसंद कर दिए थे। इसतरह उन्हे आज भी अपने ही इलाकों में रहना अच्छा महसूस होता है।

निष्कर्ष :-

भारतीय आदिवासी समुदाय की त्रासदी है कि, उनका समृद्ध गौरवशाली इतिहास, साहित्य, और देश की रक्षा के लिए दिया गया योगदान को ध्यान में लेकर उनके सर्वांगीण विकास के लिए शासन- प्रशासन द्वारा प्रयास करना बहुत जरूरी है। आदिवासी समाज ऐसा समाज है, जो प्राकृतिक वनसंपदाओं से सर्वाधिक समृद्ध भू-भाग पर निवास करने के बावजूद भी बुनियादी सुविधाओं से वंचित होते हुए नजर आती हैं। उन्हें बार-बार अपने अस्तित्व के लिए कई सारे संकटों का सामना करना पड़ता है। जिनका राष्ट्र निर्माण के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारत को एक विशाल राष्ट्र बनाने के लिए आदिवासी महानायकोंद्वारा हजारों सालों से बाहरी आक्रमणकारियों से इस धरती पर होनेवाले विध्वंसों से बचाने के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर राष्ट्र की सेवा करते हुए, इस राष्ट्र के धरती की संपन्न खनिज द्रव्य, वनसंपदा को बचाकर रखते हुए, राष्ट्र निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आदिवासी समाज द्वारा प्रकृति के संरक्षण के लिए अनेक बार बाहरी और आंतरिक आक्रमण का भी सामना करना पड़ा। आवासियों ने अपने पारंपरिक हथियारों और छापेमारी के साथ युद्ध शैली के जरिए दुश्मनों का भी बहादुरी के साथ मुकाबला किया है। आज के काल में आदिवासियों की मुसीबत ऐसी हो चुकी है कि, वह अपने घर में ही बेघर हो गए हैं। अपने ही गांव में परदेसी बन गया है। अपने ही देश में अल्पसंख्यक हो रहे है। अगर ऐसी स्थिति आदिवासियोंकी बनती रही तो उनका अस्तित्व आनेवाले दिनों में खत्म होने मे समय नही लगेगा। जो इस राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

******

संदर्भ :-

1. गुप्ता, रमणिका (2013) आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 59.
2. वही, पृष्ठ क्रमांक 101.
3. गुप्ता, रमणिका (2012), आदिवासी अस्मिता की पड़ताल करते साक्षात्कार, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 12.
4. कातुलकर, रत्नेश (2018), बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर और आदिवासी प्रश्न? सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 18.
5. गुप्ता, रमणिका आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह सुरभि प्रकाशन दिल्ली पुस्तक क्रमांक 11.
6. वही, पृष्ठ क्रमांक 95.
7. वही, पृष्ठ क्रमांक 110.

आदिवासी मराठी साहित्य : एक विचार

(महाराष्ट्र के आदिवासी जीवन पर आधारित काव्य संग्रह 'वनवासी' के संदर्भ में)

नितीनकुमार जानबाजी रामटेके

सहायक प्राध्यापक मराठी (सी. एच. बी.),
म. गां. कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविदयालय,
आरमोरी, जिला गडचिरोली (महाराष्ट्र)
मो. 9767305657

प्रस्तावना:-अंग्रेजों के शासन काल में बहुजन वर्ग के लोगां को पढने लिखने का अधिकार मिला और पढ़े-लिखे लोगों की पीढ़ियों का निर्माण होना शुरू हुआ। शिक्षा के प्रभाव के कारण समाज की परंपरा, अंध-श्रद्धा, जात-धर्म, भाषा, लिंग, प्रदेश आदि के संबंध में नए से विचार-विनिमय शुरू होने लगा। 19 वीं सदी में महात्मा फुले, सावित्री बाई फुले, छत्रपति शाहू महाराज और 20 वीं सदी में विश्वरत्न डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर आदि के सामाजिक एवं वैचारिक क्रांति के कारण दलित एवं आदिवासी समाज जागृत होने लगा।

भारत में लोकशाही गणराज्य प्रणाली के कारण पूरे देश में पहले दलित साहित्य, ग्रामीण साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य के बाद (1970 के बाद) मराठी साहित्य में आदिवासी साहित्य का निर्माण होना शुरू हुआ। मराठी समाज के गैर-आदिवासी साहित्यकारों ने अपने अनुभवों को व्यापक बनाया और दया, सहानुभूति, प्रेम आदि के कारण आदिवासी जनजीवन को रेखांकित करने का कार्य प्रारंभ किया।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा का उपयोग कर आदिम जनजाति के संवेदनशील, सृजनशील, जागृत साहित्यिकों की पीढ़ी का निर्माण हुआ और इस पीढ़ी ने आदिम, आदिवासी, दूर-दराज, अरण्यवासी परिवेश के अनुभवों, अन्यायों, अत्याचारों आदि को लिखित रूप में लोगों के सामने लाया एवं इनके मौखिक लोकगाथाओं, परम्पराओं, गीतों आदि को लिपिबद्ध किया।

भारतीय समाज को समाज शास्त्रीय दृष्टि से शहरी और ग्रामीण दो मुख्य भागों में वर्गीकरण किया जाता है परंतु ऐसा वर्गीकरण करते समय एक महत्वपूर्ण भारतीय समाज दुर्लक्षित रह जाता है, जो जंगलों में रहता हैं, वह आदिवासी समाज हैं। आदिवासी समाज निर्धन, निरक्षर होगा परंतु उनकी अपनी बोली, संस्कृति, मातृसत्ता कुटुंब पद्धति, सेवा भाव, समूह में रहना और पराक्रम एवं साहस आदि उनकी विशेषताएं हैं। आदिवासियों की संस्कृति ने भी भारतीय संस्कृति को बहुत कुछ दिया है, परंतु संस्कृति की मुख्यधारा ने कभी भी जंगल के बाशिंदो को भारतीय संस्कृति की मुख्यधारा का अंग नहीं समझा। आदिवासी साहित्य, उन वन जंगलों में रहने वाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया, यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है।

आदिवासी साहित्य अक्षर से वंचित रहा, इसलिए वह उसकी कल्पना और यथार्थ को लिखित रूप में न तो साहित्य में दर्ज कर पाया और न ही इतिहास में। हाँ, लोकगीतों, लोककथाओं तथा मिथकों के माध्यम से लोकगान में उसकी गहरी पैठ है। इनमें उसकी संपूर्ण परंपरा, इतिहास और उसकी गौरवशाली शौर्य-गाथा वर्णित है जिसे तलाशना जरूरी है। यह तलाश शुरू हो गई है। वह शिक्षित होने लगा और अक्षर से उसका परिचय हुआ।

प्राचीन महाराष्ट्र के संबंध में पता किया तो ज्ञात होता है, कि महाराष्ट्र में गोंड, भील, कातकरी, वारली आदि इस भूभाग के प्रारंभिक रहिवासी हैं। -डॉ. श्री. व्यं. केतकर.'आदिम भारत' के नकारे हुए, उपेक्षित, वंचित जनसमूह का दुःख 'आदिवासी साहित्य' से साकार होता है। आदिवासी साहित्य के माध्यम से आदिवासी जनसमूहों की व्यथा, वेदनाओं, राग आदि को शब्द का रूप प्राप्त हुआ है। 1980 के बाद मराठी साहित्य में आदिवासी कविता का आना शुरू हुआ। महाराष्ट्र के आदिवासी लोगों के जीवन पर लिखित पहला दीर्घ काव्य संग्रह डॉ. उत्तमराव धोंगडे का 'वनवासी' (1984) है। इस काव्य

संग्रह में तीन सौ रचनाएँ है। स्वतंत्रता के 30 -35 साल बाद आदिवासी समाज जीवन के वर्तमान वास्तव को इस काव्य में दिखाया है। इन तीन सौ काव्य रचनाओं में से केवल 5 रचनाओं को इस शोध-आलेख में अंतर्भूत किया गया हैं।

झाडे-वेली जंगली परोपकारी, देई फुले फळे
देई भाकरी पोटास तुमच्या, स्वतः चुलीत जळे.''

कवि उपर्युक्त दो पंक्तियों में कहना चाहता है कि मनुष्य के पास परोपकार, दया, सहानुभूति नहीं हैं। हमें पेड़ पौधे फल- फूल देते हैं, इतना ही नहीं, जब वह चूल्हे में जलते हैं तब हमें खाने को रोटी मिलती है। इसलिए कवि कहना चाहता है कि आदिवासी लोग पेड़-पौधों के परोपकार को मानते हैं।

केले पारखे ज्ञानाला, डोळे आंधळे प्रस्थापितांनो
आसवांच्या होतील ज्वाळा, जाळण्यास तुम्हा
मूर्खांना''

कवि उपर्युक्त दो पंक्तियों में कहता है कि आदिवासियों को शिक्षा से दूर रखा गया, हमें अज्ञानी ही रहने दिया गया और हम पर अन्याय करते ही रहें। अनार्य लोगों को आंखे होते हुए भी, वे अंधे ही रहें, उनको हमारी तकलीफ नहीं दिखाई दी। हमारी आँखों से निकलते हुए आंसू ज्वाला बनेंगे और आप जैसे मूर्ख लोगों को जलाएंगे।

बहुत भूभागी देशात होती, साम्राज्ये वनवासींची
पिसून खेळून मोडलीत, जशी स्थिती पत्यांच्या
बंगल्याची.''

कवि कहता है कि वनवासियों का भारत देश के बहुत से प्रांतों पर शासन था। वनवासी लोग इस देश में बहुत खुशहाली से जीवन जी रहें थे, आज भी उनकी संपन्नता, शूरता, मातृसत्ता कुटुंब परंपरा, सामूहिक जीवन पद्धति, पुराने किले आदि यह साक्ष्य देते हैं कि उनकी संस्कृति सर्वश्रेष्ठ थी। परंतु बाहर से आये लोगों ने यहाँ के मूल निवासियों को धोखे से उनका शासन, उनकी सभ्यता, परंपरा, उनका साम्राज्य छीन लिया और अपने नाम से सामने लाए जा रहे हैं। ताश के पत्ते के खेल में जिस तरह पत्ते पीसकर बांटे जाते हैं, उसी तरह कवि कहता है कि ताश के पत्तों का अगर बंगला बनाया जाये और उनमें से नीचे का एक पत्ता निकाल दिया जाये, तो सभी पत्ते बिखर जाएंगे। उसी तरह वनवासियों का भारत के बहुत से प्रांतों पर जो साम्राज्य था, उसकी नीव को खोखला कर, उनके साम्राज्य को नेस्तनाबूत कर दिया गया और उनकी संस्कृति नष्ट कर दी। जो कुछ भी लोग उनकी संस्कृति का जतन किये हुए थे, उन लोगों ने अपनी संस्कृति आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित कर दी। परंतु आधुनिकीकरण के दौर में और हिंदू संस्कृति के प्रभाव में वनवासी लोग अपनी सर्वश्रेष्ठ संस्कृति को दबाते रहें, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह अपनी सर्वश्रेष्ठ संस्कृति भूल गए।

असती जरा लाज मनाची, नसती केली वर्णव्यवस्था
आमच्याच भूमीत उपरे आम्ही, नसती झाली
दुरावस्था''

कवि उपर्युक्त दो पंक्तियों में कवि कहता है कि बाहर से आये हुए आर्य लोगों को जरा भी शर्म नहीं आई कि उन्होंने वर्णव्यवस्था का निर्माण कर, लोगों को उच्चता -नीचता में बाँट दिया। हमें जंगल, पर्वत-दरियों में रहने को मजबूर कर दिया, हमारी ही भूमि से हम लोग पराये हो गए और हमें अंधकार में जीवन जीना पड़ा।

बांधून हाताने तोंड आमचे, लिहिलीत खोटी पुराणे
लिहू रक्ताने इतिहास आम्ही, दाती धरून सुळाने
प्रत्येक पानी त्या ग्रंथाच्या, असेल विचारला जाब
छळवाद, भोगवाद, करुणा, पिळवणुकीचा हिशोब.''

कवि कहता है कि आर्य लोगों ने अनार्य लोगों के साथ छल कर, उनके मुंह को बंद कर दिया। आदिवासियों के खिलाफ झूठे दस्तावेज तैयार कर उसमें गलत, झूठा एवं स्वार्थ मूलक इतिहास लिखा। इतना ही नहीं, उन्होंने यहाँ के मूले निवासी एवं दलित वंचित लोगों के साथ छल, कपट, शोषण एवं अन्याय, अत्याचार भी किया।

अब यहाँ के मूल निवासी, शोषित, वंचित, पीछड़े लोग जो अब पढ़ लिख रहें हैं, सोच-विचार कर रहे हैं, जो अब प्रतिरोध की भावना से अपने गौरवशाली इतिहास को अपने खून से लिखेंगे और उस हर एक पन्ने पर प्रश्न पूछा जायेगा कि आपने यहाँ के मूल निवासी, दलित, वंचित लोगों के साथ क्यों अन्याय किया ?, क्यों शोषण, छल, कपट किया ?, क्यों हमें हमारी ही जमीन से निकाला गया ?

निष्कर्ष:-

कवि डॉ उत्तमराव धोंगडे ने 'वनवासी' काव्य संग्रह में आदिवासी लोगों को पढ़-लिखने के बाद उनमें जागृत होने वाली चेतना, उन पर हुए अन्याय, अत्याचार, उनके हक, अधिकार, उनकी गौरवशाली संस्कृति, उनका साम्राज्य, उनके संबंध में लिखे गए गलत इतिहास आदि के संबंध को दर्शाने के लिए मार्मिक काव्य रचनाएँ की गई हैं। इनकी काव्य रचनाएँ आदिवासियों की निसर्ग के प्रति प्रेम भावना के इतिहास को दिखाती है।

वेदना, विद्रोह एवं उसके साथ परिवर्तन की आशा रखने वाला यह काव्य संग्रह आदिवासी जीवन के यथार्थ को एक व्यापक पृष्ठभूमि के साथ पाठक के सामने प्रस्तुत करता है।

****

संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. गारे, गोविंद. (2013).आदिवासी समस्या आणि बदलते संदर्भ. पुणे. सुगावा प्रकाशन.
2. डहाके, वसंत आबाजी.(2005).मराठी साहित्य इतिहास आणि संस्कृति. मुंबई. पोपुलर प्रकाशन.
3. पाटिल, अशोक डी.(1998). भील जनजीवन और संस्कृति. भोपाल. मध्यप्रदेष हिंदी ग्रंथ अकादमी.
4. मेश्राम, भुजंग.(2014). आदिवासी साहित्य आणि अस्मितावेध, मुंबई. लोक वाड्.मय गृह.
5. वाल्हेकर, ज्ञानेश्वर.(2012). आदिवासी मराठी साहित्य एक अभ्यास. औरंगाबाद. स्वरुप प्रकाशन.

अस्तित्व की तलाश में सिमरन: किन्नर अस्मिता का जीवंत दस्तावेज

डॉ.नीरज शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, वर्द्धमान विश्वविद्यालय (प.बं.)9477228904,7601802322

अस्तित्व की तलाश में सिमरन मोनिका देवी का उपन्यास है। मोनिका देवी अपने इस उपन्यास के 'आमुख' में ही स्पष्ट कर देती हैं कि इस उपन्यास को लिखने के पहले मैंने किन्नर जीवन से संबंधित कई उपन्यासों को पढ़ा जिसमे किन्नर जीवन के यथार्थ की झलक देखने को मिलती है। किन्नरों पर आधारित 'शबनम मौसी' और 'दरमियान' नामक फ़िल्म देखीं जिससे किन्नरों के जीवन का यथार्थ वह जान सकें। सोशल मीडिया के माध्यम से उनकी मुलाकात सिमरन सिंह से होती है जो उन्हें किन्नरों के रीति- रिवाज, संस्कारों के बारे में तथा अपने जीवन के बारे में बताने के लिए राजी होती है। सिमरन सिंह से हुई बातचीत और मुलाकात से मोनिका देवी को किन्नरों के बारे में बहुत कुछ जानने और सीखने को मिला जिसे उन्होंने अपने इस उपन्यास में लेखनी बद्ध करने का प्रयास किया है।

इस उपन्यास का कथानक यथार्थ से जुड़ा हुआ है परंतु इसमें कल्पना का भी समावेश किया गया है। मोनिका देवी इस उपन्यास को लिखने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि-"... मेरा उद्देश्य यह भी है कि लोगों को किन्नरों की जिंदगी का सच पता चल सके। हमारा समाज यह समझता है कि इनका जीवन बहुत आरामदायक है। उनको भी इस बात का ज्ञान होगा की ये लोग कितने आनंद से अपना जीवन यापन करते हैं। हर वक्त अपनों से दूरी का गम, त्योहारों में अकेलापन यही इनके जीवन का आधार बन जाता है"। (देवी मोनिका, अस्तित्व की तलाश में सिमरन, माया प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण- 2019, पृ.- 08)

112 पृष्ठों और 21 अध्यायों में विभक्त यह उपन्यास एक किन्नर की समूचे जीवन की कथा है, यथार्थ कथा है। एक किन्नर के रूप में जन्म लेकर, इस समाज में स्वयं के अपने घर- परिवार से लेकर समाज में उसे कैसी स्थितियों- परिस्थितियों से दो चार होना पड़ता है, इन्हीं परिस्थितियों को इस उपन्यास में विस्तारपूर्वक चित्रित किया गया है। किन्नर का अर्थ होता है, वह नर जो नर होते हुए भी नर नहीं है, नारी देह तो है लेकिन पूर्ण रूप से नारी नहीं है।

समाज सोचता है कि इन किन्नरों की जिंदगी बड़े ऐशो आराम की जिंदगी होती है किंतु वास्तविकता इन सबसे अलग है। किन्नरों को जन्म से ही अपने परिवार का बहिष्कार झेलना पड़ता है, समाज भी उन्हें अपनाता नहीं। अपने परिवार के द्वारा परित्यक्त ये किन्नर कैसे एक नरकीय जीवन जीने को विवश होते हैं इस बात को बड़ी सरलतापूर्वक स्पष्ट करती हैं लेखिका। कोई किन्नर भीख मांग कर अपना जीवन यापन नहीं करना चाहता किंतु समाज द्वारा परित्यक्त, शारीरिक व मानसिक शोषण के शिकार यह किन्नर भीख मांगकर अपना जीवन यापन करने को विवश होते हैं, चूँकि ना तो उनका परिवार उनका साथ देता है ना ही हमारा सभ्य कहा जाने वाला समाज उनके साथ खड़ा होता है। ना उन्हें शिक्षा नौकरी आदि प्राप्त होती है। उपन्यास की नायिका सिमरन को समाज में अपने जिस अस्तित्व और अस्मिता की तलाश है, वह अभी तक उसे समाज से नहीं मिल पायी है।

सिमरन के नाना ने उसका नाम 'शत्रोहन' रखा था जिसका अर्थ था शत्रु का विनाश करने वाला। पर अपने नाम के विपरीत वह अपनी समूची ज़िंदगी शत्रुओं का सामना करने में ही बिता देता है। उसके जन्म के समय उसके पिता की नौकरी स्थायी होने के कारण उसके पिता उसे भाग्यशाली मानते थे, उससे बहुत प्यार करते थे उसका लालन- पोषण बड़े प्यार से होता है किंतु धीरे- धीरे जैसे- जैसे वह बड़ी होने लगी उसके अंदर आए शारीरिक परिवर्तनों को देख उसके अपने पिता तथा बाकी घरवालों का व्यवहार उसके साथ बदल जाता है। वह अपने घरवालों के स्वभाव परिवर्तन पर आश्चर्य चकित होती है। यही प्रत्येक किन्नर की नियति होती है, जैसे ही यह बात स्पष्ट होती है कि वह किन्नर है वैसे ही परिवार और समाज उसका बहिष्कार कर देता है। हमारे समाज में किन्नरों के शारीरिक शोषण के साथ ही साथ उनका मानसिक शोषण भी होता है, सिमरन का भी मानसिक शोषण होता है इस कारण वह पाठशाला भी जाती तो इन सबसे बचने के लिए लड़कियों का साथ अपना लिया, वह पाठशाला में लड़कों की बजाय लड़कियों के साथ उठने बैठने लगा। आठ साल की छोटी सी उम्र में उस अबोध बालक के साथ एक बड़े उम्र के लड़के द्वारा गलत हरकत करने से और उसके माँ बाप द्वारा इस घटना पर चुप्पी साध लेने से वह मानसिक रूप से बड़ी परेशानी होती है और अपने घरवालों के इस बर्ताव पर आत्मचिंतन करती है। यथा- "मेरी आत्मा भी अब रोने लगी। बार- बार बीती घटना मुझे रूला रही थी। आखिर क्यों मेरे साथ वह सब हुआ? और माँ ने कुछ भी नहीं पूछा। क्या मैं उनकी संतान नहीं थी? जैसे सारे भाई- बहन थे वैसे ही मैं। फिर इतना भेद- भाव क्यों?"। (वही, पृ.-16) सिमरन का परिवार इस घटना पर समाज के भय से चुप्पी साध लेता है, असल में उसका अपना परिवार भी उसे अलग- थलग, अपने जैसा नहीं मानता है इसलिए वह सब इस घटना पर चुप्पी साध लेते हैं। उसी समय वह कुछ हिजड़ों को देखती हैं जो भीख मांग रहे थे वह घर आकर माँ से इस घटना के बारे में जानना चाहती है उसके मन में जो जिज्ञासा है वह माँ से उसे स्पष्ट करना चाहती है परन्तु उसकी माँ उसकी जिज्ञासा को संतुष्ट नहीं कर पाती है। चूँकि उस समय वह छोटी थी इसलिए वह खुद से समझ नहीं पाती, पहचान नहीं पाती कि वह लड़का है या लड़की, उसके मन और शरीर में बदलाव आ रहे थे। धीरे- धीरे उसकी सोचने की शक्ति बढ़ती है और वह अपने सवालों के सही जवाब तलाश करने में लग जाती है। यथा- "मेरे जीवन में भी सब कुछ सही चल रहा था। लेकिन मैं इस कशमकश में थी कि मैं कौन हूँ? औरत, आदमी या उन (किन्नरों) की तरह हूँ। मुझे नाचना- गाना और लड़कियों की तरह रहना अच्छा लगता, पर सब कुछ चुपचाप चल रहा था"। (वही, पृ.- 18)

उसके भीतर आए शारीरिक बदलावों के कारण उसकी तरफ पुरुष और लड़के ही ज्यादा आकर्षित होते थे। बारह साल की छोटी सी उम्र में वह अपने साथ हो रहे इस अन्याय को समझ नहीं पाती। वह सोचती है कि- "मैं यह समझ नहीं पा रही थी। मेरे साथ... यह क्या हो रहा था? पापा सुनना नहीं चाहते थे, माँ समझना नहीं चाहती। ऐसे मेरे हालात थे कि क्या करूँ? रोऊँ भी तो कितना"। (वही, पृ.- 20)

उसके पिता का एक घनिष्ठ मित्र भी जो प्लास्टिक फैक्टरी का मालिक था वह भी उसका शोषण करता है, उसका पिता सब कुछ जानते हुए भी मौन बना रहता है। समाज में रहते हुए कैसे किन्नरों को शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता है, इसे इन घटनाओं के माध्यम से लेखिका ने बखूबी चित्रित किया है। स्वयं सिमरन भी इस जीवन को सरल नहीं मानती वह कहती भी है कि- "किन्नर का जीवन सरल नहीं होता, जीते भी हैं रो- रोकर। आंसू ही उनका सहारा बन जाते हैं लेकिन अपना कहने के लिए कोई हाथ आगे नहीं बढ़ाता। हिजड़ा एक भावना है। अंतरात्मा की पुकार है जो एक शरीर से आती है, पर दु:ख की बात है कि आम जनमानस इसे दो जांघों के मध्य खोजते हैं। यही सबसे बड़ा दुर्भाग्य है"। (वही, पृ.- 23) उपन्यास में सिमरन का उपरोक्त कथन हमारे सभ्य कहे जाने वाले समाज के मुँह पर करारा तमाचा है। अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए वह दूसरों के घरों में झाड़- पोछा का भी काम करती है, एक फैक्टरी में भी काम करती है, यहाँ भी उसे अपने सहकर्मियों से अपने विषय में तरह- तरह की बातें सुनने को मिलती हैं पर वह इन पर ध्यान दिए बिना मन लगाकर अपना काम करती है। एक दिन उसका एक सहकर्मी कहता है तेरे जैसा ही एक नमूना आया है उस से जाकर मिल लो सहकर्मी का यह कथन सिमरन को बड़ा मानसिक कष्ट देता है, वह सोचती है- "उसकी सोच के अनुसार उसे मैं नमूना लगी। आखिर भगवान ने मुझे भी इंसान बनाया था फिर क्यों? उसने मुझे नमूना कहा"। (वही, पृ.- 33)फैक्टरी में काम करते हुए उसका परिचय अब्दुल नामक एक युवक से होता है जो 'बॉबी' उपनाम से फेमस था वह एक समलैंगिकता था और स्टेज शो करके अपनी रोज़ी रोटी चलाता था।

बॉबी से मिलकर, उसे देख कर पहली बार सिमरन के अंदर हिम्मत आई थी। यथा- "वह मुझे मेरे जैसा ही लगा। पहले मैं अपनी को अकेली असहाय सा महसूस करती थी। उसके आने के बाद मेरे अंदर हिम्मत आई, आखिर मेरे जैसा भी दुनिया में कोई है"। (वही, पृ.- 34) इस फैक्टरी में भी फैक्टरी का मजदूर नेता उसकी नौकरी पक्की कराने के नाम पर उसका शोषण करना चाहता है, वह सारी बातें अपनी माँ को बताती है पर उसकी माँ को कोई ऐतराज नहीं वह सिमरन के दुख को समझती ही नहीं बल्कि सिमरन से उस नेता की बात मानने को भी कहती है। परन्तु सिमरन अपने जमीर का सौदा नहीं करती उसके अंदर बॉबी के साथ आ जाने से एक आत्मविश्वास आ गया था, उसके कारण उसे अपनी पहचान मिलती है। बॉबी ने ही उसे उसके समाज से मिलवाया था बॉबी के साथ रहना उसे बहुत सुकून देता था। यथा- "मेरा डर निकल गया था। मेरे अंदर धीरे- धीरे आत्मविश्वास बढ़ता जा रहा था। यह सब बॉबी के कारण था। उसके मेरी जिंदगी में आने के बाद ही मुझे मेरी पहचान मिल पाई थी। बॉबी ने मुझे हमारे समाज से मिलवाया था। उनसे मिलकर मुझे अपार खुशी हुई थी। बॉबी मुझे अपने घर भी ले जाता। मुझे उसके साथ रहना बहुत ही सुकून देता"। (वही, पृ.- 38)

सिमरन की माँ उससे किसी भी प्रकार का आत्मीय संबंध नहीं रखती, किंतु सिमरन सब समय माँ की समस्या को अपनी समस्या समझकर उसे दूर करने का प्रयास करती है जब- जब सिमरन की माँ को पैसे की जरूरत पड़ती है वह तभी सिमरन को याद करती है। एक बार तो माँ के पैसे की जरूरत पूरी करने के लिए सिमरन स्वयं को एक मजदूर के हवाले कर देती है, वह मजदूर सिमरन का शारीरिक शोषण करता है। सिमरन के शारीरिक शोषण का बड़ा मार्मिक वर्णन इस उपन्यास में हुआ है। यथा- "मैं अपने अस्तित्व को खोता हुआ अश्रुपूर्ण आँखों से देखती रही। उस भयंकर रात में मेरे साथ जो हुआ वह वेदना व्यथा कही भी नहीं जा सकती। उस पीड़ा को आज भी याद करती हूँ तो सिहर जाती हूँ। वह दस मिनट मेरे लिए बहुत कष्टकारी साबित हुये, वह अपनी प्यास बुझाने में लगा था। मैं दर्द में लिपटती गई"। (वही, पृ.- 39) अपने स्वयं के परिवार में शोषित पीड़ित हो वह किन्नर समाज से मेलजोल बढ़ाती है, वह भी इज्जत की जिंदगी जीना चाहती है जो उस का अधिकार भी है, एक सामान्य जीवन की लालसा उसके मन में भी उठती है इसलिए बाकी किन्नरों से मेलजोल बढ़ाती है तथा 'हमसफर ट्रस्ट' नामक संस्था जो समलैंगिक और हिजड़ों को उनके अधिकारों हेतु जागरूक करती है उससे जुड़ जाती है। 'उजेफा' नामक संस्था से भी जुड़ती है और एड्स के प्रति लोगों को जागरूक करती है, वह अपनी स्वयं की पहचान बनाना चाहती है, अपने अस्तित्व को तलाश करती है। किन्तु भाग्य की विडंबना यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ती उसका यह काम भी छूट जाता है और घर पर भी उसके पिता, माँ तथा भाई उसकी बेइज्जती करते हैं। घर से मिले अपमान के कारण वह अपना घर छोड़ देती है और चंपा गुरु की संस्था में ओ. आर. डब्ल्यू. का काम करती है तथा बाद में चंपा को अपना गुरु बना लेती।

इस उपन्यास में लेखिका ने किन्नरों के द्वारा किन्नरों का शोषण भी दिखाया है बेला नामक एक दुष्ट किन्नर जो सिमरन का गुरु है वह सिमरन का शोषण करता है उसका निर्वाण कराकर उसे अपना चेला बनाता है फिर उससे प्रत्येक महीने पाँच हजार रुपये लेता है। वह एक प्राइवेट डॉक्टर से उसका निर्वाण कराता है और उसकी देखभाल भी नहीं करता। निर्वाण के चालीस दिन बाद उसकी गोद भराई होती है, यानी बहुचरा माता की उपासना इस रस्म में यह मान्यता है कि जिस हिजड़े का निर्वाण हुआ है उसका भगवान से विवाह होता है इसीलिए उसकी गोद भराई की जा रही है। तबियत खराब होने के बावजूद सिमरन अपना पेट पालने के लिए भीख मांगने को विवश है पांच महीने अस्पताल में रहने के कारण आर्थिक रूप से वह अपना खर्च चलाने में असक्षम हो जाती है। तकलीफ के समय में भी कोई उसका साथ नहीं देता सिमरन कहती है कि- "मुझे घर से निकलना ही पड़ा, आखिर पापी पेट का सवाल था। कब तक पानी पी- पीकर दिन काटती। भीख मांगने के लिए चल पड़ी। पेशाब की थैली को अपने पेटीकोट के नाड़े में बांधकर और ऊपर से साड़ी लपेट लेती"। (वही, पृ.- 84) गीता गुरु नामक एक अन्य किन्नर की सहायता से सिमरन बेला नामक दुष्ट किन्नर के चंगुल से आजाद होती है। अपने सामने सारे अवरोध उपस्थित किये जाने के बावजूद सिमरन अपने साथ किए जा रहे अत्याचार, शोषण, अपमान और अनेक समस्याओं का सिलसिलेवार ढ़ंग से ब्यौरा प्रस्तुत करती हुई ढ़ेर सारे सवाल उठाती है। इस उपन्यास के माध्यम से वह अपने मन की सारी वेदना पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देती है। इस उपन्यास से निश्चित रूप से हिजड़ा समुदाय के प्रति समाज की सोच को सकारात्मक दिशा मिलेगी। अभिनव का मानना है कि- "उपन्यास 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' किन्नर वर्ग की जिजीविषा तथा उनकी अस्मिता को लेकर प्रश्न करता मार्मिक दस्तावेज है"। (अभिनव, किन्नर अस्मिता एवँ संघर्ष का जीवंत दस्तावेज अस्तित्व की तलाश में सिमरन शीर्षक आलेख, सं.-डॉ. एम. फीरोज खान, थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान, भाग- 2, प्रथम संस्करण- 2021, पृ.- 25)

सिमरन समाज में फैल चुके किन्नरों के बारे में उस मिथक को तोड़ना भी चाहती है जिसमे यह बताया जाता है कि किन्नर सिर्फ नाचने- गाने, भीख मांगने का काम करते हैं। इस मिथक पर विचार करते हुए वह कहती भी है- "मुझे यही मिथक तोड़ना है किन्नर सबसे पहले एक इंसान है हमको अवसर मिले तो पढ़- लिखकर रोजगार कर सकते हैं। वक्त के साथ कुछ सोच बदलिएगा तब जाकर देखना कि किन्नर भी बहुत कुछ बन सकता है उसको तलाश है तो सिर्फ अपनेपन की। उन हाथों की जो आगे आकर कहें यह हिजड़ा नहीं- मेरा बेटा- या बेटी है। ऐसा कोई मिल जाए तो हम अपना भाग्य सँवार सकते हैं"। (देवी मोनिका, अस्तित्व की तलाश में सिमरन, माया प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण- 2019, पृ.- 100) अभिनव इस उपन्यास पर विचार करते हुए कहते हैं कि- "उपन्यास की पात्र सिमरन स्वयं का आत्मसम्मान गिराकर भीख नहीं माँगना चाहती परंतु वह तब विवश हो जाती है जब उसे कोई रोजगार नहीं देना चाहता। वो रोजगार प्राप्त करती भी है तो उसका शोषण प्रारम्भ हो जाता है"। (अभिनव, किन्नर अस्मिता एवँ संघर्ष का जीवंत दस्तावेज अस्तित्व की तलाश में सिमरन शीर्षक आलेख, सं.-डॉ. एम. फीरोज खान, थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान, भाग- 2, प्रथम संस्करण- 2021, पृ.- 25)

इस उपन्यास के माध्यम से सिमरन ने सरकारी प्रशासनिक व्यवस्था पर भी एक सवालिया निशान खड़ा कर दिया है उसका मानना है कि उसके जैसे लोगों के लिए प्रशासन भी कुछ नहीं करता। यथा- "आज भी किन्नर समाज को तीसरी दुनिया समझा जाता है हमको वह अधिकार नहीं मिले जो एक आम नागरिक को मिले हुए हैं।सरकार को हमारी ओर ध्यान देना चाहिए थोड़ा शासन- प्रशासन हमको देखेगा तो निश्चित ही आगे आने वाली किन्नर पीढ़ियाँ माँगकर नहीं खायेंगी। वह भी स्वरोजगार या सरकारी रोजगार पाकर जीवन व्यतीत कर सकेंगी"। (वही, पृ.- 105) इस उपन्यास में सिमरन ने हिजड़ों के अंतिम संस्कार के बारे में फैली भ्रांतियों को भी दूर करने का प्रयास किया है, सिमरन हिजड़ों के अंतिम संस्कार पर प्रकाश डालती हुई कहती है- "मैं जहाँ भी गई कई बार यह बात सामने आई की तुम्हारे समाज में मरने वालों को चप्पल से मारते हैं। कोई कहता है कि घसीटकर ले जाते हैं। तभी मैंने उन लोगों को जवाब दिया कि यह सब मिथ्या है।

लेखिका ने 'तीसरे लिंग' की समूची त्रासदी को, उसके प्रति समाज की उपेक्षा और क्रूरता को, उपेक्षा से उपजे दु:ख को, क्षोभ और आक्रोश को तथा इन सब के बावजूद उसकी सदाशयता को (पंजाबी आंटी का संदर्भ), उसकी मानवीय करुणा (राजवीर का संदर्भ), उसके साहस को और उसकी निर्भीकता को व्यंजित किया गया है। लेखिका ने सिमरन को परिस्थितियों से मुकाबला करने वाला व्यक्तित्व दर्शाया है। कठिन से कठिन परिस्थिति का वह सामना करती है। सिमरन का साकारात्मक दृष्टिकोण, किन्नर होते हुए भी काम की तलाश और आत्मसम्मान की भावना उसे अपने अस्तित्व की लड़ाई को अकेला लड़ने में समर्थ बनाती है।

किन्नर भी हमारी तरह हाड़- मांस के इंसान हैं और उनकी भी भावनाएँ, संवेदनाएँ, आकाँक्षाएँ, इच्छाएँ, आवश्यक्ताएँ और सम्मान हैं जो उन्हें मिलना ही चाहिए। यह सब उन्हें तभी मिल सकता है जब समाज में उन्हें बराबरी का, समानता का स्थान मिले। इस प्रकार यह उपन्यास हमें किन्नरों को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने का संदेश देता है।

******

किन्नर समाज और मीडिया

डॉ.मीनाक्षी बी.पाटील
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
एस्. बी. कला तथा के. सी. पी. विज्ञान महाविद्यालय,विजयपुरकर्नाटक मो.- 8762519941

किन्नर और मीडीया का सीधा संबंध समाज से जुड़ा है। यह वही समाज है जहाँ आप और हम सब मिलकर जीवन व्यापन करते हैं। अगर इसे व्यवस्थित रुप से परिभाषित करें तो, समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बनता है, जहाँ व्यक्ति-व्यक्तियों के बीच संबंध स्थापित होता है। रायट के शब्दों में "यह व्यक्तियों का एक समूह नहीं है, अपितु विभिन्न समूहों के व्यक्तियों के बीच संबंधों की व्यवस्था है।"[1] अगर यह विभिन्न समूहों के व्यक्तियों के बीच संबंधों की व्यवस्था है, तो सभी व्यक्तियों के बीच में मानवीय क्रियाकलाप, क्रियाकलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा, निर्वाह आदि क्रियायें अवश्य होती हैं। यहाँ मानवीय क्रियाकलाप को रेखांकित कर इस पर गहन चिंतन-मनन करने पर भी हम समाज के उस वर्ग तक नहीं पहुँच सकते, जो हमारे ही समाज में हमारे साथ रहकर भी समाज से कटे हुए हैं, उपेक्षित हैं।

हाँ, मैं उन्हीं की बात कर रही हूँ जिन्हें हम शारीरिक विद्रूपता या लैंगिक भिन्नता के कारण थर्ड जेंड़र, तृतीय लिंगी, किन्नर, ट्रांसजेंड़र, हिजड़ा, क्लीव, शिव-शक्ति, मंगलमुखी, सखी, जोगता, नपुंसक, जोगप्पा, छक्का आदि कई नामों से पहचानते हैं। लैंगिक भिन्नता के कारण ये समाज के मुख्य धारा से अलग हो जाते हैं। इन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए सरकार तथा विभिन्न सामाजिक संगठनों के द्वारा कई प्रयास किए जा रहे हैं, परंतु परिणाम लक्ष्य के कई गुना पीछे हैं। ऐसे संदर्भ में 'लोकतंत्र का चौथा स्तंभ-मीडिया' की सहायता लेनी चाहिए। क्योंकि वर्तमान युग में समाज के विकास के लिए मीडिया की अहम् भूमिका रही है। मीडिया के माध्यम से समाज का हित साधना संभव हो गया है। प्रेस, टेलीविज़न,रेडियो, सिनेमा, इंटरनेट, ट्वीटर, इन्स्टाग्राम, फेसबुक, आदि के साथ-साथ कई वैज्ञानिक तथा अत्याधुनिक संचार माध्यम भी जुड़े हैं, जिन्हें हम सोशियल मीडिया के नाम से अभिहित करते हैं। इन सब का लक्ष्य होता है जनता के समस्याओं का समाधान तुरंत करना। इसलिए आज के दौर में मीडिया की उपयोगिता, महत्ता एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति मीडिया को संवेदनशील होना आवश्यक है।

बात जब मीडिया और समाज की आती है, तो मीडिया को समाज में जागरुकता उत्पन्न करनेवाला सशक्त माध्यम कहा जा सकता है। यह समाज को सत्य असत्य की दिशा दिखाता है। जहाँ कहीं भी अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, शोषण आदि हो रहा हो, तो तुरंत मीडिया पीडितों का सहारा बनता दिखाई देता है। मीडिया समाज को सजग एवं सक्रीय बनाने का साधन है। पर मेरे मन में एक बात खटकती है और यह सोचने पर विवश करती है कि क्यों मीडिया किन्नरों को नज़र अंदाज़ कर रहा है? जिस मीडिया को मीडियम का माध्यम कहा जाता है, जो समाज में शांति, सौहार्द, समरसता, एकरुपता और सौजन्य की भावना विकसित कर सकता है वह किन्नरों के प्रति क्यों चुप है? कहा जाता है कि मीडिया समाज का निर्माण व पुनर्निमाण करता है तो यह किन्नरों का जीवन स्थापित करने में सहायता क्यों नहीं कर रहा है? मेरे मन में ऐसे कई सवाल उठते हैं और उठना स्वाभाविक भी है। क्योंकि मीडिया को जनता तक पहुँचने का सशक्त माध्यम कहा जाता है। चाहे वह टेलीविज़न हो, पत्र-पत्रिकाएँ हों, इन्स्टाग्राम हों, फेसबुक हों या सबसे प्रभावी माध्यम सिनेमा हो। इनके माध्यम से किन्नरों की वेदना, संघर्षमय जीवन, समाज के उपहास को झेलते हुए जीवन में सफलता प्राप्त किन्नरों पर विशेष कार्यक्रम क्यों नहीं दिखाते हैं? सिनेमाओं में, धारावाहिकों में, साहित्य में कहीं भी इनका जिक्र आता है तो वे रेल में या किसी भीड़ में पैसा वसूल कर रहे होते हैं या फिर किसी के जन्म या विवाह आदि शुभ अवसर पर मंगलकामना करके बख्शिश प्राप्त करते दिखाई देते हैं। परंतु समाज में ऐसे भी किन्नर हैं जिन्होंने समाज की विकृत सोच से जूझते हुए सफलता हासिल की है। ई-पत्रिका प्रभा साक्षी में छपे लेख लैंगिक भिन्नता के शिकार किन्नर आखिर केसे जुड़ेंगे समाज की मुख्य धारा से? आलेख में ऐसे ही सफलता प्राप्त किन्नरों के बारे में उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि "कई ऐसे किन्नर हैं जिन्होंने समाज की इस विकृत सोच से जूझते हुए स्वयं को लीक से हटकर खड़ा करने में सफलता प्राप्त की। उनमें से एक है कलकी सुब्रमण्यम, जिन्होंने स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद स्वयं को सामाजिक कार्यकर्ता तथा पत्रकार के रुप में प्रतिष्ठित किया है। दूसरा नाम पद्मिनी प्रकाश का है, जो कि एक कथक नर्तकी तथा गायक कलाकार हैं। मधुबाई छत्तीसगढ़ के रायगढ़ की मेयर रह चुकी है। भारती नाम की किन्नर ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और थियोलॉजी में स्नातक की उपाधि प्राप्त करके इन्जील्वादी चर्च में पादरी बन गई। मानवी बंधोपाध्याय विवेकानंद सतोबारशिकी महाविद्यालय में बंगाली भाषा की सहायक प्रोफेसर हैं। इन्होंने किन्नरों के जीवन पर आधारित एंडलेस बाँडेज नामक उपन्यास भी लिखा है। कानपूर की काजल किरण पार्षद रह चुकी है और समाज सेविका के रुप में प्रतिष्ठित हैं। तमिलनाडु की पृथिका याशिनी को लंबी अदालती लड़ाई के बाद एक इन्सपेक्टर के पद पर तैनाती प्राप्त हुई। कोलकत्ता की जोयिता मंडल लंबे सामाजिक संघर्ष के बाद इस्लामपुर की लोक अदालत में न्यायाधीश के पद पर कार्यरत हैं। राजस्थान की गंगा कुमारी ने भी लंबी अदालती लडाई के बाद अन्तोगोत्वा कान्स्टेबल पद पर नियुक्ति प्राप्त की।"[2] किन्नर अपनी अस्मिता की खोज और अस्तित्व को खायम रखने के लिए समाज में अपनों के बीच संघर्ष कर रहें। ऐसे संघर्षमय जीवन गाथा का सिनेमा के माध्यम से समाज में प्रस्तुत करते हैं, तो इससे कई किन्नरों को प्रेरणा मिलेगी। जिससे वे अपना व्यक्तित्व स्वयं निर्माण कर सकेंगे। परंतु विपर्यास यह है कि आज मीडिया उन्हीं को जगह दे रहा है जिससे उन्हें टी. आर. पी मिलती है और आर्थिक लाभ होता है।

आज सिनेमा नई विचारधारा और नवीन विषय को उजागर करके लोकप्रिय होने लगे हैं। नारी समस्या. दलित उत्पीड़न, निम्न वर्ग की समस्याएँ एवं प्राकृतिक समस्याएँ, पिछड़ा वर्ग, निर्वासित वर्ग फिल्म के केंद्र में आ गए हैं किन्नरों को छोड़कर। अगर किन्नरों की बात उठाते हैं तो भी वह गौण रुप से। मीडिया से रुबरू होते किन्नर इकबाल ने कहा कि – "एक पहचान काफी है। सरकार ने थर्ड जेंडर का दर्जा देकर नेक काम किया है। हमारा समज दूसरों की खुशियों में शरीक होता है। समाज मानता है कि बेला पर हमारे कदम पड़ने से खुशियों में और भी इज़ाफा होता है।"[3] ऐसे विषयों को लेकर छोटे-छोटे डाकुम्येंटरी फिल्में बनाकर समाज में संघर्षरथ वर्ग के प्रति संवेदना व्यक्त करना मीडिया का दायित्व बनता है। सामाजिक रुढ़ियों से त्रस्त किन्नरों, समाज की पूर्व परंपरा तथा अलिखित नियमों के प्रति घृणा, सामाजिक हक की लड़ाई आदि पर फिल्म निर्माताओं को ध्यान देकर फिल्में बननी चाहिए। इससे समाज और सरकार दोनों इस वर्ग के हित पर विचार कर पायेगा।

कानपुर में रहनेवाली किन्नर पूनम बताती है कि "समाज में हमें अलग तरीके से देखा जाता है, लेकिन मैं भी जीना चाहती हूँ और मैं भी एक इंसान हूँ। किन्नर कहकर जब कोई बुलाता है तो बहुत बुरा लगता है, लेकिन न मैं इधर की हूँ, न उधर की हूँ। लेकिन जीना तो है ही। हमें न कोई नौकरी मिलती है और न हीं कोई रहने का ठिकाना। हमारे घर में हमारे माता-पिता बहनें सब हैं। इन सब के होने के बावजूद भी समाज हमें उनके साथ नहीं रहने देता है। सब बोलते हैं कि किन्नर है इसको हटाओ। समाज के डर से हमें अपना घर छोड़कर जाना पड़ता है।"[4] परिवार से अलग होने पर इनके सामने ऐसे कई सवाल हो सकते हैं। इसलिए सरकार इनके लिए अनाथालय बनव दें तो इनकी एक समस्या दूर हो जायेगी। दूसरी है नौकरी की समस्या। जिसे पाने के लिए उन्हें सुशिक्षित होना अनिवार्य होता है। लेकिन समाज जैसे-जैसे जागरुक तथा सुशिक्षित बनता जा रहा है वैसे-वैसे समुदायों की बीच की दूरियाँ भी कम होती जा रही है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण है सत्यश्री शर्मिला। यह भारत की प्रथम किन्नर वकील है। वह अपने ट्विटर पर लिखती है कि "भारत की पहली ट्रांसजेंडर वकील के रुप में आज मैंने अपना नाम तमिलनाडु तथा पुदुचेरी बार काउंसिल में पंजीकरण करवाया है। मैंने जीवन में बहुत संघर्ष

किया है। मुझे उम्मीद है कि मेरे समुदाय के लोग अच्छा काम करेंगे और देश भर में उच्च पदों पर आसीन होंगे।"[5] उच्च पदों को तभी हासिल करेंगे जब उन्हें शिक्षा प्राप्त होगी। परंतु सामान्य स्कूल कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ रहा है, तो क्यों न इनके लिए अलग से स्कूल कॉलेजों की स्थापना करें। देश की पहली ट्रांसजेंडर क्वीन यानी मिस ट्रांसजेंडर निताषा का मानना है कि समाज में किन्नरों के साथ हो रहे भेदभाव के कारण देश के 70% किन्नर डीप्रेशन का शिकार बने हैं। इनके अशिक्षित होने से अधिकांश किन्नर सेक्स वर्कर बन जाते हैं। मीडिया को ऐसे समाज के प्रति जागरुकता उत्पन्न कर समाज के हित में कार्य करना चाहिए। इनमें से कई किन्नर ऐसे भी हो सकते हैं जो खेल कूद के क्षेत्र में सक्षम हो। ऐसे किन्नरों को प्रेरित करने के लिए कई तरह के प्रतियोगिताओं का आयोजन कर उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने का कार्य मीडिया के क्षेत्र में होना चाहिए। क्योंकि आज के संदर्भ में समाज और सामाजिक परिवेश पर मीडिया का प्रभाव अधिक रहा है। इससे सरकार और समाज दोनों ही इस वर्ग के प्रति जागरुक होंगे तथा किन्नरों का मनोबल भी बढ़ेगा।

सरकार तथा मीडिया को स्त्री सशक्तिकरण की तरह किन्नरों के सशक्तिकरण पर भी बल देना चाहिए। मीडिया हमेशा परोपकारी एवं कल्याणकारी भाव स्वरूप को लेकर आगे बढ़ता है तो, मीडिया को सरकार से आग्रह करना चाहिए कि सरकार या विभिन्न संस्थानों के द्वारा जितना सहयोग महिलाओं को मिलता है उतना ही सहयोग किन्नरों को दे। इनमें भी छोटे-छोटे गृह उद्योगों के प्रति रुचि उत्पन्न करना चाहिए और इन्हें आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए कई योजनाओं को घोषित कर उन्हें आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर करने की ओर पहल करनी चाहिए। क्योंकि आज के दौर में समाज का प्रत्येक समुदाय देश के विकास में अपना सहयोग देने के लिए तैयार है। किन्नर समुदाय में कल्कि सुब्रमण्यम पहली ट्रांसजेंडर एंटरप्रेन्योर है। मीडिया ऐसे एंटरप्रेन्योरों को समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं तो इससे समाज के कई किन्नरों को प्रेरणा मिलेगी और वे रेल के डिब्बों में या सिग्नलों में भीख माँगने के बजाय स्वयं एक एंटरप्रएन्योर के रूप में समाज में आदर सम्मान के साथ जीवन व्यापन कर सकेंगे। इसी तरह कला के क्षेत्र में जैसे कि चित्रकला, संगीत वाद्यों को बजाने या नृत्य कला जैसे विद्याओं में निपुणता प्राप्त कर लेंगे तो वे अपने अंदर छिपे हुनर को पूरे विश्व के सामने प्रस्तुत कर सकेंगे। इससे किन्नर समुदाय के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में सुधार होगा। मीडिया तथा समाज से हम केवल इतनी आशा कर सकते हैं कि जीवन भर दूसरों की खुशियों में शामिल हो कर दूसरों के लिए मंगलकामना करने वालों के प्रति हमारी भी कुछ जिम्मेदारी बनती है कि हमें उनकी बेबसी पर हँसी न उड़ाकर उनके समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करना चाहिए। सरकार द्वारा इस समुदाय को प्राप्त होने वाले योजनाओं के बारे में मीडिया के माध्यम से प्रचार-प्रसार करने का एक छोटा सा प्रयास करें। इन्हें सेक्स वर्कर बनने से रोके तथा सही शिक्षा प्रदान की जाय या स्वयं उद्योग स्थापित कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रशिक्षित करे, ताकि वे अपना जीवन स्वयं सवार सकें। मैं अपने विचारों को पूर्ण विराम लगाने से पहले केवल इतना कहना चाहती हूँ कि आज की प्रशासकीय व्यवस्था में ये फिर से अकबर के यूना तो नहीं बन सकते लेकिन यूना को समाज में जो सम्मान प्राप्त होता था वह वे अवश्य पा लेंगे।

*****

संदर्भ सूची:-

1. https:// www.kailasheducation.com/2020/06/samaj-arth-paribhasha-visheshtaye.html 03 Aug 2022
2. https://www.prabhasakshi.com/politics-articles/kinnar-society-is-victim-of-gender-differences 21-oct-2019
3. https://www.amarujala.com/uttar-pradesh/fatehpur/hamaare-samaaj-ko-kinnar-kahen-aur-kuchh-nahin 03 June 2016
4. https://www.gaonconnection.com/desh/kinnar-transgender-life-india-kanpur-slife-of-life-mobile-chaupal-41338 30 May 2019
5. www.patrika.com /miscellenous-india/satya-shri-sharmila 30 June 2018

तथागत बुद्ध के अनमोल विचार

1. अगर आपको मोक्ष पाना है तो आपको खुद ही मेहनत करनी होगी, दूसरों पर निर्भर मत रहिए.
2. सूरज, चांद और सत्य यह तीन चीजें जो ज्यादा देर तक नहीं छुप सकती.
3. जिस तरह कोई मोमबत्ती बिना आग के नहीं जल सकती, उसी तरह मनुष्य भी बिना आध्यात्मिक ज्ञान के जीवन नहीं जी सकता.
4. स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन और वफादारी सबसे बड़ा संबंध है.
5. अतीत पे ध्यान मत दो और ना ही भविष्य के बारे में सोचो. हमेशा अपने मन को वर्तमान क्षण पर ही केन्द्रित रखो.
6. क्रोध, जलते हुए कोयले को किसी दूसरे व्यक्ति पर फेंकने की इच्छा से पकड़े रहने के समान है यह सबसे पहले आपका हाँथ ही जलाएगा.
7. हम आज जोभी हैं वे हमने जा आज तक सोचा था और किया था उसका ही परिणाम है, यदि कोई व्यक्ति बुरी सोच के साथ बोलता या काम करता है, तो उसे कष्ट ही मिलता है. इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति शुद्ध विचारों के साथ बोलता या काम करता है, तो उसकी परछाई की तरह ख़ुशी उसका साथ कभी नहीं छोड़ती.
8. केवल भौकने से एक कुत्ता अच्छा नहीं हो जाता, इसी प्रकार केवल बोलने से ही एक व्यक्ति ज्ञानी नहीं हो जाता.
9. हर व्यक्ति अपनी सेहत और बीमारी के लिए खुद जिम्मेदार है.
10. खुशियां पैसों से खरीदी नहीं जा सकती, खुशिया इस बात से मिलती हैं की हम कैसा महसूस कर रहें हैं, दूसरों से कैसा व्यव्हार कर रहे हैं, और दूसरे के व्यवहार का कैसा जवाब देते हैं.
11. बूंद-बूंद से ही घड़ा भरता है।
12. अज्ञानता ही सबसे काली रात है।

****

भारतीय समाज में ट्रांसजेंडर समुदाय: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

घनश्याम कुशवाहा
सहायक प्रोफेसर-समाजशास्त्र
पं.दी.द.ऊ.राजकीय बालिका महाविद्यालय सेवापुरी, वाराणसी

सारांश:-समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में प्रगति करने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। लेकिन तथाकथित प्रगतिशील कहा जाने वाला समाज अभी भी इतना सभ्य नहीं हुआ है कि एक ट्रांसजेंडर को एक मनुष्य का दर्जा दे सके। एक विचार के रूप में सामाजिक न्याय की बुनियाद सभी मनुष्यों चाहें वे किसी भी लिंग के हों, को समान मानने के आग्रह पर आधारित है। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति के साथ सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। संविधान में वर्णित भारत को एक लोक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करना इसी मूल भावना पर आधारित है। बावजूद इसके हम पाते हैं कि भारतीय समाज में ट्रांसजेंडर समुदाय के प्रति हमारा नजरिया हमेशा से विभेदकारी और दोयम दर्जे का ही रहा है। यह आलेख इसी सन्दर्भ की तरफ ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न है।

बीज शब्द: ट्रांसजेंडर, भारतीय समाज, कल्याणकारी राज्य, प्रगति, लिंगभेद, समानता और सामाजिक न्याय,

प्रस्तावना:-मानव जाति की विशिष्टता के रूप में उसकी मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के फलस्वरूप उसकी पहचान सबसे महत्वपूर्ण जरुरत बन जाती है। क्योंकि, यह पहचान उसके अस्तित्व से जुड़ी होती है। लैंगिक पहचान के तौर पर विश्व के लगभग सभी समाजों में स्त्री और पुरुष के रूप में केवल दो लिंगों को ही मान्यता दी गई है। इन दो विपरीत लिंगों को ही सृष्टि का आधार माना जाता रहा है। विभाजन की यह स्पष्टता यौन अंतरों पर ही आधारित होती हैं। जिसमें जैविक विभाजन के अंतर्गत 'लिंग' का अर्थ पुरुष और 'योनि' का अर्थ महिला से लगाया जाता है। सामाजिक विभेद के अंतर्गत जेंडर को प्रायः स्त्री और पुरुष के सापेक्ष ही समझा जाता है। जो इस बक्से में फिट नहीं बैठते उन्हें ही ट्रांसजेंडर की संज्ञा दी जाती है। ट्रांसजेंडर ऐसे लोगों को कहा जाता है जिनके जननांग अस्पष्ट होते हैं अर्थात् जिनके जननांग न तो स्पष्ट रूप से स्त्री के होते हैं और न ही पुरुष के।

ट्रांसजेंडर समुदाय पुरे विश्व में शोषण और अत्याचार का शिकार रहा है। समाज के द्विलिंगी रुढ़िवादी मानसिकता के कारण ट्रांसजेंडर समुदाय को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पायी है। आज भी ट्रांसजेंडर विमर्श एक ऐसा अछूता विषय बन कर रह गया है जिस पर बात करना उचित नहीं. समझा जाता। समाजशास्त्र का विद्यार्थी होने के बावजूद भी मेरा ध्यान एक विमर्श की तरह इस तरफ नहीं गया। ऐसा भी नहीं है कि इनसे हमारा आमना-सामना नहीं हुआ, कई बार ट्रेन में हम आमने-सामने थे लेकिन इनसे हमारा नाता केवल 10 रुपये की नोट निकाल कर दे देने तक ही सीमित रहा है, निश्चित ही उस समय की हमारी सोच प्राय: यही रही है कि ये जल्द हमसे दूर चले जाँए या जल्दी इनसे छुटकारा मिले। निश्चित ही हमारी यही सामाजिक दूरी ट्रांसजेंडर समुदाय से हमें अलग करती है। केवल इतना ही नहीं अगर अपने बचपन की ओर दौड़ें, तब इनका ख्याल हमारे जेहन में आने लगता है। जब किसी के घर लड़का पैदा होता था तब ये लोग एक मण्डली के रूप में हमारे गाँव की ओर रुख करते थे तब गाँव की औरतों की ताका-झाकी बढ़ जाती और उनकी फुसफुसाहट भी देखने को मिलती थी। तब हम बच्चे उनके पीछे लग जाते और उनके हाव-भाव को कौतूहल वश देखते रहते। हमारे लिए ये भी एक मदारी जैसे ही दीखते जो कभी-कभी गाँव क्षेत्र में अपनी आजीविका हेतु अपनी कला का प्रदर्शन करने आते रहते थे। तब से लेकर आज तक हमारे जेहन में यह बात आई ही नहीं कि ये रहते कहाँ हैं, इनकी आजीविका के साधन क्या हैं या इनकी चिकित्सा की क्या व्यवस्था होगी? क्योंकि सरकारी अस्पताल की पर्ची पर भी पुरुष/महिला ही लिखा होता है। जो यह संकेत करता है कि केवल इन्हीं दो मान्य लिंगों के इलाज की ही यहाँ व्यवस्था है। आज जब मैं इस विषय पर विचार करने बैठा हूँ तब रह-रह कर कई सवाल मुझे परेशान कर रहे हैं। जो इनके बचपन से आरम्भ होती है और मरने पर ही कहीं जाकर समाप्त होती है। निश्चित ही इनका जन्म इस धरती पर बोझ के रूप में ही रहा है। इनके विषय में तो यह भी कहा जाता है कि मरने के बाद इनके शव को जूतों से पीटा जाता कि पुनः इस रूप में जन्म न लेना। यह परंपरा समाज में इनकी दुर्दशा की ओर इंगित करता है। लगभग सवा अरब से अधिक आबादी वाले देश में जहाँ बढ़ती जनसंख्या चिंता का विषय बनी हुई है उस देश में इन ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए कोई जगह ही नहीं है। शायद हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हम उस देश में रहते हैं जहाँ लिंग की पूजा होती है। चाहे जनसंख्या कितनी ही तीव्र गति से क्यों न बढ़े। यह हास्यास्पद लेकिन विचारणीय प्रश्न है।

जिज्ञासा की कड़ी में जब हम आगे बढ़ते हैं तो हम यह सोचने पर विवश होते हैं कि इस समुदाय का इतिहास क्या रहा है? इतिहास के कालक्रम में हमें झाँकने से यह ज्ञात होता है कि जिस समुदाय को धर्म ने, पुराणों ने स्वीकारा, तथा जिनका दर्ज इतिहास लगभग 4000 साल पुराना है, उसी समुदाय को यह समाज धीरे-धीरे बहिष्कृत और अपने से दूर करता चला गया। समाज की यह विडंबना ही रही है कि हाशिए पर खड़े ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए न तो समाज में कोई आन्दोलन दिखाई पड़ते हैं न ही साहित्य और समाज में विमर्श। देखा जाये तो भारतीय समाज में ट्रांसजेंडर समुदाय की आर्थिक और सामाजिक स्थिति अत्यंत ही दयनीय रही है। इसका स्पष्ट कारण समाज और सरकार द्वारा बरसों से ट्रांसजेंडर समुदायों के साथ किया जाने वाला उपेक्षित व्यवहार है। समाज ने इन्हें मनुष्य तक का दर्जा नहीं दिया तो सरकार ने भी बरसों तक इन्हें नागरिक होने के अधिकार से वंचित रखा। अधिकार के साथ जीवन जीने का तात्पर्य है सम्मान के साथ जीवन जीना। जिसकी पूरी गारंटी हमारा भारतीय संविधान देता है। इसी सम्मान और पहचान की तलाश में एक अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर ट्रांसजेंडर व्यक्ति अभी भी समाज से परित्यक्त और बहिष्कृत है।सामान्य तौर पर देखा जाये तो हम पाते हैं कि असुरक्षित समुदायों के अंतर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों की महिलाएँ दोहरे भेदभाव का सामना करती हैं; एक तो महिला होने के कारण और दूसरे पिछड़े वर्ग से सम्बंधित होने के कारण। इन सभी से इतर ट्रांसजेंडर समुदाय जो अभी अपनी सामाजिक पहचान के लिए जूझ रहा है, उसके लिए इस तरह का शोषण कितना भयानक और कष्टदायक होगा, इसका सहज अंदाजा भी नहीं लगाया जा सकता। भारत जैसे 'लिंग विशिष्ट देश' में इन लोगों को पहचान से संबंधित परेशानी का सामना करना आम बात है। देखा जाय तो इतिहास में हमेशा से अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाला यह वर्ग कभी समाज का प्रभावी अंग नहीं बन सका, यह सोचने का विषय है। इस तरह तमाम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक झंझावातों को झेलते हुए यह वर्ग आज भी अपनी पहचान के लिए भटक रहा है। देखा जाय तो समाज में श्रम विभाजन का निर्धारण भी लिंग के अनुसार ही रहा है। घर के बाहर का कार्य पुरुष जबकि घर के अन्दर का कार्य स्त्री के जिम्मे निर्धारित किया गया। ट्रांसजेंडर को इस तरह के किसी भी काम की जिम्मेदारी नहीं दी गई, दी गई तो एक गाली अर्थात 'हिजड़ा' या 'नपुंसक' के रूप में, संबोधित किया गया जिसको उनकी अक्षमता का प्रतीक समझा गया। इस वर्ग के उत्थान हेतु अब तक सार्थक प्रयास नहीं किये गए हैं। ट्रांसजेंडर के उत्थान का तात्पर्य है सामाजिक पक्षपात से मुक्ति अर्थात निरंकुशता, क्रूरता और अमानवीय व्यवहार से भी मुक्ति।

एक विशिष्ट विषय के तौर पर समाजशास्त्र के अंतर्गत होने वाले अध्ययनों पर ध्यान दिया जाये तो पाते हैं कि अधिकतर समाजशास्त्रीयों का ध्यान सामान्यतया दो वर्गों यथा 'स्त्री' और 'पुरुष' के अध्ययन तक ही सीमित रहा है। इन दो वर्गों के अतिरिक्त इस तीसरे वर्ग अर्थात 'ट्रांसजेंडर' की बात कहीं भी प्रभावी ढंग से नहीं की गई। पहचान की राजनीति ने अब इसे एक विमर्श का रूप दिया है जिस पर अब खुलकर न कहें तब भी बात तो होने ही लगी है। एक बच्चे का समाज में प्रवेश अर्थात उसका समाजीकरण एक पुरुष या स्त्री के रूप में होता है। लेकिन लिंग पर आधारित ट्रांसजेंडर व्यक्ति का समाजीकरण करना एक माँ-बाप के लिए कितना भयाक्रांत होता है इसका सहज ही अंदाज लगा सकते हैं कि एक माँ-बाप अपनी संतान की लिंगगत पहचान को समाज से छिपाते हैं। पाकिस्तानी फिल्म 'बोल' इसका एक सर्वोत्तम उदाहरण है। इतना ही

नहीं एक ट्रांसजेंडर को सामाजिक पहचान के रूप में स्थापित करने में एक राष्ट्र भी अपनी तौहीन समझता रहा है। भारत जैसे सभ्य कहे जाने वाला देश किन्नरों के अधिकारों और स्वाभिमान को सुरक्षित रखने में अब तक नाकाम रहा है। लेकिन अब इसकी शुरुआत हो चुकी है जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में शिक्षा में केरल का प्रथम स्थान है उसी के अनुरूप उनकी कार्यप्रणालियों पर दृष्टिपात किया जाय तो देखा जा सकता है कि वह ट्रांसजेंडर के अधिकारों के प्रति भी सजग है। इसकी सजगता की पहचान इस रूप में की जा सकती है कि वह सर्वप्रथम ट्रांसजेंडर के अधिकारों से संबंधित 'ट्रांसजेंडर नीति' बनाकर उनके साथ खड़ा दिखाई पड़ता है। इतना ही नहीं वह इन मुद्दों पर सबको जगाने के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय सम्मलेन' भी करता है। 'राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण' अर्थात 'नालसा' बनाम केंद्र मामले में न्यायालय ने सभी ट्रांसजेंडर लोगों को 'थर्ड जेंडर' के तौर पर मान्यता देने के साथ ही उन्हें आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़ों को मिलने वाले सभी अधिकार देने की बात कही थी। इसी फैसले को आधार बनाते हुए केरल सरकार ने 'ट्रांसजेंडर नीति' बनाई ऐसा करने वाला केरल देश का पहला राज्य है। इस नीति में 'थर्ड जेंडर' की जगह 'ट्रांसजेंडर' शब्द के इस्तेमाल की बात भी कही गई है। इस दिशा में केरल का एक और सराहनीय कार्य यह भी है कि वह ट्रांसजेंडर को उसके लिंग परिवर्तन के लिए की जाने वाली सर्जरी बहुत ही कम दरों पर उपलब्ध कराने में भी आगे रहा है। केरल के साथ ही तमिलनाडु भी इस क्षेत्र में अत्यंत सराहनीय कार्य कर रहा है।वर्तमान समय में ट्रांसजेंडर विमर्श ने पहचान और अस्मिताओं के आन्दोलन के फलस्वरूप इस वर्ग की स्थिति पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। मुख्य चुनाव आयुक्त टी एन शेषन ने सन 1994 में ही ट्रांसजेंडर को मत प्रयोग का अधिकार दिया था। 15 अप्रैल 2014 को सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसजेंडर को तीसरे लिंग के रूप में कानूनी मान्यता प्रदान की और कहा कि समाज में 'ट्रांसजेंडर' आज भी अछूते बने हुए हैं और आमतौर पर इन्हें स्कूलों और शिक्षण संस्थाओं में दाखिला नहीं मिल पाता। उनके लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है। सर्वोच्च न्यायालय का एक और फैसला आया कि ट्रांसजेंडर को संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, उन्हें शिक्षा एवं रोजगार के समान अवसर मुहैया कराए जाने चाहिए। ट्रांसजेंडर की सामाजिक और लिंगानुगत समस्याओं का निराकरण किया जाना चाहिए तथा इसके लिए चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध की जानी चाहिए। इन्हें भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के तहत बच्चा गोद लेने का भी अधिकार होगा और यदि यह चाहें तो चिकित्सा द्वारा अपना यदि संभव हो तो स्त्री-पुरुष किसी भी लिंग के रूप में स्वयं को परिवर्तित करा सकते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर स्त्री और पुरुष के समान ही इनके लिए भी अलग शौचालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा संस्थानों में प्रवेश तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण (प्रतिनिधित्व) दिए जाने की भी वकालत की है ताकि ट्रांसजेंडर समाज की आर्थिक एवं सामाजिक रूप से क्षतिपूर्ति की जा सके। अब पासपोर्ट आदि के साथ-साथ अन्य आवेदन पत्रों में भी स्त्री-पुरुष के अतिरिक्त ट्रांसजेंडर के लिए एक अन्य कॉलम की व्यवस्था की गयी है। ध्यातव्य रहे की इससे पहले हिजड़ों को महिला की श्रेणी में रखा जाता था। राजनीति में थोड़ा ही सही परन्तु ट्रांसजेंडर का प्रवेश होने लगा है। देश की पहली ट्रांसजेंडर विधायक शबनम मौसी शहडोल जिले के सोहागपुर विधानसभा सीट से चुनी गई थी। राजनीति में इनके प्रवेश को इस समुदाय के विकास की दिशा में सकारात्मक कदम तो माना जा सकता है परतु महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह कि क्या समाज का नजरिया भी इनके प्रति बदला है? एक अच्छे नागरिक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में समाज सेवा और राजनीतिक इच्छा रखने वाले ट्रांसजेंडर समुदाय के व्यक्ति की सफलता को भी यह समाज सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाता। अखबारों के आईने में झाँके तो ऐसी ख़बरें सामान्य सी प्रतीत होतीं हैं। इस समुदाय के प्रति हिंसा एक आम बात है।सुभाष अखिल (2018) लिखते हैं कि गाजियाबाद की रहने वाली ट्रांसजेंडर दयारानी को राजनीति में रूचि, सामाजिक कार्यों में आगे बढ़कर योगदान करने और किन्नर समाज के हितों की लड़ाई लड़ने के उनके साहस ने अपने समाज की अनेक समस्याओं के लिए लड़ने की ठान ली। उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर ट्रांसजेंडर अधिकार आंदोलन कमिटी बनाई और इस लड़ाई को मान्य सर्वोच्च न्यायलय तक ले गई। दयारानी की 3 जुलाई 2015 को किसी अज्ञात हमलावर ने गोली मारकर हत्या कर दी। यह हत्या उन्हीं के समुदाय के आतंरिक कलह का प्रतिफल था। वह 2015 में होने वाले जिला पंचायत चुनाव में प्रत्याशी थीं। इस घटना को बीते अभी एक वर्ष हुए थे कि एक अन्य दरमियाने अन्नू शर्मा को भी गोली मारकर घायल कर दिया। लेखक का मानना है कि ट्रांसजेंडर समुदाय को स्वयं अपनी जड़ताओं से मुक्त होना होगा। उनका मानना है कि इनके हक़ में अभी एक बहुत बड़े संघर्ष की जरुरत है...मगर एक संघर्ष इन्हें भी तो अपने भीतर करना ही होगा। दूसरी तरफ ट्रांसजेंडर समुदाय अपने संघर्ष और मेहनत के भरोसे एक-एक कर नए प्रतिमान स्थापित कर रहे हैं।

जनगणना 2011 के अनुसार, जो लोग 'पुरुष' या 'महिला' के तौर पर नहीं, 'अन्य' के तौर पर खुद की पहचान बताते हैं उनकी संख्या 4,87,803 है (कुल जनसंख्या का 0.04% भाग)। 'अन्य' की श्रेणी में ट्रांसजेंडर व्यक्ति शामिल हैं और यह श्रेणी उन सभी लोगों पर लागू होती है जो खुद को पुरुष या महिला के तौर पर पहचान नहीं करते। ज्यादातर जगह उनके साथ भेदभाव किया जाता है। एक अध्ययन से यह बात सामने आई है कि इनमें से 52 फीसदी के साथ सहपाठियों द्वारा उत्पीड़न किया जाता है। एनएचआरसी के मुताबिक 15 फीसदी के साथ अध्यापक शोषण करते हैं। इसी कारण वह अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाते और बीच में ही छोड़ देते हैं। हालात तो ऐसे हैं कि इस बात के लिए वे पुलिस में भी शिकायत नहीं करते। कई के साथ तो बलात्कार और गैंगरेप भी होता है लेकिन फिर भी पुलिस को शिकायत नहीं की जाती। इसका कारण है कि पुलिस भी उनके साथ भेदभाव करती है और उनका शोषण करने से पीछे नहीं हटती। क्या आपने कभी ट्रांसजेंडर के बलात्कार की घटना का जिक्र किसी समाचार पत्र या किसी समाचार चैनल पर किसी न्यूज़ एंकर को इस बारे में बात करते सुना है? नहीं सुना होगा मैंने भी नहीं सुना क्योंकि इस तबका, उसका अधिकार और उसकी समस्याएँ कभी बहस के केंद्र में रही ही नहीं। क्या उनके साथ कोई घटना नहीं घटती? घटती हैं खूब घटती हैं लेकिन उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं। सरे तौर पर उनकी उपेक्षा करना निश्चित रूप से एक सभ्य कहे जाने वाले समाज के ऊपर एक धब्बा है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-14 किसी भी व्यक्ति को 'लिंग' के आधार पर विभेद को निषिद्ध करता है। इस व्यक्ति में स्त्री और पुरुष के साथ ट्रांसजेंडर भी सम्मिलित हैं। अनुच्छेद-15 लिंग के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है। जबकि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इसके बावजूद भी ट्रांसजेंडर को अपनी पहचान के आधार पर उनको मौलिक और जायज अधिकारों से वंचित किया गया। ऐसी स्थिति में उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति बदतर होती चली गई। अनुच्छेद-16 बिना किसी लैंगिक विभेद के सबके लिए समान अवसर की बात करता है। बावजूद इसके योग्यता होने के बाद भी उन्हें रोजगार प्राप्त नहीं होते। देखा जाय तो संविधान में पिछड़े वर्ग के लिए सामाजिक और शैक्षणिक आधार पर प्रतिनिधित्व की बात की गई है लेकिन ट्रांसजेंडर को अभी तक इस तरह का कोई प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त हो सका है। विवशता वश वे भीख मांगने और वेश्यावृत्ति तथा अन्य असामाजिक कार्यों के प्रति उन्मुख होते हैं। अनुच्छेद-21 में जीवन जीने का अधिकार सम्मिलित है जिसमें जीवन जीने का तात्पर्य सम्मान के साथ जीवन जीने से है। ट्रांसजेंडर समुदाय के हिस्से से अनुच्छेद 21 का यह अधिकार भी गायब है। समाज उन्हें सम्मानजनक दृष्टि से देखना तो दूर एक इंसान के रूप में भी नहीं मानता। समाज को उनकी दुआ के रूप में ताली तो मंजूर है लेकिन उनके भोजन के लिए घर की थाली नहीं।

निष्कर्ष: -

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि तमाम संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद आज भी ट्रांसजेंडर व्यक्ति समाज में अपनी पहचान छुपाकर जीने को अभिशप्त हैं। सामाजिक समानता के रूप में व्यवहार तथा सम्मान उनके लिए भी एक स्वप्न है। आज जरुरत इस बात की है कि समाज का एक अभिन्न हिस्सा होने और हासिये पर जीवन गुजर-बसर करने को अभिशप्त इस समुदाय के अधिकार के बारे में सभी तरफ से आवाज उठनी चाहिए। अपनी विविधता में एकता को धरोहर के रूप में संजोने वाले भारतीय समाज में उनके प्रति इतनी सहिष्णुता और सहृदयता तो होनी ही चाहिए कि वे भी एक सम्मानपूर्वक जीवन यापन कर सकें। वे अब उस संपत्ति के हक़दार हैं जिसका उनको होना चाहिए था। सिर्फ अलग लैंगिक पहचान होने के कारण उन्हें इससे वंचित रखा गया था। हम सही मायनों में इंसान कहलाना चाहते हैं तो हमें अपनी जेंडर की जड़ हो चुकी परिभाषाओं को बदलना होगा। हर वह इंसान जो स्त्री या पुरुष जैसा नहीं है या स्त्री-पुरुष जैसा नहीं होना चाहता, उसे उसकी पहचान को खुद परिभाषित करने की स्वतंत्रता देनी होगी और साथ ही उस पहचान के साथ सम्मानपूर्वक जीने का हौसला और हिम्मत भी।

******

सन्दर्भ सूची:-

1. "Transgender are the 'third gender', rules Supreme Court". NDTV. April 15, 2014.
2. सुभाष अखिल, 2018. दरमियाना. अमन प्रकाशन: कानपुर
3. "Transgender persons", World Health Organization,
4. Government of India Census, 2011.
5. http://soumyagulia.blogspot.com/2015/06/blog-post.html?view=snapshot.
6. http://www.newstatesman.com/world-affairs/2008/05/hijras-Indian-changing-rights.
7. http://www.who.int/hiv/topics/transgender/en/.
8. https://hindi.newsclick.in/taraansajaendara-adhaikaara-sanrakasana-baila-taraansa-samaudaaya-kae-saatha-dhaokhaa.
9. https://m.dailyhunt.in/news/india/english/settings.
10. https://www.amarujala.com/education/success-stories/swati-third-transgender-judge-of-country-read-their-inspirational-story?src=story-related.
11. https://www.amarujala.com/india-news/according-to-nhrc-study-92-percent-of-transgenders-are-deprived-from-employment-rights.
12. Linda L Lindsey. 2016: Gender Roles: A Sociological Perspective, Routledge Publication.
13. Marshall, T H, 1950: Citizenship and Social Class and Other Essays, Cambridge: Cambridge University Press.
14. NHRC's First Ever Study on Transgender Rights Is Out & the Results Are Shocking.
15. Primary Census Abstract Data for Others (India & States/UTs), Census 2011.
16. Siddarth Narrain, Being A Eunuch, 14 October,2003, Frontline.

कबीर के बेहतरीन दोहे:देते हैं जिंदगी का असली ज्ञान

मैं जानूँ मन मरि गया, मरि के हुआ भूत |
मूये पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ||

अर्थ : भूलवश मैंने जाना था कि मेरा मन भर गया, परन्तु वह तो मरकर प्रेत हुआ। मरने के बाद भी उठकर मेरे पीछे लग पड़ा, ऐसा यह मेरा मन बालक की तरह है।

जीवन में मरना भला, जो मरि जानै कोय |
मरना पहिले जो मरै, अजय अमर सो होय ||

अर्थ : जीते जी ही मरना अच्छा है, यदि कोई मरना जाने तो। मरने के पहले ही जो मर लेता है, वह अजर-अमर हो जाता है। शरीर रहते-रहते जिसके समस्त अहंकार समाप्त हो गए, वे वासना - विजयी ही जीवनमुक्त होते हैं।

भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय |
रोइये साकट बपुरे, हाटों हाट बिकाय ||

अर्थ : जिसने अपने कल्याणरुपी अविनाशी घर को प्राप्त कर लिया, ऐसे संत भक्त के शरीर छोड़ने पर क्यों रोते हैं? बेचारे अभक्त - अज्ञानियों के मरने पर रोओ, जो मरकर चौरासी लाख योनियों के बाज़ार में बिकने जा रहे हैं।

अजहुँ तेरा सब मिटै, जो जग मानै हार |
घर में झजरा होत है, सो घर डारो जार ||

अर्थ : आज भी तेरा संकट मिट सकता है यदि संसार से हार मानकर निरभिमानी हो जा। तुम्हारे अंधकाररूपी घर में को काम, क्रोधा आदि का झगड़ा हो रहा है, उसे ज्ञान की अग्नि से जला डालो।

सत्संगति है सूप ज्यों, त्यागै फटकि असार |
कहैं कबीर गुरु नाम ले, परसै नहीं विकार ||

अर्थ : सत्संग सूप के ही समान है, वह फटक कर असार का त्याग कर देता है। तुम भी गुरु से ज्ञान लो, जिससे बुराइयां बाहर हो जाएंगी।

जब लग आश शरीर की, मिरतक हुआ न जाय |
काया माया मन तजै, चौड़े रहा बजाय ||

अर्थ : जब तक शरीर की आशा और आसक्ति है, तब तक कोई मन को मिटा नहीं सकता। इसलिए शरीर का मोह और मन की वासना को मिटाकर, सत्संग रूपी मैदान में विराजना चाहिए।

****

'नाला सोपारा': अभिशप्त जीवन की त्रासदी

डॉ.गरिमा तिवारी
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी,बिहार

चित्रा मुद्गल आधुनिक युग की अत्यंत चर्चित एवं पठनीय कथा लेखिकाओं में से हैं। एक प्रगतिशील कथा लेखिका होने के साथ ही साथ वह एक कुशल समाज सेविका भी हैं । समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता, कुप्रथाएँ एवं रूढ़ियाँ इनके साहित्य का केंद्रीय स्वर है। हाशिए पर धकेल दिए गए दलित, स्त्री और आदिवासियों के अधिकारों की वकालत इन्होंने अपनी लगभग सभी रचनाओं में की है। विमर्शों के साहित्य में अपनी दमदार एवं सक्रिय उपस्थिति दर्ज करने वाली चित्रा मुद्गल जी को उनकी औपन्यासिक कृति 'पोस्ट बॉक्स नं.203 नालासोपारा' को वर्ष 2018 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। नालासोपारा में समाज की मुख्यधारा से काट दिए गए, हाशिए का जीवन जीने को अभिशप्त, मनुष्य भी नहीं समझे जाने वाले, किन्नरों के जीवन की व्यथा-कथा को वाणी दीगयी है। विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ़ बिमली के बहाने चित्रा जी ने किन्नरों की समस्याओं को अत्यंत ही मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है।

पूरा उपन्यास पत्रात्मक शैली में है और पूर्वदीप्ति शैली में चलता है ।उपन्यास किन्नर विनोद और उसकी मां वंदना बेन शाह के बीच हुए पत्राचार के माध्यम से आगे बढ़ता है । लिंगदोषी विनोद, एक अबोध मासूम बच्चा जिसे अपनी शारीरिक कमी का आभास भर है कि वह अपने स्कूल के अन्य दोस्तों जैसा नहीं है, जो स्कूल की चारदीवारी से सटकर पैंट के बटन खोलकर खड़े हो जाते हैं, वह उनसे अलग है लेकिन वह इतना भी अलग नहीं लगता कि उसके माँ-बाप उसे अपनी सामाजिक मान प्रतिष्ठा एवं कुल की मर्यादा को बचाए रखने के लिए किन्नर चंपाबाई कोसौप दें। वह परिवार के लिए अशुभ, कलंक समझा जाए । विनोद प्रतिभावान छात्र है, उसके दोस्त उसकी काबिलियत की सराहना करते हैं।पढ़ाई में अपनी कक्षा में सदैव अव्वल आता है, खेल-प्रतियोगिता में भी बेहतरीन प्रदर्शन करता है, पढ़-लिखकर गणित का प्रोफेसर बनना चाहता है, माँ-बाप की सेवा करता है, जिम्मेदार है, लेकिन विनोद किन्नर होने के कारण परिवार से परित्यक्त होता है, अवांछित समझा जाता है, यहाँ तक कि उसकी मृत्यु की खबर फैला दी जाती है । उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया जाता है। लाड़-प्यार एवं स्नेह से पला-बढ़ा विनोद अचानक एक ऐसी दुनिया में पहुंच जाता है, जो उसके लिए एकदम नयी है, अजीब है, जहाँ न शिक्षा है, न संस्कार, न अपनापन। इस दुनिया के लोग स्वयं को मनुष्यों से अलग समझते हैं, जबरदस्ती लोगों से भीख माँगकर, तालियाँ पीटकर, गाली-गलौज कर अपना पेट पालते हैं। विनोद के लिए यह दुनिया दु:स्वप्न की तरह है। वह अपनी माँ से पत्र में कहता है-**'जिस जिंदगी का हिस्सा अचानक मुझे बना दिया गया था, वह इतना आकस्मिक और अविश्वसनीय था कि मेरा किशोरमन उसे किसी भी रूप में पचा पाने में असमर्थ था। मनुष्य के दो ही रूप अब तक देखे थे मैंने। इस तीसरे रूप से मैं परिचित तो था लेकिन उसे मैं पहले रूप का ही एक अलग हिस्सा मानता था।'**[1]इस अलग दुनिया में अपने आप को अनफिट महसूस करता हुआ विनोद वहाँ से भाग जाना चाहता है लेकिन पकड़ा जाता है और बहुत मार खाता है। वह किसी भी कीमत परकिन्नर समाज के कायदे-कानून स्वीकारने को तैयार नहीं होता। उसे प्रताड़ित किया जाता है, गालियाँ दी जाती है, लेकिन विनोद टस से मस नहीं होता । फरीदाबाद की उमंग सोसाइटी में गाड़ियाँ धोता है और सरदार को पंद्रह सौ रूपये महीने किराया देता है। किसी की दया पर नहीं जीता और अपने साथी किन्नरों को भी पढ़ने-लिखने को कहता है ।पूनम जोशी नामक एक किन्नर उसे पढ़ाई में सहयोग करती है और एक स्थानीय विधायक से मिलवाती है। विधायक उसे कंप्यूटर की ट्रेनिंग दिलवा देते हैं और अपने यहां नौकरी पर रख लेते हैं ।नौकरी मिलने पर विनोद अत्यंत प्रसन्न है और अपनी मां को चिट्ठी लिखकर कहता है कि उसके लिए यह नई दुनिया है जो उसने अपने आत्मविश्वास और मेहनत के बल पर बनाई है। विधायक विनोद को आगे कर अपनी राजनीति चमकाना चाहता है। स्वयं को किन्नरों का मसीहा घोषित करना चाहता है । वह विनोद को किन्नर आरक्षण दिलाने के नाम पर आन्दोलन करने को कहता है । विनोद राजनीतिक मोहरा नहीं बनता बल्कि किन्नरों को अपने अधिकारों के प्रति सजग होने और मेहनत-मजदूरीकरने को कहता है। वह उन्हें समझाता है कि अगर वह स्वयं को सामान्य मनुष्य के रूप में देखेंगे तो यह समाज भी उन्हें मनुष्य के रूप में स्वीकृति देगा । लेकिन विधायक को विनोद का यह प्रगतिशील रूप स्वीकार्य नहीं होता और अंततः दो समाचार पत्रों में दो ख़बरें प्रकाशित होती हैं, एक विनोद की माँ का माफीनामा एवं विनोद से घर वापसी की अपील एवं एक समाचार पत्र में एक किन्नर की हत्या की खबर। दोनों ख़बरें विनोद से ही जुड़ी हैं। एक का सम्बन्ध उसके अस्तित्व की चिर प्रतीक्षित पारिवारिक स्वीकार्यता से है तो दूसरी उसके किन्नर होने के दुर्भाग्य की अंतिम परिणति। कुल मिलाकर यही उस उपन्यास का कथ्य है जिसके माध्यम से चित्रा जी किन्नरों की इस दयनीय दशा के उत्तरदायी कारणों की पड़ताल करते हुए परिवार, समाज, धार्मिक ठेकेदार, संविधान और सरकार को कठघरे में खड़ा करती हैं । इस उपन्यास के माध्यम से चित्रा मुद्गल मनुष्यता के अधिकारों से वंचित किन्नर समाज के प्रति मानवीय संवेदना का विस्तार करती हैं, उनकी समस्याओं को उठाती हैं और उन्हें समाज की मुख्यधारा में शामिल करने की जोरदार वकालत करती हैं। **'सबसे पहले अगर हम इस उपन्यास के शीर्षक की बात करें तो एक बड़ा दिलचस्प प्रश्न लेखिका इस उपन्यास के नाम के साथ एवं विनोद की मां के द्वारा लिए गए पोस्ट बॉक्स नंबर के माध्यम से उठाती हैं। इसके शीर्षक से ऐसा प्रतीत होता है कि किन्नरों के लिए जैसे कोई एक निश्चित ठिकाना ही नहीं है। उनका एक निश्चित पता,घर या परिवार नहीं है, बल्कि उनका कोई है ही नहीं। उनकी जिंदगी एक पोस्ट बॉक्स नंबर की तरह है जिसे देखते तो सब हैं लेकिन अपना कोई नहीं है। वह अपने आप में एक पूर्ण पता है लेकिन उसका कोई अता-पता नहीं है।'**[2]किन्नरों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है-स्वीकार्यता की। लिंग दोषी नवजात शिशु को परिवार, समाज के भय से त्याग देता है । परिवार से परित्याज्य किन्नर समाज के लिए कलंक बन जाते हैं। समाज इन्हें मनुष्य मानने से भी इंकार कर देता है और फेंक देता है इन्हें गुमनाम अंधेरी गलियों में। विनोद अपनी माँ से कहता है- **'कभी-कभी मैं अजीब सी अंधेरी बंद चिमगादड़ों से अटी सुरंग में स्वयं को घुटता हुआ पाता हूँ। बाहर निकलने को छटपटाता मैं मनुष्य तो हूँ न। कुछ कमी है मुझमें इसकी इतनी बड़ी सजा।'**[3]अपने हक़ और अधिकार के लिए उठने वाली इनकी आवाज संविधान और सरकार तक तो दूर, इनके परिवार और समाज तक भी नहीं पहुँचती। विनोद अपने माता-पिता को अपनी दुर्दशा का ज़िम्मेदार मानता है और उन्हें कठघरे में खड़ा करता हुआ प्रश्न करता है-**'तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कोई काननी कार्रवाई क्यों नहीं की? क्यों वह अनर्थ हो जाने दिया तूने जिसके लिए मैं दोषी नहीं था।'**[4]

चित्रा मुद्गल पूरे किन्नर समुदाय की तरफ से यह प्रश्न हमारी सामाजिक, एवं न्याय व्यवस्था से पूछती हैं कि शारीरिक रूप से पूर्ण न होने में इनका क्या अपराध है ? इन्हें सजा क्यों मिलती है, जब इन्होने कोई गलती ही नहीं की। स्त्री या पुरुष की तरह किन्नर भी प्रकृति का ही वरदान हैं, हाँ थोड़े अलग हैं, समाज की नजर में आधे-अधूरे, अपूर्ण लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ये मनुष्य हैं और मनुष्य होने के नाते इन्हें संविधान प्रदत्त मनुष्यों के सभी अधिकार प्राप्त होने चाहिए। उन्हें भी सामान्य बच्चों की तरह पढ़ने का, अपने परिवार के साथ रहने का, घर की ज़िम्मेदारियाँ उठाने का, माता-पिता के क्रिया-कर्म करने का, पितरों के श्राद्ध करने का, शादी करने का, मनुष्य समझे जाने का अधिकार मिलना चाहिए । वह शारीरिक सुख भोगने और देने से वंचित हैं, संतान पैदा नहीं कर सकते तो

क्या वे मनुष्य नहीं समझे जाएंगे। विनोद का यह प्रश्न हमें सोचने पर मजबूर करता है कि –**'जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आंख नहीं हो। तुम्हारे हाथ पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं।'**[5]लेकिन हमारा समाज किन्नरों के प्रति अत्यंत संवेदन हीन एवं असहिष्णु है। किन्नर, समाज के लिए अवांछित हैं। वंदना कहती है- **'समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वह आदत डालना भी नहीं चाहते। पर मुझे विश्वास है हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा, वक्त के साथ नजरिया बदलेगा। भविष्य में इस अधूरेपन का भी कोई इलाज निकल आएगा।'**[6] चित्रा मुद्गल किन्नरों के बेहतर भविष्य के प्रति आशान्वित हैं और उनकी मुक्ति का मार्ग भी बताती हैं। विनोद चित्रा जी के प्रगतिशील विचारों का वाहक है जो यह मानता है कि एकमात्र शिक्षा ही उनकी मुक्ति का मार्ग है। वह किन्नर समुदाय के कायदे-कानून नहीं मानता, वह प्रतिरोध करता है। **'उनके लात-घूंसे, थप्पड़ और कानों में गर्म तेल से टपकती किसी भी संबंध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक-मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, नसलमे-सितारे वाली साड़ियां लपेट लिपस्टिक लगा कानों में बुंदे लटकाने को।'**[7]किन्नरों की सामाजिक स्वीकार्यता के लिए आवश्यक है उन्हें अपना तौर-तरीका बदलने की। उन्हें शिक्षित होने की, मेहनत-मजदूरी कर पेट पालने की। आत्मनिर्भर बनने की। विनोद चाहता है कि समाज ने उन्हें जिस नरक की दहकती भट्टी में धकेला है, उसमें वह अपने आप को मनोरंजन का साधन न बनने दे। स्वाभिमान के साथ जिए। समाज को अपने पहनावे और तौर-तरीकों से अवसर न दे उन्हें उपेक्षित करने का। किन्नर समाज को संबोधित करते हुए विनोद कहता है- **'अपने श्रम पर जिओ। मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर। तुम्हें मारने का जहर। तुम्हें समाज से बाहर करने का जहर।'**[8]समाज को किन्नर गलीज और असामान्य लगते हैं लेकिन वे आम और सामान्य मनुष्य की तरह ही संवेदनशील और असुरक्षा से घिरे हैं।

चित्रा मुद्गल किन्नर समुदायों के जननांग और विकलांगों को ढूँढ कर अपने समाज में शामिल करने को उनके अस्तित्व के प्रश्न के रूप में देखती हैं।**'यह भीतर से खोखले और डरे हुए लोगों की जमाते हैं यह चाहते हैं, जिस विशेष परिभाषा से उन्हें मंडित किया गया है, उसी रूप में ही सही उनकी भी एक संगठित उपस्थिति समाज में बने। उनकी ताकत में इजाफा हो, ढूंढते फिरते हैं जननांग विकलांगों को, इसीलिए कहीं से कोई टोह मिल जाए। विनोद अपनी मां से पूछता है- 'अब आप ही बताएँ बा, उन्हें समाज की मुख्यधारा में क्यों नहीं स्वीकार्य होना चाहिए।'**[9]आखिर वे भी तो अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। समाज से तिरस्कृत किन्नर समुदाय ने अपने आप को उनसे अलग मान लिया है और अपने जैसों को ढूँढ कर वह अपना अलग समाज बनाना चाहते हैं। वह वास्तव में नहीं चाहते कि किन्नर, समाज की मुख्यधारा में शामिल हों। अदर-० की श्रेणी में रखकर सरकार उन्हें स्वयं समाज की मुख्यधारा से काट रही है, उन्हें यह अहसास दिला रही है कि वे सामान्य नहीं हैं। विनोद सरकार की राजनीति को समझ जाता है। वह कहता है- **'मर्द-औरत तक तो जेंडर का विभाजन ठीक है पर अन्य- क्यों? लिंगदोष के चलते हमें 'अन्य-' की श्रेणी में झोंक दिया जाएगा। हम तुम्हें पहचान दे रहे हैं। पहचान देने के लिए ही यह श्रेणी बनाई है। पहचान लेकिन वही रहेगी जो रही चली आई है।'**[10]किन्नर सरकार की मंशा समझ रहें हैं, उन्हें समाज में सामान्य मनुष्यों की तरह रहने की पहचान चाहिए, उनसे अलग समझे जाने की नहीं। जब तक समाज उनके अपने से अलग इस रूप को स्वीकार नहीं करेगा तब तक, चाहें सरकार मतगणना का अधिकार दे दें या शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण, स्थिति नहीं बदलने वाली। किन्नरों को सरकार की खैरात नहीं अपना मनुष्य समझे जाने का अधिकार चाहिए। समाज की बदली हुई मानसिकता चाहिए। विनोद कहता है- **'जरुरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनने की। सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे में नहीं फेकेंगे। ट्रांसजेंडर के खांचे में नहीं ढकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में, तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देगी ? किन्नरों के रूप में समाज ने उन्हें उस खांचे में सदियों पूर्व ढकेल कर रखा हुआ है। उसी रूप में उन्हें आरक्षित करके सरकार अभिभावकों को अपराधमुक्त कर खुली छूट दे रही है। पैदा होते ही वह लिंग दोषी बच्चों को ट्रांसजेंडर जमात के हवाले कर दे।'**[11]वह सरकार सेकहता है किकिन्नरों की शुभेच्छु सरकार को अगर उन्हें सच में आरक्षण देना है तो मेल, फीमेल के खांचे में ही दे - **'आरक्षण देना ही है, सरकार उन्हें उन्हीं दोखानों के भीतर दे जिन खानों के भीतर जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों को मिलता है। उन्हें चुनने की सुविधा दे। जिस खाने को वे स्वयं के लिए चुनना चाहे, जो होना चाहे।.अविकसित लिंग दोषियों के दिमाग में स्वयं के प्रति बैठे हुए नकारात्मक सोच को निष्कासित करना जरूरी है।'**[12]राजनेताओं के लिए कोई भी उपेक्षित समुदाय सिर्फ अपनी राजनीति चमकाने का जरिया है, वे उनके प्रति कतई भी संवेदनशील नहीं हैं। विधायक विनोद को अपने फायदे के लिए कंप्यूटर की ट्रेनिंग दिलवाता है, ताकि विनोद उसे देवतुल्य समझे और उसका काम भी करता रहे। विनोद की प्रतिभा को देखकर विधायक उसे चंडीगढ़ किन्नर समुदाय को संबोधित करने भेजता है, किन्नर आरक्षण के नाम पर देशव्यापी हड़ताल करने को कहता है, ताकि उसकी पार्टी किन्नरों का मसीहा बन उनका वोटबैंक हासिल कर सके। उनकी राजनीतिक मंशा को विनोद सफल नहीं होने देता। वह मंच पर किन्नरों को संबोधित तो करता है, लेकिन उन्हें भड़कता नहीं, जैसा कि विधायक चाहता है। उनसे अनशन करने को नहीं कहता, तोड़-फोड़ को नहीं उकसाता बल्कि वह उनकी मुक्ति के रास्ते तलाशता है, उन्हें आत्मनिर्भर बन जीने को कहता है, मेहनत-मजदरी कर अपना पेट पालने को कहता है, ताली बजाकर भीख मांगने का प्रतिकार करने को कहता है। अपने नारकीय जीवन को शिक्षित बन संवारने को कहता है। समाज उन्हें अपनाए इसके लिए अपने आचरण में सुधार करने को कहता है। लिंगदोषी बच्चों को परित्यक्त करने वाले परिवार वालों से अपने बच्चों को अपनाने को कहता है, उनकी घर वापसी की बात करता है- **'विरासत में मिले नरक को अभिशाप के रूप में न स्वीकार कर जननांग दोषी, उससे मुक्ति के रास्ते तलाशे। अपना जीवन जीने की पद्धति पर मंथन करे। समाज उसके लिए मुक्ति के रास्ते नहीं तलाशेगा। समाज की मानसिकता बदलनी होगी। लेकिन बदलेगी कैसे? कोई विकल्प है? किसी अभिभावक को पुकार लगानी होगी बा। दुस्साहस करना होगा। मात्र साहस भर पर्याप्त नहीं। जननांग दोषी औलाद से क्षमा मांगते हुए। सार्वजनिक रूप से घोषित करते हुए। मेरे बेटे, मेरी बेटी, जहाँ भी हो, अपने घर लौट आओ। हम अपनी मानवीय भूल का परिष्कार करना चाहते हैं। अपने बच्चे की घर वापसी चाहते हैं।'**[13]किन्नरों के वास्तविक उत्थान के लिए सरकार सख्त कानून बनाए और उन्हें आरक्षण स्त्री या पुरुष के खांचे में ही दे। कन्याभ्रूण हत्या के दोषी अभिभावकों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करे। जननांग दोषी बच्चों को त्यागने वाले माँ-बाप को सजा मिले। मेडिकल साइंस के इस दौर में अंग, प्रत्यंगों का प्रत्यारोपण हो रहा है और यह उम्मीद की जा सकती है कि एक दिन जननांग दोषी अपने शारीरिक दोष से मुक्ति पा जाए। विनोद सरकार पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि- **'सरकार को हमें गुजारा भत्ता खुशी-खुशी देना चाहिए। जनसंख्या के आंकड़े में हम इजाफा जो नहीं करते।'**[14]चित्रा मुद्गल इस उपन्यास के माध्यम से समाज की किन्नरों के प्रति मानसिकता को बदलने का आग्रह करती हैं। किन्नरों को एक अलग पहचान नहीं बल्कि मनुष्य माने जाने का समर्थन करती हैं। माता-पिता से अपने जननांग दोषी बच्चों को त्यागने की बजाय स्वीकारने के साहस का आग्रह करती हैं। सरकार उन्हें शिक्षित करने का बीड़ा उठाए तो समाज उन्हें स्वीकारने लगेगा। किन्नरों को भी मनोरंजन का माध्यम न बन स्वाभिमान से जीना चाहिए। किन्नर अगर स्वयं को हिकारत की नजर से न देख कर अपनी यथास्थितिवादी मानसिकता को त्याग दें तो समाज का उनके प्रति नजरिया भी बदलेगा। समाज से, परिवार से, सरकार से उपेक्षित किन्नर राजनीतिक अपराधीकरण का शिकार हो जाते हैं, इस पर भी चित्रा जी ने प्रकाश डाला है – **'असामाजिक तत्वों के हाथ की**

कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरों के संदर्भ में सामाजिक बहिष्कार-तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं ।'[15] चित्रा जी हिजड़ा और किन्नर शब्द के प्रयोग में कोई खास अंतर नहीं पाती। **'सुनने में किन्नर शब्द भले गाली न लगे मगर अपने निहितार्थ में वह उतना ही क्रूर और मर्मान्तक है, जितना हिजड़ा । किन्नर की सफेदपोशी में लिपटा चला आता है, उसकी ध्वन्यात्मकता में रचा-बसा।'**[16]चित्रा जी बताती हैं कि किन्नर 'किन्नौर' के होते हैं और हिमाचल प्रदेश के लोगों ने जननांग दोषियों के लिए किन्नर शब्द के प्रयोग पर आपत्ति प्रकट की है ।किन्नरों के अस्तित्व से जुड़े कई प्रश्न लेखिका इस उपन्यास के माध्यम से उठाती हैं, लिंगपूजक समाज और सरकार को कठघरे में खड़ा करती हैं और किन्नरों की स्वीकार्यता की मानसिकता को अपनाने पर जोर देती हैं ।चित्रा जी किन्नरों के प्रति समाज की संवेदना को जागृत करने का प्रयास करती हैं ।17 इस उपन्यास के माध्यम से अभिभावकों से अपने अबोध परित्यक्त लिंगदोषी बच्चों से माफी माँगते हुए उनकी घर वापसी की अपील करती हैं । वंदना बेन शाह का अपनी मृत्यु पर अपने किन्नर बेटे विनोद के लिए अखबार में छपा माफीनामा और उसके घर वापसी की अपील लेखिका के इसी मंतव्य का सूचक है । **'मैं वंदना शाह पत्नी श्री हरीन्द्र शाह अपने लिंग दोषी बेटे से क्षमा-याचना करती हुई उसकी घर वापसी की कामना करती हूँ ।'**[17]लेकिन इस माफीनामे के साथ ही एक किन्नर की हत्या की खबर भी अख़बार में प्रकाशित होती है, जिसकी शिनाख्त नहीं हो पाई है, और पुलिस इसे आपसी रंजिश करार दे रही है। लेकिन पाठक यह समझ जाता है कि यह लाश विनोद की है । जी नहीं, यह अमीर-गरीब का पुराना टोटका नहीं, महज शारीरिक कमी के चलते किसी इंसान को असामाजिक बना देने की क्रूर विडंबना है । अपने ही घर से निकाल दिए गए विनोद की मर्मान्तक पीड़ा उसके अपनी बा को लिखे पत्रों में इतनी गहराई से उजागर हुई है कि पाठक खुद यह सोचने पर विवश हो जाता है कि क्या शब्द बदल देने भर से अवमानना समाप्त हो सकती है ? परिवार के बीच से छिटककर नारकीय जीवन जीने को विवश किए जाने वाले ये 'बीच के लोग' आखिर मनुष्य क्यों नहीं माने जाते । आज जबकि ऐसे असंख्य लोगों को समाज से स्वीकृति मिलने लगी है । हमारी संसद भी इस संदर्भ में पुरातनपंथी नहीं रही है, क्या यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि परिवार व समाज अपनी सोच के मकड़जाल से बाहर निकल आएंगे, ठीक उसी तरह जैसे इस उपन्यास के मुख्य चरित्र की मां वंदना बेन शाह अपने बेटे से घर वापसी की अपील करते हुए एक विस्तृत माफी नामा अखबारों में छपवाती है । यह अपील एक व्यक्ति भर की न रहकर, समूचे समाज की बन जाए, यही वस्तुतः कथाकार की मूल मंशा है ।'[18]

****

सन्दर्भ सूची-

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नेताजीसुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, संस्करण-2019, पृष्ठ-24-25

सामयिक सरस्वती, संपा-महेश भरद्वाज, विकलांग है असामाजिक या अपशकुन नहीं, प्रदीप कुमार, अंक-अप्रैल सितम्बर 2018,पृष्ठ-81

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, संस्करण-2019, पृष्ठ-30

वही, पृष्ठ-11

वही, पृष्ठ-50

वही, पृष्ठ-10

वही, पृष्ठ-9

वही, पृष्ठ-50

वही, पृष्ठ-50-51

वही, पृष्ठ-113

वही, पृष्ठ-112

वही, पृष्ठ-177-178

वही, पृष्ठ-177

वही, पृष्ठ-179

वही, पृष्ठ-87

वही, पृष्ठ-42

वही, पृष्ठ-222-223

वही, आवरण पृष्ठ

भारतीय संत परम्परा और संत-साहित्य के महान हस्ताक्षर

महामना संत रैदास भारतीय संत परम्परा और संत-साहित्य के महान् हस्ताक्षर है, दुनियाभर के संत-महात्माओं में उनका विशिष्ट स्थान है। क्योंकि उन्होंने कभी धन के बदले आत्मा की आवाज को नहीं बदला तथा शक्ति और पुरुषार्थ के स्थान पर कभी संकीर्णता और अकर्मण्यता को नहीं अपनाया। ऐसा इसलिये संभव हुआ क्योंकि रैदास अध्यात्म की सुदृढ़ परम्परा के संवाहक भी थे। वे निर्गुण रंगी चादरिया रे, कोई ओढ़े संत सुजान को चरितार्थ करते हुए सद्भावना और प्रेम की गंगा को प्रवाहित किया। मन चंगा तो कठौती में गंगा, यह संत शिरोमणि रैदासजी के द्वारा कहा गया अमर सूक्ति भक्ति दोहा है। जिसमें उनकी गंगा भक्ति को सरलता से समझा जा सकता है। हिंदू धर्म के अनुसार कोई भी इंसान जात-पांत से बड़ा या छोटा नहीं होता। अपितु मन, वचन और कर्म से बड़ा या छोटा होता हैं। संत शिरोमणि रैदासजी जात से तो मोची थे, लेकिन मन, कर्म और वचन से संत थे। उनके भक्त रैदासी कहलाते हैं।

स्वामी रामानन्दजी के बारह शिष्यों में से एक रैदासजी के जीवन में गंगा भक्ति से जुड़े अनेक घटना एवं प्रसंग है। जिनसे स्पष्ट होता है कि उनके जीवन निर्माण, उनकी भक्ति, उनकी धर्म-साधना, उनकी कर्म-साधना एवं साहित्य साधना में गंगा का अलौकिक एवं अनूठा महत्व एवं प्रभाव रहा है। संत कवि रैदास कबीरदास के गुरु भाई थे। गुरु भाई अर्थात् दोनों के गुरु स्वामी रामानंदजी थे। संत रैदास का जन्म लगभग 600 वर्ष पूर्व माघ पूर्णिमा के दिन काशी में हुआ था। मोची कुल में जन्म लेने के कारण जूते बनाना उनका पैतृक व्यवसाय था और इस व्यवसाय को ही उन्होंने भक्ति-साधना एवं ध्यान विधि बना डाला। कार्य कैसा भी हो, यदि आप उसे ही परमात्मा का ध्यान बना लें तो मोक्ष सरल हो जाता है। रैदासजी अपना काम पूरी निष्ठा और ध्यान से करते थे। इस कार्य में उन्हें इतना आनंद आता था कि वे मूल्य लिए बिना ही जूते लोगों को भेंट कर देते थे। रैदासजी के उच्च आदर्श और उनकी वाणी, भक्ति एवं अलौकिक शक्तियों से प्रभावित होकर अनेक राजा-रानियों, साधुओं-महात्मा तथा विद्वज्जनों ने उनको सम्मान दिया है। वे मीरा बाई के गुरु भी थे। रैदासजी श्रीराम और श्रीकृष्ण भक्त परंपरा के कवि और संत माने जाते हैं। उनके प्रसिद्ध दोहे आज भी समाज में प्रचलित हैं जिन पर कई धुनों में भजन भी बनाए गए हैं। जैसे, प्रभुजी तुम चंदन हम पानी- इस प्रसिद्ध भजन को सभी जानते हैं।

महान संत, समाज सुधारक, साधक और कवि रैदास ने जीवनपर्यन्त छुआछूत, ऊंच-नीच, जातिवाद जैसी कुरीतियों का विरोध करते हुए समाज में फैली तमाम बुराइयों के खिलाफ पुरजोर आवाज उठाई और उन कुरीतियों के खिलाफ निरन्तर कार्य करते रहे। समस्त भारतीय समाज को भेदभाव से ऊपर उठकर मानवता और भाईचारे की सीख देने वाले 15वीं सदी के महान समाज सुधारक संत रैदासजी को जो चेतना प्राप्त हुई, वह तन-मन के भेद से प्रतिबद्ध नहीं है, मुक्त है। उन्हें जो साधना मिली, वह सत्य की पूजा नहीं करती, शल्य-चिकित्सा करती है। सत्य की निरंकुश जिज्ञासा ही उनका जीवन-धर्म रहा है। वही उनका संतत्व रहा। वे उसे चादर की भाँति ओढ़े हुए नहीं हैं बल्कि वह बीज की भाँति उनके अंतस्तल से अंकुरित होता रहा है। उनका जन्म ऐसे विकट समय में हुआ था, जब समाज में घोर अंधविश्वास, कुप्रथाओं, अन्याय और अत्याचार का बोलबाला था, धार्मिक कट्टरपंथता चरम पर थी, मानवता कराह रही थी। उस जमाने में मध्यमवर्गीय समाज के लोग कथित निम्न जातियों के लोगों का शोषण किया करते थे। ऐसे विकट समय में समाज सुधार की बात करना तो दूर की बात, उसके बारे में सोचना भी मुश्किल था लेकिन जूते बनाने का कार्य करने वाले संत रैदास ने आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करने के लिए समाधि, ध्यान और योग के मार्ग को अपनाते हुए असीम ज्ञान प्राप्त किया और अपने इसी ज्ञान के जरिये पीड़ित मानवता, समाज एवं दीन-दुखियों की सेवा कार्य में जुट गए। उन्होंने अपनी सिद्धियों के जरिये समाज में व्याप्त आडम्बरों, अज्ञानता, झठ, मक्कारी और अधार्मिकता का भंडाफोड़ करते हुए समाज को जागृत करने और नई दिशा देने का प्रयास किया।

****

उच्च शिक्षा : हिंदी भाषा की स्थिति एवं चुनौतियाँ

(दक्षिण भारत के हैदराबाद महानगर के संदर्भ में)

डॉ. पठान रहीम खान, डी.लिट.
आसिस्टेंट प्रोफेसर,हिंदी विभाग
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू युनिवर्सिटी,गच्चीबौली, हैदराबाद – 500 032
मो. – 94402 14888 / 83283 97170

प्रस्तावना:- भारत देश में हिंदी भाषा एक सशक्त भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। पूरे देश में हर वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस मना कर, हिंदी का प्रचार एवं प्रसार किया जाता है। इस प्रयास से हिंदेतर प्रदेशों में भी इसका प्रसार-प्रचार बढ़ने लगा है। आंध्रप्रदेश और तेलेंगाना राज्यों में दूसरी भाषा के स्तर पर हिन्दी पढ़ाई जा रही है। माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक और स्नातक स्तर पर द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी भाषा को बड़ी मुश्किलों से छात्र लेते है। इस लिए बहुत से गैर-सरकारी संगठन दक्षिणी भारत के क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के विकास में प्रयास कर रहे हैं। इन क्षेत्रों में हिंदी के विकास में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई और हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। हिंदी भाषा के विकास में दक्षिण भारत के हैदराबाद में चल रहे अनेक प्रयासों का विवरण है।

मूल शब्द:– हिंदी भाषा, उच्च शिक्षा, दक्षिण भारत, प्रचार एवं प्रसार में हिंदी, चुनौतियां, समस्याएँ, समाधान।

विषय प्रवेश:- शिक्षा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र की उन्नति का साधन है और साध्य भी है। शिक्षा के बिना व्यक्ति अधुरा होता है और पशु के समान है। क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति में अपने विचारों को आदान-प्रदान करने की क्षमता रहती है। शिक्षा से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास, व्यक्ति के उच्च आदर्श, मूल्य, आचार-विचार, संस्कृति आदि हस्तारित होते हैं। शिक्षा से त्याग एवं राष्ट्रीय भावना विकसित होते हैं।

'शिक्षा' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा की 'एजुकेटम' से हुई है, जिसका साधारण अर्थ- शिक्षित करना है। शिक्षा को अंग्रेजी में "एजुकेशन" कहते है।

शिक्षा का संकुचित अर्थ स्कूली शिक्षा से है, जो एक नियंत्रित वातावरण में क्रमानुसार, नियमबद्द से होता है। इस संबंध में जी.एच. यामसन का कहना है कि– "शिक्षा एक विशेष प्रकार का वातावरण है, जिसका प्रभाव बालक के चिंतन, दृष्टिकोण तथा व्यवहार करने की आदतों पर स्थायी रूप से परिवर्तन के लिए डाला जाता है।"

शिक्षा का व्यापक एवं विस्तृत अर्थ यह है कि- व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक सीखी जाने वाली शिक्षा है। वह एक अनियंत्रित वातावरण में होता है, जिसमें रहते हुए, बालक अपनी प्रकृति के अनुसार स्वतंत्र रूप से व्यवहार करता है। इस संबंध में एस.इ. मैकेन्जी का कहना है कि- "व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जीवन पर्यंत चलती है तथा जीवन के प्रत्येक अनुभव से उसमें वृद्धि होती है।"एम.के. गांधी का कहना है कि – "शिक्षा का अर्थ मैं बालक अथवा मनुष्य में आत्मा, शरीर और बुद्धि के सर्वांगीण और सबसे अच्छे विकास से समझता हूँ।" 'शिक्षा' की परिभाषा देते हुए, रवींद्रनाथ टेगौर कहते है कि- "शिक्षा का अर्थ मस्तिष्क को इस योग्य बनाना है कि– वह सत्य की खोज कर सके, तथा अपना बनाते हुए, उसको व्यक्त कर सके।"

पाश्चात्य विचारक पेस्तालॉजी का कहना है कि- "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरूप तथा प्रगतिशील विकास है।"

वटलर का कहना है कि– "शिक्षा प्रजाति की आध्यात्मिक संपत्ति के साथ व्यक्ति का क्रमिक सामंजस्य है।"

शिक्षा से व्यक्ति में आंतरिक शक्तियों का विकास होता है। इसके साथ-साथ नैतिक, मानवीय मूल्यों का विकास, आत्मनिर्भर होना और भावी जीवन की तैयारी करना है। इसके साथ-साथ सामाजिक नियमों का ज्ञान, सामाजिक भावना का विकास, समाज और राष्ट्र के प्रति उदार दृष्टिकोण, भावात्मक एकता, राष्ट्रीय एकता का विकास, राष्ट्रीय अनुशासन, व्यक्ति को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान भी मिलता है। सामान्य रूप से सबको दी जाने वाली शिक्षा से ऊपर, किसी एक विशेष विषय को लेकर पढ़ने वाली शिक्षा ही उच्च शिक्षा है। यह शिक्षा विशेष कर विश्वविद्यालय, व्यवसायिक विश्वविद्यालय, कम्यूनिटि महाविद्यालय, कॉलेजों में विशेष रूप से दी जाने वाली शिक्षा होती है। उच्च शिक्षा के संदर्भ में विश्व में अमेरिका, चीन के बाद भारत तीसरे स्थान में उच्च शिक्षा तंत्र में आती है। उच्च शिक्षा के अंतर्गत सामान्य उच्च शिक्षा, व्यवसायिक, प्राद्योगिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा आदि आते हैं। विशेषकर हैदराबाद महानगर में स्नातक, उच्च शिक्षा एवं हिंदी शोध के अंतर्गत पढ़ाई जाने वाली प्रमुख विश्वविद्यालय, महाविद्यालय (कॉलेज) की सूची और वहाँ पढ़ाई जाने वाली शिक्षा के स्तर निम्न प्रकार से हैं। वे–

क्रम संख्या	महाविद्यालय / विश्वविद्यालय	स्थान एवं पता	पढ़ाई जाने वाली शिक्षा
	हैदराबाद विश्वविद्यालय	गच्चीबौली, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2. इंटीग्रेटेड कोर्स (5 वर्षीय काल) 3.एम.ए. हिन्दी 4..पीएच.डी. हिन्दी 5.पी.जी. डिप्लोमा इन फंक्शनल हिंदी ट्रांसलेशन
	मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी	गच्चीबौली, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.इंटीग्रेटेड कोर्स (5 वर्षीय काल) 3.एम.ए. हिन्दी 4.पीएच.डी. हिन्दी 5. पी.जी. डिप्लोमा इन फंक्शनल हिंदी ट्रांसलेशन
	उस्मानिया विश्वविद्यालय	तारनाका, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी 3.पीएच.डी. हिन्दी 4.पी.जी. डिप्लोमा इन फंक्शनल हिंदी ट्रांसलेशन
	इंग्लिश एंड फॉरेन लैंगुएज यूनिवर्सिटी	तारनाका, हैदराबाद	1.एम.ए. हिंदी 2. पीएच.डी. हिंदी
	कोटी महिला स्वयंशासित महाविद्यालय	कोटी, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी 3.पीएच.डी. हिन्दी
	उस्मानिया विश्वविद्यालय पी.जी. कॉलेज	पाराडाइस, पैरेड ग्राउंड सिकंदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी 3. पीएच.डी. हिंदी
	उस्मानिया विश्वविद्यालय पी.जी. कॉलेज	सैफाबाद, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी
	विवेक वर्धनी कॉलेज	जामवाग, कोटी, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी
	पंडित नरेंद्र ओरिएंटल कॉलेज	नारायणा गूडा, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी 3. ओरिएण्टल लैंग्वेज
	अभ्युदय ओरिएंटल कॉलेज	जियागूडा, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी
	निजाम कॉलेज	निज़ाम क्लब, एन.सी.ई.आर.टी , हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी
	हिंदी महाविद्यालय	नल्लाकुण्टा, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी 2.एम.ए. हिन्दी
	केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद शाखा	शिवम रोड, हैदराबाद	सेवारत हिन्दी अध्यापकों के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण
	उच्च शिक्षा और शोध संस्थान (विश्वविद्यालय अनुभाग) और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद	चिन्तल बस्ती, खैरताबाद, हैदराबाद	1.स्नातक स्तर पर हिंदी (i.प्रवेशिका, ii. विशारदा, iii. प्रवीण) 2.एम.ए. हिन्दी 3.एम.फिल. हिंदी 4.पीएच.डी. हिन्दी 5.डी.लिट., हिंदी
15.	हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद	नामपल्ली स्टेशन रोड, यल.यन. मार्ग, हैदराबाद	स्नातक स्तर पर हिंदी प्रवेशिका भूषण विद्वान

उपर्युक्त स्नातक एवं स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के आलावा और भी विद्यालय एवं महाविद्यालय हैं, जिसमें द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढाई जाती है। इन विद्यालय एवं महाविद्यालयों में अंशकालिक रूप में प्राध्यापक गण सुचारू रूप से कर्यारत हैं और हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद :–इस विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1997 में संसद के एक अधिनियम द्वारा अखिल भारतीय क्षेत्राधिकार के साथ स्थापित किया गया है। यह 200 एकड भूभाग में विस्तरित है। यह विश्वविद्यालय अपने नियमित और दूरस्थ शिक्षा सेवा प्रदाता के रूप में पहचाना जाता है। यहाँ खासकर स्त्री शिक्षा, उर्दू और उर्दू के माध्यम से बी.ए., एम.ए., पीएच.डी. शोध कार्य आदि उच्चतर शैक्षणिक पाठ्यक्रमों को चलाया जाता है।

हिंदी विभाग :– इस विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना 2007-2008 में हुई है। इस हिंदी विभाग में देश के विविध राज्यों से एम.ए., हिंदी और पी.जी. डिप्लोमा इन फंक्शनल हिंदी ट्रांसलेशन, पीएच.डी. शोध अध्ययन हेतु छात्र-छात्राएँ आते हैं। इस हिंदी विभाग का प्रमुख उद्देश्य हिंदेतर क्षेत्रों में हिंदी भाषा और साहित्य का प्रचार-प्रसार करना, उर्दू और दक्खिनी भाषा के साथ अपने संबंध मजबूत बनाएँ रखना है। यों ही नहीं, अंतर्विषयक अध्ययन में अनुसंधान को भी साथ दिया जा रहा है। शोध क्षेत्र में विशेष रूप से नारीवादी साहित्य, दलित साहित्य, तुलनात्मक साहित्य, मुस्लिम विमर्श, आधुनिक रंगशाला आदि क्षेत्रों में शोध कार्य संपन्न हो रहे हैं।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण:–

प्रो. करण सिंह ऊटवाल
डॉ. जी. वी. रत्नाकर, अध्यक्ष
डॉ. दोड्डा शेषु बाबू
डॉ. पठान रहीम खान
डॉ. अबु हुरैरा (अंशकालिक रूप में)
डॉ. अदनान बिस्मिल्लाह (अंशकालिक रूप में)

विश्वविद्यालय में, हिंदी की प्रगति के लिए सन् 2013 में हिंदी प्रकोष्ठ (राजभाषा प्रकोष्ठ) की स्थापना भी की गई है, जिस प्रकोष्ठ की हिंदी अधिकारी श्रीमती डॉ. शगुफ्ता परवीन जी है।

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद :–हैदराबाद विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 02-10-1979 में हुई है। इस विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर हिंदी, इंटीग्रेटेड कोर्स (5 वर्षीय काल), पी.जी. डिप्लोमा इन फंक्शनल हिंदी ट्रांसलेशन, एम.ए., और पीएच.डी. में शोध कार्य हो रहे हैं। अनुसंधान के क्षेत्र में काफी प्रगति हो रही है। यहाँ हर वर्ष एम.ए. हिंदी पढ़ने और अनुसंधान करने के लिए भारत के विविध राज्यों से छात्र आते हैं। विशेष रूप से हिंदी विभाग में आदिवासी साहित्य, दलित साहित्य, प्रयोजनमूलक हिंदी, तुलनात्मक और अंतर्विषयक अध्ययन विषयों में गंभीरता से शोधकार्य हो रहे हैं।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण:–

प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अध्यक्ष
प्रो. वी. कृष्ण
प्रो. आर. एस. सर्राजु.
प्रो. रवि रंजन
प्रो. गजेंद्र पाठक
प्रो. आलोक पाण्डेय
प्रो. विष्णु सार्वदे
प्रो. अन्नपूर्णा
डॉ. श्याम राव
10. डॉ. भीम सिंह
11. डॉ. एम. आंजनेयुलु
12. डॉ. आत्माराम

3. **उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद :–**

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद की स्थापना सन् 1918 में हुई है। इस विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एम.ए., और पीएच.डी. शोध कार्य हो रहे हैं। शोध के अंतर्गत दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, तुलनात्मक अध्ययन, नारीवादी, कथा-साहित्य, नाटक आदि क्षेत्रों में शोध कार्य हो रहे हैं।

इस हिंदी विभाग में देश के विविध राज्यों से एम.ए. हिंदी अध्ययन हेतु छात्र-छात्राएँ आते हैं। हर साल एम.ए. हिंदी पढ़ने वालों की संख्या अधिक ही रहती है।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :-

डॉ. डब्लु. मायादेवी, अध्यक्ष
डॉ. संगीता व्यास

4. इंग्लिश अंड फॉरेन लांगुएज यूनिवर्सिटी, हैदराबाद :–इस विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1958 में हुई है। इस विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में देश के अनेक राज्यों से छात्र-छात्राएँ एम.ए. और पीएच.डी. हिंदी में अनुसंधान करने आते हैं। इस विभाग में विशेष रूप से नारीवाद, आदिवासी, दलित, तुलनात्मक और प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में शोध कार्य हो रहे हैं।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–

डॉ. श्याम राव राथोड़, अध्यक्ष
डॉ. टी. जे. रेखा रानी
डॉ. प्रोमिला
डॉ. प्रियदर्शिनी
5. डॉ. अभिषेक रोशन

5. कोटी महिला स्वयंशासित महाविद्यालय, कोटी, हैदराबाद :–कोटी महिला स्वयंशासित महाविद्यालय की स्थापना सन् 1924 में हुई है। इस महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में स्नातक स्तर पर हिंदी भाषा को द्वितीय भाषा और विशेष अध्ययन के रूप में पढ़ाया जा रहा है। यह उस्मानिया विश्वविद्यालय का अनुबंध महाविद्यालय है।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण:–

डॉ. राजश्री मोरे, अध्यक्ष
डॉ. के दत्तात्रेय
डॉ. संतोष

6. उस्मानिया पी.जी., कॉलेज, सिकंदराबाद :-इस महाविद्यालय की स्थापना सन् 1947 में हुई है। इस महाविद्यालय में बी.ए. में हिंदी द्वितीय भाषा और विशेष अध्ययन के रूप में पढ़ाई जाती है। इसके साथ-साथ एम.ए. हिंदी भी पढ़ाई जाती है। हैदराबाद महानगर में यह एक बड़ा महाविद्यालय है।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :-

डॉ. अजय कुमार

7. उस्मानिया पी.जी. कॉलेज, सैफाबाद :-इस महाविद्यालय में बी.ए. में हिंदी द्वितीय भाषा एवं विशेष अध्ययन के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके साथ-साथ एम.ए. हिंदी भी पढ़ाई जाती है। हैदराबाद महानगर में यह एक बड़ा महाविद्यालय है।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–

1. डॉ. समर कुमार घोष

8. विवेक वर्धनी कॉलेज, जामबाग, कोटी :–इस महाविद्यालय की स्थापना सन् 1989 में हुई है। इस महाविद्यालय में बी.ए. में हिंदी द्वितीय भाषा एवं विशेष अध्ययन के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके साथ-साथ एम.ए. हिंदी भी पढ़ाई जाती है।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–

1. डॉ. अनुपमा, अध्यक्ष
2. डॉ. विद्याधर

9. पंडित नरेन्द्र ओरियंटल कॉलेज, नारायणगुडा :–इस महाविद्यालय की स्थापना सन् 1956 में हुई है। इस महाविद्यालय में इंटरमीडिएट, स्नातक में हिंदी द्वितीय भाषा और विशेष अध्ययन के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके साथ-साथ एम.ए. हिंदी और हिंदी में शोध कार्य भी संपन्न हो रहे हैं।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–

डॉ. मीना कुमारी
डॉ. श्यामसुंदर राव
डॉ. नागराज
4. डॉ. शिवहर बिरादर
5. डॉ. तिरुमाला देवी

10. अभ्युदय ओरियंटल कॉलेज, जियागुडा, हैदराबाद :-इस महाविद्यालय की स्थापना सन् 1971 में हुई है। इस कॉलेज में बी.ए. में हिंदी द्वितीय भाषा और विशेष अध्ययन के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके साथ-साथ एम.ए. हिंदी भी पढ़ाई जाती है। हैदराबाद महानगर में यह एक बड़ा महाविद्यालय है।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–

1. डॉ. राम कोटी

11. निज़ाम कॉलेज, हैदराबाद :–निजाम कॉलेज की स्थापना सन् 1887 में हुई है। इस कॉलेज में स्नातक स्तर पर द्वितीय भाषा, विशेष अध्ययन के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। यह हैदराबाद महानगर में बहुत पुरानी साझी विरासत विशेषताओं से भरी कॉलेज है। इस कॉलेज से अनेक लोग प्रमुख नेता, शिक्षाकोविद बने हुए हैं।

विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–

डॉ. अविनाश जैसवाल, अध्यक्ष एवं प्रिन्सिपल
डॉ. समर कुमार घोष डॉ. दासरी मौलाली
डॉ. टी. मीना सिंह डॉ. एस. संपत डॉ. ई. सुनीता

12. हिंदी महाविद्यालय, नल्लकुण्टा, हैदराबाद :–
इस महाविद्यालय में बी.ए. में हिंदी द्वितीय भाषा और विशेष अध्ययन के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके साथ-साथ एम.ए. हिंदी भी पढ़ाई जाती है। हैदराबाद महानगर में यह एक बड़ा महाविद्यालय है।
विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :-
डॉ. रजनीधारी
डॉ॰ चन्द्र प्रताप सिंह
डॉ. जयलक्ष्मी चंद्रैहै
भीमराव पाटिल
5. डॉ॰ पुष्पवल्ली

13. **केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद शाखा :–** केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद शाखा की स्थापना सन 1976 में हुई है। इस संस्था का उद्देश्य शिक्षण कॉलेजों एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को चलाना है, जिसमें भाषा शिक्षण, नये पाठ्य पुस्तक, व्याकरण, हिंदी साहित्य, हिंदी भाषा शिक्षण आदि विषयों में विशेषज्ञों के साथ कार्यक्रम संपन्न होता है। आजकल के वर्तमान शिक्षा परिवेश के हिसाब से भाष-शिक्षण की आधुनिक विधियों एवं तकनीकों का व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता है। हैदराबाद का कार्य क्षेत्र आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, गोवा, महाराष्ट्र, पांडिचेरी एवं अंडमान निकोबर द्वीप समूहों से जुड़ा हुआ है।
यों ही नहीं, हैदराबाद केंद्र में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च कक्षाओं के लिए द्वितीय भाषा हिंदी, प्रथम भाषा हिंदी और हिंदी का विशेष अध्ययन को पढ़ाने वाले हिंदी अध्यापकों को लघु अवधि के लिए पुनःशचरण शिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।
इस केंद्र में विशेषकर राज्य सरकार के जिल्ला परिषद, सरकारी स्कूल, नवोदया विद्यालय, केंद्र सरकारी की स्वैच्छिक संस्थाएँ, आश्रम पाठशालाएँ, के.जी.बी.वी, आदि अनेक स्कूल, कॉलेज, प्रशिक्षण संस्थाएँ, सेवा संस्थाएँ आदि को नवीकरण पाठ्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता है।
इसके साथ-साथ राज्य, केंद्र सरकारों के द्वारा प्रयोजनमूलक पाठ्यक्रम जैसे रेलवे विभाग, डाक विभाग, बैंकिंग, एल.ऐ.सी, वित्त विभाग आदि संस्थाओं के कर्मचारियों के लिए पाठ्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता है।
विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–
डॉ. गंगाधर वानोडे, असिस्टेंट प्रोफेसर, क्षेत्रीय निदेशक
2. प्रो. अनीता गंगुली, सेवा निवृत्त

14. उच्च शिक्षा और शोध संस्थान (विश्व विद्यालय अनुभाग) और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद :–
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद शाखा की स्थापना सन् 1918 में में हुई है। इस संस्था का उद्देश्य विशेषकर हिंदेतर भाषियों में हिंदी का प्रचार एवं प्रसार करना, हिंदी और हिंदी साहित्य, हिंदी भाषा के प्रति रूचि जगाना है। इस संस्था में दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत स्नातक स्तर पर हिंदी, एम.ए.(हिन्दी) एम.फिल.(हिंदी) पी.एच.डी. (हिन्दी) डी.लिट.(हिंदी) आदि परीक्षाएं एवं शोध कार्य हो रहे हैं।
इस सभा के अन्य विभागीय हिंदी परीक्षाओं को राज्य एवं केंद्र सरकारों की मान्यता मिली है। इस सभा द्वारा संचालित प्रवेशिका, विशारदा, प्रवीण की परीक्षाओं को केंद्र, राज्य सरकारों ने क्रमशः मैट्रिक, इंटर तथा बी.ए. के हिंदी स्तर के समकक्ष स्थायी मान्यता प्रधान की गयी है। विशेषकर इस संस्था के द्वारा अनेक उपयोगी पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन भी किया जा रहा है।
विभाग में कार्यरत प्राध्यापकगण :–
1.डॉ. संजय.यल. मदार, अध्यक्ष 2.डॉ. नीरजा
3.डॉ. गोरखनाथ तिवारी 4.डॉ. बालेविंदर कौर ,5.विजय हिंदूराव पाटिल 6. डॉ. विष्णु रॉय

15. हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद :-हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद की स्थापना सन् 1935 में हुआ है। इस संस्था का उद्देश्य विशेषकर हिंदेतर भाषियों में हिंदी का प्रचार एवं प्रसार करना, हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति रूचि जगाना है।इस सभा की परीक्षाओं को राज्य एवं केंद्र सरकारों द्वारा मान्यता मिली है। इस सभा द्वारा संचालित विशारदा, भूषण तथा विद्वान की परीक्षाओं को केंद्र, राज्य सरकारों ने क्रमशः मैट्रिक, इंटर तथा बी.ए. में हिंदी स्तर के समकक्ष स्थायी मान्यता प्रधान की गयी हैं। विशेषकर इस सभा के द्वारा अनेक उपयोगी पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है। इस सभा में हिंदी पुस्तकों के साथ, तेलुगु, मराठी, संस्कृत, कन्नड आदि के इतिहास हिंदी में तैयार किये जा रहे हैं। इसके साथ-साथ तेलुगु और उर्दू साहित्य का इतिहास प्रकाशित हो चुका है। इस संस्था से 'विध्या वाचस्पति' की उपाधि डी.लिट., की समकक्ष है।

स्नातक, स्नातकोत्तर एवं उच्च शिक्षा में हिंदी भाषा की चुनौतियाँ :–आजकल की इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों में स्नातक, स्नातकोत्तर एवं उच्च शिक्षा में हिंदी भाषा की अनेक समस्याएँ हैं। आज कल तेलंगाना राज्य और दक्षिण भारत में हिंदी भाषा को अमल करने में अनेक समस्याएँ झेल रहे हैं। वास्तव में आंध्रप्रदेश और तेलेंगाना राज्यों में माध्यमिक कक्षाओं में विशेषकर दसवीं कक्षा में हिंदी भाषा में उत्तीर्णता के लिए 20 (बीस) अंक है। जब छात्र 20 अंक से पास होता है और इण्टरमीडियट में प्रवेश करता है, तो वहाँ द्वितीय भाषा के रूप में उसको तेलुगु, हिंदी, संस्कृत, उर्दू भाषाओं में किन्हीं एक भाषा को ही चुनना पड़ता है। इसलिए वह हिंदी भाषा को पढ़ने में रुचि नहीं दिखाता है। क्योंकि संस्कृत भाषा को तेलुगु में भी लिखकर 100% अंक पाया जा सकता है। अन्य भाषाओं में अंकों की प्रामाणिकता से हिंदी भाषा को लेने में छात्र रुचि, आसक्त नहीं दिखाते हैं। इस प्रकार इंटरमीडिएट के स्तर पर हिंदी भाषा लुप्त होती जा रही है। इस हिंदी भाषा को बचाना हम सब का दायित्व है।

कोई भी छात्र इण्टरमीडियट के बाद कॉलेज या स्नातक स्तर पर दाखिला लेता है, तो वहाँ पर भी ऊपर की स्थिति ही नज़र आती है, जो इंटर कॉलेजों में है। इस तरह हिंदी को न पढ़ पाने के कारण वह उच्च शिक्षा में एम.ए. हिंदी और अनुसंधान में सक्षम नहीं बन पाता है। इस तेलेंगाना राज्य के हैदराबाद शहर के कॉलेजों में, विश्वविद्यालयों में एम.ए. हिंदी पढ़ने वालों की संख्या बहुत कम ही है। हैदराबाद के 14,15 विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, कॉलेजों में एम.ए. हिंदी पढ़ाई जाती है। इस कारण से सभी विश्वविद्यालयों में एम.ए. हिंदी में छात्रों का प्रवेश पूर्ण रूप से नहीं हो पा रहा है, जिससे सब कॉलेजों में, कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की प्रवेश संख्या कम ही है। लेकिन शोध करने वालों की संख्या अधिक है, क्योंकि शोध करने के लिए भारत के विविध राज्यों से शोध करने इन विश्वविद्यालयों में आते हैं। उपर्युक्त 14,15 कॉलेज, एवं विश्वविद्यालयों से 5,6 विश्वविद्यालयों में ही सुचारू रूप से शोध में छात्र प्रवेश कर पा रहे हैं। इस प्रकार हैदराबाद महानगर में हिंदी भाषा की स्थिति है। आशा करते है कि- हिन्दी भाषा की समृद्दि में हम सब एक साथ चले और इसे आगे बढाए।
सुधार एवं समाधान :–
दसवीं स्तर पर उत्तीर्ण अंक 20 से 35 अंक करना है।
माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति समय पर हो।
इण्टर कॉलेजों में द्वितीय भाषा हिंदी को नियमानुसार पढ़ाया जाए।
स्नातक कॉलेजों में भी द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी और हिंदी भाषा को एक विशेष अध्ययन के रूप में पढ़ाया जाय।
इण्टर कॉलेज, स्नातक कॉलेजों में हिंदी प्राध्यापकों की नियुक्ति की जाय।
अहिंदी क्षेत्रों के छात्राओं को इण्टरमीडियट, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय स्तर पर एम.ए. हिंदी पढ़ने के लिए छात्रों को हर विश्वविद्यालय में (छात्रावृत्ति) या प्रोत्साहनवृत्ति दिया जाए।अहिंदी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक और आचार्यों की नियुक्ति किया जाए।अध्यापक, प्राध्यापकों को नियमित रूप से हर साल में एक बार फ़ैकल्टि डेवेलोपमेंट प्रोग्राम (14 दिन का) पुनशचरण पाठ्यक्रम (14 दिन का रिफ्रेशर कोर्स) शिक्षण दिया जाए, ताकि वे शिक्षण एवं प्रशिक्षण में समृद्द हो सके।
आधुनिक शिक्षा नीति, 2020 के स्तर को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के क्षेत्र में आए हुए परिवर्तनों के अनुसार हिन्दी को आगे बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को चलाया जाय।
निष्कर्ष :– किसी भी भाषा में उस देश की संस्कृति का वास होता है, जिस कारण संस्कृति के रूप में भाषा भी धरोहर माना जाता है। संस्कृति के विकास के लिए भाषा के कौशलों एवं तत्वों की जरूरत है, जिससे हम भाषा में छिपी संस्कृति से परिचित हो पाएँगे। अनुवाद के कारण हम किसी भी भाषा के लुप्त उस संस्कृति की जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगें। हिंदी भारत की अधिकांश जनता की भाषा है, जिसको शिक्षा का माध्यम बनाना, उसके संपूर्ण विकास में सरकार को आगे बढ़ाना जरूरी है।

इस प्रकार से उच्च शिक्षा में, विशेषत: हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने से हिंदी की प्रगति हो सकती है। इसके लिए स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालयों को स्थाई रूप से समृद्ध बनाने की आवश्यकता है। हिंदी की समृद्दी ही देश की प्रगति है। इस लिए हम कह सकते है कि- "हिंदी भारत माता की बिंदी है।"

****

संदर्भ सूची :-

1. विविध हिंदी विभाग के अध्यक्षों से बातचीत।
2. गूगल सर्च से कुछ तथ्य।
3. अनेक हिन्दी प्राचार्य एवं प्राध्यापकों से व्यक्तिगत संपर्क से।
4. विविध ग्रंथालयों से प्राप्त समाचार।
5. विविध तथ्यों के आधार से।

पंचयातों में महिला आरक्षण के 30 वर्ष : सशक्तिकरण यथार्थ या मिथक

डॉ.संजय यादव
सहायक आचार्य
जनजातीय अध्ययन, कला, संस्कृति एवं लोक साहित्य
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक (म.प्र.)

सारांश :- आज विश्व मे लोकतन्त्र की शहनाई गूंज रही है। सभी शासन प्रणालियों मे लोकतन्त्र को श्रेष्ठ शासन प्रणाली माना जाता है। यह प्रणाली मानवीय गरिमा, वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं समानता तथा राजनीतिक निर्णयों मे जनसहभागिता को सुनिश्चित करता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता के साथ-साथ अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमापूर्ण जीवन की बात करता है। एक स्वच्छ तथा सशक्त लोकतन्त्र की स्थापना करता है। भारतीय लोकतन्त्र एक विशेष प्रकार का शासन विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था, विशिष्ट मनोवृत्ति तथा जीवन की एक अनुपम और विशिष्ट पद्धति है। यह शासन मे जनसहभागिता सुनिश्चित करता है। तथा राष्ट्र निर्माताओं के सपनों को साकार करते हुए सत्ता का विकेन्द्रीकरण करता है। हमारे राष्ट्र निर्माताओं के आग्रह का आकार व साधुमत लोकमत और शास्त्रमत है। सभी वर्ग, सभी जाति, सभी सम्प्रदाय तथा बिना लिंग भेद के सबकी सहभागिता हो। इस दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक सफल तथा सशक्त भूमिका का निर्वहन कर सकता है। यह महिला सशक्तिकरण का एक जीवन्त प्रतीमान हो सकता है। यद्यपि कि महिला सशक्तीकरण व्यापक, बहुआयामी एवं सतत प्रक्रिया है फिर भी पंचायती राज व्यवस्था महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण की दिशा में मील का पत्थर है क्योंकि इसके माध्यम से सामाजिक तथा संस्थागत स्तर पर व्यापक परिवर्तन हुआ है। राजनीतिक सशक्तीकरण के माध्यम से सामाजिक सशक्तिकरण का प्रयास अपनी निरन्तरता को बनाये हुए हैं। इसका परिप्रेक्ष्य इतना व्यापक और बहुआयामी है कि राजनीतिक अध्येताओं द्वारा इसे 'नारीवादी क्रान्ति' के रूप में देखा जा रहा है।

कुंजी शब्द :- पंचायत, जनसहभागिता, संवैधानिक संशोधन महिला, राजनीतिक, सामाजिक, सशक्तीकरण।

उद्देश्य :- प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य निम्नवत है :

1. 73वें संविधान संशोधन मे निहित विशिष्ट प्रावधानों को अध्ययन।
2. पंचायत राज व्यवस्था के अन्तर्गत प्रदत्त महिला आरक्षण के सन्दर्भ में महिलाओं मे विकसित सोच का अवलोकन। 3. महिला एवं पुरूष प्रतिनिधियों द्वारा किये जा रहे कार्यों में अन्तर का अध्ययन।

शोध प्रविधि :- प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक आनुभविक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया है। शोध पत्र में आंकड़ा सग्रहण हेतु प्राथमिक एवं द्वितियक नातों का अवलम्ब लिया गया है। विभिन्न रचनाओं, शोध पत्र समाचार पत्र-पत्रिकाओं सरकारी आँकड़े, विभिन्न संचार माध्यमों तथा बेबसाइटों का सहयोग द्वितीयक स्रोत के रूप में लिया गया है। प्राथमिक स्रोत के दोनो रूपों प्रत्यक्ष (साक्षात्कार, अनुसूची) तथा अप्रत्यक्ष (प्रश्नावली) का भी प्रयोग किया गया है।

पंच से पंचायत बना। पंच महाभूतों का भारतीय परम्परा में अतिशय महत्व हैं। पंच महाभूत से ही संसार का विस्तार माना जाता है। ऐसी भी मान्यता है कि 'पंच तत्व मिलि बने शरीरा। क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा।। पंचायत के पंच भी परमेश्वर के समाने होते थे। भारतीय संविधान के 73वें संविधान संशोधन ने इन्हें कानूनी दर्जा प्रदान कर दिया। पंचायत लोकतन्त्र में विकास की पहली सीढ़ी मानी जाती है। प्राचीन काल से ही भारत में पंचायत का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में सभा और समिति का उल्लेख आया है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में पंचायतों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 24 अप्रैल 1993 से पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक रूप से देश में लागू कर दिया गया। संविधान का 73वाँ संशोधन इस दिशा में एक अतुलनीय प्रयास रहा। इस संशोधन के उपरान्त संविधान के अनुच्छेद 243 (डी)(3) एवं (4) यह उपबन्धित करता है कि प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या का एक तिहाई स्थान (जिसमें अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की महिला) महिलाओं के लिए संरक्षित रहेंगी। इस संरक्षण से पंचायातों में महिलाओं की सहभागिता अवश्य बढ़ी है। देश के अधिकांश राज्यों (उत्तर प्रदेश, मणिपुर, गोवा,अरूणाचल प्रदेश एवं पांच केन्द्र शासित प्रदेश को छोड़कर) ने पहिला आरक्षण को 33% से बढ़ाकर पचास प्रतिशत कर दिया है। आज देश की 660 जिला पंचायतों, 6900 माध्यमिक पंचायतों तथा 2.6 लाख ग्राम पंचायतों मे 32 लाख निर्वाचित जनप्रतिनिधि हैं (झा, 23 अप्रैल 2022, अमर उजाला)।पुरूष प्रधान मानसिकता और पुरूष प्रधान समाज मे जनप्रतिनिधि बनने मात्र से कितना महिला सशक्तीकरण हुआ यह विचारणीय प्रश्न है। अमेरिक उपराष्ट्रपति कमला हैरिस द्वारा संयुक्त राष्ट्र मे दिया गया पहला सम्बोधन इस सवाल की प्रासंगिकता को और बढ़ा देता है। उनका आग्रह थ कि 'किसी देश में लोकतन्त्र का स्तर महिलाओं के सशक्तीकरण पर निर्भर करता है। केवल चुनाव जीतने से कुछ नहीं होता निर्णय लेने की शक्ति मिली या नही, उस शक्ति के प्रयोग के लिए कैसा वातावरण मिल रहा यह महत्वपूर्ण है।' यहाँ भी 'डी फैक्टो' और 'डी ज्यूरो' वाली स्थिति खड़ी हो जाती है। पंचायती राज अधिनियम के विपरीत सरकारी बैठकों में महिला जनप्रतिनिधि की जगह परिवार के पुरूष ही जाते है। यह स्थिति महिला आत्मनिर्भरता को हतोत्साहित करती है। सरकारी पदाधिकारी भी इस दुख्यवस्था क दंश झेलते है।

पंचायती राज का उददेश्य :- स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने अनेक समस्याएं थी। इन समस्याओं से निवृत्ति हेतु सम्यक प्रयास भी होते रहे। इस क्रम में परम्परागत प्राचीन संस्था पंचायत, पुनर्जीवित करके उनमे नवीनतम का संचार और सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया गया पंचायती राज व्यवस्था से यह आशा दिखने लगी की वे ग्रामीणों मे विकास कार्यों के प्रति नवजागरण का संचार करेंगी। किसी समुदाय की प्रगति तभी सम्भव मानी जा सकती है। जब वह अपनी समस्याओं को समझे तथा अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करें। अपने कर्तव्यबोध के प्रति जागरूक रहें। स्थानीय शासन पर सतत बौद्धिक सक्रियता बनाये रखे (अग्रवाल,2015,पृष्ठ 27) कुछ विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पंचायती राज का जन्म हुआ था। इसके शैशवावस्था मे इसके तीन प्रमुख उद्देश्य थे।

1. पंचायती राज का तात्कालिक उद्देश्य सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का प्रचार , प्रसार तथा क्रियान्वयन था।
2. लोगों मे जागरूकता हो तथा नया नेतृत्व उभर कर सामने आये।
3. ऐसी परम्परागत स्वायत्तशासी संस्थाओं की स्थापना जिससे वह सच्चे और अच्छे लोकतन्त्र क प्रतीक बन सके। लोकतन्त्र को मजबूत बना सकें।

वस्तुतः जनजागरण समस्याओं का निराकरण, तथा जनसहभागिता तथा सर्वांगीण विकास पंचायती राज का प्रमुख लक्ष्य है

भारतीय संविधान का 73वाँ संशोधन लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सशक्त माध्यम है। यह संशोधन पंचायती राजव्यवस्था से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत पंचायतों के सभी स्तरों मे एक तिहाई स्थान (33%) महिलाओं (अनुसूचित जाति, जनजाति की महिलाओं साहित) के लिए संरक्षित है। यह राज्य सरकारों को निर्देशित करता है कि वे पंचायत के प्रत्येक स्तर पर आरक्षण की व्यवस्था को चक्रानुक्रम (Rotation) प्रक्रिया से लागू करें। यह अधिनियम यह उपबन्धित करता है कि अन्य पिछड़ी जातियों के लिए पंचायतों मे आरक्षण की व्यवस्था राज्य सरकार के विवेकाधीन है। 73वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में भाग-9 को पुनः स्थापित कर 16 नये अनुच्छेद और 11वीं अनुसूची जोड़ी गयी। इसके द्वारा पंचायतों का गठन, संरचना, सदस्यों की अर्हताएं, निरहर्ताएं, पंचायतों की शक्तियाँ, प्राधिकार आदि का प्रावधान किया गया। ग्यारहवीं अनुसूची में कुल 29 विषयों का उल्लेख किया गया है। 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत बीस लाख या उससे अधिक की जनसंख्या वाले सभी

राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राजव्यवस्था की अनिवार्यता है (लक्ष्मीकान्त, 2010 पृ. 179) पश्चिमी बंगाल एक ऐसा राज्य है जहाँ चार स्तरीय पंचायत व्यवस्था अपनायी गयी है।73वें संविधान संशोधन अधिनियम के पारित होने से देश के संघीय लोकतान्त्रिक ढांचे में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इससे पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। साथ ही साथ इसने सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक रूप से पिछड़ी हुई महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देकर महिलाओं की एक नयी यात्रा की शुरूआत किया राजनीतिक फलक पर महिलाओं की नयी पहचान के युग का श्रीगणेश हुआ। महिलाओं मे राजनीतिक चेतना जागृत हुई। भरत में महिला मताधिकारों की माँग की शुरूआत होमरूल आन्दोलन से मानी जाती है, जब 1917 में श्रीमती एनीबेसेण्ट और सरोजनी नायडू ने लार्ड चेम्सफोर्ड के समक्ष अपनी माँग प्रस्तुत किया था। इसके बाद साऊथ बोरा कमीशन के समक्ष भी महिला मताधिकार की माँग रखी गयी। महिला मताधिकार के प्रति जागरूकता हुई और 1920 मे मद्रास विधान परिषद तथा 1921 मे मुम्बई विधान परिषद ने महिला मताधिकार की सुविधा प्रदान कर दी। 1929 तक भारत के सभी प्रान्तीय विधान परिषदों में महिलओं का मताधिकार प्रदान कर दिया गया (वंशल, 2004 पृ. 89)।कालान्तर में विभिन्न प्रान्तीय विधान परिषदों ने महिलाओं को मनोनीत करना प्रारम्भ कर दिया। 1930 मे प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल में महिलाओं को भी सम्मिलित किया जाना वैश्विक स्तर पर उनके सहभागिता को दर्शाता है। 1931 में जवाहरलाल नेहरू करॉंची कांग्रेस के मूल अधिकारों के प्रस्ताव मे 'समान जिम्मेदारियाँ और समान अधिकारों' की समझ को सम्मिलित करने में सफल हो गये। यही से महिलाओं की राजनीतिक प्रक्रिया मे विधिवत भागीदारी की शुरूआत मानी जाती है। भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत प्रान्तीय विधायिकाओं मे महिलाओं के लिए 4 सीटे आरक्षित कर दी गयी। (मुखर्जी, 1962 पृ. 579)। इस अधिनियम के अन्तर्गत महिलाओं के मताधिकार को 20:1 से बढ़ाकर 5:1 कर दिया गया (मुखर्जी वही.)।

26 जनवरी 1950 को हमारा संविधान लागू हुआ। भारतीय जनमानस एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और संघीय संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मसमर्पित किया। इस संविधान में सबके विकास की बात सुनिश्चित हुई। महिलाओं को भी पुरूषों के समान राजनीतिक अधिकार दिया गया। समाज तथा राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका के लिए उनके राजनीतिक सशक्तिकरण को आवश्यक माना गया। सामाजिक शैक्षणिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी भागीदारी को रेखांकित किया गया। इसे राष्ट्रनिर्माण में आवश्यक तथा अपरिहार्य माना गया। भारतीय संविधान के भाग चार नीति–निर्देशक सिद्धान्तों (अनुच्छेद 40) के अन्तर्गत पंचायती राज से संबंधित प्रावधानों को सम्मिलित किया गया। अनुच्छेद 40 के अन्तर्गत सरकार को ग्राम पंचायतों को संगठित करने हेतु आवश्यक कदम उठाने हेतु निर्देशित किया गया है। साथ ही साथ यह भी सुझाया गया है कि पंचयातो के ऐसे अधिकारों से सम्पन्न किया जाय। जो उन्हें स्वतंत्र इकाईयों के रूप कार्य करने में सहायक सिद्ध हो सके। यह गाँधी जी का सपना भी था। जिसके अन्तर्गत ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, तथा जिला परिषद सम्मिलित थे। प्रायोगिक रूप से सर्वप्रथम आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में अगस्त 1958 में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को लागू किया गया। वस्तुत लोकतांत्रिक विकेद्रीकरण की वास्तविक शुरूआत 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले से प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने की। इसके साथ ही इसे सम्पूर्ण राजस्थान में लागू कर दिया गया। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को ही बाद में पंचयाती राज कहा जाने लगा। गाँधी जी की ऐसी मान्यता थी कि "सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे 10 या 20 लोगों से नहीं चल सकती। उसे गाँव के हर आदमी द्वारा चलायी जानी चाहिए (सिंह. 2012, पृ. 98) ।1986 मे राजीव गाँधी सरकार ने 'लोकतन्त्र और विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं के पुनर्जीवन' पर एल.एम. सिंधवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं के संरक्षण , संवर्धन तथा संवैधानीकरण की सिफारिश किया (कौशिक, 2004, पृ. 89)। नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फार द वूमेन 1988 ने ग्राम पंचायतों में महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत आरक्षण की बात किया था। अनुच्छेद 243 से 243ण तक पंचयातों के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं (गुप्त 2015, पृ. 19)।

एक निश्चित समयावधि पर स्वच्छ एवं पारदर्शी निर्वाचन लोकतन्त्र की सफलता सुनिश्चित करता है। पादर्शिता तथा निष्पक्षता इसका आधार स्तम्भ होता है। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता उनकी राजनीतिक सहभागिता को लोक तान्त्रिक बनाने के साथ ही उनकी विकास सम्बन्धी उददेश्यों को भी सुनिश्चित करता है। पंचायती राज व्यवस्था अधिनियम ने राजनीति मे महिलाओं की सहभागिता को अनिवार्य बना दिया है। संविधान का अनुच्छेद 243डी का खण्ड (3) पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करता है। पंचायतों मे महिला प्रतिनिधियों की सफलता को देखते हुए आज भारत के बीस राज्यों - आन्ध्रप्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़ गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलानडू, तेलंगाना, त्रिपुरा, उत्तराखण्ड और पश्चिमी बंगाल ने महिला आरक्षण 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया है।आज देश मे पंचयाती राज संस्थाओं (पी.आर.आई) मे निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार हैं –

क्र.	राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश	कुल पी.आर.आई. प्रतिनिधि	निर्वाचित महिला प्रतिनिधि (EWR)
1	अण्डमान , निकोबार द्वीप समह	858	306
2	आन्ध्र प्रदेश	15606	78025
3	अरुणाचल प्रदेश		
4	असम	26754	14609
5	बिहार	136573	71046
6	छत्तीसगढ़	170465	93392
7	दादरा और नगर हवेली	147	47
8	दमन और दीव	192	92
9	गोवा	1555	571
10	गुजराज	144080	71988
11	हरियाण	70035	29499
12	हिमाचल प्रदेश	28723	14398
13	जम्मू और काश्मीर	39850	13224
14	झारखण्ड	59638	30757
15	कर्नाटक	101954	51030
16	केरल	18372	9630
17	लदाख	उपलब्ध नहीं	
18	लक्षद्वीप	110	41
19	मध्यप्रदेश	392981	196490
20	महाराष्ट्र	240635	128677
21	मणिपुर	1736	880
22	उड़ीसा	107487	56627
23	पुदुचेरी	उपलब्ध नहीं	
24	पंजाब	100312	41922
25	राजस्थान	126271	64802
26	सिक्किम	1153	580
27	तमिलनाडु	100450	56407
28	तेलंगाना	103468	52096
29	त्रिपुरा	6646	3006
30	उत्तर प्रदेश	913417	304538
31	उत्तराखण्ड	59229	300458
32	पॉश्चिम बंगाल	59229	30458
	कुल	3187320	1453973

3187320 स्रोत पी.आई.बी. की रिपोर्ट – 23 सितम्बर 2020

इसमें मध्यप्रदेश के नवीनतम आँकड़े सम्मिलित नहीं है। पंचायती राजव्यवस्था अधिनियम ने एक वैकल्पिक महिला राजनीतिक विमर्श को जन्म दिया। इसके पूर्व प्रायः सभी सामाजिक और राजनीतिक कार्यों का संपादन, संचालन पुरूष वर्ग द्वारा ही होता था। पर आरक्षण की इस व्यवस्था में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक रूप से पिछड़ी महिलाओं के साथ-साथ महिला समुदाय के लिए राजनैतिक स्तर पर प्रतिनिधित्व का अवसर प्रदान किया, जिसके आधार पर वह अपनी विभिन्न स्थितियों में परिवर्तन, परिवर्धन और परिमार्जन कर सकती है। आरक्षण की इस व्यवस्था ने समाज मे एक नये विमर्श को जन्म दिया। इस व्यवस्था का स्वागत हुआ पर पुरूषवादी विचार धारा वाले लोगों के लिए यह सन्तोष जनक व्यवस्था नहीं थी। महिला सहभागिता में आज भी अनेकानेक बाधाएं दृष्टिगत होती है।

समस्याएँ :- पंचायतों में महिलाओं की सहभागिता अपरिहार्य हो गयी है। पर केवल विधान मात्र से व्यवस्था नही बदली जा सकती। परिवर्तन नही लाया जा सकता। अशिक्षा, गरीबी, भारतीय सामाज का पारम्परिक ढाँचा, पुरूष वर्चस्ववादी सोच आज भी महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में अवरोधक का कार्य कर रहे है। उनकी राजनीतिक सहभागिता के कुछ जटिल अवरोधकों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है:

1. शिक्षा का निम्न स्तर।
2. प्रशिक्षण की कमी।
3. महिला प्रतिनिधियों के प्रति हिंसात्मक कार्य।
4. स्थानीय दलालों का वर्चस्व।
5. जटिल सामाजिक ढाँचा तथा समस्याएं।
6. पारिवारिक पृष्ठभूमि।
7. जटिल जाति व्यवस्था की संरचना।
8. वित्तीय अभावग्रस्तता।
9. दुराग्रहपूर्ण सोच।
10. संकीर्ण मानसिकता।

सहभागिता को सफल बनाने हेतु सुझाव :- सत्ता का विकेन्द्रीकरण लोकतन्त्र का मूलाधार होता है। लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में सबकी सहभागिता भी सुनिश्चित होती है। पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत महिलाओं की सफल, सक्रिय और सुनियोजित सहभागिता के लिए आवश्यक सुझाव निम्नलिखित हो सकते हैं:-

1. पहिला पंचयात प्रतिनिधियों को अपने कार्य प्रभावपूर्ण तरीके से सम्पन्न करने के लिए सघन शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जायें।
2. उनके प्रशिक्षण कार्यक्रम व्यावहारिक हो तथा अपने अनुभव साझा करने के विशेष अवसर दिये जायें। 3. पंचायतों के कार्यों में महिला प्रतिनिधियों की विशेष भूमिका चिन्हित किया जाय।
4. प्रारम्भ मे महिलाओं को उनकी रूचि के हिसाब से कार्य आवंटित किये जायें।
5. पंचायत कार्यों में महिला शिक्षा को सर्वोपरि रखा जाय तथ निरक्षता के कारण आने ___ वाली बाधाओं को दूर किया जाय।
6. महिला प्रतिनिधियों के कार्यों में आने वाली बाधाओं को अधिकारिक तरीके से त्वरित
रूप से निपटाया जाय।
7. महिलाओं को ग्रामीण स्तर पर प्रशिक्षित किया जाय जिससे वे योजनाओं का लाभ ले सकें।
8. सामुदायिक सम्पत्तियों के फैसले पर महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित किया जाय।
9. नौकरशाही की जगह आपसी मेल जोल और सदभावना से कार्य किये जायें।
10. कार्यों में संवेदनशीलता पर जोर दिया जाए।
11. निर्णय प्रक्रिया के सभी स्तरों पर महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित किया जाय।

निष्कर्ष : लोकतन्त्र सभी शासन व्यवस्थाओं मे अच्छी शासन व्यवस्था मानी जाती है। स्वायतशासी संस्थाये लोकतन्त्र की मूल आधार मानी जाती है। सभी का समुचित प्रतिनिधित्व लोकतन्त्र की विशिष्ट विशेषता मानी जाती है। गाँवों तक लोकतान्त्रिक संस्थाओं का प्रसार किया जाय। ये लोकतान्त्रिक संस्थायें लोकतन्त्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला तथा राजनीतिक प्रशिक्षण की प्रभावी प्रत्याभूति मानी जाती है। पंचायती राज व्यवस्था लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का रूप है। और विकेन्द्रीकरण लोकतन्त्र का अवलम्ब। भारतीय राष्ट्र निर्माताओं का आग्रह था कि सत्ता मे सबकी भागीदारी सुनिश्चित हो। पंचायती राजव्यवस्था ने इस दिशा में महत्ती भूमिका निभाया सभी स्तरों पर महिलाओं की प्रभावशाली भूमिका तथा राजनीतिक सशक्तीकरण को मजबूत किया हमारी परम्परा मे महिलाओं की सहभागिता के अनुपम उदाहरण मिलते है। याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद उपनिषदों की परम्परा को आगे बढ़ाते है। रामायण मे पार्वती प्रश्न अभीप्सु है। वे निरन्तर प्रश्न पूछती रहती है। शिव उनका सहज उत्तर भी देते है। इतनी समृद्ध संस्कृति और संवैधानिक संरक्षण के बाद भी पंचायती राज के अन्तर्गत प्रदत्त महिलाओं के अधिकार बहाव की स्थिति मे है। आज भी वे प्रभावी भूमिका मे नहीं है। इसका प्रमुख कारण ग्रामीण स्तर पर महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्थितियाँ तथा अशिक्षा, व दुराग्रह पूर्ण सोच है। आज के भारत मे भी स्त्रियों का स्थान किसी भी तरह पुरूषों के समकक्ष नहीं समझा जाता। वह पत्नी है तो कमत्तर है, बहन है तो निरीह है। बेटी है तब तो जन्म लेने की अनुमति लेने मे भी दुराग्रह के बीच फंसी हुई है। कभी उसे गुलाम, तो कभी भोग्या तो कभी उसे देवी रूप में मानने हेतु अनेकानेक मिथक गढ़े गये सीमोन द बुआ अपनी कालजयी रचना 'द सेकेण्ड सेक्स' मे लिखती है कि - कृषि युग के बाद उसने वापस अपनी सम्पूर्णता प्राप्त कर ली किन्तु कालान्तर मे औरत बाध्य हुई अन्यों की भूमिका निभाने के लिए। कभी वह गुलाम रही, कभी देवी बनी, किन्तु अपने मानव रूप का चुनाव कभी न कर सकी।" यदि देश में स्त्री-पुरूष साक्षरता और लैगिक अनुपात को देखें तब भी एक स्याह पक्ष उभारता है (रठौर, 2020 पृष्ठ. 6)। पंचायत व्यवस्थाओं मे अभी भी महिलाओं की स्थिति सन्तोषजक नहीं है। पंचायत के सभी स्तरों पर अधिकत्तर महिला प्रतिनिधियों का कार्य उनके परिवार के पुरूषों द्वारा ही संचालित होता है। ग्राम पंचायत में महिला प्रधानों का दायित्व पुरूष ही सम्पन्न करते हैं। उनकी मुहर तथा हस्ताक्षर पुरूष प्रतिनिधियों द्वारा सम्पन्न होता है। एक नये शब्द 'प्रधान प्रतिनिधि' का सृजन कर लिया गया है। पंचायती राज व्यवस्था ने महिला आरक्षण के प्रति एक राजनीतिक और वैचारिक विमर्श अवश्य उत्पन्न किया है। जागरूकता भी आयी है। परन्तु ऑकड़े और व्यावहारिक रूप आज भी चिन्ताजनक है। विज्ञापन की कामनामयी दुनिया से बाहर निकलकर स्त्री सशक्तीकरण के लिए वास्तविक प्रयास करने होंगें तभी स्त्री सशक्त होगी। राष्ट्रनायक के सपना 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' पूरा करने के लिए सबका प्रयास आवश्यक है तभी वास्वविक लोकतन्त्र की स्थापना और सशक्त भारत का निर्माण सम्भव है।

******

सन्दर्भ:-

1. बंसल, बन्दना (2004) पंचायत राज में महिला भागीदारी, दिल्ली, कल्पाज्ञ प्रकाशन,
2. मुकर्जी, बी, (1962), कम्युनिटी डेवलपमेन्ट एण्ड पंचायती राज, वाल्यू 8 द इण्डियन जर्नल आफ पब्लिक एडमिनिट्रेशन,
3. सिंह सीताराम, 2012, बिहार मे ग्राम पंचायत एवं सुशासन, पटना, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
4. कौशिक, आशा, 2004 नारी सशक्तीकरण : विमर्श एवं यथार्थ, जयपुर, प्वाइन्टर,
5. गुप्त, विश्वनाथ, 2015 भारत में पंचायती राज, दिल्ली सुरभि प्रकाशन
6. झा ऐश्वर्या 2022, बड़ा सवाल पंचायती राज व्यवस्था की 30 वीं सालगिरह, अमर उजाला, काम,
7. अग्रवाल, प्रमोद कुमार. 2015 भारत में पंचायती राज, दिल्ली. ज्ञान गंगा
8. लक्ष्मीकांत एम. 2010, भारतीय राजव्यवस्था एवं संविधान, दिल्ली पी.आई.बी. की रिपोर्ट.
9. राठौर मधु. 2020, पंचायती राज और महिला विकास, जयपुर, प्वाइन्टर पब्लिशर्स
10. पी.आई.बी. रिपोर्ट, सितम्बर. 2020

भूमि उपयोग का अर्थ एवं महत्व एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ.सालिक सिंह
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

प्रदीप कुमार
भूगोल विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

शोध-सार:- प्रकृति का स्वरूप एवं अस्तित्व परिवर्तन में निहित है प्रकृति में विद्यमान मानव एवं भूमि संसाधन ऐसे महत्वपूर्ण घटक है जो समय की आवश्यकताओं एवं क्षमता के अनुसार क्रियाशील रहते है। भूमि मानव का सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। जो कृषि सहित सभी विकास कार्यों के लिए मूलभूत आधार प्रदान करता है। भूमि पर ही मानव विभिन्न क्रियाकलाप करता है। अतः एवं भूमि उपयोग का विश्लेषण एवं अध्ययन अनेक महत्वपूर्ण पक्षों के रूप मे किया जाता है। वस्तुतः भूमि उपयोग भौगोलिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण परिवर्तनशील पक्ष है। जो प्रारम्भिक काल से ही मानव का विकास क्रम के अनुसार परिवर्तित होता रहा है।

मुख्य शब्द:- प्रकृति संसाधन विकास भौगोलिक काल।

प्रस्तावना:-भूमि एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है। जिसके बिना अन्य संसाधनो की कल्पना भी नहीं कि जा सकती है। भूमि संसाधन के उपयोग के बाद ही अन्य संसाधनो का उपयोग संभव है। क्योंकि मानव अपनी समस्त आर्थिक क्रियाओ की शुरूआत भूमि संसाधन से ही करता है। अतः भूमि उपयोग मानव विकास के लिए आवश्यक है। जनसंख्या का सर्वाधिक दबाव भूमि संसाधन पर रहता है। जो अध्ययन क्षेत्र में भी है।

1. भूमि उपयोग की संकल्पना:-भूमि मानव का सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जो कृषि सहित सभी विकास कार्यों के लिए मूलभूत आधार प्रदान करता है भूमि पर ही मानव विभिन्न क्रियाकलाप काता है भूमि उपयोग संबंधि अध्ययन में आधार भूत संकल्पनाओं का सही-सही ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है क्यों कि भूमि उपयोग भौगालिक अध्ययन का एक प्रमुख पक्ष है भूमि और भूमि से संबंधित भूमि प्रयोग भूमि उपयोग तथा भूमि संसाधन उपयोग आदि शब्दों से अनेक उलझनें उत्पनन हो जाती है। इन तीनाsa पदों की व्याख्या अतिआवश्यक है

1. भूमि पद प्रायः धरातल के ठोस भाग को व्यक्त करने के लिए प्रयोग होता है।
2. भूमि प्रयोग:- भूमि प्रयोग का अभिप्राय भूमि की प्रकृति प्रदत विशेषताओं के अनुरूप प्रयोग व उपयोग है।
3.भूमि-उपयोग:- जब भूमि का उपयोग मानव अपनी आवश्यकतानुसार कर रहा है तो उस भू-भाग के लिए भूमि उपयोग शब्द का प्रयोग उचित होता है।
4. भूमि-संसाधन उपयोग:- जब मनुष्य भूमि का उपयोग अपनी आवश्कताओं एवं इच्छा के अनुरूप करने में सक्षम हो जाता हैं तो उस समय भूमि एक संसाधन के रूप में परिणित हो जाती है अर्थात जब किसी क्षेत्र का भमि उपयोग वहाँ की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में क्षेत्र के विकास हेतु मानवीय इच्छानुसार सम्पन्न हो रहा हो और प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव कम हो तो उस अवस्था को भूमि-संसाधन उपयोग कहा जा सकता है।भूमि संसाधन धरातल पर मनुष्य द्वारा किये गये सभी विकास कार्यों को अपने में समाहित करता है। भूमि पर मानव द्वारा विभिन्न क्रियाकलाप किये जाते है। मानव विकास एवं सभ्यताएँ इतिहास राजनीति धर्म सभी पहलू भूमि से जुडे है। भूमि मानव जीवन का आधार है। मानव अपनी आवश्यकतानुसार भूमि का विभिन्न रूपों में उपयोग करता है भूमि उपयोग निवास मकान उधोग सडके यातायात सुरक्षा मंनोरंजन आदि के रूप मे किया जाता है। पिछले कुछ दशकों में जनसंख्या वृद्वि एवं उच्च जीवन स्तर के कारण सुविधाओं के विस्तार के लिए भूमि का अधिकतम उपयोग होने लगा है। भूमि का कृषि कार्य के लिये अधिकतम उपयोग होने से भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी होने लगती है एवं भूमि उपयोग का स्वरूप परिवर्तित एवं प्रभावित होता है तथा भूमि अपना प्राकृतिक स्वरूप खो देती है। जब किसी भू भाग का प्राकृतिक स्वरूप लुप्त हो जाता है और माननीय क्रियाओं के योगदान से एक नया भूदृष्य जन्म लेते है तो इसे भूमि उपयोग कहते है।

परिभाषाएँ:- फाक्स 1956 के अनुसार'भूमि प्रयोग के अन्तर्गत कोई भूमि भाग प्रकृति प्रदेश विशेषताओ के अनुसार रहता है।

प्रारम्भिक अवस्था मे भू भाग वानस्पतिक आवरण से आच्छादित या वनस्पति विहिन रहता है। इस प्रकार यदि कोई भू भाग मानवीय प्रभावो से वंचित है अथवा उसका उपयोग प्राकृतिक रूप से हो रहा है। तो उस भू भाग के लिए भू प्रयोग शब्द उचित होगा। यदि किसी भू-भाग पर मानवीय प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है या मानव अपनी आवश्यकता के अनुसार भूमि का उपयोग कर रहा है। तो उस भू भाग के लिए भूमि उपयोग शब्द का प्रयोग अधिक उचित होगा"।वुड 1972 के मतानुसार'भूमि प्रयोग, प्राकृतिक भू-दृश्य या वनस्पति आच्छादित भू-पटल के संदर्भ में ही नहीं वरन् मानवीय क्रियाकलाप से उत्पन्न उपयोगी सुधारो के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए"। वैनजेटी 1972 के मतानुसार कने "भूमि उपयोग को प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओ के संयोग का प्रतिफल माना है"।बारलोव 1954 के मतानुसार "भूमि संसाधन उपयोग के औचित्य का समर्थन करते हुए इसे भूमि की समस्याओं एवं नियोजन सबंधी विवेचन का महत्वपूर्ण अंग माना है उनके मतानुसार भू आर्थिक दृष्टिकोण से भूमि उपयोग का प्राथमिक सम्बन्ध उसकी स्थिति अवस्था प्रतिस्पर्धा परिवर्तन एवं सामंजस्य से है जिसका प्रादुर्भाव भूमि संसाधनो के उपयोग से होता है"।

डॉ 0 डी0 एस0 चैहान के अनुसार(1966 - ' प्राकृतिक पर्यावरण में भूमि -प्रयोग एक तत्सामयिक प्रक्रिया है जबकि मानवीय इच्छा के अनुरूप् अपनाया गया भूमि-उपयोग एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है।'

डॉ0 बी0 बी0 सिंह के अनुसार "कृषि से पूर्व की अवस्था के लिए जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक पर्यावरण का पूर्णतया अनुसाण किया जाता हा भूमि उपयोग शब्द अधिक उपयुक्त होगा।परन्तु जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भूमि के उचित या अनुचित उपयोग के पश्चात लाभप्रद उपयोग अपनाता है, तो उसे भमि- उपयोग कहना अधिक संगत होगा।"

विभिन्न विद्वानो द्वारा भूमि उपयोग शब्द की व्याख्या से स्पष्ट है, कि भूमि संसाधन इकाई का उपयोग आदर्शतम उपयोगिता सिद्धांतो के अनुरूप ही किया जाता है। मानव प्रभाव से रहित या अविकसित क्षेत्र उपयोगिता की दृष्टि से महत्वहीन होता है। अतः सांस्कृतिक भूगोल के क्षेत्र मे भूमि उपयोग एक क्रियाशील संकल्पना है। जब किसी क्षेत्र की भूमि का उपयोग उस क्षेत्र की आर्थिक समस्याओं के अनुसार होता है। तब भूमि का उपयोग स्वछन्द रूप से नहीं होता है। अतः ऐसे भूमि उपयोग के लिए भूमि संसाधन उपयोग शब्द का प्रयोग अधिक उचित है।

भूमि उपयोग की संकल्पनाएं - किसी क्षेत्र में भूमि उपयोग एतिहासिक घटनाओं, प्राकृतिक पर्यावरण के साथ आर्थिक शाक्तियों की अन्रक्रियाओं तथा समाज के मूल्यों के समुच्चय का प्रतिफल होता है। अतः भूमि उपयोग तथा पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों के विश्लेषण की बहुत आवश्यकता है। भूगोल में भूमि उपयोग के सन्दर्भ में अनेक संकल्पनाएं विकसित हुई है जो निम्न है -

1-भूमि उपयोग की आर्थिक संकल्पना
2-भूमि उपयोग क्षमता की संकल्पना
3-भूमि उपयोग में व्यवहारिक संकल्पना
4-भूमि उपयोग में दूरी की संकल्पना
5-भूमि उपयोग में क्षेत्रीय सन्तुलन की संकल्पना
6-भूमि उपयोग के तुलनात्मक लाभ की संकल्पना
7-भूमि उपयोग के अध्ययन में प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रतिबिम्ब की, संकल्पना
8-अनुकूलतम भूमि उपयेाग की संकल्पना-यद्यपि वर्तमान समय से भूमि उपयोग वस्तुतः भूमि संसाधन उपयोग है, जो मानव के आविर्भाव की पूर्वावस्था से विकसित होकर व्यापारिक कृषि की और अग्रसर हो रहा है। क्षेत्रीय आधार पर भी भूमि उपयोग में प्राकृतिक अवस्था से वर्तमान अवस्था तक विभिन्न परिस्थितियां के कारण परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे है। अध्ययन क्षेत्र बहरोड़ तहसील में विभिन्न प्राकृतिक एवं मानवीय कारक अलग-

अलग रूप से भूमि उपयोग को प्रभावित कर रहे है। अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्न लिखित है।

प्राकृतिक कारक:-

प्राकृतिक कारक जिन्हे भौतिक पर्यावरण के रूप मे जाना जाता है भूमि उपयोग को प्रभावित करता है। ये कृषि को एक निश्चित दिशा प्रदान करने के साथ भूमि उपयोग कि सीमा, कृषि के प्रकार एवं अन्य कृषि जटिलताओ को भी निर्धारित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। किसी भी प्रदेश कि कृषि का विकास वहा के प्राकृतिक पर्यावरण पर निर्भर करता है। कृषि फसले प्रारम्भिक रूप से प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत ही उत्पन्न होती है, तथा विकसित होती है यही कारण है कि प्राचीन काल से कृषि का विकास उन्ही स्थानो पर अधिक हुआ है जहा पर उपयुक्त प्राकृतिक दशाएं फसलोत्पादन एवं पशुचारण के लिए उपलब्ध रहे है कृषि भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले प्रमुख प्राकृतिक कारकों में उच्चावच, जलवायु, मृदा एवं जल संसाधन है जो किसी भी क्षेत्र की कृषि विशिष्टताओं को निर्धारित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। अध्ययन क्षेत्र बहरोड तहसील मे अनेक भौतिक कारण प्रभावी है। जो भूमि उपयोग को प्रभावित करते है। बहरोड़ तहसील में जलवायु की लगभग समानता पायी जाती है कुछ क्षेत्रों मे वर्षा का औसत ठीक होने के कारण वहाँ भूमि का उपयोग अधिक मात्रा मे होता है। इसके साथ ही जिन गिरदावर वृतों में पानी की समस्या है वहाँ भूमि उपयोग प्रभावित हुआ है। वर्तमान समय मे अध्ययन क्षेत्र मे पानी का स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है। तहसील मे वर्षा मात्र ग्रीष्मकालीन मानसून द्वारा होती है।

अध्ययन क्षेत्र में मिट्टी की प्रकृति मे भी भिन्नता पाई जाती है। जिससे कृषि क्षेत्र एवं फसल प्रतिरूप की भिन्नता पाई जाती है। क्षेत्र के कई भाग पथरीली एवं बलुई मृदा से प्रभावित है। अतः इन क्षेत्रों मे कृषि भूमि उपयोग अधिक विकसित नहीं है। साथ ही क्षेत्र के कुछ भागो मे दुमट या काली मृदा पाई जाती है वहाँ कृषि प्रारूप अधिक विकसित हुआ है। इसके अलावा हवायें, पाला तापमान आदि प्राकृतिक कारकों के द्वारा भी अध्ययन क्षेत्र का भूमि उपयोग प्रभावित हो रहा है।

आर्थिक कारण:-

यदपि कृषि भूमि उपयोग प्राकृतिक कारकों के द्वारा अधिक प्रभावित है। परन्तु कृषि मे आर्थिक कारक की अहम भूमिका रहती है। कृषि विकास एवं कृषि भूमि उपयोग प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक कारको से प्रभावित होता है। जिनमें बाजार परिवहन श्रम की सुविधाएँ आर्थिक नीतियाँ कृषि व्यवसाय क्षेत्रीय विशेषताएँ तथा अधिकतम मूल्य आदि कृषि भूमि उपयोग को मुख्य रूप से प्रभावित करते है। वर्तमान समय मे कृषि कार्य मात्र जीवन निर्वाहक नहीं रह गया अपितु यह मांग आपूर्ति से प्रभावित होता है। अध्ययन क्षेत्र बहरोड़ तहसील में लगातार बढती जनसंख्या के कारण बढती मांग से कृषि भूमि उपयोग बढा है। साथ ही बाजारों की समीपता एवं क्षेत्र में लगातार होते औद्योगिक विकास ने क्षेत्र के भूमि उपयोग को प्रभावित किया है। जिससे क्षेत्र में व्यावसायिक फसलों का अधिक उत्पादन किया जाने लगा है। बहरोड़ तहसील मे क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण भी भूमि उपयोग प्रभावित हुआ है। इनमें क्षेत्र के अलग-अलग भागों में भूमि के मूल्य श्रमिको की उपलब्धता किसानो की सम्पन्नता एवं विपन्नता आदि प्रमुख है जिन क्षेत्रो में धनी कृषक है। वहाँ कृषि अधिक तथा आधुनिक तरीको से की जाती है। वहीं क्षेत्र के कुछ भागों मे कृषि मात्र भरण पोषण के लिए की जाती है अतः कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र मे आर्थिक कारक भी भूमि उपयोग को प्रभावित करते है।

समाजिक कारक:-

भूमि उपयोग को प्रभावित करने में सामाजिक कारक भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिन क्षेत्रों मे कृषि भरण पोषण हेतु की जाती है। उन क्षेत्रों में कृषि भूमि उपयोग सामाजिक या सांस्कृतिक कारकों द्वारा प्रभावित है। ऐसे कारकों में क्षेत्र के रीति-रिवाज जातिगत व्यवस्था सामाजिक संरचना आदि प्रमुख है। वर्तमान समय में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों के कारण कृषि भूमि उपयोग लगातार परिवर्तित होता जा रहा है।

सामाजिक परिर्वतनों के कारण प्राकृतिक विशेषताओं के समान होते हुए भी किसी क्षेत्र के विभिन्न भागों मे कृषि के प्रकार एवं प्रतिरूप मे भिन्नता देखने को मिलती है। अध्ययन क्षेत्र बहरोड़ तहसील में बढती जनसंख्या एवं नगरीयकरण के कारण भूमि के स्वामित्व खेतों के आकार आदि में परिवर्तन हुआ है एवं जोत का अकार छोटा हो गया है। क्षेत्र मे शिक्षा के प्रसार तथा अच्छी यातायात सुविधा के कारण लगातार भूमि उपयोग प्रभावित हो रहा है। वर्तमान समय मे नगरीय विकास एवं केन्द्र स्थलों के उदभव के कारण भूमि उपयोग के परिवर्तनशील प्रतिरूप का विश्लेषण एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भूमि उपयोग मे परिवर्तन भूमि के विविध उद्धेश्यो की पूर्ति हेतु उपयोग मे लाने से होता है। उद्धेश्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप भूमि उपयोग मे परिवर्तन स्वाभाविक है जैसे फसल, उत्पादन के अन्तर्गत भूमि मे वृद्वि या कमी से कृषि भूमि के गहन व विस्तृत उपयोग तथा उत्पादन आदि मे परिवर्तन भूमि उपयोग के परिवर्तन की महत्वपूर्ण दिशाएं है। इसके अलावा कभी-कभी चारागाह भूमि को फसलों के अन्तर्गत लेने या अकृषित भूमि मे लेने या इसके विपरीत कृषि भूमि का स्वतंत्र पड़े रहना भूमि उपयोग मे परिवर्तन होना है।

वर्तमान समय मे मानव एवं भूमि के अनुपात मे अन्तर तीव्र गति से बढ रहा है। जिसका कारण जनसंख्या वृद्वि दर है। जनसंख्या वृद्वि के फलस्वरूप भूमि उपयोग स्वरूप मे अत्यधिक परिवर्तन आया है क्योंकि अधिक जनसंख्या को भरण-पोषण हेतु भूमि उपलब्ध कराने के लिए वनों की कटाई की जा रही है। या बंजर भूमि पर भी सिंचाई सुविधाओं का विस्तार करके कृषि कार्य किया जा रहा है। यही कारण है कि वर्तमान समय मे भूमि उपयोग तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। जिसके लिए जनसंख्या वृद्धि एवं तकनीकी बहुत ही उपयोगी रही है।**निष्कर्ष**:-

कृषि के लिए बड़ी मात्रा में जल की आवश्यकता होती है क्योंकि आबादी के बढने से समाज के लिए अपनी बुनियादी सरूरतों पर तेजी से दबाव होगा इस चुनौती से निपटने के लिए उसकी गम्भीरता को पूरी तरह से समझने की जरूरत होगी इसलिए सरकार को परोक्ष रूप से कृषि चुनौतियों पर सुपूर्ण तरीके से अध्ययन करना होगा और दसके लिए जरूरी कदम उठाना चाहिए। इसके साथ ही सरकार को कृषि उत्पादों के निर्यात करते समय काफी हद तक सर्तकता बरतनी चहिए क्योंकि विदेशी मुद्रा की जरूरत का घरेलू के साथ टकराव नहीं होना चाहिए कृषि उत्पादों का अच्छा मूल्य हासिल करने के लिए आयात निर्यात में संतुलन सापित करना होगा।

अंत में जहा एक तरफ आपूर्ति में सुधार कर फसल पकने के बाद किसानों के होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है वहीं खाद्य एवं कृषि प्रोद्योगिकी और प्रबंधन पर आधरित उच्च क्षमता वाली तकनीकी और प्रबंध पर भी ध्यान देने की जरूरत है ताकि उच्च प्रौद्योगिकी का लाभ किसानों को मिल सके।

****

References-

1. Kaufmann, R.K. and S.E. Snell (1997) "A Biophysical Model if Corn Yield: Integrating Climatic and Social Determinants." American Journal of Agricultural Economics, 79(1): 178-190.
2. Schlenker, W., W.M. Hanemann and A.C. Fisher (2006): "The Impact of Global Warming on U.S. Agriculture: An Econometric Analysis of Optimal Growing Conditions" Review of Economics and Statistics, 88(1): 113-125.
3. Singh Jhabar, S. K. Saxena and S. K. Kulshrestha (2014): "An Application of Error Correction Model in Cereals Production in Rajasthan", Journal of Rajasthan Statistical Association, Vol 2 No.2, December, 1-7.

भारत के लोकतांत्रिक यात्रा में राजनैतिक पक्ष की भूमिका
(स्वतंत्रता पूर्व एवं पाश्चात्य के विशेष संदर्भ में)

डॉ.शशिकांत जे.चवरे
सहायक प्राध्यापक
न.मा.द. महाविद्यालय, गोंदिया (म.रा.) मो. 7066813646, 9422609012

सारांश :-बौध्द कालीन गणतंत्र में राजनितीक **निर्णय निर्धारण में नागरिकों** के राजनितीक सहभाग के ऐतिहासीक साक्ष मिलते है। लोकतांत्रिक प्रणाली ही यह विरासत भारत में आगे बढ नही पायी। इस लोकतांत्रिक विरासत से राजतंत्र उभरा आगे जाकर राजतंत्र ने निरंकुश राजतंत्र का रुप धारण कर लिया। भारत में फैली सामाजिक विषमता अति अध्यात्मवाद, अद्यावत युध्द साधनों का अभाव, आदि कारको ने **मुस्लिम आक्रमको** को भारत मे बॉर बार आक्रमण करने का मौका दिया और मुगलो ने तो भारत मे ही भारत को ही अपना घर बनाकर शेकडों साल राज किया। कमजोर मुगल सत्ता का लाभ उठाकर अंग्रेजो के भारत के उपर राज किया । अपने निरंकुश शासन को धीरे-धीरे **ढोंगी लोकतंत्र** का वस्त्र परिधान करने हेतु यहा **संस्थात्मक व्यवस्था** की नीव मजबुत की, मतदारो के संख्या में मुख्यत: आर्थिक घटक की शर्त लगाकर विस्तार किया यही राजनितीक पक्ष के उद्भव का प्रमुख कारण था। परिस्थितीयो ने निर्माण किए **सामाजिक संघटक एवं गुट** जिसे उस समय राजनितीक पक्ष कहा जाता था । उन्होंने बडी निष्ठा से अपने राजनितीक जवाबदारियों को निभाया।

स्वतंत्रता के पश्चात राजनितीक पक्ष के पास भारत के संसदीय शासनप्रणाली को संचालित करने की बागडोर राजनितीक पक्ष के पास में गई। शुरुवात के दशक में संसद के गरिमा नुसार विपक्ष के भुमिका को अहमियत दी जाती थी । विपक्ष भी आये हुये जिम्मेदारी को जिम्मेदारी से निभाता था । सिध्दांत एवं विचारधारा में किसी भी तरह का समझोता नही किया जाता था। किंतु सत्ता प्राप्त करने की चाहत यही राजनितीक पक्ष का मुख्य हेतु बनने के कारण मतदाताओं के भावनाओं को कुचल कर राजनितीक संघठन ने सत्ता प्राप्त करने की, **घिनौनी स्पर्धा** को आरंभ किया । राजनितीक पक्षांतर को काबु करने हेतु 1985 में "52" वा संविधान संशोधन किया गया। किंतु भारत में कानुन बनने से पहले उसे किस तरह तोडा-मरोडा जायेगा इसकी व्युव्ह रचना होती है। इस कारण "52" वा **संविधान संशोधन** होने के बावजूद राजनितीक स्वार्थ साधने हेतु व्यक्तिगत एवं गुटो द्वारा राजनितीक दलबदल का दौर बडे तेजी से भारतीय राजनितीक व्यवस्था में आगे बढ रहा है । इसलिये भारत का लोकतंत्र अपनी अंतीम सांसे गिन रहा है। उसे बचाने हेतु भारतीय नागरीकों ने सक्रिय पहल करके **सजग एवं जागृत** होना समय की मांग है।

मुख्य शब्द – बौध्द कालीन गणतंत्र, मुस्लिम आक्रमकों, कमजोर मोगलाई, ढोंगी लोकतंत्र, संस्थात्मक व्यवस्था, सामाजिक संघटक एवं गुट, घिनौनी स्पर्धा, संविधान संशोधन, सजग एवं जागृत।

अध्ययन विषय का उद्देश –चयनित संशोधन विषय का उद्देश निम्नलिखत पंक्तियों में व्यक्त किया जा सकता है ।ब्रिटीशकाल के लोकतांत्रिक यात्रा को स्पष्ट करना ।स्वतंत्रता पूर्व भारत के लोकतांत्रिक यात्रा में राजनैतिक पक्ष की भुमिका को समझना ।स्वतंत्रता उपरांन्त भारत के लोकतांत्रिक यात्रा में राजनैतिक पक्ष की भुमिका को प्रस्तुत करना ।राष्ट्रीय एकात्मता में बाधा निर्माण करने में राजनैतिक पक्ष के योगदान को सभी के समक्ष लाना।
पक्ष विरहीत राजनैतिक व्यवस्था के महत्व को बतलाना।

अध्ययन विषय की उपकल्पना –
उपकल्पना यह संशोधन समस्या के अध्ययन सामुग्री को दिशा देने का काम करती है। प्रस्तुत अध्ययन की उपकल्पना निम्नलिखित है ।उपनिवेश काल में राजनितीक पक्ष विचारधारा से एकनिष्ठ थे ।ब्रिटीश काल में भारत के लोकतांत्रिक विकास में राजनैतिक पक्ष की महत्वपूर्ण भुमीका थी। स्वतंत्रता पूर्व के राजनैतिक पक्ष सामाजिक संघटन नही थे ।राजनितीक पक्ष में सदस्यता का प्रवेश होने के बाद व्यक्तिगत विचारधारा को महत्व दिया जाता है ।स्वतंत्रता उपरांन्त भारत के लोकतांत्रिक अध:पतन में राजनैतिक पक्ष की प्रमुख भुमीका है।

शोध विधी एवं प्रविधी –प्रस्तुत संशोधन विषय यह अधिकतर द्वितीय स्त्रोतो से संबंधित है। चयनित संशोधन समस्या के अध्ययन हेतु विभिन्न अखबार, ग्रंथ संपदा, शासकिय दस्ताऐवज, मासिक, साप्ताहिक एवं संकेतस्थलो का उपयोग करके अध्ययन सामुग्री को इकठ्ठा किया गया। अनुभवी एवं राजनैतिक समझ रखनेवाले जानकारो के अनुभवो को भी चयनित संशोधन समस्या के अध्ययन सामुग्री में सम्मेलित किया गया।

अध्ययन विषय का क्षेत्र –चयनित अध्ययन विषय यह भारत के लोकतांत्रिक यात्रा में राजनैतिक पक्ष की भुमीका है । इस लोकतांत्रिक यात्रा में ब्रिटीश उपनिवेश काल मे राजनैतिक व्यवस्था का जो विकास हुआ उस विकास में राजनैतिक पक्षों की भुमीका को नजर में रखा गया है। स्वतंत्रता उपरांन्त संसदीय शासन प्रणाली का स्वीकार करने के कारण राजनैतिकपक्षों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के बाद भारत के लोकतांत्रिक यात्रा में राजनैतिक पक्षों की भुमीका को चयनित विषय में ऐहमीयत दि गई है। साथ ही साथ पक्ष विरहीत राजनिती का समर्थन करनेवाले विचारको के विचारधारा पर ध्यान रखा है।

अध्ययन विषय का महत्व – चयनित संशोधक विषय का महत्व निम्नलिखित पंक्तीयों मे व्यक्त किया गया है ।ब्रिटीश कालीन राजनैतिक व्यवस्था में राजनैतिक पक्षों की भुमीका को समझने में सहायता होती है ।पक्ष विरहीत राजनिती की ऐहमियत समझने मे सहायता प्राप्त होती है ।स्वतंत्रता के बाद राजनितीक पक्ष के अपने मुल कर्तव्यों से भटकती दिशा को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

भारत के लोकतांत्रिक विकास मे राजनैतिक पक्षों के महत्व को समझने में सहायता प्राप्त होती है ।केंद्र एवं राज्यों के राजनिती में क्रमश: द्विपक्ष एवं बहुपक्ष राजनैतिक पक्ष प्रणाली के आगाज को समझने मे सहायता प्राप्त होती है।
राष्ट्रीय एकात्मता के समक्ष आये संकटो का आगाज समझने में सहायता प्राप्त होती है।

प्रस्तावना –लोकतंत्र यह शासन के प्रकार के साथ-साथ जीवनप्रणाली भी है। लोकतंत्र यह संकल्पना प्राचीनतम है। लोकतंत्र की संज्ञा राजनितीक विकास के साथ-साथ परिवर्तीत होती गई । किंतु लोकतंत्र की संज्ञा मे जनता जनार्दन के महत्व को स्थायी भाव प्राप्त हुआ है ।प्राचीन एवं मध्ययुगीन काल में संपूर्ण विश्व के साथ भारत में भी राजतंत्रात्मक प्रणाली थी। शासन सत्ता की डोर एक व्यक्ती या गिने चुने व्यक्तीयों के हाथ में केंद्रीत थी । कुछ मुठ्ठीभर राजाओं ने लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को जीवित रखा किंतु अधिकतर राजाओं ने वंशानुगत मिले शासन सत्ता का निरंकुश तरीके से प्रयोग किया इसका इतिहास साक्षी है ।मध्ययुग में प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली का आगाज पाश्चात्य संस्कृती में हुआ इसके ऐतिहासिक तथ्य पर्याप्त रुप मे प्राप्त होते है। मध्ययुगीन प्रबोधन काल से जनता मे राजनैतिक जागरुकता का दौर प्रारंभ हुआ। बढती जनसंख्या, ज्ञान का बढता प्रचार और प्रसार यातायात के साधनों में अमुल चुल परिवर्तन आदी कारणों ने निरंकुश राजतंत्र की धज्जियां उडाई। राष्ट्रराज्य का उदय प्रचंड स्वरुप में फैला। भुप्रदेश एसे कारणों से प्रत्यक्ष लोकतंत्र का स्विकार करना वास्तविक धरातल पर संभव नही था इसी कारणवश प्रतिनिधात्मक शासन प्रणाली का स्वीकार विश्व के अधिकतर देशों ने किया ।प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली के साथ आधुनिक लोकतंत्र का आगाज हुआ। प्रतिनिधात्मक शासन प्रणाली को वास्तविक धरातल पर लाने हेतु सार्वजनिक चुनाव के अलावा कोई रास्ता नही था । किंतु 18 शताब्दी में कुछ विकसित राष्ट्रोने राजनैतिक पक्ष को नजर अंदाज करके एवं संविधान में उसे कोई भी स्थान न देकर प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली के माध्यम से शासन को संचालित करने का भरपूर प्रयास किया । पाश्चात्य विकिसत राष्ट्रों ने अपने संविधान में राजनैतिक पक्ष को कानुनी मान्यता नही दी। किंतु प्रतिनिधात्मक शासन प्रणाली को सुचारु रुप से संचालित करवाने हेतू आवश्यकता नुसार राजनैतिक पक्षों का गठन किया गया। अधिकतर देशों मे यह राजनैतिक पक्ष सामाजिक संघटन के रुप में थे। समय बितने के बाद इस सामाजिक संघटनों का राजनैतिक पक्षों में

रुपांतरण हुआ।भारत के लोकतांत्रिक यात्रा का इतिहास बहोत पुराना है। भारत को गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली की विरासत प्राचीन काल से ही प्राप्त हुई किंतु इसे भारत कायम रखने मे असफल हुआ। इसकी जगह राजतंत्र एवं निरंकुश तंत्र ने ली। जो पुरी तरह से शेकडो की संख्या मे गुटो में विभक्त था। इसका लाभ ले के मुगल एवं अंग्रेजो ने शेकडों सालो तक राज किया। अंग्रेजो ने भारत के साथ-साथ अपने गुलाम राष्ट्रों मे साम्राज्य को मजबुत करवाने हेतू प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली को प्रारंभ किया। इसी कारणवश भारत में अंग्रेजो के उपनिवेश काल में सामाजिक संघटन के रुप में राजनैतिक पक्ष का उगम हुआ। 1909, 1919 और 1935 के भारत शासन अधिनियम के आधुनिक लोकतंत्र के दिशा में बडे मजबुती से पग रखा। उस समय राजनैतिक पक्ष में बडे निष्ठा से अपने जिम्मेदारी को निभाया और भारतीयों में राजनैतिक प्रबोधन जगाने का काम मजबुती के साथ किया। राजनितीक पक्ष के हिस्से मे जो भी जिम्मेदारी दी गई उसे बखुबी निभाया। स्वतंत्रता के बाद भी राजनितीक पक्ष ने सत्तारुढ पक्ष एवं विरोधी पक्ष की भुमिका को जनता के आकांक्षा के दृष्टीकोण नुसार निभाया। किंतु 70 के दशक के बाद राजनैतिक पक्ष यह केवल सत्ता हथियाने का केवल साधन बन चुका है। चुनाव का मौसम आने के बाद विभिन्न राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पक्षों में आयाराम-गयाराम का जो दौर सुरु होता है। उसमें जनता के हित कम व्यक्तीगत स्वार्थपूर्ती ज्यादा दिखाई देते है। भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में वर्तमान स्थिती मे जो दौर बदल रहा है। उसके बारे में ठीक-ठीक भाष्य करने में बडे-बडे राजनैतिक पंडीत असफल हो रहे है। लोकतंत्र का सन्मान, गरिमा एवं प्रतिष्ठा रखने की बहोत बडी जिम्मेवारी राजनैतिक पक्ष के उपर है। किंतु वह अपन८ जवाबदारी को सही ढंग से निभा रहा है। यह सोचनेवाला प्रश्न है ? इसी बिंदु को ध्यान रखकर "भारत के लोकतांत्रिक यात्रा मे राजनैतिक पक्ष की भुमिका-स्वतंत्रता पूर्व एवं पाश्चात्य के विशेष संदर्भ" मे इस संशोधन विषय का चयन किया गया है। इस संदर्भ में विभिन्न बिंदुओं को मध्यनजर निम्नलिखित विवेचना की है।

अ) राजनैतिक पक्ष का अर्थ एवं परिभाषा :-प्राचीन एवं मध्ययुगीन राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली पर नैतिक उपदेश, शिष्टाचार परंपरा एवं धार्मिक रुढीया इनके माध्यम से नियंत्रण रखा जाता था। लोकतंत्र के विकास में लिखित संविधान का अपना महत्व है। प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली को संचालित करवाने हेतू संविधान अहम भूमिका निभाता है। आधुनिक लोकतंत्र में संविधान द्वारा शासन संचालित होता है। यह भ्रामक प्रतित होता है। शासन को संचालितकरने का काम राजनैतिक दलो द्वारा होता है। इस बारे मे राजनैतिक शास्त्रीयों में एकमत दिखाई देता है। इसलिए मुन्से ने "आधुनिक राजनैतिक व्यवस्था को दलीय व्यवस्था कहा है"[1] कुछ मुठ्ठीभर देशों को छोड दिया जाये तो विश्व के सभी देशों में प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली मौजुद है और इस शासन प्रणाली की आत्मा राजनैतिक दल है। राजनैतिक दल को परिभाषित करने हेतु विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करना यह बडी तेढी खीर है, क्योंकि संघटन, सिधान्त, विचारधारा, राजनैतिक पक्ष का कार्यक्रम एवं प्रकृती आदी को ध्यान रखकर राजनैतिक पक्ष की परिभाषा करने परप ही राजनैतिक पक्ष का अर्थ समझने मे सहायता होगी। इसी को केंद्र में रखकर विभिन्न राजनैतिक शास्त्रीयों ने की हुई राजनैतिक पक्ष की परिभाषा एवं उसमें छिपा मंतत्रव्य निम्नलिखित पंक्तियों से प्राप्त होने मे सहायता होगी।प्रो. लास्की के शब्दों में, "राजनीतिक दल देश में अधिनायकवाद से हमारी रक्षा करने के सर्वश्रेष्ठ कवच है" ।मैरियट के अनुसार - "अधिकारियों का चुनाव, सार्वजनिक नीति का निर्धारण तथा सरकार का संचालन और उसकी आलोचना करने में सहायता प्रदान करते है " ।[2]उपरोक्त परिभाषा में अधिनायक वाद को नियंत्रित करना यही राजनैतिक दल की प्रमुख भुमिका दिखलाई देती है। राजनैतिक सत्ता में लोकतांत्रिक तरिके से सार्वजनिक पदाधिकारिओं को बिठाना और उनके कार्यकलापों पर राजनैतिक पक्ष द्वारा नियंत्रण रखना यही आधुनिक लोकतंत्र में अभिप्रेत है ।डिजरायली के अनुसार – "कुछ निश्चित सिध्दांतो का अनुकरण करने के लिए एकीकृत व्यक्तिओं के समुह को राजनैतिक पक्ष कहते है" ।डीन व शुमैन के मतानुसार – "राजनैतिक दल अनिवार्य रुप में हितबध्द समुहों के लक्ष्यों को लागू करने के लिए राजनितीक संस्थाएं बन गए है" ।[3]उपरोक्त परिभाषा में संघटनात्मक एवं उद्देशात्मक प्रकृती का दर्शन होता है। इसी आधार पर राजनैतिक पक्ष के स्वार्थ संबंध गुट एवं दबाव गुट से अलग किया जाता है। निश्चत तौर पर राजनैतिक पक्ष संघटनात्मक तरिके से जो हित साध्य करना कहते है,उसमें जन आकांक्षाओं का दर्पण होना लाज्मी है। "रॉबर्ट सी.बोन एवं लापालोम्बर"[4] इन राजशास्त्रीयों के अनुसार राजनैतिक पक्ष यह औपचारिक संघटन है जिसका उद्देश्य शासन मे शामिल होना एवं शासन को नियंत्रित करना है। इससे राजनैतिक पक्ष के संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक वादी दृष्टीकोण का आभास होता है।अभी तक किये हुये विवेचना के आधार पर सरल शब्द में राजनैतिक पक्ष यह राजनैतिक सत्ता प्राप्त करवाने हेतु संघटीत समूह है। जो अपने कार्यक्रमों और सिध्दांन्तों से मतदारों को लुभाने का एवं शासन को नियंत्रित करने का एक प्रभावी माध्यम है। राजनैतिक पक्ष के बिना आधुनिक लोकतंत्र के बारे में सोचना असंभव है। लेकिन राजनैतिक पक्ष की निश्चित शब्दों के आधार पर परिभाषा करना यह एक सरदर्द है।

ब) भारत में राजनैतिक पक्ष की ऐतिहासिक पृष्ठभुमी :-भारत में फैली सामाजिक विषमता एवं प्रभावी केंद्रीय नेतृत्व का अभाव इस मुख्य कारणों से विदेशी शक्तीयों ने भारत के उपर अपना साम्राज्य प्रस्थापित किया। 11 वे शताब्दी से भारत के उपर मुस्लिमों ने आक्रमण प्रारंभ किया। 16 वी शताब्दी मे मुगलों ने भारत में अपने शासन सत्ता को मजबुत किया। एक राजतंत्र से निरंकुश राजतंत्र के पास शासन सत्ता का हस्तांतरण हुआ। आगे आनेवाले मोगल शासक अकबर, जहांगीर, शहाँजहाँ जैसे प्रभावशाली नही थे। आपसी फुट एवं विलासिता के कारण अंग्रेजो ने भारत पर अपना कब्जा जमा लिया। 18 वे शताब्दी के मध्यार्थ के बाद अंग्रेजी हुकुमत ने अपने राजनैतिक सत्ता को फैलाना प्रारंभ किया। बडे तेजी से अंगेजो ने अपना साम्राज्य फैलाया।

इंग्लड को लोकतंत्र की जननी कहा जाता है। विश्व के दो-तिहाई हिस्सेपर इसी इंग्लड का साम्राज्य था। उपनिवेश काल में ब्रिटिशों द्वारा शासन को चलाने का ढंग बाकी सम्राटों के तुलना में अलग था। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य विस्तार को मजबुत करवाने हेतू प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली से मिलता जुलता शासनतंत्र उपनिवेशीत राज्यों में प्रारंभ किया। भारत भी इसे अछुता नही था। बढता प्रदेश विस्तार एवं जनसंख्या, ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार यातायात साधनों में आमुलचुल परिवर्तन जैसे विभिन्न कारणों से उस समय के दौर में राजनैतिक जागरुकता अपने समय के तुलना में बडे तेजी से फैले इसी राजनैतिक जागरुकता को अपने मनमुताबीक दिशा देने हेतु अंग्रेजो ने आधुनिक लोकतंत्र के समीप जानेवाली शासन यंत्रणा का परिचय भारत के साथ-साथ उनके उपनिवेशित राज्यों को करवाया।20 वी शताब्दी के मध्यार्थ के पश्चात विशेषत: कंपनी के क्राउन के पास शासन सत्ता हस्तारित होने के बाद अंग्रेजों के शासन करने के तरीको मे जो परिवर्तन हुआ उसी कारणवश "1885 में भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस"[5] इस सामाजिक मंच का उगम हुआ। इसी सामाजिक मंच ने राजनैतिक जागरुकता को फैलाने का काम किया। 1892 मे उस समय के शासन सत्ता में निर्वाचित सदस्यों का आगज किया परंतु खुले तौर पर "1892 के सुधार अधिनियम"[6] में निर्वाचित सदस्यों का उल्लेख नही था।भारत के राजनैतिक जागरुकता को एवं शासन सत्त के विरोधी स्वर को अंग्रेजो ने बडी धूर्तता से भारत शासन सुधार अधिनियम का जाल समयानुसार डाला किंतु इस से अंग्रेजों ने आधुनिक लोकतंत्र को प्राणवायु समझा जानेवाला राजनैतिक पक्ष का उदय हुआ। 1909 के मार्लो मिंन्टो अधिनियम के नुसार "27 निर्वाचित सदस्य केंद्रीय विधान मंडल"[7] में सम्मेलित किये गये। किंतु यह निर्वाचन कागजी कारवाही थी। वास्तविक धरातल में 27 सदस्य मनोनीत ही किये जाते थे। 1919 के मांन्टेग्यु चेम्सफोर्ट अधिनियमने राजनैतिक पक्ष के उदय को तेजी से हवा दी। इस अधिनियम के "केंद्रिय विधान मंडल को द्विगृही किया। राज्य परिषद एवं केंद्रिय विधानसभा इस सदन में क्रमश: 33 एवं 100 निर्वाचित सदस्यों का प्रावधान किया गया था"[8]। यह अधिनियम भारत के लोकतांत्रिक यात्रा मे एक मील का पत्थर दर्शित होता है। क्योंकी इस अधिनियम ने प्रत्यक्ष निर्वाचन को वास्तविक धरातलपर लाने के द्वार खोल दिये और मतदार क्षेत्र में विस्तार किया गया। किंतु मतदारों की अहर्ताए तय करने के माप-दंड बहोत कडे थे। मुख्यत: आर्थिक घटकों को नजर रखकर ही मतदान का अधिकार दिया गया। उस समय के "24 करोड जनता में राज्य परिषद एवं केंद्रिय विधानसभा में मतदार सुची में क्रमश: 17.364 एवं 909874 मतदार शामील थे"[9]। उस समय के जनसंख्या के अनुसार मतदार सुची में 10 प्रतिशत से भी कम मतदार थे। किंतु इस अधिनियम ने भारत मे राजनैतिक पक्ष के आगाज को मजबुत किया। लोकमान्य तिलकजी ने नरम पंथियों के उपर कटाक्ष करते वस्त राजनैतिक सत्ता को प्राप्त

करवाने हेतु राजनैतिक पक्ष एवं "दबाव तंत्र"[10] को ऐहमियत दी थी । इस कारणवश उन्होंने कांग्रेस के अंतर्गत एवं "स्वतंत्र राजनैतिक पक्ष गठण"[11] किया । यही भारत के लोकतांत्रिक यात्रा में राजनैतिक पक्ष का जन्म था ।अग्रेंजों ने भारतीयों को धीरे-धीरे आधुनिक लोकतंत्र में गर्भीत महत्वपूर्ण ढाचाओं से परिचित किया । ज्ञान का प्रचार और प्रसार अखबारों का प्रभाव एसे विभिन्न कारणों से राजनैतिक चैतना मे बढोत्तरी होने लगी ब्रिटीशों के अन्यायी एवं अत्याचारी राजनैतिक प्रावधानों को जवाब देने हेतु उनके बनाये राजनैतिक संस्थाओं मे चुनकर जाना और भारतीयों की दबी कुचली आवाज को बुलंद करनेवाला एक गुट था यह गुट तत्कालीन चुनाव राजनैतीक पक्ष के आधार समकालीन प्रतिनिधिक संस्थाओं चुनकर जाते थे और स्वराज्य की आवाज बुलंद करते थे। उदा. 1923 में मोतीलाल नेहरु एवं चित्तरंजन दास द्वारा गठीत "स्वराज्य पक्ष"[12] ने लोकतांत्रिक माध्यम से उस समय के अग्रेंज सरकार को झंझोड दिया था। भारत को एक स्वतंत्र संविधान चाहिए ऐसी मांग 20 वी शताब्दी के तृतीयक दशक के अंतीम वर्षो में उठने लगी थी। फरवरी 1928 में काँग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में कुल 29 राजनैतिक पक्षों ने अपनी हाजीरी लगाई थी उसमें "काँग्रेस हिंन्दु महासभा, मुस्लीम लीग, खिलापत समिती, भारतीय इसाई काँग्रेस, राष्ट्रीय उदारवादी संघ"[13] आदि मुख्य राजनैतिक पक्ष शामील थे। उस दौर के राजनैतिक पक्ष विशिष्ट विचारधाराओं से संबंधित थे। भारत में विविधता में एकता उस दौर मे मौजूद थी । राष्ट्रीय विविधताओं को राष्ट्रीय एकता में पिरोने का काम उस दौर के राजनैतिक पक्षों ने बडी बखुबी से किया था। इसका ज्वलंत उदा. फरवरी 1928 का काँग्रेस सम्मेलन था। जिसमें 29 राजनैतिक पक्ष ने भारत के लिए स्वतंत्र संविधान की मांग एक सूर में की थी। निर्वाचन के माध्यम से जनप्रतिनित्व प्राप्त करने का दौर भारत में अग्रेंजोने प्रारंभ किया । इतिहास के पन्नों में बौध्द कालीन गणतंत्र में निर्वाचनों के माध्यम से निर्णय निर्धारण करने के साक्ष मिलते है। किंतु अंग्रेजो ने अपने शासन सत्ता को विस्तारीत एवं लोकानुमुख बनाने हेतु निर्वाचन को ऐहमियत दी । भले यह निर्वाचन महज कागज पे दिखाई देते थे । निर्वाचन के आड में सदस्यों को मनोनित ही किया जाता था । ब्रिटीश उच्च पदाधिकारीयों के अनुशंक्षा के शिवाय विधान मंडलो मे प्रतिनिधित्व प्राप्त करना असंभव था । लेकीन इस चक्कर में भारत मे राजनैतिक पक्ष इस राजनैतिक संस्था की जडे दिनबदिन मजबूत होते गई । इसी कशमोकश में 1935 के भारत शासन अधिनियम में "प्रांतो मे स्वायतता एवं जबाबदेह शासन"[14] प्रणाली का आगाज किया । 1935 के भारत शासन अधिनियम के 10 वे अनुसूचित मतदारों के अर्हता को दर्ज किया गया । सही ढंग से "10 वे अनुसूची" का अध्ययन किया जाए तो 1919 के सुधार अधिनियम के तुलना में 1935 के सुधार अधिनियम ने मतदारों की संख्या मे बढोत्तरी की केंद्रस्तर के उच्च एवं निम्न सदन में सीधे प्रतिनिधी भेजने का प्रयोजन इस अधिनियम मे था । 1935 के सुधार अधिनियम के संघात्मक ढांचे में केंद्र स्तर के दोनों सदनों में भेजे हुए सदस्यों मे निर्वाचित सदस्यों का प्रतिशत मनोनीत सदस्यों के तुलना में अधिकतर था। देशी रियासतो को भी इस में प्रतिनिधित्व दिया गया था। यह "प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या की तुलना मे ज्यादा था"[16] । इसका महत्वपूर्ण कारण देशी रियासतो का राजनैतिक महत्व था।

1937 में 1935 के सुधार अधिनियम के अंतर्गत प्रांतो में चुनाव हुए। इस चुनाव में विभिन्न राजनैतिक पक्ष ने अपनी ताकद को आजमाया। किंतु काँग्रेस ने स्किप करते उस समय के "11 प्रांतो मे से 8 प्रांत"[17] मे अपनी सरकार बनायी हालांकी उस वक्त विभिन्न आधारो पर राजनैतिक पक्ष अस्तित्व में थे । किंतु काँग्रेस में गांधीवादी एवं गांधीजी के नेतृत्व की छाप पडी थी। जब तक प्रांतो के शासन संचालन में वास्तविक धरातल पर स्वायतता नही मिलती तब तक जीते हुए राजनैतिक पक्ष ने प्रांतो की शासन की धुरा संभालने से इन्कार किया। विवश होकर "लॉर्ड लिनालिथगो"[18] प्रांतो को शासन संचालन में स्वायत्ता दी जायेगी एसा आश्वासन दिया गया। तभी जिते हुये राजनैतिक पक्षों ने शासन संचालन में लोकतांत्रिक तरीके से सिरकत की । द्वितीय महायुध्द के आग में भारत को जबरदस्ती से अंग्रेजो ने झोंका इसी बात को नाराज होकर तत्कालीन प्रांत सरकारों ने अपना इस्तीफा दिया । करिबन 190 साल अंग्रेजो से संघर्ष करके भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई । 26 जनवरी 1950 में संविधान को लागु किया गया। लोकसभा के पहले चुनाव में करिबन "53"[19] राजनैतिक पक्षों ने चुनाव में हिस्सा लिया । इस चुनाव में काँग्रेस के भारी बहुमतो के साथ भारत के शासन संचालन की धुरा संभाली । बदलते राजनैतिक परिपेक्षों के साथ-साथ मान्यता प्राप्त एवं गैर मान्यता प्राप्त राजनैतिक संख्या में आमुल चुल मात्रा में परिवर्तन हुआ । निर्वाचन आयोग ने निर्धारीत किये हुए मापदंडो के आधार पर राष्ट्रीय पक्ष, प्रादेशिक पक्ष एवं स्थानिक पक्ष की मान्यता मिलती है। वर्तमान स्थिती में भारत में "8 राष्ट्रीय राजनितीक पक्ष, 50 प्रादेशिक राजनैतिक पक्ष एवं 2796 गैर-मान्यता प्राप्त रजिस्टर राजनैतिक पक्ष मौजुद है"[20] ।

क) आधुनिक लोकतंत्र में राजनैतिक पक्ष का स्थान :-इंग्लड को पराजित कर अमेरिका ने संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना की। अमेरिका ने अपने संविधान मे राजनीतिक पक्ष को स्थान नही दिया है । "अमेरिकन संविधान निर्माताओं का राजनैतिक पक्ष के प्रती रुख नकारात्मक था"[21] । किंतु प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली का स्विकार करने के कारण अमेरिका में राजनैतिक पक्ष का उदय स्वाभाविक तौर पे 19 वी शताब्दी के पहले दशक में हुआ। अमेरिका जैसे बहुतांश राष्ट्रों के संविधान ने राजनैतिक पक्ष को कानुनी मान्यता नही दी है। इस में "भारत"[22] भी सम्मिलित है । ऐसा होने के बावजूद विश्व के सभी लोकतांत्रिक देशों में राजनैतिक पक्ष मौजुद है। चीन ने लोकतांत्रिक विचारधारा को साम्यवादी पक्ष के माध्यम से लोकतंत्र के आड में तानाशाही शासन को छुपाया है। किंतु इस देश में भी साम्यवादी पक्ष मौजुद है।

जिस तरह कोई भी सामाजिक संघटन एक निश्चित विचारधारा से दिशा निर्देशीत होता है उसी तरह राजनैतिक पक्ष का संघटन भी एक निश्चित विचारधारा के धरातल पर गठीत होता है । विचारधारा के बिगर किसी भी राजनैतिक पक्ष का संघटन दिशा रहीत होता है। विचारधारा के अभाव मे राजनैतिक पक्ष अंधकारमय रास्ते में भटक जाता है। इसी कारणवश "राउसैक"[23] ने राजनैतिक पक्ष के गठन हेतू विचारधारा को ऐहमियत दी है। विकास यह निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है। विकास इस संकल्पना को देखने के विभिन्न दृष्टीकोन है। किंतु जिस देश में राष्ट्रीय हित के प्रति नागरिकों में एक वाक्यता हो वह देश प्रगती पथ पर अग्रेसित होता है । उदाहरणार्थ अमेरिका एवं इंग्लड, अमेरिका के रिपब्लीकन और डेमोक्रॅटीक इस राजनैतिक पक्षों के विचारधारा ने पक्ष नेतृत्व एवं अनुयायीओं में जादा अंतर नही है । केवल राष्ट्रीय हित प्राप्त करने के "मुद्दो में अंतर"[24] दिखाई देता है। जिस तरह किसी देश को लोकतंत्र कहने के कुछ निर्धारीत मापदंड है वैसे ही 1. "लम्बी अवधि के लिए संगठन 2. कतिपय सिध्दान्तों अथवा नीतियों के बारे में सहमती 3. अपने उद्देश्यों की प्राप्ती के लिए शान्तिपूर्व और संवैधानिक साधनों का प्रयोग और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से अपनी नीतियों को कार्य रुप देने की लालसा"[25]। आदि लक्षणों का जिस संगठन में समावेश हो उसे ही राजनैतिक पक्ष कहना उचित है । आधुनिक लोकतंत्र के सुदृढ स्वास्थ्य हेतु राजनैतिक पक्ष प्राणवायु का काम करता है।

"ला पालोम्बरा ने पॉलिटिक्स विद इन नेशन्स"[26] इस पुस्तक में राजनितीक पक्ष के उदय के विभिन्न शताब्दीयों में उभरी विभिन्न परिस्थितीयों को विस्तारित रुप में बतलाया है । सुधार एवं प्रतिसुधार प्रबोधन काल के कारण जनता के राजनैतिक सहभाग की माँग बढने लगी निरंकुश राजतंत्र को जनता ने सिरे से नकार दिया । उस जगह संवैधानिक तंत्र के स्थापना को जनता ने अहमीयत दी । इसी कारणवश संस्थागत राजनैतिक व्यवस्था का आगाज हुआ । डूवर्जन ने अपनी किताब पोलिटिकल पार्टीज में राजनैतिक पक्ष के उदय पर जो प्रकाश डाला है उसमें तथ्य दिखलाई देता है। संविधान वाद में शासन सत्ता के नियंत्रण को ऐहमियत है। राजनितीक पक्ष शासन को नियंत्रितकरने मे एक कारगर हत्यार हो सकता है। इसमें कोई दमत नही है। शासन को नियंत्रित करने के साथ"।

राजनैतिक प्रक्रिया को सरलता प्रदान करना।

हितसंबंधों को व्यवस्थित रुप धारण करना।

राजनैतिक सामाजिकरण कि प्रक्रिया।

राजनैतिक भर्ती में सहयोग करना"[27]। आदि कार्य राजनैतिक पक्षों द्वारा बडी सरलता से किया जा सकता है।आधुनिक लोकतंत्र में जन-सहभागिता के मांग को सुचारु रुप से संघटित करके लोकतंत्र के गुणात्मक विकास में राजनितीक पक्ष महत्वपूर्ण भुमिका है। इसका मतलब राजनैतीक पक्ष में कोई खामिया नही है। एसा मानना भ्रामक होगा। राजनैतिक पक्ष के भुमिका पर राजनैतिक विद्वानों ने कटाक्ष किए है। इसमें क्रमश:।

जनता में द्वेष एवं कठुता पैदा करना।

देश की एकता पर आघात।

सर्वोत्तम व्यक्तियों की उपेक्षा।
विरोध के लिए विरोध।
अधिनायकत्व को प्रोत्साहन।
दल-प्रथा भ्रष्टाचार को जन्म देती है।
वैयक्तिक स्वतंत्रता का हनन।
दल पध्दती गुटबंन्दी पैदा करती है"[28]। आदि टिप्पणियों को सम्मेलित किया जा सकता है। सभी आलोचनाओं का चिकित्सा पूर्वक अध्ध्यन किया जाए तो सभी आलोचनाओं में प्राथमिक दर्शन में तथ्य दिखाई देता है। किंतु राजनैतिक पक्ष पर किए गये टिपनीयों संबंधी परिस्थिती विश्व के सभी देशो में एक जैसी नही दिखलाई देती है। "उदा. स्विर्झलॅड के राजनैतिक पक्ष की विशेषता"[29] विभिन्न देशों की राजनैतिक संस्कृती में विविधता होने के कारण एक जैसी राजनैतिक व्यवस्था होने के बावजुद कही द्विदल प्रणाली तो कही बहुदल प्रणाली विकसित हुई है। संस्थागत राजनैतिक व्यवस्था में निर्वाचन अनिवार्य है और निर्वाचन के लिए राजनैतिक पक्ष अत्यावश्यक है। इसी कारणवश "लॉर्ड ब्राइस"[30] ने राजनैतिक दल के सिवा राजनैतिक व्यवस्था कैसी चलेगी। उसकी पर्याप्त व्यवस्था बताईए ? इस उपस्थित प्रश्न में राजनैतिक दल की अनिवार्यता सिध्द होती है। इतिहास हमें जिस दिशा में ले के जाता है। जो परिस्थितीयां उत्पन्न होती है उसी में ढालना समझदारी होती है। राजनैतिक दल भी ऐतिहासिक उत्क्रांती का परिणाम है। "लिपसेट एवं रोकन" [31] इन राजनैतिक विद्वानो ने इस बात के पर्याप्त साक्ष अपनी किताब पार्टी सिस्टम ॲण्ड वोटर अलाईमेन्टस् मे दिये है। राजनैतिक दल में निर्मित हुयी सभी खामियाँ मानव निर्मित है। जनता सजग एवं जागृत रही तो इस खामियों को दूर किया जा सकता है और आधुनिक लोकतंत्र को राजनैतिक दल द्वारा गुणवत्तापूर्ण एवं सहभाग प्रदान बनाया जा सकता है।

ड) आधुनिक लोकतंत्र एवं भारत के राजनैतिक दलों की भुमिका :

भारत में अंग्रेजो के उपनिवेश काल में 1930 तक एकात्म शासन प्रणाली का अस्तित्व था। 1935 के भारत शासन अधिनियम में संघात्मक व्यवस्था की नीव हुयी। इस कारणवश प्रादेशिक एकीकरण का प्रारंभ हुआ एवं प्रादेशिक दलों का विकास हुआ। सरकार के सामने सिध्दांत एवं हित संवर्धन का संवर्धन अभिव्यक्त करने का राजनैतिक दल एक प्रभावी माध्यम है। भारत में सामाजिक प्रबोधन एवं राजनैतिक पक्ष रखवाने हेतु डॉ. बी.आर. आंबेडकर, मो. जिन्ना, मानवेन्द्रनाथ रॉय, राममनोहर लोहिया आदि सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारवादीयों ने राजनैतिक पक्ष का गठन करके सरकार को विभिन्न समस्याओं से परिचित करवाया। इसके साथ-साथ राजनैतिक सत्ता प्राप्त करवाने हेतु चुनाव लढवाये। आधुनिक लोकतंत्र का परिचय भारत को अंग्रेजो के उपनिवेश काल में हुआ।

जनता राजनैतिक निर्णय निर्धारण प्रक्रिया में सहभागी होने की मांग, प्रतिनिधात्मक शासन प्रणाली के सिवा वास्तविक धरातल पर आना असंभव था। बढती जनसंख्या, जनप्रबोधन का बढता दौर, प्रादेशिक विस्तार आदि कारणों से प्रत्यक्ष लोकतंत्र को सभी जगह प्रस्तापित करना असंभव सी बात थी। इसलिए प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली विकिसत हुयी। इसे सफल बनाने के लिए राजनैतिक दलों के बिना कोई चारा नही है।

स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक नैतिकता का -हास दिनबदीन बढते गया। राजनैतिक सत्ता हथियाने की महत्वकांक्षा जनहीत भावना को पिछे छोड राजनैतिक पदाधिकारियों को भ्रष्ट मार्ग पर लाने में सफल हो गयी। ब्रिटिश उपनिवेश काल में गठीत राजनैतिक दल जनप्रबोधन का काम बडी बखुबी से किया। विभिन्न स्तरों पर विभन्नता होने के बावजुद राजनैतिक दलों ने जनता के भीतर राष्ट्रीय एकात्मता की चिंगारी लगाई। ब्रिटिशों के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन में जनता को एक सुत्र में पिरोने का काम राजनैतिक दलों ने निस्वार्थ हेतु से किया। जिस स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने अपना सर्वस्व त्याग किया, उस स्वतंत्रता को पाने के बाद जब सत्ता की बागडोर संभालने का भार राजनैतिक दलों के पास आया तब उनमें संकीर्णता, स्वार्थभाव, सत्तालोलुपता एसे दूषित प्रवृत्तीयों ने प्रवेश कर लिया और राजनैतिक दल अपने मुल ध्येयों से भटक गये। निम्नलिखित कारणों के कारण राजनैतिक दलों मे कुटीरतावाद एवं संकीर्णता का प्रवेश हुआ।

"1. भारत के राजनैतिक दलों का इतिहास और उसका स्वरुप।
2. सभी दलों में अवसरवादिता तथा दादागीरी की निति का विकास ।
3. विभिन्न राजनैतिक दलों में विचारात्मक ध्रुवीकरण का अभाव।
4. विभिन्न राजनैतिक दलों की सदस्यता, उद्देश्यों, गतीविधियों और अपने प्रतिनिधियों द्वारा किये गये दल
परिवर्तन के कृत्यों के प्रति जनता की उदासिनता।
5. विभिन्न राजनैतिक दलों में आंतरिक कलह और गुटबाजियाँ।
6. विधायकों और दल के नेताओं में व्यक्तित्वों का संघर्ष और स्वभागत असंगतियाँ।
7. केंद्र और राज्य में अलग-अलग दलों की सरकारों का निर्माण ।
8. शक्तीशाली दबाव गुटों का होना।
9. विधायकों को पद, धन, स्थान आदि के प्रलोभन देना या उससे वंचित करना।
10. प्रभावशाली दलीय नेतृत्व का अभाव एवं निर्बल मिलीजुली दलीय सरकारों का निर्माण।
11. वरिष्ठ सदस्यों की उपेक्षा व्यक्तीगत संघर्ष आदि "[32] कारणों के कारण राजनैति दलबदल यह भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में कॅन्सर की तरह फैल गया है। जैसे "महाराष्ट्र के राजनिती में आया भूंकप"[33] राजनितिक गुटबंधीयों ने भारत के लोकतंत्र में गंभीर समस्याओं का निर्माण किया है। राजनैतिक पक्षों का सदस्य होने के बाद सिध्दांत एवं विचारधारा में द्वंद हो तो जनहीत की भावना ध्यान में रखकर किसी राजनैतिक पक्ष में कोई गुट या व्यक्तीगत विलय होता हो, या स्वतंत्र राजनितिक पक्ष का गठन करना हो, तो बात समझ में आती है। ऐसे गुटबंधियाँ एवं अन्य राजनितिक पक्षों में व्यक्तिगत राजनितिक महत्वकांक्षा पाने हेतु की जा रही है। इसमें कोई दुमत नही है। लोकतंत्र की गरीमा बचाने हेतु "52 वा"[34] संविधान संशोधन किया गया था किंतु उस कानून को राजनितिक स्वार्थ के लिए कैसे उपयोग में लाया जाए इसका षडयंत्र योनाबध्द तरीके से रखा जा रहा है।

संघात्मक व्यवस्था के कारण भारत में प्रादेशिक पक्षों का विकास हुआ। प्रादेशिक पक्षों का दायरा धीरे-धीरे बढने लगा। यह दायरा राष्ट्रीय स्तर तक जा पहँचा इस घटना क्रम में स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनिती में निर्माण हुई एक पक्ष श्रेष्ठता को झंझोर दिया और 1977 में "मोरारजी सरकार ने"[35] भारत के राजनिती में गठबंधन सरकार का युग प्रारंभ किया। एक दशक का काल गुजरने के बाद फिर से गठबंधन सरकारने भारत के राजनिती में अपना सिर उठाया प्रादेशिक पक्षों ने अपना महत्व सिध्द किया राष्ट्रीय राजनिती में प्रादेशिक पक्ष के अहमीयत को "पूर्व केंद्रीय मंत्री पी. चिंदम्बरंम"[36] को भी माना है। किंतु ऐसे युती सरकारों के राजनितीक स्थिरता संबंधी प्रश्न चिन्ह है ? जनहित के भावना से लिए हुए महत्वपूर्ण निर्णयों को युती सरकार के घटक पक्षों ने अंडगा डालने के बहोत से उदाहरण भारतीय राजनिती में मिलते है। ऐसी बाधाएं जनहीत पुरक हो तो लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। किंतु ऐसी बाधाओं में केवल राजनितीक स्वार्थ दिखाई देता है। इस कारणवश "पूर्व राष्ट्रपती श्री व्यकंटरमण"[37] ने युती सरकार के राजनितीक स्थिरता पे प्रश्न चिन्ह खडा किया है। उसमें तथ्य दिखाई देता है।

महात्मा गांधी एवं गांधीवादी विचारकों ने राजनितीक पक्ष की भ्रर्स्सना की है। राजनैतिक पक्ष केवल मतदारों को लुभाने के काम करती है, व्यक्ति – व्यक्ति में दरियाँ बढाती है। आदि कारणों से गांधीवादी विचारकों के राजनैतिक पक्ष को सिरे से नकार दिया है। उदा "विनोबा भावे"[38] जी के राजनितीक पक्ष संबंधी विचार विनोबा भावेजी ने राजनितीक पक्ष को गुंडागर्दी का संघटन माना है। मतदारों के संख्या में विस्तार होने के कारण राजनैतिक पक्ष का अस्तित्व प्रस्थापित हुआ है। राजनितीक सत्ता में भागीदारी प्राप्त करने हेतु अभिजन वर्गो ने राजनैतिक पक्ष के नेतृत्व का झंडा अपने हाथ में लिया है। विविधता पूर्ण भारत में भौगोलिक, ऐतिहासिक, जातियता, धार्मिक, आर्थिक और भाषायी आधार पर राजनितीक पक्ष का प्रादेशिक स्तरों पर गठन हुआ है किंतु इल आधारों में जातीयता एवं धार्मिकता यह राजनैतिक पक्ष के निर्माण का मुख्य आधार भारत में दिखाई देता है। इसी कारणवश "जयप्रकाश नारायण एवं रजनी कोठारी"[39] भारत के राजनितीक पक्ष को जातीय संघटन संबोधा है।

लोकतंत्र इस विचारधारा के स्वरुप में बदलते शतको के साथ परिवर्तन होते गया। राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली में भी लोकतंत्र का निवास था। बदलते आधुनिक दौर में जनता की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनितीक स्तर में सहभागी होने की, मांग बढ रही है। समकालीन स्थिती में लोकतंत्र का जो आधुनिक स्वरुप हमें प्राप्त

हुआ है। उसमें विरोधात्मक विकास इस सिध्दांत की मुख्य भूमिका दिखलाई देती है। उसके साक्ष इतिहास के पन्नों में दर्ज है। इंग्लंड में विपक्ष को अदृश्य सरकार कहा है। विपक्ष के अभाव में लोकतंत्र का गुणात्मक विकास होना कठिनतम है। "सर आयवर जेनिंग ने विपक्ष के अभाव में लोकतंत्र का परिहास होगा"[40] इस भविष्यवाणी में तथ्य दिखलाई पडता है। भारत में विपक्ष दिन-बदीन कमजोर हो रहा है। विपक्ष के पास मतदान प्रतिशत ज्यादा होने के बावजूद वह सरकार को नियंत्रित करने में असफल दिखलाई देता है। विपक्ष की भुमिका को राजनैतिक पक्ष ने सही ढंग से निभाया तो जनता विपक्ष को सत्ता में लाने का काम कर सकती है। सत्ता के उपर किसी भी राजनैतिक गुट की मक्तेदारी नही होती है। किंतु भारत के राजनितीक पक्ष जो विपक्ष के भुमिका में होते है वे केवल विरोध के लिए विरोध करते हुये दिखलाई देते है। यह बात लोकतंत्र के सुदृढ स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नही है। इससे "डॉ. बी.आर. आंबेडकर जी ने आगाह किया था"[41] किंतु विपक्ष की भुमिका मे जिन चीजों का विरोध करता है और जिसे आंदोलन का रुप प्राप्त करवाता है। ऐसे विपक्ष की भुमिका में रहनेवाले राजनितीक पक्ष के पास जब राजनितीक सत्ता आती है तो वही राजनितीक पक्ष जिसका विरोध कर रहा था वही काम बहुमत के आधार पर करता दिखलाई देता है। जनमत प्रबोधन करने की मुख्य भूमिका राजनितीक पक्ष है। किंतु राजनितीक पक्ष मतदारों के भावना से खेलकर केवल राजनितीक सत्ता हथियाने में व्यस्त दिखलाई देता है। इस कारणवश भारत का लोकतंत्र अपनी दरावस्था में पहुंच की दिशा में अग्रेसर हो चुका है।

इ) निष्कर्ष :-किसी भी सदी एवं शासन प्रणाली में सरकार का मुख्य उद्देश जनहित भावना को ध्यान में रखकर निर्णयों को अमल में लाना होता है। यह निर्णय निर्धारण किसी एक व्यक्ती, व्यक्तिसमुह एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। उसी अधार पर शासनतंत्र का विभाजन करने की स्वाभाविक प्रवृत्ती दिखलाई देती है। ब्रिटिश उपनिवेश काल में जिस लोकतांत्रिक राजनितीक संस्थाओं का उगम हुआ उससे ही भारतीय राजनिती में राजनितीक पक्ष का उद्भव हुआ। उसी की भुमिका चिंतन उपरोक्त परिछेदों के माध्यम से किया है। उसी का गहन अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है।बढते निरंकुश शासन तंत्र को भारतीय जनता के उपनिवेश काल में करारा जवाब दिया। उसी विरोध को दबाने के लिए अंग्रेजो ने काँग्रेस के माध्यम से एक सामाजिक मंच प्राप्त कर लिया।1930 तक भारत में एकात्मक शासन व्यवस्था मौजूद थी। उस समय के पहले और उसके बाद निर्मित हुए सामाजिक गुट एवं संघटन यह राजनितीक पक्ष के परिभाषा के समीप लगते हैं। किंतु गहराई से अध्ययन करने के बाद वे सामाजिक गुट एवं संघटन ही थे।राजनितीक पक्ष का संघटन यह आधारभूत तत्व है। राजनितीक पक्ष का प्रमुख ध्येय सत्ता प्राप्त करना होता है। इसी कारणवश व्यक्तीगत मतों की तुलना में अधिक अनुभवी एवं राजनितीक पक्ष श्रेष्टी के समीप रहनेवाले सदस्यों के मतो को किंमत दी जाती है। राजनितीक पक्ष में भी अल्पतंत्र का लौह नियम दिखलाई देता है।भारत के राजनितीक व्यवस्था में अनैतिकता, भ्रष्टाचार, धन एवं बाहुबल का प्राबल्य, अभिजन वर्ग में केंद्रीत नेतृत्व एवं सत्ता आदि प्रवृत्तियां स्थाई भाव रुप में निर्मित हुई है। नागरिक राजनितीक पक्ष में विभक्त हुए है। उनमें आपसी दुरिया बढी है। इसका प्रमुख कारण राजनितीक पक्ष अपने मुख्य ध्येय से भटक चुका है।

- **सुझाव :-**अभी तक किए हुए विवेचन के आधार पर निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है।
- राजनितीक दल बदल के संबंध में कडे से कडा कानून संसद ने पारित करना चाहिए।
- नागरिकों ने जीते हुए जनप्रतिनिधी के उपर पहनी नजर रखकर वक्त-वक्त पर उसे आगाह करना चाहिए।
- राजनितीक बंडखोरी करनेवाले जनप्रतिनिधीयों को मतदारों ने नजर अंदाज करके उच्च कोटी गुणवत्ता के जनप्रतिनिधीयों का चयन करना चाहिए।
- जो राजनितीक पक्ष राजनिती में सक्रीय ना हो ऐसी पक्ष की मान्यता को खारिज करना चाहिए।
- चुनाव के पहले युती करनेवाले राजनितीक पक्ष चुनाव के बाद सत्ता प्राप्त करने हेतू विरोधी राजनितीक पक्ष से युती से बननेवाली सरकार को नागरिकों ने सिरे से नकार देना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. फाडिया बी.एल. "तुलनात्मक राजनिती", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010 पान क्र. 125
2. कित्ता पान क्र.126
3. जौहरी जे.सी. एवं जौहरी सीमा "आधुनिक राजनिती विज्ञान के सिध्दांत", स्टरलिंग पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 2012 पान क्र.447
4. गेना सी.बी., "तुलनात्मक राजनिती एवं राजनितीक संस्थाएं", विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नोएडा, 2012 पान क्र.823-824
5. कश्यप सुभाष, "भारत का संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष", रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज, दिल्ली-6, 1972 पान क्र.55
6. कित्ता पान क्र. 51-52
7. ग्रोवर बी.एल. , "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास", एस.चन्द एण्ड कंपनी लि. नई दिल्ली, 1995, पान क्र. 55
8. कश्यप सुभाष, "भारत का संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष", रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज, दिल्ली-6, 1972 पान क्र.83
9. ग्रोवर बी.एल. , "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास", एस.चन्द एण्ड कंपनी लि. नई दिल्ली, 1995, पान क्र. 71
10. कित्ता पान क्र. 52
11. भोळे भा.ल., "आधुनिक भारतातील राजकीय विचार", पिंपळापुरे बुक डिस्ट्रीब्युटर्स, नागपूर 2016, पान क्र. 300
12. ग्रोवर बी.एल. , "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास", एस.चन्द एण्ड कंपनी लि. नई दिल्ली, 1995, पान क्र. 81
13. कश्यप सुभाष, "भारत का संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष", रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज, दिल्ली-6, 1972 पान क्र.118-119
14. पाटील बी.बी., "भारतीय शासन आणि राजकारण", फडके प्रकाशन, कोल्हापूर, 2010 पान क्र. 05
15. शुक्ला रामलखन, "आधुनिक भारत का इतिहास", दिल्ली विश्व विद्यालय, पान क्र. 800
16. ग्रोवर बी.एल. , "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास", एस.चन्द एण्ड कंपनी लि. नई दिल्ली, 1995, पान क्र. 95
17. कश्यप सुभाष, "भारत का संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष", रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज, दिल्ली-6, 1972 पान क्र.147
18. ग्रोवर बी.एल. , "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास", एस.चन्द एण्ड कंपनी लि. नई दिल्ली, 1995, पान क्र. 91
19. www.indiatoday.in10feb2016
20. https://m.jagranjosh.com/generalknowledge/list-of-all-the-polticalparties-in-india-28jan2022
21. फाडिया बी.एल. "तुलनात्मक राजनिती", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010 पान क्र. 132
22. खत्री हरिश कुमार, "भारतीय शासन एवं राजनिती", कैलास पुस्तक सदन, भोपाल, 2014, पान क्र. 82
23. फाडिया बी.एल. "तुलनात्मक राजनिती", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010 पान क्र. 128
24. जौहरी जे.सी. एवं जौहरी सीमा "आधुनिक राजनिती विज्ञान के सिध्दांत", स्टरलिंग पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 2012 पान क्र.455
25. फाडिया बी.एल. "तुलनात्मक राजनिती", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010 पान क्र. 127
26. गेना सी.बी., "तुलनात्मक राजनिती एवं राजनितीक संस्थाएं", विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नोएडा, 2012 पान क्र.831
27. लोटे रा.ज., "तुलनात्मक शासन आणि राजकारण", पिंपळापुरे ॲण्ड कंपनी पब्लिशर्स, नागपूर, 2010, पान क्र. 265-266
28. फाडिया बी.एल. "तुलनात्मक राजनिती", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010 पान क्र. 132-133
29. राठोड भारत एम., "तुलनात्मक शासन आणि राजकारण", पायल प्रकाशन, नागपूर, 2015, पान क्र. 137-138
30. फाडिया बी.एल. "तुलनात्मक राजनिती", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, क्र. 125
31. गेना सी.बी., "तुलनात्मक राजनिती एवं राजनितीक संस्थाएं", विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नोएडा, 2012 पान क्र. 832-833
32. जैन राजेश, "भारतीय राजनिती के नये आयाम", कॉलेज बुक डिपो, जयपूर, पान क्र. 143
33. लोकमत 7 जुलै 2022 गुरुवार पान क्र. 01
34. पाटील बी.बी., "भारतीय शासन आणि राजकारण", फडके प्रकाशन, कोल्हापूर, क्र. 383
35. कित्ता पान क्र. 309
36. जैन राजेश, "भारतीय राजनिती के नये आयाम", कॉलेज बुक डिपो, जयपूर, पान क्र. 195
37. कित्ता पान क्र. 56
38. भोळे भा.ल., "आधुनिक भारतातील राजकीय विचार", पिंपळापुरे बुक डिस्ट्रीब्युटर्स, नागपूर 2016, पान क्र. 570-571
39. राय ओमप्रकाश, "भारत की चुनावी राजनिती के बदलते आयाम", विश्वविद्यालय प्रकाशन, वराणसी, 2006, पान क्र. 272
40. गोस्वामी भालचंद्र, "लोकतंत्र और विधानमंडळ", पॉन्टर पब्लिशर्स, जयपूर, क्र. 223
41. लोटे रा.ज., "तुलनात्मक शासन आणि राजकारण", पिंपळापुरे ॲण्ड कंपनी पब्लिशर्स, नागपूर, 2015, पान क्र. 305

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में वृद्धजनों की समस्याओं का विश्लेषण
(बनबसा नगर पंचायत क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

रेनू बाला
शोधार्थी
(समाजशास्त्र विभाग) एमबीपीजी महाविद्यालय ,हल्द्वानी
(कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल)

सारांश: प्राचीन इतिहास इस बात का गवाह है कि भारतीय संस्कृति में वृद्धजन अत्यधिक सम्मानजनक स्थिति को प्राप्त हुआ करते थे। समाज एवं परिवार में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त होता था। बुजुर्गों को परिवार का मुखिया माना जाता था और परिवार की बागडोर पूरी तरह से उनके हाथों में हुआ करती थी किंतु जिस प्रकार वर्तमान समय में परिस्थितियां परिवर्तित हो रही है, पारिवारिक मूल्य भी बदलते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप, परिवार संकुचित होते जा रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से भारतीय संस्कृति में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं, इस प्रकार परिवार के स्वरूप में होने वाला परिवर्तन भी स्वाभाविक है। संयुक्त परिवार भारतीय समाज की महत्वपूर्ण व्यवस्था कहलाता है, इसे प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता की नींव भी माना गया है किंतु नगरीकरण, औद्योगिकरण और नवीनीकरण जैसी क्रांतियों ने इसके स्वरूप में विभिन्न परिवर्तन किये है। संयुक्त परिवार के विघटन के कारण जीवन शैली में जो परिवर्तन आया है उसका सीधा और नकारात्मक प्रभाव वर्तमान समय में हमारे वृद्धजनों पर देखने को मिलता है। प्रस्तुत शोध लेख में वृद्धावस्था में होने वाली विभिन्न समस्याओं (सामाजिक, आर्थिक, मानसिक तथा असहज परिवेश आदि) का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द: मुखिया, नकारात्मक ,परिवेश, संकुचित तथा वृद्धावस्था आदि।

प्रस्तावना: भारत ने सदैव विविधता में एकता की संस्कृति को अपनाया है और इसी विशेषता के कारण भारत को पूरे विश्व में एक सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इस विशेषता में विभिन्न धर्मों का समावेश, खान-पान वेश-भूषा, रीति-रिवाज, धर्मनिरपेक्षता, भाईचारा, सांस्कृतिक विभिन्नता और उससे संबंधित परंपराएं आदि कुछ ऐसे विशेष गुण व्याप्त हैं जो इस देश को विशेष दर्शाते हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु की कृति' भारत एक खोज' में भी इस देश के खूबसूरत इतिहास को प्रत्यक्ष रूप से सबके सामने प्रस्तुत किया गया है। जब कभी विषय होता है संस्कृति की सुरक्षा और संरक्षण का, फिर चाहे वह किसी भी धर्म अथवा समुदाय से संबंधित हो उसकी व्याख्या एवं वर्णन परिवार के अनुकरण बिना कर पाना असंभव है। यदि भारतीय पारिवारिक इतिहास को खंगाला जाए तो ज्ञात होता है कि भारत अपनी जिन विशेषताओं के कारण विश्व-विख्यात है उसकी नींव भारतीय परिवारिक व्यवस्था ही है। 'सामाजिक संगठन का एक ऐसा स्वरूप परिवारवाद कहलाता है जिसमें पारिवारिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है।'(उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष, पृ०सं० 169) 'परिवारवाद एक ऐसी व्यवस्था है जो परिवार के सभी सदस्यों के मध्य निष्ठा, कर्तव्यपरायणता, कृतज्ञता सहयोग आदि की भावना को बनाए रखती है अर्थात सभी सदस्यों के मध्य हम की भावना तटस्थ व विकसित रहती है।' बर्गेस तथा लॉक की परिभाषानुसार," परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो विवाह, रक्त अथवा दत्तक बंधनों से बंधा होता है। इसके द्वारा एक गृहस्थी की रचना होती है, इसके सदस्य पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन आदि की सामाजिक भूमिकाओं में एक दूसरे से अंतः क्रिया तथा अंत: संप्रेषण करते हुए एक सामान्य संस्कृति की रचना करते हैं। "हालांकि आधुनिक समय में परिवार के कई स्वरूप देखने को मिलते हैं- एकांकी परिवार और संयुक्त परिवार। परंतु प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की व्यवस्था को ही हिंदू परिवारों की संज्ञा दी जाती है। प्रो०आई०पी० देसाई के अनुसार," संयुक्त परिवार एक ऐसी गृहस्थी है जिसमें नाभिकीय परिवार की अपेक्षा अधिक पीढ़ियों (सामान्यतः तीन या अधिक पीढ़ियां) के व्यक्ति एक साथ रहते हैं और उसके सदस्य संपत्ति, आय, पारस्परिक अधिकारों एवं कर्तव्यों द्वारा एक-दूसरे से आबद्ध होते हैं।"प्राचीन समय से चली आ रही यह पारिवारिक व्यवस्था न केवल भारतीय समाज की एक अनूठी व्यवस्था है वरन् इसने परिवार के असहाय-अपंग सदस्यों, नाबालिग संतानों, विधवा, विदुर, वृद्धजन, बेरोजगार सदस्यों आदि को भी सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक संरक्षण देने का कर्तव्य निभाया है। इस प्रकार एक बहुमुखी कल्याणकारी योजना के रूप में इस व्यवस्था ने समाज में अपना अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। अपने उपरोक्त गुणों के कारण हैं संयुक्त परिवार की व्यवस्था भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था कहलाती है तथा विश्व पटल पर अपनी एक अनूठी छाप छोड़ती है। किंतु पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, औद्योगिकरण, नगरीकरण, नवीनीकरण आदि जैसे विभिन्न कारणों से न केवल भारतीय ग्रामीण जनसंख्या शहर में भरती चली गई वरन् भोग-विलासिता से भरी आधुनिक भौतिक जीवन शैली ने संयुक्त परिवारों को विघटित करने का कार्य किया है। इस व्यवस्था के विघटन का प्रभाव सभी सामाजिक वर्गों के संगठनों पर विकास की दृष्टि से विपरीत पड़े हैं, किंतु इन निरंतर होते परिवर्तनों ने अपना सबसे अधिक प्रभाव वृद्धजनों के सुरमयी जीवन पर डाला है। अतीत में झांका जाए तो भारतीय परंपरा में वृद्धावस्था को एक सामान्य प्रक्रिया माना जाता रहा है, किंतु वर्तमान में भौतिकवादी जीवन-शैली वृद्धावस्था को समाज की एक बड़ी समस्या के रूप में दर्शाता है।

मानव जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक कई अवस्थाओं से होकर गुजरता है, इन सभी अवस्थाओं में से वृद्धावस्था को सबसे अधिक जटिल माना जाता है। इस अवस्था में पहुंचकर व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से तो कमजोर होता ही है साथ ही वह सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी संदर्भ विहीन हो जाता है। बेंजामिनश्लास ने लिखा है कि 'वृद्धावस्था एक विशिष्ट बीमारी के समान है जो प्रत्येक व्यक्ति को लगती है, वह व्यक्ति जीवित तो रहता है परंतु अन्य सभी बीमारियां इस बीमारी को निरपवाद रूप से जकड़ लेती है।' प्राचीन समय में बुजुर्गों को परिवार का मुखिया माना जाता था, परिवार के सभी सदस्य अपने छोटे-बड़े फैसलों के लिए उनकी हां/नहीं पर निर्भर रहते थे किंतु पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ने से जिस प्रकार भारतीय जीवन शैली में अन्य अनेक परिवर्तन हुए हैं उसी प्रकार पारिवारिक व्यवस्था भी इससे प्रभावित हुई है। विकसित देशों में जहां पर जीवन की संभावनाएं व सुविधाएं अधिक है वहां 65 वर्ष की आयु पार करने वाले व्यक्ति वृद्ध कहे जाते हैं किंतु विकासशील देशों में जहां सुविधाएं एवं जीवन की संभावनाएं भी अपेक्षाकृत कम है वहां 60 वर्ष से ही व्यक्ति को वृद्ध मान लिया जाता है। हमारे वृद्धजन जिन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और उनकी देखभाल को समर्पण की सभ्यता का पैमाना माना जाता रहा है। किंतु आज के परिवर्तित युग ने उनके प्रति परिवार की मान्यताओं को ही बदल दिया है। पूर्व में जिस वृद्धावस्था को अनुभव की पूंजी व ज्ञान का भंडार माना जाता था, आज वही बुजुर्ग समाज व परिवार के लिए मात्र भार के अतिरिक्त कुछ नहीं। निरंतर परिवर्तित होते समाज में परिवार के अन्य सदस्यों की बुजुर्गों के प्रति संरक्षण, क्षमता एवं भावना क्षीण होती जा रही है। इसके फलस्वरूप, जो बुजुर्ग घर परिवार की सम्मान व शोभा हुआ करते थे, आज वे वृद्धाश्रमों में असहाय, हारे हुए तथा किसी निरर्थक वस्तु के समान देखने को मिल जाते हैं। विशेषकर, पिछले कुछ वर्षों में वृद्धाश्रमों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। वृद्धों के कल्याण हेतु भारत सरकार ने अनेक योजनाएं भी क्रियान्वित की हैं, राज्य सरकारें इन योजनाओं का पालन तो कर रही हैं किंतु उन सभी योजनाओं का लाभ केवल वही वृद्धजन उठा पाते हैं जो शिक्षित हैं, किंतु ग्रामीण क्षेत्रों में यह योजनाएं अभी भी पूरी तरह से सार्थक सिद्ध नहीं हो सकी है क्योंकि ग्रामीण समाज में आज भी वृद्ध अधिकांशतः निरक्षर ही पाया जाता है जिसके चलते वह इन कल्याणकारी योजनाओं और संवैधानिक उपचारों का कोई लाभ नहीं उठा पाता है। आज की युवा पीढ़ी बहुत महत्वाकांक्षी है और भौतिक सुख-सुविधाओं को ही अधिक महत्व देती है आज लगभग हर व्यक्ति अपनी आवश्यकता के साधन

जुटा पाने में सक्षम हो जाता है किंतु अपने ही परिवार के बुजुर्गों की बीमारी पर खर्च करने के लिए उसके पास धन, मन और समय ही नहीं होता है। सदस्यों के मध्य वर्चस्व कम होते ही दिन-प्रतिदिन उनकी समस्याओं में भी वृद्धि होती चली जाती है। जीवन का यह चरण अत्यधिक थकान से भरा होता है, वृद्ध व्यक्ति अपने भीतर क्षीणता महसूस करने लगता है। सेवानिवृत्ति के पश्चात जब वह आर्थिक रूप से भी कमजोर पड़ने लगता है तो उसे अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे सदस्यों पर आश्रित होना पड़ता है, ऐसे में वह अन्य सदस्यों के साथ सामंजस्य बिठा पाने में असमर्थता महसूस करता है और लगातार यही परिस्थिति कई सामाजिक, मानसिक आर्थिक व अन्य समस्याओं को जन्म देने लगती है।

उद्देश्य:

1. वृद्धावस्था की सामाजिक समस्या का अध्ययन।
2. वृद्धजनों की आर्थिक समस्या का अध्ययन।
3. वृद्धावस्था की स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं।

शोध प्रारूप:-प्रस्तुत शोध के समग्र हेतु उत्तरदाताओं का चयन सरल दैव निदर्शन की लॉटरी पद्धति के द्वारा वरिष्ठ नागरिकों की कुल संख्या के 60% (260)उत्तरदाताओं को समग्र के रूप में लिया गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार नगर पंचायत के शहरी क्षेत्र की कुल जनसंख्या 6,023 जिसमें परिवारों की कुल जनसंख्या 1,063 एवं समस्त परिवारों में से वृद्धों की कुल जनसंख्या 433 है। यह अध्ययन शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों ही प्रकार के (महिला-पुरुष) वरिष्ठजनों पर आधारित है। सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार-अनुसूची व अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया गया। इसके अतिरिक्त द्वितीयक स्रोतों के द्वारा भी जानकारी को प्राप्त किया गया।

तालिका संख्या-1 नगर पंचायत क्षेत्र में निवासित बुजुर्गों के लिंग के आधार पर वर्गीकरण को दर्शाती है। प्रस्तुत तालिका दर्शाती है कि बनबसा नगर पंचायत क्षेत्र में वृद्धों की कुल जनसंख्या433 है। बुजुर्गों की कुल जनसंख्या में से 197 बुजुर्ग महिलाएं है एवं 236 बुजुर्ग पुरुष निवास करते हैं।

तालिका संख्या1-

नगर पंचायत क्षेत्र में बुजुर्गों का लिंग के आधार पर वर्गीकरण

	संख्या	प्रतिशत
बुजुर्ग महिला	197	45%
बुजुर्ग पुरुष	236	55%
कुल योग	433	100%

तालिका संख्या-2

उत्तरदाताओं का शिक्षा के आधार पर वर्गीकरण

	महिलाएं	पुरुष	कुल बुजुर्ग
शिक्षित	19.63%	35.51%	55.14%
अशिक्षित	34.58%	10.28%	44.86%
कुल योग	54.21%	45.79%	100%

तालिका संख्या-2 में उत्तरदाताओं के शैक्षिक प्रतिशत को दर्शाने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत तालिका से प्राप्त तथ्य दर्शाते हैं कि 54.21% बुजुर्ग महिलाओं में से 19.63% शिक्षित है एवं 34.58% बुजुर्ग महिलाएं अशिक्षित है। 45.79% बुजुर्ग पुरुषों में से 35.51% शिक्षित है एवं %10.28 बुजुर्ग पुरुष अशिक्षित है। अर्थात, इस नगर पंचायत क्षेत्र में निवासित बुजुर्गों में से %55.14 शिक्षित एवं 44.86% बुजुर्ग व्यक्ति अशिक्षित है।

तालिका संख्या-3

परिवार में मुखिया के रूप में उत्तरदाताओं की भूमिका

मुखिया	संख्या	प्रतिशत
आप (स्वयं)	128	49.23%
अन्य	132	50.77%

परिवार में मुखिया के रूप में उत्तरदाताओं की भूमिका

मुखिया	संख्या	प्रतिशत
आप (स्वय)	128	49.23%
अन्य	132	50.77%

तालिका संख्या3- दर्शाती है कि वरिष्ठ नागरिकों की कुल जनसंख्या प्रतिशत में से 49.23% उत्तरदाता अपने परिवार के (स्वयं) मुखिया के रूप में विद्यमान है। जबकि 50.77% उत्तरदाता अपने परिवार में मुखिया के रूप में विद्यमान नहीं है। अर्थात वे स्वयं के परिवार में मुखिया की भूमिका से निरस्त हो चुके हैं अथवा मुखिया की भूमिका नहीं निभा रहे हैं।

उत्तरदाताओं की सदस्यों के मध्य विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
पूर्ण रूप से	102	39.23%
कभी-कभी	70	26.92%
बिल्कुल नहीं	65	25.00%
नजरअंदाज करते हैं	23	8.85%

तालिका संख्या-4 में दर्शाया गया है कि 39.23% वरिष्ठ उत्तरदाताओं को अपने परिवारिक सदस्यों के मध्य विचारों को व्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। 25% वरिष्ठ उत्तरदाताओं को परिवार में सदस्यों के मध्य अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता बिल्कुल भी प्राप्त नहीं है।26.92% वरिष्ठ उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्हें कभी-कभी परिवार के मध्य है अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है, किंतु 8.85% वरिष्ठ उत्तरदाताओं को परिवार के मध्य अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए पूर्ण रूप से नजरअंदाज किया जाता है।

तालिका संख्या-5

विभिन्न रोगों से ग्रस्त उत्तरदाताओं की संख्या

रोगों का विवरण	संख्या
रक्तचाप	58
एनीमिया	0
नेत्र संबंधी रोग	36
बहरापन	12
दंत रोग	56
हृदय संबंधी रोग	15
किडनी संबंधी रोग	10
मधुमेह	56
जोड़ों का दर्द	49
नींद ना आना	10
पाचक संबंधी रोग	19
सिर दर्द	19
स्वाद की पहचान संबंधी समस्या	2
बदन दर्द	34
अन्य	46

तालिका संख्या-5 में वरिष्ठ उत्तरदाताओं के रोगों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। 58 उत्तरदाता रक्तचाप, 56 उत्तरदाता दंत रोग, 56 उत्तरदाता मधुमेह, 36 उत्तरदाता नेत्र रोग, 12 उत्तरदाता बहरापन, 15 उत्तरदाता हृदय रोग, 10 उत्तरदाता किडनी रोग, 49 उत्तरदाता जोड़ों के दर्द, 10 उत्तरदाता नींद न आना, 19 उत्तरदाता पाचन क्रिया संबंधी, 19 उत्तरदाता सिर दर्द, 2 उत्तरदाता स्वाद की पहचान में कमी, 34 उत्तरदाता बदन दर्द व 46 उत्तरदाता अन्य रोगों से ग्रस्त हैं। तालिका के विवरण से सिद्ध होता है कि सबसे अधिक उत्तरदाता (58) रक्तचाप से पीड़ित है। अपनी इस अवस्था में वे रक्तचाप के अतिरिक्त दंत रोग ,(56) मधुमेह (56) और जोड़ों के दर्द (49) जैसे रोगों से भी अधिक मात्रा में पीड़ित है। 36 उत्तरदाता ऐसे भी है जो वृद्धावस्था में नेत्र रोग से ग्रस्त हैं। तालिका में वर्णित किए गए रोगों के अतिरिक्त भी 46 उत्तरदाता

ऐसे हैं जो किसी अन्य रोगों से ग्रस्त पाए गए। जबकि स्वाद की पहचान में कमी मात्र 2 वृद्ध व्यक्तियों में ही पाई गई है।(नोट: तालिका में वरिष्ठ व्यक्तियों का कुल योग 260 से अधिक है क्योंकि कुछ वृद्ध व्यक्तियों को एक से अधिक बीमारियों से पीड़ित पाया गया है।)

तालिका संख्या-6

आसानी से चिकित्सकीय सुविधा प्राप्त होने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत

चिकित्सकीय सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं	संख्या	प्रतिशत
हमेशा	134	51.54%
कभी-कभी	112	43.08%
कभी नहीं	14	5.38%

तालिका संख्या-6 जिन उत्तरदाताओं को आसानी से चिकित्सकीय सुविधाएं प्राप्त हो जाती है उनका विवरण प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत तालिका के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 51.54% उत्तरदाताओं को हमेशा आसानी से सभी प्रकार की चिकित्सकीय सुविधाएं प्राप्त हो जाती है।43.08% उत्तरदाताओं को हमेशा चिकित्सकीय सुविधाएं आसानी से प्राप्त नहीं हो पाती है वरन् कभी-कभी ही वे इन सुविधाओं को आसानी से प्राप्त कर पाते हैं, जबकि 5.38% उत्तरदाता ऐसे भी है जिन्हें कभी भी आसानी से चिकित्सकीय सुविधाओं की प्राप्ति नहीं हो पाती है बल्कि उन्हें इन सुविधाओं को प्राप्त करने में काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

तालिका संख्या-7

परिवार में उत्तरदाताओं की आय के स्रोत के रूप में सहभागिता

सहभागिता	संख्या	प्रतिशत
पूर्णतः आश्रित	117	45.00%
पूर्णतः आश्रित नहीं	133	51.15%
कहने मे असमर्थ	10	3.85%

तालिका संख्या-7 दर्शाती है कि वृद्धावस्था में भी कुछ उत्तरदाता अपने परिवार के मध्य आय के स्रोत के रूप में सहभागिता निभा रहे हैं। उत्तरदाताओं के कुल प्रतिशत में से 45% उत्तरदाता अपने पारिवारिक सदस्यों पर पूर्ण रूप से आश्रित है। 51.15% उत्तरदाता वृद्धावस्था में भी पारिवारिक सदस्यों के मध्य पूर्णतः आश्रित नहीं है, जबकि 3.85% उत्तरदाता किन्हीं अनावश्यक कारणों के चलते इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करने में असमर्थ पाए गए।

तालिका संख्या-8

उत्तरदाताओं की पारिवारिक आर्थिक निर्णयों में सहभागिता

आर्थिक निर्णय में सहभागिता	संख्या	प्रतिशत
हां	165	63.46%
नहीं	95	36.54%

तालिका संख्या-8 दर्शाती है कि वर्तमान समय में भी कुछ उत्तरदाता अपने परिवार के मध्य आर्थिक निर्णयों को लेकर मुख्य समझे जाते हैं अथवा उन्हें भी आर्थिक निर्णयों में सहभागिता का अवसर प्राप्त होता है। उत्तरदाताओं के कुल प्रतिशत में से 63.46% उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्हें इस अवस्था में पहुंच कर भी परिवार के मध्य एक मुख्य सदस्य के रूप में माना जाता है अथवा उन्हें आर्थिक निर्णयों में अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता है।

जबकि 36.54% उत्तरदाता ऐसे भी है जिन्हें परिवार के सदस्यों द्वारा आश्रित मानते हुए आर्थिक निर्णयों के मध्य अपने विचार प्रकट करने का अवसर नहीं दिया जाता है। अतः वे किसी भी प्रकार से अपने परिवार के आर्थिक निर्णयों में सहभागिता नहीं कर पाते हैं।

निष्कर्ष:-उपरोक्त तालिकाओं के विवरण के आधार पर सिद्ध होता है कि उक्त उत्तरदाताओं का लिंग आधारित वर्गीकरण के अनुसार 433 बुजुर्गों में से 197 बुजुर्ग महिलाएं और 236 बुजुर्ग पुरुष वर्तमान समय में नगर पंचायत के शहरी क्षेत्र में निवास कर रहे हैं। शिक्षा के आधार पर किए गए वर्गीकरण से ज्ञात होता है कि क्षेत्र में मात्र 19.63% बुजुर्ग महिलाएं और 35.51% पुरुष ही शिक्षित है तथा अन्य बुजुर्ग पुरुष व महिलाएं वर्तमान समय में भी अशिक्षित ही है। वर्गीकरण के आधार पर ज्ञात होता है कि 128 उत्तरदाता वर्तमान समय में भी अपने पारिवारिक सदस्यों के मध्य मुखिया के रूप में भूमिका निभा रहे हैं किंतु 132 उत्तरदाता ऐसे भी है जो अपने पारिवारिक सदस्यों के मध्य इस भूमिका से निवृत हो चुके हैं। 102 उत्तरदाताओं को अपने परिजनों के मध्य पूर्ण रूप से अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता है। 70 उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्हें यह अवसर कभी-कभी अनायास ही प्राप्त हो जाता है। 65 उत्तरदाताओं को यह अवसर परिजनों के द्वारा कभी नहीं दिया जाता है जबकि 23 उत्तरदाता ऐसे भी हैं जिन्हें उनके परिजनों के द्वारा पूरी तरह से नजरअंदाज किया जाता है। तालिका संख्या 5 में उत्तरदाताओं को विभिन्न रोगों से ग्रस्त होने का संख्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत विवरण से ज्ञात होता है कि अधिकांश उत्तरदाता रक्तचाप(58), मधुमेह (56) तथा दंत रोगों(56) से ग्रस्त हैं अर्थात रक्तचाप, मधुमेह व दंत रोग वृद्धावस्था में होने वाले सामान्य रोगों की श्रेणी में आते हैं किंतु स्वाद की पहचान में कमी मात्र2 उत्तरदाताओं में ही प्राप्त हुई है। तथ्यों से प्राप्त होता है कि यह रोग वृद्धावस्था में एक असामान्य अथवा असाधारण रोग है। उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि 51.54% उत्तरदाताओं को सभी चिकित्सकीय सुविधाएं सदैव आसानी से प्राप्त हो जाती है। 43.08% उत्तरदाताओं को ये सुविधाएं कभी-कभी ही आसानी से प्राप्त हो पाती हैं, किंतु 5.38% उत्तरदाता ऐसे भी हैं जिन्हें चिकित्सकीय सुविधाएं कभी भी आसानी से प्राप्त नहीं हो पाती है .सूचनाओं के आधार पर ज्ञात होता है कि 45% उत्तरदाता पूर्ण रूप से अपने परिवार के सदस्यों पर आश्रित है। 51.15% उत्तरदाता अपनी आर्थिक स्थिति को लेकर अपने परिजनों पर पूर्णत: आश्रित नहीं है, अर्थात वे वर्तमान समय में भी किसी न किसी माध्यम से अपने परिवार में आय के स्रोत के रूप में सहभागिता कर रहे हैं।

सुझाव:-

वृद्धजनों को शिक्षा का महत्व समझते हुए शिक्षित होना आवश्यक है। सरकार के द्वारा वृद्धजनों के हित में विभिन्न योजनाओं का निर्माण किया जाता है उनके प्रति भी वृद्धजनों को जागरूक होना आवश्यक है।परिवार हमारे जीवन की प्रथम पाठशाला है इसलिए इसके महत्व को समझना अनिवार्य है।तनाव की स्थिति से बचने के लिए स्वयं को व्यस्त रखने का प्रयास करें।

****

संदर्भ:

1. असरानी, आर.सी. (1998)। 'फैक्ट अबाउट द एज'। मंथली न्यूजलेटर ऑफ विज्ञान प्रसार 'ड्रीम' पब्लिश्ड बाय इंस्टीट्यूशनल एरिया कॉमन नई दिल्ली, दिसंबर- 1998, पृ०-47
2. मिश्रा, सरस्वती (1987)। एडजेस्टमेंट इन ओल्ड एज
3. शेल्डन,जे.एच. (1949)। ओल्ड एज प्रॉब्लम इन द फैमिली
4. शर्मा, के. एल. (2007)। स्टडी इन जैरेलन्टोलॉजी, रावत पब्लिकेशन

प्राकृतिक आपदाओं का मानव जीवन के आर्थिक विकास पर दुष्प्रभाव तथा इसका प्रबंन्ध झुन्झुनू जिले के सन्दर्भ में

डॉ. सालिक सिंह
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

रामावतार वर्मा
भूगोल विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

शोध सार:-पर्यावरण की समस्त प्रक्रियाएँ पृथ्वी की अन्तर्जात एवं बहिर्जात शक्तियों द्वारा संचालित होती हैं । यही वह शक्तियाँ हैं जो पर्यावरण को गतिशील रखती हैं। पर्यावरण की गतिशीलता का यह घटनाक्रम अनादिकाल से अनवरत रूप से चला रहा है जो कभी विकास के रूप में तो कभी विनाश के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति अपनी आंतरिक शक्तियों के द्वारा पृथ्वी पर स्थल रूपों के निर्माण कार्यों का सम्पादन करती है। भूकम्प ज्वालामुखी विस्फोट आदि ऐसे प्रक्रम हैं जो नवीन स्थलों का निर्माण करते हैं जबकि भूस्खलन तूफान एवं बाढ आदि वाह्य शक्तियां के विनाशकारी परिणाम हैं। इनके द्वारा पूर्व निर्मित स्थल रूपों का परिवर्तन कार्य सम्पन्न होता है। अतः प्रकृति की यह सभी घटनाएं एक सामान्य गतिशील प्रक्रिया के रूप में चलती रहती हैं। परन्तु मानव समाज के लिए यही घटना अभिशाप बन जाती है।

प्रस्तावना :- प्राकृतिक आपदा प्रारम्भ से ही मानव इतिहास का अभिन्न अंग रही है। सिन्ध घाटी और बेबलानियाई सभ्यताओं का उत्थान और पतन इसका साक्ष्य रहा हैं। आपदा को अंग्रेजी में क्पेंजमत कहा जाता है। भ्रंतकए त्पो दो अन्य अंगे्रजी के समानार्थी शब्द हैं और हिन्दी में भी इसको कई शब्दों जैसे संकट प्रलय विपदा प्रकोप विपत्ति खतरा आदि जैसे शब्दों से जाना जाता है परन्तु आपदा के लिए क्पेंजमत शब्द ही उपयुक्त होगा। यह दो शब्दों के योग से निर्मित है क्पे अर्थात बुरा या अशुभ और जमत का आशय है स्टार तथा हिन्दी में से नक्षत्र के नाम से जाना जाता है। दोनों का संयुक्त अर्थ हुआ बुरा या अशुभ नक्षत्र। पुराने समय में किसी विपत्ति मुसीबत या कष्ट का कारण बुरे नक्षत्रों का कारण या प्रभाव माना जाता था परन्तु वर्तमान समय में यह धारणा कुछ बदल गयी है। आपदा शब्द को शब्द संग्रह में परिभाषित किया गया है कि एक अस्थिर अथवा संकटकालीन समय जिसमें विशेषकर अत्याधिक अवांछनीय परिणाम की स्पष्ट सम्भावना से एक निर्णायक परिवर्तन सन्निकट हो रहा हैं।

इस प्रकार सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि आपदा एक असमान्य घटना है जो थोड़े ही समय के लिए आती हैं और अपने विनाश के चिन्ह लम्बे समय के लिए छोड़ जाती है। परन्तु सभी प्रकार के संकटों को आपदा की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्यांकि संकट में आपदा की सम्भावना छिपी होती है। जब किसी क्षेत्र पर संकट छाता है तो वहाँ का आम जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है तो उसे आपदा कहते हैं। अर्थात जिन इलाकां में दुर्बलताए निहित न हां वहाँ पर प्राकृतिक जोखिम कभी भी प्रकृतिक आपदा में तब्दील नहीं हो सकता उदाहरण स्वरूप -निर्जन प्रदेश में एक प्रबल भूकम्प का आना। बिना मानव की भागीदारी के घटनाएँ अपने आप जोखिम व आपदा नहीं बनती हैं।

अर्थात संकट एक प्राकृतिक घटना है जबकि आपदा उसका परिणाम। इस प्रकार प्राकृतिक आपदा की परिभाषा ऐसी प्राकृतिक घटना जिससे न केवल मानव जीवन और उसकी सम्पत्ति को खतरा होता है बल्कि सम्पूर्ण जैव-जगत के लिए विनाशकारी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। के रूप में की जा सकती है।
उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार प्राकृतिक आपदा में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए।

1- आम जीवन का अस्त व्यस्त होना। आपदा आमतौर पर विकट होती है और अचानक अनजाने और व्यापक पैमाने पर आक्रमण करती है।
2- इसमें जान-माल का नुकसान होता है लोगो कों चोट पहुंचती हैं कठिनाइयों का सामना करता पड़ता है और स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है।
3- इससे सामाजिक संरचनाओं अधिसंरचना इमारतों संचार व्यवस्था और अन्य अनिवार्य सेवाआं पर प्रभाव पड़ता है।
4- इस समय प्रभावी समुदाय को भोजन वस्त्र एवं आवास, चिकित्सा सुविधाएं और सामाजिक देखभाल की जरूरत पड़ती है।
उपर्युक्त विशेषताओं के अनुसार प्राकृतिक आपदा की उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि ''प्राकृतिक आपदा प्रकृति द्वारा उत्पन्न ऐसा संकट है जो अचानक उत्पन्न होकर न केवल भौगोलिक संरचना में परिर्वन करता है बल्कि लोगों के जान -माल, सामाजिक संरचानाओं तथा सांस्कृतिक संरचनाओं को बुरी तरह प्रभावित करता है

झुन्झुनू जनपद में प्राकृतिक आपदाओं के सम्बन्ध मं आर्थिक जीवन पर प्रभाव से सम्बन्धित कुछ अध्ययन कुछ मुख्य क्षेत्रों में किये गये हैं जैसे नालों का अपशिष्ट, पानी का रिसाव इत्यादि करीब 3 दशकों के अन्तराल में सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार ने नियमित रूप से प्रारम्भ किया जिससे कुछ प्रारम्भिक आंकड़े एकत्रित किये गये हैं। इसके पूर्व सूखा के संदर्भ में कुछ शोध अवश्य हुए हैं जो भौगोलिक प्ररिस्थितियों से सम्बन्धित हैं। प्राकृति आपदाओं से सम्बन्धित अन्य विषयों में अनेकानेक शोध हुए हैं परन्तु अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से झुन्झुनू के संदर्भ में प्राकृतिक आपदा पर सम्भवतः एक मात्र शोध-प्रबन्ध है।प्राकृतिक आपदा प्राकृतिक घटनाएँ होती हैं जो सामान्य जीवन में व्यवधान डालती है। इससे जान-माल का भारी नुकसान होता हैं और मनुष्य की सामान्य गतिविधयाँ गहरे रूप से प्रभावित होती हैं। वैसे तो देश मं हुई मृत्यु नुकसान व लागत के हिसाब से आपदा की व्यापकता मापी जाती है, और जिस देश की जनता जितनी ज्यादा असुरक्षित होती हैं आपदा का प्रभाव उतना ही अधिक पड़ता है। इन आपदाआं का दुष्प्रभाव प्रायः सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों पर विशेष रूप से अनुभव किया जाता है।
आपदाओं से जीवन व सम्पत्ति को भारी क्षति पहुँचती है। अचानक आयी आपदाओं से जहाँ मृत्यु तथा लोगों को गम्भीर चोट लगती हैं वहीं आवास अधिसंरचना उद्योग उत्पादन आदि का भारी नुकसान होता हैं। आपदा आने से आर्थिक व्यवस्था अपने मुख्य मार्ग विकासात्मक मूल से हटकर सुधार मूलक हो जाती है जिसमें प्राथमिक उपचार, आधारभूत सुविधाओं को पुनः चालू करना आदि कार्यों का प्राथमिकता दी जाती है।

यदि आपदा की स्थिति कुछ समय तक बनी रहती है तो लोगों को अन्यत्र विस्थापित करना पड़ता है, तथा शरणाथर् शिवरों राहत शिविरों भोजन और दवाईयों की व्यवस्था व सामाजिक सुधार और बचाव पर ध्यान देना पड़ता है। इस प्रकार आपदाएँ आर्थिक गतिविधियों में व्यवधान डालती हैं। प्राकृतिक आपदाओं में हुई भौतिक हाँनियाँ सामायिक रूप से गतिविधियों में ठहराव ला सकती हैं। नियमित आपदाओं के कारण वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन की आश्यकता होती है। सुधार रख-रखाव तथा स्थितियों के सामान्य होने में समय लगता है। अतिरिक्त साधन जुटाने की आवश्यकता पड़ती है तथा अतिरिक्त साधन जुटाने से चल रही विकास योजनाओं में व्यवधान पड़ता है.आज यह बात सिद्दत से महसूस की जा रही है कि प्रकृति पर विजय कहीं से उपयुक्त और सफल अवधारणा नही। है इसलिए आज प्रकृति के साथ सामंजस्य और प्रकृति के साथ विकास की बात प्रारम्भ हो गयी है जो भारतीय दर्शन के एक अंग के रूप मे बहुत लम्बे समय से है । सतत विकास सस्टेनेबुल डेवलपमेण्ट शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1980 में प्रकृति के संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के लिए अन्तर्राट्रीय संघ द्वारा प्रस्तुत वल्र्ड कन्जर्वेटजी द्वारा किया गया था। यह 1987 में पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग के आवर कामन फ्यूचर नाम से बुटलैण्ड रिपोर्ट द्वारा सामान्य रूप से प्रयोग तथ पहली बार परिभाषित किया गया।

उद्देश्य एवं शोध विधि:-प्रस्तुत शोध की शोध-विधि विषय-वस्तु विश्लेषण या जिसे दस्तावेज विश्लेषण भी कहा जाता है विधि पर आधारित हैं। जिनके आधार पर झुन्झुनू के निवासियों द्वारा किये गये आचारों व उनके व्यवहारों के बारें में इकठ्ठा किये गये दस्तावेजों का विश्लेषण करते हुए एक निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश की गयी है। अतः प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। विकास एवं जनसंख्या एवं आपदा सम्बन्धित आकड़ों के लिए कई राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय रिपोर्टों जैसे सांख्किीय पत्रिका उत्तर प्रदेश भारतीय आर्थिक समीक्षा जनगणना 2001 द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग तीसरी रिपोर्ट संकट प्रबन्धन निराशा से आशा की ओर सितम्बर 2006 सुखा सुरक्षा योजना 2008 जनपद झुन्झुनू आदि का प्रयोग किया गया हैं ।
1- झुन्झुनू जनपद में प्राकृतिक आपदाओं का क्रमिक अध्ययन करना।
2- झुन्झुनू जनपद में इसके आर्थिक विकास पर पड़ रहे दुष्प्रभावों का अध्ययन करना।

3- झुन्झुनू जनपद के जन-जीवन पर इसके प्रभावों का अध्ययन करना।
4- झुन्झुनू जनपद में के आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतु आपदाओं के निवृत्त हेतु किये गये उपायों का अध्ययन करना।
5- भविष्य के दिनों में आपदा संभावनाओं का अध्ययन करना।
6- झुन्झुनू जनपद में आपदा से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करना।

प्राकृतिक आपदा अचानक आने वाली प्राकृतिक घटनाएँ होती हैं जो समाज के सामान्य जीवन में अचानक व्यवधान खड़ा कर देती हैं, जिससे जान-माल का भारी नुकसान होता हैं और मनुष्य की सामान्य गतिविधयाँ गहरे रूप से प्रभावित होती हैं। वैसे तो देश मं हुई मृत्यु नुकसान व लागत के हिसाब से आपदा की व्यापकता मापी जाती है, और जिस देश की जनता जितनी ज्यादा असुरक्षित होती हैं आपदा का प्रभाव उतना ही अधिक पड़ता है। इन आपदाआं का दुष्प्रभाव प्रायः सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों पर विशेष रूप से अनुभव किया जाता है। इन आपदाओं से जान-माल व सम्पत्तियों की हानि हो सकती हैं तथा आर्थिक और सामाजिक गतिविधयों में अवरोध उत्पन्न हो सकता हैं। आपदा के पश्चात पुनर्निर्माण और पुनर्वास कार्यों को केवल आपदा से बचाव सम्बन्धित गतिविधिया ही नहीं समझा जाना चाहिये बल्कि इन्हें विकास कार्य भी मानना चाहिये। इसमें आपदा बचाव एवं विकास कार्यों के अंतःसम्बन्धों से भी परिचित होना पड़ेगा जो पुनर्वास एवं विकास कार्यों को विकास योजना के खण्ड के रूप में संस्थापित करते हैं। इसें पुनर्निर्माण एंव पुनर्वास के विभिन्न तत्वों का उल्लेख भी विकास योजना के साधन के रूप में किया गया है तथा आवास इमारतों की मरम्मत एवं मजबूती और आपदा ग्रस्त क्षेत्रों में सामाजिक व आर्थिक पुनर्वास का विशेष रूप से उल्लेख किया जायेगा। कृषि व्यवस्था पर प्राकृतिक प्रकोप का प्रभाव, सूखा सूखा और चक्रवात की स्थिति मs खेती-बारी को हानि और कृषि सम्बन्धित गतिविधियों की पुनः शुरूआत के लिए पुनर्वास के उपायो के स्वरूप पर चर्चा होगी।बाढ़ चक्रवात भूकम्प सूखा भूस्खलन आदि मुख्य प्राकृतिक आपदाओं की देश में बढ़ती हुई बारम्बारता के कारण लोग इनके बारे में काफी जान गये है आपदाओं के बार-बार घटित होने से देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है देश में वैसे ही साधनों की कमी है उस पर नियतकालीन अर्थकारी परिस्थितियों के कारण देश के साधनों का एक मुख्य भाग सहायक कार्यों और आपदा से पीड़ित समुदायों के पुर्नवास के लिए खर्च करना पड़ता है। यह भयावह आपदा की प्रकृति या गंभीरता पर निर्भर करता है कि उसके संलक्षण क्या होंगे उदाहरण के लिए जब दो रेलगाड़ियों में टक्कर होती है और उसमें अनेक लोग मरते तथा उनके लोग घायल होते हं तो यह दुर्घटना अनेक लोगों के भय, अपराध बोध तथा चिन्ता की छाप-छोड़ जाती है। और उनमें से अनेक को मनोचिकित्सक के पास वार्ता सत्र के लिए भी जाना होता है।

इस प्रकार की आपदाओं के अनेक प्रभावितों पर होने वाली प्रतिक्रिया आपदा संलक्षण के रूप में प्रकट होती है। आपदा संलक्षण आपदा के तुरन्त बाद किसी प्रभावित की प्रस्थिति इन तीन चरणों के सामने आती है।

1- आघात चरण जिसमें आपदा ग्रस्त व्यक्ति स्तब्ध भौचक तथा उदासीन हो जाते है।

2- सुझावग्राही चरण जिसमें प्रभावित व्यक्ति निष्क्रिय तो हो जाता है किन्तु सुझावों को ग्रहण करने से मना नहीं करता और बचाव कर्मियों तथा अन्य व्यक्तियों से निर्देश लेने की तैयारी भी रखता है।

3- पुनस्थापन चरण जिसमें व्यक्ति तनावग्रस्त तथा संवेदनशील तो हो सकता है और उनमें सामान्य चिन्ता के लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं किन्तु धीरे&धीरे वह मनोवैज्ञानिक रूप से एक बार फिर संयत हो जाता है और प्रायः उस दुर्घटना के बारे में बार-बार बताना चाहता है।

****

सन्दर्भ सूची:-

1. डा. वेद प्रकाश एवं डा. प्रतिमा पाण्डये उत्तराखण्ड में भूस्खलन संवेदनशीलता कुरुक्षेत्र वर्ष-54 अंक-3 जनवरी 2008 पृ0 25-
2. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग भारत सरकार संटि प्रबंधन निराशा से आशा की ओर तीसरी रिपोर्ट, सितम्बर 2006 पृ0 4-
3. दर्शन लाल बजेजा आपदा प्रबन्धन की मांग नवभारत टाइम्स 27 जुलाई 2011
4. मेरियम वेइस्टा आन लाइन डिक्शनरी htt://www.mw. com/dictionary/crisis
5. D. Alexander (2002) Principles of Emergency Planing and Management. Harpended : Terra Publishing.

प्रथम लंदन यात्रा के दौरान मोहनदास के अनुभव: एस.एस. क्लाइड जहाज के संदर्भ में

सूर्य प्रकाश
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
मिहिर भोज पी. जी. कॉलेज,दादरी- ग्रेटर नोएडा,
गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

सारांश:-

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के अग्रगण्य जननेता महात्मा गाँधी के बचपन का नाम मोहनदास था। मोहनदास के पूर्वज दीवान के पद पर पिछली तीन पीढ़ियों से सुशोभित थे। पिता करमचंद गाँधी की मृत्यु के पश्चात दीवान पद प्राप्त करने हेतु मोहनदास के परिवारजनों ने उन्हें बैरिस्टर की डिग्री प्राप्त करने हेतु लंदन भेजने का विचार बनाया। अनेक सामाजिक,आर्थिक, नैतिक चुनौतियों का सामना करने के बाद अंततः मोहनदास ने गुजरात के एक प्रसिद्ध वकील त्रियंबकराय मजूमदार के साथ *एस.एस. क्लाइड* जहाज पर सवार होकर लंदन की ओर प्रस्थान किया। लंदन जाते समय इन्होंने जहाज एवं विभिन्न बंदरगाहों जैसे अदन, पोर्ट सईद, ब्रिंडसी, माल्टा, जिब्राल्टर, प्लाईमाउथ, टिलबरी आदि से संबंधित अनेक प्रकार के अनुभव ग्रहण किए। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं अनुभवों को एकीकृत कर प्रामाणिक रूप से वर्णित किया गया है।

बीज शब्द:-

जहाज, लंदन, प्रतिज्ञा, भोजन, शराब, सर्दी।

मूल अंश:-

मोहनदास मुंबई से लंदन पहुंचने के लिए उपयुक्त मार्ग से अनभिज्ञ थे क्योंकि वह लंदन पहली बार जा रहे थे। लंदन प्रवास के बाद लिखी पुस्तक *गाइड टू लंदन* (1893 ई.)में उन्होंने लिखा कि मुंबई से लंदन पहुंचने में पी. एण्ड ओ. कम्पनी (पेनिनसुलर एंड ओरिएंटल कंपनी) के जहाज द्वारा 22 दिन लगते हैं। वहीं ब्रिंडसी (इटली) होते हुए एक अन्य मार्ग द्वारा भी मुंबई से लंदन पहुंचा जा सकता है। इस मार्ग के पहले हिस्से में मुंबई से इटली के समुद्री तट पर स्थित ब्रिंडसी तक पहुंचने में 13 दिन लगते हैं फिर वहाँ से लंदन तक रेल द्वारा 2 दिन लगते हैं।[1] इस तरह इटली होते हुए मात्र 15 दिनों में मुंबई से लंदन पहुंचा जा सकता है लेकिन मोहनदास को कम समय वाले यात्रा मार्ग से अनजान होने के कारण समुद्र मार्ग का चयन करना पड़ा लेकिन बाद में इस समुद्री मार्ग की सुविधाओं के कारण इसको अधिक महत्व प्रदान किया और अपनी पुस्तक *गाइड टू लंदन* में भी लंदन जाने वाले लोगों को इसी मार्ग की सलाह दी, साथ ही लंदन जाने के लिए सबसे अच्छा महीना सितंबर या अक्टूबर बताया।

मोहनदास ने अपनी यात्रा *एस.एस. क्लाइड* जहाज से 4 सितंबर 1888 को आरंभ की।[2] यात्रा शुरू करने के समय उन्हें जब गुजरात के वकील त्रियंबकराय मजूमदार के लंदन जाने के बारे में पता चला तो उनके निवेदन पर मजूमदार ने अपने केबिन में उन्हें स्थान दिया।[3] वह भी लंदन बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए जा रहे थे। मोहनदास ने मजूमदार के अच्छे व्यवहार के कारण उन्हें बड़े भाई के समान दर्जा दिया। जहाज में मजूमदार को छोड़कर अन्य सभी अंग्रेज थे जिस कारण उन्हें उनसे बातचीत करने में समस्या हुई। वहीं दूसरी ओर, वह अंग्रेजी सभ्यता से भी परिचित नहीं थे। उन्हें काँटा चम्मच से भोजन करना नहीं आता था, उन्हें यह भी पूछने की हिम्मत नहीं थी कि खाने में मांस है या नहीं? इसलिए वह ज्यादातर जहाज के केबिन में ही रहते थे। मजूमदार ने इन्हें इनके शर्मीले व्यवहार के प्रति काफी कुछ समझाया और साथ ही अन्य साथियों के साथ परिचय कराने का भी प्रयास किया। उन्होंने किसी भारतीय द्वारा अंग्रेजी भाषा को बोलते समय गलती करने को एक सामान्य बताते हुए सभी से बात करने की सलाह दी लेकिन फिर भी मोहनदास की शर्म नहीं गई। इस यात्रा के लगभग 22 वर्ष बाद मजूमदार ने मोहनदास के बारे में राय व्यक्त की कि वह सत्यवादी हैं लेकिन उनमें अहंकार बहुत ज्यादा है। उनका मानना है कि वह जो कहते हैं वही सत्य है।[4] एक अंग्रेज सहयात्री मोहनदास के विचित्र व्यवहार को देख रहा था। वह इनकी मांस ना खाने की जिद पर हंसा। उसने कहा कि यहाँ सब ठीक है लेकिन तुम्हें बिस्के की खाड़ी में अपना निर्णय बदलना होगा और इंग्लैंड में इतनी ठंड है कि कोई बिना मांस के नहीं रह सकता। इस पर इन्होंने कहा कि माताजी से वचनबद्ध होने के कारण वह मांस नहीं खा सकते। यदि आवश्यकता पड़ी तो वह भारत वापस लौट जाएंगे।[5]

मोहनदास का मानना था कि स्ट्रीमर पर व्यवस्थाएं बहुत अच्छी थी। यद्यपि जहाज पर शाकाहारी भोजन मिल जाता था लेकिन नाविक बहुत गंदे होने के कारण यह रोटी के बदले डबल रोटी ही लेना पसंद करते थे। आरंभ में उन्होंने अपने साथ लाए भारतीय मिठाइयों एवं फलों का भोजन किया लेकिन धीरे-धीरे जहाज पर शाकाहारी भोजन अपने मित्र मजूमदार के सहयोग से प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने मजूमदार के साथ मिलकर जहाज के रसोईया से स्वयं के लिए शाकाहारी भोजन

बनवाने का आग्रह किया जिसे उसने स्वीकार कर लिया। जहाज पर शाकाहारी भोजन के रूप में सामान्य रूप से नाश्ते में जई का दलिया, दूध, पके हुए फल, डबल रोटी, मुरब्बा, मक्खन,कोको और मार्मलेड मिलता था। दोपहर के भोजन के लिए सब्जी का शोरबा, दूध, चावल, मुरब्बे वाली पेस्ट्री, पके हुए फल, मक्खन, डबल रोटी मिलते थे। रात के भोजन के लिए मक्खन, मुरब्बा,कोको,डबलरोटी ,काली मिर्च, पनीर के साथ सलाद पत्ती मिलता था। मोहनदास दिन में तीन बार भोजन करते थे। जहाज पर सप्ताह में दो बार ताजे फल और मेवा भी मिलता था। जहाज के बारे में मोहनदास ने लिखा है कि जब ये अपने केबिन में बैठे होते थे तो ये भूल जाते थे कि यह स्ट्रीमर का हिस्सा है वहाँ कोई गति पता नहीं चलती थी। जहाज पर वाद्य यंत्र भी रखे हुए थे। उन्होंने पियानो बजाया तथा ताश, शतरंज और ड्रॉट्स जैसे खेल भी खेले। [6] पाँच दिन बाद जहाज मुंबई से अदन की खाड़ी पर पहुँचा। यहाँ के लिए जहाज के एक सहयात्री ने कहा था कि तुम व्हिस्की की 8 बोतलें साथ रख लो क्योंकि अदन से आगे जाने के बाद तुम्हें उनकी जरूरत पड़ सकती है। लेकिन अदन में मोहनदास को इतनी भयंकर सर्दी का अनुभव नहीं हुआ। छठे दिन की सुबह 11:00 बजे अदन पर जहाज रुका। यहाँ पर वह एक गाड़ी किराए पर करके आस पास के स्थल घूमे। उसके बाद वह लाल सागर पहुंचे। गर्मी के कारण केबिन के स्थान पर उन्हें सहित लगभग सभी यात्री डेक पर सोए। उन्होंने मुंबई से लेकर पोर्ट सईद तक पहुंचने तक मौसम को गरम बताया। इसका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक *गाइड टू लंदन* में इस प्रकार किया है कि जहाज के पोर्ट सईद पहुंचने तक बनियान और जाँघिए की जरूरत नहीं पड़ेगी क्योंकि मुंबई से पोर्ट सईद तक मौसम भारत से ज्यादा ठंडा नहीं होता। [7] इसके बाद उनका जहाज हेल्सगेट को पार करके स्वेज नहर में प्रवेश किया। यह मोहनदास के लिए बहुत आश्चर्यजनक निर्माण था। इस कैनाल से एक बार में केवल एक ही जहाज निकल सकता था। इसकी चौड़ाई राजकोट में रामनाथ स्थित अजी नदी जितनी थी। जहाज स्वेज नहर के बंदरगाह पोर्ट सईद पर लगभग 1 घंटे रुका। इसका निर्माण फ्रेंच शैली में किया गया है। वहाँ के लोगों के बारे में मोहनदास ने लिखा है कि वहाँ के आदमी और औरत बहुत चालाक थे। [8]

इनके सह यात्रियों में से एक मिस्टर जैफ्रीज ने उनसे कहा कि ब्रिंडसी के बाद ठंड बढ़ जाएगी। 3 दिन बाद यह ब्रिंडसी पहुंचे। लेकिन यहाँ भी उन्हें विशेष ठंड का अनुभव नहीं हुआ और वह अब लोगों के शराब और मांस के सेवन वाली बात को मिथ्या धारणा मान चुके थे। ब्रिंडसी में व्याप्त वेश्यावृत्ति के बारे में उन्होंने बताया कि यदि आप अश्वेत व्यक्ति हैं तो आपके पास एक व्यक्ति आएगा वह कहेगा कि एक 14 साल की सुंदर लड़की है। मैं आपको उसके पास ले चलूंगा। आप यदि उससे मना कर देंगे तो ही आप सुरक्षित रहेंगे। [9] यहाँ की सुरक्षा व्यवस्था पर विश्वास जताते हुए मोहनदास ने लिखा है कि यदि आप किसी परेशानी में है तो आप पुलिस या चीफ ऑफिसर का साथ ले सकते हैं। [10] लगभग 3 दिनों के बाद यह माल्टा पहुंचे। यहाँ पर भारत के असम निवासी अब्दुल मजीद का भी साथ प्राप्त होना था लेकिन उन्हें आने में देरी हो रही थी। अतः मजूमदार ने मोहनदास के समक्ष अब्दुल मजीद का साथ न लेने का प्रस्ताव रखा जिस पर मोहनदास ने सहमति जता दी क्योंकि उन्हें भी इंग्लैंड पहुंचने की उत्सुकता थी लेकिन बाद में अब्दुल मजीद द्वारा शिकायत करने पर मजूमदार ने प्रतीक्षा न करने का आरोप मोहनदास के सिर मढ़ दिया जिससे मोहनदास की नज़र में मजूमदार के लिए सम्मान काफी कम हो गया।

माल्टा में उन्होंने सैंट जुआन चर्च , आरमरी हॉल व नेपोलियन बोनापार्ट की गाड़ी देखी। यहाँ पर मोहनदास ने एक ठग दुकानदार का वर्णन करते हुए कहा है कि उसने जबरन कुछ चीजें हमारे मत्थे मढ़ देने का प्रयत्न किया मगर हम कोई चीज खरीदने को तैयार नहीं थे। आखिर श्री मजूमदार ने दो शिलिंग छः पेंस में माल्टा के चित्र खरीद लिए। [11] 3 दिनों के बाद *क्लाइड* जहाज जिब्राल्टर पहुँचा। यहां जहाज पूरी रात रुका। इसके बाद बिस्के की खाड़ी के लिए एक सहयात्री मिस्टर जैफ्रीज ने कहा कि बिस्के की खाड़ी में मोहनदास को मौत और मांस मदिरा में से एक को पसंद करना होगा। जब यह बिस्के की खाड़ी में गुजरे तो उन्हें मांस व शराब की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ। उन्हें मांस ना खाने का प्रमाण पत्र अंग्रेज मिस्टर जैफ्रीज से मिला जिसे पाकर वह बहुत खुश हुए लेकिन यह प्रमाण पत्र मांसाहारियों को भी मिलने के कारण इन्हें वह महत्वहीन लगने लगा। [12] फिर जहाज प्लाईमाउथ पहुँचा। यहाँ से सर्दी पड़ना शुरू हो गई। लोगों ने मांस खाने तथा शराब पीने की अनिवार्यता बताई। यहां सच में ठंड बहुत थी लेकिन मोहनदास ने अपने दृढ़ निश्चय के चलते ऐसा कुछ भी नहीं किया। फिर यहां से साउथहैंपटन होते हुए टिलबरी स्टेशन पहुंचे जो लंदन से 20 मील की दूरी पर दक्षिण दिशा में था। शनिवार के दिन 29 सितंबर 1888 को *एस.एस. क्लाइड* जहाज ने टिलबरी बंदरगाह पर अपनी यात्रा समाप्त की। [13 14] यहाँ से मोहनदास अपने सह यात्रियों मजूमदार और अब्दुल मजीद के साथ लंदन ट्रेन से गए और एक घोड़ा गाड़ी के माध्यम से लंदन के प्रसिद्ध विक्टोरिया होटल में पहुंचे। उसके बाद उन्होंने इंग्लैंड में बैरिस्टरी की डिग्री प्राप्त करने के लिए प्रयास शुरू कर दिए।

उपसंहार:-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मोहनदास जहाज यात्रा के दौरान अपने शर्मीले व्यवहार के कारण प्रारंभ में असहजता का अनुभव करते थे लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने विभिन्न बंदरगाहों पर रुककर वहाँ लोगों का व्यवहार व चरित्र, मौसम व जलवायु, दर्शनीय स्थल व वस्तुएं, सर्दी के कारण शराब व मांस के सेवन संबंधी धारणा के मिथ्या होने संबंधी विभिन्न अनुभवों को अर्जित किया। इन अनुभवों को उन्होंने अपनी पुस्तक *गाइड टू लंदन* के रूप में लिपिबद्ध कर भारत से लंदन जाने वाले लोगों का मार्गदर्शन किया।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 78
2. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 224
3. राजमोहन गाँधी, मोहनदास: ए ट्रयू स्टोरी ऑफ ए मैन,हिज पीपल एंड एन एंपायर, पेंगुइन इंडिया पब्लिकेशन, 2007, पृष्ठ संख्या 25
4. वही, पृष्ठ संख्या 25
5. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक: महादेव देसाई),द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 107
6. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 9
7. वही, पृष्ठ संख्या 75
8. वही, पृष्ठ संख्या 12
9. राजमोहन गाँधी, मोहनदास: ए ट्रयू स्टोरी ऑफ ए मैन,हिज पीपल एंड एन एंपायर, पेंगुइन इंडिया पब्लिकेशन, 2007, पृष्ठ संख्या 28
10. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 13
11. वही, पृष्ठ संख्या 14
12. महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादक: महादेव देसाई),द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 108
13. जैम्स डी. हंट, गाँधी इन लंदन, प्रोमिला एंड कंपनी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1978, पृष्ठ सं. 7
14. राजमोहन गाँधी, मोहनदास: ए ट्रयू स्टोरी ऑफ ए मैन,हिज पीपल एंड एन एंपायर, पेंगुइन इंडिया पब्लिकेशन, 2007, पृष्ठ संख्या 28

झुन्झुनू जिले में पर्यावरण अवनयन के कारको एवं होने वाली हानियों के प्रबंधन-एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ.सालिक सिंह
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ, उतर प्रदेश

सवित राज
शोध छात्र-भूगोल विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ, उतर प्रदेश

शोध सार :- आधुनिक युग में विकास के नाम पर मानव प्रकृति से छेड़छाड़ करने पर तुला है परिणामस्वरूप मृदा जल और वायु के भौतिक और रासायनिक गुणों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस परिवर्तन का असर सभी जैविक घटकों पर पड़ रहा है। ये परिवर्तन ही प्रदूषण का निर्माण करते हैं। रसायनयुक्त जल के सेवन से मानव में डायरिया] पीलिया] त्वचा रोग] फ्लोरोसिस] विकलांगता] नेत्र विकार] यूरेनिया आदि रोग हो जाते हैं।विविध प्रकार के वातावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव पाए जाते हैं। सभी जीव, अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होते हैं। सभी जीव अपने वातावरण के साथ एक विशिष्ट तंत्र का निर्माण करते हैं, जिसे पारिस्थितिकी तंत्र कहते हैं। जीवों और वातावरण के इस संबंध को पारिस्थितिकी कहा जाता है।

मुख्य शब्द:- जैविक घटकों- जल, पारिस्थितिकी, वातावरण, प्रदूषण

प्रस्तावना:- सन् 1965 में ओड़म ने पारिस्थितिकी के लिए प्रकृति की संरचना तथा कार्यों का अध्ययन नाम नई परिभाषा दी। विभिन्न वैज्ञानिकों ने पारिस्थितिकी तंत्र की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। सबसे सरल परिभाषा है 'प्राणियों एवं वनस्पतियों के परस्पर संबंधों और इनके पर्यावरण से संबंधों का अध्ययनाइको-सिस्टम या पारिस्थितिक तंत्र क्या है इसे समझने के लिए हम कल्पना करें एक तालाब की जहां मछलियां] मेंढ़क] शैवाल] जलीय पुष्प और अन्य कई जलीय जीव रहते हैं। ये सभी न केवल एक-दूसरे पर आश्रित हैं अपितु जल] वायु] भूमि जैसे अजैविक घटकों के साथ भी पारस्परिक रूप से जुड़े हुए हैं। समुदाय का यह पूर्ण तंत्र जिसमें अजैविक घटकों तथा जैविक घटकों का पारस्परिक संबंध ही पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करता है।

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएं:-

- पारिस्थितिकी तंत्र एक कार्यशील क्षेत्रीय इकाई होता है जो क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारियों एवं उनके भौतिक पर्यावरण के सकल योग का प्रतिनिधित्व करता है।
- इसकी संरचना तीन मूलभूत संघटकों से होती है- क- ऊर्जा संघटक ख- जैविक बायोम संघटक ग- अजैविक या भौतिक निवास्य संघटक स्थल जल तथा वायु।
- पारिस्थितिकी तंत्र जीवमंडल में एक सुनिश्चित क्षेत्र धारण करता है।
- किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र का समय इकाई के संदर्भ में पर्यवेक्षण किया जाता है।
- ऊर्जा जैविक तथा भौतिक संघटकों के मध्य जटिल पारिस्थितिकी अनुक्रियाएं होती हैं साथ-ही-साथ विभिन्न जीवधारियों में भी पारस्परिक क्रियाएं होती हैं।
- पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का सतत् निवेश तथा उससे बहिर्गमन होता रहता है।
- जब तक पारिस्थितिकी तंत्र के एक या अधिक नियंत्रक कारकों में अव्यवस्था नहीं होती पारिस्थितिकी तंत्र अपेक्षाकृत स्थिर समस्थिति में होता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक संसाधन होते हैं अर्थात् यह प्राकृतिक संसाधनों का प्रतिनिधित्व करता है
- पारिस्थितिकी तंत्र संरचित तथा सुसंगठित तंत्र होता है।

♦प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में अंतर्निमित नियंत्रण की व्यवस्था होती है। अर्थात् यदि पारिस्थितिकी तंत्र के किसी एक संघटक में प्राकृतिक कारणों से कोई परिवर्तन होता है तो तंत्र के दूसरे संघटक में परिवर्तन द्वारा उसकी भरपाई हो जाती है, परंतु यह परिवर्तन यदि प्रौद्योगिकी मानव के आर्थिक क्रियाकलापों द्वारा इतना अधिक हो जाता है कि वह पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्निर्मित नियंत्रण की व्यवस्था की सहनशक्ति से अधिक होता है तो उक्त परिवर्तन की भरपाई नहीं हो पाती है और पारिस्थितिकी तंत्र अव्यवस्थित तथा असंतुलित हो जाता है एवं पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण प्रारंभ हो जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार:-

1- निवास्य क्षेत्र के आधार पर वर्गीकरण निवास्य क्षेत्र जीव मंडल के खास क्षेत्रीय इकाई के भौतिक पर्यावरण की दशाएं जैविक समुदायों की प्रकृति तथा विशेषताओं को निर्धारित करता है। चूंकि भौतिक दशाओं में क्षेत्रीय विभिन्नताएं होती हैं अतः जैविक समुदायों में भी स्थानीय विभिन्नताएं होती हैं। इस अवधारणा के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्रों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है-

क- पार्थिव पारिस्थितिकी तंत्र भौतिक दशाओं तथा उनके जैविक समुदायों पर प्रभाव के अनुसार पार्थिव या स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों में विभिन्नताएं होती हैं। अतः पार्थिव पारिस्थितिकी तंत्रों को पुनः कई उपभागों में विभाजित किया जाता है यथा अ- उच्चस्थलीय या पर्वत पारिस्थितिकी तंत्र ब- निम्न स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र स- उष्ण रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र तथा द- शीत रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र। विशिष्ट अध्ययन एवं निश्चित उद्देश्यों के आधार पर इस पारिस्थितिकी तंत्र को कई छोटे भागों में विभाजित किया जाता है।

ख- जलीय पारिस्थितिकी तंत्र जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को दो प्रमुख उपभागों में विभाजित किया जाता है अ- ताजे जल वाले-ताजे जल वाले पारिस्थितिकी तंत्रों को पुनः कई भागों में विभाजित किया जाता है-सरिता पारिस्थितिक तंत्र झील पारिस्थितिकी तंत्र जलाशय पारिस्थितिकी तंत्र दलदल पारिस्थितिकी तंत्र आदि। ब- सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र-सागरीय पारिस्थितिकी तंत्रों को खुले सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र, तटीय ज्वारनद मुखी पारिस्थितिकी तंत्र कोरलरीफ पारिस्थितिकी तंत्र आदि उप-प्रकारों में विभाजित किया जाता है। सागरीय पारिस्थितिकी तंत्रों को दूसरे रूप में भी विभाजित किया जा सकता है। यथा- सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र तथा सागर-नितल पारिस्थितिकी तंत्र। जीवमंडल वृहत्तम पारिस्थितिकी तंत्र होता है। इसे दो प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जाता है

अ- महाद्वीपीय पारिस्थितिकी तंत्र ब- महासागरीय या सागरीय पारिस्थिकी-तंत्र। आवश्यकता के अनुसार क्षेत्रीय मापक को घटाकर एकाकी जीव (पादप या जंतु तक लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए जीवमंडलीय पारिस्थितिकी तंत्र महाद्वीपीय पारिस्थितिकी तंत्र पर्वत पठार मैदान पारिस्थितिकी तंत्र सरिता झील जलाशय पारिस्थितिकी तंत्र फसल क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र गोशाला पारिस्थितिक तंत्र एकाकी पादप पारिस्थितिकी तंत्र पेड़ की जड़ या ऊपरी वितान का पारिस्थितिकी तंत्र।

2- उपयोग के आधार पर वर्गीकरण- विभिन्न उपयोगों के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्रों को कई प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ई.पी. ओड्म (1959 ने नेट प्राथमिक उत्पादन तथा कृषि विधियों के उपयोग के आधार पर पारिस्थितिकी तंत्रों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है-

अ- कृषित पारिस्थितिकी तंत्र- कृषित पारिस्थितिकी तंत्रों को प्रमुख फसलों के आधार पर कई उप-प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। यथा-गेहूं क्षेत्र पारिस्थितिकी-तंत्र, चारा क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र आदि।

ब- अकृषित पारिस्थितिकी तंत्र- अकृषित पारिस्थितिकी तंत्रों को वन पारिस्थितिकी तंत्र ऊंची घास पारिस्थितिक तंत्र बंजर-भूमि पारिस्थितिकी तंत्र दलदल क्षेत्र पारिस्थितिकी तंत्र आदि। पर्यावरण प्रदूषण संरक्षण जहां असफल होता है वहीं प्रदूषण की शुरुआत होती है। आधुनिक युग में विकास के नाम पर मानव प्रकृति से छेड़छाड़ करने पर तुला है परिणामस्वरूप मृदा जल और वायु के भौतिक और रासायनिक गुणों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस परिवर्तन का असर सभी जैविक घटकों पर पड़ रहा है। ये परिवर्तन ही प्रदूषण का निर्माण करते हैं।

वायु प्रदूषण:-

कल कारखानों का धुआं ईंधन का धुआं वाहनों का धुआं धूल के कण और जलवाष्प आदि वायुमंडल में एकत्रित हो जाते हैं जिससे वायु की गुणवत्ता नष्ट हो जाती है। उसे ही वायु प्रदूषण या प्रदूषित वायु कहा जाता है।

वायु प्रदूषण के कारण:-

1- धुआं घरेलू ईंधन से धुआं कारखानों से निकलने वाला धुआं कचरा जलाने से धुआं वाहनों से निकलता धुआं। इस धुएं में हाइड्रोकार्बन कार्बन के कण कार्बन डाइऑक्साइड कार्बन मोनोऑक्साइड नाइट्रोजन के ऑक्साइड आदि उपस्थित रहते हैं। ये सभी कण मानव के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। पेड़ों की पत्तियों और शाखाओं में जमकर उन्हें भी क्षतिग्रस्त करते हैं।

2- स्वचालित वाहन- ट्रैक्टर] ट्रक] कार] स्कूटर टैंपो बस आदि वाहनों में डीजल या पेट्रोल के जलने से विषैली गैस निकलकर वातावरण को प्रदूषित करती है। चलती हुई वाहन की अपेक्षा चालू वाहन में खड़े वाहन से निकलता धुआं ज्यादा खतरनाक होता है क्योंकि इस धुएं में प्रदूषक की सांद्रता होती है।

3- औद्योगीकरण- बढ़ती हुई जनसंख्या ने गरीबी को और गरीबी ने प्रदूषण को जन्म दिया है। बढ़ती हुई जनसंख्या ने विकास के नाम पर औद्योगीकरण को भी जन्म दिया है। कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं में पारा जिंक सीसा आर्सेनिक जैसे धातुओं के सूक्ष्म कण होते हैं इसके अलावा प्रदूषक गैस भी होती है।

4- कृषि क्षेत्र- फसल को कीटों के आक्रमण से बचाने तथा अधिक उत्पादन के लिए किसान खेतों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं। ये रासायनिक पदार्थ जल में घुलकर भूमि को तथा नदी-नालों में जल को प्रदूषित करते हैं।

5- खरपतवार- गाजर घास और कुछ खरपतवारों के परागकण वायुमंडल में बिखरकर प्रदूषक का कार्य करते हैं। इससे दमा की बीमारी होती है। महानीम वृक्ष के पुष्पों के परागकण भी प्रदूषण फैलाते हैं।

वायु प्रदूषण के प्रभाव :-

वायु प्रदूषण का प्रभाव न केवल जैविक घटकों पर अपितु इमारतों पर कपड़ों एवं धातुओं पर भी पड़ता है। मानव में श्वास तथा त्वचा संबंधी रोग तो होते ही हैं शरीर से हिस्टामाइन रसायन का त्वचा के माध्यम से रिसाव होने लगता है। पत्तियों का पीला पड़ जाना जल जाना चकत्ते पड़ जाना, कलियों का बिना खिले ही सूख जाना फलों का धब्बेदार हो जाना पशुओं का चारा विषाक्त हो जाना यह सब वायु प्रदूषण का ही प्रभाव है।

वायु प्रदूषण का नियंत्रण श्रमिकों को कारखाने के अंदर मास्क लगाकर जाना अनिवार्य होना चाहिए। वायु प्रदूषण के नियंत्रण का सबसे सहज उपाय वृक्षारोपण है। बरगद की पत्तियों में ज्यादा प्रदूषण सोखने क क्षमता होती है तथा पाइंस के वृक्ष नाइट्रोजन के ऑक्साइड का अवशोषण करते हैं। ऐसे वृक्ष कारखानों के समीप और सड़क के किनारे लगाने चाहिए। जिससे कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण और ऑक्सीजन का विमोचन करता है। घर में तुलसी का पौधा लगाना अच्छा माना जाता है। मदार कनेर वोगनवेलिया ये पौधे भी प्रदूषण को अवशोषित करते हैं।

जल प्रदूषण:-

जल-जीवन अमृत जल जीवनदायिनी तत्व है। जीवन की शुरुआत ही जल से हुई है। जल बिना जीवन का अस्तित्व ही नहीं है। जब जल के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में परिवर्तन हो जाए और इस परिवर्तन का असर समस्त जल मंडल और जीव मंडल पर पड़े तब यह जल प्रदूषित जल कहलाता है।

जल प्रदूषण के कारण:-

1- औद्योगिक विकास प्रगति के नाम पर मानव नए&नए उद्योग धंधों का विकास कर रहा है। इन उद्योग-धंधों में रासायनिक कीटनाशी पीड़कनाशी बनाए जाते हैं कहीं चमड़े का शोधन होता है तो कहीं इस्पात का कारखाना है। इन सबसे जल इतना दूषित हो जाता है कि इसमें वनस्पति नष्ट हो जाती है। इसी जल को व्यक्ति नहाने तथा पीने में उपयोग करते हैं और अनेक बीमारियों से ग्रसित होते हैं।

2- अपमार्जक विकास- आज हर घर में नहीने कपड़े धोने और बर्तन धोने के लिए विभिन्न प्रकार के साबुन का उपयोग किया जाता है। सिर्फ विम निरमा जैसे कई डिटरजेंट इनके उदाहरण हैं। धुलने के पश्चात् इन पदार्थों को जल में विसर्जित कर दिया जाता है। साबुन युक्त जल नदी-नालों और तालाब के जल को दूषित करते हैं तथा जीवधारियों को नुकसान पहुंचाते हैं।

3- कीटनाशी- फसलों को उन्नत बनाने के लिए कीटनाशी रसायनों का उपयोग किया जाता है ये रसायन में घुलकर खेतों के माध्यम से नदी&तालाबाsa करते हैं।

जल प्रदूषण का प्रभाव:- पृथ्वी पर जल का वितरण असमान तरीके से होता है। किसी क्षेत्र में अत्यधिक जल तो कहीं सूखा परिणामस्वरूप वायु की अपेक्षा जल प्रदूषण गंभीर मसला है। रसायनयुक्त जल के सेवन से मानव में डायरिया] पीलिया] त्वचा रोग] फ्लोरोसिस] विकलांगता] नेत्र विकार] यूरेनिया आदि रोग हो जाते हैं। पीड़कनाशी के जल में घुलने पर खाद्य श्रृंखला के माध्यम से फसलों के माध्यम से मानव व अन्य प्राणियों पर प्रदूषित जल का हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

जल प्रदूषण का नियंत्रण:-

पीने के पानी को फिटकरी या क्लोरीन से शुद्ध करना चाहिए। कीटनाशी का प्रयोग सावधानी से और तनु रूप में किया जाना चाहिए तथा बाजार की सब्जियों को पोटाश के जल में धोकर फिर उपयोग में लाना चाहिए। सीवेज उपचार यंत्रों तथा सेप्टिक टैंक का प्रयोग उत्तम है। सड़ी हुई या मृत वस्तुओं को जल में न बहाकर जला देना चाहिए।

भारत सरकार द्वारा जल अधिनियम, 1974 का कड़ाई से पालन करना चाहिए और इस कार्य में शासन को पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अन्य कई कारण हैं मृदा प्रदूषण, सागरीय प्रदूषण, शोर प्रदूषण, तापीय प्रदूषण] नाभिकीय प्रदूषण आदि।

पर्यावरण संरक्षण के उपाय:-

पर्यावरण प्रदूषण के कुछ दूरगामी दुष्प्रभाव हैं जो अतीव घातक हैं जैसे आणविक विस्फोटों से रेडियोधर्मिता का आनुवांशिक प्रभाव वायुमण्डल का तापमान बढ़ना ओजोन परत की हानि भूक्षरण आदि ऐसे घातक दुष्प्रभाव हैं। प्रत्यक्ष दुष्प्रभाव के रूप में जल वायु तथा परिवेश का दूषित होना एवं वनस्पतियों का विनष्ट होना मानव का अनेक नये रोगों से आक्रान्त होना आदि देखे जा रहे हैं। बड़े कारखानों से विषैला अपशिष्ट बाहर निकलने से तथा प्लास्टिक आदि के कचरे से प्रदूषण की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

अपने पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए हमें सबसे पहले अपनी मुख्य जरूरत जल को प्रदूषण से बचाना होगा। कारखानों का गंदा पानी घरेलू गंदा पानी नालियों में प्रवाहित मल सीवर लाइन का गंदा निष्कासित पानी समीपस्थ नदियों और समुद्र में गिरने से रोकना होगा। कारखानों के पानी में हानिकारक रासायनिक तत्व घुले रहते हैं जो नदियों के जल को विषाक्त कर देते हैं परिणामस्वरूप जलचरों के जीवन को संकट का सामना करना पड़ता है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि उसी प्रदूषित पानी को सिंचाई के काम में लेते हैं जिसमें उपजाऊ भूमि भी विषैली हो जाती है। उसमें उगने वाली फसल व सब्जियां भी पौष्टिक तत्वों से रहित हो जाती हैं जिनके सेवन से अवशिष्ट जीवननाशी रसायन मानव शरीर में पहुंच कर खून को विषैला बना देते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि यदि हम अपने कल को स्वस्थ देखना चाहते हैं तो आवश्यक है कि बच्चों को पर्यावरण सुरक्षा का समुचित ज्ञान समय≤ पर देते रहें। अच्छे व मंहगें ब्रांड के कपड़े पहनाने से कहीं महत्वपूर्ण है उनका स्वास्थ्य जो हमारा भविष्य व उनकी पूंजी है।

आज वायु प्रदूषण ने भी हमारे पर्यावरण को बहुत हानि पहुंचाई है। जल प्रदूषण के साथ ही वायु प्रदूषण भी मानव के सम्मुख एक चुनौती है। माना कि आज मानव विकास के मार्ग पर अग्रसर है परंतु वहीं बड़े&बड़े कल-कारखानों की चिमनियों से लगातार उठने वाला धुआं रेल व नाना प्रकार के डीजल व पेट्रोल से चलने वाले वाहनों के पाइपों से और इंजनों से निकलने वाली गैसें तथा धुआं जलाने वाला हाइकोक ए.सी.] इन्वर्टर] जेनरेटर आदि से कार्बन डाइऑक्साइड] नाइट्रोजन] सल्फ्यूरिक एसिड] नाइट्रिक एसिड प्रति क्षण वायुमंडल में घुलते रहते हैं। वस्तुतः वायु प्रदूषण सर्वव्यापक हो चुका है।

सही मायनों में पर्यावरण पर हमारा भविष्य आधारित है, जिसकी बेहतरी के लिए ध्वनि प्रदूषण को और भी ध्यान देना होगा। अब हाल यह है कि महानगरों में ही नहीं बल्कि गाँवों तक में लोग ध्वनि विस्तारकों का प्रयोग करने लगे हैं। बच्चे के जन्म की खुशी, शादी-पार्टी सभी में डी.जे. एक आवश्यकता समझी जाने लगी है। जहां गाँवों को विकसित करके नगरों से जोड़ा गया है। वहीं मोटर साइकिल व वाहनों की चिल्ल-पों महानगरों के शोर को भी मूँह चिढ़ाती नजर आती है। औद्योगिक संस्थानों की मशीनों के कोलाहल ने ध्वनि प्रदूषण को जन्म दिया है। इससे मानव की श्रवण-शक्ति का ह्रास होता है। ध्वनि प्रदूषण का मस्तिष्क पर भी घातक प्रभाव पड़ता है। जल प्रदूषण वायु प्रदूषण और ध्वनि तीनों ही हमारे व हमारे फूल जैसे बच्चों के स्वास्थ्य को चैपट कर रहे हैं। ऋतुचक्र का परिवर्तन

कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा का बढ़ता हिमखंड को पिघला रहा है। सुनामी बाढ़ सूखा अतिवृष्टि या अनावृष्टि जैसे दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं जिन्हें देखते हुए अपने बेहतर कल के लिए जून को समस्त विश्व में 'पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जा रहा है।

पौधा लगाने से पहले वह जगह तैयार करना आवश्यक है जहां वह विकसित व बड़ा होगा। उपर्युक्त सभी प्रकार के प्रदूषण से बचने के लिए यदि थोड़ा सा भी उचित दिशा में प्रयास करें तो बचा सकते हैं अपना पर्यावरण। सर्वप्रथम हमें जनाधिक्य को नियंत्रित करना होगा। दूसरे जंगलों व पहाड़ों की सुरक्षा पर ध्यान दिया जाए। देखने में जाता है कि पहाड़ों पर रहने वाले लोग कई बार घरेलू ईधन के लिए जंगलों से लकड़ी काटकर इस्तेमाल करते हैं जिससे पूरे के पूरे जंगल स्वाहा हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य है जो छोटे-छोटे व बहुत कम आबादी वाले गांव हैं उन्हें पहाड़ों पर सड़क बिजली-पानी जैसे सुविधाएं मुहैया कराने से बेहतर है उन्हें प्लेन में विस्थापित करें। इससे पहाड़ व जंगल कटान कम होगा, साथ ही पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा।

निष्कर्ष:- आज विश्व में बढ़ती औद्योगिक जल की मांगों की तुलना में आपूर्ति घटती जा रही है। औद्योगिक क्षेत्र में जल संसाधन की मांगों में लगातार वृद्धि होती जा रही है लेकिन बढ़ती मांगों के अनुरूप पूर्ति नहीं हो पा रही है। औद्योगिक क्षेत्र में जलाभाव के कारण औद्योगिक इकाईयाँ बन्द होती जा रही है। आज विश्व के सामने औद्योगिक जलापूर्ति एक चुनौती बनती जा रही है। विश्व की 630 करोड़ जनसंख्याँ के लिए जल के विभिन्न रूपों में उपयोग के नूतन परिदृष्य से स्पष्ट हुआ है कि घरेलु उपयोग केवल 8 प्रतिशत है जबकि सर्वाधिक कृषि में 70 प्रतिशत तथा उद्योगों में 22 प्रतिशत जल का उपयोग होता है। यह आंकलन हाल ही संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के विश्व जल विकास प्रतिवेदन 2003 में प्रकाषित हुआ है। अप्रत्यक्ष रूप से कृषि कार्यो के उपयोग में लिए जाने वाले जल से औद्योगिक क्षेत्र जुड़ा हुआ है। औद्योगिक इकाईयों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र में जल की आपूर्ति में कमी से औद्योगिक विकास सीधा प्रभावित होता है, क्योंकि कच्चे माल की आपूर्ति प्रभावित होती है।

****

Reference: -

1. Dasgupta, K. and Mann, H.S. (Ed.) (1977) Ground water resources in desert ecosystem and its importance. CAZRI monography no. 1 Jodhpur Central Arid Zone Research Institute.
2. Govt. of Rajasthan (1977) Public health and engineering department. Unpublished data on water resources, Bikaner.
3. Sagar, V. (1978) Contribution of Individual technology factors in agriculture growth: A case study of Rajasthan Economic and Political weekly, Vol. VIII No. 25, June 24, 1978.
4. Bali Y.P. (1981): Watershed Management Concept & Strategy, Central Soil & Water Cons. Res. & Trg. Inst. Dehradun.
5. Vohra, B.B. (1982) Land and water management, problem in India, training vol. 8 New Delhi. Training Division, D.P. Admn. Reforms, Ministry of Home Affairs.
6. Roy, T.K. (1983) impact of Rajasthan Canal Project on social, Economic and Environmental Conditions, NCAER, New Delhi.
7. Hooja R. (1993) (a) "The problem of settlement in fragill sustainable ecosystem of india Gandhi Canal project" in N.L. Gupta and R.K. Gurjar (ed.) sustaibable development, Jaipur.
8. Hooja R. and P.S. Kavdia (ed.) (1994) planning for sustainabligy in irrigation CAD and INGP Jaipur.

उदारवादी अर्थव्यवस्था में पत्रकारिता के क्षेत्र में तकनीकी के बदलते आयाम: कृत्रिम बुद्धिमता (AI) के विशेष संदर्भ मे

डॉ. मनीष शर्मा

प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान भोपाल, (म0प्र0)

प्रस्तावना:-पत्रकारिता के इतिहास में तकनीकी का हमेशा से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वस्तुतः आधुनिक पत्रकारिता की नींव ही प्रिंटिंग तकनीकी की वजह से पड़ी है। तत्पश्चात् तकनीकी में कई बदलाव आये, पत्रकारिता की शैली बदली, जिससे कि पत्रकारिता की विश्वसनीयता, तत्थ्यात्मकता व गुणात्मकता में व्यापक परिवर्तन होते रहे हैं। साथ ही, समाज में भी तकनीकी परिवर्तनों के कारण आर्थिक व्यवस्था व सामाजिक समझ व सोच में परिवर्तन होने लगे, फलस्वरूप पत्रकारिता के स्वरूप, व्यापकता व संपूर्णता पर काफी प्रभाव पड़ता रहा है।

प्रस्तुत संक्षिप्त प्रबन्ध में नवउदारवादी अर्थव्यवस्था के तहत् समाज में परिवर्तित हो रहे आर्थिक सोच, उपभोक्तावादी समझ के साथ पत्रकारिता जगत में हो रहे तकनीकी परिवर्तन, विशेषतः कृत्रिम बुद्धिमता (AI) के बढ़ते अनुप्रयोगों का पत्रकारिता की मूल अवधारणा को बदलने की क्षमता व उसके धनात्मक एवं ऋणात्मक प्रभावों को समझने की कोशिश की गई है।

राजनैतिक अर्थव्यवस्था व पत्रकारिता:अर्थव्यवस्था, बाजार व तकनीकी, किसी समाज में अधिपत्य का सिद्धांत व राजनैतिक अर्थप्रणाली में नैतिक दर्शन को न सिर्फ पोषित करती है अपितु उसके संवाहन में एक प्रमुख भूमिका निभाती है और इस संवाहन में संवाहक की भूमिका प्रजातांत्रिक समाज के चैथे स्तंभ, पत्रकारिता द्वारा भी निभाई जाती है। पत्रकार ही हैं जो समाज में व्याप्त कुंठाओं, पूर्वधारणाओं, मिथक को समाप्त कर, जन जागरण, प्रजातांत्रिक सामाजिक, राजनैतिक मूल्यों को संबर्धित एवं पोषित कर राष्ट्र के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। राजनैतिक व्यवस्थाओं के साथ आर्थिक प्रणाली में परिवर्तन होना साश्वत् है व इन परिवर्तनों का प्रभाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में होता है व पत्रकारिता भी इससे अछूता नहीं रहा है।

भारत में 1991 के पश्चात् उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण का दौर चला एवं नव पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का प्रार्दभाव हुआ। नव पूँजीवादी आर्थिक नीति जिन्हें कुछ समाजशात्री, उदारवादी अर्थव्यिवस्था भी कहते हैं ने पत्रकारिता के स्वरूप को ही बदल दिया। इस व्यवस्था में पत्रकारिता मीडिया घरानो के अधीन होने लगी जिनका प्रमुख उद्देश्य एक कॉरपोरेट की तरह लाभ कमाना हो गया एवं इन घरानो में बाजार में वर्चस्व की लड़ाई होने लगी। सभी प्रमुख मीडिया घरानों ने अपनी-अपनी एक राजनैतिक दर्शन के साथ प्रमुख राजनैतिक दलों से अपने अघोषित संबंध बना देश के राजनैतिक समझ को प्रभावित करने की कोशिश करने लगे। तकनीकि (सैटेलाइट का प्रयोग, कम्प्यूटर का प्रयोग) एइस कार्य में काफी प्रभावी साधन रहा है। जिसके पास जितना धन - बल उतना ही वह तकनीकि संपन्न, फलस्वरूप देश के राजनैतिक, सामाजिक मूल्यों को परिवर्तन करने में वे उतने ही ताकतवर और प्रभावशाली होने लगे।

स्वदेशी विचार वाले लोकवादी पत्रकारिता पर अंतर्राष्ट्रीय मीडिया घरानों के अपने स्वार्थहित में कार्य करने वाले पत्रकार हावी होने लगे। ऐसे में सीमांत पत्रकारिता समूहों में वर्चस्व की लड़ाई बढ़ने लगी व जमीन को बचाने हेतु एक नई आर्थिक माडल को खोजा जाने लगा। अनततः इसका समाधान भी तकनीकि में मिला। पारम्परिक तौर पर पत्रकारिता में पूँजी, श्रम व उत्पादन के मध्य संबंध होता है पर इसमें सूचना तंत्र (Information System) के जोड़े जाने से कम लागत पर अच्छी पत्रकारिता प्रतिस्थापित होती गई। समाज का हर नागरिक संवाददाता बनने की पात्रता रखने लगा। (दूर-दराज इलाको में रहने वाला व्यक्ति भी अपने आस-पास की घटनाओं का संकलन कर संवाद निर्माता बनने लगा) फलस्वरूप एक नई सामाजिक चेतना का संचार होने लगा व राजनैतिक व्यवस्था पर इसका प्रभाव परिलक्षित होने लगा एवं तकनीकि के अनुप्रयोग में एक नई राजनैतिक अर्थव्यवस्था के तहत् पत्रकारिता को पुर्नःपरिभाषित किया जाने लगा है।

सोशल मीडिया व पत्रकारिता:-आज जन सामान्य को किसी भी सूचना व संवाद हेतु प्रिंट व इलेक्ट्रोनिक मीडिया के अतिरिक्त कई तरह के अन्य माध्यम भी उपलब्ध हैं एजिसमें सोशल मीडिया (व्हाटसअप एप, फेसबुक, टिवीटर)

अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह माध्यम तेज व सस्ती तो है ही, साथ ही हर वक्त , हर कहीं उपभोक्ता को आसानी से उपलब्ध भी हो जाती है। साथ ही इस माध्यम से उपभोक्ता एसूचना प्रसार में अपनी भागीदारी भी समझता है। वस्तुतः उपभोक्ता के समय को इस माध्यम ने कार्य समय व आराम या फुर्सत समय में दो भागो में बाँट इसकी उपयोगिता को बढ़ा दिया है। अब पेशेवर संवाद दाता/पत्रकार को उपभोक्ता द्वारा प्रतिस्थापित भी किया जाने लगा है। "ऐसे पत्रकारिता को लोक पत्रकारिता या फिर यूजर जेनरेटेड कान्टेंट (UGC) कहा जाता है।" (ब्लैक, 1997)(FICCI-KPMG, 2015) के अनुसार आज भारतवर्ष में 100 से अधिक न्यूज चैनल, 94067 समाचार पत्र व 24 करोड़ 40 लाख के करीब इन्टरनेट उपभोक्ता हैं। यह उपभोक्ताओं के बाजार के न सिर्फ विशालता को दर्शाता है अपितु उनके तकनीकि मैत्रीपूर्ण (Technical friendly) होने को भी परिलक्षित करता है। ऐसे में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सोशल मीडिया के माध्यम से पत्रकारिता व सूचनाएं बिना किसी भेदभाव, वैमनस्यता या सटिक जानकारी के साथ की जा रही है या नहींघ् अगर नहीं तो इसके परिणाम दरगामी होगें।

पत्रकारिता में तकनीकि परिवर्तन के बदलते आयाम:-ज्ञान के अर्थशास्त्र में मीडिया व समाचार पत्र एक स्वाभाविक पक्ष हमेशा से ही रहे हैं। यह तकनीकि परिवर्तन ही है ,जो भारत के एक प्रतिष्ठित समाचार समूह "जागरण प्रकाशन, जो अपने प्रकाशन उत्पादन को 15 राज्यों के 5 विभिन्न भाषाओं के 75 अंको व लगभग 250 उप-प्रकाशनों के साथ उपभोक्ताओं को उपलब्ध करा रहा है एवं यह लगभग सभी इंटरनेट न्यूज पोर्टल पर उपलब्ध है" (थामस, 2010)

वर्तमान में अधिकांश मीडिया के अपने-अपने न्यूज पोर्टल व वेब पोर्टल है जिसके तहत सूचनाओं व समाचारों का तुरंत ही प्रसारण हो जाता है, भले ही वह कितना ही क्षण भंगुर संवाद या सूचना ही क्यों न हो और विशेष बात यह है कि उपभोक्ताओं के मध्य यह एक लोकप्रिय त्रंत्र के तौर पर उभर रहा है, (वेब-1995)। डिजिटल तकनीकि समावेशी पत्रकारिता अब पत्रकारिता जगत का अपरिहार्य हिस्सा बन गया है।

एलॉगरिदम पत्रकारिता:-पत्रकारिता के क्षेत्र में यह एक नई विधा है जहाँ संमक तकनीकि (Data technology) को पत्रकारिता के साथ डिजिटल प्रोसेसिंग के माध्यम से संपादित किया जाता है, जिसकी अगली कड़ी के रूप में कृत्रिम बुद्धिमता तकनीकि का अनुप्रयोग पत्रकारिता में होने लगा है। ऐसी तकनीकों के प्रयोग से समय व लागत में कमी तो होती ही है व समाचार या संवाद का प्रसारण भी त्वरित होने लगता है, पर रोजगार पर इसका असर विपरीत होता है, जो एक विमर्श का चिन्तनीय विषय है।

कृत्रिम बुद्धिमता (Artificial Intelligence):-कृत्रिम बुद्धिमताए कम्प्यूटर जनित एक ऐसा सिमुलेशन (Simulation) है,(सामान्य अर्थ में, स्थिति व क्रिया की नकल करने की प्रक्रिया) जिससे कि मशीनों को एक सीमा तक मानव बुद्धिमता प्रदान की जा सकती है ताकि मशीनें मानव की भांति सोच सकें व कार्य कर सकें। पत्रकारिता तकनीकि जगत में कृत्रिम बुद्धिमता अब एक अपरिहार्य अंग बनता जा रहा है, जिसकी कल्पना कई वर्षो पहले 1965 (सिमोन एच.ए., 1965) में ही हो गई थी, जो आज स्वास्थ्य, विज्ञापन, अर्थशास्त्र व वित्त, वीड़ियों गेम्स, सेना, पत्रकारिता व मीड़िया एवं प्रसारण के कई विभागों में अपनी पहुँच बनाते हुए महत्वपूर्ण कार्य जैसे शब्द व चित्र पहचानने (speech and facial recognition), वस्तुस्थिति को समझने, नियोजन करने, समस्या का समाधान करने जैसे कार्यो को निष्पादित करने लगा है।

पत्रकारिता एवं कृत्रिम बुद्धिमता:-आज के जगत में पत्रकारिता न सिर्फ इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (2019) में दी गई परिभाषा के अनुसार "पत्रकारिता समाचारों का एकत्रीकरण, निमार्ण व प्रिंट, इलेक्ट्रोनिक व डिजिटल मीडिया, ब्लाग्स, वेबसाइट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से वितरण" है बल्कि उससे कहीं अधिक आगे बढ़ गया है। पत्रकारिता तकनीकि रूप से गतिशील क्षेत्र है। कुछ विद्वानों के अनुसार "प्रिंट मीड़िया अपनी लोकप्रियता खोती जा रही है एवं इससे स्थान पर सोशल मीड़िया यथा ब्लाग्स, व्हाट्अप एप, फेसबुक इत्यादि समाचारों के संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं" (पाटनेकर एस., 2015) व ऐसे तकनीकि परिवर्तन पत्रकारिता के अस्तित्व को रचनात्मकता से व्यवसाय की ओर ढ़केल रहा है जिसके अपने कुछ लाभ व हानियाँ भी हैं। चीन की राष्ट्रीय समाचार ऐजेन्सी जिनहुआ (Xinhua) ने जब पहली कृत्रिम बुद्धिमता पर आधारित समाचार प्रस्तुतकर्ता (एंकर) को प्रस्तुत किया तब से ही पूरी दुनिया ने पत्रकारिता के इस अगले स्तर के तकनीकि को समझा (कुओ एल, 2018)। विश्व के लगभग सभी मीड़िया घराने यथा द न्यूयार्क टाईम्स, द रूयूटू, द वाशिंगटन पोस्ट, द गार्डियन, द बी.बी.सी. व अन्य ने इस तकनीकि का प्रयोग समाचारों की बढ़ती तादादों को सम्हालने, सहेजने, छाँटने एवं उपयोगकर्ताओं पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने में करते हुए आँकड़ों व तथ्यों को समाचार में बदलने में करने लगे हैं।

भारत में अभी तक इस तकनीकि का उपयोग न के बराबर ही किया जा रहा है। हाँलाकि भारत के द टाइम्स ऑफ इन्डिया, द हिन्दू, इंडिया टूडे व द इंडियन एक्सप्रेस जैसे मीड़िया समूह इस तकनीकी के समुचित उपयोग हेतु अग्रसर हैं। यद्यपि वैकल्पिक डिजिटल पत्रकारिता माध्यम यथा द क्विंट, द वायर, द फायरपोस्ट जैसे कुछ समाचार पोर्टल कृत्रिम बुद्धिमता (AI) युक्त तकनीकि का समुचित प्रयोग करना शुरू कर दिया है व साथ ही सामुदायिक पत्रकारिता (community media) जैसे नये माध्यम भी उभर कर आ रहे हैं , जो मौन संवेदनाओं को निडर हो मुखर करने में अभूतपूर्व योगदान प्रदान कर रहे हैं। यह मंच व्यवसाय प्रेरित मुख्यधारा की पत्रकारिता से भिन्न होने की वजह से अपने गुण-दोषों के साथ तेजी से फैल रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमता तकनीकि पत्रकारिता जगत हेतु वरदान या अभिश्राप ?- कृत्रिम बुद्धिमता (AI) के प्रयोग के कई लाभ हैं, पहला तो यह है कि यह तकनीकि कई स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को त्वरित गति से एक से दूसरे प्रारूप में परिवर्तित कर पाता हैए जैसे बोले गए शब्दों को शब्दों में लिखनी, लिखे गए शब्दों को औडियो व वीडियों में परिवर्तित करने की क्षमता, इन सबकी वजह से, इस तकनीकि को पत्रकारिता जगत में वरदान तुल्य माना जा रहा है। साथ ही, सूचनाओं की अधिकता की स्थिति में उसकी विश्वसनीयता एवं श्रेष्ठता का विश्लेषण सटीक ढ़ग से कर पाता है। "यही नही (AI) के माध्यम से भ्रमित व अविश्वसनीय समाचारों व सूचनाओं की सत्यता की जाँच भी त्वरित गति से किया जा सकता है।" (ग्रेव्स एल, 2018)कृत्रिम बुद्धिमता (AI) तकनीकि बिना किसी मानव पत्रकार के मीडिया, अपने-अपने समाचार दर्शन (News Philosophy) पर आधारित समाचारों-सूचनाओं का एकत्रीकरण, पृथकीकरण, संयोजन कर उन सूचनाओं व संवादों को त्वरित गति से संपादित कर प्रसारण योग्य बना सकता है। बड़े उपभोक्ता बाजार को केन्द्र में रखते हुए इस तकनीकि का सर्वोत्तम प्रयोग सूचनाओं व समाचारों का एक साथ कई भाषाओं में संप्रसारण में भी किया जाता है। कई विशेषज्ञों का मानना है कि इस तकनीकि का प्रयोग राष्ट्रीय सुरक्षा के दृष्टि से भी किया जा सकता है। ऐसी जानकारियां कालांतर में आती रहीं हैं कि भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में चुनावो व अन्य ऐसे ही महत्वपूर्ण राष्ट्रीय महत्व के अवसरों पर विदेशी ताकतें, भ्रमित या असत्य सूचनाओं को पत्रकारिता के माध्यम से अपने निहित स्वार्थो हेतु करती है, जिससे पूरी प्रणाली दोषपूर्ण हो जाती है। इस तरह के प्रोपेगेण्डा व छल योजना सेए कृत्रिम बुद्धिमता (AI) राष्ट्र को एक मजबूत सुरक्षा प्रदान कराती है। चीन जैसे देश इस तकनीक का उपयोग राष्ट्रद्रोह, राष्ट्रहित से मतभेद रखने वाली आपत्तिपूर्ण सूचनाओं व संदेशों को रोकने में पहले से ही कर रहे हैं। भारत के शासन तंत्र को भी ऐसी तकनीकि का उपयोग राष्ट्र के प्रति दुष्प्रचार के विरोध में करना चाहिए।

बढ़ते उदारीकरण, वैश्वीकरण के दौर में एक ओर जहाँ विनियोग के क्षेत्र में निवेश हुए हैं वहीं दूसरी ओर पत्रकारिता व मीड़िया भी इससे अछुता नहीं रहा है। बढ़ते बाजार में अपनी पहुँच बनाने के लिए प्रत्येक मीड़िया हाउस नित नए तकनीकि का प्रयोग कर रहा है , जिसमें कृत्रिम बुद्धिमता (AI) की माँग लगातार बढ़ती ही जा रही है। हालांकि कृत्रिम बुद्धिमता का प्रयोग पत्रकारिता के क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है, पर यह भी कमियों से अछुता नहीं है। सबसे पहले यह पत्रकारिता के नैतिकता के सिद्धांत को घात पहुँचाता है। दूसरा ऐसी तकनीकि जनित समाचारों में रचनात्मकता का अभाव होता है एवं यह सत्य भी है कि मशीन कभी भी मानव क्षमताओं को प्रतिस्थापित नहीं कर पाएगा, कम-से-कम निकट वर्तमान में तो नहीं। पत्रकारिता के आवश्यक तत्व यथा रचनात्मकता, विनोद (humor) , उपभोक्ता केन्द्रित सृजन, आलोचनात्मकता इत्यादि के अभाव में कृत्रिम

बुद्धिमता (AI) जनित समाचार दीर्घकाल में पाठकों/दर्शकों में समाचारों के प्रति उदासीनता का भाव पैदा कर सकते हैं। पत्रकार भी ऐसे समाचारों में अपनी घटती भूमिका व घटते श्रेय को देख इस व्यवसाय में अरूचि दिखाने लगेगें, जो भविष्य के पत्रकारिता जगत के लिए एक खतरे की घंटी सी दिखती है।

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि , एक अध्ययन के अनुसार 78% उद्योग पत्रकारिता के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमता (AI) पर निवेश को राजी हो गए हैं (न्यूमोन एन, 2019)। उपरोक्त तथ्य इस तकनीकि की महता को पत्रकारिता के क्षेत्र में दर्शाता है, पर सबसे महत्वपूर्ण तथ्य कृत्रिम बुद्धिमता जनित समाचारों के कानूनी वैधता की है। ऐसे समाचारों को कितना, कैसे मान्यता दी जाए एवं कानूनी चुनौतियों की स्थिति में इससे कैसे निपटना हैघ् इनके उत्तर अभी भी भविष्य के गर्भ में हैं। पर आने वाले दिनों में निश्चित रूप से इन चुनौतियों का सामना करते हुए पत्रकारिता में कृत्रिम बुद्धिमता का अनुप्रयोग बढ़ने वाला है।

और अंत में:-

पत्रकारिता के क्षेत्र में पत्रकारों पर अनियंत्रित ढंग से मानहानि के मामलों का दर्ज होना, सूचना के अधिकार का मनमानी प्रयोग, भ्रामक चित्रों एवं तथ्यों का प्रयोग, पत्रकारों पर अनैतिक दवाब और समाचारों का राजनैतिक रूप से मनोरंजक बनाने की होड ने विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में पत्रकारिता को दुष्क्रियशील बनाते जा रहा है। ऐसी स्थिति में कृत्रिम बुद्धिमता के प्रयोग से उत्पन्न समाचारों को एक सामाजिक, राजनैतिक जागरण हेतु आंदोलन को संगठित करने में महत्वपूर्ण हथियार के तौर पर प्रयोग किया जा सकता है। पत्रकारिता में कृत्रिम बुद्धिमता का प्रयोग समाचार व सूचना के जगत में मिथक व सत्यता के पहचानने में न सिर्फ पत्रकारों को बल्कि समाज को भी मदद कर सकती है व समाचारों एवं सूचनाओं को दुनिया के साथ जोड़ते हुए प्रायोगिक सच को परोस सकती है। बड़े पैमाने पर कृत्रिम बुद्धिमता (AI) जनित संवाद या समाचार का सृजन संवाद/समाचारों को घर-घर कम कीमत पर उपलब्ध करा अपने चैथे स्तम्भ होने की भूमिका बखूबी निभा सकता है।

****

संदर्भ सूची:-

1.न्यूमेंन एन. (2019), जर्नेलिज्म, मीड़िया एंड टेक्नालजी ट्रेंड्स एंड प्रॉडक्शन , 2019, डिजिटल न्यूज प्रोजेक्ट

2.ब्लैकः जे (1997), "मिक्सड न्यूजः द पब्लिक सिविक/कम्यूनिटेरियन जर्नलिज्म डिबेट" (पुस्तक)।

3.थामस स. (2010), स्मार्टर जर्नलिज्म द डार्क साइड ऑफ आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस इन द न्यूज https://en.ejo.ch/digital-news/smarter-journalism-the-dark-side-of-artificial-intelligence-in-the-newsroom से डाउनलोड किया गया।

4.वेब आर ई (1995),कम्यूनिकेशन एंड ट्रासफोरमेशन ऑफ इक्नोमिक्सः ऐरोज इन इनफोर्मल पब्लिक।

5.सिमोन एच.ए. (1965), द सेप ऑफ आटोमेशन फार मेन एण्ड मैनेजमेंट, हार्पर एण्ड रो, न्यूयार्क।

6.इन्साइक्लोपिडिया (2019), जर्नलिज्म, मई 05, 2020 को https://www.britannica.com/topic/journalism से डाउनलोड किया गया।

7.पाटनकर एस (2015), फेसबुक एप प्लेटफार्म फार न्यूज डिसमिनेशन, पासिबिलिटिज ऑफ रिसर्च आन फेसबुक इन इंडियन कान्टेक्सट, अमेटी जनरल ऑफ मीड़िया एण्ड कम्यूनिकेशन 6(2), 49-56।

8.कूओ एल (2018), बल्ड फस्ट ए आई न्यूज एंकर अनवेल्ड इन चाईना, द गार्डियन, मई 08, 2020 को https://www.theguardian.com/world/2018/nov/09/worlds-first-ai-n e w s-anchor-unveiled-in-china से डाउनलोड किया गया।

9.ग्रेब्स एल (2018), अण्डरस्टैंडिंग प्रोमिस एंड लिमिट्स ऑफ आटो मेटेड फैक्ट चैकिंग, 12 मई 2020 को https://reuterinstitute.politics.ox.ac.uk/sites/default /files/2018-02/graves-factsheet-180226/20final.pdf से डाउनलोड किया गया।

शिक्षा एवं व्यापक शिक्षा में नवाचार: भूमिका एवं महत्व

डॉ.राजकुमारी गोला

सहायक आचार्य,शिक्षा विभाग

आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो मानव के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है। एक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में शिक्षा और शिक्षक दोनों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक कहावत है कि 'काला अक्षर भैंस बराबर', बस हमें इसी को नकारते हुए अक्षरों का ज्ञान देना जरूरी है और इसके ज्ञान से वहीं कई गलत कार्यो को रोका जा सकता है। आज के भ्रष्टाचार, शोषण एवं आतंकवाद की दुनिया में हमें शिक्षा में नवीन विचारों को लाना अनिवार्य हो गया है। आज शिक्षा का स्तर गिरता ही जा रहा है। शिक्षा मात्र रुपए कमाने का एक माध्यम बन कर रह गयी है, इसीलिए आज की शिक्षा में क्या-क्या विषय होनी चाहिए इस पर एक बार फिर से हम सबको सोचना है।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ : 'शिक्षा' शब्द को कई अर्थों में प्रयुक्त करते हैं। शिक्षा शब्द की उत्पत्ति 'शिक्ष' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है सीखना, विद्या प्राप्त करना या ज्ञान ग्रहण करना। वहीं 'विद्या' शब्द का प्रयोग भी शिक्षा के अर्थ में लिया जाता है।' विद्या' शब्द की उत्पत्ति 'विद' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है जानने वाला अर्थात ज्ञान के चरम सीमा तक पहुंचने वाला। विद्या से तात्पर्य किसी विशिष्ट ज्ञान में ही पूर्णता या दक्षता प्राप्त करना है। जबकि शिक्षा से तात्पर्य सर्वागींण विकास से है।

शिक्षा की परिभाषाए:- शिक्षा के अर्थ को और अधिक समझने के लिए विभिन्न परिभाषओं का अध्ययन करना जरूरी हो जाता है। जिनमें प्रमुख निम्नांकित है-

महात्मा गांधी जी के अनुसार: "शिक्षा से मेरा तात्पर्य व्यक्ति के शरीर मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वोत्तम विकास से है।"

स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार: "मानव की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है।"

अतः कह सकते है कि समग्र रूप से विकास करना अर्थात संस्कार, नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, खेलकूद, कला, संगीत, नृत्य, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, निस्वार्थ सेवा, मनोभाव का विकास आदि की शिक्षा है। इतिहास हमें यह दिखाता है कि ऐसे महान व्यक्तित्व हमारे देश में रहे है जो इन सब में परिपक्व थे। और यह भी देखने को मिलता है कि अनेक राजाओं के दरबार में बड़े-बड़े विद्वानों को स्थान मिला करता था। और वर्तमान की तरह उस समय कोई व्यक्तित्व विकास के प्रशिक्षण संस्थान या महाविद्यालय नहीं थे और न ही बी.एड संस्थान या महाविद्यालय थे और न ही पी-एच.डी. के थे लेकिन फिर भी इनमें ज्ञान की कोई कमी नहीं थी इसका श्रेय संस्कार को जाता है और संस्कार परिवार, समाज से ही आते है। यह समाज व्यक्तियों के मिलने से बनता है इसीलिए व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना अत्यावश्यक है। और आज देख रहे है कि वर्तमान की शिक्षा में इसी की कमी है, यहां बच्चों को अपनी रुचि के अनुसार पढ़ने के लिए सीखने के लिए अवसर प्रदान नहीं किये जा रहे है बल्कि बच्चों पर परिवार और विद्यालय एवं महाविद्यालयों का अधिक से अधिक अंक लेकर उत्तीर्ण होने का दबाव रहता है। आज शिक्षा में नवाचार लाने की बहुत आवश्यकता है तो सबसे पहले हमें बच्चों को दस वर्ष पूर्ण होते ही उनके रूचि के अनुसार विषयों को चुनकर पढ़ने की प्रेरणा, सहकार देनी चाहिए और ऐसी शिक्षण व्यवस्था लानी चाहिए, जिसमें बच्चो स्वंय पढ़ने के लिए प्रेरित हो।

आज का हमारा समाज प्रगतिशील समाज है इसलिए आधुनिक युग में शिक्षा को अनेक अर्थों में लिया जा रहा है- जैसे व्यक्तित्व का विकास, नेतृत्व का विकास, मानवीय भावना का विकास, तार्किक शक्ति का विकास, व्यवसायिक सफलता का विकास, प्रजातांत्रिक नागरिकता का विकास, सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता, सामाजिक परिवर्तन के प्रति दृष्टिकोण, आध्यात्मिक मूल्यों का विकास आदि। और यह देखने को मिल रहा है कि उपरोक्त सभी का विकास आज की शिक्षा व्यवस्थ द्वारा ही नहीं है। यदि होता तो भ्रष्ट राजकीय, भ्रष्ट नेता, भ्रष्टाचार, लैंगिक भेदभाव, शोषण, आतंकवाद, जातिवाद आदि समाज एवं मानव विरोधी गतिविधियॉ नहीं बढ रही होंती हैं। एक समय था जब बच्चों को वीरता, नैतिक मूल्य, सेवा,

भक्ति, मानवीयता से संबंधित कहानियों को सुनाया जाता था, परन्तु आज कंप्यूटर, फेसबुक, व्हाट्सएप इंस्टाग्राम, यू-ट्यूब आदि से आकर्षित होने के कारण मानसिक शक्ति, शारीरिक विकास गिरता ही जा रहा हैयदि आत हम बच्चों को अधिक से अधिक खेल-कूद, संगीत, नृत्य, कला आदि कार्यो में व्यस्त रखते हैं तो उन्हें इन्हें देखने के लिए समय नहीं मिलेगा, परन्तु आज अभिभावकों के पास में समय की कमी है इसलिए वह हाथ में मोबाइल थमाकर बच्चों का सर्वांगीण विकास कर रहे हैं। किसी भी विषय को लिखने के लिए जानकारी का होना आवश्यक है, परन्तु आज छात्र स्वयं के ज्ञान से लिखने में असमर्थ है, उन्हें आज सब कुछ रेडीमेड चाहिए। वे सिर्फ जो शिक्षक लिखवा देते हैं उतना ही पढ़ कर लिखते और समझते हैं। पुस्तकालय जाकर अधिक से अधिक पुस्तक पढ़ने की इच्छा या आदत आज के छात्रों में बहुत कम दिखाई दे रही है। उनके पास जिम, पिक्चर, वीडियो गेम के लिए समय है लेकिन अच्छी-अच्छी पुस्तकें, महान व्यक्तियों के चरित्र जानने, पढ़ने की उत्सुकता या इच्छा नहीं रही है। अगर हम अपने पूर्वजों की बात करें तो यह पायेगें कि उन लोगो की चार-पांच भाषाओं में पकड़ रहती थी। जैसे कबीर, सूर, तुलसी, महादेवी वर्मा, रविंद्र नाथ टैगोर, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, चाणक्य, अनेक विद्वान, लेखक है जो बंगाली, हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं में अच्छी पकड़ रखते थे। आज भी इनके साहित्य हम सबको प्रेरित करते है।

वर्तमान समय पढाई में एक और कमी है और वो है व्याकरण, शब्द रचना वाक्य रचना का संपूर्ण ज्ञान न कराना। आज हम जिस भाषा में लिखते हैं, बात करते हैं, पढ़ते हैं, उसका मूल जोकि व्याकरण है उसी की जानकारी हमें नहीं रहती है। यही एक मूल कारण है जिससे बच्चे लिख नहीं पाते हैं, बच्चों में शब्द भंडार की कमी है और शब्द समूह, शुद्ध लिखावट, शुद्ध बोलने के लिए अधिक से अधिक पुस्तकों को पढना अनिवार्य है। आज की पढ़ाई में मात्र लिंग बदलिए, वचन बदलिए, काल बदलिए आदि छोड़कर अन्य व्याकरण की जानकारी दी नहीं जाती हैं। अगर प्राथमिक स्तर में पहली कक्षा से लेकर आठवीं कक्षा तक बच्चों को मातृभाषा, राष्ट्रभाषा के साथ-साथ संस्कृत एवं अंग्रेजी व्याकरण की पूरी जानकारी देने के साथ-साथ शब्द जोड़, वाक्य रचना, शब्द भेद, संधि, समास, अलंकार आदि को सिखाया जाये तो बच्चे बहुत सुंदर लिख सकेगें, अपने विचारों को व्यक्त कर सकेगें उस स्थिति में हमें उन पर दबाव डालने की कोई जरूरत नहीं पड़गी। यदि बच्चे स्वयं विषय को पढकर, समझकर लिखते है तो उस स्थिति में उनके अनुत्तीर्ण होने की संभावनाएं कम रहती है। इसीलिए मेरा विचार है कि बच्चों को पहली कक्षा से लेकर आठवीं कक्षा तक व्याकरण में सहज बना देना चाहिए।

आज यह भी देखने में आ रहा है कि कृषि करने की भी रुचि बहुत कम हो गई है इसीलिए कृषि का महत्व बच्चों का बताना जरूरी है। हर कोई बड़े-बड़े शहर जाकर ए0सी0 में बैठ कर काम करना चाहता है परन्तु बिना अनाज का उत्पान किये हम ए0सी0 में भी बैठ नहीं सकते। इसीलिए अब कृषि की भी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर ज्ञान देने की जरूरत है।

आलेख के अंत में मैं इतना ही कहना चाहूंगी कि आज की शिक्षा व्यवस्था में सत्य, अहिंसा, सदभाव, प्रेम के मार्ग को अपनाने की प्रेरणा, नैतिक मूल्यों का विकास, सामाजिक मूल्यों का विकास, कला, संगीत, नृत्य, कृषि, आदि के ज्ञान के साथ- साथ व्यावहारिक गुण इन सभी के विषय में प्राथमिक स्तर से ही अधिक से अधिक जानकारी प्रदान करने की आवश्यकता है। इसी प्रक्रिया से ही हम सभी सुंदर, स्वस्थ समाज के निर्माण कर सकते है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. अरोड़ा सुधा, आम औरत और जिन्दा सवाल, वही, पृ0सं0-98
2. गुप्ता रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, वही, पृ0 सं0-31, 102, 110
3. सिन्हा मृदुला, मात्र देह नहीं है औरत, वही, पृ0 सं0-146, 174
4. पुष्पा मैत्रेयी, खुली खिड़कियाँ, वही, पृ0 सं0-33, 65
5. शर्मा क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, वही, पृ0 सं0-39, 43
6. शर्मा नासिरा, औरत के लिए औरत, वही, पृ0 सं0-25, 73
7. दूबे, श्यामाचरण, समय और संस्कृति।
8. कुमार, कृष्ण, शांति का समर।
9. टैगोर, रविन्द्रनाथ, माइंडस् विथआउट फियर।

महात्मा ज्योतिवारव फुले के विचार

भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास तब तक नहीं होगा, जब तक खान-पान एवं वैवाहिक सम्बन्धों पर जातीय बंधन बने रहेंगे. सभी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है और सभी मनुष्यों में नारी श्रेष्ठ है. स्त्री और पुरुष जन्म से ही स्वतंत्र है।"

" विद्या बिना गई मति, मति बिन गई गति,
गति बिन गई नीति, नीति बिन गया वित्त,
वित्त बिन चरमराए शूद्र,
एक अविद्या ने किये कितने अनर्थ।"

"विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड, धार्मिक अनुष्ठान भेलीभली जनता को लूटने के लिए बनाये गये है। यह एक पुश्तैनी धार्मिक लूट है। जाति और धर्म का भ्रमजाल अन्याय और शोषण की प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए फैलाया गया है।"

"मानवता सर्वश्रेष्ठ है। जात-पात, वर्ण-भेद और ऊंच-नीच की दीवारें सब ब्राह्मणों की देन है, जो उन्होंने अपने लाभ के लिए खड़ी की है।"

"स्वतंत्रता और अवसर की समानता हर मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता है। स्वतंत्रता के अभाव में किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता।"

"किसी भी व्यक्ति को सामाजिक समानता, राजनीतिक भागीदारी, धार्मिक-आर्थिक स्वतंत्रता और पढ़ने-लिखने से वंचित करना और उनका शारीरिक एवं मानसिक रुप से धर्म के आधार पर शोषण करना या शोषण को धर्म मानना क्रूरता और निर्दयता है।"

****

सामाजिक विकास में दिव्यांगजन

प्रेमकुमार नाईक
शोधार्थी (पीएच. डी. समाज कार्य)
महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र)मो- 9960331541

सारांश :-प्रस्तुत आलेख में अब तक दिव्यांगजन को आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी बनाने के लिए क्या प्रयास किए गये हैं, दिव्यांगजन के लिए समाज में क्या सुविधा है, भूतकाल में दिव्यांगजन की क्या स्थिति रही है? वर्तमान में दिव्यांगजन अपने अधिकारों के प्रति कितने सचेत और जागरूक हैं। वर्तमान परिस्थितियों में दिव्यांग वर्ग की सामाजिक स्थिति कैसी है, सार्वजनिक स्थानों पर दिव्यांगजनों की पहुँच कितनी है? दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016 के बाद दिव्यांगजनों की स्थितियों में क्या सुधार हुआ है। इससे संबंधित जानकारी प्राप्त कर, दिव्यांग अधिकार अधिनीयम 2016 को जानना और साथ ही सामाजिक विकास में दिव्यांगजन कहाँ है। इसका अध्ययन कर जानने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :- सामाजिक, विकास, दिव्यांगजन

आलेख:-दिव्यांग वर्ग समाज का ही एक अंग है, जिसे आज भी ज्यादातर जगहों पर समाज में अनावश्यक बोझ समझ कर उपेक्षा की जाती है। दिव्यांगता केवल दिव्यांग व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि उसके घर-परिवार, समाज यहाँ तक कि पूरे देश पर इसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है। समाजवादी विचारधारा के अनुसार यह माना जाता है कि समाज का पूर्ण व वास्तविक विकास तभी माना जा सकता है, जब इसके सभी हिस्सों का विकास हो, चाहे वे दलित, पिछड़े अथवा दिव्यांग वर्ग ही क्यों न हों। आज हमारा समाज व सरकार मिलकर अपने उत्तरदायित्व को बखूबी निभा रहे हैं। दिव्यांगों के लिए तरह -तरह के कल्याणकारी योजनाएं एवं कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों से समाज में जागरूकता आई है और दिव्यांगजन को कहीं न कहीं इसका लाभ हुआ है।

कहा जाता है कि प्रजातंत्र तभी सफल हो सकता है जब समाज के हर वर्ग को विकास का समुचित लाभ मिल सके। यदि ऐसा नहीं होता है तो प्रजातंत्र विफल है और विकास व्यर्थ है। आज हम देखते हैं कि निजी बसों में अगर कोई दिव्यांग व्यक्ति चढ़ता है तो न उसे बसों में चढ़ने के लिए कोई सहूलियत मिलती है और न ही उसका सरकारी पास काम आता है। दिव्यांग को मिले पास भी कागज के टुकडे मात्र रह गए हैं। दिल्ली सहित लगभग हर राज्य में सरकारी बसों की संख्या कम हो रही है व अन्य प्रकार के वाहनों की तादाद बढ़ रही है। कहने को विकास हो रहा है पर दिव्यांग को इसका लाभ नहीं मिल पता है। देश में गगनचुंबी इमारतें बन रही हैं। अनेक प्रकार के सुंदर बाजार, दफ्तर व दूसरे सुविधा केंद्र तैयार हो रहे हैं। यदि इनका निर्माण करते समय दिव्यांग की गतिशीलता पर ध्यान रखा जाए अर्थात प्रवेश स्थल पर रैंप, रेलिंग, व्हीलचेयर मोड़ने के लिए पर्याप्त स्थान, शौचालयों में आवश्यक परिवर्तन, फ्लोर संकेत देने वाले उपकरण आदि लगा दिए जाएँ तो लागत में आधा प्रतिशत से ज्यादा वृद्धि नहीं होगी पर दिव्यांगजनों के लिए अनुकूल सुविधा हो जायेगी। यदि ऐसा हो तो इन क्षेत्रों में हो रहे तकनीकी विकास का लाभ दिव्यांग वर्ग के लिए भी उपलब्ध हो जायेगा। अब तक देखा गया है कि दिव्यांगों के प्रति आम नागरिकों का रवैया आमतौर पर सहानुभूति-पूर्वक रहा है। इस सहानुभूति को विस्तार देने की आवश्यकता है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि दिव्यांग व्यक्ति अपने आप को अनावश्यक रूप से दयनीय न मानें तथा उतनी ही सहायता लें जितनी की आवश्यक है। यदि सहायता मांगने की स्थिति बढ़ेगी तो समाज में उपेक्षा का वातावरण बढ़ेगा। इसके अलावा भारत सहित अनेक देशों में स्वयंसेवी संस्थाएं बड़े पैमाने पर कार्य कर रही हैं। हालांकि उनके कार्य करने की इच्छा पर संदेह नहीं किया जा सकता, पर इनकी अपनी सीमाएं हैं। इनकी कार्य प्रणाली में भी परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। सिर्फ कैलीपर या बैसाखी बांटने के बजाए उन्हें ऐसे काम करने चाहिए ताकि दिव्यांग व्यक्ति सहायता परक समाज में आगे बढ़ सकें। अत: इस प्रकार से दिव्यांगों में आत्मनिर्भरता आयेगी और सही मायने में उसका लाभ हो सकेगा। शारीरिक दृष्टि से दिव्यांग व्यक्ति वे हैं जिनकी शारीरिक क्षमता का ह्रास हो गया है, शरीर विकृत हो गया है, या किसी अंग विशेष का ह्रास हो गया है, अंग में शून्यता हो गई है। ऐसे व्यक्ति या तो किसी बीमारी के कारण या दुर्घटना के कारण सामान्य कार्य करने में सक्षम नही होते हैं जिस कारण वे सदैव निराशा, दुःखी एंव पराश्रित रहते हैं। शारीरिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों को चिकित्सा सुविधा प्रदान करना महत्वपूर्ण है। परन्तु यह सम्पूर्ण पूनर्स्थापन प्रक्रिया का केवल एक अंग है। सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समायोजन प्राप्त करना भी महत्वपूर्ण कार्य है। दिव्यांग व्यक्ति को न केवल चिकित्सकीय सहायता की आवश्यकता होती है बल्कि उसकी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर भी दबाव पडता है, जिसके कारण वह सदैव अस्त-व्यस्त रहते हैं।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि:- किसी काल में दिव्यांगजन की स्थिति इतनी भयावह थी कि अनेक देशों में दिव्यांग व्यक्तियों को जीने तक का अधिकार नही था। यूनान, स्पार्टा आदि देशों में नेत्रहीनों तथा मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों को जल में डुबाकर मार दिया जाता था। स्पेन में भी इस काम के लिए अंधे कुएं बनाए गए थे। भारत देश में मार देने का प्रचलन तो नहीं था परन्तु भारत में भी दिव्यांगजनों की स्थिति बहुत खराब मानी जाती थी। सदियों तक दिव्यांग वर्ग समाज का उपेक्षित अंग रहा है। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की क्राँति हुई तो समता, स्वतंत्रता और भाईचारे का संदेश उभरकर आया। जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आजाद हुआ तो वहां भी मानवाधिकारों को औपचारिक रूप से स्वीकार किया गया। इसके बाद उन्नीसवीं सदी में तमाम पराधीन देश एक के बाद एक आजाद होने लगे और हर देश में नागरिकों को अनेक प्रकार के अधिकार मिलने लगे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के जरिये इसे व्यवहारिक रूप भी दिया गया। प्रारंभ में घोषित मानवाधिकारों में दिव्यांगों के बारे मे अलग से प्रावधान तो नहीं था पर उन्हें किसी अधिकार से वंचित भी नहीं किया गया जो अधिकार आम आदमी को मिले थे वही अधिकार दिव्यांग व्यक्ति पर भी लागू थे। पूर्व में भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी दिव्यांगों को विशेष अधिकार तो नहीं दिये पर सामान्य नागरिकों को मिलने वाले अधिकारों से वंचित भी नहीं रखा।

आजादी के बाद दिव्यांग लोगों के लिए 4 विशेष कानून बने और संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी दिव्यांगों को दिए जाने वाले अधिकारों की घोषणा की। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने जब मानवाधिकार घोषणा पत्र जारी किया तब विश्व में दिव्यांगों के प्रति समझ अत्यंत कम थी। इस लिए दिव्यांग व्यक्ति का इसमें कम से कम जिक्र है। फिर भी इसकी धारा 1 से 30 तक जितनी भी धाराएं हैं जिनमें सामान्य व्यक्ति के लिए अधिकार लागू थे वही अधिकार दिव्यांग व्यक्ति के लिए भी लागू थे। दिव्यांगजन से संबंधित समस्या का हल निकालने के लिए समग्र प्रयासों का सिलसिला दो शताब्दियों पूर्व प्रारंभ हुआ था। 1960 के दशक के अंत मे दिव्यांगों के संगठनों ने नए सिरे से दिव्यांगों की समस्या को सुलझाने के लिए नीति तैयार करने का कार्य प्रारंभ किया। इसमें दिव्यांग द्वारा अनुभव की जाने वाली दिक्कतों, भवन आदि के डिजाइन में परिवर्तन तथा सामान्य जनता के रवैये में परिवर्तन आदि पर विशेष जोर दिया गया है। 1981 में संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा अंतरराष्ट्रीय दिव्यांग वर्ष मनाया गया। इसके बाद 1982 में दिव्यांगों के लिए प्रारंभ होने वाला, दशक मनाया गया। इसके साथ ही दिव्यांग बचाव, पुनर्वास, समान अवसर आदि की परिभाषा भी स्पष्ट कर दी गई।

दिव्यांग वर्ग के प्रति गांधीजी के विचार:- कराची कांग्रेस अधिवेशन से पहले ही गांधीजी ने अपने अखबार ''यँग इंडिया'' 10 मई 1930, में लिखा, ''मेरे सपनों के स्वराज में धर्म या मूल के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा, इसमें न तो विद्वानों का एकाधिकार होगा और न ही धनवानों का। स्वराज सभी के लिए एक जैसा होगा और इसमें गरीब, मेहनकश और विकलांग व्यक्ति भी एक सा जीवन बिता सकेंगे।'' गांधीजी ने मानवाधिकार प्राप्ति के लिए बिल्कुल

नया तरीका अख्तियार किया और हिंसक तरीकों को छोडकर अहिंसक तरीके का इस्तेमाल करते हुए कमजोरों को शक्तिशाली बनाया और उन्हें न्याय दिलवाया। महात्मा गांधी दिव्यांगों के लिए आदर्श हैं और दिव्यांग व्यक्ति उनके बताए रास्ते पर चलकर अपने मानवाधिकार व कानूनी अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। भारत का संविधान सभी नागरिकों पर एक साथ लागू होता है चाहे वह सामान्य व्यक्ति हो या दिव्यांग, सामान्य व्यक्ति की तरह ही दिव्यांगों को मौलिक अधिकार प्राप्त है। 1992 में चीन के बीजिंग शहर में 1 दिसंबर से 5 दिसंबर तक एशिया व प्रशांत क्षेत्रों के आर्थिक और सामाजिक मामलों के आयोग का अधिवेशन हुआ था। इसमें एक निर्णय लिया गया था कि 1993 से 2002 तक इस क्षेत्र में दिव्यांग व्यक्तियों के लिए दशक मनाया जायेगा। साथ ही सभी देशों में विकलांग व्यक्तियों की समाज में पूर्ण भागीदारी व समानता सुनिश्चित करने हेतु कानून बनाए जाएंगे। भारत ने भी उपरोक्त अधिवेशन में भाग लिया था तथा इस कार्य में अपनी सहमति दी थी। सरकार ने दिव्यांग व्यक्तियों को समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी अधिनियम 1995 में चूक श्रेणी में उन लोगों के लिए सरकारी पदों को 3 प्रतिशत आरक्षित किया। वर्ष 1995 डी.आर .एम के लिए एक बेंचमार्क वर्ष बन गया जोकि एक नए युग की शुरूआत के लिए है, जिसमें दिव्यांग से पीड़ित लोगों का शैक्षिक संस्थानों और सरकारी सेवाओं में सुविधा मिली। नई शताब्दी में, संयुक्त राष्ट्र ने 2006 में दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों पर सम्मेलन शुरू किया। भारत ने 2007 में इस सम्मेलन पर हस्ताक्षर किए और पुष्टि की कि तब तक विभिन्न समूहों द्वारा चूक श्रेणी के आरक्षण में वृद्धि की मांग की थी। 2012 में भारत सरकार दिव्यांग विधेयक के साथ आई और मूल मसौदे में कुछ संशोधन के बाद, बिल अगले वर्ष संसद में प्रस्तुत किया गया था। 3 वर्षों से अधिक इंतजार के बाद, दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम 2016 को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया था। 2011 की जनगणना से पता चला कि भारत में 2.68 करोड़ से ज्यादा लोग किसी न किसी प्रकार दिव्यांगता से पीड़ित है। यह आबादी का 2.21 प्रतिशत के बराबर है। देश में कुल दिव्यांग में से 14.9 करोड़ पुरूष हैं, 1.18 करोड दिव्यांग महिलाएं है। ग्रामीण इलाकों में दिव्यांग व्यक्ति 18.6 मिलियन जबकि शहरी इलाकों में 8.2 करोड़ दिव्यांग व्यक्ति रहते हैं। भारत का राजपत्र में खण्ड 3-उप-खण्ड: पद्धति सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय प्राधिकार से प्रकाशित अधिसूचना नई दिल्ली 15 जून 2017 दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016 इस कानून से दिव्यांगजन को सामान्य व्यक्तियों के बराबर अधिकार मिल गए हैं। दिव्यांगजन को अपने कानूनी अधिकारों की रक्षा का अधिकार है। दिव्यांगजन को सामान्य व्यक्तियों की तरह जीवन के हर क्षेत्र में भाग लेने का अधिकार है।

इस कानून के बनने से दिव्यांगजन को अधिकार मिला है कि उनकी सही रूप से देख-रेख की जाए और उनका पुनर्वास करके उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाया जाए। इस कानून में सरकार, विभिन्न अधिकारियों और संस्थानों की यह जिम्मेदारी है कि वे कानून के अनुसार दिव्यांगजण के लिए काम करें। दिव्यांग से पीडित हर बच्चे को 18 वर्ष की आयु तक उचित वातावरण में निःशुल्क शिक्षा दी जाये। सरकार को विशेष शिक्षा देने के लिए विशेष विद्यालयों की स्थापना करनी होगी। दिव्यांग छात्रों को व्यवसायिक शिक्षा के अवसर प्रदान कराना भी इस कानून के तहत आवश्यक है।दिव्यांग छात्र,जो पांचवीं कक्षा तक शिक्षा हासिल कर चुके हैं, खुले स्कूलों, खुले विश्वविद्यालयों के जरिये आगे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और उसके लिए उन्हें विशेष पुस्तकें और उपकरण आदि निःशुल्क प्रदान किए जाने चाहिए। यह सरकार का दायित्व है कि वह नए उपकरणों, शिक्षण में सहायक उपकरणों विशेष शिक्षण-सामग्री आदि का विकास करे ताकि दिव्यांग बच्चों को शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर मिल सके। दिव्यांग बच्चों को प्रशिक्षण देने हेतु शिक्षक तैयार करने के लिए प्रशिक्षण-केंद्र खोलने की जिम्मेदारी भी सरकार की है। इसके अलावा यह भी सरकार की जिम्मेदारी है कि दिव्यांग बच्चों की पढाई के लिए संपूर्ण योजना तैयार करें, जिसमें बच्चों को स्कूल लाने, ले जाने, किताबों का प्रबंध करने, वर्दी और अन्य जरूरतों की पूर्ति का प्रबंध करने, छात्रवृत्ति, दिव्यांग के अनुकूल पाठ्यक्रम, नेत्रहीनों की विशेष जरूरतों को पूरा करने का प्रावधान हो। सरकारी पदों, जो दिव्यांग के लिए अनुकूल हों, वे दिव्यांग के लिए कम से कम 4 प्रतिशत आरक्षित होगा। इस एक प्रतिशत अस्थि-दिव्यांग के लिए आरक्षित होंगे। दिव्यांग के लिए आरक्षित किए जा सकने वाले पदों की समीक्षा हर तीन वर्ष में की जाएगी।

जिन पदों पर भर्ती नहीं हो पाएगी, वे अगले साल दिव्यांगों द्वारा ही भरे जाएंगे। सभी सरकारी शिक्षण-संस्थान व सरकारी सहायता- प्राप्त शिक्षण- संस्थान 4 प्रतिशत स्थान दिव्यांगों के लिए आरक्षित करेंगे। गरीबी-उन्मूलक योजनाओं में भी दिव्यांग के लिए आरक्षण दिया जाएगा। नियोक्ताओं को इस प्रकार प्रोत्साहित किया जाएगा कि वे कम से कम 5 प्रतिशत दिव्यांग कर्मचारी रखें। दिव्यांग को प्राथमिकता के आधार पर और रियायती दरों पर मकान और पुनर्वास हेतु जमीन दी जाएगी। दिव्यांग के साथ यातायात, ट्रैफिक संकेत, आतंरिक वातावरण में किसी किस्म का भेदभाव नहीं बरता जाएगा। औरों को जैसी सुविधा मिलती है वैसी ही सुविधा दिव्यांग को मिलेंगी, भले ही इसके लिए सरकार को अतिरिक्त खर्च करना पडे सरकारी नौकरियों में भी दिव्यांग के कारण किसी किस्म का कोई भेदभाव नहीं बरता जाएगा। सरकार दिव्यांग और गंभीर दिव्यांग के शिकार व्यक्तियों के लिए कार्य कर रही संस्थाओं को मान्यता देते समय उन पर नियंत्रण करेगी। मुख्य आयुक्त व राज्यों के आयुक्त दिव्यांग के अधिकारों के हनन के मामलों की शिकायतों का निपटारा करंगे। जो व्यक्ति दिव्यागों के लिए आरक्षित सुविधाओं का गलत ढंग से इस्तेमाल करेगा या इस्तेमाल करने का प्रयास करेगा, उसे 20000 रूपये तक का जुर्माना या 2 वर्ष तक की कैद या दोनों सजाएँ हो सकती है।

निष्कर्ष :-दिव्यांगजन को आत्मनिर्भर, स्वावलंबी एवं सशक्त बनाने के लिए साथ ही दिव्यांग व्यक्ति की पहुँच प्रत्येक क्षेत्र में हो सके, दिव्यांग व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सके, दिव्यांगजन को दिलाने वाली सुविधाओं का लाभ दिव्यांगों तक पहुँच सके, सामाजिक विकास इस तरह किया जाये जिसका लाभ दिव्यांगजन भी ले सकें, सरकारी एवं गैर सरकारी इमारतों का निर्माण दिव्यांगजन की गतिशिलता को ध्यान में रखकर किया जाये। दिव्यांगजन से समान व्यावहार किया जाऐ, दिव्यांगों के प्रति आम नागरिकों का रवैया सहानुभूतिपूर्वक न होकर सहयोग का हो, इत्यादि। ऐसी अनेक बातो को ध्यान में रखकर दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016 लागू किया गया था। जिसके परिणामस्वारूप दिव्यांगजन के जीवन में सकारात्मक बदलाव दिखाई दे रहा है। इसके साथ ही दिव्यांग व्यक्ति एवं उनके परिवार के लिए कार्यरत संस्थाएं, संस्थान, कमर कस लें और यह सुनिश्चित करें कि दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016 के अंतर्गत दिव्यांग को मिलने वाले अधिकारों और सेवाओं का वास्तविक सही प्रयोग होगा तथा इनके हनन के खिलाफ कड़ी आवाज उठाई जाये तो समाज के ऐसे कमजोर वर्ग का काफी भला होगा।

*****

संदर्भ सूची :-

1. भारत का राजपद्ध भा ॥ खण्ड 3-उप- खण्ड (I) सामाजिक न्याय और अधिकारीता मंत्रालय प्राधिकर से प्रकाशित अधिसुचना नई दिल्ली 15 जून 2027 दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016
2. मिश्र, विनोद कुमार : विकलांगों के अधिकर, जटवाडा,दरीयागज नई दिल्ली – 110002 (मिश्र वि. कु विकलागों के अधिकार 2008)
3. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग वार्षिक- रिपोर्ट 2019-20
4. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग वार्षिक- रिपोर्ट 2018-19
5. चक्रवर्ती विद्युत, चंद प्रकाश भारतीय प्रशासन विकास एवं पद्धति राजनीति विज्ञान विाागग
6. दिव्यांग कल्याण – दिव्यांगजनों कल्याणार्थ संचालित कार्यक्रम http://socialwelfare.uk.gov.in/pages/display/59-persons-with-disabilities
7. दिव्यांगजनो के संबंध में राष्ट्र की कल्याणकरी नीतिया -http://hi.vikaspedia.in/social-welfare/
8. RIGHTS OF PERSONS WITH DISABILITIES ACT 2018 (ACT NO. 4 OF ...
9. http://www.fiji.gov.fj/getattachment/99fa9072-67f7-4532-9c32-f5a2f20c4f72/Act-4---Rights-of-Persons-with-D
10. PWD ACT, 1995 THE PERSONS WITH DISABILITIES
11. .http://www.disabilityaffairs.gov.in/upload/uploadfiles/files/PWD_Act.pdf
12. Disability, its issues and challenges: psychosocial and legal aspects in ...
13. http://medind.nic.in/daa/t15/i1/daat15i1p195.pdf
14. Social Work Education and Disability: A Multicase Study of MSpace
15. https://mspace.lib.umanitoba.ca/bitstream/handle/1993/22183/dupre_marilyn.pdf?sequence=1
16. Persons with Disabilities Act 2008: The Economic Promises for People ...

http://www.econjournals.com/index.php/ijefi/article/view/3625

भारतीय समाज में ई- शासन प्रणाली की उपयोगिता

डॉ. हरेन्द्र कुमार
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग
जे०एस०एच०(पी०जी०) कॉलेज, अमरोहा
Mo-8899410001

डॉ.हरिन्द्र कुमार
असि. प्रो. समाजशास्त्र
कु० मा० रा० म० स्नातकोत्तर महाविद्यालय,बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर।
Mo- 9458024580

सारांश:- पिछले एक दशक में जब से सूचना और संचार के माध्यम आधुनिक एवं तकनीक सम्पन्न हुए हैं तब ऐसे में शासकीय कार्यप्रणाली में ई-गवर्नेंस का महत्व बढ़ गया है। अब सूचनाओं को प्राप्त करने अथवा उपलब्ध कराने के लिए तकनीक का उपयोग कारगर साबित हो रहा है। दस वर्ष पहले 18 मई 2006 को इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग द्वारा राष्ट्रीय ई-शासन योजना शुरू की गई। इसके तहत कुल 27 मिशन मोड परियोजनाओं को रखा गया। हालांकि, वर्तमान की केंद्र सरकार ने डिजिटल इंडिया को प्राथमिकता देते हुए शासकीय कार्यों को भी ई-गवर्नेंस के तहत संचालित करने की दिशा में बड़ा काम किया है। सरकार के लगभग सभी मंत्रालय ऑनलाइन सूचनाएं उपलब्ध कराने की दिशा में काफी हद तक आगे बढ़ चुके है।

मुख्य शब्द: सूचना और संचार, शासकीय कार्यप्रणाली, ई-गवर्नेंस, तकनीक-ई-शासन में पारदर्शिता स्थापित होने की संभावना इसलिए अत्यधिक होती है क्योंकि यह सर्व-सुलभ है। ई-शासन के तहत पारदर्शी ढ़ग से काम कर रहे केंद्र सरकार के कुछ मंत्रालयों द्वारा किए गए कार्यों को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है। वर्तमान सरकार ने तमाम वेब-पोर्टल्स एवं एप्स के माध्यम से अपनी योजनाओं एवं कार्यो को सार्वजनिक करने की दिशा में बड़ा प्रयास किया है। केंद्रीय ऊर्जा मंत्रालय द्वारा विद्युतीकरण के कार्यों को पारदर्शी बनाने के लिए एक वेब (http//garv.gov.in) गर्व नाम से एक मोबाइल एप जारी किया गया है। इस वेब-पोर्टल अथवा मोबाइल एप से कोई भी व्यक्ति राज्यवार, जिलेवार, पंचायतवार सहजता से यह विवरण प्राप्त कर सकता है कि किसी क्षेत्र-विशेष में विद्युतीकरण का कार्य कितना हुआ है अथवा कितना शेष बचा है। इस वेब पोर्टल के माध्यम से न सिर्फ कार्य का ब्यौरा प्राप्त किया जा सकता है बल्कि कार्य-प्रगति संबंधी समस्त जानकारी भी हासिल की जा सकती है। ई-शासन के तहत विद्युतीकरण से जुड़े कार्यों में अलग-अलग स्तर पर अलग वेब-पोर्टल्स उपलब्ध हैं, जहां से संबंधित जानकारियों को सहजता से हासिल किया जा सकता है। राष्ट्रीय ई-शासन के तहत अन्य क्षेत्रों में भी व्यापक स्तर पर काम पारदर्शी ढंग से चल रहा हैं ई-टेंडर एवं ई-आक्शन को एक बेहतरीन उदाहरण माना जा सकता है। नीलामी की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने के लिए केंद्र सरकार द्वारा ई-आक्शन एवं ई-टेंडर को बढ़ावा दिया जा रहा है। नीलामी की प्रक्रिया को पूर्णतया ऑनलाइन एवं पारदर्शी बनाने के लिए education.gov.in./e Auction /app कार्य कर रहा है। सरकार का प्रयास लोगों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना है कि वे ऑफलाइन नीलामी की बजाय ऑनलाइन नीलामी की प्रक्रिया को बढावा दें। ई-आक्शन की तरह ही ई-टेंडर एवं ई-खरीद की प्रक्रिया को प्राथमिकता के साथ शुरू कर दिया गया है। केंद्रीय सड़क एवं परिवहन मंत्रालय द्वारा ई-टेंडर प्रक्रिया को बेहद कारगार ढंग से लागू किया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा सड़क परिवहन एवं राष्ट्रीय राजमार्ग मंत्रालय से संबंधी सभी कार्यो को ई-टेंडर के तहत किया जा रहा है और इसके लिए एक वेबपोर्टल(https://morth.eproc.in/ProductMORTH/publicDash) समर्पित किया गया है। इस वेबपोर्टल पर सभी नए टेंडर्स, चल रहे टेंडर्स एवं पूरा हो चुके टेंडर की जानकारी उपलब्ध है।प्रधानमंत्री जी ने डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत राइट टू पीएम विकल्प के जरिए जनसंवाद का एक अभूतपूर्व मंच उपलब्ध कराया हैं। इसके लिए बाकायदे एक वेब माध्यम (http://pmindia.gov.in/en/interact-with-honblepm/) तैयार किया गया है। इस वेब माध्यम से कोई भी सामान्य जन अथवा खास व्यक्ति प्रधानमंत्री को समस्या, शिकायत अथवा सुझाव से जुड़े पत्र लिख सकता है। इस पत्र को लिखते ही प्रेषक को एक पंजीकरण नंबर प्रधानमंत्री कार्यालय से ऑनलाइन प्राप्त होता है। उस पंजीकरण नंबर के माध्यम से पत्र लिखने वाले व्यक्ति द्वारा (http://pgportal.gov.in/ viewstatus.aspx) पर जाकर अपने शिकायत, सुझाव अथवा समस्या पर हुई कार्रवाई अथवा प्रगति की सटीक एवं आधिकारिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस माध्यम की सबसे अच्छी बात यह है कि यह सीधे प्रधानमंत्री कार्यालय से संबद्ध है एवं वहीं से पत्र के विषय से जुडे विभागों एवं मत्रांलयों को हस्तांतरित की जाती है। पत्र प्रेषक को उक्त अधिकारी का संपर्क सूत्र भी उपलब्ध कराया जाता है जिसके अधीन उसका मामला हैं कहीं न कहीं प्रधानमंत्री से संवाद का यह विकल्प उस अवधारणा को खंडित करने में मदद कर रहा है, जिसमें सामान्य जन अक्सर यह मान लेते थे कि उनकी सुनवाई प्रधानमंत्री तक संभव ही नहीं है। हालांकि इसके अतिरिक्त नरेंद्र मोदी मोबाइल एप के माध्यम से भी प्रधानमंत्री जनता से संवाद को प्राथमिकता देते हैं।

डिजिटल इंडिया को सफल बनाने एवं निचले स्तर तक सरकार के ई-शासन की पहुंच को सुलभ करने में जो सबसे बड़ी चुनौती सरकार के सामने है वो ग्रामीण अंचल के लोगो को अत्याधुनिक डिजिटल उपकरणों एवं एप आदि के लिहाज से साक्षर बनाना है। जब तक देश का हर आम व्यक्ति ई-शासन की तकनीकी प्रक्रिया को समझने मे सक्षम नहीं होगा तब तक इन ई-शासन से जुड़े तमाम प्रयासों का पूरा लाभ मिलना संभव नहीं है। इस दिशा में सरकार राष्ट्रीय डिजिटल साक्षरता मिशन के तहत एक परिवार से एक व्यक्ति को प्रशिक्षण देने की योजना पर काम कर रही है। इसके तहत 10 लाख लोगों को डिजिटल साक्षरता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। इस प्रशिक्षण में लोगों को मोबाइल एप एवं वेब-पोर्टल्स आदि से जुड़ी जानकारियां दी जाएंगी एवं उसके उपयोग के लिहाज से उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाएगा। सरकार ई-शासन में कृषि क्षेत्र को भी जोड़ने की दिशा में तमाम कार्य कर रही है। लिहाजा ग्रामीण अंचल को ई-शासन से जोड़ने के लिए यह साक्षरता मिशन बेहद अनिवार्य है। कृषि के क्षेत्र को भी ई-शासन के माध्यम से मजबूत करने का कार्य केंद्र सरकार द्वारा तेजी से किया जा रहा है। यह बेशक एक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य है सरकार ने (http://mkisan.gov.in/hindi) वेबसाइट के माध्यम से किसानों के हितों से जुड़ी तमाम जानकारियों को बिना इंटरनेट के भी उनके मोबाइल पर उपलब्ध कराने की दिशा में काम किया है। इस पोर्टल का लक्ष्य एसएमएस पोर्टल की अवधारणा पर केंद्रित है जो मोबाइल टेलीफोनी की शक्ति का इस्तेमाल करते हुए किसानों के बीच उचित समय पर, विशिष्ट एवं समग्र जानकारी पहुचाने की दिशा में काम कर रहा है। हालांकि http:// agricoop.nic.in ,oa http:// soilhealth.dac.gov.in/ के माध्यम से कृषि क्षेत्र को भी ई-सेवा से जोड़ने का पूरा प्रयास किया गया है। कहीं न कहीं जब शासकीय तंत्र में जनसंवाद की प्रक्रिया सुगम होगी तो पारदर्शिता में बढ़ोत्तरी होना स्वाभाविक ही है। वर्तमान केंद्र सरकार द्वारा डिजिटल इंडिया के माध्यम से डिजिटाईजेशन की प्रक्रिया को बहुत तेज रफ्तार से विस्तार दिया जा रहा है। राष्ट्रीय ई-शासन के माध्यम से पारदर्शिता, जनसंवाद एवं सुगमता तीनों ही लक्ष्यों को आसानी से और कम समय में हासिल किया जा सकता है।

ई-शासन से बेहतर हुआ गांवों का प्रशासन-विश्व के विभिन्न देशों के मध्य सिमटती दूरियों का एक प्रमुख कारक सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार की बढ़ती भूमिका है। देश में हुई सूचना क्रांति से ग्रामीण जनजीवन में भी बदलाव आया है। अब ग्रामीण महिलाएं भी घूंघट से बाहर आकर कम्प्यूटर और मोबाइल का उपयोग करने लगी हैं। सूचना क्रांति से ग्रामीणों के जीवन स्तर में भी सुधार आया है। ई-शासन ने रही-सही कसर को पूरा कर दिया है। ई-शासन से जहां आम जन की समस्याओं का त्वरित निस्तारण हो पा रहा है वहीं ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था को भी नई दिशा मिली है। इससे जहां ग्रामीण विकास को नया आयाम मिला है वहीं ग्रामीणों को शासन-प्रशासन की ओर से चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं के बारे में तुरंत जानकारी मिल सकी है। पारदर्शी, समयनिष्ठ व परेशानी रहित नागरिक सेवाएं प्रदान करने के लिए समाज के अंतिम तबके तक सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के लाभ पहुंचाने के

लिए भारत सरकार ने 90 के दशक के अंत में देश में ई-शासन योजना का शुभारंभ किया। केंद्र सरकार ने भारत में ई-शासन पहल को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय ई-शासन योजना को 18 मई, 2006 को स्वीकृति प्रदान की, जिसमें 27 मिशन मोड परियोजनाएं और 8 भाग हैं। सूचना प्रौद्योगिकी विभाग तथा प्रशासनिक सुधार व लोक शिकायत विभाग ने राष्ट्रीय ई-शासन योजना का खाका तैयार किया। इस तरह अब ई-शासन के तहत ग्राम पंचायत स्तर पर मुख्य रूप से करीब 30 सूत्रीय कार्यक्रमों को जोड़ा गया है। इन प्रमुख 30 सूत्रीय कार्यक्रमों में ग्राम पंचायत प्रशासन, जल संसाधन, डेयरी, मत्स्य पालन, सामाजिक कार्य, चुनाव, लघु उद्योग, हाउसिंग, सड़क निर्माण, तकनीकी शिक्षा, उच्च शिक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, बाजार, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल कल्याण, मजदूर कल्याण, लोक कल्याण आदि को शामिल किया गया है।

भारतीय संविधान की धारा 243 जी के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय से संबंधित योजनाओं की तैयारी के लिए कार्य करना है। इसके अलावा उन पर संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल मुद्दों को लागू करने की भी जिम्मेदारी है। जाहिर-सी बात है कि ऐसे में ग्राम पंचायतें सरकार की महत्वपूर्ण सामाजिक योजनाओं को लागू करने की एक नोडल एजेंसी बन गई हैं। इन ग्राम पंचायतों के जरिए ही केंद्र सरकार की ओर से चलाई जा रही महत्वाकांक्षी योजना महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना (मनरेगा), सर्व शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन योजना (मिड डे मील), एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस) सहित तमाम योजनाओं का संचालन करना है। ऐसे में पंचायतों को ई-शासन का अंग बनाना जरूरी है। चार वर्षों में इस योजना पर करीब 6 हजार 989 करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा गया है।भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी ने जब संचार क्रांति का खाका तैयार किया था तो उन्होंने स्पष्ट किया था कि सरकार की ओर से चलाई जा रही योजनाओं के बारे में जब तक ग्रामीण पूरी तरह से वाकिफ नहीं होंगे तब तक न तो पंचायती राज की अवधारणा पूरी होगी और न ही संचार क्रांति का वास्तविक सपना पूरा हो सकेगा। निश्चित रूप से केंद्र सरकार की ओर से इसी सपने को साकार करने की दिशा में निरंतर प्रयास किया जा रहा है। केंद्र सरकार ने ग्रामीण स्तर की विभिन्न योजनाओं से लोगों को वाकिफ कराने के लिए वर्ष 2006-07 में 8207 करोड़, वर्ष 2009-10 में 1250 करोड़ रुपये खर्च किए। शहरों के साथ ही ग्रामीण इलाके में भी कम्प्यूटर आ गया है।

इंटरनेट सरकारी दफ्तरों से निकल कर घर तक पहुंच चुका है। ऐसे में ई-शासन के जरिए विभिन्न योजनाओं को आम जन तक आसानी से पहुंचाया जा सकता है। ई-शासन की व्यवस्था लागू होने से हर व्यक्ति बिना किसी अड़चन के सरकारी योजनाओं के बारे में जान पा रहा है और योजनाओं का लाभ भी हासिल कर रहा है। आज भारत के करीब-करीब हर राज्य में ई-शासन को पूरी तरह से लागू करने की कोशिशें चल रही हैं। जिन स्थानों पर ई -शासन की व्यवस्था लागू हो चुकी है, वहां इसके परिणाम भी दिखने लगे हैं। पूर्व प्रधानमंत्री का यह मानना था कि ई-शासन से सुशासन को प्राप्त किया जा सकता है। इसे ग्राम पंचायत स्तर पर लागू किए जाने से ही आम जन को इसका लाभ मिल सकेगा। विभिन्न राज्यों में ई-प्रशासन एवं सूचना प्रौद्योगिकी परियोजनाओं को बढ़ावा देने के लिए चार समितियों का गठन किया गया है- ई-प्रशासन परिषद, राज्य-स्तरीय समिति, ई-प्रशासन परियोजना लक्ष्य दल एवं राज्य-स्तरीय ई-प्रशासन लक्ष्य दल। सभी विभागों के करीब तीन से पांच प्रतिशत बजट का उपयोग सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार के विकास के लिए करने के निर्देश जारी किए गए हैं। यह व्यवस्था देश के करीब-करीब हर राज्यों में लागू की गई है। यह अलग बात है कि कुछ राज्यों ने ई-शासन के क्रियान्वयन में काफी तेजी दिखाई है, वे 10 फीसदी तक बजट ई-शासन में खर्च करके उसका लाभ भी हासिल कर रहे हैं। केंद्र सरकार की ओर से ऐसे राज्यों को निरंतर प्रोत्साहित भी किया जा रहा है। जिन राज्यों ने ई-शासन व्यवस्था को ग्राम पंचायत स्तर पर लागू करने में तेजी दिखाई हैं, उन्हें पुरस्कृत भी किया जा चुका है।जैसाकि गत दिनों राजस्थान सरकार के ई-प्रशासन एवं सूचना प्रोद्यौगिकी विभाग को ई-प्रशासन के राष्ट्रीय सम्मेलन में सर्वश्रेष्ठ स्टॉल एवं ई-संसार के लिए सम्मानित किया गया। इस इलेक्ट्रॉनिक्स एंड कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर एक्सपोर्ट प्रमोशन काउन्सिल ने इंडिया सॉफ्ट 2010 कार्यक्रम आयोजित किया था, जिसमें 50 देशों के 250 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मालूम हो कि विश्व के 42.4 फीसदी यूजर्स अकेले एशिया में हैं। आज राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सूचना नेटवर्क को 'सूचना सुपर हाइवे' कहा जाने लगा है। अब इसे औद्योगिक एवं सामाजिक क्रांति के रूप में भी देखा जा रहा है। इसका असर दिल्ली, मुंबई से होते हुए अब गांव स्तर पर पहुंच चुका है। वर्ष 2005 में प्रधानमंत्री ने ई-पंचायत की घोषणा की। आईटीसी के 5400 ई-चौपाल खुले। अब यह सुविधा ग्राम पंचायत स्तर तक पहुंच चुकी है। कुछ राज्य सरकारों ने इसे व्यापक स्तर पर लागू किया है तो कुछ स्थानों पर अभी काम चल रहा है। वास्तव में जवाबदेह, पारदर्शी एवं संवेदनशील प्रशासन सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए जनता को सूचना, संचार व तकनीक आधारित सेवाएं उपलब्ध कराना भी केंद्र सरकार का एक प्रमुख लक्ष्य है। यही वजह है कि देश के ज्यादातर जिलों में ई-मित्र परियोजना लागू कर दी गई है। स्वास्थ्य मित्र परियोजना के अंतर्गत सहभागिता से टेलिमेडीसन को साकार किया जा रहा है। ज्यादातर राज्यों के चिकित्सा महाविद्यालय तथा जिला चिकित्सालय और संभागीय मुख्यालयों को भी ई-शासन व्यवस्था से जोड़ा जा रहा है। मुद्रांक एवं पंजीयन विभाग के करीब-करीब सभी कार्यालय कम्प्यूटर सेवा से जोड़ दिए गए हैं। भू-धारकों के रिकॉर्ड कम्प्यूटरीकृत किए जा चुके हैं। वैट स्वचालित तंत्र भी आरंभ किया जा चुका है जिसमें ई-पेमेंट और ई-रिटर्न की सुविधा भी है। सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार के विस्तार के लिए आवश्यक संरचना का भी विकास किया जा रहा है। जिला कलेक्टर कार्यालयों को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग द्वारा राज्य सचिवालय से जोड़ा जा चुका है। सचिवालय में उचित उपकरणों के वितरण के साथ-साथ सेक्रेटेरियल लोकल एरिया नेटवर्क को सक्रिय किया जा चुका है। जिलों में एनआईसी नेटवर्क के द्वारा आईपी फोन स्थापित किए जा चुके हैं। नागरिकों को विभिन्न सरकारी सेवाएं इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से उपलब्ध कराने के लिए स्टेट डाटा सेंटर क्रियाशील करने के अलावा नागरिक सेवा केंद्र भी स्थापित किए गए हैं। कुछ राज्यों में दुरस्थ क्षेत्रों के निवासियों का सरकार से संवाद सुगम बनाने के लिए मोबाइल वी-सैट वैन की सुविधा आरंभ की गई है। सरकारी कार्यालयों में क्षमता निर्माण एवं क्षमता संवर्धन के प्रयास किए जा रहे हैं और सूचना प्रौद्योगिकी को शैक्षणिक संस्थाओं में प्रोत्साहित किया जा रहा है। राष्ट्रीय ई-प्रशासन परियोजना को राज्यव्यापी नेटवर्क, राज्य सेवा डिलीवरी गेटवे तथा ई-जिलों की योजना को भी कार्य रूप दिया जा रहा है। वॉयस ओवर इंटरनेट प्रोटोकॉल, टच-स्क्रीन कियोस्क, सूचना के अधिकार का पोर्टल और ई-संचार आरंभ किए जा चुके हैं।

सेवा वितरण केंद्र-

वर्तमान में खासकर दूरदराज़ के क्षेत्रों में रहने वाले नागरिकों को किसी सरकारी विभाग या उसके स्थानीय कार्यालय से कोई सेवा लेने के लिए लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है। नागरिक सेवाएं प्राप्त करने में लोगों का काफी समय तथा पैसा खर्च होता है। इस समस्या से निबटने के उद्देश्य से राष्ट्रीय ई-शासन योजना के एक भाग के रूप में प्रत्येक छह गांवों के लिए एक कंप्यूटर तथा इंटरनेट आधारित साझा सेवा केन्द्रों की स्थापना की योजना शुरू की गई है ताकि ग्रामीण जन इन सेवाओं को आसानी से अपने निकटवर्ती केंद्र से प्राप्त कर सकें।

ई-शासन और ग्राम प्रशासन-

ई-शासन के जरिए ग्राम पंचायत के लोगों को केंद्र से लेकर राज्य सरकार तक की योजनाओं के बारे में आसानी से जानकारी मिल रही है। सूचना का अधिकार लागू होने के बाद हर नागरिक ग्राम पंचायतों से विभिन्न तरह की सूचनाओं के बारे में जानकारी हासिल कर रहा है। हर व्यक्ति राजकीय आर्थिक सहायता योजना, स्वास्थ्य, सफाई, रोजगार, अनाज की कीमत, शिक्षा के बारे में जानकारी चाहता है। सूचना अधिकार एक्ट के अनुसार वैसे भी यह सूचना उपलब्ध करवानी सरकार की जिम्मेदारी भी है जोकि इंटरनेट की सहायता से ऑनलाइन गवर्नमेंट द्वारा सही-सही मिलना संभव है। पंचायतों में ई-शासन व्यवस्था होने से हर काम की रिपोर्ट सरकार तक पहुंच सकती है। कितनी सड़कें टूटी हैं और कितनी सड़कों पर काम चल रहा है, कहां, किस तरह की जरूरत है, इसके बारे में ग्राम पंचायत से लेकर केंद्र सरकार तक के आंकड़ें प्राप्त किए जा सकते हैं।

रोजगार के खुले द्वार

ई-शासन व्यवस्था होने से ग्राम पंचायत स्तर पर रोजगार की जानकारी मिल

सकेगी। ग्राम पंचायत प्रतिनिधि ग्राम पंचायत भवन में बैठकर यह जान सकते हैं कि किस विभाग में और किस पद के लिए भर्ती निकली है। ऐसे में वे अपनी ग्राम पंचायत के बेरोजगारों को संबंधित पद के लिए आवेदन भरने के लिए उन्हें प्रोत्साहित कर सकेंगे। ऐसे में एक तरफ जहां बेरोजगारों को रोजगार मिलेगा वहीं ग्राम पंचायत की छवि जनता के बीच बेहतर बनती है। इसी तरह प्राइवेट कंपनियों में भी रोजगार खोज सकते हैं।

इस प्रकार अवलोकित होता है कि सूचना प्रोद्यौगिकी और इंटरनेट तकनीक की परिपक्वता से भारत सर्वोच्च महाशक्ति के साथ सामाजिक आधार पर मजबूती के साथ डिजिटलीकरण की प्रक्रिया को आगें बढा जा रहा है। सरकारी शासन व प्रशासन के तीव्र रूप से मोबाइल और इंटरनेट प्रोद्यौगिकी से लैस होने के साथ समाज व सरकार का एक बेहतर अन्तःक्रियात्मक संबंध प्रदर्शित हो रहा है। हांलाकि बहुत सी सरकारी वेबसाइटें त्वरित भी नहीं है तथा सूचनाओं की प्रवाहशीलता भी कुशल नहीं है। लेकिन इसका निस्तारण प्रक्रिया अगर सुधर जाय तो यह जनसमाज हेतु महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। ई-शासन की उच्चतर सुविधाओं से न केवल समाज व उधोग तथा व्यवसायिक क्रियाओं को लाभ होता है बल्कि इससे विश्व का सामाजिक नजरिया भी हम सबके लिये सकारात्मक होता हैं। ई-शासन और आनलाइन सामाजिक सहभागिता की मजबूती में सूचना प्रोद्यौगिकी और इसके नवीन उपकरणों की महती भूमिका है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. राय, नीरज कुमार (2011): सूचना प्रोद्यौगिकी और सामाजिक संरचना ज्ञान पब्लिलिशंग हाऊस, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. भटनागर, एस (2003): डी यूचर आफ ई-गर्वनमेंट, आई0टी0पी0 एरिया, पेज 40-41.
3. विट्टल और अन्य (2001): इनफॉरमेशन टेक्नोलाजी, मानस पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. मेहता रंजीत (2016): अधिकतम शासन: ई-शासन के माध्यम् से जनपहुँच, पेज 17-20.
5. द्विवेदी शिवानंद (2016): ई-शासन: पारदर्शिता, सुगमता और जनसंवाद, पेज 29-32.
6. प्रणवदेव (2015): ई-गवर्नेंस: ग्रामीण समाज के लिये वरदान जनवरी 2015 पेज 22-25.
7. राय, नीरज कुमार (2008): भारत में सूचना प्रोद्यौगिकी का सामाजिक प्रभाव, समाज वैज्ञानिकी अंकः 12 मार्च 2008.
8. https://hindi.indiawaterportal.org/content/i-saasana-sae-baehatara-hauagaanvaon-kaa-parasaasana/content-type-page/48156

पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की पाठय पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

प्रो.रामबली यादव
शोध निर्देशक
शिक्षाशास्त्र विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

देवेन्द्र कुमार
शोध अध्येता, पीएचडी शिक्षाशास्त्र
महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

सारांश:-सामाजिक विज्ञान शिक्षण में शिक्षक की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। विविध आयाम वाले इस विषय की विषयवस्तु का क्षेत्र अन्य विषयों की तुलना में अधिक विस्तृत है। शिक्षक को ही इस बात का निर्णय करना पड़ता है कि कौन से सामाजिक विज्ञान की कौन सी विषय वस्तु शिक्षार्थी के लिए उपयोगी है तथा किस विषय की कौन सी विषयवस्तु शिक्षार्थी को किस सीमा तक किस पद्धति से पढ़ाने की आवश्यकता है। इस विषय के अध्यापक का पूरे पाठ्यक्रम पर अपना पूर्ण अधिकार नहीं होता। अतः कई अंश पढ़कर पढ़ाने की आवश्यकता बनी रहती है। विद्यार्थी को अपने कत्तव्य एवं अधिकार तथा सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थापन की शिक्षा इसी विषय के अध्ययन से मिलती है।

कुंजीभूत शब्दः- विविध आयामए विषयवस्तुए निर्णयए व्यवस्थापनए पाठ्यक्रमए अधिकारए कत्तव्य।

आदर्श शिक्षक ही अपने शिक्षार्थियों में आदर्श चरित्र, कत्तव्य परायणता, राष्ट्रप्रेम एवं आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थापन जैसे गुणों का विकास करने में सफल हो सकता है। इसी समय शिक्षार्थियों में सामाजिक चेतना, सहृदयता, सहानुभूति, सहिष्णुता और समाज जैसे गुणों का उदय होता है, इसलिए शिक्षार्थियों को प्रत्येक कदम पर मार्ग दर्शन देने एवं आदर्श प्रस्तुत कर सकने की आवश्यकता बनी रहती है। इस प्रकार शिक्षक को पर्याप्त सतर्क रहने की आवश्यकता बनी रहती है। सामाजिक विज्ञान के अध्यापक के लिए पाठ्य पुस्तकों का भी महत्व है। पाठ्य पुस्तकें संस्कृति एवं परम्पराओं में बदलाव लाने में महत्वपूर्ण साधन का कार्य करती हैं। यद्यपि यह पुस्तकें माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा राष्ट्रीयकृत पाठ्य-पुस्तक मण्डल एवं कुछ लेखक व्यक्तिगत रूप से भी लिखते हैं, प्रकाशित कराई जाती हैं। शिक्षक एवं अधिकारी वर्ग को विद्यालय के लिए पुस्तकों का चयन करते समय सतर्कता बरतनी चाहिए। मानव सभ्यता के प्रारम्भ में ज्ञान मौखिक रूप से दिया जाता था। लिखने की कला का विकास लगभग छः हजार वर्ष पूर्व ही हुआ। इससे पहले ज्ञान को कंठस्थ करने की ही व्यवस्था थी। वैदिक काल में भी वेदों के श्लोकों को गुरू द्वारा शिष्यों को कंठस्थ कराया जाता था।

प्राचीन तथा मध्यकाल में पुस्तकें भोज-पत्रों और ताम्र-पत्रों पर तैयार की जाती थीं। ये पुस्तकें हस्तलिखित होती थीं और इनकी संख्या इतनी कम होती थी कि वे प्रत्येक विद्यार्थी को उपलब्ध नहीं थीं। इसी से इस काल में मौखिक शिक्षा की व्यवस्था थी। जब कागज का आविष्कार हुआ, तब पुस्तकों का मनचाही प्रतियों में छपना सम्भव हो सका। पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर पाठ्य-पुस्तकों के विकास का इतिहास सोलहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम, कमेनियस (1592-1600 ई०) ने भाषा शिक्षण की पाठ्य पुस्तक लिखी थी। इसके बाद पाठ्य पुस्तकों के महत्व को देखते हुए इसका प्रचलन बढ़ता गया तथा अनेक शिक्षाविदों एवं विषय-विशेषज्ञों द्वारा पाठ्य-पुस्तकें लिखी जाने लगीं।19वीं शताब्दी में फ्रोबेल, डीवी तथा महात्मा गांधी ने पुस्तकीय ज्ञान का विरोध किया तथा अनुभव-केन्द्रित एवं क्रिया-प्रधान शिक्षा पर बल दिया। परिणामस्वरूप पाठ्य-पुस्तकों के महत्व को कम समझा जाने लगा, किन्तु तथ्यों, सिद्धान्तों आदि के बोधगम्यता की दृष्टि से इनकी पूर्ण उपेक्षा नहीं की जा सकी।कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने पुस्तक विहीन शिक्षण के भी प्रयोग किये किन्तु वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि पाठ्य-पुस्तकों का अंत नहीं हो सकता। अतः अब यह सिद्ध हो चुका है कि पाठ्य-पुस्तकों के अभाव में शिक्षण प्रक्रिया सम्भव नहीं है।भारत में पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में सबसे पहला मुद्रणालय सन् 1824 ई0 में कलकत्ता में स्थापित हुआ जिसका नाम था 'कलकत्ता शिक्षा-प्रेस'। इसी से भारत में पुस्तकों की छपाई का काम प्रारम्भ हुआ। सन् 1854 ई0 में वुड के घोषणा-पत्र में पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन की संस्तुति हुई तो अंग्रेजी, संस्कृत और फारसी में

कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई। किन्तु किसी भी आयोग ने तब पाठ्य-पुस्तकों के गठन पर बल नहीं दिया क्योंकि सन् 1882 के भारतीय शिक्षा आयोग, सन् 1918 के कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, सन् 1929 की हर्टाग समिति तथा सन् 1936-37 ई0 की वुड एवट रिपोर्ट में पाठ्य पुस्तकों की रचना और सुधार के सम्बन्ध में कोई सुझाव नहीं मिलता। सन् 1910 ई0 के बाद भारतीय नेताओं ने शिक्षा की ओर ध्यान तो दिया परन्तु वे भी पाठ्य-पुस्तकों की समस्या तक अन्य बाधाओं के कारण नहीं पहुँच सके। सन् 1935 ई0 में 'गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट' के अनुसार जब कुछ प्रान्तों में स्वायत्त शासन का प्रारम्भ हुआ तो कुछ राष्ट्रीय नेताओं ने पाठ्य-पुस्तकों की रचना और सुधार पर भी ध्यान दिया। सन् 1937-38 ई0 की प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये। सन् 1952-53 में मुदालियर आयोग की स्थापना हुई। उसने प्रचलित पाठ्य पुस्तकों की आलोचना करते हुये उनमें सुधार लाने पर बल दिया। पाठ्य-पुस्तकों से सम्बन्धित एक समिति के गठन पर भी बल दिया।

सन् 1954 ई0 में फोर्ड फाउण्डेशन के अन्तर्गत एक अन्तर्राष्ट्रीय दल ने प्रचलित भारतीय पाठ्य-पुस्तकों का निरीक्षण किया। उसने सुझाव दिया कि भारतीय सरकार प्रकाशन और लेखन सम्बन्धी कुछ नियम बनाये और उन्हीं के अधीन प्रकाशक एवं लेखक पुस्तकें तैयार करें। परन्तु सरकार इनके प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने हाथ में न ले। सन् 1964-66 ई0 में कोठारी आयोग ने पाठ्य-पुस्तकों पर अधिक ध्यान दिया। उसने कहा कि उच्च कोटि के विद्वान पाठ्य-पुस्तकों की रचना में रूचि लेते तथा सम्बन्धित अधिकारी पाठ्य-पुस्तकों की स्वीकृति एवं चुनाव में बेईमानी करते हैं। अतः इस क्षेत्र में अनुसंधान की बहुत आवश्यकता है तथा पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन सरकारी शिक्षा विभाग द्वारा किया जाना चाहिये।शैक्षिक तकनीकी के विकास से पाठ्य पुस्तकों के लिखने के ढंग में भी परिवर्तन हुए हैं। हमारे देश में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एन०सी०ई०आर०टी०), नई दिल्ली द्वारा भी इस क्षेत्र में कार्य किया जा रहा है। इस प्रकार परम्परागत पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ इनके कई तरह के नवीन रूप भी प्रस्तुत किये गये हैं उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण कार्य किया जाता है।इसी तथ्य को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने 'पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन' पर अध्ययन करना उचित समझा। जिसके लिए निम्न उद्देश्य निर्धारित किये:-उत्तर प्रदेश में पूर्व माध्यमिक स्तर पर बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा निर्धारित सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना,एन0सी0ई0आर0टी0 द्वारा प्रकाशित पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना,मानकों के परिप्रेक्ष्य में उक्त दोनों पाठ्य-पुस्तकों की तुलना करना, पाठ्य-पुस्तकों के मानकों के सन्दर्भ में शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन, एन0सी0ई0आर0टी0 व बेसिक शिक्षा परिषद् की सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का मूल्यों के सन्दर्भ में अध्ययन करना।

सामाजिक विज्ञान पाठ्य-पुस्तकों की उपयोगिता:-सामाजिक विज्ञान में भी पाठ्य-पुस्तकों की अत्यधिक उपयोगिता एवं महत्ता है। बालक-बालिकाओं को सामाजिक विज्ञान का यथोचित ज्ञान देने के लिए पाठ्य-पुस्तकें एक उत्तम, उपयोगी और आवश्यक उपकरण हैं। इनसे इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र एवं अर्थशास्त्र आदि के शिक्षण की व्यवस्था सुलभ हो जाती हैं। सामाजिक विज्ञान में पाठ्य-पुस्तकों का प्रमुख कार्य मात्र सूचनायें देना नहीं होता, बल्कि सूचनाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को सीखने की ओर प्रवृत्त करते हुए उन्हें देश सम्बन्धी योग्यताओं की प्राप्ति में सहायता करना होता है। देश के क्षेत्र सम्बन्धी ज्ञान एवं योग्यता की अभिवृद्धि ही पाठ्य-पुस्तक का प्रधान कार्य है। सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थियों के कौशल और स्वाध्यायशील प्रवृत्ति को इस उद्देश्य से प्रशिक्षित करने की चेष्टा की जाती है कि पुस्तकों के पठन और मनन के द्वारा वे अपने भावी जीवन में ज्ञानोपलब्धि की ओर अग्रसर होते रहें। ज्ञान के विकास और पठन-पाठन तथा अध्ययन -अध्यापन में एकरूपता एवं समान स्तर के लिए भी पाठ्य पुस्तकों का सहारा लेना पड़ता है। ज्ञान को मितव्ययी एवं व्यवस्थित ढंग प्रदान करने के लिए भी पाठ्य-पुस्तकें आवश्यक हैं।

शिक्षक के लिए पाठ्य-पुस्तकें एक मार्ग का कार्य करती हैं क्योंकि इनके द्वारा कक्षा की पूरे वर्ष प्रगति के लिए वे योजना तैयार करते हैं। पाठ्य-पुस्तकों से उन अध्यापकों को पाठ्य-वस्तु व्यवस्थित करने में अधिक सहायता मिलती है जिनको शिक्षण का अधिक अनुभव नहीं है, उन्हें विषय-वस्तु एक ही जगह पाठ्य -पुस्तक में मिल जाती है। ऐसी अवस्था में हम कह सकते हैं कि सामाजिक विज्ञान शिक्षा की पूरी क्रिया ही आज पाठ्य-पुस्तकों पर आधारित है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण में पुस्तकें ज्ञान के विकास में तो सहायक होती ही हैं, इसके साथ-साथ इनके द्वारा बालकों का मनोरंजन कार्य भी होता है।

अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया में पाठ्य-पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा का ऐसा कोई स्तर नहीं है, जहाँ पाठ्य-पुस्तक का उपयोग नहीं किया जाता। अध्यापक द्वारा दिया गया ज्ञान कितना भी महत्वपूर्ण क्यों ना हो, उसकी पूर्णता के लिए पाठ्य-पुस्तक का सहारा लिया जाता है। शिक्षा का विकास एवं प्रचार कुछ हद तक पाठ्य-पुस्तकों की सहायता से करने का प्रयास किया जा रहा है। अन्य विषयों की भांति सामाजिक विज्ञान में भी पाठ्य-पुस्तकों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि इनमें पाठ्य-वस्तु, भाषा-शैली, आदि की दृष्टि से पर्याप्त सुधार करके इन्हें छात्रों के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाया जाये।

सम्बन्धी साहित्य का सर्वेक्षण:-अन्वेषण कार्य में प्रस्तुत शोध विषय के गहन विज्ञान के बाद अन्वेषण से सम्बन्धित साहित्य की समालोचना एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जो कि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से शोध-कार्य पर प्रभाव डालती है। प्रत्येक शोध-अध्ययन नये विचारों, नये ज्ञान, नयी योजनाओं में सहयोग देता है। अतः यह बहुत ही आवश्यक हो जाता है कि सम्बन्धित क्षेत्र के ज्ञान, विचार तथा शोध का गहराई से अध्ययन करें जो कि इसे आगे बढ़ाता है। समालोचना केवल सिद्धान्तरूप से ही महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् यह सम्बन्धित विषय क्षेत्र के अन्तःदृष्टिज्ञान को उजागर करता है तथा सम्बन्धित शोध के लिए सैद्धान्तिक आधार तथा अध्ययन से सम्बन्धित कार्य-विधि के लिये उपयुक्त साधन चुनने में सहायक होता है। समालोचना की महत्ता के बारे में बैस्टा ने लिखा है:- विषय से सम्बन्धित साहित्य का गहन अध्ययन करने से शोधकर्ता को पता चल जाता है कि सम्बन्धित क्षेत्र में क्या-क्या कार्य हो चुका है और उनके क्या निष्कर्ष निकले तथा सम्बन्धित क्षेत्र में किस पद्धति का प्रयोग किया जाये तथा सम्बन्धित क्षेत्र में कौन-कौन सी अनसुलझी समस्याऐं रह गयी हैं' (बेस्ट0 जान0 डब्लू, रिसर्च इन एजूकेशन, थर्ड एडीशन, प्रेन्टिस हाल आफ इंडिया प्राईवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 1978)।वाघामेर (1971) ने महाराष्ट्र में कक्षा चार के लिए निर्धारित इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों के अभ्यास कार्य का परीक्षण किया। मैनुऐल (1982) ने एन0सी0ई0आर0टी0 पर्यावरणीय अध्ययन में पाठ्य-पुस्तकों का विश्लेषण किया और विभिन्न पक्षों में उन्हें दोषपूर्ण पाया। गोपालकृष्णन (1977), जोशी (1972), करणदिकार (1973) और करीम (1982) ने विभिन्न दृष्टिकोणों से पाठ्य-पुस्तकों की विषयवस्तु का विश्लेषण किया। जोशी (1999) ने विद्यालयी विज्ञान पाठ्य-पुस्तकों के विश्लेषण के लिए समुचित वर्ग योजना को विकसित करने का प्रयास किया। महाराष्ट्र राज्य के पाठ्य-पुस्तक निर्माण तथा पाठ्यक्रम अनुसंधान विभाग ने एक से दस स्तर तक की विद्यालयी पाठ्य-पुस्तकों में स्त्री की भूमिका का अध्ययन किया और प्रत्यक्ष रूप से लिंग पक्षपात पाया।वाई0एन0वालवाकर (2001) ने रत्नागिरि में कक्षा दो, तीन एवं चार की गणित की पाठ्य-पुस्तकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया। इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे:-

कक्षा दो, तीन एवं चार के लिए गणित की प्रस्तावित पाठ्य-पुस्तकों में त्रुटियों का पता लगाना, यदि कोई हो तो। विद्यार्थियों के बोध स्तर के लिए इन पाठ्य-पुस्तकों की उपयुक्तता का परीक्षण करना। के0 एन. ललिथम्मा ने 1973 में केरल के माध्यमिक विद्यालयों में आधुनिक गणित की पाठ्य-पुस्तकों के मूल्यांकन के लिए अध्ययन किया और यह पाया कि पुस्तक में निर्माण से ज्यादा प्रक्रिया के कार्य पर अधिक बल दिया गया था। किसी भी पाठ्य-पुस्तक में सन्दर्भ सामग्री नहीं दी गयी थी। सभी पाठ्य-पुस्तकों में मुख्य पहचानी गयीं वास्तविक संख्या और प्रत्ययों के समूल को प्रयोग में लाकर उचित रूप से सम्बन्धित करते हुए विभिन्न प्रकरण जोड़े गये थे। जी0एस0 यादव ने 1989 में कक्षा छः, कक्षा सात, कक्षा आठ की मराठी मातृभाषा की पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा मानवीय और नैतिक मूल्यों के विकास का अध्ययन किया।1990 में शशिकला जमखण्डी ने कक्षा पांच के लिए पुनः निर्धारित मराठी (मातृभाषा) की पाठ्यपुस्तकों को

तैयार करने पर अध्ययन किया। इस अध्ययन में पाठ्यक्रम की तैयारी के लिए निर्धारित मानदण्ड और पाठ्य-पुस्तकों के बीच असमानता की समस्या को ध्यान में रखा गया।1991 में महाराष्ट्र राज्य के पाठ्य-पुस्तकों के महकमे के द्वारा निर्मित पाठ्य-पुस्तकों में प्रयुक्त प्रकारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में पाठ्य-पुस्तक महकमा, पूना द्वारा प्रयुक्त प्रकारों और पाठ्य-पुस्तक के प्रत्येक प्रकार की उपयुक्तता को मापने का प्रयास किया गया।एन0टी0 एकबोट (2016) ने महाराष्ट्र राज्य की माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के द्वारा कक्षा एक से दस तक के लिए प्रस्तावित मराठी मातृभाषा की पुस्तकों के भाषीय विश्लेषण का अध्ययन किया और पाया कि एक भी पाठ्य-पुस्तक बिना त्रुटि के नहीं थीं। पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी के समय सभी तत्वों को ध्यान में रखते हुए सही क्रम का अनुकरण नहीं किया गया था। पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के समय भाषा विज्ञान के विकास की प्रक्रिया के सिद्धान्त को ध्यान में नहीं रखा गया था। पाठ्य-पुस्तकें पारम्परिक विधियों के द्वारा तैयार की गयीं थीं। पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करते समय विद्यार्थियों के समझने की शक्ति, आयु और मानसिक विकास को ध्यान में नहीं रखा गया और विषय-विशेषज्ञों द्वारा लिखित पाठों को नहीं लिया गया। इसी क्रम में ये पाठ्य-पुस्तकें विद्यार्थियों में भाषा विज्ञान के विकास को लाने के लिए अनुपयुक्त और अपूर्ण थीं।नरेश प्रसाद भोक्त ने 2013 में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में पाठ्य-पुस्तकीय संस्कृति के विकास का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि सरकार ने शिक्षा विभाग द्वारा अनुशंसित पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग विद्यालयों में अनिवार्य कर दिया। इनमें से अधिकांश पाठ्य-पुस्तकें अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें का अनुवाद मात्र थीं। इनका ग्रामीण बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश एवं अनुभवों से सम्बन्ध नहीं था। अतः ये बच्चों की रूचि एवं जिज्ञासा जगाने में असफल रहीं। साथ ही पाठ्य-पुस्तकों की रचना हेतु उन्हीं भारतीयों को योग्य माना गया जिनका अंग्रेजी भाषा एवं संस्कृत दोनों पर अधिकार हो। पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण-निर्धारण एवं चयन हेतु केन्द्रित व्यवस्था की जगह विकेन्द्रित व्यवस्था का होना आवश्यक है। सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों ही तरह के अभिकरणों को एक से अधिक तरह की पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण की स्वतंत्रता होनी चाहिये। लेकिन अध्यापक एवं छात्रों के इस बात की स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वे उपलब्ध पाठ्य-पुस्तकों में से उपयुक्त पाठ्य-पुस्तक का चयन कर सकें। यह न केवल देशी शिक्षा पद्धति की परम्परा के अनुकूल होगा वरन् उसके द्वारा पिछली दो शताब्दियों में पाठ्य-पुस्तकों के क्षेत्र में आई विकृतियों को भी समाप्त करना सम्भव हो सकेगा।

सीमांकन-इस आधार पर कक्षा 6,7एवं 8की पूर्व माध्यमिक स्तर की इतिहास, भूगोल एवं नागरिक शास्त्र की पुस्तकों को सम्मिलित किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण- अध्ययन के अन्तर्गत एन0 सी0 ई0 आर0 टी0 द्वारा निर्धारित मानक के अन्तर्गत पुस्तकों का मूल्यांकन किया गया है।

प्रयुक्त विधि-प्रयुक्त उपकरण के अन्तर्गत 'रेटिंग स्केल' जोकि पंचपदीय को प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष-प्रस्तुत शोधाध्ययन में पाया गया कि कक्षा 6, 7 एवं 8 की सामाजिक विज्ञान की समस्त पुस्तकों का आकार उचित है। पुस्तकों का विस्तार शिक्षार्थियों के स्तरानुकूल पाई गई। कक्षा 6 की इतिहास की पुस्तक की सिलाई अधिक की गई जिससे कि पाठ की महत्वपूर्ण जानकारी छिप गई है। इतिहास एवं भूगोल की कक्षा 7 की पुस्तकों में इन्हें भी जानिए तथा कुछ महत्वपूर्ण जानकारी रंगीन छपाई में देकर रोचक बनाया गया है। सभी कक्षाओं की पुस्तकों में पाठ सम्बन्धी रेखाचित्र, मानचित्र एवं शासकों की स्थापत्य कला के छाया चित्र भी दिए गए हैं। जिससे छात्र को सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. बुच एम0 वी0 (एडी)थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0
2. बुच एम0 वी0 (एडी)फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, न्यू दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0
3. बुच एम0 वी0 (एडी)फिफ्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0
4. सामाजिक अध्ययन शिक्षणडा0 भंवर लाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. सामाजिक अध्ययन शिक्षणसोती-शिवेन्द्र चन्द्र, आई0 पी0 एच0, मेरठ।

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों'का अध्ययन

डॉ.हलधर यादव
शिक्षा संकाय महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

गीता पांडे
शोधार्थिनी
शिक्षा संकाय महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

1.1 प्रस्तावना :-चिन्तन एवं अनुभवों के आधार पर जे० कृष्णमूर्ति ने मूल्यों की गहन व्याख्या की है। उनका मानना है कि मूल्यों को पहचानना व उनको आत्मसात करना व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है। विवेक से ही व्यक्ति अच्छे -बुरे का भेद कर अच्छे गुणों का चयन करता है। किसी व्यक्ति के विवेक को कोई भी शिक्षक गुरू, संत एवं शिक्षण प्रणाली उजागर नहीं कर सकती और न ही किसी अन्य व्यक्ति को दिया जा सकता है। मूल्य एवं विवेक व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताएँ हैं जिनमें अन्तर करना कठिन कार्य है। सरस्वती के वाहन हंस को विवेकशील माना जाता है उसमें दूध एवं पानी को अलग करने की क्षमता होती है। इसी प्रकार व्यक्ति विवेक द्वारा सदगुणों का चयन कर उन्हें आत्मसात करता है। मूल्यों को मन में बैठाने के सन्दर्भ में विवेक तत्व, आलोचनात्मक विश्लेषण एवं चिन्तन सदगुणों के चयन की प्रवृत्ति तथा भावपूर्ण क्रिया से अभिव्यक्ति होती है।

जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ है तभी से भारत अपनी शिक्षा, दर्शन तथा मानवीय मूल्यों के लिए प्रसिद्ध रहा है। हमारी संस्कृति अपने विभिन्न मूल्यों के कारण ही विश्व प्रसिद्ध है। शिक्षा मानव जीवन का आधार है। मानव का विकास एवं उन्नयन शिक्षा पर ही आधारित है शिक्षा के द्वारा ही मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का विकास सम्भव है। शिक्षा व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज अपने नागरिकों के विकास के लिए शिक्षा प्रक्रिया का उपयोग करके अपने ज्ञान कौशल, अवबोध, अभिवृत्तियों, मूल्यों आदि का जीवन में उन्नत समावेश करना चाहता है। जिससे उसके नागरिक अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन सफलतापूर्वक कर सके। इसके साथ ही शिक्षा समाज को विघटित करने वाले विभिन्न कारकों का खण्डन करके समाज को एकीकृत एवं संगठित करने का कार्य करती है।

मूल्य प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने मूल्य होते है जैसे दया, धर्म, सेवा, स्नेह, अनुशासन, समानता, स्वतन्त्रता, ईमानदारी, वफादारी आदि। परन्तु आज के समय में व्यक्ति के मूल्यों में निरन्तर कमी आती जा रही है और वह एक वैज्ञानिक मशीन बनकर रह गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि समाज में अनिवार्य मूल्यों में निरन्तर कमी के कारण पाठ्यक्रम में तथा शिक्षा व्यवस्था के समयानुसार परिवर्तन आवश्यक हो गया है ताकि शिक्षा द्वारा सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों को विकसित किया जा सके। सामाजिक मूल्यों से ही विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों का निर्धारण होता है तथा व्यक्ति को उचित एवं अनुचित का ज्ञान होता है। पारसन्स एवं शिल्स के अनुसार सामाजिक मूल्य सामाजिक व्यवहार के कठोर नियन्त्रक हैं। उनके अनुसार सामाजिक मूल्यों के बिना सामाजिक जीवन असम्भव है, सामाजिक व्यवस्था सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकती तथा व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपनी आवश्यकताओं एवं जरूरतों को भावात्मक रूप से नहीं बता पाएँगे। संक्षेप में सामाजिक मूल्यों का महत्त्व है-सामाजिक मूल्य मानसिक धारणाएँ हैं। अत जिस प्रकार समाज अमूर्त है उसी प्रकार मूल्य भी अमूर्त होते हैं। अन्य शब्दों में, सामाजिक मूल्यों को न तो देखा जा सकता है और न ही इनको स्पर्श किया जा सकता है, इनका केवल अनुभव किया जा सकता है।सामाजिक मूल्य व्यक्ति के लक्ष्यों, साधनों व तरीकों के चयन के पैमाने हैं। हम सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही किसी एक लक्ष्य को अन्य की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता देते हैं।

1.2 सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन-किसी भी विषय के विकास में शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकत्ता को प्रारम्भिक अवस्था के सैद्धान्तिक एवं संशोधित साहित्य का अध्ययन करना होता है। बिना सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन किये मौलिक अनुसंधान सम्बन्धी ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होगी। सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन एवं सर्वेक्षण अनुसंधानकत्ता को

एजिआनी (1977) ने एक लेख प्रकाशित किया जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि मूल्यों के विशुद्धीकरण अथवा नैतिक शिक्षा तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक विद्यालयों की सामाजिक एवं व्यवसायिक आचार नीति स्वयं स्वीकृत मानदण्डों पर दृढ़ नहीं हो जाती। भार्गव, आई० (1986) ने बच्चों के नैतिक विकास की आंशिक एवं औपचारिक संक्रियाओं और उनसे सम्बन्धित गृह एवं शैक्षिक पर्यावरण सम्बन्धी चरो के तुलनात्मक अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त किये। गुप्ता, (1989) ने किशोरों के नैतिक एवं व्यक्तिगत मूल्यों पर उनके लैंगिक एवं क्षेत्रीय विभिन्नता के प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि किशोरों के व्यक्तिक मूल्यों पर क्षेत्रीय विभिन्नता का आवश्यक रूप से प्रभाव पड़ता है। उत्तर प्रदेश राज्य के पूर्वी भाग में रहने वाले किशोरों के व्यक्तिक मूल्य प्रदेश के पश्चिमी भाग में रहने वाले किशोरों की अपेक्षा उच्च थे। लैंगिक विभिन्नता को किशोरों के नैतिक विकास में शामिल एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में पाया गया। बाजपेयी, (1991) ने नैतिक नियमों एवं मूल्यों के विकास में शिक्षा पाठ्यक्रम के हस्तक्षेप एवं उनके सहज प्रभाव का प्रयोगात्मक अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि बच्चों में नैतिक नियमों के विकास में मध्यवर्ती कार्यक्रमों द्वारा वृद्धि होती है, उन्होंने निष्कर्ष प्राप्त किया कि जो बच्चे इन कार्यक्रमों में सहभागिता करते हैं उनमें सही एवं गलत का निर्णय लेने की योग्यता अर्जित हो जाती है।

धुल एवं खत्री, (2002) ने बच्चों के नैतिक तर्क-वितर्क के आधार पर मूल्यों के स्पष्टीकरण के प्रभाव का अध्ययन उनके माता-पिता के अभिवृत्ति के सम्बन्ध में किया। अध्ययन के निष्कर्ष इस प्रकार थे।

1. मूल्य स्पष्टीकरण तकनीक का बच्चों के नैतिक तर्क-वितर्क विकास पर सार्थक धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

2. मूल्यों के स्पष्टीकरण के परिणामस्वरूप, बच्चों के नैतिक तर्क-वितर्क विकास पर उनके माता-पिता के व्यवहार का सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

कालिया एवं शियोरन, (2004) ने अनुसूचित जाति एवं अन्य जाति के युवा पुरूषों के मूल्यों एवं अनुसूचित जाति एवं अन्य जाति की युवा महिलाओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के निष्कर्षानुसार यह पाया गया कि अनुसूचित जाति के युवा पुरूष अनुसूचित जाति की युवा महिलाओं की अपेक्षा अधिक सैद्धान्तिक एवं धार्मिक हैं। अन्य मूल्यों में दोनों समूहों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अग्रवाल एवं अग्रवाल, (2006) ने गुजरात की हिंसा एवं हत्याकांड की घटना, पर्यावरण प्रदूषण, महिलाओं के विरूद्ध हिंसा, बाल श्रम आदि ने मूल्यों की भूमिका की व्याख्या की। शिक्षा का लक्ष्य बच्चों में ज्ञान के अतिरिक्त भौतिक, मानसिक, नैतिक एवं धार्मिक विकास का एकीकरण होना चाहिए। भाषा एवं साहित्य का सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में अहम एवं सार्थक स्थान है। बग्गा, निर्मल (2011) ने पाठ्य वस्तु शिक्षण के साथ मूल्यों के एकीकरण पर लेख प्रस्तुत किया। सामाजिक एवं राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण नैतिक और धार्मिक शिक्षा का विद्यालय पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं रह गया है। जो विचार, प्रत्यय एवं मूल्य छोटी उम्र में सीखे जाते हैं वे अर्द्धचेतन की गहराई में पहुँचकर स्मृति में रहते हैं। ये बच्चे बड़े होकर एक जिम्मेदार व्यस्क बनते हैं जो समाज में बदलाव ला सकते हैं। कुछ उच्च कक्षाओं के प्रारम्भिक स्तर पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों का एकीकरण सुन्दरतापूर्वक किया जा सकता है। खान, अक्सा, (2012) ने किशोरों के स्वास्थ्य मूल्य पर उनके माता-पिता की शिक्षा एवं व्यवसाय के प्रभाव का अध्ययन किया। दत्त संकलन के लिए डॉ जी०पी० शैरी एवं प्रो० आर०पी० वर्मा द्वारा निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि पिता की शिक्षा और व्यवसाय का प्रभाव उनके लड़के एवं लड़कियों के स्वास्थ्य मूल्य पर पड़ता है। इसी क्रम में माता की शिक्षा एवं व्यवसाय भी उनके लड़को एवं लड़कियों के स्वास्थ्य मूल्य को प्रभावित करता है। शर्मा, निधि (2013) ने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक मूल्यों की प्रासंगिकता का अध्ययन किया क्योंकि मूल्यों की अवनति हमारे राष्ट्र के विकास की प्रमुख समस्या हैं अध्ययन में पाया गया कि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक मूल्य शिक्षा के वर्तमान परिप्रेक्ष्य जैसे शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा पद्धति, शिक्षक-शिष्य सम्बन्ध, अनुशासन की विधि, शिक्षण एवं पाठ्यक्रम की विधि आदि में अत्यन्त लाभकारी है।

1.3 समस्या कथन-वर्तमान शोध की समस्या को स्पष्ट रूप से इन शब्दों में उल्लिखित किया गया है -

"प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।"

1.4 अध्ययन के उद्देश्य -प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में शोधकत्र्ता द्वारा निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं -

मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' का अध्ययन करना।

मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों की तुलना करना।

मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के विभिन्न आयामों का अध्ययन करना।

1.5 शोध परिकल्पना -प्रस्तुत अनुसंधान में शोधकत्र्ता ने सभी तथ्यों एवं उद्देश्यों पर विचार करने के पश्चात् निम्नांकित शून्य ;भ्वद्ध परिकल्पनाओं का निर्माण किया है-मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर सार्थक नहीं है। मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'झठ बोलने' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है। मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।

1.6 अनुसंधान विधि -इसलिए इस शोध कार्य में शोधकत्र्ता ने विश्वसनीय एवं ठोस परिणामों की प्राप्ति हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

आँकड़ो का प्रस्तुतीकरण, व्याख्या एवं विष्लेशण

शिक्षा स्तर के आधार पर नैतिक मूल्यों की गणना

परिकल्पना संख्या: 1.1

"मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर सार्थक नहीं है।"

तालिका सं०-1.1

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' की तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमान अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	26.54	1.53	5.35	3.288
उच्च प्राथमिक स्तर	204	28.07		3.79	

सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्या:

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों का क्रान्तिक अनुपात 3.288 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से अधिक है।अतः शिक्षा स्तर के आधार पर प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर पाया गया है।

अतः उपरोक्त परिकल्पना सं0-1.1 मेरठ जनपद के प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में अन्तर सार्थक नहीं है" को अस्वीकृत किया जाता है।

शिक्षा स्तर के आधार पर नैतिक मूल्यों की गणना

परिकल्पना संख्या: 1.2

"मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।"

तालिका सं०-1.2

प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'झठ बोलने'सम्बन्धी आयाम में तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमान अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	6.36	0.02	1.56	0.137
उच्च प्राथमिक स्तर	204	6.34		1.33	

सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्या: प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम का क्रान्तिक अनुपात 0.137 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से कम है। उपरोक्तानुसार प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम में सार्थक अन्तर नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या 1.2 को स्वीकृत किया जाता है।

परिकल्पना संख्या: 1.3 "मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।

तालिका सं०-1.3

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमान अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	6.83	0.22	1.65	1.502
उच्च प्राथमिक स्तर	204	7.05		1.24	

सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्या: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम का क्रान्तिक अनुपात 1.502 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से कम है। अतः प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में सार्थक अन्तर नहीं है तथा शोध परिकल्पना संख्या 1.3 को स्वीकृत किया जाता है।

शिक्षा स्तर के आधार पर नैतिक मूल्यों की गणना

परिकल्पना संख्या: 1.4 "मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम में अन्तर सार्थक नहीं है।

तालिका सं०-1.4

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम में तुलना के लिए टी-परीक्षण से प्राप्त परिणाम

समूह	संख्या	मध्यमान	मध्यमान अन्तर	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात
प्राथमिक स्तर	196	7.15	0.84	1.73	5.562
उच्च प्राथमिक स्तर	204	7.99		1.24	

सार्थकता स्तर 0.05

व्याख्या: प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम का क्रान्तिक मूल्य 5.562 है जो स्वतन्त्रतांश 398 तथा सार्थकता स्तर 0.05 पर क्रान्तिक मूल्य 1.96 से अधिक है। अतः प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'चोरी करने' सम्बन्धी आयाम में सार्थक अन्तर है तथा शोध परिकल्पना संख्या 1.4 को अस्वीकृत किया जाता है।

शोध निष्कर्ष: मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' में अन्तर सार्थक पाया गया। अतः प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्य' 0.05 सार्थकता स्तर पर एक समान नहीं है। दोनों समूहों के मध्यमान के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में 'नैतिक मूल्यों' का विकास उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा कम हुआ है। मेरठ जनपद के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'झूठ बोलना' सम्बन्धी आयाम में 0.05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक नहीं पाया गया। अतः प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'झूठ बोलने' सम्बन्धी आयाम पर उनके शिक्षा स्तर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और वह दोनों स्तरों के लिए समान है। मेरठ जनपद प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'बेईमानी' सम्बन्धी आयाम में 0.05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक पाया गया। अतः इस आयाम पर शिक्षा स्तर का प्रभाव पड़ता है। दोनों स्तर के विद्यार्थियों में इस आयाम की स्थिति एक समान नहीं है। दोनों समूहों के मध्यमानों से पता चलता है कि यह आयाम उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में अधिक विकसित है। मेरठ जनपद प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के 'नैतिक मूल्यों' के 'धोखा देना' सम्बन्धी आयाम में 0.05 सार्थकता स्तर पर अन्तर सार्थक पाया गया। अतः सम्बन्धित आयाम भी शिक्षा के स्तर द्वारा प्रभावित होता है तथा दोनों स्तर के विद्यार्थियों मे 'धोखा देना' सम्बन्धी आयाम की स्थिति एक समान नहीं है। दोनों स्तर के विद्यार्थियों के सम्बन्धित आयाम के मध्यमानों को देखकर ज्ञात होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा यह आयाम अधिक विकसित है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Agarwal Reena & Agarwal Ranjana : Educating for human rights by inculcating values Universal news Vol. 44 No. 05, Jan 30 – Feb. 05,P- 50 – 52.
2. Bagga, Nirmal, (2011) : "Integration of values with content teaching", The primary teacher, vol. 36 NCERT Campus New Delhi, Page-72.
3. Bhatnagar, R.P. (2010) : "Reading methodology of research in Education, R. Lall Book Depot Meerut, Page – 181.
4. Buch, M.B. 2007 : Sixth survey of Research in Education, Vol. I, 1993 – 2000, NCERT, New Delhi Page 344 – 395.
5. Kaul, Lokesh, (2011) : "Methodalogy of Educational research", Vikas Publishing house, Pvt. Ltd., New Delhi, Page 165 – 182.
6. Khan Aqsa, "The effect of Parental Education and occupation on health value their adolescents" Prachi journal of Psycho-cultural dimensions, Vol. 28, Page – 95.
7. कपिल, एल०के० (2012), "अनुसंधान विधियाँ", एच०पी० भार्गव बुक हाऊस, आगरा, पृष्ठ सं०-35, 148, 366.
8. चैधरी, रेनू (2007), "मूल्य एवं नैतिक शिक्षण", श्री कविता प्रकाशन, जयपुर पृष्ठ सं० 3-7
9. तिवारी, चन्दा (2007), "मापन मूल्यांकन एवं प्रश्न-पत्र संरचना", जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, पृष्ठ सं०-28-31
10. पाण्डेय, के०पी० (2010), "अन्वेषिका" शिक्षक शिक्षा की भारतीय पत्रिका, वोल्यूम-07, पृष्ठ सं०-13
11. राजपाल, एच०सी० (2008), "आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य", पृष्ठ सं०-78
12. राय, पी०एम० एवं राय सी०पी० (2012), "अनुसंधान परिचय", लक्ष्मी नारायण

आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य एवं विकास

डॉ.हलधर यादव
शिक्षा संकाय महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

शिप्रा अग्रवाल
शोधार्थिनी
शिक्षा संकाय महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

भारत संसार का गुरू रहा है। इसका अतीत रत्नों से भी अधिक जाज्वल्यमान रहा है। यह 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। इसकी संस्कृति करोड़ों वर्ष पुरानी है। देवना भी स्वर्ग से भारत-भूमि में आने को लालायित रहते हैं, पर यह बड़े दःख की बात है कि ऐसा विश्व-शिरोमणि भारत देश आज पतन की ओर जा रहा है। राष्ट्र का नैतिक चरित्र ह्रासोन्मुख क्यों होता जा रहा है? यह एक विचारणीय विषय है। भारत अपनी जिस विशेषता के कारण विश्व मान्य है वह है उसका धर्म और दर्शन। इसी के बल पर यहाँ के निवासी कभी देवतुल्य जीवन जीते थे, परन्तु आज स्थिति विपरीत हो गयी है तो भी यदि हम सच्चे मन से प्रयत्न करें तो पुनः वह गौरव प्राप्त कर सकते हैं।वेद समग्र ज्ञान का उत्स है जिसका उद्भव ब्रह्मा जी से है वैदिक साहित्य अत्यन्त विशाल है। इसमें संहिता ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषद् सम्मिलित हैं। वेदार्थ के सम्यगव बोध के लिए शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष-इन छः वेदांगों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के व्यापक स्वरूप को प्रकट करने के लिए आर्थिक, राजनैतिक एवं विश्वजनीन सभी विषय समाहित हैं। देश और समाज को पतन से बचाने के लिए नैतिक शिक्षा भारत के हर विद्यालय में अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए -इस विषय में दो मत नहीं हो सकते, किन्तु नैतिक शिक्षा कैसे दी जाए यह एक विवादास्पद विषय है। शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए गठित आयामों ने समय-समय पर नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता तो स्वीकार की और अपनी योजना भी प्रस्तुत की, किन्तु उसका कार्यान्वयन बहुत कम देखने में आया।

1.1 वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। तब यह अनुमान लगाया जा सकता हैं। कि उस काल में यह शिक्षा केवल शिक्षित परिवारों के बच्चों तक सीमित थी और इसका कोई सर्वमान्य स्वरूप निश्चित नहीं था। परिणाम यह हुआ कि इस काल में प्राथमिक शिक्षा का समुचित विकास नहीं हो सका।

1.2 बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं ने अपने मठों एवं विहारों में प्राथमिक एवं उच्च, दोनों स्तरों की शिक्षा की व्यवस्था शुरू की। यह शिक्षा बौद्ध संघों के नियन्त्रण में थी, इसलिए दोनों स्तरों की शिक्षा का स्वरूप निश्चित हुआ, उनके उद्देश्य निश्चित हुए और उनके पाठ्यक्रम निश्चित हुए। बौद्धों ने अपने मठों एवं विहारों में सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्रवेश देना शुरू किया, परिणामस्वरूप सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के अवसर सुलभ हुए, परन्तु ये बौद्ध मठ एवं विहार देश के सभी स्थानों पर स्थित नहीं थे, इसलिए इस काल में भी प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ नहीं बनाया जा सका। हाँ, एक ओर बौद्ध मठों एवं विहारों में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होने और दसरी ओर बौद्धों की टक्कर में ब्राह्मणों द्वारा पाठशालाओं की स्थापना होने से प्राथमिक शिक्षा का विकास अवश्य प्रारम्भ हुआ।

1.3 पूर्व मुगल काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

1192 में मौहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चैहान को परास्त कर भारत में मुस्लिम राज्य की नींव डाली। इस विजय के बाद वह तो स्वदेश लौट गया, परन्तु अपने सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली का शासक बना गया। 1206 में मौहम्मद गौरी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का बादशाह बन गया और उसने बख्तियार खिलजी को अपना सेनापति बनाया। शिक्षा के क्षेत्र में उसका पहला कदम था बख्तियार खिलजी द्वारा उस समय के विश्वविख्यात बौद्ध विश्वविद्यालय नालन्दा और क्रिमशिला के भवनों को धराशायी करवाना, उनके पुस्तकालयों को जलवाना और उनके शिक्षकों को मरवा डालना। परिणामतः बौद्ध शिक्षा के अन्य क्षेत्र भयवश स्वयं बन्द हो गए, परन्तु ब्राह्मणीय शिक्षा केन्द्र दबे पाँव अवश्य चलते रहे। कुतुबुद्दीन ऐबक का शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा बड़ा कार्य था- स्थान-स्थान पर मस्जिदें बनवाना और उनके साथ प्राथमिक शिक्षा केन्द्र मकतबों का निर्माण एवं संचालन। इन मकतबों में अरबी और फारसी भाषाओं का अध्ययन और कुरान शरीफ की आयतों को कण्ठस्थ करना अनिवार्य था, परिणामतः हिन्दू जाति के बच्चे इनमें प्रवेश नहीं लेते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक के बाद दिल्ली की गद्दी पर जो भी मुसलमान बादशाह बैठे उन्होंने जगह-जगह मकतब और मदरसे स्थापित करने का कार्य जारी रखा। 1451 में भारत में लोदी वंश का शासन स्थापित हुआ। लोदी वंश के द्वितीय बादशाह सिकन्दर लोदी ने आगरा को अपनी राजधानी बनाया और आगरा, मथुरा तथा कुछ अन्य स्थानों पर अनेक मकतब और मदरसों का निर्माण कराया। सिकन्दर लोदी उदार प्रवृति का व्यक्ति था, उसके शासन काल में हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार किया गया, परिणामतः मकतबों के साथ-साथ ब्राह्मणीय पाठशालाओं की संख्या भी बढ़ी और हिन्दू बच्चों ने मकतबों और पाठशालाओं में प्रवेश लेना शुरू किया और प्राथमिक शिक्षा के विकास में कुछ गति आई।

1.4 मुगलकाल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

1556 में बाबर ने लोदी वंश के अन्तिम बादशाह इब्राहिम लोदी को पराजित कर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। बाबर अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं का विद्वान था। उसने अपने शासन काल में यहाँ अनेक मकतबों और मदरसों का निर्माण कराया। बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूँ ने भी शिक्षा के प्रसार में रूचि ली। हुमायूँ के बाद उसका बेटा अकबर गद्दी पर बैठा। अकबर स्वयं पढ़ा-लिखा नहीं था, परन्तु वह कला और विद्या का बड़ा प्रेमी था, साथ ही वह बहुत उदार प्रवृति का व्यक्ति था। उसने अपने शासन काल में आगरा, फतेहपुर सीकरी और अन्य स्थानों पर अनेक मकतब और मदरसों का निर्माण कराया और इनमें भारतीय भाषाओं की शिक्षा की भी व्यवस्था की और इनमें हिन्दू-मुसलमान दोनों के बच्चों को समान स्थान दिया। साथ ही उसने हिन्दू शिक्षण संस्थाओं को भी आर्थिक सहायता देना शुरू किया। परिणामतः उसके शासन काल में शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक विकास हुआ, प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी। अकबर के बाद उसका बेटा जहाँगीर गद्दी पर बैठा। उसने पुराने मकतब और मदरसों की मरम्मत कराई और उनकी आर्थिक सहायता जारी रखी। जहाँगीर के उत्तराधिकारी शाहजहाँ ने भी इस कार्य को जारी रखा। परन्तु कुछ वर्ष बाद ही शाहजहाँ को गद्दी से हटाकर उसका बेटा औरंगजेब बादशाह बन बैठा। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था, हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार बहुत द्वेषपूर्ण था। उसने गद्दी पर बैठते ही हिन्दू शिक्षण संस्थाओं को नष्ट करवा डाला और उनके स्थान पर मुस्लिम शिक्षण संस्थाएँ- मकतब और मदरसे स्थापित किए।

1.5 ईसाई मिशनरी काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

भारत में आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश करने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को हैं। यहाँ सर्वप्रथम 1510 में पुर्तगाली व्यापारी और उनके साथ पुर्तगाली ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया, उन्होंने गोआ, कोचीन और बान्द्रा में प्राथमिक स्कूलों की स्थापना की। इन स्कूलों में पुर्तगाली भाषा, स्थानीय भाषा, गणित और स्थानीय शिल्पों की शिक्षा की व्यवस्था थी। इनके बाद 1613 में ब्रिटिश व्यापारी और उनके साथ ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया। इनके बाद इस देश में 1667 में फ्रांसीसी व्यापारी और फ्रांसीसी ईसाई मिशनरियों और 1680 में डेन व्यापारी और डेन ईसाई मिशनरियों ने प्रवेश किया।

कम्पनी शासन काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास

1757 के प्लासी युद्ध और 1764 के बक्सर युद्ध की विजय के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी तत्कालीन बंगाल, बिहार और मगध प्रान्त की शासक बन गई, उसके हौंसले बुलन्द हो गए। 1773 में इंग्लैण्ड की सरकार ने रेग्युलेटिंग एक्ट पास किया और उसके तहत वारेन हेस्टिंग को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया और इस प्रकार यहाँ एक नए युग की शुरूआत हुई। 1793 में

ब्रिटेन की पार्लियामैन्ट ने कम्पनी को नया आज्ञापत्र प्रसारित किया। यूँ तो इस आज्ञा पत्र में कम्पनी को अपने अधीन भारतीयों की शिक्षा व्यवस्था करने का कोई आदेश नहीं दिया गया था, परन्तु फिर भी उसने यहाँ अंग्रेजी प्रणाली के विद्यालय और महाविद्यालयों की स्थापना की। 1807 में लार्ड मिन्टों भारत के नए गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। उन्होंने भारतीय पद्धति के विद्यालयों की वकालत की, परन्तु ब्रिटेन संसद में विरोध होने के कारण वे ऐसा नहीं कर सकें।

1.6 ब्रिटिश शासन काल में प्राथमिक शिक्षा का विकास -1857 में भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति का दमन करने के बाद 1858 से यहाँ सीधे ब्रिटेन की सरकार का शासन स्थापित हो गया। लार्ड कैनिंग यहाँ के प्रथम गवर्नर जनरल एवं वायसराय नियुक्त हुए। 1859 में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा कर लगाया और इससे प्राप्त धनराशि से प्राथमिक शिक्षा के विकास का प्रयत्न शुरू किया, परन्तु इसमें उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। 1882 में उसने भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में इसके चार सुझाव बड़े महत्वपूर्ण थे। एक यह कि सरकार प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों पर छोड़ दे और प्रान्तीय सरकारें इन निकायों को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ में। तीसरा यह कि प्रान्तीय सरकारें इन भाषाओं के विकास के लिए प्रयत्न करें। और चैथा यह कि प्राथमिक शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जाए। इसकी सिफारिशों के आधार पर प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय निकायों को सौंप दिया गया। इन स्थानीय निकायों ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न शुरू किए। परिणाम स्वरूप प्राथमिक शिक्षा में विकास शुरू हुआ।

1.7 स्वतन्त्र भारत में प्राथमिक शिक्षा का विकास -15 अगस्त, 1947 को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। तब से अब तक के समय को स्वतन्त्र काल कहते हैं। 26 जनवरी, 1950 से हमारे देश में हमारा अपना संविधान लागू हुआ। प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में इसकी 45 वीं धारा मे ं स्पष्ट निर्देश है - राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से दस वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा'और बस तभी से हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क करने की ओर ठोस प्रयास किये गये, यह बात दूसरी है कि उस लक्ष्य को हम 10 वर्षों के अन्दर तो क्या आज 75 वर्ष बाद भी प्राप्त नहीं कर सके हैं।इस बीच देश में राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर आई। राष्ट्रीय नेताओं ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की माँग की। इस सन्दर्भ में तत्कालीन बड़ौदा नरेश सियाजीराव गायकवाड़ का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 1892 में 9 ग्रामों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा योजना लागू की। इस कार्य में उन्हें पूरी सफलता मिली, परिणामतः 1906 में उन्होंने एके अधिनियम द्वारा अपने पूरे राज्य में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। 1910 में गोपालकृष्ण गोखले ने केन्द्रीय धारा सभा में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में एक प्रस्ताव रखा। सरकार ने प्रस्ताव तो स्वीकार नहीं किया, परन्तु उसके लिए प्रयत्न करने का आश्वासन अवश्य दिया। जब सरकार ने इस ओर कोई कदम नहीं उठाया तो मार्च, 1911 में गोखले ने इसे केन्द्रीय धारा सभा में विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया। यह विधेयक भी पास नहीं हुआ, परन्तु इससे देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने हेतु एक मुहिम शुरू अवश्य हो गई सरकार ने 1913 में शिक्षा सम्बन्धी नए प्रस्ताव की घोषणा की। इस शिक्षा नीति, 1913 में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में चार घोषणाएँ बड़ी महत्वपूर्ण थीं- पहली यह कि निम्न प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाए। दूसरी यह कि आवश्यतानुसार उच्च प्राथमिक स्कूल स्थापित किए जाएँ। तीसरी यह कि व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाए। और चैथी यह कि देशीपाठशालाओं को उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाए। इसके तहत 1920 तक तत्कालीन 11 में से 8 प्रान्तों (बम्बई, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और मद्रास) में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम पास किए गए और प्राथमिक विद्यालयों की संख्या बढ़कर 1,05,017 हो गई और इनमें पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या बढ़कर 61,09,752 हो गई। परन्तु इतनी वृद्धि होने के बाद भी उस समय 6-11 आयु वर्ग के केवल 25 प्रतिशत बच्चे ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उसी बीच 1921 में प्रान्तीय सरकारों में भारतीयों का प्रतिनिधित्व हुआ, उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए कुछ ठोस कदम उठाए। परिणामस्वरूप 1936-37 में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या बढ़कर 1,12,244 हो गई और इनमें पढ़ने वाले बच्चों की संख्या बढ़कर 1,02,24,288 हो गई।

1.8 तथ्य और आंकड़े-जबकि भारत सरकार प्राथमिक शिक्षा पर बहुत अधिक जोर दे रही है, भारत की 1991 की जनगणना के अनुसार, 6 से 14 वर्ष की आयु के कम से कम 3.5 करोड़ बच्चे स्कूल में नहीं जा रहे हैं। इसमें थोड़ा और जोड़ें तो कक्षा 1 में दाखिला लेने वाले सभी बच्चों में से एक तिहाई से कुछ अधिक ही कक्षा 8 तक जाते हैं। इसमें से 53 के आसपास 5 से 9 वर्ष आयु वर्ग की लड़कियां हैं, जो अभी-भी अशिक्षित हैं।प्राथमिक शिक्षा को 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा भी कहा जाता है। इन वर्षों को बच्चों के लिए महत्वपूर्ण बुनियादी वर्ष माना जाता है, जब उनके जीवन की आधारभूत बातें सुदृढ़ता प्राप्त करती है, उनका व्यक्तिगत कौशल, उनकी समझ, भाषागत योग्यता, परिष्कृत रचनात्मकता आदि विकसित होते हैं।आज, प्राथमिक स्तर पर सभी मान्यता प्राप्त विध्यालयों में से 80% विध्यालय सरकार द्वारा संचालित या समर्थित हैं, जिसके कारण भारत शिक्षा प्रदान करने वाला सबसे बड़ा देश है। नरेंद्र मोदी सरकार ने शिक्षा से जुड़ी कई आशाजनक योजनाएं शुरू की है।प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए सर्व शिक्षा अभियान को भारत के प्रमुख कार्यक्रम के रूप में लागू किया गया था, जिसमें शिक्षा के लिए सर्वव्याप्त, सुलभ पहुँच व उसका प्रतिधारण, शिक्षा में लिंग व सामाजिक ऊँच-नीच आधारित अंतर को पाटने और बच्चों के अधिगमन स्तर में वृद्धि के लिए सर्वव्याप्त पहुंच प्रदान करने के लिए आदेशित किया गया है।

अन्य बातों के साथ-साथ मध्यवर्ती कोशिशों के रूप में अन्य योजनाएं भी शामिल थीं, जिसमें नए स्कूलों का निर्माण और विकास, अतिरिक्त शिक्षकों कि नियुक्ति, सेवारत शिक्षकों को नियमित प्रशिक्षण, अधिगम परिणामों में सुधार सुनिश्चित करने के लिए अन्य शैक्षणिक सहायता सामाग्री, जैसे मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, यूनिफार्म आदि। हालांकि, योजना का कार्यान्वयन दुर्भाग्यवश बहुत धीमी गति से किया गया, परिणामतः प्रवेश दर में तेजी नहीं रही। 2016 में एनसीईआरटी द्वारा किए गए एक सर्वे के अनुसार, अब तक कक्षा 3, 5 और 8 के लिए समग्र अधिगम में मामूली सुधार हुआ है।प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए लोकप्रिय नीति के कुछ अन्य मध्यवर्ती सुधारों के रूप में 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' 'ई-पाठशाला' 'राष्ट्रीय अविष्कार अभियान' 'स्वयं'आदि कार्यक्रम है। जबकि 'निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009' 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों को स्कूलों में मुफ्त और अनिवार्य प्रवेश, उपस्थिति और प्राथमिक शिक्षा को पूरा करने के मौलिक अधिकार को एक कानूनी स्वरूप प्रदान करता है, फिर भी नामांकन करने वाले और अपनी प्राथमिक स्कूली शिक्षा पूरी करने वाले बच्चों के बीच एक संख्यात्मक अंतर है।

2011 में, शिक्षा के अधिकार के एक आदेशानुसार सभी निजी स्कूलों को सामाजिक रूप से वंचित और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के बच्चों के लिए 25% सीटें आरक्षित करनी पड़ी। इस प्रावधान ने बेहतर भारत के लिए सामाजिक समावेश को प्रोत्साहित किया होगा, लेकिन अधिनियम के लागू होने से लेकर अब तक केवल 8% स्कूलों ने आरटीई का अनुपालन किया गया है।

1.9 आधुनिक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य:-

जहाँ तक भारत में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करने की बात है, इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम भारतीय शिक्षा आयोग ने विचार व्यक्त किए। उसने प्राथमिक शिक्षा के केवल दो उद्देश्य निश्चित किए थे- एक जन शिक्षा का प्रसार और दूसरा व्यवहारिक जीवन की शिक्षा। बस, तब से अब तक हम इन्हीं उद्देश्यों को भाषायी अन्तर से अभिव्यक्ति करते रहे हैं। नवम्बर, 2000 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद ने विद्यालयी शिक्षा के 20-25 उद्देश्य निश्चित किए हैं। उन उद्देश्यों के आधार पर हम प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं-बच्चों को स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का ज्ञान कराना

और स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाओं में प्रशिक्षित करना। बच्चों को उनकी मातृभाषा और उनके प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान कराना। बच्चों में सामूहिकता की भावना विकसित करना, उन्हें वर्ग भेद से ऊपर उठाना और जीवन कला में प्रशिक्षित करना। बच्चों को सांस्कृतिक क्रियाओं- उत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य आदि में भाग लेने की ओर अग्रसर करना और उनमें सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना। बच्चों में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का विकास करना, उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना। बच्चों को शरीर श्रम के अवसर देना, उनमें शारीरिक श्रम के प्रति आदर भाव पैदा करना और उनकी सृजनात्मक शक्ति को सचेष्ट करना। बच्चों को एक-दूसरे का सम्मान करने की ओर प्रवृत्त करना और उन्हें प्रेम, सहानुभूति और सहयोग से कार्य करने की ओर उन्मुख करना। बच्चों को पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सचेत करना, उनमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास करना। बच्चों को विभिन्न धर्मों के पैगम्बरों और उनकी शिक्षाओं से परिचित कराना, उनमें सर्वधर्म सद्भाव विकसित करना।

******

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. कपिल, एच. के. 2001, 'अनुसंधान विधियाँ' भार्गव बुक हाउस, आगरा, पेज न0 12
2. पूर्ववत्
3. कोहली, विजय कुमार, 1975, 'भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ'कृष्णा ब्रादर्स चाक अड्डा टांडा, जालन्धर, पेज नं0 116
4. कौल, लोकेश, 1984, 'शिक्षा अनुसंधान की कार्यप्रणाली', विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, पेज नं0 - 46
5. यूनुस एव. एम. एम. तथा सिंह कर्ण कर्ण (2007) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, गोविंद प्रकाशन, लखीमपुर खीरी, पृ. 32
6. यादव मोना (2009) - कसतूरबा गांधी बालिका विद्यालय - बालिका शिक्षा के लिए सार्थक पहल, प्राथमिक शिक्षक, एन, सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली। पृ. 10
7. दैनिक जागरण (2009) - कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों के उच्चीकरण करने का प्रस्ताव, दैनिक समाचार पत्र, जागरण प्रकाशन, लखनऊ, 2 नवंबर , पृ. 9
8. चैधरी, सुजीत कुमार 2005, रोल आफ लैंग्वेज इन एजुकेशन एंड फारमेशन आफ सोशल स्टेटस, जर्नल आफ इंडियन एजुकेशन, नवंबर, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
9. दशोरा, राकेश एंड अनुश्री शर्मा 2003, रोल आफ ट्राइबल वीमन इन एजुकेशन, योजना वपब्लिकेशन डिवीजन, जून
10. गेरे.एम.एस. 1970, फील्ड स्टडीज इन द सोशियोलाजी आफ एजुकेशन आल इंडिया रिपोर्ट, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
11. शिव दत्त त्रिवेदी सामुदायिक शिक्षा एवं सहभागिता के संबंध में विकासात्मक क्रियाकलाप राज्य शिक्षा संस्थन, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद
12. स्त्री-पुरूष समानता, अक्टूबर 2006, योजना मासिक पत्रिका भवन, संसद माग, नयी दिल्ली
13. भारत सरकार 2000 , सबके लिए शिक्षा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली।

ग्रामीण समाज पर भूमि सुधार कार्यक्रमों के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ.रवीश कुमार सिंह

असि. प्रोफेसर, समाजशास्त्र

फ.अ.अ. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

महमूदाबाद सीतापुर, उत्तर प्रदेश मो.नं.- 8090300300

शोध सार- भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जो अधिकांशतः कृषि के माध्यम से अपनी आजीविका चलाती है। जिस समाज (देश) के अधिकांश लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हों और कृषि जिनकी आजीविका का मुख्य स्रोत हो, वह समाज कृषि के समुचित विकास के बिना आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता[1]। विकासशील देशों के समक्ष मुख्य समस्या आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की है। भारत एशिया के उन देशों में आता है जो नियोजन एवं विकास कार्यक्रमों के माध्यम से प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं। यहाँ पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण पुनर्निर्माण को प्रधानता दी गयी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भूमि सुधारों के द्वारा किराये पर भूमि जोतने वाले, बटाईदारी में खेती करने वाले तथा भूमिहीन श्रमिकों की स्थिति सुधारने का प्रयास किया गया है। कृषि क्षेत्र में यन्त्रीकरण भी हुआ हैं आज कृषक ट्रैक्टर, पम्पिन्ग सेट एवं अन्य उपकरणों के साथ-साथ उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक खादों, नवीन कृषि प्रविधियों एवं सिंचाई की सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं। कृषक समाज को परिभाषित करते हुए राबर्ट रेडफील्ड ने लिखा हैं कि इसके अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो निर्वाह के लिए अपनी भूमि पर नियन्त्रण बनाए रखते हैं, कृषि कार्य या नगरीय लोगों की ओर देखते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं, जिनके जीवन का ढंग उन्हीं के समान है, लेकिन कुछ सभ्य प्रकार का है।[2] किसी देश में कृषक समाज की प्रकृति क्या होगी? यह वहाँ की भूमि व्यवस्था पर निर्भर करता है, जैसी भूमि व्यवस्था होती है, कृषि कार्यों में संलग्न व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध भी उसी के अनुरूप होते हैं। भूमि व्यवस्था का अर्थ उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा भूमि का स्वामित्व, अधिकार एवं दायित्व निर्धारित किये जाते हैं।

सूचक शब्द- रैयतवारी, महालवारी, जमींदारी, जजमानी, नियोजन, चकबन्दी, काश्तकारी, सहकारी खेती, भू-दान, नौटंकी।

"प्रस्तुत शोध बाराबंकी जनपद के विकास खण्ड हैदरगढ़ के गाँव ओहरामऊ के निवासियों पर आधारित है।"

स्वतन्त्रता के समय सन् 1947 में भारत में पायी जाने वाली भूमि व्यवस्था को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है-

(क) रैयतवारी व्यवस्था- इस व्यवस्था में भूमि पर स्वामित्व राज्य का होता था परन्तु व्यवहार में प्रत्येक रजिस्टर्ड व्यक्ति (रैयत) स्वामी होता था। जब तक वह भूमि पर राज्य को नियमित रूप से कर देता रहता था, उसे बेदखल नहीं किया जा सकता था। भूमि पर मालगुजारी का निर्धारण राज्य द्वारा 20-40 वर्ष के पश्चात भूमि की उर्वरा शक्ति तथा उपज के अनुसार तय किया जाता है।

(ख) महालवारी व्यवस्था- महालवारी व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि पर ग्राम समुदाय का संयुक्त स्वामित्व होता था और ग्राम समुदाय के सदस्य या तो संयुक्त रूप से या अलग-अलग लगान चुकाने के लिए उत्तरदायी होते थे।

(ग) जमींदारी व्यवस्था- जमींदारी व्यवस्था में जमींदार भूमि का स्वामी माना जाता था तथा भूमि सम्बन्धी सभी अधिकार उसी के हाथ में होते थे। सरकार से कृषक का सीधा सम्बन्ध नहीं होता था बल्कि एक मध्यम वर्ग के माध्यम से होता था, जिसे जमींदार कहते थे। इस प्रकार की भूमि को जोतने वालों का भूमि में स्वामित्व नहीं होता था।[3] प्रथम पंचवर्षीय योजना में राज्यों को भूमि सुधार योजना की रूपरेखा बनाने के लिए कहा गया। दूसरी योजना में मध्यस्थ किरायेदारों की समाप्ति, काश्तकारी व्यवस्था में सुधार, भूमि की उच्चतम सीमाओं का निर्धारण चकबन्दी एवं

कृषि व्यवस्था के पुनर्गठन की बात की गयी लेकिन तीसरी, चौथी व पाँचवीं योजना में भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से लागू करने पर जोर दिया गया।

छठवीं योजना में यह व्यवस्था की गयी- 1- जिन राज्यों में भूमिहीन कृषकों को मालिकाना हक देने के नियम नहीं हैं, वहाँ पर नियम बनाए जायें।

2- भूमि सम्बन्धी आँकड़ों को संकलित किया जायें।

3- चकबन्दी कार्यक्रम चलाया जायेगा। भूमिहीन श्रमिकों के मकानों लिए स्थान की व्यवस्था की जायेगी।

सातवीं योजना- में वर्तमान भूमि कानून को कड़ाई से लागू करने की बात कही गयी थी।

आठवीं योजना- में वर्तमान भूमि सुधार के पाँच सिद्धांतों के पालन की बात कही गयी है-

1- मध्यस्थों का अन्त। 2- काश्तकारी सुधार।

3- अतिरिक्त भूमि का पुनः वितरण. 4- चकबन्दी।

5- भूस्वामित्व रिकार्ड बनाना।

एस. एम. शाह ने लिखा है कि ''पूर्व (पिछले वर्षों) में भूमि सुधार के काफी प्रयत्न किये गये, जिनके फलस्वरूप निम्नांकित कार्यक्रम लागू किये गये थे[4]।''

1- मध्यस्थों एवं जमींदारों का उन्मूलन। 2- काश्तकारी व्यवस्था का उन्मूलन।

3- जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारण। 4- कृषि का पुनर्गठन -

क- जोतों की चकबन्दी। ख- सहकारी खेती।

ग- भूदान। घ- भूस्वामित्व का रिकार्ड।

संयुक्त राष्ट्र की भूमि सम्बन्धी एक रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि ''भारत में भूमि सुधार के हाल के अधिनियम संख्यात्मक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इतने अधिनियम कहीं नहीं बनाए गये जो भूमि के विशाल क्षेत्रों को अपने दायरों में सम्मिलित करते हैं लेकिन ऐसा होने पर भी भूमि सुधार कार्यक्रम की प्रगति धीमी रही है।''प्रो. दान्तेवाला का मत है कि ''अब भारत में जो भूमि सुधार हुए हैं या निकट भविष्य में होने वाले हैं, इनका उद्देश्य सर्वांगीण विकास है परन्तु क्रियान्वयन के अभाव में इनका परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहा है।''

गुन्नार मिर्डल ने लिखा है कि ''भूमि सुधार कानून जिस ढंग से क्रियान्वित किये गये उससे सामान्यतः उनकी भावनाओं एवं अभिप्राय को हताश होना पड़ा।''

आन्द्रे बिताई ने भूमि सुधार के सन्दर्भ में लिखा है कि तथ्यों के सूक्ष्म अवलोकन के आधार पर कहा जा सकता कि भारत में भूमि सुधार कृषक सामाजिक संरचना में व्याप्त मौलिक असमानताओं को समाप्त या कम करने में असफल रहे हैं। भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्षेत्र किराये पर की जाने वाली भूमि के क्षेत्र हैं[5]।

अध्ययन के उद्देश्य- भूमि सुधार कार्यक्रम के विषय तथा कार्यक्रम की विकास की जानकारी प्राप्त करना एवं अध्ययन क्षेत्र में कृषकों के जीवन में हुए सुधारों का मूल्यांकन करना है। इसके अतिरिक्त आधुनिक यंत्रों तथा अन्य आधुनिक कृषि सम्बन्धी तकनीकों का प्रयोग किस प्रकार करते हैं, ऊसर भूमि कितनी मात्रा में उपजाऊ है तथा इससे पैदा की जाने वाली फसल की पैदावार ठीक है अथवा नहीं, तथा भूमि सुधार कार्यक्रम के तहत कृषकों की आर्थिक सामाजिक दशा में क्या परिवर्तन हुए हैं, का भी अध्ययन करना है।

शोध प्ररचना एवं पद्धति-प्रस्तुत अध्ययन में अन्वेषणात्मक शोध प्ररचना को अपनाया गया इसके अन्तर्गत शोध का उद्देश्य किसी सामाजिक घटना में अन्तर्निहित कारणों को खोज निकालना है। यहाँ भूमि सुधार कार्यक्रम का ग्रामवासियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है। द्वितीयक तथ्य वे सूचनाएं हैं जोकि अनुसंधानकर्ता को प्रकाशित, अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्ट, सांख्यिकी, पत्र, डायरी आदि से प्राप्त होते हैं[6]।

अध्ययन क्षेत्र- प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जनपद के हैदरगढ़ तहसील का ग्राम ओहरामऊ है। जनपद बाराबंकी के अधिकांश जनसंख्या का भरण पोषण कृषि पर निर्भर करता है। यहाँ पर पूरे गाँव में 25 नलकूप तथा 09 तालाब है। गाँव की जनसंख्या 2100 है इसमें से लगभग 1030 महिलाएँ तथा 1070 पुरूष हैं। गाँव में 12 प्रकार की जातियाँ निवास करती हैं। गाँव में जजमानी प्रथा है। यहाँ उच्च, अन्य पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के लोग निवास करते हैं। ओहरामऊ गाँव में ऊसर और बंजर भूमि अधिक है जिस पर घास भी नहीं उगती है। ऊसर भूमि में फसल उत्पादन तो सुधार से पूर्ण सम्भव ही नहीं था। इस भूमि में पेड़ पौधे वनस्पतियाँ भी नहीं उगती हैं। गाँव के लोग संस्कृतिकरण की प्रक्रिया से प्रभावित हैं निम्न जातियों के लोग उच्च जातियों की रीति रिवाजों, परम्परा व मूल्यों को अपना रहे हैं। इससे इनके रहन-सहन व खान-पान के तरीकों में परिवर्तन हो रहा है। गाँव की आर्थिक स्थिति सामान्य है न तो उच्च है और न ही निम्न। यहाँ की 70 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका का स्रोत कृषि है, शेष 30 प्रतिशत लोग शहरों में जाकर नौकरी करते हैं। गाँव के कुछ लोग अपना पुश्तैनी परम्परागत व्यवसाय कर रहे हैं और अपनी आजीविका चला रहे हैं[7]। गाँव में सड़क व नालियों के दृष्टिकोण से मुख्य सड़क से गाँव को जाने के लिए खड़न्जे से बनी हुई है जिनका निर्माण 5, 6 वर्ष पूर्व हुआ है। सड़क के दोनों ओर पक्की नालियाँ बनी हुई हैं जिससे बरसात का पानी गाँव के बाहर चला जाता है। गाँव में 60 प्रतिशत मकान पक्के बने हुए हैं तथा 30 प्रतिशत कच्चे हैं। कुछ मकान ऐसे हैं जो (पक्के और कच्चे) मिश्रित हैं और उनका प्रतिशत 10 है। बिजली-पानी की दृष्टि से गाँव में पिछले 15 वर्षों से बिजली है। पानी के लिए सरकारी नल लगे हुए हैं तथा पुराने कुओं द्वारा पानी निकाला जाता है। गाँव के लोग प्रायः टी0वी0 देखकर, रेडियो सुनकर अपना मनोरंजन करते हैं। 40 प्रतिशत लोगों के पास टी0वी0, रेडियो और मोबाइल फोन इत्यादि सभी हैं। शादी विवाह के अवसर पर मनोरंजन के लिए नौटंकी व्यवस्था करते है। मुन्डन व जन्म उत्सव पर देवी गीत गाने की परम्परा है। यातायात के साधनों में लोग अधिकांशतः मोटर साइकिल का प्रयोग करते हैं। जब दूरी अधिक होती है तो वे बस या रेल से जाते हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव- प्रस्तुत अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला है कि जो भूमि सुधार कार्यक्रम ग्राम ओहरामऊ में चलाया जा रहा है उससे क्या लाभ होंगे? इस सन्दर्भ में ग्रामीणों को जानकारी नहीं है। इसलिए सरकार को योजना क्रियान्वयन से पूर्व में ही ग्रामवासियों एवं लाभार्थियों को इस सन्दर्भ में जागरूक करना चाहिए जिससे वे लाभ मिलने की प्रत्याशा में योजना क्रियान्वयन में अपना सहयोग प्रदान करें तथा समय से लाभ भी प्राप्त करें। अध्ययन क्षेत्र में कुछ किसान ऐसे हैं, जो भूमिहीन हैं वे या तो बँटाई पर खेती करते हैं या फिर खेतों में काम करने वाले श्रमिक हैं। इनकी मासिक आय भी कम है। अतः ऐसे लोगों को स्वरोजगार या कुटीर उद्योगों के लिए प्रोत्साहित किया जाये एवं समुचित प्रशिक्षण दिये जाने की भी व्यवस्था की जाये। कुछ कृषकों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त निम्न है। वे साहूकारों से बढ़ी हुई ब्याज दरों पर ऋण लेते हैं और जीवनपर्यन्त ऋणग्रस्तता का शिकार बने रहते हैं। ऐसे लोगों को कम ब्याज दरों पर ऋण लेने की सुविधा प्रदान की जाये, जिससे वे साहूकारों के चंगुल से मुक्त हो सकें और अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकें। अध्ययन किये गये परिवारों में 20 प्रतिशत कृषक ऐसे हैं जो परम्परागत तरीके से खेती करते हैं। जिसमें समय एवं श्रम अधिक लगता है परन्तु लाभ कम प्राप्त होता है। अतः परिवार कल्याण के कायक्रमों के संचालन के दौरान गाँव- गाँव में लोगों को जागरूक करने तथा अपनी योजनाओं से होने वाले लाभों की जानकारी भी देनी चाहिए.

****

सन्दर्भ सूची-

1. Dube ; S.C "indian Village"
2. Chauhan; B.R. "Rural Society in India"
3. भारद्वाज, दिनेश चन्द्र ''आधुनिक भारतीय संस्कृति का इतिहास''
4. Shah; S.M. "Rural Development Planning and Reform"
5. Shah; Beteille Andire "Class, Caste and Power"
6. Ackoff; R.L. "Design of Social Research"
7. Chaturvedi; J.C "Mathematical Statistics"

गिग श्रमिकों के मुद्दे और चुनौतियां: ई-कॉमर्स उद्योग के विशेष संदर्भ में

विनोद सेन
सहायक प्रध्यापक
अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकंटक (म.प्र.) Mo.9377427964)

संजीत कुमार
शोधार्थी
अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक
(म.प्र.) Mo. 8081604108

सारांश:-

वर्तमान समय में बेरोजगारी एक देशव्यापी ज्वलंत समस्या है। गिग अर्थव्यवस्था अकुशल और अर्धकुशल श्रमिकों के लिए रोजगार के गतिशील स्रोत के रूप में उभर रही है। यह प्रणाली ऐसे श्रमिकों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रही है, जो भारतीय श्रम बाजार में स्थाई नौकरी पाने में असक्षम है। यद्यपि, गिग अर्थव्यवस्था में रोजगार की प्रक्रिया लचीली होती है, साथ ही गिग श्रमिकों कों ई-कॉमर्स उद्योग में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे कार्य एवं सामाजिक जीवन के मध्य संतुलन, सामाजिक प्रतिभूति के मुद्दे, आय में असमानता इत्यादि। प्रस्तुत लेख में भारतीय गिग अर्थव्यवस्था की बढ़ती लोकप्रियता के मुद्दे पर चर्चा की गई है| इस अध्ययन में गिग श्रमिकों के उभरते मुद्दों और चुनौतियों का पता लगाने और उचित सुझाव प्रस्तुत किये गये है| यह अध्ययन विभिन्न राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्र एवं आकड़ो की व्यवस्थित समीक्षा के परिणाम पर आधारित है।

शब्द कुंजी : गिग श्रमिक, ई-कॉमर्स, गिग अर्थव्यवस्था, असंगठित क्षेत्र

परिचय :

ई-कॉमर्स आज आधुनिक व्यापार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है (काराइन, ए ये जे आई, 2021)। ई-कॉमर्स का अनुमानित बाजार 2017 में दुनिया में 29 ट्रिलियन अमरीकी डालर थी और यह इंटरनेट, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के प्रसार के साथ बढ़ रहा है। भारत ब्रिक्स देश और कई अन्य देशों के साथ मिलकर ई-कॉमर्स को तीव्र, समावेशी और सतत बनाने की चेष्टा कर रहा है; जिससे आर्थिक विकास को सुविधाजनक बनाया जा सके, यह जीवन स्तर में सुधार लाने और गरीबी को खत्म करने का साधन माना जाता है। ई-कॉमर्स ग्रामीण क्षेत्र और दूरवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों सहित, सभी के लिए अवसर और चुनौतियां पैदा कर रहा है। इसके अलावा, ई-कॉमर्स को एक उपयोगी उपकरण के रूप में देखा जाता है जो उचित रूप से लागू होने पर कई सामाजिक और आर्थिक मुद्दों को हल कर सकता है (काराइन, एच.ए.जे.आई. (2021)। वर्तमान समय में बेरोजगारी एक विश्व व्यापी समस्या है, जिसमें गिग श्रम बाजार, अकुशल और निम्न-कुशल श्रमिकों को रोजगार प्रदान कर रहा है। गिग अर्थव्यवस्था में संस्थाए पूर्णकालिक कर्मचारियों के बजाय स्वतंत्र ठेकेदारों और फ्रीलांसरों को काम पर रखते हैं, जो अस्थायी और लचीली नौकरियां होती हैं। गिग श्रमिक वह व्यक्ति होता है जो एक स्वतंत्र ठेकेदार या फ्रीलांसर के रूप में अस्थायी रूप से कार्य करता है, आमतौर पर सेवा क्षेत्र में। गिग अर्थव्यवस्था उन कर्मचारियों को रोजगार देने का एक नया साधन है जो भारतीय श्रम बाजार में स्थायी नौकरी पाने में असमर्थ हैं। सलाहकारों के लिए एक ऑनलाइन बाजार स्थल के अनुसार, 2016 में स्टार्ट-अप की मांग में 50% की हिस्सेदारी थी, जबकि बड़ी फर्मों की हिस्सेदारी 20% थी (मैकिन्से.(2016)। लागत कम करने के लिए स्थापित फर्में भी संविदा कर्मियों की तलाश कर रही हैं। हालांकि, भारत में रोजगार के साथ आय सृजन के लिए ई-कॉमर्स क्षेत्र के साथ इस गिग श्रम बाजार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है।

सम्बंधित साहित्य की समीक्षा :-

कारी हाजी, (2020) ने अपने अध्ययन "ब्रिक्स देशों के ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्र में ई-कॉमर्स विकास" में कहा है कि विकासशील देशों में ई-कॉमर्स उद्योग बहुत तेजी से बढ़ रहा है, जिसमें भारत शीर्ष स्थान पर है| यहाँ भविष्य में रोजगार विकसित करने के अवसर अधिक हैं, जो भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी और बेरोजगारी को खत्म करने में मदद करेंगे। अतः अध्ययन कहता है कि गिग श्रमिकों के लिए ई-कॉमर्स उद्योग में रोजगार पाने की संभावनाएं अधिक है।

गोबिन्दा रॉय और अविनाश के. श्रीवास्तव,(2020) ने अपने अध्ययन "गिग अर्थव्यवस्था का भविष्य: अवसर और चुनौतियाँ" में विश्व और भारत के सन्दर्भ में गिग अर्थव्यवस्था के वर्तमान रुझानों को देखते हुए इसके दोष और लाभों की चर्चा की है और यह बताया है कि कैसे विभिन्न कारक गिग अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते है|

विजेता बनवारी, (2018) ने अपने अध्ययन "भारत में गिग अर्थव्यवस्था चुनौतियां और अवसर" में कहा है कि भविष्य के ई-कामर्स गिग श्रमिक बाजार में कई अवसर और चुनौतियां होंगी। इसमे कहा गया है कि भारतीय गिग अर्थव्यवस्था में शीर्ष रुझान देख रहा है। गिग अर्थव्यवस्था के बहुत सारे फायदे हैं लेकिन इसमें कई कमियां भी हैं। विजेता ने गिग अर्थव्यवस्था में बदलाव से निपटने के संबंध में कहा है की सरकार व्यक्तियों एवं कंपनियों को गिग अर्थव्यवस्था के लाभों को प्राप्त करने में मदद करे|

आकांक्षा त्यागी, (2017) का अध्ययन " गिग अर्थव्यवस्था और भारत पर इसका प्रभाव " में भारत में स्वरोजगार कर्मचारियों की स्थिति पर आधारित है। यह उन नियामक बाधाओं को भी रेखांकित करता है जिनका सामना स्वतंत्र श्रमिकों को करना पड़ता है, साथ ही साथ भारत के श्रम बाजार पर गिग अर्थव्यवस्था के प्रभाव को भी देखा गया हैं। अध्ययन के अनुसार, गिग इकॉनमी की अवधारणा तीन चुनौतियां पेश करती है: कानूनी या नियामक अनिश्चितता, अंशकालिक और आकस्मिक श्रमिकों के प्रति शत्रुतापूर्ण कॉर्पोरेट संस्कृति और नेतृत्व में समझ की कमी। अध्ययन में कौशल-आधारित गिग श्रमिकों में पारंपरिक रोज़गार के विवरणों को शामिल करने, कर्मचारी नीति आंकलन - मूल्यांकन में सुधार और उनके श्रम कानूनों में प्रभावी सुधार लाने की सिफारिश की गई है।

शोध अध्ययन की प्रविधि : यह शोध पत्र द्वितीयक आकड़ो और सूचनाओ पर आधारित है| अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सूचनाएँ और सम्बंधित आकड़ों को विभिन्न रिपोर्टो, ऑनलाइन वेब पोर्टल, प्रकाशित लेख, इत्यादी से लिया गया है|

अध्ययन के उद्देश्य: यह अध्ययन निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित करेगा-

ई-कॉमर्स उद्योग में कार्यरत गिग श्रमिकों के मुद्दों और चुनौतियों का पता लगाना।

• ई-कॉमर्स उद्योग में गिग श्रमिकों के लिए सकारात्मक भविष्य के परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करना।

ई-कॉमर्स-इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स, या ई-कॉमर्स इंटरनेट के माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक रूप से चीजों को खरीदने और बेचने की प्रथा है। मोबाइल कॉमर्स, इलेक्ट्रॉनिक फंड-ट्रांसफर, सप्लाई चेन मैनेजमेंट, इंटरनेट मार्केटिंग ,ऑनलाइन ट्रांजैक्शन प्रोसेसिंग ,इलेक्ट्रॉनिक डेटा इंटरचेंज, उत्पाद खरीद और शिपिंग, नौकरी के लिए श्रमिकों की भर्ती और अन्य तकनीकों का उपयोग इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स में किया जाता है।

ई-कॉमर्स का क्षेत्र:- ई-कॉमर्स को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है यथा ऑनलाइन खुदरा बिक्री, इलेक्ट्रॉनिक बाजार और ऑनलाइन नीलामी। इलेक्ट्रॉनिक व्यवसाय ई-कॉमर्स को बढ़ावा देने में मदद करता है। निम्नलिखित दो आवश्यकताएं ई-कॉमर्स को परिभाषित करती हैं। ऑनलाइन बिक्री, जिसे अक्सर ई-कॉमर्स के रूप में जाना जाता है अर्थात इसे ऑनलाइन व्यापार करने या स्टोरफ्रंट के माध्यम से उत्पादों और सेवाओं को बेचने और प्राप्त करने के रूप में परिभाषित किया जाता है। दूसरा ई-कॉमर्स एक ऐसा बाजार है जिसमें व्यवसाय करने की कोई सीमा नहीं है। उदाहरण के लिए, एक पड़ोस का दुकान एक वेब स्टोर शुरू कर सकता है और दुनिया को अपने दरवाजे तक ला सकता है। इसमें ग्राहकों के अलावा अपने आपूर्तिकर्ताओं, लेखाकारों, भुगतान प्रदाताओं, सरकारी प्राधिकरणों और प्रतिस्पर्धियों का ऑनलाइन पता लगाया जाता है।

गिग अर्थव्यवस्था:-कैम्ब्रिज डिक्शनरी ने गिग अर्थव्यवस्था को ' कार्य करने का एक तरीके' के रूप में परिभाषित किया है जो अस्थायी श्रमिकों या अलग-अलग काम करने वाले लोगों पर आधारित है, इसमे सबंधित प्रत्येक व्यक्ति को नियोक्ता के लिए कार्य करने के सापेक्ष में भुगतान किया जाता है। 'गिग' विभिन्न प्रकार के ग्राहकों के लिए निर्धारित समयावधि में पूर्ण की गई परियोजनाएं या कार्य हैं। ई-कॉमर्स और स्टार्ट-अप के विकास के साथ भारत में गिग अर्थव्यवस्था और फ्रीलांसिंग तेजी से बढ़ रहे हैं। **भारत में ई-कॉमर्स-**भारत में शहरी, ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में ई-कॉमर्स के विकास और प्रसार के विभिन्न स्तर हैं। ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में ई-कॉमर्स का विकास अधिक तीव्र गति से हो रहा है। इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन (IBEF) ने भविष्यवाणी की है कि भारतीय ई-कॉमर्स बाजार (सभी क्षेत्रों सहित) 2021 में 84 अरब अमरीकी डॉलर,2022 में 150 अरब अमरीकी डॉलर तक पहुंच जाएगा, और 2026 तक 200 अरब अमरीकी डॉलर तक पहुंच जाएगा। 2022 तक ऑनलाइन रिटेल की कीमत 73 अरब डॉलर हो जाएगी। 2034 तक भारत के पास दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा ई-कॉमर्स बाजार (IBEF report 2019) होने की उम्मीद है। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में, भारत ई-कॉमर्स का नेता है। फ्लिप्कार्ट, अमेज़न, स्नापदील, और म्यांत्रा भारत में सबसे बड़े ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म हैं (2014 में फ्लिपकार्ट के साथ विलय)। EY & FICCI रिपोर्ट (2018) के अनुसार भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा ऑनलाइन श्रम बाजार बन रहा है। ऑनलाइन श्रम सूचकांक सर्वेक्षण 2016 के अनुसार, भारतीय नियोक्ताओं ने ऑनलाइन श्रेम के लिए रिक्त की गई सभी परियोजनाओं में 5.9 प्रतिशत का योगदान दिया, जिसमें से 45 प्रतिशत योगदान सॉफ्टवेयर विकास परियोजनाओं और प्रौद्योगिकी परियोजनाओं का था। यह प्रवृत्ति आईटी-बीपीएम क्षेत्र में रोजगार की बदलती प्रकृति का प्रमाण है। अंकटाड(UNCTAD) और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों के अनुसार, ब्रिक्स देश दुनिया के सबसे तेजी से बढ़ते ई-कॉमर्स बाजारों में से हैं, जिनमें भविष्य के विकास की सबसे बड़ी संभावना है। विभिन्न आंकड़ों के अनुसार, 2019 में भारत की ई-कॉमर्स वृद्धि 31.9 प्रतिशत थी, जो ब्रिक्स देशों (वर्ल्ड वाइड वर्क्स, 2018) में सबसे अधिक है। यह भविष्य के विकास के लिए कई अवसर एवं कुछ चुनौतियां भी पैदा करता है, जैसे कि डिजिटल डिवाइड, जिसका प्रयोग जटिल उपायों (कानूनी, वित्तीय और संगठनात्मक) के क्रियान्वयन में किया जाता है। एसडीजी हासिल करने और ग्रामीण भारत के सामाजिक और आर्थिक कल्याण में योगदान करने के लिए फ्लिपकार्ट ग्रामीण आबादी को आधिकारिक नौकरियों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करने के लिए कड़ी मेहनत करता है। यह खरीदारों को प्लेटफॉर्म पर बेचे जाने वाले उत्पादों तक पहुंचने के लिए विकल्प और कार्यक्रम भी प्रदान करता है, जैसे क्रेडिट और ऋण प्राप्त करना या "बाद में भुगतान करें" पहल। बड़ी संख्या में गतिविधियों का उद्देश्य एमएसएमई (MSMEs) की बेहतर व्यावसायिक प्रथाओं के बारे में जागरूकता बढ़ाना है। स्नैपडील 300,000 विक्रेताओं को एक साथ लाता है जो 125,000 से अधिक ब्रांडों और खुदरा विक्रेताओं से 30 मिलियन से अधिक उत्पाद बेचते हैं। 3000 से अधिक शहरों और कस्बों में इसकी मौजूदगी है। कंपनी दूरस्थ और ग्रामीण क्षेत्रों में एमएसएमई को ई-कॉमर्स लाने के लिए कई प्रयास करती है।

ई-कॉमर्स और गिग अर्थव्यवस्था का सामर्थ्य-भारत की गिग अर्थव्यवस्था का तेजी से विस्तार हो रहा है। अंग्रेजी बोलने वाली बड़ी आबादी और बढ़ते आईटी क्षेत्र ने एक स्वतंत्र कार्य वातावरण के विकास में सहायता की है। इसके भी फायदे और नुकसान दोनों हैं। तकनीकी प्रगति और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के आगमन से नौकरियों के खत्म होने की बड़ी संभावनाएं हैं जिसे ऑनलाइन फ्रीलांसिंग और सूक्ष्म कार्य के माध्यम से अवसरो में परिवर्तित किया जा सकता है जिसमें श्रम बल में लाखों नए युवा श्रमिकों में से कम से कम कुछ प्रतिशत श्रमिकों को आजीविका के अवसर मिल सकते हैं। यह देश में अनौपचारिक श्रम के विशाल पूल, विशेषकर महिलाओं को अवसर प्रदान करता है। गिग प्लेटफार्मों द्वारा पेश किया गया लचीलापन एक विकसित समाज की मांगों के साथ अच्छी तरह से सामंनजस्य स्थापित कर सकता है जो आजीविका के पूर्ण और स्वतंत्र अवसरों की तलाश में है जिसमें कुछ समय काम करना शामिल है (कथूरिया आर और केडिया एम, 2027)। जो उनकी आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से पूरा करता है। स्व-नियोजित होने का चयन करने वाले श्रमिकों के लिए स्वायत्तता और लचीलापन महत्वपूर्ण है (मैकिन्से ,2016)।

भारत में उभरते हुऐ गिग श्रम बाजार के अवसर और लाभ :-1.रोजगार के मामले में गिग श्रमिक बाजार का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह बेरोजगारी को कम करता है। एक विकासशील देश के रूप में भारत बेरोजगारी की सबसे बड़ी समस्या से जूझ रहा है। ई-कॉमर्स की बदौलत श्रमिकों के पास नौकरी के बहुत सारे अवसर प्राप्त हो रहे हैं। यह अर्द्ध कुशल श्रमिकों को भी काम प्रदान सकता है, जैसे कि डिलीवरी जॉब और प्रोजेक्ट वर्क है। समय के लचीलेपन के कारण, गिग अर्थव्यवस्था ने रोजगार की उपलब्धता में वृद्धि की है और श्रम बल की भागीदारी में सुधार हुआ है[2].ई-कॉमर्स उद्योग में नियोक्तिकर्ता अपनी कंपनी के भीतर एक दोहरा रोजगार बाजार शुरू करके अक्षमताओं और लागत को कम कर सकते हैं, जिसमें उच्च-भुगतान प्रतिबद्धता वाले कर्मचारियों और

कम-भुगतान वाले फ्रीलांस श्रमिकों का मिश्रण होता है। उदाहरण लिये फॉर्च्यून-500 कंपनी अब विशेष प्रतिभाओं का प्रयोग करके ऑनलाइन फीलांसर प्लेटफॉर्म से अधिक लाभ उठा रही हैं। पारंपरिक स्टाफिंग प्रक्रियाएं हमेशा कुछ भारतीय कंपनियों के संचालन के साथ नहीं होती हैं। फॉर्च्यून-500 के एक अध्ययन के अनुसार, कार्य अब समूह की संरचना को निर्धारित करता है, जबकि पहले कार्य समूह की संरचना द्वारा के द्वारा किसी कार्य को निर्धारित किया जाता था। इसके अलावा पहले कंपनियों को फ्रीलांसर श्रमिकों को और स्थायी कर्मचारियों को काम पर रखने के बीच चयन करना पड़ता था, ये विकल्प अब एक साथ मौजूद हैं (आर. कथूरिया, एम. केडिया, जी. वर्मा, के. बागची, और एस. खुल्लर,2017)।

3.भारत में यदि गिग अर्थव्यवस्था को और अधिक सुलभ बनाया जाए तो अधिक महिलाएं कार्यबल में प्रवेश कर सकेंगी| उन्नत डिग्री वाली महिलाएं जो कॉर्पोरेट जगत में पूर्णकालिक काम करना जारी रखने में असमर्थ हैं, वे अपनी आय के पूरक के नए तरीके खोजने में सक्षम हो सकती हैं, और यह भारत की जीडीपी को बढ़ाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है (EY & FICCI रिपोर्ट, 2018)।

4.गिग श्रम बाजार में कार्य व्यवस्था लचीली होती है, अत: भारत में कई कुशल श्रमिक स्वतंत्र और लचीली कार्य परियोजनाओं को अपना रहे हैं क्योंकि इससे उन्हें और भी अन्य महत्वपूर्ण कार्यों के लिए समय मिल जाता है।

5.गिग श्रम बाजार में सही व्यक्ति को उसकी कार्य क्षमताओं के अनुसार काम आवंटित होता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की प्रगति के साथ, मशीनें अब प्रत्येक जॉब प्रोफाइल के लिए सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवारों का चयन कर सकती हैं। यह प्रक्रिया उत्पादकता बढ़ाने में संगठनों की सहायता कर सकती है।

6.ई-कामर्स उद्योग में, एक गिग श्रमिक एक अंतरराष्ट्रीय कंपनी का सेवा प्रदाता है क्योंकि इसमे कोई सीमा नहीं है। यदि एक कंप्यूटर विज्ञान शिक्षक विदेशी छात्रों को निर्देश देने में सक्षम है, तो वह अधिक प्रभावी ढंग से पढ़ाने और अधिक पैसा कमाने में सक्षम होगा। चूंकि किसी विशिष्ट सीमा की आवश्यकता नहीं है, इसलिए विश्व स्तर पर व्यापार किया जा सकता है।.श्रमिकों को अपनी रुचियों और प्राथमिकताओं के आधार पर अपना कार्य क्षेत्र चुनने की स्वतंत्रता है। उन्हें अपने गृहनगर से दूसरे शहर में प्रवास करने की भी आवश्यकता नहीं होती है। ई-कॉमर्स में नौकरी कभी-कभी एक कर्मचारी के घर से भी की जाती है। इसे "वर्क फ्रॉम होम" कहा जाता है। यह श्रमिकों के लिए इतना सुविधाजनक है कि उन्हें तैयार होने और वर्दी या कपड़े पहनने की भी आवश्यकता नहीं होती जिससे श्रमिकों का समय बचाता है।

8.ई-कॉमर्स क्षेत्र में श्रमिकों के भुगतान का एक आसान तरीका होता है। इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर के माध्यम से वित्तीय लेनदेन त्वरित और सुविधाजनक हैं और उन्हें दुनिया में कहीं से भी पूरा किया जा सकता है। ऑनलाइन सेवा के परिणामस्वरूप कार्यकर्ता और सेवा प्रदाता को उनके प्रदर्शन पर तत्काल प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। इसके अलावा, नियोक्ता फीडबैक के आधार पर कर्मचारियों की संख्या निर्धारित करता है। जो उसे वेतन आरक्षित करने से सम्बंधित निर्णय लेने में मदद करता है। 79.सरल और आसान सूचनाएँ विनिमय व्यापारियों और ग्राहकों के बीच सूचना साझीकरण में सुधार करता है, जिससे शीघ्र, समय पर डिलीवरी की अनुमति मिलती है।

10.लेन-देन की लागत कम करता है: एक अच्छी तरह से डिज़ाइन किए गए ऑनलाइन स्टोर में, वस्तुओं को स्वचालित किया जा सकता है। ऑनलाइन डाउनलोड की सुविधा उपलब्ध होने पर वितरण लागत को कम किया जा सकता है।

11.ई-वाणिज्यिक श्रम बाजार में काम करने के लिए कोई आयु सीमा नहीं है। सेवानिवृत्ति के बाद, बहुत से लोग अनुबंध के आधार पर काम करना चुनते हैं क्योंकि यह उन्हें अधिक लचीला होने की अनुमति देता है।

12.टेक्नोलॉजी ने स्टाफिंग एजेंसियों और कंपनियों को गिग श्रमिकों पर व्यापक आंकड़े एकत्रित करने और उनका मूल्यांकन करने में सक्षम बनाया है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) अब नियोक्ताओं को फ्रीलांसरों के काम करने के तरीके और क्षमताओं का विश्लेषण करने और उन्हें विशिष्ट परियोजना आवश्यकताओं से मिलान करने में सहायता करता है। कंपनियां व्यापक डेटा और एनालिटिक्स का उपयोग करके अपनी परियोजनाओं के लिए सही प्रकार के कर्मचारियो को चयन करने में सक्षम होंगी।

13.ई-कॉमर्स श्रम बाजार में, श्रमिक कई स्रोतों से आय अर्जित करने में सक्षम हो सकते हैं। कर्मचारी अनुबंध के आधार पर कार्यरत होते है, लेकिन यदि उनके पास पर्याप्त क्षमता है, तो वे अनुबंधित घंटों के बाहर भी काम कर सकते हैं। एक ई-कॉमर्स कंपनी 2007 में दो सदस्यीय टीम से बढ़कर देश भर में लगभग 3,000 कर्मचारियों तक पहुंच गई है (द इकोनॉमिक टाइम्स, 2013)।

ई-कॉमर्स में गिग वर्कर्स की चुनौतियां-ई-कॉमर्स ने प्रत्येक अर्थव्यवस्था को आर्थिक मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, अर्थव्यवस्था को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ई-कॉमर्स का एक क्षेत्र जो गिग श्रमिकों से वादे करता है, उनके साथ भी बहुत सारी चुनौतियाँ हैं, ये सामाजिक और नियामक दोनों हो सकते हैं। सामाजिक पक्ष में, ऑनलाइन फ्रीलांसिंग की सामान्य धारणा विकास के लिए एक बड़ी बाधा है। एक हितधारक (stakeholder) के अनुसार, भारतीय समाज में फ्रीलांसरों को स्थायी नौकरी वाले लोगों की तुलना में द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में माना जाता है। पुरानी पीढ़ी के बीच, पारंपरिक 9 से 5 बजे की नौकरी की स्थिरता और सुरक्षा को अभी भी एक बेहतर विकल्प के रूप में देखा जाता है। यह स्पष्ट मानसिकता है कि भविष्य में फ्रीलांस बाजार के नकारात्मक परिणाम हो सकते है। जैसे- कुछ मामलों में फ्रीलांसरों की आय में असंगति होती है और उनका बेतन समय पर नहीं मिलाता है, उन्हें कभी कभी कई महीनों तक बिना काम के रहना पड़ता है (कथूरिया आर, और केडिया एम, 2017)। गिग इकॉनमी के विपरीत मामले सार्वभौमिक है यह कामकाजी जीवन को प्रासंगिक बनाता है। यह आम लोगों पर जोखिम को विस्थापित करता है, जिससे तनाव और मानसिक बीमारी बढ़ जाती है। गिग श्रमिको में पेंशन, बीमा, वेतन, छुट्टी का समय या छुट्टी जैसे लाभ शामिल नहीं हैं। गिग श्रमिक, ठेकेदार और किराए के व्यक्ति के बीच आमने-सामने के रिश्ते होते हैं, जिनका दुरुपयोग करना आसान होता है और उन पर नज़र रखना मुश्किल होता है , जिनमें ट्रेड यूनियनों को संगठित करने के लिए कम से कम पारंपरिक साधनों का उपयोग करते हुए, वे मुश्किल वातावरण भी हैं (विश्व बैंक, 2016)।

सुझाव :तकनीकि गतिशीलता के माहौल में, व्यक्तियों को खुद को अपस्किलिंग या रीस्किलिंग करते रहने की आवश्यकता है । व्यक्तियों को यह महसूस करना होगा कि 20-25 वर्ष की आयु तक औपचारिक शिक्षा का वर्तमान मॉडल हमारे जीवन के बाकी हिस्सों के लिए काम

करना और अनुभवात्मक सीखना ऊपर उठाया जा रहा है या नहीं। नई अर्थव्यवस्था में, उन्हें अपने जीवन को प्रासंगिक और समृद्ध बनाने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। उन्हें सरकार और जिन कंपनियों के लिए वे काम करते हैं, द्वारा बनाए गए सक्षम पारिस्थितिकी तंत्र में सीखने के अवसरों का लाभ उठाना चाहिए। एक अन्य सुझाव यह भी है कि उन्हे ऑनलाइन आर्थिक तरीकों को भी अपनाने को अपनाना होगा। लोगों के लिए यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि एक कंपनी या कंपनियो के समूह में एक चौथाई सदी के लिए काम करने का उम्र समाप्त हो रहा है। कल का कार्य वातावरण कर्मचारी-आधारित और गिग-आधारित मॉडलों का मिश्रण हो सकता है। उन्हें ठेका श्रमिकों/परियोजना आधारित कार्य व्यवस्थाओं के महत्व को समझना चाहिए और लाभों का मूल्यांकन करना चाहिए। काम करने के इन नए तरीकों को किसी भी अन्य प्रकार की नौकरी के समान ही महत्वपूर्ण और आय के प्राथमिक स्रोत के रूप में देखा जाना चाहिए (विश्व बैंक, 2016)।

गिग वर्कर्स और ठेका श्रमिकों, नियमित श्रमिकों की तरह, न्यूनतम मजदरी, मातृत्व लाभ और अन्य कल्याणकारी प्रावधानों के माध्यम से संरक्षित किया जाना चाहिए। इसी तरह, उपयुक्त श्रम कानून भी बनाए जाने चाहिए। त्यागी और आकांक्षा (2017) ने पारंपरिक नौकरी विवरणों को कौशल-आधारित गिग श्रमिकों के साथ जोड़ने, कर्मचारी नीति आकलन और मूल्यांकन में सुधार करने और प्रभावी श्रम कानून सुधारों को लागू करने का सुझाव देते हैं। सरकार को शिक्षण संस्थानों और उद्योगों के सहयोग से अच्छी तरह से प्रशिक्षित श्रमिकों का एक समूह विकसित करना चाहिए | बुनियादी आईटी कौशल और अंग्रेजी में प्रवाह विश्व अर्थव्यवस्था में रोजगार पैदा करने में मदद करेगा। भारत अपने 'स्किल इंडिया' कार्यक्रम के द्वारा इस दिशा में काम हो रहा है। कार्यशालाओं और विज्ञापनों के माध्यम से जागरूकता बढ़ाना, प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अलावा संभावित श्रमिकों को नई तकनीकी आवश्यकताओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए खुद को अपस्किल या रीस्किल करने के लिए प्रेरित कर सकता है। संभावित श्रमिकों को बुनियादी ढांचे जैसे कंप्यूटर और इंटरनेट एक्सेस के साथ-साथ ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर पंजीकरण करने और भुगतान प्राप्त करने के बारे में बुनियादी प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है।

निष्कर्ष:-वर्तमान तकनीकी के समय में गिग इकॉनमी भारत जैसे विकासशील देशों के लिए कई लाभ लाने की क्षमता रखती है। सरकार और शिक्षण संस्थानों के सहयोग से चुनौतियों को अवसरों में बदला जा सकता है। भारत में गिग इकॉनमी का दायरा तय करने में सरकारी नीतियां और श्रम कानून काफी मददगार साबित हो सकते है। व्यक्तियों को भी जीवनपर्यन्त सीखने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि उन्हें बदलते परिवेश में खुद को फिर से तैयार करना होगा। ई-कॉमर्स देश के लिये एक अवसर है, किंतु समस्या यह है कि इसको लेकर देश में अब तक कोई स्पष्ट नीति नहीं है। इस क्षेत्र में बढ़ रही संभावनाओं के मद्देनज़र सरकार को एक स्पष्ट नीति लाने की ज़रूरत है। जिस तरह से ई-कॉमर्स क्षेत्र की कंपनियाँ लोगों का आंकड़े संकलित कर रही हैं उससे लोगों की चिंता बढ़ गई है। अध्ययन में पाया गया है कि वर्तमान में कोविड-19 के चलते हुए भारत में ई-कॉमर्स का दायरा तेजी से बढ़ा है, जो बढ़ती हुई बेरोजगारी में लोगों को आकस्मिक तौर पर अकुशल और अर्ध कुशल श्रमिकों को रोजगार प्रदान कर रहा है। परन्तु ई-कॉमर्स क्षेत्र में लगे श्रमिकों को कुछ मुख्य चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे इंटरनेट के ज्ञान का अभाव, उचित कौशल का भाव, कम मेहनताना और श्रमिक संगठनों का अभाव आदि। इन चुनौतियों के होते हुए भी ई-कॉमर्स क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लगातार योगदान दे रहा है जिससे रोजगार के पदों में सराहनीय वृद्धि हुई है तथा महिला रोजगार में भी वृद्धि देखने को मिलती है। विरासत प्रणालियों की सेवा में उनकी मौजूदा दक्षताओं का लाभ उठाया जा सकता है। उनके व्यक्तिगत पुनः कौशल (रीस्किलिंग) और प्रयासों को कंपनी प्रशिक्षण मॉड्यूल तक पहुंच प्रदान करके और कंपनियों की संसाधन क्षमता अपेक्षाओं और उपयोग रणनीतियों (विश्व बैंक ,2016) का समर्थन करने के लिए उपयोग की जाने वाली उनकी नई अधिग्रहीत क्षमताओं तक पहुंच प्रदान करके समर्थित किया जा सकता है .

*****

संदर्भ सूची:-

1. Banwari, v. (2018). Gig Economy: Challenges and Opportunities in India. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR), 5(11 November 2018), 1-8. ISSN-2349-5162.
2. EY & FICCI report Future of jobs in India: A 2022 perspective. Available: https://www.ey.com/Publication/vwLUAssets/ey-future-of-jobs-in-india/%24FILE/ey-future-of-jobs-inindia.pdf Retrieved on 3rd November 2018.
3. IBEF (India Brand Equity Foundation). 2019. Indian E-commerce Industry Report 2019. [2020-09-30]. https://www.ibef.org/ download/E-Commerce-December-2019.pdf.
4. IBEF (India Brand Equity Foundation). 2021. Indian E-commerce Industry Report 2021. [2021-01-25]. https://www.ibef.org/ download/E-Commerce-January-2021.pdf.
5. Karine, H. A. J. I. (2021). E-commerce development in rural and remote areas of BRICS countries. Journal of Integrative Agriculture, 20(4), 979-997.
6. Mckinsey (2016). Independent Work: Choice, Necessity and the Gig Economy (October 2016).
7. Mckinsey Global Institute. Available: Link for online access https://www.mckinsey.com/~/ media/McKinsey/Featured%20Insig(वर्ल्ड वाइड वर्क्स 2018) hts/Employment%20and%20Growth/Independent%20work%20Choice%20necessity%20and%20the%20gig%20economy/Inepended-Work-. Choice-necessity-and-the-gig-economy-Executive-Summary.ashx Retrieved on 3rd November, 2018.
8. Roy, G., & Shrivastava, A. K. (2020). Future of gig economy: opportunities and challenges. IMI Connect, 9(1), 14-27.
9. The Economic Times (2013b), "Flipkart raises $200 million in a single-largest round of funding in Indian e-commerce space," The Economic Times, 11 July, available at: www.economictimes.indiatimes.com/tech/ites/flipkart-raises-200-mn-in-single-largest investment-in-Indian-e-commerce-firm-valued-at-1-5-bn/articles how/21000164.cms (accessed 4 December 2013).
10. Tyagi, Akanksha. (2017). GIG Economy and Its Impact on India. International Journal of Engineering Technology Science and Research. ISSN 2394 – 3386. Volume 4, Issue 7. Available: http://www.ijetsr.com/images/short_pdf/1501570901_844-847ietech83 1_ijetsr. pdf Retrieved on 25th October, 2018.

मीडिया में हिन्दी और रोजगार की संभावनाएँ

डॉ.राजशेखर उ. जाधव
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
विश्वभारती प्रथम दर्जा महाविद्यालय तुरनुर, रामदुर्ग कर्नाटक मो. नं- 9632975611

सामान्य तौर पर 'मीडिया' संचार माध्यमों के विभिन्न साधनों को संदर्भित करता है। जैसे – पत्रकारिता, रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट, सिनेमा, यू ट्यूब, इन्स्टाग्राम, ट्वीटर आदि। प्रेस या समाचार रिपोर्टिंग एजेंसियों के लिए सामूहिक रूप से मीडिया की संज्ञा दी जाती है। भारत में मीडिया को 'लोकतंत्र का चौथा स्तंभ' कहा जाता है। मीडिया का उद्देश्य जनहित समाजहित राष्ट्रहित है। वर्तमान युग में मीडिया में नई क्रांति सी आई है। नई साज-सज्जा, नये मिजाज, नये पत्रकार, संपादक, उप संपादक, नई तकनीकी ने नया मोड़ दिया है। नए-नए विषयों की जानकारी रखते हुए सरल भाषा में समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचने का कार्य मीडिया से हो सकता है। सरकार की प्रत्येक योजनाओं को निष्पक्षता से जनता तक पहुंचाने और उनको सूचित करने का कार्य मीडिया का ही है।हिंदी भाषा के विकास में मीडिया की अहम भूमिका रही है। देश-विदेशों में मीडिया के माध्यम से हिंदी का विकास तेजी से हो रहा है। हिंदी भाषा के प्रसार में सिनेमा, साहित्य, टेलीविजन, इंटरनेट, सोशियल मीडिया, गूगल, माइक्रोसॉफ्ट जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियां और बाजार का हिंदी के विकास में अद्वितीय योगदान रहा है। हिन्दी भाषा के संदर्भ में डॉ. जयंतीप्रसाद नोटीयाला के विचार हैं कि "विश्व में प्रचारित किया जाता है कि चीन की मंदारिन सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। लेकिन हिंदी ने इसे काफी पीछे छोड़ दिया है। यह जानकारी मंगलूर कर्नाटक के डॉ. जयंतीप्रसाद नोटियाल की शोध रिपोर्ट में सामने आई है। विश्व में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए कार्य कर रहे ग्वालियर के आचार्य राजेंद्रनाथ मेहरोत्रा ने भी अपनी विश्वव्यापी ग्रंथ श्रृंखला के प्रथम खंड में इसे सही ठहराया है।"[1] भारतीयों के लिए यह गर्व और खुशी की बात है और स्पष्ट है कि विश्व हिंदी की ओर आकर्षित है। इसीलिए आज हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली लोकप्रिय भाषा बन चुकी है। हिंदी की वैश्विकता के साथ-साथ रोजगार की संभावनाएँ भी वैश्विक हो गई हैं। गाँवों, कस्बों और छोटे शहरों से हिन्दी अब अपने संपन्न भाषाई संस्कार, देशी कहावतों, मुहावरों के अनगिनत विशेषताओं के साथ संपूर्ण दुनिया पर राज कर रही है। प्रौद्योगिकी से लेकर रोजगार प्रदान करनेवाली नए दौर की सभी रचनात्मक विधाओं में आज हिन्दी का बोलबाला रहा है। आज हिन्दी बाजार की कमाऊ भाषा बन गई है। देश-विदेशों में हिंदी भाषा में रोजगार की अपार संभावनाएँ हैं। रोजगार पाने के लिए शैक्षिक योग्यता के साथ भाषा पर प्रबुद्धता होनी चाहिए। अपनी बातों को सरलता और सहजता से अभिव्यक्त करते हैं, तो रोजगार की संभावनाएँ बढ़ जाते हैं, जिससे उज्वल भविष्य का निर्माण हो सकता है।

पत्रकारिता में रोजगार की संभावनाएँ:-पत्रकारिता एक ऐसा माध्यम है, जिसमें अधिक से अधिक रोजगार की संभावनाएँ हैं। वर्तमान समय में अधिक पढ़े और देखे जाने वाले माध्यमों में समाचार पत्र और टेलीविजन है। मीडिया हर व्यक्ति से जुड़ा सशक्त माध्यम है। आजकल खबरिया चैनल और पत्रकारिता की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। पहले प्रिंट मीडिया एकमात्र साधन था। अब टेलीविजन, रेडियो और अंतर्जाल के माध्यम से लोगों तक खबरें पहुंचाई जा रही है इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए युवाओं के पास शैक्षिक योग्यता की आवश्यकता होती है।-अभ्यर्थी 12वीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पत्रकारिता में डिप्लोमा प्रवेश ले सकता है।- पत्रकारिता के विषय में स्नातकोत्तर की उपाधि आवश्यक है। "वर्तमान समय में भारतीय परिप्रेक्ष में पत्रकारिता को लेकर आमूलचूल परिवर्तन हुए हैं। यह दौर मीडिया के क्षेत्र में क्रांति का दौर है। पत्रकारिता में अपने स्वर्णिम भविष्य की राह की तलाश कर रहे युवक-युवतियों को प्रिंट मीडिया इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा मीडिया से संबंधित अन्य क्षेत्रों में रोजगार की असीम संभावनाएँ बढ़ती जा रही है।"[2] वर्तमान समय में ऑनलाईन पत्रिकाएँ प्रकाशित होने के कारण प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में रोजगार के अवसर पहले से अधिक बढ़ गए हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में रोजगार के बढ़ते अवसर पर श्रीमती इंदिरा गांधी का मानना है कि "पत्रकारिता अब केवल मुद्रित शब्दों तक ही सीमित नहीं रह गई है, बल्कि शब्दों और चित्रों के प्रसारण को शामिल करने लगी है।यह समय जनसंचार का है। संचार का प्रत्येक साधन अब विशाल साधन बन गया है, जिसमें जटिल संयंत्र तथा बहुत बड़ी संख्या में कर्मचारी लोग लगे हुए हैं।"[3] हिंदी का अध्ययन करने वालों को 'दिन दनी रात चौगुनी होना' उद्योग के अवसर उन्हें ढूंढते आ रहे हैं। टेलीविजन, रेडियो चैनल और अखबारों के हिंदी संस्करण में तेजी से हुए बदलाव के कारण इन क्षेत्रों में रोजगार की संभावनाएँ भी बढ़ गई हैं।"प्रिंट मीडिया में समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं, फिल्म पत्रकारिता, अनुवाद कार्य, पुस्तक प्रकाशन, प्रूफरीडिंग, संपादन और कार्टूनिस्ट आदि ऐसे क्षेत्र हैं जो युवा के भविष्य को रोजगार की दृष्टि से मुक्त कर सकते हैं।"[4] इस क्षेत्र में सफलता पाने के लिए हुनर और मेहनती युवकों की आवश्यकता है अतः हिंदी भाषा पर अच्छी पकड़ होनी चाहिए।

रेडियो तथा रोजगार:-जैसे-जैसे मीडिया के क्षेत्र में नवीनता आती गई वैसे-वैसे रेडियो में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में भी जनता की मांग या पसंद के अनुसार बदलाव आता गया। आरंभिक दिनों में रोडियो पर केवल ताज़ा खबरें तथा सामाजिक कार्यक्रमों का प्रसार किया जाता था वही श्रोताओं की बढ़ती माँग के अनुसार एफ.एम् चानलों की सेवा आरंभ की गई। आज रेडियो में ताज़ा खबरें तथा सामाजिक कर्यक्रमों को सुननेवालों से ज्यादा एफ.एम् जैसे चानलों को सुनने वाले ही अधिक हो गये हैं। एफ. एम् चानलों के आर. जे को अगर हिंदी पर प्रबुद्धता हो तो वह एक सफल आर. जे बन सकता है।

सिनेमा और रोजगार:-सिनेमा एक ऐसा सशक्त माध्यम हैं जहाँ कला, साहित्य, संवाद, नृत्य, संगीत, अभिनय, विज्ञान आदि का संगम है। दृश्य एवं श्रव्य दोनों के संयुक्त प्रयोग से जनता को तुरंत आकर्शित करता है। वैसे तो भारत जैसे बहु भाषी देश में सिनेमा का निर्माण प्रत्येक प्रादेशिक भाषा में होता है। परंतु हिन्दी में निर्मित सिनेमाओं को संपूर्ण विश्व में देखा जाता है। "हिंदी की फिल्मों का केंद्र समझा जाने वाले मूलतः मराठी भाषी शहर बम्बई में विभिन्न भाषा-भाषी और विभिन्न धर्मावलंबी प्रतिभाओं का संगम हुआ। पंजाबी पृष्ठभूमि के अभिनेताओं और निर्देशकों, बंगाली और गुजराती पृष्ठभूमि के संगीतकारों और निर्देशकों, हिंदी भाषी क्षेत्र से लेखकों और कहानी-शायरों, दक्षिण भारतीय पृष्ठभूमि के निर्माताओं, निर्देशकों और नायिकाओं के योगदान से जिस फिल्म उद्योग की रचना हुई उसे आज हॉलीवुड की तर्ज पर भारतीय डायस्पोरा की शब्दावली में हॉलीवुड भी कहा जाता है।"[5] हिंदी भाषा में 'वसुदैव कुटुंबकम' की भाँति देश-विदेश के कलाकारों को बॉलिवुड की ओर आकर्षित किया है। इतना ही नहीं संगीतकार, गीतकार, पटकथा लेखक, कहानीकार, कैमरा पर्सन, अनुवादक साहित्यकार, कलाकार, निर्देशक आदि को रोजगार की संभावना बढ़ाने में हिन्दी भाषा का बहुत बड़ा योगदान है।

हिन्दी का बाजार और रोजगार:- दुनिया में बाजार का बहुत ब़ड़ा स्थान है। क्रय-विक्रय के माध्यम से मावन को नित्य जीवन की आवश्यक वस्तुओं को एक ही स्थान पर उपलब्ध करता हैं उसे बाजार कहते हैं। बाजार में वस्तुओं को बेचने के लिए उपभोक्ताओं का नहीं बल्कि भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। वैश्वीकरण के दौर में भारत में व्यापार की वृद्धि पर विचार करते हुए वेनिस के निवासी मार्को जोल्ली का मानना है कि "अब यूरोपीय को यह महसूस होने लगा है कि यदि भारत के साथ व्यापार करना है तो हमें सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी को सीखना पड़ेगा।"[6] इससे स्पष्ट होता है कि विदेशी कंपनियों को अब हिन्दी की आवश्यकता तथा महत्ता महसूस होने लगी है। विदेशों में हिन्दी के ज्ञाताओं को प्रशिक्षक के रुप में नियुक्ति होती है और उनकी काफी माँग भी है।

अनुवाद के क्षेत्र में हिन्दी और रोजगार:-अनुवाद का क्षेत्र बहुत विशाल है। दो भाषाओं के परिपूर्ण ज्ञानी एक सफल अनुवादक बन

सकता है। वैश्वीकरण के दौर में मीडिया के क्षेत्र में अनुवाद और अनुवादक का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, फिल्म डबिंग, धारावाहिक, कार्टून, खेलकूद, इंटरनेट आदि सोशियल मीडिया में हिंदी का अध्ययन और अध्यापन करने वालों को रोजगार के सुनहरे अवसर हैं। मीडिया के क्षेत्र में अनुवाद और अनुवादक की बढ़ती माँग को देख सकते हैं, जो रोजगार के अवसर प्रदान करता है।

हिन्दी में डब्बिंग और रोजगार:-आज का युग इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का युग है। आज हम फिल्म इंडस्ट्री में कई परिवर्तन होते हुए देखते हैं। भारतीय भाषाओं में कई धारवाहिक तथा फिल्मों को फिल्माया जाता है लेकिन भारत जैसे बहु भाषी देश में प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक भाषा को समझना और बोलना संभव नहीं है। क्योंकि प्रत्येक प्रांत की अपनी भाषा है। जैसे हिंदी, बंगाली, गुजराती, मराठी, उड़िया, कन्नड़, तमिल, तेलगु, मलयालम आदि भाषाएँ। दक्षिण भारत की कन्नड़ भाषा में निर्मित फिल्म केवल उसी क्षेत्र या उस भाषा के जानकार को ही समझ में आएगी। ऐसी परिस्थिति में हमें डब्बिंग का सहारा लेना पड़ता है।

विज्ञापन के क्षेत्र में रोजगार की संभावनाएँ:-विज्ञापन का प्रयोग आज प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। जैसे सामाजिक कार्यों में, व्यापार-व्यवहार के क्षेत्र में, समाज हित के कार्यों में, सांस्कृतिक-धार्मिक कार्यों में, मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों के आयोजनों में, राजनीतिक क्षेत्र में, खेल-खूद के क्षेत्र आदि। जब से भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन हुआ तब से विज्ञापनों की मांग भी बढ़ने लगी। आज विज्ञापन व्यापार-उद्योग को बढ़ाने का सशक्त माध्यम बन गया है। अगर बहुराष्ट्रीय कंपनी भारत के साथ व्यापार करना चाहती है, तो सबसे पहले हिंदी में अपने उत्पादनों का प्रचार प्रसार करने लगती है, ताकि कंपनी द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री हो सके और अधिक से अधिक लाभ मिल सके। 'दिल बोले जोयालुक्कास', 'एक हीरा आपके हीरे के लिए' 'मेरे दाँत स्ट्रांग तो मैं स्ट्रांग' जैसे स्लोगनों को लिखकर लाखों धन अर्जित कर सकते हैं। जो व्यक्ति हिंदी तथा अंग्रेजी या हिंदी के साथ अन्य कोई भी भारतीय भाषा को जानता है, तो वह विज्ञापनों को लिखकर या अनुदित करके अपनी आजीविका निर्वाह कर सकता है। विज्ञापन उत्पाद के लिए बाज़ार तैयार करता है और हिन्दी विज्ञापन लेखक का भविष्य निर्माण करता है।अंत में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि वैश्वीकरण के इस युग में मीडिया का व्यापक प्रभाव रहा है। मीडिया के कारण आज सूचना विश्वभर में पहुँच रही है। भारत में हिंदी बोलने वालों की संख्या अधिक है, जिससे यहाँ के मीडिया पर हिंदी का असर अधिक दिखाई देता है। इसे गौर से देखें तो मीडिया में रोजगार की संभावनाएँ भी आज काफी बढ़ गई है। समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, विज्ञापन, इंटरनेट तथा सोशियल मीडिया जैसे संचार माध्यमों में वैश्वीकरण के कारण हिंदी का बोलबाला अधिक रहा है, जिससे भारतीय युवाओं को, हिंदी के ज्ञाताओं को मीडिया के प्रत्येक क्षेत्र में रोजगार की संभावनाएँ काफी बढ़ गई है।

****

संदर्भ सूची:-

1. https://www.patrika.com/rajgarh-news/general-conference-the-issue-of-shadow-toilet-1492498// July 23, 2016
2. प्रयोजनमूलक हिन्दी, प्रो. रमेश जैन, पृ. सं-18
3. प्रिंट मीडिया लेखन, प्रो. रमेश जैन, पृ. सं-55
4. प्रयोजनमूलक हिन्दी, प्रो. रमेश जैन, पृ. सं-18
5. समाज-विज्ञान विश्वकोष, खंड़-4, संपादक-अभय कुमार दुबे, पृ. सं-1283
6. https://www.indiamoods.com/hindi-is-becoming-the-language-of-employment-for-foreigners-also-due-to-market/ November 10, 2019

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की भारतवर्ष में स्थिति का अध्ययन

डॉ.हलधर यादव
शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

जयप्रकाश यादव
शोधार्थी
शिक्षा संकाय महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

1.1 प्रस्तावना: शिक्षा अति प्राचीनकाल से मानव के सर्वांगीण विकास का एकमात्र स्रोत रहा है। चूँकि मानव एक सामाजिक प्राणी है और उसे समाज में रहकर ही जीवन व्यतीत करना होता है इसलिए उसे समाज क्रे साथ अनुकूलन स्थापित करने की शिक्षा दी जाती है और शिक्षा के माध्यम से वह स्वयं को ऐसा बना लेता है कि समाज में रहकर सभी प्रकार की परिस्थितियों का सामना कर सके। प्राचीन से अब तक शिक्षा ने मानव को ज्ञान विज्ञान की अपार सम्पदा दी है जिसके फलस्वरूप भविष्य में भी उससे मानवता का मार्ग निरन्तर प्रशस्त होता रहा है। वास्तव में देखा जाए तो शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक राष्ट्रीय प्रगति, सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनिवार्य है। शिक्षा ही मनुष्य को विवेकशील और ज्ञान सम्पन्न बनाती है तभी तो वह अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट व श्रेष्ठ माना जाता है। शिक्षा ही बालक में निहित समस्त शक्तियों को प्रकाशित करती है। अतः हम कह सकते हैं कि "शिक्षा" किसी भी परिवार, समाज, राज्य व देश की प्रगति की महत्वपूर्णता नींव है। जिस प्रकार एक ओर शिक्षा बालक का सर्वांगीण विकास करके उसे तेजस्वी, बुद्धिमान, चरित्रवान, विद्वान तथा वीर बनाती है, उसी प्रकार दूसरी ओर शिक्षा समाज की उन्नति के लिए एक आवश्यक तथा शक्तिशाली साधन है शिक्षा के द्वारा समाज भावी पीढ़ी के बालकों को उच्च आदर्शों, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों तथा परम्पराओं आदि सांस्कृतिक सम्पत्ति को इस प्रकार से हस्तान्तरित करता है कि उनके हृदय में देश-प्रेम तथा त्याग की भावना प्रज्जवलित हो सके।

राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान शिक्षा का है उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनैतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर देश की पूरी जनसंख्या से होता है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से सम्बंध होता है। शिक्षा को प्राचीन काल से ही सामाजिक संरचना सांस्कृतिक विकास, आर्थिक उन्नति राजनैतिक चेतना के लिए सर्वोत्तम साधन माना जाता है। भारतीय परिस्थितियों में तो प्राथमिक शिक्षा का ओर भी महत्व है, क्योकि अधिकांश भारतीय धर्म के शिकंजें में बुरी तरह जकड़े हुए हैं। विभिन्न तरह के अंधविश्वासो व रूढ़िवादी विचारधारा में विश्वास करते हैं। शिक्षा द्वारा ही व्यक्तियों की मानसिकता में सुधार लाया जा सकता है। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा द्वारा शक्ति व प्रयासों का सही व उचित दिशा में प्रयोग करके हम देश को सही दिशा में ले जा सकतें है।

ऐसी शोचनीय हालत में खुद सरकारी आंकड़ों के अनुसार यदि 36.77 प्रतिशत बालक स्कूल छोड़कर चले जाते हैं तो आश्चर्य की क्या बात है। बुनियादी सुविधाओं के अभाव के अतिरिक्त कक्षाओं में ज्यादा भीड़-भाड़, शिक्षकों का अपर्याप्त प्रशिक्षण और उनकी अनियमित उपस्थिति, बच्चों के साथ बुरा व्यवहार तथा असंगत व बोझिल पाठ्यक्रम भी अन्य कारण हैं, जो बच्चे को बीच में स्कूल छोड़ देने के लिए बाध्य करने के लिए उत्तरदायी पाए गए। सबके लिए प्रारम्भिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था, नई तकनीक का प्रयोग और भारतवर्ष में जन्मी विचारधाराओं तथा अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर 'स्कूल शिक्षा' की सारी व्यवस्था का पुनःनिर्माण आवश्यक है। स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर शिक्षा के सार्वजनीकरण को लेकर हम बहुत पीछे रह गए हैं। विकास जिस तेजी से हो रहा है, उसके लिए आवश्यक है कि अब हमारा देश शिक्षा

के क्षेत्र में सभी को साथ लेकर ऐसे प्रयास करे जो व्यवहारिक हों और जिनके परिणाम हमें सही समय पर दृष्टिगोचर हो सकें। शिक्षा के लिए एक अलग दृष्टि की आवश्यकता है, जो भारतीय गरिमा, गौरव, विविधता और एकता का एक साथ सम्मान कर सकें और ऐसे नागरिक तैयार करने का प्रयत्न कर सकें जिनमें देशभक्ति की भावनाएँ विकसित हों, जिससे देश और समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

1.2 प्राथमिक शिक्षा का अर्थ:-प्राथमिक शब्द का सामान्य अर्थ है- प्रारम्भिक, मुख्य। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का अर्थ हुआ-प्रारम्भिक शिक्षा, मुख्य शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा इसलिए कि यह बच्चों को प्रारम्भ में दी जाती है और मुख्य शिक्षा इसलिए कि यह अग्रिम शिक्षा की नींव होती है। विश्व के विभिन्न देशों में आवश्यकता और सुविधा के अनुसार इसकी अवधि अलग-अलग है। हमारे देश में वर्तमान में 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों की कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत आती है। कक्षा 1 से 5 तक प्राथमिक, तथा कक्षा 6 से 8 तक को उच्च प्राथमिक शिक्षा कहा गया है और आज पूरे देश के लिए इस प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य और एक आधारभूत पाठ्यचर्या निश्चित है।

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा:-प्राथमिक शिक्षा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानव की सभ्यता का। वैदिक काल को इतिहास का प्राचीनतम काल माना जाता है, इस युग में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। लगभग 5 वर्ष की आयु पर किसी शुभ दिन बच्चे का 'विद्यारम्भ संस्कार' किया जाता था। यह संस्कार परिवार के कुल पुरोहित द्वारा कराया जाता था। इसके बाद बच्चे की शिक्षा नियमित रूप से प्रारम्भ होती थी।इस काल में उच्च शिक्षा का प्रारम्भ 8 से 12 वर्ष की आयु पर गुरूकुल में प्रवेश करने पर होता था। गुरूकुल मे प्रवेश के समय 'उपनयन संस्कार' होता था।

बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा;-बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं ने अपने मठों एवं विहारों में प्राथमिक एवं उच्च, दोनों स्तरों की शिक्षा व्यवस्था शुरू की। यह शिक्षा बौद्ध संघों के नियन्त्रण में थी, इसलिए दोनों स्तरों की शिक्षा के स्वरूप निश्चित हुए। बौद्धों ने अपने मठों एवं विहारों में सभी जाति और सभी वर्गों के बच्चों को प्रवेश देना शुरू किया, परिणामस्वरूप सभी जाति और वर्गों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के अवसर सुलभ हुए, परन्तु ये बौद्ध, मठ तथा विहार देश के सभी स्थानों पर स्थित नहीं थे, इसलिए इस काल में भी प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ नहीं बनाया जा सका। हाँ, एक ओर बौद्ध मठों एवं विहारो में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होने और दूसरी ओर बौद्धों की टक्कर में ब्राह्मणों द्वारा पाठशालाओं की स्थापना होने से प्राथमिक शिक्षा का विकास अवश्य प्रारम्भ हुआ।

मुस्लिम युग में प्राथमिक शिक्षा:-मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा प्रणाली में शिक्षा दो स्तरों में विभाजित थी-प्राथमिक और उच्च। प्राथमिक स्तर पर सभी विषय अनिवार्य रूप से पढ़ाए जाते थे। इस शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक स्तर पर लिपि ज्ञान, कुरान शरीफ का 30वां भाग, लिखना, पढ़ना, अंकगणित, पत्र लेखन, बातचीत और अर्जीनवीसी पढ़ाई सिखाई जाती थी। बच्चों को प्रारम्भ से ही कुरान शरीफ की कुछ आयतें रटाई जाती थीं और इस्लाम पैगम्बरों और मुसलमान फ़कीरों की जीवनियाँ पढ़ाई जाती थी.

ब्रिटिश काल में प्राथमिक शिक्षा:-इस काल में सरकार द्वारा समय - समय पर शिक्षा में सुधार हेतु आयोग तथा समितियों का गठन किया गया। जिन्होनें तत्कालीन प्राथमिक शिक्षा का गहनता से अध्ययन कर उसमें सुधार एवं प्रसार हेतु अनेक सुझाव तथा सिफारिशें प्रस्तुत की। इसके विपरीत अनेक सुधारको ने भी समय- समय पर अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करते हुऐ इसके प्रसार पर बल दिया।

भारतीय शिक्षा आयोग या हंटर कमीशन (1882-1883)व प्राथमिक शिक्षा:-भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति मुख्य रूप से वुड डिस्पेच मे घोषित शिक्षा नीति 1854 के क्रियान्वयन तथा परिणामों का अध्ययन करने और भारत में प्राथमिक शिक्षा की तत्कालीन स्थिति का अध्ययन करने और उसमें सुधार एवं विकास के उपाय खोजने के उद्देश्य हेतु की गई थी अतः इस आयोग द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार सबसे अधिक चिन्ता भारत में प्राथमिक शिक्षा के विकास की थी। इस आयोग द्वारा प्राथमिक शिक्षा के विकास हेतु निम्न सुझाव दिए गए:-

1. प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन और वित्त का भार स्थानीय निकायों को सौंपने का सुझाव दिया।
2. आयोग की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा के निम्न उद्देश्य निश्चित किए गए:-
(क) जन शिक्षा का प्रसार।
(ख) व्यवहारिक जीवन की शिक्षा।
3. प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ (प्रान्तीय भाषाएँ) होनी चाहिए।
4. प्राथमिक शिक्षा में सुधार हेतु प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया।
5. प्राथमिक शिक्षा में प्रसार के लिए देशी पाठशालाओं को प्रोत्साहन देने पर बल दिया।
6. प्राथमिक शिक्षा जीवन के व्यवहारिक पक्ष से सम्बन्धित होनी चाहिए।

गोखले का बिल और शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (1911-1913) व प्राथमिक शिक्षा

उस समय सरकार द्वारा किये गये अध्ययन मे यह पाया गया कि कुछ प्रशासनिक और आर्थिक कठिनाइयों के कारण अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो पा रही है अतः सर्वप्रथम सन् 1911 में इससे सम्बधित एक प्रस्ताव 'केन्दीय धारा सभा' मे पेश किया गया परन्तु यह पास नही हो सका। फिर 21 फरवरी सन् 1913 को सरकार द्वारा नवीन शिक्षा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसमें शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों को निर्धारित कर उसके विभिन्न पहलुओं में सुधार के लिए अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की गईं, जिसे सरकार ने स्वीकृत कर लिया। इस प्रस्ताव में प्राथमिक शिक्षा के लिए निम्न सुझाव दिये गये:-

1. **निम्न प्राथमिक स्कूल की संख्या में वृद्धि की जाए।**
2. आवश्यतानुसार निम्न प्राथमिक स्कूलों को उच्च प्राथमिक स्कूलों में विकसित किया जाए।
3. जिन क्षेत्रों में स्थानीय निकाय प्राथमिक स्कूलों की व्यवथा न कर पाएँ, वहाँ व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जाए।
4. सभी प्रकार के प्राथमिक स्कूलों के निरीक्षण की वयवस्था की जाए।
5. प्राथमिक शिक्षक कम से कम मिडिल पास हों और एक वर्ष का शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त हो।
6. सामान्यतः कक्षा में 30-40 छात्र हों, 50 से अधिक कभी नहीं।
7. देशी स्कूलों-मकतब और पाठशालाओं को उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाए।
8. प्राथमिक स्कूल स्वच्छ स्थानों पर स्थापित किये जाऐं तथा उनके लिए सस्ते भवनों का निर्माण कराया जाऐ।

हर्टाग समिति (1927-29) व प्राथमिक शिक्षा:-हर्टाग समिति के अध्ययन के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकला कि पिछले 50 वर्षों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की गति जनसंख्या वृद्धि की दृष्टि से बहुत धीमी रही थी और साक्षरता प्रतिशत बढ़ने के स्थान पर घटा था। समिति की रिपोर्ट के अनुसार अपव्यय व अवरोधन की समस्या को प्राथमिक शिक्षा की प्रमुख समस्या माना। अतः समिति ने अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या को रोकने के लिए निम्न सुझाव दिए:-

1. प्राथमिक शिक्षा का भार पूर्णतया स्थानीय निकायों पर न छोड़ा जाए।
2. प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने में शीघ्रता न की जाए।
3. प्राथमिक विद्यालय निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाए।
4. जिन प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति ठीक नहीं है, उन्हें बन्द कर दिया जाए।
5. प्राथमिक शिक्षा की न्यूनतम अवधि 4 वर्ष की जाए।
6. प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी विषयों को स्थान दिया जाए।
7. प्राथमिक विद्यालयों को मनोरंजन, ग्राम सुधार और प्रौढ़ शिक्षा का केन्द्र बनाया जाए।
8. प्राथमिक विद्यालयों में योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जाए।

वर्धा योजना 1937 प्राथमिक शिक्षा:-अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन' या 'वर्धा शिक्षा सम्मेलन' के सभापतित्व स्वयं गांधी जी के अध्ययन के अनुसार प्राथमिक शिक्षा अपव्ययपूर्ण और हानिप्रद थी। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा में सुधार के लिए शिक्षा का एक नया स्वरूप अर्थात् बेसिक शिक्षा स्वीकार किया, जिसके अनुसार शिक्षा निम्नलिखित रूप में स्वीकार की गई:-

1. 7 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

2. शिल्प का चुनाव बच्चों की योग्यता और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर किया जाए।

3. बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग हो और उनसे आर्थिक लाभ किया जाए, स्कूलों का व्यय पूरा किया जाए।

4. शिल्पों की शिक्षा इस प्रकार की जाए कि उससे बच्चे जीविकोपार्जन कर सकें।

5. शिल्पों की शिक्षा में आर्थिक महत्व के साथ-साथ उसके सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व को स्थान दिया जाए।

सार्जेन्ट योजना, 1944 व प्राथमिक शिक्षा

सार्जेन्ट महोदय की अध्यक्षता में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा (सरकारी और गैर सरकारी) का सर्वेक्षण किया, और बेसिक शिक्षा को स्वीकार किया, परन्तु कुछ परिवर्तनों के साथ उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्राथमिक शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाने की बात नहीं सोचनी चाहिए, क्योंकि बच्चों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ उपयोगी नहीं होती, उन्हें बेचा नहीं जा सकता। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिए:-

1. **6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए 8 वर्षीय अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।**

2. जूनियर बेसिक शिक्षा का रूप क्रियात्मक होना चाहिए।

3. जूनियर बेसिक विद्यालयों में अध्यापक-छात्र अनुपात 1:30 होना चाहिए।

4. जूनियर बेसिक स्तर पर अंग्रेजी को अनिवार्य न किया जाए।

5. प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय रोकने के लिए उसे अनिवार्य बनाना आवश्यक है।

6. **सीनियर बेसिक विद्यालय लड़के-लड़कियों के लिए अलग होने चाहिए।**

7. उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं को प्रमाण पत्र दिए जाएँ।

8. सीनियर बेसिक विद्यालयों में सामूहिक क्रियाओं को विशेष महत्व दिया जाए।

9. जूनियर बेसिक विद्यालयों में सह-शिक्षा होगी।

10. जूनियर बेसिक विद्यालयों में जहाँ तक सम्भव हो महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जाए।

स्वतन्त्र भारत से प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति:-स्वतन्त्रता के उपरान्त सन् 1950 में जब देश का संविधान लागू हुआ तो दस वर्ष के अन्दर 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा व्यवस्था के प्रयास किए जाने लगे। सन् 1957 में केन्द्र में 'अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद' का गठन किया गया। इस परिषद ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए, परिणामस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों की संख्या तथा उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। इसी बीच सन् 1966 में कोठारी कमीशन की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई। इस योजना के दौरान प्राथमिक विद्यालयों की दशा सुधारने के लिए 1987-88 में 'ब्लैक बोर्ड योजना' शुरू की गई। इसके साथ 1994 में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े जिलों में 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' शुरू किया गया, जिससे पिछड़े जिलों में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार हो सके। 15 अगस्त, 1995 को 'पौष्टिक आहार सहायता का राष्ट्रीय कार्यक्रम' शुरू किया गया। इसका उद्देश्य बच्चों के नामांकन, उपस्थिति और उन्हें स्कूल में रोके रखना है तथा इसके साथ ही जनवरी, 2001 में 'सर्वशिक्षा अभियान' शुरू किया गया और इसका लक्ष्य सन् 2010 तक सभी बच्चों को 8 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कराना निश्चित किया गया।वर्तमान में 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) चल रही है। इस योजना में शिक्षा के लिए कुल 2,69,873 करोड़ रूपयों का प्रावधान किया गया है, जिनमें से 1,25,380 करोड़ रूपये प्राथमिक शिक्षा के विस्तार एवं उन्नयन के लिए निर्धारित किए गए हैं। इस योजना के दौरान 2009 में शिक्षा का अधिकार नियम पास किया गया। इस अधिनियम के अनुसार 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों को कक्षा 1 से 8 तक की नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार है। सरकार ने इसे 1 अप्रैल, 2010 से इसे कानून के रूप में लागू भी कर दिया है। इस योजना के द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति की समय-सीमा प्रायः 3 वर्ष है।

अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्राथमिक शिक्षा में सुधार एवं प्रसार हेतु सरकार द्वारा किये गये प्रयास निम्न हैं-

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग), 1964-66 व प्राथमिक शिक्षा:-इस आयोग का कार्यक्षेत्र पूरे देश की तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कर उसमें सुधार के लिए सुझाव देना था। अतः आयोग ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का गहराई से अध्ययन कर उसके प्रति व्याप्त असन्तोष के कारणों का पता लगाया और इसमें सुधार के लिए प्राथमिक स्तर पर निम्न सुझाव दिए:-

1. सन् 1985-86 तक 6-14 आयु वर्ग के बच्चों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त किया जाए।
2. 11 से 14 वर्ष के उन सभी बचों के लिए जिन्होंने किसी कारण प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नहीं की है, 1 वर्षीय साक्षरता कक्षाएँ चलाई जाएँ।
3. पिछड़ी, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए प्राथमिक विद्यालय खोले जाएँ।
4. मन्दबुद्धि और विकलांग बच्चों के लिए अलग से स्कूल खोले जाएँ।
5. ऐसे बच्चे जो किसी कारण प्राथमिक शिक्षा के बाद पढ़ने की स्थिति में नहीं हैं, उन्हें प्राथमिक स्तर पर ही किसी हस्तकार्य में निपुण किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 व प्राथमिक शिक्षा:-सन् 1986 में सरकार द्वारा किए गए सर्वेक्षण में यह पाया गया कि शिक्षा राष्ट्र की मांगों को पूरा करने में असमर्थ है, इसका पुर्ननिरीक्षण होना चाहिए और पुनर्गठन होना चाहिए। अतः केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा के पुनर्गठन के उद्देश्य हेतु नई शिक्षा नीति लागू की, जिसके अनुसार प्राथमिक शिक्षा सर्वसुलभ बनाने के लिए निम्न कार्य किये जायेंगे:-

1. सन् 1995 तक 1 किमी॰ की दूरी पर सभी बच्चों को प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध कराये जायेंगे।
2. सन् 1995 तक 11 से 14 आयु वर्ग के शत प्रतिशत बच्चों को भी उच्च प्राथमिक शिक्षा सुलभ करा दी जाएगी।
3. प्राथमिक विद्यालयों की दशा को सुधारने के उद्देश्य से 'ब्लैक बोर्ड योजना; को लागू किया गया।
4. ऐसे बच्चे जो किसी कारण औपचारिक शिक्षा केन्द्रों पर नहीं जा पाते हैं, उनके लिए निरौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोले जाएँगे।

राममूर्ति समीक्षा समिति, 1990 व प्राथमिक शिक्षा:-इस समिति द्वारा किए किए गए अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार यह स्वीकार किया गया कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के कार्य को गम्भीरता से नहीं लिया जा रहा है। सन् 1990-91 तक ब्लैक बोर्ड योजना के अन्तर्गत 50 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों को इसका लाभ पहुँचाना था, परन्तु तब (1990) तक केवल 30 प्रतिशत विद्यालयों को ही इसका लाभ पहुँचा था। अतः इस सन्दर्भ में समिति ने प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित निम्न सुझाव दिये:-

1. प्राथमिक स्तर पर शत प्रतिशत नामांकन, शत प्रतिशत रूकाव और शत् प्रतिशत सफलता के लिए ठोस कदम उठाये जायेंगे।

2. प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए ब्लैक बोर्ड योजना को चालू रखा जाए और उसे गति प्रदान की जाए।

3. प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए ब्लैक बोर्ड योजना के साथ-साथ शिक्षकों, समुदाय और सामाजिक पर्यावरण में भी सुधार किया जाए।

सर्वशिक्षा अभियान (2001) व प्राथमिक शिक्षा:-नवीं पंच वर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान प्राथमिक शिक्षा के प्रसार व

उन्नयन हेतु सन् 2001 जनवरी में 'सर्व शिक्षा अभियान' शुरू किया गया। जिसके निम्न उद्देश्य थे:-

1. नामांकन बढ़ाना।

2. विद्यालय छोड़ने वाले छात्रों की संख्या घटाना।

3. सामाजिक व लैंगिक अनुपात को कम करना।

4. प्राथमिक शिक्षा का स्तर सुधारना ताकि सभी इससे लाभान्वित हो सके।

वास्तविकताऐं:-शिक्षा के इस अभियान ने शैक्षिक क्षेत्र में न केवल नामांकन को बढ़ाया अपितु अपव्यय व अवरोधन की समस्या भी दूर करने में सहयोग दिया। वास्तविकता को इस प्रकार समझा जा सकता है

1. घर से विद्यालय की दूरी 1 कि0मी0 से कम होने के कारण आज 65 प्रतिशत छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

2. वर्ष 2000 में लिंग अनुपात अधिक अर्थात 1000 बालकों पर 900 बालिकाऐं थी परन्तु लैंगिक स्तर में सुधार के फलस्वरूप सन् 2008 में लैंगिक अनुपात 1000 पर 930 देखा गया।

3. निचले वर्गों के लोगों का शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ा है, विद्यालय में छात्रों और छात्राओं की उपस्थिति एवं नामांकन मे तीव्र वृद्धि हुई है।

4. 2009 के अन्त तक 2.7 करोड़ बच्चों को विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों मे रखा गया व उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गई तथा 2.6 करोड़ बच्चों का सामान्य विद्यालयों में नामांकन हुआ।

5. प्राथमिक विद्यालयों से उच्च प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश 2002 मे 75 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 83 प्रतिशत तक जा पहुँचा।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 :-मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने आरटीई अधिनियम के कार्यान्वयन और परिणामस्वरूप सर्वशिक्षा अभियान के सुधार के सम्बन्ध में एक विशेष समिति गठित की थी, विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों के आधार पर के मापदण्डों को आरटीई के मापदण्डों और मानकों के अनुरूप बनाने के लिए संशोधन किया गया। जिससे शिक्षा के सर्वसुलभ लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। इस अधिनियम के प्रावधान इस प्रकार हैं:-

1. यह गैर दाखिल बच्चे की आयु के अनुसार कक्षा में दाखिला देने का प्रावधान करता है।

2. यह नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने, तथा सरकार केन्द्र एवं अन्य जिम्मेदारियों की हिस्सेदारी में उपयुक्त सरकारी, स्थानीय प्राधिकरणों एवं अभिभावकों के कत्तव्यों एवं जिम्मेदारियों को विनिर्दिष्ट करता है।

3. यह अन्य बातों के साथ शिक्षक अनुपात छात्र (पीटीआर), भवन एवं अवसंरचना, स्कूल के कार्य घंटों, शिक्षकों के कार्य घंटों से सम्बन्धित मानक एवं मानदंड निहित करता है।

उपलब्धियाअतः इस योजना के तहत चलाए गये कार्यक्रमों की सितम्बर 2010 तक की उपलब्धियाँ निम्न है-

3,09,727 नये स्कूल खोलना।
,54,935, नई स्कूल बिल्डगों का निर्माण।
11,66,868 अतिरिक्त कक्षा-कक्षों का निर्माण।
1,90,961 पेयजल सुविधाओं का प्रावधान।
3,47,857 शौचालयों का निर्माण।
11.13 लाख शिक्षकों की नियुक्ति।
14.02 लाख शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण (प्रतिवर्ष)।
8.70 करोड़ बच्चों को नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों की आपूर्ति (प्रतिवर्ष

****

भारत में प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता को बढ़ाने वाले विभिन्न कारकों का विश्लेषण

डॉ.सीता देवी
शोध निर्देशिका
शिक्षाशास्त्र विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

मनीषा सिंघल
शोध अध्येता.
शिक्षाशास्त्र महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

सार-शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। नवजात शिशु असहाय अवस्था में जन्म लेता है। शिशु बोलना, चलना-फिरना कुछ नहीं जानता। सांसारिक भेद-भाव से रहित कोमल शिशु का कोई शत्रु अथवा मित्र नहीं होता है। सामाजिक परम्पराओं, समस्याओं, रस्मों का ज्ञान उसको नहीं होता और न ही किसी आदर्श अथवा नैतिक मूल्यों को प्राप्त करने की जिज्ञासा पाई जाती है। शिशु की आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक परिवर्तन आते-जाते हैं तथा इसके साथ ही उसमें सामाजिक भावना भी विकसत होती जाती है। हमारे देश भारत में आज प्राथमिक शिक्षा की क्या स्थिति है, इसमें क्या दोष आ गये है सरकार की ओर से इसमें गुणात्मक सुधार हेतु क्या-क्या योजनाऐं चलाई जा रहीं है, विद्यालय में भौतिक सुविधाओं की क्या उपलब्धता है। कक्षा-कक्ष शिक्षण-अधिगम में क्या गुणात्मकता लाई जा सकती है। प्रस्तुत शोध आलेख में शोधार्थिनी ने इन्हीं प्रमुख बिन्दुओं पर चर्चा की है। शिक्षा से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है।

प्रस्तावना-भारत के लोगो में शिक्षित होने की चाहत आजादी से पहले से ही रही है। शिक्षा को क्षमताओं में अभिवृद्धि स्वतन्त्रता का विस्तार हर तरह के भेदभाव-शोषण के प्रतिकार करने का उपकरण माना जाता है। शिक्षा की निरपेक्ष उपयोगिता के कारण उसे मानव अधिकारों में सम्मित किया जाता है। परन्तु समान रूप से महत्वपूर्ण शिक्षा की उपकरणात्मक उपयोगिता है इसी वज से विकास की वैकल्पिक अवधारणा जो मानव विकास के रूप में जानी जाती है, में शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक है। वास्तव में शिक्षा समाज का एक भाग है।

प्राथमिक शिक्षा का अर्थ:-प्राथमिक शब्द का सामान्य अर्थ प्रारम्भिक, मुख्य प्रथम है, इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का अर्थ हुआ प्रारम्भिक शिक्षा या मुख्य शिक्षा। इसे प्राथमिक शिक्षा इसलिए कहते है क्यों कि यह बालकों को प्रारम्भ मे दी जाती है। मुख्य शिक्षा इसलिए है अगली कक्षा की नींव होती है। प्राथमिक शिक्षा बालक की प्रथम सीढ़ी है। बालक शुरूआत में प्राथमिक शिक्षा ही ग्रहण करता है। यह वह शिक्षा है जिसके आधार पर बालक भविष्य का निर्माण करता है। प्राथमिक शिक्षा बालक की वह नींव है जिस पर महल रूपी विस्तृत शिक्षा खड़ी होती है। प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मकता का प्रभाव बालकों के भविष्य पर भी पड़ता है। प्राथमिक शिक्षा कक्षा 1 से 5 तक की शिक्षा होती है। भारतीय अनुच्छेद 45 के अनुसार- राज्य इस संविधान के प्रारम्भ (26 जनवरी 1950) से 10 वर्ष की अवधि मे सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए प्रावधान का प्रयास किया और मौलिक शिक्षा ग्रहण करना मौलिक अधिकार का प्रावधान कर दिया गया है। 86 संवैधानिक संसोधन (दिसम्बर 2002) के आधार पर प्रारम्भिक शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप मे संविधान मे शामिल कर लिया गया। अब अनुच्छेद 21 के बाद नया अनुच्छेद 21। के रूप मे जोड़ दिया गया है। जिसके अनुसार 6 वर्ष से लेकर 14 वर्ष के सभी बच्चों को अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा देने को बाध्य होगा।

प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता को बढ़ाने वाले कारक:- शिक्षा हमारी नींव है इसलिए हमें अपनी नींव को मजबूत बनाकर चलना होगा। आज हमारी प्राथमिक शिक्षा में अनेक कमियाँ है। सबसे पहले तो इसकी गुणवत्ता में ही कमी है। प्राथमिक शिक्षा के माध्यम से बच्चो का विकाससुचारू रूप से नहीं हो रहा है। इसके सुधार के लिए हमे प्रयास करने होगें ।इसके लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनो को ही प्राथमिक

विद्यालय की गुणवत्ता को सुधारने के लिए नवीन व्यापक दृष्टिको णो एव रणनीतियों को बनाने का प्रयास करना होगा। इसके लिए अध्यापको कक्षा कक्ष मे अपनाई जाने वाली कार्यविधियो छात्रों मे ज्ञान का मूल्यांकन एवं विद्यालयी संरचना व विद्यालयी प्रभावशीलता से जुड़े मुद्दो पर कार्य करने की आवश्यकता है। आज देश के लगभग (14.5) लाख प्राथमिक विद्यालयों में 19.47 करोड बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे है। प्रारम्भ मे बच्चे अपनी शिक्षा को बीच मे ही छोड़ देते थे जिसके कारण शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन होता है। आज भी प्राथमिक स्तर पर यह स्थिति 16% बनी हुई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार वर्तमान मे विद्यालय से बाहर आने वाले विद्यार्थियों की संख्या 135 लाख से घटकर 2019 तक 61 लाख हो गई है। भारत ने स्कूल में निष्पक्षता एवं अभिगम्यता सुनिश्चित करने मे भी श्रेष्ठ प्रदर्शन किया है। राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण (एनएसएस) की रिपोर्ट में सामने आया है कि कक्षा पांच में पढ़ने वाले आधे बच्चे प्रश्नो का सही जवाब नहीं दे पाए जिसके कारण प्राथमिक शिक्षा मे गुणवत्ता मे कमी देखने को मिल रही है।

अध्यापक:- शिक्षा में सुधार का दावा करने के बावजूद देशभर में शिक्षकों के लगभग नौ लाख पद है। पिछले कुछ वर्षों में सुधार तो प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र मे हुआ है। फिर भी इसमे अभी बहुत कुछ बाकी है। उत्तर प्रदेश मे 1,74,666 पद प्राथमिक शिक्षक के खाली है उत्तराखण्ड़ मे 7,676 पद, गुजरात मे 24,841 पद, मध्य प्रदेश में 63,851 पद झारखण्ड़ में 73,793 पद, छत्तीसगढ़ में 43,100 पद, पश्चिम बंगाल में 85,835 पद, राजस्थान में 37,522 पद, असम में 39,522, बिहार में सबसे ज्यादा 2,03,650 पद खाली है। शिक्षको की कमी का सबसे बुरा असर यह है कि अधिकांश शिक्षक मल्टीग्रेड टीचिंग (एक से अधिक कक्षाओं को एक साथ पढ़ाना) के लिए मजबूर है। इन कक्षाओ मे पढ़ाना कम और बच्चो को एक साथ बिठाकर किसी तरह स्कूल का समय पूरा करना अधिक होता है। समस्या यहीं पर ही समाप्त नहीं होती है। जबकि उपलब्ध शिक्षक जब स्कूलो से प्रायः अनुपस्थित रहते है। तो समस्या तब गम्भीर विकट रूप धारण कर लेती है। विश्व बैंक के द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार भारत में औसतन 25% अध्यापक स्कूल से अनुपस्थित रहते है। सबसे गम्भीर स्थिति उस समय खड़ी होती है जब सरकार अध्यापको को अतिरिक्त कार्यो मे लगा देती है। जैसे-जनगणना में ड्यूटी, चुनाव मे ड्यूटी, पल्स पोलिया मे ड्यूटी आदि। हमारे दे श में अध्यापकों को समय पर वेतन भी नहीं मिलता जिससे वे सहीं तरह से शिक्षण कार्य नही करते है। सर्व शिक्षा अभियान की शुरूआत के समय ही प्रारम्भिक कक्षाओ मे अध्यापको के 19.48 पदो का सृजन किया गया है। आज भी ऐ से बहुत से विद्यालय है जहाँ शिक्षक बहुत ही कम है।वर्तमान मे सरकारी विद्यालयों मे नियमित अध्यापको में से 85% व्यवसायिक रूप से यो ग्यता सम्पन्न है। 20 राज्यों में सभी अध्यापकों के पास अपेक्षित योग्यता है। सरकार सभी अध्यापकों के पूरी तरह दक्ष होने के लिए प्रभावशाली कदम उठा रही है। मंत्रालय द्वारा 2014 मे करवाये गये एक अध्ययन के परिणामो के अनुसार अध्यापको की औसत उपस्थिति लगभग 83% थी इसको बढ़कर 100% करने की आवश्यकता है। जरूरत है कि विद्यालयी तंत्र प्रभावशाली युवाओं को अध्यापन के क्षेत्र में लाए। समय पर अध्यापकों को वेतन दें व उनको अनावश्यक कार्यो में न लगाए और शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ावा दे।

2. विद्यालय की प्रभावशीलता:- विद्यालयो की प्रभावी ढंग से प्रदर्शन के लिए विद्यालय प्रमुख का सशक्तिकरण महत्वपूर्ण है भारत सरकार ने राज्य सरकारो को प्रधानाचार्य एक अलग कैडर बनाने की सलाह दी। भविष्य मे विद्यालयों के प्रमुखो को प्रशिक्षण देने के लिए है। एनयुपीए पर राष्ट्रीय विद्यालय ने तत्व केन्द्र ने एक प्रशिक्षण पैकेज तैयार किया है। जिसे पूरे देश मे वर्तमान मे लागू किया जा रहा है। नवम्बर 2016 मे इसे लागू कर दिया गया विद्यालयो का विभिन्न आयामों मे निरन्तर मूल्या कन किये जाने की आवश्यकता है जिससे सुधार की आवश्यकता का समावे शन किया जा सके। गुजरात मे गुणो त्सव, मध्यप्रदे श मे प्रतिभा पर्व, राजस्थान मे सम्बलन और उड़ीसा मे समीक्षा जैसी पहले से बेहतर उदाहरण है। अपनी सुधार योजनाओं को चलाने और उन्हें बनाने के लिए विद्यालयों के द्वारा आत्म मूल्यांकन का उपयोग किया जायेगा। कक्षा कक्ष मे अपनायी जाने वाली कार्य विधियाँ- बच्चो मे ज्ञान की समझ विकसित कने कक्षा कक्ष प्रबंधन प्रभावी छात्र शिक्षक संवाद संरचित अध्यापन एवं सीखने पर जोर देने वाली गतिविधियों के दृष्टिकोण से इन कार्य विधियो को सर्वाधिक महत्व है।

मूल्यांकन और आंकलन:- एक छात्र की अध्ययन प्रगति का आंकलन करना शिक्षक की प्राथमिक भूमिकाओ में से एक है। कक्षा में छात्रों के नियमित और निरन्तर मूल्यांकन से अभिप्राय बच्चों और माता-पिता को प्रतिक्रिया दे ना हमे मूल्यां कन करना है। इसमे सुधार किया जा सकता है। छात्र अपने अध्ययन में कितनी प्रगति कर रहे है। इसके लिए कक्षा के व्यापक स्तर पर उपलब्धि सर्वेक्षण को भी जानने की आवश्यकता होती है।

अभिभावकों का दृष्टिकोण:- शिक्षा के स्तर में गुणवत्ता की कमी का प्रमुख कारण यह भी है कि माता-पिता और समुदाय शिक्षा का सारा काम शिक्षकों पर ही छोड़ देते है। वे यह भी चिन्ता नही करते कि स्कूल या कक्षा के अन्दर क्या हो रहा है। शिक्षक कुछ पढ़ा भी रहे है या नहीं। ग्राम समितियाँ शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ावा देने को आज तक नही समझ पायी है। ये समितियाँ ज्यादा से ज्यादा बच्चों को स्कूल भेजने पर बल देती है या अति गरीब बच्चों के माता-पिता को समझाती है कि बच्चे को स्कूल भेज दिया जाए। अभिभावक भी यह सोचते हैं कि बच्चे को बड़ा होकर अपना जीवन यापन ही तो करना है।

सामुदायिक भागीदारी:- एक व्यापक और विविधता से भरे देश में निर्णय लेना और जवाब देही का विकेन्द्रीकरण ही सफलता की कुंजी है। विद्यालय शिक्षा के मामले में समुदाय विद्यालय प्रबन्ध समितियों के माध्यम से विद्यालय प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। विद्यालय समितियो को अच्छे कार्य करने होगें और मजबूती के साथ बच्चों के शिक्षण के लिए विद्यालय की जवाब देही पर भी अपना नियंत्रण कर सके। विद्यालयों के साथ-साथ इसके व्यापक प्रचार-प्रसार को प्रदर्शित करने की भी आवश्यकता है।

निष्कर्ष:- विद्यालयों की शिक्षा व्यवस्था और गुणवत्ता में सुधार करने के लिए सबसे पहले अध्यापक प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दे ने की आवश्यकता है। अध्यापक प्रशिक्षण, व्यवस्था और शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने मे सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसी के साथ-साथ प्राथमिक विद्यालयों को मॉडल विद्यालयो मे बदलकर इसकी गुणवत्ता मे ओर भी सुधार लाया जा सकता है। मूलभूत सुविधाओ का ध्यान रखकर भी शिक्षा मे सुधार लाया जा सकता है। अभिभावकों के साथ-साथ समुदाय को भी जागरूक होने की आवश्यकता है। छात्रों के दैनिक मूल्यांकन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक का होना भी आवश्यक है। समय-समय पर विद्यालय का निरीक्षण होना भी जरूरी है तभी प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता मे सुधार होगा।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अध्यापक शिक्षा की शोध पत्रिका, 2015, एनसीईआरटी
2. आधुनिक भारतीय शिक्षा, अप्रैल 2016, एनसीईआरटी
3. इंडिया टूडे मासिक पत्रिका, नोएडा, नवम्बर 2017
4. डा वी0के0 शर्मा, संगीता देवी, भारत में प्राथमिक शिक्षा का एक परिदृश्य, शिक्षा संकाय, मदरहुड विश्वविद्यालय, रूड़की, हरिद्वार, उत्तराखंड, 2019
5. पाठक, पी0डी0, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, 2006
6. भटनागर, सुरेश, आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, 2007
7. शर्मा, आर0ए0, भारतीय शिक्षा का विकास, 2007
8. सक्सेना, पराग, नई शिक्षा पद्धति, 2016

महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानन्द के विचारों का स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययन

डॉ.मंजूला सिंह
शोध निर्देशक.
शिक्षाशास्त्र विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी
ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

कृष्णा सिंह अधिकारी,
शोध अध्येता
शिक्षाशास्त्र महर्षि यूनिवर्सिटी
ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

सार-प्रकृति त्रिगुणात्मिका है, अतएव प्रकृति का कोई भी प्राणी त्रिगुण से रहित नहीं है। विशेष कारणों से किसी में सत्त्व अधिक होता है, तो किसी में रजोगुण अथवा किसी में तमोगुण। कोई भी प्राणी इनसे मुक्त नहीं है। किसी भी युग में किसी समाज ने उत्कर्ष-प्राणी में स्त्रियों के सम्मान की अवहेलना का कोई भाव प्रदर्शित नहीं किया और न असभ्यावस्था में ही स्त्रियों की उपयोगिता किसी रूप में कम की जा सकी। वर्तमान युग विज्ञान और सूचना तकनीकी का युग है जिससे समाज का भूमण्डलीकरण हो रहा है, फलस्वरूप किसी समाज अथवा राष्ट्र की समस्याएं विश्व की समस्याएं तथा विश्व की समस्याएं उस समाज या राष्ट्र की हैं। आज स्त्री शिक्षा केवल एक समाज अथवा राष्ट्र की समस्याएं नही है, बल्कि ये भूमण्डलीय समस्यायें हैं। हाँ यह अवश्य है कि विकासशील देशों में विकसित देशों की अपेक्षा ये समस्यायें अधिक विकराल है। वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था सामाजिक वर्गीकरण ही पैदा नहीं करती बल्कि लिंग भेद की बढ़ावा देने वाली है। विकासशील देशों को कुछ अन्य विकट समस्याओं का भी सामना करना पड़ा है, जैसे निरक्षरता, दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, अधिकारों के हनन आदि स्त्री शिक्षा की प्रमुख समस्यायें हैं। इन समस्याओं का दार्शनिक विचारों से समाधान करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत शोध अध्ययन की अनुभूति हुई।

1.1 प्रस्तावना-जगत की रचना ही प्रकृति को लेकर हुई है। स्त्रियों के मान और उपयोग में कमी या भेद समय-समय पर अवश्य रहा है, किन्तु पुरूष के स्वार्थ को ही उसका कारण समझ लेना हमारी भूल होगी। समय, स्थान, रूचि और परिस्थिति के कारण समाज के नियम सभी देशों के सभी काल में एक तरह के नहीं रहने पाते और संशोधन की आवश्यकता भी किसी न किसी समय में हमारे सामने आ खड़ी होती है, किन्तु निर्माण या संशोधन का संबंध बाह्य स्वरूप से ही होता है। भारतवर्ष सदा से धर्म प्रधान राष्ट्र रहा है। यहाँ पूर्वकाल से ही ऋषि-महर्षि, संत-महात्मा, यती-सती एवं धर्मोपदेशक गुरू होते आये है, जिन्होंने अपने दिव्य आचरणों और प्रेरक वचनों से समाज को प्रभावित किया है। यहाँ के नर-नारी सदा से धर्म के आदर्श रहे हैं। स्त्री शिक्षा के संबंध में विभिन्न भारतीय शास्त्रों, आचार्यों, समाजसुधारकों शिक्षाशास्त्रियों ने भारतवर्ष में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित किया। स्त्रियां राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक कार्यों मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। इस दृष्टि से भारतवर्ष अवश्य भाग्यवान् है कि यहाँ की जनता का ध्यान प्रतिदिन शिक्षा की ओर आकर्षित होता जा रहा है। स्त्री-पुरूष और बच्चे सभी इस ओर उन्मुख हो गये हैं। परन्तु किसके लिए कौन पथ श्रेयस्कर है, इसका निर्णय नहीं हो पा रहा है। लक्ष्यहीन पथिक की भाँति जिसके जी में जो आता है वह उधर की उड़ान मार रहा है।

अतः शिक्षा का युग होने पर भी आश्चर्य है कि स्त्री-पुरूष किसी को भी अपने कर्तव्य का ध्यान नहीं है। पथ का ज्ञान नहीं है। सोचने पर हम इसी तथ्य पर पहुंचते है कि हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति ही ऐसी है जिसने पुरूष और स्त्री की पवित्र भावनाओं को नष्ट कर उन्हें परानुकरण-परायण बना दिया है और उन्हें शक्तिहीन बनाकर मानसिक परतंत्रता की श्रंखला में आबद्ध कर दिया है। उनके मस्तिष्क के लिए ऐसे विषय मिलते है, जो उनके सार्वजनिक जीवन के लिए अनुपयुक्त और हानिकारक सिद्ध होते हैं।

1.2 गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम-गाँधी जी की शिक्षा योजना को बेसिक शिक्षा की संज्ञा दी जाती है। इस शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रिया-प्रधान है तथा इसका उद्देश्य बालक को कार्य, प्रयोग एवं खोज द्वारा उसकी शारीरिक, मानसिक और आत्यात्मिक शक्तियों का विकास करना है जिससे वह आत्मनिर्भर रहते हुए समाज का उपयोगी अंग बन जाये। गाँधी जी ने अपने क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम में मातृभाषा बेसिक क्राफ्ट, गणित, समाजशास्त्र, सामान्य विज्ञान, कला तथा संगीत आदि विषयों के प्रमुख स्थान दिया। उन्होंने बताया कि पहली कक्षा से लेकर पांचवी कक्षा तक के सभी बालक कविताओं के लिए एक सा पाठ्यक्रम होना चाहिए। इसके पश्चात् बालकों को बेसिक क्राफ्ट की तथा बालिकाओं को गृह-विज्ञान की शिक्षा मिलनी परम आवश्यक है। ध्यान देने की बात है कि गाँधी जी की शिक्षा योजना प्राथमिक एवं लघु माध्यमिक कक्षा स्तर तक ही सीमित है। इस दृष्टि से उनके द्वारा संगठित किया हुआ पाठ्यक्रम भी केवल इसी स्तर तक के लिए है। आगे उन्होंने अपने द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिस पाठ्यचर्या की संरचना की वह कुछ इस प्रकार थी- ''हस्त कौशल एवं उद्योग, कढ़ाई, बुनाई, बागवानी, कृषि, काष्ठकला, चर्मकार्य, पुस्तक कला, मिट्टी, का काम और मछली पालन आदि) मातृभाषा, हिन्दुस्तानी (आज की दृष्टि से राष्ट्रभाषा हिन्दी उनके लिए जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।) व्यवहारिक गणित (अंक गणित बीज गणित रेखा गणित और नाप-तौल आदि) सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और समाज-शास्त्र) सामान्य विज्ञान (बागवानी, वनस्पति विज्ञान, प्राणी-विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान), संगीत, चित्र, काव्य, स्वास्थ्य विज्ञान (सफाई व्यायाम ओर खेल-कूद आदि) और आचरण शिक्षा (नैतिक शिक्षा, समाज सेवा एवं अन्य सामाजिक कार्य) और इसमें सबसे अधिक बल हस्त-कौशलों पर दिया था और उसके बाद मातृभाषा पर।

गाँधी जी के द्वारा निर्धारित शिक्षा के प्रकार को निरूपित करने से पूर्व उनके द्वारा शिक्षा के सम्प्रत्यय को समझ लेना परमावश्यक है। गाँधी जी के अनुसार शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास के रूप में स्वीकार की जा सकती है उनकी दृष्टि में साक्षरता शिक्षा नहीं है, यह तो न शिक्षा का प्रारम्भ है ओर न अन्त। यह तो स्त्री-पुरुषों को शिक्षित करने का साधन है। शिक्षा को परिभाषित करते हुए गाँधी जी ने स्वयं लिखा है- शिक्षा से मेरा तात्पर्य है- ''बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चहुमुखी विकास।''

1.2.1 जन-शिक्षा - गाँधी जी के समय भारत में लगभग 13 प्रतिशत लोग साक्षर थे। विद्यालयी शिक्षा के अभाव में उनमें न आत्मविश्वास था ओर न जागररूकता थी। तब हम प्रगति कैसे करते। गाँधी जी ने अशिक्षा के अभिशाप से बचने के लिए जन शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। जन-शिक्षा दो रूपों में होगी- एक तो बालकों को शिक्षित करने के लिए इन्होंने बेसिक शिक्षा योजना प्रस्तुत की। यह शिक्षा की राष्ट्रीय योजना थी जिसमें 7 से 14 वर्ष के बालकों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा पर बल दिया गया था। इस शिक्षा को गाँधी जी ने हस्त कौशलों पर केन्द्रित किया, एक तो इसलिए कि हस्त-कौशल हमारे जीवन के आधारभूत कार्य हैं।

1.2.2 स्त्री शिक्षा - गाँधी जी स्त्री को ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना मानते थे। गाँधी जी ने इस बात को स्पष्ट किया कि यद्यपि पुरुष और स्त्री का कार्य क्षेत्र थोड़ा भिन्न होता है लेकिन उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताएं समान होती हैं। इसलिए दोनों को अपने-अपने विकास के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया कि मुख्य रूप से स्त्री को पत्नी, माता व समाज के निर्माता के रूप में कार्य करना होता है। पहले दो कार्यों में वह पुरूष से भिन्न अवश्य होती है पर अपने तीसरे उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए उसे अपनी सभ्यता व संस्कृति

का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। परन्तु किसी की स्थिति में स्त्रियों को संगीत व नृत्य से दूर रखना चाहते थे। इनका मत था कि ये क्रियाएं वासना को बढ़ावा देती है, ये स्त्री व पुरुष की शिक्षा में केवल इतना ही अन्तर करते थे कि स्त्रियों को गृह कार्य की अतिरिक्त शिक्षा दी जाये। स्त्री पुरुष को समाज में बराबर का स्थान देकर उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर गाँधी जी ने समाज का बड़ा उपकार किया है।

1.2.3 सह-शिक्षा - गाँधी जी ने लड़के-लड़कियों को एक साथ रखकर पढ़ाने के प्रयोग किये थे ओर उनके आधार पर सह-शिक्षा की सम्भावना स्वीकार की थी। गाँधी जी के अनुसार प्राइमरी व उच्च स्तर पर सह-शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है परन्तु किशोरावस्था पर यह उचित नहीं होती। अपने इस मत को व्यक्त करते समय ये प्रत्येक समाज को यहां छूट देते हैं कि वह अपने पर्यावरण को दृष्टि में रखते हुए सहशिक्षा को स्वीकार व अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हो। इस प्रकार गाँधी सहशिक्षा के सम्बन्ध में सामाजिक पर्यावरण पर निर्भर करते थे।

1.3 विवेकानन्द जी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होता है। स्वामी जी ने अपने द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक विस्तृत पाठ्यक्रम का विधान प्रस्तुत किया। उन्होंने शिक्षा की पाठ्यचर्या में मनुष्य के शारीरिक विकास हेतु खेलकूद, व्यायाम और यौगिक क्रियाओं और मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु भाषा, कला, संगीत, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित और विज्ञान विषयों को स्थान देने पर बल दिया। भाषा के सम्बन्ध में स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। इनकी दृष्टि से अपने सामान्य जीवन के लिए मातृभाषा, अपने धर्म-दर्शन को समझने के लिए संस्कृत भाषा अपने देश को समझने के लिए प्रादेशिक भाषाओं एवं विदेशी ज्ञान विज्ञान एवं तकनीकी को समझने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। अतः इन भाषाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए। कला को एक मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग मानते थे। और इसके अन्तर्गत चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य और अभिनय सभी को पाठ्यक्रम में स्थान देने के पक्ष में थे। इनका तर्क था कि भारत का इतिहास पढ़ने से बच्चों में स्वदेश-प्रेम विकसित होगा और यूरोप का इतिहास पढ़ने से वे भौतिक श्री प्राप्त करने के लिए कर्मशील होंगे। इन्होंने राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को पाठ्यक्रम में स्थान देने पर भी बल देते थे। इनका विश्वास था कि इन दोनों विषयों के अध्ययन से बच्चों में राजनैतिक चेतना जागृत होगी और वे आर्थिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करेंगें। मनुष्यों में समाज सेवा का भाव उत्पन्न करने और उन्हें समाज की ओर उन्मुख करने के लिए स्वामी जी ने शिक्षा के सभी स्तरों पर समाज सेवा को अनिवार्य करने पर बल दिया।

इस प्रकार शिक्षा की पाठ्य चर्या के विषय में स्वामी जी का दृष्टिकोण अति व्यापक था और क्यों न होता, इन्होंने अपने देश के उच्चतम धर्मदर्शन को पढ़ा और समझा था और पाश्चात्य जगत के भौतिक वैभव को अपनी आँखों से देखा था। ये जानते थे कि पाश्चात्य जगत के भौतिक ज्ञान से हम अपना भौतिक विकास कर सकते हैं और अपने देश के आध्यात्मिक ज्ञान से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकते हैं। इस प्रकार शिक्षा की पाठ्यचर्या के विषय में स्वामी जी का दृष्टिकोण अति आधुनिक और अति व्यापक था। स्वामी जी शिक्षा को केवल एक वर्ग तक सीमित रखने में विश्वास नहीं रखते थे इसलिए उन्होंने शिक्षा को कई स्वरूपों में विभाजित किया जो इस प्रकार है-

1.3.1 जनसाधारण की शिक्षा- स्वामी जी के समय अपने देश की स्थिति बड़ी दयनीय थी। इसके विपरीत पश्चिमी देशों की दशा बहुत अच्छी थी। वहाँ के लोग सम्पन्न थे और वैभवशाली जीवन जी रहे थे, स्वामी जी ने इस सबको अपनी आँखों से देखा था। इन्होंने अनुभव किया कि राजनीतिक पराधीनता, आर्थिक विपन्नता, सामाजिक पिछड़ेपन और धार्मिक अन्ध विश्वासों इन सबका मूल कारण अशिक्षा है। इन्होंने उद्घोष किया कि जब तक भारत के सभी नर-नारी शिक्षित नहीं होते तक तक हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकते। जनशिक्षा से स्वामी जी का तात्पर्य बच्चों, युवकों और अशिक्षित प्रौढ़ों सबको शिक्षित करने से था। इन्होंने शिक्षित लोगों का आह्वाहन किया कि वे अशिक्षित प्रौढ़ों और वृद्धों को साक्षर बनायें, उन्हें शिक्षित करें। उस समय शिक्षा जन-साधारण को सुलभ नहीं थी। इसका क्षेत्र केवल समर्थ व्यक्तियों तक ही सीमित था। दीन-दुःखियों तथा निम्न वर्ग के लोगों को भर-पेट भोजन भी नहीं मिल पाता था। अतः स्वामी जी ने तत्कालीन भारतीय समुदाय की आर्थिक दृष्टि से हीन दशा को सुधारने के लिए जन-साधारण की शिक्षा पर बल दिया और कहा, मैं जनसाधारण की अवहेलना करना महान राष्ट्रीय पाप समझता हूँ यह हमारे पतन का मुख्य कारण है।

1.3.2 स्त्री शिक्षा- स्वामी जी अपने देश की स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति बड़े सचेत थे। उनका उद्घोष था कि नारी का सम्मान करो, उन्हें शिक्षित करो और उन्हें आगे बढ़ने के लिए अवसर दो। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज को शिक्षित नहीं कर सकते और जब तक समाज को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज अथवा राष्ट्र को विकसित नहीं कर सकते। परन्तु स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण पूर्णतया भारतीय था। ये उन्हें आदर्श गृहणी, आदर्श माताएं आदर्श शिक्षिकाएं और समाज सुधारक बनाना चाहते थे।

1.3.3 सह-शिक्षा- स्वामी जी सह-शिक्षा के विरोधी थे। उनका पहला तर्क तो यह था कि स्त्री-पुरुषों की शिक्षा की पाठ्यचर्या समान नहीं होती इसलिए उन्हें साथ-साथ कैसे पढ़ाया जा सकता है। उनका दूसरा तर्क यह था कि सह-शिक्षा आत्म संयम में बाधक होती है। ये लड़कियों के लिए अलग विद्यालयों की स्थापना करने और उनमें केवल स्त्री शिक्षिकाओं की नियुक्ति करने के पक्ष में थे।

1.4 निष्कर्ष-महात्मा गाधी और स्वामी विवेकानन्द जी के के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचार एवं सिद्धान्त आधुनिक भारतीय परिस्थितियों में अमल किए जा रहे हैं। परन्तु अभी और भी सुधार हम इन महान शिक्षाविदों के विचारों से कर सकते हैं। अभी स्त्री शिक्षा सम्बन्धी तथा खास तौर पर ग्रामीण स्त्री शिक्षा सम्बन्धी अनेकों समस्यायें हैं पर उन समस्याओं का समाधान हम इन महान शिक्षा दार्शनिकों के शैक्षिक विचारों पर अमल करके कर सकते हैं। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी और विवेकानन्द द्वारा दिए गए सुझावों को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण करना चाहिए जिससे स्त्री शिक्षा की समस्या पर नियंत्रण पाया जा सके।

**** ******

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कुलकर्णी, शरद अनन्त (2009) द्वितीय संस्करण ,"गांधी जी एवं विवेकानन्द जी के विचार दर्शन", खण्ड-4, सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान, नईदिल्ली।
2. माथुर, एस0 एस0 (2011) "गांधी जी के शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. शर्मा, आर0 ए0 (2009) "तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, मूल्यमीमांसा एवं शिक्षा", सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कालिज, मेरठ।
4. शर्मा, आर0ए0 (2011) "शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कालिज, मेरठ।
5. शर्मा, आर0ए0 (2005) "शिक्षा अनुसंधान", सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कालिज, मेरठ।
6. शर्मा, आर0ए0 (2003) "शिक्षा अनुसंधान", सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कालिज, मेरठ।
7. त्रिपाठी, लालबचन (2006) "मनोवैज्ञानिक अनुसंधान विधियाँ", एच0पी0भार्गव बुक हाउस, कचहरी घाट, आगरा।
8. मित्तल, एम0एल0 (2012) "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", इन्टरनैशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
9. भिशीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द (2001) द्वितीय संस्करण, "पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन" खण्ड-5 (राष्ट्र की अवधारणा), सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवालान,
10. राठौर, कुसुम लता (2009) प्रथम संस्करण, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कालिज, मेरठ।
11. आबेराय, सुरेश चन्द्र (2005) "शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन", आर0 लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कालेज, मेरठ।

किशोरावस्था में सामाजिक परिपक्वता-विद्यार्थियों की शैक्षिक संतुष्टि का अध्ययन

डॉ.मंजुला सिंह
शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालयए लखनऊ

ममता मेहरा
शोधार्थिनी शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, लखनऊ

1.1 प्रस्तावना-शिक्षा का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा मानव का सम्पूर्ण विकास करती है। यह सर्वमान्य सत्य है प्रत्येक अभिभावक का यह सपना होता है कि उसका बालक उत्तम से उत्तम शिक्षा ग्रहण करे तथा अपने शिक्षण काल में वह पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करे। जब बालक पूर्ण संतुष्टि के साथ शिक्षा गृहण करता है तब शिक्षा के क्षेत्र में धीरे-धीरे सीखकर ज्ञान के शिखर तक पहुँचता है और देश के विकास में अपनी भागीदारी करता है। शिक्षा प्राप्ति के लिए एक बालक को भिन्न-भिन्न विषयों का अध्ययन कराया जाता है। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक शिक्षा तक बालक को लगभग सभी विषयों को पढ़ाया जाता है जिनकी बालक अथवा शिक्षार्थी को अपने जीवनकाल में समय-समय पर आवश्यकता पड़ती है। परन्तु उच्चतर माध्यमिक स्तर तक पहुँचते-पहुँचते बालक को स्वयं की रूचियों के अनुसार विषयों का चयन करके अध्ययन करना होता है। कुछ बालक अपने जीवन में वैज्ञानिक बनना चाहते हैं, कुछ बालक प्रशासनिक अधिकारी बनना चाहते हैं, कुछ बालक राजनीतिज्ञ बनना चाहते हैं, कुछ बालक व्यवसायी बनना चाहते हैं, कुछ बालक चित्रकार बनना चाहते हैं, कुछ बालक कलाकर बनना चाहते हैं, कुछ बालक इंजीनियर बनना चाहते हैं, कुछ बालक डॉक्टर बनना चाहते हैं, कुछ बालक सरकारी क्षेत्र में अपना करियर बनाना चाहते हैं, कुछ बालक निजी क्षेत्र को महत्ता प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक बालक अपने सम्भावित व्यवसाय/सेवा/रूचि के अनुरूप विषयों का चयन करते है तथा अध्ययन करते हैं।वास्तव में शिक्षा मानव तथा समाज दोनों के लिए आवश्यक है। मानव के द्वारा समाज का तथा समाज में रहकर मानव का विकास होता है। शिक्षा के द्वारा ही मानव की अपने अधिकारों, उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है तथा शिक्षा ही मानव को इन अधिकार, दायित्व एवं कर्तव्यों का पालन करना सीखाती है। शिक्षा की लोकतन्त्र/प्रजातंत्र की रीढ़ की हड्डी माना गया है। अतः लोकतंत्र की सफलता के लिए तथा मनुष्य में लोकतंत्र की गुणवत्ता की भावना को बनाये रखने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता को समृद्ध करना तथा तथा उसका प्रसार करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रजातांत्रिक शिक्षा प्रणाली में मनुष्य/प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रूचि, योग्यता, क्षमता, आवश्यकता के अनुसार अधिकतम विकास के अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं जिससे मानव को पूर्ण संतुष्टि प्राप्त हो सके और वह राष्ट्रहित में अपना पूर्ण योगदान दे सके।

वस्तु स्थिति यह है कि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक को एक सुखी, सम्पन्न तथा प्रसन्न जीवन का आनन्द लेने योग्य बनाया जाता है। शिक्षा के संकुचित तथा व्यापक दोनों ही अर्थों का समन्वय प्रगतिशील दिशा में करते हुए शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में उपस्थित हो जाती है। जो चेतन तथा अवचेतन रूप से बालक की व्यक्तिगत रूचियों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा सामाजकि आदर्शों, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास करती है एवं उसके व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्तन करती है कि व्यक्ति तथा समाज दोनों ही उन्नति के शिखर पर चढ़ते रहे।

किशोरावस्था में सामाजिक परिपक्वता-

किशोरावस्था में पर्दापण करने पर बालक-बालिकाओं में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों से उनका सामाजिक विकास प्रभावित होता है। इसके साथ किशोर के सामाजिक विकास पर उसकी रूचियों, आवश्यकताओं, अभिवृत्तियों, मूल्यों, असुरक्षा की भावना और उत्तरदायित्व तथा घर, विद्यालय एवं मित्रों का प्रभाव पड़ता है। 12 से 21 वर्ष का काल प्रत्येक किशोर और किशोरी के जीवन का स्वर्णिम काल माना जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था में सामाजिकता और विषमलिंगी सम्बन्ध को सामाजिक व्यवहार की मुख्य विशेषता माना है। बाल्यावस्था की सामाजिकता विसमलिंगी सम्बन्धों में परिवर्तित हो जाती है। लड़कों की रूचि लड़कियों में, और लड़कियों की रूचि लड़कों में बढ़ जाती है। सामान्य रूप से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था में लड़के-लड़कियाँ केवल देखना-दिखाना चाहते हैं। वे एक दूसरे का साथ चाहते हुए भी संकोच का अनुभव करते हैं। एक दूसरे के समक्ष वेश भूषा और तौर तरीके का प्रदर्शन करने में उन्हें आनन्द आता है।किशोरों का अधिक समय विद्यालय या सामाजिक क्रियाओं में व्यतीत होता है। वह अपना समय घर पर भी नहीं दे पाता है। उसे मित्रों के साथ स्काउटिंग शिविरों, यात्राओं आदि में भाग लेकर अत्यधिक प्रसन्नता होती है। ए0वी0 हरलॉक के अनुसार ''हाईस्कूल की उम्र वह काल है जब सामाजिक सहभाग की प्रवृत्ति सामान्यतया चरम सीमा पर पहुँच जाती है। किशोरों के सामाजिक विकास की परिपक्वता तीन इकाइयों पर निर्भर करती हैं- परिवार, विद्यालय और मित्र। बहुत से मामलों में किशोर का विकास परिवार में माता-पिता, भाई-बहन और सम्बन्धियों से निश्चित होता है। परिवार में यदि अच्छा वातावरण है, तो बालक सामाजिक परिपक्वता की ओर तेजी से अग्रसर होता है। प्रायः घरों में माँ-बाप या बड़े लोगों का बालक पर दबाव बना रहता है। वे उन्हें छोटा बच्चा समझ कर नियंत्रित करते हैं, इसलिए माँ-बाप के प्रति उनके मन में विद्रोह की भावना घर कर जाती है। जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो लेकिन जैसा मैं करता हूँ वैसा नहीं। माता-पिता का इस प्रकार का दृष्टिकोण किशोर को अनेक समस्याओं में उलझा देता है। विद्यालय में किशोर के सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका विद्यालय की है। किशोर को सामाजिक और सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए उन्मुक्त वातावरण विद्यालय ही प्रदान करता है। यदि विद्यालय में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ संगठित रूप से संचालित की जाती हैं, तो उनमें सामाजिक अनुरूपता के साथ ही साथ सामाजीकरण की प्रक्रिया का भी विकास होगा। किशोरों की सामाजिक अभिवृत्तियों में परिवर्तन मुख्य रूप से विद्यालय या महाविद्यालय के वातावरण के कारण ही होता है। किशोरावस्था के मित्र बाल्यावस्था की अपेक्षा परिवर्तित हो जाते हैं। बाल्यावस्था में अनेक मित्र होते हैं और मित्रता अस्थायी होती है। किन्तु किशोरावस्था की मित्रता कभी-कभी अनेक बालकों के लिए चिन्ता का कारण भी बन जाती है।

सामाजिक चेतना या बोध का विकास किशोरावस्था में तेजी से होती है। वह समाज में एक स्थान बना लेना चाहता है। इसके लिए वह सामाजिक कार्यों में रूचि लेता है और बड़ों का सहयोग करता है। ऐसा करने से उसमें सामाजिक परिपक्वता आती है। किशोर बहुत बड़ा अनुकरणकर्ता होता है। अनुकरण करते समय वह विचार कम करता है। इसके साथ ही वह नैसर्गिक अन्तः प्रेरणाओं को व्यक्त करना चाहता है। उसके ऊपर देश के नेताओं के विचारों का प्रभाव पड़ता है। और वह किसी नेता के प्रति आस्थावान् होता हुआ भी दिखाई पड़ता है। विद्यालय में अपने आदर्श अध्यापकों के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वह उनके गुणों को स्वयं में विकसित करने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार धीरे-धीरे किशोरों में वीर-पूजा की भावना विकसित होती चली जाती है।

किशोरावस्था में सामाजिक परिपक्वता के रूप-

किशोरावस्था के बालक एवं बालिकाओं में सामाजिक परिपक्वता के निम्नांकित रूप दृष्टिगत होते हैं, यथा-समूह के प्रति अनुरूपता- किशोर समूह के प्रतिमानों, नैतिकता और आदर्शों के अनुरूप आचरण करना अपना कर्तव्य समझता है। उसे विद्यालय में और विद्यालय से बाहर समूह की स्वीकृति आवश्यक होती है। समूह के कारण किशोर को व्यवहार के एक निश्चित स्वरूप का ज्ञान होता है। समूह की छाप किशोर के व्यक्तित्व पर भी पड़ती है, जिनके चिन्ह भावी जीवन में भी रहते हैं। स्वाग्रहिता- किशोर यह कभी नहीं चाहता कि उसका व्यक्तित्व समूह में ही समाप्त हो जाय। वह समूह में अपना एक स्थान लेना चाहता है, जिसकी ओर समूह के अन्य सदस्य आकर्षित हो सकें। किशोर में आत्मविश्वास की भावना जैसे ही बल पकड़ती है, यह अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। सामाजिक अन्तर्दृष्टि -'दूसरे क्या करते है' इसे स्वयं समझना या देखना ही सामाजिक अन्तर्दृष्टि है। सामाजिक अन्तर्दृष्टि के

कारण किशोर इस बात को समझता है कि उसे परिवार और विद्यालय में तथा मित्रों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। वह प्रौढ़ों के स्तर के अनुसार व्यवहार करता है। जिन किशोरों में इस प्रकार की दृष्टि विकसित हो जाती है उनके सामाजिक समायोजन में सुविधा होती है। नेतृत्व -किशोर के सामाजिक विकास में नेतृत्व की भावना का विकास विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। किशोर में नेता बनने की प्रबल भावना देखी जाती है। अधिकांश रूप में वे ही किशोर नेता बन पाते हैं, जो अच्छा स्वास्थ्य और कार्य शक्ति, भाषा और खेल-कूद में आगे होते हैं। किशोरावस्था में किशोर को बाल्यावस्था की अपेक्षा बड़े समूह का नेतृत्व करना पड़ता है। वह उसके लिए योजनाएँ बनाता है तथा कार्यक्रम का रूप निश्चित करता है। बड़ों का प्रतिरोध - अनेक अवसरों पर किशोर घर में अपनी इच्छा, योजना, स्वतन्त्रता आदि के सम्बन्ध में बड़ों की स्वीकृति चाहता है जो उसे नहीं मिल पाती है। विद्यालय में भी शिक्षक का व्यवहार उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं होता है। इस स्थिति में अपनी अप्रसन्नता और विरोध को प्रकट करने के लिए वह घर से भागता है, विद्यालय में कक्षायें छोड़ता है। अध्यापक की हँसी उड़ाता है, माँ-बाप के लिए अपशब्दों का प्रयोग करता है। ऐसी स्थिति में किशोर में बुराइयाँ स्वयं पैदा हो जाती है।

पूर्वाग्रह -यह एक प्रकार का सामाजिक दृष्टिकोण है जो बालकों में उदय हो जाता है। इसकी चरम सीमा किशोरावस्था में ही प्रकट होती है। बहुधा अनेक किशोर अपनी जाति, वर्ग अथवा पारिवारिक प्रतिष्ठा के कारण अपने को दूसरों से उत्कृष्ट समझने लगते हैं। यदि उनके दृष्टिकोण का विश्लेषण किया जाय तो मूल में पारस्परिक द्वेष की भावना ही क्रियाशील मिलेगी। सामान्य रूप से किशोर इस प्रकार का गर्वीला-पन अपने परिवार के लोगों के व्यवहार से ही सीखते हैं। पूर्वाग्रह को ही सामाजिक विभेद प्रवृत्ति भी कहते हैं।

सामाजिक परिपक्वता के विकास में अवरोधक तत्व-बालक के सामाजिक विकास पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। ये कारक वातावरण और संगठित सामाजिक साधनों से सम्बन्धित हैं। इन कारकों के ऊपर बालकों की सामाजिक परिपक्वता पूर्णतः निर्भर करती है। यहाँ सामाजिक विकास पर प्रभाव डालने वाले कुछ प्रमुख कारकों की चर्चा की जा रही है-स्वास्थ्य- बालक के अच्छे स्वास्थ्य का परिणाम समुचित सामाजिक विकास के रूप में दिखाई पड़ता है। अस्वस्थ्य एवं शारीरिक विकृति से ग्रस्त बालक हीन भावना के शिकार हो जाया करते हैं, इसलिए विकास की गति मन्द एवं अवरूद्ध हो जाती है। इसके साथ ही अस्वस्थ बालकों की ओर माता-पिता का अधिक ध्यान होने के कारण वे स्वार्थी हो जाते है, और उनके सामाजिक समायोजन में काफी कठिनाई होती है।

संवेगात्मक जीवन-जिन बालकों में निषेधात्मक संवेग जैसे- ईर्ष्या, क्रोध, भय आदि अधिक रूप में दिखाई पड़ते हैं, ऐसे बालक शीघ्र ही दूसरों की दृष्टि में गिर जाते हैं। उनके साथ कोई बालक रहना पसन्द नहीं करता है। परिणामस्वरूप उनके सामाजिक विकास की गति मन्द हो जाती है। इसके विपरीत जो अपने संवेगों का प्रदर्शन धनात्मक रूप से करते हैं, उनका सामाजिक विकास वांछित दिशा में होता है। क्रो और क्रो का कथन है, कि ''संवेगात्मक और सामाजिक विकास साथ-साथ चलते हैं।'' पारिवारिक वातावरण-परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है जहाँ वह सामाजिकता का प्रथम पाठ पढ़ता है। सुसंस्कृत पारिवारिक वातावरण में पले बालकों का सामाजिक विकास अनुचित वातावरण में पले बच्चों के सामाजिक विकास की अपेक्षा सुन्दर एवं सुचारू ढंग से होता है। माता-पिता एवं बालक का सम्बन्ध, माता-पिता का परस्पर सम्बन्ध, बालक का जन्म-क्रम तथा भाई-बहन का आपसी सम्बन्ध आदि पारिवारिक प्रतिमानों के अनुकूल है, तो बालक का विकास भी अनुकूल दिशा में होता है। एडलर का कहना है कि परिवार का सबसे बड़ा लड़का जब तक अकेले रहता है। तब तक उसका सामाजिक विकास बहुत तीव्र गति से सुचारू ढंग से होता है। इसका कारण यह है कि उसके माता-पिता उसकी ओर काफी ध्यान देते हैं। दूसरे बच्चे के आगमन से परिवार के लोगों का ध्यान छोटे बच्चे पर चला जाता है और बड़े लड़के में छोटे भाई-बहन के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। खेल तथा मनोरंजन क्रियाएँ-एक साथ खेलने से बालकों के अन्दर सहकारिता, प्रतियोगिता, सहानुभूति आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है। इस बात के पक्के प्रमाण हैं, कि- जो बालक अन्य बालकों के साथ मिलजुल कर खेलते हैं। उसका सामाजिक विकास साथ न खेलने वाले बालक की अपेक्षा अधिक होता है। फिर भी यह सही है, कि विद्यालय का प्रभाव बालक के सामाजिक जीवन पर अधिक पड़ता है। टोली, संस्था और शिविर- टोली, संस्था और शिविर का भी सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता। इनसे भी बालकों में बहुत से ऐसे गुणों का विकास हो जाता है जो आगे चलकर उनके सामाजिक विकास में अधिक सहायक होते हैं। यही कारण है कि विद्यालयों में एन0सी0सी0 स्काउटिंग और गाइडिंग आदि की शिक्षा लड़के-लड़कियों को दी जाती है। सामाजिक व्यवस्था -देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थाओं का प्रभाव भी बालकों के सामाजिक विकास पर काफी पड़ता है। समाज के कार्य आदर्श और प्रतिमान बालक के सामाजिक दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं। इनके अतिरिक्त बालकों के सामाजिक विकास को शिक्षक, रेडियों चलचित्र, समाचार -पत्र और पत्रिकायें आदि ऊपर वर्णित कारकों के समान ही प्रभावित करते हैं।

शिक्षा राष्ट्र के विकास की कुंजी है। राष्ट्र द्वारा शिक्षा के सम्बन्ध में पर्याप्त धन व्यय किया जाता है। शिक्षा राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, राजनैतिक पक्षों को आधार प्रदान करती है। शिक्षा व्यक्ति में उच्च गुणों का विकास करके उसे सुयोग्य बनाती है। भारत जैसा देश शिक्षा की अवहेलना नहीं कर सकता। परन्तु यहाँ अनेकों समस्याएँ हैं जिस कारण यहाँ शिक्षा पर उपयुक्त धन व्यय नहीं किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि धन का उचित उपयोग करके देश को अधिकाधिक लाभ पहुँचाया जाये। अनुत्तीर्ण छात्रों की संख्या तथा उत्तीर्ण छात्रों की योग्यता को देखकर यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले धन का अधिकांश भाग व्यर्थ हो रहा है। छात्रों की असंतुष्टि एक विस्फोटक रूप धारण कर चुकी है। उनकी यह असन्तुष्टि सामाजिक क्रियाकलापों में उभरकर सामने आती है। छात्र भ्रमित तथा लक्ष्यहीन होकर अपनी ऊर्जा का गलत प्रयोग करते हैं। अतः छात्रों की ऊर्जा का सही उपयोग करने के लिए उनमें असंतुष्टि के कारणों की खोज करना परम आवश्यक है। सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि भारत देश में छात्रों की शैक्षिक संतुष्टि-असन्तुष्टि से सम्बन्धित कारकों पर शोध का पर्याप्त अभाव है।वर्तमान समय में देखने को मिलता है कि छात्र शिक्षक का अपमान करते हैं। कक्षाओं व परीक्षाओं से बहिष्कार करते हैं, कुलपति का घेराव करते हैं, पुतले फूंकते हैं, अपनी माँग पूरी कराने के लिए हिंसा करते हैं। छात्र महाविद्यालययों द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के प्रति असन्तुष्ट ही दिखाई देते हैं छात्र महाविद्यालय में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है तथा आपूर्ति न होने पर उसमें निराशा, कुण्ठा व असंतोष उत्पन्न होता है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.शर्मा, आर0ए0 (1993) शोध प्रबन्ध लेखन इण्टरनेशनल पब्लिशिंक हाउस, मेरठ।
2.शर्मा, आर0ए0 (1999-2000) शिक्षा अनुसंधान, राज प्रिंटर्स, मेरठ।
3.कृष्ण कुमार, शिक्षा का उद्देश्य और शिक्षा की व्यवस्था भारतीय आधुनिक शिक्षा, 23 अंक, 4 अप्रैल।
4.भटनागर, ए0बी0, शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली 2011, मेरठ आर0 लाल बुक डिपो।
5.गुप्ता, डॉ॰ अलका, शैक्षिक सन्तुष्टि, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2010।
6.वर्मा, एस0बी0 (1996), ब्रहत विश्व सूक्ति कोष, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन।
7.पुष्पलता कुशवाहा, शैक्षिक प्रबन्धन एवं विद्यालय संगठन, आस्था प्रकाशन, जयपुर।
8.पाठक वीणे व्यास-शिक्षा के विविध आयाम।
9.शर्मा आर0ए0 विद्यालय प्रबन्ध तथा शिक्षण शास्त्र, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
10.शर्मा, आर0ए0: अध्यापक शिक्षा, इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस, मेरठ।
11.बुच एम0बी0: थर्डसर्वेइन एज्युकेशन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (1983)
12.सक्सेना, एन0आर0 मिश्रा बी0के0 मोहन्ती आर0के0 अध्यापक, शिक्षा, सूर्या प्रकाशन, मेरठ
13.कुकान (1993) विशाल प्रकाशन मन्दिन, मेरठ।
14.शर्मा, हरस्वरूप (1990) सांख्यिकीय विधियाँ। राम प्रकाश एण्ड सन्स, आगरा।
15.रायजादा, डा॰ बी॰एस॰ (1996) शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व, राजस्थान तत्व, राजस्थान हिन्दी अकादमी, राजस्थान।
16.डॉ॰ मधु शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि।
17.बेस्ट जे॰ डब्ल्यू, शिक्षा अनु0 नई दिल्ली (1963)
18.एन0सी0ई0आर0टी0 नई दिल्ली 122, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005।
19.बुच, एम0पी0 ए सर्वे ऑफ रिसर्च एन एजूकेशन सी0ए0एस0ई0 एस0एस0 यूनिवर्सिटी, बड़ौदा, 1972।
20.भारत में शिक्षा (1960-61) दिल्ली, शिक्षा मंत्रालय।
21.चक्रवर्ती मोहन-मॉर्डन इश्यूज इन एजूकेशन।
22.बेस्ट जे डब्ल्यू-रिसर्च एजूकेशन प्रोन्टिस हॉल न्यू देहली, 1963।

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन एवं मानवतावादी दर्शन

डॉ.हलधर यादव
शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

पूनम रानी
शोधार्थिनी शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

1.1 जीवन परिचय:-स्वामी विवेकानन्द का जन्म मकर संक्रान्ति के दिन 12 जनवरी, 1863 को क्षत्रिय परिवार में बंगाल राज्य के कलकत्ता शहर में हुआ था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त एक सुसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित वकील थे। इनकी माता भुवनेश्वरी देवी एक पवित्र एवं विदुशी व धार्मिक महिला थी। इनका बचपन का नाम नरेन्द्र दत्त था। ये अपने माता-पिता के छटवे तथा जीवित रहने वाले पुत्रों में प्रथम थे। इसलिये ये अपने परिवार में सबके प्रिय थे। इनकी माता ने इन्हें बचपन में ही इन्हें रामायण महाभारत तथा पुराणों की कथा सुनने पर बल दिया। अतः इस पारिवारिक धार्मिक वातावरण ने इनको आरम्भ से ही गम्भीर, चिन्तनशील, धर्मनिष्ठ और कर्मनिष्ठ बना दिया। नरेन्द्र जी की बुद्धि बड़ी कुषाग्र थी। इन्होंने साहित्य इतिहास, कनिता और दर्शन का गहरा अध्ययन किया। इसके साथ-साथ संगीत वाद्य-यन्त्र, अश्वारोहण, व्यायाम और तैराकों में भी ये कुशल थे। हरबर्ट स्नेन्सर तथा जान स्टुअर्ट मिल उनके प्रिय दार्शनिक थे तथा वर्डसवर्थ एवं शैले उनके प्रिय कवि। नरेन्द्र नाथ अपने आचरण में बड़े संयमी थे। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे प्रार्थना, उपासना और ध्यान में लीन रहते थे। अतः ये विद्यार्थी जीवन में अपने सुन्दर शरीर, प्रखर प्रतिभा तथा बातचीत के अलौकिक ढंग के कारण लोकप्रिय बन गये। ये ज्ञान के प्रकाश में मंडित, आध्यात्मिक तेज से प्रदीप्त चुम्बकीय आकर्षण से युक्त, अत्यन्त प्रभावी व्यक्तित्व के थे। उनके प्रधानाचार्य मिस्टर हैस्ट्री ने उनके विषय में कहा था-"नरेन्द्रनाथ दत्त वस्तुतः प्रतिभाशाली है। मैने विश्व के विभिन्न देशों की यात्रायें की हैं किन्तु किशोरावस्था में ही इसके समान योग्य एवं महान क्षमताओं वाला युवक मुझे जर्मन विश्वविद्यालयों में भी नहीं मिला। यह निश्चित ही जीवन में यश प्राप्त करेगा। एक दिन प्राचार्य हैस्ट्री ने उनका परिचय स्वामी रामकृष्ण परमहंस से कराया। वे स्वामी रामकृष्ण परमहंस से इतना अधिक प्रभावित हुए कि वे उनके भक्त बन गये। उनके सम्पर्क में नरेन्द्र जी छः वर्ष रहे और उनसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके नरेन्द्र नाथ से विवेकानन्द बन गये। अगस्त 1886 में स्वामी रामकृष्ण परमहंस का स्वर्गवास हो गया। स्वर्ग सिधारने से चार दिन पूर्व अपना उत्तराधिकार उनको देते हुए रामकृष्ण परमहंस ने कहा था "आज अपना सब कुछ तुम्हें देकर मैं रंक बन गया हूँ। मैंने योग द्वारा जिस शक्ति को तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट किया है उससे तुम अपने जीवन में महान कार्य करोगे। अपने इस कार्य को पूर्ण करने के बाद ही तुम वहाँ जाओगे जहाँ से तुम आये हो।" अपने गुरू के उपदेशों और विचारों के प्रचार के लिए स्वामी विवेकानन्द ने विश्व भ्रमण किया। स्वामी विवेकानन्द दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए 24-25 दिसम्बर 1892 को कन्याकुमारी पहुँचे। इन्होंने यहाँ के मन्दिर में देवी कन्याकुमारी के दर्शन किये और समुद्र की एक चट्टान पर तपस्या में लीन हो गये। कहा जाता है कि इन्हें यहाँ दिव्य अनुभूति हुई और यही इन्होंने मातृ-भूमि की सेवा में लगने की प्रतिज्ञा की।1893 में स्वामी विवेकानन्द विश्व भ्रमण पर निकल पड़े। 11 सितम्बर 1893 में स्वामी जी ने अमेरिका के शिकागो नगर में सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लिया। वहाँ पर रोमन कैथोलिक ईसाइयों ने अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए इस धर्म सभा का आयोजन किया था। स्वामी जी ने वहाँ पर अपना भाषण "अमेरिकावासी भाइयों व बहनों" कहकर शुरू किया। इन शब्दों को सुनकर सभी श्रोताओं पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। डा0 एम0 लक्ष्मीकुमारी के शब्दों में-स्वभावतः स्वामी जी के वक्तव्य की सत्यता, ज्ञान की गहराई, कल्पना की व्यापकता उनके शब्दों की विरल प्रमाणिकता से परिपूर्ण करती हुई आत्मानुभूति की सघनता, और इन सबसे ऊपर नेत्रों में तेजोमय सौन्दर्य से युक्त उनका सर्वाधिक मन-मोहन व्यक्तित्व तथा घण्टियों की तरह बजती मधुर आवाज सबने समन्वित होकर उन्हें उस धर्म सभा का केन्द्रीय पुरूष बना दिया जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था। उन्होंनें तुरन्त ही वहाँ अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया। विश्व धर्म संसद के श्रोताओं मात्र के मध्य ही नहीं बल्कि अमेरिका के विशेष महत्वपूर्ण महानुभावों में तथा इसके बाद इंग्लैण्ड तथा यूरोप में भी। उनकी सार्वजनिक घोषणा ने एक सच्चे विश्व बन्धुत्व की लहर उत्पन्न कर दी। जिसने एक अद्वितीय एवं व्यापक विचार के साथ अपने शक्तिशाली सम्मोहन में सैकड़ों पुरूषों एवं महिलाओं को बांध लिया। पश्चिम के समाज में उनके प्रवेश से भारत की समस्याओं के प्रति सहानुभूति के द्वार खुल गये और हमारे अपने देश में नवीन आत्मगौरव एवं विकास का नया सूत्रपात हुआ जिसका प्रभाव देश के स्वतन्त्रता संघर्ष पर भी पड़ा। वे सनातन धर्म को वैज्ञानिक तार्किकता के तेज प्रकाश से देशवासियों के सम्मुख लाये और अपने ज्ञान से लोगों का मार्गदर्शन किया।

1.2 जीवन दर्शन:-स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन मानव जीवन के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक है। उन्होंने बताया कि जीवन एक संघर्ष है। इस संघर्ष में केवल समर्थ की विजय होती है तथा असमर्थ का विनाश हो जाता है। अतः विजय प्राप्त करके जीवित रहने के लिए व्यक्ति को जीवन की प्रत्येक चुनौती के साथ डटकर संघर्ष करना चाहिए। स्वामी जी को तात्कालिक जनता के कष्टों को देख बड़ा दुख होता था। एक दिन उन्होंने कहा-"आज हम लोग दीन-हीन हो गये हैं, हम प्रत्येक कार्य को दूसरों से डरकर करते है, डरते हुए बोलते हैं, डरते हुए सोचते हैं। ऐसा लगता है कि हमने शत्रुओं के देश में जन्म लिया है। मित्रों के नहीं।" स्वामी जी के जीवन दर्शन के अंगों का विवरण निम्न रूप से दिया जा सकता है।

1. वेदान्त दर्शन में विश्वास
2. मनुष्य की महत्ता में विश्वास
3. आत्मानुभूति में विश्वास
4. आध्यात्मिकता में विश्वास
5. निर्भीकता, सत्यता और स्वतन्त्रता में विश्वास
6. मानव सेवा की भावना में विश्वास

1.3. शिक्षा दर्शन:-स्वामी जी अपने समय की, मैकाले द्वारा प्रचारित अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के विरोधी थे। उनके अनुसार यह शिक्षा मनुष्य निर्माण करने वाली शिक्षा नहीं है क्योंकि इस शिक्षा का उद्देश्य मात्र बाबुओं की संख्या बढ़ाना था। स्वामी जी भारत में ऐसी शिक्षा चाहते थे जिससे व्यक्ति चरित्रवान बने। साथ-साथ आत्मनिर्भर भी बने। उन्हीं के शब्दों में-"हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क को शक्ति बढ़ती, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।"स्वामी जी सैद्धान्तिक शिक्षा की तुलना में व्यावहारिक शिक्षा पर बल देते थे। उन्हीं के शब्दों में "तुम्हें कार्य के सब क्षेत्रों में व्यावहारिक होना पड़ेगा, सिद्धान्तों के ढेरों ने सम्पूर्ण देश का विनाश कर दिया है।" स्वामी जी के शिक्षा-दर्शन सम्बन्धी आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1.शिक्षा ऐसी हो जिससे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास हो सके।
2. शिक्षा ऐसी हो जिससे व्यक्ति के चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े तथा व्यक्ति आत्मनिर्भर बने।
3. बालकों के समान ही बालिकाओं को भी शिक्षा दी जानी चाहिए।
4. धार्मिक शिक्षा पुस्तकों से नहीं वरन् व्यवहार, आचरण एवं संस्कारों के माध्यम से दी जानी चाहिए।
5. पाठ्यक्रम में लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विषय रखने चाहिए।

6. शिक्षा गुरूगृह में ही प्राप्त की जा सकती है।
7. शिक्षक एवं छात्र में महिमामय एवं गरिमामय सम्बन्ध होने चाहिए।
8. जन साधारण को शिक्षित करने का प्रयास करना चाहिए।
9. नारी शिक्षा का केन्द्र धर्म होना चाहिए।
10. देश को औद्योगिक प्रगति के लिए प्राविधिक शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।
11. राष्ट्रीय एवं मानवीय शिक्षा परिवार से प्रारम्भ होनी चाहिए।
12. केवल पुस्तकों का अध्ययन ही शिक्षा नहीं है।
13. ज्ञान व्यक्ति के मन में विद्यमान होता है। वह स्वयं ही सीखता है।
14. शिक्षक एक मित्र, दार्शनिक तथा पर्थ-प्रदर्शक है। उसे सहानुभूतिपूर्ण ढंग से बालक के मस्तिष्क में स्थित ज्ञान का पथ-प्रदर्शन करना चाहिए।

1.4. मानवतावादी दर्शन:-स्वामी विवेकानन्द ने मानव धर्म को परिभाषित करते हुए कहा कि ईश्वर सम्बन्धी सभी सिद्धान्त सगुण, निर्गुण, अनन्त, नैतिक नियम अथवा आदर्श मानव धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत आने चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मानव जीवन का प्रथम लक्ष्य ज्ञान तथा दूसरा लक्ष्य सुख है। सुख तथा ज्ञान मुक्ति की ओर ही ले जाते हैं परन्तु जब तक प्रत्येक प्राणी मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता तब तक कोई भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। जब तक सभी सुखी नहीं हो जाते कोई भी सुखी नहीं हो सकता। आत्म प्रतिष्ठान नहीं आत्म त्याग ही सर्वोच्च लोक का धर्म है। समस्या का हल निस्वार्थ भाव से ही हो सकता है। धर्म की उत्पत्ति प्रखर आत्म त्याग से ही हो सकती है। अपने लिए कुछ भी मत चाहो, सब दूसरों के लिए करो यही सच्चा मानव धर्म है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में-"धर्म का अर्थ न गिरजे में जाना है न ललाट रंगना है न विचित्र ढंग का वस्तु धारण करना है। इन्द्र धनुष के सब रंगों से तुम अपने को चाहे भले ही रंग लो किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नहीं है यदि तुमने ईश्वन का साक्षात्कार नहीं किया तब यह सब व्यर्थ है जिसने हृदय को रंग लिया उसके लिए दूसरे रंग की आवश्यकता नहीं, यही धर्म का सच्चा अनुभव है।"वास्तव में समाज को आर्थिक कल्याण और भौतिक सुख अवश्य ही प्रदान करने चाहिए परन्तु अन्तिम लक्ष्य आत्मा का विकास और पूर्णता है-चाहे उसके कुछ भी अर्थ हो, यह आत्मा ही मनुष्य के अन्तर्गत मानवता है। इसलिए मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य मानवता का साक्षात्कार है। उन्हीं के शब्दों में जीवों में मनुष्य ही सर्वोच्च जीव है और यह लोग ही सर्वोच्च लोक है। ईश्वर को मनुष्य की अपेक्षा बड़ा समझकर हम उसको कल्पना नहीं कर पाते, इसलिए हमारा ईश्वर भी मानव है और मानव ही ईश्वर है। स्वामी जी मानव सेवा को ही सबसे बड़ा धर्म मानते हैं तथा उन्होंने दरिद्र नारायण की पूजा को ही सबसे बड़ी पूजा माना है। राष्ट्र सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कत्तव्य होना चाहिए।

1.5. शिक्षा का अर्थ जन्म से पूर्ण मानते हैं और इसी पूर्णता की अभिव्यक्ति को वे शिक्षा कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ मनुष्य में निहित शक्तियों का पूर्ण विकास है न कि मात्र सूचनाओं का संग्रह। उनके अनुसार "यदि शिक्षा का अथ्ज्त्र सूचनाओं से होता, तो पुस्तकालय संसार के सर्वश्रेष्ठ संत होते तथा विश्व कोष ऋषि बन जाते।" उन्हीं के शब्दों में, "शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।" स्वामी जी का कहना है कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से सुखी नहीं होते, तब तक ज्ञान, भक्ति और योग ये सब कल्पना की वस्तु हैं।

1.6 स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा में योगदान:-एक शिक्षा शास्त्री के रूप में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिष्ठा बहुत अधिक व्यापक है। संक्षेप में भारतीय शिक्षा को उनकी देन का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है।स्वामी जी ने वेदान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। उन्होंने मानवता को बहुत ऊँचा स्थान दिया। उन्होंने कहा कि मानव सेवा से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। उन्होंने मानव मं ही ईश्वर के दर्शन किये और मानव सेवा को ही ईश्वर सेवा माना। उनके अनुसार शिक्षक को बालक में मानव सेवा की भावना का विकास करना चाहिए। स्वामी जी ने परमानुभूति की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल दिया। उन्होंन कहा जब तक भौतिक दृष्टि से सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, भक्ति और योग सब कल्पना की वस्तु है अतः शिक्षा इस प्रकार की हो जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर बन सके।स्वामी जी द्वारा बताये गये शिक्षा के उद्देश्य वर्तमान परिस्थितियों में अत्यन्त उपयोगी है। वे बालक की उन्नति और विकास में योगदान दे सकते हैं।

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में स्वामी जी के विचार अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने आत्म अनुभूति के लिए आध्यात्मिक और लौकिक उन्नति के लिए सभी विषयों पर बल दिया है। स्वामी जी ने बालकों के लिए प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल दिया है जिससे बालकों को रोजगार मिल सके। स्वामी जी संस्कृत को सर्वोत्तम भाषा मानते थे। उनका विश्वास था कि संस्कृत के द्वारा भारतीय गौरव, गरिमा के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है लेकिन वे संस्कृत के साथ-साथ अन्य भाषाओं के ज्ञान प्राप्त करने पर भी बल देते हैं। स्वामी जी ने शारीरिक शिक्षा पर विशेष बल दिया उनके अनुसार बालक को स्वस्थ और बलिष्ठ बनाना भी आवश्यक है जिससे बालक परिश्रम करने वाले अंगों से युक्त हो सके। इसके लिए उन्होंने पाठ्यक्रम में खेलकूद तथा व्यायाम की क्रियाओं को शामिल करन का सुझाव दिया।स्वामी जी न जन साधारण की शिक्षा सम्बन्धी विचार भारत की वर्तमान परिस्थितियों में अत्यन्त उपयोगी है। उन्हीं के शब्दां में "मेरे विचार से जन साधारण की अवहलना करना महान राष्ट्रीय पाप और हमारे पतन का कारण है। जब तक भारत की सामान्य जनता को एक बार फिर अच्छी शिक्षा, अच्छा भोजन और अच्छी सुरक्षा प्रदान नहीं की जायेगी तब तक अधिक से अधिक राजनीति भी व्यर्थ होगी। वे हमारी शिक्षा के लिए धन देते हैं। हमारे मन्दिरों का निर्माण करते हैं पर इसके बदले में उन्हें मिलता क्या है मात्र ठोकरे। वे हमारे दासों के समान है यदि हम भारत का पुनरूत्थान करना चाहते हैं, तो हमें उनको शिक्षित करना होगा।"स्वामी जी स्त्रियों की शिक्षा के पक्षधर थे तथा देश के विकास क लिए उनके उत्थान पर बल देते थ। उन्हीं के शब्दों में "पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षित करो तब वे आपको बताये कि उनके लिए कौन से सुधार आवश्यक है। उनक मामलों में बोलन वाले तुम कान होते हो।"स्वामी जी ने धार्मिक शिक्षा का समर्थन किया है। यह धर्म को मनुष्य जीवन के शाश्वत मूल्यों के उद्घोषक के रूप मं स्वीकार करते थे। यह सभी धर्मों को बराबर महत्व देते थे। इन्हीं के शब्दों में "संसार के सब धर्म एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं।

****

सहायक ग्रन्थ सूची:-

1.स्वामी दयानन्दसत्यार्थ प्रकाश
2.सुरेश भटनागरआधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, लायल बुक डिपो, मेरठ
3.हुमांयू कबीरशिक्षा का भारतीय दर्शन, बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाऊस
4.एस. पी.चैबेशिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाज शास्त्रीय आधार, प्रकाशक-इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ
5.डा.रमाकान्त दुबेविश्व के कुछ महान शिक्षा शास्त्री, प्रकाशक, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
6.राम शक्ल पाण्डेयभारतीय शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-2
7.राम शक्ल पाण्डेयविश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-2
8.राम शक्ल पाण्डेयशिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2
9.विवेकानन्दशिक्षा संस्कृति और समाज, प्रेभात प्रकाशन, 205 चावड़ी बाजार, नई दिल्ली
10.रघुनाथ पाठकआर्य समाज की उपलब्धियाँ
11.गिरीश पचैरीशिक्षा सिद्धान्त, लायल बुक डिपो, मेरठ
12.गिरीश पचैरीशिक्षा दर्शन, ओरियन्टल पब्लिशिंग हाऊस, परेड, कानपूर
13.एन. आर. स्वरूप सक्सेनाशिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, लायल बुक डिपो, मेरठ
14.रमन बिहारी लालशिक्षा सिद्धान्त, रस्तौगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ
15.सरयुप्रसाद चैबेशिक्षा दर्शन, यूनिवर्सल पब्लिशर्स, 1003, आगरा
16.स्वामी विवेकानन्दशिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम, कलकत्ता
17.जान, एस. ब्रूबेकरमार्डन फिलासफी आफ एजूकेशन टाटा मेग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी प्राईवेट लिमिटेड, बम्बई, नई दिल्ली
18.डॉ.उर्मिला शर्मासमकालीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन में मानवतावाद शोध ग्रन्थ, प्रकाश विनीत पब्लिकेशन

प्रेरणा और व्यक्तित्व के विकास में शैक्षणिक उपलब्धि की भूमिका

डॉ. सीता देवी
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ उतर प्रदेश

पंकज कुमार सिंह
शिक्षा विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ उतर प्रदेश

शोध शार-शिक्षा हमारे जीवन का सकारात्मक, महत्वपूर्ण और रचनात्मक पहलू है। अच्छी और केंद्रित शिक्षा एक बेहतर और सफल भविष्य की नींव रखती है। शिक्षित लोग ही राष्ट्र की संपत्ति होते हैं। यह मानव पूंजी में प्रमुख निवेश है। यह सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्तरों पर दीर्घकालिक उत्पादकता और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार, एक शिक्षित समाज के लिए स्कूल स्तर पर बच्चों को संवारना एक आवश्यक पहलू है। यह कार्य शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा बखूबी किया जा सकता है।

शब्द कुंजी :- रचनात्मक, राष्ट्र, दीर्घकालिक, पहलू,

प्रस्तावना :-

किसी भी देश में शैक्षिक मनोविज्ञान और शैक्षिक अनुसंधान का मुख्य सरोकार छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि/प्रदर्शन में वृद्धि करना है जिसे किसी विशेष विषय में एक छात्र द्वारा प्राप्त कुल अंक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। शैक्षणिक उपलब्धि को सिद्धांतों की प्राप्ति और उद्देश्यों, महत्वाकांक्षाओं, विचारों और योजनाओं को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने की क्षमता के रूप में भी दिखाया जा सकता है। औपचारिक शिक्षा की शुरुआत से ही उपलब्धि को बहुत प्रमुखता दी जाती है। सर्वांगीण विकास को शिक्षा का केंद्रीय उद्देश्य रखने के बावजूद, शैक्षिक व्यवस्था में छात्रों द्वारा किए गए सभी प्रयासों का प्रमुख लक्ष्य अकादमिक उपलब्धि है।

अकादमिक उपलब्धि शैक्षिक उपलब्धि और शैक्षणिक प्रदर्शन के लिए अप्रभेद्य है। इसे अल्पकालिक या दीर्घकालिक लक्ष्यों की उपलब्धि के संबंध में समझाया जा सकता है और संचयी ग्रेड प्वाइंट औसत के माध्यम से दिखाया जा सकता है। शैक्षणिक उपलब्धि शैक्षिक व्यवस्था में श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए कार्यों, आधारभूत कार्य और उत्साह की एक व्यवस्था है और एक पाठ्यक्रम के लिए एक ग्रेड, विषय क्षेत्र में पाठ्यक्रमों के एक समूह के लिए औसत या सभी पाठ्यक्रमों के लिए एक औसत शून्य से सौ या पर व्यक्त किया गया है। अन्य मात्रात्मक पैमाने। एक छात्र के शैक्षिक जीवन में, शैक्षणिक उपलब्धि को एक महान महत्व के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। यह हमेशा विद्यार्थियों को प्रेरित करता है और उन्हें कड़ी मेहनत करने और अधिक सीखने के लिए प्रोत्साहित करता है। अकादमिक उपलब्धि छात्र का वह स्तर या क्षमता है जो उसने सीखा है उसे लागू करने के लिए। यह एक छात्र की ताकत को दर्शाता है जिसके लिए उसने विशिष्ट लक्ष्यों को पूरा किया है जो स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय जैसे निर्देशक डोमेन में गतिविधियों का केंद्र थे।

साहित्य की समीक्षा:-

कॉफ़मैन, अगर्स और लोपेज़-वाग्नेर। (2018) ने 315 स्नातक छात्रों पर एक अध्ययन किया और व्यक्तित्व और प्रेरणा को अकादमिक उपलब्धि के भविष्यवक्ता के रूप में पाया। छात्रों के व्यक्तित्व कारकों को इंटरनेशनल पर्सनैलिटी आइटम पूल के माध्यम से मापा गया और प्रेरणा के लिए कॉफ़मैन एगार्स मोटिवेशन-ओरिएंटेशन स्केल (¼**KAMS)** कॉफ़मैन एंड एगर, प्रेस में) का उपयोग किया गया। पहली तिमाही के ग्रेड अन्य छात्रों का उपयोग शैक्षणिक सफलता को मापने के लिए किया गया था। एकाधिक प्रतिगमन दर्शाते हैं कि उच्च स्तर की कर्तव्यनिष्ठा, आंतरिक प्रेरणा और निम्न स्तर की बाहरी प्रेरणा अकादमिक सफलता के लिए महत्वपूर्ण है। यह दर्शाता है कि छात्र कर्तव्यनिष्ठा पर उच्च हैं और आंतरिक प्रेरणा अकादमिक उपलब्धि पर कम है, और बाहरी प्रेरणा पर कम अकादमिक उपलब्धियों पर उच्च है।

कोमार राजू, कराऊ और श्मेक (2019) ने एक अध्ययन में 308 स्नातक छात्रों पर व्यक्तित्व, प्रेरणा और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच संबंधों की जांच की। नमूने में 47.7 पुरुष और 52.3 महिलाएं शामिल थीं। व्यक्तित्व कारकों को मापने के लिए छात्रों को फाइव फैक्टर इन्वेंटरी (¼**NEOFFI))** पर प्रशासित किया गया था, जबकि शैक्षणिक प्रेरणा स्केल (ए.एम.एस) का उपयोग प्रेरणा के लिए किया गया था। इन साइकोमेट्रिक परीक्षणों के साथ, उनके वर्तमान जीपीए की एक स्व-रिपोर्ट माप, या तो आंशिक पूर्ति के रूप में या अतिरिक्त क्रेडिट के लिए प्राप्त की गई थी। प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण वर्णनात्मक सांख्यिकी, पियर्सन सहसंबंध विश्लेषण और एकाधिक प्रतिगमन विश्लेषण लागू करके किया गया था। सहसंबंध विश्लेषण ने बिग फाइव व्यक्तित्व लक्षणों, शैक्षणिक प्रेरणा और शैक्षणिक उपलब्धि के लिए .11 से .33 तक, महत्वपूर्ण संबंधों के एक पैटर्न को दर्शाया। प्रतिगमन विश्लेषण में वर्णित है कि कर्तव्यनिष्ठा और खुलेपन ने आंतरिक प्रेरणा और कर्तव्यनिष्ठा में विचरण के 17 की व्याख्या की और बहिर्मुखता ने बाह्य प्रेरणा में 13 विचरण की व्याख्या की। कर्तव्यनिष्ठा और सहमतता ने प्रेरणा में 11 भिन्नता साझा की। जीपीए में 14 विचरण कर्तव्यनिष्ठा, खुलेपन, विक्षिप्तता और सहमतता से प्राप्त किया गया था, और जीपीए में 5 भिन्नता को आंतरिक प्रेरणा द्वारा समझाया गया था।

शोध का उद्देश्य :-

6वीं कक्षा के छात्रों के व्यक्तित्व, बुद्धि, शैक्षणिक प्रेरणा और सीखने की रणनीतियों के साथ शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

9वीं कक्षा के छात्रों के व्यक्तित्व, बुद्धि, अकादमिक प्रेरणा और सीखने की रणनीतियों के साथ अकादमिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

11वीं कक्षा के छात्रों के व्यक्तित्व, बुद्धि, अकादमिक प्रेरणा और सीखने की रणनीतियों के साथ अकादमिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

12वीं कक्षा के छात्रों के व्यक्तित्व, बुद्धि, अकादमिक प्रेरणा और सीखने की रणनीतियों के साथ अकादमिक उपलब्धि का अध्ययन करना।

अध्ययन की आवश्यकता:-

इस अध्ययन का उद्देश्य खुफिया, व्यक्तित्व और प्रेरक चर की भूमिका को अच्छी तरह से प्रलेखित किया गया है। बुद्धि को शैक्षिक उपलब्धि का सर्वाधिक मान्य मनोवैज्ञानिक भविष्यवक्ता बताया गया है। अकादमिक उपलब्धि और बुद्धि के बीच औसत सहसंबंध .50 बताया गया है जिसमें लगभग **20** भिन्नता है। खुफिया-अकादमिक उपलब्धि संबंधों से संबंधित अध्ययनों ने एक मुद्दा उठाया है अर्थात। विभिन्न आयु स्तरों में शैक्षणिक उपलब्धि में बुद्धि का घटती योगदान अर्थात प्राथमिक में उच्चतम, मध्य में निम्न और माध्यमिक स्तर पर निम्न। ये निष्कर्ष अकादमिक उपलब्धि के कुछ गैर-बौद्धिक कारकों की खोज की आवश्यकता का भी संकेत देते हैं। वर्तमान अध्ययन भी बौद्धिक-शैक्षणिक उपलब्धि संबंधों पर अधिक व्यवस्थित रूप से मुद्दे से निपटने का एक प्रयास है।

परिकल्पना

वर्तमान अध्ययन के लिए उत्पन्न परिकल्पनाएँ इस प्रकार हैं।

व्यक्तित्व, बुद्धि, शैक्षणिक प्रेरणा, प्रेरित सीखने की रणनीतियों और शैक्षणिक उपलब्धि के विभिन्न चरों पर छठी और नौवीं के छात्रों के औसत अंकों की तुलना।

व्यक्तित्व, बुद्धि, अकादमिक प्रेरणा, प्रेरित सीखने की रणनीतियों और अकादमिक उपलब्धि के विभिन्न चरों पर 9वीं और 11वीं कक्षा के छात्रों के औसत स्कोर की तुलना।

11वीं और 12वीं के छात्रों की व्यक्तित्व, बुद्धि, शैक्षणिक प्रेरणा, प्रेरित सीखने की रणनीतियों और शैक्षणिक उपलब्धि के विभिन्न चरों पर तुलना।

शोध कार्य प्रणाली :-

वर्तमान अध्ययन मुख्य रूप से व्यक्तित्व, बुद्धि, शैक्षणिक प्रेरणा और सीखने की रणनीतियों के साथ अकादमिक उपलब्धि के संबंधों की जांच करने के लिए डिज़ाइन किया जाएगा। शोध उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हरियाणा के करनाल, कुरुक्षेत्र, यमुनानगर और पंचकूला शहरों से 433 छात्रों का चयन किया जाएगा। चयनित विषय व्यक्तित्व के मॉप बुद्धि ¼**SPM HGMAT½** शैक्षणिक प्रेरणा स्केल, सीखने की प्रश्नावली के लिए प्रेरित रणनीतियाँ और शैक्षणिक उपलब्धि सूचकांक के साथ परीक्षण करेंगे।

नमूना हरियाणा के करनाल, कुरुक्षेत्र, यमुनानगर और पंचकुला शहरों के माध्यमिक

विद्यालयों से कुल **433** स्कूली छात्रों का नमूना लिया जाएगा। नमूने में 4 उपसमूह शामिल होंगे अर्थात 6वीं, **9**वीं, 11वीं और 12वीं कक्षा के छात्र।

परीक्षण/उपाय प्रयुक्त डेटा एकत्र करने के लिए निम्नलिखित परीक्षण/उपायों का उपयोग किया गया

बाल व्यक्तित्व प्रश्नावली **¼CPQ(Cattell½**

हाई स्कूल व्यक्तित्व प्रश्नावली ¼**HSPQ(** कैटेल और कैटेल)

16 व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (16**PF** पांचवां संस्करण; कैटेल एट अल।)

रेवेन के मानक प्रगतिशील मैट्रिक्स (एसपीएम)

हुंडल का सामान्य मानसिक क्षमता परीक्षण ¼**HGMT**½

अकादमिक प्रेरणा स्केल (एएमएस)

सीखने की प्रश्नावली के लिए प्रेरित रणनीतियाँ (डैस्फ)

अकादमिक उपलब्धि सूचकांक

सांख्यिकीय आंकड़े

प्राप्त डेटा **SPSS (**सामाजिक विज्ञान सॉफ्टवेयर के लिए सांख्यिकीय पैकेज) संस्करण 20.0 की मदद से विश्लेषण करेगा। अध्ययन में निम्नलिखित सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया जाएगारू

वर्णनात्मक सांख्यिकी (माध्य, मानक विचलन, तिरछापन और कर्टोसिस)

टी-अनुपात

पियर्सन सहसंबंध

खोजपूर्ण कारक विश्लेषण (प्रमुख घटक कारक विश्लेषण)

पदानुक्रमित एकाधिक प्रतिगमन विश्लेषण

निष्कर्ष:-

मानव पूंजी का एक राष्ट्र का निवेश उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उनकी भौतिक पूंजी का भंडार और उनकी पारस्परिक बंदोबस्ती। स्कूलए कॉलेज और विश्वविद्यालयों के रूप में सभी स्तरों पर शिक्षा व्यक्तियों को ज्ञान और उपकरण प्रदान करती है जिन्हें उन्हें समझने और आज की अत्यधिक प्रतिस्पर्धी दुनिया में भाग लेने की आवश्यकता होती है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. कॉफ़मैन, जे.सी., अगर्स, एम.डी., और लोपेज़-वैगनर, एम.सी. (2018)। हिस्पैनिक-सेवारत संस्थान में गैर-पारंपरिक छात्रों में प्रारंभिक कॉलेज शैक्षणिक सफलता की भविष्यवाणी करने में व्यक्तित्व और प्रेरणा की भूमिका। सीखना और व्यक्तिगत अंतर, 18, 492-496।
2. कोमाररा जू, एम., कराऊ, एस.जे., और श्मेक, आर.आर. (2019)। कॉलेज के छात्र की शैक्षणिक प्रेरणा और उपलब्धि की भविष्यवाणी करने में बिग फाइव व्यक्तित्व लक्षणों की भूमिका। सीखना और व्यक्तिगत अंतर, 19, 47-52।
3. हकीमी, एसा, हेजाज़ी, ई, और लवसानी, एमा जी। (2019)। व्यक्तित्व लक्षणों और छात्र की शैक्षणिक उपलब्धि के बीच संबंध। सामाजिक और व्यवहार विज्ञान, 29, 836-845।
4. कुमारी, बी (2017)। व्यक्तित्व लक्षणों और अकादमिक प्रदर्शन का सहसंबंधरू साहित्य की समीक्षा। मानविकी और सामाजिक विज्ञान के आईओएसआर जर्नल, 19(4), 15-18
5. मार्सेला, वी। (2017)। विश्वविद्यालय के छात्रों की सीखने की रणनीति, व्यक्तित्व लक्षण और शैक्षणिक उपलब्धि। सामाजिक और व्यवहार विज्ञान, 174, 3473-3478।
6. हाफिज, एस., (2016)। विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच शैक्षणिक उपलब्धि के भविष्यवक्ता के रूप में व्यक्तित्व। द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, **3 (3), 34-39**।

कृषि तकनीकी परिवर्तन का अर्थ महत्व एवं उपयोगिता का एक अध्ययन

डॉ.सालिक सिंह
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

पूनम यादव
शोध छात्रा,भूगोल विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ, उतर प्रदेश

शोध सार :- आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र विज्ञान एवं तकनीकी से अछूता नहीं है। आर्थिक रूप से विज्ञान एवं तकनीकी का आशय कार्य की ऐसी प्रणाली से है जो उपलब्ध साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुये उत्पादन] रोजगार] राष्ट्रीय आय एवं देशवासियों के रहन -सहन के स्तर में तुलनात्मक रूप से उन्नति करना है।

मुख्य शब्द:- विज्ञान,तकनीकी, रोजगार, आय.

प्रस्तावना:- वस्तुतः तकनीकी परिवर्तन एक अति व्यापक धारणा है। तकनीकी परिवर्तन का संबंध केवल कृषि क्षेत्र से नहीं है, तकनीकी परिवर्तन मूलतः औद्योगिक क्षेत्र का कारण और परिणाम है। यदि तकनीकी परिवर्तनों के इतिहास का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट होगा कि इसका सुप्रारंभ औद्योगिक क्षेत्र में हुआ है। औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक विकास को शीघ्र गति प्रदान करने के लिए नवीन वैज्ञानिक आविष्कार अनुसंधान नवीन मशीन की खोज को प्रोत्साहन मिला है। उत्पादन के आकार तथा पैमाने में परिवर्तन लाने हेतु छोटे पैमाने के स्थान पर बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रारंभ करने और औद्योगिक वस्तु के उत्पादन और उत्पादकता में तीव्र वृद्धि लाने हेतु तकनीकी परिवर्तन के तहत् आधुनिक मशीन और नये उपकरणों के निर्माण और व्यापक उपयोग को प्रोत्साहन मिला है। लेकिन तकनीकी परिवर्तन की विधा आज के युग में औद्योगिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रह गई है। यह मनुष्य और समाज के आर्थिक क्रिया-कलापों और जीवन के सभी बिंदुओं को स्पर्श करती है। यद्यपि कृषि अर्थव्यवस्था विश्व के अधिकांश देशों के आर्थिक विकास के तहत् प्राचीन काल से प्रारंभ हुई है। लेकिन कृषि क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन कालान्तर में बहुत बाद में प्रवेश किया है। इग्लैण्ड में 18 वीं सदी में औद्योगिक क्रांति का युग प्रारंभ हुआ। इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति की सफलता के पीछे व्यापक तकनीकी परिवर्तन के सफल और वृहद् उपयोग का हाथ रहा है। इसके तहत् इग्लैण्ड में नये&नये आविष्कारों को प्रोत्साहन मिला जैसे- परिवहन के क्षेत्र में जेम्स वाट का रेल्वे इंजन का आविष्कार, सूती वस्त्र के उत्पादन के क्षेत्र में सूत की कटाई और बुनाई के नवीन यंत्रों एवं प्रिंटिंग एवं छपाई मशीन का आविष्कार आदि। कृषि व्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन का उपयोग बीसवीं सदी की देन मानी जाती है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं यूरोप के अनेक देशों में कृषि क्षेत्र में नवीन मशीन व अन्य उपयोगी उपकरण का प्रयोग 19 वीं शताब्दी के मध्य काल से प्रारंभ हुआ। लेकिन भारत जैसे अपेक्षाकृत अल्पविकसित कृषि प्रधान देशों में तकनीकी परिवर्तन का प्रभाव कृषि क्षेत्र में बहुत बाद में देखने को मिला है। जैसे भारत में परंपरागत रूप से हल-बैल एवं मानवीय श्रम का प्रयोग आधुनिक काल तक देखने को मिलता है। इस कारण से कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकी कृषि का उपयोग कृषि अर्थव्यवस्था में न होने से भारतीय कृषि सदियों से पिछड़ी हुई बनी रही है। भारत के संदर्भ में तकनीकी परिवर्तन का व्यापक प्रयोग 1960&70 के दशक में हरित क्रांति के युग से वृहद् रूप से दिखाई देता है। औद्योगिक क्षेत्र और कृषि विकास के अतिरिक्त आजकल सेवा क्षेत्र में भी कार्यकुशलता और उत्पादकता के बढ़ाने के लिए तकनीकी परिवर्तन के नवीन आयामों का प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है।

अर्थ और परिभाषा:-कृषि क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन को परिभाषित करने के पहले इस विषय को तीन भागों में विभाजित करना उचित होगा -

1-कृषि विकास

2-तकनीकी परिवर्तन

3-कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन

1- कृषि विकास:- कृषि विकास एक बहुआयामी धारण है। इसका संबंध कृषि अर्थव्यवथा के चहुँमुखी विकास से है। सैद्धान्तिक रूप से कृषि के विकास का संबंध कृषि भूमि के उपयोग एवं उत्पादकता की वृद्धि से लिया जाता है।

जिसमें भू-प्रणाली में सुधार से लेकर कृषि भूमि के क्षेत्र के विस्तार, कृषि भूमि में गुणात्मक सुधार, सिंचाई, सुविधाओं का चहुँमुखी विकास व विस्तार, रसायनिक एवं जैविक खाद का अधिकाधिक उपयोग, कीटनाशक दवाईयों का व्यापक प्रयोग तथा कृषि यंत्रीकरण में व्यापक सुधार और आधुनिकीकरण द्वारा संपूर्ण कृषि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि लाने आदि से संबंधित है।

2- तकनीकी परिवर्तन:- सर्वप्रथम तकनीकी परिवर्तन का व्यापक अर्थ समझना उचित होगा, तकनीकी परिवर्तन नवीन वैज्ञानिक शोध एवं आविष्कार आदि से संबंधित है जो संबंधित क्षेत्र के विकास में बहुआयामी परिवर्तन लाकर उसकी कार्यकुशलता में वृद्धि कर तीव्र गति प्रदान करता है। तकनीकी परिवर्तन के तहत् नवीन मशीन उपकरण एवं शोध और ज्ञान का व्यवहारिक उपयोग किया जाता है। तकनीकी परिवर्तन के अन्तर्गत नवीन तकनीकी ज्ञान शिक्षा एवं वैज्ञानिक प्रशिक्षण का भी समावेश किया जाता है ताकि मनुष्य और समाज के आर्थिक क्रियाकलापों में इस प्रकार का परिवर्तन परिलक्षित हों जो उनकी सोच और कार्यकुशलता में वृद्धि ला सकें। जिसका समग्र प्रभाव रोजगार, आय, उत्पादन कार्यकुशलता एवं समग्र आर्थिक विकास की तीव्र गति के रूप में परिलक्षित हो। तकनीकी परिवर्तन एक सैद्धांतिक अध्ययन मात्र न होकर नवीन वैज्ञानिक अनुसधान एवं सर्वेक्षण तथा खोज का एक प्रयोगात्मक परीक्षण है।

3-कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन की प्रक्रिया:- कृषि उत्पादन की प्रक्रिया प्रारंभ में जुताई बुवाई सिंचाई उन्नत बीज रासायनिक खाद कीटनाशक दवाईयां एवं कृषि उपज की कटाई तथा अन्य सभी पहलुओं में व्यापक परिवर्तन को बताता है। उदाहरण के लिए 1- कृषि भूमि की जुताई में हल-बैल के स्थान पर ट्रेक्टर का उपयोग करना 2- सिंचाई में परंपरागत कुओं के साथ-साथ नवीन डीजल और विद्युत पंप सेटों का उपयोग 3- स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई तथा अन्य आधुनिक तकनीकी विधि को अपनाकर सिंचित क्षेत्र का अधिकाधिक विस्तार करना 4- परंपरागत बीज के स्थान पर आधुनिक उन्नत एवं संश्लेषित बीजों का उपयोग करना 5- भूमि की बनावट और स्थानीय जलवायु के अनुसार विभिन्न फसलों के लिये उपयुक्त और उन्नत बीजों का रोपण करना 6- परंपरागत खाद के स्थान पर रासायनिक खाद एवं आधुनिक विधि से तैयार की गई, जैविक खाद का आदर्श उपयोग 7- उगती फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीट-पतंगों एवं अवांछित खरपतवारों को समाप्त करने के लिये कीटनाशक दवाईयों आदि का उपयोग करना 8- आधुनिक भू एवं पौध संरक्षण के अन्य सभी उपायों को वैज्ञानिक ढ़ंग से क्रियान्वित करना 9- भूमि की उर्वराशक्ति को पुर्नस्थापित और बढ़ाने के लिये मृदा का नवीन वैज्ञानिक और तकनीकी ढ़ंग से परीक्षण और सुधार करना।

इन सभी कृषि की विधाओं में तकनीकी परिवर्तन का अंतिम लक्ष्य विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों के समग्र उत्पादन में वृद्धि लाने में सहायक प्रेरक तत्वों के उपयोग को बढ़ाना एवं साथ ही फसलों के उत्पादन में वृद्धि लाने के मार्ग में उत्पन्न बाधाओं को समाप्त कर फसलों के समग्र एवं प्रति उत्पादकता में वृद्धि लाना है। आजकल नवीन तकनीकी परिवर्तन में कृषि उत्पादन के बाद विपणन बाजार उचित मूल्य परिवहन साधनों का विकास, गोदामों में संचय की समुचित व्यवस्था आदि कृषि उत्पादन के बाद के विक्रय संबंधी क्रियाओं में व्यापक सुधार का भी समावेश किया जाता है।

कृषि अभियांत्रिकी - कृषि अर्थव्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन का व्यापक उपयोग मशीन और नये उपकरणों का कृषि कार्य में अधिकाधिक उपयोग से जुड़ा हुआ है। तकनीकी रूप से इसे कृषि अभियंत्रण की संज्ञा दी जा सकती है। कृषि अभियंत्रीकरण वस्तुतः कृषि कार्य की विभिन्न क्रियाओं में नवीन मशीन और उपकरणों के उपयोग को प्रदर्शित करता है जिसके अंतर्गत परम्परागत पशु एवंमानवीय श्रम द्वारा संचालित साधनों के स्थान पर नवीन वैज्ञानिक और उन्नत मशीन और उपकरणों को प्रतिस्थापित करना है। जिसके फलस्वरूप समय की बचत के साथ-साथ कृषि की उत्पादकता में कई गुनी वृद्धि होगी। यंत्रीकरण कृषि उत्पादिता बनाने हेतु यांत्रिक शक्ति का प्रयोग है। आधुनिक ढ़ंग से सफल तथा उन्नत कृषि के लिए यांत्रिक शक्ति का उपयोग महत्वपूर्ण है। यंत्रीकरण अथवा मशीनीकरण का संबंध ऐसे उन्नत कृषि यंत्रों से है। जिनकी सहायता से प्रति इकाई उत्पादकता लागत घट जाती है और ऐसी भूमियों पर खेती हो जाती है। जो बंजर और संभव कम उपजाऊ है। सघन एवम् बहुफसलीय कृषि प्रणाली भी कृषि में नवीन एवं उन्नत कृषि औजारों की उपेक्षा करती है। यंत्रीकरण से एक ओर तो श्रम तथा मजदूरी में बचत होती है और दूसरी ओर उत्पादन बढ़ता है। अनेक कृषि कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें हाथ से करना प्रायः अनुपयोगी और महंगा होता है ये कृषि कार्य यंत्रों द्वारा किये जा सकते हैं।

कृषि में यंत्रीकरण का आशय कृषि कार्यों में यन्त्रों तथा मशीनों के प्रयोग से है। जो कृषि कार्यों में पशुओं तथा मनुष्यों का स्थान लेता है। यंत्रीकरण में मुख्यतः ट्रेक्टर] नलकूप] पम्पिंग सैट] थ्रेसर] चारा काटने की मशीन] कम्बाइनर ड्रिल] हारवेस्टर पुटेटों] हारवेस्टर काटन पिनर] क्रेन हारवेस्टर तथा क्रेन क्रेशर आदि आधुनिक यंत्र गिने जाते हैं। सामान्यतः ट्रेक्टर खेती करने का एक बहुउद्देशीय यन्त्र माना जाता है तथा कृषि में यंत्रीकरण का अर्थ भी इसका पर्यायवाची बन गया है। यंत्रीकरण की क्रियाओं में खेत जोतने] बुबाई करने] सिंचाई करने] फसल काटने] चारा काटने] सामान ढोने (ग्रामीण परिवहन गुड बनाने] प्रशोधन यन्त्रादि को सम्मिलित किया जाता है। जिसका अर्थ कृषि क्षेत्र में आधुनिक यन्त्रों व क्रियाओं का प्रयोग ही कृषि यंत्रीकरण कहलाता है।

भारत के प्रमुख कृषि अर्थशास्त्री जे.पी. भट्टाचार्या के अनुसार कुछ कृषि कार्यों को जो कि पशुओं या मनुष्यों अथवा दोनों ही के द्वारा किए जाते हैं मशीनों द्वारा किये जाएं तो कृषि का यन्त्रीकरण पूर्ण भी हो सकता है अथवा आंशिक भी पूर्ण यंत्रीकरण में फार्म या खेत संबंधी सभी कार्य प्रायः मशीनों द्वारा किये जाते हैं, जबकि आंशिक यंत्रीकरण में फार्म संबंधी कार्यों का आंशिक भाग ही मशीनों द्वारा किया जाता है। पूर्ण यन्त्रीकरण अपनाया गया है।''

भारत के प्रमुख कृषि वैज्ञानिक अर्थशास्त्री डॉ. स्वामीनाथन के अनुसार ''कृषि फसलों की उत्पादिकता बढ़ाने के लिए कृषि की सभी क्रियाओं में नवीन मशीन एवं अन्य यान्त्रिक शक्तियों का व्यापक प्रयोग एवं समावेश कृषि यंत्रीकरण का एक व्यवहारिक रूप है।''

भारत के प्रमुख अर्थशास्त्री प्रो. दन्तवाला के अनुसार ''कृषि उपज में क्रांतिकारी वृद्धि हेतु नवीन तकनीकी ज्ञान का कृषि के विविध क्रियाओं में गहन उपयोग करना अति आवश्यक है, कृषि मशीनीकरण को उन्नत नवीन मशीन टूल्स एवं अन्य उपकरणों द्वारा परंपरागत कृषि पद्धती को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जाये कि सभी कृषि फसलों की उत्पादकता में व्यापक वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' इस संदर्भ में प्रो. स्वामीनाथन का उदाहरण देना उचित होगा

संक्षेप में तकनीकी परिवर्तन के अन्तर्गत कृषि अर्थव्यवस्था में नवीन कृषि यंत्रीकरण की सर्वोच्च भूमिका परिलक्षित होती है, कृषि यंत्रीकरण तकनीकी परिवर्तन का प्रारंभिक एवं आधारभूत तत्व है, जिसके अन्तर्गत प्राचीन श्रम एवं पशु, हल, बैल, कृषि जोत की पद्धति में नवीन ट्रेक्टर तथा अन्य आधुनिक मशीनों द्वारा संपूर्ण कृषि कार्य को प्रतिस्थापित किया जाता है, तकनीकी परिवर्तन के तहत् कृषि यंत्रीकरण का अधिकाधिक प्रयोग होने से न केवल प्रति हेक्टेयर फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है, जबकि किसानों की समग्र आय में वृद्धि होने से उनका जीवन स्तर भी ऊँचा उठने लगता है।

कृषि यंत्रीकरण के प्रकार:-

कृषि यंत्रीकरण दो प्रकार का होता है- 1- सम्पूर्ण यंत्रीकरण 2- आंशिक यंत्रीकरण। जब कृषि के सभी कार्य मशीनों द्वारा किये जाते हैं तो उसे सम्पूर्ण यंत्रीकरण की संज्ञा दी जाती है। आजकल कनाडा] अमेरिका] इत्यादि विकसित देशों में इस प्रकार की खेती की जा रही है।

जब कृषि के अधिकांश कार्य मशीनों द्वारा और कुछ कार्य मानव व पशु शक्ति द्वारा किये जाते हैं तो इस प्रकार की खेती को आंशिक यंत्रीकरण

की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार की खेती का प्रचलन भारत जैसे कृषि प्रधान अधिक जनसंख्या वाले विकासशील देशों में सर्वत्र दिखाई देता है।

कृषि यंत्रीकरण की उपादेयता - नवीन तकनीकी ज्ञान और परिवर्तन का जब कृषि क्षेत्र में व्यापक प्रयोग होने लगता है तब कृषि यंत्रीकरण का उपयोग सम्पूर्ण कृषि कार्य की विधाओं में प्रारंभ से लेकर फसल कटाई की अंतिम प्रक्रिया तक यंत्रीकरण का उपयोग बढ़ता जाता है। इससे संपूर्ण देश में कृषि अर्थव्यवस्था का स्वरूप अल्पविकसित से एक विकसित क्षेत्र के रूप में परिवर्तित होन लगता है। इस प्रकार तकनीकी परिवर्तन का लाभ निम्नलिखित है-

1-प्रतिहेक्टेयर कृषि उत्पादकता में वृद्धि
2-उत्पादन व्यय में कमी
3-श्रम के ज्ञान और कार्यकुशलता में वृद्धि
4-भूमि सुधार को प्रोत्साहन
5-श्रम शक्ति के लिए रोजगार के नये अवसर
6-समग्र उत्पादन में वृद्धि
7-कृषि के अनावश्यक कार्यों से मुक्ति
8-पशु संबंधी व्यय में कमी
9-सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार
10-व्यापारिक और नकदी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन
11-घन और समय की बचत,
12-मशीनों की श्रेष्ठता का लाभ
13-कृषकों की ज्ञान और तकनीकी प्रशिक्षण को प्रोत्साहन
14-संपूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार
15-कृषि विकास में औद्योगीकरण को प्रोत्साहन
16-अर्थव्यवस्था के व्यापक सुधार को प्रोत्साहन
17-कृषि के आधुनिकीकरण का सूचक
18-अन्य लाभ

तकनीकी में कृषि यंत्रीकरण की समस्यायें और हानियाँ

1-जोतों का आकार छोटा होना
2-बेकारी की समस्या
3-प्रारंभिक शिक्षा की कमी
4-प्राविधिक शिक्षा की कमी
5-पशुओं द्वारा प्राप्त विशेष लाभों का अभाव
6-खेतों का तितर-बितर होना
7-पूंजी की कमी
8-पशुओं के उपयोग की समस्या

तकनीकी परिवर्तन के तहत् कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख आधुनिक उपकरण:-

1- ट्रेक्टर - 20 वी सदी के प्रारंभ में तकनीकी परिवर्तन के तहत् कृषि पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का सर्वप्रथम श्रेय ट्रेक्टर को जाता है। वास्तव में ट्रेक्टर कृषि यंत्रीकरण के क्षेत्र में सबसे वृहद बहुउद्देशीय कृषि कार्यों के लिए सर्वाधिक उपयोगी और लाभकारी कृषि उपकरण माना जाता है ट्रेक्टर एक जटिल एवं छोटे -बड़े कलपुर्जों से बनी बहुत बड़ी एवं भारी मशीन है। ट्रेक्टर एक स्वयं चलने वाली सेल्फ प्रीपेड मशीन है यह स्वयं चलती है और दूसरी कृषि मशीनों को चलाती है इसमें चार पहिये होते हैं, किसी-किसी ट्रेक्टर में ट्रेक्स भी लगे होते हैं।

यदि ट्रेक्टर के आविष्कार और प्रयोग के इतिहास का अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट होगा कि विश्व में पहला ट्रेक्टर सन् 1908 में अस्तित्व में आया था। कृषि योग्य एवं सामान्य कार्यों के लिए ट्रेक्टर का उपयोग सन् 1925 में हुआ तभी से कृषि के यन्त्रों एवं अन्य मशीनों की खोज शुरू हो गयी आज कृषि का मशीनीकरण हो गया है। लगभग सभी कार्य आज मशीनों द्वारा होने लगे हैं। फलस्वरूप कम लेबर, कम समय कम लागत के साथ कार्य अच्छा, उचित समय पर हो जाता है तथा पैदावार में भी वृद्धि होती है। विश्व में हवा के टायरों वाला न्यूमेटिक ट्रेक्टर जो डीजल फ्यूल से चलित था, सन् 1930 में खोजा गया हमारे देश में इन ट्रेक्टरों का प्रोडक्शन सन् 1960 में शुरू हुआ। 1960 के बाद से कृषि के क्षेत्र में मशीनीकरण के कारण सभी कार्य आसान हो गये हैं। दिन-प्रतिदिन मैकेनाईजेशन का स्तर बढ़ता ही जा रहा है, जिसका कारण है, ट्रेक्टिव पावर का कृषि क्षेत्र में बढ़ता हुआ उपयोग। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा एवं यूरोप के विकसित देशों में कृषि कार्य में टेक्टर के प्रयोग की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि इन सभी अतिशीतोष्ण देशों में वर्ष के आधे समय में बर्फीली तूफानी हवाओं के कारण कृषि उत्पादन की सम्पूर्ण अवधि अत्यन्त अल्प हो जाती है। अतः एक ही कृषि भूमि में दो या तीन फसलों की बुबाई और जुताई के लिये समय की कमी की समस्या सदैव बनी रहती है। इसके अतिरिक्त मानवीय श्रम के माध्यम से फसल की बुबाई और कटाई में बहुत अधिक समय लग जाने के साथ ही जनसंख्या और श्रम शक्ति के अभाव और पूंजी और नवीन तकनीकी ज्ञान के आविष्कार और प्रयोग के औचित्य की पृष्ठ भूमि में कृषि कार्य में ट्रेक्टर जैसे आधुनिक उपकरण की नितान्त आवश्यकता प्रतीत हुई। इसके विपरीत भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले कृषि प्रधान देशों में नवीन वैज्ञानिक आविष्कार एवं तकनीकी ज्ञान के अभाव में हल-बैल एवं मानवीय श्रम का प्रयोग सदैव होता रहा हैं इसके अतिरिक्त भारतीय कृषकों की दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण ऊँची पुँजीगत लागत वाले महंगे ट्रेक्टर जैसे उपकरण का प्रयोग मध्यम लघु एवं सीमांत कृषकों के बस की बात नहीं रहती है। फिर भी हरित क्रांति के बाद से आधुनिक और वैज्ञानिक कृषि को आज सर्वत्र प्रोत्साहन मिलने लगा है। आधुनिक तकनीकी ज्ञान का कृषि क्षेत्र को अधिकाधिक लाभ मिले इस नई कृषि नीति को अब भारत में केन्द्रीय और राज्य सरकारें भी सर्वोच्च प्राथमिकता देने लगी हैं। अब सरकार की नयी कृषि विस्तार नीति के तहत् बैंकों के माध्यम से भी ट्रेक्टर जैसे बड़े और महंगे उपकरण को क्रय करने की भी उदार ऋण नीति अब लागू की जा चुकी है।

निष्कर्ष:- झुन्झुनू जिला शेखावाटी क्षेत्र के सुनहरे अतीत पुरातन संपदा के अनकहे पृष्ठ और प्रमाणों तथा महाभारत कालीन स्मृतियों को अपने अंतराल में समेटे हुए है''।झुन्झुनू जिले का नामकरण उसके मुख्यालय झुन्झुनू नगर के कारण पड़ा। प्राचीन अवधारणा के अनुसार झुन्झुनू के राजा झुंझारसिंह के कारण इसका नाम झुन्झुनू पड़ा। स्थानीय लोगों की धारणा यह है कि यह नगर झुंझारसिंह ने बसाया। 15वीं शताब्दी का इस शिलालेख में खेतड़ी नगर का उल्लेख है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1956 में भारतीय संविधान में संशोधन हुआ, जिसके अनुसार भारत में सम्पूर्ण राज्यों का पुनर्गठन किया गया तदानुसार राजस्थान की स्थापना हुई। एक नवम्बर 1956 में स्थापित भारत का हृदय स्थल राजस्थान राज्य आकार की दृष्टि से भारत का सबसे वृहद् राज्य बन गया। सन् 1956 से लेकर 1972 तक झुन्झुनू जिला कोटा संभाग के अंतर्गत था। लेकिन सन् 1973 में जयपुर संभाग का गठन हुआ जिसके अंतर्गत सीकर] झुन्झुनू एवं चुरु जिलों का समावेश किया गया। आकार की दृष्टि से झुन्झुनू जिले का क्षेत्रफल 5]928 वर्ग किमी है, जो जयपुर संभाग के जिलों जयपुर एवं सीकर के बाद आकार में तीसरे क्रम पर है। भले ही झुन्झुनू जिला आकार की दृष्टि से मध्यम स्तर का हो लेकिन ऐतिहासिक भौगोलिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से बहुचर्चित लोकप्रिय एवं समुचित सर्वेक्षण एवं खोज का केंद्र माना जाता है। 1 नवम्बर 1999 को छत्तीसगढ़ राज्य का गठन हो जाने के बाद राजस्थान में जिलों की संख्या 33 रह गई है।

****

सन्दर्भ :-

1. नाथूरामका लक्ष्मीनारायण 1986 - भारतीय अर्थव्यवस्था लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा
2. झिंगल ओ.पी. 1999 - एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग अमन पब्लिशिंग हाऊस मेरठ
3. मिश्रा ए.पी. 2005 - जलसंसाधन प्रबंधन एवं संरक्षण आविष्कार पब्लिशर डिस्ट्रीव्यूसन
4. त्रिपाठी राजपूत 2007 - कृषक दत धान की उन्नत खेती इंदिरा गांधी कृषि वि-वि- रायपुर-
5. तोमर दुबे शर्मा पहलवान - जैविके खेती विस्तार संचालनालय जवाहरलाल नेहरु कृषि वि-वि-] जबलपुर-
6. सिंह जे- आर- टैक्टर संचालन एवं रख&रखाव कृषि जगत भोपाल-
7. जोशी प्रीति - जैविक खाद तंत्र ज्ञान सृजन एवं विज्ञान विकास संस्थान भोपाल-
8. कुमार- एस- ए. हैण्ड बुक आफॅ एग्रिको अमन पब्लिशिंग हाऊस मेरठ
9. तिवारी सिंह - कृषि भूगोल प्रयाग पुस्तक भवन

प्राथमिक शिक्षा के सर्वांगीण विकास में शिक्षा का अधिकार अधिनियम का संक्षिप्त मूल्यांकन

डॉ.सीता देवी
शोध निर्देशिका
शिक्षाशास्त्र विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

रंजन शर्मा
शोध अध्येता
शिक्षाशास्त्र महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

सार -प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा की नींव का वह पत्थर है जिससे बालक की सीखने-समझने-देखने आदि की शक्ति विकसित की जाती है अर्थात् उसको सामान्य मानव-व्यवहार में प्रशिक्षित किया जाता है। परिणामतः बच्चों की आगे की शिक्षा सुचारू रूप से चलती रहती है, क्योंकि प्राथमिक शिक्षा की नींव पर ही बच्चों की शिक्षा निर्भर करती है। प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने से बच्चों का सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और चारित्रिक विकास सम्भव होता है क्योंकि शिशुकाल से ही बालक कुछ न कुछ सीखता है और पहले परिवार से, फिर समाज से, इसमें यदि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा दी जाये तो उसका व्यक्तित्व निखर के आता है तथा उसमें सद्गुणों का विकास होता है। प्राथमिक शिक्षा को देश के कोने-कोने में पहुँचाया जा रहा है तथा शिक्षा को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा बनाने का संकल्प किया जा रहा है। ''संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य अपने क्षेत्र के सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु होने तक निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। इसी से स्वस्थ जनमत का निर्माण सम्भव है। प्राथमिक शिक्षा को भारत के अधिकतर व्यक्तियों की पूर्ण शिक्षा माना गया है तथा प्राथमिक शिक्षा से सामान्य जीवन जीने योग्य बनाया जाता है। प्राथमिक शिक्षा से बालक को सर्वांगीण विकास के पथ पर ठीक ढंग से अग्रसित करने के लिये तैयार किया जाता है। शिक्षा इन्सान की कैमिस्ट्री ही बदल देती है। जीवन तो कुदरत से मिल जाता है पर जीवन जीने का सलीका शिक्षा देती है। यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि आज तक शिक्षा सबके लिए समान स्तर पर उपलब्ध नहीं रही। इसका व्यापक जन हित में उपयोग नहीं हो पाया। विशेषाधिकार के तौर पर दुरुपयोग ज्यादा किया गया। ऐसे में शिक्षा का यह बुनियादी अधिकार हमारी विकासयात्रा में एक मील का पत्थर साबित हो सकता है।

प्रस्तावना-भारत में प्राथमिक शिक्षा का विकास विशेष रूप से 1947 के बाद हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात् केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने प्राथमिक शिक्षा के लिये अनेक नीतियाँ अपनायी। जिससे कि ''प्राथमिक शिक्षा'का प्रचार एवं प्रसार सारे देश में किया जा सके। प्राथमिक शिक्षा समाज की प्रति का मुख्य आधार है यही कारण है कि आधुनिक युग में प्राथमिक शिक्षा का स्तर समाज की समृद्धि का सूचक माना जाता है। शिक्षा का स्तर ऊँचा करने के लिये शिक्षकों पाठ्यक्रमों, शिक्षण विधि, पाठ्य पुस्तक, विद्यालय भवन आदि में सुधार के लिये प्रयासरत हैं। जो समाज अथवा राष्ट्र जितना जागरूक होगा उतनी ही सीमा तक प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान देगा, वास्तव में जन चेतना के लिये प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता है। शिक्षा वह गतिशील एवं सामाजिक प्रक्रिया है जो मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का सर्वांगीण विकास करने में सहायता देती है जिससे वह अपने समाज, राष्ट्र, विश्व और सम्पूर्ण मानवता के हित में चिन्तन, संकल्प और कार्य कर सके ''अरस्तु के शब्दों में ''शिक्षा मनुष्य की शक्ति का विशेष रूप से मानसिक शक्ति का विकास करती है जिससे वह परम सत्य, शिव और सुन्दरम् का चिन्तन करने योग्य बन सके' प्राथमिक शिक्षा का विकास सामान्य जन शक्ति के विकास से सम्बद्ध है। प्राथमिक शिक्षा के स्कूलों में 5 वर्ष के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। प्राथमिक शिक्षा बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक विकास में सहायता प्रदान करती है इसी के साथ बच्चों के चरित्र का विकास करने में भी प्रयास किया जा रहा है।

मुस्लिम कालीन भारतीय शिक्षा-मुस्लिम शासक अपने साथ एक नवीन संस्कृति धर्म तथा आदर्श लाये तथा अपने शासन को दृढ़ करने के लिये उन्होंने स्वयं को मुस्लिम धर्म तथा इस्लाम ज्ञान व संस्कृति का प्रचार करने के लिये समर्पित कर दिया। मुस्लिम आक्रमणों तथा कालान्तर में मुस्लिम राज्य की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप के जनजीवन में अनेक दूरगामी परिवर्तन आये। शिक्षा व्यवस्था भी परिवर्तन के इस प्रभाव से अछूती नहीं थी। वैदिक श्लोकों तथा बुद्ध साहित्य के साथ-साथ कुरानें की आयतों का भी पाठ होने लगा। राजनैतिक सत्ता पर अपना अधिकार अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से मुस्लिम शासकों ने परम्परागत हेतु न तो कोई औपचारिक व नियमित तथा न ही कोई व्यवस्थित शिक्षा योजना थी। परन्तु अधिकांश मुस्लिम शासकों ने इस्लामी शिक्षा की प्राप्ति पर्याप्त रूचि दिखलाई। प्रायः सभी मुस्लिम शासक शिक्षित थे। सभी के विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। शिक्षा को राज्य का उत्तर दायित्व न स्वीकारने के बावजूद भी लगभग सभी मुस्लिम शासकों ने अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। किन्तु यह कहना भा सत्य होगा कि इस काल में जनसाधारणा की शिक्षा उपेक्षित थी। उनके द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप देश में एक नई शिक्षा नीति व्यवस्था अर्थात इस्लामी शिक्षा की धारना प्रवासी प्राचीन हिन्दू शिक्षा व्यवस्था राजकीय संरक्षण व प्रोत्साहन से वंचित हो गई। इसके अलावा मुस्लिम शासकों ने हिन्दू शिक्षा केन्द्रों को खुलकर लूटा पुस्तकालयों को जलाया तथा हिन्दू विद्वानों को निरूत्साहित व दण्डित किया तथा भार डाला इसके फलस्वरूप मध्यकालीन भारत में प्राचीन संस्कृत शिक्षा लगभग मृतप्रायः हो गई। मध्यकालीन भारत में शिक्षा को एक सामाजिक कर्तव्य के रूप से स्वीकार नहीं किया जाता था। उस काल में सार्वजनिक शिक्षा कठिन हो गई थी। उच्च मुस्लिम शिक्षा का माध्यम अरबी भाषा थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा भारतीय शिक्षा :-यूरोपीय कम्पनियों डच, डेनीस, फ्रांसी पुर्तगाली, तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में व्यापार के उद्देश्य से आयी थी। सभी यूरोपीय कम्पनियों के प्रभाव को कम करने के पश्चात ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय परिस्थिति में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बागडोर इग्लैंड के पार्लेमेंट के हाथों में थी। इस कम्पनी का उद्देश्य भारत में ईसाई धर्म का प्रचार प्रसार तथा व्यापार करना था।

भारतीय परिस्थितियों में उसे सभी प्रकार की परिस्थतियों हस्तक्षेप करना आवश्यक कर दिया। फलतः कम्पनी को शासन, न्याय, विधान, तथा आर्थिक कार्यों में हाथ बटाने लगी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत राजनीति में पूर्णरूपेण अधिपत्य प्राप्त कर लेने के बाद शिक्षा नीति में हस्तक्षेप करना। भारतीय परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए कम्पनी ने अपनी शिक्षा नीति का निर्माण किया।

सूचना का अधिकार:-सूचना के अधिकार के बाद शिक्षा का अधिकार भी हमारे बुनियादी हकों में शामिल हो गया। महिला आरक्षण विधेयक भी कानून बनने की प्रक्रिया में है। ये ऐतिहासिक निर्णय हैं जो आने वाले समय की दिशा और दशा तय करेंगे। इन्हें हमारे सामाजिक जीवन की एक नई सकारात्मक शरुआत भी माना जा सकता है। ऊपरी तौर पर यह मामूली से निर्णय लगते हैं लेकिन सूचना के अधिकार की ही मिसाल लें तो यह एक ऐसा शक्तिशाली हथियार साबित हो सकता है जिसके बल पर सत्ता के लौह द्वार को खोलना भले ही संभव न हो, पर उसे जालीदार तो बनाया ही जा सकता है। शर्त यही है कि इस कानून का गलत इस्तेमाल करके इसे काउंटर-प्रोडक्टिव न बना दिया जाए।

हमारे देश में जब आधुनिक शिक्षा व्यवस्था गांव-गांव में दस्तक दे रही थी, उसी समय उच्च-भू लोगों के लिए अंग्रेजी पब्लिक स्कूलों की संस्कृति भी अपनी जड़ें जमा रही थी। आखिर अंग्रेज और उनके हाकिम यह कैसे बर्दाश्त कर सकते थे कि भारतीय देहाती और गंवारों के बच्चे उनके बच्चों की बराबरी करें। इसलिए दो तरह की शिक्षा व्यवस्था बनायी गयी जो आज तक अपने दोनों उद्देश्यों को पूरा कर रही हैएक तो यह कि आभिजात्य वर्ग की ऐंठन बरकरार रहे। उसकी संतानें नौकरों की संतानों की छूत से दूर रहें। दूसरे, पीढ़ी दर पीढ़ी मालिकों की संतानें मालिक, और नौकरों की संतानें नौकर बनती रहें। आजादी के बाद जैसे-जैसे मध्य वर्ग अमीर होता गया, अंग्रेजी पब्लिक स्कूलों की संस्कृति सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को तोड़ती गयी। और आज यह मरणासन्न अवस्था में है। इसके बरक्स देश के हर गली-कूचे में आपके बजट की शिक्षा की दुकान उपलब्ध है। ऐसे में शिक्षा के मौलिक अधिकार का कानून शायद सरकारी स्कूलों के लिए संजीवनी का काम कर जाए।दरअसल होना तो यह चाहिए कि शिक्षा के अधिकार के साथ-साथ शिक्षा में बराबरी की बात की जाए। एक जैसी शिक्षा ही समतामूलक समाज का आधार रख सकती है। आज भी एक तरफ टाट-पट्टी पर और पेड़ के नीचे चलती वर्नाकुलर (देसी भाषाओं के लिए औवनिवेशिक गाली) यानी देसी भाषाओं की पाठशालाएं हैं जो बच्चों के साथ खिलवाड़ के सिवा शायद ही

कुछ करतीं हों। दूसरी तरफ विदेशी बोर्डों के पांच सितारा स्कूल हैं जो विदेश जाने के एक्सक्लूसिव हाईवे का काम करने वाले हैं। शिक्षा के सांस्कृतिक पहलू पर नजर डालें तो भारतीय शिक्षा का लार्ड मैकाले का प्रयोग पूरी तरह से सफल रहा है। उनकी शिक्षा व्यवस्था ने हमारे भीतर की भारतीयता का अंग्रेजीकरण कर दिया है। अब तो हमारी सारी सांस्कृतिक और भाषाई विरासत संकट में है। इस महादेश की बहुसंख्या खेतीबाड़ी पर निर्भर रही है। काश! हमारी शिक्षा दस हजार साल पुराने इस पारंपरिक पेशे को इज्जत से देखने का संस्कार दे पाती। शिक्षा ने अपने ही समाज को अपनी ही नजरों से गिराने का गुनाह किया है और बाबूगिरी की झठी अकड़ सिखाई है। हमें ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनानी होगी, जो आधुनिक शिक्षा संदर्भों का भारतीयकरण करते हुए उन्हें हमारी शिक्षा और जनजीवन का हिस्सा बनाए। सर्वशिक्षा अभियान के तहत, जब से शिक्षा का अधिकार अधिनियम अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिये आया है तब से राज्यों को कुल 43 हजार 668 स्कलों, 7 लाख 560 हजार अतिरिक्त 5 लाख 46 हजार 513 शौचालयों और 33 हजार 703 पेयजल सुविधाओं को मंजूरी दी गयी है। शिक्षा का अधिकार-2009 के अनुसार 6-14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिये मुफ्त और आवश्यक शिक्षा का प्रावधान है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम क्रियान्वयन के जारी रहने से प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। शिक्षा के अधिकार जिला सूचना प्रणाली के अनुसार, आरम्भिक स्तर पर बच्चों के नामांकन में 2011-12 में 19-90 करोड़ के मुकाबले 2013-14 में 21-32 करोड़ तक की बढ़ोत्तरी हुई है। सर्वशिक्षा अभियान और शिक्षा का अधिकार अधिनियम को लागू करने से शिक्षा की गुणवत्ता में आशातीत सुधार हुआ है।

शिक्षा का अधिकार: एक आकलन:-निश्चय ही शिक्षा का अधिकार कानून भारत के इतिहास में एक बडा प्रस्थान बिन्दु था तथापि इसकी कुछ गंभीर सीमाएं हैं। उदाहरण के लिए, यह सिर्फ छह से चैदह साल तक के बच्चों तक ही सीमित है, छह वर्ष से छोटे और चैदह वर्ष से बडे बच्चे इससे बाहर रह गये हैं। इसी भांति, कानून में यह खुलासा नहीं किया गया कि अधिनियम में किये गये विभिन्न प्रावधानों के लिए जरूरी वित्तीय संसाधनों का स्रोत क्या होगा। सार्वजनिक शिक्षा की ऐसी राष्ट्रीय प्रणाली जो शैक्षिक गुणवत्ता को सुनिश्चित करती हो, उसके नियम और मानदण्ड तब तक अधूरे रहेंगे जब तक कि समान स्कूल प्रणाली का गठन नहीं किया जाये जिसके लिए 1968 और 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने अनुशंसा की है।

बहरहाल, अभी तक अधिनियम संसद द्वारा निर्धारित किये आवधिक लक्ष्यों (इसकी क्रियान्विति और कानून के मापदण्डों के अनुसार स्कूलों के सुधार को अर्जित करने में असफल रहा है।) अधिनियम के अनुसार अब आखिरी अवधि 2015 है जब तक सभी शिक्षकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर दिया जाना हैं। ये दुर्भाग्यपूर्ण है कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम की प्रत्याशा में स्कूलों और वृहद शैक्षिक ढांचे में जो आमूलचूल रूपान्तरण होना था, वह अभी तक नहीं हुआ है। इस लिहाज से वैधानिक और संवैधानिक प्रतिबद्धिता के लिहाज से खुद राज्य की यह व्यापक असफलता चिंतनीय है। सरकार द्वारा जब 2013 तक के लिए निर्धारित लक्ष्य अर्जित नहीं किये गये तो 2015 तक के लिए निर्धारित लक्ष्य भी खतरे में पडे दिखते हैं।

बेशक विभिन्न राज्यों में (राज्यों की विशिष्ट बाधाओं के संदर्भ में) शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत मापदण्डों की शत-प्रतिशत उपलब्धि की स्थिति का स्तर अलग-अलग है। जबकि देश के सभी हिस्सों के समूचे शैक्षिक ढांचे में एक संकट समान रूप से मौजूद है। वर्तमान में किसी भी राज्य ने शिक्षा के अधिकार कानून के समग्र क्रियान्वयन के प्रति प्रतिबद्धिता का ठोस इजहार नहीं किया है।शिक्षा का अधिकार मंच के इस बार के राष्ट्रीय साझा संवाद का जोर यह देखने पर था कि अधिनियम के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए राज्यों में किस हद तक आवश्यक संस्थागत तंत्र विकसित किया गया है। जबकि अधिनियम की आखिरी समय सीमा एक साल बाद समाप्त हो रही है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम में बच्चों के पडौस में सम्पूर्ण संरचना के साथ विद्यालयों की स्थापना, छात्र-शिक्षक अनुपात और अधिनियम की अनुसूची में वर्णित सभी सुविधाएं उपलब्ध करवाने के लिए तीन साल की अवधि (2013) निर्धारित की गयी थी। जबकि शिक्षकों को चयन और प्रशिक्षण के लिए पांच साल का समय (2015) प्रदान किया गया था।

शिक्षा का अधिकार मंच द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संवाद में प्रस्तुत प्रतिवेदन सरकारी सूचनाओं, शोध-अध्ययनों, मंच की राज्य इकाइयों द्वारा तैयार रिपोर्टों, क्षेत्र कार्य के दौरान प्राप्त अनुभवों और अखबार की खबरों जैसी स्रोत सामग्री से तैयार किया गया था। इसके बावजूद किसी खुले और ठोस सूचना स्रोत के बिना देश भर में अधिनियम के क्रियान्वयन की स्थिति का आकलन करना बहुत मुश्किल है। रिपोर्टों के अनुसार सभी राज्य और संघ शासित प्रदेश अधिनियम की अधिसूचना जारी कर चुके हैं जबकि 32 राज्य और संघ शासित प्रदेशों ने ही अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप क्रियान्वयन की निगरानी के लिए निकायों का गठन किया है। विगत चार वर्षों में हालांकि शिक्षा के बजट में लगातार बढोतरी हुई है लेकिन अभी भी यह 12वीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों तक नहीं पहुंच पाया है। बच्चे से जुडे पहलुओं, जैसे-उन्हे भयभीत नहीं करने, शारीरिक दण्ड नहीं देने, बोर्ड परीक्षा आयोजित न करने, निजी ट्यूशन पर रोक, भर्ती प्रक्रिया और केपीटेशन फीस पर रोक से सम्बन्धित प्रावधानों को अधिसूचित कर दिया गया है। क्रियाकलापों के संचालन और प्रबंधन के लिए देश भर के 88 प्रतिशत स्कूलों में शाला प्रबंध समितियां गठित की जा चुकी हैं। इससे जुडी अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धियों में शिक्षक पात्रता परीक्षा (टी.ए.टी.) की संस्थागत प्रणाली विकसित करना, शिक्षक भर्ती के नियमों से संशोधन और प्रारंभिक शिक्षा के लिए 8 वर्षीय अवधि का पाठ्यक्रम शामिल हैं। शिक्षक प्रशिक्षण प्रणाली और अकादमिक समर्थन तंत्र में में सुधारों की पहल की गयी है। इसके बावजूद किसी ने राज्य भी शिक्षा के अधिकार के मापदण्डों को समग्रता से उपलब्ध नहीं किया है। अधिनियम के सभी 10 संकेतकों का पूरी तरह निवर्हन करने वाले स्कूल केवल 8 प्रतिशत हैं।

प्रणालीगत विकास:-शिक्षा के लिए आवंटित बजट अधिनियम की सुचारु क्रियान्विति के लिए आवश्यक अनुमानित संसाधनों की तुलना में अभी भी बहुत कम है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 2013-2014 में 50 हजार करोड रूपये की मांग की थी लेकिन इसे 27.248 करोड रूपये ही वास्तव में आवंटित किये गये। विगत वित्तीय वर्ष के दौरान बजट में कटौती कर दी गयी, अगले वर्ष में भी अतिरिक्त कटौती लक्षित की गयी। बजट राशि देर से जारी की जाती है और व्यय किये जाने की रफ्तार भी धीमी रही। एक अध्ययन (पी.एल.आई. एस.ए. 2014) के अनुसार भारत में सर्व शिक्षा अभियान के बजट की विगत वर्ष 73 प्रतिशत की तुलना में 65 प्रतिशत राशि ही खर्च की गयी। हालांकि अनेक राज्यों में अधिनियम के अन्तर्गत शिकायत निवारण तंत्र की अधिसूचना जारी कर दी गयी है लेकिन एक ऐसे शिकायत निवारण तंत्र की तत्काल आवश्यकता है जो स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक सक्रिय हो। राष्ट्रीय बाल अधिकार आयोग सहित राज्यों के बाल अधिकार आयोगों की क्षमता पर भी इस वर्ष सवाल खडे हुए हैं। संघर्ष के क्षेत्रों में मुश्किल हालातों की वजह से अधिनियम क्रियान्वित नहीं हो पाता है। अनुशंसा है कि—शिक्षा पर बजट में बढोतरी (जी.डी.पी. का 6 प्रतिशत तक) करना ताकि शिक्षा के अधिकार कानून की क्रियान्विति के लिए अनुमानित जरूरी राशि का आवंटन सुनिश्चित किया जा सके। एक सक्रिय शिकायत निवारण तंत्र के गठन की फोरी आवश्यकता है। राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग और राज्य आयोगों की शक्तियों और क्षमताओं में वृद्धि की आवश्यकता है ताकि ये प्राप्त शिकायतों को तार्किक परिणति तक पहुचा सकें। शिक्षा का अधिकार अधिनियम को लेकर मध्यम स्तर के शिक्षा अधिकारियों के आमुखीकरण की आवश्यकता है ताकि वे इस संदर्भ में बेहतर भूमिका निभा सकें।

सामुदायिक सहभागिता:-इस अधिनियम की सफलता के लिए सामुदायिक सहभागिता की अहम् भूमिका है। स्कूल प्रबंध समितियों को लेकर वास्तविक आंकडे तो मिलते नहीं हैं। डी.आई.एस.ई. 2012-13 के अनुसार 88.37 प्रतिशत स्कूलों में शाला प्रबंध समितियां हैं। (इनमें दिल्ली में इनके गठन के लिए अधिसूचना ही मार्च, 2013 में जारी की गयी है और 6.93 प्रतिशत स्कूलों में ही शला प्रबंध समितियां गठित की गयी हैं। जबकि लक्षद्वीप में इनका शत-प्रतिशत गठन हो गया है।) सच्चाई यह है कि अधिकतर स्कूलों में शाला प्रबंध समितियां केवल कागजों पर बनी हैं और कार्यशील नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वहां स्कूल विकास योजना और उसके क्रियान्वयन में जन सहभागिता की कल्पना ही नहीं की जा सकती और स्थानीय समूहों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो सकती। शाला प्रबंध समितियों और राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग के मध्य वृहद अन्तराल है। इस प्रक्रिया में स्थानीय स्वशासी निकायों की सम्बद्धता को

नकारा गया है। अतः शाला प्रबंध समितियों को सुद्रढ करने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध करायें जायें। इनकी क्रियाशीलता पारदर्शी हो और इन्हे आगे लाने के लिए उपयुक्त तंत्र विकसित किया जाये।स्कूलों के संचालन और प्रबंधन में शाला प्रबंध समितियों की सक्रिय सहभागिता के लिए उन्हे सक्षम बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए आदिवासी और अनुसूचित जाति बहुल क्षेत्रों और उत्तर पूर्वी राज्यों में स्थानीय स्वशासी प्रणाली पर इस संदर्भ में विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

शिक्षकों के मुद्दे:-वर्तमान में शिक्षकों के पांच लाख स्वीकृत पद खाली हैं और 6.6 लाख कार्यरत शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाना है। ऐसे 37 प्रतिशत प्राथमिक स्तर के स्कूल हैं जिनमें छात्र-शिक्षक अनुपात राष्ट्रीय मापदण्ड 1: 30 के विपरीत है। देश भर में छात्र-शिक्षक अनुपात में भारी विभिन्नता है, अण्डमान -निकोबार द्वीप में ये 1:10 है तो बिहार में 1:53 है। अभी भी देश में करीब 10 प्रतिशत स्कूलों में मात्र एक शिक्षक है जो कि शिक्षा का अधिकार का खुला उल्लंघन है। शिक्षकों को अभी भी गैर-शैक्षणिक कार्यों में लगा दिया जाता है। हालांकि शिक्षक प्रशिक्षण के लिए पहल की गयी है जिसमें शिक्षक प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा अभिदान शामिल है तथापि शिक्षण प्रशिक्षण प्रक्रियाओं में व्यापक बदलाव की जरूरत है। इधर केन्द्रीय शिक्षक पात्रता परीक्षा में एक प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक वृद्धि हो चुकी है। ये फोरी तौर पर सुनिश्चित किया जाये कि कोई स्कूल एक शिक्षक का नहीं रहे। प्रधानाध्यपकों के साथ शिक्षकों की नियुक्ति पर विशेष ध्यान दिया जाये ताकि छात्र-शिक्षक अनुपात को अधिनियम की संगति में लाया जा सके। ये भी सुनिश्चित किया जाना है कि सभी शिक्षक प्रशिक्षित हों। शिक्षक शिक्षा अभियान को गति और विस्तार देने की आवश्यकता है, साथ ही इसमें सेवा-पूर्व प्रशिक्षण प्रक्रियाओं को भी समाहित किया जाये। शिक्षकों की इस पेशे में दीर्घकालिक प्रतिबद्धिता के लिए उनकी कार्य-स्थितियों में सुधार पर ध्यान देने की आवश्यकता है।शिक्षकों को अन्य शिक्षणेतर कार्यों से पूरी तहर मुक्त करने की जरूरत है ताकि वे पूरा ध्यान पढ़ाई पर दे पायें। उन्हे रिकार्ड संधारण और प्रशासनिक कार्यों में सक्षम बनाने के लिए सहयोग देने की जरूरत है। शिक्षण विधियों, कक्षा अनुभव को समृद्ध बनाने और बेहतर नतीजे अर्जित करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण की रूपरेखा, संदर्भ व्यक्तियों की तैयारी, स्तरीय प्रशिक्षण संदर्भ सामग्री और प्रभावी मूल्यांकन में विशेष निवेश की जरूरत है। गुणवत्ता शिक्षा के लक्ष्य को सर्वांगीण रूप से प्राप्त करने के लिए शिक्षक की भूमिका में गुणात्मक बदलाव की आवश्यकता है।

सामाजिक समावेशन:-स्कूल से बाहर रहे कुल 22 लाख बच्चों में से 2013-14 में केवल 44 प्रतिशत बच्चों को ही स्कूल से जोडा जा सका। केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार 31 मार्च 2013 तक कुल 32.19 लाख विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान की गयी थी। इनमें से 27.64 लाख बच्चे स्कूलों में नामांकित हो चुके हैं जिनके लिए 18358 संदर्भ शिक्षकों को नियुक्त किये जाने की आवश्यकता है। अभी भी स्कूलों में भेदभाव की प्रवृति कहीं न कहीं विद्यमान है जबकि केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय इसके विरूद्ध परिपत्र जारी कर चुका है। हिंसाग्रस्त और संघर्ष के क्षेत्रों में बच्चे स्कूल के बाहर रह जाने के लिए मजबूर हैं। अतएव-

- प्रत्येक बच्चे के शिक्षा के मूल अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए स्कूल से बाहर रहे बच्चे को सुस्पष्ट रूप से परिभाषित करने, उसके मानचित्रण और सतत् सम्पर्क बनाये रखने की जरूरत है।
- शिक्षा तंत्र में भेदभाव के रूपों की पहचान करने और इन्हे समाप्त करने के लिए शिक्षकों को इन पहलुओं पर सचेत करते हुए एक आचार संहिता लागू करने की आवश्यकता है।
- भदेभाव और बहिष्करण के मसलों को सम्बोधित करने के लिए जरूरी है कि स्कूल से सम्बद्ध अन्य भागीदारों के साथ वंचित समूहों के प्रतिनिधियों को भी महत्वपूर्ण भागीदार के रूप में शामिल किया जाये।
- सरकार को ऐसी जगहों पर नजर दौडाने की जरूरत है जहां बच्चे बाल श्रम में नहीं लगे होने पर भी स्कूल से बाहर हैं।

शिक्षा में निजी क्षेत्र:-निजी स्कूलों की संख्या में निरंतर बढोतरी हो रही हैं। असर 2013 (ग्रामीण भारत) रिपोर्ट के अनुसार निजी स्कूलों में कुल बच्चों का नामांकन त्रिपुरा में 6.6 प्रतिशत से मणिपुर में 70.5 प्रतिशत के बीच है। हालांकि कुछ राज्यों में निजी स्कूलों के नियंत्रण के लिए सख्त नियम हैं लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का अधिकार अधिनियम में तय मापदण्डों के उल्लंघन पर निजी स्कूलों की शिकायतों के लिए कोई तंत्र स्थापित नहीं किया गया है। देश के 25 राज्यों ने निजी स्कूलों में गरीब बच्चों को 25 प्रतिशत आरक्षण बाबत अधिसूचना जारी कर दी थी। इनमें से 16 राज्यों की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2013-14 में वहां 25 प्रतिशत ने इसकी अनुपालना की है। केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा राज्यों में व्यय के पुनर्भरण की वित्तीय आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए व्यय वित्त समिति का गठन किया गया है। कुछ राज्यों में सरकारी स्कूलों के निजी क्षेत्र में हस्तान्तरण की खबरें हैं जिनमें मुम्बई, हरियाणा, उत्तराखंड और दिल्ली शामिल हैं। शोध रपटों में आय और निजी स्कूल के बीच एक सहसम्बन्ध उजागर हुआ है। यदि किसी परिवार की आय बढ जाती है तो वह अपने बच्चे को निजी स्कूल में भेजता है। **शिक्षा की गुणवत्ता:-**निश्चय ही भारत में प्रारंभिक शिक्षा की उपलब्धता में उल्लेखनीय उपलब्धि अर्जित की है, नामांकन के लक्ष्यों की ओर भी बढ़े हैं लेकिन यह सब गुणवत्ता की कीमत पर है। केवल 10 प्रतिशत स्कूल ही शिक्षा का अधिकार अधिनियम के सभी मापदण्डों को पूरा करते हैं। समग्र एवं सतत् मूल्यांकन (सी.सी.ई.) को लेकर समझ स्पष्ट नहीं है और इसकी क्रियान्विति आधी अधूरी है। विशेष शिक्षण के उपक्रम प्रभावी नहीं रहे। पाठ्यपुस्तकों की आपूर्ति विलंब से की जाती है। पाठयक्रम और पाठ्यपुस्तकों में सुधारों की दिशा में अभी कुछ भी नहीं हुआ है। इसलिए अनुशंसा है कि -

- देश भर के सभी स्कूल अधिनियम के मापदण्डों की अनुपालना में अपने आधारभूत ढांचे को विकसित करें और इसमें पिछडे जिलों पर विशेष ध्यान दिया जाये। स्कूलों से सभी मापदण्डों के आधार पर रिपोर्ट मंगवायी जायें।
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षण प्रक्रियाओं के लिए पाठयपुस्तकों व शिक्षण सामग्री की सत्रारंभ में पहुंच सुनिश्चित करना जरूरी है।
- समग्र एवं सतत् मूल्यांकन (सी.सी.ई.) को पद्धतियों की समीक्षा जरूरी है। इसे लेकर शिक्षकों की तैयारी अनिवार्य है। इस मूल्यांकन को लेकर एक व्यापक समझ और सर्वसम्मति बनाकर आगे बढना आवश्यक है।
- विशेष शिक्षण के लिए आवश्यकता और तरीकों के हिसाब से वित्तीय प्रावधान भिन्न हो सकते हैं। लेकिन राज्य शिक्षा व्यय अथवा सर्वशिक्षा अभियान की गाइड लाइन में ऐसे खर्च के लिए जरूरी और उचित प्रावधान होने चाहिए।

निष्कर्ष:-शिक्षा का अधिकार अधिनियम के सभी मापदण्डों को अर्जित कर लिया है। किसी भी राज्य की सत्ताधारी पार्टी ने भारतीय बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के संकल्प को मूर्त रूप देने की कोशिश नहीं दर्शायी हैं ऐसे में अभी तक प्राप्त सफलताओं के नींव पर शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए जमीन तैयार करनी होगी। इसके लिए राष्ट्रीय जन अभियान की जरूरत है। बच्चों को स्कूलों की सार्वजनीन उपलब्धता, ठहराव और गुणवत्ता पूर्व शिक्षा से ही प्रारंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण संभव है जो लिगं, सामाजिक श्रेणी और क्षेत्र की सापेक्षता में है। इस प्रतिवेदन में दी गयी अनुशंसाएं कुछ जरूरी पहलुओं को इंगित करती हैं जिनकी जमीनी स्तर पर समीक्षा करते रहने की आवश्यकता है। इस जन अभियान में जन समूहों, नागरिक समाज और सरकार के बीच अनवरत् संवाद और सहकार की दरकार है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. डा0 जी0एस0 वर्मा-आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं समस्यायें, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2012
2. सुरेश भटनागर-आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, आर0 लाल बुक, मेरठ, 2001।
3. डा0 महावीर प्रसाद गुप्ता -भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, साहित्य प्रकाशन, आगरा
4. डा0 एस0पी0 गुप्ता-भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, इलाहाबाद, 2011।
5. डा0 एस0एस0 माथुर -शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2, 2012।
6. डा0 शशिकला सरीन-डा0 अंजली सरीन शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2009।
7. डा0 के0पी0 पाडेय-शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008।
8. पाण्डेय, रामशकल-उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2, 2007।
9. एन॰आर॰स्वरुप सक्सैना-शिक्षा सिद्धान्त, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2009
10. पाल एस॰ के॰-गाइडेन्स इन मैनी लैन्डस-एजुकेशनल वोकेशनल एण्ड पर्सनल सेन्टूल, बुक डिपो, इलाहाबाद, 1968।
11. आर॰ए॰ शर्मा-शिक्षा अनुसंधान, आर॰ लाल, मेरठ, 1995।
12. तिवारी, गोविन्द-''शैक्षिक एवं मनोविज्ञान अनुसंधान मूलाधार विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
13. बुच, एम0बी0-फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन-प्रथम व द्वितीय खण्ड'' एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली, 2008।

प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापकों की शिक्षण क्षमता का अध्ययन

डॉ.हलधर यादव
शोध निर्देशक
शिक्षाशास्त्र विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

सचिन कुमार गुप्ता
शोध अध्येता
शिक्षाशास्त्र महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

प्रस्तावना-आधुनिक परिवर्तनशील युग में "शिक्षा" समाज में परिवर्तन लाने का मुख्य अस्त्र है, कोई भी व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से ही अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। शिक्षक की सहायता के बिना शिक्षण प्रक्रिया को सफल नहीं बनाया जा सकता है। शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को सफल बनाने के लिये शिक्षक और शिक्षार्थी में उपयुक्त सम्बन्ध होना अति आवश्यक है। शिक्षण को सफल बनाने के लिए ही शिक्षक के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। एक कुशल एवं प्रशिक्षित अध्यापक ही अपनी शिक्षा के माध्यम से अपने छात्रों का उचित मार्गदर्शन कर सकता है। शिक्षा से प्राप्त ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति अपने जीवन का यथार्थ समझ सकता है और उसे मोक्ष प्राप्त करने में भी सहायता मिलती है।

प्रस्तावना-शिक्षक, शिक्षार्थी, विषय सामग्री, जिनमें शिक्षक का प्रमुख स्थान है। शिक्षक के बिना ज्ञानार्जन सम्भव नहीं है। अध्यापक ही शिक्षण प्रक्रिया को सही दिशा की ओर मुखरित कर सकता है। अध्यापक बालकों की अनेक समस्याओं का निराकरण कर सकता है इसलिये शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता माना जाता है। प्राचीन काल से ही अध्यापक समाज में शीर्षस्थ स्थान पर प्रतिठित रहा है। इस पृथ्वी पर जब से मनुय ने अपने जीवन को एक सुचारू और सुव्यवस्थित ढंग से जीना प्रारम्भ किया है तब से ही समाज में शिक्षक या अध्यापक के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन काल में शिक्षकों को गुरू या आचार्य आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। आज भी अध्यापक का सम्मान या महत्व उतना ही है जितना वैदिक काल से आधुनिक काल तक रहा। इस पृथ्वी पर जितना अभिनन्दन इस वर्ग का किया गया है, उतना किसी अन्य का नहीं। समग्र विश्व ने उसे मार्गदर्शक, आदरणीय ज्ञान पुंज समाज रचियता एवं पूज्य माना है और ईश्वर प्राप्ति का रास्ता बताया है।अध्यापक के महत्व को कबीर ने इस प्रकार लिखा है:-

गुरू गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पाय,
बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियो बताय।

अध्यापक में ब्रह्मा के समान श्रष्टा के गुण, विष्णु के समान पोषण कर्ता के गुण और शिव के समान कल्याणकर्ता के गुण निहित हैं।संस्कृत का निम्नलिखित श्लोक अध्यापक के इन्हीं गुणों की ओर इंगित करता है।

गुरू ब्रह्मा गुरू विष्णु गुरू देवो माहेश्वराः।
गुरू साक्षात पर ब्रह्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।

यद्यपि माता-पिता बालक के स्थूल शरीर के जन्मदाता होते हैं परन्तु इस आध्यात्मिक, नैतिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जीवन का सर्जन अध्यापक के द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार अध्यापक एक स्रष्टा है। बालक के जीवन को वात्सल्य से सिंति कर तथा ज्ञान की ज्योति से अनुप्रभावित कर उसके भविष्य को सुगम बनाकर अध्यापक पोषणकर्ता के दायित्वों को पूर्णतः निर्वाह करता है। उसकी बुराईयों को दूर करके उसे आदर्श प्रदान कर उसे खरा सोना बना देता है।

"समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बौद्धिक परम्पराओं एवं प्रावैधिक ज्ञान के संचार के लिए एक क्षेत्र के रूप में कार्य करता है तथा सभ्यता की ज्योति को जलो रखने में सहायक सिद्ध होता है। वह न केवल व्यक्ति का मार्गदर्शन करता है वरन् राष्ट्र के भाग्य का निर्माता भी है।"अध्यापक वह अज्ञात व्यक्ति है जो नवयुवकां का मार्गदर्शन करता है किन्तु स्वयं अप्रसिद्धि में रहकर कठिनाइयों में सन्तोष करता है। भारत की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अध्यापक दिवस पर संदेश देते हुए कहा था कि देश का कल्याण अध्यापक पर ही निर्भर है। अध्यापक ही हमारे देश के संरक्षक हैं।आज इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि अध्यापक ही पुर्ननिर्माण की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह अधयपक वर्ग की योग्यता है जो कि निर्णायक है। अध्यापक किसी राष्ट्र के भाग्य विधाता होते हैं। उनकी योग्यता कार्यकुशलता तथा चरित्र पर ही किसी राष्ट्र का भाग्य या भविष्य निर्भर करता है। किसी राष्ट्र की शिक्षा योजना कितनी भी सुव्यवस्थित क्यों न हो यदि वहाँ के अध्यापकों में अपने प्रति जागरूकता नहीं तथा समाज उनके पद को महत्व नहीं देता है तो वह योजना कभी सफल नहीं हो सकती। आज का आधुनिक युग एक प्रगतिशील एवं विकासशील देश का निर्माण करने के लिए हर क्षेत्र में मशीनीकरण कर देश को विकासशील बनाने का प्रयत्न कर रहा है। किन्तु आज भी शिक्षा प्रक्रिया में अध्यापक का वही सम्मानीय तथा महत्वपूर्ण स्थान है।

कोठारी शिक्षा आयोग ने शिक्षक के प्रशिक्षण पर विशेष जोर दिया। बिना कुशल प्रशिक्षित अध्यापकों के शिक्षा में सुधार लाना सम्भव नहीं है। कोठारी शिक्षा आयोग के अनुसार "अध्यापक शिक्षा को शिक्षा के विकास की कुंजी मानना चाहिये।"कोठारी आयोग ने अध्यापकों की व्यवसायिक शिक्षा के महत्व के बारे में लिखा है "शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए अध्यापकों का व्यावसायिक शिक्षा का ठोस कार्यक्रम अनिवार्य है।"

विभिन्न आयोगों के अनुसार अध्यापक शिक्षा:-

राधा कृष्णन कमीशन-"आज के युग का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि वास्तविक शिक्षा एवं व्यतीत किये जाने वाले जीवन एवं उद्देश्यपूर्ण कार्यक्रम में भाग लेने का नाम है।"मुदालियर कमीशन-"हम यह भली-भांति समझ गये हैं कि विचारयुक्त शैक्षिक पुर्ननिर्माण में सर्वाधिक महत्व शिक्षक का है और उसके व्यक्तिगत गुण उसकी शैक्षणिक योग्यतायें, व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं समाज में स्वयं उसके द्वारा प्राप्त स्थान महत्वपूर्ण हैं"आयोग का यह विश्वास था कि वह माध्यमिक शिक्षा की जिस नवीन संरचना को भारत में देखना चाहता है वह बिना प्रशिक्षित अध्यापकों के सम्भव नहीं है। 1882 ई0 में नियुक्त हंटर कमीशन का यह सुझाव था कि कम से कम एक दीक्षा स्कूल प्रत्येक निरीक्षक के अधीन क्षेत्र में होना चाहिए। इसलिए इसके बाद माध्यमिक विद्यालयों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

1913 ई0 में अध्यापक प्रशिक्षण का महत्व काफी बढ़ा। 1922 ई0 में दीक्षा स्कूलों की संख्या 10,022 हो गई, जिनमें 27,000 अध्यापकों के प्रशिक्षण की सुविधा थी और साथ ही साथ स्नातकों के लिए प्रशिक्षण महाविलय की संख्या 8 स बढ़कर 13 हो गई।

1947 ई0 तक माध्यमिक विद्यालयां के अध्यापकों के प्रशिक्षणार्थ 34-अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय तक 199 महिला दीक्षा स्कूल थे जिनमें 10193 प्रशिक्षणार्थी छात्रायें थीं।

1947 ई0 के बाद शिक्षा का तीव्र गति से विकास हुआ। देश की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए योग्य एवं आदर्श शिक्षकों की आवश्यकता थी। शिक्षा विकास की दृष्टि से शिक्षकों के प्रशिक्षण का शिक्षा क आधार पर अनुभव किया गया जिससे राष्ट्र के लिए अधिकाधिक उपयोगी और आदर्श नागरिक तैयार किये जा सकें।

प्रशिक्षण व्यवस्थाओं को सुधारने के लिए माध्यमिक शिक्षा 1952-53 में देश में दो प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना का सुझाव दिया. वे प्राथमिक तथा मिडिल या जूनियर हाई स्कूल के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दे। इनमें प्रवेश की शैक्षिक योग्यता हायर सेकेण्ड्री तथा प्रशिक्षण अवधि दो वर्ष रखी गई। दूसरे प्रकार की वे संस्थायें स्नातकों को प्रशिक्षण दें। इसमें प्रशिक्षण अवधि एक वर्ष रखी गई। आयोग ने यह भी सुझा दिया कि स्नातक शिक्षा विद्यालयों को किसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित या मान्यता प्राप्त होने चाहिए।

शिक्षण सूत्र-शिक्षण कार्य में कलात्मकता बनाये रखने के लिए छात्रों को पढ़ायी जाने वाली वस्तु उन्हें भली भांति हृदयोगम हो जाये उनके उत्साह में कोई कमी न परिलक्षित होने पाये इसके लिए शिक्षाविदों ने कुछ शिक्षण सूत्रों का निर्माण किया था। इन शिक्षण सूत्रों का अनुसरण करके शिक्षक अपने कार्य में आशातीत सफलता प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षक महान गुणी, योग्य तथा विषय ज्ञाता भले ही हो, किन्तु जब तक वह अपने ज्ञान को बालकों तक नहीं पहुँचाता तब तक उसके ज्ञान से बालकों को कोई लाभ नहीं होता। शिक्षक अपने कार्य में कैसे सफल हो, ज्ञान देने के लिए कोई कला या विधि अवश्य होनी चाहिये, जिसके अनुसरण से शिक्षक अपने विषय को विद्यार्थियों के सामने भली-भांति रख सके। जिसके प्रयोग से चतुर और मूर्ख दोनों प्रकार के विद्यार्थी ज्ञान ग्रहण कर सकें। शिक्षा

शास्त्रियों ने अध्यापकों की सहायता के लिए कुछ शिक्षण सूत्रों का निर्माण किया है, जिनकी उपयोगिता अनुभव द्वारा सिद्ध हो चुकी है। इन सूत्रों के द्वारा शिक्षक को अपने कार्य में सफलता मिलती है, बालक सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। आरम्भ में नवीन शिक्षकों को शिक्षण कार्य में कठिनाईयाँ उक्त सूत्रों के अनुसरण से दूर हो जाती हैं। नवीन शिक्षकों को इन सूत्रों के आधार पर शिक्षण कार्य आरम्भ करना चाहिये।

शिक्षण प्रणालियाँ-शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए, बालकों को पाठ में रूचि उत्पन्न करने के लिए तथा पाठ्य सामग्री को स्पष्ट करके बालकों को हृदयांगम कराने के लिए शिक्षण प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है। अध्यापकों को अपने शिक्षण कार्य में इनके प्रयोग से अभूतपूर्व सहायता मिलती है। प्रस्तुत शिक्षण प्रणालियाँ निम्नलिखित हैं।

व्याख्या प्रणाली
स्पष्टीकरण प्रणाली
वर्णन प्रणाली
विवरण प्रणाली
तुलना प्रणाली
कथा प्रणाली
व्याख्यान प्रणाली
पुस्तक पठन प्रणाली।

विभिन्न अध्यापकों की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव उनकी शैक्षिक योग्यता एवं अनुभव का प्रभाव, उनकी शिक्षण क्षमता पर पड़ता है। विभिन्न अध्यापकों के स्वभाव में अन्तर के कारण छात्रों पर उनका अनुशासन भी समान नहीं रहता है। इस प्रकार उनकी शिक्षण क्षमता पर भी इन सभी बातों का प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य-प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षित अध्यापकों की शिक्षण क्षमता का अध्ययन करना। प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत अप्रशिक्षित अध्यापकों की शिक्षण क्षमता का अध्ययन करना. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापकों की शिक्षण क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना। प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षित अप्रशिक्षित अध्यापकों की शिक्षण क्षमता का लैगिक परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन करना।प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षित अप्रशिक्षित अध्यापकों के अनुभव के आधार पर उनकी शिक्षण क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत प्रशिक्षित अप्रशिक्षित अध्यापकों की शैक्षिक योग्यता के आधार पर उनकी शिक्षण क्षमता का अध्ययन करना।

निष्कर्ष-प्रशिक्षण के माध्यम से अध्यापक में आत्म-विश्वास पूर्ण रूप से उत्पन्न हो जाता है और वह अपने विर्षय को बालकों को अच्छी तरह से पढ़ा सकता है क्योंकि शिक्षण कार्य हितकर पद्धतियों से परिचित होता है। यदि अध्यापक अप्रशिक्षित होगा तो उसे नौकरी से भी हटाया जा सकता है लेकिन प्रशिक्षित होने के कारण उसे नौकरी से हटाना मुश्किल होता है। शिक्षण कार्य में वैज्ञानिकता, नवीनता, मनोवैज्ञानिकता और औचित्य लाने के लिए अध्यापकों की सुरक्षा करने के लिए अध्यापक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जाए तथा सेारत अध्यापकों की विविध सुविधाएँ प्रशिक्षणार्थ प्रदान की जाये।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. मदन मोहन सारस्वत भारतीय शिक्षा की समस्यायें, कैलाश प्रकाशन इलाहाबाद
2. भटनागर डा0 सुरेश शिक्षण की तकनीक, इण्टरनेशनल पब्लिक हाउस मेरठ
3. मेहत चतुर सिंह शिक्षण प्रशिक्षण के सिद्धान्त एवं समस्यायें, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. लाहकार डा0 वीना महिला शिक्षा में विकास, ओम सन्स पब्लिकेशन, दिल्ली
5. अग्रवाल ए0 के0 शिक्षण कला, राजेश पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ कैन्ट
6. मिश्र दिनेश चन्द्र शिक्षण संदर्शिका, उदय प्रकाशन, सूटर गंज, कानपुर
7. पाण्डेय डा0 राकशकल भारतीय शिक्षण की समस्यायें, लक्ष्मी अग्रवाल पुस्तक प्रकाशन, आगरा
8. सिंह डा0 रामपाल भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-2
9. डा0 पी0 वी0, मेहरोत्रा शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2
10. पाठक पी0 डी0 भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
11. रस्तौगी के0 जी0 भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, तृतीय संस्करण
12. शर्मा डा0 जी0 आर0 भारद्वाज शिक्षण अधिगम एवं विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, मेरठ
13. शर्मा आर0 ए0 शिक्षा अनुसंधान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ

विवेकी राय जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का अध्ययन

डॉ.मंजूला तोमर
शोध निर्देशिका
हिन्दी विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

आनन्द सावरण
शोध अध्येता
हिन्दी विभाग महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी लखनऊ

शोध संक्षेप-विवेकी राय जी ने अपनी ग्रामीण जीवन के प्रति जो मनोदशा व्यक्त की है उसे पढ़कर ऐसा मालूम होता है कि उनका जीवन दर्शन ग्रामीण परिपेक्ष में अधिक रमा है इस कारण से कहा जा सकता है कि गाँव के विषय में जो बात कही जाती है कि भारत गाँव में बसता है यह बात सौ फीसदी सच है किंतु बड़े पदों पर आसीन होने वाले अधिकारियों नेताओं ने गाँव के हृदय मानस कि हमेशा चिंता नहीं की और गाँव आज बिछड़ते और पिछड़ते चले गए जिस प्रकार विवेकी राय जी बताते हैं कि मैं शहरी बनना चाहता था किंतु मेरी दृष्टि गाँव में अधिक रमी और मैं शहर में भी आकर के शहरी नहीं बन पाया क्योंकि वह एक सच्चे कृषक का जीवन भोग चुके थे इसी कारण वे शहर की विभिन्न प्रकार की जालसाजी का जीवन को नहीं भोगना चाहते थे इसी प्रकार शहर में एक दूसरे के नजदीक होते हुए भी लोग आपस में आदर सत्कार नहीं करना चाहते जिस प्रकार गाँव में आते जाते लोग एक दूसरे को स्वत ही राम-राम कर लेते हैं और हृदय के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे से लगातार साक्षात्कार करते रहते हैं क्योंकि किसान में कृषक अकेला ही कार्य नहीं करता पूरा परिवार के साथ कार्य करता है इसी प्रकार आस-पड़ोस के सभी कृषक मिलजुल कर एक दूसरे के लिए सुख दुख के साथी होते हैं इसी कारण से यह जो मनोदशा विवेकी राय की हुई यह एक सच्चे ग्रामीण जीवन की है और इसमें कहा जा सकता है आज की आधुनिकता वादी सोच जो शहरों में हावी है जो लोग गाँव को छोड़कर आए हैं अक्सर कहते हुए सुने जाते हैं कि देसी खाना और देसी नहाना यह गाँव की बात है क्योंकि गाँव में हर प्रकार के फल फूल सब्जी सब पहुंच में होता है अधिकार में होता है क्योंकि अपनी मिट्टी से जुड़े हुए किसान मनमाफिक चीजों को उगा सकता है और शहर में आदमी इनका मजा लेने के लिए कृषकों पर आश्रित होता है यह कृषक श्रम होता है जिन्हें शहरी लोग भागते हैं।

मुख्य शब्द- ग्रामीण जीवन ईष्या,डाह और पाखण्ड, भावविभोर,यथार्थ का चित्रण

1.1 प्रस्तावना-ग्रामीण जीवन के प्रति गहरी रागात्मकता उनके लेखन की अपनी एक खास पहचान है। गंवई जीवन के प्रति ऐसा जुड़ाव हिन्दी के किसी भी निबन्धकार में सर्वथा दुर्लभ रहा है। रेणु के उपन्यासों ने उपन्यास विधा को नई पहचान और एक नया विशेषण 'आंचलिक उपन्यास' दिया, उसी तरह विवेकी राय के निबन्ध भी निबन्ध विधा के भीतर खुद को आंचलिक निबन्ध के रूप मे अलग पहचन दे पाते, यदि आचर्य द्विवेदि और उनके पर्वर्ती निबन्धकारों ने 'ललित निबन्ध' पद को स्वीकार कर सारे व्यक्ति-व्यंजक निबन्धों को इसकी परिभाषा में समहित न कर लिया होता। 'नवनिकष'के विवेकी राय विशेषांक में प्रकाशित अपने आत्मकथ्य में उन्होंने कहा है-"मेरे लेखन की पष्ठभूमि ग्राम-जीवन है। वास्तव में वही मेरा जीवन भी है। लगभग आधी उमर धुर देहत के एक गाँव मे गुजारने के बाद एक अत्यन्त पिछडे और छोटे शहर में आया भी तो शहरी नहीं बन पाया। एक पैर गाजीपुर में रहता है तो एक पैर गाँव सोनवानी में रहता है। भारत सरकार की कृपा से गाँव वाले पैर को आराम बहुत है क्योंकि गाजीपुर से गाँव पर जाने के लिए छोटी लाइन के पांचवे स्टेशन ताजपुर-डेहमा पर उतरने के बाद जाडे-गरमी के दिनों में डेढ घंटा पदयात्रा करना अनिवार्य होता है। बाढ-बरसात के दिनो में यह समय दुगुना से ले कर चैगुना तक हो जाता है। सडक एक दु:स्वप्न है। भारत के लाखों गाँवों की भांति अभी मेरा गाँव भी बिजली और सडक से वंचित है।"यही कारण है कि उनके यहां ग्रामीण जीवन के प्रति गहरी लोक-संसक्ति है। उन्होंने अपने समूचे लेखन में गाँव को बेहद संजीदगी से जिया है। प्रेमचन्द के 'लमही' और विवेकी राय के 'सोनवानी' में फर्क है। लमही बनारस से बहुत नजदीक है और इसलिए शहर से गाँव का लगभग सीधा सम्वाद भी है, गाँव और शहर के बीच सम्वाद की यह झलक प्रेमचन्द के लेखन में बार-बार दिखाई भी देती है। 'गोदान' में भी ग्रामीण और शहरी परिवेश की एक साथ उपस्थिति है। होरी, धनिया, गोबर, मतादीन, सिलिया आदि ग्रामीण पत्रों के साथ

ही रायसाहब, मेहता, मालती, खान्ना जैसे नगरीय जीवन के अभ्यस्त पात्र भी हैं। लेकिन, विवेकी राय ने जिस गाँव की बात की है वह इससे अलग है। यदि सीधे-सीधे कहने की सुविधा हो तो यही कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के यहां ग्रामीण जीवन का चित्रण है और विवेकी राय के यहां गंवई जीवन और परिवेश की आत्मीय उपस्थिति। गंवई जीवन के प्रति उनके जैसी आत्मियता और उसमें घटित होने वाले बदलावों का वैसा सूक्ष्म रेखांकन केवल फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यसों में ही देखा जा सकता है।

विवेकी राय पूर्वाञ्चल के जातीय कथाकार हैं। शिवप्रसाद सिंह के बाद पूर्वी उत्तर प्रदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक अवस्थिति को इतने व्यापक ढंग से कथा-साहित्य में उन्होंने ही प्रस्तुत किया।इस अंचल की आबोहवा का निर्माण प्रायः किसान जातियों के द्वारा हुआ है।इसमें दया, करुणा, सहानुभूति और सरलता है, तो ईष्या-डाह और पाखण्ड भी है।विवेकी राय का कथाकार इसी में निर्मित हुआ है।वे इसमें से कुछ चुनते या छांटते-बराते नहीं हैं, बल्कि उसे पूरा का पूरा प्रस्तुत कर देते हैं।जो कहीं कहानी-उपन्यास तो कहीं निबन्ध का रूप धर लेता है।विवेकी राय का लेखन आजादी के बाद शुरू होता है।1952 के आस-पास का यह समय है।नई कहानी के प्रायः कहानीकार इसी समय के इर्द-गिर्द लिखना प्रारम्भ करते हैं।नये आजाद हुए देश की रूमानियत और हहाती वास्तविकताएं एक साथ प्रकट होती हैं।एक राष्ट्र बनना शुरू होता है।इसमें कई परम्पराएं, रूढ़ियां, दुर्बलताएं मौजूद हैं।मूल्य और नैतिकता के स्तर पर इस बनते राष्ट्र में पिछड़ापन अधिक है।वह प्रायः वर्णवादी है।आधुनिक मूल्य-बोध से इसकी गहरी टकराहट है।द्वन्द्व, अंतर्विरोध, विसंगतियां इसी टकराहट में जन्म लेती हैं।इस दौर के अन्य कहानीकारों की भांति विवेकी राय भी इससे गुजरते हैं, दर्ज करते हैं। वे उतने व्यवस्थित भले न हों, जितने कि पूर्वाञ्चल के उनके समकालीन अमरकान्त, मार्कण्डेय और शिव प्रसाद सिंह थे।विवेकी राय अंत तक इनके जैसी कथा-भाषा भी प्राप्त नहीं कर पाये, लेकिन पूर्वाञ्चल के जीवन-जगत का व्यापक फलक वे कहीं अधिक छूते हैं।

1.1.1 ग्रामीण जीवन की अवधारणा -आंचलिकता शब्द अंग्रेजी के 'रिजन' शब्द के पर्याय रूप में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी में 'रिजनल नावेल' की सुस्थिर परम्परा रही है। अंचल शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखंड, प्रांत या क्षेत्र विशेष है, जिसकी अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, लोकजीवन, भाषा व समस्याएं हों। एक आंचलिक लेखक एक विशेष क्षेत्र पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है और इस क्षेत्र और वहां के निवासियों को अपनी कथा का आधार बनाता है। आज हम जिस उपन्यास का परिचय देने जा रहे हैं उसके लेखक श्री विवेकी राय जी का कहना है, "'सोनामाटी' की पृष्ठभूमि में पूर्वी उत्तर प्रदेश के दो जिलों, गाजीपुर और बलिया, का मध्यवर्ती एक विशिष्ठ अंचल है करइल। इस अंचल का भूगोल तो सत्य है परन्तु इतिहास अर्थात्प्रस्तुत कहानी में प्रयुक्त करइल क्षेत्र के उन गाँवों और पात्रों आदि के माध्यम से समकालीन जीवन-संघर्ष को चित्रांकित किया गया है। यह संघर्ष किस सीमा तक एक अंचल का है और कहां तक वह व्यापक राष्ट्रीय जीवन यथार्थ से जुड़ा है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकता है।"

1.2 ग्रामीण जीवन की सामाजिक समस्याएँ-

विवेकी राय जी ने अपनी ग्रामीण जीवन के प्रति जो मनोदशा व्यक्त की है उसे पढ़कर ऐसा मालूम होता है कि उनका जीवन दर्शन ग्रामीण परिपेक्ष में अधिक रमा है इस कारण से कहा जा सकता है कि गाँव के विषय में जो बात कही जाती है कि भारत गाँव में बसता है यह बात सौ फीसदी सच है किंतु बड़े पदों पर आसीन होने वाले अधिकारियों नेताओं ने गाँव के हृदय मानस कि हमेशा चिंता नहीं की और गाँव आज बिछड़ते और पिछड़ते चले गए जिस प्रकार विवेकी राय जी बताते हैं कि मैं शहरी बनना चाहता था किंतु मेरी दृष्टि गाँव में अधिक रमी और मैं शहर में भी आकर के शहरी नहीं बन पाया क्योंकि वह एक सच्चे कृषक का जीवन भोग चुके थे इसी कारण वे शहर की विभिन्न प्रकार की जालसाजी का जीवन को नहीं भोगना चाहते थे इसी प्रकार शहर में एक दूसरे के नजदीक होते हुए भी लोग आपस में आदर सत्कार नहीं करना चाहते जिस प्रकार गाँव में आते जाते लोग एक दूसरे को स्वत ही राम-राम कर लेते हैं और हृदय के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे से लगातार साक्षात्कार करते रहते हैं क्योंकि किसान में कृषक अकेला ही कार्य नहीं करता पूरा परिवार के साथ कार्य करता है इसी प्रकार आस-पड़ोस के सभी कृषक मिलजुल कर एक दूसरे के लिए सुख दुख के साथी होते हैं इसी कारण से यह जो मनोदशा विवेकी राय की हुई यह एक सच्चे ग्रामीण जीवन की है और इसमें कहा जा सकता है आज की आधुनिकता वादी सोच जो शहरों में हावी है जो लोग गाँव को छोड़कर आए हैं अक्सर कहते हुए सुने जाते हैं कि देसी खाना और देसी नहाना यह गाँव की बात है क्योंकि गाँव में हर प्रकार के फल फूल सब्जी सब पहुंच में होता है अधिकार में होता है क्योंकि अपनी मिट्टी से जुड़े हुए किसान मनमाफिक चीजों को उगा सकता है और शहर में आदमी इनका मजा लेने के लिए कृषकों पर आश्रित होता है यह कृषक श्रम होता है जिन्हें शहरी लोग भागते हैं।

1.3 ग्रामीण जीवन की राजनीतिक समस्याएँ:-

निबन्ध विधा के भीतर भी उनकी पहचान का एक मजबूत आधार ग्रमीण जीवन के प्रति गहरा लगाव है। 'उठ जाग मुसाफिर' संग्रह के दो निबन्ध 'चिन्ता भारत के उजडते गावों की' और 'गाँव पर बनाम गाँव में' तो शीर्षक से ही ग्रामीण परिवेश से जुडाव व्यक्त करते हैं। 'तिनडंडिया चोट से उभरा समय और सवाल' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने लिखा है,- "सायंकाल किसी के खेत में 'कोठा' छूट जाने का अनुमान होता, अर्थात लगता कि खेत का कुछ भाग छूट जाएगा, तो कुछ समय पहले काम समाप्त हुए किसी भाई का सहयोग मिल जाता-बिना मांगे भी। एक दिन मुझे भी अकस्मात ऐसा ही सहयोग मिल गया और सूर्यास्त होते-होते 'मेरा कोठा मार दिया गया'। यह प्रेम,भाईचारा,सहयोग और सहकार का अमृत है, जिसे पीकर अकाल पीडित गरीब गाँव जीवित है। साठ-सत्तर साल पूर्व का था यह जीता जागता परिदृश्य। स्वराज्य, विकास, नई खेती, नए ढांचे, नई-नई साधन-सम्पन्नता, सुविधा, नए तन्त्र-यन्त्र और मनी-मन्त्र में फंस किसान निरानन्द और गाँव उदास क्यों हो गए ? यह तुम्हरी कैसी सुराजी विकास की नई यान्त्रिक-व्यापरिक खेती है, जिसने ग्राम-देवता को मार डाला और गाँव भलमानुस-विहीन हो गया? (८५-८६)। यहां स्वराज, पंचायती राज और समन्वित-विकास की सरकारी होर्डिंगों पोस्टरों और बैनरों से इतर, सरकारी स्लोगनों के ठीक उलट, आज के गाँव की वास्तविक तस्वीर है जो पुरानी पिढी की स्मृतियों के गाँव के रूप में आज के गाँव के सामने डट कर खडी है। लेखक स्मृतियों के उस गाँव को अपने लेखन में फिर से जी रहा है।

1.4 ग्रामीण जीवन की आर्थिक समस्याएँ:-

विवेकी राय का मन गाँव-घर और सिवान-मथार में खूब रमा है। अर्ध-नगरीय कस्बाई जीवन से आ जुडने के बावजूद, वह अब भी उनकी सैर करने निकल जाता है। निबन्ध उनकी इसी मनोयात्रा के सहचर हैं। गाँवों के प्रति गहरा आकर्षण बल्कि, मोह की स्थिति के कारण प्रायः यह महसूस होता है कि उनके यहां एक ही विषय का अतिशय दोहराव है और वे इससे बाहर नहीं निकल पाए हैं। लेकिन यह एक सतही अनुभव है। उनके निबन्धों में आहिस्ते-आहिस्ते उतरा जाय तो ऊपर से बहुत सरल और सीधे लगने वाले या रोचक लालित्यपूर्ण निबन्ध भी बहुत गहरी अर्थ-व्यंजकता, उदात्त जीवन-दर्शन और सामजिक-बोध से सम्पन्न हैं। गाँव उनके लिए शहस्र-शीर्षा, शहस्र-पाद भारत की एक लघु इकाई हैं। कहा जाता है, एक चावल देख कर तसले के भात के पकने का अंदाजा लग जाता है, गाँव तसले के उसी चावल की तरह हैं जिनसे भारत में हो रहे बदलावों की नब्ज टटोली जा सकती है। विवेकी राय गाँवों के बहाने पूरे भारत की बात करते हैं। भूख, बेरोजगारी, बेकारी, शोषण और भ्रष्टाचार जैसी तमाम समस्याएं, उनके यहां इसी माध्यम से व्यक्त हुई हैं। 'फिर बैतलवा डाल पर' संकलन के 'सोने की लूट' निबन्ध में गाँव के देशहरे के बहाने उन्होंने सामजिक-यथार्थ के अनेक धूप-छाहीं रंगों को मिलाकर ललित निबन्ध के फलक पर भारतीय जीवन का एक वास्तविक चित्र अंकित किया है "अब मेरे सामने यह मुट्ठीभर मिट्टी है।यह मिट्टी नहीं लंका का सोना है। सकल विश्व-सम्पदा की राशि को चाकर रखने वाला रावण जल गया। उसकी सोने की लंका में 'रहा न कुल कोऊ रोवनिहारा'। रामराज्य का श्रीगणेश हो गया। काश कि वह दिन दूर न होता जब विश्वमंच पर शोषण,बर्बरता,अन्याय। धर्मान्धता और पैशाचिकता के दशानन का बध होता"।

1.5 ग्रामीण जीवन की धार्मिक समस्याएँ:-

अंचल विशेष को आधार बनाकर रची जाने वाली औपन्यासिक कृति सहज ही आंचलिक उपन्यास मान ली जाती है। विवेकी राय की कहानियों में उत्तरप्रदेश के गाँवों का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। उन्हें ग्रामीण जीवन का कुशल चितेरा कहा जाता है। वे गावों से हमेशा जुड़े रहे। गाजीपुर और उसके आसपास के गावों का उन्हें विशद अनुभव है। प्रस्तुत उपन्यास "सोनामाटी" भी गाँवों से जुड़ा है। इसमें

विस्तृत ग्रामांचल की कहानी है जो गाजीपुर और बलिया के बीच फैला है। आज के टूटते-बिखरते गाँव का सम्पूर्ण सत्य उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गाँवों में व्याप्त मूल्यहीनता की बात इसमें बहुत ही मार्मिक ढंग से कही गई है। पैसे की संस्कृति से गाँव भी अछूता नहीं है। रामरूप उपन्यास का मुख्य पात्र है। वह जीवन-मूल्यों में विश्वास रखता है। लेकिन वह आज के परिवेश में अपने को मजबूर और कमजोर पा रहा है। उसका ससुर हनुमान प्रसाद रावण की भूमिका निभाता है।

असहाय स्त्री की दयनीय स्थिति व पूरी त्रासदी को बयान करता है यह वक्तव्य। इस उपन्यास में कोइली का अंकन बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। वह एक बूढ़े के साथ जुड़ती है, स्वाभिमान की रक्षा के लिए और सारी लालसायें मसलकर रख देती है। उसके अंकन में अत्यन्त आधुनिक संवेदना का स्पर्श मिलता है। सर्वहारा की पहचान तो उसकी पीड़ा है। लेकिन इसमें भी एक बात निश्चित है कि इस वर्ग की स्त्री सबसे पीड़ित होती है। वह समाज की वासना का शिकार भी होती है। हर किसी के द्वारा शोषित और त्रस्त जीवन उसका नसीब हुआ करता है। एक पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री के बारे में कितना नृशंस और अत्याचारी हो सकता है, इसका प्रमाण विवेकी राय जी के इस उपन्यास में मिलता है।

विवेकी राय जी ने इस उपन्यास के माध्यम से यह दर्शाया है कि आजादी के बाद की राजनीति का बिल्कुल ही विघटित रूप गाँवों तक पहुंच गया है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के आपसी सम्बन्ध के निर्धारण में राजनीति की सक्रिय भूमिका है। आज राजनीति समाज के सामूहिक हित के अपने लक्ष्य से हटती जा रही है। अब उसने स्वार्थी, असत्य, अनैतिक विघटित तत्वों से खुद को जोड़ लिया है। इस तरह वह गिरोह में बदल गई है। गाँवों में आजादी के बाद का यही विघटित रूप वहां के समाज पर हावी हो रहा है। आंचलिकता जिस ऐतिहासिक चेतना से प्रतिफलित होती है उसमें राजनीति की भूमिका रचनात्मक है। किन्तु "सोनामाटी" में हम जिस राजनीतिक यथार्थ से रू-ब-रू होते हैं, वह आज की राजनीति के अमानवीय हो जाने की गवाही देता है।

लेखक विवेकी राय का गाँव की जनता, विशेषकर किसान जनता के दुख-सुख से गहरा सरोकार है। उनके इस गहरे सरोकार के कारण ही "सोनामाटी" की रचना हुई है। गाँव की जनता संघर्षशील है। उपन्यास में लेखक का सर्वाधिक ध्यान अंचल विशेष की जन-चेतना को चित्रित करने पर केन्द्रित है। उन्होंने जन-सामान्य के प्रति हार्दिक संवेदना महसूस करते हुए चित्रित किया है। साथ ही साथ करइल अंचल की लोक संस्कृति भी सहज रूप से अंकित होती चलती है। समय और समाज ने एक मास्टर को अकेले जूझते और समझौता करते छोड़ दिया है। यही गाँव के बुद्धिजीवी की नियति है। गाँव के रावण का अंकन बहुत ही सशक्त है। लगता है, राम कहीं हिरा गये 'राम का हिरा जाना' मतलब आज रामराज कहीं खो गया है।

1.6 निष्कर्ष:-

डॉ. विवेकी राय जी- इन कथा -आन्दोलनों से मैं जान बूझकर ही नहीं जुड़ा क्योंकि मैं उस आन्दोलनी के खोखलेपन को बहुत निकट से देख रहा था। वे आन्दोलन ऐसे थे जैसे उस दौर की राजनीतिक नारेबाजियाँ। मैं स्पष्ट देख रहा था कि एक ही व्यक्ति कई-कई कथा आन्दोलनों में शामिल रहता था। मैं यह भी स्पष्ट रूप से देख रहा था कि हिन्दी कहानी इन आन्दोलनों के सहारे नहीं बल्कि अपनी शक्ति से आगे बढ़ रही है। ये आंदोलन वाले कहानी के मूल धर्मों को अपने ऊपर नहीं बल्कि अपनी नवीनताओं तथा अपनी नयी मुद्राओं को कहानियों के ऊपर आरोपित कर अपने प्रचार का झण्डा बुलंद करते रहे। वास्तव में यह सब एक प्रकार से आत्मप्रचार का साधना मात्र था, जिससे मुझे कुछ भी लेना-देना नहीं था। हाँ ! इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि इन आंदोलनों से कहानी साहित्य में कोई क्षति नहीं हुई बल्कि गहमा-गहमी के इस वातावरण से कथा-साहित्य के विकास में कुछ लाभ ही हुआ।

विवेकी राय के अभिव्यक्ति के मुख्य विषय भाषा, संस्कृति, गाँव और राष्ट्र हैं। उन्होंने भाषा की वर्तमान स्थिति पर कई निबंध और कहानियों में चर्चा की है और सरकार की भाषा संबंधी गलत नीतियों की आलोचना भी की है। विवेकी राय भोजपुरी-प्रेमी और हिंदी-सेवी रहे हैं। भोजपुरी के शब्द, कहावतें और मुहावरें हिंदी साहित्य के सौंदर्य में और भी अधिक निखार एवं सरसता लाते हैं। संस्कृति के अधःपतन पर भी उनका मौलिक चिंतन हैं। परिवर्तित गाँव और आधुनिकता के कारण भारतीय संस्कृति अपना अस्तित्व खोती जा रही है। यह गाँव के लिए ही नहीं, देश के लिए भी खतरा है। 'सोना माटी' में इस पर विस्तृत चर्चा की है। इसके साथ ही 'समर शेष है' 'लोकऋण', 'बबूल', 'श्वेत-पत्र' और 'मंगलभवन' में लोकगीत, लोककथाएं, लोकप्रथाएं, रस्म-रिवाज, राष्ट्रगीत आदि प्रचूर मात्रा में है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अंतिम दशक के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण- डा. मोहम्मद जमील अहमद- अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण- 2006.
2. अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समान शास्त्रीय अध्ययन-डा. गोरखनाथ तिवारी- अन्नपूर्ण प्रकाशन- प्रथम संस्करण- 2008.
3. अक्षर बीज की हरियाली में- डा. वेदप्रकाश अमिताभ- विश्वविद्यालय प्रकाशन, चैक वाराणसी- प्रथम संस्करण- 2002.
4. आंचलिक उपन्यास एकता की खोज- डा. आण्टणी पि.एम. जवाहर पुस्तकालय, मधुरा-प्रथम संस्करण- 1993.
5. आंचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन-डा. उत्तम भाई पट्टेल- क्वालिटी बुक्स एण्ड पब्लिशर्स, कानपुर- प्रथम संस्करण- 1988.
6. आंचलिक उपन्यास और उनके शिल्पविधि- डा. आदर्श सक्सेना सूर्यमंदिर प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान- प्रथम संस्करण- 1971.
7. आंचलिक उपन्यास और रेणु- डा. सत्यनारायण उपाध्याय- संजय प्रकाशन, बुलानाला, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1980.
8. आंचलिकता और आधुनिकता बोध-डा. भगवती प्रकाश शुल्क ग्रन्थ प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण 1972.
9. आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास-डा. नगीना जैन- अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड- प्रथम संस्करण- 1976.
10. आंचलिकता की कला और कथा साहित्य-डा. राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा- प्राची प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1981.
11. आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प-डा. ज्ञानचंद गुप्त अभिनव प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1975.
12. आज का हिन्दी उपन्यास-डा. इन्द्रनाथ मदान- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1966.
13. आज का हिन्दी उपन्यास: संवेदना और दृष्टि-डा. रामदरश मिश्र- अभिनव प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1975.
14. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता बोध-डा. शोभा देश पाण्डे- चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर- प्रथम संस्करण- 2008.
15. आधुनिक परिदृश्य: आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास-विद्या सिन्हा- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण- 2001

किशोर छात्रों के विघटनकारी व्यवहार पर रचनात्मक प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. सीता देवी
शोध निर्देशक
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ उत्तर प्रदेश

अनुग्रह नारायण सिंह
शोध छात्र
शिक्षा विभाग
महर्षि युनिवर्सिटी ऑफ़ इनफर्मेशन टेक्नोलोजी लखनऊ उत्तर प्रदेश

शोध सार- इक्कीसवीं सदी में कार्यबल के लिए रचनात्मकता सबसे अनिवार्य कौशल है। विविध जानकारी और तीव्र प्रतिस्पर्धा के वर्तमान परिदृश्य में वर्तमान शिक्षा के केंद्रीय लक्ष्यों में से एक छात्रों की ऊर्जा और उनकी रचनात्मकता का अनावरण करना है। एड्वड्स (2003) ने तर्क दिया कि सीखने और रचनात्मकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, और दोनों ही शिक्षा में मूलभूत चिंताओं का प्रतीक हैं। बड़े परिप्रेक्ष्य में और आम आदमी की भाषा में, रचनात्मकता सफल शिक्षण और सीखने का मूल तत्व और स्थिति है। लुबार्ट (2008) ने तर्क दिया कि रचनात्मक सोच छात्रों की सीखने की प्रक्रिया को ज्ञान निर्माण के एक उपकरण के रूप में प्रोत्साहित कर सकती है.

शब्द कुंजी:- प्रतिस्पर्धा, परिदृश्य, रचनात्मकता, प्रोत्साहित.

प्रस्तावना:-इसके अलावा, शैक्षिक कार्यों और स्कूल के माहौल के माध्यम से रचनात्मकता को बढ़ाया जा सकता है। हालाँकि, एक प्रश्न अभी भी उठता है कि कक्षा में औपचारिक शिक्षण और सीखने की सेटिंग के माध्यम से छात्रों की रचनात्मकता को कैसे बढ़ाया जाए। इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रयास में, वू (2002) ने कक्षा में प्रेरक वातावरण के मूल्यांकन के महत्व पर बल दिया और सीखने की स्थितियों की पहचान करने की आवश्यकता की वकालत की, जो प्रेरक दृष्टिकोण से छात्रों की रचनात्मकता को बढ़ावा देने में फायदेमंद हैं। पिछले छह दशकों में शैक्षिक अनुसंधान ने रचनात्मकता के स्रोत में दैवीय से मानव की मानसिक कार्यप्रणाली में बदलाव देखा है। मनुष्य में निहित सभी अद्वितीय शक्तियों में से रचनात्मकता सबसे अनोखी है। प्रत्येक व्यक्ति के पास श्प्रतिभा की चिंगारीश् या रचनात्मकता की कम इस्तेमाल की जाने वाली शक्तियाँ हैं, जो मुक्त होने की प्रतीक्षा कर रही हैं। यहां तक कि एक आश्चर्यजनक गति से काम करने वाला कंप्यूटर भी रचनात्मकता से मेल नहीं खा सकता है क्योंकि इसमें बार-बार यांत्रिक या कम्प्यूटेशनल कार्य करने की सीमा होती है और यह मूल विचारों का उत्पादन नहीं कर सकता है। शोधकर्ता अनिश्चित है, क्या कोई एक परिभाषा श्रचनात्मकता शब्द को परिभाषित करने के लिए समापन और संतोषजनक हो सकती है। हालांकि, शोधकर्ता अपने कार्यों और उपलब्धियों के माध्यम से लोगों और संस्थानों में रचनात्मकता के कई निर्विवाद अभिव्यक्तियों से परिचित हैं जो मानव कल्याण और जीवन की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। रचनात्मकता के घटकों और रचनात्मक लोगों की क्षमताओं को मानव व्यवहार के आमतौर पर स्वीकार्य पैटर्न में पहचाना जा सकता है। आमतौर पर यह माना जाता है कि रचनात्मक लोग आविष्कारशील और मौलिक होते हैं। यह समझा जाता है कि सृजन का समय एक कोमल समय होता है जब एक आदमी अपने साथी पुरुषों से पीछे हटने के लिए तरसता है और पहाड़, रेगिस्तान, या दूर अपनी गोपनीयता के स्रोत और मौन की ओर बढ़ता है। खलील जिब्रान ने ठीक ही कहा है, ष्जीवन ने ही मौन और धुंध की रचना की थी। कौन जानता है कि क्रिस्टल स्वयं धुंध का विकृत रूप हो सकता है।

साहित्य की समीक्षा:-एंटोनियो ग्रेनेरो-गैलेगोस (2020) इस काम के उद्देश्य दो गुना थेरू सबसे पहले, क्लस्टर विश्लेषण का उपयोग करते हुए माध्यमिक विद्यालय के शारीरिक शिक्षा के छात्रों में विघटनकारी व्यवहार और प्रेरणा के प्रोफाइल की पहचान करना; और दूसरा, स्कूल की संतुष्टि और कथित शिक्षण क्षमता के साथ प्रोफाइल की बातचीत का विश्लेषण करने के लिए। 13 और 18 वर्ष (एम = 15.22, डीटी = 1.27) के बीच 758 माध्यमिक विद्यालय के छात्रों (54.2 महिला) के एक समूह ने निम्नलिखित पैमानों का जवाब देकर अध्ययन में भाग लियारू शारीरिक शिक्षा प्रश्नावली में विघटनकारी व्यवहार, स्कूल की संतुष्टि स्केल, द स्पोर्ट मोटिवेशन स्केल शारीरिक शिक्षा के लिए अनुकूलित, और शारीरिक शिक्षा में शिक्षण दक्षताओं का मूल्यांकन स्केल। क्लस्टर विश्लेषण ने दो अलग-अलग प्रोफाइल स्थापित किएरू उच्च स्तर के विघटनकारी व्यवहार और निम्न स्तर के विघटनकारी व्यवहार। परिणामों से पता चला कि उच्च विघटनकारी व्यवहार प्रोफ़ाइल वाले छात्र ज्यादातर लड़के थे, कक्षा में आंतरिक प्रेरणा के निम्न स्तर और उच्च स्तर के उत्साह और दुर्व्यवहार वाले थे। इसके विपरीत, कम विघटनकारी व्यवहार प्रोफ़ाइल वाले वे छात्र ज्यादातर लड़कियां थीं, जिनमें आंतरिक प्रेरणा के उच्चतम स्तर और सभी विघटनकारी व्यवहारों में निम्नतम स्तर थे। यह दिखाया गया था कि खराब कक्षा व्यवहार प्रदर्शित करने वाले छात्र स्कूल में अधिक ऊब गए थे, जबकि बेहतर व्यवहार वाले छात्रों ने अधिक शिक्षण क्षमता का अनुभव किया था।

मरज़ीह अरबन (2020) विघटनकारी व्यवहार के युवाओं के लिए आजीवन परिणाम हो सकते हैं। विघटनकारी व्यवहार की रोकथाम, शीघ्र पहचान और उपचार से इन युवाओं के परिणामों में सुधार हो सकता है। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य ईरानी युवाओं के एक नमूने के बीच विघटनकारी व्यवहार की व्यापकता और अन्य मनोवैज्ञानिक घटनाओं के लिए विघटनकारी व्यवहार के संबंध का आकलन करना था जिसे रोकथाम, प्रारंभिक पहचान और उपचार के लिए लक्षित किया जा सकता है। इस नमूने में 2015 में ईरान के सवेह शहर में बहु-स्तरीय यादृच्छिक नमूने के माध्यम से चुने गए 600 हाई स्कूल के छात्र (300 लड़के और 300 लड़कियां; 15 से 18 साल की उम्र) शामिल थे। समर्थन, अवसाद, तनाव, धूम्रपान और आशावाद। विघटनकारी व्यवहार पैमाने का भी उपयोग किया गया था। विघटनकारी व्यवहार और अन्य निर्माणों के बीच संबंधों की जांच करने के लिए कई लॉजिस्टिक रिग्रेशन द्वारा यूनीवेरिएट विश्लेषण का पालन किया गया। विघटनकारी व्यवहार जीवन संतुष्टि, धूम्रपान, लड़का होने, सामाजिक समर्थन, आशावाद, तनाव और अवसाद से जुड़ा था। उदाहरण के लिए, विघटनकारी व्यवहार की रोकथाम और उपचार के लिए आशावाद, संतुष्टि और समर्थन बढ़ाने और तनाव, अवसाद और धूम्रपान को कम करने के लिए स्वास्थ्य संवर्धन कार्यक्रम महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

शोध कार्य के उद्देश्य :-

- किशोर छात्रों की रचनात्मकता और कथित कक्षा लक्ष्य संरचना के बीच संबंध का पता लगाना।
- किशोर छात्रों के रचनात्मकता और विघटनकारी व्यवहार और अंग्रेजी में आत्म-प्रभावकारिता और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच संबंध का पता लगाना।
- किशोर छात्रों के विघटनकारी व्यवहार और छात्रों के लक्ष्य अभिविन्यास के बीच संबंध का पता लगाना।
- किशोर छात्रों के विघटनकारी व्यवहार और छात्रों के कथित कक्षा लक्ष्य संरचना के बीच संबंध का पता लगाना।
- अंग्रेजी में किशोर छात्रों की आत्म-प्रभावकारिता और छात्रों के लक्ष्य अभिविन्यास के बीच संबंध का पता लगाना।
- किशोर छात्रों के लक्ष्य अभिविन्यास और छात्रों की कथित कक्षा लक्ष्य संरचना के बीच संबंध का पता लगाना।
- किशोर छात्रों के रचनात्मकता, विघटनकारी व्यवहार, अंग्रेजी में छात्रों की आत्म-प्रभावकारिता, छात्रों के लक्ष्य अभिविन्यास, और कथित कक्षा लक्ष्य संरचना पर निजी और सरकारी स्कूलों के छात्रों की तुलना करना।

अनुसंधान क्रियाविधि

अनुसन्धान रेखा-चित्र:-अध्ययन को सहसंबंधी होने के लिए डिज़ाइन किया गया है यह एक संबंध चर है । सहसम्बन्धी पद्धति का एक लाभ शिक्षा और अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंधित समस्याओं के अध्ययन में इसकी उपयोगिता है। सहसंबंधी अनुसंधान शोधकर्ता को बड़ी संख्या में

चरों के बीच संबंधों की जांच करने की अनुमति देता है। इसके अलावा, सहसंबंध विधि उस डिग्री के बारे में जानकारी प्रदान करती है जिससे कुछ चर संबंधित हैं।

नमूना:- अध्ययन के नमूने में नौवीं और दसवीं कक्षा के छात्रों के 430 छात्र शामिल होंगे)। 430 छात्रों में से 287 पुरुष होंगे और 143 महिलाएं होंगी और 253 छात्र ग्रामीण क्षेत्रों के होंगे और 177 छात्र शहरी क्षेत्रों के होंगे। शोधकर्ता द्वारा रोहतक, सोनीपत, रेवाड़ी और झज्जर जिलों के 10 स्कूलों को चुना जायेगा। प्रत्येक स्कूल से अन्वेषक ने 30 से 40 छात्रों को यादृच्छिक रूप से चुना और कुल 430 छात्रों का नमूना बनाया।

उपकरणों का इस्तेमाल:-डेटा के संग्रह के लिए निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया जाएगा बकर मेहदी (1985) द्वारा रचनात्मकता सूची। कापलान, ए., घीन, एम. और मिडग्ले, सी. (2002) और सहरावत (2003) द्वारा हिंदी अनुकूलन द्वारा छात्रों का लक्ष्य अभिविन्यास प्रश्नावली।कपलान, ए., घीन, एम. और मिडग्ले, सी. (2002) द्वारा कक्षा लक्ष्य संरचना प्रश्नावली और सहरावत द्वारा हिंदी रूपांतरण (2003)

प्रश्नावली का विवरण:-परिणाम परीक्षण- परिणाम परीक्षण में तीन काल्पनिक स्थितियां होंगी यदि मनुष्य पक्षियों की तरह उड़ सकता है तो क्या होगा? अगर हमारे स्कूल पहिए होते तो क्या होता? और यदि मनुष्य को भोजन की कोई आवश्यकता न हो तो क्या होगा?

विषय को इन स्थितियों के अधिक से अधिक परिणामों के बारे में सोचने की आवश्यकता है, और उन्हें प्रदान की गई जगह में प्रत्येक स्थिति के तहत लिखें। काल्पनिक स्थितियाँ अनुभव के प्रभाव को कम करती हैं और विषय को असीमित भी प्रदान करती हैं। प्रतिक्रिया करने का अवसर। परीक्षण कल्पना और मौलिकता के मुक्त खेल को प्रोत्साहित करता है। परीक्षण की प्रकृति से विषयों को परिचित कराने के लिए परीक्षण पुस्तिका पर दिया गया एक उदाहरण। तीन समस्याओं के लिए अनुमत समय 4 मिनट प्रत्येक है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीक:- डेटा विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया जाएगा जिसमें माध्य, एस.डी, एस.ई.एम और श्टीश् अनुपात शामिल हैं, जो साधनों के बीच अंतर के महत्व का पता लगाने के लिए काम करेंगे। शैक्षिक उपलब्धि के साथ लक्ष्य संरचना और विघटनकारी व्यवहार के संबंध का पता लगाने के लिए अंतर सहसंबंधों की गणना की जाएगी।

निष्कर्ष :- रचनात्मकता के घटकों और रचनात्मक लोगों की क्षमताओं को मानव व्यवहार के आमतौर पर स्वीकार्य पैटर्न में पहचाना जा सकता है। आमतौर पर यह माना जाता है कि रचनात्मक लोग आविष्कारशील और मौलिक होते हैं। यह समझा जाता है कि सृजन का समय एक श्कोमल समयश् होता है जब एक आदमी अपने साथी पुरुषों से पीछे हटने के लिए तरसता है और पहाड़, रेगिस्तान, या दूर अपनी गोपनीयता के स्रोत और मौन की ओर बढ़ता है। खलील जिब्रान ने ठीक ही कहा है, ष्जीवन ने ही मौन और धुंध की रचना की थी। कौन जानता है कि क्रिस्टल स्वयं धुंध का विकृत रूप हो सकता है।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. किम, जुयोन और वैनटासेल-बास्का, जॉयस। (2010)। कम उपलब्धि वाले प्राथमिक और हाई स्कूल के छात्रों के बीच रचनात्मकता और व्यवहार संबंधी समस्याओं के बीच संबंध। क्रिएटिविटी रिसर्च जर्नल - क्रिएटिविटी 22. 185-193।
2. क्रॉपले, डेविड और क्रॉपली, आर्थर। (2013)। कक्षा में रचनात्मकता का काला पक्षरू कक्षा शिक्षण का विरोधाभास।
3. ग्रेनेरो-गैलेगोस, ए।, गोमेज़-लोपेज़, एम।, बेना-एक्सट्रीमेरा, ए।, और मार्टिनेज-मोलिना, एम। (2019)। माध्यमिक स्कूल शारीरिक शिक्षा में शिक्षक क्षमता और स्कूल संतुष्टि के साथ विघटनकारी व्यवहार और प्रेरणा प्रोफाइल के अंतःक्रियात्मक प्रभाव। पर्यावरण अनुसंधान और सार्वजनिक स्वास्थ्य के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 17(1), 114.
4. राचेल सी. एफ. सन, डेनियल टी. एल. शेक, ष्स्टूडेंट क्लासरूम मिसबिहेवियररू एन एक्सप्लोरेटरी स्टडी बेस्ड ऑन टीचर्स परसेप्शनष्, द साइंटिफिक वर्ल्ड जर्नल, वॉल्यूम। 2012, अनुच्छेद आईडी 208907, 8 पृष्ठ, 2012।
5. अरबन, एम।, मोंटेजेरी, ए।, स्टीन, एल.ए.आर. और अन्य। 2015 के दौरान ईरानी छात्रों के बीच विघटनकारी व्यवहार से जुड़ी व्यापकता और कारकरू एक पार-अनुभागीय अध्ययन। इटाल जे पेडियाट्र 46, 85 (2020)।

राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का अध्ययन

प्रो.महेन्द्र प्रसाद पाण्डेय
आचार्य एवं कुलपति
आईएफटीएम विश्वविद्यालय,मुरादाबाद
(उ.प्र.)

अजय कुमार
शोध छात्र
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद
(उ.प्र.)

सार:-शिक्षा मनुष्य जीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली है। जीवन के प्रत्येक अनुभव को शिक्षा कहा जा सकता है। वास्तव में समस्त मानव-जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। जो कुछ भी व्यवहार मनुष्य के ज्ञान की परिधि को विस्तृत करें, उसकी अन्तर्दृष्टि को गहरा करे, उसकी प्रतिक्रियाओं का परिष्कार करे, भावनाओं और क्रियाओं को उत्तेजित करे अथवा किसी न किसी रुप में उसको प्रभावित करे वह ही 'शिक्षा' है। मानव व्यक्तित्व के सन्तुलित एवं सम्पूर्ण विकास को शिक्षा का लक्ष्य माना गया है। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द: परिमाणात्मक, प्राथमिक शिक्षा, व्यक्तित्व, प्रसार

प्रस्तावना:-शिक्षा मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का सर्वांगीण, अर्थात शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का विकास है। शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है। मानव जीवन में जो कुछ भी अर्जित है वह शिक्षा का ही परिणाम है। व्यक्ति का चरित्र, व्यक्तित्व, संस्कृति, चिन्तन, सूझ-बूझ, कुशलतायें, आदतें तथा जीवन की छोटी से छोटी बातें शिक्षा पर निर्भर है। वास्तव में शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव शिशु सब प्रकार से विकसित होकर समाज में उपयुक्त स्थान ग्रहण करता है। शिक्षा के माध्यम से सहस्रों वर्षों से समाज द्वारा अर्जित अनुभव बालक को हस्तान्तरित कर दिये जाते हैं। शिक्षा के माध्यम से ही वह अपनी राष्ट्रीय थाती एवं संस्कृति को ग्रहण करता है। शिक्षा के द्वारा उसका शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। शिक्षा के द्वारा उसके चरित्र का निर्माण होता है उसका समाजीकरण होता है और वह मनुष्य की संज्ञा पाने योग्य बनता है। इस प्रकार शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक पीढी के साथ समाज की प्राचीन निधि का सरंक्षण, सवंर्धन एवं हस्तान्तरण होता रहता है। यदि शिक्षा न हो तो 'समाज' का जन्म ही नहीं हो। समाज-जीवन का प्रवाह शिक्षा के कारण ही गतिशील होकर विकास की ओर अग्रसर होता है। अतः शिक्षा की प्रक्रिया को मूलतः सामाजिक दृष्टिकोण से ही देखना आवश्यक है। भारतीय बाड्मय में यह ऋषि ऋण कहा गया है, जिससे उऋण होना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। जब हम भावी सन्तति की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं, उसके विकास का प्रयास करते हैं, तो हम उसके प्रति कोई उपकार नहीं करते, प्रत्युत हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है उसे अगली पीढी को सौंपकर उनके ऋण से उऋण होते हैं। एक विद्वान ने इसी भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है- ''हम भूत के ऋण से उऋण हो सकते हैं, यदि हम भविष्य को अपना ऋणी बना दें।'' उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ नहीं है कि औपचारिक शिक्षा के लिये शिक्षा संस्थाओं का आवश्यकता नहीं है। वास्तव में शिक्षा संस्थाओं की राष्ट्र जीवन के लिये एवं उसके विकास के लिये परम आवश्यकता है। जिस देश में शिक्षा की व्यवस्था जितनी व्यापक और गहरी होगी, राष्ट्र जीवन उतना ही अधिक पुष्ट और गम्भीर होगा। नयी पीढी के जितने अधिक लोगों को और जितनी अधिक मात्रा में पिछली ज्ञान निधि प्राप्त होगी, उसी पूंजी को लेकर वह जीवन के कार्य क्षेत्र में उतरेगी। इस पीढी से यह भी स्वाभाविक अपेक्षा है कि प्राप्त पूंजी में अपने प्रयत्न और अनुभव के आधार पर वृद्धि करे। इस प्रकार वह पूंजी बराबर बढती जायेगी। इसके लिये यह आवश्यक है कि इस आदान-प्रदान की प्रक्रिया में कम से कम छीजन हो। साथ ही उस ज्ञान और अनुभव के अनावश्यक अंगों का परित्याग और उपयोगी तत्व का संरक्षण बडे मनोयोग से करना होगा। उस ज्ञान परम्परा का विनिमय राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं देश काल, परिस्थिति के अनुसार करने की प्रविधि भी विकसित करनी होती है। इसके लिये अनुसंधान, चिन्तन एवं प्रयोग करने हेतु व्यक्तिगत एवं संस्थागत प्रयास करने होते हैं। ऐसे लोगों की आवश्यकता हो जाती है जो इस ज्ञान परम्परा को आत्मसात करके सुबोध बना सकें। ऐसे लोगों को ही शिक्षक एवं आचार्य कहा जाता है तथा इसके संगठित प्रयास के लिये शिक्षण संस्था-विद्यालयों की आवश्यकता होती है।

शिक्षा एक संस्कार प्रक्रिया है। मनुष्य अनजाने में ही अपने चारों ओर के समाज से संस्कार ग्रहण करता रहता है। उसमें समाज को प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक का काम करता है। संस्कार यद्यपि दोनों ओर से चलने वाली प्रक्रिया है, तथापि मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार अनुकरण, संवेदना एवं सुझावात्मक प्रवृत्तियों के कारण समर्थ व्यक्ति की क्रियायें ही प्रभावी होती हैं। माता-पिता, परिजन, पुरजन, गुरुजन, अग्रपाठी, सहपाठी, समाज के नेता, अधिष्ठाता, ये सभी नवीन पीढी पर विभिन्न प्रकार के संस्कार

डालते रहते हैं। अतः इन सब अग्रजनों को यह विचार करना चाहिए कि उनकी क्रियाओं का परिणाम केवल उन पर ही नहीं बल्कि दूसरों पर, विशेष रुप से नयी पीढी पर, पडता है। शिक्षा संस्थायें अकेले ही मनुष्य का निर्माण नहीं करतीं। संस्कार का बहुत सा क्षेत्र शिक्षा संस्थाओं के क्षेत्र से बाहर है। इसलिये शिक्षा संस्था एवं बाहर का वातावरण, दोनो संस्कारक्षम चाहिए, तभी बालक का सन्तुलित विकास सम्भव है। यदि इन दोनों क्षेत्रों में विरोध रहा तो विद्यार्थी के जीवन में एक अन्तर्द्वन्द्व खडा हो जाता है। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में ही तमिल लेखक तिरुवल्लुवर ने लेख गणित दोनों को व्यक्ति के दो नेत्रों के समान माना था। इस प्रकार निश्चित तौर पर ईसा के प्रारम्भिक वर्षो मे भारत में लेखन की परम्परा विद्यमान थी। ईसा पूर्व 800 में आर्यो में सभी वर्णों में बालक और बालिकाओं दोनों का उपनयन होता था। अल्तेकर जैसे विद्वान मानते हैं कि उस समय भारत में 80 प्रतिशत साक्षरता की दर थी। उस समय प्रारम्भिक शिक्षा के पाठयक्रम में व्यवहार गणित, व्याकरण, उच्चारण और छन्द का साधारण ज्ञान सम्मिलित था। उस समय तक प्रारम्भिक शिक्षा परिवारों में ही दी जाती थी, पुरोहित या आचार्य जिनके यहाँ उपनयन के बाद विद्यार्थी भेजे जाते थे, प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान किया करते थे। उस समय तक प्रारम्भिक शिक्षा उच्च से सम्बद्ध थी और कुछ ब्राह्मणों, क्षत्रियों या वैश्यों के द्वारा जीविकोपार्जन के लिये पाठशालायें चलायी जाती थीं। ईसा पूर्व 200 से 800 तक शिक्षा प्रारम्भ करने के लिये अक्षर स्वीकरण नामक संस्कार को श्रीगणेश हुआ। यह प्रायः 5 या 6 वर्ष की उम्र में होता था, धार्मिक संरक्षण प्राप्त होने से प्रारम्भिक शिक्षा में इसे निश्चित स्थान मिल गया। इस समय वर्णमाला और संयुक्त अक्षरों के ज्ञान में बच्चे को प्रायः 5 माह लग जाते थे उसके बाद गणित की एक वर्ष की शिक्षा दी जाती थी। 8 से 11 वर्ष की उम्र में ब्रह्मचारी पाणिनी व्याकरण सूत्रों का अध्ययन किया करते थे। कागज और पाठयपुस्तकों की अल्पता के कारण उस समय प्रारिम्भक शिक्षा में प्रायः धनवानों के पुत्र लकडी के पट्टियों पर रंग से लिखा करते थे, वहीं गरीब विद्यार्थी बालू या धूल फैलाकर अपनी अंगुली या किसी टहनी से लिखते थे। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि अब उसकी सेवाओं की आवश्यकता सारे समाज को नहीं बल्कि कुछ व्यक्तियों को ही थी। इसलिए अब साक्षरता धनिकों तक सीमित रही होगी। 19वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में सर टॉमस मनरो ने प्रत्येक गांव में एक पाठशाला पायी थी। सेन (1933), ''मेरा अनुमान है कि बालकों में से 25 से 33 प्रतिशत शिक्षा पाते थे।'' तत्कालीन बंगाल के अधिकांश गांवों में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पाठशालायें थीं। किन्तु विभिन्न स्थानों में उनसे लाभ उठाने वाले बालकों की संख्या भिन्न-भिन्न थी। कतिपय जिलों में पढ़ने योग्य बालको में सौ में से 18 बालक पाठशालाओं में पढ़ते थे अन्य जिलों में यही परिमाण प्रतिशत तीन ही था। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाठशाला जाने योग्य प्रतिशत बालकों में 15 पाठशाला जाते थे। यदि इतनी उथल-पुथल की परिस्थितियों में 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 15 प्रतिशत बालक पाठशालाओं में जाते थे तो हम भली भांति इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हिन्दू काल के अन्तिम समय में यह संख्या दूनी अवश्य रही होगी क्योंकि मुस्लिम शासन काल में सुदीर्घ काल तक सरकार केवल मुसलमानों के लिए ही शिक्षा की व्यवस्था करती थी। हिन्दुओं को अब शिक्षा के प्रसार में राज्य से वह सहायता नहीं मिल पाती थी जो हिन्दू शासन काल में मिलती थी। जिस काल में सम्पूर्ण आर्यो के लिए उपनयन आवश्यक था उनमें साक्षरों की संख्या प्रतिशत 80 थी। 8वीं शताब्दी के अन्त में यह 40 प्रतिशत रह गयी थी। 15 वीं शताब्दी के अन्त तक इसमें 10 प्रतिशत और न्यूनता आ गयी। किन्तु ये संख्याऐं पुरुषों की ही हैं और इनमें शूद्रों और अन्त्यजों की गणना नहीं की गयी है, क्योंकि वे तो एकदम निरक्षर ही होते थे। यदि बौद्ध शिक्षा पर अलग से दृष्टिपात किया जाये तो कहा जा सकता है कि बौद्ध शिक्षा 1500 वर्ष से अधिक तक प्रचलित रही और उसने ऐसी शिक्षा पद्धति का विकास किया जो ब्राह्मणीय शिक्षा पद्धति की प्रतिद्वन्द्वी थी पर अनेक बातों में उसके समान भी थी। वस्तुतः बौद्ध धर्म का विकास मठों में हुआ यह मठ न केवल धर्म के वरन शिक्षा के भी केन्द्र थे। प्राचीन काल के समान बौद्ध काल में भी केवल प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी, जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि प्राथमिक शिक्षा केवल बौद्ध धर्मावलम्बियों को ही नहीं वरन सब जातियों केबालकों को उपलब्ध थी। यह शिक्षा मठों में दी जाती थी और आरम्भ में पूर्णतया धार्मिक थी। ब्राह्मणों द्वारा प्रतिद्वन्द्वी शिक्षा संस्थायें स्थापित कर उनमें लौकिक शिक्षा देने के चलते बाद में बौद्ध शिक्षा में भी इस प्रकार व्यवस्था कर दी गयी। 5वीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री फाह्यान के लेखों में इस बात का उल्लेख मिलता है।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक मन्दी आ गयी और फिर द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसके साथ-साथ देश में स्वाधीनता आन्दोलन जारी रहा पर भारत में इन परिस्थितियों के बीच शिक्षा का ठीक ठाक विस्तार न हो सका यह अलग बात है कि शिक्षा के क्षेत्र में कुछ नई धारायें, बुनियादी शिक्षा, मात्र भाषा पर जोर, पाठ्यक्रम का विस्तार, प्राविधिक शिक्षा पर ध्यान आदि अवश्य ही निकलीं। प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से सन 1937 में वर्धा में प्रस्तुत बुनियादी शिक्षा की रुपरेखा एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जिसमें शिक्षा के साथ-साथ कौशल की शिक्षा के समन्वित दृष्टिकोण को महात्मा गांधी की विचारधारा के अनुरुप प्रस्तुत किया गया। इसी बीच 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हो गया। स्वाधीन होने पर देश के सामने सबसे बडा सवाल था पूर्व स्वाधीन युगीन शिक्षा की कमियों को हटाना, 80 प्रतिशत भारतवासी निरक्षर थे। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) में शिक्षा पर 589 करोड़ रुपये व्यय किए गए, जिनमें से 201 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए गए। इससे प्राथमिक शिक्षा के लिए विद्यालय और पढने वाले बच्चों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई। इसी बीच सन् 1996 में कोठारी कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर शिक्षा नीति, 1968 की घोषणा की गई। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74) में शिक्षा पर कुल 786 करोड़ रुपये व्यय किए गए, जिसमे से 239 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा के विकास पर व्यय किए गए, जिसमें से 317 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा के उन्नयन एवं विकास के लिए व्यय किए। इस योजना में स्कूल के छात्र/छात्राओं के लिए निःशुल्क मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था की गई और कमजोर वर्गों के लिए निशुल्क पाठ्य पुस्तकें एवं लेखन सामग्री वितरित की गई। पांचवीं योजना के अंतिम वर्ष 6-14 आयु वर्ग के ऐसे बच्चों के लिए जो किसी कारण औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा पा रहे थे, निरौपचारिक शिक्षा शुरु की गई। छठी पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा पर 836 करोड़ रुपये शिक्षा पर व्यय किए गए। इस योजना में निरौपचारिक शिक्षा का विस्तार किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में (1985-90) में शिक्षा पर कुल 7633 करोड़ रुपये व्यय किये गये और इनमें से 2849 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए गए। 1987-88 में 'ब्लैक बोर्ड योजना' शुरु की गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में शिक्षा पर कुल व्यय 19600 करोड रुपये व्यय किए गए। सन् 1994 में शैक्षिक दृष्टि से पिछडे जिलों में 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' शुरु किया गया। **अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व:-**

आज संसार के अधिकतम निरक्षर यहां रहते हैं, लगभग 35 करोड। यह बात नहीं कि शिक्षा को बिल्कुल उपेक्षित ही कर दिया गया है। कुछ ध्यान तो इस गया है, परन्तु शिक्षा को सब बातों में प्राथमिकता नहीं मिली। जब भी धन में कटौती हुई तो इसी क्षेत्र में सबसे पहले हुई और प्राथमिक शिक्षा के प्रसार तथा गुणवत्ता पर उतना ध्यान नहीं गया। बहुत से बच्चे स्कूल में प्रवेश नहीं कर पाते और बहुत पांचवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते विद्यालयों से भाग जाते हैं। कई प्रदेशों ने इस ओर निरन्तर ध्यान दिया है... जैसे केरल, हिमाचल प्रदेश, पाण्डिचेरी। हिमाचल में केवल 16,997 गांव, 2,92 पंचायतें और 52 लाख 11 हजार जनसंख्या है, परन्तु शिक्षा संस्थाओं की संख्या 12,800 से ऊपर है। देश के 425 जिलों में पूर्ण साक्षरता अभियान चलाया जा रहा है। सन् 1992-93 में देश में 5 लाख 72 हजार प्राइमरी स्कूल, 1 लाख 54 हजार मिडिल स्कूल तथा 84 हजार सेकेण्डरी पाठशालाएं थीं। स्वतन्त्रता के समय से अब तक संख्या में बढोत्तरी भी बहुत हुई है। उस समय 2 लाख 30 हजार स्कूल थे सारे देश में जबकि आज 7 लाख 44 हजार हैं। अध्यापक भी 6 लाख 24 हजार से बढकर 28 लाख 36 हजार हो गए हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या 1 करोड 92 लाख से बढकर 14 करोड 94 लाख हो गई है, और डी0पी0ई0पी0, दोपहर का भोजन, मुफ्त शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा आदि अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं। यद्यपि इनके परिणाम स्वरुप प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर यद्यपि विद्यालयों की संख्या में देश के स्तर पर निरन्तर प्रगति हुयी है, तथापि समान और गुणवत्ता युक्त शिक्षा का लक्ष्य अभी दूर है। परन्तु आज जब हम सर्वत्र ग्लोबलाइजेशन की बात करते हैं, प्रत्येक बात में सारे संसार की स्थिति के बारे में सोंचते हैं। तब आभास होता है कि हमें क्या करना है, हम कहाँ है? हमारे देश में 35 प्रतिशत पुरुष, 62 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं, जबकि संसार की साक्षरता दर 77 प्रतिशत है। चीन का 82 प्रतिशत है, जोसंसार का सबसे बडा देश है। कई और देशों की साक्षरता दर भी बहुत अच्छी है, जैसे मैक्सिको 90, इण्डोनेशिया 84, ब्राजील 83। फिर जहाँ साक्षरता की दर ही कम है, वहां शिक्षा की दर क्या होगी?

समस्या कथन: *''राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का अध्ययन''*

शोध अध्ययन के उद्देश्य:प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य निम्न प्रकार है-

- बालक और बालिकाओं के नामांकन में होने वाली अभिवृद्धि का पता लगाना।
- राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के विभिन्न उप क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षक छात्र अनुपात को ज्ञात करना।
- राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र तथा इसके विभिन्न उप क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों और छात्रों के अनुपात ज्ञात करना।
- राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत भवन तथा भवन रहित विद्यालयों की संख्या ज्ञात करना।
- राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के विभिन्न उप क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों, अध्यापकों और विद्यालयों की संख्या ज्ञात करना।
- राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले व्यय का राज्य सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय से अनुपात ज्ञात करना।

शोध अध्ययन का सीमांकन :प्रस्तुत शोध अध्ययन निम्नलिखित सीमाओं के अन्तर्गत किया गया है-

- **प्रस्तुत अध्ययन में राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र की प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक विकास को अध्ययन का विषय बनाया गया है।**
- **स्वतंत्रता के उपरान्त वर्ष 1947 से ही प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक प्रसार को अध्ययन की सीमा माना गया है।**
- **कक्षा 1 से 5 तक अर्थात प्राथमिक शिक्षा को ही अध्ययन का विषय बनाया गया है।**
- **अध्ययन में विद्यार्थियों के नामांकन, विद्यालयों की संख्या, उनकी भवन स्थिति, शिक्षकों की संख्या, बजट आवंटन की स्थिति आदि तक ही अध्ययन सीमित है।**
- **अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों से एकत्र आंकडों को ही विश्लेषित किया गया है।**
- **अध्ययन में राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न उप क्षेत्रों में से केवल गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों को चुना गया है।**

प्राप्त परिणामों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष -

राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा से संदर्भित विविध आयामों के संदर्भ में प्रगति की दीर्घकालीन प्रवृत्ति का आंकलन करने के लिये प्रवृत्ति का परिगणन किया गया है, जिसके आधार पर उस विशेष आयाम में दीर्घकाल में हुयी प्रगति की दिशा और गति का अनुमान लगाया जा सकता है। इस आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निम्नवत् हैं-

राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में प्रगति की दीर्घकालीन प्रवृत्ति निरन्तर तीव्र वृद्धि की है।

शहरी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति दिखाई दे रही है पर यह ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में धीमी है। राजधानी परिक्षेत्र में वर्ष 1947-48 में विद्यालय भवनों की प्रगति ऋणात्मक थी जो वर्ष 2012-13 तक बढते-बढते धनात्मक और काफी तीव्र हो गयी। भवन रहित विद्यालयों के संदर्भ में दीर्घकालीन प्रवृत्ति गिरावट की रही और 1999-2000 के बाद इसने पूर्णता प्राप्त कर शून्य का रुख अख्त्यार कर लिया। विद्यालय भवनों की कुल संख्या में दीर्घकालीन तीव्र वृद्धि की प्रवृत्ति दृष्टिगत हुयी है।बालकों की नामांकन संख्या में दीर्घकालीन प्रवृत्ति का रुख तीव्र वृद्धि का रहा है।बालिकाओं की संख्या में नामांकन के प्रवृत्ति सम्बन्धी परिगणित आंकडे स्पष्ट कर रहे हैं कि प्रारम्भ में बालिकाओं के नामांकन की प्रवृत्ति ऋणात्मक थी इसमें तेजी से गिरावट आयी और इसमें तीव्र दीर्घकालीन वृद्धि की प्रवृत्ति रही। बालिकाओं के नामांकन की दीर्घकालीन प्रवृत्ति की वृद्धि में गति बालकों की तुलना में अधिक रही। सकल नामांकन के संदर्भ में वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति की तीव्र गति पायी गयी। शहरी क्षेत्र में विद्यार्थियों के नामांकन की प्रवृत्ति वृद्धि की परन्तु धीमी रही। ग्रामीण क्षेत्र में विद्यार्थियों के नामांकन की प्रवृत्ति ऋणात्मक प्रवृत्ति से शुरु होकर तेजी से बढते हुये शहरी क्षेत्र की तुलना में काफी अधिक रही।

विद्यार्थियों के सकल नामांकन में तीव्र गति से वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति आंकलित की गयी। पुरुष शिक्षकों की संख्या में वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति में निरन्तर बढोत्तरी पायी गयी। पुरुष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षकों की संख्या में बहुत अधिक तीव्रता के साथ वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति दृष्टिगत हुयी। शिक्षकों की समग्र संख्या में भी वृद्धि की दीर्घकालीन पायी गयी। प्राथमिक शिक्षा पर राजधानी परिक्षेत्र में व्यय की प्रवृत्ति की गणनायें ऋणात्मक अंक के साथ प्रारम्भ हुयी परन्तु शीघ्रता से बढते हुये इसमें वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति पायी गयी।

शोध अध्ययन की उपयोगिता :-प्राथमिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा की नींव है इस स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षा के सभी स्तरों में सुधार की गारंटी है। भारत में शिक्षा व्यवस्था पर विभिन्न कालों और विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में सतत् परिवर्तन होता रहता है। देश की आजादी के बाद संविधान की मूल भावना सभी को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने की रही। इसी सन्दर्भ में अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का संकल्प प्रदान किया गया। इसी की संवैधानिक स्वीकृति 93वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाकर प्रदान की गई। परन्तु समान स्कूली शिक्षा का सपना आज भी एक सपना ही है। सरकारी प्राथमिक स्कूलों की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। वहीं दूसरी ओर भव्य भवनों और चमचमाते शिक्षण कक्षों वाले मंहगी निजी शिक्षा भारत के गरीब और निम्न मध्यम आय वर्ग की पहुँच से कोसों दूर है। अभी तक सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा अधिकार नियम में निर्धारित मानकों की प्रतिपूर्ति ही सुनिश्चित नहीं की जा सकी है, ऐसे में शिक्षा के स्तर और उसके मौलिक अधिकार बन जाने के बाबजूद उसकी स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र शैक्षिक दृष्टि से अच्छे क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा की परिमाणात्मक प्रसार की स्थिति काफी धीमी और चिन्ताजनक है। जहां एक ओर सभी विकास खण्डों में शिक्षक विद्यार्थी अनुपात की स्थिति काफी खराब है, वहीं नगरीय क्षेत्र में सरकारी प्राथमिक शिक्षा का बुरा हाल है। एक-एक विद्यालय भवन में तीन-तीन संचालित विद्यालय उनमें भी प्रति विद्यालय 1000 से अधिक नामांकित बच्चे, ऐसे में शिक्षा की दशा और दुर्दशा का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इस पर भी प्रति विद्यालय मात्र एक शिक्षक की उपलब्धता प्राथमिक शिक्षा के भयावह परिदृश्य को और गहरा देती है। बजट के आवंटन में भी पर्याप्त वृद्धि किये जाने की आवश्यकता है क्योंकि बजट आवंटन का अधिकांश भाग शिक्षकों के वेतन पर खर्च हो जाता है। प्राथमिक शिक्षा में और सुधार की सम्भावना इससे नहीं बन पाती। विद्यालय विकास अनुदान के नाम पर मात्र प्रतिवर्ष प्रति विद्यालय दिये जाने 5000 रु0 का अनुदान काफी अपर्याप्त है। इसमें विद्यालय भवन के रख-रखाब के साथ आवश्यक आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति सम्भव नहीं है।

प्राथमिक शिक्षा के विकास में अन्य क्षेत्रों की तुलना में तीव्र प्रगति हुयी है। इस प्रकार की प्रगति से क्षेत्रीय असंतुलन पैदा होता है। सरकार को सभी क्षेत्रों के समन्वित और संतुलित विकास पर ध्यान देना चाहिये। सरकार को पूरी गम्भीरता के साथ प्राथमिक शिक्षा की योजनायें बनाते समय सभी क्षेत्रों में पहले गम्भीर सर्वेक्षण कराकर प्राथमिकतायें निर्धारित करनी चाहिये और उसके अनुरुप क्रमागत विकास की ओर ध्यान देना चाहिये। सबसे पहले परिमाणात्मक प्रसार के कार्य को पूर्ण करना चाहिये उसके बाद ही गुणात्मक विकास की बात की जा सकती है। अनुसंधान के निष्कर्ष स्थापित करते हैं कि जब तक विद्यालयों में भौतिक और मानवीय संसाधनों की प्रतिपूर्ति सुनिश्चित नहीं होगी तब तक न ही शिक्षा अधिकार अधिनियम के लागू किये जाने का चिर स्वप्न पूर्ण हो सकेगा न ही शिक्षा की गुणवत्ता को प्राप्त किया जा सकेगा। नीति नियन्ताओं को गम्भीरता से इस स्थिति पर विचार करना चाहिये और सरकारी प्राथमिक शिक्षा जिसे साधन विहीन बालकों की शिक्षा कहा जा सकता है, में सुधार के गम्भीर प्रयास करने चाहिये। जिस अनुपात में विद्यार्थियों का नामांकन बढा है उस अनुपात में शैक्षिक संसाधनों में वृद्धि नहीं हो सकी है। इसका दुष्प्रभाव स्पष्ट रुप से शिक्षा की गुणवत्ता पर देखा जा सकता है। कल्पना की जा सकती है कि जब विद्यालयों में शिक्षक ही नहीं होगे तो बच्चो की उपस्थिति और उनकी शैक्षिक उपलब्धि की गुणवत्ता की स्थिति समझी जा सकती है। इस प्रकार अनुसंधान के निष्कर्ष शासकों, प्रशासकों, नियोजकों और नीति नियन्ताओं को स्पष्ट करते हैं कि प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन क्षेत्र में अभी भी परिमाणात्मक सुधार की बहुत आवश्यकता है इसके बिना सभी को अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा का स्वप्न पूरा नहीं किया जा सकता।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची: -

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव (2014), - प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, वाराणसी: अनुराग प्रकाशन, पृ0 6।
2. अग्रवाल जे0सी0 (2006), भारत में प्राथमिक शिक्षा, नई दिल्ली: विद्या विहार।
3. अनन्तु जे0 (1978), उच्च शिक्षा में निजी प्रबन्धन का अध्ययन, बम्बई: बम्बई और मराठवाड़ा, पी-एच0 डी0 समाजशास्त्र, दिल्ली: टी0 आई0 एस0 एस0।
4. आत्माराम (2001), भारवर्ष में प्राइमरी शिक्षा, जीवन ज्योति प्रकाशन।
5. अमरनाथ (2006), पंजाब के जालंधर जनपद में सरकारी व निजी प्रबन्धित उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के संगठनात्मक परिवेश का तुंलनात्मक अध्ययन, पंजाब: पीएच-डी0, पंजाब विश्वविद्यालय।
6. नीपा (1979), ''ऐ स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेशन आफ ऐलीमेन्ट्री एजूकेशन एन रिलेशन टू यूनिवर्सिलाइजेशन आफ ऐलेमेन्ट्री एजू. इन जम्मू एण्ड कश्मीर'' इलाहाबाद।
7. तोमर, लज्जाराम (1991), भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन, पृ0 19।5
8. त्यागी, गुरसरन दास भारत में शिक्षा का विकास, आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन, पृ.0 22।
9. दैसामी मालथी, तमिलनाडु में विद्यालय शिक्षा के विकास में निजी क्षेत्र, लैंगिक विभिन्नता और शैक्षिक उपलब्धियों की भूमिका का अध्ययन, इण्डियन एजुकेशनल रिब्यु, जनवरी,1998
10. उत्तर प्रदेश (2002), सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ।
11. उत्तर प्रदेश (2001), सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ।
12. उनियाल एम0पी0, एण्ड शाह (2005), ''रीजनल डिसपैरिटी इन एजूकेशन विद स्पेशल रिफरेंस टू हिल रीजन आफ वी0पी0 डिपार्टमेन्ट आफ एजूकेशन'', नैनीताल: कुमा0 यूनी0।
13. इलवैथ नेशनल सेमिनार ऑन एलिमेंट्री एजूकेशन (1972), रिपोर्ट ऑन प्राइमरी एजूकेशन, नई दिल्ली: एन0सी0ई0आर0टी0।
14. एन0आई0ई0पी0ए0 (1979), आसाम में आरम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के सम्बन्ध में आरम्भिक शिक्षा का अध्ययन, नई दिल्ली।
15. एन0आई0ई0पी0ए0 (1979), उड़ीसा में कार्यक्रम के सार्वभौमीकरण के सम्बन्ध में बुनियादी शिक्षा के प्रशासन का अध्ययन, नई दिल्ली।
16. एरिया विद स्पेशल रिफरेन्स टू नान अटेन्डेन्स आफ प्युपिल्स लर्निंग अण्डर प्राइमरी एजूकेशन, पी-एच0डी0 शिक्षा, पूना वि0वि0 2003।
17. सेन मलकम मेमोयर्स ऑफ सेण्ट्रल इण्डिया एण्ड मालवा, आक्सफोर्ड प्रेस लन्दन, पृ0 158।

माध्यमिक तथा उच्च शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों का पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन

डॉ. मोहन लाल 'आर्य'
आचार्य शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

परिना बंसल
सहायक प्राध्यापक शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सार:-सम्पूर्ण सृष्टि पॉच तत्वो से मिलकर बनी है और इन तत्वों से ही प्रकृति-वनस्पति, पशु-पक्षी मनुष्यों एवं इतर प्राणियों की रचना हुई है। यही पाँच तत्व सृष्टि को चारों ओर से घेरे भी हुए हैं। इन तत्वों के भाँति-भाँति के गुणात्मक मिलन से इस पृथ्वी पर मूर्त एवं अमूर्त रुपों का निर्माण होता है और इन्ही तत्वों के लगभग अमूर्त रुप का आवरण हमें घेरे हुए है जिसे पर्यावरण कहते है। इसी पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है। जिसे जॉच ने के लिए प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में मुरादाबाद जनपद के माध्यमिक एवं उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords):- मूर्त, अमूर्त, पर्यावरण, ज्ञान, प्राकृतिक तत्व।

प्रस्तावना:-आजकल अपने चारों ओर के लिपटे हुए अमूर्त तथा मूर्त तत्वों को पर्यावरण कहा जाता है। उसी भाव की अभिव्यक्ति में प्राचीन साहित्य में आवरण परिवेष्ठन एवं वातावरण आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। जलवायु शब्द का भी प्रयोग हुआ है। फिर भी इनमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। वातावरण और जलवायु पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं। पर्यावरण का भाव अधिक व्यापक है। आवरण एवं जलवायु का सम्बन्ध पृथ्वी के चराचर से है, किन्तु पर्यावरण शब्द में ब्रह्माण्ड के उन नक्षत्रो, ग्रहो, उपग्रहो, एवं अन्तरिक्ष आदि के वह रुप भी सन्निहित हैं, जो पृथ्वी के चराचर को किसी भी रुप में प्रभावित करते हैं। आजकल तो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति और सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से पृथ्वी की रक्षा करने वाली ओजोन परत भी पर्यावरण की परिधि में ले आई जा रही है। जिस प्रकार दार्शनिकों ने जीव, जगत और ब्रह्म के पारस्परिक सम्बन्ध एवं आदान-प्रदान की अभिव्यक्ति की है, उसी प्रकार तत्ववेत्ताओं ने जीव, जगत और ब्रह्माण्ड के परस्पर सम्बन्धो, आदान-प्रदानों और क्रियाओ-प्रतिक्रियाओं पर अपनी गवेषणायें प्रस्तुत की हैं। अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के कारण कभी पर्यावरण विशेष प्रकार के वायुमण्डल से आवृत्त रहता है तो कभी वह वायुमण्डल को अधिक प्रभावित करता है। पेड़-पौधों वायु, पानी, ग्रहो, उपग्रहो, व अन्तरिक्ष का प्रभाव अनवरत पर्यावरण पर पड़ता रहता है।सच पूछा जाये तो मनुष्य ने प्रकृति के स्रोतों का उपयोग जब तक अपनी प्राकृतिक सुख-सुविधाओं के लिए केवल कम से कम जरुरतों में किया तब तक निश्चिन्त रुप से सुखी रहा, किन्तु जैसे-जैसे वह कृत्रिम सुख साधनों को बढ़ानें में होड़ करके प्राकृतिक संसाधनों का बिना रोक टोक के निर्दयता पूर्वक असीमित दोहन करने लगा, वैसे-वैसे प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ता और अपने तथा अन्य प्राणियों के लिए आपत्तियों का सृजन करता गया एवं आज भी करता जा रहा है।

वनों को अधिक काट कर उसने अपने लिए मिलने वाली दिव्य एवं पुष्ट प्राणवायु का अधिक क्षय तो किया ही, पशु-पक्षियों का जीवन भी दूभर कर दिया। कितने ही मनोहारी सुन्दर पशु-पक्षियों की तो जातियाँ-प्रजातियाँ ही नष्ट हो गई। मिल कारखानों से दूषित गर्म वायु, धुआ, राख, कृत्रिम गैसो, विषैली क्लोरोफ्लोरो कार्बन आदि के अधिक उत्पन्न होने, नदियों-जलाशयों आदि में अत्यधिक गन्दगी प्रवाहित होने, हमारे सुरक्षा कवच-ओजोन परत के पतली होने, अणु शक्तियों के प्रयोग आदि से धरती की छाती दहलने लगी है। ओजोन परत को चीर कर अब अन्तरिक्ष यान ब्रह्माण्ड में जाने लगे हैं। वहाँ उनके बिगड़ जाने टूट-फूट होने, निष्क्रिय एवं नष्ट होने से जो भारी-भारी अपरिमित कचरा, सुरक्षा कवच के ऊपर एकत्रित होता जा रहा है, जब वह अत्यधिक हो जाने पर आकाश से धरती पर बरसना प्रारम्भ करेगा तब हमारे जीवन की क्या दशा होगी, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। अभी तो तड़ित को ही बोल्ट फ्राम दि ब्लू अथवा वज्रपात कहते हैं।

परन्तु सभ्यता और विकास के संदर्भ में विचार करते समय कई बार मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या पर्यावरण विनाश के पीछे असंयोजित विकास की प्रक्रिया तो नहीं है। आज के युग में जहाँ एक ओर मानव चाँद पर पहुँच चुका है वहीं दूसरी ओर उसे अपने चारो ओर के प्राकृतिक स्रोत समाप्त होते नजर आ रहे हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इन सबका कारण मानव ने स्वंय अपने विनाश को समझना शुरु कर दिया है और शायद अब, अनुभव कर लिया है या यह कह सकते हैं कि उसे आभास हो गया है कि उसके द्वारा बनाए गए यंत्र, संयत्र, परमाणु बम तथा अन्य आधुनिक उपकरण उसे अपने ही अस्तित्व को मिटाने की ओर ले जा रहे हैं। अगर इसी प्रकार जनसंख्या बढ़ती गई, शहरीकरण, आधुनीकीकरण और प्राकृतिक स्रोतों का विनाश होता रहा, तो हमारा और हमारी आने वाली पीढ़ियों का भविष्य क्या होगा, यहीं सोचकर भय-सा लगता है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता:-पृथ्वी पर जब से मानव जीवन की शुरुआत हुई है, तभी से उसने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग प्रारम्भ कर दिया था। धीरे-धीरे मनुष्य को बौद्धिक विकास हुआ, उसकी आबादी बढ़ी, उसकी संस्कृति और प्रौधोगिकी का विकास किया, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग किया गया इसका परिणाम यह हुआ कि अत्यधिक प्रदूषक पदार्थ उत्पन्न हुये जो धीरे-धीरे वातावरण में मिलते गये। इन प्रदूषित पदार्थो के कारण जैविक चक्र का संतुलन बिगड़ गया जो आज पर्यावरणीय संकट के रुप में सामने खडा है। इससे मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण धरती की जीवों का जीवन संकटग्रस्त है। आज हमारी सभी नदियाँ, नहरे बुरी तरह से प्रदूषित हैं, इसके अतिरिक्त हमारा भूमिगत जल प्रदूषित होने लगा है। आज सभी बड़े तथा छोटे शहरों में वायु प्रदषण एक विकट समस्या के रुप में सामने खड़ा है। बड़ी-बड़ी औद्योगिक ईकाईयों को संसाधनों से युक्त क्षेत्रों में लगाया गया जिससे वहाँ वायु जल तथा भूमि प्रदूषण की विकट समस्यायें उत्पन्न हुई है। इसका यह प्रभाव हुआ कि 1960 के मध्य में देश में सूखा, भोजन की कमी, आदि की विकट समस्यायें उत्पन्न हुई। आधुनिक युग में कीटनाशकों और रासायनिक खादों के अत्यधिक उपयोग से इनके अवघिटत होने वाले तत्व भूमि और जल में ही नहीं हमारी खाद्य श्रृंखला में मिलते चले जा रहे हैं, जिससे विभिन्न रोग मनुष्य के शरीर में प्रकट होते हैं। 1980 के दशक से हमारे देश में औद्योगीकरण और शहरीकरण की अत्यधिक वृद्धि हुई है। जिसका प्रभाव हमारे शहरों पर स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। भोपाल में हुई गैस दुर्घटना को कौन भूल सकता है जिसने हजारों आदमी, पशु पक्षियों आदि की जॉन ले ली और जो बच गये एवं आज उनकी संतानें उसके प्रभाव को झेल रही हैं हमें स्वहित के लिए इस जाल को बचाना है इसके सामाजस्य को बनाना है। इसके लिए निरन्तर कोशिश करनी होगी। ऐसी ही कोशिश का नाम है ''पर्यावरण शिक्षा' क्योंक शिक्षा ही वह सशक्त माध्यम है, जो व्यक्ति के व्यवहार और विचार बदल सकती है। पर्यावरण शिक्षा वह है जो पर्यावरण के माध्यम से पर्यावरण विषय में तथा पर्यावरण के लिए होती है। पर्यावरण शिक्षा शिक्षार्थी को उसके वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयास करती है।

आज सारी पर्यावरण समस्याओं का समाधान अकेले न तो कोई सरकार कर सकती है तथा न कोई गैर-सरकारी स्वंयसेवी संस्था अथवा संगठन। इस समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक नागरिक, को आगे आना होगा। प्रत्येक नागरिक की इस दिशा में भागीदारी आवश्यक तथा अनिवार्य है। यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक नागरिक पर्यावरण से सम्बन्धित इन समस्याओ, पर्यावरण के महत्व, प्रदूषण से होने वाली हानियाँ तथा पर्यावरण की सुरक्षा, संरक्षण और सुरक्षा के उपायों तथा विधियों से परिचित हो। उनके प्रति सजग हो तथा कार्य तथा व्यवहार इस दिशा में सम्पन्न करे।

शोध अध्ययन का महत्व:—जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि, तीव्रता के साथ औद्योगिक विकास वन कटाव, यातायात वाहनों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि तथा जन साधारण की अज्ञानता तथा अशिक्षा के कारण आज पर्यावरण शिक्षा का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। बढ़ती हुई निरक्षरता और अज्ञानता के कारण पर्यावरण सुरक्षा और उपायों का भरपरू उपयोग नहीं हो पा रहा है। अज्ञानता तथा अशिक्षा से ग्रसित मनुष्य पर्यावरण की सुरक्षा नहीं कर सकता। पर्यावरण शिक्षा हमें ''वसुधैव कुटम्बकम्'' का पाठ पढ़ाती है।

पृथ्वी पर आबादी बढ़ती चली जा रही है। विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से हमारी पृथ्वी नरक बन गयी है। वायुमंडल में आग, धुआँ, गैसे, तेजाबी वर्षा, रेडियोधर्मी पदार्थ आदि तेजी से जमा होने लगे हैं। हम इस वायुमण्डल में कितने दिन जी सकेगें? निश्चित रुप से इस प्रश्न का उत्तर यही है कि हम अपने व्यवहार में परिमार्जन कर, संरक्षण को अपने जीवन का अंग बना ले। अतः प्रारम्भिक स्तर से ही पर्यावरण शिक्षा को नियमित पाठ्यक्रम का अंग बनाया जाये। आज यह आवश्यक हो गया है पर्यावरण की जन चेतना के साथ-साथ इसके प्रारम्भिक पाठ्यक्रम से लेकर उच्च शिक्षा तक अनिवार्य पाठ्यक्रम घोषित किया जाये। ताकि भावी पीढ़ी को पर्यावरण के प्रति सचेतक के रुप में स्थापित किया जा सके। इसके लिये सभी शैक्षिक स्तरों पर विद्यार्थियो एवं शिक्षकों को पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान से लैस करना पड़ेगा। परन्तु इससे पूर्व पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित अध्ययन सामग्री के स्थान पर व्यवहारात्मक निर्माण, उसके विद्यार्थियों के समक्ष सम्यक् प्रस्तुतीकरण एवं उनकी प्रभाविकता का आकलन आवश्यक बन जाता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए माध्यमिक तथा महाविद्यालयों के विद्यार्थियां तथा अध्यापकों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के पूर्व स्तर को जाना तत्पश्चात स्तरों के लिय

पृथक-पृथक संरचित पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन सामग्री और उसके अनुरुप अनुदेशन प्रदान कर प्रदत्त ज्ञान के प्रभाव को पूर्व ज्ञान से मापने का विनम्र प्रयास किया जायेगा।

शोध समस्या कथन:- "'माध्यमिक एवं उच्च शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन"।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण:-

माध्यमिक विद्यालय: - ऐसे विद्यालय जिनमें कक्षाऐं 9 से 12 संचालित होती हैं माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत आते हैं। प्रस्तुत शोध में माध्यमिक शिक्षा परिषद उ0प्र0 इलाहाबाद द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसे विद्यालयों को माध्यमिक विद्यालय माना गया है जिनमें कला, विज्ञान व वाणिज्य विषय वर्ग की कक्षा 11 व 12 की कक्षायें संचालित हैं।

उच्च शिक्षण संस्थान: - उच्च शिक्षण संस्थान या महाविद्यालय वे संस्थायें हैं जिनमें माध्यमिक स्तर की कक्षा 12 की शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसमें परम्परागत शिक्षा विषयों के अतिरिक्त व्यावसायिक और तकनीकी विषयों की शिक्षा भी प्रदान की जाती है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में महाविद्यालयों से तात्पर्य एम0जे0पी0 रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध उन शैक्षिक संस्थानों से हैं जिनमें बी0ए0, बी0एससी0 व बी0कॉम0 की कक्षायें संचालित हैं। इन कक्षाओं के प्रथम वर्ष में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी महाविद्यालयों के विद्यार्थी माने गये हैं।

विद्यार्थी: - शिक्षा के किसी भी व्यवस्थित रुप से अध्ययन करने के लिये नामांकित व्यक्ति को विद्यार्थी कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में नामांकित छात्र तथा छात्राओं को विद्यार्थी वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।

अध्यापक: - किसी भी शिक्षा संस्था में विद्यार्थियों को पढ़ाने वाले व्यक्ति को शिक्षक कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक विद्यालयों, माध्यमिक विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला तथा पुरुष शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है।

पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान: - पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के अन्तर्गत प्रकृति संतुलन की स्थापना करने तथा प्रदूषण के नियमों से सम्बन्धी विषय वस्तु का ज्ञान कराये जाने की संकल्पना निहित है। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण के फलस्वरुप होने वाले विभिन्न प्रदूषणों और समस्याओं तथा मानव जीवन पर इनके प्रभाव तथा समस्याओं के निराकरण के उपयोग से सम्बन्धित ज्ञान ही पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान है।

पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव: - पर्यावरण सम्बन्धी प्रदान किये गये ज्ञान से प्रदत्त सूचनायें, समझदारी, कौशल और मनोवृत्ति पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव होती हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन में विविध शैक्षणिक स्तरों पर विद्यार्थियां और अध्यापकों के लिये निर्मित पर्यावरण ज्ञान सम्बन्धी संरचित सामग्री के अध्यापन के परिणामस्वरुप सम्बन्धित समूह वर्ग की पर्यावरण सम्बन्धी सूचना, समझदारी, कौशल और मनोवृत्ति में आया अन्तर ही पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव माना गया है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य:- प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य निम्नानुसार निर्धारित किये गये है -माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्रभाव का अध्ययन करना।

महाविद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें:- प्रस्तुत शोध अध्ययन में समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाआ का निर्धारण किया जायेगा -

माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

महाविद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन की विधि: - प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। मुरादाबाद जनपद के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों तथा महाविद्यालयों के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के पर्यावरणीय ज्ञान का परीक्षण करने के उपरान्त उन्हें पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन सामग्री उनके स्तरानुरूप उपलब्ध कराई जायेगी। जिसके अध्ययन के उपरान्त ज्ञान के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए पुनः परीक्षण किया जायेगा। इस प्रकार पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के पूर्व तथा पश्चात परीक्षण के आधार पर इन तीनों ही शैक्षणिक स्तर के शिक्षकों तथा विद्यार्थियां के पर्यावरणीय ज्ञान के प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर निष्कर्ष स्थापित किये जायेगें।

शोध अध्ययन की जनसंख्या:- प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या से अभिप्राय मुरादाबाद जनपद के समस्त सरकारी माध्यमिक विद्यालयों तथा एम0जे0पी0 रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध मुरादाबाद जनपद में स्थित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों तथा अध्ययनरत् विद्यार्थियों से है। जनसंख्या में माध्यमिक विद्यालयों में से कक्षा 10 व 11 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों तथा महाविद्यालयों में बी0ए0, बी0एस0सी0 तथा बी0कॉम0 के विद्यार्थियों एवं इन्हें पढ़ाने वाले शिक्षकों को शामिल किया गया है।

शोध अध्ययन के उपकरण:- प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए, उपयुक्त परीक्षण की उपलब्धता, आकलन की तकनीकी, अध्ययन के उद्देश्यों के आधार पर परीक्षणों का चयन निर्भर करता है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ताओं द्वारा निम्न मापनियाँ निर्मित एवं मानकीकृत कर शोध अध्ययन हेतु पर्यावरण ज्ञान परीक्षण (माध्यमिक एवं महाविद्यालयों के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों हेतु) प्रयुक्त की गई है।

शोध अध्ययन हेतु प्रयुक्त सांख्यिकी विधि:- प्रस्तुत शोध अध्ययन के निष्कर्षों की सम्पुष्टि एवं सामान्यीकरण हेतु माध्य, प्रतिशत, प्रमाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात, टी-परीक्षण आदि सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया जायेगा।

शोध अध्ययन की परिसीमायें:- प्रस्तुत शोध अध्ययन की निम्नलिखित सीमायें निर्धारित की है -अध्ययन केवल मुरादाबाद जनपद के माध्यमिक तथा महाविद्यालयों के विद्यार्थियों और शिक्षकों तक सीमित रखा गया हैशोध अध्ययन में माध्यमिक शिक्षा परिषद उ0प्र0 द्वारा मान्यता प्राप्त सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के बीच कक्षा 10 व 11 में अध्ययनरत् विद्यार्थी तथा शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों को ही सम्मिलित किया गया है।महाविद्यालयों के रुप में केवल एम0जे0पी0 रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध शिक्षा संस्थायें ही चुनी गया है। महाविद्यालयों के परम्परागत शिक्षण वर्गों बी0ए0, बी0एससी0 एवं बी0कॉम0 के द्वितीय वर्ष की कक्षाओं में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को ही शोध अध्ययन विषय के रुप में लिये गया है।

आंकड़ों का विष्लेषण एवं व्याख्या:-

परिकल्पना परीक्षण - 1 "'माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' इस सम्बन्ध में परिगणित मूल्यो को तालिका संख्या 1 में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका संख्या-1

माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान

परिगणित मूल्य	पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव	
	पूर्व ज्ञान	उपचार उपरान्त ज्ञान
माध्य	18.56	26.52
प्रमाप विचलन	6.44	6.44
विद्यार्थियों की संख्या	1279	1279
माध्य अन्तर	7.96	
प्रमाप विभ्रम	0.25	
क्रान्तिक अनुपात	31.28	
स्वतन्त्रयांश	2557	
सारणीय मूल्य 0.5 स्तर पर	1.96	
सार्थकता	31.28 >1.96 (सार्थक)	
परिकल्पना	अस्वीकृत	

तालिका संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद के ज्ञान में सार्थक अन्तर है क्योंकि सन्दर्भित समूह के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान और उपचार के उपरान्त पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्राप्तांकों का औसत मान क्रमशः 18.56 तथा 26.52 है। इन दोनों समूहों के माध्य प्राप्तांकों के अन्तर की सार्थकता जांच टी-परीक्षण के आधार पर की गयी है। इसके लिए दोनों माध्यों के अन्तर 7.96 में परिगणित प्रमाप विभ्रम 0.25 से भाग देकर क्रान्तिक अनुपात मूल्य प्राप्त किया है जो कि 31.28 प्राप्त हुआ है। यह परिगणित मूल्य 2557 स्वतन्त्रयांश पर 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर के लिए निर्धारित टी के सारणी मान 1.96 से अधिक है अतः माध्यों के बीच अन्तर सार्थक है और इस सन्दर्भ में हमारी परिकल्पना 'माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है' अस्वीकृत होती है। यदि माध्यमिक विद्यार्थियों के दोनों बार के प्राप्तांकों के औसत पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होता है कि उपचार के उपरान्त उनके प्राप्त प्राप्तांकों का औसत अधिक है। इस प्रकार इस आधार पर निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयो के विद्यार्थियो को प्रदान किये गये पर्यावरण सम्बन्धी उपचारात्मक ज्ञान का सकारात्मक प्रभाव इस समूह के विद्यार्थियो के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान पर पड़ा है।

परिकल्पना परीक्षण-2 ''उच्च शिक्षा संस्थाओं के विद्यार्थियां के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' इस सम्बन्ध में परिगणित मूल्यों को तालिका संख्या 2 में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका संख्या-2

उच्च शिक्षा संस्थाओं कें विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान

परिगणित मूल्य	पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव	
	पूर्व ज्ञान	उपचार उपरान्त ज्ञान
माध्य	18.50	26.35
प्रमाप विचलन	6.80	6.68
विद्यार्थियों की सख्या	1185	1185
माध्य अन्तर	8.85	
प्रमाप विभ्रम	0.28	
क्रान्तिक अनुपात	28.32	
स्वतन्त्रयांश	2369	
सारणीय मूल्य 0.5 स्तर पर	1.96	
सार्थकता	28.32 >1.96 (सार्थक)	
परिकल्पना	अस्वीकृत	

तालिका संख्या 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि उच्च स्तर के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद के ज्ञान में सार्थक अन्तर है क्यांकि सन्दर्भित समूह के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान और उपचार के उपरान्त पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्राप्तांकों का औसत मान क्रमशः 18.50 तथा 26.35 है। इन दोनों समूहों के माध्य प्राप्तांको के अन्तर की सार्थकता जांच टी-परीक्षण के आधार पर की गयी है। इसके लिए दोनों माध्यों के अन्तर 8.85 में परिगणित प्रमाप विभ्रम 0.28 से भाग देकर क्रान्तिक अनुपात मूल्य प्राप्त किया है जो कि 28.32 प्राप्त हुआ है। यह परिगणित मूल्य 2369 स्वतन्त्रयांश पर 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर के लिए निर्धारित टी के सारणी मान 1.96 से अधिक है अतः माध्यों के बीच अन्तर सार्थक है और इस सन्दर्भ में हमारी परिकल्पना ''उच्च शिक्षा सस्थाओं के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' अस्वीकृत होती है। यदि उच्च विद्यार्थियों के दोनों बार के प्राप्ताकों के औसत पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होता है कि उपचार के उपरान्त उनके प्राप्त प्राप्तांकों का औसत अधिक है।

शोध अध्ययन के निष्कर्ष:-माध्यमिक विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान और उपचार के उपरान्त पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्राप्तांको का औसत क्रमशः 18.56 तथा 26.52 है।क्रान्तिक अनुपात के आधार पर यह अन्तर सार्थक पाया गया है और निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यार्थियों के समूह को प्रदान किये गये पर्यावरणीय ज्ञान के प्रभाव के परिणामस्वरूप उनके पर्यावरणीय ज्ञान में सार्थक सकारात्मक अन्तर आया है।उच्च शिक्षा सस्थाओं के विद्यार्थियों के संदर्भ में निर्मित शून्य परिकल्पना 'उच्च शिक्षा संस्थाओं के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान और उपचार के उपरान्त पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है' क्रान्तिक अनुपात परीक्षण में अस्वीकृत हुयी है। जिससे निष्कर्ष स्थापित किया जा सकता है कि उच्च शिक्षा संस्थाओं के विद्यार्थियों को प्रदान किये गये पर्यावरण सम्बन्धी उपचारात्मक ज्ञान का सकारात्मक प्रभाव इस समूह के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान पर पड़ा है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची: -

1. गर्ग, राजीव (1989): पर्यावरण और हम, दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, पृ0 14।
2. अग्रवाल, अनिल (1997): एडिशन इन टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली: ट्यूसडे, अगस्त 19, डायरेक्टर आफ सेन्टर साइन्स एण्ड एनवायरनमेन्ट।
3. अरोड़ा, सावित्रि (2000): पर्यावरण की समस्याऐ, कानपुर: साहित्य निकेतन, पृ0 14-15।
4. नवभारत टाइम्स (1994): हिन्दी दैनिक जून 7।
5. सक्सेना, उदयवीर 'शिक्षाशास्त्र', आगरा: रेजना प्रकाशन मंदिर, प्रथम संस्करण, पृ0 56।
6. सक्सेना, ए0बी0 एनवायरनमेन्ट एजूकेशन, आगरा: नेशनल साइकॉलोजी कॉरपोरेशन।
7. रवीन्द्र (2002): रचना साहित्य अकादमी, नई दिल्ली: प्रथम संस्करण पृ0 86।
8. रस्तोगी, उर्मिला (2000): वेद तथा पर्यावरण, दिल्ली: जे0पी0 पब्लिषिंग हाऊस, पृ0-1
9. सिंह, बैजनाथ पर्यावरण रक्षा, नई दिल्ली: एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, पृ0 6।
10. बहुगुणा, सुन्दरलाल (1989): सभ्यता का संकट और संस्कृति का संदेश, पर्यावरण के संदर्भ मे, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 5।
11. शर्मा, वी0एल0 एवं सक्सेना, वी0एम0 पर्यावरण शिक्षा, मेरठ: जय भारत प्रेस, पृ0 227।
12. शर्मा, पी0डी0 (2005): ईकोलॉजी एण्ड एनवायरनमेन्ट, मेरठ: रस्तोगी पब्लिकेशन।
13. शर्मा, विष्णु दत्त (1991): पर्यावरणीय प्रदूषण, दिल्ली: आर्य प्रकाशन मण्डल, पृ0 20

व्यावसायिक शिक्षा नीति में आरक्षित और औसत छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध का अध्ययन

डॉ.हलधर यादव
शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
लखनऊ

शशि शर्मा
शोधार्थिनी शिक्षा संकाय
महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
लखनऊ

सार-शिक्षा नीति में व्यावसायिक शिक्षा को दी गई प्राथमिकता के अनुसार, फरवरी 1988 में माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की एक केंद्र प्रायोजित योजना शुरू की गई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत रोजगार क्षमता को बढ़ाना, मांग और मांग के बीच बेमेल को कम करना था। कुशल जनशक्ति की आपूर्ति और उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों के लिए एक विकल्प प्रदान करना।व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को व्यवसाय के लिए तैयार करना और उन्हें आवश्यक कौशल के साथ काम की दुनिया में प्रवेश करने में सक्षम बनाना है। इस कारण से, सामान्य शिक्षा के 10 साल पूरे करने के बाद, छात्र तकनीकी प्रक्रियाओं का नया व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने, मैनुअल संचालन को विनियमित करने और व्यापार के कुछ कौशल और चाल के बारे में बताता है। अंतिम, लेकिन कम से कम नहीं, छात्र को नागरिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए।व्यावसायिक महत्व के कारण, महात्मा गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की थी।

मुख्य शब्द . शिक्षाए व्यावसायिक शिक्षाए शिक्षा प्रणाली

परिचय-यह बुनियादी शिक्षा कार्योन्मुखी या शिल्प केन्द्रित है। बुनियादी शिक्षा में शिल्प, बच्चे की रचनात्मक क्षमताओं को प्रशिक्षित करता है। जीवन में बाद में यह प्रशिक्षण युवाओं में किसी कार्य को कुशलतापूर्वक और शान से करने के लिए एक आंतरिक आग्रह पैदा करता है। इसलिए गांधी जी ने शिक्षा के स्वावलंबी पहलू के महत्व को पहचाना। वह चाहते थे कि हर लड़का और लड़की स्कूल से इस कदर सुसज्जित हों कि वे अपना वजन खुद खींच सकें, अगर वे कोई अच्छा पेशा पाने में असफल होते हैं। इसलिए उन्होंने दावा किया कि शिक्षा उनके लिए बेरोजगारी के खिलाफ एक तरह का बीमा होना चाहिए।पचास के दशक के दौरान उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक रूप से उन्मुख शिक्षा की प्रणाली की शुरूआत ने शिक्षा के मानकों में महत्वपूर्ण सुधार के लिए एक व्यावहारिक क्षेत्र बनाया। इस प्रणाली का उद्देश्य छात्रों को स्कूल स्तर पर उनकी योग्यता और क्षमताओं के अनुरूप अध्ययन के क्षेत्र का चयन करने के लिए निर्देशित करना है। छात्रों के लिए विषयों के चयन के साथ यह प्रणाली स्कूल में पढ़ाई पूरी होने के बाद इस विकल्प को छोड़ने के बजाय एक विशेष पेशे के लिए प्रारंभिक चरण में शिक्षा को तैयार करने का एक प्रयास है।एक व्यक्ति जो खुद को अकादमिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से बेहतर बनाने की इच्छा रखता है, वह तभी संतुष्ट होगा जब उसकी उपलब्धियां उसके द्वारा निर्धारित लक्ष्यों तक पहुंचेंगी, भले ही दूसरे उसकी उपलब्धि को कैसे देखें, इसका मतलब यह है कि व्यक्ति अहंकार उसकी आकांक्षा में शामिल है .जैसे-जैसे बच्चा अपनी कल्पनाओं और बाल कल्पनाओं के प्रभाव से अपनी अभीप्सा को विकसित करता है। इन्हें अवास्तविक माना जाता है क्योंकि ये बच्चों की कल्पनाओं और भ्रांतियों पर आधारित होते हैं। जब बच्चा बढ़ता है और स्कूल या कॉलेज स्तर पर शिक्षा प्राप्त करता है, तो वह 'महत्वाकांक्षी' हो जाता है लेकिन आकांक्षा में अवास्तविक नहीं होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि परिपक्व व्यक्ति वास्तविक रूप से सोचने में सक्षम होगा। स्कूल स्तर पर एक छात्र के रूप में उसकी शिक्षा और व्यवसाय के संबंध में आकांक्षा विकसित होती है। इसीलिए, विषय का कोई भी विकल्प किसी एक विषय के प्रति रुचि के कारण होता है, अपने जीवन में निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने की आकांक्षा के कारण होता है।

1.1 भारत में व्यावसायिक शिक्षा का विकास-भारत में प्राचीन काल में भी व्यावसायिक शिक्षा कुछ अन्य रूपों में मौजूद थी। पुत्र अपने बड़ों से कार्य सीखता और महारत हासिल करता। पहला तकनीकी प्रशिक्षण केंद्र 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के समुचित कार्य का परिणाम था। भारत में ब्रिटिश काल में, पर्यवेक्षकों को सार्वजनिक भवन, सड़कों, नहरों और बर्तनों के निर्माण और रखरखाव की निगरानी के लिए प्रशिक्षित किया गया था। यह भी

ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में बुनकर अधिकतर निरक्षर थेभारत में पहला औद्योगिक स्कूल 1842 में मद्रास में शुरू किया गया था जो वहां स्थित गन कैरिज फैक्ट्री से जुड़ा था। पहला इंजीनियरिंग कॉलेज उत्तर प्रदेश के रुड़की में स्थापित किया गया था, जो अब उत्तराखंड राज्य में है, जिसमें सिविल इंजीनियरों को प्रशिक्षित करने के लिए 1847 में ऊपरी गंगा नहर परियोजना के लिए पास की बड़ी कार्यशालाओं का निर्माण किया गया था। इसके बाद, अन्य शहरों जैसे पुणे में, कलकत्ता में, बॉम्बे में और बाद में दिल्ली में और अधिक इंजीनियरिंग कॉलेज स्थापित किए गए ताकि भारत को गैर-पेशेवर दोनों तरह की इंजीनियरिंग शिक्षा में बहुत मजबूत आधार बनाया जा सके। इंजीनियरिंग पीएचडी तक की पेशकश की है। 8 कुलीन भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों में स्तर। सरकारी संस्थानों, सार्वजनिक और निजी तकनीकी संस्थानों और पॉलिटेक्निक द्वारा डिप्लोमा और सर्टिफिकेट स्तर के पाठ्यक्रम पेश किए जाते हैं।1947 में, भारत को स्वतंत्रता मिली, तब से डिप्लोमा और सर्टिफिकेट स्तर पर टीवीईटी कार्यक्रमों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करने के लिए तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों और पॉलिटेक्निक का एक नेटवर्क स्थापित किया गया है। इसी समय, भारतीय वायु सेना, सेना और नौसेना के विकास में पर्याप्त व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास शामिल है। ये टीवीईटी स्नातकों के गुणवत्ता स्रोत बने हुए हैं, ज्यादातर सेना के लिए लेकिन विमानन उद्योग जैसे नागरिक उद्योगों के लिए भी तेजी से बढ़ रहे हैं। रिलायंस, टाटा जैसी बड़ी कंपनियों और कई आईटी फर्मों ने अपने कर्मचारियों की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए इन-हाउस प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित किए हैं। साथ ही, ग्रामीण और स्लम समुदायों को प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करने के लिए सामुदायिक आउटरीच कार्यक्रमों का एक नेटवर्क स्थापित किया गया है। शिक्षा से संबंधित विभिन्न आयोगों का गठन किया गया और उन्होंने व्यावसायिक शिक्षा की सिफारिश की।

भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की निगरानी केंद्र सरकार के 20 मंत्रालयों द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए, देश भर में कृषि केंद्रों के विस्तार का एक नेटवर्क जो ग्रामीण श्रमिकों और किसानों के लिए तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम प्रदान करता है, कृषि मंत्रालय द्वारा आयोजित किया जाता है। एक अन्य संगठन है जिसे खान मंत्रालय के नाम से जाना जाता है जो खान श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसी तरह, भारत में एक और संगठन है जो ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए काम कर रहा है। समुदाय के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के लिए काम कर रहा है।

1.2 भारत में व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण प्रणाली (वीईटी)

भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (टीवीईटी) प्रणाली त्रि-स्तरीय प्रणाली के माध्यम से मानव संसाधन विकसित करती हैःस्नातकोत्तर और स्नातक स्तर के विशेषज्ञ (जैसे आईआईटी, एनआईटी और इंजीनियरिंग कॉलेज) प्रौद्योगिकीविदों और इंजीनियरों के रूप में प्रशिक्षित हैं।डिप्लोमा स्तर के स्नातक जो पॉलिटेक्निक में पर्यवेक्षकों और तकनीशियनों के रूप में प्रशिक्षित हैं।व्यावसायिक स्ट्रीम में उच्चतर माध्यमिक छात्रों के लिए प्रमाणपत्र-स्तर और आईटीआई में प्रशिक्षित लोगों के साथ-साथ कुशल और अर्ध-कुशल श्रमिकों के रूप में औपचारिक शिक्षता के माध्यम से। भारत सरकार के 17 से अधिक मंत्रालय या विभाग औपचारिक या गैर-औपचारिक वीईटी कार्यक्रमों को प्रदान या वित्त पोषण कर रहे हैं। इस प्रकार प्रस्तावित वीईटी कार्यक्रमों की कुल वार्षिक प्रशिक्षण क्षमता लगभग पच्चीस लाख होने का अनुमान है। हालांकि, लक्ष्य समूह, अवधि, प्रवेश योग्यता, पाठ्यक्रम, परीक्षण और प्रमाणन आदि के संदर्भ में विभिन्न कार्यक्रमों के बीच बहुत भिन्नता है, जिसके परिणामस्वरूप योग्यता, समकक्षता और ऊर्ध्वाधर गतिशीलता की मान्यता से संबंधित समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

1.3 भारत में व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम विकसित करने की आवश्यकता-भारत को एक 'यंग नेशन' के रूप में जाना जाता है, जिसमें हर साल दो करोड़ और अस्सी लाख युवाओं की आबादी जुड़ती है। देश में केवल 12.78 मिलियन व्यक्ति हर साल श्रम बाजार में प्रवेश करते हैं। लगभग 90% रोजगार के अवसरों के लिए व्यावसायिक विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है, कुछ ऐसा जो कॉलेजों और स्कूलों में बड़े पैमाने पर प्रदान नहीं किया जा रहा है व्यावसायिक शिक्षा की पेशकश में अनिवार्य 'लचीलापन' लाने और उद्योग के साथ साझेदारी में 'मॉड्यूलर योग्यता आधारित पाठ्यक्रम' के विकास के लिए प्रस्तावित अधिकांश सुधार नियोक्ताओं (उद्योग) और लक्षित समूहों दोनों की जरूरतों के अनुरूप फायदेमंद होंगे। कुशल कर्मचारियों की कमी को कम करना।

1.4 अनुसंधान क्रियाविधि

1.4.1 परीक्षण का डिजाइन और निर्माण:-16 पीएफ फॉर्म बी में दिए गए प्रत्येक कारक के लिए 10-13 आइटम हैं। स्टैंसिल द्वारा स्कोरिंग में अधिकतम सुविधा देने और विविधता और रुचि सुनिश्चित करने के लिए एक योजना द्वारा निर्धारित मोटे तौर पर चक्रीय क्रम में प्रश्नों की व्यवस्था की जाती है। परीक्षार्थी। 16 पीएफ टेस्ट के फॉर्म ए का निर्माण फॉर्म बी, सी, डी, ई और एफ के समकक्ष डिजाइन किया गया है। फॉर्म ए और बी में प्रत्येक में 187 आइटम हैं जिनमें औसत पाठक या परीक्षण विषय के लिए प्रति फॉर्म 45 से 55 मिनट की आवश्यकता होती है।

1.4.2 उत्तर देने का तरीका:-प्रत्येक प्रश्न के लिए तीन वैकल्पिक उत्तर दिए गए हैं, क्योंकि दो वैकल्पिक "मजबूर पसंद" स्थिति, सड़क के किसी भी बीच में समझौता करने से मना करती है, एक विकृत वितरण को मजबूर करती है, कोई भी परीक्षार्थी की ओर से परीक्षण के प्रति घृणा पैदा कर सकता है। यह विशेष रूप से औसत या उच्च बुद्धि वाले व्यक्ति के मामले में है जिनके लिए फॉर्म ए और बी डिजाइन किए गए हैं। बच्चों के साथ या कम बुद्धिमान, कम सक्षम या सांस्कृतिक रूप से वंचित वयस्कों के साथ, दो-विकल्प वाला डिज़ाइन बेहतर दिखाई देता है और इस तरह के डिज़ाइन का उपयोग ऐसी आबादी (फॉर्म ई और एफ) के उपयोग के लिए बनाए गए 16 पीएफ के 'कम साक्षर' पैमानों में किया जाता है। दृ

1.4.3 प्राथमिक कारकों की व्याख्या:-हैडबुक और अन्य जगहों पर विस्तार से चर्चा की गई विधियों का उपयोग करके, विभिन्न मानदंडों पर स्कोर की भविष्यवाणी, और विभिन्न नैदानिक नैदानिक समूहों के लिए व्यक्तियों के असाइनमेंट को बीमांकिक रूप से किया जा सकता है। जहां मानदंड के साथ कोई संबंध ज्ञात नहीं है, कारकों की मनोवैज्ञानिक प्रकृति का ज्ञान प्रारंभिक भविष्यवाणी का मार्गदर्शन करना चाहिए जब तक कि किसी विशेष स्थिति में अनुभवजन्य अध्ययन नहीं किया जा सके। इसके अलावा, यहां तक कि जहां सहसंबंध, एक निश्चित मानदंड के बारे में बीमांकिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। सीखने, परिपक्वता आदि के साथ व्यक्तित्व के परिवर्तन या जीवन की स्थिति में प्रत्याशित परिवर्तनों की अनुमति देने के लिए तत्काल सांख्यिकीय गणनाओं में मनोवैज्ञानिक निर्णय जोड़ना वांछनीय है।

16 PF द्वारा मापे गए प्रत्येक प्राथमिक कारक में एक वर्णानुक्रमिक पदनाम और एक संक्षिप्त शीर्षक होता है, जिसे व्यवसायी सबसे अधिक उपयोग करेगा। कारकों की परिभाषाएं और व्याख्याएं, 'जैसा कि नीचे दिया गया है, संक्षिप्त, गैर-तकनीकी, और निश्चित रूप से, हैंडबुक और अन्य आईबीपीएफ स्रोत पुस्तकों में उपलब्ध अधिक गहन चर्चाओं की तुलना में कम सटीक हैं। इसके अलावा, अच्छी तरह से परिभाषित व्यावसायिक और नैदानिक समूहों के लिए हैंडबुक में दी गई बड़ी संख्या में प्रोफाइल मनोवैज्ञानिक को कारकों के अर्थ और संचालन में अतिरिक्त अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

परिकल्पना -1 उच्च और निम्न व्यक्तित्व विशेषता वाले पेशेवर कॉलेजों के छात्र अपनी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण रूप से भिन्न नहीं होते हैं। इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए शोधकर्ता ने टी-परीक्षण का प्रयोग निम्न प्रकार से किया है:-

तालिका 1.1

व्यक्तित्व गुण	N	माध्य	मानक विचलन	t-value	P-Value	Significance
उच्च व्यक्तित्व विशेषता	240	49.21	10.12	3.21	0.01	Significant
निम्न व्यक्तित्व विशेषता	240	51.78	8.50			

तालिका 1 के परिणाम दर्शाते हैं कि प्राप्त t-मान 3.21, df 478 पर 0.01 (2.59) के महत्व के स्तर पर ज-मान से अधिक है क्योंकि यह मान 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण है, इसलिए यह 0.05(1.97) पर महत्वपूर्ण होगा। स्तर भी df 478 पर। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना -2 कॉलेजों के आरक्षित, औसत और आउटगोइंग छात्र अपनी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण रूप से भिन्न नहीं हैं। इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए शोधकर्ता ने एनोवा और टी-टेस्ट दोनों को निम्नलिखित तरीके से लागू किया है: -

तालिका 1.2

आरक्षित, औसत और आउटगोइंग छात्रों का उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में माध्य और एसडी मान

समूह	Reserved	Average	Outgoing
N	100	253	127
SUMS	003333	008459	003886
माध्य	0043.44	0044.52	0049.84
मानक विचलन	0013.300	0015.84	0016.34

तालिका 1.3

आरक्षित, औसत और आउटगोइंग छात्रों के बीच उनकी व्यावसायिक आकांक्षा के संबंध में एनोवा परीक्षा का परिणाम

SV	N	DF	S.S.	MSS	F-value	P-value	Sig.
Betweengroup	480	2	1548.42	774.21	3.20	0.05	Significant
Withingroup		477	85654.68	241.74			
Total		479	87203.10				

तालिका 3 स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि प्राप्त एफ-वैल्यू 3.20, एफ-वैल्यू से 0.05 (3.01) महत्व के स्तर df 479 पर अधिक है। यह मान 0.05 (3.01) पर महत्वपूर्ण है लेकिन यह 0.01 के स्तर (4.65) पर df/ 479 पर महत्वपूर्ण नहीं होगा। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

1.5 निष्कर्ष-उच्च और निम्न व्यक्तित्व के व्यावसायिक विकल्पों पर व्यक्तित्व के प्रभाव के संबंध में, आरक्षित, औसत और आउटगोइंग, कम बुद्धिमान, औसत बुद्धि और अधिक बुद्धिमान, भावना से प्रभावित, औसत और भावनात्मक रूप से स्थिर, शर्मीली, औसत और उद्यमशील, कठोर दिमाग, औसत दिमागी और कोमल दिमाग, व्यावहारिक, औसत और कल्पनाशील, समूह पर निर्भर, औसत और आत्मनिर्भर, आराम से, औसत और तनावग्रस्त छात्रों का पेशेवर कॉलेज के छात्रों पर प्रभाव पड़ता है।व्यक्तित्व के प्रभाव के संबंध में व्यावसायिक विकल्पों पर सह-संबंध विनम्र, औसत और मुखर, शांत, औसत और खुश-भाग्यशाली, समीचीन, औसत और कर्तव्यनिष्ठ, भरोसेमंद औसत और संदिग्ध, स्पष्ट, औसत और चतुर, रखा, औसत और आशंकित, रूढ़िवादी औसत और प्रयोग, अनुशासनहीन आत्म-संघर्ष, औसत और नियंत्रित छात्रों का पेशेवर कॉलेज के छात्रों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।उच्च, मध्यम और निम्न एसईएस छात्रों में व्यावसायिक आकांक्षा और व्यावसायिक विकल्पों के संबंध में अंतर है।एसईएस के पारस्परिक प्रभाव के संबंध में, व्यावसायिक आकांक्षाओं पर व्यक्तित्व और लिंग (लड़के और लड़कियों) का व्यावसायिक कॉलेजों के छात्रों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और पेशेवर कॉलेजों के व्यावसायिक विकल्पों पर एसईएस, व्यक्तित्व और लिंग के परस्पर प्रभाव का प्रभाव पड़ता है।

****

संदर्भ सूची:-

1. डायन्स, आरआर क्लार्क, ए और डिनिट्ज, एस (2017)। व्यावसायिक आकांक्षा के स्तर। एक परिवर्तनीय अमेरिकी समाजशास्त्रीय समीक्षा के रूप में पारिवारिक अनुभव के कुछ पहलू, 21, 212-214।
2. एडवर्ड टी. क्लार्क। "व्यावसायिक वरीयता और धारणा पर सेक्स और सामाजिक वर्ग का प्रभाव"। कार्मिक और मार्गदर्शन जर्नल, 45, 440- 44, जनवरी, 2017.
3. एडवड्र्स, ए.एम. (2017)। संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए तुलनात्मक व्यावसायिक सांख्यिकी 1870-1940। वाशिंगटन डी.सी. सरकारी मुद्रण कार्यालय।
4. इग्वुचुकेवु । (2016)। अंम्बरा राज्य में वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की नौकरी की आकांक्षाओं का सहसंबंध। अप्रकाशित एम.एड परियोजना (अप्रकाशित), ननमदी अज़िकीवे विश्वविद्यालय, अवका।, अवका।
5. एम्पे, एल.टी. (2018)। सामाजिक वर्ग और व्यावसायिक आकांक्षा - निरपेक्ष और सापेक्ष माप की तुलना। अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, 21, 703-709।
6. एर्ब, थॉमस, ओ। (2018)। प्रारंभिक किशोरों की कैरियर वरीयताएँ आयु और लिंग अंतर। प्रारंभिक किशोरावस्था का जर्नल, 3 (4), 349-359।
7. एसिंलगर, सीडब्ल्यू चयनित बारहवीं कक्षा की महिला छात्रों की शैक्षिक और व्यावसायिक आकांक्षाएँ और अपेक्षाएँ और शैक्षिक, व्यक्तिगत और पारिवारिक विशेषताएँ। निबंध सार इंटरनेशनल, 37(1-ए), 255.
8. फॉर्म, डब्ल्यू.एच. और गेश-वेंडर, जे.ए. (2017)। नौकरी की संतुष्टि का सामाजिक संदर्भ आधार। मैनुअल श्रमिकों का मामला। अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, 27, 228-237।
9. फ्रैंक, जे आकांक्षा के स्तर के कुछ पहलुओं में व्यक्तिगत अंतर अमेरिकन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी। 47 (91)
10. फ्रेड, एफ.डी. (2018)। व्यक्तित्व लक्षण और व्यावसायिक विकल्पः हॉलैंड के सिद्धांत का एक परीक्षण एक अप्रकाशित एम.एड. परियोजना (अप्रकाशित), इबादान विश्वविद्यालय, इबादान।
11. फुक्वा, डी.आर., सीवर्थ, टी.बी. और न्यूमैन, जे.एल. (2017)। कैरियर अनिर्णय और चिंता का संबंधः एक बहुभिन्नरूपी परीक्षा। जर्नल ऑफ़ वोकेशनल बिहेवियर, 30, 175-186।
12. गास्केल, जेनहाई स्कूल की लड़कियों की सेक्स भूमिका विचारधारा और आकांक्षाएं। मनोवैज्ञानिक सार, 63
13. गौर, जे.एस. (2017)। दिल्ली में उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की व्यावसायिक आकांक्षाओं पर बुद्धि के स्तर का प्रभाव। इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी, (जनवरी), 49(2), 139-148।

जसिंटा केरकेट्टा के कविता संग्रह "जड़ों की जमीन" में प्रतिरोध के विविध स्वर

कु.रेशम सोनकर
शोध छात्रा,हिन्दी विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

भूमिका:-वस्तुतः आदिवासी समाज में शुरु से वाचिक परंपरा अनवरत बहती रही है परन्तु विगत कई दशकों से लेखन की परंपरा नें भी मजबूत आगाज किया है जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी साहित्य लिखित रूप में हिन्दी भाषा के साहित्य संसार को समृद्ध किया है। गंगा सहाय मीणा जी आदिवासी साहित्य पर अपना विचार ब्यक्त करते हुए कहते हैं कि-"आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व और अस्तित्व के संकटों और उनके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उसके परिर्वतनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है, जो देश के मूल निवासियों के वंशजो के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करता है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और उनके जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्म निर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है।"[1]

परन्तु वंदना टेटे आदिवासी साहित्य को प्रतिरोध का साहित्य मानने से इंकार करती है और अपनी पुस्तक "आदिवासी साहित्यः परंपरा और प्रयोजन" में आदिवासी साहित्य पर अपना पक्ष रखते हुए कहती हैं कि "आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इनसान के उस दर्शन को अभिब्यक्त करने वाला साहित्य है जो यह मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतन, सभी कुछ सुन्दर है।"[2] वन्दना टेटे आगे कहती हैं कि ". . . आधुनिक आदिवासी साहित्य जिसकी काल परिधि औपनिवेशिक दिनों को छूती है, मूल रूप से असहमति का सृजन है। आदिवासी समाज उन मूल्यों से असहमत है जिससे दुनिया को अंततः नष्ट होना है। वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है।"[3]"यदि आधुनिक आदिवासी कविता की बात भी की जाय तो आदिवासी निश्चित रूप से अपना पृथक स्थान रखती है"।[4] "कविता आदिवासी साहित्य की प्रमुख विधा बन गयी है। . . . आदिवासी रचनाकारों की कविताएं आदिवासियों में पहचान के आन्दोलन और अपनी संस्कृति भाषा, जल, जंगल, जमीन और लाठा, जलावन को बचाने की मुहिम का हिस्सा है।"[5] अदिवासी साहित्य में कविता रचना की परंपरा पर प्रकाश डालते हुए गंगा सहाय मीणा कहते हैं कि "समकालीन लेखन में भी आदिवासी कविता की परंपरा काफी पुरानी है। हिंदी की पहली आदिवासी कवयित्री सुशीला समद हैं, 1930-40 के दशक में जिनके दो कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। उनका पहला काब्य संकलन 1934 में 'प्रलाप' नाम से छपा है। सुशीला समद के बाद 1966 में प्रकाशित दुलायचंद्र मुंडा का 'नव पल्लव' नाम से कविता मिलता है।"[6] आधुनिक आदिवासी कविताओं की रचनात्मकता पर प्रकाश डालते हुए हरीराम मीणा जी कहते हैं कि- "(आदिवासी) कविताएं आधुनिक काब्य जगत में अनिवार्य और गम्भीर हस्तक्षेप हैं। विषय, भाषा शिल्प और सन्देश के स्तर पर मुख्य धारा की समकालीन कविता से किसी भी रूप में कम नहीं। अपनी अलग पहचान रखते हुए भी ब्यापक लोक के यथार्थ के निकट हैं। ये आदिवासी स्वर की कविताएं केवल आदिवासी जीवनानुभव में सीमित रचनाएं नहीं हैं, प्रत्युत अंततः सम्पूर्ण मानवीय सरोकारों की अभिब्यक्ति हैं।"[7]आदिवासी स्त्री रचनाकारों के योगदान पर प्रकाश डालते हुए गंगा सहाय मीणा कहते हैं कि "आदिवासी साहित्य में स्त्री रचनाकारों और उनके मुद्दों की उपस्थिति शेष हिन्दी साहित्य से काफी अच्छी है। श्रम में बराबर की भागीदारी की वजह से स्त्री आदिवासी समाज में तुलनात्मक रूप में मजबूत स्थिति में रही है। साहित्य लेखन में भी उसने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया है।"[8] अगर आदिवासी प्रतिरोध की बात की जाय तो केदार प्रसाद मीणा कहते हैं कि "आदिवासियों का प्रतिरोध किसी सत्ता के लिए नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों की सदियों से निर्मित सृजनात्मकता को बचाने के लिए अधिक है। इससे भी बढ़कर सच यह है कि वे अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत हैं।"[9] प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जसिंटा केरकेट्टा के कविता संग्रह "जड़ों की जमीन" में चित्रित प्रतिरोध के विविध आयाम को दर्शाना है।

बीजशब्द:-प्रतिरोध,आदिवासी साहित्य, शहरीकरण, बाजारावाद, मशीनीकरण, विस्थापन।

मुख्य अंश:-जसिंटा केरकेट्टा हिन्दी साहित्य की आदिवासी लेखन परंपरा में एक मजबूत कड़ी हैं। झारखंड की आदिवासी हिन्दी कवित्रियों में सबसे युवा चेहरा जसिंटा केरकेट्टा की कविताओं में आदिवासी जीवन के विविध आयामों का चित्रण मिलता है। इनकी कविताओं आदिवासी सांस्कृतिक विरासत से लेकर मोबाइल की घंटी तक सफर दिखाई देता है। यथार्थ के रंग में सनी इनकी कविताएं आदिवासियत से ओतप्रोत हैं। इनकी कविताओं एक ओर मानव जगत, मानवेतर प्राणी जगत और प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों में एक सह-संबन्ध, सामूहिकता, जल, जंगल और जमीन के प्रति स्नेह, नारी और प्रकृति के बीच सहअस्तित्व, आदिवासी भाषा के पुनरूत्थान हेतु प्रयाश झलकता है, वहीं दूसरी ओर बाजारवाद, शहरीकरण, मशीनीकरण, भूमंडलीकरण, मानव उच्चता का बोध, राजनीतिक षड़यन्त्र के विरूद्ध प्रतिरोध दिखता है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जसिंटा केरकेट्टा के कविता संग्रह "जड़ों की जमीन" में संकलित कविताओं में प्रतिरोध के विविध आयामों का अध्ययन करना है। जसिंटा केरकेट्टा के कविता संग्रह "जड़ों की जमीन" आदिवासी दर्शन की आधारशिला पर रचित है और आदिवासियत की धड़कन कविताओं के रग-रग में प्रवाहित होती है। कविताओं में मानव जगत, मानवेतर प्राणी जगत और प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों में सामंजस्य इतना प्रगाढ़ है कि तीनों को अलग कर पाना असंभव है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव ही नहीं है। कविताओं में प्राकृतिक और मानवेतर जगत का मानवीकरण सभ्य समाज की परिकल्पना से परे किया गया है। जसिंटा केरकेट्टा के कविता संग्रह "जड़ों की जमीन" में संकलित कविताओं में प्रतिरोध के स्वर के कई आयाम हैं। बेसक कविताएं एक तरफ बाजारवाद, विकाश के नाम पर शहरीकरण और विस्थापन, भूमण्डलीकरण, स्त्री शोषण, आदिवासी के प्रति दीकू दृष्टिकोंण, जल, जंगल और जमीन अधिग्रहण, आदिवासियों का संस्कृतिकरण, राजनीतिक षड़यन्त्र का डटकर प्रतिरोध करती हैं तो दूसरी तरफ आदिवासियों का अपने सांस्कृतिक मूल्यों से पृथकता का भी विरोध करती हैं। जसिंटा केरकेट्टा आदिवासी अंचलों में विकाश के नाम पर चल रहे खेल को अच्छी तरह समझती हैं। उनको विकाश के पीछे की मनशा बखूबी पता है। पूंजीवादी संस्कृति का आदिवासी जीवन मूल्यों पर नकारात्मक प्रभाव की समझ भी उनसे परे नहीं है। विकाश के नाम असली मकसद प्राकृतिक संपदा पर कब्जा जमाना है जिसके लिए आदिवासियों को उनके अंचलों से विस्थापित किया जाता है। विस्थापन के बाद आदिवासी समुदाय जीविको पार्जन के लिए शहरों की ओर जाते हैं जहां पर उनका हर प्रकार से शोषण होता है और वे अपनी भाषायिक और सांस्कृतिक अस्मिता भी खो देते हैं। उनकी स्थिति धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का जैसे हो जाती है। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप पनपे बाजारवाद ने भी आदिवासी जीवन मूल्यों का दोहन किया है। जसिंटा केरकेट्टा इन सब के विरूद्ध आवाज उठाती हैं और जमकर विरोध जाहिर करती हैं। अगर हम बाजारवाद, विकाश के नाम पर शहरीकरण और विस्थापन, औद्योगिकीकरण तथा भूमण्डलीकरण के प्रति प्रतिरोध की बात करें तो मोटे तौर पर "आकाश में उगते कपाश", "बुझती मशालों के लिए", "चुप्पी", "कब्र", "तुम्हारे सारे पाप", "फैसलों का सच", "मौत का मसौदा", "वापसी", "अतीत की अस्थियां", "परवाह", "जड़ों की जमीन", "खूँटी पर टंगे फोन की घंटी", "पश्चिम का अश्वमेंघ", "शहर और गाय", और "जंगल कहता है", इत्यादि कविताएं को चिन्हित किया जा सकता है।आज आदिवासियों के विकाश के नाम पर धड़ल्ले से षड़यन्त्र हो रहा है। इस नियति पर प्रहार करते हुए जसिंटा अपनी कविता "मुझे कोई 'दिवस' चाहिए" में लिखती हैं कि-

"बिन बरसात तो सालेन भी/रोपा नहीं रोपता
मुझे भी तैयार करने हैं/वहाँ अपने खेत
जहाँ चल सकती हो मेरी रणनीति,/फल सकती हो मेरी राजनीति,
उग सकती हो फसल सपनों की,/में लगाऊँगा विकास के सपने
सालेन के गाँव में/बस, मुझे कोई दिवस चाहिए।"[10]

"आकाश में उगते कपाश" में कवित्री औद्योगिकीकरण पर ब्यंग कसते हुए कहती हैं कि अन्तहीन आकाश में मशीनों के उठते हुए धुंए से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कपाश उगा रहा है। समय के साथ मशीनीकरण के कारण अब ग्रामीण आदिवासी असहाय हो चुके हैं और उनकी उम्मीदे टूट चुकी हैं। बड़े-बड़े उद्योग स्थापित करने हेतु तमाम आदिम नस्लों का नरसंहार के कारण और खनन के कारण धरा रक्त रंजित हो गयी थी जो अब अपने मूल स्वरूप में लौट तो रही है परन्तु अब उस भूमि में उम्मीद और खुशी लाने की ताकत खत्म हो चुकी है जिसके कारण धनलोलुप अब नई भूमि तलाश रहे है-

"आदिम नस्लों के बहाये गए/रक्त की जमीन पर जमे थक्कों से
मिट्टी काली तो फिर हो रही है।/सिर्फ नहीं उग रहा तो उनमें
उजाला उगाने का विश्वास।9इसलिए जहर उगाने को
कुछ हाथों को है जमीन की तलाश।"[11]

विकाश के नाम पर बांध बनाकर नदियों के स्वतंत्र प्रवाह को रोका जा रहा है। इसका प्रातिरोध करते हुए जसिंटा कहती हैं कि "बँधते हुए बांध कह रहे हैं तुमसे/जब मैं टूटूँगा इस बार/ कसम से/ धो डालूंगा तुम्हारे सारे पाप।"[12] जंगलों को साफ करके इमारतें बनायी गयी और जंगलों के बीच से सड़के निकाली गयी। कवित्री अपनी कविता "शहर और गाय" में गायों का प्रतिबिम्ब लेकर गाँवों से शहर गए आदिवासी स्त्रियों की स्थिति ब्यक्त करती हैं और कहती हैं कि गायें शहरों की यह हकीकत जानकर कि उनके पास पेट भरने की औकात नहीं है अब "वे तलाशने लगी/अपने गाँव-घरों और चरागाहों के रास्ते,/पर बंद थे सारे रास्ते/ ऊँची इमारतों से।"[13] इतना ही नहीं कवित्री शहरों में विस्थापित आदिवासियों के बच्चों की दशा पर भी प्रकाश डालते हुए कहती हैं कि वे सुबह उठते ही कचरा के ढेरों से प्लास्टिक बीनने निकल जाते हैं। शहरों से गायब होती मानवता पर कुठाराघात करते हुए लिखती है-

"सड़क पर बेतहाशा भटकती हुई/उन्होंने पहली बार देखा
शहर में इंसान टाँग रहे हैं/इंसानों को पेड़ों पर
और पहली बार जाना/शहर के पास
घास उगाने की कोई ताकत नहीं है।"[14]

कविता "शहर की नाक" में जसिंटा केरकेट्टा शहरों से गायब होती इंसानियत और रूपये की बढ़ती कीमत को चित्रित करती हुई कहती हैं कि शहरों के पास आँखें नहीं हैं सिर्फ लम्बी नाक है। शहर में मनुष्यों की कीमत नहीं है पर मनुष्यों की शहर की कीमत है। शहर "नहीं जानता/क्या है आदमी होना,/ इसलिए इसका पहला पाठ यही है/ कि रूपयों के बिना/इस शहर में/ आदमी हो पाना मुश्किल है"।[15] शहरों में स्त्री जीवन संकटमय हैं, उनका अकेले चलना संभव नही है। शहर अपनी नाक से इंसान की गंध नहीं पहचानता इसलिए सड़क पर या गलियों में अकेले या झुंड में चलती लड़कियों को दूर ही सूंघकर उसी तरह टूट पड़ता है जैसे मांस के टुकड़े को देखकर कुत्तों का झुंड टूट पड़ता है। शहरी लोग अपने कौशल और ज्ञान की शेखी बघारते हुए आदिवासियों को पिछड़ा और असभ्य कहते हुए उन्हे हेय दृष्टि से देखते हैं। उन्हें इस बात का गर्व रहता है कि लंबी नाक सिर्फ उनके पास है। शहरी लोगो के इस दृष्टिकोंण पर प्रहार करते हुए जसिंटा केरकेट्टा लिखती हैं कि-

"जब हर चीज खड़ी हो एक साथ/अपने अनूठेपन पर बिना बोले
किसी की भिन्नता को/निम्नता की तराजू पर बिना तौले
तब क्या जरूरत है लंबी नाक की?/क्या इतना काफी नहीं
कि वह पहचानता है/पृथ्बी की आत्मा को
पहाड़ की आवज को/समय की पीड़ा को
जमीन की धमनियों को/दौड़ते रक्त के मर्म को
पृथ्बी की देह से उठती इंसानी गंध को।"[16]

जबरदस्ती छीने जाते जल, जंगल, और जमीन के विरोध में आदिवासियों के आन्दोलन को दबाने के लिए निर्दोष आदिवासियों को नक्सली बताकर गोलियों से जानवरों की तरह भून दिया जाता है और यह बता दिया जाता है कि यह कृत्य जनहित में जरूरी था। इसका विरोध करते हुए करते हुए जसिंटा लिखती हैं-

"मेरा पालतू कुत्ता/सिर्फ इस लिए मारा गया
क्योंकि खतरा देख वह भौंका था।
मारने से पहले उन्होंने/उसे पागल घोषित किया
और मुझे नक्सल..../जनहित में।"[17]

"मेरा अपराध क्या है?" नामक कविता में भी जसिंटा इसी तरह आदिवासियों के साथ मानवेतर प्राणियों की निर्मम हत्या का विरोध करते हुए लिखा है कि बस इतना ही पूछा था कि मेरा अपराध क्या है? इतने पर धांय की आवाज ने उसे मृतक बना दिया और बूटों ने घोंघ्घु को भी रौद दिया जो स्वतंत्र रूप से पूरे घर का विचरण करता था और बच्चों उसके साथ खेलते थे। अमानवीयता के मंजर ने बच्चों से दोनों को एक साथ छीन लिया। बच्चों को पता है कि एक मनगढंत अपराध कागजों पर रचकर उसके पिता की पीठ पर ठोंक दिया जाएगा। मगर घोंघ्घु की मौत का जवाब नहीं होगा उनके पास। कविता के अंत में जसिंटा सवाल पूछती हैं कि-

"प्रकृति से जुड़े लोग/और घोंघ्घु की तरह
प्रकृति से जुड़ी हर चीज/पूछती है अपनी हत्या पर
आखिर मेरा अपराध क्या है?"[18]

जसिंटा केरकेट्टा शहरी संस्कृति का खुलकर प्रतिरोध करती हैं और शहरों में आदिवासियों के साथ अत्याचार का मुखरता से विरोध करती हैं। अपनी कविता "शहर की नसों में" शहरी आदिवासियों और ग्रामीण आदिवासियों के बीच बढ़ रही खाई को रेखांकित करते हुए कहती हैं-

"उन दीवारों की गंध पहचान/जैसे ही खोलती हूँ मैं दरवाजा
वे सर फोड़ने लगती है मेरा/यह बताते हुए
कि मेरा खून अलग है उनसे,/छोड़ जाती हैं अधमरा मुझे
इन सवालों के बीच/कि क्यों हूँ मैं इस शहर में?
क्यों हूँ मैं इस पृथ्वी पर?"[19]

बहुत ही आश्चर्य कर देने वाली बात है कि जंगल में कुछ आदिवासी बस्तियों में पुलिस बल का पहरा लगा दिया है जिससे आदिवासी समुदाय को तरह-तरह से समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन जगहों पर आदिवासी समुदाय के साथ किया जाने वाला ब्यवहार उन्हे अपने ही क्षेत्र में पराये का एहसास दिलाता है। कितनी पीड़ा की बात है कि अपने ही गांव में घुसने से पहले पुलिस बल को परिचय पत्र दिखाना पड़ता है? इसका प्रतिरोध करते हुए कवित्री अपनी कविता "परिचय" में तीखा प्रहार करती हैं-

"जब लोग बात कर रहे होते हैं/हर तरह की आजादी पर,
तब जंगलों के अन्दर/अपने ही घरों में घुसने से पहले,
क्यों देना पड़ता है/बैठाए गए पहरेदारों को
अपना परिचय?"[20]

आदिवासियों को बिना जानकारी दिये उनके क्षेत्रों में विविध प्रकार के विकाश के माडल तैयार कर दिये जाते हैं और उनका पक्ष बिना जाने ही तरह-तरह की नीतियों को थोप दिया जाता है। सरकार की इस रवैये के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर जसिंटा केरकेट्टा ने "मौत का मसौदा" में बुलन्द किया है-

"मुझसे पूछे बिना तय हो चुकी है/मेरी खुशियों की परिभाषा
और उबलते हुए मेरा खून/पूछ रहा है मुझसे
खुशियों का कर वादा/कैसे तैयार कर सकता है
कोई तुम्हारे सामने ही/तुम्हारी मौत का सौदा?[21]

आदिवासी समुदाय के साथ दिन प्रति दिन यह दावा किया जा रहा है कि आदिवासी समुदायों का विकास किया जा रहा है परन्तु विकास की यह नीति उनके जीवन कमाने के साधन को छीन ले रही है। इस अमानवीय प्रताड़ना और झूठे दावों को बेनकाब करते हुए जसिंटा केरकेट्टा अपनी कविता "रोटी" में लिखती हैं-

"थप्पड़ मारते हुए/मुझे रोटी दी गई
आँसू के घूँट के साथ/हर निवाला मेरे गले से उतरा
और वे मंच से कहते हैं/हमने तुम्हे रोटी दी।[22]

मशीनीकरण के दौर में गरीब आदिवासी आज बेरोजगार हो चुके हैं। औद्योगीकरण के नाम आदिवासियों से उनकी मिट्टी छीन ली है। आदिवासी भोजन की तलाश में दर ब दर हो रहे हैं। इस औद्योगीकरण का असली चेहरा जसिंटा केरकेट्टा ने अपनी कविताएं "कब्र" और "पश्चिम का अश्वमेघ" में ब्यक्त किया है—

"भूख से मर चुकी/मिट्टी को मिट्टी देने में
जब ब्यस्त रहेंगे छोटे खेत/तब दूर देश से वे आएँगे

और बताएँगे कि/उनके पास रोटी है।''[23]

आदिवासियों की विवशता चरम पर है। सभ्य समाज उन्हें प्रताड़ित करता है परन्तु वे आत्म हत्या नहीं कर सकते क्योंकि उनकी आत्महत्या का प्रयाश संसार में हाहाकार मचा सकता है। "हत्या का अधिकार'' नामक कविता में लिखती हैं कि:-

"सब कुछ करने की अनुमति है तुम्हें/बस नहीं कर सकते तुम
उनके षड़यन्त्रों से हारकर/अपनी हत्या का प्रयास।
तुम्हारी हत्या का अधिकार/रख लिया है उन्होंने
सिर्फ अपने पास।''[24]

आदिवासी संस्कृति पर जबरदस्त प्रहार हुआ है। सांस्कृतिक आक्रमण के दौर में आदिवासी समाज अछूता नही रहा है। आदिवासी समाज अपनी परंम्पराओं और सांस्कृतिक पहचान से दूर जा रहे हैं। एक तरफ शहरीकरण और बाजारीकरण के कारण आदिवासी समाज की सांस्कृतिक विरासत को पहचानने का प्रयाश किया जा रहा है तो दूसरी तरफ आदिवासी समाज का एक बड़ा तबका अपने पुरखों के संघर्ष को भूलाकर विरोधी संस्कृति के आंचल में लिपटा हुआ सुख भोगने की लालशा में दौड़ रहा है। इस स्थिति पर प्रहार करते हुए जसिंटा केरकेट्टा अपनी कविता "सिदो-कान्हू और फिदेल के तीर'' में लिखती हैं:-[[**"आड़े-टेढ़े हाथों की अंगुलियाँ/हवा में तीर चला रहीं हैं।**
सिदो-कान्हू के सन् 1855 के/रक्त सने तीरों न भी समझ लिया है।
इसलिए घर की भीतरी दीवारों पर/युगों से टँगे वे आज
अचानक बहाने लगे हैं आँसू/फिदेल के चले जाने पर।''[25]

दीकुओं के जमीनखोरी और आदिवासियों के प्रति बर्बरतापूर्ण रवैये का पर्दाफाश करते जसिंटा अपनी कविता ''जड़ों की जमीन'' में लिखती हैं कि "वे पेड़ों को बर्दाश्त नहीं करते/क्योंकि उनकी जड़े जमीन माँगती हैं।''[26]इस प्रकार जसिंटा केरकेट्टा की "जड़ों की जमीन'' कविता संग्रह में संकलित कविताओं में केवल आदिवासी स्त्री जीवन की ही नहीं अपितु संपूर्ण आदिवासी समाज के यातनापूर्ण जीवन के विरुद्ध संघर्ष के विविध स्वर मुखर होते हैं। यह सत्य है कि तमाम कविताओं में यह संघर्ष उतना तीव्र नहीं है जितना कि निर्मला पुतुल की कवितओं में दिखता है परन्तु इसका प्रभाव पाठकों पर तनिक भी कम नहीं है। कविताएं आदिवासी जीवन की समस्याओं में सनी बहुत ही प्रभावी हैं और मानव के मानसिक पटल पर आदिवासी जीवन के संघर्षों का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित करती हैं।

****

संदर्भ:-

1.गंगा सहाय मीणा. आदिवासी चिंतन की भूमिका. अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली: 2017. पृष्ठ 42
2. वन्दना टेटे. आदिवासी साहित्य: परंपरा और प्रयोजन. नोशन प्रेस, इंडिया, 2021. पृष्ठ 121
3. वही, पृष्ठ 122
4. हरी राम मीणा (सं). समकालीन आदिवासी कविता. अलख प्रकाशन, जयपुर, 2013. पृष्ठ 08
5. गंगा सहाय मीणा. आदिवासी और हिन्दी उपन्यास: अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष. अनन्य प्रकाशन, दिलली, 2019, प्रथम संस्करण 2016. पृष्ठ 30
6. आदिवासी चिंतन की भूमिका. पृष्ठ 51
7. समकालीन आदिवासी कविता. अलख प्रकाशन, जयपुर, 2013. पृष्ठ 14
8. आदिवासी चिंतन की भूमिका. पृष्ठ 92
9. केदार प्रसाद मीणा. आदिवासी प्रतिरोध. अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 13
10. जसिंटा केरकेट्टा. जड़ों की जमीन. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2018 पृष्ठ 26
11. वही पृष्ठ 40
12. वही "तुम्हारे सारे पाप'' पृष्ठ 162
13. वही पृष्ठ 46
14. वही पृष्ठ 48
15. वही पृष्ठ 56
16. वही "शहर की नाक'' पृष्ठ 58
17. वही "जनहित में'' पृष्ठ 158
18. वही "मेरा अपराध क्या है?'' पृष्ठ 32
19. वही पृष्ठ 54
20. वही पृष्ठ 136
21. वही पृष्ठ 138
22. वही पृष्ठ 146
23. वही "पश्चिम का अश्वमेघ'' पृष्ठ 150
24. वही पृष्ठ 62
25. वही पृष्ठ 68
26. वही पृष्ठ 166

भारतीय शिक्षा में स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन

डॉ.हलधर यादव
शिक्षा संकाय महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

ओमपाल सिंह
अध्येता शिक्षा संकाय महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय लखनऊ

1.1 प्रस्तावना:-भारतीय शिक्षा का इतिहास बहुत विस्तृत एवं व्यापक है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय समाज का स्वरूप एवं आवश्यकतायें परिवर्तित होती रही हैं। इस परिवर्तन के साथ ही शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन आया है। इस कथन को ध्यान में रखकर भारतीय इतिहास को प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक काल में विभक्त किया गया है। शिक्षा समाज का गतिशील अंग है। समाज के गतिशील होने के कारण उनकी आवश्यकतायें परिवर्तित होती रहती हैं। इन्हीं की पूर्ति के निमित शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। समाज का स्वरूप देश और काल की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। देश विरोध की सामाजिक आवश्यकताओं एवं मान्यतायें अन्य देश से भिन्न होती है, अतएव शिक्षा के स्वरूप में भी भिन्नता आ जाती है। काल के आधार पर देश की आवश्यकताओं में परिवर्तन होने के कारण उसकी सामाजिक संरचना में परिवर्तन हो सकता है। इसका कारण देश-विदेश के एक युग में ही शिक्षा का स्वरूप एवं आकार दूसरे तरह का हो सकता है और दूसरे काल में दूसरे तरह का। अतीत, वर्तमान और भविष्य समाज के अनवरत प्रवाह पर घटनाओं को निश्चित करने की विधि मात्र है। इतिहास के द्रष्टव्य परिवर्तनों एवं नवीनताओं में अन्तर देखना अत्यावश्यक हो जाता है। ऐसी ही स्थिति में वर्तमान का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जा सकता है।

प्राचीन युग में स्पष्टतः वैदिक काल का प्रारम्भ से लेकर 600 ई0 पू0 तक एक विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था रही। उस शिक्षा का तत्कालीन प्रभाव था कि समाज में शिक्षा प्रक्रिया में न्यूनतम कुरीतियां थी। परन्तु आज ऐसा लगता है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में कहीं गम्भीर त्रुटि है। वर्तमान समाज में व्याप्त शिक्षा सम्बन्धी कुरीतियों को दूर करने हेतु हमारे पास कोई मार्ग ही नहीं बचा है सिवाय प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा बताये गये मार्गों एवं सिद्धान्तों के अनुकरण करने के। उसी प्राचीन परम्परा के एक दर्शन को स्वामी रामदेव ने नवीन कलेवर प्रदान करते हुए जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है जिसके फलस्वरूप जनता उनकी तरफ स्वाभाविक रूप से खिचती चली आ रही है। स्वामी रामदेव जी ने अपने अनवरत प्रयासों, अकाट्य तर्कों एवं प्राचीन भारतीय दर्शन की सरल एवं वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत कर जन-साधारण से सीधे, सहज सम्बन्ध स्थापित कर उसे प्राचीन भारतीय शिक्षा की ओर वापस मोड़ दिया है।

वैदिक कालीन शिक्षा हमारी प्राचीनतम संस्कृति है। प्राचीन भारत की यह विशेषता रही कि इसका निर्माण राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धार्मिक क्षेत्र में हुआ। भारतीय संस्कृति धर्म की भावनाओं से ओत-प्रोत है। हमारे पूर्वजों ने जीवन को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा। ''वसुधैव -कुटुम्बकम'ही उनका आदर्श था। ''सर्व भूत हितेरतः उनका कर्तव्य था। शिक्षा द्वारा व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष की प्राप्ति करता था। मोक्ष प्राप्त करना ही जीवन का उद्देश्य था। इसी दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा के अर्थ तथा उद्देश्य निर्धारित हुए।

वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था समस्याओं के दौर से गुजर रही है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत भी कतिपय ऐसी ही समस्याएँ रही होंगी। परन्तु ,हमारे तत्कालीन आचार्यों ने अपने ज्ञान, अनुभव तथा प्रशासनिक क्षमता के द्वारा विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का निराकरण एवं उन्मूलन करते हुए सुदृढ़ शिक्षा संगठन एवं परम्पराओं को विकसित किया। हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम वैदिक शिक्षा दर्शन एवं विधियों का अध्ययन करें तथा यह जानने का प्रयास करे कि वर्तमान शिक्षा सम्बन्धी कठिनाइयों एवं समस्याओं को हल करने में वैदिक शिक्षा दर्शन किस सीमा तक सहायक सिद्ध हो सकती है।

आज ऐसा लगता है हमारी शिक्षा में कहीं गम्भीर त्रुटि है। भारतवर्ष की पवित्र भूमि सदियों से अपनी अध्यात्मिक विशिष्टता एवं ऊर्जा के लिये विश्व विख्यात है। यहां पर समय-समय पर अनेक ऋषि-मुनियों ने यथा वेदव्यास, आदि शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द,स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा महर्षि अरविन्द

आदि ने अपने जीवन, अपने आचरण, अपने विचारों एवं कार्यों से समूची मानवता तथा शिक्षा को समपोषित एवं आलोकित कर उसे सही दिशा देने का महान् कार्य सम्पन्न किया है। उसी ऋषि परम्परा की कड़ी में एक नया नाम है- स्वामी रामदेव।

1.1.2 वैदिक कालीन शैक्षिक विचार

वैदिक कालीन शैक्षिक विचारों को निम्नलिखित शिर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है-**वैदिक काल के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य**

सा विद्या या विमुक्तये' उक्त कथन द्वारा शिक्षा को मोक्ष प्राप्त करने का साधन व प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। वैदिक समाज के प्रारम्भिक चरण में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त न्यून था। ब्राह्मण वर्ग का ही इस पर एकाधिकार था। ज्ञान के प्रसार प्रचार का अधिकार उन्हीं को था तथा यज्ञ एवं धार्मिक अनुष्ठान् उन्हीं के द्वारा सम्पन्न होते थे। शैक्षकीय व्यवसाय को अपनाये जाने के कारण अध्ययन अध्यापन उनके लिये आवश्यक था।

चतुर्थ वर्ण शूद्रों का था। इन्हें धर्मग्रन्थों के अध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं था लेकिन प्रतिभावान छात्रों के लिए गुरूकुल के द्वारा खुले हुए थे। इनका मुख्य कार्य धर्म-द्विजों की पिरचर्या करना था इस कारण यह वर्ग निज गृहों में परम्परागत व्यवसायों में प्रशिक्षण प्राप्त करके जीवकोपार्जन करता था।

1.1.3 वैदिककालीन शिक्षा के उद्देष्य

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस समय की शिक्षा पूर्ण रूप से धर्म पर आधारित थी और जीवन का प्रमुख उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति था। इसके लिये वेद, धार्मिक ग्रन्थों एवं इनमें वर्णित विषयों का अध्ययन आवश्यक एवं वांछनीय था। इनके अध्ययन के लिए चारित्रिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक गुणों की आवश्यकता होती थी।

''ईष्वर भक्ति तथा धार्मिक भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक, सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुषलता की उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार प्राचीन भारत में षिक्षा के उद्देष्य और आदर्ष थे।'(डा0 अल्तेकर)

यहाँ पर शोधकत्र्ता ने शिक्षा के विपुल उद्देश्यों पर निम्न रूप से प्रकाश डाला है-

(अ) मोक्ष की प्राप्ति

वैदिक काल में शिक्षा को मोक्ष प्राप्ति के एक साधन के रूप में माना गया था।

''प्राचीन समय में शिक्षा केवल शिक्षा प्राप्त करना न था। शिक्षा धर्म के लिए तथा धर्म का एक अंग थी। शिक्षा मोक्ष प्राप्त करने अथवा आत्मानुभूति का साधन थी। यही जीवन का परम लक्ष्य था।' (राधा कुमुद मुखर्जी)

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिये परा एवं अपरा विद्याओं का ज्ञान अपरिहार्य था।

(ब) चारित्रिक विकास

वैदिक युगीन शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत विद्यार्थी में चरित्र निर्माण पर सर्वाधिक बल दिया जाता था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए छात्रों को धार्मिक तथा नैतिक उपदेश दिये जाते थे और उन्हें स्वस्थ्य वातावरण में रखा जाता था। इस समय शिक्षा गुरूओं द्वारा आश्रमों में दी जाती थी और गुरू अपने चरित्र एवं व्यवहार से अपने शिष्यों को प्रभावित करते हुये उनके चरित्र के निर्माण का प्रयास करते थे।

1.1.4 पाठ्यक्रम

वैदिक कालीन शिक्षा संगठन में धार्मिक पाठ्यक्रम का विशेष महत्व था। इसके प्रमुख सेतु चतुर्वेद थे। धर्म को आधार मानते हुये लौकिक विषयों का ज्ञान भी छात्रों को दिया जाता था जहाँ एक ओर छात्रों को वेद मंत्र, यज्ञ विधि, पुराण, उपनिषद् और ब्राह्मण आदि धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता था वहीं उन्हें इन ग्रन्थों का सही ढंग से अध्ययन करने के लिए व्याकरण, उच्चारण और छन्द शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। उन्हें मंत्रों को कंठस्थ कराया जाता था।

इस समय तक गणित, ज्योतिष, काव्य, इतिहास, दर्शन, राजनीति शास्त्र व अर्थशास्त्र, कृषि विज्ञान, आयुर्वेद, शल्य विज्ञान, सैनिक शिक्षा तथा वास्तुकला आदि विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया था। इस तथ्य की पुष्टि छान्दोग्य उपनिषद् के इस कहानी से होती है जिसमें स्नातन कुमार के प्रश्न के उत्तर में नारद जी कहते है-

1.1.4.1 धार्मिक विषयक पाठ्यक्रम (वेद)

आर्यो का जीवन दर्शन मूलतः मोक्ष से मन्दप्राणित था। इसके लिए याज्ञिक अनुष्ठान् आवश्यक एवं अपरिहार्य थे क्योंकि वैदिक कालीन शिक्षा संगठन में धार्मिक पाठ्यक्रम का विशेष महत्व था। धार्मिक पाठ्यक्रमों के प्रमुख स्रोत चतुर्वेद थे। याज्ञिक कर्मकाण्डों से सम्बन्धित सिद्वान्तों एवं क्रियाओं के प्रतिपादन के लिये ऋग्वेद, यर्युवेद तथा सामवेद का अध्ययन अध्यापन आवश्यक था। ऋग्वेद तथा सामवेद आदि के अध्ययन के द्वारा ही याज्ञिक अनुष्ठान् विधिवत सम्पन्न हो पाते थे तथा मनुष्य के लिए मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता था। वैदिक काल में इन्हें त्रयी दिशा विद्या के नाम से जाना जाता था इनके अध्ययन को स्वस्थ्य कहते थे तथा इनका अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को क्षेत्रिय कहते थे। इनमें दक्षता प्राप्त करने के पश्चात उन्हें त्रिषुक की संज्ञा प्रदान की जाती थी।

1.2 सम्बन्धित शोध साहित्य का सर्वेक्षण

अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का निर्देशन है। अतीत में किया गया कार्य भावी कार्य के लिए दिशा निर्देश करता है। अनुभव कार्य की प्रकृति एवं प्रक्रिया की स्पष्टता को विकसित करता है। ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसा होता है। खोज एवं अनुसंधान की एक सतत् प्रक्रिया है। इसको निरंतर गतिमान रखने में अतीत के कार्यो की समीक्षा अनिवार्य रूप से भाग लेती हैं। सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के बिना अनुसंधानकत्र्ता का कार्य अन्धे के डंडे का सहारा जैसा लक्ष्यहीन कार्य होगा।

गुड, बार तथा स्केटस सम्बन्धित साहित्य के लक्ष्यों का विश्लेषण निम्न प्रकार से करते हैं -

यह प्रदर्शित करने के लिए कि बिना आगामी अन्वेषण किये ही क्या उपलब्ध साक्ष्य प्राप्त समस्या का समाधान उपयुक्त ढंग से कर सकता है ? इस प्रकार पुनरावृत्ति होने का निवारण हो जाता है।

समस्या के समाधान की दृष्टि से उपयोगी विचार सिद्वान्त अथवा परिकल्पनाएं उपलब्ध करना।

परिणामों की व्याख्या करने की दृष्टि से उपयोगी तथा तुलनात्मक दस्तों की खोज करना।

शोधकत्र्ता की सामान्य विद्वता में योग प्रदान करना।

अग्रवाल शिल्पीने ''आचार्य रजनीश के शैक्षिक विचारों की प्रासांगिकता'पर शोधकार्य किया। अपने अध्ययन में इन्होंने पाया कि आधुनिक समय में इनके विचार प्रसांगिक हैं (अग्रवाल शिल्पी 2009)।

''आचार्य विनोवा भावे के आधुनिक भारतीय शिक्षा में उपादेयता'विषय पर विपिन ने शोध कार्य किया और पाया कि आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक विचार वर्तमान समय में उपादेय है (कुमार विपिन 2009)।

उपरोक्त सर्वेक्षणात्मक कार्यो की विवेचना से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में अब तक जितने भी अनुसंधान कार्य हुए है उन सभी में वैदिक कालीन शिक्षा दर्शन से हमारे देश में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, किन्तु अनुसंधान की दृष्टि से उनका तुलनात्मक अध्ययन स्वामी रामदेव जी के सन्दर्भ में नहीं हुआ है। अतः शोधकत्र्ता द्वारा उक्त शीर्षक पर गहन विश्लेषण के साथ सम्बन्धित विषय पर अनुसन्धान हेतु शीर्षक का चयन किया गया है।

1.3 समस्या कथन

वर्तमान शोध समस्या को स्पष्ट रूप से निम्न शीर्षक के रूप में प्रस्तुत-'स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन है।

1.4 उद्देश्य

निम्नलिखित उद्देश्यों के आधार पर अध्ययन किया जाएगा -

वैदिक कालीन शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना।

स्वामी रामदेव जी के दर्शन में निहित शिक्षा सम्बन्धी विचारों को सूत्रबद्ध करना।

वैदिक कालीन और स्वामी रामदेव के शिक्षा दर्शन की क्रमबद्ध एवं तुलनात्मक विवचेना करना।

वर्तमान परिस्थितियों के अध्ययनों से स्पष्ट है कि वर्तमान मानव समाज विभिन्न प्रकार के प्रयोग के दौर से गुजर रहा है। हम यह अनुभव करते हैं कि विगत् दो शताब्दियों से हमने विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में काफी प्रगति कर ली है लेकिन हमारी प्रगति की तुलना में इसके द्वारा इससे कहीं अधिक समस्यायें उत्पन्न हुई है। यह स्पष्ट तौर पर अनुभव किया जा चुका है कि व्यक्तित्व निर्माण व समाज का विकास एक दूसरे से अलग नहीं वरन् एक ही प्रक्रिया है। यही करण है आज पश्चिमी देश पुनः भारतीय योग की तरफ आकर्षित हो रहें है। स्वामी रामदेव का मत है कि समस्या का निराकरण तब

तक नहीं हो सकता है जब तब कि हम सिर्फ यह सोचते रहें कि समस्या की जड़ दूसरे हैं न कि हम। निश्चित रूप से यदि इस विचार पर समाज का निर्माण होगा जैसा कि वह आज हो रहा है तो नींव ही गलत होगी तो समाज की दिशा व दशा का क्या कहना। यही करण है कि हमें प्रत्येक महत्व की बात को एक वैयक्तिक विकास से जोड़ना होगा। इसके लिए वैयक्तिक विकास के महत्व को समझना होगा क्योंकि समाज वस्तुतः कई शक्ति से ही मिलकर बना है जिसमें सबका समान महत्व है। इस प्रकार समाज में शांति और समृद्धि, प्रसन्न और अनुशासित व्यक्तियों द्वारा ही सम्भव है।

स्वामी रामदेव का मानना कि भोगवाद के अन्धे अनुकरण ने हमारे समाज का सर्वनाश कर दिया है। हम बिना जाँचे-परखे उनके रीति-रिवाज, उनके मूल्य व उनकी अवधारणायें स्वीकार करते जा रहें हैं और अपनी सांस्कृतिक मौलिकता व अपना अस्तित्व नष्ट करने जा रहे हैं। किसी भी समाज की अच्छाईयां स्वीकार करने में किसी बौद्धिक व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हमारे वेदों में भी कहा गया है कि विश्व में कही से भी किसी से भी सद्गुणों को ग्रहण करो, लेकिन किसी समाज या संस्कृति का कूड़-कचरा भी नहीं आयात किया जाना चाहिए।

योग को स्कूल मं अलग से शामिल करके बच्चों को उसके लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। लेकिन प्राइमरी कक्षा अर्थात् 5 से 14 वर्ष तक की आयु तक बच्चों को उनकी बाल सुलभ प्रकृति के चलते योगासनों की आवश्यकता नहीं है। अतः इस स्तर पर उन्हें मात्र अष्टांग योग के दो प्रमुख अंगों यथा यम और नियमों की ही शिक्षा विभिन्न कहानियों आदि के माध्यम से दी जानी चाहिये। वर्तमान में केन्द्रीय विद्यालय में प्रचलित योग शिक्षा पर अनुसंधान की व्यापक तौर पर आवश्यकता है। जिसके आधार पर इसे सुचारू रूप से चलाया जा सके। योग को मन्त्रालय स्तर पर मान्यता देकर इसके लिए विशेष व्यवस्था का प्रावधान किया जाना चाहिए।

स्वामी रामदेव का मत है कि शिक्षा वह नहीं जो स्कूलों में पढ़ायी जाये और व्यक्ति के व्यवहार में कोई परिवर्तन न लाये। बल्कि शिक्षा वह है जो व्यक्ति का जीवन रूपान्तरित कर दे, उसकी सोच बदल दे, उसकी जीवन शैली बदल दे। आज स्वामी रामदेव ने योग शिक्षा को इतना सरल, वैज्ञानिक और व्यावहारिक बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत किया कि उसकी उपयोगिता को देखते हुये समाज ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। स्वामी रामदेव के विचारों ने इस देश में योग क्रान्ति ला दी है। लोग आहार-विहार में संयम रखने लगे हैं। पथ्य -अपथ्य का विचार करके भोजन ग्रहण करते हैं व ब्रह्म मुहुर्त की बेला में योग एवं प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। यह बात स्वामी रामदेव की प्रभाविता, प्रमाणिकता एवं उपयोगिता सिद्ध करती है। स्वामी रामदेव के प्रभाव से राजस्थान, बिहार, गुजरात एवं कई अन्य राज्यों ने स्कूली शिक्षा में योग को पाठ्यक्रम में स्थान दिया है।

उ०प्र० में भी शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया गया है तथा शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्वामी रामदेव की शिक्षाओं को शामिल किया गया है।

1.5 अध्ययन सामग्री का चयन

इसके लिए विभिन्न प्रकार की पुस्तकें, सन्दर्भ-ग्रंथ,पत्र-पत्रिकाएँ,शिक्षाशालाओं के विचार एवं दूरदर्शन चैनलों से उपलब्ध सामग्री को आधार बनाया जाएगा। इसके अलावा अध्ययनकत्ता द्वारा मेरठ, लखनऊ एवंहरिद्वारके विभिन्न शैक्षिक संस्थानों के पुस्तकालयों से उपलब्ध सामग्रीयों का अध्ययन तथा स्वामी रामदेव द्वारा संचालित पतंजलि योग पीठ के विभिन्न केन्द्रों के शैक्षिक भ्रमण से उपलब्ध तथ्यों को आधार बनाया जाएगा।

1.5.1 अध्ययन की शोध विधि

शोध, मानव को प्रगति के पथ पर ले जाने वाला एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक साधन है। यह ज्ञान की खोज वैज्ञानिक ढंग से करने की प्रक्रिया है। वास्तव में अनुसंधान एक प्रक्रिया है जिसमें प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर किसी समस्या का विश्वसनीय समाधान ज्ञात किया जाात है। अनुसंधान में नवीन तथ्यों की खोज की जाती है तथा नवीन सत्यों का प्रतिपादन किया जाता है। शोधकार्य द्वारा प्राचीन प्रत्ययों तथा सत्यों का नवीन अर्थापन किया जाता है। ''अनुसंधान अधिक औपचारिक, व्यवस्थित तथा गहन प्रक्रिया है जिसमें वैज्ञानिक विधि विश्लेषण को प्रयुक्त किया जाता है। अनुसंधान में व्यवस्थित स्वरूप को सम्मिलित किया जाता है जिसके फलस्वरूप निष्कर्ष निकाले जाते हैं और उनका औपचारिक आलेख तैयार किया जाता है (वेस्ट, जान डब्ल्यू0,1963)।'इस समस्या के अध्ययन हेतु ऐतिहासिक सर्वेक्षण विधि व दार्शनिक अनुसंधान विधि को संयुक्त रूप में अपनाया गया है। इस विधि के अनुरूप स्वामी रामदेव तथा वैदिक काल के सम्बन्ध में उपलब्धि साहित्य प्रतिवेदन, उनके द्वारा लिखित पुस्तकें तथा शिक्षा सम्मेलनों एवं समितियों में उनके विचारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण करके विचारों में निहित मूल्यों का सत्यापन भी किया गया है।

1.5.2 ऐतिहासिक अनुसंधान

इतिहास व्यक्ति की उपलब्धियों का सार्थक प्रमाण है। यह व्यक्तियों, घटनाओं समय तथा स्थानों के बीच सम्बन्धों का तथ्यात्मक विवरण है। ऐतिहासिक समस्याओं के अन्वेषण में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग ऐतिहासिक अनुसंधान है। इसमें समस्या की सीमायें एवं पहचान, परिकल्पनाओं का निर्माण, आंकडों का संग्रह, सत्यापन, सप्रमाणता एंव विश्लेषण, परिकल्पना की जाँच एवं ऐतिहासिक विवरण का आलेख निहित होता है।

****

1.6 निष्कर्ष:-

उपरोक्त अध्ययनोपरान्त शोधकत्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि-

स्वामी रामदेव के विचारों को शिक्षा के पहलु को ध्यान में रखते हुए बृहत अनुसंधान कार्य किया जाये।

उनकी शैली एवं प्रभाव का अध्ययन किया जाये ताकि कक्षा शिक्षण को और प्रभावशाली बनाया जा सके।

स्कूली शिक्षा के विभिन्न कक्षाओं के स्तरानुरूप स्वामी रामदेव से विचार करने के बाद योग सम्बन्धित पाठ्यक्रमों का विकास किया जाये।

सम्पूर्ण देश के विद्याल में योग शिक्षा को अनिवार्य स्थान दिया जाये। योग को शिक्षा में अलग से सामान्य शिक्षा के रूप में शामिल किया जाना चाहिए न कि शारीरिक शिक्षा के रूप में एक भाग के तहत।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. गुड,सी वी,बार ए0 एस स्केट्स डी ई0 (1936) मेथोडोलोजी आफ एजुकेशनल रिसर्च, एपलेटान काण्ट्री को0 इन्क न्यूयार्क।
2. वेस्ट,जे0डब्लू0(1963) रिसर्च इन एजुकेशन,नई दिल्ली प्रंटिस हाल आफ इण्डिया प्रा0लि0।
3. कर्लिगर एफ0एन0(1969) फाउन्डेशन आफ विहेवियर रिसर्च एपलेटान काण्ट्री को0 इन्क न्यूयार्क।
4. ओड0 एल0 के0(2004) शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
5. कपिल,एच0 के0(2003) अनुसन्धान विधियां, व्यवहापरक विज्ञानों में हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन,आगरा।
6. कौल, लोकेश (2004) शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस लि0, नई दिल्ली।
7. लाल रमनबिहारी (1997) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तौगी पब्लिकेशन, मेरठ।
8. शर्मा, आर0एए0 (2006) शिक्षा अनुसन्धान, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
9. विश्वकमार्, वी0 पी0 (1994) ''सामान्य एवं अन्धे बालक बालिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन'क्षेत्रिय शिक्षा संस्थान (एन0सी0ई0आर0टी0) अजमेर द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती वि0 वि0 अजमेर को समर्पित, प्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध पेज 48-89
10. वेस्ट जान डब्यू एवं जेम्स वी0कान (2003) रिसर्च इन एजूकेशन, प्रिन्टिस हाल पब्लिकेशन लि0, दिल्ली।
11. स्वामी रामदेव (2004) योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
12. स्वामी रामदेव (2004) औषध दर्शन, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
13. स्वामी रामदेव (2004) प्राणायाम रहस्य, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
14. स्वामी रामदेव (2005) योग दर्शन, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार।
15. स्वामी रामदेव (2005) मोटापा व मधुमेह के लिए योग, दिव्य प्रकाशन हरिद्वार।

मुक्तिबोध का गद्य : भाषा एवं शिल्पगत परिप्रेक्ष्य

डॉ.लक्ष्मीकान्त चंदेला
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय छिंदवाड़ा, (म.प्र.) मोबा. 9993458191

सारांश – मुक्तिबोध की भाषा एवं शिल्प-संवेदना दुनियादारी की वह तमीज है जो सत्ता-संघर्ष, धर्म और सिद्धांत के तरीके ही नहीं मुखौटा बदलने की शिक्षा देते हैं तथा **'हो सके तो हाथ से अच्छी चीज बन जाये'** का प्रयास करते हैं। ऐसी आग्रही वृत्ति लिए मुक्तिबोध की भाषा व शिल्प हमें **'अपनी सूरत दिल में देखने की तमीज'** देती है, जो 'नभो अलाप' की लय में व्यंजित है। इस तरह भाषा और शिल्प के परिप्रेक्ष्य में मुक्तिबोध का गद्य समय के साथ प्रवृत्तियों को बदलने का स्वानुशासन है।

बीज शब्द – वृत्ति-प्रवृत्ति, भाषा-सिद्धांत, संवेदना और समाज

उद्देश्य – मुक्तिबोध अपनी भाषा और शिल्प को एक खास तरह के संस्कारों से गढ़ते हैं जिसमें **'दुनिया यूं ही चलती रहेगी नहीं, ऐसी चलती है दुनियादारी की तरह'** का व्यापक परिप्रेक्ष्य निहित होता है। निश्चित ही उनके गद्य में भाषा और शिल्प का परिप्रेक्ष्य बहुत व्यापक है, गोया -

-भाषा संसार को व्यापक बनाना।
- मुखौटा बदलने की आग्रही प्रवृत्ति ।
-यथार्थवादी बिंब और प्रतीक।
- पुराने में नयापन भरना तथा जीवन के वास्तविक कारणों का आकलन करना।

महत्व -मुक्तिबोध की भाषा और शिल्प बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके लिए ये सच्चाई को समक्ष लाने के उपादान हैं। कहा भी गया है कि ''सिर्फ सच्चाई आदमी को कुछ नहीं दे पाती, सच्चाई को सामने लाने के लिए जोर और ताकत की जरूरत होती है।'' फलत: मुक्तिबोध की भाषा और शिल्प में यह संकल्प ध्वनित है जिससे अपनी कविता में कथा का-सा बोध तथा कविता का-सा मन गद्य में भर पाते हैं। निश्चित ही मनुष्य की भावनाओं का मानवीकरण करते हुए चित्र नहीं चरित्र के लिए उचित वातावरण निर्मित करते हैं।

प्रस्तावना - 'नभो आलाप' की लय से भाषा संसार को व्यापक बनाने वाले मुक्तिबोध का शिल्प-जगत् बहुत ही वैविध्य और वैचित्र्यपूर्ण है। इसी से भाषा में एकरसता और शैली में रोचकता व प्रांजलता आई है। अन्तर्वस्तु का सुगठन भी उसी चमत्कार से कर पाते हैं और फैंटेसी के साथ नया बिंबलोक रचते है, भर पाते हैं प्रतीकात्मक अर्थ। इस लय से मुक्तिबोध का यथार्थबोध भी समय के साथ स्वमेव बदलता जाता है। बिंब और प्रतीक का लोक अत्यंत यथार्थ बन पाता है और कथा-शैली सुष्ठु होती चली जाती है। यह सच है कि ''इतिहास जो वजाहिर तो बदलता है लेकिन दरअसल सिर्फ अपने आप को दोहराता है। धर्म बदले, सिद्धांत बदले, सत्ता के लिए संघर्ष के तरीके बदले लेकिन सत्ता का बुनियादी रूप नहीं बदला। मुखौटे बदलते हैं प्रवृत्तियां नहीं बदलतीं।''[1] इन सबका बिंबलोक रचते हुए व्यापक बन पाया है मुक्तिबोध का गद्य संसार।

मुक्तिबोध एक साथ कवि-कथाकार हैं तभी तो उनका 'नभो आलाप' कविता-कहानियों में एक साथ व्यंजित होता है जिससे चित्रण सशक्त एवं संवेदन क्षमता से विषय वास्तविक बन पाता है। शमशेर बहादुर सिंह इसी वास्तविकता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- ''इनमें लय और सुर और ताल की बारीकियां न ढूंढ़ो। ये लिपियों की भावुकता नहीं, इनमें विचार गुनगुनाते हैं। इनमें तस्वीरें बहुत ही जागे हुए होश की हैं। इनका अर्थ ... प्रेम का आलिंगन नहीं, विलाप नहीं, पैमानों के इशारे नहीं, भींगते रातों, करवटें लेती सुबहों की अंगड़ाइयां और कसमसाहटें नहीं। यहां देश-विदेश के इमेजों के उलझाव नहीं। 'फरार' नहीं; इंकलाब नहीं। इनका रोमान दर्दनाक है और आज का है। बिल्कुल आज का।''[2] वास्तव में कथा का-सा बोध कविता में तथा कविता का-सा मन कथा-संसार में भर पाते हैं। ऐसा भाषिक अनुशासन और शिल्प वैचित्र्य मुक्तिबोध जैसे कथाकार के बूते की बात है।प्रश्न है मुक्तिबोध के गद्य की भाषा-शैली कैसी है? उसका सरोकार क्या है? तथा भाषा-शैली का परिप्रेक्ष्य क्या है? अगर भाषा की बात करें तो गंगा प्रसाद विमल ठीक ही लिखते हैं- ''मुक्तिबोध सारी बुर्जुआ कला-संस्कृति का निषेध करते हुए जन चेतना के उस सर्वव्यापी असर की खोज करते हुए लगते हैं जिसे भाषा का अटपटापन और दरारूढ़ कल्पनाएं ही व्यक्त कर सकती हैं।''[3] हां, मगर सरोकार व्यापक है। शैली में प्रवाह है। यह सब भाषा में फैंटेसी, बिंब और प्रतीकों के कारण आ पाया है तथा परिप्रेक्ष्य भी स्पष्ट हो पाता है। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मुक्तिबोध की भाषा का परिप्रेक्ष्य कभी भी केवल फैंटेसी, बिंब और प्रतीकों का सशक्त बनाना नहीं रहा बल्कि यथार्थवादी शिल्प को अपनाते हुए मानवीय पीड़ाओं, संत्रासों तथा जीवनानुभवों को व्यक्त करना है।

वैसे भाषा का परिप्रेक्ष्य कभी भी विद्रूप नहीं होता बल्कि पुराने में नयापन भरना है तथा जीवन के वास्तविक कारणों का आकलन होता है। मेरी लघु दृष्टि में कहूं तो मुक्तिबोध की भाषा और शिल्प का परिप्रेक्ष्य छोटे से संकल्प को दोहराना है। ये संकल्प है- उचित वातावरण का निर्माण करना, सत्यता की अडिगता को रेखांकित करना, आत्म गौरव को प्राप्त करना, मनुष्य की भावनाओं का मानवीकरण करना, चित्र नहीं चरित्र दिखाना तथा आत्मीय रहस्य संबंध को मजबूती प्रदान करना है। 'काठ का सपना' कहानी में यह संकल्प विजयी संकल्प के रूप में चित्रित हुआ है। उसके लिए और भी कुछ चाहिए! फिर भी वह पुरुष मन-ही-मन यह वचन देता है, यह प्रतिज्ञा करता है कि कल जरूर वह कुछ-न-कुछ करेना ; विजयी होकर लौटेगा।''[4]

ऐसे संकल्प जब मुक्तिबोध दुहराते हैं तो उनकी भाषा हमें **'अपनी सूरत दिल में देखने की तमीज'** देती है। धूमिल की वे पंक्तियां स्मरण हो रही हैं जिनमें उन्होंने कहा था 'कविता में भाषा आदमी होने की तमीज है'। निश्चित ही हम कह सकते हैं कि **'मुक्तिबोध के गद्य में भाषा, अपनी सूरत अपने दिल में देखने की तमीज'** है। ऐसा लगता है कि जब मनुष्य में इस तरह की कोई तमीज शेष नहीं होती तब साहित्यकार को विभिन्न रूपों-माध्यमों में ऐसा कहना पड़ता है। भाषा और शिल्प का यह परिप्रेक्ष्य होना ही चाहिए। देखिए न ''सबसे खूबसूरत रामलाल की वह सूरत है, वह शक्ल है जो एक टीचर की होती है। बाल बढ़े हुए, पीले चेहरे पर थकान और संयम को सौन्दर्य। ... समाज में जिसकी कोई वकत नहीं, बनिया जिसे हिकारत की दृष्टि से देखता है, अफसर जिसे तुच्छ समझता है, प्रोफेसर जिसे दयनीय मानता है, सरकार जिसे कीड़ा समझती है और जिससे इकतरफा बलिदान मांगा करती है, वह ग्रामीण शिक्षक ! रामलाल ने अपनी सूरत अपने दिल में देख ली है।''[5] वास्तव में मुक्तिबोध का गद्य और उनकी भाषा तथा शिल्प ''अकेलेपन में वह पिछली जिन्दगी से नयी जिन्दगी की तुलना''[6] की तमीज देती है और पाते हैं कि दोनों में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि अत्याचार का नया दौर-पर-दौर जहां जिन्दगी अकेलेपन में जी लेने की कसरत करती है और फिर परिवर्तित हो जाती है जड़ीभूत सुनेपन में।

भाषा और शिल्प का परिप्रेक्ष्य 'जिन्दगी की कतरन' कहानी में स्पष्टत: उभरकर सामने आता है और ''उसकी दु:ख भरी जिन्दगी क्या केवल उसी की है! नहीं, बहुतों की ऐसी है''[7] का बोध होता है और जीवन के वास्तविक कारण का पता चलता है। ''बहुत बार यह दुनिया जैसी दिखलाई पड़ती है, वैसी नहीं होती। उसके दिखलाई पड़ने वाले रूप और असली रूप में स्तब्ध कर देने वाले अंतर्विरोध होता है। तथ्य यथार्थ को छिपा लेते हैं। ऐसी स्थिति में फैंटेसी के जरिए ही उसके असली रूप को दिखलाया जाता है।''[8] वास्तव में वह ''सोच नहीं पाता ... जिन्दगी है या जिन्दगी की कतरन।''[9] एक और सच कि आज जब आदमी ''सुबह उठता है तो विश्वास नहीं कर पाता कि वह इंसान है। चले गये वे दिन जब वह किसी का मित्र, तो किसी का पुत्र था। पेट भूखा ही क्यों न सही, आंखें तो सुन्दर दृश्य देख सकती थीं और वह सुनहली धूप।''[10] लेकिन अब तो वह केवल मार खाकर जीवित बचा है, पशु बनने की प्रक्रिया के लिए शायद आदमी की शक्ल का पशु। ''अबे डरता क्या है, मैं भी तो तेरे ही सरीखा हूं, मुझे भी पशु बनाया गया है, सिर्फ मैं शेर की खाल पहने हूं, तू रीछ की।''[11] इस तरह बिंब और प्रतीक घिसे-पिटे नहीं बल्कि सूरत को सूरत-सा ढलवां बनाकर प्रस्तुत करते हैं।मुक्तिबोध की भाषा और शिल्प का एक और विशिष्ट परिप्रेक्ष्य है 'व्यक्ति से जनता तक की यात्रा'। यह संकल्प मुक्तिबोध का एक स्वप्न भी है जिसके लिए भाषा में फैंटेसी, बिंब और प्रतीकों की निर्मिति कर शिल्प को सौन्दर्ययुक्त बनाते हैं और कहानी-उपन्यास, डायरी आदि गद्य विधाओं का सृजन करते हैं। मुक्तिबोध का महत् उद्देश्य व्यक्ति से जनता तक की वास्तविक दुनिया को पाठकों तक, जन-

सामान्य तक पहुंचाना है। वास्तविक सच यह भी है कि उनकी भाषा और शिल्प का परिप्रेक्ष्य फैंटेसी को महत्त्व देना या कवि कर्म के लिए अनिवार्य बनाना नहीं है, बल्कि संवेदनात्मक/भावात्मक उद्देश्यों के साथ जीवनानुभवों को अभिव्यक्त करना भी है क्योंकि ''फैंटेसी गतिहीन स्थिर चित्र नहीं है। उद्देश्य और उद्देश्य की दिशा के कारण ही वह गतिमय है। फैंटैसी डायनेमिक होती है। ...फैंटेसी के भीतर का वह मर्म – जिसमें एक उद्देश्य है, एक पीड़ा है, और एक दिशा है – अनेक जीवनानुभवों से समर्पित, संवर्धित और पुष्ट होकर प्रकट होना चाहता है।''[12] यह संकल्प छोटा जरूर है पर परिप्रेक्ष्य व्यापक है जिसे उनकी सतह से उठता आदमी, काठ का सपना, ब्रह्मराक्षस का शिष्य, अंधेरे में, जिन्दगी की कतरन, चाबुक, समझौता, विपात्र (उपन्यास-कहानी) आदि कहानियों में देख सकते हैं।

'जिन्दगी की कतरन' कहानी में स्वयं मुक्तिबोध लिखते हैं – ''मैं तो हिम्मत भी कर चुका था, साहब! डूब मरने के लिए, पूरी तौर से तैयार होकर मैं रात के दस बजे घर से निकला, इस पर स्याह पानी की भयानक विकरालता ने इतना डरा दिया था कि किनारे पहुंचने के साथ ही मेरा ख्याल मर गया और दूसरे ख्याल से जिन्दगी में आशा बंधी। उस आशा की कल्पना को पलायन भी कहा जा सकता है। प्रथम भाव-धारा के विरुद्ध उज्ज्वल भाव-धारा चलने लगी। सियाह पानी के आतंक ने मुझे हटा दिया ... बंदक से मर जाना और है, वीरान जगह पर रात को तालाब में मर जाने की हिम्मत करनी दूसरी चीज है।''[13] वे यह भी लिखते हैं- ''आत्महत्या करने वालों के निजी सवाल इतने उलझे हुए नहीं होते जितने उनके अंदर के विरोधी तत्त्व, जिनके अधीन प्रवृत्तियों का आपसी झगड़ा इतना तेज हो जाता है कि नयी ऊंचाई छू लेता है। जहां से एक रास्ता जाता है जिन्दगी और नयी जिन्दगी की ओर, तो दूसरा जाता है मौत की तरफ जिसका एक रूप है आत्महत्या।''[14]

उनकी भाषा और शिल्प का परिप्रेक्ष्य असाधारण है, जिसे 'जो जिए और भोगे सो जाने' की तरह है। इस असाधारण शिल्प–कला को शमशेर बहादुर सिंह बखूबी पहचानते हैं और कहते हैं- ''उनका शिल्प एक ऊंची इमारत उठाने वाला मेमारे का शिल्प था।''[15] तो दूसरी ओर उनका शिल्प उसी तरह है जैसे ''हमारे मुहल्ले का एक-एक घर एक कहानी रखता है। मध्यमवर्गीय समाज की सांवली गहराइयों की रुंधी हवा की गंध से मैं इस तरह वाकिफ हूं जैसे मल्लाह समन्दर की नमकीन हवा से।''[16]

मुक्तिबोध जब भाषा और शिल्प गढ़ते हैं तो एक खास ढंग से संस्कारों को ढालते हैं जिसमें दुनिया यूं ही चलती रहेगी नहीं, ऐसी चलती है दुनियादारी की तरह। ऐसा व्यापक परिप्रैक्ष्य मुक्तिबोध की भाषा में है। अंधेरे में कहानी का यह भाषिक संस्कार दुनिया को तमीज सिखाता है। ''देखा, सब में मक्कारी है। और कारोबारी की निगाह में मक्कारी का नाम दुनियादारी है। पुलिसवाले भी मक्कार हैं – तांगेवाले कम मक्कार नहीं हैं।''[17] दुनियादारी की तमीज का अच्छा अनुशासन और संस्कार इन पंक्तियों में देखा जा सकता है- ''असली मजहब इसे कहते हैं। मेरे पास मुस्लिम लीगी आते हैं! चंदा मांगते हैं। मुस्लिम कौम निहायत गरीब है ! मुझसे पाकिस्तान नहीं मांगते, मुझसे पाकिस्तान की बात भी नहीं करते। हिन्दू-मुस्लिम इत्तेहाद पर मेरा विश्वास है। लेकिन मैं जरूर देता हूं''[18] वे यह भी कहते हैं – ''जिस प्रकार जिन्दगी में अकेले आदमी को अपनी थकान के बावजूद भी भोजन, खुद ही तैयार करना पड़ता है- तभी तो पेट भर सकता है – उसी प्रकार उसके पैर चुपचाप, अपने दुःख की कथा अपने से ही कहते हुए अपने कार्य में संलग्न थे।''[19] मुक्तिबोध की दृष्टि में भाषा और शिल्प का परिप्रेक्ष्य एक 'कर्तव्य' है। 'काठ का सपना' कहानी इसी कर्तव्य बोध की सर्जना है। जब सपना, सपना ही रह जाता है तब मुक्तिबोध कर्तव्य के प्रति संकल्पित हो याद दिलाते हैं और दारुण्य स्वर में कहते हैं- ''नन्हीं बालिका सरोज का पीला उतरा चेहरा, तन में फटा हुआ सिर्फ एक फ्रॉक और उसके दुबले हाथ उन्हें बालिका के प्रति अपने कर्तव्य की याद दिलाते हैं, ऐसी कर्तव्य की जिसे वे पूरा नहीं कर सके, कर भी नहीं सकेंगे, नहीं कर सकते थे।''[20] लिखित नियम तो यह है कि व्यक्ति स्वतंत्र है किन्तु वास्तविकता यह है कि व्यक्ति को खरीदने और बेचने की, खरीदे जाने और बेचे जाने की, दूसरों की स्वतंत्रता को खरीदने या अपनी स्वतंत्रता को बेचने की आजादी है। लिखित नियम और चीज है, वास्तविकता दूसरी बात।''[21] वे ठीक ही कहते हैं – ''सच्ची आजादी उन्हें है जिनके पास पैसा है।''[22] 'विपात्र' कहानी/उपन्यास का खूबसूरत संकल्प जो मुक्तिबोध के चेतन, अचेतन और अवचेतन सभी में दौड़ रहा होता है इस तरह ''सभी तरफ हरियाला अंधेरा और हरियाला उजाला छाया हुआ था और बीच-बीच में सुनहली चादरें बिछी हुई थी। अजीब लहरें मेरे मन में दौड़ रही थी।''[23] शिल्प-सौन्दर्य का यह मिजाज मुक्तिबोध के भाषा का परिप्रेक्ष्य भी स्पष्ट करता है और युगीन जीवन-बोध भी। इसी में वे स्वयं लिखते हैं- ''मेरे सामने एक लेखक-कलाकार की संवेदनाओं के, उसके जीवन के स्वकल्पित चित्र तैरते जा रहे थे।''[24] जब ऐसे दृश्य लेखक के मानस में उपस्थित हो रहे हैं तो उनका वह संकल्प ही जिससे ऐसे दृश्य मन में उठने लगे हैं और उठने लगी सच्चाई को सामने लाने की ललक, पर यह जानते हैं कि- ''सिर्फ सच्चाई आदमी को कुछ नहीं दे पाती, सच्चाई को सामने लाने के लिए जोर और ताकत की जरूरत होती है।''[25] यह संकल्प भी मुक्तिबोध के भाषा और शिल्प के परिप्रेक्ष्य को सार्थक बनाते हैं। गंगाप्रसाद विमल ठीक ही लिखते हैं कि- ''कविताओं में बिम्बीकरण और प्रतीकीकरण के छद्म के जरिए मुक्तिबोध ने जिस भुतहा सच को उघाड़ कर सामने रखा है, कहानियों में वहीं सच मध्यमवर्गीय सामाजिकों की जीवनियों के बहाने अनावृत्त हुआ है।''[26]

मुक्तिबोध की भाषा और शिल्प चित्र नहीं चरित्र दिखाते हैं। दृढ़ संकल्पित हैं चरित्र दिखाने को, इसलिए भाषा और शिल्प ऐसा गढ़ते हैं जिसमें युग-जीवन के चित्र नहीं चरित्र दिखने लगते हैं। ईमानदार सच है 'आइना में चित्र दिखता है, साहित्य में चरित्र'। मुक्तिबोध का परिप्रेक्ष्य भी चित्र नहीं चरित्र दिखाना है। उनके किसी भी गद्य विधा लीजिए दमित, पीड़ित व संतप्त आदमी का चरित्र दिखता है। काठ का सपना कहानी में आदमी की सच्ची सूरत देखिए ''एकाएक ख्याल आता है कि अगर घर में बड़ा आईना होता तो अच्छा होता, अपनी बड़ी आंसू भरी सूरत की बदसूरती देख लेते। उन्हें उमर रसीदा आदमियों को रोना अच्छा नहीं लगता।''[27] इतना ही नहीं किनकी वजह से आदमी की ऐसी सूरत बनी वह भी स्पष्ट हो पाती है। इसके लिए जरूर मुक्तिबोध फैंटेसी, बिंब और प्रतीकों का सहारा लेते हैं लेकिन परिप्रेक्ष्य आदमी की सूरत दिखाना ही है, जीवन स्थिति को चित्रित करना है।

निष्कर्षत: मुक्तिबोध का गद्य : भाषा और शिल्पगत् परिप्रेक्ष्य बहुत व्यापक हैं क्योंकि उन्हें अपने जीवन काल का पूरा तजुर्बा था। इसलिए वे खूब अच्छे से जिन्दगी बिताना चाहते थे और संकल्प ले पाते हैं- उचित वातावरण के निर्माण का, सत्यता की अडिगता को रेखांकित करने का, आत्म-गौरव को प्राप्त करने का, मनुष्य की भावनाओं के मानवीकरण का, चित्र नहीं चरित्र दिखाने का तथा आत्मीय रहस्य संबंध को मजबूती प्रदान करने का। उनका प्रयास था कि 'हो सके तो हाथ से अच्छी चीज बन जाये।' इसलिए उनकी भाषा हमें **'अपनी सूरत अपने दिल में दिखाने की तमीज'** देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. सत्यव्रत : समकालीन साहित्य समाचार, जून 2016, किताब घर प्रकाशन, 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, पृ. 13
2. मुक्तिबोध : चांद का मुंह टेड़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ बी/45-46, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-110001, सप्तम् संस्करण 1981, पृ 20
3. मुक्तिबोध : सतह से उठता आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-6, पृ. 10
4. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 53
5. मुक्तिबोध : सतह से उठता आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-6, पृ. 62
6. वही – पृ. 34
7. वही – पृ. 15
8. नंदकिशोर नवल : मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली - 110002, पहला संस्करण 1993, पृ. 375
9. मुक्तिबोध : सतह से उठता आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ पृ. 35
10. वही – पृ. 36
11. नंदकिशोर नवल : मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली - 110002, पहला संस्करण 1993, पृ. 380
12. मुक्तिबोध : सतह से उठता आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-6, प्र.सं. पृ. 3
13. वही – पृ. 3
14. मुक्तिबोध : चांद का मुंह टेड़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ बी/45-46, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-110001, सप्तम् संस्करण 1981, पृ 16
15. मुक्तिबोध : सतह से उठता आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ 3620/21, नेताजी सुभाष मार्ग, पृ. 6
16. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 86
17. वही – पृ. 88
18. वही – पृ. 94
19. वही – पृ. 48
20. वही – पृ. 154
21. वही – पृ. 155
22. वही – पृ. 122
23. वही – पृ. 124
24. वही – पृ. 126
25. मुक्तिबोध : सतह से उठता आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-प्र.सं, पृ. 11
26. मुक्तिबोध : काठ का सपना, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1967, पृ. 48

प्रौढ़ शिक्षा से 'सबके लिए शिक्षा' तक का सफर

डॉ. अनिल कुमार सिंह
प्राध्यापक हिंदी विभाग
आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय नई-दिल्ली

विषय प्रवेश:-भारत में प्रौढ़ शिक्षा या वयस्क शिक्षा पर बात करते हुए सबसे पहले महात्मा गाँधी याद आते हैं जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद पूरे देश के भ्रमण के दौरान इसकी आवश्यकता को महसूस कर ली थी, इसी कारण उन्होंने अपने आश्रम में वयस्क शिक्षा पर खूब जोर दिया, यह बात और है कि आज जो प्रौढ़ शिक्षा का स्वरूप देश में मौजूद है, गाँधी जी के जमाने में यही नहीं थी। वक्त के साथ कुछ परिवर्तन लाजिमी भी है, वह सैकड़ों वर्षोंसे चली आ रही गुलामी का दौर था, जिसने भारतीयों के आत्मविश्वास का सर्वनाश कर दिया था और ज्यादातर लोग गुलाम ही पैदा हुए और गुलामी में मर गए। उनकी स्थिति अपने ही देश में दूसरे-तीसरे दर्जे की नागरिकों की भाँति थी। देश भ्रमण के दौरान गाँधी जी ने इस बात को भली-भाँति समझ लिया था, इसलिए उन्होंने तत्कालीन स्कूल शिक्षकों या आश्रम के स्वयंसेवकों को प्रेरित किया कि वे प्रौढ़ शिक्षा हेतु उद्यम करें और लोगों में सामान्य व्यवहार की बातों को प्रचारित कर उन्हें जागरूक करने का प्रयास करें। सार्वजनिक साफ-सफाई, नालियों की समस्या, घरों से निकलने वाले गंदे पानी का निपटारा, घरों में शौचालय की व्यवस्था, फसलों की बुवाई-कटाई से संबंधित जानकारियाँ आदि तत्कालीन प्रौढ़ शिक्षा के प्रमुख विषय के तौर पर अपनाए गए। धीरे-धीरे इसका असर यह हुआ कि गाँधी जी के प्रयासों से लोगों में जागरूकता आई और स्वयं आगे बढ़कर लोगों ने इन कामों में रुचि लेना प्रारंभ कर दिया। अपनी पुस्तक 'नई तालीम की कहानी' में मार्जारी साइक्स 'हिंद स्वराज' का उदाहरण देते हुए लिखते हैं - ''भोजन और पानी, आवास, स्वच्छता आदि सभी प्राथमिक आवश्यकताएँ इसी तरीके से प्रौढ़ शिक्षा का एक माध्यम बन गई। अब जरूरत थी कपड़ों की और शांता ने काफी पहले इस बारे में कुछ काम किया था। गाँव में प्राथमिक स्कूलों के माध्यम से कताई-बुनाई को लाया जा चुका था। चरखा संघ की मदद से अब गाँव में तीन हथकरघे लगाए गए और गाँव के लड़के उन पर अपरेंटिस की तरह काम करने लगे। पहले साल में 1750 वर्ग गज कपड़ा बनाया गया और बेचा गया। बाद में हथकरघों और बुनकरों की संख्या बढ़ती गई तथा दूसरे किस्म के ग्रामोद्योग भी प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों के रूप में विकसित किए जाने लगे।''

गाँधीजी ने प्रौढ़ शिक्षा को शिक्षा से ज्यादा परोपकार का माध्यम बनाने पर जोर दिया, जिसमें गाँव के युवकों को रोजगार के लिए अपने गाँव से शहर जाने की आवश्यकता ना पड़े बल्कि उन्हें वहीं रहकर रोजगार की सुविधा उपलब्ध हो जाए और इसके लिए उन्हें किसी से मदद लेने की आवश्यकता ना पड़े बल्कि उन्हें सिर्फ इस बात के लिए जागरूक और प्रेरित करने की आवश्यकता थी कि वह अपनी जरूरतों को पहचान सकें और उन्हें यह विश्वास दिलाना होगा कि वह अपनी जरूरतों को स्वयं ही पूरा भी कर सकते हैं, उन्हें किसी से कोई आर्थिक सहायता प्राप्त करने की जरूरत नहीं है। गाँधी जी ने कहा था - ''उन्हें उन्हें वह सारी सेवाएं दो जिनकी उन्हें जरूरत है। बीमारी में सेवा सुश्रुषा करो या कोई और मदद दो, लेकिन उन्हें कभी भी पैसा मत देना। प्रौढ़ शिक्षा में पैसे की जरूरत नहीं होती।''

इस तरह गाँधी जी प्रौढ़ शिक्षा को हथियार बनाकर ग्रामीण भारत का स्वाभिमान और उनका खोया हुआ आत्मविश्वास जगाना चाहते थे जो सैकड़ों वर्षों की गुलामी से समाप्त हो गया था और अंग्रेजों के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई में बाधा बन रही थी। गाँधीजी ने प्रौढ़ शिक्षा समिति से सितंबर 1945 में कहा था - ''जीवन के लिए शिक्षा का अर्थ समूचे जीवन काल के दौरान शिक्षा नहीं है, बल्कि जीवन मात्र के लिए दी जाने वाली शिक्षा है। प्रौढ़ शिक्षा दरअसल जीने की कला का शिक्षण है। एक ऐसा व्यक्ति जो जीने की कला पर माहिर हासिल कर लेता है, वह पूर्ण मनुष्य बन जाता है। अपने सामने इसी दृष्टि को रख कर चलो और अपने काम की नई तालीम के आदर्श से प्रेरित होने दो''गाँधी जी के इस विचार से शिक्षा विशेष तौर पर प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य लगभग स्पष्ट था कि वह इस प्रकार के शिक्षा का उपयोग परोपकार के लिए करते

भारत में शिक्षा-परंपरा – ''ज्ञान'' भारतीय परंपरा की सर्वश्रेष्ठ विरासत है जो सदियों से इस धरती के कण-कण में रची-बसी है। यह ज्ञान की ही शक्ति थी जिसने भारत को विश्व गुरु के उच्च पद पर प्रस्थापित किया था, जब पूरी दुनिया अपने बराबर अवस्था में थी और सभ्यता उनसे कोसों दूर थी तब हमारे यहाँ के ऋषि-मुनि अपने गुरुकुलों में विमान उड़ाने से लेकर जन्म से मृत्यु पर्यंत संस्कार का ज्ञान अपने शिष्यों को दे रहे थे। यही कारण है कि भारतीय वांग्मय अपनी समृद्धि के लिए पूरी दुनिया में प्रसिद्ध रही। वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ. दर्शन. आरण्यक. उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता से लेकर रामचरितमानस तक साहित्य की एक लंबी श्रृंखला है जिसने दुनिया के कोने-कोने को अपने प्रकाश से प्रकाशित किया है, और यह महज संयोग नहीं हो सकता की प्रथम वेद यानी ऋग्वेद से प्रेरणा प्राप्त कर ईरानियों ने अपना धार्मिक ग्रंथ ''जेंद अवेस्ता'' की रचना की होगी क्योंकि यह महज संयोग नहीं हो सकता की ऋग्वेद में वर्णित देवी -देवताओं का जिक्र हमें ''जेंद अवेस्ता'' में देखने को मिलती है, जैसे सूर्य, अग्नि, सोम, आदि देवताओं की चर्चा इस बात को पूर्णता सत्य साबित करती है कि हमारी वैदिक परंपरा का अनुकरण दुनिया के दूसरे देश भी उसी रूप में कर रहे थे। सैकड़ों हजारों वर्षों तक भारतीय ज्ञान की यह परंपरा दुनिया का मार्गदर्शन करती रही, परंतु कहा जाता है कि समय का चक्र निरंतर घूमता रहता है और यही कारण रहा कि यह सौभाग्य स्थाई रूप से बना न रह सका और दुर्भाग्य ने अपना अधिकार जमा लिया। सातवीं शताब्दी तक आते-आते भारतीय सौभाग्य का सूर्यास्त होने लगा और बाहरी आक्रमणकारियों के आने का सिलसिला तेज हो गया। 1205 ईस्वी तक भारतीय शासन की बागडोर पूरी तरह से बाहरी आक्रमणकारियों के हाथों में आ गई और धीरे-धीरे हमारे ज्ञान और दर्शन की परंपरा का क्षरण आरंभ हुआ और यह सिलसिला 1947 तक लगातार चलता रहा। ऐसा नहीं है कि इस दौरान हमने ज्ञानवर्धक साहित्य की रचना नहीं की वह तो निरंतर जारी रही परंतु गुलाम देश के नागरिक के ज्ञान का आदर दुनिया भला कैसे करती यही कारण है कई अनेक उत्कृष्ट साहित्य की रचना करने के बावजूद भी भारतीय वाङ्मय दुनिया में वह सर्वोच्च पद नहीं पा सकी जो कि वैदिक काल में प्राप्त थी। परंतु यह भी मानना होगा कि इस दौरान लिखे गए साहित्य भी बाहरी आक्रमणकारियों से मुक्ति का ही साहित्य था। मुक्ति का यह आंदोलन चाहे वह किसी भी रुप में रही हो इसकी शुरुआत तेरहवीं शताब्दी के शुरुआत से ही प्रारंभ हो गई थी जिसका अंत या जिसमें सफलता हमें बीसवीं शताब्दी के मध्य में यानी 1947 में मिलती है। इन 650-700 वर्षों तक के लगातार युद्ध रत रहने के कारण हमने अपने वैभव को अपनी आँखों के सामने क्षरित होते ही पाया। 1947 में आजादी प्राप्त करने के बाद जो देश हमें मिला यह वही देश नहीं था जो 1205 में बाहरी आक्रमणकारियों के कब्जे में गया था। खैर, हमने अपनी खोई हुई शक्तियों को पुनः संरक्षित करने का प्रयास किया और अपने सर्वश्रेष्ठ विरासत यानी ज्ञान को पुनः इसका हथियार बनाने की चेष्टा की, क्योंकि हमारा यह निःसंकोच मानना था कि ज्ञान ही मनुष्य को सच्ची मुक्ति प्रदान करती है, इसलिए लंबे समय तक संघर्षरत देश ने ज्ञान का मार्ग तो नहीं छोड़ा पर नागरिकों का एक बड़ा तबका जो इस देश के गाँव में बसता था, वह ज्ञान से वंचित हो गया क्योंकि कृषि प्रधान देश होने के कारण बाहरी शासकों का ज्यादा दबाव कृषकों पर ही पड़ा उन पर अधिक से अधिक उत्पादन का दबाव रहता था, जिसके कारण भारतीय ग्राम और ग्रामीण आवश्यकता से अधिक परिश्रम करने के बाद भी समाज में अपना वह अधिकार न पा सके जो शहरी नागरिकों को प्राप्त हुआ। अपना शैक्षिक अवसर गवां चुके ग्रामीण युवक युवतियों को ध्यान में रखकर ही उन्हें पुनः अवसर देने के उद्देश्य से भारत सरकार ने यह महत्वाकांक्षी कदम उठाया जिसे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का नाम दिया गया। प्रौढ़ शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पहली पंचवर्षीय योजना में अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए जिसमें सबसे प्रमुख राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की शुरुआत की गई। इसका असर इतना जबरदस्त हुआ कि 10वीं अवधि योजना के अंत तक इस मिशन के तहत 127.45 लाख

सरकारी योजनाएँ – व्यक्तियों ने साक्षरता प्राप्त की, जिसमें 60 प्रतिशत महिलाएं, 23 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 12 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति से संबंधित थेकहते हैं कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती, ''जब जागो तभी सवेरा'', नामक कहावत इस बात को पुष्ट भी करती है। शायद इसी सकारात्मक सोच को ध्यान में रखकर 2 अक्टूबर 1978 को भारत सरकार ने "राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम" का शुभारंभ किया, जिसके अंतर्गत 15 से 35 वर्ष की आयु तक के सभी नागरिकों यानी स्त्री पुरुष दोनों को ही शिक्षित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। यह कार्यक्रम शिक्षा मंत्रालय एवं समाज कल्याण विभाग के संयुक्त प्रयास से प्रारंभ किया गया था, उस समय इसका कार्यकाल 5 वर्ष यानी 1978 से 1983 तक का निर्धारित किया गया था। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण युवक व युवतियों को इस प्रकार प्रशिक्षित करना था, जिससे वे कृषि, लघु उद्योग तथा ग्रामीण नेतृत्व हेतु तैयार हो सके। स्त्रियाँ परिवार संबंधी समस्याओं को अच्छी प्रकार समझ सके ताकि उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो सके। भारत प्रारंभ से ही कृषि प्रधान और ऋषि प्रधान देश रहा है। भारत की आत्मा गाँव में बसती है, ऐसी बातें हमारे यहाँ सर्वजन में प्रचलित रही है, इसलिए ग्रामीण युवक-युवतियों के विकास को ध्यान में रखकर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम एक महत्वाकांक्षी कदम था, जिसने अपने प्रारंभ के 50- 52 वर्षों में अपनी सफलता का परचम लहराया और सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में काफी हद तक सफलता भी पाई। उसकी इसी उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए सन 2020 में आई ''नई शिक्षा नीति'' में भी इसे बंद करने की सिफारिश नहीं की गई बल्कि इसका नया नामकरण ''सबके लिए शिक्षा'' करके पूर्ववत जारी रखने का फैसला लिया गया। इस शिक्षा नीति के अनुसार वयस्क शिक्षा की सभी पहलुओं को पूर्ण करने के लिए वित्त वर्ष 2022-27 की अवधि के लिए ''न्यू इंडिया साक्षरता कार्यक्रम'' को मंजूरी दी गई ''राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020'' में प्रौढ़ शिक्षा और आजीवन सीखने की सिफारिश शामिल है, केंद्रीय बजट 2021-22 में संसाधनों, ऑनलाइन तकनीको को बढ़ाने की घोषणा की गई है। जिसके तहत जीवन कौशल, व्यवसायिक विकास कौशल, बुनियादी शिक्षा, सतत् शिक्षा आदि उद्देश्यों को शामिल किया गया है। योजना को ऑनलाइन लागू करने के लिए स्वयं सेवकों का प्रशिक्षण, कार्यशाला का आयोजन, आदि माध्यम से किया जाएगा। यह योजना देश के सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में 15 वर्ष और उससे अधिक आयु के गैर साक्षर लोगों के लिए लागू होगी। ''नवभारत साक्षरता कार्यक्रम'' का अनुमानित बजट 1037.90 करोड़ है, जिसमें वित्त वर्ष 2022-27 के लिए क्रमशः 700 करोड़ रुपए का केंद्रीय हिस्सा और 337.90 करोड़ रुपए राज्य का हिस्सा शामिल है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में आजादी के बाद भारत में पहली बार 8 वर्षों की स्कूली शिक्षा यानी प्रारंभिक शिक्षा (कक्षा 1 से 8 तक) के राष्ट्रीय ध्येय को दो चरणों में बांट दिया गया। पहले चरण का उद्देश्य 1990 तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा (पहली से 5वीं तक) देने का रखा गया और दूसरे चरण में 1995 तक मिडिल स्तर (6ठीं-8वीं तक) की शिक्षा देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।"सन 1988 में सरकार ने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के गठन की घोषणा की जबकि गठन होना चाहिए था राष्ट्रीय प्रारंभिक शिक्षा मिशन का। देखते ही देखते शिक्षा के क्षेत्र में देश का लगभग सारा सरोकार प्रारंभिक शिक्षा से हटकर प्रौढ़ साक्षरता पर केंद्रित हो गया।'' तब से लगातार प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम देश में चलाया जा रहा है कई विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन और विकास के केंद्र खोले गए, जो अलग-अलग सामाजिक विषयों पर लगातार कार्य कर रहे हैं। वैसे शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों में दिल्ली विश्वविद्यालय भी प्रमुख है, जो कुछ गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर विभिन्न सामाजिक विषयों जैसे जनसंख्या नियंत्रण, महिला स्वास्थ्य एवं शिक्षा, एड्स नियंत्रण कार्यक्रम, प्रजनन समस्या जैसे विभिन्न विषयों पर जागरूकता कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक संचालन कर रहा है। ऐसे कार्य करने वाले भारत में कई और विश्वविद्यालय भी शामिल है। विश्वविद्यालय में चल रहे ऐसे केंद्र आज भी गाँधीजी के आदर्शों पर ही चल रहे हैं, उन्होंने भी प्रौढ़ शिक्षा का इस्तेमाल तत्कालीन समस्याओं को दूर करने के लिए किया था तथा वर्तमान संस्थाएँ भी उसका इस्तेमाल वर्तमान सामाजिक समस्याओं से लड़ने के लिए ही कर रही है।

प्रौढ़ शिक्षा की समस्याएँ:-समस्याएँ तो मनुष्य जीवन में उसके जन्म के साथही प्रारंभ हो जाती है, फिर भी उन समस्याओं से टकराते, हारते-जीतते हमारा जीवन सतत् चलता रहता है। प्रौढ़ शिक्षा की हालत भी कुछ ऐसी ही रही है। अपने पप्रारंभ से ही इसे समस्याओं का सामना करना पड़ा है। भारत के कई प्रमुख शिक्षाशास्त्रियों ने ''प्रौढ़ शिक्षा विचार'' को ही एक सिरे से नकार दिया और इसे बेमतलब की चीज साबित कर दी। प्रमुख शिक्षाविद् प्रोफेसर अनिल सदगोपाल अपनी पुस्तक 'शिक्षा के बदलाव के सवाल' में प्रौढ़ शिक्षा के बदले प्राथमिक शिक्षा को दुरुस्त करने की वकालत करते हैं, उनका मानना है कि अगर शिक्षा प्रारंभिक स्तर पर सुधर गई तो फिर प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता नहीं होगी। उनका कहना है कि तमाम सरकारी विभाग प्रौढ़ शिक्षा में लगे रहेंगे तो प्राथमिक शिक्षा हाशिए पर चली जाएगी। इस बात को वे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - ''प्रौढ़ साक्षरता की राष्ट्रीय नीति तो उस व्यक्ति की याद दिलाती है जो बड़ी मेहनत के साथ गिले फर्श को सुखाने के लिए पोंछा लगा रहा है, परंतु एक तरफ से नल खोल रखा है। आप जिंदगी भर पोछा लगाते जाइए पर फर्श सूखेगा नहीं। वर्तमान में लगभग 8-9 करोड़ बच्चे (6-14 आयु समूह के) स्कूल नहीं जा रहे हैं। यह बच्चे 21वीं सदी के पहले दशक में प्रौढ़ निरक्षरों की कतार में शामिल हो जाएंगे।''

उपसंहार:-नाम का असर भी व्यक्ति पर पड़ता है ऐसी मान्यता हमारे देश में प्रारंभ से ही रही है। यही कारण रहा है कि हमारे देश में कभी भी अपने बच्चों का नाम खल-चरित्रों के नामों पर नहीं रखा जाता बल्कि नास्तिक व्यक्ति भी अपने बच्चों का नाम ईश्वर के नाम पर रखता रहा है। शायद इसी सोच या मान्यता को ध्यान में रखते हुए ''नई शिक्षा नीति 2020'' में प्रौढ़ शिक्षा का नाम बदलकर ''सबके लिए शिक्षा'' करने का प्रस्ताव किया गया। नाम बदलते ही इसके उद्देश्यों को भी थोड़ा परिवर्तित किया गया है अब इसके तहत शिक्षा प्राप्त करने हेतु 15 वर्ष की कम से कम आयु होने की बाध्यता को समाप्त कर दिया गया है, जो कि एक सराहनीय कदम है। सीखने की कोई उम्र नहीं होती इसलिए शिक्षा प्राप्ति हेतु आयु सीमा का निर्धारण उचित निर्णय नहीं था। इसका दूसरा लाभ यह रहेगा कि 15 से 35 वर्ष तक की आयु के लोग अपने को प्रौढ़ मानकर शिक्षा ग्रहण करें यह उनके लिए हास्यास्पद स्थिति होती थी, समाज में उन्हें उपहास का कारण भी बनना पड़ता था, जिस इस आयु वर्ग के व्यक्ति प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों तक जाने से बचते थे। पर नाम बदलते ही अब यह समस्या स्वतः समाप्त हो जाएगी। सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम निश्चित रूप से प्रशंसनीय है।प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का अगर सरसरी तौर पर सिंहावलोकन करें तो कुछ सकारात्मक परिणाम ही हमारे सामने आते हैं। सरकार द्वारा जारी किए गए आँकड़ों के अनुसार - ''2011 की जनगणना के अनुसार देश में 15 वर्ष और उससे अधिक आयु वर्ग में गैर शिक्षकों की कुल संख्या 25.76 करोड़ (पुरुष 9.08 करोड़, महिला 16.68 करोड़) है। 2009-10 से 2017-18 के दौरान साक्षर भारत कार्यक्रम के तहत साक्षर के रूप में प्रमाणित व्यक्तियों की 7.64 करोड़ की प्रगति को ध्यान में रखते हुए, यह अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान भारत में लगभग 18.12 करोड़ वयस्क अभी भी गैर साक्षर है।'' इस आँकड़े से यह पता चलता है कि अब तक प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम कछुआ चाल से ही सही सही दिशा में चलता रहा है, पर इसके साथ यह बात भी माननी पड़ेगी की रेस कछुए ने ही जीता था। परंतु यह बात पुरानी हो चुकी अब नए दौर में नई बातें और तरीके अपनाने ही होंगे, जिसका पहला कदम वर्तमान भारत सरकार ने इस के नामकरण के साथ उठा दिया है। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि यह नाम परिवर्तन शीघ्र ही अपना असर दिखाएगी जैसे योजना आयोग से नीति आयोग होते ही उस संस्था ने दिखाना प्रारंभ कर दिया है। इन तमाम प्रयासों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति 2020 के पूर्णता लागू होते हैं सबके लिए शिक्षा का यह अभियान जोर पकड़ेगा और शीघ्र ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.मार्जोरी साइक्स-नई तालीम की कहानी CIE-DU-1988
2.महात्मा गाँधी-हिन्द स्वराज सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली-2018.
3.अनिल सद्गोपाल-शिक्षा में बदलाव का सवाल ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली-2000.
4.डॉ राजेश/प्रो. एन.के. चड्डा विश्विद्यालय से समुदाय तक दिल्ली विश्वविद्यालय-2009.
5.विकिपीडिया
6.शिक्षा मंत्रालय की वेबसाइट- pib.gov.in.

समकालीन कविता का अस्तित्व वादी रूप और मूल्यबोध

डॉ.मार्तण्ड कुमार द्विवेदी
सिधुआ बांगर भाठ, कुशीनगर , उत्तर प्रदेश
पिन 274304 मो. 9906809456

शोध सार:-सामाजिक जीवन मूल्य सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत प्रत्येक काल में परिवर्तित होते रहते हैं। आधुनिक काव्य में अस्तित्ववादी चिन्तन के जीवन मूल्यों पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि अस्तित्ववादी के लिए मानव रुचि का उपयुक्त विषय ईश्वर, सूक्ष्म विचार, प्राकृतिक नियम अथवा मनुष्य सम्बन्धी बौद्धिक ज्ञान नहीं है, अपितु उसकी दृष्टि में मनुष्य के जानने की वस्तु है- मानव-स्थिति। समकालीन जीवन मूल्यों का परिवर्तित होना या टूटना अत्यन्त आवश्यक है नहीं तो ये समकालीन जीवन मूल्य शाश्वत जीवन मूल्य हो जायेंगे। शाश्वत मूल्यों वाला अस्तित्ववादी चिन्तन सकारात्मक है तथा समकालीन जीवन मूल्यों वाला अस्तित्ववादी चिन्तन नकारात्मक। प्राचीन काल में समकालीन जीवन मूल्य उस समय के सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत थे जो आधुनिक युग में आकर पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गये हैं। जो कि समकालीन कविता का प्रमुख विषय है।

बीज शब्द- अस्तित्ववाद, मूल्यबोध, समकालीन

हमारे वर्तमान जीवन के आधारभूत लक्ष्य जीवन मूल्य हैं। मनुष्य मानता है कि ये मूल्य उसके जन्मसिद्ध अधिकार हैं तथा ये अधिकार पैदा होते ही प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप प्राप्त हो जाते हैं तथा कोई राज्य, समाज या संस्था इन अधिकारों को छीन नहीं सकती है। वैसे इस मूल्य के अतिरिक्त कई अन्य मूल्य हैं जैसे राष्ट्रीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य आदि। वास्तव में मानव जीवन की हर गतिविधि की अलग-अलग मूल्यों की पहचान की जा सकती है क्योंकि हर गतिविधि का अपना अन्तिम लक्ष्य होता है और अन्तिम लक्ष्यों को ही मूल्य कहा जा सकता है। अस्तित्ववादी चिन्तन में समकालीन जीवन मूल्य उतने ही अधिक महत्वपूर्ण हैं जितने कि शाश्वत जीवन मूल्य। वर्तमान समय में हम दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों में जीने को बाध्य है। एक प्रवृत्ति हमें सभ्यता की ओर और दूसरी संस्कृति की ओर ले जाती है। हमारे प्राचीन साहित्य में इनको भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन कहा गया है। मनुष्य जीवन की सार्थकता इन मानव-मूल्यों प्राप्त करने में है। ''अस्तित्ववाद की मान्यताओं के अनुसार सारी समाज व्यवस्था मानव की स्वतंत्रता में बाधक है। उसने ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दी हैं कि जो मनुष्य को विकास का अवसर नहीं देती। उसे देश के कानून को मानना पड़ता है, परम्परागत नैतिक मूल्यों को स्वीकार करना पड़ता है और घर-परिवार के आदर्शों के अनुसार काम करना पड़ता है।''1 आज के परिवेश में मानव जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रकार की समस्याओं को समकालीन कविता ने अपने काव्य में प्रमुखता से स्थान दिया है। समकालीन काव्य में मृत्यु बोध की भावना प्रबल रूप में समाने आती है। कवि कुंवर नारायण जी की 'आत्मजयी' एक महत्वपूर्ण कृति है। जिसमें कवि ने कठोपनिषद को आधार बनाकर एक चिन्तनशील मनुष्य (नचिकेता) की प्रश्नाकुलता को व्यक्त किया है। 'आत्मजयी' का कवि अपने अस्तित्व को कायम रखते हुए जीवन से वैराग्य लेकर अमर जीवन जीना चाहता है। उसके अंदर अकेलापन, अजनबियत, नैराश्य और अनिश्चय की स्थिति उसे मात्र 'आत्मबोध' के प्रसंग में ही उलझाये रखती है-

विश्वासों से/ या किसी विचित्र तर्क से ही
जीने को कोई अर्थ दिया जा सकता है
इतना विराट्/ इतना सुन्दर/ इतना असह्य
जो शायद केवल मृत्यु तले
संदिग्ध क्षणों के बीच जिया जा सकता है
जो बाधित नहीं मृत्यु से/ बल्कि आकलित हो
यदि पीना हो जहर/ दो दो तरह से पिया जा सकता है-
डरते-डरते/ मरने से पहले ही मरकर
या उसी चरम भय से कोई अन्धा बल पा
जीवन से भी ऊपर उठकर.....। [2]

एक अन्य कवि 'दुष्यन्त कुमार' के कृति 'एक कण्ठ विषपायी' आधुनिक बोध का प्रक्षेपण है। वर्तमान जीवन की विसंगतियां, पूँजीवादी मनोवृत्ति, शासन की मदान्धता, मृत्यु की सत्यता को प्रस्तुत करती है-

देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ़े
मैने क्या पाया?/ निर्वासन/ प्रेयसी-वियोग!!
हर परम्परा के मरने का विष/ मुझे मिला
हर सूत्रपात का/ श्रेय ले गये और लोग। [3]

पाश्चात्य विचारक हेडेगर का मानना है कि ''मानव जीवन व्यथा से युक्त है। भय व्यथा का एक रूप है। हमें मृत्यु का भय पीड़ित करता रहता है तथा व्यथा मृत्यु से जुड़ी रहती है। मृत्यु कोई आकस्मिक वस्तु नहीं है, वह (मृत्यु) अस्तित्व का अन्त या शून्य है।''[4] अस्तित्ववाद मृत्यु को पीड़ा की चरम परिणति मानता है और उसे स्वीकार करने की सलाह देता है, मृत्यु अवश्यम्भावी है। वह उतनी ही सत्य है जितना जीवन। यदि मनुष्य मन से मृत्यु का डर निकाल दे तो वह चयन की स्वतंत्रता का अधिक सक्षमता से उपयोग कर सकता है। वस्तुतः मृत्यु से सजग रहना ही अस्तित्वबोध है।

समकालीन कविता की सबसे प्रमुख एवं विशिष्ट प्रवृत्ति यही है कि इन कवियों ने जीवन के प्रति आस्था का जो स्वर अपने काव्य में दिया वही इन्हें प्रयोगवादी काव्य से अलग करता है। नयी कविता में जीवन के प्रति पूर्ण आस्था और उसे अन्तिम क्षण तक भोगने का संकल्प अभिव्यक्त हुआ है। प्रयोगवादी काव्य में जीवन के प्रति नकारात्मक अभिव्यक्त निराशा और असफलता के कारण जीवन से परामुखता का भाव ही प्रमुख था किन्तु समकालीन कविता जीवन के ज्वार से आन्दोलित है जो सम्पूर्ण रूप में उसे भोगने की लालसा से सम्पन्न है। जो कवि कभी प्रेम से निराश था और अपनी असफलता में केवल आत्महत्या कील बात सोचता था वह जीवन का महत्व जानकर उसे अधिक सुन्दरता से परिपूर्ण करने की सोचने लगा। आशा और उल्लास नये कवि के जीवन का उल्लास बन गये-

वही है पास में पनवट
किलकती कोकिला बेमान होकर देखती दिखती जब
चाँद मुखड़े पर घटा सी छा गई लट
खड़ी सिर लिए गागर, तुम्हारी इन्तजारी में
दरद करती कमर, दिल काँपता है बेकरारी में। [5]

आधुनिक काव्य में आस्था-अनास्था के स्वर मुख्य रूप से देखने को मिलते हैं। नई कविता के नये कवियों ने ईश्वर के दो रूपों का दर्शन किया है एक तो यह कि वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण ईश्वर के अस्तित्व के प्रति कवियों के मन में शंका है, और दूसरा यह कि आपाधापी के युग में जब संघर्षरत मानव अपने सुख दुख को ईश्वर के आश्रय छोड़ देता है। तात्पर्य यह है कि नयी कविता में आस्था-अनास्थावादी दो प्रकार की प्रवृत्तियों का चित्रण मिलता है-

जीवन का ज्ञान सिर्फ जीना मेरे लिए
इससे विराट चेतना की अनुभूति अकारथ है
'हल होती हुई मुश्किलें
खामखा और उलझ जाती है
और ये साधारण सा जीना भी नहीं जिया जाता। [6]

अस्तित्ववादी ईश्वर, धर्म, नैतिकता, सामाजिकता-मूल्यों आदि से सम्बन्धित समस्त परम्परागत धारणाएं अस्वीकार करता है, अतः वह अनास्थामूलक दृष्टिकोण को स्वीकार करता है। वह न तो मानव की उदात्तता का समर्थक है, और न ही आशावादी जीवन दृष्टि का। वह पीड़ा को यथार्थ मानता है, दुःखों को सत्य मानता है, मृत्यु को शाश्वत मानता है, अतः उसकी दृष्टि जीवन के नकारात्मक पहलू पर ही टिकी है। वह संघर्षशील नहीं पलायनवादी है। हिन्दी के अधिकांश नये कवियों ने इसी अनास्थामूलक स्वर को अभिव्यक्ति दी है-

वंचना है चाँदनी सित
झठ है वह आकाश का निर्बाध गहन विचार
शिखिर की राका-निशा की शान्ति है निस्सार।
दूर वह सब शान्ति, वह सित भव्यता
वह शून्य अवलेप का विस्तार। [7]

अस्तित्ववादी दर्शन में क्षण बोध या क्षण की अत्यधिक महत्ता है। इस दर्शन के

अनुसार जीवन का एक क्षण जो व्यक्ति को सुख व तृप्ति प्रदान करे वह समस्त जीवन से अधिक महत्वपूर्ण है। अज्ञेय जी का क्षण के प्रति मोह अनेक कविताओं में भी मिलता है। प्रत्येक क्षण को जीने, उसको पहचानने की ललक कवि में निरन्तर रही है, इसलिए हर क्षण का पूर्ण भोग आवश्यक है-

गहरी बात यह है कि दोनों के बीच/ ऐक क्षण है कहीं एक मोड़ है
जिस पर एक स्वयं सिद्ध जोड़ हैं और वही,/ उस पर ही जाना है,
यह गीत जो मरेगा नहीं। [8]

मानव की वैयक्तिकता तथा उसकी स्थापना ही अस्तित्ववादी दर्शन का मूल उद्देश्य है। ''वैयक्तिक जीवन में क्षण का महत्व अत्यन्त व्यापक है, अतः अपने संघर्षशील अस्तित्व में भौतिक सुख ही मानव का चरम लक्ष्य है। अस्तित्ववादी दर्शन के लिए वर्तमान ही महत्वपूर्ण है। परन्तु वर्तमान अतीत से अविच्छिन्न है, अतः भूत के आधार पर वर्तमान की सार्थकता को भविष्य में पाने के लिए अतीत को समझा जाना लाभकारी है। भविष्य में वर्तमान की स्थितियों को भी बदला जा सकता है। मनुष्य मुख्य है फिर भी उसका जीवन जगत सब निरुद्देश्य है।''9 यह निरुद्देश्य ही वैयक्तिक जीवन की सार्थकता है। व्यक्ति का वास्तविक अध्ययन एवं मूल्यांकन विशेष परिशुद्धतावादी व्यवस्था, दर्शन, तर्क या सामाजिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में न होकर उसे इन सबसे अलग करके एक व्यक्ति के रूप में ही संभव है। ''उनके अनुसार समाज या जीवन संबंधी किसी निश्चयपूर्ण धारणा या व्यवस्था की स्थापना सम्भव नहीं है। कोई भी व्यवस्था मानव की वैयक्तिक अनुभूति व अस्तित्व को पूर्ण स्वातंत्र्य प्रदान नहीं कर सकती है। इसी कारण यह दर्शन हर प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था को मानव के वैयक्तिक विवेक व अस्तित्व का शत्रु एवं द्योतक मानता है। जिसका कारण मानवीय आत्मविवेक की निजता एवं स्वतंत्रता ही है।''[10]

वैयक्तिक जीवन मूल्य सामाजिक जीवन मूल्यों की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण होते हैं। वैयक्तिक मूल्यों पर न्यौछावर करने में तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिए। इस संदर्भ में अज्ञेय जी की कविता 'यह दीप अकेला' महत्वपूर्ण है। जिसमें यही बताया गया है कि व्यक्ति को स्वयं को समाज के हित के लिए स्वयं को समाज में मिल जाना चाहिए। इस कविता में दीप व्यक्ति का प्रतीक है तथा पंक्ति समाज का प्रतीक है। इसमें दीप और पंक्ति में सम्बन्ध दिखाया गया है। यों तो अकेला दीप जलता रहता है पर अन्य दीपों के साथ पंक्तिबद्ध होने से उसकी शोभा बढ़ जाती है तथा सबके समन्वित होने से प्रकाश में भी वृद्धि हो जायेगी। 'अकेला चना भांड नहीं फोड़ता', इसी तरह से अकेला व्यक्ति कितना भी ताकतवर क्यों न हो वह उतना सार्थक नहीं हो सकता जितना अन्य व्यक्तियों का सहयोग पाने पर हो जायेगा। इसी कारण कवि अपने दीप रूपी जीवन को नदी के सामने (समाज के समक्ष) दीपदान करके पंक्ति में जुड़ने के लिए तत्पर रहता है-

यह दीप अकेला, स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर /इसको भी पंक्ति को दे दो। [11]

अस्तित्ववादी चिन्तन में चयन की स्वतंत्रता, या निर्णय की क्षमता को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसमें मानव व्यक्तित्व का महत्व स्वीकार कर उसकी स्वतंत्रता पर बल दिया गया है। मानव का व्यक्तित्व ब्रह्म की अभिव्यक्ति न होकर अपने कार्यों को स्वतंत्र रूप से सम्पन्न करने वाला है। ''पाश्चात्य विचारक सात्र के दार्शनिक चिन्तन में स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें कहा गया है कि स्वतंत्रता ही मानव अस्तित्व का स्वरूप है, जिसके माध्यम से मनुष्य स्वयं का निर्माण करता है।''12 अस्तित्ववाद व्यक्ति स्वातंत्र्य का समर्थक होने के कारण सामाजिक मान्यताओं को नकारता है। सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, आदि मनुष्य की स्वतंत्रता में बाधक है। अस्तित्ववादी समाज के प्रवाह में पड़कर अपने अस्तित्व को उसमें विलीन नहीं करना चाहता। अज्ञेय जी ने व्यक्तिवाद की इस धारणा को 'नदी के द्वीप' कविता में व्यक्त किया है-

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर
स्रोतस्विनी बह जाया/ किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं है।/ स्थिर समर्पण है हमारा।
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के/ किन्तु हम बहते नहीं है
क्योंकि बहना रेत होना है। [13]

अस्तित्ववादी मानता है कि यदि व्यक्ति स्वयं को समाज के प्रवाह में बह जाने देगा तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा, जिस प्रकार नदी का दीप प्रवाह में बहकर रेत बन जाता है तथा अपना अस्तित्व खो बैठता है। धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, सर्वेश्वर दयाल आदि के कृतित्व में अहं भाव तीव्रता से मिलता है। भारती जी ने अपने अहं को अभिमन्यु के रथ के पहिये के प्रतीक के रूप में व्यक्त किया है-

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति/सहसा झठी पड़ जाने पर
क्या जाने /सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले। [14]

पारम्परिक मूल्यों के प्रति मोह तथा नये मूल्यों को अपनाने की ललक ने आज के मानव जीवन में उथल-पुथल मचा दी है। जिसके कारण मानव परम्परागत मूल्यों व संस्कारों को बंधन समझकर उनसे मुक्त होने का प्रयास करते हुए थोड़ा सा व्यक्तिवादी हो गया है। वह सामाजिक पथ पर जब कभी भी चलता है तो शंकालु हो उठता है। उसकी गति बँध जाती है तथा अपनी टूटी हुई आस्था के लिए वह अदृश्य चरणों में स्वयं को सौंपकर संतोष की अनुभूति करता है-

लगता है सारा अस्तित्व ही किसी झठे पेर
टिका हुआ/ जाता है आप ही बिखर-बिखर।
जिनके सहारे/ लहरों से लड़ रहे हैं हम/ वे घड़े कच्चे हैं। [15]

आधुनिक काव्य में लोकतांत्रिक व्यवस्था से मोहभंग का स्वर सर्वप्रथम प्रयोगवाद में ही देखने को मिलता है। जिसमें सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश की भावना विद्यमान है। नयी कविता के कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना समाजवादी विचारधारा के लोहियावादी कवि हैं। जिन कवियों ने बदलते हुए के साथ अपने नये तरीके को प्रस्तुत किया उनमें सर्वेश्वर प्रमुख हैं। ''स्वतंत्रता के पश्चात् की जिन्दगी को सर्वेश्वर की इन पंक्तियों में मूर्त किया। 'चौपाई मारौ दुलहिन' नामक कविता की ये पंक्तियां आम आदमी के जीवन की ओर संकेत कर रही हैं-

दे धोती?/ दिन भर चरखा कात
साँझ को क्यों रोती?/ सूत बेचकर/पी आये घर में ताड़ी
छीन लंगोटी, काटी बोटी-बोटी/ किस्मत ही निकली खोटी
ऊपर से नेग माँगते हैं,/ ये बाम्हन नौआ।
चौपाई मारौ दुलहिन/ मारा जाई कौआ। [16]

लोकतांत्रिक व्यवस्था से मोहभंग के कारण जनवादी मूल्यों से सम्पृक्त कवियों ने काव्य-सृजन के केन्द्रित मंच से भी सार्थक विद्रोह जाने-अनजाने आवश्यक रूप से प्रकट किया है। ''सौमित्र मोहन ने 'प्रजातंत्र' शीर्षक कविता में 'आन्दोलन' शब्द को आठ पंक्तियों में तोड़ मरोड़कर तथा 'भड़ाम' शब्द को खण्ड-खण्ड कर आतंकी जनतंत्र को चिढ़ाया है। सौमित्र की 'लुकमानअली' कविता का नायक लुकमान अली परिवेश के प्रति विद्रोह प्रस्फुटित करता है किन्तु लोगों की नपुंसकता के कारण उनमें शरीक नहीं होता। यथा 'वह दिल्ली के बीचो बीच संजीवनी बूटी बोकर बेहोश लोगों की तलाश में है।' इतना ही क्यों उन्होंने आतंकित माहौल को सही भाषा देने के लिए 'लुकमानअली' के माध्यम से भाषण, नेता, मुखौटे, कुर्सी, तालाबंदी, अखबार, प्रजातंत्र, भाई भतीजावाद तथा भ्रष्टाचार आदि शब्दों के अतिरिक्त अन्य विसंगतियों का अहसास कराने के लिए जिस 'और' शब्द का 16 बार प्रयोग किया है वह उनकी विद्रोही चेतना का सार्थक परन्तु धधकता भाषण है।''[17] कुमार विमल ने 'वापसी' शीर्षक कविता में व्यवस्था से मोर्चा लेने के लिए संगठन की धमकी दी है-

राजतंत्र की वनतन्त्री व्यवस्था में
मैं अकेला और अरक्षित हूँ
X X X
हर आदमी का वर्ग उसकी सुरक्षा का घेरा है।
X X X
जब कभी राजपथ पर आऊँगा
अकेला नहीं/ पूरे मुहल्ले के साथ आऊँगा। 18

चन्द्रकान्त देवताले ने 'प्रजातंत्र के बुखार में' शीर्षक कविता में इस प्रकार विद्रोह व्यक्त किया है:

बुखार बढ़ता जा रहा है
डाक्टर कहाँ है.....संसद के सामने
सिर्फ सैकड़ों मुख भाषण बदल रहे हैं
घोषणा-पत्र गधे के मुख में चबता जा रहा है। [19]

आधुनिक हिन्दी कविता का राजनीति से गहरा सम्बन्ध है। नयी कविता के दौर में भी मुक्तिबोध जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति की। समकालीन कविता का प्रमुख नारा है- 'व्यवस्था का विरोध'। यह विरोध सही ढंग से किया जा रहा हो या गलत ढंग से लकिन इसमें कोई शक की बात नहीं कि यह विरोध राजनीतिक है। इस प्रकार समकालीन कविता मूलतः राजनीतिक कविता है। लोकतंत्रिक व्यवस्था से मोहभंग को आज के कवियों ने अत्यन्त सहज भाव से अपनी कृतियों को दर्शाया है। अकविता के प्रस्तोताओं को वैसे तो प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था से घृणा है कि लोकतंत्र के प्रति उनकी विशेष अरुचि है जिसकी चर्चा उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में की है-

आदमी को इस लोकतन्त्री सरकार से अलग हो जाना चाहिए,
चले जाना चाहिए कस्सबों, गाँजाखोर साधुओं, भिखमंगो,
अफीमची, रंडियों की काली और अंधी दुनियाँ के मस्सानों में। [20]
(राजकमल चौधरी)
मुझे तानाशाही से लगाव है, जनतंत्र के रिरियाते गीदड़ से नहीं,
मुझे वेश्यालयों में गंदगी नजर नहीं आती।। [21](जगदीश चतुर्वेदी)

वस्तुतः दोनों कवियों का मूल स्वर एक ही है जहाँ एक ने लोकतंत्र से अलग होकर 'रंडियों के मस्सानों' में जाने की बात कही है तो दूसरे ने प्रजातंत्र की अपेक्षा वेश्यालयों को अधिक स्वच्छ माना है भौतिकवादी जीवनदृष्टि को उपभोगवादी जीवन दृष्टि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। ''अस्तित्ववादी भोगवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय देता है। पाश्चात्य संस्कृति वैसे भी भोगवाद पर ही टिकी हुई है। भारतीय संस्कृति में जहाँ त्याग को भोग से श्रेष्ठ माना गया है वहाँ पाश्चात्य संस्कृति में भोग को ही प्रधानता प्रदान की गयी है, जिसे पाश्चात्य विद्वान 'आनन्द' कहते हैं। अस्तित्ववाद भी भोग को आनन्द का पर्याय मानकर उसके अभाव को पीड़ा कहता है। अतः अस्तित्ववादी साहित्य में भोग और पीड़ा दोनों को ही गरिमा मण्डित किया गया है।''[22]

अज्ञेय ने इस प्रभाव को स्वीकार करते हुए कहा है कि आधुनिक युग का साधारण मनुष्य यौन-वर्जनाओं का पुंज है। उसके जीवन का एक पक्ष है उसकी सामाजिक रूढ़ि की एक लम्बी परम्परा जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ विकसित नहीं हुई और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति, जिसके साथ रूढ़ि का विकास असंभव है। इस विपर्यास का परिणाम है कि आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनायें दमित हैं कुण्ठित हैं। नयी कविता के कवियों में इस उन्मुक्त भोग के दर्शन हो सकते हैं-

आमाशय/ यौनाशय/ गर्भाशय/ जिसकी जिन्दगी का यही आशय
यही इतना भोग्य/ कितना सुखी है वह
भाग्य उसकी ईर्ष्या के योग्य! [23] (कुंवर नारायण)

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि इनके जीवन के तीन महान आयाम ये तीन आशय ही हैं! इनके जीवन का आशय ही तीन आयामों की पूर्ति तक सीमित है। सचमुच ये भाग्यशाली है- जीवन के शेष सारे उत्तरदायित्वों और क्रिया-कलापों से मुक्त होकर केवल तीन सुखागारों में ही अपने जीवन को समेट लिया!! नकारात्मक अस्तित्ववाद में इस प्रवृत्ति को मुख्य रूप से दर्शाया गया है। क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य की व्यक्तिगत अकेलेपन, नैराश्य आदि के कारण ही उपजती है। निराशा, कुण्ठा, घुटन ये सभी तत्व अस्तित्ववादी प्रवृत्ति की प्रमुख प्रवृत्तिया हैं। निराशा या दःख अस्तित्ववाद मूल में कहीं न कहीं उपस्थित हैं। निराशा तब पैदा होती है जब हम अपने को किसी अन्य के लिए उपस्थित नहीं कर पाते हैं जो आत्मा किसी के लिए उपस्थित हैं वह पवित्र और समर्पित हो जाती है तथा निराशा, कुण्ठा, घुटन आदि से सुरक्षित हो जाती है। जिस उन्मुक्त भोग की चर्चा पूर्व में की गयी है वही आगे चलकर निराशा, कुण्ठा, जीवन की निरर्थकता के बोध में परिणित हो जाता है-

हममें से किसी के पास टार्च नहीं है /और अँधेरे में/हम सभी गिरफ्तार हो गये हैं। [24]

आधुनिक काव्य में निराशा, कुण्ठा, घुटन के स्वर छायावाद में दिखाई पड़ने लगे थे किन्तु प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में ये तत्व मुख्य रूप से मुखरित होने लगे थे। प्रयोगवादी काव्य की एक महत्वपूर्ण दिशा यह भी है कि इस काव्य में व्यक्ति की निराशा, कुण्ठा, घुटन आदि असफलता सूचक मनोवृत्तियाँ व्यक्त की गयी हैं जिनका स्रोत भी व्यक्तिवादी आत्मलीनता तथा सामाजिक विषमताओं से एकाकी संघर्ष करने में असफल रहने की प्रतिक्रिया ही है।

छू सकी नहीं कोई ज्योति हृदय की धड़कन को
एक भी किरन दे सके नहीं दीप सौ सौ। [25] (जगदीश गुप्त)

आधुनिक काव्य के नयी कविताओं में पीड़ा, निराशा, व्यक्तिवादी कुण्ठा, घुटन का बोझ अत्यन्त तीव्र रूप में होता है। इस कारण इसमें निराशा, कुण्ठा, मरणधर्मिता भी है। आज की हमारी सामाजिक स्थिति व्यक्ति में निराशा, कुण्ठा, घुटन के भाव जाग्रत होते हैं। ''आधुनिक एवं पाश्चात्य अंधानुकरण ने जिस कदर भारतीय सामाजिक मूल्यों को छिन्न-भिन्न किया है उससे सामाजिक जीवन में घुटन, पीड़ा, अवसाद तथा निराशा का कष्टदायी वातावरण उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही था। फिर नये कवि इससे कैसे बच पाते! कुंवर नारायण की कुछ पंक्तियां देखिये-

प्रकाश के रंगीन झरने/ जो असंभव ऊँचाई से गिर रहे हैं।
पत्थर को गुदगुदाकर एक तरल संगीत जगाकर
कहीं दूर चले जायेंगे। और तब मैं बंद आँखों के अपार अंधकार में
झूलेते हुए अपने चित्रों को नोचकर कहूँगा कि सब कुछ
शायद मेरे उन्माद की छाया था। तुम नहीं। 26 (नयी कविता: अंक 3)

नई कविता में दर्द (पीड़ा), निराशा कुण्ठा, पराजय स्थायी नहीं है और न ही ये जीवन में ठहराव या ध्वंस उत्पन्न करती है। प्रयोगवादी कवि निराशा, कुण्ठा, घुटन को ही सत्य मान बैठे थे, जबकि नई कविता का रचनाकार पीड़ा, निराशा, और कुण्ठा में से प्रकाश प्राप्त करता है-

दःख सबको माँजता है/ और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना न जाने, किन्तु
जिसको माँजता है/ उन्हें यह सीख देता है /कि सबको मुक्त रखें। [27]

अतः समकालीन काव्य में अस्तित्ववादी चिन्तन की दृष्टि से निराशा पीड़ा, घुटन, कुण्ठा, आदि प्रवृत्तियाँ प्रत्येक नये कवि के काव्य में देखने को मिलती हैं। आधुनिक काल के काव्य में नई मूल्य दृष्टि, नए-नए विषयवस्तु, नवीन सौन्दर्य चेतना, नवीन भाव राशि, नई भाषा, नये-नये छन्द अलंकार तथा नये-नये बिम्ब और प्रतीक अभिभूत करने वाले हैं। समकालीन कविता में मानव-स्थिति के बोध से अभिप्राय मानव के अस्तित्व सम्बन्धी उन सामान्य लक्षणों से है जो सभी युगों में एक जैसे रहते हैं, अथवा उसकी किसी अनिश्चितता, स्वतंत्रता तथा उन मूलभूत आकांक्षाओं के ज्ञान से हैं, जो कि व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों व संसार से जोड़ते हैं।

****

संदर्भ ग्रन्थ:

1 भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा-तेजपाल चौधरी, पृ0 268, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-
2 आत्मजयी-कुंवर नारायण-पृ0 94-95, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण
3 एक कंठ विषपायी: दुष्यन्त कुमार (आभार कथा) पृ0 68, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,प्र0सं0 1979
4 पाश्चात्य काव्यशास्त्र: काव्य सिद्धान्त और वाद-डा0 भगीरथ मिश्र, पृ0 199, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5 उठे बादल, झके बादल-दूसरा सप्तक-सं0 अज्ञेय, पृ0 71, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, दूसरा पेपरबैक संस्करण-
6 आधुनिक हिन्दी काव्य-उद्भव और विकास-डा0 स्नेहलता पाठक, पृ0 50-51, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर
7 शिशिर की राका-निशा सं0 अज्ञेय, पृ0 228-29, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण-2009
8 अज्ञेय, सदानीरा भाग-,2 नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1986, पृ0 192
9 पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त-डा0 मैथिली प्रसाद भारद्वाज, पृ0 237, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, संस्करण-2002
10 हिन्दी साहित्य का विकास-प्रवृत्तिगत विश्लेषण-डा0 बहादुर सिंह, पृ0 155 विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, संस्करण प्रथम-1990 से उद्धृत
11 यह दीप अकेला-अज्ञेय, अज्ञेय का व्यस्तबक-सं0 विद्यानिवास मिश्र-प्रमेशचन्द्र शाह, साहित्य अकादमी,
12 पाश्चात्य साहित्य कोश-डा0 राजवंश सहाय, पृ0 139, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, संस्करण-13 अज्ञेय काव्यस्तबक-सं0 विद्यानिवास मिश्र-प्रमेशचन्द्र शाह, साहित्य अकादमी, प्र0सं0 2005,
14 टूटा पहिया-धर्मवीर भारती ग्रन्थावली, भाग-2 सं0 चन्द्रकान्त वांदिवडेकर-वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 15 हिन्दी साहित्य का इतिहास-डा0 चातक/प्रो0 राजकुमार शर्मा, पृ0 326 से उद्धृत, कालेज बुक डिपो, जयपुर,
16 तीसरा सप्तक-सं0 अज्ञेय, पृ0 225, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, नौवां संस्करण 2009
17 आधुनिक काव्य प्रवृत्तियां-सं0 डा0 चन्द्र त्रिखा-पृ0 133, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला प्रथम सं0
18 वही-पृ0 133,
19 वही, पृ0 134
20 हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय खण्ड) गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ0 287, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1996
21 वही, पृ0 287
22 भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा-तेजपाल चैधरी, पृ0 270-271, विकास प्रकाशन, कानपुर,
23 भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त-गणपति चन्द्र गुप्त, पृ0 271, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण24 भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त-गणपति चन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण-1996
25 हिन्दी साहित्य का इतिहास-डा0 चातक/प्रो0 राजकुमार शर्मा, पृ0 326, कालेज बुक डिपो जयपुर, संस्करण-
26 हिन्दी साहित्य का विकास: प्रवृत्तिगत विश्लेषण-डा0 बहादुर सिंह, पृ0 157 विवेक पब्लिशिंग हाऊस जयपुर,
27 अज्ञेय, सदानीरा भाग-,1 नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्क,2003 . पृ238 .

सूर्यबाला के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना

डॉ.रमणी चन्द्राकर
शोध-निर्देशक, (सह-प्रध्यापक) हिन्दी विभाग,
मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर छत्तीसगढ़

अंजुम आरा बेगम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर छत्तीसगढ़

प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्रवृत्ती का संचित कोश होता है। यह जीवन की आलोचना है। साहित्यकार को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अनुभओं की आवश्यकता होती है। ये अनुभव साहित्यकार को समाज से ही प्राप्त होते है। डॉ. गुलाब राय के अनुसार - ''कवि या लेखकगण अपने समाज के मस्तिष्क और मुख दोनों होते है। कवि की पुकार समाज की पुकार होती है। वह समाज के भावों को अपनी वाणी का बल ही नही देता वरन् कभी-कभी उन्हें नई दिशा भी देता है। कवि समाज के भावों को व्यक्त कर सजीव और शक्तिशाली बना देता है।[1]

समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है, हिन्दी साहित्य अपने जन्मकाल से ही समाज की गति विधियों को अपना विषय बनाता रहा है, यह निर्विवाद सत्य है कि समाज और साहित्य का अटूट एवं अन्योन्याश्रय संबंध है और साहित्य समाज का दर्पण है। किसी भी काल में साहित्य को समझने के लिए उस काल की परिस्थितियों की जानकारी अवास्यक है। सामाजिक प्रवृत्तियों से साहित्यकार प्रभावित होता है, और उसके अनुसार साहित्य की रचना करता है। एक ओर जहाँ साहित्य समाज की गतिविधियों से प्रभावित होता है। वहीं दूसरी ओर समाज में नई प्रेरणा, नये विचार, नऐ विचार, नये आदर्श भी प्रस्तुत करता है। आदिकाल से ही समाज और साहित्य का का अटूट सम्बन्ध रहा है। ''किसी भी देश के साहित्य में वहाँ के सामाज की मान्यताएँ, समस्याएँ, नीतियों, रीतियों एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष के प्रतिबिम्ब मिलते है। साहित्य में सामाजिक चेतना और रचनाकार का निजी व्यक्तित्व दोनों ही समन्वित रहता है।''[2] क्योंकि प्राचीन काल में जीवन में संघर्ष की कमी रही, उसके बाद जीवन में उतार-चढ़ाव के अनेक चित्र प्रस्तुत किये गए है।

सामाजिक चेतना - सामाजिक चेतना एक व्यापक आशय का शब्द है। सामाजिक चेतना भी एक स्पष्ट परिभाषा देना कठिन है। वह अपरिभाषेय है। 'समाज' शब्द का अर्थ है Society समूह और 'चेतना' शब्द का संबंध मनोविज्ञान से है लेकिन सामाजिक चेतना समाज से संबंधित है। हर युग में समाज में किसी भी प्रकार की जागृति या परिवर्तन होते है, रूढ़ीगत विचारों को छोड़कर किसी नयी दिशा में जब समाज पवृत्त होता है और अपनी उन्नती की ओर अग्रसर होता है तो कहा जाता है कि उस समाज में जागृति उत्पन्न हुई है। किसी बुराई के प्रति समाज में जो जागृति होती है, वही सामाजिक चेतना का प्राणरूप है। समाज की कुरीतियाँ, बुराईयाँ आदि देखने पर उनके प्रति जो जागृति परिवर्तनशील प्रक्रिया होती है उसे हम सामाजिक चेतना कह सकते है। बुराईयाँ देखने से व्यक्ति के मन में जो संघर्ष होता है, उसी के फलस्वरूप सामाजिक चेतना का उद्भव हो सकता है।

सामाजिक चेतना को समझने के लिए पहले हम 'समाज' के बारे में बात करेंगे। व्याक्तियों के समुदाय का नाम ही समाज है। 'समाज' शब्द 'सम' उपसर्ग और 'अज' धातु में 'धम' प्रत्यय के लगाने से बना है। 'सम' का अर्थ है, सम्यक रूप से तथा 'अज्' का अर्थ है जाना। सामान्य बोलचाल के अर्थ में 'समाज' शब्द का प्रयोग मनुष्य के समूह से माना जाता है। हर मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए सामाजिक संबंधों की आवश्यकता पडती है, जिसके कारण वह पारस्परिक मेल-मिलाप करता है और इसी पारस्परिक मेल-मिलाप पर आधारित संबंधों को 'समाज' का नाम दिया जाता है।

सुर्यबाला जी के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना - सूर्यबाला जी के कथा साहित्य में उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है। समाज से जुड़ी हर छोटी बड़ी समस्या को उनके लेखन में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। जिसमें भारी और मध्यम वर्गीय लोगों की समस्या मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। सूर्यबाला जी ने अपने कथा साहित्य में मध्य वर्गीय समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक विसंगतियों को उजागर किया है। क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। लेखक एवं रचनाकार अपने साहित्य के माध्यम से समसज में चेतना जागृत करने का प्रयास करता है। सूर्यबाला जी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना को सामाजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत निम्न शीर्षकों के माध्यम से देखने का प्रयास किया गया है। जिसमें सामाजिक सम्बन्धों के अन्तर्गत बेरोजगारी की समस्या, गरीबी, भ्रष्टाचार, स्त्री शिक्षा, स्त्री-पुरुष समानता, दहेज, महिला अधिकार, बाल-विवाह का चित्रण तथा प्रदर्शन आदि किया गया है।

बेरोजगारी की समस्या - सूर्यबाला जी ने अपने कथा साहित्य में अनेक आर्थिक समस्याओं को अत्यंत बारीकी से उद्धटित किया है। परंतु इसका मुख्य कारण बेरोजगारी का दंश झेलना है। बेरोजगारी आज हमारे समाज की ज्वलंत समस्याओं में से एक है, इसके कारण युवाओ में हीन भावना आ जाती है। शिक्षित एवं योग्य होने क बावजूद जब वह नौकरी हासिल नही कर पाता है, तो वह निराशा और कुण्ठा ग्रस्त हो जाता है। वर्तमान में युवा वर्ग के लिए शिक्षा निरर्थक होती जा रही है, क्योंकि जिस शिक्षा को वह अपनी आजीविका का साधन बनाना चाहता है, वही उसे बेरोजगार की लम्बी कतार में खड़ा कर रही है। सूर्यबाला जी ने अपने उपन्यासों और कहानियों में बेरोजगारी को बढ़ावा देने वाले कारणों को चित्रित किया है।

'अग्निपंखी' उपन्यास का नायक जयशंकर है, जो बेरोजगार तथा अर्ध शिक्षित है। बेरोजगार व्यक्ति को हमेशा अपमान सहना पडता है। जयशंकर को गाँव और घरवाले सभी ताना मारते हैं कि पढ़ाई के कारण इसे खेतों का काम नहीं आता बस इसे मुफ्त की रोटी खाने की आदत पड़ गई है। यह सब सुनकर जयशंकर कहता है, ''बेशक मैं खेतों में मेहनत नहीं कर पाता, लेकिन माँ तो खटती है और अपना स्वार्थ सोंचकर ही सही झुककर भी रहती है हर किसी से।''[3] उक्त वक्तव्य से स्पष्ट होता है कि बेरोजगार युवक को हर समय अपमानित होना पड़ता है। इसलिए आज के अर्थ प्रधान समाज में जो अधिक धन उपार्जन करता है, उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है।

सूर्यबाला जी की कहानी कंगाल में भी बेराजगारी की मार झेलते एक नवयुवक की व्यथा को मार्मिकता के साथ अंकित किया गया है। इस कहानी का नायक विनय है, जिसे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी नौकरी नही मिलती जिसके कारण वह बहुत परेशान रहता है। 'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास के द्वारा सूर्यबाला जी ने बेरोजगारी के विषय को उजागर किया है। आज का युवा बेरोजगार होने के कारण कुण्ठा ग्रस्त हो गया है जिसके प्रभाव स्वरूप वह गलत रास्ते की ओर अग्रसर हो रहा है।

गरीबी - गरीबी वर्तमान समय का शाश्वत सत्य है। उत्पादन के स्थान पर सदैव एक वर्ग का अधिकार है। जब कि बहुसंख्यक लोगों ने केवल इन साधनों से वंचित हो रहे है, बल्कि अपने श्रम के फल से भी वंचित होते जा रहे हैं। आधुनिक युग में यह संकट और भी गहरा हो गया है। आजादी के उपरांत गरीबी की समस्या को सुलझाने के लिए भारत की सरकार ने कई सारे प्रयास किए। कई सारी योजनाएँ बनाई लेकिन कई कारणों की वजह से सामाज से गरीबी का उंमूलन सफल न हो सका। इसलिए आज भी समाज में गरीबी की समस्या बनी हुई है। सूर्यबाला जी ने अपने कथा साहित्य में गरीबी से उत्पन्न समस्याओं को चित्रित किया है। सूर्यबाला जी के उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' में मानू के माता-पिता को वर्ग-चेतना और जाति के अनुकूल कोई काम नही मिलता जिसके कारण उन्हें गरीबी की मार झेलनी पड़ती थी मानू ''किसी तरह हाई स्कूल पास कर दो साल से घर में बैठी थी, मुझसे छोटा बुलू एक डेढ़ साल पढ़ता, कभी फीस न जमा कर पाने से नाम कट जाने पर घर बैठा रहता।''[4] इस तरह गरीबी के कारण बच्चों की पढ़ाई रूक जाती है। और बुलू को गैराज में काम करना पड़ता हैगरीबी व्यक्ति को बेबस और लाचार बना देती है जिसके कारण आर्थिक संघर्ष करना पड़ता है। 'अग्निपंखी' उपन्यास का नायक जयशंकर भी गरीबी के कारण शहर जाता है, जिसे वहाँ पर अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सूर्यबाला जी का रचना संसार निम्न मध्यवर्गीय सामाज पर टिका रहता है। अर्थ की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए आर्थिक अभाव में तड़पने वाले मानव जीवन और टूटते मानवीय संबंधों पर सूर्यबाला जी ने मार्मिक ढंग से विचार-विमर्श किया है।'दीक्षांत' उपन्यास में गरीबी के कारण शर्मा सर काबिल होने के बावजूद अस्थाई नौकरी करते हैं तथा अपने जीवन की आर्थिक परिस्थिति के बीच पूरी तरह पीस जाता है, 'मेरा विर्दोह' कहानी में आर्थिक तंगी के कारण एक बेटा अपने पिता के साथ निर्मम व्यवहार करता है। सूर्यबाला जी ने अपने उपन्यासें और कहानियों के माध्यम से गरीबी की दशा सुधारने क लिए पाठक वर्ग को सचेत करने का प्रयास किया है।

भ्रष्टाचार - भ्रष्टाचार वर्तमान समय की एक गंभीर समस्या बन चुकी है। इसी भ्रष्ट

सामाजिक व्यवस्था के कारण मनुष्य में स्वार्थ प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, क्योंकि ईमानदार व्यक्ति ऐसे भ्रष्ट वातावरण में अपनी ईमानदारी को सुरक्षित नहीं रख पाता है। क्योंकि भ्रष्टाचार एक ऐसा कार्य है जो असामाजिक तरीकों से किया जाता है। आजकल भ्रष्टाचार कार्यालों में, शिक्षा संस्थानों में, सामाजसेवी संस्थानों हर कहीं व्याप्त है। रिश्वत खोरी, बड़े अफसरों की अफसरशाही, प्रशासन का मनमाना व्यवहार आदि इन सबको सूर्यबाला जी ने अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्त की है।

राजनीति में भ्रष्टाचार बुरी तरह फैल चुका है। यह उस विषैले सांप की तरह है। जिसके विष से कोई नहीं बच पाता है। राजनीति को इसने बुरी तरह से विषैला बना दिया है। जिसका प्रभाव सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है। 'होगी जय, होगी जय... हे पुरुषोत्तम नवीन' कहानी में अरूण वर्मा एक ईमानदार फॉरेस्ट अधिकारी है। जो एक दिन एम.एल.ए. के भतीजे का ट्रक पकड़ लेता है, इसलिए ''एम.एल.ए. के आदमी उसे धमकाते हैं, बेकार का अडंगा हटाने का क्या लोगे, सारे इलाके में उनका राज है तो जंगल क्या अलग है। उनका जंगल वह चाहे काटे, चाहे रखें, अरूण वर्मा के बाप का क्या जाता है।''[5] भ्रष्ट अधिकारी अपने पद का का मनचाहा इस्तेमाल कर अरूण वर्मा को सस्पेंड करते है। 'दीक्षांत' उपन्यास में एक ईमानदार अध्यापक शर्मा सर को मैनेजिंग कमेटी इस्तीफा देने को कहती है। ताकि उनका पद एम.एल.ए. के भान्जे को दिया जाए। इस प्रकार आज सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचारी, धोखाधड़ी पनप रही है। वस्तुतः सूर्यबाला जी ने अपने उपन्यासों व कहानियों के माध्यम से राजनीतिक भ्रष्टाचार को चित्रित कर समाज को उसके प्रति सचेत तथा सावधान करने का प्रयास किया है।

स्त्री शिक्षा - स्त्री शिक्षा से यहाँ अभिप्राय केवल अक्षर ज्ञान ही नहीं अपितु स्त्री का शिक्षित होकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो अपने आत्म सम्मान को जागृत करना भी है। किसी भी समाज का नारी-वर्ग यदि अशिक्षित व असंस्कृत बना रहे तो उस समाज को सभ्य शिक्षित और समुन्नत किसी भी दृष्टि से नहीं कहा जा सकता। समाज को गौरव तभी प्राप्त होता है, जब स्त्री भी पुरुष के समान ही शिक्षित होकर आत्मनिर्भर बने। यह तभी संभव होगा जब समाज की हर नारी न सिर्फ साक्षर बल्कि शिक्षित हो। क्योंकि स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता के पीछे शिक्षा का बड़ा योगदान रहा है। अज्ञान और रूढ़ियों के अंधेरे को शिक्षा ही दूर कर सकती है। ''स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया में शिक्षा एक महत्वपूर्ण औजार है न ही उनके लिए बढ़ने का साहस ही जूटा सकती है। शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों के लिए संगठन के महत्व को भी समझना ज़रूरी है। संगठित होकर ही वे अपनी लड़ाई समग्र रूप से लड़ सकती है और समाज का चेहरा बदलने में सफल हो सकती है।''[6] यह सही है कि शिक्षा ही नारी को समाज में आगे बढ़ाकर सफलता प्रापत करने की ताकत उपलब्ध कराती है, और शिक्षा के बल पर नारी अपने ऊपर होने वाले शोषण के खिलाफ आवाज उठा सकती है।

स्त्री पुरुष समानता-मानव जाति की उत्पत्ति से लेकर आधुनिक युग की दहलीज तक दृष्टिपात करे तो स्त्री-पुरुष एक दूसरे के पूरक घोषित किए गए है। किंतु बदलते परिवेश ने पूरकता का हास करके पुरुष को सर्वोपरि प्रस्थापित कर दिया है। जिसके चलते पुरुषों की सत्तात्मक मनोवृत्ति के हथकण्डों में नारी दमित हुई है। फलस्वरूप स्त्री-पुरुष समानता की भावना का 'उपहास' हो गया है। परिणामतः नारी आज भी असमानता की जंजिरों में बंधकर रह गई है। परंतु पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित प्रबुद्ध चिंतकों ने स्त्री-पुरुष समानता और समान अधिकारों की समस्या को पुनः उजागर करने का प्रयास किया है। इसके लिए हमारे देश में संविधान लागू किया गया और भारतीय संविधान 26 जनवरी, 1950 को यह क्रियान्वित किया गया है, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों को कानूनी समानता प्रदान की गई है, भारतीय संविधान के 15वें अनुच्छेद में स्पष्ट घोषणा की गई है कि -''राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, जन्म-स्थान, अथवा इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।''[7] नारी चरित्रों की वकालत करते हुए सूर्यबाला जी ने अपने उपन्यासों व कहानियों में स्त्री पुरुष समानता की जटिल समस्याओं को स्थान दिया है।

दहेज - वर्तमान में दहेज प्रथा एक अभिशाप बन चुकी है। पहले लोग अपनी बेटी के सुखी जीवन यापन के लिए यथा-योग्य सामग्री देकर उसे विदा करते थे, किंतु आज इसका स्वरूप ही बदल गया है। आज इसका स्थान प्रतिस्पर्धा और लालच ने ले लिया है। दहेज नामक विभीषिका न केवल पारिवारिक जीवन में कटुता व कोलाहल पैदा किया है वरन् परिवार और समाज ने विद्वेष, कटुता, त्रास, भय आदि अनेक स्थितियों को जन्म दिया है। सूर्यबाला जी की कहानी 'पूर्णाहुति' कहानी के माध्यम से समाज में व्याप्त सबसे बड़ी बुराई 'दहेज प्रथा' को उजागर किया है।

'पूर्णाहुति' कहानी में एक बेटी की विदाई इसलिए नहीं हो पाती क्योंकि उसका पिता दहेज देने में सक्षम नहीं था। एक पिता का दर्द इस कहानी में व्यथित है वहीं लड़की दहेज का विरोध करती हुई अपने विवाह को रूकवा देती है। संस्कारों में पली लड़की कहती है कि - ''उन्हें जल्दीबाजी की जरा भी जरूरत नहीं, वे लोग अपने आपको मुक्त समझें। हम उनकी प्रतिक्षा करेंगे। जब तक वे चाहें''[8] सूर्यबाला जी ने आज समाज में प्रचलित दहेज की समस्या का चित्रण करते हुए स्पष्ट किया है कि दहेज एक भयंकर सामाजिक बुराई है, जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव निम्न वर्ग पर पड़ता है।

महिला अधिकार - परंपराओं और रूढ़ियों से जकड़े हुए समाज की कुरीतियों को दूर करने और उनके प्रभाव से महिलाओं को छुटकारा दिलाने के लिए समाज सुधारकों ने पिछली शताब्दी में कई महत्वपूर्ण कार्य किए। इसी क्रम में स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं के संरक्षण एवं विकास से संबंधित अनेक प्रावधान किए गए। जिनमें कुछ अधिकार निम्नलिखित थे - नागरिकता का अधिकार, वोट देने एवं चुनाव लड़ने का अधिकार अनैतिक व्यापार के कारण होने वाले शोषण से महिलाओं को संरक्षण, सेवा योजना में बिना भेद-भाव किए समान कार्य हेतु समान वेतन पाने का अधिकार, उत्तराधिकार का अधिकार आदि आदि। आर्थिक अधिकार की दृष्टि से निम्न वर्ग की स्त्रियों की स्थिति मध्यवर्ग की तुलना में फिर भी कुछ बेहतर होती है। उन पर भी अत्याचार होते हैं किंतु वे प्रतिकार करने की हिम्मत भी रखती है क्योंकि वे पुरुष की तरह ही मेहनत मजदरी करती है। अतः वे ज्यादा देर तक पुरुषों के जुल्म नहीं सहती, और विकल्प तलाशी लेती है। वे चाहे, तो अपने पति को छोड़ देने की हिम्मत भी रखती है। 'सुमिन्तरा की बेटियाँ' कहानी की सुमिन्तरा को जब उसके पति से पत्नी होने का अधिकार नहीं मिलता है तो उसकी दोनों बेटी पियरिया और सुमरिया अपनी माँ का बदला अपने पिता से लेती हैं, ''मल्लाहिने दुलहिन को टैक्सी में बिठा रही थी। गाड़ी स्टार्ट होने को थी अचानक तीर की तेजी से सुमरिया निमोड़ी से नीचे उतरी और जमीन की खसखसी रेत, मिट्टी, कीचड़ जो भी उसके हाथों में समाया, भरपूर उठाकर स्टार्ट होती टैक्सी पर फेंककर चिल्लाई- ढोढ़े मर गिया, उठी लहास''[9] क्योंकि वह दूसरी महिला से शादी करता है इसलिए उन्होंने अपनी माँ के साथ हुए अन्याय को देख नहीं पाती और वे अपनी माँ का बदला पिता ढोढ़े की कब्र बनाकर होती है। उसी प्रकार 'सुनंदा छोकरी की डायरी में सुनंदा की माँ ने भी अपने पति और मोहल्ले वालों का अकेले ही सभी का प्रतिकार करती है। क्योंकि उसका पति हमेशा उसका अपमान करता है जिससे तंग आकर वह इस अन्याय को चुपचाप नहीं सहती बल्कि बराबरी से खड़ी होकर इसका विरोध करती है। सूर्यबाला जी ने नारी की मनः स्थिति को अपनी कहानियों के माध्यम से दर्शाया है। उनकी नारी कितनी शांत, निश्चल दिखाई देती है लेकिन कहीं न कहीं वो सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह करती दिखाई देती है। क्योंकि कि वह अपने अधिकारों को समझने लगी है।

निष्कर्ष:- उपर्युक्त विवेचना से यह बात सामने आती है कि सूर्यबाला जी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना को पूरी विश्वसनीयता के साथ सकारात्मक रूप दिया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में नए उभरते निम्न मध्यवर्ग और मध्य वर्ग का विस्तार से चित्रण किया। इन कथा साहित्य में उनकी सहानुभूति निम्न वर्ग और स्त्रियों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक रही है। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से अनेकानेक सामाजिक संबंधों, परिस्थितियों और द्वन्दों को अंकित किया है। उन्होंने बेरोजगारी की समस्या, गरीबी, भ्रष्टाचार, स्त्री शिक्षा, स्त्री-पुरूष समानता, दहेज तथा महिला अधिकार आदि में जागरूकता लाने का प्रयास किया है। अपने समय को वे अपने कथा साहित्य में बखूबी अभिव्यक्त करने में वे सफल रही है। यही उनके उपन्यासकार एवं कहानीकार होने की महत्वपूर्ण सफलता है।

****

संदर्भ :-

1.राय गुलाब - साहित्य और समाज, संस्करण - 1989, पृ. क्रमांक - 5
2.वर्मा शील प्रभा - महिला उपन्यासकारों की रचना में बदलते सामाजिक संदर्भ, संस्करण पृ. क्र. - 53
3.सूर्यबाला - अग्निपंखी, प्रकाशन: ग्रंथ अकादमी, संस्करण - 2011, पृ. क्रमांक - 16
4.सूर्यबाला - सुबह के इंतजार तक, प्रकाशक: ग्रंथ अकादमी, संस्करण - 2011 पृ. क्रमांक -88
5.सूर्यबाला - गृहप्रवेश - प्रकाशक: ग्रंथ अकादमी, संस्करण:2008, पृ. क्रमांक - 61,62
6.दुबे गीता - विजय बहादुर सिंह - मुद्दों की गहन पड़ताल, संस्करण - दिसम्बर 2009, पृ. क्र.-173
7.वर्मा सुशील - आधुनिक समाज की नारी चेतना, पृ. क्रमांक - 112
8.सूर्यबाला - मानुषगंध (पूर्णाहुति), प्रकाशक: किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: पृ. क्र. - 65
9.सूर्यबाला - कात्यायनी संवाद प्रकाशक: ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, पृ. क्र.- 135

प्रवासी जीवन और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य: एक आलोचनात्मक अध्ययन

-नवी हसन
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
मो. न. 8881851944
पता: 535/6, ज़ाकिर नगर, ओखला, जामिया नगर, नई दिल्ली, 110025

प्रस्तावना:

प्रवासी साहित्य भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का जीवंत दस्तावेज है। यह केवल प्रवास के अनुभवों का संकलन मात्र नहीं, बल्कि भारतीयता की पहचान को नए परिवेश में बनाए रखने का एक सशक्त माध्यम भी है। जब कोई व्यक्ति अपनी जन्मभूमि से दूर किसी अन्य देश में बसता है, तो उसके समक्ष दोहरे संघर्ष उत्पन्न होते हैं— एक ओर नए समाज में समायोजन की चुनौती होती है, तो दूसरी ओर अपनी जड़ों और मूल्यों को बनाए रखने की आकांक्षा भी बनी रहती है। प्रवासी साहित्यकारों ने इसी द्वंद्व को अपने लेखन के माध्यम से उकेरने का प्रयास किया है।

भारत में मूल्यों को जीवन का आधार माना जाता है। यहाँ नैतिकता, परंपराएँ और आदर्श अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय समाज में आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान और रीति-रिवाजों का गहरा संबंध सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों से होता है। जब भारतीय विदेशों में प्रवास करते हैं, तब भी वे अपने मूल संस्कारों से जुड़े रहते हैं। प्रवासी भारतीयों की पीढ़ियाँ गुजर जाने के बावजूद उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक मूल्यों में भारतीयता की झलक बनी रहती है। हालाँकि, समय और परिवेश के बदलाव के कारण इन मूल्यों में कुछ परिवर्तन अवश्य आते हैं, लेकिन उनकी मूल भावना प्रायः स्थायी रहती है।

प्रवासी साहित्य इस सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन को गहराई से दर्शाता है। यह उन मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और सामाजिक चुनौतियों का दस्तावेज़ है, जिनसे प्रवासी भारतीय गुजरते हैं। प्रवासी साहित्यकारों ने इस तथ्य को अपने लेखन में उकेरा है कि विदेशों में रहने वाले भारतीय अपनी सांस्कृतिक जड़ों से पूरी तरह कट नहीं पाते, बल्कि वे अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं। वे अपनी परंपराओं, रीति-रिवाजों और भाषा को संजोकर रखते हैं, जिससे उनकी भारतीयता अक्षुण्ण बनी रहती है। 'बटरोही' का यह कथन कि **"**रचना जिस परिवेश में से और जिस रचनात्मक पीठिका में से जन्म लेती है**,** उसका अध्ययन आवश्यक है। रचनात्मक पीठिका से आशय है – रचना के प्रकाश में आने से पूर्व गुजरी स्थितियों का अध्ययन।**"** [1]इस बात को प्रमाणित करता है कि प्रवासी साहित्य को समझने के लिए प्रवासी जीवन की परिस्थितियों और प्रवासियों की मानसिकता का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि यह साहित्य केवल प्रवासियों की भौगोलिक स्थिति को ही नहीं दर्शाता, बल्कि उनके भीतर उत्पन्न मानसिक संघर्ष, सांस्कृतिक अस्मिता और नए परिवेश में मूल्यों के समायोजन की प्रक्रिया को भी उद्घाटित करता है।

प्रस्तुत अध्ययन प्रवासी साहित्य में निहित भारतीय मूल्यों की पड़ताल करता है और यह विश्लेषण करने का प्रयास करता है कि विदेशों में रहने वाले भारतीय अपनी परंपराओं और संस्कारों को किस प्रकार आत्मसात करते हैं, और किस हद तक उनमें बदलाव आता है। प्रवासी साहित्य में व्यक्त मूल्य प्रवासियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक द्वंद्व को उजागर करते हैं और यह दर्शाते हैं कि भले ही वे भौगोलिक रूप से अपनी मातृभूमि से दूर हों, लेकिन मानसिक और सांस्कृतिक रूप से वे अब भी भारतीय जीवन दृष्टि से गहराई से जुड़े हुए हैं।

जब हम प्रवासी भारतीयों के जीवन और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की चर्चा करते हैं, तो इसमें उनके रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, धार्मिक मान्यताएँ, आस्थाएँ तथा पर्व-त्योहारों का व्यापक अध्ययन किया जाता है। भारत में जन्में और पले-बढ़े व्यक्ति के भीतर यहाँ की सांस्कृतिक जड़ें इतनी गहराई तक समाई होती हैं कि विदेश में प्रवासी जीवन जीते हुए भी वे उनके दैनिक आचार-व्यवहार में परिलक्षित होती रहती हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि अमेरिकी समाज की पारिवारिक व्यवस्था को देखा जाए तो वहाँ 18 वर्ष की आयु पूरी होने के बाद माता-पिता स्वयं को संतान के प्रति दायित्वों से मुक्त समझने लगते हैं। इसके विपरीत, भारतीय मूल की प्रवासी माताएँ अपने बच्चों और परिवार की चिंता जीवनभर करती रहती हैं। भारतीय समाज में परिवार केवल खून के रिश्तों तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह आपसी दायित्वों और भावनात्मक जुड़ाव का एक मजबूत ताना-बाना होता है, जो प्रवास में भी अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास 'नक्काशीदार केबिनेट' की पात्र डॉ. संपदा इस प्रवासी जीवन शैली और भारतीय मूल्यों के द्वंद्व को बखूबी दर्शाती हैं। संपदा का जन्म भारत में हुआ था, वह भारतीय आदर्शों और संस्कारों में पली-बढ़ी थी, इसलिए विदेश में रहते हुए भी वह अपने परिवार के दायित्वों का निर्वहन उसी प्रकार करती है, जैसा उसने अपने देश में देखा और सीखा था। उपन्यास में संपदा के संदर्भ में उल्लेख आता है कि **"**जिस सोच और फलसफे में पले-बड़े होते हैं**;** जो घोंट-घोंट के पिलाया गया होता है**,** वह छूट नहीं पाता। शादी के बाद खुद के लिए जीना आता नहीं। बच्चों के लिए जीते हैं और पूरा समय उन्हीं के

इर्द-गिर्द सिमट कर रह जाते हैं। यही कारण है, भारत मूल के बच्चे यहाँ शिक्षा और व्यवसाय में बहुत उन्नति करते हैं। बच्चों को पालने में माँ-बाप वही मेहनत और तपस्या करते हैं, जो उन्होंने अपने बुजुर्गों में देखी होती है। बच्चों के दूर-दराज़ शहरों में जाते ही माँ-बाप अपने आप में खो जाते हैं, कुछ तलाशने लगते हैं; दरअसल, बच्चों के अलावा उनका कोई जीवन ही नहीं होता है।"[2] यह उद्धरण स्पष्ट रूप से दिखाता है कि प्रवासी भारतीयों के भीतर पारिवारिक मूल्यों की जड़ें कितनी गहरी होती हैं। विदेश में रहकर भी भारतीय माता-पिता अपने बच्चों की परवरिश में वही धैर्य, समर्पण और त्याग की भावना रखते हैं, जो उन्होंने अपने माता -पिता से सीखी थी। यह प्रवासी भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है, जो उसे पश्चिमी समाजों से अलग बनाती है।

समय और परिस्थिति के साथ सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता है, और प्रवासी साहित्य में भी यह बदलाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। प्रवासी जीवन की जटिलताओं और बदलती सामाजिक संरचनाओं के कारण परंपरागत मूल्यों में संशोधन आवश्यक हो जाता है। डेनमार्क की प्रवासी साहित्यकार अर्चना पैन्यूली के उपन्यास 'वेयर डू आई बिलोंग' में यही बदलता हुआ मूल्यबोध दृष्टिगोचर होता है। विशेष रूप से भारतीय प्रवासी समाज में यह देखा गया है कि माता-पिता अपनी संतानों के विवाह को पारंपरिक भारतीय मूल्यों के अनुरूप ही देखना चाहते हैं। वे अक्सर अपनी संतान के किसी गैर-भारतीय के साथ विवाह करने या 'लिव-इन रिलेशनशिप 'जैसी अवधारणाओं को स्वीकार नहीं करते। लेकिन समय के साथ इस सोच में परिवर्तन आ रहा है, जिसका प्रतिबिंब भी इस उपन्यास में मिलता है।

उपन्यास की मुख्य पात्र सुधा, अपनी बेटी रीना के गैर-भारतीय पुरुष मित्र मार्टिन के साथ संबंधों को सहज रूप से स्वीकार कर लेती है। यह प्रवासी समाज में विकसित हो रही नई मानसिकता को दर्शाता है, जहाँ माता-पिता अपनी संतानों की स्वतंत्रता को सम्मान देते हुए उनके निर्णयों को स्वीकृति प्रदान कर रहे हैं। जब रीना अपनी माँ को मार्टिन के बारे में बताती है, तो सुधा अपनी बेटी की खुशी को प्राथमिकता देते हुए कहती है—"अगर वह एक अच्छा लड़का है और तुझे उस पर पूरा विश्वास है तो तू उसके साथ रिश्ता बढ़ा सकती है। फिर अगर वह कहे...तो उसके साथ रहना भी शुरू कर सकती है। तू पच्चीस की होने वाली है....एक साथी तो चाहिए ही जीवन में। परदेश में रहकर अपने मूल्यों को बनाए रखना बहुत मुश्किल है और अव्यावहारिक भी। तू मार्टिन के साथ रह सकती है अगर तुम दोनों चाहो तो।" [3]इस कथन में सुधा के दृष्टिकोण में आया बदलाव स्पष्ट झलकता है। वह भारतीय संस्कृति की पारंपरिक सोच से आगे बढ़ते हुए व्यावहारिकता और परिस्थितियों के अनुरूप अपने मूल्यों को ढालने के लिए तैयार दिखती है। प्रवासी जीवन की वास्तविकताओं को समझते हुए वह अपनी बेटी को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करती है, जो प्रवासी साहित्य में सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण बानगी प्रस्तुत करता है।

समय के साथ सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता है, और प्रवासी साहित्य में यह बदलाव विशेष रूप से दिखाई देता है। यूरोप और अमेरिका जैसे देशों में 'पड़ोस कल्चर 'का अभाव देखा जाता है। वहाँ लोग अपनी व्यस्त दिनचर्या में इतने उलझे होते हैं कि अपने पड़ोसियों से आत्मीयता विकसित नहीं कर पाते, उनके सुख-दुःख में सहभागी नहीं बनते। इसके विपरीत, भारतीय समाज में यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वे अपने साथ-साथ अपने पड़ोसियों का भी ध्यान रखते हैं। प्रवासी साहित्य में भी यह भावना अनेक स्थानों पर प्रकट होती है। सुषम बेदी के उपन्यास 'मैंने नाता तोड़ा' में अमेरिका जैसे देश में भी परस्पर सहयोग की भावना दिखाई देती है। उपन्यास का पात्र अनिरुद्ध आवश्यकता पड़ने पर अपनी दोस्त लिन को रितु के सहयोग के लिए बुला लेता है, और दृष्टव्य यह है कि लिन भी बिना किसी संकोच के सहायता के लिए तत्पर रहती है। यह प्रवासी भारतीयों के भीतर मौजूद सामूहिकता और सहयोग की भावना को दर्शाता है। अनिरुद्ध और रितु के संवाद को पढ़कर इसे सहजता से समझा जा सकता है—"तुम खाना बना दो, लिन को बुला लेते हैं वह तुम्हारी मदद कर देगी।..... मैंने कभी लोगों के बीच ऐसा सहयोग नहीं देखा था, बड़ा सुलझा सा लेन-देन। अजीब भी लगता था कि मैं खाना खिला रही हूँ और काम करवा रही हूँ। कहाँ तो यह सिखाया जाता था कि नेकी कर और नदी में डाल। यहाँ तो बड़े साफ तौर पर कहते हैं कि कुछ तुम मेरे लिए करो कुछ मैं तुम्हारे लिए। यूं होता तो सब जगह भी यही है भारत में भी, पर इसे साफ-साफ कहा या लिखा नहीं जाता। यही कहते हैं कि जितना हो सके करेंगे।"[4] भारतीय अपने संस्कारों और परंपराओं के प्रति अत्यंत सजग रहते हैं। जब कोई मूल्य या संस्कार उनके धर्म और संस्कृति से जुड़ा होता है, तो वे उससे भावनात्मक रूप से गहराई से बंधे रहते हैं। हालाँकि, आधुनिकता और समय के प्रभाव से प्रवासी समाज में इन मूल्यों में परिवर्तन भी देखने को मिलता है। अब लोग किसी भी परंपरा को तर्क की कसौटी पर परखने के बाद ही उसका पालन करने की प्रवृत्ति अपनाने लगे हैं। लेकिन इसके बावजूद प्रवासी साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक मूल्य गहराई तक समाहित हैं।

भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि यहाँ लोग मिलते समय हाथ जोड़कर 'नमस्ते 'या 'नमस्कार 'कहते हैं। इसके विपरीत, अमेरिका और यूरोप के लोगों में गले मिलकर या गालों को चूमकर अभिवादन करने की परंपरा अधिक प्रचलित है। प्रवासी भारतीयों के लिए यह प्रारंभ में असहज होता है, लेकिन समय के साथ वे इसे स्वीकार करने लगते हैं। यह सांस्कृतिक परिवर्तन प्रवासी साहित्य में भी देखने को मिलता है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी के उपन्यास 'जलाक' में यह शैली पात्र मीनल के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत की गई है— "वहाँ जब कोई भी अमेरिका का मिलने आते तो हम लोग जाते, तो वे आपस में गले मिलकर गाल पर एक दूसरे को चूमते और पुरुष लोग बिल्कुल हम जैसे पराए देश की औरतों के साथ हाथ मिलाते थे। माँ कितनी झिझकती थी और पहले ही हाथ जोड़ देती थी... लेकिन धीरे-धीरे माँ भी खुल गई थी..। उस मिलाप में इतना अपनापन लगता था कि दूर से हाथ जोड़ने की प्रथा मुझे फीकी लगने लगी थी।" [5] यह कथन दर्शाता है कि प्रवासी भारतीय धीरे-धीरे नई संस्कृति को अपनाने लगते हैं और उनके पारंपरिक मूल्यों में भी समय के साथ बदलाव आने लगता है। हालाँकि, यह बदलाव पूरी तरह से मूल

संस्कृति को नकारने के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि यह प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक अनुकूलन क्षमता का प्रमाण है। प्रवासी साहित्य में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं, जो इस द्वंद्व को बड़े ही संवेदनशील ढंग से उभारते हैं।

प्रवासी जीवन में भारतीय समाज और पश्चिमी संस्कृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने की चुनौती बनी रहती है। पारंपरिक मूल्यों में बदलाव प्रवासी जीवन का एक स्वाभाविक परिणाम है। चाहे वह पड़ोसियों के साथ आत्मीयता का मामला हो, या फिर अभिवादन की शैली—प्रवासी भारतीयों के जीवन में ये बदलाव धीरे-धीरे आत्मसात हो जाते हैं। भारतीय समाज की विशेषता यह है कि वह अपनी जड़ों से जुड़ा रहते हुए भी नई परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने में सक्षम होता है। यही प्रवासी साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है, जो सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के बदलते स्वरूप को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है।

भारतीय प्रवासी अपने त्योहारों और परंपराओं को लेकर अत्यंत संवेदनशील होते हैं। वे विदेशों में रहकर भी अपनी जड़ों से जुड़े रहने का हर संभव प्रयास करते हैं। किसी भी देश या संस्कृति में त्योहारों को लेकर विशेष उत्साह देखा जाता है, और भारतीय प्रवासी भी इस परंपरा से अछूते नहीं हैं। हालाँकि, विदेशी संस्कृति और परिस्थितियों के कारण वे अपने रीति-रिवाजों को उसी रूप में नहीं निभा पाते जैसे भारत में निभाए जाते हैं, लेकिन अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने के लिए वे त्योहारों को पूरे उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाते हैं। इस संदर्भ में, सुदर्शन 'प्रियदर्शी 'के उपन्यास 'न भेज्यो बिदेस' में प्रवासी भारतीयों के बीच त्योहारों को मनाने की भावना को बड़े प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है। यह दर्शाया गया है कि प्रवासी भारतीय अपनी परंपराओं को निभाने में अत्यधिक रुचि रखते हैं और वे किसी न किसी रूप में इन्हें संजोने का प्रयास करते हैं—"ऐसे अवसरों पर होड़ लगी रहती है कि कौन कितने भारतीय ढंग से वे सारी कूढ़ – मतियाँ निभा रहा है। पूजा हो तो किसने दिया थाली में रखा या किसी विशिष्ट दीपदान में घी डाला या तेल, थाली में सिंदूर, फूल, चंदन, मौली, अक्षत सब रखे भी कि नहीं।.... चाहे किसी को किसी चीज का मतलब नहीं मालूम फिर भी रस्में निभानी हैं और निभाते हैं।" [6]यह कथन प्रवासी भारतीयों की अपनी संस्कृति के प्रति मानसिकता को उजागर करता है कि वे अपनी संस्कृति को न केवल अपने दिलों में संजोए रखते हैं, बल्कि इसे बाहरी रूप से प्रदर्शित करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ते। चाहे उनके पास पारंपरिक सामग्रियों की उपलब्धता सीमित हो, या फिर धार्मिक अनुष्ठानों की व्याख्या से वे पूर्णत: परिचित न हों, फिर भी वे रस्मों को निभाने की पूरी कोशिश करते हैं।

त्योहार प्रवासी भारतीयों के लिए केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं होते, बल्कि वे अपनी संस्कृति के प्रति उनके प्रेम और सामुदायिक भावना के परिचायक भी होते हैं। त्योहारों के बहाने वे अपने समाज के अन्य भारतीयों से जुड़ते हैं, सामूहिक रूप से उत्सव मनाते हैं और एक-दूसरे के साथ अपने सांस्कृतिक मूल्यों को साझा करते हैं। यह भावना प्रवासी साहित्य में व्यापक रूप से दिखाई देती है, जहाँ भारतीय अपनी पहचान को सहेजने और संजोने का प्रयास निरंतर करते रहते हैं।

भारतीय प्रवासी अपनी परंपराओं और संस्कारों को निभाने के प्रति अत्यंत प्रतिबद्ध रहते हैं। चाहे वह जन्म से जुड़ा कोई संस्कार हो, अन्नप्राशन, विवाह या फिर मृत्यु-संस्कार, वे हर रीति-रिवाज को पूरी श्रद्धा के साथ निभाने का प्रयास करते हैं। पश्चिमी देशों में रहने के बावजूद, वे अपने पारंपरिक जीवन-मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहर को नहीं छोड़ते। अर्चना पैन्यूली के उपन्यास 'वेयर डू आई बिलोंग' में यह प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। जब सुरेश की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है, तो उसके अंतिम संस्कार को भारतीय हिन्दू परंपराओं के अनुसार किया जाता है, जबकि डेनमार्क में शव को सीधे शवदाह गृह में भेज देने की प्रथा है। उपन्यास में यह दृश्य इस प्रकार वर्णित है कि "सुरेश के शव को नहलाया गया, नए वस्त्र से ढंका गया...सिर से पैर तक फूल बिखेरकर फूलों का आवरण बनाया गया। पुरोहित वैदिक मंत्रों व श्लोकों के साथ शव पर पुष्प व जल का अक्षत देते हुए अतुल से धार्मिक अनुष्ठान करवाने लगा। पतली कमर पर सफेद धोती लपेटे, नंगी छाती पर यज्ञोपवीत, अपने पिता का अतुल अंतिम संस्कार कर रहा था उन हाथों से जो अभी पूर्ण विकसित नहीं हुए थे। ....शवयात्रा दाह गृह की ओर बढ़ी। 'रामनाम सत्य है 'के नारे भी हल्की आवाज में लगे।" [7]यह उद्धरण इस बात को प्रमाणित करता है कि भारतीय प्रवासी अपनी धार्मिक परंपराओं से कितने जुड़े रहते हैं। भले ही वे विदेशी संस्कृति में रचे-बसे हों, फिर भी अपने धार्मिक और पारंपरिक संस्कारों को नहीं त्यागते।

इसके अतिरिक्त, भारतीय प्रवासी अपने जीवन के हर क्षेत्र में अपनी जड़ों से जुड़े रहते हैं। उनकी जीवनशैली, घर की सजावट, वास्तु, रहन-सहन और यहाँ तक कि उनके पहनावे में भी भारतीयता की स्पष्ट झलक मिलती है। अर्चना पैन्यूली के उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' में इस बात को सुंदरता से दर्शाया गया है। जब नीना के पिता श्रीनिवासन के घर प्रवेश करते हैं, तो वहाँ का दृश्य इस प्रकार चित्रित किया गया है—"एक गहरी झिझक के साथ मैंने उनके घर में प्रवेश किया।.... श्रीनिवासन निवास सुंदर – सुखदायक, एक परंपरागत निवास लगा। घर की सजावट में भारतीयता का पुट स्पष्ट झलक रहा था। जिस सजावट ने मेरा ध्यान सबसे अधिक खींचा, कांसे की मूर्तियाँ जगह – जगह विराजमान। मुझे पता चला कि वे हिन्दू देवी – देवताओं की मूर्तियाँ थीं। नीना ने मुझे हर मूर्ति के पास ले जाकर उनसे परिचित करवाया था। दीवार पर गणेश की प्रतिमा है, स्टूल पर गरुड़ भगवान विराजे हैं। लक्ष्मी व गौरी लाल चौकी पर खड़े हैं।" [8] यह उद्धरण यह दर्शाता है कि भारतीय चाहे कहीं भी रहें, वे अपने घर को भारतीय परंपराओं के अनुरूप ही सजाते हैं। उनके घरों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ होती हैं, दीवारों पर पारंपरिक चित्रकला होती है और संपूर्ण माहौल भारतीयता से परिपूर्ण होता है। इसी उपन्यास में भारतीय वेश-भूषा और आचरण की झलक भी देखने को मिलती है। एक स्थान पर वर्णन आता है—"नीना की माँ अपने पति से अपेक्षाकृत कम साँवली थीं, अपने भारतीय लिबास साड़ी में थीं, माथे पर बिंदी, गले में मंगलसूत्र। मुझे लगा वे दोनों स्वागत के लिए तैयार हुए थे। एक बात और मैंने गौर की, ऊपर से तो

दोनों बने-ठने थे मगर नीचे पैर नंगे बिना चप्पलों के। घर के अंदर नंगे पैर रहना शायद इनकी संस्कृति थी।" [9] यह उद्धरण प्रवासी भारतीयों के सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है। उनकी वेशभूषा, उनके पहनावे, उनके आचरण में भारतीयता सहज रूप से देखी जा सकती है। वे अपनी संस्कृति से इतनी गहराई से जुड़े होते हैं कि उनके छोटे-छोटे व्यवहार भी उनकी जड़ों की याद दिलाते हैं।

इस प्रकार प्रवासी साहित्य भारतीय मूल्यों, परंपराओं, जीवनशैली, वेशभूषा और संस्कारों का जीवंत चित्र प्रस्तुत करता है। यह सिद्ध करता है कि भले ही भौगोलिक दूरी उन्हें मातृभूमि से अलग कर दे, लेकिन सांस्कृतिक और भावनात्मक रूप से वे अपनी मिट्टी से जुड़े रहते हैं।

प्रवासी भारतीय साहित्य न केवल भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिबिंब है, बल्कि यह उन मूल्यों और परंपराओं के संरक्षण तथा उनके क्रमिक बदलाव का भी सजीव दस्तावेज प्रस्तुत करता है। यह साहित्य इस बात को प्रमाणित करता है कि प्रवासी भारतीयों ने अपने मूल्यों को केवल स्मृतियों में संजोकर नहीं रखा, बल्कि उन्हें अपनी अस्मिता का अभिन्न अंग बनाकर जिया है।

किसी भी साहित्य की जड़ें उसके परिवेश में होती हैं, और यही कारण है कि प्रवासी साहित्य में भारतीय मूल्यों का स्वरूप समय के साथ बदलता दिखाई देता है। यह बदलाव अचानक नहीं आया, बल्कि यह उन परिस्थितियों और चुनौतियों के प्रभाव स्वरूप क्रमिक रूप से विकसित हुआ है, जिनका सामना प्रवासी भारतीयों को विदेशों में करना पड़ा। इसके बावजूद, प्रवासी भारतीय आज भी अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में अन्य प्रवासी समुदायों की तुलना में अधिक सफल सिद्ध हुए हैं। वे अपने देश की परंपराओं, संस्कारों, भाषा, वेशभूषा और जीवनशैली को केवल आत्मसात ही नहीं करते, बल्कि उसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का प्रयास भी करते हैं। विदेशों में बसे भारतीयों का अपनी संस्कृति और परंपराओं के प्रति जो गहरा जुड़ाव है, उसे देखकर यह कहा जा सकता है कि वे भारत में रहने वाले भारतीयों की तुलना में स्वयं को अधिक भारतीय मानते हैं **"**विदेशों में बसे भारतीयों में परंपरा के प्रति लगाव को देखकर कहा जा सकता है कि वे भारतीयों की तुलना में अपने को ज्यादा भारतीय मानते हैं। विभिन्न विद्वानों ने इस सांस्कृतिक आग्रहवादिता को विदेशी भूमि में प्रतिरक्षा प्रणाली**,** मानसिक क्षतिपूर्ति**,** सभ्यतागत जुड़ाव आदि के रूप में माना है।"[10]

यह कथन इस तथ्य को पुष्ट करता है कि प्रवासी भारतीयों के लिए भारतीय संस्कृति और मूल्यों का संरक्षण केवल एक पारंपरिक अभ्यास नहीं, बल्कि उनकी मानसिक और सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस प्रकार, प्रवासी साहित्य भारतीय मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहर का मणिकांचन योग है, जो अतीत और वर्तमान के बीच एक जीवंत पुल का कार्य करता है।

संदर्भ सूची-

1. बटरोही, कहानी : रचना प्रक्रिया और स्वरूप; दिल्ली, अक्षर प्रकाशन , संस्करण 1973, पृष्ठ सं. 99
2. सुधा ओम ढींगरा, नक्काशीदार केबिनेट; सीहोर , शिवना प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या 11-12
3. अर्चना पैन्यूली, वेयर डू आई बिलोंग, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 13
4. सुषम बेदी, मैंने नाता तोड़ा; नई दिल्ली , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन , दूसरा संस्करण 2011, पृष्ठ संख्या 173
5. सुदर्शन 'प्रियदर्शिनी', जलाक; हल्द्वानी, आधारशिला प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या 12
6. सुदर्शन 'प्रियदर्शिनी', न भेज्यो बिदेस, हल्द्वानी, आधारशिला प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या 08
7. अर्चना पैन्यूली, वेयर डू आई बिलोंग; नई दिल्ली , भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 316 – 317
8. अर्चना पैन्यूली, पॉल की तीर्थयात्रा; दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, 2017, पृष्ठ संख्या 33
9. वही, पृष्ठ संख्या 34
10. भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम , सम्पादन और संयोजन ; राम शरण जोशी, राजीव रंजन राय, प्रकाश चंद्रायन, प्रशांत खत्री : राजकमल प्रकाशन , दरियागंज, नई दिल्ली , प्रथम संस्करण 2014 प्रसिसह संख्या 136-137

*****

An Analytical Study Of The Bhagavad Gita's Teachings: A Guide To Success In Human Life

Prof. Harish Kumar Tyagi
Domain Head, Faculty of Education
Amity University

Mani Sharma
Ph.D. Scholar, Amity Institute of Education
Amity University

Abstract
The Bhagavad Gita provides deep insight that can be applied to emotional intelligence, stress reduction, moral leadership, and personal development. This study investigates how its teachings promote self-awareness, discipline, and resilience, so offering a foundation for success in human life. The Gita's philosophy is still very applicable in today's environment, as people deal with more stress, uncertainty, and moral quandaries.
This article explores the Gita's lessons on karma (activity), dharma (responsibility), and self-realization through a qualitative analysis of literature and historical viewpoints, highlighting their significance for contemporary education, leadership, and mental health. The study demonstrates the application of important ideas in many facets of life, including self-discipline, attention, and detachment from results (Karmanye Vadhikaraste Ma Phaleṣhu Kadāchana). The results imply that decision-making, conflict resolution, and personal growth can be improved by incorporating the ideas of the Bhagavad Gita into modern professional and educational procedures. The study also emphasises how important moral behaviour, emotional control, and spiritual insight are to attaining inner calm and long-term success. People can develop a balanced, values-based life that eventually leads to overall well-being and happiness by comprehending and putting these timeless truths into practice.
Key words: stress management, personal development. moral leadership. Emotional intelligence, Self-awareness, Resilience, Ethical dilemmas, Mental well-being, Inner peace

Introduction
"Whatever happened, happened for the good," according to the Bhagavad Gita. Everything that occurs is happening for the better. Whatever occurs, it will also be for the best. Throughout history, innumerable people have used this great idea as a guide. Many of us may have disregarded such teachings when we were younger, but as we get older, we start to see how important they are in forming our lives. People acquire a great deal of information and technical proficiency in the modern era, which is marked by the quick advances in science and technology. Nonetheless, a lot of people have trouble with inner calm, self-control, and emotional intelligence. Stress, anxiety, and discontent are frequently brought on by the pressure to excel in one's career. Traditional education prioritises intellectual growth at the expense of emotional and spiritual development leaving individuals ill-equipped to handle life's challenges effectively.
This essay examines the ways in which the Bhagavad Gita provides crucial life lessons and coping mechanisms for the challenges of modern life. People can acquire resilience, emotional equilibrium, and moral leadership by fusing its ageless knowledge with contemporary education and personal growth. This study illustrates how the Gita's philosophy can function as a roadmap for achievement, mental health, and overall development in the fast-paced world of today by analysing its teachings.

The Need for Spiritual Guidance in Education
While modern education helps people succeed professionally, it frequently ignores emotional health. "How should we handle anger or jealousy?" is one example. In traditional education, questions such "How do we cope with stress and mental health issues?" are not addressed. According to Anuradha Varma (2019), students today deal with a great deal of stress, which might result in serious mental health issues. In the UK, ten youngsters are diagnosed with mental health illnesses every day, and in India, a stu-

dent kills themselves every hour as a result of social and academic demands. According to J. Krishnamurti (1953), education is more than just mental training. A merely schooled mind is a continuation of the past, and it is incapable of discovering the new. His observations highlight the necessity of an educational system that combines academic knowledge with spiritual wisdom.

The Bhagavad Gita: A Solution to Modern Challenges

The Bhagavad Gita provides solutions to contemporary problems. It teaches self-control, resilience, and moral leadership. Mahatma Gandhi once stated, "When doubts haunt me, when disappointments stare me in the face, I turn to Bhagavad Gita and find a verse to comfort me." This claim underlines how timeless the Gita's lessons are for overcoming hardship.

Numerous academics have examined how the teachings of the Bhagavad Gita affect all facets of life. Ashok Aggarwal talks about how the Gita offers insights on drive and leadership, two qualities that are critical for success. The Gita's lessons on time management, stress management, self-management, and strategic decision-making are acknowledged by Peter F. Drucker, regarded as the founder of contemporary management. According to Reena Sharma, the Gita offers advice on how to deal with tension, worry, and dissatisfaction in contemporary life. According to Dr. Omprakash M. Ashtankar (2016), the Gita aids people in managing their thoughts, which results in a balanced and satisfying existence.

For comprehensive development, Dr. Rekha Rani and Ms. Neetu Verma (2016) contend that contemporary education need to align with the Gita's principles. According to Dr. Prem Shankar Srivastava (2016), the teachings of the Gita promote education that is centred on values in order to improve society. According to Subhadeep Mukherjee (2017), the Gita's Karma Yoga theory is crucial for both professional and personal development. According to M.S. Reddy (2012), the Gita can be used as a psychological tool to overcome depression and resolve conflicts. By drawing comparisons with other religious texts, Mohd. Shakir & Sonal Sharma (2017) demonstrate the Gita's importance in promoting resilience and wisdom. According to Prof. (Dr.) Prem Shankar Srivastava (2011), the Gita's lessons on action, knowledge, and devotion can help people develop their personalities.

Research Questions

In the modern world, how can the teachings of the Bhagavad Gita support mental health, emotional intelligence, moral leadership, and personal development?

How may the Bhagavad Gita's teachings on karma (activity), dharma (responsibility), and self-discipline be used in the real world for dispute resolution, education, and overall success?

Research Methodology

Using a qualitative research technique, this study focusses on a thorough evaluation and analysis of the body of material already available on the lessons of the Bhagavad Gita and how they might be applied in real-world situations. The study uses an interpretative methodology to investigate philosophical ideas like self-discipline, dharma (duty), and karma (activity), evaluating their applicability to mental health, emotional intelligence, ethical leadership, and personal development. The function of the Gita in contemporary education, the workplace, and dispute resolution is examined through the analysis of secondary sources, such as academic publications, books, and historical viewpoints. The research attempts to offer a comprehensive knowledge of how the Gita's wisdom can be incorporated into modern frameworks for personal and professional development by combining insights from management, psychology, and religion studies.

Analysis and Interpretation

1. Personal Growth and Development: Instills Self-Awareness and Discipline

"Uddharedātmanātmānaṁ nātmānamavasādayet |
Ātmaiva hyātmano bandhurātmaiva ripurātmanaḥ ||" (Bhagavad Gita 6.5)

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् |

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन: || 5||

"One must elevate oneself by one's own mind, not degrade oneself. The mind is a friend to the self and also its enemy." The Gita teaches people to master their thoughts and behaviours, which promotes self-awareness and discipline. While individuals without

mental control are constrained by their limitations, those who do advance themselves. After hearing Krishna's advice, the initially bewildered and reluctant Arjuna develops self-awareness and discipline, allowing him to carry out his warrior's duty.

2. Stress and Anxiety Management: Helps Individuals Remain Calm and Focused

"Yogasthaḥ kuru karmāṇi saṅgaṁ tyaktvā dhanañjaya |
Siddhyasiddhyoḥ samo bhūtvā samatvaṁ yoga ucyate ||" (Bhagavad Gita 2.48)

योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय |
सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते || 48||

"Perform your duty with equanimity, abandoning attachment to success or failure. Such evenness of mind is called yoga." Stress and worry are reduced when effort is prioritised over outcomes, which promotes inner stability and serenity. In order to reduce stress and improve performance, a student preparing for a test should concentrate on studying hard rather than worrying about the outcome.

3. Personality Development: Nurtures Qualities Like Patience, Resilience, and Humility

"Vidhyāvinaya-sampanne brāhmaṇe gavi hastini |
śuni caiva śvapāke ca paṇḍitāḥ sama-darśinaḥ ||" (Bhagavad Gita 5.18)

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि |
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन: || 18||

"The wise see all be it a learned Brahmin, a cow, an elephant, a dog, or a lowly eater with equal vision." This verse highlights patience and humility by teaching that a person's inner characteristics and wisdom, rather than their outward status, define them. Instead of panicking in times of crisis, a leader who maintains composure and resilience may motivate their team and make wiser choices.

4. Philosophy of Karma and Dharma: Emphasizes Duty Without Attachment to Results

"Karmanye vadhikaraste, ma phaleshu kadachana |
Ma karma phala hetur bhurma, te sangostva akarmani ||" (Bhagavad Gita 2.47)

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन |
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि || 47 ||

"You are entitled to carry out your responsibilities, but you are not entitled to the results of your actions. Don't stay passive or get wedded to the outcomes. The Gita exhorts people to put their attention on doing what is right (Dharma) and not on their own interests. When treating a patient, a doctor should be focused on providing the greatest care possible, regardless of whether the treatment is successful or not.

5. Inner Development: Promotes Mindfulness and Self-Reflection

"Man-mana bhava mad-bhakto mad-yaji mam namaskuru |
Mam-evaishyasi satyam te pratijane priyo'si me ||" (Bhagavad Gita 18.65)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी माँ नमस्कारु |
मामेवैश्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे || 65||

Always keep Me in mind, turn into My follower, worship Me, and give Me your respect. You are dear to Me, thus I assure you that you will come to me. In order to achieve inner peace, the Gita promotes self-reflection and surrender to a greater cause. Inspired by the teachings of the Gita, meditation and introspection aid people in achieving inner calm and clarity.

6. Conflict Management: Teaches Rational and Ethical Decision-Making

"Yada yada hi dharmasya glanir bhavati bharata |
Abhyutthanam adharmasya tadatmanam srijamyaham ||" (Bhagavad Gita 4.7)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत |
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् || 7||

"Whenever righteousness declines and unrighteousness prevails, I manifest Myself."

The Gita ensures moral and logical decision-making by teaching people to act in accordance with Dharma (righteousness). When settling an employee conflict, a manager should put ethics and fairness ahead of personal prejudice.

7. Mind Management: Provides Tools to Control Thoughts and Emotions

"Asaṁśayaṁ mahābāho mano durnigrahaṁ calam |
Abhyāsena tu kaunteya vairāgyeṇa ca gṛhyate ||" (Bhagavad Gita 6.35)

श्रीभगवानुवाच |
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् |
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ||35||

"O mighty-armed Arjuna, undoubtedly the mind is restless and difficult to control, but it can be conquered through practice and detachment." Thoughts and emotions can be controlled with discipline and detachment, the Gita admits that mind control is challenging. To keep a happy attitude when confronted with negative thoughts, one should practise self-awareness and meditation.

8. Moral Development and Value-Oriented Life: Fosters Integrity and Ethical Behaviour

"Anityam asukham lokam imam prapya bhajasva mam ||" (Bhagavad Gita 9.33)

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ||33||

"Having attained this temporary and miserable world, devote yourself to Me." The Gita serves as a reminder that material joys are transient and that integrity and moral behaviour are the paths to ultimate satisfaction. Long-term success and trust are earned by a businessperson who conducts business according to moral standards, even in the face of corruption.

9. Practical Applications of Bhagavad Gita's Teachings

- Focus on Goals, Not Results: (Bhagavad Gita 2.47)
- Embrace Life's Challenges with Courage: (Bhagavad Gita 18.66 – Surrender to Krishna and overcome fears)
- Control Desires Instead of Being Controlled by Them: (Bhagavad Gita 3.37 – Desire and anger arise from passion; they are the enemies of the wise)
- Let Go of Fear, Anger, and Ego for Inner Peace: (Bhagavad Gita 16.2 – Fearlessness, absence of anger, and humility are divine qualities)
- Find Happiness in Selfless Actions: (Bhagavad Gita 3.19 – One who performs duty without attachment attains the supreme)

10. Shri Ramakrishna's Insight: Transformation Through Renunciation

- He pointed out that repeating "Gita" transforms into "Tyag", meaning renunciation.
- This aligns with Krishna's teaching:

"Sarva-dharmān parityajya mām ekaṁ śaraṇaṁ vraja | Ahaṁ tvāṁ sarva-pāpebhyo mokṣayiṣyāmi mā śucaḥ ||" (Bhagavad Gita 18.66)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज |
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः || 66||

"Abandon all varieties of duties and surrender unto Me. I shall deliver you from all sins. Do not fear." A monk practicing renunciation finds joy in spirituality rather than material possessions.

Major Findings

- Personal Development & Self-Control: The Bhagavad Gita emphasises the value of mental mastery for success in life and encourages self-awareness and self-control.
- Stress & Anxiety Management: By promoting objectivity and preserving composure, the lessons assist people in managing stress.
- Leadership and Ethical Decision-Making: The Gita offers ethical leadership guidelines that help people make morally sound choices.
- Value-Oriented Education: Emotional intelligence, resilience, and holistic development can be fostered by integrating the Gita's teachings into modern education.
- The philosophy of karma and dharma emphasises the value of carrying out one's obligations without regard for the results, encouraging accountability and dedication.
- Dispute Resolution & Emotional Control: The Gita provides advice on how to resolve disputes, make moral decisions, and effectively control emotions.
- Inner peace and mindfulness: The Gita encourages introspection and meditation, which help people attain mental steadiness and tranquilly.
- Resilience and Strength in Adversity: The Bible teaches us how to face life's obstacles head-on and stay steady when things get tough.
- Spiritual Wisdom & Personal Fulfilment: For a meaningful existence, the Gita encourages striking a balance between material goals and spiritual development.
- Relevance to Contemporary Management and Psychology: Its lessons on time management, decision-making, and self-management are applicable in both personal and professional contexts.

Conclusion

With its ageless wisdom, the Bhagavad Gita is still a valuable resource for negotiating the challenges of contemporary life. People frequently experience tension, worry, and emotional upheaval as they work for success at a time of fierce competition and quick technology breakthroughs. Conventional education often overlooks the spiritual and emotional aspects necessary for overall well-being, even as it emphasises academic and professional development.

People can acquire resilience, emotional equilibrium, and moral leadership by incorporating the lessons of the Bhagavad Gita into modern education and personal growth. The framework for attaining inner peace and leading a purposeful life is provided by the concepts of self-awareness, stress management, humility, duty without attachment, and mindfulness. The philosophy of the Gita is not limited to any one field, as demonstrated by the numerous academic interpretations; rather, it functions as a general manual that may be applied to social, professional, and personal life. The Gita's teachings place a strong emphasis on developing mental mastery, accepting life's obstacles with composure, and doing morally (Dharma) without regard for results. People can overcome their inner conflicts and live more fulfilling lives by practicing self-discipline, reflecting on their lives, and being dedicated to a greater cause.

The core of the Gita is "Tyag" renunciation, as Shri Ramakrishna enlighteningly noted. This suggests a separation from ego-driven aspirations and selfish goals rather than a retreat from obligations. One can achieve true success by living up to the Gita's teachings, which include inner serenity and spiritual fulfilment in addition to material success.

In summary, the Bhagavad Gita is a living philosophy that still illuminates the way to a morally upright, meaningful existence, rather than just being an old text. A generation of people who are not only intellectually powerful but also emotionally stable, ethically pure, and spiritually conscious can be produced by incorporating it into contemporary education and daily life. As a result, the Bhagavad Gita continues to shine brightly, pointing humanity in the direction of peace, knowledge, and self-realization.

References

Aggarwal, A. The teachings and lessons of Gita and its relevance to modern management. https://www.speakingtree.in/blog/the-teachings-and-lessons-of-gita-and-its-relevance-to-the-modern-management-and-corporate-world

Ashtankar, O. M. (2016). Mind control through Bhagavad Gita.

Drucker, P. F. Management and the Bhagavad Gita. https://capitalideasonline.com/wordpress/bhagavad-gita-and-management/

Krishnamurti, J. (1953). The significance of life. https://www.youtube.com/watch?v=rNqteAvo_S8

Mukherjee, S. (2017). Bhagavad Gita: The Key Source of Modern Management https://ajmjournal.com/HTMLPaper.aspx?Journal=Asian%20Journal%20of%20Management;PID=2016-8-1-10

Integration of modern education with Bhagavad Gita. https://www.youtube.com/watch?v=UyYlSaVZ8MI

Reddy, M. S. (2012). Psychotherapy - Insights from Bhagavad Gita https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC3361835/

Shakir, M., & Sharma, S. (2017). https://www.indianjournals.com/ijor.aspx?target=ijor:eq&volume=8&issue=3&article=030 https://ajmjournal.com/HTMLPaper.aspx?Journal=Asian%20Journal%20of%20Management;PID=2016-8-1-10

Srivastava, P. S. (2016). Personality development through Bhagavad Gita. https://www.researchgate.net/publication/321866887_Ensuring_Personality_Development_through_Bhagavad-Gita's_Teachings

Srivastava, P. S. (2016). Value-oriented education and Bhagavad Gita. https://www.researchgate.net/publication/321875520_Value-oriented_education_regarding_Bhagavad-Gita's_teachings

Mukundananda, C. (2014). Bhagavad Gita: The song of God. India. Retrieved from https://www.holy-bhagavad-gita.org/

*****

स्रोतों का सर्वेक्षण और इतिहास लेखन की परंपरा

-डॉ स्वाती रंजन चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर , इतिहास विभाग ,
विवेकानंद कॉलेज , दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मानव की विगत विशिष्ट घटनाओं का ही दूसरा नाम इतिहास है। इतिहास में अतीत का यथासंभव सही चित्र प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी एक ही घटना के विषय में परस्पर विरोधी वर्णन मिलते हैं। ऐसी परिस्थिति में सही तथ्य का पता लगाना कठिन हो जाता है। इतिहासकार एक वैज्ञानिक की तरह परस्पर विरोधी तथ्यों का उचित तरीके से परीक्षण करके, अपनी पूर्वकल्पित धारणाओं से प्रभावित हुए बिना, उन्हीं तथ्यों अथवा साक्ष्यों के आधार पर सही निश्चय पर पहुंचता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। इससे हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि हमारे देश में मानव समुदाय ने प्राचीन संस्कृतियों का विकास कब, कहां और कैसे किया। मानव समुदाय ने अपनी यायावरी जीवन पद्धति को त्याग कर कृषि की शुरुआत कैसे की जिससे मानव जीवन सुरक्षित और सुस्थिर हुआ। प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से हमें यह जानकारी मिलती है कि प्राचीन भारत के निवासियों ने किस प्रकार प्राकृतिक संपदाओं की खोज की और उनका उपयोग किया, तथा किस प्रकार से उन्होंने अपनी आजीविका के साधन जुटाऐ। हमें यह भी ज्ञात होता है कि उन्हेंने कैसे जंगलों की सफाई की और कैसे ग्रामों, नगरों तथा अंततः राज्यों की स्थापना की।

कुछ इतिहासकार किसी देश की राजनीतिक घटनाओं को ही उसका इतिहास मानते थे परंतु अब अधिकतर इतिहासकारों के वर्णन में जनसाधारण भी उतना ही महत्व रखते हैं जितना कि शासक और योद्धा। वह उन सामाजिक, आर्थिक एवं बौद्धिक परिवर्तनों का अध्ययन करता है जिनके द्वारा मानव, उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का उपयोग करके अपने जीवन को पहले की अपेक्षा अधिक सुखमय बनाने का प्रयत्न करता है । इसलिए प्रसिद्ध इतिहासकार दामोदर धर्मानंद कौशांबी के अनुसार उत्पादन के साधनों और उनके पारस्परिक संबंधों के तिथि क्रमानुसार अध्ययन से ही हमें विकास के क्रम की जानकारी मिल सकती है। उनके अनुसार इनके आधार पर हम जान सकते हैं कि जनसाधारण किस प्रकार जीवन यापन करते थे। इस प्रकार आधुनिक इतिहासकार इतिहास-लेखन में परंपराओं, साहित्य और साहित्य के साथ-साथ वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, अभिलेखों, सिक्कों स्मारकों आदि सभी का उचित उपयोग करता है।

भारत के विषय में पश्चात इतिहासकारों के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हुआ है। इतिहासकारों के एक वर्ग की मान्यता है कि प्राचीन भारत के नागरिकों में इतिहास बोध का अभाव था। इस वर्ग के इतिहासकारों में एलफिस्टन, कर्नल टॉड, कॉवेल, फ्लीट और अलबरूनी आदि है। परंतु इन सभी मतों को पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता। प्राचीन भारत में पूर्णत: ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना भले ही न की गई हो परंतु यह निश्चित है कि ग्रंथ-लेखन के दौरान प्राचीन भारतीय लेखकों ने इतिहास को सुरक्षित रखने की पुरजोर कोशिश की। इन शिक्षित भारतीयों ने हस्तलिखित महाकाव्यों, पुराणों और जीवन चरितों जैसे ग्रंथों के रूप में अपने पारंपरिक इतिहास को संजोए रखा।

प्राचीन भारत के इतिहास में आधुनिक ढंग से अनुसंधान अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध से आरंभ होता है। इस समय तक अंग्रेजों ने भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाल दी थी। अंग्रेजों ने जब यहां शासन कायम किया तब उन्हें औपनिवेशिक प्रशासन के हित में इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई। जब 1765 में बंगाल और बिहार ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन में आया तब शासको को हिंदुओं के उत्तराधिकार की न्याय व्यवस्था करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश अफसरों की बढ़ती हुई प्रशासनिक जिम्मेदारियों ने उन्हें भारत की जनता के कानूनों, रीति- रिवाजों और इतिहास को जानने, समझने के लिए प्रेरित किया। अतः 1776 में सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जाने वाली 'मनुस्मृति' का अंग्रेज़ी अनुवाद 'ए कोड ऑफ जेन्टू लॉज़' के नाम से कराया गया। हिंदुओं और मुसलमानों के दीवानी न्याय-कार्य के लिए क्रमशः पंडितों और मौलवियों को ब्रिटिश जजों के साथ लगा दिया गया।

चार्ल्स विल्किन्स, एच. टी. कोलब्रुक और विलियम जोन्स जैसे कुछ व्यक्तियों ने भारतीय साहित्य और संस्कृति में गहरी रुचि प्रदर्शित करना शुरू कर दिया। भारतीय इतिहास के अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए 1784 में विलियम जोन्स के प्रयासों से एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की गई । सर विलियम जोन्स ने 1789 में अभिज्ञानशाकुंतलम नामक नाटक का अंग्रेजी में अनुवाद किया। चार्ल्स विल्किन्स ने 1785 में भगवदगीता का अंग्रेज़ी अनुवाद किया। 1804 में मुंबई में एशियाटिक सोसाइटी और 1823 में लंदन में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन की स्थापना की गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक, भारत के अतीत के बारे में बुद्धिजीवियों की उत्सुकता, भारत में आने वाले कंपनी के अफसरों तक ही सीमित नहीं रह गई, बल्कि अनेक यूरोपीय विश्वविद्यालय भारतीय संस्कृति से रुचि लेने लगे और वहां अनेक विद्वानों ने संस्कृत और उससे संबद्ध विषयों पर काम किये। विलियम जोन्स ने अपने अनुसंधान के बाद यह बताया कि यूरोपीय भाषाएं संस्कृत और ईरानी भाषाओँ से बहुत ही मिलती-जुलती है। इस तथ्य की खोज ने जर्मनी, फ्रांस, रूस आदि यूरोपीय देशों में भारतीय इतिहास के अध्ययन में गहरी रुचि जगाई। प्रारंभ के प्राच्यविदों और भारतविद्याविदों में मैक्स मूलर सबसे अधिक विख्यात है। मैक्स मूलर के संपादकत्व में अनेक प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथो का अनुवाद किया गया ताकि वे हिंदू धर्म की दुर्बलताओं को समझ सके क्योंकि ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचारकों के लिए हिंदू धर्म की दुर्बलताओं को जानना आवश्यक समझा गया ताकि उनके लिए हिंदुओं को धर्म परिवर्तन कराने का मार्ग सुगम हो सके और इसके माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ को मजबूत किया जा सके। यह अनुवाद 'सेक्रेड बुक्स ऑफ़ द ईस्ट' सीरीज में कुल मिलाकर पचास खण्डों में, जिनमें कई खण्डों के अनेक भाग भी है, प्रकाशित हुए।

उपर्युक्त अनुवादों के आधार पर लिखी गई पुस्तकों में पाश्चात्य विद्वानों का प्राचीन भारत के इतिहास और समाज के स्वरूप के बारे में मत है कि प्राचीन भारत के लोगों को इतिहास का, विशेषतः काल और तिथिक्रम का, बोध नहीं था। उन्होंने यह भी कहा कि अधिकतर भारतीय राजा स्वेच्छाचारी थे जिन्हें जनता की भलाई से कोई सरोकार नहीं था। उनके अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य, अशोक और अकबर इन शासको में अपवाद स्वरूप थे। भारतीय समाज जाति प्रथा या वर्ण व्यवस्था, सामाजिक भेदभाव के कुचक्र में जकड़ा हुआ था। पाश्चात्य विद्वानों ने यह भी कहा कि भारतवासियों में राष्ट्रीय भावना का अभाव था और न ही किसी प्रकार के स्वशासन का अनुभव। विंसेंट आर्थर स्मिथ (1843-1920) ने अपनी पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में ऐसे बहुत सारे निष्कर्षों को प्रकाशित किया है। उन्होंने उपलब्ध स्रोतों के गहन अध्ययन के आधार पर इस पुस्तक की रचना की। उन्होंने इस पुस्तक में राजनैतिक इतिहास को प्रधानता दी है। स्मिथ का इतिहास के प्रति दृष्टिकोण साम्राज्यवादी था। उन्होंने अपनी पुस्तक में सिकंदर के आक्रमण का वर्णन किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि भारत एक स्वेच्छाचारी शासन वाला देश है, जिसने ब्रिटिश शासन की स्थापना से पहले कभी राजनैतिक एकता का अनुभव नहीं किया। स्मिथ ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि भारतवासी स्वयं शासन करने के योग्य नहीं है। फिर भी, भारतीय इतिहास लेखन के विकास में स्मिथ की कृतियों के महत्व और मूल्य को कम नहीं किया जा सकता है। परंतु वास्तविकता यह है कि उन्होंने भारत का प्रारंभिक इतिहास इस दृष्टिकोण से लिखा, जिसमें ब्रिटिश राय के अनुरक्षण को इतिहास सम्मत माना जा सके तथा अंग्रेजों द्वारा भारतीय स्रोतों के शोषण का समर्थन किया जा सके। इसके परिणामस्वरुप ऐतिहासिक प्रमाणों को बहुत तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया।

प्राचीन भारतीय इतिहास के संबंध में ब्रिटिश इतिहासकारों को, भारत के सुधारवादी नेताओं तथा प्रबल राष्ट्रीय भावना और राजनीतिक जागरण से प्रभावित भारतीय विद्वानों की प्रबल चुनौती का सामना करना पड़ा। अनेक भारतीय विद्वान दृढ़ संकल्प के साथ सामने आए। उनका लक्ष्य सिर्फ भारतीय समाज को सुधारना ही नहीं था, बल्कि यह भी था कि भारत के प्राचीन इतिहास का इस प्रकार पुनर्निर्माण किया जाए कि उससे समाज को सुधारने में, और इससे भी बढ़कर, स्वराज्य प्राप्त करने में सहारा मिले।

इन इतिहासकारों में राजेंद्र लाल मित्र (1822-1891), रामकृष्ण गोपाल भंडारकर (1837- 1925), विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े (1896-1926), पांडुरंग वामन काने (1880-1972), देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर (1875-1950), हेमचंद्र राय चौधरी (1892-1957), आर. सी. मजूमदार (1888-1980), के. ए. नीलकंठ शास्त्री (1892-1975), के. पी. जायसवाल (1881- 1937) आदि प्रमुख है।

रामकृष्ण परमहंस ने इस बात पर जोर दिया कि हिंदू धर्म ने सभी धर्मों को अपने में समाविष्ट कर लिया है। बंकिम चंद्र ने कहा कि राष्ट्र के रूप में भारत के उत्थान के लिए हिंदुत्व का पुनरुद्धार बहुत आवश्यक है। इन बातों से प्रभावित होकर निम्नांकित विद्वानों ने हिंदुत्व का डटकर समर्थन किया। राजेंद्र लाल मित्र जिन्होंने कई वैदिक मूल ग्रंथ

प्रकाशित किए और इंडो-एरियन्स नाम की पुस्तक लिखी । रामकृष्ण गोपाल भंडारकर और विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े ने देश के सामाजिक और राजनैतिक इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए विभिन्न स्रोतों को संग्रहित किया। आर. जी. भंडारकर ने सात वाहनों के दक्कन के इतिहास का और वैष्णव एवं अन्य संप्रदायों के इतिहास का पुनर्निर्माण किया । वे महान समाज सुधारक थे और उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया और जाति प्रथा एवं बाल विवाह जैसी कुप्रथा का विरोध किया । वी. के. राजवाड़े ने अपने अनुसंधान के अंतर्गत मराठा इतिहास के स्रोतों की खोज की तथा मराठी में विवाह प्रथा का इतिहास लिखा जो हमेशा अतुलनीय रहेगा क्योंकि वह वैदिक तथा अन्य शास्त्रों के ठोस आधार पर लिखा गया है।

भारतीय ऐतिहासिक विद्वान जो आरंभ से समाज सुधारकों के विचारों से प्रभावित थे, धीरे-धीरे साम्राज्यवाद विरोधी बन गए। 1905 में बंगाल विभाजन और उसके साथ ही संघर्षोन्मुख राष्ट्रीय उत्थान की घटनाओं के बाद राजनैतिक क्षेत्रों में अतिवादी प्रवृत्तियों के पनपने से भारतीय इतिहास लेखन पर समसामयिक राजनीति का प्रभाव पड़ने लगा। हिंदू संस्कृति को अन्य एशियाई संस्कृतियों के अग्रदूत के रूप में देखा गया । भारतीय इतिहास के प्राचीन युग को आम सुख और समृद्धि का युग समझा जाने लगा। गुप्त काल को भारत के इतिहास में स्वर्णिम युग मान लिया गया।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने राजनीतिक विचार और व्यवहार के क्षेत्र में प्राचीन युग के हिंदुओं की महानतम उपलब्धियों का दावा करना शुरू कर दिया । उन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र की खोज और उसके प्रकाशन के बाद, 1909 में कौटिल्य की सामाजिक और आर्थिक नीतियों तथा बिस्मार्क के सामाजिक विधान के बीच में समानांतर रेखाएं खींच दी । अर्थशास्त्र की मंत्री परिषद की तुलना ब्रिटेन की, प्रिवी काउंसिल और कौटिल्य के राजतंत्र की तुलना ब्रिटेन के संवैधानिक राजतंत्र से की गई। भारत के प्राचीन कबीलाई कुलीन तंत्रों को एथेन के जनतंत्र के समतुल्य माना गया। यह सब कुछ यह सिद्ध करने के लिए किया गया कि भारत के लोगों को बहुत पहले से ही जनतांत्रिक शासन की परंपरा की जानकारी थी । इस प्रकार के लेखन ने हमारे स्वाधीनता आंदोलन की गति को तीव्र करने में काफी योगदान दिया। इस तरह के लेखन के आधार पर भारतीय इतिहास के संपूर्ण प्राचीन युग को लोकप्रिय बनाने का काम शुरू कर दिया ।

इस प्रकार राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने, जिस प्रकार से प्राचीन भारत के इतिहास का महिमा मंडन किया उसमें उनका दृष्टिकोण ब्रिटिश इतिहासकारों से कम अनैतिहासिक नहीं था। उन्होंने संस्कृत के मूल ग्रंथों से अपने पक्ष में दुर्लभ संदर्भों को एकत्र करने और उनके आधार पर भारतीय इतिहास के संपूर्ण प्राचीन युग को लोकप्रिय बनाने का काम शुरू कर दिया । उन्होंने भारतीय समाज के परिवर्तित होते हुए स्वरूप को अनदेखा किया। इस प्रकार उनका लेखन विवेकानंद, दयानंद आदि समाज सुधारकों के पुनरुत्थानवादी विचारों से प्रभावित था। इतिहास लेखन के स्तर पर हिंदू पुनरुत्थानवादियों ने जेम्स मिल के काल विभाजन को स्वीकार किया। जेम्स मिल ने 1817 में तीन खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ब्रिटिश- कालीन भारत का इतिहास' में स्पष्ट रूप से भारतीय इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया अर्थात हिंदू काल मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल। यह काल विभाजन इस गलत सिद्धांत पर आधारित है कि 1000 ईसा पूर्व से लेकर 1200 ई सन के प्राचीन नरेश हिंदू धर्म समर्थक थे। लेकिन, इस लेखन में इस बात की उपेक्षा की गई है कि हिंद-यूनानी, शक, कुषाण और मौर्य जैसे प्रमुख राजवंश हिंदू नहीं थे।

वास्तविकता यह है कि प्राचीन काल के भारतवासियों ने अपने को कभी हिंदू नहीं कहा। हिंदू शब्द का इस्तेमाल सबसे पहले अरबों ने और बाद में दूसरे लोगों ने किया। हिंदू शब्द से हिंद (भारत) के निवासियों का बोध होता था। प्रारंभिक भारतीय साहित्य में इस शब्द का उल्लेख नहीं है और बहुत बाद में भारतीय शब्द भंडार में इसका प्रवेश हुआ। इसके अतिरिक्त यदि मुस्लिम शासन मध्य युग के आरंभ का द्योतक है तो कई समकालीन पश्चिम एशियाई देशों तथा पाकिस्तान एवं इंडोनेशिया को भी मध्य युग में ही रखना पड़ेगा।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारत के इतिहास के काल विभाजन के संबंध में कभी वैज्ञानिक दृष्टिकोण को नहीं अपनाया और वे मिल के कालक्रम संबंधी सारणी को ही मानते रहे । इस प्रकार उन्होंने भारतीय संस्कृति के तात्विक सामाजिक स्वरूप की उपेक्षा करने के साथ-साथ हिंदू अंध-राष्ट्रवाद का समर्थन किया।

पिछले चालीस वर्षों के दौरान, प्राचीन भारत पर काम करने वाले विद्वानों की कार्यप्रणाली और दिशा में बदलाव आया है। वे अब सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं पर जोर देते हुए उनका संबंध राजनीतिक गतिविधियों से जोड़ने का प्रयास करते हैं और उनके पारंपरिक स्वरूप को पुरातात्विक एवं नृवैज्ञानिक साक्ष्यों से मिलाते हैं। डी. डी. कौशांबी ने अपनी पुस्तक 'ऐन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री और एंशियंट इंडियन कल्चर एंड सिविलाइजेशन : ए हिस्टॉरिकल

आउटलाइन' में प्राचीन भारतीय समाज, अर्थतंत्र और संस्कृति के इतिहास को उत्पादन की शक्तियों और संबंधों के विकास के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत किया है।

हाल के वर्षों में, भारतीय इतिहास के काल विभाजन के संदर्भ में नए विचार उभर कर सामने आए हैं। इसके द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि इस्लाम के आगमन के साथ नहीं, बल्कि छठी शताब्दी ईस्वी सन् में गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ मध्य युग का उदय हुआ और इसके बाद भारतीय इतिहास में कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं की शुरुआत हुई। गुप्त साम्राज्य के खंडहरों पर कई सामंती रियासतें खड़ी हो गई। गुप्त युग के पश्चात व्यवहार का पतन और बंद ग्रामीण अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई। इस काल में कमियां प्रथा और सामंतवाद का आगमन हुआ। छोटी-छोटी रियासतों का उदय और व्यापार की धीमी गति के कारण अंतरक्षेत्रीय यातायात की व्यवस्था में कमी तथा क्षेत्रीय सांस्कृतिक इकाइयों के अभ्युदय के लिए अनुकूल वातावरण का प्रादुर्भाव हो गया । इससे संभवत: क्षेत्रीय भाषाओं और कला तथा वास्तु रचना की स्थानीय शैलियों को भी काफी प्रोत्साहन मिला। इसलिए गुप्त युग के पतन को हम भारत के इतिहास के प्राचीन और मध्य युगों के बीच की विभाजक रेखा कह सकते हैं।

इस प्रकार से इतिहास का अध्ययन भविष्य के लिए शुभ संकेत है। पश्चिमी लेखक अब इस बात पर बल नहीं देते कि भारत में सभी सांस्कृतिक तत्व बाहर से आए। लेकिन उनमें से कुछ लोगों का यह मानना है कि धार्मिक विचार, धार्मिक अनुष्ठान, जाति, सगोत्रता और परंपरा भारत के इतिहास में केंद्रीय ताकते हैं। उनका पुराने तत्व के प्रति अधिक लगाव है और उन्हें हमेशा के लिए बचाए रखना चाहते हैं। इस तरह के दृष्टिकोण का मतलब है कि भारतीय समाज बदला नहीं है और न ही उसे बदला जा सकता है। इस प्रकार उग्र राष्ट्रवादियों और परिष्कृत उपनिवेशवादियों ने भारत के अतीत का अध्ययन उसकी प्रगति को रोकने के लिए किया।

1980 से कुछ भारतीय लेखकों और उनके पश्चिमी समकक्षों ने भारतीय इतिहास के अध्ययन के प्रति आक्रामक और अविवेकी रुख अपना लिया है। औपनिवेशिक इतिहासकारों ने ब्रिटिश शासन के अधीन भारत की उपलब्धियां को जानबूझकर नीचा करके दिखाया और भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्वों को विदेशी प्रभाव का परिणाम बताया । भारतीय इतिहासकारों ने विश्व संस्कृति में भारत द्वारा किए गए योगदान को रेखांकित किया। इसलिए उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद के बीच इतिहास की व्याख्या में निरंतर विरोध बना रहा। अब स्थिति में परिवर्तन आ गया है। इस समय एक ओर सांप्रदायिकता और अविवेकवाद और दूसरी ओर विवेकवाद और व्यवसायिकता के बीच संघर्ष है।

एक समय पेंटिड ग्रे वेयर को जो लोग वैदिक काल से जोड़ते थे और उनका अस्तित्व भारत से बाहर मानते थे अब इंडो-आर्यों को स्वदेशी मानते हैं। उनका मानना है कि बाहर से आने वाले मुसलमान और ईसाई विदेशी हैं। इस तरह के वक्तव्यों की निष्पक्ष रूप से जांच की जानी चाहिए। इसके लिए स्रोतों के विवेकपूर्ण अध्ययन को आधार बनाया जाना चाहिए। धर्म के संदर्भ में न तो हिंदू और न ही हिंदू धर्म का वर्णन किसी प्राचीन स्रोत में मिलता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक मानदंड का समर्थन करने वाले इतिहासकारों को सतर्क रहना होगा और तर्क और लंबे समय से स्थापित इतिहास मानकों का पालन करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, रामशरण, 'प्रारंभिक भारत का परिचय', 2009, ओरिएंट ब्लैक स्वॉन प्राइवेट लिमिटेड।
2. झा, द्विजेन्द्रनारायण, श्री माली कृष्ण मोहन, 'प्राचीन भारत का इतिहास', 2006 हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
3. झा, डी. एन. 'प्राचीन भारत एक रूपरेखा', 1997, मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
4. महाजन, विद्याधर, 'प्राचीन भारत का इतिहास', 1989, एस. चंद एंड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
5. शर्मा रीता, 'प्राचीन भारत का इतिहास', 1996, बोहरा प्रकाशन, जयपुर।
6. प्रकाश ओम, 'प्राचीन भारत का इतिहास', 1971, विकास पब्लिकेशन, दिल्ली।
7. थापर रोमिला, 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास', 2001, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
8. शुक्ला प्रभात कुमार, 'इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियां', 2012, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
9. थापर रोमिला, 'पूर्वकालीन भारत (तेरहवी सदी तक), 2008, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
10. सिंह उपिंदर, 'ए हिस्ट्री ऑफ एन्सिएंट एंड अर्ली मेडिवल इंडिया', 2009, पिअरसन लोंगमैन, दिल्ली।
11. झा. डी. एन. 'प्राचीन भारत का इतिहास विविध आयाम', 2014, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
12. थापर रोमिला, 'भारत का इतिहास', 1975, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

*****

डॉ.मधु धवन की कहानियों में नारी पक्षधरता के विविध आयाम

आचार्य डॉ.वी.जगन्नाध रेड्डी
शोधनिदेशक
अण्णामलै विश्वविद्यालय, तमिलनाडु

-श्रीमती सुधा वी.
शोधार्थिनी
अण्णामलै विश्वविद्यालय, तमिलनाडु

प्रस्तावना :

दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य में भी हिंदी भाषा के प्रती लगाव और प्रेम के साथ जुडनेवाले अनेक साहित्यिक प्रेमियों में स्वर्गीय डॉ मधु धवन जी का नाम अत्यंत गौरव के साथ लिया जाता है । वे मूलतः पंजाब प्रांत की होने पर भी विगत पचास से अदिक वर्षों से चेन्नई में ही रहते हुए अपने साहित्य प्रेम और अभिनिवेश को रचनाओं के द्व ारा व्यक्त की है । वे अपना अधिकतम समय हिन्दी को दिया । हिन्दी के विभिन्न विधाओं में अब तक उनकी 165 पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है । व्यवसायिक रूप से वे चेन्नई स्थित स्टेल्ला मारिस कला शाला में कई सालों तक काम करने के बाद आचार्य के रूप में सेवा निवृत्त होकर भी अपने साहित्य सेवा को अपने मरण तक बढाई । साहित्य के अनेक विधाओं में उनका व्याप्ति हुआ है । उनके साहित्यिक कृतियों के सन्दर्भ इस प्रकार हैं : **कहानी संकलन** : झरते अश्रु, इन्टरनेट का माउस, अमृत बूँदें, खौफ़ **महा काव्य** : काल चकरा , **नाटक एवं एकांकी** : भूल, मैंने कब चाहा, भगत सिंह, तरस, भारत कहाँ जा रहा है, आज की पुकार, बाल किशोर एकांकी , **उपन्यास** : उस मोड़ पर, प्यार भरे दादाजी, जुर्माना, करवट लेता वक्त, आकांक्षा, तूफानी झंझा का दीया, महा सागर के शंक, शक्ति पुंज, शिखरों से ऊंचा, सूर्य पुत्र कल्कि, मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, साईबर माँ आदि। इसके अलावा समीक्षा, पत्रकारीता, अनुवाद जैसे अन्य विधाओं में भी आपका साहित्यिक काम उपलब्द हैं

उनका रचना उद्धेश्य वर्तमान समाज के प्रति जागरूकता जगाना एवं समस्याओं से लड़नेवाले वर्गों को खासकर नारी वर्ग को सचेत करना है । इसलिए कह सकते हैं कि एक प्रगतिशील मानवतावादी लेखिका के रूप में मधु धवन जी की साहित्यिक मंडलियों में काफी विख्यात हुई है । उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी अस्मिता और चेतना को प्रातामिकता दी हैं । उनकी साहित्यिक सेवाओं के कारण "The Sunday Indian" में विश्व की 111 हिंदी लेखिकाओं में दो बार उनको स्थान दिया गया है।

डॉ मधु धवन का आरंभिक शिक्षा से स्नातकोत्तर पढाई तक पंजाब के तरनतारन में महारानी कॉलेज से हुई । बाद में बंगलूर विश्वविद्यालय में उन्होंने पीएचडी प्राप्त की । इनके अलावा दक्षिण के प्रसिद्ध अन्नामलाई विश्वविद्यालय से भी इन्होने एक डिप्लोमा 1990 में प्राप्त की । लगभग वे 33 वर्ष तक चेन्नई स्थित स्टेल्ला मारिस महाविद्यालय के हिंदी विभाग में विभिन्न स्तरों पर सेवा करके विभागाध्यक्ष के रूप में सेवा निवृत हुई ।

डॉ मधु जी हिंदी भाषा के लगभग सबी विधाओं में अपनी सशक्त कलम चलाई हैं । उनकी रचनाओं के लिए वे अनेक सम्मान एवं पुरस्कार भी पाप्त की । उनमें से प्रमुख हैं भारत सरकार के द्वारा भोपाल में आयोजित दसवीं विश्व हिंदी सम्मलेन में वरिष्ठ हिंदी सेवी सम्मान एवं मध्यप्रदेश सरकार के द्वारा प्राप्त राष्ट्रीय सामान प्रमुख हैं । डॉ मधु जी हमेशा समाज के हित को मन में रखकर रचनाएं करती थीं । हिंदीत्तर राज्य में रहकर भी वे एक साल में आठ पुस्तकों का प्रचूरण और विमोचन के द्वारा अपनी साहित्य हिंदी के प्रति अपनी साहित्यिक प्रेम को प्रकट की हैं । इसके अलावा विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठय मंडली एवं परीक्षा मंडली की सदस्य के रूप में और विभिन्न सरकार एवं गैर सरकारी समितीयों में सदस्या के रूप में भी अपने महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान की ।

इसके अतिरिक्त उनका समाज सेविका रूप भी अत्यंत सराहनीय है । डॉ मधु जी एक सफल आयोजिका के रूप में अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन बहुत ही सफलतापूर्वक चेन्नई तथा अन्य दक्षिण भारत के नगरों में करने के द्वारा ना केवल तमिल नाडू बल्कि सभी दक्षिण भारत के राज्यों के हिंदी प्रेमियों को एक

सूत्र में बाँधने का सफल प्रयास किए हैं और उत्तर दक्षिण का साहित्य संगम कार्य को सुचार रूप से आरम्भ किए हैं ।

डॉ मधु जी अपनी रचनाओं में खासकर कविता, कहानी, एवं उपन्यास आदि के द्वारा महानगरीय परिवेश के अनेक समस्याओं से सूझनेवालीं नारियों को सशक्त बनाने के साथ साथ वैश्वीकरण के प्रभाव से समाज में आए हुए परिवर्तनों को समझने की और उनसे उत्पन्न समस्याओं के लिए समाधान ढूँढने के लिए राह दिखाई हैं ।

डॉ मधु जी अपनी रचनाओं में नारी के बहु रूपों को पूरी संवेदना के साथ चित्रित करने के अलावा उन्हें संबल नारियों के रूप में चित्रित करते हुए समाज में नए सांस्कृतिक , धार्मिक एवं आर्थिक चेतना को झगाने की यथार्थ धरातल पर प्रकट करने की चेष्टा की हैं ।

इस प्रयास में वे कभी भी नारी मन की आकांक्षाओं, अभिलाषाओं, संवेदनाओं आदि कि नजरंदास नहीं की हैं । साथ ही साथ वे नारी की महत्वकांक्षाओं की अपूर्ति की दशा में अपने सशक्त नारी पात्रों को रूपायन किए हैं । यही डॉ मधु जी की नारी पक्षधरता का प्रबल साक्ष्य है । इस प्रकार अपनी रचनाओं में नारी पक्षधरता का समर्थन करने के लिए पुरुषों के प्रति विरोध का स्वर को उन्होंने नई लिया ।

इनके द्वारा रची कहानी संग्रह ' इन्टरनेट का माउस ' की कई कहानियों नवीन कथ्यों के साथ बहूत ही सूक्ष्म निरूपण के कारण बहूत ही विज्ञात हुई हैं । वे इन कहानियों के माध्यम से नवीनतम प्राद्प्राद्योगिकी की वातावरण में शहरीय जीवन में आए हुए परिणामों को चित्रित करने के साथ साथ विक्षुब्द अवचेतन मानस की विभिन्न पर्दों को भी पर्दाफाश की हैं ।

' खेतां दी मुख गई राखी ' इस कहानी में एक ऐसी विध्वा महिला ' सौभाग्यवती ' के बारे में बताया गया है जो अपने पति के देहांत के बाद पुत्रों को ही अपना जीवन समझती है । बाद में उसे एहसास हुआ कि उसकी धारणा गलत है । बेटे और बहुएँ उसकी उपेक्षा सोच समझकर करतीं । जब वह उनके घर जाती है तो वे किसी न किसी काम के बहाने निकल जातीं । सौभाग्यवती समझती है कि यदि उस जैसी दिलदार तथा धन संपन्न नारी का यह हाल है तो उनका क्या हाल होगा जो गरीब दुखियारी विधवा हैं । यह सोचकर उसने खुद को आत्मनिर्भर बनाने का फैसला किया । बैंक में अनपी जमीन गिरवी रखकर ऋण प्राप्त करके फरीदाबाद चली गयी और अपने फलैट में रहने लगी । साथ ही वह ए.टी.एम का प्रयोग भी सीख लिया । जब बच्चे उसकी तलाश में घर आए तो सौभाग्यवती उनसे कहा कि आइंदा उनको यहाँ आने की जरूरत नहीं है। उसने एक सेकेंड हैंड कार खरीदी और एक ड्राईवर भी रखा लिया । अब वह अपनी मनचाही जिंदगी जीने लगी । इस प्रकार नारी पात्रों को सृजन करने के द्वारा डॉ मधु जी को अपने विवशता से ऊपर उठकर आधुनिक जीवन शैली को अपनाने की सलाह देती है ।

' जीवन धन ' कहानी की नायिका विपुला अल्पवय में राजेंद्र के प्रेमपाश में फंस जाती है और राजेंद्र दबाव में आकर उससे विवाह केर लेता है । किन्तु उसके रसिक व्यवहार से विपुला व्यथित हो जाती है और उपेक्षित अनुभव करती है । नारी अपने प्रति सजग है और अपनी सीमा जानती है । परन्तु कोई भी कानून पति को पत्नी से प्रेम करने के लिए बाद्य नहीं कर सकता । अतः विपुला घर छोड़कर चली जाती है और महिला छात्रावास में तरकारी काटने के काम में लग जाती है । वह आत्मनिर्भर बनना चाहती है जिससे वह स्वावलंबी हो सके । सभी भावान्तामक बंधनों के बावजूद उसकी चेतना ने उसे आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहने की प्रेरणा दी ।

मधु धवन ने 'घुटन ' कहानी में आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाओं की दुर्दशा का चित्रण किया है । नायिका चेतना उलझी हुई वैवाहिक जिन्दगी का संघर्ष प्रत्यक्ष करती है । पैसे की लालची पति घर के काम काज में हाथ बँटाने को राजी नहीं है और चेतना घर और बाहरी कामकाज निपटाने , दोहरी भूमिका निभाते हुए टूट–सी जाती है । हर दिन की नई पीड़ा वाली निरर्थक जिन्दगी से उसे घृणा हो जाती है । छह माह के अपने बच्चे गोपू को बजाय शिशु भवन में छोड़ने को वह सीने से लगाकर रखना चाहती है । पर उसे छोड़कर दफ्तर जाने की त्रासदी उसे झेलने पड़ती है । वह गोपू का बिलकुल ध्यान नहीं दे पाती और पति को टी.वी का मजा लेते देख अंतर्द्वंद की स्थिति से गुजरती है । यहाँ उसकी चेतना उसे झंझोरती है – *" यह है वह जिसके " साथ जिन्दगी के सात वर्ष गुजारे ...? गृहस्थी*

की एक– एक ईंट जमायी...., में घर चला लूंगी । " [1]

विवाहोपरांत पति पत्नी का रिश्ता एक स्नेह बंधन होता है , जिसमें जीवन समर की कोई भी कठिनाई का सामना करने के लिए व्यक्ति तैयार होता है । किन्तु ' विडम्बना 'कहानी में दुसह्य व्यहार से नारी की चेतना जागृत हो जाती है और वह छात्रावास में आकर रहती है । वह पति की कर्महीनता को ललकारती है । वह सोचती है कि '' *हर एक कार्यरत औरत पति के लिए कामधेनू है । पत्नी को आत्मनिर्भर करनेवाला पति का जन्म अभी तक इस महान देश में नहीं हुआ है* ''।[2] इस कहानी में नारी आर्थिक रूप से स्वतंत्र है,इसलिए उसकी चेतना के स्वर प्रबल हैं और वह पुरूष से डरनेवाली नहीं।साथ ही एक पढ़ी लिखी कामकाजी नारी की विडम्बनातमक स्तिथि का वर्णन भी लेखिका करती है।

' पिगलती सलाखें ' कहानी की नायिका विजया का पति गुणशेखरण आर्थिक व मानसिक रूप से उसका और उसके मायकेवालों का शोषण करता रहा । इकलौती बेटी को भी उसने सारे कुसंस्कार सिखा दिए और विजया को उस घुटन भरे माहौल से ऊब होने लगी । वह पति जिसके साथ उसने जीने मरने की कस्में खाई, उसे पलकों पर रखने के वादे को तोड़कर यातनाएं देने लगा । विजया ने अपनी आत्मा के बंधन खोले और अपनी चेतना को रूप दिया –' *यही तो मैं बताने आयी हूँ कि वह कठिन काम मैंने कर ही डाला । मैं उसे तलाक दे आई हूँ* । ' [3] लेखिका इस कहानी के माध्यम से नारी चेतना का स्वर मुख्त रूप से मुखरित किया है ।

' घर की खुशबू ' यह कहानी नवविवाहित बहू मीना और उसकी अनुभवी सास के बीच के रिश्ते के इर्द–गिर्द घूमती है । मीना की सास हमेशा उससे कुपित व्यवहार करती है । मीना सदा मुस्कुराती रहती । मीना की लोकप्रियता देखकर उसकी सास मन ही मन जलने लगी । बेटे ने माँ को खुश रखने के लिए कहा माँ ऐसी बात है तो उसके पलंग के नीचे टेप रिकॉर्डर फिट कर देते हैं । देखें वे क्या बातें करती हैं '। मीना के मायके जाने के बाद बेटे ने टेप आन कर दिया । एक सहेली ने मीना से कहा –' तेरी सास तो तुजे बहूत निंदा किया करती है '। मीना ने कहा ' *क्योंकि उन्हें भय है कि कहीं मेरे गुणों को सुनकर मुझे नजर ना लग जाएँ । मैं तो अप. नी सास को माँ मानती हूँ । माँ तो घर की खोशबू होती है ....खुशबू को देखी नहीं जा सकती उसे महसूस करने से ही मिलती है... ।* [4] यह सुनकर मीना की सास को शर्म आई और उस वक्त उनके व्यवहार में परिवर्तन आने लगा । उस दिन से बेटे को माँ और पत्नी दोनों की खोशबू का एहसास घर के कोने कोने में हुआ । लेखिका कहानी की नायिका मीना को सास की निंदा करनेवाली बहुएँ के विचार रूढ़ियों को तोडनेवाली शिक्षाप्रद नारी के रूप में दर्शाते हैं ।

निष्कर्ष :

मधु धवन के रचनाओं में नारीवादी बनी हुई है । यह विचार कहानी, उपन्यास, नाटक जैसे सभी विधाओं में कहीं ना कहीं प्रकट होती है । उनका साहित्य अधिकांश महानगर में रहनेवाली शिक्षित एवं कार्यरत महिलाओं के परेशानियों को उद्घाटित करता है ।

मधु धवन जी अपने कुछ कहानियों में आज के स्थिति को इस तरह दर्शाती हैं कि नैतिक मूल्य जैसे संस्कारों पर प्रशन चिन्ह लगा गया है क्योंकि मानवियता को जिंदा दफन दिया गया है । समस्त परिवेश को असंख्य स्वार्थी मूखौटा ने इस कदर दाँप दिया है कि घर बाहर नारी त्रस्त होती जा रही है । डॉ मधु धवन जी अपने कहानियों में इस त्रस्त को पश्चाताप का रूप दिया है । नारी की प्रतांडित – चीखती आत्मा आकुल – व्याकुल अपने के हाथों का शिकार बनी विचलित है ।मधु धवन जी के नजरों में वैज्ञानिक युग में नारी की स्थिति में कई बदल. ाव आया है । उनको अपने स्वत्व के प्रति जागृत हुई है । आज नारी का अस्तित्व पुरुष वर्चस्व के समान है । शिक्षित होकर नारियों ने अपने घर के पुरुषों का मान बढ़या है । इसका झलक को भी अपने कई कहानियों के माध्यम से दर्शित किए हैं ।

उनकी कहानियों में प्रकृति बोध, प्रेम का स्वरूप, जीवन संघर्ष, क्षणबोध, आदि का सजीव चित्रण हुआ है । कुछ कहानियों में पारिवारिक तथा सामाझिक उस चेतना को झकझोर गया है जो आधुनिकता का उस छटम वेश में गुमराह करती है । उनके कहानियों में आज जीवन के मूल्यों को बनाए रखते हुए सतपथ पर चलाना, उनमाद की हिन्साओं से परे दृढ़ संकल्पी, निष्ठावन, बड़प्पनयुक्त,

उदारवादी , जीवन के सही राह मिलेगी, जिसकी आज बहूत जरूरत है । वे अपने कहानियों के माध्यम से अपने अंदर की आग को , इस समाज में रहनेवाली बुरी चिंतच को उसकी पर्दा फाड़कर एक अच्छी राह दिखाए हैं । वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी के लिए उनका व्यक्तिगत और कृतित्व, उनकी कृतियों का मूल्यांगन, उनका दृष्टिकोण एक अमूल्य निधि है ।

अध्ययन, अध्यापन, पत्रकारिता, साहित्य साधना आदि के माध्यम से अनुभवों व अभिव्यक्ति को नयी धार दी है । हमारे देश में तमाम प्रब्ध महिलाएँ हैं जिन्होंने साहित्य के क्षेत्र में इतिहास रचा है । उसी तरह डॉ. मधु धवन जी ने अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से हर वर्ग को जोडने का प्रयास किया है । वे साहित्य के क्षेत्र में पूर्णिमा के चंद्रमा के समान हैं ।

तमिल भाषी क्षेत्र में हिन्दी का काम करने के लिए वह हिन्दी के साथ द्राविड़ भाषाओं को जोड कर आगे बढ़ी थी और हिन्दी को उसका दर्जा देने के लिए पुरजोर मेहनत करती रही ।

आधार ग्रंथ :

1 डॉ मधु धवन के स्मृति अभिनंदन ग्रंथ ' हिन्दी भाषा दक्षिण भारत में हिन्दी ' –संपादक : डॉ श्रावणी भट्टाचार्या और डॉ स्वाति पालीवाल– प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 4695,21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002–प्रथम संस्करण : 2018–ISBN :9789387889897

2 तमिल पुत्र कल्कि – डॉ मधु धवन – प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 4695,21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002–प्रथम संस्करण :2017

3 शिखरों से ऊंचा – डॉ मधु धवन – प्रकाशक : पेनमैन पब्लिशर्स , 7309/5 , प्रेम नगर, दिल्ली –110 007 –प्रथम संस्करण : 2000

3 चिंगारीयाँ – डॉ मधु धवन – प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 4695,21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002–प्रथम संस्करण :2017

1ण झरते अश्रृ डॉ मधु धवन – प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 4695,21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002

4 मै सृष्टि की आत्मा हूँ – डॉ मधु धवन – प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 4695,21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002

5 साईबर माँ – डॉ मधु धवन – प्रकाशक : नेश्नल पब्लिशिंग हाउस 4230/1, अंसारी रोड , धरिया गंज , दिल्ली – 110 002 –प्रथम संस्करण 2004

6 भारत कहाँ जा रहा है – डॉ मधु धवन – प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 4695,21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002 – प्रकाशित वर्षः 2016 – ISBN : 978–93–5072–194

7 उस मोड पर – उपन्यास–पेनमैन पब्लिशर्स, 7309/5 , प्रेम नगर, शक्ति नगर , दिल्ली

8 आज की पुकार–डॉ मधु धवन – प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 4695,21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002 – प्रकाशन वर्ष : 2014 – ISBN : 9789350727843

9 डॉ मधु धवन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व , अंबुजा एन. मलखेडकर , गुलबर्गा विश्व विद्यालय , कर्नाटक , 10.http://shabdbraham.com/ShabdB/archive/v1i9/sbd-V1-i9-sn10.pdf

*****

Environmental Impacts of Tourism : An Approach to Sustainable Tourism Development

Shri Bhaskar R. Patgar
Assistant Profesor
Department of History
Dr. A. V. Baliga College
of Arts & Science,
Kumta

Introduction :

Tourism is a dynamic force that encourages people to travel to explore nature, adventures, wonders, and communities, learn about cultures, meet people, engage with values, and participate in new customs and events. Tourism development is the process of attracting tourists to a certain destination in order to build and sustain a tourism sector.

The purpose of this article is to discuss the connection between tourism and environmental quality. More precisely, it tries to investigate the effects of the tourism sector on natural resources, as well as some concepts and strategies for improved environmental tourism management. The quest for ways to reconcile the demands of tourism development with environmental protection is critical, and it is becoming increasingly important to all with an interest in tourism.

Sustainable tourism development principles and practices apply to all types of tourism in all types of destinations, including mass tourism and specialised tourism segments. The environmental, economic, and socio-cultural components of tourist development are referred to as sustainability principles, and a sufficient balance must be maintained between these three dimensions to ensure its long-term sustainability.

Tourism Impacts:

Any type of industrial development will have an impact on the social and physical environment in which it occurs. Tourism is responsible for such impacts since tourists visit a place of production in order to consume the outputs.

The economy and socio-cultural implications are thoroughly addressed here, and understanding the environmental impacts is required. Tourism's economic and socio-cultural impacts are briefly explained here...

Economic impacts of tourism:

Tourism development at a destination has both positive and negative impacts on the economy. The positive or negative benefits are mostly determined by the nature of the tourism development at the destination.

> The topic of World Tourism Day 2015 was 'One Billion travellers; One Billion Opportunities,' emphasising the transformative potential of one billion travellers. With over one billion visitors visiting an international destination each year, tourism has emerged as a major economic industry, accounting for 9.8% of worldwide GDP and accounting for 7% of total global exports [59]. According to the World Tourism Organisation, more than 1.087 billion foreign tourist arrivals and $1075 billion in foreign tourism receipts were recorded in 2013. Travel and tourism are predicted to contribute 10.8% of gross domestic product (GDP) by the end of 2026.

Socio-cultural Impacts of Tourism:

It refers to the consequences of direct and indirect interactions with tourists and contact with the tourism sector on host communities.

Because tourism experiences entail human connection, certain consequences may arise. In general, guest-to-host or host-to-guest influences and changes have the greatest social impact in tourism. These encounters are often studied in relation to social exchange. It discusses how tourists' and hosts' behaviour vary as a function of perceived rewards and risks encountered during engagement. Here, too, we see the beneficial and negative effects of tourism, which is related to the later section of the theme.

Environmental Impacts of Tourism:

"[3]Tourism that takes full account of its current and future economic, social and environmental impacts, addressing the needs of visitors, the indus-

try, the environment and host communities".

As previously noted, the other two consequences of tourism are critical to understanding the Environmental consequences of Tourism, which leads to Sustainable Tourism Development.

Tourism has an impact on the environment that is both positive and bad. This article addresses the major issue of tourism's environmental impact. While tourism relies on the quality of the environment to attract and retain visitors, it can also have a negative impact on those same areas and their climate.

Positive Environmental Impacts of Tourism:

- Awareness raising and experience
- Tourism for skills learning and education
- Support of Conservation and biodiversity protection activities
- Protection of endangered species
- Prevention of illegal trade and exploitation
- Finance and job opportunities
- Adoption of Sustainable practices and new legislation

Negative Environmental Impacts of Tourism

- Over Development spoils nature
- Local people displacement
- Waste disposal problems
- Scarcity of natural resources
- Increase in pollution

As said already there are more negative impacts of tourism than Positive Impacts. Now the question comes that what could be the solution for minimizing the negative impacts of tourism?

The answer is …..

Sustainable Tourism Development Approach :

* Make the best use of environmental resources, which are critical to tourism development by preserving vital ecological processes and contributing to the preservation of natural heritage and biodiversity.
* Respect host communities' socio-cultural authenticity, preserve their built and live cultural legacy, and contribute to inter-cultural understanding and tolerance.
* Ensure viable, long-term economic operations, providing socio-economic benefits to all stakeholders that are fairly distributed, including stable employment and income-earning opportunities and social services to host communities, and contributing to poverty alleviation.

To promote broad engagement and consensus building, sustainable tourism development necessitates the informed participation of important stakeholders, as well as strong political leadership. Achieving sustainable tourism is a continuous process that needs ongoing monitoring of impacts and the implementation of required preventive and/or corrective measures as needed.

Sustainable tourism should also maintain a high level of visitor satisfaction and provide tourists with a meaningful experience, enhancing their understanding of sustainability issues and promoting sustainable tourism practices among them.

Conclusion:

We evaluate the environment in all of its forms, as well as the ecosystems that exist within it. It is critical to preserve ecosystem integrity because ecosystems provide critical services for human life, yet we know very little about the level of stress that ecosystems can withstand or how they function. Understanding the role of tourism within the ecosystem is critical here. We must also acknowledge that tourism has significant environmental repercussions, but these consequences are only related with a small percentage of the world's population - those who can afford to travel.

References:

1. Tourism and the Environment by Colin Hunter and Howard Green, 1995, Routledge, USA.
2. Tourism Impact Assessment by P.C.Sinha,Anmol Publications Pvt.Ltd, 2003.
3. www.unwto.org
4. https://wttc.org/research/economic-impact

****

समकालीन दलित स्त्री कविता में प्रतिरोध का स्त्री-स्वर

-डॉ. रामचन्द्र रजक
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार
Email: ramchndr966@gmail.com
Mob: 9580295479

-अम्बालिका जायसवाल
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार
Email: ambalikajayswal@gmail.com
Mob: 9565301321

शोध सार:
समकालीन दलित स्त्री लेखन में दलित स्त्री जीवन के स्वप्न एवं संघर्ष की अभिव्यंजना हुई है। इनका लेखन एक बेहतर मानवीय समाज के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है। ऐसा समाज जो समता, स्वतंत्रता एवं विश्वबंधुत्व पर आधारित हो। जिसमें किसी को जाति, लिंग, क्षेत्र, रंग एवं रूप के आधार पर अपमानित न होना पड़े तथा उपेक्षा जनित जीवन जीने के लिए बाध्य न किया जाए। एक गरिमामय जीवन के लिए सभी लोकतांत्रिक मूल्य एवं अधिकारों की बहाली सबके लिए समान हो। इनका लेखन संपूर्ण मानवता के कल्याण का है। इनकी कविताओं में इनकी आकांक्षित दुनिया के स्वप्न और संघर्ष अभिव्यंजित हैं। इसमें सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, अनीता भारती का काव्य सृजन उल्लेखनीय है। उनकी कविताओं को आधार वस्तु के रूप में स्वीकार कर शोध आलेख प्रस्तुत किया जा रहा है शोध आलेख के केंद्र में इन्हीं कई कवयित्रियों की कविताएँ हैं।

परिभाषित शब्द:
स्वप्न, संघर्ष, स्त्री चेतना, स्त्री स्वर, वैकल्पिक समाज, मानवीय समाज, धर्मांधता, अंधविश्वास, विश्वबंधुत्व, समता, स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक मूल्य, दलित, गैर दलित, तथाकथित इत्यादि।

समकालीन स्त्री कविता में प्रतिरोध का स्त्री स्वर मुखरित हुआ है। दलित स्त्री कविता स्त्री मुक्ति के विविध आयामों पितृसत्ता, धार्मिक सत्ता, राजनीतिक सत्ता, सामाजिक-सांस्कृतिक सत्ता एवं आर्थिक सत्ता आदि का प्रतिरोध करती है। इनकी कविताएँ स्त्री अस्मिता की हैं। इनमें सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी स्त्रियों के मुक्ति का आह्वान हैं। ये कविताएँ स्त्री की स्वायत्तता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध एवं स्त्री की स्वतंत्रता की व्यापक परिभाषा गढ़ती हैं। सवर्ण और दलित स्त्री के स्त्री-मुक्ति के भेद चित्रित करती है। ऐसे लोकतांत्रिक समाज का निर्माण करती हैं जिसमें सब को एक गरिमा में जीवन जीने का अवकाश है। सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, अनीता भारती, हेमलता महिश्वर, कावेरी, अनुसूया अनु, रजत रानी मीनू आदि की कविताएँ इसी का उपक्रम है जो साहित्य के माध्यम से एक मानवतावादी समाज के निर्माण के लिए दृढ़ संकल्पित है।

हिन्दी दलित कविता में स्त्री चेतना की अभिव्यक्ति के संदर्भ में रजनी तिलक लिखती है कि- "मेरी कविताओं में दलित स्त्रियों के सवाल, परिस्थितियाँ, जिंदगी, जाति व्यवस्था और पित्तसत्ता के ढांचे को तोड़ने में जितने तीखे हैं उतने ही घरेलू जिंदगी में व्यक्तित्व को नियंत्रित करने वाले कारकों के प्रति कटाक्ष भी आए हैं।"[1]

रजनी तिलक जी अपनी कविताओं में दलित समाज की स्त्रियों के जीवन में व्याप्त कुंठा, व्यथा, आशा, निराशा, और ऊर्जा को स्रोत बनाकर नए-नए सवालों को उठाने का साहस करती हैं 'कहूं क्या' शीर्षक कविता में कहती है कि -

"हमारा समाज अभिशप्त क्यूं है?
निरंतर भटकाव और बिखराव के लिए
पैदा होते ही क्यों नाम दर्ज हो जाता है ?
पुलिस की डायरी में?
गर्भ से पलता बच्चा भी अपराधी?
ना शिक्षा --- न सम्मान----?
तुम्हारी दुनिया में
हमारा दुख--संताप--गिड़गिड़ाना
तुम्हारा सम्मान क्यूं?"[2]

दलित स्त्री मुक्ति की आवाज को मुखर करती हुई रजनी तिलक स्त्री मुक्ति की अवधारणा को ही चुनौती देती हैं जिसमें दलित स्त्रियों की मुक्ति का स्वरूप सवर्ण स्त्रियों की मुक्ति के स्वरूप में भिन्नता पायी जाती है उनका कहना है कि -

"तुम्हारी मुक्ति की लड़ाई किस काम की
जिसमें मेरी लड़ाई शामिल नहीं"[3]

हिन्दी साहित्य जगत में प्राचीनकाल से ही स्त्री को आनंदवादी नजरिया से ही देखा एवं परखा गया है। किंतु समकालीन कवयित्रियों ने पारंपरिक काव्य प्रयोजन में आनंदवादी दृष्टिकोण का प्रतिकार कर नयी काव्य सृजन प्रक्रिया का निर्माण करती हैं। दलित स्त्री कविता का बुनियादी सवाल यह है कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्री भी समानता की अधिकारी है। इसकी अस्मिता के प्रति जो भेदभाव पैदा किया गया है, उसको हर स्तर पर चुनौती देते हुए स्त्री दलित कविता शब्दों के नए भाव-बोध एवं अर्थ का सृजन करती हैं। सुशीला टाकभौरे 'मैंने कुछ शब्द जोड़े हैं' शीर्षक कविता में लिखती हैं-

"लज्जा नहीं श्रद्धा नहीं
पलकों में अश्रु धारा नहीं
गाती नहीं है रागिनी
ना कनक है ,न कामिनी
ना प्रेम की दो बात है

शिकवा नहीं, न जज्बात है
अधिकार की ये पुकार है
कविता कहोगे तुम इसे ?"[4]

जिस काव्य में दलित स्त्री जीवन का कोई सरोकार नहीं अभिव्यंजित है ऐसी रचना को कविता मानने से कवयित्री सुशीला इंकार करती हैं। प्रेम एवं स्वायत्तता के साथ संपूर्ण समाज की स्त्री जीवन को समझना होगा उसे काव्य की सीमा से मिलना होगा तभी उत्कृष्ट कविता का सृजन संभव है वरना इस प्रकार का सृजन एकांकी व संकीर्ण होगा। रजनी तिलक 'हिंसा मुक्त' शीर्षक कविता में कहती हैं-

"हिंसा मुक्त जीवन
ध्येय है हमारा
और यह खोज अनंत है
आजाद पंछी की तरह
जीवन में फैलाओ
प्यार में प्रतिबद्धता
रिश्ते में उष्मा चाहती हूं"[5]

हिंसा मुक्त जीवन व्यवहार की शिक्षा देती हुई रजनी तिलक ने स्वीकार किया कि हमारी रचनात्मकता के केंद्र में स्त्री जीवन में प्रेम की प्रतिबद्धता व संबंधों की मर्यादा की उष्मा को सृजित करना है जिससे एक मानवीय समाज की रचना की जा सके। स्त्री-पुरुष समानता की बुनियाद ही हमारी राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को बनाए रखने में सक्षम होगी। जातिवादी संस्कारों से मुक्त होकर एक बेहतर राष्ट्र निर्माण के लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। इस दिशा में दलित स्त्री कवयित्रियाँ अपनी अहम भूमिका निभा रही हैं। 'प्रशंसनीय नारी' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती है कि-

"जागरूक नारी बदलेगी
सदियों की परिपाटी
पाएगी समता सम्मान
वह नहीं किसी से छोटी"[6]

राज्य भी जो योजना स्त्री के जीवन सुधार या बचाव के लिए लागू करता है उसके पीछे भी पितृसत्तात्मक वर्चस्व की छाप दिखती है। राष्ट्र स्त्री को पुरुषवादी दृष्टिकोण से देखने का आग्रही है। पुरुषवादी दृष्टिकोण एक स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को नकारता है | किसी की बहन, बेटी, माँ, पत्नी, जैसे सम्बन्धों से इतर उसकी कोई महत्ता नहीं है। पितृसत्ता की इस धारणा पर स्त्री कविता प्रहार करती है। लोकतान्त्रिक राज्य में स्वयं के लिए जमीन का निर्माण करती है। समाज में स्त्री असमानता तथा शोषण का विरोध करती हुई अनीता भारती कहती हैं-

"इंसान के रूप में
बैठे है भेड़िये
जो पीना चाहते हैं
तुम्हारा गर्म लहू
वे करना चाहते है
तुम्हारा इस्तेमाल
अपने को ऊर्जावान और
समाज के प्रति प्रतिबद्ध
दिखाने के लिए "[7]

दलित स्त्री कविता की विशिष्टता है स्वानुभूति की अभिव्यक्ति। दलित वर्ग की स्त्री की पीड़ा सवर्ण स्त्री की पीड़ा से किस प्रकार भिन्न है इसकी पड़ताल दलित स्त्री कविता के भीतर अधिक सूक्ष्मता से की जा सकती है। दलित स्त्री कविता में ब्राह्मणवादी पितृसत्ता की दोहरी मानसिकता का विरोध दिखता है। दलित स्त्री का जीवन दोहरे अभिशाप से गुजर रहा है। अग्रांकित कविता में ब्राह्मणवादी पितृसत्ता का निर्मम स्वरूप कविता में चित्रित है। स्त्री को पूजनीय बताने वाला समाज है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता, यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तस्याफलाः क्रिया:' का जप करने वाला वर्ग एक स्त्री के देह को वस्त्रहीन करते हुए सभी विद्या को विस्मृत कर देता है। अनीता भारती इस सम्बन्ध में लिखती हैं -

"तुम्हें वस्त्र पहनाने निकल जाती है
रणभूमि में
अनेक निर्वस्त्राएँ
तुम्हारे नंगे
कष्ट- विक्षत शरीर ने
जगाई है क्रांति की अखंड लौ
जो रक्षकों – भक्षकों को
सालों - साल याद दिलायेगी
कि एक थी मनोरमा"[8]

दलित स्त्री कविता में अस्पृश्यता का प्रतिरोध दर्ज है। ब्राह्मणवादी समाज में अस्पृश्यता के कारण ही दलित को उसकी प्राथमिक आवश्यकता के लिए भी कितने कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यह जातीय कट्टरता के अनुगामी समाज में दलित की पीड़ा असहनीय है। लोकतांत्रिक राज्य में दलित अपनी स्वतन्त्रता के लिए आज भी संघर्षरत हैं।

अवसरवादी स्वयं को समतावादी मूलक, सामाजिक, आर्थिक न्याय का पक्षधर मानते है समतामूलक समाज के निर्माण की बात करते है लेकिन वास्तव में वंचित और हाशिये पर जी रहे समाज के बीच अपने लाभ के अवसर ही तलाशते है। कहने के लिए स्वयं को निष्पक्ष मानते है और खुद को किसी शोषणकारी परम्परा के समर्थकों से अलग बताते हैं। लेकिन ये अंदर ही अंदर ये दोमुंहे साँप की तरह होते हैं। जो एक तरफ तो वंचित वर्गों के बारे में बातें करके उनकी संवेदना भी प्राप्त कर लेते हैं मंचों पर पुरस्कृत भी होते हैं और दूसरी तरफ शोषणकारी शक्तियों के साथ मिलीभगत करके साजिश भी रचते हैं। अनीता भारती अपनी कविता 'साँपों के बीच' में अवसरवादी समाज का प्रतिरोध करती है-

"अवसरवाद की बारिश में
बिना रीढ़ की हड्डी वाले
यह दोमुँही जीभ लपलपाते
घूम रहे हैं
कह रहे हैं हमें
हम तटस्थ हैं
और और बढ़कर कह रहे है

'हम हर जगह हर अवसर पर
तटस्थ हैं"[9]

भारत को विश्व गुरु बनाने के लिए यह आवश्यक हैं कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों का समुचित प्रयोग करके अपना विकास कर सके लेकिन अकसर ऐसा देखा गया कि जिन लोगों ने भी अपने लिए या दूसरों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई या फिर वैचारिक रूप से आन्दोलन चलाया, उनका ही दमन किया गया । दलित स्त्री कविता अपने परिवेश की पड़ताल करती है जहाँ अपने अधिकार, न्याय, समानता की माँग करने वाले व्यक्ति या समुदाय के प्रति राजनीतिक भूमिका नकारात्मक दिखाई पड़ती है

पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों के प्रति पुरुषों की सामंती सोच एवं उपभोगवादी नजरिए पर करारा प्रहार करते हुए दलित स्त्री कवयित्रियों ने स्त्रियों के पैरों में धर्म शास्त्रों द्वारा डाली गयी सामाजिक बेड़ियों पर सवाल उठाकर उसका पुरजोर प्रतिरोध करती हैं। सुशील टाकभौरे 'अनुत्तरित प्रश्न' शीर्षक कविता में रहती है कि-

"तुम्हारा मौन, चिन्तन
स्वामित्वपूर्ण बड़प्पन का भाव
एक आड़ है
मुझे कचोटने लगे हैं
अपने विचार
यह जानकर कि
मैं उपेक्षित हूँ" [10]

दलित कवयित्रियाँ मानवता को ही मनुष्य का वास्तविक धर्म मानती हैं। मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है । मनुष्यतत्व से ईश्वरत्व की प्राप्ति संभव है। इसके अलावा सभी छद्म व्यवहार, छलावा व धोखा है। दलित और गैर दलित स्त्रियों में फर्क करते हुए रजनी तिलक कहती हैं -

"तुम्हारे मेरे बीच
जमीन आसमान का फर्क है
तुम लड़ती हो
अपनी पहचान के लिए
लड़ती हूं मैं
स्वाभिमान के लिए
*****
तुम्हारे मेरे संघर्ष की
शुरू हुई बुनियादी लड़ाई
तुम लड़ती हो मेरे लिए
मुझे मेरे हक - हुकूक समझाती हो
मैं हर रोज लड़ती हूं अपने आप से
अपने संस्कार व तुम्हारी दया से"[11]

तथाकथित सवर्ण समाज के स्त्रियों का संघर्ष उनकी पहचान की लड़ाई है जबकि दलित स्त्रियों का संघर्ष 'स्वाभिमान' की लड़ाई है। इसलिए दलित कवयित्रियों ने स्त्रीवादी चेतना के आयामों पर सवाल उठाते हुए दलित स्त्री संघर्ष और गैर दलित स्त्री संघर्ष में फर्क करती है। दोनों के बुनियादी सवालों में फर्क है। उनकी लड़ाई एक धरातल पर नहीं लड़ी जाती बल्कि दया एवं सहानुभूति की आड़ में उसे उलझा कर मुख्य धारा से भटका दिया जाता है। इसीलिए दलित स्त्रियों ने अपनी लड़ाई स्वयं के प्रति हुए दुर्व्यवहार के लिए करती हैं। समकालीन दलित कवयित्रियों में इसी तरह के स्वप्न एवं संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है । युग चेतना का वाहक बन समकालीन दलित स्त्री कवयित्रियों ने समतामूलक लोकतांत्रिक समाज के निर्माण में प्रतिबद्ध हैं। सुशीला टाकभौरे 'युग चेतना' शीर्षक कविता में लिखती हैं कि -

"मैं अति को,
विषमता को तोड़कर
सहृदयता जगाना चाहती हूं
क्रौंची की तरह
मैं जन्म देना चाहती हूं
युग चेतन को"[12]

दलित कवयित्रियाँ अपने स्वप्न एवं संघर्ष की लड़ाई में आक्रामक नहीं होती बल्कि बड़ी सहजता एवं हँसी के साथ उसे पाना चाहती हैं। अनीता भारती 'अब जबकि बढ़ चुके हैं खतरे' शीर्षक कविता में कहती हैं-

"हम अपनी हँसी से
एक ऐसी दुनिया रचना
चाहते हैं जहाँ
किसी की हैसियत का टिकट
न कटता हो।"[13]

दलित स्त्री कविता सवर्ण समाज की मानसिकताओं को खुलेआम उजागर करती हैं। इक्कीसवीं सदी में भी सवर्ण लेखन में विषमता, धर्मांधता, अंधविश्वास एवं भेदभाव जैसी अमानवीय वृत्तियाँ जीवित है जिसके चलते दलित समाज की स्त्रियों को अभी भी अपमानित होना पड़ता है । इनसे विश्व बंधुत्व एवं भाईचारा की उम्मीद करना व्यर्थ है । इसलिए दलित स्त्रियों ने भी जीवन परिवर्तन की आकांक्षा के साथ सृजन में आयी और तथा कथित समाज की दूषित मानसिकता को उजागर करती है । 'सूरज तुम आना' शीर्षक कविता में सुशीला टाकभौरे कहती हैं कि -

"विषमता धर्मांधता,
अंधविश्वास है सब ओर
धधक रही है आज शोषण की आतंक फैला रही है
भेदभाव की आंच
ये हिंसक जातिवादी
पनपने नहीं देते भाईचारा
सड़ी- गली मानसिकता के दलाल
बंजर जमीन से ही बेहतर है
इनके विचार"[14]

तथाकथित समाज की दूषित मानसिकता की सर्वव्यापकता की ओर कवयित्री का ध्यान जाना सायास नहीं बल्कि सदियों से ऐसी मानसिकता में जकड़ी प्रत्येक दलित स्त्री जीवन की दास्तान की कहानी है |

अवसरवादी समुदाय स्वयं को अम्बेडकरवादी कहते हैं लेकिन उनके मूल विचार अम्बेडकरवाद के बिलकुल विरुद्ध होता है क्योंकि अम्बेडकरवाद धार्मिक अन्धविश्वास और जाति व्यवस्था को समाप्त कर मनुष्यों के बीच

समानता की बात करता है; लेकिन अवसरवादी लोग धार्मिक रूढ़ियों और जाति परम्परा को बनाए रखने की वकालत करते है। अनीता भारती 'अम्बेडकरी चादर' शीर्षक कविता में लिखती हैं -

भूख प्यास और दुःख में
सर्दी, गर्मी, बरसात में
जमीन पर, कुर्सी पर
तुमने जी भर ओढ़ा, बिछाया, लपेटा
अम्बेडकरी चादर को
फिर तह कर चादर
रख दी तिलक पर
और तिलक धारियों के साथ सुर मिलाया
हे राम! वाह राम [15]

इस कविता में दलित स्त्रियों के जीवन की दोहरी लड़ाई दिखती है। उन्हें सवर्ण समाज के जातिवाद तथा दलित समाज के पुरूष के पितृसत्तात्मक के खिलाफ भी लड़ाई लड़नी है। स्त्री के अस्तित्व पर परिवार, राज्य, प्रशासन का पहरा लगा रहता है साथ ही स्त्री की इच्छा, ऊर्जा, काबिलियत सब को कमतर ही आँका जाता है। समकालीन स्त्री कविता पितृसत्तात्मक पहरे का प्रतिरोध करती है।

निष्कर्षत: दलित स्त्री लेखन अपनी अस्मिता, पहचान, सम्मान एवं स्वाभिमान की लड़ाई स्वयं से करने लगी। उन्होंने अपने को जाना, पहचाना और स्वप्न और संघर्ष की अभिव्यक्ति करने लगी जिसमें संपूर्ण मानव का कल्याण निहित है। दलित स्त्री कवयित्रियों के रचनात्मक सरोकार एक बेहतर मानवीय समाज के निर्माण की है। जो समता, स्वतंत्रता एवं विश्वबंधुत्व की भावना पर आधारित है। ऐसे में ही संपूर्ण मानव समाज का कल्याण है। सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक एवं अनीता भारती आदि ऐसी दलित कवयित्रियां है, जिनकी कृतियों में एक मानवीय समाज के सृजन के स्वप्न एवं संघर्ष की अभिव्यंजना हुई है।

1. हवा सी बेचैन युवतियाँ, रजनी तिलक, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण:2014, पृष्ठ:10 (दो शब्द शीर्षक से)
2. वही, पृष्ठ: 28
3. वही, पृष्ठ: 27
4. यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2013, पृष्ठ: 67
5. हवा सी बेचैन युवतियाँ, रजनी तिलक, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2014, पृष्ठ: 14
6. यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2013, पृष्ठ: 69
7. https://samtamarg.in/2023/ 04/ 16/ seven-poems-by-anita-bharti/
8. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%A4%E0%A5%81%E0%A4%AE_%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%B0_%E0%A4%A8%E0%A4%B9%E0%A5%80%E0%A4%82_%E0%A4%B9%E0%A5%8B_%E0%A4%AE%E0%A4%A8%E0%A5%8B%E0%A4%B0%E0%A4%AE%E0%A4%BE_/_%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A4%BE_%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%80
9. https://samtamarg.in/2023/ 04/ 16/ seven-poems-by-anita-bharti/
10. https://www.hindwi.org/kavita/anuttarit-parashn-sushila-takbhaure-kavita?sort=popularity-desc
11. हवा सी बेचैन युवतियाँ, रजनी तिलक, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2014, पृष्ठ: 24-25
12. यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2013, पृष्ठ: 58
13. https://samtamarg.in/2023/ 04/ 16/ seven-poems-by-anita-bharti/
14. कंचनजंघा, सम्पादक- प्रदीप त्रिपाठी, वर्ष 1, अंक1, जनवरी - जून, 2020 पृष्ठ: 146
15. http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%85%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AC%E0%A5%87%E0%A4%A1%E0%A4%95%E0%A4%B0%E0%A5%80_%E0%A4%9A%E0%A4%BE%E0%A4%A6%E0%A4%B0_/_%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A4%BE_%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%80

*****

स्नातक छात्रों में सामाजिक चिंता: एक मात्रात्मक विश्लेषण

-डॉ० बसंत कुमार
विभागाध्यक्ष शिक्षाशास्त्र विभाग
ए. एन.डी. कॉलेज,पटोरी,समस्तीपुर

-कुन्ती कुमारी
शोधार्थी
शिक्षाशास्त्र विभाग
ललित नारायण मिथिला , विश्वविद्यालय
दरभंगा, बिहार

सारांश: स्नातक छात्रों के मध्य सामाजिक चिंता एक प्रचलित मनोवैज्ञानिक चिंता है, जो उनके शैक्षणिक प्रदर्शन, सामाजिक संपर्क और समग्र कल्याण को प्रभावित करती है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य मात्रात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से स्नातक छात्रों पर सामाजिक चिंता के स्तर, कारणों और प्रभावों का पता लगाना है। अध्ययन स्नातक छात्रों के स्तरीकृत प्रतिदर्श से एकत्र किए गए सर्वेक्षण आकड़ो का उपयोग करता है। अध्ययन के निष्कर्ष सामाजिक चिंता और शैक्षणिक दबाव, सहकर्मी संबंधों और आत्म-सम्मान जैसे कारकों के बीच महत्वपूर्ण सहसंबंधों का सुझाव देते हैं।

शब्द कुंजी: सामाजिक चिंता, स्नातक छात्र, मनोवैज्ञानिक कल्याण, शैक्षणिक प्रदर्शन, मात्रात्मक अनुसंधान

1.**प्रस्तावना: -**

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, मानसिक स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक कल्याण की एक स्थिति है जो व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं को पहचानने, जीवन के सामान्य तनावों से निपटने, रचनात्मक और उत्पादक कार्यों में संलग्न होने और अपने समुदाय में सार्थक योगदान देने की अनुमति देती है। यह लोगों को निर्णय लेने, सामाजिक रूप से वार्तालाप करने और चीजों को स्पष्ट रूप से समझने में मदद करता है। चिंता एक मानसिक स्वास्थ्य स्थिति है जिसमें चिंता, भय और घबराहट की भावनाएँ शामिल होती हैं। अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन चिंता को तनाव, चिंतित विचारों और शारीरिक परिवर्तनों, जैसे कि रक्तचाप में वृद्धि से चिह्नित भावना के रूप में वर्णित करता है। सामाजिक चिंता, जिसे सामाजिक भय के रूप में भी जाना जाता है, एक मानसिक स्वास्थ्य विकार है जहाँ व्यक्ति दूसरों द्वारा देखे जाने या नकारात्मक रूप से आंके जाने से डरते हैं। सामाजिक चिंता वाले लोग अक्सर रोज़मर्रा की बातचीत में गंभीर चिंता, आत्म-चेतना और शर्मिंदगी का अनुभव करते हैं। शर्मीलेपन के विपरीत, सामाजिक चिंता केवल सामाजिककरण में कठिनाई से कहीं अधिक है; यह दैनिक जीवन को काफी हद तक बाधित करती है। 1994 में डायग्नोस्टिक और स्टैटिस्टिकल मैनुअल (डीएसएम-चार) में "सोशल एंग्जायटी डिसऑर्डर" (एसएडी) शब्द ने "सोशल फोबिया" की जगह ले ली, ताकि इस स्थिति की व्यापक और अधिक सामान्यीकृत प्रकृति को दर्शाया जा सके। इस स्थिति को एक या अधिक सामाजिक या प्रदर्शन स्थितियों के लगातार डर के रूप में परिभाषित किया जाता है, जहाँ व्यक्ति अपरिचित लोगों के संपर्क में आता है या जाँच किए जाने की संभावना होती है। डर इतना तीव्र हो सकता है कि यह किसी व्यक्ति की रोज़मर्रा की गतिविधियों जैसे काम पर जाने या स्कूल जाने की क्षमता को प्रभावित करता है। कुछ व्यक्ति इन कार्यों को करने में सक्षम हो सकते हैं, लेकिन महत्वपूर्ण चिंता के साथ, जबकि अन्य कुछ स्थितियों से पूरी तरह से बच सकते हैं। सामाजिक चिंता विशिष्ट स्थितियों में हो सकती है, जैसे कि दूसरों के सामने खाना या प्रदर्शन करना, या अधिक सामान्य सामाजिक बातचीत में।

अध्ययनों से पता चलता है कि सामाजिक चिंता सबसे आम मानसिक विकारों में से एक है, लेकिन अक्सर इसका निदान और उपचार नहीं किया जाता है। यह सामाजिक संबंधों और जीवन की गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है, विशेष रूप से किशोरावस्था में, जहाँ यह शैक्षणिक प्रदर्शन और साथियों की बातचीत को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। अमेरिका की चिंता और अवसाद एसोसिएशन (एडीएए) के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 15 मिलियन वयस्क सामाजिक चिंता का अनुभव करते हैं, जिसके लक्षण अक्सर 13 वर्ष की आयु के आसपास शुरू होते हैं। सामाजिक चिंता की व्यापकता देश के अनुसार भिन्न होती है, जो उच्च आय वाले देशों में 3.5% से 21% तक होती है।

किसी व्यक्ति या समूह की जीवनशैली में वे व्यवहार, आदतें और रहने की स्थितियाँ शामिल होती हैं जो उन्हें दर्शाती हैं या जानबूझकर चुनी जाती हैं। धूम्रपान, शारीरिक गतिविधि, शराब का सेवन और आहार सहित ये जीवनशैली कारक शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। खराब जीवनशैली विकल्प हृदय संबंधी समस्याओं, मोटापा, मधुमेह और कैंसर जैसी पुरानी बीमारियों में योगदान करते हैं और मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित कर सकते हैं। आधुनिक समाज में, मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों को तेजी से वैध स्वास्थ्य चिंताओं

के रूप में पहचाना जाता है। नियमित व्यायाम और संतुलित आहार जैसी स्वस्थ जीवनशैली की आदतों को अपनाने से मानसिक स्वास्थ्य में सुधार और मानसिक बीमारियों के जोखिम को कम करने में मदद मिल सकती है। एक स्वस्थ जीवनशैली न केवल मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है बल्कि व्यक्तियों को जीवन की चुनौतियों का बेहतर ढंग से सामना करने में भी सक्षम बनाती है। मानसिक स्वास्थ्य को प्राथमिकता देना और स्वस्थ जीवनशैली विकल्प चुनना महत्वपूर्ण मानसिक स्वास्थ्य विकारों को रोकने के लिए आवश्यक है।

2. साहित्य की समीक्षा

लालडिनपुई और भट्टाचार्जी (2023) ने 19-21 वर्ष की आयु के 198 कॉलेज छात्रों के बीच सामाजिक चिंता की जांच की, जिसमें पता चला कि 24.8% ने सामाजिक चिंता के उच्च स्तर का अनुभव किया, जबकि 56.6% ने मध्यम स्तर प्रदर्शित किया। महिला छात्र पुरुषों की तुलना में अधिक संवेदनशील पाई गईं। अध्ययन ने छात्रों के पारस्परिक संबंधों, शैक्षणिक प्रदर्शन, भावनात्मक कल्याण और भविष्य के करियर की संभावनाओं पर सामाजिक चिंता के प्रभाव पर प्रकाश डाला। लेखकों ने छात्रों को सामाजिक चिंता से उबरने में मदद करने के लिए शिक्षकों द्वारा सहायक शिक्षण वातावरण बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

जोहानी एट अल (2022) ने सऊदी मेडिकल छात्रों के बीच सामाजिक चिंता विकार (एसएडी) पर एक अध्ययन किया, जिसमें 51% की उच्च व्यापकता दर की रिपोर्ट की गई। महिला होना, निजी कॉलेजों में पढ़ना, गैर-समस्या-आधारित शिक्षण विधियों का उपयोग करना, शैक्षणिक विफलता का अनुभव करना और कम जीपीए होना जैसे कारक सामाजिक चिंता के उच्च जोखिम से जुड़े थे।

इटानी एट अल. (2021) ने COVID-19 लॉकडाउन के दौरान किशोरों में गंभीर सामाजिक चिंता (एसएसए) की खोज की, जिसमें पाया गया कि 18% में गंभीर लक्षण दिखाई दिए। अत्यधिक टेक्स्टिंग, बार-बार सोशल मीडिया का उपयोग और लंबे समय तक वीडियो गेम खेलने जैसे कारक सामाजिक चिंता के उच्च स्तर से जुड़े थे, भले ही कोविड -19 से संबंधित भय से कोई सीधा संबंध न हो।

उंगर एट अल. (2020) ने सात देशों में एक वैश्विक अध्ययन किया, जिसमें पाया गया कि 36% युवा सामाजिक चिंता विकार के मानदंडों को पूरा करते हैं। अन्य अध्ययनों के विपरीत, लिंग ने महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई; इसके बजाय, उम्र, निवास का देश, रोजगार की स्थिति, शैक्षिक स्तर और रहने की स्थिति जैसे कारकों ने सामाजिक चिंता के प्रसार को प्रभावित किया।

डिसूज़ा एट अल. (2019) ने भारत के कर्नाटक में मेडिकल छात्रों के बीच एसएडी का आकलन किया, जिसमें पाया गया कि 30.5% में SAD के लक्षण दिखाई दिए। महिला छात्र और 20 वर्ष से अधिक उम्र के छात्र अधिक प्रभावित थे।

रसेल और शॉ (2009) ने लिबोविट्ज सोशल एंग्जाइटी स्केल का उपयोग करके यूके में 1,007 उच्च शिक्षा छात्रों के बीच सामाजिक चिंता की जांच की। उनके निष्कर्षों से पता चला कि 10% छात्रों ने गंभीर सामाजिक चिंता का अनुभव किया। जबकि प्रचलन मध्यम लग रहा था, शोधकर्ताओं ने छात्रों के जीवन पर इसके महत्वपूर्ण प्रभाव पर जोर दिया और विश्वविद्यालयों और मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के बीच सहयोग बढ़ाने का आह्वान किया।

जायसवाल एट अल.(2007) ने भारतीय विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच सामाजिक चिंता और इंटरनेट की लत का अध्ययन किया, जिसमें पता चला कि 90% से अधिक छात्रों ने इंटरनेट की लत का अनुभव किया, और एक तिहाई से अधिक ने सामाजिक चिंता का प्रदर्शन किया। सामाजिक चिंता और इंटरनेट की लत के बीच एक मजबूत संबंध देखा गया।

3.**अध्ययन के उद्देश्य**

- ◊ स्नातक छात्रों में सामाजिक चिंता की व्यापकता का आकलन करना।
- ◊ सामाजिक चिंता में योगदान देने वाले प्रमुख कारणों की पहचान करना।
- ◊ छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन और सामाजिक जीवन पर सामाजिक चिंता के प्रभावों का मूल्यांकन करना।

4. शोध पद्धति

शोध डिजाइन: वर्णनात्मक मात्रात्मक डिजाइन। अध्ययन में प्रासंगिक डेटा एकत्र करने के लिए एक क्रॉस-सेक्शनल सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया गया।

प्रतिदर्श: विविध प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए स्तरीकृत प्रतिदर्श का उपयोग करके विभिन्न विषयों से 100 स्नातक छात्रों का एक यादृच्छिक नमूना चुना गया।

आकड़ा संग्रह उपकरण: सामाजिक चिंता के स्तर को मापने के लिए एक स्व-डिज़ाइन किए गए सामाजिक चिंता प्रश्नावली (SAQ) का उपयोग किया गया था।

आकड़ा विश्लेषण:

सर्वेक्षण प्रतिक्रियाओं के लिए प्रतिशत गणनाओं का उपयोग करके डेटा विश्लेषण किया गया था। परिणामों को लिंग, अध्ययन के वर्ष और शैक्षणिक प्रदर्शन जैसे जनसांख्यिकीय चर के आधार पर वर्गीकृत किया गया था।

5. अध्ययन का परिणाम एवं विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों से पता चलता है कि 45% उत्तरदाताओं ने

सामाजिक चिंता के मध्यम से उच्च स्तर की सूचना दी। लिंग के आधार पर विश्लेषण से पता चलता है कि 60% महिला छात्रों ने मध्यम से उच्च सामाजिक चिंता का अनुभव किया, जबकि 30% पुरुष छात्रों ने।

व्यक्तिगत धारणा:

65% छात्रों ने दूसरों के सामने बोलते समय घबराहट महसूस करने की सूचना दी।

50% ने शर्मिंदगी के डर से सामाजिक समारोहों से बचने की बात स्वीकार की।

40% ने अजनबियों के साथ बातचीत शुरू करने में कठिनाई व्यक्त की।

शैक्षणिक वातावरण:

55% छात्र न्याय किए जाने के डर से कक्षा में प्रश्न पूछने में झिझकते थे।

48% ने प्रस्तुतियों या समूह चर्चाओं में भाग लेने से परहेज किया।

60% ने प्रोफेसरों के साथ बातचीत करते समय चिंता महसूस करने की सूचना दी।

साथी संबंध:

45% ने नए दोस्त बनाने के लिए संघर्ष किया।

40% सामाजिक समूहों से बहिष्कृत होने के बारे में चिंतित थे।

35% ने संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक कार्यक्रमों से परहेज किया।

सामना करने के तरीके:

केवल 25% ने विश्राम तकनीकों का उपयोग करने की सूचना दी।

40% ने दोस्तों या परिवार से सहायता मांगी।

15% ने पेशेवर परामर्श लेने पर विचार किया।

अध्ययन का विश्लेषण:

निष्कर्ष बताते हैं कि सामाजिक चिंता छात्रों की शैक्षणिक संलग्नता और सामाजिक भागीदारी को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। छात्रों ने शैक्षणिक संदर्भों में, विशेष रूप से सार्वजनिक भाषण, कक्षा चर्चा और प्रोफेसरों के साथ आमने-सामने बातचीत में उच्च चिंता की सूचना दी। महिला छात्रों के बीच उच्च प्रचलन पिछले शोध से मेल खाता है, जिसमें सुझाव दिया गया था कि सामाजिक अपेक्षाओं और आत्म-धारणा संबंधी चिंताओं के कारण महिलाओं को सामाजिक चिंता का अनुभव होने की अधिक संभावना हो सकती है।

सामाजिक संबंधों को भी नुकसान हुआ, कई छात्रों ने दोस्ती बनाने में कठिनाइयों और बहिष्कार के डर की सूचना दी। यह परिसर-आधारित सामाजिक सहायता कार्यक्रमों और अलगाव को कम करने के उद्देश्य से समावेशी कार्यक्रमों की तत्काल आवश्यकता को इंगित करता है।

प्रबंध करने की रणनीतियाँ सीमित थीं, कुछ छात्रों ने विश्राम तकनीकों के उपयोग या परामर्श लेने की सूचना दी। यह परिसर में उपलब्ध मानसिक स्वास्थ्य संसाधनों के बारे में जागरूकता की कमी को उजागर करता है। हाई स्कूल से कॉलेज में संक्रमण एक महत्वपूर्ण ट्रिगर प्रतीत होता है, जिसमें प्रथम वर्ष के छात्रों ने उच्च चिंता के स्तर की रिपोर्ट की है। सहकर्मी सलाह और परामर्श सेवाओं जैसी सहायता प्रणालियाँ इस संक्रमण को आसान बनाने में मदद कर सकती हैं।

अंत में, परिणाम उच्च शिक्षा संस्थानों में मानसिक स्वास्थ्य सहायता सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करते हैं। विश्वविद्यालयों को सक्रिय मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेप अपनाना चाहिए, मनो-शैक्षणिक कार्यशालाएँ प्रदान करनी चाहिए, और सहायक वातावरण स्थापित करना चाहिए जहाँ छात्र मदद लेने के लिए प्रोत्साहित महसूस करें।

6. निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि स्नातक छात्रों के बीच सामाजिक चिंता एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, जो उनके शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक कल्याण को प्रभावित करता है। डेटा इंगित करता है कि छात्रों को शैक्षणिक संदर्भों में, विशेष रूप से सार्वजनिक बोलने, कक्षा में भाग लेने और साथियों के साथ संबंध बनाने में काफी चिंता का सामना करना पड़ता है। ये प्रभाव महिला छात्रों के बीच अधिक स्पष्ट हैं, जो सामाजिक चिंता के अनुभवों में संभावित लिंग-संबंधी अंतरों को उजागर करते हैं। सामाजिक चिंता की व्यापकता को शैक्षणिक दबाव, नकारात्मक मूल्यांकन के डर और सामाजिक बातचीत में कठिनाइयों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। कई छात्रों ने कक्षा की गतिविधियों में भाग लेने में अनिच्छा की सूचना दी, जो उनके शैक्षणिक प्रदर्शन और व्यक्तिगत विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। टालने, कम शैक्षणिक जुड़ाव और सामाजिक वापसी का नकारात्मक चक्र उनकी चिंता को बढ़ाता है।

कोपिंग रणनीतियों का सीमित उपयोग मानसिक स्वास्थ्य संसाधनों के बारे में जागरूकता और पहुंच की कमी का सुझाव देता है। जो छात्र दोस्तों और परिवार से समर्थन पर निर्भर थे, उन्होंने चिंता के अपेक्षाकृत कम स्तर की सूचना दी, जो एक सहायक सामाजिक वातावरण के महत्व पर जोर देता है।

अध्ययन से यह भी पता चलता है कि प्रथम वर्ष के छात्रों को हाई स्कूल से कॉलेज में संक्रमण के कारण अत्यधिक चिंता का अनुभव होता है, जो इस महत्वपूर्ण समायोजन अवधि के दौरान लक्षित समर्थन की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

7. संदर्भ ग्रन्थ सूचि: -

1. अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन (1994). मानसिक विकारों का निदान और सांख्यिकीय मैनुअल (चौथा संस्करण). अमेरिकन साइकियाट्रिक पब्लिशिंग, इंक.
2. अल जोहानी डब्ल्यूएम, अलशमलान एनए, अलअमर एनए, शावखान आरए, अलमय्याद एएच, अलगामदी एलएम, एट अल

(2022). सामाजिक चिंता विकार और इसके संबंधित कारक: सऊदी अरब में मेडिकल छात्रों के बीच एक क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन. बीएमसी मनोरोग, 22(1):1-8।

3. अली, एच., और जोर्डेंस, एस. (2023). विश्वविद्यालय के छात्रों में सामाजिक चिंता: एक जानबूझकर जीवन-कौशल आधारित रोकथाम मॉडल की ओर। जर्नल ऑफ मेंटल हेल्थ एंड क्लिनिकल साइकोलॉजी 10 अक्टूबर, 2023 को प्रकाशित
4. डिसूजा एमजे, अरुण डैनियल जे, मुहम्मद मुंतज़ीम जी (2019). कर्नाटक के दावणगेरे में एक तृतीयक देखभाल अस्पताल में मेडिकल छात्रों में सामाजिक चिंता विकार. इंट जे, कम्युनिटी मेड पब्लिक हेल्थ, 6(4):1434.
5. इटानी एमएच, एल्टनिर ई, टीनावी एच, डेहर डी, एल्टनिर ए, मौकरज़ेल एए. कोविड-19 लॉकडाउन के दौरान किशोरों में गंभीर सामाजिक चिंता। जर्नल ऑफ पेशेंट एक्सपीरियंस. 2021;8:23743735211038386।
6. लालडिनपुई, बी., और भट्टाचार्जी, आर. (2023). अ स्टडी ऑन प्रेवालेन्स ऑफ़ सोशल एंग्जायटी अमंग स्टूडेंट्स. द फार्मा इनोवेशन,, 12(विशेष अंक 9), 2522-2526
7. सेलर, ए., और हेज़लेट-स्टीवंस, एच. (2011). कॉलेज के छात्र आबादी में सामाजिक चिंता: चिंता संवेदनशीलता की भूमिका। जर्नल ऑफ एंग्जाइटी स्टडीज।
8. हाकामी, आर.एम., महफूज, एम.एस., अदावी, ए.एम., माहा, ए.जे., अथाथी, ए.जे., दगरीरी, एच.एच., नजमी, एच.एच., और अरीशी, एन.ए. (2018). सऊदी अरब के जाज़ान विश्वविद्यालय में स्नातक छात्रों में सामाजिक चिंता विकार और इसका प्रभाव. मेंट इल्लन, 9(2), 7274. https://doi.org/10.4081/mi.2017.7274
9. जेफरीज पी, उंगर एम.(2020). युवा लोगों में सामाजिक चिंता: सात देशों में एक व्यापकता अध्ययन. प्लोस वन,15 (9):e0239133.
10. लुआन, वाई.एस., झान-लिंग, जी., एमआई, एल., यिंग, एल., लैन, बी., और टोंग, एल. (2022). सामाजिक परिस्थितियों में सामाजिक चिंता विकार वाले कॉलेज के छात्रों के बीच अनुभव: एक गुणात्मक अध्ययन. न्यूरोसाइकिएट्रिक रोग और उपचार, 18, 1729–1737। https://doi.org/10.2147/NDT.S371402
11. रसेल, जी., और शॉ, एस. (2009). अ स्टडी टू इन्वेस्टीगेट द प्रेवालेन्स ऑफ़ सोशल एंग्जायटी इन अ सैंपल ऑफ़ हायर एजुकेशन स्टूडेंट्स इन द यूनाइटेड किंगडम, जर्नल ऑफ़ मेन्टल हेल्थ,, 18(3), 198-206। https://doi.org/10.1080/09638230802522494
12. . सूर्यनिंगरम, सी. (2021). कॉलेज के छात्रों की सामाजिक चिंता: डिजिटल युग में युवा लोगों के मानसिक स्वास्थ्य का एक अध्ययन. जर्नल कोन्सलिंग डैन पेंडिडिकन, 9(1), 1-10। https://doi.org/10.29210/150100
13. . टैन, जी. एक्स. डी., सोह, एक्स. सी., हर्टांटो, ए., गोह, ए. वाई. एच., और मजीद, एन. एम. (2023). कॉलेज और विश्वविद्यालय के छात्रों में चिंता की व्यापकता: एक व्यापक समीक्षा. जर्नल ऑफ अफेक्टिव डिसऑर्डर रिपोर्ट्स, 14, 100658. https://doi.org/10.1016/j.jadr.2023.100658

****

शिवमूर्ति के उपन्यास में अभिव्यक्त किसान संघर्ष

डॉ. एल. पी. लमाणी
हिन्दी
प्राध्यापक
कनार्टक विश्वविद्यालय, धारवाड

शिवमूर्ति समकालीन हिंदी साहित्य के विरल कथाकार हैं, जो गाँव, गरीबी व स्त्री के उस यथार्थ के आख्यान रचते हैं, जहाँ एक दूसरों की दृष्टि कम ही पहुंचती है| यह यथार्थ सिर्फ़ उनके उपन्यासों के कथानक अथवा घटनाक्रम में ही नहीं समाहित होता, बल्कि उनकी भाषा, उनके पात्रों के चरित्र, उनके संवाद, हर जगह झलकता है| प्रेमचंद्र और फणीश्वरनाथ 'रेणु' की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले जिन कथाकारों का नाम सर्वाधिक लिया जाता है उनमें शिवमूर्ति महत्वपूर्ण हैं| उनकी रचनाओं की एक बड़ी विशेषता उनकी भाषा है| इन्होंने अपनी रचनाओं में जिस समाज का चित्रण किया है वह भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की मूल कड़ी है| इनका कथा साहित्य बड़ी सूक्ष्मता से लोकपक्ष का पूरा ढ़ांचा प्रस्तुत करता है| वह लोकपक्ष पाठक के मानव मस्तिष्क पर छा जाता है| शिवमूर्ति जी के अनुभव का ही कमाल है कि वह इसी लोक शब्दों को कथा साहित्य में बड़ी बारीकी से, विशेषकर पाठकों को एक रसभरी दुनिया में पहुंचा देता है| शिवमूर्ति ने सन् १९९० के बाद तिन उपन्यासों की रचना की उनमें 'तर्पण', 'त्रिशूल', और 'आख़री छलांग' है|

'आख़िरी छलांग' उपन्यास 'नया ज्ञानोदय' के जनवरी २००८ के अंक में प्रकाशित हुआ है| इस उपन्यास में शिवमूर्ति जी ने किसान जीवन की त्रासदी को मार्मिक ढंग से प्रकट किया है| यह उपन्यास किसान जीवन के मर्मातक संघर्ष को प्रस्तुत करता है| इस उपन्यास में केवल यथार्थ ही नहीं है वरन् आशावाद का भी चित्रण हुआ है| कथाकार ने किसान जीवन की समस्याओं को बड़े ही बारीकी ढंग से अपने उपन्यास में दिखाया है| उन्होंने किसानों की मूलभूत समस्या खाद, पानी, बिज, बिजली की समस्या, प्राकृतिक समस्या, फसल का उचित मूल्य न मिलने की समस्या, कर्ज की समस्या तथा आत्महत्या की समस्या को बड़े ही बारीकी से दिखाया है|

कथा नायक पहलवान और उसकी पत्नी पहलवानिन के इर्दगिर्द इस लघु उपन्यास की कथा तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के ताने-बाने और छोटी-बड़ी घटनाओं के डिटेल्स से बुनी हुई है| किसानी जीवन के दुःख-दर्द, खेती-बाड़ी, सिमित और छोटी जोतों के खेतों से अधिक उपज लेने के लिए महंगे खाद-बीज, किटनासक, बिजली, डीजल, ट्यूबवेल, ट्रैक्टर-ट्राली, जोताई, बुआई, मजदूरी, उपज को बाजार तक ले जाने का किराया-भाड़ा आदि के लिए लिए गए बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं के कर्ज-मकड़जाल में फंस कर टूटते बिखरते, अपनी जमीनें गंवाते छोटे-बड़े किसान, हताशा-निराशा के दलदल में फंस कर आत्महत्याएं करने को विवश हैं| अंग्रेजों के राज में प्रेमचंद के गोदान में होरी तमाम समस्याओं और विभिन्न परिस्थितिओं को झेलता हुआ अपने जीवन का निर्वाह करता है और आत्महत्या नहीं करता| जमीनों से बेदखल होने के बावजूद वह अपने परिवार का भरण-पोषण करता है लेकिन गोबर को वे नहीं रोक पाते और वह कह उठता है| ***-"दादा का ही कलेजा है कि वह सहते है, मुझसे तो एक दिन न सहा जाए"१*** लेकिन इस उपन्यास की स्थितियां अत्यंत दारुण हैं जिनका फैलाव राष्ट्रिय ही नहीं अंतरराष्ट्रिय स्तर तक है| सीमांत किसान को उदारीकरण औए नव उदारवादी अर्थव्यवस्था में जिन सरकारी नीतियों ने प्रभावित कर पूरी तरह बर्बाद किया है उसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलाता है|

शिवमूर्ति ने अपने उपन्यास के नायक पहलवान के माध्यम से पुरे भारत के किसानों की दारुण स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है| तथा उनके माध्यम से किसान जीवन की समस्याओं को बेबाकी के साथ उठाया है| पहलवान को समझते हुए एक किसान कहता है - ***"किसान के घर में जनम लिया है तो ऐसी मुसीबतें आती ही रहेंगी| किसान जिंदगी में कभी सुखी नहीं रह सकता| हम किसानों को ऐसी ही परिस्थतियों में जिंदगी की नाव खेना है| जिन किसानों की हालत बनी-संवरी दिखाई देती है, वह किसानी की दम पर नहीं है| उनके घर में कोई कमाने वाला बाहर से मनीआडर भेजता है अपनी तनखा से तब वे किसी हद तक खुशहाल दिखाई देते है|"२***

किसान सबका पेट भरता है लेकिन अपना पेट भरने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है| खेती का खर्चा इतना है कि किसान ठीक से दो वक्त की रोटी तक नहीं जुटा पाता| वह जीवन भर मेनहत करता है और युवावस्था में ही उसके शरीरों पर झुर्रियां दिखने लगाती है वह ३० वर्ष की अवस्था में आते-आते वह ६० वर्ष का हो जाता है-***"जिंदगी के झमेले तो मरते दम तक रहेंगे| साथ नहीं छोड़ेगे| वे महसूस करते हैं, नहीं, अभी उनकी जवानी गई नहीं है|....पहलवान को बुढ़ापा ! कैसा बुढ़ापा ?३*** उनका साथ देते हुए पहलवानिन कहती हैं-***"मौका मिले तो मौर बांध कर अभी भी वे विवाह करने को निकल पड़ें!"४*** शिवमूर्ति किसानों के वास्तविक चरित्र को पाठक के सामने प्रस्तुत करते है उनके किसान किसी काल्पना के संजोए हुए किसान नहीं है बल्कि वे भारतीय संस्कृति के किसान है|

कथाकार शिवमूर्ति का उपन्यास प्रेमचंद के उपन्यास से काफी भिन्न दिखाई पड़ता है इसकी वजह किसानों के जीवन में अमूलचूल परिवर्तन को देखा जा सकता है| प्रेमचंद के यहाँ जमीदारी प्रथा, पूजीवादी प्रथा, सामंतवाद आदि के द्वारा किसनों का शोषण होता था तो शिवमूर्ति के यहाँ बैंक, सोसायटी, सरकारी योजना के द्वारा किसानों का शोषण होता दिखाई पड़ता है| समस्याएँ अलग-अलग होकर भी एक जैसी ही दिखाई पड़ती है|

उपन्यास की मूलभूत समस्या किसानों की आत्महत्या को ले करके है किसानों की आत्महत्या आज का सवालिया निशान बन चुका है देश में किसानों की आत्महत्या पर अनेक राजनीतिक पार्टियाँ उनका लाभ उठा रही है लेकिन उनके पक्ष में कोई खड़ा दिखाई नहीं पड़ता| आज वर्त्तमान संदर्भ में उनकी समस्याओं को अनेक साहित्यकारों ने अपने-अपने लेखन के द्वारा प्रश्न खड़ा किया है| कथाकार शिवमूर्ति भी इससे अछूते नहीं रहे है वे किसानो की समस्याओं को वर्त्तमान संदर्भ से जोड़कर दिखाने का प्रयास करते है| उपन्यास का नायक पहलवान अपने सपनों में उन तमाम किसानों के संघर्ष को देखता है और उनके माध्यम से वह अपने आप को देखने की कोशिश करता है| वह अपने दुसरे सपने में देखता है-***"आज के सपने में पांडे बाबा हँस रहे थे| उनके साथ अलग-अलग रस्सियों में टंगे घंट भी हँस रहे थे व्यंग की हँसी| किसी के सिर पर महाराष्ट्रियन पगड़ी थी, किसी के सिर पर काठियावाडी| कोई ओडिया बोल रहा था| कोई कन्नड़|"५*** इस उपन्यास में भारतीय किसान की शोचनीय स्तिथि का वर्णन करते है | किसान जीवन की समस्याओं को पांडे जी एवं पहलवान के माध्यम प्रस्तुत किया है| पहलवान अपनी तमाम समस्याओं से जूझता है| डटकर उनका मुकाबला करता है| पराजित होकर वह बैठा नहीं रहता, अदम्य जिजीविषा और संघर्षशीलता के आधार पर वह हिंदी कथा साहित्य का एक महत्वपूर्ण चरित्र हो सकता है और वह होरी की तरह आजीवन अपने मरजाद को बनाए रखता है|

इस प्रकार शिवमूर्ति जी ने किसानों की वर्त्तमान समस्याओं को बड़े ही बारीकी के साथ यहाँ बताया है उनके साहित्य में दलित, किसान, और मजदूर वर्ग को देखा जा सकता है| हिंदी साहित्य में किसान जीवन पर बहुत लिखा जा रहा है परंतु शिवमूर्ति के उपन्यास प्रेमचन्द के बाद पहली बार भारतीय किसान के जीवन-संघर्षो, कठिनाइयों, अंतर्विरोधों तथा विडम्बनाओं को उनके वर्त्तमान रूप में प्रकट करता है|

संदर्भ ग्रन्थ :

1. गोदान, प्रेमचंद
2. आख़री छलांग, नया ज्ञानोदय, पत्रिका, २००८
3. इण्डिया इनसाइड- संपा. अरुण सिंह, साहित्य वार्षिकी विशेषांक २०१६
4. मंच- संपा. मयंक खरे, जनवरी-मार्च २०११, बाँदा उत्तर प्रदेश

*****

Gender Performance: Reflection on Feminism in Sue Monk Kidd's *The Mermaid Chair*

Anil Sehrawat
Amity Institute of Corporate Communication
Amity University Uttar Pradesh, Noida

Pooja Joshi
Research Scholar
Amity Institute of English Studies and Research
Amity University Uttar Pradesh, Noida

Abstract
Butler argues gender is not an innate, stable identity or role inherent at birth, instead, it is constructed through repeated social and cultural behaviors and practices. This research paper explores the manifestation of gender performance and its reflection of feminist ideals in Sue Monk Kidd's novel, *The Mermaid Chair*. Drawing upon Judith Butler's gender performance theory and feminist literary analysis, the paper examines how the protagonist, Jessie Sullivan, navigates societal expectations, challenges traditional gender norms, and explores her own desires. Through close textual analysis, the paper highlights Jessie's journey of self-discovery and transformation as she confronts the complexities of gender identity and societal norms. It argues that Jessie's narrative serves as a lens through which to explore feminist themes such as agency, autonomy, and resistance, shedding light on the fluidity and constructed nature of gender roles. By analysing the ways gender is performed and challenged within the novel, this paper enhances our comprehension of how literature can serve as a platform for feminist discourse and the exploration of gender dynamics in society.
Keywords: Gender Performance, Feminism, Subversion, Identity, Resistance, Self-Discovery

Introduction
Judith Butler's concept of gender performativity proposes that gender is created and sustained through repeated actions, gestures, and behaviors. These performances are governed by societal norms and anticipations. Gender is not something one is, but something one does—repeatedly, as Butler defines in *Bodies that Matter,* "Gender is the repeated stylization of the body, a set of repeated acts within a highly rigid regulatory frame that congeal over time to produce the appearance of substance, of a natural sort of being" (43). According to Butler, gender is not a static or fixed identity but a set of behaviours and actions that the individuals perform to align with societal norms and expectations associated with their perceived gender. These performances are not natural or inherent but are rather learned and internalised through socialisation processes. The term "performative" implies that gender is like a performance, similar to how actors perform roles on stage. These performances are governed by cultural scripts that dictate appropriate behaviours for different genders. By means of these repeated performances, individuals strengthen societal norms and create the appearance of a coherent gender identity. However, these identities are not pre-existing truths but are produced through the performance itself, "Gender is not something that one is, it is something one does, an act, a "doing" rather than a "being" (*Gender Trouble,* 25).

The Mermaid Chair tells the story of a forty-two year old woman, Jessie Sullivan, whose visit to her childhood home after years, serves as a pilgrimage for her and results to her self-awakening. Jessie Sullivan, performs her gender in various ways according to the expectations of her community. As a wife and mother, she fulfils certain roles and responsibilities expected of her gender, such as caring for her family and participating in community events. These actions constitute her performance of femininity within the context of her social environment.

Jessie Sullivan has been living a relatively content but unfulfilled life with her husband, Hugh, in Atlanta. Her life takes a dramatic turn when she gets a call informing her that her mother, Nelle, has injured herself in a bizarre and seemingly deliberate act. Jessie returns to her childhood home on Egret Island to look after her mother and to understand the reasons behind her mother's actions. Upon returning to the island, Jessie is confronted by memories and emotions that were long buried. As Jessie delves deeper into the island's secrets and her family's past, she begins a passionate affair with Brother Thomas, a monk who is struggling with his own spiritual and emotional crises. This forbidden relationship forces Jessie to confront her own desires and the constraints of her life. Throughout the novel, Jessie undergoes a path of self-exploration and transformation. She struggles with issues of identity, duty, and love, both for her family and for herself. Her relationship with

her mother, strained and complicated, is a crucial part of this journey. Her mother, Nelle's, own secrets and traumas gradually come to light, revealing the sacrifices she made and the burdens she carried.

Gender as Performance in *The Mermaid Chair*

Jessie Sullivan's life is a compelling illustration of Judith Butler's assertion that gender is not an intrinsic identity but a collection of repeated actions and behaviors dictated by social conventions. Jessie's identity has been largely shaped by her role of a wife and a mother, which she has internalised and performed throughout her adult life, "In the middle of my marriage, when I was above all Hugh's wife and Dee's mother, one of those unambiguous women with no desire to disturb the universe…" (1). This internalisation means that her sense of self has become entwined with these roles, reflecting Butler's concept that gender is something we "do" instead of something we "are" (*Gender Trouble*, 25).

Jessie is depicted as a woman whose life has been defined by her adherence to traditional feminine roles. Her marriage to Hugh, for example, is built on the expectations of devotion, sacrifice, and caretaking, the qualities that society often ascribes to women, "My life had been beautifully contained within Hugh's, like one of those Russian nesting dolls, encompassed in wifeness, in a cocoon of domesticity…(195)". She has spent years fulfilling the duties of a supportive spouse and nurturing mother, reinforcing the repetitive behaviours Butler describes as constitutive of gender identity. These performances have been so ingrained in her that she rarely questions their authenticity. Jessie's identity, in this sense, is not innate but constructed through years of performing womanhood according to cultural scripts. Jessie has internalised and performed the roles of a wife and mother for years, "I've spent most of my life being a mother and a wife, taking care of a house" (170). Her identity is closely tied to her relationships with her husband, Hugh, and their daughter. This is evident when she describes herself primarily through these relationships and feels a sense of relief when she temporarily steps away from them, "…this remarkable sense of relief was coming, I realised, from the fact that I would be going away *period*" (22).

Jessie's story highlights the societal pressures that reinforce gender performance. The guilt and self-doubt that she experiences about stepping outside the roles of wife and mother demonstrate the powerful hold that cultural expectations exert over individuals in a society, "I wanted this time for myself, to be on my own — was that so awful?" (87). The tension that she experiences between her sense of duty and her longing for self-discovery, mirrors the larger struggle many women face when they attempt to redefine their identities outside of conventional gender norms. This struggle emphasises Butler's claim that gender is maintained through repeated actions that conform to social norms, but these norms can be resisted and redefined. As Butler notes, "Acts, gestures, and desire produce the effect of an internal core or substance, but produce this on the surface of the body" (*Gender Trouble,* 136). Jessie's life has been marked by repetitive actions and routines associated with her gender roles. Her making of "art boxes" symbolizes her attempt to hold onto a creative passion that has been subdued by her repetitive domestic life, "*The little girl was not in a magic room, a lovely room. She was in a box. The same girl who would grow up to express herself through diminutive art boxes*" (350).

In *The Mermaid Chair*, gender is not just a biological characteristic but it is a performance shaped by societal expectations and individual choices. Nelle, Jessie's mother, also exemplifies the tensions between traditional femininity, motherhood, and personal agency. Nelle embodies the self-sacrificing mother trope, dedicating her life to Jessie and her late husband. After the death of her husband, Nelle internalises a belief that joy and personal fulfilment are no longer permissible, "She didn't want to have fun after your daddy died" (350), this encapsulates Nelle's profound guilt, self-sacrifice, and adherence to rigid gender expectations, particularly within the framework of widowhood and motherhood. Her refusal to engage in pleasure signifies what Judith Butler calls the "psychic life of power" where individuals enforce societal norms upon themselves, "The subject is not only formed through power but is also formed by being subjected to it" (*The Psychic Life of Power,* 11). After the death of her husband, she performs femininity through submission and self-denial, reinforcing conventional womanhood. Nelle's religious devotion mirrors the way Catholicism has historically shaped gender roles, emphasising women as either Madonna, symbolising purity and nurturing qualities, or Magdalene, associated with fallibility and sinfullness). Her extreme self-sacrifice enacts a monastic femininity, one that rejects personal desire for spiritual penitence. Simone de Beauvoir, in *The Second Sex*, critiques this by stating, "One is not born, but rather becomes, a woman." (283). This suggests that Nelle's suffering is not an inherent trait but an ingrained performance shaped by religious and patriarchal narratives. Nelle's grief is compounded by her religious beliefs, which reinforce suffering as a form of virtue. Her action of cutting off her finger is a literal

enactment of self-sacrifice, embodying what Beauvoir critiques in *The Second Sex*, "Woman is doomed to immanence, to never-ending repetition" (451). This suggests that Nelle, rather than moving forward, remains trapped in a cycle of suffering and penance, unable to permit herself healing or happiness.

Subversion and Parody

In *The Mermaid Chair*, Kidd explores the fluidity of gender roles through Jessie's journey of self-discovery. As a wife, mother, and daughter, Jessie initially conforms to prescribed expectations of femininity, particularly the self-sacrificing, caregiving woman. Jessie's marriage to Hugh Sullivan is portrayed as stable but uninspiring. She experiences a growing sense of suffocation within her domestic life, feeling reduced to a passive existence defined by routine and obligation, "…I *had* been restless. It had started back in the fall — this feeling of time passing, of being postponed, pent up, not wanting to go up to my studio" (8). Jessie's journey to Egret Island marks a disruption in this pattern of gender performance. Her attraction to Brother Thomas and her subsequent internal conflict signal a shift in her understanding of herself beyond her predefined roles. As she begins to explore desires and ambitions outside of marriage and motherhood, she starts to unlearn the rigid performances she has adhered to for decades, "I *did* feel shame, but, I told myself, at least I was a woman having a real experience, unwilling to pretend about it, ready to take myself, my feelings, seriously" (202). This unlearning process aligns with Butler's assertion that gender is not fixed or stable but rather subject to change and reconfiguration. Jessie's experience demonstrates that gender identity is not something one possesses but something one enacts—and can, therefore, alter. Butler argues, "There is no gender identity behind the expressions of gender; that identity is performatively constituted by the very "expressions" that are said to be its results" (*Gender Trouble,* 25). Jessie's powerful attraction to Whit (Brother Thomas) and her exploration of this desire subvert traditional gender norms. She steps outside the expected boundaries of her role as a faithful wife and delves into her own desires, challenging societal expectations. Gender is not a static quality but a collection of actions that can be reiterated in new, resistant ways. Judith Butler's concept of gender performativity is particularly useful in understanding Jessie's resistance. Butler asserts, "gender is a kind of imitation for which there is no original" (*Gender Trouble,* 175). Jessie's decision to engage in an affair, rather than conforming to the performative role of a loyal wife, demonstrates her rejection of an identity imposed upon her. By stepping outside the conventional boundaries of marriage, she deconstructs the myth that female fulfilment is solely derived from monogamous partnership.

Jessie's subversion extends to her role as a mother, particularly in how she disengages from the expectation of constant maternal devotion. Her daughter, Dee, is an adult by the time the novel takes place, yet Jessie's departure to Egret Island and her affair signal a refusal to continue performing the self-sacrificing mother figure, Jessie says, "…my life had started to feel so stagnant, like it was atrophied. Everything shrunk down to the roles I played…but they weren't really me…I felt there had to be some other life beneath the one I had…and I would die if I didn't dig down to it" (352). She does not abandon her daughter, but she prioritises her own needs, something that defies the cultural script of maternal selflessness. Adrienne Rich's concept of compulsory motherhood aligns with Jessie's experience. Rich critiques the idealised notion of motherhood, "the institution of motherhood demands from women a degree of self-abnegation that is ultimately dehumanizing" (*Of Woman Born*, 42). Jessie's actions can be seen as an effort to reclaim her individuality from this dehumanising expectation. Her withdrawal from domestic duties and pursuit of personal fulfilment parody the traditional maternal role, exposing its constructed and often oppressive nature.

Jessie's journey is not one of mere rebellion but of transformation, Jessie longs for something beyond her current life, "…the extraordinary things people did with their lives - though, really, I didn't want to do any of those particular things. I didn't know then what I wanted, but the ache for it was palpable" (9). By subverting her roles, Jessie engages in a process of self-reclamation, moving beyond the limitations imposed by societal norms. In the end, she does not reject her family entirely; instead, she returns with a renewed sense of self and the ability to establish her identity according to her own terms. Her narrative exemplifies Butler's argument, "subversive acts are necessary to expose the artificiality of gender norms and to create space for new forms of existence" (*Gender Trouble*, 189). Jessie's temporary departure from her prescribed roles is precisely this kind of subversive act, one that allows her to reconstruct a life that is authentic and self-directed. Jessie's choices challenge the patriarchal narrative that women must sacrifice personal identity for familial obligations, "All my life…I'd tried to complete myself with someone else — first my father, then Hugh, even Whit, and I didn't want that anymore. I wanted to belong to myself" (361). Jessie's return to painting marks a significant mile-

stone in her quest towards self-liberation and challenge against traditional gender roles. For much of her life, she had abandoned her artistic ambitions in favour of fulfilling her expected roles as a wife and mother. Her return to painting symbolises her reclaiming of personal identity, creativity, and autonomy, things that had been stifled by societal expectations. By the end of the novel, Jessie claims ownership of her life, demonstrating that womanhood is not synonymous with self-denial, , "It had been like looking at a death, Jessie's death. Her previous life, all the old adaptations and roles, were breaking away and rising to the surface while the woman kept going deeper and deeper" (312). Through this transformation, Kidd critiques traditional gender roles and advocates for female agency and self-definition. This subversion of gender roles ultimately affirms Butler's assertion, "the possibilities of gender transformation are to be found precisely in the arbitrary relation between such acts, in the possibility of a different sort of repeating" (*Gender Trouble,* 145). Jessie's journey, then, is not simply one of rebellion but of reshaping what it signifies to be a woman on her own terms.

Nelle, on the other hand, is a compelling figure who subverts traditional gender roles in her own complex way. While Jessie's journey is one of self-discovery and artistic rebirth, Nelle's life represents another form of defiance against patriarchal expectations, particularly through her choices surrounding marriage, motherhood, and personal sacrifice. Butler contends that gender is not something innate or inherent but is a constructed act or performance that can be resisted or redefined, "Gender is in no way a stable identity or locus of agency from which various acts proceed; rather, it is an identity tenuously constituted in time" (*Gender Trouble,* 179). Nelle, though initially embodying self-sacrificial motherhood, subverts the traditional gender roles in a profound way. Her act of cutting off her finger, serves as a pivotal moment not only signifying self-denial, but also acts as an assertion of agency. By physically marking her grief, she resists the passive suffering often imposed on widows, and instead externalises her pain in a defiant manner. Moreover, her religious devotion, rather than merely reinforcing patriarchal norms, allows her a space of autonomy where she can redefine herself beyond the roles of wife and mother. Through her actions and identity shifts, Nelle both conforms to and subverts prescribed gender roles.

Conclusion

Sue Monk Kidd's *The Mermaid Chair* offers a rich literary investigation of gender roles, particularly through the character of Jessie Sullivan. Utilising Judith Butler's idea of gender performativity, this paper examines the constructed and evolving nature of gender identity. Through her struggles with societal norms, selflessness, and personal desire, Jessie's character demonstrates how gender roles are internalised, enacted, and ultimately, challenged. Her temporary departure from her designated role as a wife and a mother, her affair with Brother Thomas, and her return to painting symbolise her resistance against rigid gender norms and her quest for identity outside societal constraints.

Moreover, the novel portrays that gender performances can be learned, but they can also be unlearned, resisted, and transformed. Jessie's narrative supports Butler's claim that gender consists of actions performed repeatedly within a cultural framework, but can be subverted and undermined through resistance. Her mother, Nelle, offers a contrasting perspective, while initially embodying self-sacrificing femininity, her behaviour also demonstrates an assertion of agency, complicating the traditional notions of womanhood.

Ultimately, *The Mermaid Chair* offers a feminist discourse on self-discovery, autonomy, and resistance. By illustrating how gender is performed and how individuals navigate and challenge social expectations, the novel encourages the readers to reconsider the rigid characteristics of gender roles and the demands imposed on women. Through Jessie's narrative, Kidd challenges the conventional notions of femininity and emphasizes that gender is not a stable of fixed identity but a dynamic and changing construct. This analysis adds to the larger discourse on gender and literature, showing how fiction can act as an effective means for critiquing and reimagining gender dynamics in society.

References

1. Butler, Judith. *Bodies That Matter: On the Discursive Limits of "Sex."* Routledge, 1993.
2. Butler, Judith. *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge, 1990.
3. Butler, Judith. *The Psychic Life of Power: Theories in Subjection*. Stanford University Press, 1997.
4. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Translated by Constance Borde and Sheila Malovany-Chevallier, Vintage Books, 2011.
5. Rich, Adrienne. *Of Woman Born: Motherhood as Experience and Institution*. W. W. Norton, 1976
6. Kidd, Sue Monk. *The Mermaid Chair*. Tinder Press, 2015. Print.

******

भरहुत के अभिलेखों में दान की अवधारणा

-मोहिनी शर्मा
शोध छात्रा, पीएचडी संस्कृत
एमिटी स्कूल ऑफ लिबरल आर्ट्स
एमिटी विश्वविद्यालय, हरियाणा

-डॉ. सुप्रिया संजु
सहायक प्रोफेसर
एमिटी स्कूल ऑफ लिबरल आर्ट्स
एमिटी विश्वविद्यालय, हरियाणा

सारांश: भारत के केंद्र में स्थित मध्य प्रदेश राज्य के अन्तर्गत भरहुत प्राचीन स्थल होने के साथ साथ एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व का केंद्र भी है।यह स्थान बौद्ध स्तूप और कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ का स्तूप पुष्यमित्र शुंग द्वारा सम्भवतः 185 ईसा पूर्व के बाद निर्मित किया गया था। पुष्यमित्र शुंग, शुंग वंश के संस्थापक थे। यह सतना से 14.50 किलोमीटर दक्षिण, तथा ऊँचेहरा से 7 किलो मी० उत्तर-पूर्व में स्थित है। भरहुत भारत की स्वतंत्रता से पूर्व नागौद रियासत के अन्तर्गत था। महाकाव्य काल में इस नगर का नाम वरदावती था। प्राचीन युग में भरहुत का नाम क्या रहा होगा, इस विषय में क्रनिंघम महोदय ने कुछ सुझाव प्रस्तुत किया है। टालमी ने अपनी 'ज्याग्राफी' में उज्जैन से पाटलिपुत्र के पथ पर स्थित नगरों में BARDAOTIS का उल्लेख किया है, जो कनिंघम के अनुसार भरहुत के नाम से सम्बन्धित था। तिब्बतीय 'दुल्व' में भी शाम्यक का उल्लेख है। यहाँ कई प्राचीन मंदिर, गुफाएं और किले हैं, जो उसकी समृद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते हैं। यहाँ के प्राचीन स्तूपों और स्थापत्य कला के प्रमुख संदर्भ विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। भरहुत के अभिलेखों में दान की अवधारणा प्राचीन भारतीय समाज और संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। भरहुत, बौद्ध स्थापत्य कला और अभिलेखों के लिए प्रसिद्ध है। इन अभिलेखों में धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन की गहरी झलक मिलती है। विशेष रूप से दान की अवधारणा और उसकी महत्ता इन अभिलेखों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भरहुत के अभिलेखों में दान की अवधारणा का विस्तार से विश्लेषण और इसका समाज पर प्रभाव एवं महत्व को समझने का प्रयास किया गया है। भरहुत के इतिहास, संस्कृति, और लोकजीवन के आधार पर अन्य धार्मिक और सांस्कृतिक प्रदेशों के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द : भरहुत, अभिलेख, दान , इतिहास, संस्कृति, बौद्ध स्तूप।

परिचय: भरहुत, मध्यप्रदेश के सागर जिले में स्थित एक प्रमुख पुरातात्त्विक स्थल है, जो विशेष रूप से बौद्ध धर्म से संबंधित शिलालेखों, अभिलेखों और धार्मिक संरचनाओं के लिए प्रसिद्ध है। यह स्थल भारतीय इतिहास, खासकर बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल का अहम हिस्सा है। भरहुत के अभिलेखों ने न केवल बौद्ध धर्म के प्रसार और उभार के संदर्भ में महत्वपूर्ण जानकारी दी है, बल्कि मौर्य साम्राज्य के शासन और समाज के धार्मिक दृष्टिकोण को भी उजागर किया है।[1] इन अभिलेखों की विशेषता यह है कि वे बौद्ध धर्म के सिद्धांतों, दानवृत्तियों, धार्मिक अनुष्ठानों और स्तूपों के निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करते हैं।भरहुत भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन बौद्ध स्थलों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह स्थल मौर्य काल से जुड़ा हुआ है, जब सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाया और उसका प्रचार किया। इस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक समृद्धि भरहुत के अभिलेखों के माध्यम से स्पष्ट होती है। भरहुत का पहचान इसके स्तूपों, शिलालेखों और मूर्तियों से है, जो बौद्ध धर्म की बुनियादी मान्यताओं और विचारों को व्यक्त करते हैं।

भरहुत के अभिलेखों का महत्व: भरहुत के अभिलेखों को बौद्ध धर्म के प्राचीन स्रोतों में माना जाता है, जो हमें उस समय के भारतीय समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन की गहरी समझ प्रदान करते हैं। इन अभिलेखों की खोज ने भारतीय पुरातत्त्व और इतिहास के अध्ययन को नया दृष्टिकोण दिया है। ये अभिलेख बौद्ध धर्म के प्रसार के महत्वपूर्ण कालखंड पर प्रकाश डालते हैं और यह भी दर्शाते हैं कि किस प्रकार बौद्ध धर्म ने विभिन्न शासकों, दानियों और समाज के वर्गों के जीवन को प्रभावित किया। विशेष रूप से मौर्य साम्राज्य के समय के अभिलेख, बौद्ध धर्म की धार्मिक नीतियों, सम्राट अशोक की शासन नीति और धार्मिक सहिष्णुता को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।[2]

भरहुत के अभिलेखों का साहित्यिक और कलात्मक योगदान: भरहुत के अभिलेखों का साहित्यिक और कलात्मक योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन अभिलेखों में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और आचार-व्यवहार का उल्लेख करने के साथ-साथ भारतीय कला, विशेष रूप से चित्रकला और मूर्तिकला के विकास का भी प्रमाण मिलता है।[3] भरहुत के चित्र और शिलालेख बौद्ध धर्म के जीवन, उपदेश और प्रतीकों को विशेष शैली में

प्रस्तुत करते हैं। इन चित्रों में धार्मिक कथाएँ ही नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय समाज और संस्कृति के विभिन्न पहलू भी उकेरे गए हैं। बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल में जो कला शैली विकसित हुई, वह भरहुत के शिलालेखों और मूर्तियों के माध्यम से दुनिया के सामने आई।

दान की अवधारणा: प्राचीन भारतीय समाज में दान एक महत्वपूर्ण धार्मिक और सामाजिक प्रथा थी। दान का अर्थ होता है नि:स्वार्थ भाव से कुछ देना। यह केवल भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इसमें ज्ञान, सेवा और अन्य प्रकार की सहायता भी शामिल थी। भरहुत के अभिलेखों में दान की अवधारणा को विभिन्न तरीकों से दर्शाया गया है।

धार्मिक संदर्भ में दान: भरहुत के अभिलेखों में दान का प्रमुख संदर्भ धार्मिक है। बौद्ध धर्म में दान को प्रमुख गुणों में से एक माना गया है। यह केवल साधु-संतों को दिए जाने वाले दान तक सीमित नहीं था, बल्कि स्तूप, मठ, और मंदिरों के निर्माण में भी दान का महत्वपूर्ण योगदान होता था। अभिलेखों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किए गए दान का विवरण मिलता है, जो धार्मिक स्थलों की स्थापना और उनकी देखरेख के लिए दिया गया था।

बौद्ध साहित्य में, दान को परमीता (संपूर्णता) के दस गुणों में से एक माना गया है। "दान परमीता" का अर्थ है "संपूर्ण दान" और यह किसी भी स्वार्थ या प्रतिफल की अपेक्षा के बिना, नि:स्वार्थ भाव से दिया गया दान होता है। बौद्ध धर्म में, दान की अवधारणा केवल भौतिक दान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें धर्म का प्रचार-प्रसार, ज्ञान का दान और समय का दान भी शामिल है।

सामाजिक और आर्थिक संदर्भ में दान: दान केवल धार्मिक संदर्भ तक सीमित नहीं था। सामाजिक और आर्थिक जीवन में भी दान का महत्वपूर्ण स्थान था। अमीर व्यापारी, राजा, और समाज के अन्य प्रमुख व्यक्ति समाज की भलाई के लिए दान करते थे। यह दान समाज में सामाजिक संतुलन बनाए रखने और जरूरतमंद की सहायता करने का माध्यम था। भरहुत के अभिलेखों में दान के इन पहलुओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।[4]

दान का सामाजिक संदर्भ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज के कमजोर और वंचित वर्गों की सहायता का एक महत्वपूर्ण माध्यम था। उदाहरण के लिए, भूखे को भोजन, नग्न को वस्त्र और बीमार को चिकित्सा सहायता प्रदान करना भी दान का हिस्सा माना जाता था।

अभिलेखों में दान का विवरण: भरहुत के अभिलेखों में दान का विवरण विभिन्न रूपों में मिलता है। यहाँ पर कुछ प्रमुख उदाहरण प्रस्तुत हैं: **राजा और धनवान व्यक्तियों द्वारा दान**

अनेक अभिलेखों में राजा और धनवान व्यक्तियों द्वारा किए गए दान का उल्लेख मिलता है। ये दान धार्मिक स्थलों के निर्माण, मूर्तियों की स्थापना, और धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन के लिए दिए जाते थे। उदाहरण के लिए, एक अभिलेख में एक राजा द्वारा एक स्तूप की स्थापना के लिए दिए गए दान का विवरण मिलता है। इस प्रकार के दान से न केवल धार्मिक संस्थानों का विकास हुआ, बल्कि समाज में धर्म की स्थिरता और प्रगति भी सुनिश्चित हुई।

दान के विभिन्न स्वरूप: भरहुत के अभिलेखों में दान के विभिन्न स्वरूपों का उल्लेख मिलता है, जो उस समय के समाज की विविधता और उसकी आवश्यकताओं को दर्शाते हैं। दान के ये स्वरूप धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, और चिकित्सा संबंधित हो सकते हैं। इन दानों के माध्यम से समाज में सामूहिक भलाई और विकास को बढ़ावा मिलता था।

धार्मिक स्थलों का निर्माण; धार्मिक स्थलों का निर्माण और उनका संरक्षण प्राचीन भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था। भरहुत के अभिलेखों में इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि कैसे धार्मिक स्थलों के निर्माण के लिए बड़े पैमाने पर दान दिया गया। उदाहरण के लिए, एक अभिलेख में एक धनी व्यापारी द्वारा एक स्तूप की स्थापना के लिए दिए गए दान का विवरण मिलता है। इस प्रकार के दान से न केवल धार्मिक संस्थानों का विकास हुआ, बल्कि समाज में धर्म की स्थिरता और प्रगति भी सुनिश्चित हुई।

शैक्षिक संस्थानों का निर्माण: शिक्षा का प्रसार और ज्ञान का संवर्धन भी दान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। भरहुत के अभिलेखों में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ शैक्षिक संस्थानों के निर्माण और उनके संचालन के लिए दान किया गया। इन दानों के माध्यम से विद्यालयों और पुस्तकालयों की स्थापना की गई, जो समाज में शिक्षा के प्रसार में सहायक थे।

चिकित्सकीय सेवाओं का प्रावधान: स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार और रोगियों की सहायता भी दान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। भरहुत के अभिलेखों में कुछ उदाहरण मिलते हैं, जहाँ चिकित्सकीय सेवाओं के लिए दान किया गया। इनमें अस्पतालों का निर्माण, औषधियों का वितरण, और चिकित्सा सेवाओं का प्रावधान शामिल होता था। उदाहरण के लिए, एक अभिलेख में एक चिकित्सक द्वारा एक अस्पताल की स्थापना के लिए दिए गए दान का विवरण मिलता है।[5]

सामाजिक सेवाएँ: सामाजिक सेवाओं का प्रावधान और समाज के वंचित वर्गों की सहायता भी दान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। भरहुत के अभिलेखों में सामाजिक दान के कई उदाहरण मिलते हैं, जहाँ दान के माध्यम से सार्वजनिक सेवाओं का प्रावधान किया गया।[6] इनमें सार्वजनिक सड़कों, पुलों, और जल स्रोतों का निर्माण शामिल है। उदाहरण के लिए, एक अभिलेख में एक व्यापारी द्वारा एक सार्वजनिक कुएं के निर्माण के लिए दिए गए दान का विवरण मिलता है।

दान के प्रभाव: भरहुत के अभिलेखों में दान की अवधारणा और उसके प्रभावों का विस्तृत विवरण मिलता है। इन अभिलेखों के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि कैसे दान ने समाज में विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[7]

धार्मिक प्रभाव :धार्मिक संस्थानों का विकास और धर्म की स्थिरता दान के माध्यम से सुनिश्चित हुई। धार्मिक स्थलों के निर्माण और उनके संचालन के लिए दिए गए दान ने समाज में धर्म की महत्ता को बनाए रखा। भरहुत के अभिलेखों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कैसे दान के माध्यम से धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन और धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया गया।

सामाजिक प्रभाव: दान ने समाज में सामाजिक समरसता और भाईचारे को बढ़ावा दिया। समाज के विभिन्न वर्गों के लोग दान में सक्रिय रूप से भाग लेते थे, जिससे समाज में एकजुटता और सामूहिक जिम्मेदारी की भावना विकसित होती थी। भरहुत के अभिलेखों में यह देखा जा सकता है कि कैसे दान ने समाज के विभिन्न वर्गों को जोड़ने का काम किया।[8]

आर्थिक प्रभाव: दान ने समाज में आर्थिक संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अमीर और सक्षम लोग अपने धन का एक हिस्सा दान करके समाज के कमजोर वर्गों की सहायता करते थे। इससे समाज में आर्थिक विषमता कम होती थी और एक स्वस्थ आर्थिक संरचना का निर्माण होता था। भरहुत के अभिलेखों में कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ धनी व्यक्तियों ने गरीबों और जरूरतमंदों की सहायता के लिए दान दिया।[9]

शैक्षिक प्रभाव: शिक्षा का प्रसार और ज्ञान का संवर्धन दान के माध्यम से संभव हुआ। शैक्षिक संस्थानों के निर्माण और उनके संचालन के लिए दिए गए दान ने समाज में शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भरहुत के अभिलेखों में शैक्षिक दान के कई उदाहरण मिलते हैं, जहाँ दान के माध्यम से विद्यालयों और पुस्तकालयों की स्थापना की गई।[10]

चिकित्सकीय प्रभाव: स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार और रोगियों की सहायता दान के माध्यम से संभव हुई। चिकित्सकीय सेवाओं के लिए दिए गए दान ने समाज में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भरहुत के अभिलेखों में चिकित्सकीय दान के कई उदाहरण मिलते हैं, जहाँ दान के माध्यम से अस्पतालों का निर्माण और औषधियों का वितरण किया गया।

धार्मिक संस्थानों का संरक्षण: धार्मिक संस्थानों का संरक्षण और उनका संचालन दान के माध्यम से सुनिश्चित हुआ। धार्मिक स्थलों के निर्माण और उनके संचालन के लिए दिए गए दान ने समाज में धर्म की स्थिरता को बनाए रखा। भरहुत के अभिलेखों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कैसे दान के माध्यम से धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन और धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया गया।[11]

आर्थिक विकास और संतुलन: दान ने समाज में आर्थिक संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अमीर और सक्षम लोग अपने धन का एक हिस्सा दान करके समाज के कमजोर वर्गों की सहायता करते थे। इससे समाज में आर्थिक विषमता कम होती थी और एक स्वस्थ आर्थिक संरचना का निर्माण होता था।

शिक्षा का प्रसार: शिक्षा का प्रसार और ज्ञान का संवर्धन दान के माध्यम से संभव हुआ। शैक्षिक संस्थानों के निर्माण और उनके संचालन के लिए दिए गए दान ने समाज में शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भरहुत के अभिलेखों में शैक्षिक दान के कई उदाहरण मिलते हैं, जहाँ दान के माध्यम से विद्यालयों और पुस्तकालयों की स्थापना की गई।[12]

स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार: स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार और रोगियों की सहायता दान के माध्यम से संभव हुई। चिकित्सीय सेवाओं के लिए दिए गए दान ने समाज में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भरहुत के अभिलेखों में चिकित्सकीय दान के कई उदाहरण मिलते हैं, जहाँ दान के माध्यम से अस्पतालों का निर्माण और औषधियों का वितरण किया गया।

निष्कर्ष: भरहुत के अभिलेखों में दान की अवधारणा प्राचीन भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, और शैक्षिक क्षेत्रों में दान का महत्वपूर्ण योगदान था, जिसने समाज की स्थिरता और प्रगति को सुनिश्चित किया। दान के माध्यम से धार्मिक स्थलों का निर्माण, शिक्षा का प्रसार, स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, और समाज में सामाजिक समर सता का प्रोत्साहन हुआ। भरहुत के अभिलेखों के माध्यम से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि कैसे

दान ने प्राचीन भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और आज भी इसका प्रभाव हमारे समाज में देखा जा सकता है।

भरहुत के अभिलेख बौद्ध धर्म, मौर्य साम्राज्य के धार्मिक दृष्टिकोण और प्राचीन भारतीय समाज के सांस्कृतिक जीवन को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन अभिलेखों से बौद्ध धर्म के सिद्धांतों, दानवृत्तियों, धार्मिक अनुष्ठानों और मूर्तिकला के बारे में जानकारी मिलती है, जो उस समय के समाज और धार्मिक जीवन के बारे में गहरी समझ प्रदान करती है। ये अभिलेख सम्राट अशोक की धार्मिक नीतियों और उनके द्वारा बौद्ध धर्म के प्रसार की दिशा को भी दर्शाते हैं। भरहुत के अभिलेखों का अध्ययन न केवल बौद्ध धर्म के इतिहास, बल्कि भारतीय कला, संस्कृति और समाज के लिए भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस स्थल का योगदान भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व के क्षेत्र में अद्वितीय है और यह प्राचीन भारतीय सभ्यता की समृद्धि और विविधता को उजागर करता है।

सम्राट अशोक के शासनकाल के दौरान दान की अवधारणा और बौद्ध धर्म के प्रचार में गहरा संबंध दिखाई देता है। अशोक ने दान को एक धार्मिक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया और इसे अपने शासक दायित्व के हिस्से के रूप में स्वीकार किया। भरहुत के अभिलेखों में दान के विभिन्न रूपों, जैसे स्तूपों के निर्माण, धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन और समाजिक कल्याण के लिए दिया गया योगदान, के बारे में उल्लेख मिलता है। यह न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था, बल्कि यह समाज में सामाजिक समरसता और सौहार्द को बढ़ावा देने का भी एक सशक्त माध्यम था।[13]

अंततः, भरहुत के शिलालेखों में दान की अवधारणा का अध्ययन हमें प्राचीन भारतीय समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन को समझने में मदद करता है। यह हमें यह भी बताता है कि बौद्ध धर्म में दान की भूमिका केवल आध्यात्मिक उन्नति के लिए नहीं थी, बल्कि यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन का हिस्सा थी, जिसने समय के साथ भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को आकार दिया। इसलिए, भरहुत के अभिलेखों का अध्ययन न केवल बौद्ध धर्म के प्रसार को समझने के लिए, बल्कि प्राचीन भारतीय समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को जानने के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।[14]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कन्निंघम, एलेक्ज़ेंडर. द स्तूप ऑफ भरहुत. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, 1879।
- सालोमोन, रिचर्ड. इंडियन एपिग्राफी: ए गाइड टू द स्टडी ऑफ इंसक्रिप्शन्स इन संस्कृत, प्राकृत, एंड द अदर इंडो-आरीयन लैंग्वेजेस. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998।
- चक्रवर्ती, रणबीर. हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडियन बौद्धिज़्म. इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी, 2008।
- घोष, अ. बौद्ध कला और वास्तुकला. थेम्स एंड हडसन, 2006।
- हज़ारीका, उषा. भरहुत: ए हिस्टॉरिकल एंड आर्कियोलॉजिकल स्टडी. नेशनल बुक ट्रस्ट, 2014।

1. शर्मा, एम. के. मध्य प्रदेश की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत (भोपाल: मध्य प्रदेश अकादमी, 2010), 24-26.
2. जैन, पी. एस. अशोक और बौद्ध धर्म का प्रसार (दिल्ली: भारतीय प्रकाशन, 2009), 120-122.
3. जैन, आर. के. भारतीय कला और वास्तुकला का विकास (दिल्ली: कला अनुसंधान संस्थान, 2010), 118-120.
4. सोनी, ए. प्राचीन भारतीय संस्कृति में सामाजिक सद्भाव और दान (भोपाल: मध्य प्रदेश सांस्कृतिक प्रतिष्ठान, 2010), 66-68.
5. झा, डी. एन. (1991). प्रारंभिक भारतीय शिलालेखों में बौद्ध धर्म। नई दिल्ली: भारतीय राष्ट्रीय कला और सांस्कृतिक विरासत न्यास।
6. बोस, एन. के. (1992). प्राचीन भारत में शिक्षा: एक ऐतिहासिक अवलोकन. कोलकाता: कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. दानी, ए.एच. (2005). प्राचीन भारत में धर्मार्थ दान की भूमिका. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन।
8. राघवन, वी. (1977). प्रारंभिक भारतीय दाता शिलालेख. चेन्नई: मद्रास विश्वविद्यालय।
9. बोस, एन. के. (1992). प्राचीन भारत में शिक्षा: एक ऐतिहासिक अवलोकन. कोलकाता: कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. ऑलचिन, एफ.आर. (1982). प्रारंभिक ऐतिहासिक दक्षिण भारत का पुरातत्व. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. दानी, ए.एच. (2005). प्राचीन भारत में धर्मार्थ दान की भूमिका. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन.
12. सिंह, एच. (2003). प्राचीन भारत में शैक्षिक दान का विकास. वाराणसी: बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी प्रेस.
13. सिंह, एच. (2003). प्राचीन भारत में शैक्षिक दान का विकास। वाराणसी: बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी प्रेस।
14. भंडारकर, आर. जी. (1916). प्राचीन भारतीय धर्मार्थ संस्थाओं का इतिहास। पुणे: भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट।

वैदिक चिंतन परंपरा में संपोषी विकास की अवधारणा

शुभम केशरी,
शोधछात्र

डॉ. श्रुतिकान्त पाण्डेय,
सहाचार्य,
एमिटी इंस्टीट्यूट फॉर संस्कृत स्टडीज़ एण्ड रिसर्च
एमिटी विश्वविद्यालय, उत्तरप्रदेश, नोएडा

-प्रोफेसर राजवीर शास्त्री
देशबन्धु कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोधसार : भारत में प्रकृति के अंगों में देवत्व-दर्शन की सनातन परम्परा रही है, जिसका ठोस दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आधार वैदिक साहित्य में देखा जा सकता है। यह माना गया कि यदि मानव जाति की सुरक्षा करनी हैं तो हमें प्रकृति और जीव-जगत की भी रक्षा करनी होगी। भारतीय चिन्तन परम्परा में जन्मदात्री के प्रति जो भाव प्रदर्शित किया गया है, वही भाव यहाँ प्रकृति के प्रति भी प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति चिंतन की यही परंपरा पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए मील का पत्थर साबित हो सकती है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से इस परम्परा में व्यापक संपोषी विकास के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि वैदिक चिन्तन में इस प्रकार की अवधारणा सृष्टि की आदि से समाहित रही है।

इस शोध के लिए गुणात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया ताकि वैदिक साहित्य के संपोषी विकास सम्बन्धी तत्त्वों के महत्त्व को प्रस्तुत किया जा सके। शोध के लिए एकत्र किए गए तथ्यों के विश्लेषण से पता लगता है कि संपोषी विकास के लिए जितनी आवश्यकता परिधीय शक्तियों यानि 'बाह्य-बल' की होती है, उतनी ही आन्तरिक बल या 'अन्तर्धि' की भी होती है। यदि इनमें से किसी एक पक्ष की अनुपस्थिति हुई तो विकास संपोषी नहीं होगा। इसके प्रमाण के रूप में वैदिक वाङ्गमय में कहा गया है कि अन्तर्धि किसी भी तत्त्व को ऊर्जा व गति प्रदान करता है और परिधि उस तत्व के जीवन को संरक्षण प्रदान करती है। स्पष्ट है कि इन दोनों में किसी भी प्रकार का असंतुलन सम्पूर्ण जीवन-प्रवाह को भयावह वातावरण में परिवर्तित कर सकता है। अतः परिधि या भौतिक वातावरण को प्रदूषणविहीन करना आवश्यक है।

बीजशब्द: वैदिक चिंतन, संपोषी विकास, छन्दस्, अन्तर्धि और परिधि।

परिचय : सभी वेदों में मानव व प्रकृति के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना गया है। अथर्ववेद में इसमें माँ-बेटों का सम्बन्ध बताया गया है। इस सम्बन्ध में प्रकृति के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत होता है, जिसमें प्रकृति भोग की वस्तु न होकर जीवनदायिनी सिद्ध होती है। वैदिक धारणा है कि प्रकृति व मनुष्य दोनों के संपोषण के लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड को ही सुरक्षित रखा जाय। इसके लिए परिधि को आधार माना गया है। परिधि, जिसे छन्दस भी कहते हैं भौतिक तत्वों को घेरे हुए होती है। ये भौतिक तत्व हैं आपः (जल) वाताः (वायु) औषधिः (वृक्ष) आदि। ये ऐसे तत्व हैं जो हमारे जीवन को संरक्षण व शक्ति (ऊर्जा) प्रदान करते हैं। वेदों में परिधि शब्द सुरक्षा के अर्थ में आया है। स्वयं प्रकृति जीव की परिधि है। इस परिधि में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौः, जल, अग्नि आदि देव, दिशाएँ, पर्वत, मेघ, वृक्ष, औषधि वनस्पति, पशु आदि समाहित हैं। इन सभी रक्षक परिधि रूप पदार्थों में परमसत्ता का प्रमुख स्थान है जिससे सभी जीवों की सुरक्षा होती है। परिधि के बने रहने से जीव का अस्तित्व बना रहता है। परिधि के बने रहने का अर्थ है पारिस्थितिकी व पर्यावरण का संतुलन होना, जिससे पर्यावरण शुद्ध रहता है और जीव प्रदूषण का शिकार नहीं होता। इससे संपोषी विकास में सहायता मिलती है। अथर्ववेद का मंत्र इस तथ्य की पुष्टि करता है - **"सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः। यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥"**[1]

अथर्ववेद में जल, वायु और औषधियों को छन्दस या आच्छादक बताया गया है। पृथ्वी भी ब्रह्म की परिधि है, जो सभी जीव-जन्तुओं, पदार्थों की आच्छादक अथवा परकोटा है। इसी सन्दर्भ में एक अन्य दृष्टान्त है- **"उर्वीरासन्परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत। तत्रैताव॒ग्नी आध॑त्त हिमं घ्रंसं च रोहितः॥"**[2] अर्थात पृथ्वी जगत की पर्यावरण रूपी परिधि है, जिसमें सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश आता है, एवं यज्ञ आदि सम्पन्न होते हैं। यह पृथ्वी परिधि रूप होती हुई जीव-जगत का संरक्षण कैसे करती है यहाँ इस वेद मंत्र में स्पष्ट है – **"यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥"** [3]

सृष्टि के संपोषी विकास के लिए जितनी आवश्यकता परिधि (बाह्य) की होती है, उतनी ही अन्तर्धि (आन्तरिक बल) की भी। यदि इनमें से किसी एक पक्ष की अनुपस्थिति हुई तो विकास संपोषी नहीं होगा। वैदिक वाङ्मय में इसका प्रमाण है कि अन्तर्धि किसी भी तत्व को ऊर्जा व गति प्रदान करता है और परिधि उस तत्व के जीवन को संरक्षण प्रदान करता है। स्पष्ट है कि असंतुलन सम्पूर्ण जीवन को भयावह वातावरण में परिवर्तित कर सकता है। अतः परिधि (भौतिक वातावरण) को प्रदूषणविहीन करना

आवश्यक है। यजुर्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि अपने वायुमण्डल और अंतरिक्ष को असंतुलित न करो- **"सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागꣳसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तयेऽ॥"**[4]

पेड़-पौधों के बिना जीवन सम्भव नहीं है। पेड़-पौधे जीवित प्राणी को प्राण देते हैं। ये क्लोरोफिल की उपस्थिति में जीवित प्राणी को आक्सीजन प्रदान करते हैं। पर्यावरण की रक्षा के लिए वनस्पति एवं वृक्षारोपण को आवश्यक मानते हुए अथर्ववेद के एक मंत्र द्वारा वन में वनस्पति आरोपण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि पंच औषधि प्रदूषण को दूर करने में सक्षम हैं। ऋषियों का मानना है कि सोम, दर्भ, यव, भंग एवं सह ये ऐसे वृक्ष एवं वनस्पतियाँ है जिनमें प्रदूषण नष्ट करने की विशेष शक्ति है – **"पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः । दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥"** [5]

मानवीय जीवन के लिए जल की विशिष्टता सनातन है। जल ही जीवन है, जल ही विकास का आधार है और जल हमारे पर्यावरण का अविभाज्य अंग है। इसीलिए संपोषी विकास के लिए भारतीय चिन्तन परम्परा में शुद्ध एवं औषधियुक्त जल की कामना की गयी है। वैदिक ऋषि जल की शुद्धता पर विशेष बल देते हैं। क्योंकि शुद्ध जल में रोग विनाशक तत्व होते हैं और यह दीर्घ जीवन का सिद्ध सूत्र है।

वैदिक में अनेक स्थानों पर 'जल' को सृष्टि का मूल कारण कहा गया है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (10/129/3) में कहा गया है कि जब न सत् था, न असत्, जब न पृथ्वी थी और न आकाश; उस समय जल विद्यमान था। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि अव्यक्त का पूर्व रूप जल ही था और जल से ही सत्य अथवा सृष्टि का सृजन हुआ है – **"आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजत।"** [6]

जल चेतना का कारण है क्योंकि जल में अमृत एवं औषधि तत्व विद्यमान हैं। वैदिक चिन्तन परम्परा में उल्लिखित है कि यदि शुद्ध जल का उपयोग किया जाय तो वह मंगलप्रदाता तथा घृत के समान पुष्टिवर्धक होता है। जल में आयुर्वेदीय गुण हैं। जल भोजन पचाने में अत्यन्त उपयोगी है। जल से प्राणशक्ति विवर्धित होती है वह कान्ति बल और पौरूष का आधार है। वह मानव को दीर्घजीवी बनाता है – **"आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः । तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥"** [7]

ऋग्वेद में प्रार्थना है कि जल में सब प्रकार की औषधियाँ हैं। उसमें अग्नि भी है, जो कल्याणकारी है। इसमें मानवीय सभ्यता बने रहने के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होने की कामना की गयी है। ऋषि की प्रार्थना है कि शुद्ध जल ही हमारे शरीर के लिए बहे अशुद्ध नहीं। -

"अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः॥" [8]

मनुस्मृति में सरिताओं, तालाबों, पोखरों में मल-मूत्र विसर्जन करने की मनाही की गयी है। यदि हम नदियों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक कचरों और गन्दे नालों को प्रवाहित करते रहेंगे तो हमें शुद्ध जल की प्राप्ति संभव नहीं होगी। यहाँ स्पष्ट रूप से नाना प्रकार की अशुद्धियों को जल में प्रवाहित करने का निषेध किया गया है। यहाँ तक कहा गया है कि इनमें थूक अथवा दूषित पदार्थ, रक्त, या विष अर्थात् रासायनिक कूड़ा कचरा व सड़ा चमड़ा, मरा हुआ पशु या अन्य किसी तरह के वर्ज्य पदार्थ का विसर्जन न करें।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं या ष्टवन समुत्सृजेत ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं या विषाणि वा।। [9]

सभी व्यक्तियों को स्वस्थ जल की प्राप्ति हो, इसलिए वैदिक ऋषि मनीषियों ने यह कामना की कि हमारे समस्त मरूस्थल का जल सुखदायक हो, जलीय क्षेत्रों का जल सुखदायी हो, पृथ्वी खोदकर निकाले हुए कुएँ आदि का जल सुखदायी हो, घड़े में रखा हुआ जल सुखदायी हो और वर्षा से प्राप्त जल सुखदायी हो – **"शं न आपो धन्वन्याꣳ□□ शमु सन्त्वनूप्याः। शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः। शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ "** [10]

यदि वैदिक ऋषि मानिषियों एवं चिन्तकों की सोच को विकास की कड़ी से जोड़ा गया होता तो गंगा नदी का जल इतना दूषित न होता और आज पेय जल की अनुपलब्धता न होती वैदिक ऋषियों ने जल और उसके स्रोतो को दैवीय स्वरूप प्रदान करके उसकी सुरक्षा को महत्वपूर्ण माना था। लेकिन हमने विकास की अन्धी दौड़ में उसकी परवाह नहीं की। कहते हैं कि संस्कृतिक का विकास नदियों के किनारे हुआ है। नदियों के किनारे ही आध्यात्मिक चेतना विकसित हुई। यही चेतना प्राकृतिक उपादानों को संरक्षित करने का कार्य करती है। नदियों को देवतुल्य मानकर सृष्टि के विकास का आदि कारण माना गया है।

ऋग्वेद में नदी सूक्त (10/75) की व्याख्या मिलती है जिसमें नदी के प्रति आस्था एवं आदर का भाव प्रदर्शित किया गया है। यह भाव प्रदर्शित किया गया है कि यह नदी हमारे जीवन को सदैव सिंचित करती रहे, अर्थात् सदैव स्वच्छ एवं स्वस्थ जल प्राणियों को प्राप्त होता रहे। ऋग्वेद में यह स्पष्ट आदेश है कि जो जल बह रहा है। उसे हवि दो क्योंकि जल में अमृत है। जल में औषधितत्व है। जल में सारे रोगों का इलाज है जल, पाप अर्थात् प्रदूषण को बहा देता है। जल तेजस्वी बनाता है और यह जल ही है जो मनुष्य को दीर्घजीवी बनाता है। लिख गया हैं कि जल समस्त दुःखों, रोगों को नष्ट करने वाला है, यह सर्वोत्तम वैद्यरूप तत्व है। कहा गया कि जल अत्यन्त कल्याणकारक हैय जैसे माता पुत्र का कल्याण चाहती है वैसे जल भी कल्याण करते हैं जल अमृत रूप है, जीवनी शक्ति

हैं, सब औषधियों का रस है।

वृक्ष एवं जल की तरह वायु पर्यावरण का अनमोल व आवश्यक तत्व है जिसके बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वायुमण्डल का फैलाव स्थल और जल मण्डल के ऊपर करीब 200 मील तक है। वायुमण्डल में विभिन्न मात्राओं में आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बनडाई आक्साइड जैसी गैसें विद्यमान रहती है जिससे पारिस्थितिक तन्त्र सुचारू रूप से चलता है वायुमण्डल ही जीवित प्राणियों एवं वनस्पतियों यहाँ तक जल आदि की पराबैगनी किरणों से रक्षा करता है और उल्काओं को जलाकर नष्ट कर देता है। वेदों में वर्णित है कि वायु जीवित प्राणी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। यह जड़ चेतन जगत का स्रोत है। यह पृथ्वी जल आदि की अपेक्षा सूक्ष्म होने से अति शक्तिशाली है। इसके द्वारा सभी रक्षित एवं प्रतिष्ठित हैं। शुद्ध वायु रोगादि दोषों को दूर करने वाला होता है- **"आ वा॑त वाहि भेष॒जं वि वा॑त वाहि॒ यद्रपः॑। त्वं हि वि॑श्वभेषज दे॒वानां॑ दू॒त ईय॑से॥"** [11]

ऋग्वेद के इस मंत्र में वायु को विश्व भेषज कहा गया है और यह प्रार्थना की गयी है कि वह दूषित वायु को दूर करे तथा शुद्ध वायु भेषजवात को प्रवाहित करें वैदिक युग के ऋषि वैज्ञानिक इस रहस्य से परिचित थे कि शुद्ध वायु हृदय के लिए शान्तिदायक और सुखकारी होती है और आयु को बढ़ाती भी है। इसीलिए एक अन्य मंत्र में ऋषि यह प्रार्थना करते हैं कि ऐसी वायु प्रवाहित हो, जो हमारे जीवन को दीर्घजीवी बनाए- **"वात॒ आ वा॑तु भेष॒जं श॒म्भु म॑यो॒भु नो॑ हृ॒दे। प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत्॥"**[12]

शोध निष्कर्ष : यदि मानवीय जीवन को बदलते परिवेश में सुरक्षित, व्यवस्थित और सुस्थिर रखना है अर्थात् जीवन को दीर्घजीवी बनाना है तो हमें वैदिक व उत्तर वैदिक चिन्तन परम्पराओं में बताये गये जीवन सूत्रों को अंगीकृत और आत्मार्पित करना होगा। मानव समाज में पारिस्थितिक तंत्र को सुस्थिर रखने के लिए पर्यावरणीय सुरक्षा का बोध पैदा करना होगा और सृष्टि के पस्पर निर्भरता के सिद्धान्त को जीवन्त बनाना होगा। विभिन्न पाश्चात्य चिन्तकों ने भौतिकवादी- उपभोक्तावादी जीवनदर्शन को त्यागकर अब वैदिक दर्शन की 'त्याग की संस्कृति' को अपनाने पर बल दिया है। अर्नेनीस, हेडेगर, कैरोलिन मर्चेन्ट एवं आदि चिन्तकों ने वैदिक दर्शन में बताये गये जीवनादर्श को अपनाने पर बल दिया है। इनका स्पष्ट मत है कि संपोषी जीवन दृष्टि की वैदिक मान्यताएं मनुष्य में परस्परता, अन्योन्याश्रितता और अंतःसलिलता का सृजन कर संपोष्य विकास की वैदिक दिशा तय करने में सक्षम है। अतः जीवमण्डल के विज्ञानशील मानव को इस दिशा में चलने पर कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

1. अथर्ववेद 8/2/25.
2. अथर्ववेद 13/1/46
3. अथर्ववेद 12/01/03
4. यजुर्वेद 21/6
5. अथर्ववेद 11/8/15
6. बृहदारण्यक 39/05/01.
7. अथर्ववेद 3/13/5.
8. ऋग्वेद 1/23/20.
9. मनुस्मृति 4/56
10. अथर्ववेद 1/6/4
11. अथर्ववेद 4/13/3
12. ऋग्वेद 10/186/1

*****

Environmental Consciousness Through Storytelling: A Curriculum Integration Case Study

Prekshi Saini
Ph.D Scholar, Amity Institute of Education
Amity University, Noida

Dr. Anshu Mathur
Associate Professor, Amity Institute of Education
Amity University, Noida

Dr. Sheena Thomas
Associate Professor, The Bhopal School of Social Sciences
The Bhopal School of Social Sciences, Habibganj, Bhopal, MP

Abstract

This case study investigated the effectiveness of storytelling as a pedagogical tool to enhance environmental awareness among students. By integrating storytelling based environmental lessons into the curriculum, the study aimed to explore how students' understanding, engagement, and attitudes towards environmental issues were influenced followed by a comprehensive evaluation of student learning outcomes.

The case study was conducted in a sixth classroom at Uttar Pradesh. The purpose of the study was to effectively measure the thinking and behavioral patterns of Secondary-Stage learners regarding the Environment after teaching selected cases related to the environment through the storytelling technique. The case study was conducted on 50 secondary-stage learners who participated in the teaching-learning process. The study concluded that there was a significant positive shift in the learners after discussing the case studies through the storytelling session. This study has contributed to condition citizens at a very young age to be environment conscious so that their every step becomes sustainable and ethical

Keywords- Environment Awareness, Storytelling, Education, SDG 4.

The environment is a broad concept that is inclusive of all the elements that encircle the animate existence. Reciprocally environment and the earthling are connected and tend to fragment without each other, On that account environment is comprehended to be the building block of the living species as it influences the physical, cognitive, and emotional domains in the living organisms. The environment can never be brought to an end, however, it keeps on changing with the unstoppable actions of humans and majorly with the exploitative endeavour of humans, the pure and natural environment is gradually reconstituted by the artificial environment. The obstacle that humans are facing is the conditioning of their thinking and behavioral patterns which they have been observing for a very long time, where self-interest are prioritized over its consequences on the ecosystem. There have been many cases where the environment is just seen as a temporary Guinness pig to take all the toll and consequences of human actions, however, it's a reciprocatory relationship, the consequences caused by humans, that has put the natural environment in an endangered position, are experienced by humans only where the environment is blamed, but who is the root cause?

(2021) Awareness through environmental education initially played a significant role in the development of realising power in the identification of the concerns and issues that were being faced. Several initiatives have taken place, from the making of the policies to the introduction of the Environmental education as a compulsory subject in all grades. However, with the changing times, the conventional model cannot be successfully fulfilling the need of the hour. This calls for the demand to reorient the curriculum as per the changed and new times with new generation. Environmental awareness can be imparted amongst the humans but it will work as a mere information and it is not suffice to become conscious enough to stop the wrongdoings and choose the right path, however environmental sensitization can be inculcated as it begins through the deep roots, where the knowledge becomes the attitude. The shortcomings to the current education system is the habitat exposure, the curriculum is able to provide the teaching-learning that has provided theoretical awareness amongst the learners, however the learners are not intellectually equipped enough to think with an open mind. Activities and practical are conducted but often in a routine fashion that fails to develop critical thinking in the learners and minimises the objective of activity mend to provide practical exposure.

The research was conducted to transform the thinking and behavioral patterns of the learners in their early life so that they can be molded and become

sensitized for their immediate environment and attain the ability to observe the wrongdoing, identify the cause, brainstorm the alternative, and at last contribute in the goodness of the environment. For this cause storytelling pedagogical technique was chosen, as it is the amalgamation of authenticity with the personal touch that provides flexibility to the storyteller to transform the temperament of the story as per the cognitive, affective, and psychomotor ability of the learner. Through the storytelling technique, case studies on environmental education were integrated in the teaching-learning process, and the authentic case studies were imparted in the classroom with the personal touch in the form of the story. In this context the purpose of the study is the inculcation of environmental consciousness in the young learners through storytelling technique assisted by case studies. The researcher strived to identify the environmental consciousness through the following parameters.

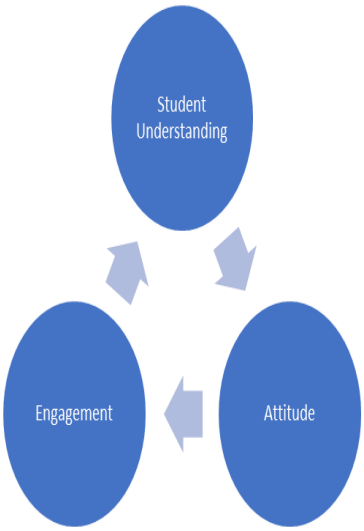

Source- Researcher

The interpretation of the parameters was operationalized as following-

Attitude – (Vargas-Sánchez et al., 2016) (Y.Bizer et al., 2006) It refers to the expression of evaluation that is exhibited in the behavior. (Team, 2023) The reaction exhibited by the individual in relation to their environment. It could range from simple reflex to a complex cognitive process. It could be observed and measured.

Student Understanding- It refers to comprehension, practical applicability and long-term retention of the concept

Engagement – It refers to the attention span, interaction, and interest level of the learners.

Review of Literature

Case studies of endangered environment

(2024) India is the largest emitter of plastic in the world contributing 9.3 million metric tonnes per year in plastic emission. This is due to lack of access to waste collection and management and increasing population, The waste generation rate is overpowering the waste collection rate. The case study states that 5.8 mt of plastic solid waste is burned every year in India.

(2023) Delhi Roads are a new habitat of stray cattle causing accidents, traffic, and noise pollution. This new habitat is acquired due to various reasons like, the solid waste pollution of plastic, and garbage dump at public places, opening up of multiple illegal dairies with a lack of space to make a shelter for cows, unleashing old and sick cows that are no longer productive to the money-making business. In total there are 5 million stray cows in India.

(2022) In 2019 The industry turned the river with so clean water that a coin would be easily spotted into a poisonous liquid in a village named Gangnauli, Uttar Pradesh. The water source to the village is Krishna River, the lifeline of 6000 households, is now responsible for cancer patients, ill family members, and differently abled new generation. 71 people died due to cancer caused by water between 2013-2018. (2021) The fostering ecosystem of Buxwaha forest, Madhya Pradesh, India, the home to 8000 tribal communities and several species of flora and fauna lost its goodness under the shimmer of diamonds that needed 364 hectares of forest land, 200000 trees, and 5.9 million cubic meters of water every day.

Multiple cases show insensitivity toward the environment, and the stakeholders that hold the power to transform their actions, choose to prioritize their self -interest, comfort, lifestyle, and 'why me' attitude. Therefore, it is important to focus on the central point which is education. Education has the transformation power to change the attitude, behaviour, thinking pattern and set beliefs. If the right kind of education is provided to the learners at an early stage then the conditioning can be provided to the citizens in the youthfulness to be sensitive towards their environment and be mindful of their actions. The curriculum has strived to impart this kind of education, and even provided environmental awareness through adding environmental education as a compulsory subject in higher education, however, it

does not show any significant transformation in the attitudes of the citizens.

The History of the Environmental Curriculum

(2015) Environmental Education became compulsory to be implemented in formal education in 2003 by the Supreme Court of India in response to a petition raised by M.C Mehta in 1991 that necessitated the need to include environmental studies at all levels. Till 1972 mankind was in a continuous state to overpower nature in the name of scientific development, eventually this called for the amendment in the constitution 1976 with the addition of the article 51(A) i.e, Fundamental duties explaining to be compassionate for the living environment and strive to protect it. Followed by this, in 1981 Water Pollution Act was established, and eventually in 1986 Environmental Protection Act was designed. The need to bring up with multiple environmental acts evidently proves that there is no significant change in the actions and mindset of the society. Curriculum Framework for Environment Education at Undergraduate level – UGC, following the judgement based on the petition, UGC implemented Environmental Education as a compulsory subject in undergraduate courses for six months and designed a module syllabus linking the environmental issues, economy, and future survival. The module for the subject includes humans, case studies, environmental legislations, sustainability, environmental issues conservation, pollution, health, climate change, and environmental management. However apart from the implementation of well inclusive curriculum, there is no significant change in the attitude, sensitivity, and mindfulness of the learners. This subject is considered a compulsory passing subject.NCERT made amendments in the following curriculum (2018) Environmental Education was the prime concern for NCERT after the recommendation made by National Curriculum Committee in 1975. Following the petition, NCERT was directed by the Hon'ble Supreme Court of India to implement environment education in schools. Environmental Education was made the integral and compulsory part of the school curriculum for all classes Ist – XIIth, NCERT made the following amendments in the curriculum, Environmental Education is integrated in Mathematics and Science and for some grades separate subject has been designed. Ist-IInd grade has integrated environment as Art of healthy and productive living. For IIIrd-Vth grade a separate book was designed. For Secondary Classes, Environmental education was integrated as concepts in the textbooks of Science and Social Science. In Higher Education, Environmental Education was integrated as concepts in the textbooks of biology, chemistry, physics, political science, geography, economics, sociology. By integrating Environmental education in all the grades, NCERT aimed to provide knowledge, attitude, and skills towards the sustainable development. NEP 1986 & 2020. (2023) National Education Policy 1968 did not refer environment as a separate topic to be studied. National Education Policy 1986 suggested environmental education to be the core element of the school education system and must be inculcated as value amongst the learners. It focussed on environmental consciousness. NEP 2020 emphasized on the importance of environmental awareness and sensitization in the school curriculum. NEP 2020 recommended including the Indian traditional system and the future aspirations toward the environment.

(2016) Environmental education has successfully entered into the curriculum system, regardless of this the sensitivity towards the environment is observed missing. The paper stated that environmental education is not a form of education, but a knowledge based conservation this brings in the need for this research study that aims to develop the environmental consciousness that further work on the transformation of the attitude and understanding of the stakeholders to protect and flourish our habitat.

Method

In this study, A case study was conducted to observe the power that storytelling technique holds within itself, in developing environmental consciousness amongst the learner, and further transforming their attitude, behaviour, and thinking patterns. A detailed analysis was performed when storytelling technique was integrated in the social science classroom to comprehend the features and the power. This was done to understand the storytelling pedagogy in depth with its features and complexities to the situations. Case study is defined as the empirical enquiry that is exhaustive of scientifically rigorous research to collect and analyse the data. (adapted from Yin, 2013).

This method enables the researcher to explore, interpret, evaluate the scope of the research, and after identifying the research gaps, the actual need is the

restructuring of the transactional tool to impart environmental education. This was observed in the classroom. The study demanded to observe the differences in pre and post-test and comparison was required in the two groups to check the significance of storytelling as a pedagogical technique. (Mahbub Zubair, 2023) The experimental study allows the strict control of the researcher minimize the external gaps and loopholes and it is conducted as a field study which was appropriate for this research study which will be beneficial in examining the case study.

Sample

The target population of the study is constituted of learners studying in sixth-grade secondary stage learners as it is still a foundational pillar, the learners are still in a flexible position to be molded and conditioned and are matured enough to observe and identify the right and wrong, issues, consequences if taught accordingly. Basically they can be taught how to think, and eventually critical thinking, problem-solving, and decision-making skills can be inculcated in ths stage, therefore, this grade was selected. Sixth grade of Panchsheel Public School, Noida, Uttar Pradesh was chosen. The sample size was 50.

Data Collection

The observation was done for 1 week by the researcher. The parameters of the observation included behavior, attitude, thinking patterns, problem-solving, and decision-making. Followed by it, four above mentioned endangered environmental case studies were integrated in the form of story in Social Science class to identify the effectiveness of the storytelling technique as a pedagogy in the transformation of personality and eventually becoming conscious of the environment.

Analysis & Findings of the study

Analysis of data is majorly conducted on the interpretation and perception of the researcher

Attitude

There was a significant transformation in the attitudes of the learner. A sudden sensitive shift was observed amongst the learner. The learners were empathetical towards the environment and exhibited a mindful behavior and were inquisitive to learn and become more aware about their actions and wrong doings that is eventually exploiting the environment. In social science class where environment topic was being taught, their attitude became very sincere and they were very conscious of the main message given by the story. They even evaluated their daily routine activities that are causing harm to the environment and brainstormed about alternatives that can be environmentally friendly enhancing their critical thinking ability.

Student's understanding

There was a significant positive shift observed in the student's understanding of the concept. Better comprehension was observed amongst the learners as well as the learners showcased better practical applicability in different situations having the similar concept. This interprets that storytelling leads to multidisciplinary learning and integrates different concepts with similar learning. The learners were able to exhibit long- term retention of the concept

Student's engagement

There was a significant change in the student's engagement in the teaching-learning process. They were being very interactive and were inquisitive to share their own personal stories about their own environmental experiences. The learners excitedly wanted to share the changes they have brought in their daily routine that made the teaching-learning process very interesting. They were able to make decisions and identify what is right and wrong for the environment they have been doing in their daily tasks.

Conclusion

This case study concluded that there is no loophole in the curriculum however it always holds a scope for improvement. Elaboratively the policy frameworks that provides the stakeholders a ray of direction should be followed completely and dedicatedly. It has been above mentioned in the history of the curriculum designing as well. Policies like National Education policy and National Curriculum Frameworks, and organisations like University Grant Commission and National Council of Educational Research, and Technology took many initiatives and recommended a path way towards environmental consciousness emphasising on experiential learning and providing the exposure to the learners to develop the feeling of sensitization and empathy with the decision-making

skills and power to think. The curriculum that is already inclusive of all the knowledge, only needs a good way to transact it to meet the designed objectives. As per this case study storytelling pedagogical technique proves to be one of the pedagogy that is able to fulfil the desired objectives and develop the required skills amongst the youth to make them productive for the environment.

References

Ali, M. (2022, October 21). *How river pollution is killing people in an Indian village*. Www.aljazeera.com. https://www.aljazeera.com/news/2022/10/21/how-river-pollution-is-killing-people-in-an-indian-village#:~:text=The%20contaminated%20groundwater%20they%20have

Baskar, R. (n.d.). *Environmental Education*. Retrieved September 16, 2024, from https://cdn.cseindia.org/attachments/0.78467700_1716960948_nep2020.pdf

Cottom, J. W., Cook, E., & Velis, C. A. (2024). A local-to-global emissions inventory of macroplastic pollution. *Nature*, *633*(8028), 101–108. https://doi.org/10.1038/s41586-024-07758-6

Government promotes environment protection and nature education through curricula on conservation of forest, water and soil. (2023). Pib.gov.in. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1907255

IIT Kanpur. (2021). *Blog*. Github.io. https://iitkprakriti.github.io/post.html#:~:text=This%20diamond%20mining%20will%20not

India loves its cows. But with 5 million strays, that's becoming a problem. (2023a, April 18). South China Morning Post. https://www.scmp.com/news/asia/south-asia/article/3217392/india-loves-its-cows-5-million-strays-thats-becoming-problem

Indian Educational Review Volume 56 Number 1 Ethnopsychological Perspectives on Education for Adivasi Children in India Creativity Amongst Children with Special Needs (CWSN): Tapping from School Teachers' Experiences Impact of Storyline on Creativity among Middle School Children Preservice Teachers' Beliefs Concerning the Nature of Mathematics and Teaching-Learning of Mathematics. (2018). https://ncert.nic.in/pdf/publication/journalsandperiodicals/indianeducationalreview/IER-JAN-18.pdf

Mahbub Zubair, A. (2023, January). *Experimental Research Design-types & process*. Academia Open. https://www.researchgate.net/publication/367044021_Experimental_Research_Design-types_process

Manish Chandra Mishra. (2021, June 9). *In Madhya Pradesh's Buxwaha forest, a diamond mine could claim two lakh trees*. Scroll.in; Scroll.in. https://scroll.in/article/996817/in-madhya-pradeshs-buxwaha-forest-a-diamond-mine-could-claim-two-lakh-trees

Ministry of Human Resource Development. (2020). *National Education Policy 2020 Ministry of Human Resource Development Government of India*. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.

Ravi+Shankar. (2023, May 31). *Why Are You Seeing Stray Cattle on Delhi Roads*. Indiatimes.com; Times of India. https://timesofindia.indiatimes.com/city/delhi/why-are-you-seeing-stray-cattle-on-delhi-roads/photostory/100644860.cms

Swaroop, M., & Verma, A. (n.d.). *NATIONAL EDUCATION POLICY, 2020 AND ENVIRONMENT EDUCATION: CHALLENGES AND OPPORTUNITIES*. Retrieved September 16, 2024, from https://www.nujs.edu/wp-content/uploads/2022/12/vol-7iss-3-1.pdf

Team, N. (2023, March 3). *What is behavior? | Noldus*. What Is Behavior? | Noldus. https://www.noldus.com/blog/what-is-behavior

Toppo, A., & Syamala, K. (2015). Licensed Under Creative Commons Attribution CC BY M.C Mehta Case on the Protection of Environment. *International Journal of Scientific Engineering and Research*, *6*. https://www.ijser.in/archives/v6i5/IJSER172515.pdf

Vargas-Sánchez, A., Plaza-Mejía, M. Á., & Porras-Bueno, N. (2016). Attitude. *Encyclopedia of Tourism*, 58–62. https://doi.org/10.1007/978-3-319-01384-8_11

Y.Bizer, G., Barden, J., & E.Petty, R. (2006). Attitudes. *Encyclopedia of Cognitive Science*. https://doi.org/:10.1002/0470018860.s00483

*****

Teachings of Bhagavad Gita: A Tool for Ethical Emancipation of Secondary School Students.

Ms. Mani Sharma
Research Scholar,
Amity Institute of Education, Amity University Noida UP
Professor Harish Kumar
Head of Amity Institute of Behavioral and Allied Sciences
Amity University Noida UP
Dr. Anuradha Sekhri
Associate Professor
Research Centre of Punjab University

Abstract:
Introduction: The teenage years are a crucial time when young people go through a lot of emotional changes, stress, and tough moral decisions. The rise in student suicides shows how important it is to offer psychological and moral support. The teachings from the Bhagavad Gita about duty (dharma), self-awareness, and resilience may help improve students' ability to reason morally and handle emotions better. Objectives taken in study were: i) Look into the psychological challenges teenagers face, ii) Understand how the Bhagavad Gita's teachings can help address these challenges, iii) Assess how teaching these lessons in high schools affects students. The study used a mixed-method approach, which includes both looking at statistical data and understanding experiences. Surveys and organized interviews were carried out with students, teachers, and psychologists. A focused study also assessed how lessons from the Gita affected students' ability to handle stress and make decisions.
And the study found that students who learned from the Bhagavad Gita showed better emotional strength, ethical thinking, and stress management. They experienced less anxiety and had a clearer sense of direction in their lives. Teachers observed more active participation in discussions about ethics and noticed positive changes in student behavior. In conclusion, the Bhagavad Gita serves as a valuable source for building moral strength and emotional stability in teenagers. Including its teachings in school can contribute to a more comprehensive approach to mental health and ethical development. The study suggests that policymakers in education consider adding structured ethical lessons to school curriculums.

Keywords: Adolescence, Bhagavad Gita, ethical education, moral resilience, student well-being, psychological stress, suicide prevention, emotional stability.

Introduction: According to Piaget, developmental stage adolescence is an incredibly critical and decisive stage of an individual's lives, where they undergo immense pressure, while moving towards adulthood. An age group of 16-18 years fall can be categorized as an adolescent's age. This is the sensitive age laced with strain, pressure, conflicts, emotional upheavals, and strife. National Crime Records Bureau (NCRB) data illustrates that 10,159 students died by committing suicide in 2018. To be precise, 28 students choose to die each day. The problem is alarming and needs sagacious redress. The non rectification and mere patch up work will lead to an abyss. As per the Lancet, India has reportedly 2.5 Lakh cases of suicide deaths every year. Unfortunately, the suicide is the primary cause of death for age group of 15–39 (KUMAR, 2021) An NSRB report 2021 reflects quite shocking patterns. Out of the 13,089 students who dropped dead by suicide last year, males were 7,396 in number and 5,693 were female. Maharashtra topped the list with the alarming number of

1834 suicide victims comprising of 14.0% of the deceased followed by 10.0% students of Madhya Pradesh which means 1,308 of head count. 9.5% in Tamil Nadu with 1,246 dead count and 6.5% in Karnataka with 855 dead students paints quite a grim picture at national level. The dynamic process of self-evaluation has been jeopardized by the likes of SIRI and Alexa. The shiksha sanskara is becoming ineffective due to lack of self-evaluation. This work on an inner self is possible only through the right understanding, which can be achieved only by revisiting the ancient culture and listening to the voices of ancient heroes and wise spiritual beings. One such wisdom voice is echoed times and again through the Shrimad Bhagavad Gita. According to Shrimad Bhagavad Gita, harmony of mind is human's natural state. It is time to revisit the roots and re-nourish the national assets of our nation-our juvenile learners at senior secondary education level. Sanatana Dharma has provided some of the crucial alignment parameters which are crucial to establish an individual as a social and national asset. They are as follows:

- Right understanding
- Spiritual amalgamation
- Enlightenment
- Non-violence-Ahimsa till the weak and powerless are unharmed
- Righteousness- Satyagraha
- Religious/economic and social equality
- Truthfulness
- Brotherhood
- Humanism
- Repudiation of Violent and aggressive nationalism.
- Integration and Free Assimilation
- Wise mediation for conciliation
- Elimination of conflict

The deviations from ancient culture have led us to shocking scenarios and logistics. More shocking is the rise in the student suicide rates from 2016 till 2021. The students who committed suicide in 2016 were 9,468. The number in 2021 has touched 13.0,89. The table below forces us to reflect on the value and skill domain of education.

Year	Suicides by Student	Percentage of total number
201	9,478	7.2
201	9,905	7.6
201	10,159	7.6
201	10,335	7.4
202	12,526	8.2
202	13,089	8.0

The above are the excerpts from the NCRB report reflecting the student suicide numbers. (report)

The excerpts from latest NCRB report shows that a total of 1,673 persons died by suicide due to poor performance in 2021 exams. The poor performance in examinations is diagnosed to be the critical reason for over 1,300 suicides among young students. The problem seems to be alarming.

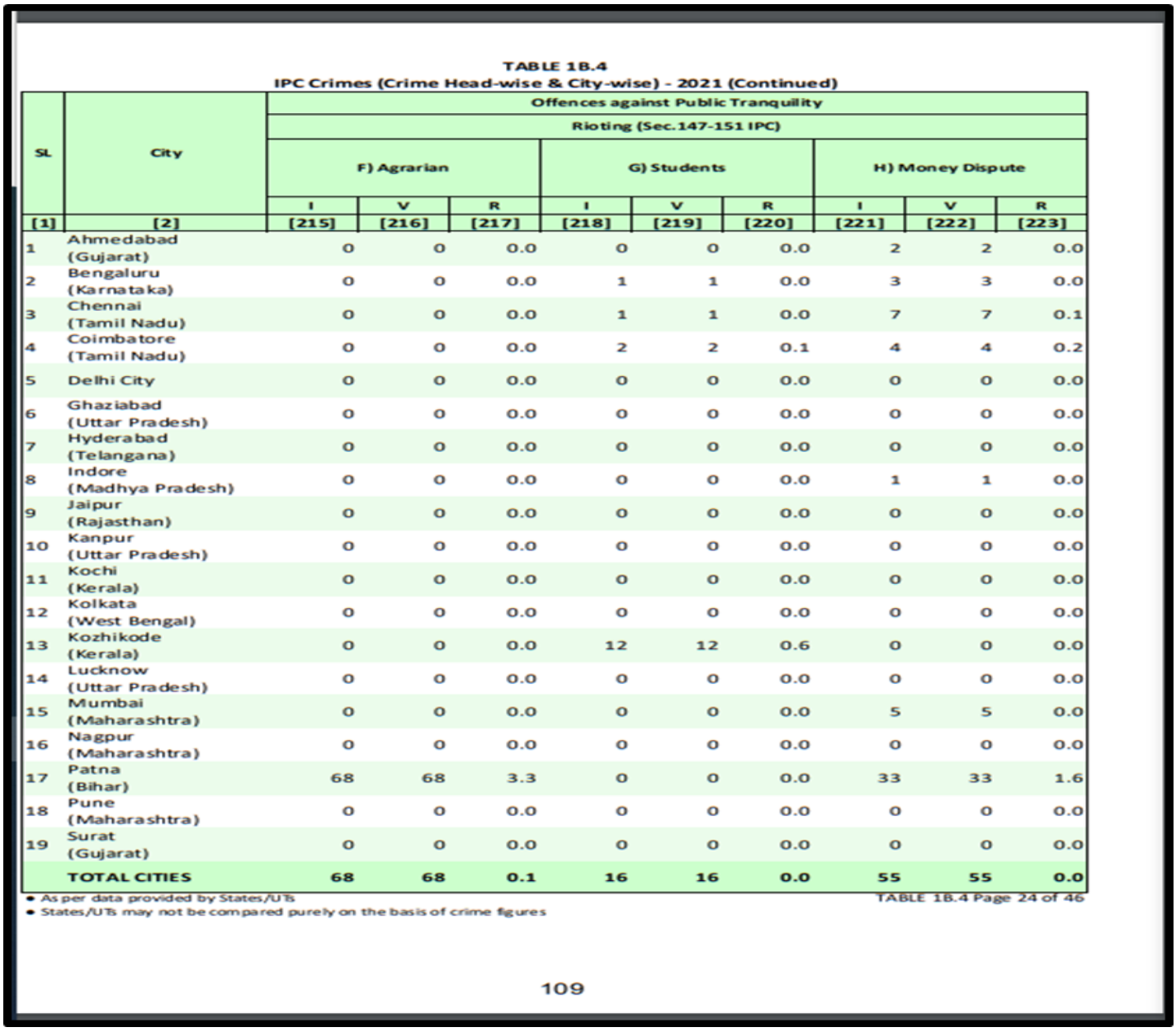

TABLE 1B.4
IPC Crimes (Crime Head-wise & City-wise) - 2021 (Continued)

SL	City	Offences against Public Tranquility								
		Rioting (Sec.147-151 IPC)								
		F) Agrarian			G) Students			H) Money Dispute		
		I	V	R	I	V	R	I	V	R
[1]	[2]	[215]	[216]	[217]	[218]	[219]	[220]	[221]	[222]	[223]
1	Ahmedabad (Gujarat)	0	0	0.0	0	0	0.0	2	2	0.0
2	Bengaluru (Karnataka)	0	0	0.0	1	1	0.0	3	3	0.0
3	Chennai (Tamil Nadu)	0	0	0.0	1	1	0.0	7	7	0.1
4	Coimbatore (Tamil Nadu)	0	0	0.0	2	2	0.1	4	4	0.2
5	Delhi City	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
6	Ghaziabad (Uttar Pradesh)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
7	Hyderabad (Telangana)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
8	Indore (Madhya Pradesh)	0	0	0.0	0	0	0.0	1	1	0.0
9	Jaipur (Rajasthan)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
10	Kanpur (Uttar Pradesh)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
11	Kochi (Kerala)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
12	Kolkata (West Bengal)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
13	Kozhikode (Kerala)	0	0	0.0	12	12	0.6	0	0	0.0
14	Lucknow (Uttar Pradesh)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
15	Mumbai (Maharashtra)	0	0	0.0	0	0	0.0	5	5	0.0
16	Nagpur (Maharashtra)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
17	Patna (Bihar)	68	68	3.3	0	0	0.0	33	33	1.6
18	Pune (Maharashtra)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
19	Surat (Gujarat)	0	0	0.0	0	0	0.0	0	0	0.0
	TOTAL CITIES	**68**	**68**	**0.1**	**16**	**16**	**0.0**	**55**	**55**	**0.0**

• As per data provided by States/UTs
• States/UTs may not be compared purely on the basis of crime figures

TABLE 1B.4 Page 24 of 46

109

The above are the excerpts from 46-page NCRB report **(India)**

The above data is equally disturbing as we see the magnification of an inner conflict in the social picture. The social conflicts and student participation are at rampart pointing towards the loopholes in the value domain and the skills domain in our education system. If ethical emancipation is needed for society, it needs to be incorporated and conditioned at the secondary level of education. As far as the bearing of an academic performance and pressure, the elementary and secondary education seekers are afflicted and distressed at humungous levels with an unending pressure to perform well. An adolescent age is a decisive bridge from childhood to chaos laced adulthood, distinctively marked by considerable psychological, physiological, psychosomatic, and social metamorphosis. The school students of higher secondary take critical life changing

pronouncements regarding higher courses, further university level studies and even careers choices. This is ubiquitously a decisive, crucial and exceptionally stressful stage for them. Herculean challenges, like academic performance, communal dogmas, day-to-day challenges along with the drastic hormonal changes impels young students to the identity crises, impacting students' behavior which eventually impinges their learning, academic results and wellbeing. These exceedingly severe problems need urgent consideration as it has strong tendency to stamp student learning and lifelong memory inducing them to psychological breakdown. Some intellectual touchstones consider stress as a physiological response pattern and include it in General Adaptation Syndrome model which considers stress as a "dependent variable". (Selye, 1956)

It has three aspects:

(1) Stress as a *defensive mechanism*.

(2) Stress is followed by three crucial phases- *alarm, resistance, and exhaustion*.

(3) Rigorous stress results in adaptive diseases which may consequentially cause death. (Selye, 1956)

Stress is a universal occurrence, a situation where an individual feels susceptible to challenges and vulnerable to threats. Stress breeds depression, anxiety, despondency, and inability to adjust. Various agents which trigger stress are psycho-emotional reasons, family or social traumas, over-worked-underpaid situations, bad or wrong decisions, error in making judgments, communication gaps, phobias and manias, physical exertions, ailments or diseases. Most of the masses opine that stress is merely a psychological condition which discomforts a person at physical, mental, and social level. Stress can be due to any kind of alteration I am otherwise a routine life which triggers a physical, emotional, or psychological strain or tension. Stress results when an individual fails to cope. It is a configuration of responses an individual chooses in a crisis leading to a disturbed equilibrium and going beyond an individual's capability to cope. Some of the figures in the report are too shocking, for instance the alarming number of 864 suicides by the victims below the age of 18. This is an alarming number reflecting the gory truth of our education phenomena.

Given below is the distribution by age.

Age Range	Suicide Number
Below 18	864
18-30	714
30-45	72
45-60	20
Above 60	3

Excerpts from the national report. (India)

Stress is generated by a patient on himself. It is self-infliction as it is all that happens in oneself or mind. Be it frustration, conflicts, unhappiness, dissatisfaction or an internal pressure like blind expectations or pressure for achieving goal. Environmental stresses which contribute a lot to aggravating a situation are inevitable and unavoidable aspects of our surroundings. As *these are often unavoidable ones such as air pollution, noise, heat, cold, etc. The social stresses come externally, which deal with the interaction with other people, family problems, etc.* (Meher, 2021)

In a written respond to Hon'ble Parliament of India on 4th April, 2022; worthy Education Minister Mr. Dharmendra Pradhan stated that Central Universities under the purview of education ministry are reported to have informed 24 suicide cases of students from year 2017 to 2022. (PTI, 2022) The referred information is resourced from higher education regulator UGC. "The reasons of suicide by students are not maintained," he said. (PTI, 2022). The NCRB report regret the scenario, and grief is echoed in the words: "Each suicide is a personal tragedy that prematurely takes the life of an individual and has a continuing ripple effect, affecting the lives of families, friends and communities." (PTI, 2022) Thus each young learner is an asset. If emancipation is needed at the social level, then the individual learners must be nourished at the initial education and critical growth state. The need for the hour is to be focused upon, especially the secondary education seekers as their stress and anxiety level is at an alarming point.

The students appearing in their boards and preboard exams face hurdles, challenges they may or may not be able to cope up their hormonal-adulthood changes, emotional traumas, interpersonal skills, identity crises and decision-making pressures. Thus, ushering them to the plethora of problems like insomnia, anxiety, mood swings, headaches, nervousness etc. These all ultimately lead students to low self-esteem and stress. Consequentially, the mounted-up stress affects individuals emotionally, psychologically, physiologically, and behaviorally. Researchers studied and evaluated cognitive, physiological, and social influences as causes of stress. The psychological wellbeing and an academic performance pressure of Indian secondary school students are closely correlated. "The association between various psycho-social factors and academic stress reflects that 63.5% of total students reported stress due to academic pressure, and there were no significant difference of age, gender, and grade." (Deb, 2015).

Stress has become quite a common phenomenon. In stress one feels threatened, intimidated and challenged. Stress breeds self-dejection, despair, anxiety, conflicts. Factors which trigger stress may range from lack of right understanding, emotional instability, family crises and conflicts, socio-economic crises, work pressure, prejudiced and wrong decisions, miscommunication, plethora of phobias, physical inability, disease, environmental unsuitability or pollution. Various factors like peer competition, disproportionate and excessive assignments, recurrent midterms/ tests/retests/ frequent examinations, pathetic social relationships, and failed time management skills are viewed as the main reason for the academic stress among the students. The management techniques like life skills, training, yoga, mindfulness meditation, biofeedback, and the like, have been suggested by different studies. (K.J. Reddy & K. Menon, 2017) A popular belief is that stress is a psychological condition which impacts physical, mental, and social well-being. The responses an individual makes in a response to a challenging situation may disturb mental harmony and stability. This may exceed an individual's threshold of tolerance and processing. When a person's ability to cope is failed one slips into a psychological turmoil called stress.

The psychological stress is usually generated on an individual mind by oneself, thus inflicting self-pain, frustration, endless inner and outer conflicts, internal pressure etc. Environmental stresses are all the aspects of our surroundings that are often inevitable,

such as air pollution, noise, heat, cold, etc. The social stresses come externally, which deal with the interaction with other people, family problems, etc. (Meher, 2021) the social stresses cannot be dismissed as mere external evitable factors. On the contrary, they may have the far-reaching consequences. The study on academic stress and physical activity in adolescents indicated that academic stress and performance is inversely proportional to physical activities, games and extracurricular activity. "Differences in the overall physical activity between boys and girls with and without academic stress were not statistically significant for any of the physical activity characteristics". (K. Fromel, 2020) Experts, through the mixed method, have found that the academic stress and pubescent distress on 12th standard students is quite high. Various group of students are subjected to distress in various ways, be it the academic record, hormonal changes, gender, and socio-economic reasons or school types. It was accomplished that "academic stress and adolescent distress is significant problem for which interventions are needed" (Rao, 2020).

Alarming levels of anxiety, stress builds up tension and clouds the decision-making ability of young people. Such a state of mind doesn't merely give rise to low academic performance and poor future prospects but also to spike in suicide cases and even a grim and repulsive scenario as reflected in National Report. As per the report on Juveniles in Conflict with Law, a total of 31,170 cases registered against Juveniles during 2021, depicting an increase of 4.7% over 2020 (29,768 cases). The crime rate depicts an increase from 6.7 in 2020 to 7.0 in 2021. [Table – 5A.1] (NCRB., 2021)

The major reason for this dangerous deviation in a learner's state of psychosomatic scenario is the lack of self-analysis and self-assessment. A human comprises of body and inner self- Atma, which has three traits which are SAT, CHIT, ANANDA. Truth and knowledge bring peace and joy. The Krishna is directed to the riddance of Asura, the negative and harmful entities to usher an individual to dharma, the path righteousness. He is a personification of physical and spirituality, sympathy and mercilessness, protector and slayer, peace maker and an incisive warrior. Hinduism is not just restrained by religion and heaven; it teaches about practical day to day life. It has presented a way to accomplish peace through self-evaluation, right understanding and self-analysis. The need of the contemporary secondary school learner is inner mental peace which has been evading the young juvenile minds. The primary reason behind this major setback is that a learner of secondary education expects reliability from others but himself practices falsehood and dishonest approach. Bhagavad Gita states that there can be no happiness and inner peace in the absence of right understanding. The major constituent of the philosophy of Krishna in his voyage towards founding inner peace and psychological harmony is to be witnessed in his actions and Bhagavad Gita. Some consider Bhagavad Gita as an epic within Mahabharata-an epic, to some it is a heavenly disclosure, to some it is a roadmap of achieving an inner peace and success, few are convinced that it has power to guide and liberate even a dull mind.

In Chapter 12, Verse 15 of Shrimad Bhagavad Gita, Shri Krishna teaches one to remain calm and poised without being unruffled by the circumstances both in times of joy and in grief and holding oneself with a sense of equanimity.

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः || 15||

"He, by whom the world is not agitated and whom the world cannot agitate, he who remains calm in times of joy, a fear and anxiety, is dear to me."

The transliteration suggests to each of the young students under pressure to perform well to remain calm poised. One must neither be ruffled nor agitated by short-lived situations and circumstances. From chapter 2, ve we can sift out an elixir of life out of this holy script that one must complete his karma which is a righteous action:

"कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषुकदाचन |
माकर्मफलहेतुर्भूर्मातिसङ्गोऽस्त्वकर्मणि || 47 ||"

Your right is for action alone, never for the results. Do not become the agent of the results of action. May you not have any inclination for inaction. (CHAPTER 2, VERSE 47). This verse pushes an individual, be it a juvenile or a child, to understand the fact one must act with full strength and mind. Efforts alone should be all out and all powerful. Fearless efforts should be the focus, and the result should not be a goal. A student at a decisive stage of life cannot control the outcome of his efforts but magnify the magnitude of the efforts. This message has a leviathan fertile ground to cultivate an individual's mind and train him to work with undivided attention, thus living in an hour of action –living in now instead of fanaticizing about fruit of labour or tomorrow.

From Chapter 3, Verse 37, one learns that the desire and fury born out of obsession are ravenous and instigate an individual to unrighteousness. A desire or anger is bred by attachment. Thus, detachment helps one to accept changes and tread on in life by adjusting and evolving.

श्रीभगवानुवाच |काम एष क्रोध एष
रजोगुणसमुद्भवः ||
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् || 37||

Peace provides exactness of thoughts, conscious mind, steadiness of thought, and proper understanding, on the contrary egocentricity disturbs peace of mind. A completely selfless individual reaches an inner mental peace. One who has self-control has a swatantrata and the same is reflected in his social conduct which makes others accept and get impacted by him. This is called swaraj. (RK GAUR, 2010). This approach has been echoing since echelons. The same is remolded as peer learning. One student learns from his fellow mate by observing his conduct, by talking to him be it formal or informal communication. Such a company leads to companionship and mutual growth. An individual who is awakened and is dynamically involved in the process of self-exploration will understand that education is not an end but a means to live life. When one understands the role of education as skills domain and value domain entwined to be a tool to enhance his mind and transform him from animal consciousness to human consciousness; a student shall never be in a state of stress, anxiety, depression or suicidal tendencies. Shrimad Bhagavad Gita encourages to focus on karma and today. The concept of karma is laid bare as Krishna bestows both on Arjuna by motivating him to act as a warrior, which is more important than worshiping God as it's the actions that lead to the supreme reality of the divine existence of self; the selfless devotion to action is the way to God. Bhagavad Gita points self-control for eternal peace and happiness. It says that one without self-control is without wisdom and knowledge. Thus, self-restrain is the only path propagated:

रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिन्द्रियैश्चरन् |
आत्मवश्यैर्विधेयात्माप्रसादमधिगच्छति॥64॥

Translation: But by perceiving objects with the organs that are free from attraction and repulsion, and are under his self's control, such a man who controls his mind attains the supreme grace.

(CHAPTER 2, VERSE 64)

The self –restrained individual, despite dealing in this sensual world, with the senses under the charge of his own self, remains unobstructed from attachments, pleasure seeking desires and detestation. Such a young learner can overcome self-possession. Such a young student is no longer the slave or victim of his hormones and emotional swings rather it is he who controls his own hormones. If the psychosomatic situations are disastrous, they can be used inversely by self-transformation. It is a brain which produces hormones after a trigger. But when a mind chooses not to be affected, the hormones won't be secreted. This reverse action changes everything. A tranquil, unaffected mind never reacts to the contrast it responds.

In tranquility comes the annihilation of all the wretchedness. One, whose mind is tranquil, develops into a man well-grounded in intelligence. A young learner can transform, and self-monitor his senses and desires for sensual pleasure under the check to set and achieve his goal at an early decisive senior secondary stage. One who seeks knowledge as a tool to the right understanding must have calmness in mind. The steadfastness in conduct, moral fiber and mentality brings wisdom. Only a firm mind can contemplate. That devoid of self-control wisdom fails to create inner strength for self- evaluation. Such individuals fail to evolve their understanding and remain devoid of the potential to think rationally. Such individuals fail to earn peace and thus spawn insecurity, stress, suicide or violent retaliation. Happiness never comes to those devoid of peace:

नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना |
नचाभावयतः शान्तिरशान्तस्यकुतः सुखम्॥66॥

Translation: For the unsteady there is no wisdom, and there is no meditation for the unsteady man. For a non-meditative man there is no peace. How can there be happiness for one without peace? (CHAPTER 2, VERSE 66) an individual who can't unhook from his physical affection can never cultivate an intellect to become judicious. He is devoid of buddhiḥ—an intellect; owing to which he doesn't have the power of contemplation bhāvanā. Such a mind would be in conflict incessantly.

A current scenario can change if an individual who is in a stage of transformation gets strong both in skill domain and value domain. When an individual understands that an education is merely a tool and not an ultimate end; the situation and mind set changes completely leaving no room for self-doubt or stress in contrast this fact provides enough ground for self-growth and self-improvement. A transformation from animal consciousness to more awakened *human consciousness.* Sanatan Dharma is not merely limited to a dominion of religion, hell or heaven; it gives comprehensively far-reaching practical wisdom about life. It has presented itself to humankind to attain inner peace through self-assessment, right understanding and realization. The principal requirement of the world is peace which has been dodging individuals, especially those in their teenage years at the consequential stage of academics. The leading cause behind this foremost setback is that the senior secondary students approve and expect truthfulness from other peers but themselves may choose to act using falsehood, treachery and lies.

A healthy individual is a basic unit of a healthy family. A healthy family is a basic unit of healthy society. Peace is not a relation of nations. It is a condition of mind brought about by a serenity of soul. Peace is not merely the absence of war. It is also a state mind.

Lasting peace can come only to the peaceful people. (Fishel, 2008) Krishna's vey ideology is to be witnessed in his confident advice to Arjuna to fight with conviction to win against all odds. In his advice to smash to smithereens the clouds of ignorance that Arjuna is beset with when he awakens to the verity that the battlefield is clouded with his self -doubts. Lord Krishna while in the intense enterprise to demystify the Arjuna's cluttered brainpower weighed down with vagrant and desperate thoughts, propounds his philosophy that paves the means for the very fundamental guiding principle for peace and success; the impetus being on the "Karma", action elevated to the level of premier state of existence; at par with spiritually awakened soul untroubled of joys & sorrows, success & failure, love & hatred. He elucidates the blurred vision of Arjuna with his delightful mentoring.

Shrimad Bhagavad Gita is not a repertoire of unfeasible nuggets of mysticism or theological understanding rather a practical guide that is more encouraging to living not at all being an escort on renunciation, on the contrary it is an amalgamation of affection and negation, freeing from the clutches of anger, lust and envy. In Shrimad Bhagavad Gita, Krishna directs towards self-control for eternal peace and happiness. It says that one who lacks self -control lacks honor, integrity, wisdom and knowledge. Thus, self-restrain is the lone path to be walked upon:

The self –restrained man moving among the objects with the senses under the control of his own self, free from the attachment and aversion, attains to tranquility. In tranquility comes the end of all his suffering; for the understanding of him, whose mind is tranquil, quickly becomes well-settled in wisdom. (Bhagavad Gita: I 64-65)

Krishna is not just confined to a theological realm; He offers extensively practical wisdom about life. He has shown the world a way to achieve an inner peace through self-evaluation and realization. The chief need of the world is peace which has been evading and dodging the nations for a long time. The major reason behind this major human setback is that individuals, families, societies, and nations applaud and expect truthfulness from others but themselves practice falsehood, treachery and lies. In the words of an eminent Indian social thinker:

We exhort others to honor the law but break those self, -same law

Where we are concerned, we preach to our fellowmen to take a wow of service but ourselves we are saturated with selfishness, we admonish others to live an austere life, but we roll in luxury. This contrariness in our character is due to the fact that we have faith in the spiritual power which supervises over all that lives and moves and has its being. (Satyavrata, 1980).

The most important ingredient of global peace is an individual's peace. The balance and co-ordination are required to cultivate barren body and soul to germinate one. But unfortunately, there is fatal dissatisfaction in the humans at the global level:

There is neither proper balance nor co-ordination between the various activities of life; between physical and mental work, between the social engagements and religion-spiritual pursuits and above all the work on the one hand and rest and recreation on the other. (Gupta, 1986)

The imbalance at any individual's end has been causing disharmony, maladjustment, stress, anxiety, depression and tension in life. Ultimately "Mental peace is the big casualty in the life." (ibid) Krishna's teachings demarcate to evaluate and contemplate over

a conflict howsoever minute and major. His teachings help to explore various possibilities and deductions to find the most appropriate key to various complicated situations with holistic approach. To administer any crises the following course of action may be executed by any secondary education student in conflict or crises:

- To recognize the obstruction, problem or crises
- To explore various options and discover a best possible solution
- To execute the solution
- To comprehend the values of life
- To accomplish perfection

Krishna offers a miniature ethical method. He, in a nutshell, gives helpful and consequential leads for achieving one's goal which can help young learners to focus and concentrate on their program to reach the goal:

- Abstinence from the sensual pleasures as desires pulls one back to animal consciousness.
- Kindness
- Righteousness
- No injury to self/ life except while defending the weak and powerless.
- Honesty.

Reference:

Deb, S. S. (2015). Academic stress, parental pressure, anxiety, and mental health among Indian high school students. *International Journal of Psychology and Behavioral Sciences, 5*(1), 26-34.

Government of India. (2021). *Crime in India 2021 Statistics Volume-1.* National Crime Records Bureau, Ministry of Home Affairs. Retrieved from https://ncrb.gov.in/sites/default/files/CII-2021/CII%202021%20SNAPSHOTS%20STATES.pdf.

Fromel, K., & Lang, M. (2020). *Academic stress and physical activity in adolescents.* Rockville: National Library of Medicine.

Reddy, K. J., & Menon, K. (2017). Understanding academic stress among adolescents. Artha-Journal of Social Sciences, 16(1), 39-52.

Meher, D. V. (2021). Psychological stress among higher secondary school students during the COVID era in relation to gender, caste, and locality. International Journal of Theory and Application in Elementary and Secondary School Education, 3(2), 22-38.

National Crime Records Bureau (NCRB). (2021). Crime in India 2021: Statistics Volume-1. New Delhi: Ministry of Home Affairs, Government of India.

Press Trust of India (PTI). (2022, April 4). 24 cases of suicides by students at central universities in 5 years: Govt tells Lok Sabha. The Economic Times of India.

Rao, A. S. (2020). Academic stress and adolescent distress: The experience of 12th standard students in Chennai, India (Unpublished master's thesis). The University of Arizona, University Libraries. Retrieved from http://hdl.handle.net/10150/194424.

Gaur, R. R., Sangal, R., & Bagaria, G. P. (2010). Foundation course in human values and professional ethics. New Delhi: Excel Books.

Selye, H. (1956). The stress of life. New York: McGraw Hill.

*****

Indian Democracy & Role Of Panchayathi Raj Institution & Ict In Empowerment Of Youth

Dr.S.NARAYAN
Associate Professor in Political Science,
Government First Grade College Arasikere,
Hassan(Dt).

ABSTRACT

These days Information and Communication technology is making way leaving behind traditional ways of learning . Students are exposed to technological devices outside the classroom such as smart phones , smart TVs, Interactive gadgets etc. But their classroom learning is still traditional . Ever expanding global demands for innovative technological applications in educational institutions.

Key words: Indian democracy , youth empowerment , role of ICT learning , Role of Panchayath raj institutions, strategies towards sustainability.

Introduction: Learning levels of the students are increasing , hence a teacher needs to update himself with global knowledge . Internet has made easy accessibility for teachers to enhance their knowledge horizon by providing accurate information & data hence it is reliable source of information. It is acclaimed as a time reduction technique to teach effectively in a time format. Besides it offers diversity of information & learning resources to both teachers & Students.

Indian government is making all round efforts to make learning sustainable through ICT mechanisms. But there are several hurdles such as

1. Lack of funding towards purchase of ICT equipments
2. Lack of ICT Trained personnel
3. Lack of technological infrastructure
4. Poor ICT staffing in educational Institutions
5. Poor supportive ICT learning resources
6. Poor capacity building mechanisms for sustainable mechanisms

Indian democracy is the largest democracies in the world with 125 billion people. India is a culturally plural country with heterogeneous population & managing the integrity of the nation is very difficult. Indian Population needs to level up with global standards in order to win the race of achieving political sustainability. There have been several policy interventions which have been formulated by the government of India towards ICT learning strategies.

1. Restructuring of academic curriculum
2. Formulation of New education policy with priority for ICT learning
3. Capacity building training for teachers / tutors
4. Amplifying research & development activities in education

NATIONAL POLICY ON ICT IN EDUCATION – Government of India Policy on Education gives emphasis for ICT learning . National policy on ICT in education wants to create an environment to develop a community knowledgeable about ICT an ICT literate community which can deploy , utilize benefit from ICT and contribute to nation building an environment of collaboration , cooperation and sharing , conductive to the creation of a demand for optimal utilization of and optimum returns on the potentials of ICT in education. (National Policy on ICT in school education department of school education and literacy ministry of human resource development government of India 2012)

THE FUNDAMENTAL ISSUES: Indian youth are suffering from several fundamental issues.

1. Unemployment
2. Right jobs
3. Seasonal joblessness
4. Suitable training
5. Sustainable livelihood options
6. Uneven access to higher education
7. Urban Rural divide
8. Lack of appropriate capacity building programs

9. Lack of support for educational loans

NEEDS OF DEMOCRACY: Indian Democracy being the largest in the world needs the support of individuals who can contribute to national progression through good educational infrastructure promotion . (National policy on ICT in school education department of school education and literacy , ministry of human resource development government of India 2012). There have been several policy interventions with which the government is promoting ICT learning to make students digitally literate.

1. National policy on education
2. Higher education policy
3. Government policy in ICT

1. Benefits to Students- ICT is favored to empower youth because learning through technology empowered learning leads to assessing the power of expression , it develops logical reasoning & thinking power among youth, development of precise judgement and decision making ability, improve comprehension & vocabulary build up creative methods of educational concept building . These qualities are necessary in a democracy because youth have to learn to reflect democratic values with good judgement.

2. Benefits to teachers – ICT technology helps the teachers to improve academic relations with one another. It helps to build good academic relationship with fellow teachers, with students, with institution , with community & with Nation's Progress. ICT helps to develop analysis of teacher thus effectiveness in his own approaches of teaching enhances.

3.Benefits to community - ICT technology helps the community to improve understanding with each other. The technological advancements which are pushing India towards becoming a global leader are to be understood by community stake holders uniformly. A community becomes more open to technological advancement when it comprehends the issues behind their introduction.

4. ICT Technology helps national progression – A Community can join hands in the national progression only when it reaches out to the technological applications. Government introduces several welfare programs for the poor, landless, labour class , women , students, rural poor etc in order to elevate their socio- economic status. People , who are the direct beneficiaries of these schemes need to respond to schemes. Several of the schemes are technology supported . Hence a community stakeholders need to know the benefits of ICT. A Community can join hands in the national progression only when it reaches out to the technological applications. Beneficiaries need to know the benefits of ICT learning for their children.

CHALLENGES: But there are several Challenges to ICT models of learning in India.

1. The students community might become techno – savvy which hampers democratic process because democracy needs youth who are empowered to face challenges , blend with community, participate in decision - making process.
2. The teaching faculty might become lazy & their preparedness for classes might be devalued. This is a serious issue as democracy success depends on youth participation & teachers who play a major role in molding the youth towards sharing their contribution towards national progression. (Jandhyala B.G Tilak (Ed.) Higher Education In India : In Search Of Equality, Quality And Quantity Orient Black Swan 2013.
3. The community might misuse the ICT learning resources & the Community should be motivated to be a part of the learning process & not their schools & colleges . Democratic institutions are always fed by youth who can work towards community empowerment . (Sugato Dasgupta ,, Amritha Dillon and Bhaskar Dutta (2001), "Electrical Goals and Center State Transfers in India "., processed , Indian Statistical Institute, New Delhi).
4. A Nation might forget its traditional learning methodologies & become a mere copier of western methods of teaching . This endangers the country's heritage.
5. As Indian educational policy is divided between

states and Center government , there are chances of duplication in application of ICT technology uniformly across India.

6. As India lacks trained personnel & staff for ICT teaching , there are issues towards their introduction in education in educational institutions.
7. Indian education system has been monitored by various agencies at various levels hence a uniform educational policy involving ICT is needed.

Conclusion: Thus ICT learning has been helpful for youth empowerment and there have been several optimistic exposition for ICT based learning resources applied in higher educational institutions across India. But India is a large democracy with plural cultural heterogeneity, hence it is difficult to bring out an uniform ICT application across all levels educational degrees. Indian government can think of adding ICT infrastructure to college on priority with providing adequate training to student and teachers on ICT usage. Democratic institutions can become a success through public sponsorship to ICT applications through community stakeholders . Central government can make funding through Private public partnerships on developing relevant ICT software / These measures can strengthen the grass root level democratic institutions with a strong technology savvy youth empowered to face any challenges.

REFERENCES:

1. Bhattacharya I. & Sharma , k . (2007), ' Indian in the knowledge economy – an electronic paradigm', international journal of educational management vol. 21 no.6,
2. National policy on ICT in school education department of school education and literacy ministry of human resource development government of India 2012
3. Vinod Kumar kanvaria – professional development & capacity building for teacher educators through ICT 2015
4. Huang . R- ICT In Global Context Comparative Reports 2013
5. Krishna, V.V. – Universities And Emerging National Innovations Systems, South Asian (Indian) Experience. 2007
6. K. Balasubramanian, Willie Clarke- Kah, "ICTs for higher Education. Background Paper From The Common Wealth Of Learning UNESCO," World Conference On Higher Education Paris, 2009.
7. Jandhyala B.G. Tilak (Ed.) Higher Education In India : In Search Of Equality, Quality An d Quantity Orient Black Swan 2013
8. Agarwal Pawan(Ed) – A Half Century Of Indian Higher Education Essays By Philip G Altbach Sage Publicatios 2013
9. Chenicheri Sid Nair, Len Webster, Patricia Markova , (Ed) – Leadership & Management Of Equality In Higher Education
10. Choudhury Kameshwari (Ed) Higher Education Reform In India Experience & Perspectives By Suma Chitnis Philip Altbach – Sociological Bulletin Vol 42 No 1 (March 1994) Indian Sociological Society Publication
11. Jandhyala B.G.Tilak (Ed) Higher education in India; In search of equality, quality and quantity orient black swan 2013
12. Kurien c t 50 years of higher education in India frontline Vol. 21 issue 06 march 2013 march 26 2004
13. Wildsvsky bell (Ed.) reinventing higher education – promises of innovation Harvard education press Harvard 2013

*****

Analysis of trends and challenges of urbanization and land use pattern. A case study of Lucknow city

-Dipti Maurya
Research Scholar,
Dept. of Geography,
S.K.D.C. Basti 227001,
email: diptimaurya007@gmail.com,
Mobile No. 8005312406

-Pradip Kumar
Professor & Head,
Dept. of Geography,
S.K.D.C. Basti 227001,
email: pradip.pks@gmail.com
Mobile No. 7007054569

Abstract

Urban growth has significantly impacted the livelihoods of city residents. This study examines how large-scale land use planning and small-scale land use dynamics influence urban vegetation and contribute to the urban heat island effect, where cities experience significantly higher temperatures than surrounding areas. Land use planning is a crucial aspect of urban development, ensuring sustainable growth and optimal land resource utilization by balancing environmental, economic, and social needs.

This research analyzes land use changes in Lucknow, India, over three decades (1992–2022), highlighting the impact of urbanization on green spaces. Using secondary data, census records, and research publications, the study assesses the spatial and temporal dynamics of land use. The findings reveal a significant transformation in land use, particularly the expansion of built-up areas. Between 1992 and 2022, the proportion of land covered by developed infrastructure increased from 23.27% to 50.77% of the total area. This substantial growth indicates rapid urbanization, leading to a shift from natural and agricultural landscapes to urban development.

The study concludes by emphasizing the need for sustainable land use strategies to mitigate the adverse effects of urbanization.

Keywords - Urbanization, Land Use Planning, GIS Analysis, Spatial Analysis, Urban Growth, Sustainable Development, Lucknow City

Introduction

Urbanization is a complex process that profoundly influences social, economic, and environmental structures. It refers to the increasing proportion of a population residing in urban areas, driven by factors such as rural-to-urban migration, natural population growth, and economic development (Patel et al., 2019). The process, while fostering economic growth and technological advancement, also brings about challenges such as environmental degradation, congestion, and strain on resources (Shukla & Jain, 2020). In developing countries like India, urbanization is occurring at an unprecedented rate, necessitating structured land use planning to ensure sustainable development. Why land use planning is needed as Land use planning is a strategic approach that guides the development and utilization of land resources in an optimal manner. It plays a crucial role in managing urban expansion, preserving green spaces, and ensuring the sustainable growth of cities (Verma & Garg, 2021). Without effective land use planning, rapid urbanization can lead to issues such as unregulated construction, loss of agricultural land, and ecological imbalances (Ankita, 2023). In India, where urban population growth is accelerating, structured planning is essential to accommodate the needs of expanding urban centers while safeguarding environmental resources.

Urban Growth and Land Use Trends in Lucknow

Lucknow, the capital city of Uttar Pradesh, has undergone significant transformation due to urbanization. The city's population has increased substantially, leading to a corresponding rise in built-up areas. Various studies have highlighted the rapid conversion of agricultural and forest lands into residential and commercial zones (Shukla et al., 2020). This shift has resulted in reduced green cover, increased pollution, and heightened pressure on infrastructure.

Total Reported Area and Land Use Change

One of the major concerns in Lucknow's urbanization process is the changing land use pattern. The total reported area of the city has been redefined multiple times due to administrative expansions and changes in land classification. The city's landscape has been altered by increased infrastructural development, leading to the encroachment of natural ecosystems(Ankita, 2025).

Area Under Forests

Forests and green spaces play a vital role in maintaining ecological balance. However, studies indicate a significant decline in forested areas in Lucknow. Over the last two decades, forest cover has decreased by approximately 42.73%, replaced by urban settlements and infrastructure projects (Verma & Garg, 2021). This loss of greenery has contributed to environmental challenges such as urban heat islands and reduced biodiversity.

Culturable Wasteland and Fallow Lands

Culturable wasteland refers to land that has the potential to be cultivated but remains unused. In Lucknow, rapid urban expansion has led to the conversion of cultivable lands into non-agricultural use. Similarly, fallow lands—both current and other than current—have seen substantial changes due to increasing urbanization (Shukla & Jain, 2020). The reduction in agricultural land poses challenges for food security and environmental sustainability.

Spatio-Temporal Urban Change and Growth Patterns

The spatial and temporal dynamics of urbanization in Lucknow can be analyzed through GIS and remote sensing techniques. These tools help in tracking urban expansion, identifying growth patterns, and assessing the impact of development on land use (Patel et al., 2019).

Urban Growth Trend Analysis

Lucknow's urban expansion follows multiple growth trends, each with distinct characteristics.

1. **Edge Development** - Expansion occurs at the periphery of the city, where previously undeveloped land is gradually incorporated into the urban fabric.
2. **Infill Development** - Vacant spaces within already developed areas are utilized for construction, optimizing land use within existing urban zones.
3. **Ribbon Development** - Growth occurs along major transportation routes, leading to linear urban expansion.

Leapfrog Development - Disconnected urban patches emerge away from the main city, often due to speculative real estate development (Verma & Garg, 2021).

These patterns influence the overall sustainability and functionality of urban growth. Understanding these dynamics enables policymakers to implement effective zoning regulations and infrastructure planning.

Environmental and Social Impacts of Urbanization

Urbanization brings about both positive and negative impacts. While it fosters economic development and modernization, it also exerts pressure on natural resources. Some of the key environmental and social consequences include:

- **Loss of Green Spaces** - The conversion of parks, forests, and agricultural lands into urban areas results in a decline in ecological services (Ankita, 2023).
- **Increased Pollution** - Industrialization and vehicular emissions contribute to air and water pollution (Shukla & Jain, 2020).
- **Traffic Congestion** - Rising population densities lead to increased vehicular traffic and associated infrastructure challenges (Patel et al., 2019).

Strain on Public Services - Urban expansion necessitates improvements in public utilities such as water supply, sewage systems, and waste management (Verma & Garg, 2021).

Need for Sustainable Urban Planning

To address these challenges, urban planning strategies must prioritize sustainability. This involves implementing green infrastructure, promoting mixed land use, and enforcing strict zoning laws. Policymakers must integrate environmental conservation with urban expansion to create resilient and livable cities.

The rapid urbanization of Lucknow presents both opportunities and challenges. While economic growth and infrastructural development are essential for progress, unregulated expansion can lead to significant

environmental and social issues. Effective land use planning is critical to managing urban growth in a sustainable manner. By utilizing GIS-based analysis and incorporating structured planning frameworks, urban policymakers can ensure that Lucknow develops in a balanced and sustainable way.

Urban sprawl in Lucknow is driven by several interrelated factors, primarily demographic, physical, economic, and governance-related. The city's population has been increasing due to both natural growth and migration, with people moving in search of better employment, education, and living standards. This influx has led to an ever-expanding urban landscape, extending beyond planned boundaries and encroaching upon rural and agricultural areas. The physical expansion of the city, often unregulated, has resulted in haphazard development without adequate infrastructure to support the growing population.

Economic factors also play a significant role in the city's urban sprawl. The availability of job opportunities attracts migrants from nearby towns and villages, while affordable housing in the outskirts encourages settlement beyond city limits. Additionally, land speculation by private developers has led to unchecked real estate expansion, making planned development difficult. Governance issues further exacerbate the situation, as the lack of effective urban planning, weak enforcement of regulations, and inadequate coordination between authorities have contributed to the disorderly growth of the city.

The consequences of this unregulated expansion are evident in various aspects of urban life. Strain on infrastructure, including roads, public transportation, water supply, and sanitation, has become a growing concern. Traffic congestion and pollution levels are increasing as the city's layout fails to support its rising population. Moreover, ecologically sensitive areas, such as wetlands and agricultural land, are being encroached upon, disrupting the environmental balance. Unequal distribution of civic amenities is another major issue, with the city core experiencing congestion while the outskirts remain underdeveloped, lacking essential services such as healthcare, education, and public transport. Without proper intervention and strategic urban planning, Lucknow's urban sprawl will continue to pose challenges for sustainable growth and development.

Study Area-

Lucknow is the capital city of the state Uttar Pradesh, the largest state of India. Lucknow is the 11th most populous city of India. The urban agglomeration is composed of Lucknow Municipal Corporation and the Lucknow Cantonment (Census of India). The district covers a geographical area of 2528 sq. km and is located about 300m above the mean sea level (Shukla et al.,2019).The study boundary extends from 26° 59' 57.93" N to 26° 42' 11.8" N latitude and 80° 46' 43.10" E to 81° 5' 7.16" Elongitude. An additional periphery of 10-12 sq. km. is also considered for study and analysis. The study area covers 523 sq.km of the study region.

Lucknow city lies on the bank of the river Gomti, which splits the city into two unequal halves -- trans-Gomati and cis-Gomati regions (Figure 1). Trans-Gomati region is located at the southern part of the Gomati river and carries a population density, i.e., urban core. Lucknow is one of the most rapidly growing cities of central India with a population of around 45,89,838 (Census of India) and having varied economic, physical and political features. The city enjoys three different seasons -- summer, monsoon, and winter. The mean annual rainfall is 1214.17 mm approx. and the maximum temperature is 48°C and the minimum is 6°C. The hottest months are May and June whereas, the coldest months are December and January. Shukla and Jain, 2019 found that the urban-rural transitions and transformations catalyzed the increase in LST. Singh et al., 2017 found the existence of an urban thermal environment in Lucknow city for the year 2002.

Lucknow has revolutionized from a small population center in 1972 to a big urbanized city in 2016 having varied economic, physical and political feature. It is the 11th most populous city of India (Census of India) and emerging as one of the most rapidly growing urban cities of Central India (Shukla and Jain, 2018).

Objective-

To analyse the changes in land use pattern in Lucknow city

To examine spatiotemporal analysis and urban expansion pattern in Lucknow city

Methodology-

This study employs secondary data sources, including census records, GIS analysis, and spatial analysis to track land use changes in Lucknow over three decades (1992–2022). GIS and remote sensing techniques were used to analyze spatial and temporal land use patterns.

Result and Discussion-

Changes in Land Use

1992-2022: Built-up areas increased from 23.27% to 50.77% of the total area, signaling rapid urbanization. Conversely, barren land decreased from 37.57% to 11.70%, and agricultural land declined from 2.76% to 13.42%, indicating land conversion for urban development(Mishra et al., 2023).

Table 1: Land Use pattern in Lucknow District (From 2001-02 to 2021-22)

Land Use Classes	**Area (in Hectares)**		**Change in Area (%)**
	2001-02	**2021-22**	
Total Reported Area	251853	238092	-5.46
	100%	100%	
Area under Forests	20967	12007	-42.73
	8.33%	5.04%	
Culturable Wasteland	7734	7001	-9.48
	3.07%	2.94%	
Current Fallows	26737	1782	-93.34
	10.62%	0.75%	
Fallow Land other than Current Fallows	14164	29552	108.64
	5.62%	12.41%	
Barren and Unculturable Land	8963	4123	-54
	3.56%	1.73%	
Area under Non-Agricultural use	27278	44640	63.65
	10.83%	18.75%	
Permanent Pastures	3104	3099	-0.16
	1.23%	1.30%	
Land under miscellaneous tree crops	3134	1975	-36.98
	1.24%	0.83%	
Net Area Sown	139772	133913	-4.19
	55.5%	56.24%	

Source: Based on Zila Sankhyiki Patrika of Lucknow,2003 and 2023

- **Land Allocation**: The area for residential purposes has increased to approximately two-thirds of Lucknow's proposed land use pattern. In absolute terms, the residential area increased by 11817.54 hectares1.
- **Commercial Land Use**: Land designated for commercial purposes increased from 2.43% to 4.3% of the total proposed area, which is a positive indicator for Lucknow's economy1.
- **Industrial Land Use**: There has been a decrease in industrial land allocation from 6.5% to 3.5%1.
- **Community Facilities**: The proportion of land used for community facilities and services has decreased from 9.83% to 5.4%1.

- **Water Bodies**: Water bodies have shrunk by 58.33% as a result of encroachment(*View of Analysis Of Urban Growth Dynamics Of Lucknow City_ A Gis Approach.Pdf*, n.d.). The decrease in water bodies from 1.43% to 1.36% also warrants attention(Mishra et al., 2023).

Urban Expansion Patterns

- **Spatiotemporal Analysis**: From 1991 to 2021, urban expansion in Lucknow was assessed using geospatial techniques and Landsat satellite data (Khan et al., 2024).
- **Types of Development**: Edge development accounted for 55.99% of urban expansion from 1991 to 2001, while ribbon development increased from 18.06% to 21.03% by 2021. Leapfrog development, considered unsustainable, rose from 12.35% in 1991 to 17.35% in 2021(Khan et al., 2024).
- **Directional Growth**: Development has been forced southward, north, and east due to a natural barrier of mango and green belt on the western side of the city(Patel et al., 2019).

Planning and Policy Implications

- **Master Plan Growth**: The area proposed in the master plan of Lucknow increased by 128.9%, from 9170.96 hectares to 20988.5 hectares1. The planning area has increased 1.5 to 2-fold, engulfing villages in the periphery(Plan & Issues, 2022).
- **Sustainable Development**: The changes in LULC have important implications for urban planning, environmental conservation, and sustainable development, calling for informed policies and strategies to manage urban growth while preserving the ecological balance(Mishra et al., 2023).
- **Infill Development**: Strategies such as urban growth boundaries and development impact fees for leapfrog developments can encourage compact metropolitan development and minimize the demand for development of underutilized areas(Khan et al., 2024).
- **TOD Concept**: Ring Roads are to be developed on the TOD (Transit Oriented Development) concept (Plan & Issues, 2022). Implementation of Transit Oriented Development (TOD) along corridors can help decrease reliance on private vehicles, improve access to public transport and promote compact urban forms (Khan et al., 2024).

The study of urban growth dynamics in Lucknow demonstrates the necessity for sustainable urban planning and management to balance development and environmental preservation(Mishra et al., 2023)(Khan et al., 2024).

Conclusion

Lucknow's urbanization presents both opportunities for economic growth and challenges related to sustainable development. Addressing these challenges through effective planning and policy measures is crucial for ensuring that the city's growth is environmentally sustainable and socially equitable.

1. **Migration Trends**

o Migration contributes significantly to urban expansion, with 37% of Lucknow’s population growth from 2001-2011 attributed to migrants.

o Employment, education, and better living conditions are the main reasons for migration.

o **Issues with Urban Expansion**

o Low population density within the city, leading to

outward migration.

o Speculative real estate development, making affordable housing scarce.

o Environmental concerns, including deforestation and encroachment on water bodies.

o Lack of coordination between urban planners, policymakers, and stakeholders.

o **Recommendations for Sustainable Urban Development**

o Integrated planning strategies involving town planners, geographers, and NGOs.

o Decentralization of services to balance urban development.

o Public awareness campaigns on the impact of urban sprawl.

Better land-use policies and infrastructure planning.

The study emphasizes that while urban growth is inevitable, it needs to be controlled through systematic planning and policy interventions. Lucknow's unplanned expansion must be managed to balance economic growth with environmental sustainability, ensuring a better quality of life for residents.

References

Ankita. (2025). *Spatio-temporal Analysis of Changes in Land-Use Pattern : A Case Study of Lucknow District*.

Khan, D., Khan, N., Choudhury, U., Singh, S. K., & Kanga, S. (2024). Urban Expansion and Spatial Growth Patterns in Lucknow : Implications for Sustainable Development (1991 – 2021). *Sustainability MDPI*, *17,227*. https://doi.org/Sushttps://doi.org/10.3390/su17010227

Mishra, U., Shukla, A. K., Singh, A., & Pradesh, U. (2023). *Analyzing the Evolution of Urban Sprawl in Lucknow City : A Comprehensive Study (1992-2022)*. *10*(9), 327–336.

Patel, U. B., Teli, B. L., Purohit, K. C., & Uttarakhand, P. (2019). *Directions of Urban Growthn Spatio-Temporal Analysis of Lucknow City*. *41* (2), 295–308.

Plan, D., & Issues, A. (2022). *NATIONAL URBAN PLANNING & MANAGEMENT CONCLAVE LUCKNOW-2022 Development Plan and Associated Issues and Challenges for Lucknow*.

View of Analysis Of Urban Growth Dynamics Of Lucknow City_ A Gis Approach.pdf. (n.d.).

Ankita. (2025). *Spatio-temporal Analysis of Changes in Land-Use Pattern : A Case Study of Lucknow District*.

Khan, D., Khan, N., Choudhury, U., Singh, S. K., & Kanga, S. (2024). Urban Expansion and Spatial Growth Patterns in Lucknow : Implications for Sustainable Development (1991 – 2021). *Sustainability MDPI*, *17,227*. https://doi.org/Sushttps://doi.org/10.3390/su17010227

Mishra, U., Shukla, A. K., Singh, A., & Pradesh, U. (2023). *Analyzing the Evolution of Urban Sprawl in Lucknow City : A Comprehensive Study (1992-2022)*. *10*(9), 327–336.

Patel, U. B., Teli, B. L., Purohit, K. C., & Uttarakhand, P. (2019). *Directions of Urban Growthn Spatio-Temporal Analysis of Lucknow City*. *41* (2), 295–308.

Plan, D., & Issues, A. (2022). *NATIONAL URBAN PLANNING & MANAGEMENT CONCLAVE LUCKNOW-2022 Development Plan and Associated Issues and Challenges for Lucknow*.

View of Analysis Of Urban Growth Dynamics Of Lucknow City_ A Gis Approach.pdf. (n.d.).

*****

प्रतिनिधित कथाओं में बाल किन्नर जीवन

सोमनाथ रामचंद्र चव्हाण
शोधार्थी
पुण्यश्लोक आहिल्यादेवी होलकर सोलापुर विश्वविद्यालय, सोलापुर

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध निबंध में प्रतिनिधित कथाओं में बाल किन्नरों का संघर्षमय जीवन चित्रित का अध्ययन किया गया है I भारतीय संस्कृति में स्त्री और पुरुष दोनों का भी अपना-अपना महत्वपूर्ण स्थान है उसके साथ ही ट्रांसजेंडर एवं किन्नर की समाज में एक विशिष्ट अहम् भूमिका या हिस्सा माना गया है I किंतु किन्नरों को आमतौर पर समाज से वंचित रखा जाता है I आज भी किन्नर की पहचान उसके बाल अवस्थाओं से ही होती है और फिर समाज उनके संदर्भ में उन्हें तुच्छ मानने लगता है I बाल जीवन से ही किन्नरों का पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्ष शुरू हो जाता है I बाल ट्रांसजेंडर को विविध समस्याओं का सामना करना पड़ता है I जैसे की शिक्षा संघर्ष, विषमता, भेदभाव एवं घृणा, शारीरिक शोषण आदि से उन्हें समाज के साथ संघर्ष करना पड़ता है किंतु फिर भी हृदय में समाज के प्रति स्नेह एवं प्रेम की भावना दिखाई देती है I बाल आयु से ही किन्नर बालकों में श्रृंगारिता, किन्नर होने के भावना जागृता एवं किन्नरों के प्रति प्रेम भाव उमड़कर आना आदि पहलू होते हैं I सच बात यह है की हम किन्नरों के संघर्ष और जीवन के संदर्भ में केवल लिख सकते हैं, बोल सकते हैं लेकिन किन्नर जीवन महसूस नहीं कर सकते हैं I इस शोध निबंध के माध्यम से प्रतिनिधित कथाओं में निर्माण हुए किन्नर जीवन को अंकित किया है I

बीज शब्द:-

बाल किन्नर, विषमता, भेदभाव एवं घृणा, श्रृंगारिता, आकर्षिता, शिक्षा, वंचित, हार्मोन्स, ट्रांसजेंडर

भारतीय में पौराणिक ग्रन्थों में किन्नर का महत्वपूर्ण जिक्र मिल जाता है I किन्नरों को विविध नाम से संबोधित किया जाता है I जैसे: हिजड़ा, छक्का किंतु समाज में उनसे उपेकक्षित रखा जाता है I भारत के हिंदी साहित्य क्षेत्र में बाल किन्नर पर ज्यादा आमतौर पर साहित्य लिखा नहीं हुआ किंतु किन्नरों का सही मायने में बाल जीवन ही किन्नर होने की भावना जागृत करने की आयु होती है I बाल अवस्था में ही बालक किन्नर होने के भाव दर्शाता है और फिर समाज में उनकी एक अलग पहचान निर्माण हो जाती है I बाल अवस्था ही बालक के किन्नर गुणों को बढ़ावा देकर उनके मन में किन्नर होने की भावना जागृत करता है I समाज में अपना अलग अस्तित्व निर्माण करने की होड़ से बाल किन्नर विविध समस्या से घिर जाता है I बालक बचपन में ही अपने जीवन शैली में किन्नर जीवन ज्ञापित करने प्रयत्न करता है I समाज में इसी गुणों के कारण बालकों में किन्नर का धब्बा लग जाता है और फिर किन्नर बालक को जीवन के व्यथाओं का सामना करना पड़ता है I आमतौर पर बालक का पहनाव, चाल-चलन, बर्तन ही उन्हें किन्नर समूह के ओर आकृषित हो जाता है और अपने परिवार के स्नेह से वंचित रह जाता है I विविध मुद्दों के आधार पर बाल किन्नर जीवन का सक्षम और विचारत्मक अध्ययन कर सकते हैं I

शिक्षा संघर्ष :-

शिक्षा बालक के जीवन का अहम हिस्सा माना जाता है क्योंकि बाल्यावस्था से ही बालक को शिक्षा प्राप्ति की इच्छा मन में होती है किंतु समाज साधारण बालक के प्रति सकारात्मक होता है बल्कि समाज ही नहीं उसका परिवार भी उसे शिक्षा प्रधान करने के लिए सजग होता है परंतु जब बालक किन्नर है ऐसा पता चल जाता है तो परिवारवाला समजा के कारण उसके शिक्षा पर रोख लगते हैं I किंतु अगर परिवार वाले राजी भी हो जाते हैं तो समाज उन किन्नरों को शिक्षा से वंचित रखने के लिए परिवार को बाध्य करता है I 'यमदीप' इस उपन्यास के माध्यम से नीरजा माधव ने किन्नर 'नन्दरानी' का मार्मिक चित्रण किया है l आठवी कक्षा से उसके माता-पिता के पत्ता चला की 'नंदारानी' किन्नर है I उसके शिक्षा के संदर्भ में लिखा है कि, "उनकी भी इच्छा थी कि वह आगे पढ़े लेकिन उसे घर को छोडकर हिजेड़ की दुनिया में लेकर जाने के बाद वहाँ का महताब गुरु कहता है उसकी माँ को यह आप नहीं, आपका प्रेम बोल रहा है, माताजी I किसी स्कूल में आज तक किसी हिजड़े को पढ़ते-लिखते देखा है? किसी कुरसी पर हिजड़ा बैठा है? पुलिस में, मास्टरी में, कलेक्टरी में, किसी में भी? अरे इसकी दुनिया यही है, माताजी I"[1]

नीरजा माधव कहती है कि किन्नर बालकों को शिक्षा के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है उनकी इच्छा भी होती है कि वह पढ़-लिखकर नौकरी करें उनका पूरा जीवन संघर्ष से घिरा रहता है I यमदीप इस उपन्यास के द्वारा समाज में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया है I

पारिवारिक संघर्ष :-

'उस दुनिया की ज्योति' इस कहानी के माध्यम से 'सुरेश' का बहुत मार्मिक एवं सजीव चित्रण करते हुए जयंती रंगनाथन लिखती है कि, "सुरेश चहता था कि वह अप्पा से कुछ ना कहे पर अम्मा ने अप्पा और मुरुगन को सब बातें बता दीं I सुरेश की बेहतर पिटाई हुई I अप्पा यह मानने को तौयारही नहीं थे कि उनके परिवार में ऐसा हो सकता है I चार दिन सुरेश को भूखा रखा गया I एक दिन वह भागकर मणिकंदन के घर गया I"[2] इस कहानी के माध्यम से जयंती ने उसके पारिवारिक संघर्ष पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है I अप्पा सुरेश को बहुत पिटते हैं उसका शारीरिक शोषण करते हैं I परिवार में उसका कोई स्थान नहीं है ऐसा उसे एहसास होता है तब सुरेश परिवार से भाग जाता है I जयंती ने समाज के सामने किन्नर जीवन के पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है I हमें अपने परिवार के सदस्य से बेहद प्रेम होता है परंतु जब वह सदस्य किन्नर है ऐसा पता होता है तो उसके लिए मन में घृणा उत्पन्न हो जाती है I सजीव चित्रण करते हुए समाज को एक संदेश देने कार्य किया है I

3. भेदभाव एवं घृणा :-

किन्नर बालक के साथ परिवार एवं समाज के लोग भेदभाव एवं घृणा के निगाह से देखते हैं I रश्मि दीक्षित ने 'नियति' इस कहानी के माध्यम से 'रितेश' का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है कि, "एक तो संतान हुई और वह भी ऐसा क्या पाप कर्म भोगने है हमें, और इस अबोध को जो इस रूप में पौदा हुआ I"[3] रश्मि दीक्षित के माध्यम से उसका बहुत ही सुंदर वर्णन किया है I जो दिल को बैचन करता है I उसके पिता को जब यह बात पता होती है कि उसका बेटा जो एकलौता है वह भी किन्नर है I फिर वह अपने आपको कोसते हैं और उसकी ओर घृणा के निगाह से देखते हैं I किंतु समाज में यह प्रथा बंद होनी चाहिए क्योंकि समाज जीने का हक्क किन्नर को भी है बात साहित्य के द्वारा खुलकर बताने का प्रयास किया है I

4. शारीरिक शोषण :-

बाल किन्नर जीवन में शारीरिक शोषण अत्यंत महत्वपूर्ण घटक माना जाता है I आधुनिक युग में बाल किन्नरों का विविध माध्यम से शारीरिक शोषण किया गया है I आज भी हम यह देखते हैं कि बाल किन्नरों का हमारे आस-पास शोषण किया जाता है परंतु उसकी भनक भी हमें नहीं होती है I कादंबरी मेहरा के माध्यम से 'हिजड़ा' इस कहानी की नायिका 'रागिणी' के बचपन पर हुए अत्याचार समाज के सामने लाते हुए लेखिका ने लिखा है कि, "शुरू शुरू में बहुत रोती थी..... पर अब इसे मजा आने लगा है I है न? इसकी जिज्जी नहा-धोकर इतर, पौडर लगाकर बिस्तर में जाती है और जीजा कोयले की कोठारी में टाट बिछाकर इसको रिझाता है..... गोबरचट्टे को कंडो की खुशबू आती है.... I"[4] कादंबरी मेहरा ने बाल किन्नर समाज का वास्तविक चित्रण समाज के सामने लाने प्रयास किया है I

5. श्रंगारिकता की लालसा :-

बालक के मन में जब किन्नर होने के भाव जागृत हो जाते हैं तब उसके मन में श्रंगारिकता की लालसा पौदा हो जाती है I वह खुद को हिजड़ा समझकर उनके जैसा रहन-सहन, चाल-चलन, बोल-चाल आदि का अनुकरण करता है I किन्नर के गुण उसमें अपने-आप ही आ जाते हैं I जयंती रंगनाथन ने 'उस दुनिया की ज्योति' इस कहानी के माध्यम से 'सुरेश' की दुःख भरी दास्तान अंकित करने का प्रयास किया है समाज में हम देखते हैं कि किन्नर स्त्री के पेहराव में दिखाई देते हैं I उसी तरह उसका सजीव मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है कि, "अम्मा से छिपकर सुरेश अक्सर उसकी साड़ी पहनता, गहने पहनता I अम्मा ने एक बार देख लिया I"[5] जयंती ने उसका चित्रण करते हुए उसके मन की भावना को प्रकट करने का प्रयास किया है I

6. किन्नर होने की भावना जागृत :-

समाज के परिवार में बालक का जन्म होता है किंतु कुछ बच्चों में जन्मजात ही हर्मोनिस की कमी होने के कारण उसका शरीर तो नर का होता है परंतु अंदर से वह नारी समान भाव जागृत होते हैं I उसके मन में खुद ब खुद किन्नर होने की भावना उत्पन्न होती है और वह उसी तरह बर्ताव करता है I 'सुरेश' इस बाल नायक द्वारा सजीव दास्तान समाज के सामने लाने का प्रयत्न जयंती रंगनाथन ने कहानी 'उस दुनिया की ज्योति' में किया है कि, "सुरेश ने खूब सुंदर-सी हरे रंग में लाल पाड़वाली साड़ी पहनी I नकली बालों की वेणी बनाई I ढेर सारे मोंगरे और कनकाबरम फूल लगाये I माथे पर कुंकुम I गले में फूलों की माला I हाथों में काँच की चुडियाँ I पैरों में फूलों की पायल I

आइने में जब अपने को देखा, तो लगा कि यही तो वह रूप है, जिसमें वह खुद को देखना चाहती है I जिस्म भले उसका एक नर का हो, अंदर से तो वह नारी है I"[6] उस दुनिया की ज्योति इस कहानी के माध्यम से जयंती ने सुरेश का बहुत ही मार्मिक वर्णन करते हुए समाज में किन्नरों के प्रति परिवर्तन हो जाए ऐसी आशा व्यक्त की है और हर बाल किन्नर को समाज में सम्मानपूर्ण उच्चा स्थान देने की अपील की है I

7. किन्नर समूह की ओर आकृषित :-

किन्नरों में बाल्यावस्था से ही किन्नर होने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है फिर समाज में आम आदमी बनकर जीना संभव नहीं होता है या उन्हें समझनेवाला अपना कोई नहीं होता है I इसीलिए समाज में किन्नर आम मनुष्य के तरह जीवन यापित करना मुश्किल हो जाता है I इसी कारण खुद को उन्हें समाज की ओर आकृष्ट होने के लिए वह बाल किन्नर बाध्य होता है I उनकी भावना को समझनेवाला उनका सखा एक किन्नर ही होता है I उनके सुख-दुःख में, अच्छे-बुरे वक्त में उनका साथ देने वाला एक किन्नर ही है और इसी धरती पर उन समूह के साथ जीवन ज्ञापित करते हैं I जयंती रंगनाथन ने 'उस दुनिया की ज्योति' में 'सुरेश' विविध पहलू को उजगर करते हुए लिखा है कि, "हवेली के अंदर हलचल- सी थी I सधे पाँवों से वह अंदर बढ़ा I दालान में वे लोग थे I नाचते गाते.....सुरेश को देखकर सब ठिठक गये I उनमें जो सबसे लंबा था I उसने कड़कड़र पूछा, 'ऐ लड़के, यहाँ क्या करने आया है? चल भाग I 'सुरेश रोने लगा, जोर-जोर से और भाग कर उनके गले लग गया I"[7] जयंती के माध्यम से सुरेश के विविध पहलू का चित्रण करने का प्रयास किया है क्योंकि आज किन्नर समूह समाज से कोसों दूर है इसका सजीव वर्णन करते हुए किन्नर को समाज में मान -सम्मान मिल जाए यही कमाना की है I

निष्कर्ष :-

साहित्य समाज में 'हिजड़ों के प्रति नयी उमंग उत्पन्न एवं अच्छा व्यवहार विकसित करने का प्रयत्न करता है I किन्नरों के जीवन पर आधारित कथाओं को पढ़कर समाज में किन्नरों के प्रति परिवर्तन होता है इसी आशा के साथ साहित्य की निर्मिती की जाती है परंतु अभी भी बाल साहित्य के माध्यम से किन्नर समजा के समस्त पीडाओं को विभिन्न समस्याओं को दूर दृष्टि से विवेचन करने की आवश्यकता महसूस हो रही है I साहित्य के द्वारा उपेक्षित वर्ग की आवाज जन-जन तक जा सकती है I यही आशावाद उत्पन्न हो जाये I बाल साहित्य किन्नर विमर्श को आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है I

सच बात तो यह है कि वर्तमान समय में बड़ी मात्रा में यह भी आवश्यकता है कि समाज में किन्नर के प्रति अपनी धारणा एवं विचारों में परिवर्तन करना होगा क्योंकि इस समाज सिर्फ दुआ, नाच-गाने एवं मनोरंजन के लिए जन्म नहीं लिए है इन्हें भी हक्क है कि यह गरिमा से परिपूर्ण विकासशील जीवन यापन करें I

संदर्भ ग्रंथ सूचि :-

1. नीरजा माधव- यमदीप, पृ. 94
2. गद्यांकुर- संपादक डॉ. अनिल सालुखे, उस दुनिया की ज्योति-जयंती रंगनाथन, पृ. 30
3. रश्मि दीक्षित- नियति, पृ. 87
4. कांदबरी मेहरा- हिजड़ा, पृ. 85
5. गद्यांकुर- संपादक डॉ. अनिल सालुखे, उस दुनिया की ज्योति-जयंती रंगनाथन, पृ. 31
6. गद्यांकुर- संपादक डॉ. अनिल सालुखे, उस दुनिया की ज्योति-जयंती रंगनाथन, पृ. 25
7. गद्यांकुर- संपादक डॉ. अनिल सालुखे, उस दुनिया की ज्योति-जयंती रंगनाथन, पृ. 27

*****

पाठ्य पुस्तकों तथा पाठ्य सामग्री द्वारा कौशलों का विकास: विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं 21 वीं शताब्दी के निहितार्थ

-डॉ. अलका मुद्गल,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
एमिटी इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन,
एमिटी विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश नोएडा

-कृति गुलेरिया,
पीएच.डी. शोध छात्रा,
एमिटी इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन,
एमिटी विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश नोएडा

सारांश

21वीं शताब्दी तकनीकी विकास, वैश्वीकरण और निरंतर बदलते समाज का युग है। इस युग में केवल परंपरागत ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है; व्यक्तियों को ऐसी क्षमताओं और कौशलों की आवश्यकता है जो उन्हें जटिल समस्याओं को हल करने, विचारशील निर्णय लेने और प्रभावी ढंग से संवाद करने में सक्षम बनाएं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इन आवश्यकताओं को पहचान कर शिक्षा प्रणाली को इन कौशलों के विकास पर केंद्रित किया है। इन क्षमताओं को सामूहिक रूप से 21वीं सदी के कौशल कहा जाता है, जिनमें प्रमुख रूप से आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, संवाद, सहयोग, और डिजिटल साक्षरता शामिल हैं। आलोचनात्मक चिंतन का अर्थ है किसी जानकारी को गहराई से समझना, उसे प्रश्नों के आधार पर परखना और उसके पीछे के तर्क को विश्लेषित करना। यह कौशल छात्रों को तथ्यों और धारणाओं के बीच अंतर करने और समस्याओं के व्यावहारिक समाधान खोजने में सक्षम बनाता है। सृजनात्मकता का उद्देश्य नए और अभिनव विचारों को जन्म देना है, जो केवल कलात्मक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि किसी भी समस्या को हल करने में भी सहायक है। डिजिटल साक्षरता, जो इस युग में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, व्यक्तियों और शिक्षकों को तकनीकी उपकरणों और ऑनलाइन संसाधनों का प्रभावी उपयोग करने की क्षमता प्रदान करती है।

इस लेख में आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, संवाद, सहयोग, और डिजिटल साक्षरता जैसे 21वीं सदी के आवश्यक कौशलों को विकसित करने के मुद्दों पर चर्चा की गई है। इसमें यह भी बताया गया है कि शिक्षा इन कौशलों को बढ़ाने का सबसे प्रभावी माध्यम है, जो पाठ्यक्रम के निर्माण, व्यावहारिक अनुभव, और सहभागितापूर्ण शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से संभव है।

लेख में पाठ्य पुस्तकों और पारंपरिक शैक्षणिक सामग्री की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। यह लेख स्पष्ट करता है कि पाठ्य पुस्तकें एक संगठित तरीके से ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ 21वीं सदी के कौशलों को विकसित करने में भी सहायक होती हैं। हालांकि डिजिटल संसाधनों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन लेख पारंपरिक पुस्तकों और आधुनिक तकनीकी साधनों के संतुलित उपयोग के महत्व पर जोर देता है।

महत्वपूर्ण शब्द: 21वीं सदी के कौशल, पाठ्य पुस्तकें, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

परिचय: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में 21वीं सदी के कौशलों का विकास

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रणाली को ऐसा रूप देना है, जो 21वीं सदी के कौशलों के विकास को प्रोत्साहित करे। इसमें केवल सैद्धांतिक ज्ञान के बजाय व्यावहारिक, प्रायोगिक, और परियोजना-आधारित शिक्षण पर जोर दिया गया है। नीति यह सुनिश्चित करती है कि शिक्षा के माध्यम से छात्रों में आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, समस्या समाधान, संवाद और सहयोग कौशल, डिजिटल साक्षरता, और निर्णय लेने की क्षमता विकसित हो। आज की तकनीकी प्रगति और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के युग में, ये कौशल छात्रों को बदलती परिस्थितियों और जटिल समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बनाएंगे।

इसके अलावा, नीति स्थानीयता और वैश्विकता के बीच संतुलन बनाते हुए बहुभाषी शिक्षा, सांस्कृतिक जागरूकता, और नैतिक मूल्यों पर भी जोर देती है। परियोजना-आधारित शिक्षण, STEAM शिक्षा (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, कला और गणित), और आजीवन सीखने की संस्कृति को बढ़ावा देकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 यह सुनिश्चित करती है कि शिक्षा छात्रों को रोजगार के लिए तैयार करने के साथ-साथ जिम्मेदार नागरिक भी बनाए। यह नीति भारत के आत्मनिर्भर भारत और वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था में योगदान देने के लक्ष्यों को साकार करने का मार्ग प्रशस्त करती है।

शिक्षा के माध्यम से 21वीं सदी के कौशलों को विकसित करने की आवश्यकता

21वीं सदी में शिक्षा का उद्देश्य केवल विषय-विशेष का ज्ञान प्रदान करना ही नहीं है, बल्कि छात्रों को ऐसे कौशलों से सुसज्जित करना है जो उन्हें बदलते समय और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने में मदद करें। आज के युग में जहाँ तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण, और जटिल समस्याएँ हमारे सामने हैं, शिक्षा को एक ऐसे माध्यम के रूप में देखा जा रहा

है, जो व्यक्तियों को न केवल व्यवसायिक सफलता के लिए बल्कि एक बेहतर नागरिक बनने के लिए तैयार करे।

- **आलोचनात्मक चिंतन** जैसे कौशल आज जरूरी हैं ताकि व्यक्ति जानकारियों का विश्लेषण कर सकें और सही निर्णय ले सकें।
- **सृजनात्मकता** नवाचार और नई खोजों के लिए आवश्यक है, जो छात्रों को पारंपरिक सोच से आगे बढ़ने में मदद करती है।
- **संचार और सहयोग** छात्रों को व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन में बेहतर संबंध और टीम वर्क स्थापित करने के लिए तैयार करते हैं।

डिजिटल साक्षरता जैसे कौशल, तकनीकी उपकरणों और संसाधनों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित करते हैं, जो आज हर क्षेत्र में आवश्यक है।

पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों की भूमिका: पारंपरिक लेकिन प्रभावी माध्यम

पुस्तकें और पाठ्य पुस्तकें हमेशा से ही शिक्षा का अभिन्न हिस्सा रही हैं और इनका महत्व कभी भी कम नहीं हुआ है, भले ही तकनीकी उपकरण और डिजिटल संसाधन शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से प्रवेश कर चुके हों। पुस्तकों की भूमिका पारंपरिक होने के बावजूद आज भी शिक्षा में महत्वपूर्ण और प्रभावी बनी हुई है। ये न केवल ज्ञान का स्रोत हैं, बल्कि छात्रों को 21वीं सदी के कौशलों को विकसित करने के लिए प्रेरित भी करती हैं।

- **ज्ञान का संरचित और व्यवस्थित स्रोत**

पुस्तकें और पाठ्य पुस्तकें किसी भी शैक्षिक प्रणाली का मुख्य आधार होती हैं। ये विषयों को एक संरचित और क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करती हैं, जिससे छात्र किसी भी विषय को समझने में आसानी महसूस करते हैं। पाठ्य पुस्तकें विशेष रूप से छात्रों के लिए डिज़ाइन की जाती हैं, ताकि वे अपने अध्ययन के दौरान आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त कर सकें। चाहे वह गणित, विज्ञान, भाषा, या इतिहास हो, पाठ्य पुस्तकें सभी विषयों के मूल सिद्धांतों और विचारों को एक व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करती हैं, जो छात्रों को गहराई से समझने में मदद करती हैं।

- **आलोचनात्मक चिंतन और समस्या समाधान में सहायक**

पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों में प्रस्तुत सामग्री का एक उद्देश्य केवल तथ्यों को सीखना ही नहीं होता, बल्कि यह छात्रों को आलोचनात्मक चिंतन और समस्या समाधान में सक्षम भी बनाती हैं। कई पाठ्य पुस्तकों में केस स्टडीज़, अभ्यास, और समस्याएँ होती हैं, जो छात्रों को अपने ज्ञान का विश्लेषण करने और उसे वास्तविक दुनिया की स्थितियों में लागू करने के लिए प्रेरित करती हैं। उदाहरण के लिए, गणित की पाठ्य पुस्तकें समस्या समाधान के उदाहरण और अभ्यास प्रदान करती हैं, जो छात्रों के तर्क और विश्लेषणात्मक कौशल को बढ़ावा देती हैं (Brookfield, 2012)।

- **सृजनात्मकता और नवाचार के लिए प्रेरणा**

पुस्तकें केवल ज्ञान का संकलन नहीं होतीं, बल्कि वे छात्रों की सृजनात्मकता और कल्पनाशक्ति को भी बढ़ावा देती हैं। साहित्य, कला, और शिल्प जैसी विषयों की पुस्तकें छात्रों को नए विचारों और अवधारणाओं के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। कल्पनाशक्ति और रचनात्मक विचारों को उत्तेजित करने के लिए किताबें सबसे प्रभावी माध्यम मानी जाती हैं। विशेष रूप से साहित्यिक पुस्तकों और कथा-रचनाओं के माध्यम से छात्र विभिन्न दुनिया और परिप्रेक्ष्य को समझते हैं, जो उन्हें नई दृष्टि और विचारों को विकसित करने में मदद करती हैं।

- **संचार और सहयोग कौशल का निर्माण**

पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से छात्रों को संवाद और सहयोग के विभिन्न तरीके सिखाए जाते हैं। शिक्षक अक्सर पुस्तकों का उपयोग समूह चर्चा, परियोजना कार्य और सहकारी अध्ययन गतिविधियों में करते हैं, जिससे छात्रों के संवाद कौशल में सुधार होता है। पाठ्य पुस्तकों में दिए गए समूह गतिविधियाँ और सवाल-उत्तर के अभ्यास विद्यार्थियों को आपस में बातचीत करने और विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, जो उनके सामाजिक और व्यवसायिक जीवन के लिए जरूरी हैं।

- **डिजिटल साक्षरता में भूमिका**

हालांकि हम एक डिजिटल युग में रहते हैं, जहां जानकारी और शिक्षा के साधन अधिकतर ऑनलाइन होते हैं, फिर भी पाठ्य पुस्तकें एक स्थिर और स्थायी स्रोत के रूप में कार्य करती हैं। वे डिजिटल साक्षरता की नींव भी रखती हैं, क्योंकि अधिकांश शैक्षिक पाठ्यक्रमों में पुस्तकें और पाठ्य पुस्तकें पहला कदम होती हैं। डिजिटल उपकरणों के माध्यम से ऑनलाइन किताबें और ई-पुस्तकें भी अब छात्रों के लिए उपलब्ध हैं, जिससे वे कहीं से भी और कभी भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से 21वीं सदी के कौशल विकसित करने के तरीके

1.आलोचनात्मक चिंतन और समस्या समाधान कौशल में योगदान

- पाठ्य पुस्तकों में दिए गए केस स्टडी, प्रश्नोत्तर और अभ्यास द्वारा तार्किक चिंतन का विकास।
- साहित्य और गैर-कथा साहित्य पढ़ने से विचारों का विश्लेषण और स्वतंत्र दृष्टिकोण बनाना।

STEM आधारित पाठ्य पुस्तकों का उदाहरण: समस्या समाधान क्षमताओं का विकास।

2. सृजनात्मकता और कल्पनाशक्ति को बढ़ावा

- साहित्य और कहानी आधारित पुस्तकों से रचनात्मक सोच को प्रोत्साहन।
- कला, डिज़ाइन और साहित्यिक पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से नवीन विचारों का विकास।

प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण में पुस्तकों का उपयोग।

3. संवाद और सहयोग कौशल का निर्माण

- पाठ्य पुस्तकों में दिए गए समूह गतिविधियाँ, चर्चा और भूमिका निभाने के अभ्यास।
- भाषा और व्याकरण आधारित पाठ्य पुस्तकों से प्रभावी संवाद कौशल का विकास।

समूह परियोजनाओं में पाठ्य पुस्तकों का योगदान।

4. डिजिटल साक्षरता और आजीवन शिक्षा में समर्थन

- पारंपरिक पाठ्य पुस्तकों से ई-पुस्तकों और डिजिटल प्रारूपों में बदलाव।
- शैक्षिक ऐप्स और प्लेटफ़ॉर्म जो पाठ्य पुस्तकों की सामग्री को समाविष्ट करते हैं। विशेष विशेष रूप से एनसीईआरटी नई दिल्ली द्वारा विकसित डिजिटल सामग्री निर्माण एक प्रभावी कदम है।

पुस्तकों के माध्यम से डिजिटल संसाधनों के जिम्मेदार उपयोग और नैतिकता सिखाना।

5. भावनात्मक और सामाजिक बुद्धिमत्ता को बढ़ावा

- पुस्तकों के माध्यम से सहानुभूति, करुणा और विविध दृष्टिकोणों की समझ का विकास।

आत्मकथाएँ, सांस्कृतिक अध्ययन, और मनोविज्ञान आधारित पुस्तकों का प्रभाव।

पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता और समावेशिता को प्रोत्साहन।

चुनौतियाँ और भविष्य का मार्ग: पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों का आधुनिक शिक्षा में समावेश

पाठ्य पुस्तकें और पारंपरिक पुस्तकें शिक्षा के प्रभावी और स्थिर स्रोत के रूप में मानी जाती हैं। हालांकि, 21वीं सदी के शिक्षा क्षेत्र में तकनीकी प्रगति और डिजिटल संसाधनों की बढ़ती उपयोगिता ने इन पारंपरिक रूपों को चुनौती दी है। आज के डिजिटल युग में, जब शिक्षा में टेक्नोलॉजी का प्रभाव बढ़ रहा है, तो पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों को समकालीन शिक्षा में प्रभावी रूप से शामिल करने के लिए कई चुनौतियाँ सामने आ रही हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में डिजिटल उपकरणों और ऑनलाइन संसाधनों का अत्यधिक उपयोग बढ़ा है। स्मार्टफोन, टैबलेट, और कंप्यूटर जैसे उपकरणों ने सीखने की प्रक्रिया को तीव्र और सुलभ बना दिया है। इस बदलाव के साथ, पारंपरिक पुस्तकों की भूमिका को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस हो रही है।

1. डिजिटल उपकरणों पर अत्यधिक निर्भरता:

डिजिटल संसाधनों पर छात्रों और शिक्षकों की बढ़ती निर्भरता पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों की प्रासंगिकता को कम कर सकती है। ऑनलाइन पाठ्य सामग्री, वीडियो लेक्चर, और ई-बुक्स ने पारंपरिक पुस्तकों के स्थान पर एक नया मार्ग प्रशस्त किया है। हालांकि यह सुविधा और गति प्रदान करता है, परंतु इससे छात्रों की वास्तविक, गहन अध्ययन की आदत प्रभावित हो सकती है, क्योंकि डिजिटल सामग्री जल्दी उपलब्ध हो जाती है और इसमें गहराई से अध्ययन की प्रक्रिया नहीं होती। इसके अतिरिक्त, डिजिटल उपकरणों पर समय बिताने से छात्रों की मानसिक थकान और संज्ञानात्मक प्रभाव भी बढ़ सकते हैं (Guthrie, 2011)।

2.**संसाधनों की कमी और बुनियादी ढाँचे का अभाव:** कई स्कूलों और क्षेत्रों में आज भी उचित बुनियादी ढाँचा और तकनीकी संसाधन उपलब्ध नहीं हैं। जहां कुछ विद्यालयों में इंटरनेट और स्मार्ट उपकरणों की उपलब्धता है, वहीं कई स्थानों पर ये साधन अभी भी सीमित हैं, जिससे पारंपरिक पुस्तकों की महत्वता और अधिक बढ़ जाती है।

पाठ्यक्रम निर्माताओं की ज़िम्मेदारी:

1. **पुस्तकों को प्रासंगिक और रोचक बनाना :** पाठ्य पुस्तकें हमेशा से एक शिक्षण उपकरण रही हैं, लेकिन अब पाठ्यक्रम निर्माताओं के लिए यह और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है कि वे पाठ्य पुस्तकों को प्रासंगिक, समकालीन, और रोचक बनाएँ। आधुनिक छात्रों की रुचियाँ और जरूरतें बदल चुकी हैं, और इन्हें ध्यान में रखते हुए पाठ्य पुस्तकें तैयार की जानी चाहिए।
2. **नवीन और समकालीन सामग्री का समावेश:** पाठ्य पुस्तकें केवल एक पारंपरिक स्रोत न बनकर उन्हें छात्रों के जीवन से संबंधित और वर्तमान मुद्दों पर आधारित होना चाहिए। पाठ्यक्रम में सामाजिक, सांस्कृतिक, और वैज्ञानिक बदलावों का समावेश करके, पुस्तकों को छात्रों के लिए और अधिक रोचक बनाया जा सकता है।
3. **इंटरैक्टिव सामग्री का उपयोग:** पारंपरिक रूप में पुस्तकों को पढ़ने के साथ-साथ, पाठ्य पुस्तकें अब इंटरैक्टिव और मल्टीमीडिया

आधारित हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, चित्र, ग्राफिक्स, आरेख, और वीडियो लिंक को सम्मिलित किया जा सकता है, जिससे छात्रों का ध्यान और रुचि बनाए रखना आसान हो सके।

4. **शिक्षकों द्वारा पहल:** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को प्रभावी रूप से सफल बनाने के लिए शिक्षकों को आगे आकर बहुभाषिकता पर जोर देना होगा। एक बहुभाषी पुस्तकों की भी रचना करनी होगी।

पारंपरिक पुस्तकों और आधुनिक तकनीकी शिक्षण संसाधनों के संयोजन का सुझाव

भविष्य में शिक्षा को पारंपरिक और आधुनिक शैक्षिक संसाधनों के संयोजन के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें डिजिटल उपकरणों और पुस्तकें दोनों का संतुलित उपयोग की परिकल्पना की गई है।

1. **संयोजन का लाभ:** पारंपरिक पुस्तकों और डिजिटल संसाधनों को एक साथ इस्तेमाल करने से छात्रों को दोनों प्रकार के संसाधनों का लाभ मिलेगा। उदाहरण के लिए, पाठ्य पुस्तकों का गहन अध्ययन और उन्हें ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म पर उपलब्ध वीडियो, पॉडकास्ट और ई-लर्निंग मॉड्यूल्स के साथ संयोजन छात्रों के सीखने के अनुभव को अधिक समृद्ध बना सकता है।
2. **हाइब्रिड लर्निंग मॉडल:** हाइब्रिड लर्निंग मॉडल, जिसमें डिजिटल और पारंपरिक सामग्री का संयुक्त उपयोग होता है, एक प्रभावी तरीका हो सकता है। इस मॉडल में शिक्षक डिजिटल और शारीरिक पुस्तकों का संतुलित उपयोग कर सकते हैं, ताकि छात्रों को एक व्यापक और विविध अध्ययन अनुभव मिल सके।
3. **शिक्षक की भूमिका:** शिक्षक, जो इन दोनों संसाधनों के संयोजन को समझते हैं, छात्रों के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य कर सकते हैं। वे छात्रों को टेक्नोलॉजी के सही उपयोग के लिए मार्गदर्शन दे सकते हैं और साथ ही पारंपरिक पुस्तकों के माध्यम से गहन अध्ययन की दिशा में भी उनका मार्गदर्शन कर सकते हैं।

निष्कर्ष

21वीं सदी में शिक्षा का परिप्रेक्ष्य तेजी से बदल रहा है, और इस बदलाव में पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों का महत्व अब भी अत्यधिक प्रासंगिक बना हुआ है। हालांकि, तकनीकी विकास और डिजिटल संसाधनों के बढ़ते उपयोग ने शिक्षा के तरीके को परिवर्तित किया है, फिर भी पारंपरिक पुस्तकों की भूमिका अनिवार्य बनी हुई है। पाठ्य पुस्तकें ज्ञान का व्यवस्थित, संरचित और गहन रूप प्रदान करती हैं, जो छात्रों को विषय की समझ को गहरा करने और 21वीं सदी के आवश्यक कौशल जैसे आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता, संवाद, और सहयोग को विकसित करने में मदद करती हैं।

हालांकि, डिजिटल उपकरणों पर अत्यधिक निर्भरता और शिक्षण संसाधनों में तकनीकी बदलावों के कारण पारंपरिक पुस्तकों की उपयोगिता को लेकर कुछ चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं, इन समस्याओं का समाधान पुस्तकों और आधुनिक तकनीकी संसाधनों के संयोजन से संभव हो सकता है। पाठ्य पुस्तकें और डिजिटल सामग्री का संतुलित उपयोग शिक्षा को और अधिक प्रभावी और समग्र बना सकता है। पाठ्यक्रम निर्माताओं को इस दिशा में अपने प्रयासों को बढ़ाते हुए पाठ्य पुस्तकों को प्रासंगिक, रोचक और समकालीन बनाने की आवश्यकता है, ताकि छात्र इन पुस्तकों से जुड़े रहें और अधिक गहन तरीके से ज्ञान प्राप्त कर सकें।

भविष्य में, हमें पारंपरिक और डिजिटल शैक्षिक संसाधनों का संतुलित उपयोग करते हुए एक समग्र शिक्षा प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है, जो छात्रों को न केवल विषय सामग्री में पारंगत बनाए, बल्कि उन्हें 21वीं सदी के कौशलों से भी सशक्त करे। शिक्षक और पाठ्यक्रम निर्माता इस बदलाव के सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ हैं, जो पाठ्य पुस्तकों और आधुनिक तकनीकी संसाधनों के संयोजन से छात्रों के लिए सर्वोत्तम शिक्षा अनुभव सुनिश्चित कर सकते हैं।

इस प्रकार, पाठ्य पुस्तकों और आधुनिक तकनीकी संसाधनों का संतुलित और प्रभावी उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में सुधार और छात्र विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा।

संदर्भ

गुथरी, जे. टी. (2011). *साक्षरता शिक्षा में सर्वोत्तम प्रथाएँ* (Best Practices in Literacy Instruction). गिल्फोर्ड पब्लिकेशंस।

बुकफील्ड, एस. (2012). *आलोचनात्मक चिंतन के लिए शिक्षा* (Teaching for Critical Thinking). जोसी-बास।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को). (2015). *शिक्षा 2030: इंचियोन घोषणापत्र और क्रियावली ढांचा* (Education 2030: Incheon Declaration and Framework for Action). यूनेस्को।

शर्मा, र. (2017). *आधुनिक शिक्षा और डिजिटल संसाधनों का प्रभाव* (Impact of Modern Education and Digital Resources). शिक्षा और समाज, 45(2), 89-102।

सिंह, ए. (2020). *पारंपरिक पुस्तकों और डिजिटल संसाधनों का सामंजस्यपूर्ण उपयोग* (Integrating Traditional Books and Digital Resources in Education). शैक्षिक अनुसंधान पत्रिका, 12(1), 56-64।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, एनसीईआरटी नई दिल्ली

*****

'बुनियाद' विभाजन की दास्ताँ

-डॉ. कविता शर्मा
अतिथि प्रवक्ता (एन. सी. वेब.)
पी.जी. डी. ए. वी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

दूरदर्शन पर 'सोप ऑपेरा' की शुरूआत करने वाले प्रख्यात लेखक 'मनोहर श्याम जोशी' द्वारा लिखित धारावाहिक है 'बुनियाद'। 1986 में जिसका प्रसारण दूरदर्शन पर हुआ। 105 एपिसोड का यह धारावाहिक विभाजन के दौर की दास्ताँ को बयान करता है। आज़ादी से पहले और बाद की कहानी को इस धारावाहिक में बखूबी दिखाया गया है। इस धारावाहिक के लेखक मनोहर श्याम जोशी लेखन की दुनिया में बहुप्रचलित नाम हैं जिन्होंने लेखन की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई। उनकी प्रसिद्धि का अन्दाज़ा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि धारावाहिक जैसे दृश्य-श्रव्य माध्यम जिसमें, दृश्य ही उसकी पहचान होती है, उसकी कहानी के लेखक के नाम में दर्शकों की खास रुचि नहीं होती, ऐसे में मनोहर श्याम जोशी को 'बुनियाद' के लेखन के रूप में विशेष रूप से पहचान मिली। 'बुनियाद' की लोकप्रियता से उस समय से लेकर आज तक हम सभी परिचित हैं। यही कारण है कि समय-समय पर दूरदर्शन पर इसका प्रसारण किया जाता रहा है। धारावाहिकों का यह वह दौर था जब 'रामायण', 'महाभारत' जैसे धार्मिक धारावाहिक प्रसारित हो रहे थे और उनकी लोकप्रियता का स्तर बहुत ऊँचा था। ऐसे में 'हम लोग', 'बुनियाद' जैसे धारावाहिकों का लोकप्रिय हो जाना भी इसकी बेहतरीन कथावस्तु, पात्र-संयोजना, देशकाल-वातावरण, संवाद आदि के सफल प्रस्तुतिकरण का ही संकेत कहा जाएगा। इसके अतिरिक्त भी 'मुंगेरीलाल के हसीन सपने', 'कक्काजी कहिन', 'हमराही' आदि धारावाहिकों का लेखन इसके अतिरिक्त भी 'मुंगेरीलाल के हसीन सपने', 'कक्काजी कहिन', 'हमराही' आदि धारावाहिकों का लेखन भी मनोहर श्याम जोशी ने किया। उनके द्वारा लिखित इन धारावाहिकों के संदर्भ में कहा जाता है कि " 'हमलोग', 'बुनियाद', 'हमराही', 'मुंगेरीलाल के हसीन सपने', 'कक्काजी कहिन' जैसे टेलीविज़न के इतिहास में आरंभिक धारावाहिकों का सृजन करने वाले जोशी इनके माध्यम से मनोरंजन नहीं करते, बल्कि बदलते समाज की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। इनके चरित्र आम भारतीय जन हैं जिनके विकास का मान भारतीय विकास का तापमान बनता है ये धारावाहिक एक तरह से भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन है, खासकर स्वाधीनता संघर्ष से लेकर पंचवर्षीय योजनाओं के लागू होने पर चमकीले सपनों के टूटने-बिखरने का। 'हमलोग' और 'बुनियाद' जैसे धारावाहिकों का तो अब अध्ययन करने की जरूरत है कि भारतीय जनता की उम्मीदों के बरक्स व्यवस्था की भूमिका को जोशीजी ने कितने स्तरों पर देखा है। हिन्दी के माध्यम से जोशीजी ने धारावाहिकों के लेखन में जिस तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है उसमें जो समाजशास्त्रीय दूरदर्शिता दिखाई है वह अन्यतम है।"1 मनोहर श्याम जोशी का अन्तिम धारावाहिक 'गाथा' है जोकि उन्होंने नीजि व्यावसायिक चैनल 'स्टार प्लस के लिए लिखा था किन्तु इसमें उनका मन अधिक रमा नहीं और उन्होंने फॉर्मूला लेखन और घौर व्यावसायिकता के चलते इसे छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त 'कक्काजी कहिन', 'बुनियाद' और 'हमलोग' को साहित्य राजनीति तथा पत्रकारिता की दुनिया में आज भी उतनी ही गंभीरता के साथ याद किया जाता है।

मनोहर श्याम जोशी द्वारा लिखित पहले 'सोप ऑपेरा' 'हम लोग' में मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविक कहानी को बेहतरीन ढंग से दिखाया गया है। 'हम लोग' से शुरुआत करके मनोहर श्याम जोशी ने धारावाहिक की दुनिया में अपना नाम तो दर्ज कर ही दिया था किन्तु 'बुनियाद' की प्रसिद्धि से धारावाहिक के इतिहास में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। विभाजन की कहानी बयाँ करता यह धारावाहिक जितना लोकप्रिय भारतीय जनमानस में रहा उतनी ही लोकप्रियता सरहद के उस पर देखने को मिली। विभाजन आमजन पर दोनों ही तरफ गहरा घाव छोड़ने वाला था। प्रभात रंजन ने ज्ञानोदय में प्रकाशित मनोहर श्याम जोशी पर आधारित अपने संस्मरणात्मक लेख में लिखा है कि "भारत विभाजन पर आधारित बुनियाद की लोकप्रियता पाकिस्तान में भी इतनी थी कि उसके प्रसारण के करीब 20 सालों बाद भी जब पिछले वर्ष वे पाकिस्तान गए थे, तो लोगों ने वहाँ उनको बुनियाद के लेखक के रूप में पहचाना। "2 यह सुनकर ही उस कहानी की वास्तविकता का भी भान होता है। धारावाहिक के अन्तर्गत एक परिवार के माध्यम से एक पूरे देश की कहानी को जोड़कर दिखाना ही लेखक के कौशल को दिखाता है। एक परिवार के बँटवारे से जो ठेस घर के बुजुर्गो को पहुँचती है वही ठेस देश के बँटवारे पर क्रान्तिकारियों में भी देखी जा सकती है। धारावाहिक के मुख्य किरदार 'मास्टर हवेलीराम' के माध्यम से यह 'कसक' उन सभी क्रान्तिकारियों और उस समाज की है जो विभाजन के उस दर्द को झेल रहे थे।

'बुनियाद' 105 एपिसोड का धारावाहिक है जिसका निर्देशन मशहूर निर्देशक 'रमेश सिप्पी' ने किया है। इस धारावाहिक में 1915 से लेकर 1970 तक की कहानी को बखूबी दिखाया गया है। 1915 का दौर वह दौर है जब गाँधी जी अफ्रीका छोड़ भारत आए और उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण कर आज़ादी का नारा बुलंद किया। पूरे देश में क्रान्तिकारियों के दल संगठित हुए और युवाओं ने विभिन्न दलों का प्रतिनिधित्व कर आज़ादी के लिए संघर्ष किया। धारावाहिक के अन्तर्गत ऐसे ही क्रान्तिकारी दलों का हिस्सा है 'भाई आत्मानन्द' जो क्रान्तिकारी दलों का प्रतिनिधित्व करता है इन्हीं के साथ आज़ादी की आकांक्षा रखने वाला और अंग्रेज हुकुमत के खिलाफ अपनी लेखनी के ज़रिए विरोध दर्ज करने वाला 'मास्टर

हवेलीराम' जुड़ता है। यहाँ से आरंभ यह लड़ाई आज़ादी के बाद गाँधी हत्या पर आकर समाप्त हो जाती है। इस बीच स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जितने आंदोलन हुए 'रॉलेट एक्ट', 'खिलाफत आंदोलन' आदि का संकेत धारावाहिक में किया गया है। इसमें एक ओर एक परिवार की कहानी है तो दूसरी ओर क्रान्ति की। जिसमें विभिन्न आंदोलन हैं, विभाजन है और विभाजन की त्रासदी से झूझते परिवार हैं। उन परिवारों के विस्थापन, संघर्ष और साहस की कहानी है 'बुनियाद'।

धारावाहिक के केन्द्र में एक परिवार की कहानी है जो एक बड़े फलक को प्रदर्शित करती है। एक परिवार की तीन पीढ़ियो की यह कहानी उस पूरे दौर और उसमें आए बदलावों को पूरी वास्तविकता के साथ हमारे सामने रख देती है। 'बुनियाद' की कहानी जितनी देखने में रुचिपूर्ण है उतनी ही आप उसे पढ़ने में भी महसूस करेंगे। एक बैठकी में यह कहानी अपने को पढ़ा ले जाती है। 304 पृष्ठ की इसकी कहानी पढ़ने पर आप पाएँगे कि हर एक दृश्य और पात्र आपके करीब है और आप कहीं न कहीं बकौल दर्शक ही सही उस कहानी में मौजूद है। यही कारण है कि 304 पृष्ठ के बावजूद भी बिना अन्तराल के आप उसे पढ़ जाएँगे। धारावाहिक की कहानी पढ़ते हुए अंत तक ऐसा लगता है मानो कहानी खत्म होते-होते फिर से शुरू हो जाती है, नए पात्र जुड़ते जाते हैं और अंत तक आते हुए मानो कुछ अधूरा छूट जाता है। कहानी जैसे पीढ़ी दर पीढी आगे बढ़ती है और एक दर्शक या पाठक की भाँति हम सुखद अंत की कामना करते है किन्तु धारावाहिक में हवेलीराम विभाजन के दर्द से उपजी पीड़ा से कराह रहा है इसी त्रासदी के साथ धारावाहिक के अन्त को दिखाया गया। यहाँ लेखक ने एक आदर्श को किसी विशिष्ट रूप में न दिखाकर यथार्थ को ज्यों का त्यों सामने रख दिया और पाठक तथा दर्शक को एक कौतुहल के साथ छोड़ दिया है।

धारावाहिक में कुल पात्रों की संख्या लगभग 40 के करीब है जो सभी अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाओं में हैं। धारावाहिक के अन्तर्गत जो पहली पीढ़ी है उसके केन्द्र में परिवार के मुखिया 'लाला गेंदामल' है, जो प्रसिद्ध व्यापारी है। उनके दो बेटे हैं 'रलियाराम' और 'हवेलीराम' और बेटी 'वीराँवाली'। 'रलियाराम' पिता की इच्छानुसार मिडिल पास करके आधुनिक व्यापारी बन गया इसके साथ-साथ पिता में कारोबार में भी बराबरी से हाथ बंटाने लगा। 'हवेलीराम' पढ़ने-लिखने में बहुत होशियार है पिता की इच्छा है कि वह विलायत जाकर आगे की पढ़ाई करे किन्तु उसका पूरा ध्यान अपने देश और आजादी पर है। वह एक सरकारी स्कूल में अध्यापक की नौकरी करता है इसके साथ ही क्रांतिकारी दलों से जुड जाता है और अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आंदोलन में सक्रिय भागीदारी देता है। इसका पूरा असर उसके परिवार तथा पिताजी के कारोबार पर पड़ता है। जिस कारण लाला गेंदामल और हवेलीराम अक्सर आमने-सामने हो जाते हैं दोनो ही अपने ऊसूलों और आदर्शों के पक्के होते हैं। हवेलीराम का हर फैसला पढाई, व्यवसाय और विवाह लाला गेंदामल को निराश करता है। जिससे कि दोनों एक छत के नीचे नहीं रह पाते किन्तु इस सबके बावजूद पिता-पुत्र के बीच आदर, सम्मान, प्रेम और भावुकता अवश्य ही बनी रहती है। यही एक परिवार की पहचान को भी दर्शाता है। वैचारिक विरोधाभाष यहाँ भावनाओं पर हावी नहीं होते किन्तु भाइयों के बीच यह खाई गहरी होती जाती है जो परिवार के बँटवारे का भी कारण बनती है। इसी बँटवारे की कहानी को राष्ट्र से जोड़ते हुए बड़े फलक पर दिखाया गया है।

'बुनियाद' के अन्तर्गत स्त्री पात्रों की बात की जाए तो मुख्य रूप से 'लाजोजी', 'जनको, 'शीला' और वीराँवाली चारों ही किरदार अपनी भूमिकाओं में इतने मजबूत और प्रभावशाली हैं कि उन्हें अपनी मजबूती दिखाने के लिए किसी खास पहचान या औहदे की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह सभी पात्र अपनी भूमिकाओं में एक माँ के रूप में, प्रेमिका के रूप में पत्नी और बहन के रूप में हर तरह से सक्षम और परिपक्व दिखाई देती हैं और खासतौर से बिल्कुल यथार्थ और सजीव रूप से निरन्तरता के साथ इन स्त्री चरित्रों की भूमिकाओं को देखा जा सकता है। बुनियाद के पात्रों के सन्दर्भ में सुधीश पचौरी लिखते हैं " जिस निरंतरता से 'बुनियाद' ने एक-से-एक चरित्र हमें दिए, उतने दूरदर्शन ने अब तक के इतिहास में न दिए होंगे। हवेलीराम का दृढ़ आदर्शवाद, लाजोजी का धरती जैसा माँ रूप और विभाजन की विभीषिका को पृष्ठभूमि बनाकर चलती हुई कहानी, तमाम उत्तर भारत के आधुनिक मध्यवर्ग की नींव की तरह हमें छूती रही। यदि दूरदर्शनवाले इस धारावाहिक से मनमानी छेड़छाड़ नहीं करते और जोशी-सिप्पी को थोड़ी अधिक आज़ादी देते तो यह आजादी के बाद के परिवार का और इस तरह के समाज का राजनीतिक-सांस्कृतिक अध्ययन बन गया होता। फिर भी, इतने दबावों और सेंसर के बावजूद 'बुनियाद' धारावाहिकों के इतिहास में निशान छोड़नेवाला है।"3 उनके पात्रों की लोकप्रियता का अंदाज़ा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उस दौर में मास्टर हवेलीराम और लाजोजी का अभिनय करने वाले आलोकनाथ और अनीता कंवर को उनके असली नाम छोड़कर उनके किरदारों के नाम से अधिक प्रसिद्धि मिली।

अंततः कहा जा सकता है कि 'बुनियाद' धारावाहिक की दुनिया में बरसों बाद भी 'मील का पत्थर' साबित हुआ। सिनेमा का क्षेत्र हो या लेखन का किसी भी क्षेत्र के आरंभिक दौर को शुरूआत की तरह ही देखा जाता है और समय के साथ उसमें अधिक परिपक्वता की उम्मीद की जाती है किन्तु बुनियाद धारावाहिक के रूप में कहीं से भी उनके शुरूआती धारावाहिकों की तरह नहीं लगता। पूरी कथा और उसकी प्रस्तुति एक अनुभवी लेखन और निर्देशन ही प्रतीत होता है। कहा जा सकता कि बुनियाद अपनी तरह का विशिष्ट और कालजयी धारावाहिक है।

संदर्भ:-

1. नया ज्ञानोदय (पत्रिका)- संपादक- प्रभाकर श्रोत्रिय, मई 2006, अंक-39, पृष्ठ संख्या-24.
2. नया ज्ञानोदय (पत्रिका) संपादक- प्रभाकर श्रोत्रिय, मई 2006, अंक-39, पृष्ठ संख्या-26.
3. पत्रकारिता के युग निर्माता मनोहर श्याम जोशी-प्रभात रंजन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-112.

*****

अल्मोड़ा जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण के संदर्भ में उनकी शैक्षिक चिंता का अध्ययन

प्रो0 (डॉ0) अनीता जोशी
शोध निर्देशिका
विभागाध्यक्ष बी0एड0
एम0बी0जी0 (पी0जी0) कॉलेज
हल्द्वानी

–आशा आर्य
शोधार्थी
एम0बी0जी0 (पी0जी0) कॉलेज
हल्द्वानी
devasha82@gmail.com

शोध सारांश– प्रस्तुत शोध में माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण के संदर्भ में उनके शैक्षिक चिंता का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध में अल्मोड़ा जनपद के राजकीय माध्यमिक विद्यालय से 45–45 छात्रों एवं 4 राजकीय बालिका माध्यमिक विद्यालय से 45–45 छात्राओं को न्यादर्श के रूप में असमानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा चयन किया गया है। उक्त शोध में घरेलू वातावरण के अध्ययन हेतु आलिया अख्तर एवं डा0 शैल बाला सक्सेना द्वारा निर्मित घरेलू वातावरण मापनी तथा शैक्षिक चिंता के अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा निर्मित शैक्षिक चिंता प्रश्न. ावली का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, टी–टेस्ट, एफ–टेस्ट तथा सहसंबंध विधि का प्रयोग किया गया है। और परिणाम स्वरूप प्राप्त हुआ है कि छात्राओं में छात्रों की अपेक्षा शैक्षिक चिंता अधिक पाई जाती है तथा छात्राओं का घरेलू वातावरण छात्रों की अपेक्षा उच्च कोटि का पाया गया। प्रतिकूल, औसतन अनुकूल एवं औसत से अधिक अनुकूल घरेलू वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में अंतर पाया गया। और विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के बीच कोई सहसंबंध नहीं पाया गया जो दर्शाता है कि विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण का अनुकूलित होने या न होने पर शै क्षक चिंता पर कोई प्रभाव नहीं होता है।

प्रस्तावना– वर्तमान जीवन जटिलताओ से भरा है। जिस कारण समाज में चिंता, क्रोध, भय एवं अलगाव व्याप्त हो रहा है। इसी कारण वर्तमान परिस्थितियों को चिंता एवं दबाव से परिपूर्ण माना जाता है। जीवन की इस जटिलता के कारण ही मनोवैज्ञानिक विकृति/रोग लोगों में दिन प्रति दिन बढ़ रहे है। इन्ही रोगों का एक हिस्सा चिंता है। लोग हर जगह चिंता का अनुभव करते है इसीलिए शिक्षा के क्षेत्र में चिंता एक समस्या बनी हुई है। किशोरावस्था की आयु में शैक्षिक चिंता (जो चिंता का ही एक प्रकार है) होना स्वाभाविक है, कोई भी विद्यार्थी इससे अछूता नही है।

एक विद्यार्थी जहाँ रहता है वह वातावरण उसके जीवन को प्रभावित करता है। अतः हम कह सकते हैं कि वातावरण स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। जिम्मेदार अभिभावक बच्चों को ऐसा वातावरण उपलब्ध करा सकते हैं जो उनमें परिपक्वता का विकास कर चिंता को कम कर सकता है। घरेलू वातावरण जो शैक्षिक चिंता को कम एवं सकारात्मक रूप से उपयोग करने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

फायड (1936) ने चिंता को "कुछ महसूस किया" के रूप में बताया जो किसी अवस्था या परिस्थिति का एक अरूचिकर प्रभाव है। फ्रायड ने ओब्जेक्टिव एंज़ाइटी एवं न्यूरोटिक एंज़ाइटी दो प्रकार की चिंता के विषय मे बताया है। ओब्जेक्टिव एंज़ाइटी कुछ हद तक डर से अधिक जटिल है और बाह्य वातावरण के खतरे के कुछ स्रोतों से ओब्जेक्टिव एंज़ाइटी एक लाचारी की भावना को परिलि क्षत करती है। न्यूरोटिक एंज़ाइटी का बाह्य जगत में

कोई स्रोत नहीं है, जैसे डर। खतरे के प्रत्यक्षीकरण में न्यूरोटिक एंज़ाइटी एक जटिल आंतरिक प्रतिक्रिया है, जो एक व्यक्ति को आसन्न खतरे के साथ सामना करने के लिए तैयार करता है। तथापि ये डर से अलग है जिसमें ये बाह्य खतरे पर आधारित नही है लेकिन ये व्यक्ति विशेष के अपने दर्दनाक अनुभव जैसे जन्म से, किसी अपने प्रिय को खोने से या सामाजिक अस्वीकृत आग्रह से, दण्ड से संबंधित होता है।

चिंता का अंग्रेजी रूपांतरण **एंजाइटी** लेटिन भाषा के 'aangere' शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ 'to strangle' (फंदा लगाना) है। **स्पीलबर्जर्स के अनुसार एस0टी0ए0टी0 (1966)** चिंता को पर्सनेलिटी ट्रेट (ट्रेट एंज़ाइटी) के रूप में तथा ट्रांसिट्री इमोशनल स्टेट (स्टेट एंज़ाइटी) के रूप में भी पढ़ा जा रहा है जिसमें माना जाता है कि दो वस्तुओं के मध्य विशिष्टता की कमी के कारण संप्रत्यय भ्रम के संदर्भ में चिंता उत्पन्न होती है।

शैक्षिक चिंता छात्रों की क्षमता, अभिवृत्ति, व्यक्तित्व निर्माण एवं सामाजिक परिपक्वता को प्रभावित करती है। यह विद्यार्थियों में आत्मग्रस्तता, नकारात्मक संज्ञ. ानात्मक मूल्यांकन, एकाग्रता में कमी, अनैच्छिक शारीरिक प्रतिक्रिया जैसे धड़कन बढ़ना, हाथ ठंडे होना, रक्त दाब कम होना एवं शैक्षिक उपलब्धि की कमी करता है। शैक्षिक चिंता विद्यार्थियों की प्रतिस्पध र्ा, घरेलू एवं विद्यालयी वातावरण, शैक्षिक उपलब्धि, भविष्य की चिंता, अध्ययन क्षमता आदि से संबन्धित होती है।

ब्रेडली (1995) ने घरेलू वातावरण एवं संज्ञानात्मक विकास के मध्य दृढ़ संबन्ध को दर्शाया जिसमें बताया कि अभिभावक का व्यवहार घरेलू वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण कारक है।

अध्ययन का महत्व– शैक्षिक चिंता एक महत्वपूर्ण समस्या है जिससे लाखों विद्यार्थी प्रभावित होते है। उच्च स्तर की शैक्षिक चिंता एकाग्रता, ज्ञान के भण्डार, ध्यान, पुनःस्मरण तथा शैक्षिक स्तर को कम करता है। शैक्षिक चिंता वातावरणीय कारकों पर निर्भर करते है चाहे वो घरेलू वातावरण हो या विद्यालयी। इसीलिए शिक्षक व अभिभावक मिलकर (जो विद्यार्थी के वातावरण का महत्वपूर्ण अंग है) विद्यार्थियों की शैक्षिक चिंता का नियमन कर उनका उच्चतम विकास मिलकर कर सकते है तथा उपयुक्त वातावरण विद्यार्थियों में शैि क्षक चिंता को कम करने में सहायक होता है।

विद्याथियों में शैक्षिक चिंता को कम करने के लिए विद्यार्थियों का घरेलू वातावरण एक मुख्य कारक है। अतः यह जानना आवश्यक है कि घरेलू वातावरण का कौन सा स्तर कितना शैक्षिक चिंता से संबंधित है और घ ारेलू वातावरण का शैक्षिक चिंता से संबंध सकारात्मक है या नकारात्मक। इन सभी पहलुओं को जानने के लिए ही इस शोध की आवश्यकता प्रतीत हुई है जो समाज, परिवार तथा विद्यालय के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

उद्देश्य– माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैि क्षक चिंता एवं घरेलू वातावरण का उनके लिंग (छात्र एवं छात्रा) के आधार पर अध्ययन करने हेतु निम्न उद्देश्य निर्मित किये गये हैं –

1.माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक चिंता का अध्ययन करना।

2.माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण के स्तरों का अध्ययन करना।

3.माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलू वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में तुलनात्मक अध्ययन करना।

4.माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य संबंध का अध्ययन

करना।

परिकल्पनाएं– माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक चिंता एवं घरेलू वातावरण का उनके लिंग (छात्र एवं छात्रा) के आधार पर अध्ययन करने हेतु निम्न परिकल्पनाएं निर्मित की गई–

1. माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक चिंता में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

2.माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के घरेलू वातावरण में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

3.माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण के स्तरों के आधार पर शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक अंतर नहीं होता है।

3.1. माध्यमिक विद्यालय के छात्र के घरेलू वातावरण के स्तरों के आधार पर शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक अंतर नहीं होता है।

3.2. . माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं के घरेलू वातावरण के स्तरों के आधार पर शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक अंतर नहीं होता है।

4.माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के स्तर के मध्य सहसंबंध नहीं होता है।

4.1माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सहसंबंध नहीं होता है।

4.2 माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सहसंबंध नहीं होता है।

शोध विधि–

शोध की प्रकृति– अध्ययन की विधि वर्णनात्मक विश्लेषण विधि है। आंकड़ों का संकलन मानकीकृत शोध उपकरणों की सहायता से किया गया है तद् अनुसार ही आंकड़ों का विश्लेषण भी किया गया है।

स्वतंत्र चर– शोध में घरेलू वातावरण स्वतंत्र चर है।

आश्रित चर– शोध में शैक्षिक चिंता आश्रित चर है।

जनसंख्या–

शोध के लिए अल्मोड़ा जनपद के माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में चिन्हित किया जायेगा।

न्यादर्श चयन की विधि–

शोध में असमानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग न्यादर्श चयन हेतु किया गया। अल्मोड़ा जनपद के द्वाराहाट, चौखुटिया, रानीखेत एवं हवलबाग ब्लॉक का चयन उद्देश्यपूर्ण विधि से कर हवलबाग, द्वाराहाट, रानीखेत एवं चौखुटिया ब्लॉक से 1–1 बालक एवं बालिका माध्यमिक विद्यालयों का चयन उद्देश्यपूर्ण विधि ा से किया गया है तथा प्रत्येक विद्यालय से 45–45 छात्रो एवं 45–45 छात्राओं का चयन यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि से किया गया है।

न्यादर्श–

शोध के लिए अल्मोड़ा जनपद के द्वाराहाट, रानीखेत, चौ खुटिया एवं हवलबाग ब्लॉक 4 बालिका एवं 4 बालक माध्यमिक विद्यालयों से प्रत्येक विद्यालय से 45 बालक तथा 45 बालिकाएं (कुल 360 विद्यार्थी) सम्मिलित किए गए।

शोध उपकरण–

प्रस्तुत शोध की प्रकृति वर्णनात्मक है अतः शोध आकड़ों के संकलन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जायेगा। शैि क्षक चिंता के मापन हेतु उपकरण का निर्माण शोधार्थी द्वारा किया गया तथा घरेलू वातावरण के मापन हेतु मानकीकृत उपकरण का प्रयोग किया गया जिनका विवरण निम्नलिखित है–

आलिया अख्तर एवं डा0 शैल बाला सक्सेना द्वारा निर्मित घरेलू वातावरण मापनी।

शोधार्थी द्वारा निर्मित शैक्षिक चिंता प्रश्नावली।

विश्लेषण एवं व्याख्या–

माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक चिंता का तुलनात्मक अध्ययन–

तालिका–1

माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक चिंता का तुलनात्मक विवरण–

चर	समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी का मान	स्वतंत्रता का अंश	सार्थकता
शैक्षिक	छात्र	180	17.46	4.667	3.250	358	0.05
	छात्रा	180	19.13	5.086			

उपरोक्त तालिका में शैक्षिक चिंता के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक विद्यालय में अध्यनरत छात्रों की शैक्षिक चिंता का मध्यमान 17.46 एवं मानक विचलन 4.667 तथा छात्राओं की शैक्षिक चिंता का मध्यमान 19.13 तथा मानक विचलन 5.086 प्राप्त हुआ है। टी के मान की गणना करने पर टी का मान 3.250 पाया गया है। स्वतंत्रता के अंश 358 पर टी तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 का मान 1.96 है। जिससे ज्ञात होता है कि टी का मान सार्थकता स्तर 0.05 के मान से अधिक है अतः परिलक्षित होता है कि माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर है। छात्राओं का माध्यमान छात्रों से अधिक होने के कारण छात्राएं, छात्रों की अपेक्षा शैक्षिक रूप से अधिक चिंतित होती है।

माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के घरेलु वातावरण में तुलनात्मक अध्ययन–

तालिका–2

माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं के घरेलु वातावरण का तुलनात्मक विवरण–

	समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी का मान	स्वतंत्रता का अंश	सार्थकता
घरेलु वातावरण	छात्र	180	129.37	20.342	3.131	358	.002
	छात्रा	180	136.14	20.696			

उपरोक्त तालिका में घरेलु वातावरण के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्र एवं छात्राओं के घरेलु वातावरण के संदर्भ में छात्रों का मध्यमान 129.37 एवं मानक विचलन 20.342 तथा छात्राओं का मध्यमान 136.14 तथा मानक विचलन 20.696 प्राप्त हुआ है। आंकड़ों के आधार पर गणना करने पर टी का मान स्वतंत्रता के अंश 358 पर 3.131 पाया गया है जो कि टी तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 के मान 1.96 से सार्थकतर पूर्वक अधिक है अतः स्पष्ट रूप से परिलक्षित है कि माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं की घरेलु वातावरण में सार्थक अंतर पाया जाता है।

माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलु

वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में तुलनात्मक अध्ययन–

तालिका– 3

माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलु वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता का तुलनात्मक विवरण–

चर	संख्या	माध्य	मानकविचलन	वर्गोंका योग	स्वतंत्रता के अंश	मध्यमानो का योग	एफ का मान	सार्थकता
प्रतिकूल घरेलु वातावरण	78	17.01	5.556	163.459	2	81.730	3.386	0.035
औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण	184	18.68	4.539	8616.916	357	24.137		
औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण	98	18.58	5.046	8780.375	359			

तालिका संख्या 3 में घरेलु वातावरण के विभिन्न स्तरों के आधार पर शैक्षिक चिंता के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के मध्य शैक्षिक चिंता के संदर्भ में प्रतिकूल घरेलु वातावरण प्राप्त विद्यार्थियों का मध्यमान 17.01 एवं मानक विचलन 5.556, औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण प्राप्त विद्यार्थियों का मध्यमान 18.68 एवं मानक विचलन 4.539 एवं औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण प्राप्त विद्यार्थियों का मध्यमान 18.58 एवं मानक विचलन 5.046 प्राप्त हुआ है और आंकलित एफ का मान स्वतंत्रता के अंश 2, 357 पर 3.386 पाया गया है जो कि एफ सारणी के सार्थकता स्तर 0.05 के मान 2.996 से सार्थक रूप से अधिक है अतः परिणाम स्वरूप प्राप्त एफ का मान माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलु वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर दर्शाता है।

3.1. औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण वाले छात्रों, औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण वाले छात्रों तथा प्रतिकूल वातावरण वाले छात्रों की शैक्षिक चिंता में तुलनात्मक अध्ययन–

तालिका–3.1

औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण वाले छात्रों, औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण वाले छात्रों तथा प्रतिकूल वातावरण वाले छात्रों की शैक्षिक चिंता का तुलनात्मक विवरण–

चर	संख्या	माध्य	मानक विचलन	वर्गों का योग	स्वतंत्रता के अंश	मध्यमानो का योग	एफ का मान	सार्थकता
प्रतिकूल घरेलु वातावरण	52	16.19	4.986	966.698	2	483.349	0.732	0.482
औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण	91	17.91	3.866	116908.163	177	660.498		
औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण	37	18.11	5.695	117874.861	179			

तालिका संख्या 3.1 में घरेलु वातावरण के विभिन्न स्तरों के आधार पर शैक्षिक चिंता के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्रों के शैक्षिक चिंता के संदर्भ में प्रतिकूल घरेलु वातावरण प्राप्त छात्रों का मध्यमान 16. 19 एवं मानक विचलन 4.986, औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण प्राप्त छात्रों का मध्यमान 17.91 एवं मानक विचलन 3. 866 एवं औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण प्राप्त छात्रों का मध्यमान 18.11 एवं मानक विचलन 5.695 प्राप्त हुआ है और आंकलित एफ का मान स्वतंत्रता के अंश (2,177) पर 0.732 पाया गया है जो कि एफ सारणी में सार्थकता स्तर 0. 05 के मान 2.996 से सार्थक रूप से कम है अतः प्राप्त एफ का मान दर्शाता है कि माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलु वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर नहीं होता है।

3.2. औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण वाली छात्राओं, औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण वाली छात्राओं तथा प्रतिकूल वातावरण वाली छात्राओं की शैक्षिक चिंता में तुलनात्मक अध्ययन–

तालिका–3.2

औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण वाली छात्राओं, औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण वाली छात्राओं तथा प्रतिकूल वातावरण वाली छात्राओं की शैक्षिक चिंता का तुलनात्मक विवरण–

चर	संख्या	माध्य	मानक विचलन	वर्गों का योग	स्वतंत्रता के अंश	मध्यमानो का योग	एफ का मान	सार्थकता
प्रतिकूल घरेलु वातावरण	40	18.18	6.421	125.738	2	62.869	2.949	0.055
औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण	103	19.35	4.707	3772.906	177	21.316		
औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण	37	19.54	4.457	3898.644	179			

तालिका संख्या 3.2 में घरेलु वातावरण के विभिन्न स्तरों के आधार पर शैक्षिक चिंता का विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं के प्रतिकूल घरेलु वातावरण प्राप्त छात्राओं का मध्यमान 18.18 एवं मानक विचलन 6.421, औसतन अनुकूल घरेलु वातावरण प्राप्त छात्राओं का मध्यमान 19.35 एवं मानक विचलन 4.707 एवं औसत से अधिक अनुकूल घरेलु वातावरण प्राप्त छात्राओं का मध्यमान 19.54 एवं मानक विचलन 4.457 प्राप्त हुआ है और आंकलित एफ का मान स्वतंत्रता के अंश (2, 177) पर 2.949 पाया गया है जो कि एफ सारणी मे सार्थकता स्तर 0.05 के मान 2.996 से सार्थक रूप से कम है अतः माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिक घरेलु वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर नहीं होता है।

माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध का अध्ययन–

तालिका– 4

माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध का विवरण–

चर	माध्य	मानक विचलन	संख्या	आर का मान	सार्थकता
घरेलु वातावरण	132.75	20.770	360	0.086	0.104
शैक्षिक चिंता	18.29	4.945	360		

तालिका संख्या 4 में माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत विद्यार्थियों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सहसंबंध का विश्लेषण किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत विद्यार्थियों के घरेलु वातावरण तथा शैक्षिक चिंता के आर का मान 0.086 पाया गया है और स्वतंत्र अंश 358 है जिस पर आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 का मान 0.098 है। अतः प्राप्त आर का मान सार्थकता स्तर 0.05 के मान से कम होने के कारण माध्यमिक विद्यालय की विद्यार्थियों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं होता है।

4.1. माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक **चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध का अध्ययन–**

तालिका– 4.1

माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध का विवरण–

चर	माध्य	मानक विचलन	संख्या	आर का मान	सार्थकता
घरेलु वातावरण	129.37	20.342	180	0.127	0.090
शैक्षिक चिंता	17.46	4.667	180		

तालिका संख्या 4.1 में माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्रों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सहसंबंध का विश्लेषण किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्रों के घरेलु वातावरण तथा शैक्षिक चिंता के आर का मान 0.127 पाया गया है और स्वतंत्र अंश 178 है जिस पर आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 का मान 0.138 है। अतः प्राप्त आर का मान सार्थकता स्तर 0.05 के मान से कम होने के कारण माध्यमिक विद्यालय की छात्रों के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं होता है।

4.2. माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध का अध्ययन–

तालिका– 4.2

माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध का विवरण–

चर	माध्य	मानक विचलन	संख्या	आर का मान	सार्थकता
घरेलु वातावरण	136.14	20.696	180	0.011	0.875
शैक्षिक चिंता	19.13	5.086	180		

तालिका संख्या 4.2 में माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्राओं के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सहसंबंध का विश्लेषण किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्राओं के घरेलु वातावरण तथा शैक्षिक चिंता के आर का मान 0.011 पाया गया है और स्वतंत्र अंश 178 है जिस पर आर तालिका में सार्थकता स्तर 0.05 का मान 0.138 है। अतः प्राप्त आर का मान सार्थकता स्तर 0.05 के मान से कम होने के कारण माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं के घरेलु वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं होता है।

निष्कर्ष

परिणामों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए है–

माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर है।

माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं की घरेलू वातावरण में सार्थक अंतर होता है।

माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलु वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर होता है।

3.1 माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलु वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर नहीं होता है।

3.2 माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं के औसत से अधिक अनुकूल, औसतन अनुकूल एवं प्रतिकूल घरेलु वातावरण के आधार पर शैक्षिक चिंता में सार्थक अंतर नहीं होता है।

माध्यमिक विद्यालय की विद्यार्थियों के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध नही होता है।

माध्यमिक विद्यालय की छात्रों के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं होता है।

माध्यमिक विद्यालय की छात्रों के घरेलू वातावरण एवं शैक्षिक चिंता के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं होता है।

शैक्षिक निहितार्थ–

प्रस्तुत शोध की शिक्षा के क्षेत्र में उपादेयता को निम्नलिखित बिन्दुओं के संदर्भ में देखा जा सकता है–

घर में ऐसा वातावरण दिया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों में शैक्षिक चिंता के विकास को प्रोत्साहन मिल सके।

घरेलू वातावरण ऐसा हो कि शैक्षिक चिंता विद्यार्थियों में सकारात्मक विकास करें।

घरेलू वातावरण जिज्ञासु प्रवृति एवं आत्मविश्वास को बढ़ावा दे।

परिवार में अभिभावकों का सहयोग एवं निर्देशन इस प्रकार हो कि छात्रों में जिज्ञासा उत्पन्न हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

अग्रवाल, जे0सी0(1997); एडुकेशन इन इंडिया सिन्स 1991, न्यू डेल्ही, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0लि0।

अग्रवाल, लक्ष्मी विजय (2007); किशोरो की सामाजिक परिपक्वता उनके संज्ञानात्मक व असंज्ञानात्मक चरों के संदर्भ में अप्रकाशित डॉक्टोरल लघु शोध, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

बेनसोसेन, एम0 (2012); ऑलविएटिंग टेस्ट एंज़ाइटी फॉर स्टुडेन्टस ऑफ एडवांस रिडिंग कॉम्प्रीहेन्सन, आर0ई0एल0सी0 जनरल, 43,2,203–216।

ब्रेडली, रॉबर्ट एच0, कोरविन, रॉबर्ट, एफ0 (1995) ; हॉम एनवायरमेण्ट एण्ड बिहेवरल डेवलेपमेण्ट डयूरिंग अर्ली एडोलसेन्स, सायकोलॉजी एण्ड मेण्टल हेल्थ पब्लिशन, मेरिल पालमर क्वाटर्ली।

बुगेलस्की एवं माथुर, एस0एस0 (1962); प्राइमरी फेक्टर इन बेरनिंग।

ब्युचमीन, जे0, हचिन्स, टी0एल0 एण्ड पे. टरसन, एफ0 (2008); माइण्डफुलनेस मेडीटेशन मेय लेसेर एंज़ाइटी, प्रामोट सोशल स्कील एण्ड इम्प्रोव एकेडमिक पेरफोमेन्स अमंग एडोलसेन्टस विद लर्निंग डिसेबिलिटी, कोम्पलिमेन्ट्री हेल्थ प्रेक्टिस रिव्यू, 13,1,34–45।

क्रो एण्ड क्रो (1961); एडुकेशनल सायकोलॉजी, न्यूयॉर्क, अमेरिकन बुक कम्पनी।

डॉ0 लेंका, समीर कुमार, डॉ0 रविकांत (2012); ए स्टडी ऑफ एकेडमिक एंज़ाइटी ऑफ स्पेशल नीडस चिल्ड्रेन इन स्पेशल रिफरेंस टू हियरिंग इम्पेयर्ड एण्ड लर्निंग डिसेबल्ड, इन्टरनेशनल जनरल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 2,2,64–72।

डॉ0 कुमार, अजय (2013); रिलेशनशीप ऑफ एकेडमिक एंज़ाइटी अमंग एडोलसेन्टस इन रिलेशन टू देयर हॉम एनवायरमेण्ट, आई0जे0आर0इ0, 2,7,29–34।

डॉ0 परवेज़ मो0, डॉ0 भाकिर मो0 (2014); एकेडमिक अचिवमेण्ट ऑफ एडोलसेन्टस इन रिलेशन टू एकेडमिक स्ट्रीम, रिसर्च ऑन ह्यूमनिटिस एण्ड सोशल सांइस, 4,12,107–115।

फायड, एस0 (1936); द प्रोब्लम ऑफ एंज़ाइटी ट्रान्सलेटेड बाय हेनरी बंकर, न्यूयॉर्क, नॉरटन।

गिर, एस0, जैन, पी0 एवं लोधा, आर0 (2006); सोशल मेच्युरिटी एण्ड लोकस ऑफ कन्ट्रोल ऑफ हाई अचिवर्स एण्ड लो अचिवर्स– ए कम्पेरिटिव एनालिसिस, रिसेंट रिसर्च इन एडुकेशन एण्ड सायकोलॉजी, 2(1–11), 7–10।

महातो, भूतनाथ, सुनिल जांगीर (2012); ए स्टडी ऑन एकेडमिक एंज़ाइटी अमंग एडोलसेन्टस ऑफ मिन. ीकॉम आइसलैण्ड, आई0जे0एस0आर0, 1,3,12–14।

मनसाली, रीना, त्रिवेदी, कुंजन (2008) ; इज़ एकेडमिक एंज़ाइटी जैंडर स्पेसिफिकः ए कम्पेरिटिव स्टडी, जे0एस0एस0, 17,1,1–3।

मुस्सेन, पी0एच0, कोंगर, जे0जे0, कागन, जे0 एवं हसटन, ए0सी0 (1984); चाइल्ड डेवेलपमेंट एण्ड पर्सनेलिटी (6वीं एडिशन), न्यूयॉर्क, हारपर एण्ड रॉ पब्लिशर।

शाह, ज्योत्सना के0, भावना शर्मा (2012); ए स्टडी ऑन सोशल मेच्यूरिटी, स्कूल एडजस्टमेंट एण्ड एकेडमिक अचिवमेण्ट अमंग रेसिडेंशियल स्कूल गर्ल्स, जनरल ऑफ एडुकेशन एण्ड प्रेक्टिस, 3,7,69–80।

सिंह, सुरजीत (2010); रिलेशनशीप ऑफ एंज़ाइटी एण्ड इमोशनल एण्ड सोशल मेच्यूरिटी विद एक्चुलाइजेशन ऑफ जनरल मेण्टल एबिलिटी ऑफ हाई स्कूल स्टूडेंट, गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

स्पीलबर्गर, सी0डी0 (1966); थ्योरी एण्ड रिसर्च ऑन एंज़ाइटी, इन सी0डी0 स्पीलबर्गर (एडिशन) एंज़ाइटी एण्ड बिहेवियर, 1, न्यूयॉर्क, एकेडमिक प्रेस।

राज, एम0 (1996); एनसायक्लोपिडिया डिक्शनरी ऑफ सायकोलॉजी एण्ड एडुकेशन, न्यू डेल्ही, अनमोल पब्लिशन

उदीनी, उचेन्ना (2012); द रिलेशनशीप बिटविन स्टडी हेबिट, टेस्ट एंज़ाइटी एण्ड साइंस अचिवमेंट, जनरल ऑफ एडुकेशन एण्ड प्रेक्टिस, 3,8,151–157।

******

आईएफटीएम विश्वविद्यालय में प्रयुक्त हो रहे गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अभ्यासों का एक अध्ययन

डा.हरिओम चौहान
शोध पर्यवेक्षक
स्कूल ऑफ सोषल साईंसिज
सहायक प्राध्यापक
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

.लक्ष्मी प्रसाद
शोधकर्ता
स्कूल ऑफ सोषल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सार :- *विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य न केवल प्रासंगिक ज्ञान और कौशल प्रदान करना है, बल्कि हमारे छात्रों को प्रभावी संचार में कुशल बनाना, नैतिक मानकों से अवगत कराना और सार्वभौमिक और मानवीय मूल्यों की सराहना करना भी है। हम चाहते हैं कि हमारे छात्र कल के नेताओं के रूप में विकसित हों, दुनिया को अप. ने विचारों और नवाचारों की ऊर्जा से भर दें, और ज्ञान के मोर्चे को ऐसे तरीकों से आगे बढ़ाएं जो समुदाय और देश के लिए ठोस लाभ में तब्दील हो। जनसंख्या की द्व ष्टि से आईएफटीएम विश्वविद्यालय में प्रयुक्त हो रहे गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अभ्यासों का एक अध्ययन के लिए वालक तथा वालिकाओं का चयन किया गया है।*

मुख्य शब्द :- आईएफटीएम विश्वविद्यालय, गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अभ्यास

प्रस्तावना :- संयुक्त राष्ट्र संघ एक अधिक उज्ज्वल और समृद्ध भविष्य के लिए शिक्षा के महत्व को समझता है और इसलिए इस संस्था का यह मानना है कि केवल एजुकेशन नहीं, बल्कि क्वालिटी एजुकेशन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अपने सतत विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals-SDG) में, संयुक्त राष्ट्र ने 2030 तक 'दुनिया में बदलाव लाने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को एक प्रमुख लक्ष्य के रूप में पहचाना है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से, संयुक्त राष्ट्र का तात्पर्य सभी के लिए समान और मानक शिक्षा है जो आजीवन सीखने और ज्ञान की प्राप्ति को बढ़ावा दे। समावेशिता और समानता गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की नींव है न कि ऊंची साक्षरता दर। शिक्षा को समझने और इसे दुनिया को बदलने का साधन बनाने के लिए यह एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण है। शिक्षा की गुणवत्ता से तात्पर्य हैं, शिक्षा अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों को कितनी मात्रा में किस प्रकार तथा कितनी सफलता के साथ प्राप्त करती है। कोई समाज या राज्य अपने समाज व राज्य के नागरिकों की आवश्यकतानुसार लक्ष्यों तथा उद्देश्यों का निर्धारण करता है और उसी के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करता है। शि क्षा यदि राज्य या समाज की आवश्यकतानुसार उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होती है तो यह समझा जाता है कि शिक्षा गुणवत्तापूर्ण है। भारत एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था वाला राष्ट्र है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर आज तक हमारे राष्ट्र ने अपनी पूर्णक्षमता के दोहन के फलस्वरूप किये गये अथक प्रयासों से लगभग सभी क्षेत्रों में प्रगति के पूर्ण प्रयास किये है, इन्हीं प्रयासों के कारण आज हमारी गिनती विकासशील श्रेणी के अग्रणी राष्ट्रों में होती है तथा आज भी हम एक विकसित राष्ट्र बनने के लिए अथक प्रयास कर रहे है। वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाए तो शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करके हम मंजिल को प्राप्त कर सकते हैं। इसी क्रम में हमें यह सुनिश्चित करना है कि लोकतन्त्रीय भारत में शिक्षा के क्या उद्देश्य रहेंगे।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :- किसी भी विश्वविद्यालय के लिए, उत्कृष्टता उसके संकाय और उसकी सुविधा, लोकाचार और बुनियादी ढाँचे की संक्रमणकालीन क्षमताओं में निहित है। **आईएफटीएम विश्वविद्यालय** में विषय वस्तु विशेषज्ञों की टीम विकसित करने के लिए हमारा अकादमिक बोर्ड जो प्रयास करता है। हमारी टीम नैतिक, नैतिक और बौद्धिक रूप से अभिजात्य होने के लिए हमारी आने वाली पीढ़ियों को सशक्त बनाने के मूल दृष्टिकोण को समझती है। वे छात्र–केंद्रित और परिवर्तनकारी दृष्टिकोण के साथ शिक्षण की कला का

अभ्यास करते हैं। विश्वविद्यालय में शैक्षिक और पाठ्येतर दोनों तरह का उत्कृष्ट बुनियादी ढाँचा, हमारे छात्रों के लिए केंद्रित सीखने की सुविधा में परिवेश के महत्व को शानदार ढंग से प्रदर्शित करता है। सीखने के अनुभव का एक महत्वपूर्ण हिस्सा यह है कि छात्र अपनी कक्षाओं के बाहर क्या करते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, विश्वविद्यालय परिसर में छात्रावास सुविधाओं को अत्यंत सावधानी और ध्यान के साथ डिजाइन किया गया है ताकि छात्र सुरक्षित और सहज महसूस कर सकें। यह विचार यह सुनिश्चित करने के लिए है कि छात्रों को उनकी क्षमता का पता लगाने और जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए हर संभव सुविधा प्रदान की जाए जो उन्हें आईएफटीएम विश्वविद्यालय की सीमाओं से परे हमेशा के लिए सेवा प्रदान करे। आज, विश्वविद्यालय के पास वैश्विक सोच और भविष्यवादी मानसिकता के साथ कुशल, आत्मविश्वासी और अत्यधिक जानकार टेक्नोक्रेट, प्रबंधकों, फार्मासिस्ट और उद्यमियों को विकसित करने का एक गौरवपूर्ण रिकॉर्ड है जो निश्चित रूप से मिशन, दृष्टि और मूल्यों के मजबूत पालन के साथ राष्ट्र निर्माण में योगदान देगा।

शोध समस्या कथन :- ''आईएफटीएम विश्वविद्यालय में प्रयुक्त हो रहे गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अभ्यासों का एक अध्ययन''

शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण :- प्रस्तुत अध्ययन में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनका स्पष्टीकरणकरना आवश्यक प्रतीत होता है–

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा :- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अर्थ एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था से हैं जो अपने निर्माण के उद्देश्यों को अच्छी तरह समझती हो और विद्यार्थियों के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में लाभकारी हो। अगर आधुनिक युग की बात की जाएं तो किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था को गुणवत्तापूर्ण कहना गलत होगा। वर्तमान की शिक्षा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करने में असफल रही हैं। क्वालिटी एजुकेशन शिक्षा में प्रायः उसी शिक्षा का समावेश होता हैं। जो शिक्षा शिक्षण–अधिगम में छात्रों की रुचि एवं क्षमताओं को समझे एवं समाज की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करें और छात्रों के जीवन को आरामदायक एवं उद्देश्यपरक बनाए।

आईएफटीएम विश्वविद्यालय 'मुरादाबाद' :- आईएफटीएम यूनिवर्सिटी (विदेश व्यापार और प्रबंधन संस्थान) 'मुरादाबाद' की स्थापना परम आदरणीय स्व0 श्री ओंकार सरन कोठीवाल जी के द्वारा की है। यह विश्वविद्यालय यूपी सरकार के एक्ट संख्य–24 वर्ष 2010 में स्थापित हुआ। प्रारम्भ में यह एक दो कमरों वाला टेक्नीकल और व्यवसायिक शिक्षण संस्थान के रूप में वर्ष 1996 में स्थापित हुआ था यह विश्वविद्यालय दिल्ली– लखनऊ राष्ट्रीय राजमार्ग सं0 24 पर लोधीपुर नामक एक गांव में स्थापित है, जो मुरादाबाद शहर से लगभग 12 कि0मी0 दूर स्थित है। वर्ष 2010 में इस विश्वविद्यालय के कैंमपस लगभग 50 एकड़ भूमि में था जो आज बढकर लगभग 125 एकड़ भूमि में हो चुका है। इस विश्वविद्यालय में विभिन्न संकाय के 11 विद्यालय के साथ पॉलिटेक्निक विश्वविद्यालय भी स्थापित है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :- प्रत्येक व्यक्ति जिस किसी कार्य को करता है उसका कुछ न कुछ उद्देश्य निहित होता है। उद्देश्य के बिना वह कुछ भी कार्य नहीं करता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के मुख्य उद्देश्य निम्नंलिखित हैं –

आईएफटीएम विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रदर्शन एवं उपलब्धियों का अध्ययन करना ।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें :- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोध अध्ययन को संपादित करने हेतु निम्न परिकल्पना का निर्माण किया गया –

आईएफटीएम विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रदर्शन एवं उपलब्धियों पर सार्थक प्रभाव पडता है ।

शोध अध्ययन विधि :- प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए "वर्णनात्मक अनुसंधान" की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित प्रतित हौता है इसलिए शोधकर्त्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग प्रस्तुत शोध अध्ययन में किया गया है।

शोध अध्ययन की जनसंख्या :- 'समग्र', 'समष्टि' या 'जनसंख्या' अनुसंधान के लिये निर्धारित वह समस्त क्षेत्र है जिसके विषय में ज्ञान प्राप्त करना होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या अभिप्राय आईएफटीएम विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के विद्यार्थियों से है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :- प्रस्तुत शोधकार्य

में शोधकर्त्ता ने उद्देश्यों के अनुरूप उपकरणों की खोज की, अतः शोधकर्त्ता ने शोध पर्यवेक्षक एवं शोध क्षेत्र के अन्य अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क किया तथा उनके परामर्श से गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अभ्यास स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया।

अध्ययन का परिसीमांकन :- प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल आईएफटीएम विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग तक ही सीमित है।

आंकडों का विश्लेषण एवं व्याख्या :- प्रस्तुत शोध अध्ययन की निम्नलिखित सीमायें निर्धारित हैं।

परिकल्पना परिक्षण- 1 आईएफटीएम विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रर्दशन एवं उपलब्धियों पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में परिगणित मूल्यों को तालिका संख्या 1.0 में प्रस्तुत किया गया है -

तालिका संख्या -1.0

आईएफटीएम विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रर्दशन एवं उपलब्धियों का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात की तालिका

क0 सं0	लिंग	न्यादर्श की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	टी-मान
1.	वालक	300	38.91	13.06	1.78	0.98	1.82
2.	वालिकाऐं	300	37.13	10.74			

विभिन्न प्रर्दशन एवं उपलब्धियों में सम्मिलित होने वाले के वालक एवं वालिकाओं की प्रर्दशन एवं उपलब्धियों का मध्यमान, क्रमशः 38.91 एवं 37.13 तथा मानक विचलन 13.06 एवं 10.74 है। परिगणित टी–अनुपात का मान 1.82 है। मुक्तांश 398 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 1.96 है अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से कम है, अतः 0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक। परिणामतः कहा जा सकता है कि प्रतियोगी परिक्षाओं के वालक एवं वालिकाओं की प्रर्दशन एवं उपलब्धियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष - अध्ययन की सार्थकता उसके निष्कर्ष से होती है। शोधकर्ता ने अपने समस्या कथन के अन्तर्गत प्रर्दशन एवं उपलब्धियों के विद्यार्थियों की दुश्चिंता का अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य के मुरादाबाद शहर में स्थित आईएफटीएम विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के विद्यार्थियों को शोध की जनसंख्या माना गया है। प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने प्रस्तावित अनुसंधान में कुल 500 विद्यार्थियों को न्यादार्श के रूप में चयनित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- अरोड़ा, रीता (2005);''शिक्षा में नव चिन्तन'', जयपुरः शिक्षा प्रकाशन।
- अग्निहोत्री, रविन्द्र (2007);''आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्याऐं एवं समाधान'', जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- भट्टाचार्य, जी0सी0 (2005);''अध्यापक शिक्षा'', आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर।
- दुबे, श्यामाचरण (2005);''भारतीय समाज'', दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, पृष्ठ–126।
- लाल एवं पलोड़ (2007);''शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग'', मेरठः आर0लाल बुक डिपा।
- प्रसाद, देवी (2001);''शिक्षा का वाहनः कला'', दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, पृष्ठ–68,।
- पाण्डेय, राम शुक्ल (2007);''शैक्षिक नियोजन एवं वित्त प्रबन्धन'', आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ–105, 115, 116, 124।
- शर्मा, रजनी एवं पाण्डेय, एस0पी0 (2005);''शिक्षा एवं भारतीय समाज'', तयपुरः शिक्षा प्रकाशन, पृष्ठ 128–129।
- सुखिया, एस0पी0 (2005);''विद्यालय प्रशासन एवं संगठन'', मेरठः आर0लाल बुक डिपो।
- अन्वेषिका, एन0सी0टी0ई0, नई दिल्ली।
- ''भारत की जनसंख्या'', उपकार प्रकाशन, आगरा–2.
- भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, विद्या भारती, लखनऊ (उ0प्र0)
- गिजुभाई बोधका –शिक्षक हों तो, पृ0 36
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, वार्षिक रिर्पोट नई दिल्ली– 1996–97
- शिक्षा चिन्तन, त्रिमूर्ति संस्थान, कानपुर (उ0प्र0)
- ''उत्तर–प्रदेश एक अध्ययन (शिक्षा के सन्दर्भ में) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स'',आगरा–3.

*****

परिवारिक वातावरण का उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन

राहुल
शोधकर्ता
स्कूल ऑफ सोशल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय

डा. हरिओम चौहान
शोधनिर्देशक
सहायक प्राध्यापक
स्कूल ऑफ सोशल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय

Abstract सार :-

प्रत्येक व्यक्ति कुछ अन्तः निहित शक्तियों को लेकर जन्म लेता है। उसकी रुचियां, अभिरुचियाँ तथा क्षमताएं भिन्न–भिन्न होती है। विकासोन्मुख प्रक्रिया से प्रभावित होते हुए भी हमारे राष्ट्र ''में व्यावसायिक पिछड़ापन है। विश्वस्तरीय प्रतियोगिता के युग में यह आवश्यक हो गया है कि विद्यार्थी विद्यालय स्तर से ही अपनी योग्यता व क्षमता के अनुरूप प्रयास करें। उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों में से बालक का पारिवारिक वातावरण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र, पारिवारिक वातावरण का उच्च माध्यमिक स्तर अध्ययनरत विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है

कि वर्ड:- आकांक्षा स्तर, पारिवारिक वातावरण, उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी

प्रस्तावना :-

मानव अपने स्वभाव से अपनी सुरक्षा एवं सुस्थिति के लिए संघर्ष करता है और बढ़ता है। सभी प्राणियों की अपने जन्म–जन्मान्तर अपनी परिस्थिति के अनुकूल कर्म करना पड़ता है, इसी प्रकार के कर्मों के निमित्त मानव–प्राणी को भी सीखना पड़ता है, जिसके परिणाम स्वरूप उसे ज्ञान और अनुभव प्राप्त होता है, जिसे वह संचित है, इस दृष्टि से मनुष्य जीवन के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है मानव जीवन के उदय से लेकर आज तक शिक्षा से विकास तथा अभिवृद्धि की प्रक्रिया को सतत् रूप प्रदान किया है । विश्व के सभी देशों ने अपनी सामाजिक सांस्कृतिक पहचान बनाने के लिए अपनी शैक्षिक विकास तथा अभिवृद्धि की प्रक्रिया को सतत् रूप प्रदान प्रदान किया है।

किसी भी रासू का भविष्य उसके द्वारा अपने भावी नागरिको को दी जाने वाली शिक्षा तथा संस्कारों पर प्रमुख रूप से निर्भर करता है, जो राष्ट्र अपनी भावी पीढ़ी को उच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध कराता है।

शिक्षा वह प्रक्रिया है जो बालक को उचित प्रशिक्षण देते हुए उसके जीवन निर्माण हेतु मार्गदर्शन करती है। शिक्षा शब्द संस्कृत के शिक्ष धातु में 'अ' प्रत्यय लगने से बना है, जिसका अर्थ है सीखना और सिखाना । अतः शिक्षा सीखने की प्रक्रिया है। शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है, किसी राष्ट्र या समाज के विकास के लिए उसके व्यक्तियों का शिक्षित होना आवश्यक है, अर्थात् शिक्षा अन्धकार से प्रकाश की ओर 'मानव यात्रा का नाम है। शिक्षा से मनुष्य के अन्दर के क्षेत्र खुल जाते है और आत्मिक तथा अलौकिक प्रकाश प्राप्त होता है। प्राचीन काल के ग्रन्थों में अशिक्षित मनुष्य को 'विद्या विहीन पशु कहा गया है। अधति शिक्षित मनुष्य सदृश्य होता है।

इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के अनुसार :- ''शिक्षा से व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरो पर खड़ा हो सकता है।''

शिक्षा के द्वारा हम अपने जीवन के प्रत्येक पहलू में महत्वपूर्ण बदलाव कर सकते है, क्योंकि शिक्षा का मूल उद्देश्य ही व्यक्ति के ज्ञान, रुचि, आदत व व्यक्तित्व का विकास करके तथा समय का सदपुयोग द्वारा समाज को उच्च उद्देश्य की ओर अग्रसर कर सकें।

शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :-

किशोरावस्था जीवन का प्रमुख हिस्सा है जहाँ बाल्यावस्था से वयस्कता तक विकास होता है, यह चरण जैविक, संज्ञ. ानात्मक, सामाजिक और भावनाओं जैसे सबसे महत्वपुर्ण परिवर्तनों को चिह्नित करता है। चूँकि किशोरावस्था वहां विकास की अवधि होती है और यौन प्रबल इच्छा के कारण भावनात्मक अशांति भी होती है। इसलिए, किशोरों को भावनात्मक रूप से अपरिपक्त कहा जाता है। प्रस्तुत : शोध कार्य में माध्यमिक स्तर के बालको का अध्ययन किया जा रहा है जो कि किशोरावस्था की श्रेणी मे ही आतें है उन पर उनके पारिवारिक वातावरण तथा उनके विद्यालय का

सीधा प्रभाव पड़ता है उनके भावनात्मक विकास पर कहा जा सकता है कि जिस प्रकार बालक के परिवार का वातावरण होगा बालक उसी प्रकार परिवार से सीखेगा तथा उसी के अनुसार बालको में भावनाएँ उत्पन्न होगी क्योंकि एक बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका बालक के परिवार की ही होती है।

शोध समस्या कथन :- परिवारिक वातावरण का उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन।

प्रयुक्त शब्दो का परिभाषीकरण :-

पारिवारिक वातावरण :- बालक जिस प्रकार के पारिवारिक वातावरण में रहता है उस वातावरण का प्रभाव उस पर पड़ता है, जिस परिवार में मैत्रीपूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण होता है, वहाँ बालक का समुचित विकास होता है। इसके विपरीत जिस परिवार का वातावरण सौहार्दपूर्ण नहीं होता है वहाँ बालकों का समुचित विकास नही हो पाता है, और वहाँ बालकों के अनेक चरों जैसे – प्रेरणा, स्वभाव, बुद्धि, शैक्षिक रूचि, शैक्षिक उपलब्धि, संवेग, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक दक्षता, जीवन मूल्य, जीवन शैली, स्वपोषण, शैक्षिक महत्वाकाँक्षायें, समायोजन, सीखना, सामाजिक परिपक्वता, सामाजिक प्रतिष्ठा, सामाजिक कौशल, व्यक्तित्व इत्यादि को प्रभावित करते हैं, जो कि बालकों के सर्वांगीण विकास से सम्बन्ध रखते हैं। परिवार को पारिवारिक वातावरण के अनेक चरों के साथ–साथ दोषपूर्ण पारिवारिक वातावरण बालक को सीधे प्रभावित करते हैं।

भावानात्मक विकास :- भावानात्मक विकास होने पर वह अपने अच्छे–बुरे संस्कारों का आकलन करके जीवन की दिशा तय करता है। बुरे गुणों का बहिष्कार करता है। भावनाओं पर अनियंत्रण से ही जीवन लड़खड़ाने लगता है। तभी तो आए दिन जीवन में भावनात्मक समस्याएं बढ़ती नजर आ रही है। आपके व्यवहार में आपकी भावनाएँ जैसे क्रोध, ईर्ष्या, उल्लास, खुशी, निराशा, पीड़ा कैसे अभिव्यक्त होती है। इसका सीधा प्रभाव मनुष्य के अवचेतन मन पर पड़ता है आज यह मुद्दा चिंता का विषय बनता जा रहा है कि व्यक्ति का अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नही है।

व्यक्तिगत विकास :- प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार करने भावनाओ पर प्रतिक्रिया करने चीजों को समझने और दुनिया को देखने का ''अपना विशिष्ट तरीका होता है कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं हैं व्यक्तित्वहम जो सोचते है, हमारे विश्वासो , मूल्यों और अपेक्षाओ को भी प्रभावित करता है। हम दूसरों के बारे में क्या सोचते है यह हमारे व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। व्यक्तिगत विकास कार्यक्रमोंमें व्यक्तिगत विकास पर काम करतेहैं और समझाते हैं और एक बुद्धिमान और उचित तरीका ऐसी स्थितियो से निपटने के लिए हमे सक्षम बनाता है

आकांक्षा स्तर :- फ्रैंक के अनुसार व्यक्ति अपनी आकांक्षा को संभावित निष्पत्तियों को अपने समक्ष आने वाली कठिनाईयों के अनुसार एक श्रेणीक्रम में व्यवस्थित करता है। बॉयड (1952) के अनुसार, आकांक्षा स्तर का अर्थ है किसी गत्यात्मक परिस्थिति में व्यक्ति की महत्वाकांक्षा अर्थात् किसी दिये गये कार्य पर भावी निष्पत्ति हेतु व्यक्ति के लक्ष्य या अपेक्षा की उत्तमतास्मिथ (1979) आकांक्षा स्तर को व्यक्ति के तात्कालिक लक्ष्य, जो व्यक्ति की पहुँच के अन्तर्गत है, के रुप में परिभाषित करता है। व्यक्ति द्वारा निर्धारित स्तर सफलता प्राप्त करने की इच्छा तथा असफलता से बचने की इच्छा के मध्य एक प्रकार का समझौता है। सफलता प्राप्त करने की इच्छा स्तर को ऊँचा उठाती है तथा दूसरी इसे नीचा करती है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :- प्रत्येक व्यक्ति जिस किसी कार्य को करता है उसका कुछ न कुछ उद्देश्य निहित होता है। उद्देश्य के बिना वह कुछ भी कार्य नहीं करता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के मुख्य उद्देश्य निम्नंलिखित हैं।

छात्रों के पारिवारिक वातावरण का उनके भावनात्मक विकास पर प्रभाव का अध्ययन करना ।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें :- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोध अध्ययन को संपादित करने हेतु निम्न निम्नांकित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया।

1. छात्रों के पारिवारिक वातावरण का उनके भावनात्मक विकास पर सार्थक प्रभाव पडता है ।

शोध अध्ययन विधि :- प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए "वर्णनात्मक अनुसंधान" का एक प्रकार आदर्शमूलक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित लगेगा इसलिए शोधकर्ती द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग प्रस्तुत शोध अध्ययन में किया गया है।

शोध अध्ययन की जनसंख्या :- प्रस्तुत शोध अध्ययन में उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद उ0प्र0 द्वारा मान्यता प्राप्त तथा सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों का अध्ययन किया गया। इस प्रस्तुत शोध अध्ययन जनपद रामपुर के सहायता प्राप्त उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 11 के विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :- प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकता ने उद्देश्यों के अनुरूप उपकरणों की खोज की, अतः

शोधकर्ती ने शोध पर्यवेक्षक एवं शोध क्षेत्र के अन्य अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क किया तथा उनके परामर्श से मानकिकृत उपकरण का प्रयोग किया है।

अध्ययन का परिसीमांकन :- प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल जनपद रामपुर तक ही सीमित है। शोध अध्ययन में केवल उच्च माध्यामिक स्तर पर अध्ययनरत् केवल कक्षा 11 के ही विधार्थियों का ही चयन किया गया है

आंकडों का विश्लेषण एवं व्याख्या:- प्रस्तुत शोध अध्ययन कि निम्नलिखित सीमायें निर्धारित हैं।

परिकल्पना परिक्षण-1 छात्रों के पारिवारिक वातावरण का उनके भावनात्मक विकास पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

तालिका संख्या -1

छात्रों के पारिवारिक वातावरण का उनके भावनात्मक विकास सम्वन्धी ज्ञान

	लेवेन परिक्षण		साधनों की समानता के लिए टी टेस्ट							
								Sig.		
	F	Sig.	F	Sig.	F	Sig.	F	नीचा करना	ऊपरी	
छात्र	4.168	043.	1.008	198	314.	03994.	03961.	03816.-	11805.	अस्वीकृत
छात्राऐं			1.022	196.089	308.	03994.	03909.	03715.-	11704.	

तालिका संख्या -1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों के विद्यार्थियों की भावना. त्मक विकास के बीच महत्वपूर्ण अंतर है।

निष्कर्श - छात्रों के पारिवारिक वातावरण का उनके भावनात्मक विकास पर के लिए महत्वपूर्ण कारक है। भावनात्मक विकास के विभिन्न आयामों को विकसित करने के लिए उनके स्कूलों में नृत्य गायन नाटकिय जैसी विभिन्न प्रकार की सह पाठयचर्या गतिविधियॉ प्रदान की जानी चाहियें। शिक्षको को अच्छा वातावरण वनाना चाहिए और भावनात्मक विकास में सुधार के लिए विधाथियों को उनके साथियों के साथ बेहतर वातचीत के अवसर प्रदान करने चाहिऐंथ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

- अरोड़ा, रीता (2005);''शिक्षा में नव चिन्तन'', जयपुरः शिक्षा प्रकाशन।
- अग्निहोत्री, रविन्द्र (2007);''आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्याऐं एवं समाधान'', जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- भट्टाचार्य, जी0सी0 (2005);''अध्यापक शिक्षा'', आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर।
- दुबे, श्यामाचरण (2005);''भारतीय समाज'', दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, पृष्ठ–126।
- लाल एवं पलोड़ (2007);''शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग'', मेरठः आर0लाल बुक डिपा।
- प्रसाद, देवी (2001);''शिक्षा का वाहनः कला'', दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, पृष्ठ–68,।
- पाण्डेय, राम शुक्ल (2007);''शैक्षिक नियोजन एवं वित्त प्रबन्धन'', आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ–105, 115, 116, 124।
- शर्मा, रजनी एवं पाण्डेय, एस0पी0 (2005);''शिक्षा एवं भारतीय समाज'', तयपुरः शिक्षा प्रकाशन, पृष्ठ 128–129।
- सुखिया, एस0पी0 (2005);''विद्यालय प्रशासन एवं संगठन'', मेरठः आर0लाल बुक डिपो।
- अन्वेषिका, एन0सी0टी0ई0, नई दिल्ली।
- ''भारत की जनसंख्या'', उपकार प्रकाशन, आगरा–2.
- भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, विद्या भारती, लखनऊ (उ0प्र0)
- गिजुभाई बोधका –शिक्षक हों तो, पृ0 36
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, वार्षिक रिर्पोट नई दिल्ली– 1996–97
- शिक्षा चिन्तन, त्रिमूर्ति संस्थान, कानपुर (उ0प्र0)
- ''उत्तर–प्रदेश एक अध्ययन (शिक्षा के सन्दर्भ में) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स'',आगरा–3.

*****

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं में अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

कु.मोनिका
शोधार्थिनी
शिक्षा विभाग
स्कूल ऑफ सोषल साईसिंज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद
E-mail id: kkm766820@gmail.com
Mob. No.: 7668206043

डॉ.राजकुमारी गोला
सहायक प्रोफेसर
शिक्षा विभाग
स्कूल ऑफ सोषल साईसिंज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद
E-mail id: drrkgola2021@gmail.com
Mob. No.: 9634081865

सारः–

शिक्षा मानव जीवन के विकास की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक चलती रहती है। यह व्यक्ति और समाज दोनों के विकास में अप. ना योगदान देती है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक विकास की अनेक अवस्थायें होती है। पूर्व शैशवावस्था, बाल्यवस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढावस्था तथा वृद्ध ावस्था। मानवविकास की विभिन्न अवस्थाओं में किशोरावस्था सर्वाधिक महत्वपूर्ण की अवस्था है। विकासात्मक मनोवैज्ञा. निकों ने किशोरावस्था को अधिक महत्वपूर्ण अवस्था बताया है इस अवस्था में किशोरों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, सवेगात्मक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते है। यह वह अवस्था है जिसका छात्रों में तात्कालिक प्रभाव तथा दीर्घकालिन प्रभाव दोनों ही देखने को मिलता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर आते है। इन्ही तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए प्रस्तुत शोध पत्र में विद्यार्थियों में अभिप्रेरणा एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया गया है जिसके लिए आदर्श मूलक सर्वेक्षण पद्धति के अन्तर्गत प्रतिदर्श विधि ा द्वारा 286 छात्र एवं छात्राओं का चयन किया गया है।

बीजक शब्दः– अभिप्रेरणा, शैक्षिक उपलब्धि, संवेग, नैतिक एवं आध्यात्मिक।

प्रस्तावनाः – शिक्षा मानव जीवन के विकास की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक चलती रहती है। यह व्यक्ति और समाज दोनों के विकास में अपना योगदान देती है। शिक्षा का कार्य मानवीय जीवन को सुखमय, संपन्न और समृद्ध बनाना है, इसके लिये शिक्षा मानव का शारीरिक, बौद्धिक, सांवेगिक, आध्यात्मिक और नैतिक विकास करती है और उनकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, मूल्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। प्रत्येक बालक कुछ वंश. ानुगत शक्तियों को लेकर पैदा होता है। सामाजिक पर्यावरण में रहकर इन शक्तियों का विकास होता है। पर्यावरण में रहकर बालक अनेक क्रियाऐं करता है जिससे उसे नये अनुभव प्राप्त होते हैं। इन अनुभवों के अनुसार ही वह अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है तथा सुधार भी करता है। जिस बालक को जितने अधिक अनुभव प्राप्त होते है, उसका विकास भी उतना ही अधिक होता है। परिवर्तन व विकास की इस प्रक्रिया को ही शिक्षा कहा जाता है। बालक प्रेम, जिज्ञासा, कल्पना, आत्म–सम्मान आदि मूल प्रवृत्तियों को लेकर पैदा होता है। शिक्षा इन मूल प्रवृत्तियों का समुचित विकास करती है। शिक्षा के अभाव में ये प्रवृत्तियाँ अविकसित रहती है जिससे बालक के व्यक्तित्व का विकास संतुलित रूप में नहीं हो पाता। कुछ प्रवृत्तियाँ पाशविक होती है शिक्षा इन प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करना उनका मार्गान्तीकरण करना और सुधार करना सिखलाती है। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक विकास आवश्यक है। ज्ञान को विस्तृत करने और अपने दृष्टिकोण को विशाल बनाने के लिये मानसिक विकास आवश्यक है। शिक्षा इन सभी पक्षो का संतुलित विकास करती है। विद्यार्थियों की महत्त्वाकांक्षा एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा के स्तर पर भी अधिगम प्रक्रिया की सफलता काफी सीमा तक निर्भर करती है। अगर किसी विद्यार्थी में किसी भी प्रकार से आगे बढ़नें या उपलब्धि हासिल करने की कोई महत्त्वाकांक्षा या अभिप्रेरणा ही नहीं होगी तो यो किसी बात को सीखने की कोशिश भी नहीं करेगा। जो जितना पाने की इच्छा करता है. यह उसके लिये उतना ही प्रयत्न भी करना चाहेगा। जिनमें उपलब्धि की आवश्यकता सुदृढ होगी वे अप. ने आप में सुधार करने का भी प्रयास करते है। जिन विद्यार्थियों में उपलब्धि अभिप्ररण अधिक होता है। वे जिन्दगी में अधिक से अधिक उच्च स्तर की सफलता प्राप्त करने की

कोशिश करते है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व : — शिक्षा सामाजिक शैली को प्रतिबिन्धित करती है। शिक्षा को जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता। यदि प्रगति ही जीवन है तो शिक्षा इस प्रगति को उचित दिशा में नियंत्रित एवं संचालित करती है तथा बालक को उसके पर्यावरण के साथ समायोजन करना सिखाती है। यदि बालक में समायोजन करने की क्षमता नहीं होगी तो वह उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न करेगी। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बालक की कुशलता एवं दक्षता के मापन के आधार पर उन्हें उपलब्धि प्राप्त करने के समुचित अवसर प्रदान करना है। प्रत्येक बालक के जीवन की सफलता उनके मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक कारको आदि से प्रभावित होती है। यह सभी कारक बालक के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्धि प्राप्त करने हेतु एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक का कार्य करते है। अतः अभिप्रेरणा का जीवन की सपूर्ण उपलब्धि के साथ घनिष्ट सम्बंध होता है। विद्यार्थियो में अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के सम्बन्ध का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देदष्य है। इस उद्देदष्य की पूर्ति है तो शोधकर्ती ने यह महसूस किया की माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विभिन्न छात्र–छात्राओं में अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि का प्रभाव कहा तक पडता है को जनना ही मुख्य लक्ष्य माना है।

शोध समस्या कथनः — ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं में अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन''।

शोध अध्ययन के उदेद्श्यः — प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु निम्नांकित उद्देष्यों का निर्धारण किया गया है–

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना ।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायेंः— प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु निम्नांकित परिल्पनाओं का निर्माण किया गया है–

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नही है।

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नही है।

शोध अध्ययन विधिः — प्रस्तुत शोध अध्ययन में आदर्श मूलक सर्वेक्षण पद्धति के अन्तर्गत प्रतिदर्श पद्धति को अपनाया गया है।

शोध अध्ययन की जनसंख्या एवं न्यादर्शः— प्रस्तुत अध्ययन में जनपद मुरादाबाद के समस्त षिक्षण संस्थओं को जनसंख्या माना गया है। शोधकर्त्ती ने प्रस्तुत शोध कार्य के लिए न्यादर्ष का आकार कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत रखने का निर्णय लिया है, जिसमें मुरादाबाद के सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 10 के क्रमशः 180 छात्र एवं 80 छात्राऐं तथा 18 छात्र एवं 8 छात्राओं (कुल 286 छात्र एवं छात्राओं) को सम्मिलित किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः— प्रस्तुत शोध अध्ययन में माध्यमिक विद्यालयों के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के छात्र–छात्राओं में अभिप्रेरणा का मापन करने हेतु शोधकत्री ने अभिप्रेरणा उपकरण का प्रयोग किया तथा शैक्षिक उपलब्धि का मापन सरकारी एवं गैर सरकारी के विद्यार्थियों द्वारा कक्षा 9 की वार्षिक परीक्षा में उनके द्वारा प्राप्त कुल अंकों के प्रतिशत द्वारा किया गया।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियॉं या तकनीकियाँः— प्रस्तुत अध्ययन से शोधकर्ती ने परिकल्पनाओं का परीक्षण करने हेतु विभिन्न सांख्यिकीय सूत्रों प्रतिशत, माध्य, प्रमाप विचलन, प्रमाप विभ्रम, टी–परीक्षण, क्रान्तिक अनुपात, सम्भाव्य विभ्रम एवं सार्थकता का प्रयोग किया गया है।

शोध अध्ययन का सीमांकनः — प्रस्तुत अध्ययन की भी कुछ सीमाएं निश्चित की गई है, जो कि राज्य सरकार द्वारा संचालित ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों के कक्षा 10 के विद्यार्थियों को चयनित किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्याः —

परिकल्पना–1 ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नही है।'' इस सम्बन्ध में निर्मित तालिका संख्या 1 प्रस्तुत है–

तालिका संख्या – 1

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की अभिप्रेरणा का विश्लेषण

परिगणित मूल्य	अभिप्रेरणा का विश्लेषण	
	छात्र	छात्राऐं
विद्यार्थियों की संख्या	260	26
माध्य	41.31	44.81
प्रमाणिक विचलन	16.31	14.29
माध्य अन्तर	3.50	
प्रमाप विभ्रम	2.98	
क्रान्तिक अनुपात	1.17	
सारणी मूल्य (0.5 स्तर पर)	1.96	
सार्थकता	1.17<1.96 (निरर्थक)	
परिकल्पना	260	

तालिका सं0 1 से स्पष्ट है कि छात्रों के औसत प्राप्ताकं 41.31 तथा छात्राओं के औसत प्राप्ताकं 44.81 है। दोनों का माध्य अन्तर 3.50 है। माध्य अन्तर का प्रमाप विभ्रम 2.98 है। परिगणित क्रान्तिक अनुपात 1.17 है जो 0.05 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर निर्धारित सारणी मूल्य 1.96 से कम है। अतः अन्तर सार्थकता के 0.05 स्तर पर निरर्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई है कि ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नही है।'' तालिका संख्या 1 से ज्ञात होता है कि छात्रों एवं छात्राओं के अभिप्रेरणा प्राप्तांकों के मध्यमान क्रमशः 41.31 एवं 44.81 हैं तथा मानक विचलन क्रमशः 16.31 एवं 14.29 है। सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर टी–मान 0.05 प्राप्त हुआ जो 0.05 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर साथर्क नहीं है। इस आधार पर शून्य परिकल्पना विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नही है, स्वीकार की जाती है। अर्थात दोनों मध्यमान साथर्क रुप से भिन्न नहीं है। मध्यमानों में जो भी अन्तर दि खाई देता है वह संयोगवश है।

परिकल्पना–2 ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नही है।'' इस सम्बन्ध में तालिका सं0 2 प्रस्तुत है–

तालिका संख्या – 2

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का विश्लेषण

परिगणित मूल्य	शैक्षिक उपलब्धि का विश्लेषण	
	छात्र	छात्राऐं
विद्यार्थियों की संख्या	260	26
माध्य	52.91	50.76
प्रमाणिक विचलन	7.28	7.05
माध्य अन्तर	2.15	
प्रमाप विभ्रम	1.46	
क्रान्तिक अनुपात	1.48	
सारणी मूल्य (0.5 स्तर पर)	1.96	
सार्थकता	1.48<1.97 (निरर्थक)	
परिकल्पना	स्वीकृत	

परिकल्पना परीक्षण के लिए छात्रों एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित प्राप्तांकों के माध्य अंक अलग–अलग ज्ञात करके उनका प्रमाप विचलन ज्ञात कर, प्रमाप विभ्रम के द्वारा क्रान्तिक अनुपात ज्ञात किया गया है। तालिका स0 2 से स्पष्ट है कि छात्रों एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित औसत प्राप्तांक क्रमशः 52.91 तथा 50.76 हैं तथा प्रमाप विचलन क्रमशः 7.28 एवं 7.05 है। दोनों मध्यमानों की तुलना करने पर टी–मान 1.48 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की शैक्षक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नही है।, स्वीकार की जाती है।

शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षः –

परिकल्पनाओं का परीक्षण करने के पश्चात निष्कर्ष प्राप्त होता है कि छात्र एवं छात्राओं की अभिप्रेरणा में कोई साथर्क अन्तर नहीं है। अर्थात छात्र एवं छात्राओं की अभिप्रेरणा समान स्तर का पाया गया। छात्र एवं छात्राओं की अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है। अर्थात छात्र एवं छात्राओं की अभिप्रेरणा में कोई विशेष अन्तर नहीं है जो भी अन्तर दृष्टिगोचर हो रहा है वह संयोगवश है। छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि छात्राओं की अपेक्षा अधिक उच्च है। छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में छात्राओं की अपेक्षा सकारात्मक प्रबलता है। छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि छात्राओं से अधिक सकारात्मकता लिये हुये है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

- चौहान, आर एंव पी0डी0 (2015) अग्रवाल पब्लिकेषन्स आगरा–2 प्रथम संस्करण (2015–16) 98–102।
- डॉ माथुर, एस0एस0 (2011) षिक्षा के दार्षनिक तथा सामजिक आधार, अग्रवाल पब्लिकेषन्स आगरा–2।
- दीक्षित, एस0 (1989) शैक्षिक उपलब्धि पर व्यक्तित्व कारकों, बुद्धि एवं आत्म सम्प्रत्य का प्रभाव अप्रकाषित शोध प्रबंध मनोविज्ञान, आगरा विष्वविद्यालय, आगरा।
- वर्मा, पी0 एव श्रीवास्तव, डी0एन0 (2014) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, आगरा पब्लिकेषन्स, सोलहवॉ संस्करण 216–223।
- शर्मा, आर0ए0 (2005) षिक्षा अनुसंधान, सूर्या पब्लिकेषन्स, आर. लाल बुक, डिपो, मेरठ संस्करण (2005), 29–32।
- सिंह ए0के0 (2013) उच्चतर सामन्य मनोविज्ञान, पटना विष्वविद्यालय पटना षष्टम संस्करण (2013), पेज नं 142–145।
- Deshpande, M.B. (1984), An analytic study of cognitive affective development and scholastic achievement of tribal secondary school students. Unpublished Ph.D. thesis. Nagpur University. Nagpur.
- Montisi, M.R. (1979), A study of the self-concept of Basotho male and female adolescents in secondary schools. Dissertation Abstracts International, 39 (8).

*****

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन

कविता गर्ग
शोधार्थी
शिक्षा विभाग
स्कूल ऑफ सोशल साईसिंज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

डॉ. मोहन लाल 'आर्य'
आचार्य
स्कूल ऑफ सोषल साईसिंज
आईएफटीएम विष्वविद्यालय, मुरादाबाद
E-mail id: drmlarya2012@gmail.com

सारः

उच्च प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन एक महत्वपूर्ण शोध क्षेत्र है, जो शिक्षा प्रणाली के समग्र दृष्टिकोण को बेहतर बनाने में सहायक होता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में क्या अंतर होते हैं, और कैसे विभिन्न कारक इनकी सृजनात्मक क्षमता को प्रभावित करते हैं। सृजनात्मकता का तात्पर्य केवल कला या साहित्य से नहीं है, बल्कि यह किसी समस्या का नवाचारपूर्ण समाधान निकालने, नए विचारों की खोज, और अन्य क्षेत्रों में रचनात्मक दृष्टिकोण को भी शामिल करता है। सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विश्लेषण करते समय, यह देखा जाता है कि दिव्यांग विद्यार्थियों के पास अक्सर अद्वितीय दृष्टिकोण होते हैं, जो उन्हें सृजनात्मकता के विभिन्न पहलुओं में एक नई दिशा देने का अवसर प्रदान करते हैं। हालांकि, दिव्यांगता के कारण उन्हें कुछ अतिरिक्त चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे शारीरिक या मानसिक कठिनाइयाँ, जो उनके मानसिक विकास और सृजनात्मकता को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, दृष्टिहीन विद्यार्थियों को दूसरों की तुलना में अधिक श्रवण और संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है, जो उन्हें विशिष्ट रूप से सृजनात्मक बनने का अवसर देती है। सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए एक समर्पित और सहायक शैक्षिक वातावरण आवश्यक होता है, ताकि वे अपनी सृजनात्मकता को पूरी तरह से व्यक्त कर सकें। इस संदर्भ में, शिक्षक का कर्तव्य है कि वे बच्चों की विशेष आवश्यकताओं को समझते हुए उनका मार्गदर्शन करें और उनके सृजनात्मक विचारों को प्रोत्साहित करें। समावेशी शिक्षा पद्धति को अपनाकर, स्कूलों में सभी विद्यार्थियों को समान अवसर मिल सकते हैं, जिससे उनकी सृजनात्मकता को सही दिशा मिल सकती है। शोध में यह पाया गया है कि दिव्यांग विद्यार्थियों में उच्च स्तर की सृजनात्मकता हो सकती है, यदि उन्हें उपयुक्त संसाधन और समर्थन प्रदान किया जाए। विभिन्न प्रकार के शैक्षिक उपकरण, जैसे विशेष शिक्षा शिक्षक, तकनीकी सहायक उपकरण, और एक समावेशी कक्षा वातावरण, इन विद्यार्थियों को अपनी सृजनात्मकता को अनुकूलित करने का अवसर प्रदान कर सकते हैं। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि सृजनात्मकता केवल शारीरिक और मानसिक क्षमताओं पर निर्भर नहीं करती, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों से भी प्रभावित होती है। दिव्यांग विद्यार्थियों को समाज में अधिक समावेशिता, सहानुभूति और समर्थन मिलने पर उनकी सृजनात्मकता को प्रोत्साहन मिलता है। अंततः, उच्च प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा प्रणाली को समावेशी और विविध दृ ष्टिकोणों को अपनाने की आवश्यकता है। केवल इस प्रकार से हम सभी विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता को सही दिशा में विकसित कर सकते हैं।

बीजक शब्द :– माध्यमिक स्तर, विद्यार्थी, सृजनात्मकता, तकनीकी, समावेषी।

प्रस्तावनाः

सृजनात्मकता एक महत्वपूर्ण गुण है, जिसे मनुष्य की मानसिक क्षमता, सोचने की प्रक्रिया और विचारों को नई दिशा देने की क्षमता के रूप में देखा जा सकता है। यह गुण विशेष रूप से बच्चों में अधिक विकसित होता है, क्योंकि उनका मस्तिष्क नए विचारों और अवधारणाओं को आत्मसात करने के लिए हमेशा तैयार रहता है। जब बात उच्च प्राथ. मिक विद्यालयों की आती है, तो विद्यार्थियों की सृजनात्मकता

का मूल्यांकन करना न केवल शैक्षिक उद्देश्यों के लिए आवश्यक है, बल्कि यह उनके मानसिक और सामाजिक विकास को समझने में भी मदद करता है। सामान्य विद्यार्थियों में सृजनात्मकता का विकास उनके मानसिक, सामाजिक और शैक्षिक परिवेश से प्रभावित होता है। ये विद्यार्थी अपने आसपास के वातावरण से प्रेरणा प्राप्त करते हैं और अपनी कल्पना को नए विचारों, परियोजनाओं, कला या किसी समस्या के समाधान में रूपांतरित कर सकते हैं। उच्च प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर, विद्यार्थियों में सृजनात्मकता को विकसित करने के लिए शिक्षक उन्हें विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में भाग लेने का अवसर प्रदान करते हैं, जैसे चित्रकला, संगीत, खेल, विज्ञान प्रयोग और सोचने की समस्याएँ। इसके अतिरिक्त, सामान्य विद्यार्थियों की सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने के लिए पाठ्यक्रम में समावेशी दृष्टिकोण अपनाया जाता है, जहां बच्चों को अपने विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस प्रक्रिया में, शिक्षक विद्यार्थियों को विभिन्न दृष्टिकोणों से सोचने के लिए प्रेरित करते हैं, जिससे उनकी सृजनात्मक क्षमता में वृद्धि होती है।

दिव्यांग विद्यार्थियों में सृजनात्मकता की प्रक्रिया थोड़ी अलग हो सकती है, लेकिन यह कम महत्वपूर्ण नहीं है। दिव्यांगता के बावजूद, ऐसे विद्यार्थियों में अपनी क्षमता को व्यक्त करने का एक अद्वितीय तरीका हो सकता है। शारीरिक, मानसिक या अन्य प्रकार की दिव्यांगता के कारण इन विद्यार्थियों को विशेष ध्यान, समर्पित सहायता और एक समावेशी वातावरण की आवश्यकता होती है, जिससे वे अप. नी सृजनात्मकता को विकसित कर सकें। दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार की शैक्षिक योजनाएँ बनाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, सुनने या देखने में कठिनाई होने पर, चित्रकला और संगीत जैसे विषयों में इन विद्यार्थियों को अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने का एक अलग तरीका मिलता है। इससे न केवल उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति में सुधार होता है, बल्कि वे आत्मविश्वास और आत्म–सम्मान भी महसूस करते हैं।

सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों में सृजनात्मकता के बीच कुछ महत्वपूर्ण अंतर होते हैं, लेकिन यह कहना गलत होगा कि दिव्यांग विद्यार्थी सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में कम सृजनात्मक होते हैं। दरअसल, दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता को पहचानने और उसे बढ़ावा देने के लिए एक अलग दृष्टिकोण और तकनीकी मदद की आवश्यकता होती है। सामान्य विद्यार्थी अपनी सृजनात्मकता का उपयोग बिना किसी बड़ी कठिनाई के कर सकते हैं, क्योंकि उनके पास शारीरिक और मानसिक दोनों ही तरह से अधिक लचीला और खुला वातावरण होता है। वहीं, दिव्यांग विद्यार्थियों को अपनी सृजनात्मकता व्यक्त करने के लिए अतिरिक्त सहायता और संसाधनों की आवश्यकता होती है, जैसे सहायक उपकरण, विशेष शिक्षा, और व्यक्तिगत समर्थन। इसके बावजूद, दिव्यांग विद्यार्थियों में एक विशेष प्रकार की सृजनात्मकता देखी जा सकती है, जहां वे अपनी दिव्यांगता को एक चुनौती के रूप में नहीं, बल्कि एक अवसर के रूप में लेते हैं। जैसे, दृष्टिहीन या श्रवणदोष वाले विद्यार्थी अपनी कल्पना शक्ति को बढ़ाकर कला या संगीत में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकते हैं। समाज और शिक्षा प्रणाली में दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति बढ़ती जागरूकता सृजनात्मकता के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समाज को यह समझना जरूरी है कि दिव्यांगता किसी के सपनों और विचारों की उड़ान को रोकने का कारण नहीं हो सकती। विशेष रूप से उच्च प्राथमिक विद्यालयों में, जहाँ सभी बच्चों को समान अवसर मिलते हैं, यह दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। समान शिक्षा और अवसरों के माध्यम से, दिव्यांग और सामान्य विद्यार्थियों दोनों के बीच किसी भी प्रकार की भेदभ. ाव की स्थिति को समाप्त किया जा सकता है और दोनों के लिए समान अवसरों का निर्माण किया जा सकता है। इससे बच्चों में न केवल एक–दूसरे के प्रति सहानुभूति और सम्मान बढ़ेगा, बल्कि उनके मानसिक और सामाजिक विकास में भी सकारात्मक परिवर्तन आएगा।

उच्च प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि बच्चों की मानसिक और शैक्षिक विकास में सृजनात्मकता कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जबकि सामान्य विद्यार्थियों में सृजनात्मकता का विकास अपेक्षाकृत सरल होता है, दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए यह एक चुनौती हो सकती है, लेकिन यह उनके लिए एक अवसर भी हो सकता है, जिससे वे अपनी दिव्यांगता के बावजूद उत्कृष्टता प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षकों और समाज का यह कर्तव्य है कि वे इन बच्चों को समान अवसर प्रदान करें और उनकी सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करें।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्वः

उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की दिशा में एक कदम और बढ़ाने का कार्य करता है। सृजनात्मकता विद्यार्थियों के मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक विकास में एक अहम भूमिका निभाती है, और इसे पहचानना तथा बढ़ावा देना एक शिक्षक का प्रमुख दायित्व है। यह अध्ययन विद्यार्थियों के विचारों, कल्पनाओं और समस्याओं को हल करने की क्षमता को उभारने में मदद करता है, जिससे वे न केवल शैक्षिक क्षेत्र में बल्कि जीवन के अन्य पहलुओं में भी सफलता प्राप्त कर सकें। सृजनात्मकता का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि यह विद्यार्थियों को अपनी विचारशीलता और व्यक्तिगत दृष्टिकोण से समस्याओं को हल करने के लिए प्रेरित करती है। विशेषकर दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए, सृजनात्मकता एक सशक्त माध्यम है जो उनके आत्म–सम्मान और आत्मविश्वास को बढ़ावा देता है। जब दिव्यांग विद्यार्थी अप. ने दृष्टिकोण को साझा करते हैं और अपने तरीके से समस्याओं का समाधान ढूंढते हैं, तो यह न केवल उनकी मानसिक क्षमता को बढ़ाता है, बल्कि उनके समाज में शामिल होने और अन्य लोगों के साथ संवाद स्थापित करने की क्षमता को भी सशक्त बनाता है। सृजनात्मकता का अध्ययन विद्यार्थियों के विविधता को समझने में मदद करता है। सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों के बीच अंतर को ध्यान में रखते हुए, यह अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि कैसे शिक्षा प्रणाली और शिक्षण विधियाँ उनकी सृजनात्मकता को प्रभावित कर सकती हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि दिव्यांग विद्यार्थियों को उन विशेष शैक्षिक तकनीकों और संसाधनों की आवश्यकता होती है, जो उनकी सृजनात्मकता को बढ़ावा दें और उन्हें समान अवसर प्रदान करें। इसके अतिरिक्त, उच्च प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन यह जानने में मदद करता है कि शिक्षा को अधिक समावेशी और सभी के लिए समान अवसर देने वाली कैसे बनाया जा सकता है। सृजनात्मकता को बढ़ावा देने से विद्यार्थियों में न केवल अकादमिक सफलता प्राप्त होती है, बल्कि वे जीवन में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का सामना भी आत्मविश्वास और सकारात्मक दृष्टिकोण से करते हैं। यह उन्हें भविष्य में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और समाज में सकारात्मक बदलाव लाने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करता है। इस प्रकार, उच्च प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार और सुधार की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है, जो समाज के सभी वर्गों के बीच समानता और समावेशिता को बढ़ावा देता है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययनः

प्राची एवं स्वाती (2016) ने ''ग्रामीण एवं शहरी किषोर बालक एवं बालिकाओं की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन'' किया। विद्यालय वह स्थान है जहां षिक्षकों द्वारा छात्रों में सृजनात्मकता स्तर को उपलब्धि हेतु कुछ मुलभूत योग्यतायें,कौषलों तथा अच्छा व्यवहार विकसित करने के लिए सुव्यवस्थित प्रयास किये जाते है। षिक्षा के माध्यम से ही सृजनात्मकता को व्यवसायिक रूप देना संभव है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में कक्षा 9वी के ग्रामीण–षहरी 2 विद्यालयों तथा 100,100 किषोर विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का का अध्ययन किया गया। प्रमापीकृत उपकरण से मापने पर यह पाया गया कि ग्रामीण विद्याार्थियों की सृजनात्मकता का स्तर उच्च हैं। **मिश्र (2018)** ने उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर संस्थागत वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया। आँकड़ों के विश्लेषणोपरान्त पाया गया कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कुल विद्यार्थियों एवं छात्रों की सृजनात्मकता पर संस्थागत वातावरण का प्रभाव पाया गया जबकि छात्राओं के सृजनात्मकता पर संस्थागत वातावरण का प्रभाव नहीं पाया गया। जिसका कारण यह हो सकता है कि आज भी बालिकाओं को परिवार, विद्यालय, समाज एवं अन्य जगहों पर रोका– टोका जाता है वहीं उन्हें बहुत कम अभिप्रेरित किया जाता है तथा उन्हें आगे बढ़ाने में लोगों की सोच आज भी पीछे हैं।

शोध समस्या कथनः

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन।

आंकड़ा संग्रहण के उपकरणः

प्रस्तुत शोध हेतु आंकड़ों के संकलन के लिए उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं

दिव्यांग विद्यार्थियों से व्यक्तिगत सम्पर्क करके प्रश्नावली के माध्यम से आंकड़ों का संकलन किया गया।

न्यादर्शः

वर्तमान शोध हेतु 500 विद्यार्थियों (320 सामान्य एवं 180 दिव्यांग) को शामिल किया गया है।

उपकरणः

कोई भी अनुसंधान बिना परीक्षण के पूर्ण नही होता। अनुसंधानकर्ता ने प्रस्तुत अनुसंधान के ऑकड़ों के सकंलन हेतु निम्नलिखित मानकीकृत परीक्षणों सृजनात्मकता मापनी, बाकर मेंहदी द्वारा निर्मित प्रष्नावली का चयन किया है।

शोध अध्ययन के उद्देश्यः

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन।

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्रों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन।

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्राओं की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाऐं:

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्रों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्राओं की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्याः

परिकल्पना 1 मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या 1

सामान्य एवं द्विव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में माध्य, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का विश्लेषण एवं व्याख्या

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	माध्य	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य विद्यार्थी	320	52.19	14.84	2.04	0.01 सार्थक
द्विव्यांग विद्यार्थी	180	55.12	15.74		

सारणी संख्या 1 के अनुसार, सामान्य विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का माध्य 52.19 तथा दिव्यांग विद्यार्थियों का माध्य 55.12 है। सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों का मानक विचलन क्रमषः 14.84 एवं 15.74 है तथा दोनों के बीच क्रान्तिक अनुपात का मान 2.04 प्राप्त हुआ है। प्राप्त मान सार्थकता स्तर 0.01 के मान से अधिक है। दिव्यांग विद्यार्थियों का माध्य सामान्य विद्यार्थियों से अधिक है। सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों के बीच सार्थकता का अन्तर इस बात का घोतक है कि सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा दिव्यांग विद्यार्थियों का सृजनात्मकता का स्तर सामान्य विद्यार्थियों से उच्च है। दिव्यांग विद्यार्थियों मे नये–नये विचार, नवीन खोज, नया निर्माण एवं क्रियात्मक योग्यता आदि योग्यताएँ विशेष रूप से प्रभावशाली होती हैं क्योकि उसका एक कारण यह भी है उनको अपनी द्विव्यांगता का पता होता है इसी कारण वह अधिक सृजनात्मक

विचार रखते है। दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में पारिवारिक एवं सामाजिक कारक भी प्रभावित होते है। पारिवारिक कारको में मुख्यतः माता–पिता एवं उचित मार्गदर्शन का न मिलना उनकी सृजनात्मकता दृष्टि को और अधिक प्रबल बनाता है। धन की कमी एवं विद्यालय का वातावरण भी प्रभावित करता है। जहाँ सामान्य विद्यार्थी अपने आप को पूर्ण मानते है और सृजनात्मक का विकास उतना नही कर पाते है इसके लिए माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य और विद्यालय का सकारात्मक व्यवहार भी कभी कभी चीजों को दुर्बल बनाने में प्रभावी कारण होता है। अर्थात जितनी सृजनात्मकता का विकास होना चाहिए उतना उनका नही हो पाता है। यही कारण है कि सामान्य एवं द्विव्यांग विद्यार्थियों में सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर पाया जाता है और शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिकल्पना 2 मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्रों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या 2

सामान्य एवं द्विव्यांग छात्रोंके मध्य सृजनात्मक योग्यता का माध्य, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का विश्लेषण एवं व्याख्या

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	माध्य	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य छात्र	200	50.21	12.76	2.62	0.01 सार्थक
द्विव्यांग छात्र	98	55.67	11.98		

सारणी सं0 2 के अनुसार सामान्य एवं दिव्यांगछात्रों के मध्य में सृजनात्मकता योग्यता का माध्य 50.21एवं 55.67 है तथा मानक विचलन 12.76 एवं 11.98 है। सामान्य एवं दिव्यांग छात्रों के मध्य क्रान्तिक अनुपात का मान2.62 प्राप्त हुआ है। दोनों के माध्य का अन्तर देखने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी है जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि छात्र आजकल के परिवेश में सृजनात्मकता में आगे हैं। दिव्यांग छात्रों, सामान्य छात्रो की अपेक्षा सृजनात्मकतामे अधिक प्रभावशाती है। दिव्यांग छात्रो का सृजनात्मकता का स्तर उच्च है। दिव्यांग छात्रों में नवीन विचार, क्रियात्मक योग्यता, नई खोज और नया निर्माण आदि विशेषताएँ पायी जाती है। दिव्यांग छात्रों में कला, संगीत, नृत्य शिल्पकला आदि के प्रति सृजनात्मकता अधिक प्रबल होती है इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि दिव्यांग छात्रों को अपनी दिव्यांग का पता होता है और वह कुछ भी करने के लिए उत्सुक रहते है।वहीं दूसरी और सामान्य छात्रों की सृजनात्मकता पारिवारिक वातावरण के कारण भी प्रभावित होती है। मुख्यतः सामान्य विद्यार्थियों के साथ माता–पिता अनेक सुख सुविधाओं का वातावरण उपलब्ध कराते है। जिसके कारण उनमें सृजनात्मकता का विकास उतना नही हो पाता है। यही कारण है कि सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर पाया जाता है और हमारी शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिकल्पना 3 मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्राओं की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या 3

सामान्य एवं द्विव्यांग छात्राओंके मध्य सृजनात्मकता का माध्य, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का विश्लेषण एवं व्याख्या

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	माध्य	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य छात्राएँ	120	51.21	12.07	1.71	0.01 एवं 0.05 सार्थकता नहीं
द्विव्यांग छात्राएँ	82	55.22	11.70		

सारणी सं0 3 के अनुसार सामान्य एवं दिव्यांगछात्राओं के मध्य में सृजनात्मकता का माध्य 51. 21एवं 55.22 है तथा दोनों के बीच मानक विचलन का मान 12.07 एवं 11.70है तथा सामान्य एवं दिव्यांग छात्राओं के मध्य क्रान्तिक अनुपात का मान1.71है। अतः दोनों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। सामान्य छात्राओं में सृजनात्मकता के माध्य का कम होना इस बात का घोतक है कि सुख–सुविधाओं का अधिक होना, प्रभावों की कमी, किसी भी कार्य को क्रियात्मक एवं सृजनात्मक स्तर पर नहीं देखना आदि कारण सृजनात्मकता के विकास को सामान्य छात्राओं की सृजनात्मकता को प्रभावित करते है। वही दूसरी और दिव्यांग छात्राओं की धन की कमी, सामान व्यवहार का अभाव, माता–पिता का स्नेह का अभाव, कक्षा में अपनी सहपाठियों का व्यवहार उनके मस्तिष्क को अधिक प्रबल बनाता है क्योंकि जब हमकों अपनी शारीरिक अक्षमता के विषय पर पता होता है तो व्यक्ति अधिक सृजनात्मकता होता है और बेहतर तरीके से सभी चीजों को करता है। अतः सामान्य एवं दिव्यांग छात्राओं में सृजनात्मकता का सार्थकता स्तर नहीं पाया जाता है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।

अध्ययन के निष्कर्षः

मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर पाया गया। मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्रों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर पाया गया। मुरादाबाद जनपद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सामान्य एवं दिव्यांग छात्राओं की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर पाया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

प्राची एवं स्वाती (2016). ग्रामीण एवं शहरी किषोर बालक एवं बालिकाओं की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन, शोध पत्र, Volume : 5, Issue : 5, Social Science.

मिश्र (2018). उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर संस्थागत वातावरण के प्रभाव का अध्ययन, शोध पत्र, Volume 4, Issue 6, IJSRSET.

सिंह, आर. (2020). उच्च प्राथमिक विद्यालयों में सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन. दिल्ली : शिक्षा प्रकाशन।

लक्ष्मी, एन. (2021, जून). उच्च प्राथमिक विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों की सृजनात्मकता और शैक्षिक प्रभावरू एक अध्ययन। राष्ट्रीय शैक्षिक सम्मेलन, दिल्ली।

*****

मुरादाबाद विकासखण्ड में जनसंख्या वृद्धि एवं भू–दृश्य परिवर्तन एक भौगोलिक अध्ययन

राहुल कुमार
शोधकर्ता
भूगोल विभाग
स्कूल ऑफ सोषल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, उ0प्र0
E-mail Id: sharma.rahulsharma566@gmail.com

डॉ.मोहन लाल 'आर्य'
आचार्य
स्कूल ऑफ सोषल साईंसिज़
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, उ0प्र0
E-mail Id: drmlarya2012@gmail.com

सार

जनसंख्या वृद्धि परिदृश्य परिवर्तन का एक प्रमुख चालक है, जो शहरी विस्तार, कृषि भूमि उपयोग और पर्यावरणीय स्थितियों को प्रभावित करती है। उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले में मुरादाबाद विकासखंड में महत्वपूर्ण जनसांख्यिकीय वृद्धि देखी गई है, जिससे भूमि उपयोग पैटर्न में काफी बदलाव आया है। यह शोधपत्र जनसंख्या वृद्धि के रुझान, इसके परिणामस्वरूप होने वाले परिदृश्य परिवर्तन और उनके सामाजिक–आर्थिक और पर्यावरणीय प्रभावों की जांच करता है। जनगणना डेटा, रिमोट सेंसिंग विश्लेषण और क्षेत्र अवलोकनों का उपयोग करते हुए, यह अध्ययन क्षेत्र के परिदृश्य पर शहरीकरण, औद्योगीकरण और बुनियादी ढांचे के विकास के प्रभाव को उजागर करता है। अंत में, यह पर्यावरण संरक्षण के साथ विकास को संतुलित करने के लिए स्थायी भूमि उपयोग योजना के लिए रणनीतियों का प्रस्ताव करता है।

मुख्य शब्दः जनसंख्या वृद्धि, सांस्कृतिक परिदृश्य, परिवर्तन, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास।

परिचय

जनसंख्या वृद्धि और भू–दृश्य परिवर्तन परस्पर जुड़ी हुई प्रक्रियाएँ हैं जो किसी भी क्षेत्र के विकास को आकार देती हैं। मुरादाबाद विकासखंड, जो कि मुरादाबाद जिले का एक हिस्सा है – जिसे भारत का पीतल नगर भी कहा जाता है औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण तेजी से जनसांख्यिकीय विस्तार और भूमि–उपयोग परिवत. ंनों का अनुभव किया है। बढ़ी हुई मानवीय गतिविधियों ने भू–दृश्य को बदल दिया है, जिससे कृषि भूमि, वन, जल निकाय और जैव विविधता प्रभावित हुई है। इस अध्ययन का उद्देश्य भू–दृश्य परिवर्तन पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव का विश्लेषण करना, भूमि–उपयोग परिवर्तन के प्रमुख चालकों की पहचान करना और मुरादाबाद विकासखंड के लिए सतत विकास रणनीतियों का सुझाव देना है।

अध्ययन क्षेत्र मुरादाबाद विकासखंड

भौगोलिक अवस्थिति एवं विशेषताऐंः मुरादाबाद विकासखंड पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले में स्थित है। यह 28.84 डिग्री उत्तर और 78.77 डिग्री पूर्व देशांतर के बीच स्थित है और शहरी और अर्ध–शहरी दोनों क्षेत्रों को कवर करता है। जलवायु उपोष्णकटिबंधीय मानसून जलवायु ग्रीष्मकाल गर्म और शुष्क (अप्रैल–जून) सर्दियाँ हल्की (दिसंबर–फरवरी) वर्षा औसत वार्षिक वर्षा 1000–1200 मिमी, मुख्य रूप से मानसून के मौसम के दौरान

साहित्य समीक्षाः भारत की जनसंख्या वृद्धि और भूमि उपयोग परिवर्तन का गहराई से अध्ययन किया गया है, जो तेजी से शहरीकरण के दौर से गुजर रहे मुरादाबाद जिले के लिए सहायक विचार प्रदान करता है। जियांग, मलिक और नीलसन, (2020) ने उल्लेख किया कि जनसंख्या दबाव फसल और उर्वरक अनुप्रयोग जैसे भूमि उपयोग परिवर्तन को बढ़ावा देता है। इससे पता चलता है कि अध ार्–ग्रामीण भारतीय क्षेत्रों में भूमि उपयोग सीधे जनसांख्यिकीय कारकों से प्रभावित होता है। उनका अध्ययन एक

महत्वपूर्ण योगदान था जिसने भू–दृश्य परिवर्तन की जांच और कल्पना करने के लिए रिमोट सेंसिंग और भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) को नियोजित किया और भू–स्थानिक उपकरणों की भूमिका पर जोर दिया। नाइकू, रिहान और इश्तियाक, (2020) ने उत्तर पश्चिमी दिल्ली में शहरी विकास का विश्लेषण किया और रिमोट सेंसिंग डेटा विश्लेषण के परिणामस्वरूप शहरी फैलाव की सीमा का दस्तावेजीकरण किया। उनके निष्कर्षों ने चल रहे अनियंत्रित शहरी फैलाव और महत्वपूर्ण भूमि उपयोग परिवर्तनों पर प्रकाश डाला, जिसके लिए व्यापक टिकाऊ योजना की आवश्यकता है। ये कार्य जन. संख्या वृद्धि, तकनीकी विकास, भूमि नीतियों और नियोजन के बीच परस्पर क्रिया को दर्शाते हैं। जहां तक मुरादाबाद की बात है, जो एक शहरीकृत जिला है और जिसकी जनसंख्या वृद्धि बहुत तेज है, तो यह शोध एक प्रेरणा के रूप में कार्य करता है और साथ ही भूमि उपयोग परिवर्तन के अनियंत्रित परिणामों के प्रति चेतावनी भी देता है।

शोध कार्यप्रणाली एवं डिजाइनः

यह शोध अध्ययन गुणात्मक शोध डिजाइन का पालन करता है, जो पूरी तरह से द्वितीयक डेटा स्रोतों (भंगू, प्रोवोस्ट और कैडफ, 2023) के मूल्यांकन पर आधारित है। इसका उद्देश्य जनसांख्यिकीय डेटा, उपग्रह छवियों, सरकारी दस्तावेजीकरण, नियोजन दस्तावेजों और प्रासंगिक शैक्षणिक प्रकाशनों का विश्लेषण करके मुरादाबाद जिले में जनसांख्यकीय परिवर्तनों और परिदृश्य परिवर्तन के प्रभावों और प्रक्रियाओं को समझना है। क्षेत्र के पर्यावरण और जनसांख्यिकी के बारे में उपलब्ध विद्वानों की अंतर्दृष्टि और डेटासेट फील्डवर्क या सर्वेक्षणों के माध्यम से एकत्र किए जाने के बजाय उन पर निर्भर हैं। यह अध्ययन समय के साथ भूमि उपयोग परिवर्तनों से जुड़े रुझानों, संबंधों और अंतर्निहित कारणों को निकालने के लिए विषयगत विश्लेषण का उपयोग करता है। रिमोट सेंसिंग इमेज और जीआईएस–आधारित भूमि उपयोग वर्गीकरण मानचित्र, मात्रात्मक होने के बावजूद, उनके सामाजिक और आर्थिक प्रभावों के लिए गुणात्मक रूप से विश्लेषण किए जाएंगे (हमुद, प्रिंस और शफरी, 2019)। यह ढांचा जटिल क्षेत्रीय समस्याओं के लिए एक तेज और लागत प्रभावी समाधान प्रदान करता है, इसलिए यह विद्वानों के क्षेत्र की अच्छी तरह से सेवा करता है, जो प्रत्यक्ष माप से ऊपर व्याख्या को प्राथमिकता देता है। शोध ढांचे का उद्देश्य ऐसे परिणाम उत्पन्न करना है, जिनसे पर्यावरण संबंधी मामलों पर ध्यान केंद्रित करने वाले योजना पेशेवरों और नीति निर्माताओं के साथ–साथ शोधकर्ताओं को भी लाभ पहुंचे।

तालिका संख्या–01

मुरादाबाद विकासखंड में जनसंख्या वृद्धि (1991–2021)

वर्ष	कुल (जनसंख्या)	पुरुष (जनसंख्या)	स्त्री (जनसंख्या)	जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत)
1991-1996	197037	106305	90732	52.60
1996-2001	197037	106305	90732	52.60
2001-2006	182460	96847	85613	48.42
2006-2011	182460	96847	85613	48.42
2011-2016	188157	98482	89675	03.12
2016-2021	165157	86373	78784	-9.48

https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable5Report.action

मुरादाबाद विकासखण्ड में जनसंख्या वृद्धिः मुरादाबाद विकासखण्ड में अन्य विकासखंडो के मुकाबले अधिक

जनसंख्या निवास करती हैं। यहाँ का क्षेत्रफल 171.72 वर्ग किलोमीटर तथा 165157 जनसंख्या निवास करती हैं। यहाँ के लोग खेती का कार्य अधिक करते है। मुख्यता यहाँ का व्यवसाय पीतल का है। जिसके कारण ये पीतलनगरी के नाम से जानी जाती है। यहाँ का पीतल पूरे विश्व में निर्यात किया जाता है। यहां पीतल के साथ–साथ अन्य प्रकार की धातुओं से निर्मित विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को भी विश्व में निर्यात किया जाता है। इसके साथ छोटे मोटे व्यापारी लोग अपना छोटा मोटा व्यापार भी करते हैं जैसे प्लास्टिक से बने सामान, मिट्टी से बने समान, फल, सब्जी, तथा अनेक प्रकार की दालें चावल, गेहूं, ज्वार, मक्का आदि। यहाँ पर ग्रामों में साक्षरता की भी कमी हैं। ज्यादा से ज्यादा जनता ग्रामों में ही निवास करती हैं तथा खेती बाड़ी का कार्य करती हैं। जनसंख्या एवं विकास के बीच अंतर को नकारा नही जा सकता है। वर्तमान परिवेश में विकास के स्तर में भित्रताएं देखने को मिल रही है यह भिन्नता भी कई कारणों से है परन्तु विद्वानों का मत है कि शिक्षा एवं संस्कृति के स्तर में परिवर्तन के अनुसार ही जन. संख्या का स्तर भी बदलता जाता है। जिन छात्रो में शिक्षा का स्तर ऊंचा है वहां सांस्कृतिक विकास का स्तर भी उच्च होता है। परिणामस्वरूप विकास का स्तर भी वहाँ उच्च होने से जनसंख्या अथवा मानव विकास सूचकांक भी उच्च होता है। जनसंख्या वैज्ञानिको का मानना है कि सामाजिक–आर्थिक विकास में जनादि की विशेषताओ विशेषकर जनसंख्या वृद्धि में परिवर्तन आता है, इसी तरह जनसंख्या वृद्धि में परिवर्तन सामाजिक आर्थिक वाले देशों में जन्मदर एवं मृत्युदर दोनो ही अधिक होते है, जो पिछड़ी अवस्था का प्रतीक है, दूसरी ओर उच्च सामाजिक आर्थिक विकास वाले देशों में जन्मदर एवं मृत्युदर दोनो ही कम होने से जनसंख्या वृद्धि भी कम हो जाती है। यह इस सामान्य नियम के तहत विश्लेषण करने पर पता चलता है कि विश्व के सभी देशो में जनसंख्या वृद्धि की यही प्रवृति पाई जाती है।

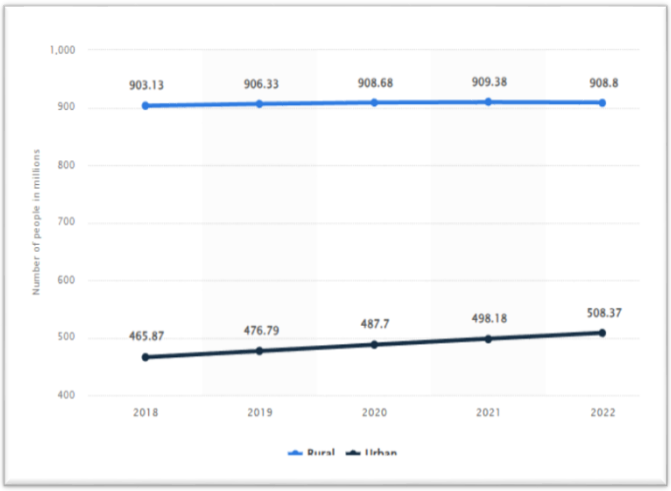

चित्र संख्या–01 2018 से 2022 तक भारत में ग्रामीण और शहरी जनसंख्या

विश्लेषण के रूप में, मुरादाबाद विकासखंड ग्रामीण से शहरी जीवन के व्यापक राष्ट्रीय बदलाव के साथ एक महत्वपूर्ण जनसंख्या वृद्धि पैटर्न को दर्शाता है। पारंपरिक रूप से ग्रामीण प्रकृति वाले मुरादाबाद में हाल ही में जनगणना के अनुमानों के अनुसार शहरी आबादी में धीमी लेकिन स्थिर वृद्धि देखी गई है। यह राष्ट्रीय पैटर्न के अनुरूप है, जिसमें 2022 के दौरान भारत की ग्रामीण आबादी 908.8 मिलियन दे खी गई, जो 2021 (स्टेटिस्टा, 2024) से थोड़ी गिरावट है। दूसरी ओर, भारत की शहरी आबादी 508 मिलियन से अधि क हो गई, जिसमें साल दर साल काफी अधिक वृद्धि दर है जो शहरी प्रवास और विस्तार में वृद्धि को दर्शाता है।

जैसा कि मुरादाबाद विकासखंड को जिले के केंद्र से देखा गया है, शहर सीधे इस भौगोलिक क्षेत्र को आकार देता है, जिसमें बागवानी भूमि के औद्योगिक और वाणिज्यिक क्षेत्रों के साथ–साथ आवासीय सम्पदा में तेजी से तब्दील होने के प्रमाण हैं। शहरी केंद्र के आसपास की कृषि भूमि कम आबादी वाली बनी हुई है, इसलिए यह क्षेत्र उपग्रह उच्च वृद्धि वाले आवासों में बदल रहा है (फैन एट अल। 2020)। इस तरह की घटनाएँ पैदल चलने वालों के लिए मु ख्य मार्गों और सड़कों की उपस्थिति को तेजी से बढ़ाती हैं क्योंकि खेत के टुकड़े अथक वनों की कटाई और घनी आबादी वाले क्षेत्रों में तब्दील हो जाते हैं। ये अवलोकन जन. संख्या के दबाव के सबूत प्रदान करते हैं जो तेजी से वनों की कटाई जैसे आक्रामक परिणामों को जन्म देते हैं। समन्वित शहरी–ग्रामीण विकास नीतियाँ मुरादाबाद जिले में तेजी से उन्नति प्रौद्योगिकियों के साथ संतुलित कृषि क्षेत्रों की एक बुनियादी जरूरत पैदा करेंगी।

संभावित अनुप्रयोगः

अध्ययनों ने पुष्टि की है कि मुरादाबाद विकासखंड में जनसंख्या विस्तार और भूमि प्रबंधन के प्रबंधन में भूमि उपयोग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्रामीण क्षेत्रों का शहरी–औद्योगिक केंद्रों में परिवर्तन नई समस्याएं पैदा करता है, जो सही तरीके से प्रबंधित किए जाने पर आर्थिक विकास के साथ–साथ पर्यावरणीय स्थिरता को भी बढ़ावा दे सकता है। शोध के परिणाम नीति निर्माताओं और शहरी डिजाइनरों और पर्यावरण नियोजन संस्थानों के लिए पर्यावरणीय रूप से सतत विकास नीतियां बनाने के लिए महत्वपूर्ण मूल्य रखते हैं (पुचोल–सलोर्ट एट अल. 2021)। भू–स्थानिक विश्लेषण उपकरणों से भूमि उपयोग परिवर्तनों के विजुअलाइजेशन को पर्याप्त लाभ मिला है, जिनमें वि. भन्न जिलों में अतिरिक्त अनुप्रयोगों की क्षमता है। मुरादाबाद जैसे तेज जनसंख्या वृद्धि वाले जिलों में सतत भू–पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए बढ़ती आबादी के भीतर परिदृश्य परिवर्तन उत्पन्न करने वाले कारकों और पैटर्न की पहचान करना आवश्यक है।

निष्कर्ष: शोध में मुरादाबाद विकासखंड में जनसंख्या और भूमि मूल्यांकन में महत्वपूर्ण परिवर्तन सामने आए हैं। मुरादाबाद विकासखंड में पिछले दशकों में जनसंख्या में लगातार वृद्धि हुई है, खासकर शहरी केंद्रों में, जिससे भूमि संसाधनों पर दबाव बढ़ा है। बढ़ती आबादी के साथ–साथ तेजी से भू–दृश्य परिवर्तन भी हुए हैं, जैसे कि कृषि भूमि का आवास, औद्योगिक और अवसंरचनात्मक उद्देश्यों के लिए रूपांतरण। प्रमुख निष्कर्ष औद्योगिक विकास के साथ शहरीकरण में वृद्धि का सुझाव देते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप हरित आवरण और कृषि भूमि में कमी आई है, खासकर चीनी और पीतल उद्योगों से। कृषि प्रणाली को अतिरिक्त तनाव का सामना करना पड़ता है क्योंकि वार्षिक वर्षा में व्यापक भिन्नताएँ दिखाई देती हैं। शोध में असंगठित शहरी नियोजन से संबंधित दो मुख्य समस्याओं की पहचान की गई है, जिसके कारण शहर का विकास अव्यवस्थित हो जाता है और कृषि घाटे और मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट आती है। जनसंख्या सांख्यिकी और पारिस्थितिक तंत्र के बीच उभरे मुद्दों के कारण इस क्षेत्र को बेहतर भूमि संसाधन प्रबंधन की तत्काल आवश्यकता है। शोध मुरादाबाद विकासखंड के अर्ध–शहरी क्षेत्रों में जटिल जनसंख्या–संबंधी चिंताओं और भूमि मूल्यांकन मामलों की जांच करने को सक्षम बनाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- Local government and environmental impact assessment reports.
- Uttar Pradesh State Population Report, Ministry of Health & Family Welfare.
- District Census Handbook, Moradabad, Government of Uttar Pradesh.
- Reports from the National Family Health Survey (NFHS-5).
- Uttar Pradesh State Planning Commission Reports.
- Satellite imagery analysis from Google Earth and remote sensing data.
- https://updes.up.nic.in/spiderreports/gettable5Report.action
- Fan, P., Yue, W., Zhang, J., Huang, H., Messina, J., Verburg, P.H., Qi, J., Moore, N. and Ge, J., 2020. The spatial restructuring and determinants of industrial landscape in a mega city under rapid urbanization. Habitat International, 95, p.102099. Available at: https://research.vu.nl/files/126097408/The_spatial_restructuring_and_determinants_of_industrial_landscape_in_a_mega_city_under_rapid_urbanization.pdf
- Hamud, A.M., Prince, H.M. and Shafri, H.Z., 2019, November. Landuse/Landcover mapping and monitoring using Remote sensing and GIS with environmental integration. In IOP Conference Series: Earth and Environmental Science (Vol. 357, No. 1, p. 012038). IOP Publishing. Available at: https://iopscience.iop.org/article/10.1088/1755-1315/357/1/012038/pdf
- Puchol-Salort, P., O'Keeffe, J., van Reeuwijk, M. and Mijic, A., 2021. An urban planning sustainability framework: Systems approach to blue green urban design. Sustainable Cities and Society, 66, p.102677. Available at: https://eartharxiv.org/repository/object/1734/download/3653/
- Xiang, T., Malik, T.H. and Nielsen, K., 2020. The impact of population pressure on global fertiliser use intensity, 1970–2011: An analysis of policy-induced mediation. *Technological Forecasting and Social Change*, *152*, p.119895. Available at: https://doi.org/10.1016/j.techfore.2019.119895

*****

मुरादावाद मंण्डल के कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्वता के प्रभाव का अध्ययन

—जया ओझा
शोधकर्ती
स्कूल ऑफ सोषल साईंसिज
आई.एफ.टी.एम.विष्वबिद्यद्यालय

—प्रा.डा.राजकुमारी सिंह
शोध निर्देशिका
प्राध्यापिका
स्कूल ऑफ सोषल साईंसिज
आई.एफ.टी.एम.विष्वबिद्यद्यालय

सार शिक्षा मानव समाज के विकास की सतत प्रक्रिया एवं आधारशिला है। राष्ट्रीय विकास की संकल्पना में नागरिकों का भौतिक और आध्यत्मिक कल्याण सन्निहित है। अपने परिवेश, पर्यावरण, समाज एवं राष्ट्र को समझने के लिए व्यक्ति को शिक्षा की आवश्यकता होती है। सभी नागरिकों को अपनी अंतर्निहित क्षमता एवं शक्ति के विकास तथा व्यक्तित्व के प्रस्फुटन के लिए शिक्षा प्राप्त करना जन्मसिद्ध अधिकार है। मनुष्य के सर्वागीण विकास के लिए आवश्यक शिक्षा की सतत् गतिशीलता के लिए यह आवश्यक है जो संप्रत्यय अर्थहीन हो चुके है, समय, काल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित करके विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान किया जाये। अतीत में सामाजिक परिवर्तन युद्ध तथा महायुद्धों से होते थे। महाभारत में नए समाज के निर्माण की आशा की थी। परन्तु आज यदि सामाजिक परिवर्तन लाना हो तो शिक्षा के द्वारा लाया जा सकता है तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रस्तुत शोध पत्र का लक्ष्य मुरादावाद मंण्डल के कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्वता के प्रभाव का अध्ययन का अध्ययन करना है।

प्रस्तावना :- मनुष्य जीवन की तीन आधार भूत प्राथमिक आवश्यकताऐं बताई गई हैं। भोजन, वस्त्र और आवास वर्तमान में शिक्षा को भी जोड़ा गया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विभिन्न कालों में वही राष्ट्र महान बनकर सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान कर सका जिसकी षिक्षा व्यवस्था उन्नत और अपने नागरिकों को आदर्षों का बोध कराने में सक्षम थी। षिक्षा केवल व्यक्तित्व निर्माण एवं सामाजिक संरचना का ही माध्यम नहीं वरन् राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का भी अभिन्न अंग है। षिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने देश की प्राचीन गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परा से अवगत और अनुप्राणित होता है। शिक्षा ही व्यक्ति को अतीत का बोध कराकर उसमें राष्ट्रीय चेतना प्रवाहित करती है। शिक्षा की सतत् ज्योति से आलोकित सांस्कृतिक परम्परा की पृष्ठभूमि में ही राष्ट्रीयता का सही स्वरूप उद्भाषित हो सकता है। शिक्षा ही व्यक्ति को राष्ट्र के प्रतिनिष्ठा एवं समर्पण का संदेष देती है। किसी भी राष्ट्र की महत्ता एवं प्रगति उसके नागरिकों के शैक्षिक स्तर पर निर्भर करती है। सुशिक्षित नागरिकों के माध्यम से ही राष्ट्र का अतीत, वर्तमान से समाहित होकर कल्याणमय भविष्य की दिशा का निर्धारण करता है। शिक्षा की जितनी आवश्यकता पुरूष के लिए है उतनी ही नारी के लिए। इसके कारण ही आज नारी अपने कंधों पर परिवार की जिम्मेदारी ली है इसलिए आज शिक्षित महिलाओं को कामकाजी माना जाता है।

डॉ0 अल्तेकर के शब्दों में :- ''ईश्वर भक्ति तथा ध ार्मिकता की भावना, चरित्र, निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार, प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श थे।'' आज अधिकतर विद्वान डॉ0 अल्तेकर के इस विचार से सहमत है। परन्तु जब हम उस काल की शिक्षा के स्परूप को गहराई से देखते—समझते हैं तो स्पष्ट होता है कि उस काल में शिक्षा को ज्ञान के पर्याय के रूप में लिया जाता था। इससे स्पष्ट है कि उस काल में शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य ज्ञान का विकास था। समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन और राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण एवं विकास पर भी उस काल में विशेष बल दिया जाता था। मोक्ष की प्राप्ति तो उस काल में मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना जाता था और इसकी प्राप्ति के लिए शिक्षा द्वारा उसका आध्यात्मिक विकास किया जाता था। यदि उस समय के गुरुकुलों के नियमों और दिनचर्या पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि उस समय शिष्यों के स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन और उनके नै.

तिक एवं चारित्रिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता था। तब ये सब ही उस काल की शिक्षा के उद्देश्य थे। इन सब उद्देश्यों को हम आज की भाषा में निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं।

स्वतंत्र भारत में सभी शिक्षा प्राप्त कर सके इस दृष्टि को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान के धारा 45 में यह अपेक्षा की गई कि संविधान लागू होने के 10 वर्ष की अवधि में 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बालिका विद्यालय में नाम. ांकित होकर अध्ययन करेंगे किंतु कतिपय परम्पराओं और परिस्थतियोंकारण ऐसा नहीं हो सका।सितम्बर 2002 में 86 वें शोधन अधिनियम के भाग–3 में मूलभूत अधिकार में एक नई धारा 21 ए जोड़ कर6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा कोमूलभूत अधिकार बनाने की बात की गई है। सविधान की धारा ''**21 ए कानून संकल्प दवारा राज्य अपने अनुरूप 6 से 14 वर्ष तक के आयुवर्ग के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।**'' सरकार एक ऐसे उपयुक्त कानून के अधिनियम को वचनबद्ध है जो सविंधान की अवश्यकतानुसार शिक्षा के मूलभूत अधिकारी बनने के एहसास को मजबूत बनाए। संविधान की धारा 21 ए के तहत विचारित उपयुक्त कानून के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं। शैक्षिक अवसरों की समानता का विचार लोकतन्त्र की देन है। इस आधारभूत और सर्वमान्य तथ्य को स्वीकार करते हुए भारत सरकार द्वारा नवोदय विद्यालय (1986), का शुभारम्भ नई शिक्षा नीति 1986 के तहत किया गया, जो मानव संसाधन विकास मंत्रालय के स्वायत्त संस्था है, जो केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबन्धित है । इसमें कक्षा 6 से 12वीं तक की पढ़ाई की व्यवस्था है । इन विद्यालयों में शिक्षा पूर्णतः निःशुल्क है। छात्र छात्राओं का आवास भोजन, पुस्तकें, पाठ्य सामग्री तथा गणवेश भी निः शुल्क उपलब्ध कराई जाती है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :- शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि एक विज्ञ शिक्षक ही शिक्षण व्यवस्था की सकारात्मक दिशा में परिवर्तन ला सकता है। इसलिए शि क्षक से जुड़े हुए सभी कारक शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करते है व्यावसायिक संतुष्टि शिक्षक की मनोदशा को दर्शाती है जो उसे कार्य से जुड़ने अथवा कार्य से विमुख होने की ओर ले जाती है,

वर्तमान समय में समाज में ऐसी विचारधारा देखी जा सकती है कि अधिक वेतनमान पाने वाले शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि अधिक जबकि कम वेतनमान पाने वाले शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि कम होती है। उक्त विचार धारा में कितनी सत्यता है, इन सभी को समझने के लिए इस पर शोधकार्य करना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण माना है। प्रस्तुत शोध में व्यवसायिक प्रतिबद्धता एक शब्द है जिसे व्यवसायिकों की विशेषताओं के सम्बंध में प्रयुक्त किया जाता है। इसका प्रयोग समर्पित और अपने कार्य को गम्भीरता से करने वाले व्यवसायिकों की विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

आधुनिक युग प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता का युग है। इसमें बालकों को ज्ञान प्राप्ति के साथ ही समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाने के लिये किसी क्षेत्र मे विशिष्ट दक्षता प्राप्त करनी होती है। किसी भी संस्थान तथा विद्यालय प्रशासन में अध्यापकों की भूमिका व उत्तरदायित्व प्रमुख होता है इसलिए उनका अधिकार भी अधिक होता है । शिक्षक को शिक्षण प्रक्रिया के दौरान उसे उन शब्दों और क्रियाकलापो के प्रति भी सचेत रहना होगा जो छात्रों की विभिन्न प्रवृतियों से आभासित होते है । यानि शिक्षक और छात्रो के मध्य आपसी सम्प्रेषण का रिश्ता होना चाहिए इस तरह अध्यापकीय क्षमता के दो भाग होते है एक शिक्षक का ज्ञान और उसके व्यक्तित्व की विलक्षणतायें और दूसरी संप्रेषण दक्षता मिलकर ही अध्यापकीय क्षमता बनती है। किसी भी शिक्षक के लिए अप. नी विषय वस्तु में पूर्ण अधिकार का होना वैसे ही अपरिहार्य हों जाता है जैसे किसी कर्मकाण्डी ब्राह्मण के लिए मन्त्रों के बारे में जानकारी का होना द्य शिक्षण, मात्र विषय गत दक्षता से ही सम्पन्न नही किया जा सकता है क्योंकि शिक्षक का मूल कार्य विषयगत ज्ञान का हस्तान्तरण करना होता है।

उपयुक्त शोध कार्य में कस्तूरबा गांधी बालिकाओं की शैि क्षक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिवद्धता शिक्षण द क्षता एवं कार्य संतुष्टि किस प्रकार से प्रभावित होती है इसको ध्यान में रखते हुए शोधकार्य किया गया है। शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य किसी विषय या पाठ में छात्रों 'द्वारा अर्जित ज्ञान या कुशलता से है। प्रस्तावित शोध अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि मापन हेतु छात्रा द्वारा अपनी कक्षा की अद्ध ंवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाओं में प्राप्त प्राप्तांको को प्रतिशत में परिवर्तित कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि गुणांक के रूप में प्रयुक्त किया गया है तथा हम इस प्रकार से भी इसको

परिभाषित कर सकते कि, शैक्षिक उपलब्धि छात्रो द्वारा अर्जित , ज्ञान, कौशल, अनुप्रयोग आदि योग्यताओं की मात्रात्मक अभिव्यक्ति से है। छात्रों ने किस सीमा तक अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास किया है यहीं उनकी उपलब्धि का सूचक होता है। शैक्षिक उपलब्धि का मापन विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों द्वारा किया जाता है । इस प्रकार उपलब्धि परीक्षण द्वारा निश्चित कार्य क्षेत्र में छात्रों द्वारा अर्जित किये गये ज्ञान एवम कौशल को मापा जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योकि एक विज्ञ शिक्षक की शिक्षण व्यवस्था की सकारात्मक दिशा में परिवर्तन ला सकता है इसलिए शिक्षक से जुड़े हुए सभी कारक शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करते है। व्यावसायिक संतुष्टि शिक्षक की मनोदशा को दर्शाती है जो उसे कार्य से जुडने अथवा कार्य से विमुख होने की ओर ले जाती है। इसलिए शिक्षण व्यवस्था के उत्थान के लिए शिक्षको की व्यावसायिक संतुष्टि स्तर का उच्च होना आवश्यक है। आमतौर पर देखा गया है कि जिन शिक्षकों की व्यवसायिक संतुष्टि निम्न होती है। ये शिक्षक शिक्षण व्यवस्था में अप. ना योगदान अधिक देखा गया है। आज देश के समस्त शिक्षणदायी संस्थाओं को अथवा सरकार को यह चाहिए कि शिक्षा से जुड़े शिक्षक एवं शिक्षामित्रों दोनों की व्यावसायिक संतुष्टि को उच्च रखने हेतु भागीरथी प्रयास किए जाए जिससे व्यवस्था में परिवर्तन आ सके।

शोध समस्या कथन :– मुरादावाद मंण्डल के कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्वता।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण :–

शैक्षिक उपलब्धि :– शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य किसी विषय या पाठ में छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान या कुशलता से है। प्रस्तावित शोध अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि का मापन करने हेतु छात्र द्वारा अपनी कक्षा की अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाओं में प्राप्त प्राप्तांकों को प्रतिशत में परिवर्तित कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि गुणांक के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्वता :–शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं में शैक्षिक प्रक्रिया के केन्द्र बिन्दु शिक्षक–प्रशिक्षक होते हैं और शिक्षक–प्रशिक्षकों की गुणवत्ता शैक्षिक प्रक्रिया के सभी अंगों को प्रभावित करती है, चाहे वे मानवीय संसाधन हो या भौतिक संसाधन। प्रायः ऐसा महसूस किया जाता है कि कुछ शैक्षिक संस्थाओ का परिवेश ऐसा होता है जो प्रशिक्षुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है। इस आकर्षण का मूल कारण शैक्षिक संस्थाओं में प्रदान की गयी गुणवत्तापरक शिक्षा और उनको मिलने वाली विभिन्न सुविधाओं से होता है। शिक्षक–प्रशिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से शिक्षक और शिक्षार्थी के आत्मीय संबंधों को मजबूत करती है तथा शिक्षक अपने शिक्षार्थी के पूर्ण विकास के लिए सभी सम्भव प्रयास करता है। व्यावसायिक रूप से प्रतिबद्ध शिक्षकों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. वह अपने कार्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो।
2. वह शैक्षिक उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्ध हो ।
3. विद्यार्थियों से आत्मीय संबंध हो ।
4. अपनी जिम्मेदारियों और उत्तरदायित्वों के प्रति सजग हो ।
5. उसमें उच्च व्यावसायिक नैतिकता हो (सिंहल,2003 पृ.18)

शोध अध्ययन के उद्देश्य – शहरी छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्वता के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें – शहरी छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्वता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

शोध अध्ययन विधि :– प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए "वर्णनात्मक अनुसंधान" की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित प्रतित हौता है इसलिए शोधकर्त्ती द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग प्रस्तुत शोध अध्ययन में किया गया है।

शोध अध्ययन की जनसंख्या :– प्रस्तुत अध्ययन हेतु समग्र जनसंख्या से मुरादावाद मंण्डल में जनपदवार के अनुसार

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय में संचालित सभी ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में स्थित उन माध्यमिक विद्यालयों से है जिनमें बालिकाऐं उच्च प्राथमिक स्तर के कक्षा 8 की शिक्षा ग्रहण कर रही हैं।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :– प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्ता ने उद्देश्यों के अनुरूप उपकरणों की खोज की, अतः शोधकर्त्ता ने शोध पर्यवेक्षक एवं शोध क्षेत्र के अन्य अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क किया तथा उनके परामर्श से **शिक्षक व्यावसायिक प्रतिबद्धता** का मानकीकृत उपकरण का प्रयोग किया।

अध्ययन का परिसीमांकन – प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल कस्तुरवा गांधी बालिका विद्यालयों के उच्च प्राथमिक स्तर तक ही सीमित है।

आंकडों का विश्लेषण एवं व्याख्या :- प्रस्तुत शोध अध्ययन की निम्नलिखित सीमायें निर्धारित हैं।

परिकल्पना परिक्षण -1 शहरी छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक व्यवसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में परिगणित मूल्यों को तालिका संख्या 1.0 में प्रस्तुत किया गया है -

तालिका संख्या -1.0

Class - Interval	F	Cf	D	Fd	fd2
76-80	1	600	+6	6	36
71-75	4	599	+5	20	100
66-70	7	595	+4	28	112
61-65	49	588	+3	147	441
56-60	68	539	+2	136	272
51-55	104	471	+1	104	104
46-50	139	367	0	0	0
41-45	107	228	-1	-107	107
36-40	63	121	-2	-126	252
31-35	34	58	-3	-102	06
26-30	19	24	-4	-76	304
21-25	5	5	-5	-25	125
	N=60			∑fd = 5	∑fd2 = 2159
Mean = 48.04 Median = 48.08 Mode = 48.16 S.D = 9.46					

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं के अंतर्गत छात्राओं के प्राप्तांकों का मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक क्रमश 48.04, 48.08 तथा 48.16 प्राप्त हुआ है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि लगभग आधी छात्राएँ 48 से ऊपर तथा आधी छात्राएँ 48 से नीचे अंक प्राप्त की है। अतः छात्राओं के प्राप्तांकों का वितरण प्रसामान्य है । शतांशीय मान की गणना द्वारा प्राप्त मानों से भी स्पष्ट है कि 21 से 80 प्राप्तांकों के विस्तार के सापेक्ष 90% छात्राएँ 61, 75% छात्राएँ 55, 25% छात्राएँ 42, तथा 10% छात्राएँ 36 अंक प्राप्त की है।

निष्कर्ष :- शून्य परिकल्पना, शहरी छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अन्तर नही है। परीक्षण के अनुसार शहरी छात्राओ की शैक्षिक उपलब्धि पर शिक्षक प्रतिवद्धता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर छात्राओं के प्राप्तांको का –मध्यमांन, मध्यांक तथा बहुलांक उमशः 40.04, 48.08 तथा 48.

16 प्राप्त हुआ है इससे स्पष्ट है कि छात्राओ के प्राप्तांको का वितरण प्रसामान्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- डोटिया, एन0सी0 ''ए फैक्टर्स इफेक्टिंग जॉब सैटिसफेक्शन ऑफ कॉमर्स टीचर्स ऑफ राजस्थान एण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन एजुकेशनल एचीवमेन्ट ऑफ देयर पीपुल्स'', पी–एच0डी0 (शिक्षाशास्त्र), राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1990.
- नटराजन, आर0 ''अध्यापकों की कार्य संतुष्टि और विद्यालय के संगठनात्मक वातावरण का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन'', एम0फिल0 (शिक्षाशास्त्र) अन्नामलाई विश्वविद्यालय, मद्रास, 1992.
- भट्ट, डी0जे0 ''जॉब स्टेटस्, जॉब इन्वाल्वमेंट एण्ड जॉब सैटिस्फैक्शन ऑफ टीचर्स ए कोरिलेशनल स्टडी'', इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेटरी एण्ड एजूकेशन, वाल्यूम 28, पृ0सं0 87–94, 1997.
- निगम, शिवानी ''उत्तर प्रदेश में शिक्षक–प्रशिक्षण एवं प्रशिक्षित शिक्षकों का व्यावसायिक संतुष्टिकरण'', पी–एच0डी (शिक्षाशास्त्र), छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर, 1998.
- पॉल, सुमन ''ए स्टडी ऑफ रिलेशनशिप बिटवीन जॉब सैटिस्फैक्शन एण्ड टीचिंग कम्पीटेंस ऑफ द सैकेण्ड्री स्कूल टीचर्स ऑफ कछार डिस्ट्रिक्ट ऑफ असम'', पी–एच0डी0 (शिक्षाशास्त्र) असम विश्वविद्यालय, 1999.
- लतीफा, एन0एच0 एवं धर्मगदनबी ''केरल राज्य में महाविद्यालयों के अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का लिंग भिन्नता के आधार पर अध्ययन'', पी–एच0डी0 (शिक्षाशास्त्र), केरल विश्वविद्यालय, 2000.
- बाधवा, एस0 ''ए स्टडी ऑफ सम बैक ग्राउन्ड फैक्टर्स ऑफ ग्रेजुएट टीचर्स एडजस्टमेंट'', एम0बी0बुच0 दी सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, पृ0 सं0–453, 2000
- सिंह0 एच0एन0 ''डवलपमेन्ट ऑफ ए टीचर एट्टीट्यूड इनवैन्टरी एण्ड ए स्टडी ऑफ चेन्ज इन प्रोफेशनल एट्टीट्यूड ऑफ स्टूडेन्ट टीचर्स'', एम0बी0बुच0–सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, 2001.
- शर्मा, आर0पी0 ''मध्य प्रदेश के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों की व्यावसायिक आवश्यकताओं का तुलनात्मक अध्ययन'', पी–एच0डी0(शिक्षाशास्त्र), भोज विश्वविद्यालय मध्य प्रदेश, 2001.
- एस0आई0ई0 ''महाराष्ट्र*–ए स्टडी ऑफ द वर्कलोड ऑफ टीचर एजूकेटर्स इन जूनियर कॉलेज ऑफ एजूकेशन पूना'', एम0बी0बुच0– ।। सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, 2003.
- सक्सेना, राजेश ''स्ववित्तपोषित शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकें की समस्यायें–एक अध्ययन'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, एन0सी0ई0आर0टी0 द्वारा प्रकाशित नई दिल्ली, अंक–4, 2003.
- अमरचन्द ''माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की व्यावसायिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन'', पी–एच0डी0(शिक्षाशास्त्र), राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, 2004.
- सिंह, बिजेन्द्र नाथ ''उच्च शिक्षा स्तर पर स्ववित्तपोषित व्यावसायिक शिक्षण संस्थानों के अध्यापकों के कृत्य संतोष का अध्ययन'', रिसर्च एण्ड स्टडीज, एजूकेशन डिपार्टमेन्ट इलाहाबाद विश्वविद्यालय, वाल्यूम 55. पृ0स0– 55–56, 2004.
- चौधरी सुशीला ''चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से सम्बद्ध स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत् अध्यापकों में कार्य संतुष्टि का अध्ययन'', पी–एच0डी0 (शिक्षाशास्त्र), चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ, 2006. त्रिपाठी0एल0के0 रू ''सरकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य–सन्तुष्टि का अध्ययन'', आधुनिक भारतीय शिक्षा एन0सी0ई0आर0टी0 नई दिल्ली, अंक–4, अप्रैल, 2006.
- शाह, एस0के0 ''दी नीड ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्म फॉर स्कूल इफेक्टिवनेस'', एडुट्रेक्स, नीलकमल पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0 , हैदराबाद जून–2005–2007.
- शिक्षा चिन्तन, त्रिमूर्ति संस्थान, कानपुर (उ0प्र0)
- ''उत्तर–प्रदेश एक अध्ययन (शिक्षा के सन्दर्भ में) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स'',आगरा–3.

*****

रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के शिक्षक प्रशिक्षण स्तर में कार्यरत शिक्षकों की जीवन शैली पर उनके पारिवारिक कारकों का प्रभाव

–ममता राजपूत
शोधकर्ती
स्कूल ऑफ सोशल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

–प्रो.(डा.) राजकुमारी सिंह
शोध निर्देशिका
प्राध्यापिका
स्कूल ऑफ सोशल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सार :-
हमारे देश में अधीन अवधारणा रही है कि शिक्षक के गुण जन्मजात होते हैं, परन्तु आज जनसंख्या वृद्धि एवं शिक्षा प्रसार के साथ–साथ शिक्षको की बढ़ती मांग को जन्मजात शिक्षको द्वारा पूरा किया जाना सम्भव नही है। अतः प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षक तैयार करने की आवश्यकता है । प्रत्येक देश का भविष्य उसकी आने वाली पीढ़ी पर निर्भर करता है तथा उसके स्वरूप को निश्चित करने की जिम्मेदारी शिक्षक पर होती है। कोठारी आयोग का मानना है कि ''भारत के भविष्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है।'' प्रस्तुत शोध पत्र का लक्ष्य रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के शिक्षण–प्रशिक्षण स्तर में कार्यरत शिक्षको की जीवन शैली पर उनके पारिवारिक प्रभाव का अध्ययन करना है।

कि वर्ड :- शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षक, जीवन शैली

प्रस्तावना :-

शिक्षा के विभिन्न साधनों में विद्यालय एक औपचारिक संस्था है। वर्तमान समय में सभ्यता और संस्कृति का इतना अधिक विकास हो गया है कि घर में बालक को पूर्ण शिक्षा प्रदान नहीं की जा सकती है। व्यापक ज्ञान प्रदान करने का कार्य विद्यालय ही कर सकता है। विद्यालय एक सामाजिक संस्था है जो व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान करती है, इस शिक्षा से विद्यालय और समाज दोनों का कल्याण होता है। विद्यालय का अर्थ है "विद्या का घर" अर्थात् वह स्थान जहाँ शिक्षार्थी को विद्या प्राप्त होती है। विद्यालय को परिभाषित करते हुए ड्यूवी ने कहा है–

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक प्राणी होने के नाते उसका कुछ उत्तरदायित्व है, इस उत्तरदायित्व का वह केवल शिक्षा द्वारा निर्वहन नहीं कर सकता,अतएव उसके सर्वागींण विकास हेतु विद्यालयों का विकास हुआ। राष्ट्र एवं समाज के विकास में विद्यालयों के महत्व के सम्बन्ध में एस॰बी॰ जोशी का मत है– "किसी भीराष्ट्र की प्रगति का निर्णय विधानसभाओं, न्यायालयों एवं फैक्ट्रियों में नहीं वरन्विद्यालयों में होता है।"

विद्यालय केवल एक सामाजिक संस्था ही नहीं है बल्कि वह समाज का लघुरूप भी है। शिक्षा–प्रक्रिया एक सामाजिक प्रक्रिया है, विद्यालय में वे समस्त प्रभावपूर्णसाधन केन्द्रित रहते हैं, जो समाज की निरन्तरता एवं विकास हेतु आवश्यक हैं।

टी॰पी॰ नन लिखते हैं– "विद्यालय समस्त संसार का नहीं बल्कि मानव जातिका एक आदर्श लघु रूप होना चाहिए।" प्रोफेसर ड्रेवर के शब्दों में "शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा भावी ज्ञान, चरित्र एवं व्यवहार को उचित स्वरूप प्रदान किया जा सकता है" अतः मनुष्य को स्वतन्त्र एवं पूर्णतर बनाने वाला एक मात्र साधन शिक्षा ही है। हमें वही शिक्षा देनी एवं प्राप्त करनी चाहिए जो व्यक्ति को उचित एवं अनुचित का निर्णय करने में मदद प्रदान कर सके तथा उसके सही मार्गदर्शन हेतु यह क्षमता विकसित करे कि जीवन और जगत को देखकर वह विवेकपूर्ण ढंग से निर्णय ले सके कि उचित के प्रति उसके क्या दायित्व है और अनुचित के प्रति क्या कर्तव्य। अतः शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य को अन्धकारयुक्त वातावरण से निकालकर प्रकाशयुक्त वातावरण की ओर अग्रसरित करती है। जिस देश की शिक्षा व्यवस्था जितनी सुदृढ़ होगी वह देश उतना ही कुशल एवं सुयोग्य नागरिकों का देश होगा अर्थात् कुशल एवं योग्य नागरिकों के उद्गम में एक शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक को समाज का निर्माता कहा जाता है, जिस प्रकार कुम्हार अपनी बुद्धि एवं कला के द्वारा कच्ची मिट्टी को एक विशेष साँचे में ढालकर भिन्न–भिन्न प्रकार के बर्तन तैयार करता है उसी प्रकार शिक्षक अपनी बुद्धि एवं अपनी क्षमता के आधार पर बालकों में एक ऐसी ऊर्जा की ज्योति जगा देता है जिससे बालक विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञानार्जन करते हुए देश की समृद्धि एवं विकास में योगदान हेतु महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

शिक्षक राष्ट्र निर्माता, समाज का आदर्श व मार्गदर्शक एवं मानव की सभ्यता, संस्कृति तथा जीविकोर्पाजन की स्थिति का ज्ञान कराने वाला कहा जाता है अर्थात् शिक्षक का कार्य यह होता है कि वह शिक्षा प्रदान कर विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करे ताकि आगे चलकर वे एक सुसंस्कृत तथा श्रेष्ठ नागरिक बन सकें, इस रूप में अच्छे शिक्षक समाज के लिए वरदान होते हैं। निःसन्देह अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली भी अपने परम लक्ष्य तथा उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकती है। शिक्षक विभिन्न समस्याओं से सम्बन्ध रखने वाली चीजों का सामना करने से विचलित नहीं होते। जिस ज्योति की रक्षा का भार उन्हें

सौंपा गया है उसे वे बखूबी निभाये रखने हेतु अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का निर्वाह पूर्ण निष्ठा तथा तत्परता के साथ पूरा करने की कोशिश करते हैं, ताकि वे उस ज्योति को मन्द किये बिना अपने उत्तराधिकारों को दूसरों के हाथों में सौंप सकें, इसके लिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षा स्तर पर कुशल एवं योग्य शिक्षकों को नियुक्त किया जाये, तभी शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव है।

शोधकर्त्ता के अनुसार सभी शिक्षकों का कार्य समान होता है प्रत्येक शिक्षक वैसा ही कार्य करेगा जैसी उसकी विचारध ारा होगी तथा जैसा उसको वेतन मिलेगा अथवा जैसी सेवा शर्तें होंगी। सामान्यतः स्ववित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में सेवारत अंशकालिक शिक्षक तभी अपने व्यवसाय को अच्छे ढंग से सम्पन्न कर सकेगा जब उसका शोषण तथा उत्पीड़न न किया जाये, उसमें मानसिक तनाव न हो और उसे अपने व्यवसाय के प्रति रूचि हो। पूर्व आनुभविक अध्ययनों से स्पष्ट है कि स्ववित्त पोषित शिक्षण संस्थाओं के शिक्षक अपनी सेवाओं से कतई प्रसन्न एवं सन्तुष्ट नहीं है उनके मन में हमेशा यह भय बना रहता है कि कहीं कुछ ऐसा न हो जाये जिससे उसकी सेवायें खतरे में पड़ जायें या सेवा समाप्त हो जाये या कहीं विभाग (शासन) द्व ारा ऐसा आदेश न आ जाये कि अंशकालिक के स्थान पर दूसरे पूर्णकालिक शिक्षकों की नियुक्ति कर ली गई है, अतः इन शिक्षकों की सेवायें स्वतः समाप्त की जाती हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान में अतीत का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में बहुमुखी विकास की दिशाएं परिलक्षित होती हैं चाहे वह क्षेत्र रोज़गार का हो चाहें वह क्षेत्र शिक्षा अध्ययन का, परिणामस्वरूप व्यक्ति की अनेक रूपों में भूमिका भी बदलती रहती है पुरातन काल से ही निम्न व्यवसाय आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं– चिकित्सा विधि, कानून एवं शिक्षा। समाज की व्यवस्था तथा विकास में इन तीनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन तीनों में भी शिक्षा का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

सदियों से शिक्षक की भूमिका न केवल बच्चे के व्यक्तित्व को ढालने में बल्कि समाज को आकार देने में भी महत्वपूर्ण मानी जाती है । साथ ही यह महसूस करना महत्वपूर्ण है कि एक अक्षम शिक्षक राष्ट्र के लिये कहीं अधिक घातक है । अतः शिक्षकों की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये क्योंकि एक शैक्षिक प्रणाली की ताकत और सफलता इन पर निर्भर करती है । वास्तव में यह किसी राष्ट्र की गुणवत्ता उसके नागरिकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है, नागरिकों की गुणवत्ता उनकी शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर करती है और शिक्षा की गुणवत्ता उनके शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है और गुणवत्ता बड़ी संख्या में कारकों पर निर्भर करती है । किसी भी शिक्षक के ऊपर अनेक कारकों जैसे पारिवारिक कारक, सामाजिक–आर्थिक एवं संवेगात्मक कारकों का प्रभाव होता है और साथ ही ये सब कारक उसकी जीवन शैली को भी पूरी तरह प्रभावित करते है । जीवन शैली का अर्थ होता है कि आप किस प्रकार अपना जीवन यापन कर रहे है तथा आप कैसे रहते हैं, आपका रहन–सहन कैसा हैं ये सारी बातें आपकी जीवन शैली से संबंधित होती है । अर्थात एक व्यक्ति के समूह या संस्कृति की रूचियों, विचारों, व्यवहारों में रहन सहन को जीवन शैली कहते है । जीवन शैली को काम और अवकाश व्यवहार और गतिविधियों, दृ ष्टिकोण, रूचि, राय मूल्यों और आय के आवंटन में व्यक्त किया जाता है । जीवन शैली में हमारी प्रेरणाओं, आवश्यकताओं और इच्छाओं का एक संयोजन होता है और संस्कृति, परिवार, संदर्भ समूहों और सामाजिक वर्ग जैसे कारकों से प्रभावित होती है

अध्ययन की आवश्यकता व महत्व :-

व्यक्ति के विकास से ही समाज का विकास हुआ है। बालक इस संसार में अनेक जन्मजात प्रवृत्तियों के साथ जन्म लेता है। जिनका आगे मार्गान्तीकरण व शोधन कर बालक को समाजिक बनाया जाता है। परन्तु इस सब के बाद भी क्या सभी बालक या व्यक्ति एक जेसे होते हैं ? नहीं। ऐसा हम जुड़वा बच्चों के सन्दर्भ में भी नहीं कह सकते। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व की अपनी कुछ विशिष्टतायें होती है और उन्हीं के आधार पर ही वह व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से अलग होता है। यहीं बात हमारे देश के शिक्षकों पर भी लागू होती है। क्योंकि सभी शिक्षकों का व्यक्तित्व एक जैसा नहीं होता है कुछ शिक्षक बहुत प्रभावपूर्ण तरीके से पढ़ाते है और छात्रों को अभिप्रेरित कर उनमें अधिगम के प्रति रूचि जाग्रत करते है। वहीं कुछ शिक्षक ऐसे भी होते है जो न तो छात्रों को ही प्रभावित करपाते है और न तो समाज को ही। उन्हें हर समय निराशा ही अनुभव होती है जैसा कि हम सब जानते हैं कि शिक्षक को राष्ट्र निर्माता व समाज निर्माता भी कहा जाता है तो यदि वही अपने जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहा है और वही कुछ व्यक्तिगत कारणों से निराश है तो ऐसे में शिक्षक अपने दायित्वों का निर्वाह सही प्रकार से नहीं कर पायेगा जिससे हमारे राष्ट्र व समाज को बहुत हानि होगी। ऐसे में आवश्यकता है कि हम इस बात का अध्ययन करें कि शिक्षक के पारिवारिक, सामाजिक–आर्थिक व संवेगात्मक कारक कैसे एक शिक्षक की बेहतर जीवन शैली में बाधक या प्रेरक हो सकते हैं। शि क्षक के परिवार के परिवेश में कौन सी बातें उसे सकारात्मक बनाती है व कौनसी नकारात्मक, इसका अध्ययन शोधकर्ती अपने शोध कार्य में करेगी। उसकी जीवन शैली पर समाज व उसके संवेगों का कितना व कैसा प्रभाव पड़ता है ? साथ ही आर्थिक कारकों का उसकी जीवन शैली में क्या योगदान है ? इस सबका अध्ययन शोध ाकर्ती अपने शोधकार्य में करेगी। ताकि शिक्षक की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व संवेगात्मक समस्याओं में सुधार कर उनके जीवन स्तर में सुधार आ सके।

समस्या कथन :-

''रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के शिक्षक–प्रशिक्षण स्तर

में कार्यरत शिक्षकों की जीवन शैली पर उनके पारिवारिक कारकों का प्रभाव''

शोध अध्ययन के शब्दों का परिभाषीकरण :-

रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय :- विश्वविद्यालय स्तर से तात्पर्य उन विद्यालयों से है जिन्हें केन्द्र एवं राज्य सरकार के विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से स्थापित किया गया है। जहां पर 102 अथवा इण्टरमीडिएट के बाद स्नातक एवं स्नातकोत्तर की कक्षायें संचालित होती है जिनमें स्नातक एवं स्नातकोत्तर तक शिक्षा की व्यवस्था से है। यह विश्वविद्यालय बरेली में स्थित है ।

शिक्षक–प्रशिक्षण स्तर :- शिक्षक प्रशिक्षण स्तर से अभिप्राय उन संस्थाओं या महाविद्यालयों से है जहां पर शि क्षक–प्रशिक्षण के लिये कक्षायें संचालित होती है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा उन्हें शिक्षक–प्रशिक्षण के लिये मान्यता दी गयी है और वहां पर बी0एड0 शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था से है। इस प्रशिक्षण संस्थान की दो श्रेणियां हैं:

शिक्षक :-वह व्यक्ति जो किसी शिक्षण संस्था में शिक्षा प्रदान करने के लिये विधिवत नामांकित होता है एवं वह विद्यार्थियों को अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाता है। डिक्शनरी ऑफ एजूकेशन, कार्टर वी गुड, 1973 '' मार्गदर्शन के उद्देश्य से एक अधिकारिक क्षमता में नियोजित व्यक्ति और शैक्षिक संस्थानों में विद्यार्थियों के सीखने के अनुभवों को निर्देशित करने वाला, चाहे सरकारी हो या निजी'' ।

जीवन शैली :- एक व्यक्ति, समूह या संस्कृति की रूचियों, विचारों, व्यवहारों और व्यवहारिक उसके रहन सहन को जीवन शैली कहते हैं।

पारिवारिक कारक :- (किसी भी बालक या व्यक्ति की प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है। परिवार ही उसकी सबसे बड़ी ताकत व सबसे बड़ी कमजोरी होता है) यदि परिवार का माहौल सकारात्मक हो और परिवार के सदस्यों में प्रेम, सहानुभूति, त्याग जैसे अच्छे गुण हो तो परिवार ताकत बन जाता है और यदि परिस्थितियां इसके विपरीत हो तो वह कमजोरी बन जाता है। किसी भी व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन पर उसके परिवार के परिवेश का बहुत प्रभाव पड़ता है। यहीं सब एक शिक्षक के साथ भी है। यदि उसका परिवार उसके हर सुख दुख में उसके साथ है। परिवार का परिवेश सौहार्दपूर्ण है तो ये सभी बातें शिक्षक के अंदर सकारात्मक का संचार करती है । जबकि लड़ाई, द्वेष तथा आपसी वैमनस्य परिवार के सदस्यों के बीच नकारात्मक सोच को जन्म दे सकता है। जिसका सीध ा प्रभाव शिक्षक के व्यवसायिक जीवन व उसके जीवन के अन्य पक्षों पर भी पड़ता है।

अध्ययन के उद्देश्य :- शिक्षक प्रशिक्षण स्तर में कार्यरत शिक्षक व शिक्षिकाओं के पारिवारिक, कारकों का उनकी जीवन शैली पर प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनायें :- शिक्षक प्रशिक्षण स्तर में कार्यरत शिक्षक व शिक्षिकाओं के पारिवारिक कारकों व जीवन शैली के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है।

शोध अध्ययन विधिः– किसी भी शोध कार्य को वैज्ञानिक ढंग से पूर्ण करने के लिए अनुसंधान की विधि की आवश्यकता होती है। अनुसन्धान विधि का निर्धारण समस्या के स्वरूप व प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रस्तावित शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए "वर्णनात्मक अनुसंधान" का एक प्रकार आदर्शमूलक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित लगेगा इसलिए शोधकर्त्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग इस अध्ययन में किया गया है।

शोध अध्ययन की जनसंख्याः– प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या के अन्तर्गत मुरादाबाद मण्डल के पांच जिलो के शिक्षक–प्रशिक्षक संस्थानों में स्थित शिक्षक–प्रशिक्षक महा. विद्यालयों को सम्मलित किया जायेगा ।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः– प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्ता ने उद्देश्यों के अनुरूप उपकरणों की खोज की, अतः शोधकर्त्ता ने शोध पर्यवेक्षक एवं शोध क्षेत्र के अन्य अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क किया तथा उनके परामर्श जीवन शैली तथा पारिवारिक कारक का मानकिकृत उपकरण को शोध कार्य में प्रयोग किया गया।

तालिका संख्या 0.1

शिक्षक प्रशिक्षण स्तर में कार्यरत शिक्षक व शि क्षकाओं के पारिवारिक कारकों व जीवन शैली के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है।

परिकलित मूल्य	जीवन शैली पर शिक्षक व शि क्षकाऐं के पारिवारिक कारक	
	जीवन शैली	पारिवारिक कारक
माध्य	109.10	111.83
मानक विचलन	5.39	3.82
शिक्षको की सं ख्या	75	12
प्रमाप विभ्रम	1.26	
माध्य अन्तर	2.73	
क्रांतिक अनुपात परीक्षण	2.16	
0.05 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर तालिका मान	1.96	

तालिका संख्या 0.1 से स्पष्ट है कि कठोर पारिवारिक कारक शिक्षको के अंकों का मध्यमान 109.10 तथा शिक्षिकाओं के अंकों का मध्यमान 111.83 प्राप्त हुआ है जबकि प्रमाणिक विचलन के मान क्रमशः 5.39 तथा 3. 82 प्राप्त हुए है। दोनो समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रांतिक अनुपात परीक्षण (C.R. test) का मान 2.16 प्राप्त हुआ जोकि सार्थकता के स्तर 0.05 पर प्राप्त तालिका मान 1.96 से अधिक है अतः कहा जा सकता है कि मध्यमानों में सार्थक अन्तर है।

निष्कर्ष :- अतः शोधकार्य से पूर्व बनाई गई शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है तथा कहा जा सकता है कि शिक्षको में सार्थक अन्तर है। मध्यमान का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि पारिवारिक कारक वाले शिक्षको के अंकों का मध्यमान कठोर पारिवारिक कारक वाले शिक्षको के अंकों के मध्यमान की तुलना में अधिक है अतः कहा जा सकता है कि पारिवारिक कारक है।

Bibliography

1. भाटिया, बी.आर. 1989Dictionary of Phychology, New DelhiAmol Publication 9&10
2. Agarwal J. 1994 Essentials of Educational Psychology New Delhi, Vikas Pub.House
3. Garrett.H.E. 1996Statistics in Psychology and education, New York. Vakils, Fibber, and Simons Ltd. David Mackay Company] Inc, and Longman group. Good, Barr, A.S. and Scates, D.E., the methodology of Educational Research, New York; MC Graw Hill book Co., P. 617
4. Sharma R.A. 1998 Teacher Education, Meerut, Inernational publishing Horse Sukhia, S.P. Mehrota, P.V. Mehrota] R.N.(1974) Elements of Educational Research, New Delhi, Allied Publishers-
5. dkS'kyk] Mh-,u-1998 Competency based and commitment oriented Teacher education for quality School Education (Pre Service Educational) New Delhi, NCTE, 30-43
6. diwj] ts-,u- 1999 Why are our Teacher Alienated from the Higher Education System\ University New [Vol-37, No.2, Jan.1999] 5&6
7. euq çrhd 2002 What makes a teacher professional University, New Delhi, vo. 40No. 22 June 2002, 3-12
8. Hkêkpk;Z] thålhå 2002 n{krk vk/kkfjr rFkk çfrc)rk mUeq [k f'k{kd&f'k{kk dh O;kogkfjd mikns;rk^ Hkkjrh; vk/kqfud f'k{kk o"kZ 20] vad&4] vçSy&2002 30&41
9. Kuppa Swami 2003 Advanced Educational Psychology, New DelhiLanguage Pandit Training Courses, Revised Scheme and Regulations (From 2004 2005)
10. Hkêkpk;Z] thålhå 2003 v/;kid f'k{kk] fouksn iqLrd efUnj] g,fLiVy jksM] vkxjk
11. JhokLro] vkj- lh- ,oa2004 Issue ian Education and Society, JhokLro] lqfe=k Regency Publication, New Delhi 147175
12. vLFkkuk] ch-ch- 2012 Statistics in behavioral sciences Shri Vinod Pustak Mandir, Agra

www.Google-search
www.wicky pedia-com
www.dei-ac-in
Websites of UGC NCERT, NCTE, NUEPA and Dr. BRAU
www.shodganga.com
www.researchgate
www.researchscholar

*****

वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत् शिक्षकों की मूल्य एवं शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

–अभिषेक यादव
शोधकर्ता

–डॉ.भूपेन्द्र कौर
पर्यवेक्षिका
सहायक प्राध्यापिका

सार :- व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक प्राणी होने के नाते उसका कुछ उत्तरदायित्व है, इस उत्तरदायित्व का वह केवल शिक्षा द्वारा निर्वहन नहीं कर सकता,अतएव उसके सर्वांगींण विकास हेतु विद्यालयों का विकास हुआ। राष्ट्र एवं समाज के विकास में विद्यालयों के महत्व के सम्बन्ध में एस॰बी॰ जोशी का मत है– "किसी भीराष्ट्र की प्रगति का निर्णय विधानसभाओं, न्यायालयों एवं फैक्ट्रियों में नहीं वरन् विद्यालयों में होता ळें þ विद्यालय केवल एक सामाजिक संस्था ही नहीं है बल्कि वह समाज का लघुरूप भी है। शिक्षा–प्रक्रिया एक सामाजिक प्रक्रिया है, विद्यालय में वे समस्त प्रभावपूर्णसाध ान केन्द्रित रहते हैं, जो समाज की निरन्तरता एवं विकास हेतु आवश्यक हैं।

प्रस्तावना शिक्षक राष्ट्र निर्माता, समाज का आदर्श व मार्गदर्शक एवं मानव की सभ्यता, संस्कृति तथा जीविक. ोपार्जन की स्थिति का ज्ञान कराने वाला कहा जाता है अर्थात् शिक्षक का कार्य यह होता है कि वह शिक्षा प्रदान कर विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करे ताकि आगे चलकर वे एक सुसंस्कृत तथा श्रेष्ठ नागरिक बन सकें, इस रूप में अच्छे शिक्षक समाज के लिए वरदान होते हैं। निःसन्देह अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली भी अपने परम लक्ष्य तथा उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकती है। शिक्षक विभिन्न समस्याओं से सम्बन्ध र खने वाली चीजों का सामना करने से विचलित नहीं होते। जिस ज्योति की रक्षा का भार उन्हें सौंपा गया है उसे वे बखूबी निभाये रखने हेतु अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का निर्वाह पूर्ण निष्ठा तथा तत्परता के साथ पूरा करने की कोशिश करते हैं, ताकि वे उस ज्योति को मन्द किये बिना अपने उत्तराधिकारों को दूसरों के हाथों में सौंप सकें, इसके लिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षा स्तर पर कुशल एवं योग्य शिक्षकों को नियुक्त किया जाये, तभी शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव है।

शोधकर्त्ता के अनुसार सभी शिक्षकों का कार्य समान होता है प्रत्येक शिक्षक वैसा ही कार्य करेगा जैसी उसकी विचारधारा होगी तथा जैसा उसको वेतन मिलेगा अथवा जैसी सेवा शर्तें होंगी। सामान्यतः स्ववित्तपोषित शि क्षण संस्थाओं में सेवारत अंशकालिक शिक्षक तभी अपने व्यवसाय को अच्छे ढंग से सम्पन्न कर सकेगा जब उसका शोषण तथा उत्पीड़न न किया जाये, उसमें मानसिक तनाव न हो और उसे अपने व्यवसाय के प्रति रूचि हो। पूर्व आनुभविक अध्ययनों से स्पष्ट है कि स्ववित्त पोषित शिक्षण संस्थाओं के शिक्षक अपनी सेवाओं से कतई प्रसन्न एवं सन्तुष्ट नहीं है उनके मन में हमेशा यह भय बना रहता है कि कहीं कुछ ऐसा न हो जाये जिससे उसकी सेवायें खतरे में पड़ जायें या सेवा समाप्त हो जाये या कहीं विभाग (शासन) द्वारा ऐसा आदेश न आ जाये कि अंशकालिक के स्थान पर दूसरे पूर्णकालिक शिक्षकों की नियुक्ति कर ली गई है, अतः इन शिक्षकों की सेवायें स्वतः समाप्त की जाती हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान में अतीत का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में बहुमुखी विकास की दिशाएं परिलक्षित होती हैं चाहे वह क्षेत्र रोज़गार का हो चाहें वह क्षेत्र शिक्षा अध्ययन का, परिणामस्वरूप व्यक्ति की अनेक रूपों में भूमिका भी बदलती रहती है पुरातन काल से ही निम्न व्यवसाय आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं– चिकित्सा विधि ा, कानून एवं शिक्षा। समाज की व्यवस्था तथा विकास में इन तीनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन तीनों में भी शिक्षा का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व जब हमारा

देश स्वतन्त्र हुआ था तब सन् 1947–48 में महाविद्यालयों की कमी थी, परन्तु वर्तमान समय में इन महाविद्यालयों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। इसमें स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की तो बाढ़ ही आ गई है, जबकि राजकीय महाविद्यालयों एवं सहायता प्राप्त महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि अपेक्षाकृत स्ववित्तपोषित से कम है। वर्तमान समय में राज्य सरकार स्ववितपोषित महाविद्यालयों के परिणामों पर भी अंकुश लगा रही है। कुछ ऐसे महा. विद्यालय भी हैं जहाँ पर उनके परीक्षा परिणाम 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक रहे हैं। राज्य सरकार द्वारा शासन स्तर से इनकी जाँच लगातार चल रही है, जहाँ ऐसा भी देखने को मिलता है कि छात्रों को कोई भी विषय दिया जा रहा है, जबकि उन विषयों की सरकार से मान्यता नहीं ली गई है, ऐसा स्ववितपोषित महा. विद्यालयों में अधिक पाया जाता है। छात्रों द्वारा शैक्षिक, आर्थिक समस्या की वजह से ऐसे महाविद्यालयों में प्रवेश की ऊहापोह रहती है क्योंकि सहायता प्राप्त महाविद्यालय जनसंख्या की वृद्धि के अनुसार कम हैं, इस प्रकार महा. विद्यालयों में बढ़ती हुई विविध समस्यायें दिखाई पड़ती हैं, जैसे– प्रशासनिक, प्रबन्धकीय व्यावसायिक, भौतिक संसाध न, वित्तीय अनुशासन आदि समस्या, जो शिक्षक–छात्रों में असन्तोष तथा शिक्षक–छात्रों की शैक्षिक गुणवत्ता को प्रभावित करती है। भारत सरकार द्वारा ऐसे महाविद्यालयों की स्थापना इस आशय से की गयी थी कि जिससे इस देश के सभी लोग अपने शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठा सकें। ऐसे महाविद्यालय अपने निजी प्रबन्धतंत्र के द्वारा संचालित किये जाते हैं, लेकिन ऐसे स्ववितपोषित मह. विद्यालयों को सरकार के मापदण्ड पर खरा उतरना होता है। दोहरी शिक्षा से समाज में घुल रहे विषमता के विष का अन्त इसमें कहीं नजर नहीं आता है। एक तरफ बाजारोन्मुख निजी शिक्षण संस्थायें शिक्षा का खुला व्यापार कर रही हैं और दूसरी ओर सरकारी शिक्षण संस्थायें अराजकता और अव्यवस्था से घिरती जा रही हैं। इन विसंगतियों से शिक्षा में समानता के अवसर समाप्त हो रहे हैं, लेकिन इनके प्रति न तो सरकार गम्भीर है और न ही समाज। ऐसा नहीं कि शिक्षा में समानता की बात पहली बार हो रही है। कई बार शिक्षा नीति में परिवर्तन हुए और शिक्षा में समानता की बात कही गई, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा में समानता की शुरूआत सही अर्थों में हो सकी? शायद नहीं, यदि ऐसा हुआ होता तो आज निजी और सरकारी शिक्षण संस्थाओं के लिए दोहरे मापदण्ड नहीं होते। शैक्षिक समानताओं में विसंगति समस्या के समाधान की ओर शोधार्थिनी को प्रेरित करती है।

शोध समस्या कथन :- वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत् शिक्षकों की मूल्य एवं शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण :-

वित्तपोषित संस्थानः–

प्रस्तावित शोध अध्ययन में वित्तपोषित संस्थानों से आशय ऐसे संस्थानों से है जो या तो राजकीय संस्थाओं से या राज्यों से वित्तीय अनुदान प्राप्त करते हैं तथा राजकीय महाविद्यालय के समानान्तर कहलाते हैं।

स्ववित्तपोषित संस्थानः–

प्रस्तावित शोध अध्ययन में स्ववित्तपोषित संस्थान वे संस्थान स्ववित्त पोषित योजना के अन्तर्गत स्थापित होते है। इनकी वित पूर्ति पूर्णतः निजी प्रबन्ध तन्त्र द्वारा की जाती है। इनको किसी भी प्रकार की कोई राजकीय सहायता, अनुदान प्राप्त नहीं होती है। वित्त व्यवस्था के अतिरिक्त समस्त व्यवस्था, नियम व परिनियम राज्य सरकार द्वारा निर्धारित होते है तथा समय–समय पर उच्च शिक्षा विभाग के अधिकारियों द्वारा इनका निरीक्षण भी किया जाता है।है।

मूल्यः–

सामाजिक–आर्थिक स्थिति एक सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों का मिला जुला रूप है जिसके द्वारा व्यक्ति के कार्य अनुभव एवं व्यक्तिगत या पारिवारिक स्तर को मापा जाता है और उसके सगे सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों के साथ उनके स्तर की तुलना की जाती है, जिसमें प्रमुख रूप से आय, शिक्षा, व्यवसाय, रहन–सहन आदि को आधार माना जाता है। आधुनिक समय में व्यक्ति की अर्जित स्थिति का एक महत्वपूर्ण आधार उसके द्व ारा एकत्रित की गई सम्पत्ति की सीमा है। साध

ाारणतया यह समझा जाता है कि जिन व्यक्तियों ने अधि ाक सम्पत्ति अर्जित की है वो दूसरे लोगों की तुलना में अधिक साहसी, परिश्रमी, योग्य और कुशल होते हैं। यही कारण है कि निर्धन व्यक्ति की तुलना में एक उद्योगपति की सामाजिक स्थिति काफी ऊंची होती है।

सामाजिक मूल्यों के पालन को ही हम व्यक्ति की सामाजिकता कहते हैं यह सामाजिकता ही अर्जित स्थिति का एक महत्वपूर्ण आधार है, इसका तात्पर्य है कि एक व्यक्ति चाहे जितना भी धनी, शिक्षित और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो लेकिन यदि वह सामाजिक मूल्यों अथवा समाज के नियमों के अनुसार कार्य नहीं करता तो वह उच्च स्थिति अर्जित नहीं कर सकता। इससे स्पष्ट है कि उच्च स्थिति का सम्बन्ध केवल व्यक्ति की भौतिक उपलब्धियों से नहीं है, बल्कि समाज द्वारा दिए जाने वाले सम्मान से भी है। इस प्रकार हम समग्र रूप से कह सकते हैं कि सामाजिक–आर्थिक स्थिति से अभिप्राय उस परिवेश से है जहां मनुष्य आर्थिक स्थिति के अनुरूप रहकर अपना जीवनयापन करता है।

शिक्षण व्यवसायः–

शैक्षिक संसाधन से तात्पर्य शिक्षक प्रशिक्षण संस्थ. ानों के बुनियादी भौतिक संसाधन– व्याख्यान कक्ष, सुसज्जित प्रयोगशाला, पर्याप्त पुस्तकालय संसाधन, खेल–कूद सुविधाएं, व्याख्यान के समय प्रयुक्त होने वाली दृश्य–श्रव्य सामग्री आदि से है, जिनका प्रयोग शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :-

1. वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थ. ानों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनाए :-

1. वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थ. ानों में कार्यरत शिक्षकों की मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन विधिः–

किसी भी शोध कार्य को वैज्ञानिक ढंग से पूर्ण करने के लिए अनुसंधान की विधि की आवश्यकता होती है। अनुसन्धान विधि का निर्धारण समस्या के स्वरूप व प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रस्तावित शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए "वर्णनात्मक अनुसंधान" का एक प्रकार आदर्शमूलक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित लगेगा इसलिए शोधकर्त्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग इस अध्ययन में करेगा।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :- प्रस्तावित शोध अध्ययन की महत्ता शोध में प्रयुक्त उपकरणों पर निर्भर करती है। शोध के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह आवश्यक है कि उद्देश्यों के अनुरूप ही उपकरणों का प्रयोग किया जाये। उपकरण की विश्वसनीयता एवं वैधता पर ही शोध ाकार्य की विश्वसनीयता, वैधता एवं महत्ता निर्भर करती है। प्रस्तावित शोधकार्य में शोधकर्त्ता ने उद्देश्यों के अनुरूप उपकरणों की खोज की, लेकिन सर्वथा उपयुक्त कोई उपकरण नहीं पाया। अतः शोधकर्त्ता ने शोध पर्यवेक्षक एवं शोध क्षेत्र के अन्य अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क किया तथा उनके परामर्श से एक उपकरण का निर्माण स्वयं ही किया। तथा उस स्वनिर्मित उपकरण के साथ साथ दो अन्य उपकरण अलग से कार्य संतुष्टि मापने हेतु एवं सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति मापने हेतु लगाये गये हैं।

अध्ययन का परिसीमांकन :- वित्तीय सहायता प्राप्त एवं स्ववित्तपोषितसंस्थानों में कार्यरत शिक्षक–शिक्षिकाओं की समस्याओं एवं शैक्षिकसंसाधनों के सन्दर्भ में किया जायेगा। प्रस्तावित शोध में वित्तीय सहायता प्राप्त एवंस्ववित्तपोषित संस्थानों के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं को ही सम्मिलित किया जायेगा, तथा प्रस्तुत शोध को उत्तर प्रदेश के बरेली जिले में स्थित महात्मा ज्योतिबा फुलेरूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली से सम्बद्ध मुरादाबाद मण्डल के शि क्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों/संस्थानोंतक सीमित रखा जायेगा।

आंकडों का विश्लेषण एवं व्याख्याः- प्रस्तुत शोध अध्ययन कि निम्नलिखित सीमायें निर्धारित हैं।

परिकल्पना परिक्षण-1 छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर शि क्षकों की संवेगात्मक वुद्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

तालिका संख्या -1

वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों की मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

इस तालिका में ''अकेलापन'' के विभिन्न अनुभवों की आवृत्तियों और प्रतिशतों का विवरण दिया गया है। सबसे अधिक 52% लोग रोजमर्रा के जीवन में अकेलापन महसूस करते हैं, जो 260 उत्तरों के साथ

	आवृत्ति	प्रतिशत	वैध प्रतिशत	संचयी प्रतिशत
असंभव, आप खुद के साथी है।	156	31.2	31.2	31.2
अपने मित्रों से दूर रहना।	84	16.8	16.8	48.0
प्रतिदिन का अनुभव।	260	52.0	52.0	100.0
कुल	500	100.0	100.0	

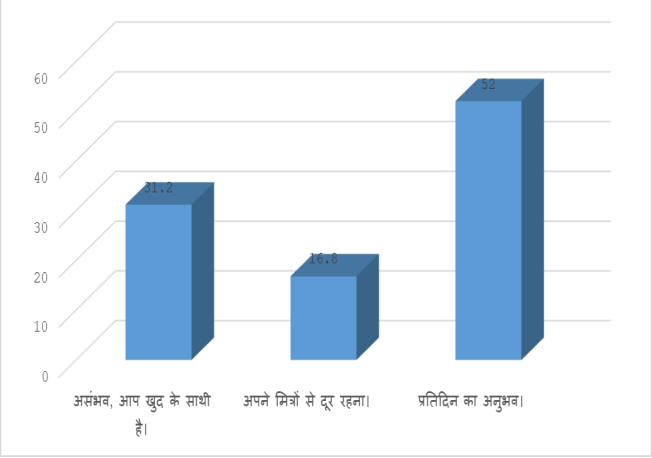

सबसे बड़ी श्रेणी में है। इसके बाद, 31.2% लोग खुद को अपना साथी मानते हैं, जो 156 उत्तरों के साथ है, जबकि 16.8% लोग अपने मित्रों से दूर रहने को अकेलेपन का कारण मानते हैं। कुल मिलाकर, 500 उत्तरदाताओं में से सभी ने अपने अनुभवों के आधार पर अपनी स्थिति व्यक्त की है, और इन परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि अकेलापन महसूस करने के विभिन्न कारण और अनुभव हो सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

Benerji,M. (1975).Kolkata and its hinterland. Kolkata: Progressive publishers.

Biod, Jorg. Feliks (1952).'The level of aspiration of white and nigro children in a segrated elementary school', The Journal of Social Psychology.Vol 36,Clenard,Marshall. (1963).Slum and community development experimental in self health. New York: Macmillan limited

Concept of sequrity insequrity retrived on 09/08/2011 from www.jstor.org/stable/2772598

अग्रवाल, एम0 (2007)हिन्दू और मुस्लिम महिलाओं के सामाजिक व सांस्कृतिक आधुनिकीकरण पर षिक्षा के प्रभाव का अध्ययन अप्रकाशित पी–एच0डी0 थीसिस, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ, उत्तर प्रदेश.

अल्टेकर, वाई0 (2002). प्राइमरी स्कूलों में भाषा व गणित आदि विषयों के शिक्षण में रन्टत व परम्सागत अध्ययन–अध्यापन विधियों के प्रभाव का अध्ययन अप्रकाशित पी–एच0डी0 थीसिस, शिक्षा संकाय, राजीव गॉध ी विष्वविद्यालय,इटानगर, अरूणांचल प्रदेश

अनिमा सेन (1951): साइको शोशल इंटीग्रेशन ऑफ दी हैण्डीकैप्ड, मिततल प्रकाशन, दिल्ली, पृ०–3

चट्टोपाध्याय, ए(1959): ऑल इण्डिया डाइरेक्टरी ऑफ एजूकेशन एण्ड वोकेशनल ट्रेनिंग इन्स्टीटयूट फार द हैंण्डीकैप्ड, पैटरियट प्रकाशन, नई दिल्ली।

एस०सी० ओबराय, (1979): शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एंव परामर्श अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

जायसवाल, सीताराम (1991): शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

भटनागर सुरेश (2001): शिक्षा मनोविज्ञान, लाल बुक डिपो, मेरठ।

नागराजू, एस0 (2002).कर्नाटक के अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की आकांक्षा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन. अप्रकाशित पी–एच0डी0 थीसिस, शिक्षा संकाय, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर, कर्नाटक

नायक,के0 (2005) ने मुम्बई के किशोरों की आधुनिक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रति अभिवृŸिा का अध्ययन मुम्बई विश्वविद्यालय के विशेष सन्दर्भ में, पी–एच0डी0 थीसिस, मुम्बई विश्वविद्यालय, मुम्बई

शर्मा० आर०ए० (2003): शिक्षा अनुसंधान, लाल बुक डिपो, मेरठ, आगरा।

कपिल, एच०के० (2004): अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

शर्मा एवं चतुर्वेदी शिखा (2005): शिक्षाम में निर्देशन एवं परामर्श आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।

भटनागर एवं भटनागर, ए०बी० (2006):शिक्षा मनोविज्ञान लाल बुक डिपो, मेरठ।

शर्मा, डॉ0 आर0 ए0, ''शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध'', आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2008।

*****

चाक उपन्यास में सत्ता, संस्कृति और स्त्री

-प्रियंका चौधरी
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, दिल्ली
विश्वविद्यालय
मोबाईल: 98111 20653

'आनंद की परिभाषा में कैद' अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती हुई लगभग आधी आबादी, यौन शुचिता की भेंट चढ़ाई जाती हुई, कभी मेनका, अप्सरा, रम्भा तो कभी युद्ध में जीती जाने वाली भोग्या, साथ ही विवाह कर लाई जाने वाली प्रजनन की मशीन के रूप में विश्लेषित होती रही है। सामाजिक सुधारवादी आंदोलन और संविधान की अहम् भूमिका के रूप में सबको शिक्षा सबको समानता के अधिकार से कुछ क्रांतिकारी प्रभाव जरूर दिखे पर पूर्णतः सफलता के बीच सामाजिक मानसिक विकलांगता रही, जो स्त्री को शरीर होने में ही उसकी सार्थकता समझता है। **शोपेनहावेर** (1788–1860) एक बड़े दार्शनिक का कहना है– ''जिस भी दृष्टि से देखा जाएं, स्त्रियां पिछड़ी हुई और बुद्धिहीन हैं। स्त्रियां पुरुष (जो पूर्ण है) और शिशु के बीच का एक जीव है।'' साथ ही फ्रायड का कहना यह है कि ''साधारण स्त्री शरीर विज्ञान की दृष्टि से हीनतर होती है। वह एक असम्पूर्ण अंगरहित पुरुष है, क्योंकि वह शिश्वहीन है।''[1]

तो वहीं बारबार डेकार्ड अपनी पुस्तक **'दि विमेन्स मूवमेन्ट** में कहते हैं– ''हम इस प्रकार इस उपसंहार तक पहुँचते हैं कि यह एक साधारण प्राकृतिक नियम है कि शासक होंगे, साथ ही शासित उपादान दास पर नागरिक का शासन होगा और स्त्री पर पुरुष का। दास कतई विवेचना शक्ति से हीन होता है, स्त्री में कुछ विवेचना शक्ति होती है, पर इतनी नहीं कि वह किसी विषय पर किसी उपसंहार तक पहुँ सके।''[2]

स्त्री के संबंध में रूसो (1712–1778) का कथन कुछ इस प्रकार से है– ''स्त्रियों की सारी शिक्षा पुरुषों से संयुक्त हो। पुरुषों को खुश रखना, उनका प्यार तथा उनसे सम्मान पाना, बच्चों को शिक्षा देना, दुख में सान्त्वना देना, उनका जीवन मधुर बनाना, उन्हें आराम पहुँचाना– यही युग–युग में स्त्री का कर्त्तव्य है, बचपन से स्त्रियों को इन बातों की शिक्षा हो।''[3]

साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक और मनोविज्ञानिक पूर्वजों की माने तो स्त्री शरीर और बुद्धि दोनों से पुरुष तुलना में कमतर होती है। उसमें स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता नहीं होती है। इन सभी मान्यताओं को मैत्रेयी पुष्पा 'चाक' उपन्यास के माध्यम से खारिज करती हैं।

राजेन्द्र यादव चाक उपन्यास के संदर्भ में कहते हैं– ''चाक सामन्ती समाज के भीतर व्याप्त हिंसा और स्वार्थों की टकराहट की प्रामाणिक कहानी है। इस समाज का ताना–बाना हिंसा और सेक्स से बना है। मैत्रेयी इन दोनों को ही एक कथाकार की निगाह से पात्रों के आचार–विचार और सोच के रूप में प्रभावशाली ढंग से पकड़ती हैं। चाक में बिना बड़बोलेपन के उन्होंने गाँव की स्त्री की जिस चेतना का विकास किया है, वह उपन्यास–कला पर उनकी पकड़ को रेखांकित करती है।''[4]

'इस समाज का ताना–बाना हिंसा और सेक्स से बना है।' यह न सिर्फ चाक उपन्यास बल्कि समाज की मूल संवेदना है। जहाँ स्त्री का 'सेक्स आब्जेक्ट' बने रहने के लिए यौन अनुकूलन के माध्यम से यौन शुचिता की

कसौटी पर कसा जाना अनिवार्य है। अन्यथा स्त्री का शारीरिक, मानसिक शोषण अथवा मौत के घाट उतारा जाना सामान्य बात है। यही मनुष्य जाति की संस्कृति है–

'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में जवाहरलाल नेहरू संस्कृति की परिभाषा देते हुए कहते है– ''संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है।''[5]

तो महादेवी संस्कृति के संबंध में लिखती है– ''संस्कृति मानव चेतना का ऐसा विकास क्रम है जो उसके अंतरंग तथा बहिरंग को परिष्कृत करके विशेष जीवन पद्धति का सृजन करती है।''[6]

अर्थात् संस्कृति स्वयं रूढ़ या स्थिर नहीं बल्कि निरंतर चलायमान है। यह मनुष्य के विकास तथा उसकी सत्ता पर निर्भर है। जैसाकि पहले ही स्पष्ट है सत्ता किसकी? मनुष्य की, यानि पुरुष, कारण मनुष्य की श्रेणी में स्त्री नहीं आती, वह तो शिश्नहीन है। ज्ञातव्य है कि मनुष्य की श्रेणी में स्त्री नहीं अपितु पुरुष की गणना होती है। अतः पुरुष की सत्ता रही, जो आधार और अधिरचना का नियामक बना रहा। और स्त्री अन्या के रूप में ही विश्लेषित होती रही और है। उदारणस्वरूप 'चाक' उपन्यास की स्त्रियों का जीवन पुरुषों द्वारा तैयार चाक पर चढ़ा हुआ वह बर्तन है जो उनके मन–मुताबिक अपने अस्तित्व को ढालने के लिए बाध्य है। यदि किसी स्त्री ने अपना व्यक्तित्व स्वयं गढ़ने का प्रयास भी किया तो उसे उसके जीवन रूपी चाक की धूरी से उतारकर अस्तित्वविहीन कर दिया जाता है। रेशम, गुलकंदी, हरिप्यारी और शारदा की हत्याएँ इस बात का प्रमाण है।

रेशम विधवा स्त्री थी, उसने विवाह किये बिना गर्भधारण किया और सबके सामने ऐलान भी कर दिया– ''गर्भधारण किया और दिलेरी से ऐलान भी कर दिया। सबने कहा, चोरी और सीना जोरी–दोहरा अपराध।''[7]

इस पर रेशम का बयान– ''मैं जो पुन्न कर रही हूँ अम्मा, उसे पाप न कहो। बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कुंवारी–विधवा की कोख सुखा डालता।''[8]

अदम्य साहस और जीजीविषा लिए रेशम को जीवनदान नहीं मृत्युदान दिया जाता है, जो ऐसी निर्भीक स्त्रियों के लिए सहज और औचित्यपूर्ण ही समझा गया। रेशम की हत्या उस सामंती सोच को उजागर करती है जिसमें स्त्री को स्वयं के लिए निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं और यदि रेशम जैसी कोई स्त्री इस मान्यता के विरुद्ध जाकर ऐसा दुस्साहस करती हैं तो उसकी जीवनलीला समाप्त कर दी जाती है।

''चंदना, मइया बाप ने कौन–सा गहना गढ़वाया है? तेरे बीरन ने क्या दिया है? और सकल सुनार ने...? चंदना को काटो तो खून नहीं। सफेद पड़ गई हौल की मारी। अपने स्वामी अपने मालिक को क्या बताएँ? क्या छिपाएँ? सीता मइया की तरह अग्नि में खड़ी है। झूठ के पाँव कितने? भसम हो जाएगी। मन ही मन जननी को कोसने लगी– मइया होते ही टैंटिया मसक देती। इसी घड़ी के लिए को ख में लादे रही थी? मैं सकल की पिरीत, की कसूरवार साँची बताना रे बाबुल, पाप किया मैंने? हाँ पाप है बेटी महापाप! ब्याहता को बिराने आदमी की झाई परछाई भी छुए तो नरक की सामा....''[9]

पुरुष सत्ता एवं संस्कृति का इतिहास स्त्री–यौनिकता के दमन का दस्तावेज है। स्त्री का यौन–व्यक्तित्व पुरुष सत्ता को हमेशा से डराता रहा है। यही वजह है कि उसकी यौनिकता के प्रति दमनकारी एवं अमानवीय व्यवहार किए गये। योनिसुन्नत से लेकर चेस्टीटी बेल्ट बांधने तक की और संस्कृति के प्रति पुरुष जाति के अवचेतन में बसी स्त्री के मुक्त यौन के प्रति भय ही काम करता है। इसलिए स्त्री यौन नियंत्रण के लिए प्रयास निरंतर जारी रहते आये है–

लोकगीत के कुँवर जी द्वारा चंदना की जीवनलीला सम.

ाप्त करना इसी बात का प्रमाण है– ''पहली कटारी कुँवरजी मारियाँ जी ए जी कोई दूजी लैलई बाहन और तीजी कटारी चंदना के हीयरा जी ऽऽऽ.....। वार नहीं बच पाया। चंदना की जीवन लीला समाप्त हुई।''[10]

'चाक की कथा में 'स्त्री की अस्मिता' को पूरी गहराई और मानवीय संवेदना के साथ उठाने की कोशिश की गई है। सारंग इस उपन्यास की केंद्रिय पात्र है। पूरी कथा के केन्द्र में उसका आत्मसंघर्ष एवं सामाजिक संघर्ष लगभग साथ–साथ चलता दिखाया गया है। उसके आत्म में उसका यौन व्यक्तित्व भी पूरी संजीदगी के साथ शामिल हो गया है।

समकालीन स्त्री विमर्श की महत्वपूर्ण लेखिका अना. मिका–सारंग और उसके पति रंजीत तथा सारंग के साथी श्रीधर मास्टर के बीच की केमिस्ट्री को कुछ इस प्रकार रखती है– ''उसकी (सारंग) त्रासदी उन सारी स्त्रियों की त्रासदी है जो अपने जरूरत से ज्यादा ही पारदर्शी, पर उग्र पतियों से स्नेह तो करती है, पर लाख चाहकर भी उन्हें अपने सपनों के पूर्ण पुरुष का दर्जा नहीं दे पाती अपने कलेजे में उन्हें टूटकर प्यार करने का जोर नहीं जुटा पाती....। उनके पति आजीवन उनके लिए एक उदण्ड जिद्दी बच्चा ही बने रह जाते हैं जिन्हें स्नेह सुर क्षा तो दी जा सकती है, पर जिनके लिए मन में ऐसे नहीं उमड़ता कि सर्वस्व समर्पित करने की सहज साध जग जाए।''[11]

प्रगतिशील विचारक राजकिशोर की टिप्पणी– ''श्रीधर ओर सारंग का मिलन दो रचनात्मक वेदनाओं का मिलन है। रेशम और गुलकंदी के लिए स्वाधीनता अपने आप में एक मूल्य है लेकिन सारंग के लिए स्वाधीनता कुछ और मूल्यों की धारक भी है।''[12]

निर्मला जैन के शब्दों में ''श्रीधर और सारंग का मिलना परिस्थितियों की सहज परिणति है और सारंग का पहल करना जैसे सेक्स वृत्तांत में उसके बराबर का हिस्सेदार होने का सबूत है।''[13]

सारंग के शब्दों में– ''श्रीधर अगर तुम्हारी आँखे इस देह को देखकर आनंद पाती हैं। तो जी भरकर देखो मुझे मेरा देह धरना सुकारथ हो गया। पर इससे तुम्हारे घाव सिराते हैं तो छुओ न मेरी सुंदरता सार्थक हुई।''[14]

सारंग द्वारा सेक्स का सहज आमंत्रण करवाना मैत्रेयी पुष्पा की अनुठी उपलब्धी है जो स्त्री यौन नियंत्रण के विरोध में खड़ी होती है। साथ ही स्त्री यौन मुक्ति कामना और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना करती हुई नजर आती है।

वस्तुतः चंदन का विद्यालय में दाखिला, खेत में अभद्र व्यवहार करते डोरिया की जांघो के बीचों–बीच प्रहार, अपने अपमान का बदला हेतु केलासी सिंह को न्यौता, मास्टर, श्रीधर से ग्लानिरहित प्रेम तथा रति प्रसंग, कुछ ऐसे उदाहरण जिनसे सारंग की स्वनिर्णय की क्षमता और जुझारू व्यक्तित्व उजागर होता है। सारंग की गुरुकुल से लेकर अतरपुर गांव के प्रधान पद का चुनाव लड़ने की यात्रा साहस व संघर्ष से भरी है।

चाक के घोषणा पत्र में मैत्रेयी जी सारंग के विषय में लि खती हैं– ''वह रेशम की सहोदरा है या कि उन तमाम हत्या के घाट उतारे जाने वाली स्त्रियों की बहन जिनकी हिमायत में खड़े होने का नरपंगुओं में साहस नहीं। वह हर जोख़िम उठाने के लिए जिन्दा है। उन संस्थाओं व्यवस्थाओं और रूढ़ परम्पराओं को मिटाने, काटने के लिए खड़ी हो जाती है जो इंसानों में मालिक और गुलाम का अन्तर पैदा करती है।''[15]

सभी जातियों की स्त्रियों का, एकत्रित होने के लिए आवाहान, सारंग के नेतृत्व में मैत्रेयी करती हैं। स्त्रियों का एकत्रित होना पुरुष के खिलाफ नहीं अपितु सत्ता और संस्कृति के खिलाफ है। उनकी मुक्ति तभी संभव है जब वह बिना जाति भेद, वर्ग भेद और धर्म भेद के एक लय में अपना स्वर दर्ज करेंगी।

''सक्का गड़रिया, कुम्हार, खटीकों की सारी औरतें। बाम्हन–बनियों की स्त्रियाँ। जटियाना पूरा सूना हो गया। गजब! प्रधानजी ने पहली बार अपनी स्त्री पर हाथ उठाया। बेशरम कही की। जुलूस? पर प्रधानिन निकल पड़ी। बाहर क्या निकली गली में बहती खुली हवा ने बाँहों में भर लिया उसे।.... तेरे जैसे आदमी को तिनके की तरह उड़ा दूँगी।''[16]

स्त्री मुक्ति की लहर स्त्री में स्वयं के प्रति आत्मविश्वास का जगना, निर्णय लेने की क्षमता और उस पर अमल करने की दृढ़ता ही उपन्यास का उद्देश्य है। उपन्यास में शिक्षा के कारण ही स्त्री को नया आयाम मिलता। शिक्षा को महत्व देने वाले शिक्षक श्रीधर का गाँव में प्रवेश, गाँव की गतिविधियों में एक नई खलबली स्वरूप ऊर्जा भर देता है– यही ऊर्जा स्त्रियों को अपने घूंघट से बाहर आ अपनी अस्मिता के लिए लड़ने का साहस देता है।

आरम्भ में जहाँ पुरुष सत्ता और उससे निर्मित संस्कृति का शिकार स्त्री देह के रूप में विश्लेषित हुई तो वही अंत स्त्री यौन स्वीकृति और स्त्री सत्ता, जहाँ सारंग कहती है ''.... अपने चलते कोई अन्याय न हो।''[17] में परिणत हो जाता है।

अर्थात् यहाँ विरोध या विद्रोह नहीं है यहाँ कार्य है आम जन के लिए जिसमें सभी जाति, धर्म, वर्ग, लिंग के जन शामिल है। सत्ता के बदलने से संस्कृति अपने आप बदल जाती है यह बात उपन्यास लेखिका ने बखूबी स्पष्ट करने की कोशिश की।

यह उपन्यास टंडेल के मत को सार्थक करता है कि– ''उत्तर आधुनिक क्षण एक साथ समझौते का क्षण है।''[18]

संदर्भ ग्रंथ

1.स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का रोमांचकारी इतिहास : मन्मथनाथ गुप्त, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2005

2.स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का रोमांचकारी इतिहास : मन्मथनाथ गुप्त, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2005

3.स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का रोमांचकारी इतिहास : मन्मथनाथ गुप्त, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2005

4.स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का रोमांचकारी इतिहास : मन्मथनाथ गुप्त, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2005

5.चाक : मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2020, पृष्ठ बैक कवर

6.संस्कृति के चार अध्याय– रामधारी सिंह दिनकर, संस्करण 2009, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 11

7.महादेवी वर्मा साहित्य– खंड 4, सेतु प्रकाशन, 1969, संपादक निर्मला जैन, पृष्ठ 41

8.चाक– मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ 18

9.चाक– मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ 13

10.चाक– मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ 14

11.अनामिका– स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण

12.स्त्रीत्व का उत्सव– राजकिशोर

13.अनामिका– स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन

14.चाक– मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ 329

15.चाक उपन्यास का आमुख पृष्ठ– मैत्रेयी पुष्पा

16.चाक– मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ 428

17.चाक– मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ 417

18.उत्तर आधुनिकता कुछ विचार– देवशंकर नवीन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000

*****

बिजनौर जनपद में स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, तथा सह-शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

मनीषा
शोधकर्ती
स्कूल ऑफ सोशल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

(डॉ0)हरिओम चौहान
शोध निर्देशक
सहायक प्राध्यापक
स्कूल ऑफ सोशल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय,मुरादाबाद

सार :- शिक्षा मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है, जो वांछनीय लक्ष्यों की पूर्ति का उपयोगी साधन है। शिक्षा की आवश्यकता प्रत्येक मनुष्य को है। शिक्षा व्यक्ति की क्षमताओं को प्रकाशित करने का कार्य करती है, उसे वातावरणीय परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करती है। शिक्षा राष्ट्र के निर्माण विकास और उन्नति के लिए भी एक उत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा के द्वारा ही बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के रूपो का उत्कृष्ट एवं सर्वागीण विकास करती है। आत्मवि"वास व्यक्तित्व का एक शीलगुण है जो व्यक्ति के विचार और भावनाओं, त्वरित कार्य क्षमताओं और आशाओं में निहित है। आत्मविश्वास स्वयं की विचार धारा के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण है।

कि वर्ड :- आत्मविश्वास, सह–शिक्षा

प्रस्तावना :- नवजात शिशु असहाय तथा असामाजिक होता है। वह न बोलना जानता है न चलना फिरना। उसका न कोई मित्र होता है और न कोई शत्रु। यहीं हीं समाज की रीति रिवाजों तथा परम्पराओं का ज्ञान का भी नहीं होता और न ही उसमें कोई आदर्श तथा मूल्य को प्राप्त करने की जिज्ञासा पाई जाती है। परन्तु जैसे–जैसे वह बड़ा होने लगता है वैसे–वैसे उस पर शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनों का प्रभाव पड़ता जाता है। इस प्रभाव के कारण उसका मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक तथा भावात्मक विकास होता जाता है। शिक्षा माता के समान पालन पोषण करती है, पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने कार्यों में लगाती है तथा पत्नी की भांति सांसारिक चिन्ताओं को दूर करके प्रसन्नता प्रदान करती है। शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। शिक्षा बालक का सर्वागीण विकास करके उसे तेजस्वी, बुद्धिमान, चरित्रवान, विद्वान तथा वीर बनाती है।

शिक्षा विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीवन का सच्च आनन्द लिया जा सकता है। शिक्षा बालक के चेतन अथवा अचेतन रूप से व्यक्तिगत रूचियों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास करती है एवं उसके व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्तन करती है कि व्यक्ति तथा समाज दोनों उन्नति के शिखर पर चढ़ते रहे। मनवीय तथा सामाजिक विकास के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण माध्यम है शिक्षा के अभाव में एक मनुष्य ना तो अपने अधिकारों को जान सकता है और ना ही अपने कर्तव्यों को समझ सकता है। किसी भी देश के विकास व आधुनिकीकरण के लिए शिक्षा एक सर्वोत्तम माध्यम है।

अध्ययन की आवश्यकता व महत्व :- भारतीय इतिहास

बहुत ही मोड़ लेता हुआ आगे बढ़ा है। ऐसा माना जाता है कि संसार में सर्वप्रथम ज्ञान की किरण भारत में ही प्रस्फुटित हुई थी। जब संसार में अन्य मानव जातियां पशुवत जीवन जी रही थी तब हमारे देश भारत में उच्च सभ्यता तथ संसृति का विकास हो चुका था, संसार के सर्वप्रथम ग्रंथ वेदों की रचना हो चुकी थी। मैं अंग्रेज विद्वान एफ0डब्लू0 थॉमस के शब्दों में ''ऐसा कोई देश नहीं जहां ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय से प्रारम्भ हुआ हो जितना भारत मेंया जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो जितना भारत ने।''

जब कोई अनुसंधान कार्य किया जाता है तो उस अध्ययन की उपयोगिता, महत्व, प्रकृति, नवीन ज्ञान की वृद्धि के साथ व्यावहारिक उपयोगिता आदि के महत्व को स्पष्ट करना इसलिए आवश्कय है। क्योंकि इसके द्वारा ही यह हम सिद्ध कर सकें कि प्रस्तुत शोध के परिणाम व निष्कर्ष शिक्षा के जगत को किस प्रकार प्रभावित करेंगे।

आज भारत औद्योगिकरण, हरित क्रांति, वैज्ञानिक प्रगति के क्षेत्र में नित नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में हमारा देश काफी पिछड़ रहा है विश्व गुरू कहाजाने वाला देशअब क्षेत्र में आशातीत विकास नहीं कर पा रहा है। ये बात ध्यान देने के योग्य है कि शिक्षा का विस्तार होने के बावजूद भी शिक्षा में मूल्यों की कमी महसूस हो रही है। शिक्षा की दशा में सुधार होता नहीं दिख रहा है। उचित शिक्षा के अभाव में महा. विद्यालयों में विद्यार्थियों की कमी होने के कारण, कक्षाओं में उबाने वाला वातावरण होने के कारण, महाविद्यालयों तक पहुंचने के लिये यातायात की सुविधा न होना, इन महाविद्यालयों का सड़क किनारे और अंधेरे क्षेत्र में होनाभी इसका एक कारण हो सकता है। हमारे देश में निजी महा. विद्यालय कुकुरमुत्ते के पौधे की तरह उग रहे है। अधिकांश महाविद्यालय में मौलिक सुविधाएं की कमी, प्रशिक्षत शिक्षकों की कमी, पुस्तकालय तथा वाचनकाल का नाममात्र का होना, ई–लर्निंग का प्रयोग न करना शिक्षा के गिरते स्तर का कारण माना जा सकता है। स्कूल तथा महाविद्यालय के कुछ छात्रों के द्वारा असामाजिक क्रियाएं–नशा, चोरी, जुआ आदि के कारणभी इसका लगातार बढ़ावा देते है क्या कारण है विद्यार्थियों की इन गैर सामाजिक क्रियाओं का गुरू देवों भव शिक्षक भगवान समान है। आदर का भाव हमारे विद्यार्थियों का कही खो गया है क्या कारण है इनकी मानसिकता ग्रस्त होने का हताश होने का? और क्यों? शिक्षा का बालकेन्द्रित न होना, अकुशल शिक्षक और नीरस वातावरण सम्भवतः ये उपरोक्त कारण ही विद्यार्थियों के बदलते व्यवहार के लिये जिम्मेदा है।

समस्या कथन :- बिजनौर जनपद में स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, तथा सह–शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

शोध अध्ययन के शब्दों का परिभाषीकरण :-

आत्म विश्वास मानव का व्यक्तित्व अनेक प्रकार की योग्यता, क्षमता, गुण तथा विशेषताओं का योग है गुण एवं विशेषतायें सूक्ष्म या स्थूल रूप से मानव के व्यक्तित्व में समावेशित रहती है। इन गुण तथा विशेषताओं को झलक प्रत्येक विचार तथा व्यवहार में दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार आत्म विश्वास भी व्यक्तित्व की एक विशेषता है। आत्मविश्वास एक मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति है। आत्म विश्वास से ही विचारों के सम्पादन में सरलता और सफलता प्राप्त होती है। आत्मविश्वास के लिये सकारात्मक दृटिकोण का होना अत्यन्त आवश्यक है। आत्मविश्वास के बिना किसी कार्य की सफलता संदिग्ध ही बना रहती है। आत्मविश्वास एक अदभुत शक्ति होती है।

महाविद्यालयी संतुष्टि :

महाविद्यालयी संतुष्टि को जानने से पहले यह जानना अति आवश्यक है कि संतुष्टि से क्या अभिप्राय है। भारतीय दार्शनिक के अनुसार परित्याग है संतुष्टि है। अर्थात इच्छा रहित अवस्था ही संतुष्टि की अवस्था है। किन्तु इस स्थिति तक शायद ही कोई पहुंच पाता है। विद्यार्थियों से इस प्रकार की संतुष्टि की अपेक्षा करना उचित नहीं होगा। मनोवैज्ञानिक के अनुसार संतुष्टि मानव की मूलभूत आवश्यकताओं पर आधारित है।

अध्ययन के उद्देश्य :- रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पनायें :- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध अध्ययन विधिः— किसी भी शोध कार्य को वैज्ञानिक ढंग से पूर्ण करने के लिए अनुसंधान की विधि की आवश्यकता होती है। अनुसन्धान विधि का निर्धारण समस्या के स्वरूप व प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रस्तावित शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए "वर्णनात्मक अनुसंधान" का एक प्रकार आदर्शमूलक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित लगेगा इसलिए शोधकर्त्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग इस अध्ययन में किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः— प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्ता ने उद्देश्यों के अनुरूप उपकरणों की खोज की, अतः शोधकर्त्ता ने शोध पर्यवेक्षक एवं शोध क्षेत्र के अन्य अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क किया तथा उनके परामर्श से मानकिकृत उपकरणों को शोध कार्य में प्रयोग किया गया।

तालिका संख्या 0.1

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।					
		आवृत्ति	प्रतिशत	मान्य प्रतिशत	संचयी प्रतिशत
वैध	दृढ़ता से असहमत	6	30.	30.	30.
	असहमत होना	24	120.	120.	150.
	मामूली रूप से सहमत	51	255.	255.	405.
	सहमत होना	86	430.	430.	835.
	दृढ़ता से सहमत	33	165.	165.	1000.
	कुल	200	1000.	1000.	

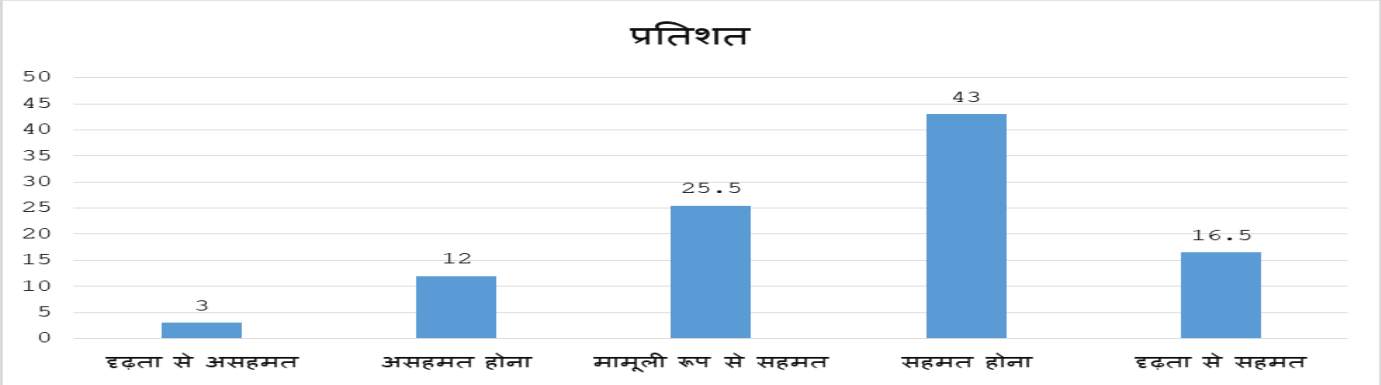

इस प्रश्नावली सर्वेक्षण में, 3% उत्तरदाता दृढ़ता से असहमत हैं, 12% उत्तरदाता असहमत हैं, 25.5% उत्तरदाता मामूली रूप से सहमत हैं, 43% उत्तरदाता सहमत हैं और 16.5% उत्तरदाता दृढ़ता से सहमत समूहों से संबंधित हैं कि वे रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति अध्ययन के लिए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

01.चट्टोपाध्याय, ए0 (1986) ऑल इण्डिया डायरेक्टरी ऑफ एजूकेशन एण्ड वोकेशनल ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट फॉर द हैण्डीकैप्ट, पैटरियर प्रकाशन, नई दिल्ली।

02.किशोर, राम. (2010) दृष्टिबाधित विकलांगों की व्यक्तित्व आवश्यकताओं का अध्ययन, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष 29, अंक 2, जुलाई–दिसम्बर।

03.कुमार, संजीव एवं सिंह, सुधाकर प्रसाद. (2008) सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सेवाकालीन प्रशिक्षण पा रहे स्कूली शिक्षकों के समावेशी प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 15, अंक 3, दिसम्बर।

04.केवट, आर0 एन0. (2009) समेकित शिक्षा के अन्तर्गत सामान्य एवं विशेष विद्यालयों में अध्ययनरत विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन का अध्ययन।

05.जैन, आर0के0. (2009-10) आयकर विधान एवं लेखे, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन, आगरा, कर निर्धारण वर्ष।

06.जायसवाल, सीता राम. (1995) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।

07.पारसनाथ, राय. (1993) सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण, अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नरायण अग्रवाल पब्लिशर्ष, आगरा।

08.मिश्र विनोद कुमार. (2004) विकलांगताः कारण, बचाव व निदान, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।

09.मिश्रा विनोद कुमार. (2006) विकलांगों के अधिकार, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली।

10.मिश्रा, जगदीश प्रसाद. (2006) बालकों का वाक् विकार में विश्लेषणात्मक अध्ययन, प्रौढ शिक्षा, सितम्बर–अक्टूबर।

11.तरंग, जय पाल. (2004) विकलांगों के लिए शिक्षा, प्रकाशन विभान, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।

12.यादव, कमलेश एवं नायक, गोपाल प्रसाद. (2009
द्ध दृष्टिबाधित, मूक–बधिर एवं सामान्य विद्यार्थियों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 16, अंक 3, दिसम्बर।

13.राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) नई दिल्ली, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग।

14.सिंह, जगत. (2004) विकलांग बालक, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

15.केवट, आर0एन0. (2009) ''समेकित शिक्षा के अंतर्गत सामान्य एवं विशेष विद्यालयों में अध्ययनरत् विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन का अध्ययन''. परिप्रेक्ष्य, वर्ष–16, अंक–1, अप्रैल. पृ0 109–114।

*****

A STUDY OF RELATIONSHIP BETWEEN U.P. AND C.B.S.E. BOARDS PRINCIPALS' ADMINISTRATIVE EFFECTIVENESS AND THEIR INSTITUTIONAL ACADEMIC PERFORMANCE

-Gaurav Kumar
Research Scholar

-Dr. Mohan Lal Arya
Supervisor

Abstract :- The research paper outlines a study examining the connection between the administrative effectiveness of principals from the U.P. and C.B.S.E. boards and the academic performance of their institutions. In a school, the principal occupies a crucial role and acts as the coordinating body to maintain balance and foster the comprehensive development of students. The principal has the capacity to create an organizational environment within the institution that is favorable for the overall personality growth of learners. The administrative skills of a principal directly influence teachers by satisfying them, granting them autonomy in their work, and indirectly impacting students through the teachers. While numerous studies have explored the effects of a principal's leadership or administrative style on the organizational climate and teacher alienation, very few have investigated the direct impact of a principal's administrative behavior on students' academic success. This study aimed to determine whether different types of administrative styles have an effect on students' achievement levels. In this research, an attempt was made to establish the connection between a set of desirable behaviors for the Administrative Effectiveness of Principals and their Institutional Academic Performance in the Moradabad District.

Key Words :- principals' administrative, institutional academic performance

Introduction Every educational institution consists of various roles performed by individuals within the organization, including Principals, Teachers, Students, and administrative staff. They act in accordance with the established norms of their roles to accomplish the organization's shared objectives. The effectiveness of an educational institution is largely dependent on its principal. Holding a key position within the formal structure of the educational system, he carries the primary responsibility of organizing, guiding, and developing the entire staff. In the realm of education, rapid and widespread transformations within the profession and across society are exerting significant pressure on the institution. The Principal serves as a crucial figure within this institutional framework, influencing teachers through his skills and expertise while also effectively contributing to the realization of educational policy objectives. This effectiveness hinges on the Principal possessing the necessary competencies, leadership abilities, administrative efficiency, managerial and planning skills, as well as the capability to inspire both teachers and students to engage in efforts that support the attainment of national goals. The National Policy on Education (1986) emphasized the importance of maintaining high standards in education and administration, stating, "Education must be managed in a context that fosters rigorous intellectual engagement, a strong sense of purpose, and the freedom necessary for innovation and creativity. It is essential to begin the process of integrating disciplines into the system immediately." The above implication in education is not being administered properly in India today. Its administration need to be streamlined. This may be a fact, that the situation of the educational administrator is not much changed as desirable. But, the administration alone can not be accepted as the factor causing this malaise of education. There may be several other factors and conditions underlying the inadequacy and weaknesses of the present system of education. In the process of education, several variables are involved which determine, partially if not wholly, the quality of education. The human factor consisting of the administrators who manage the affairs of educa-

tion is, however, the most versatile. It cut across all other factors and conditions operating in the educational institutions. The material recourses consisting of the institutional equipment, methodology of teaching, organization of teaching and other academic pursuits, the climate of the institution, student discipline and other involvement in the education process, teacher's identification with student and their active involvement in the teaching-learning process are quite a number of factors and condition that have been described to be the significant determinants of the high quality of education. But all these factors and conditions are truly peaking, manipulated by the administrators. Effective and desirable operation of all these factors is contingent upon the insight, competence and skills of the administrator. He occupies the most important role in the field of education. Effectiveness as adequacy of educational system may, thus, be considered just an aspect, a function of administrative effectiveness.

METHODS OF THE STUDY: -

The researcher will be used the Ex-Post factor method in which an attempt is made to study the administrative effectiveness of the Principals of Secondary Schools. Generally this method is used in those studies in which subjects are sorted on the basis of some naturally occurring characteristics. This method is different from the experimental method in which the independent variable is directly manipulated by the researcher.

POPULATION: -

The population for the purpose of this study consisted of the total number of Principals, Teachers and Students of all U.P. and C.B.S.E. Boards Secondary Schools of Moradabad District. In this population only those Schools are included which are affiliated to U.P. Board and Central Board of Secondary Education (CBSE) Boards.

DELIMITATIONS OF THE STUDY: -

This study is delimited to rural and urban secondary school students teacher and principles of Moradabad district.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF DATA :-

That there is no significant difference among Institutional Academic Performance of Principal's of U.P. and C.B.S.E. Board Secondary Schools with High Administrative Effectiveness and Low Administrative Effectiveness.

Table No. 1.1

I take timely actions to address academic challenges and improve school performance.					
		Frequency	Percent	Valid Percent	Cumulative Percent
Valid	Strongly Disagree	7	1.8	1.8	1.8
	Disagree	30	7.5	7.5	9.3
	Neutral	48	12.0	12.0	21.3
	Agree	164	41.0	41.0	62.3
	Strongly Agree	151	37.8	37.8	100.0
	Total	400	100.0	100.0	

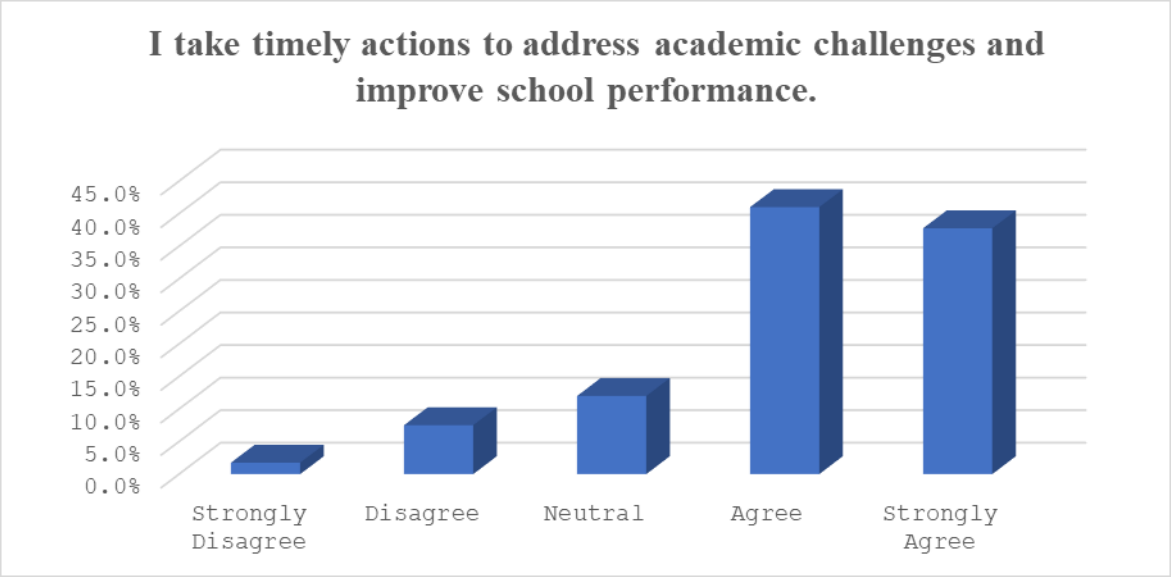

The data reflects responses to the statement, "I take timely actions to address academic challenges and improve school performance." Among the 400 respondents, the majority demonstrated agreement, with 41.0% agreeing and 37.8% strongly agreeing, making up 78.8% of the total. Meanwhile, 12.0% remained neutral, and smaller proportions disagreed (7.5%) or strongly disagreed (1.8%). This suggests that most respondents actively address academic challenges to enhance school performance.

Reference: -

1. Agarwal, Vidya, "A study of Stress Proneness, Adjustment and Job-Satisfaction of Administrative Effectiveness of Principal", Fourth Survey of Educational Research, 1993.
2. Aphalwar, S. Manohar Rao, "Evaluation of Administration of Secondary Schools of Adilabad and Karimnagar Districts of Andhra Pradesh with Special Reference to Headmasters", Indian Educational Abst. Issue-I, July, 1996.
3. National Policy on Education-1986, Ministry of Human Resource Development, Government of India (Deptt. Of Education), New Delhi, 1986.
4. Steppen J. Knezevich, Administration of Public Education, 4th Ed., Harper and Row Publishers, New York, 1984.
5. Paul R. Mort, "Principles of School Administration", New York, McGraw Hill, 1946.
6. Jesse B. Sears, "The Nature of the Administrative Process", New York, McGraw Hill, 1950.
7. E.G. Guba and Bidwell, "Administrative Relationships", University of Chicago: Chicago Midwest Administrative Center, 1957.
8. Jacob W. Getzels, James M. Lipham and Ronald F. Campbell, "Educational Administration As a Social Process", New York, Evanston and Landon: Harper and Row Publishers.
9. Chester I. Barnard, "The Function of Executive", Cambridge, Mass, Harward University Press, 1964.
10. Carter V. Good, "Dictionary of Education", 2nd ed., New York: McGraw Hill Book Company, 1959.
11. Sharma, R.A. "Educational Administration and Management", Surya Publication, Meerut, 2004.
12. 'Arya', Mohan Lal, "Educational Administration and Management", (Hindi), Surya Publication, Meerut, 2014.

*****

वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित बी.एड.महाविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण का अध्ययन

-राजकुमार ,
शोधार्थी,
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद उत्तर प्रदेश

- डॉ.भूपेंद्र कौर
शोध निर्देशक,
असि.प्रोफेसर
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद उत्तर प्रदेश

सारांश :

आज शिक्षक शिक्षा में हो रहे तेजी से बदलाव और शिक्षा की विचारधारा में हो रहे बदलाव को देखते हुए, शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में अनेक चुनौतियां एवं परिवर्तन की अभी से आवश्यकता है। समाज की वदलती आवश्यकताओ के अनुसार जहा शिक्षक शिक्षा में निरंतर विकास किया जा रहा है वही वैश्विक परिवेश को देखते हुए। हमें आज शि क्षक . शिक्षा में सुधर ही नहीं नवाचार भी लाना होगा। शि क्षक शिक्षा में बदलाव ही नहीं अपितु शिक्षक शिक्षा से संबधित सभी मुद्दों अथवा चुनौतियों पर अपने स्पष्ट उत्तरदायित्व को पहचानना होगा। तभी बच्चो के उज्जवल भविष्य के लिए भविष्योन्मुखी शिक्षक को तैयार करने में अभी से जुटना होगा अन्यथा बिना प्रशिक्षण प्राप्त तैयार डिग्री धारक शिक्षक होंगे जो बच्चो के उज्जवल भविष्य के लिए खतरा साबित होगा।

प्रस्तावना :

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है वर्तमान समय में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा का महत्व बढ़ता जा रहा है। प्रायः देखा जाता है कि जो व्यक्ति जितना अधिक शि क्षत होता है वह अपने जीवन में उतनी ही अधिक सफलता अर्जित करता है। अतः मानव को अपनी प्रगति के लिए शि क्षा प्राप्त करना नितांत आवश्यक हो गया है। आध ुनिक युग में शिक्षा का उद्देश्य बालक को नये–नये अनुभव प्रदान कर उसे इस योग्य बनाना है कि वह अपने वातावरण में समायोजित होकर अपनी शक्तियों तथा निहित योग्यताओं का पूर्ण विकास कर, योग्यतानुसार अपने परिवार, समाज तथा राष्ट्र के किसी विशिष्ट क्षेत्र में योगदान कर सके। बालक को अच्छा नागरिक बनाने की पूर्ण जिम्मेदारी शिक्षक तथा समाज की होती हैं। उससे भी शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण रहती हैं।

शिक्षा के प्रमुख तीन अंग है–

1. शिक्षक
2. छात्र
3. पाठ्यवस्तु

शिक्षक इसमें सबसे महत्वपूर्ण अंग है शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया तथा योजना में पाठ्यवस्तु तथा शिक्षार्थी की तुलना में शिक्षक का स्थान विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है, क्योंकि औपचारिक शिक्षा का क्रियान्वयन शिक्षक द्वारा ही सम्भव है एक अच्छा शिक्षक तथा उसके शिक्षण की गुणवत्ता स्वतन्त्र व्यक्तियों तथा स्वतंत्र समाज के लिए हमेशा अत्यधिक महत्वपूर्ण रहे हैं।

आज हमारे शिक्षक अपने व्यवसाय के साथ अपने प्राचीन गौरव को खोते जा रहे है। परिणाम स्वरूप शिक्षा के स्तर पर भी प्रश्न चिन्ह लगा हुआ हैं। इसके लिए सिर्फ शि क्षकों को ही जिम्मेदार ठहराना अनुचित होगा, हमको यह देखना होगा कि हमारे शिक्षक अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को निभाने में पूर्णतया समर्थ क्यों नही है क्या उनको दिया जाने वाला प्रशिक्षण वर्तमान सामाजिक तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा आध ुनिकीकरण की जरूरत है कि हम श्रेष्ठ तथा सुयोग्य शि क्षकों का चयन कर शिक्षा में गुणात्मक विकास करे और देश को विकसित देशों की श्रेणी में ला सके। विश्व के महान एवं विकसित देशों के निर्माण में वहाँ के शिक्षकों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है।

कृष्णन के अनुसार :– ''शिक्षक शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होता है। पाठ्यक्रम पाठ्य सामग्री और संग. ठन यद्यपि के सजीव व्यवस्था के उपयोग द्वारा उसमें प्राणों का संचार नही हो जाता।'' शिक्षा एक राष्ट्र की रीढ़

की हड्डी के समान है तथा शिक्षक उस शिक्षा व्यवस्था में केन्द्र बिन्दु है इसका कारण है कि वह उस सम्पूर्ण प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका अदा करता है।

पर्यावरणीय कारक रू.: सीखने के लिए आवश्यक भौतिक परिस्थितियाँ पर्यावरणीय कारक के अंतर्गत हैं। सीखने की दक्षता को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक वह स्थिति है जिसमें सीखना होता है। इसमें क्लासरूम, पाठ्यपुस्तकें, उपकरण, महाविद्यालय की आपूर्ति और अन्य शिक्षण सामग्री शामिल हैं।

महाविद्यालय में सीखने के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल और पर्याप्त होनी चाहिए यदि शिक्षण वांछित परिणाम देने वाला हो। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि निर्देशात्मक सामग्री और उपकरण का प्रकार और गुणवत्ता महाविद्यालय की अनुदेशात्मक दक्षता में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

एक खराब प्रकार की इमारत में और पर्याप्त उपकरण और निर्देशात्मक सामग्री के बिना शिक्षण का अच्छा काम करना मुश्किल है। एक महाविद्यालय की इमारत या एक कक्षा में कोई योग्यता नहीं है, जब वह अपने शैक्षिक उद्देश्यों और कार्यों के कारण निर्मित नहीं होती है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता :

वर्तमान में आये दिन समाचार पत्रों व दूरदर्शन के माध्यम से पड़ने व सुनने में आता है की वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित बीण्एडण् महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राध्यापक महाविद्यालय में अनुपस्थित रहते हैं, क्योकि महाविद्यालयों का शैक्षिक वातावरण उपयुक्त नहीं है, महाविद्यालयों में योग्य शिक्षक नहीं हैं, महाविद्यालयों में शिक्षकों की कमी है, महाविद्यालय में सीखने के लिए उपयुक्त शिक्षण सामग्री एवं साधन नहीं हैं, शिक्षण में नवाचार के लिए उपयुक्त साधन नहीं हैं आदि समस्याओं के चलते उनकी अधिगम क्षमता व दक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे भविष्य में युग निर्माता कहलाने वाला शिक्षक एक योग्य शिक्षक नहीं बन पता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षकों के निर्माण के कार्यक्रम को और अधिक बेहतर तथा प्रशिक्षण संस्थाओं को और अधिक सुदृढ़ सार्थक एवं प्रभावशाली बनाया जाये। इसके लिए आवश्यक है कि प्रशिक्षण संस्थाओं के शैक्षिक वातावरण को और भी अधिक बेहतर बनाया जाये जिसका प्रभाव छात्रों के अधिगम दक्षता पर निश्चित रूप से पड़ता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :

1.वित्तपोषित एवं स्व–वित्तपोषित बी.एड. महाविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनाये :

1.वित्तपोषित एवं स्व–वित्तपोषित बीण् एडण् महाविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण में सार्थक अन्तर होगा।

शोध अध्ययन की विधि :

प्रस्तुत शोधकार्य सर्वेक्षण विधि एवम् विवरणात्मक विधि ;नतअमल डमजीवक ंदक क्मेबतपचजपअम डमजीवक द्ध पर आधाारित होगा इस प्रकार के अनुसंधान में सर्वेक्षण विधि का मुख्य उद्देश्य किसी समस्या या घटना का विवरण प्रस्तुत करना व उनमें परिवर्तन लाने के सुझाव प्रस्तावित करना है।

शोध अध्ययन की जनसंख्या :.

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता एम जे पी रुहेलखण्ड यूनिवर्सिटी, बरेली से सम्बद्ध वित्तपोषित एवं स्व–वित्तपोषित बीण्एडण् महाविद्यालयों के छात्राध्यापकों को अध्ययन की जसंख्या के रूप में लिया जायेगा ।

अध्ययन में न्यादर्श :प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए 400 न्यादर्श लिए जायेगे, जिसमे रुहेलखंड विश्वविद्यालय (बरेली) से सम्बंधित जनपद मुरादाबाद एवं जनपद अमरोहा के बी० एड० महाविद्यालयों के 400 छात्राध्यापकों को लिया जायेगा।

शोध उपकरण : प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी ने छात्रध्यापको के शैक्षिक वातावरण को ज्ञात करने के लिए प्रो० के० एस० मिश्र द्वारा निर्मित, अनुसूची का प्रयोग किया गया है। ततपश्चात आकड़ो के एकत्रीकरण के पश्चात् उनका सारणीकरण करते हुए प्रदत्तों की उपर्युक्त सांखियकी विधियों से गर्न की गई।

तालिका संख्या 4.1

वित्तपोषित एवं स्व–वित्तपोशित बी. एड. महाविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण में सार्थक अन्तर होगा।					
		आवृत्ति	प्रतिशत	वैध प्रतिशत	संचित प्रतिशत
	दृढ़ता से असहमत	9	9.0	9.0	9.0
	असहमत	11	11.0	11.0	20.0
	तटस्थ	13	13.0	13.0	33.0
	सहमत	50	50.0	50.0	83.0
	दृढ़तापूर्वक सहमत	17	17.0	17.0	100.0
	कुल	100	100.0	100.0	

ग्राफ संख्या 4.1

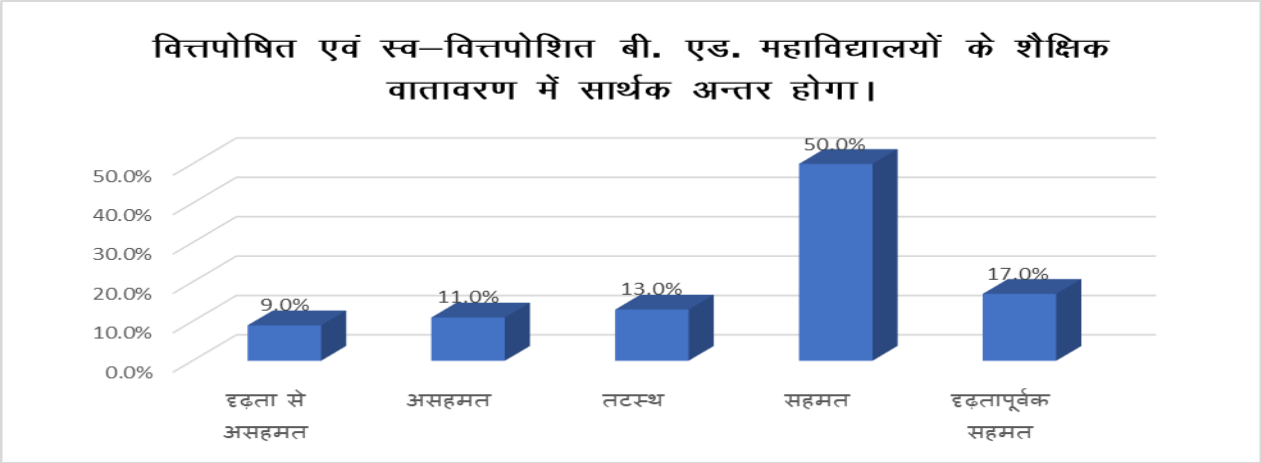

इस प्रश्न पर दिए गए उत्तरों के आधार पर यह देखा जा सकता है कि अधिकांश उत्तरदाता (50%) ''सहमत'' हैं, जबकि 17% ने ''दृढ़तापूर्वक सहमत'' होकर इस बात को और मजबूत किया। केवल 9% उत्तरदाता ''दृढ़ता से असहमत'' हैं और 11% ''असहमत'' हैं। 13% उत्तरदाता ''तटस्थ'' रहे, जो यह दर्शाता है कि एक बड़ी संख्या में छात्रों को अध्यापक द्वारा निर्देश दिए जाने पर असहजता महसूस होती है, लेकिन कुछ अन्य विद्यार्थी इस बात से सहमत हैं कि यह सामान्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.कपलि, एच0के0 (2003), अनुसंधान विधियों (व्यवहार परक विज्ञानों मे) आगराः हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन, पेज 515

2.कुलश्रेष्ठ एस0पी0 (2004), शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर, पेज–586

3.गुप्ता, एस0 पी0 एवं गुप्ता, अल्का (2004), आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन इलाहाबादः, शारदा पुस्तक भवन पेज–580।

4.त्यागी, जी0एस0 एवं पाठक, पी0डी0, (1994), शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, आगरा, विनोद पुस्तक भण्डार, पेज 753।

5.लाल, रमन बिहारी, (2001) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठः रस्तोगी पब्लिकेशन्स, पेज 527

6.वेस्ट, जॉन डब्लयू एवं जेम्स वी0 काहन, (2003) रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्लीः, प्रिंटस हाल ऑफ इण्डिया, पेज 180

7शर्मा, आर0ए0 (2003), अध्यापक शिक्षा मेरठः, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग आउस, पेज 507

8.शर्मा, आर0ए0 (2003), शिक्षा अनुसंधान मेरठः, आर0एल0 बुक डिपों, पेज–468

8.सारस्व, मालती, (2001), शिक्षा मनाविज्ञान की रूपरे खा लखनऊः, आलोक प्रकाशन, पेज 530

9.सिंह अरूण कुमार (2002), मनेाविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधि मोती लाल, बनारसी दास पब्लिकेशन्स, पेज 526।

11.जॉन, डी0वी0 (1916)– लोकतंत्र और शिक्षा

12.मार्गरेट डोनाल्डसन (1978)– चिल्ड्रेन माइंडस

13.जंगीरा एन0 के0, ''प्रभावशाली शिक्षणः बाल केंद्रित अवधारणा'' नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्लीः 1995 पृ0सं0 7

14.राष्टीय शिक्षा नीति (1986) राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली :,

15.होर्न बाई0,ए0,एस0:'आक्सफोर्ड, एडवान्स लर्नस डिक्सनरी ऑफ करंट इग्लिश आक्सफोर्ड युनिवसिटी पृ0सं0 488

****

Effect of Menstrual Cycle on Physical Fitness of Football Players

Guide
Dr. Ayaz A.Khan
Associate Professor, Mats School Of Physical Education, Raipur, Chhattisgarh, India

Co-guide
Dr. Alok Kumar Singh
Assistant Professor, Department of Physical Education, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak Madhya Pradesh, India

Corresponding Author
Prerna Mishra
Ph.D. Scholar, Mats School of Physical Education, Raipur, Chhattisgarh, India

Abstract
For the past ten years there has been an increase in female sport participation and accompanying female professional national leagues across multiple sports. Though there are known difference between female and male physiology, training protocols in female sport are predominantly supported and developed by research studies regarding male athletes. Recently, there has been more interest in the potential effects of fluctuations in the female sex hormones, progesterone and oestrogen, on sport performance across different phases of the menstrual cycle. The scores collected during the menstruation cycle and have been statistically evaluated using an Independent's' test after the subjects' menstruation time. For this analysis, the 0.05 level has been set in every case. Findings: The research findings showed that the selected physical health variables were substantially changed during the menstruation period to after the menstruation period.

Keywords: ***Menstrual cycle, Physiology, progesterone, oestrogen***

Introduction
Physical fitness is considered as one of the most valuable and important health markers in childhood (Ortega et al., 2008). Accordingly, in the past decades numerous countries have been promoting physical fitness improvement among young people in diverse ways. It is known that planning long-term fitness programs is the best way to improve these components (Donnelly et al., 2009). It has been an issue of debate since long time about the effect of menstrual cycle upon sports performance.

Menstrual cycle
Menstruation, also called menses, is a natural process that occurs once in a month in a sexually mature female (Muktananda, 2003). A menstrual cycle (MC) starts from first day of one period (the first day of bleeding) to the first day of the next period.
The menstrual cycle is made of 4 main phases:

- **Phase 1** – Menstruation: Bleeding.
- **Phase 2** – Follicular phase: This is the first half of the cycle in which an egg starts getting prepared to be released from the ovary.
- **Phase 3** – Ovulation: The release of the egg from the ovary, mid-cycle. Oestrogen peaks just before-hand, and then drops shortly afterward.

Phase 4 – Luteal Phase: The body prepares for a possible pregnancy or to break down and shed the uterine lining. Progesterone is produced, peaks, and then drops.

Menstrual cycle and sports performance
The effect of the menstrual cycle on physical finess performance is being increasingly recognised as a key consideration for women's sport and a critical field for further research. Studies examining objective performance (using anaerobic, aerobic or strength-related tests) do not report clear, consistent effects of the impact of menstrual cycle phase on physical performance. Lately, there has been a great interest in the influence of the menstrual cycle on women's athletic performance.

Methodology
Selection of Subjects
The subjects for the study will be selected from different colleges and sports academies of Chhattisgarh state. 10 football female players with normal and regular menstruation will be selected as subjects. The age of the subjects will be ranged from 17 to 25 years.

Selection of Variables
On the basis of available scientific literature from journals, periodicals, magazines and research articles, to assess the physical fitness and psychology of the subjects, the research scholar will select the following variables listed below

Physical fitness variables
Speed – 50 m dash
Cardio vascular endurance – beep test
Agility – T- test

Results of the study

Table 1

Table 1 showing descriptive Statistics and obtained during and after menstruation period on speed

*Significant at 0.05 level

'T' Value On During And After Menstruation Period Of Women On Aerobic Fitness

The findings reported in Table I showed that the average pre-test value of women's physical fitness during menstrual cycle (M: 60.05) increased to 62.00 after menstrual period. The 4.79't' value obtained was greater than the 0.76 required' value. It was also proven that there was a substantial increase in speed following women's menstrual cycle.

Test	Mean	SD	't'
During	60.05	0.87	4.69*
After	62.00		

Table 2

Table 2 showing descriptive statistics and obtained during and after menstruation period on endurance

*Significant at 0.05 level

Test	Mean	SD	't'
During	10.00	1.82	2.69*
After	12.00		

The findings reported in Table 2 showed that the average pre-test value of women's physical fitness during menstrual cycle (M: 10.00) increased to 12.00 after menstrual period. The 2.69't' value obtained was greater than the 1.80 required value. Hence, it was proved that there was a significant improvement in endurance after the menstruation period of the women.

Table 3

Table 3 showing descriptive statistics and obtained during and after menstruation period on endurance

Test	Mean	SD	't'
During	20.05	0.47	2.49*
After	22.00		

*Significant at 0.05 level

The results presented in Table III showed that the pre-test mean value of flexibility of women during the menstruation period (M: 20.05) was improved to 22.00 after the menstruation period. The obtained' value of 2.49 was greater than the obtained t value. This means there was an improvement in agility after the menstruation period. Greater than the required't' value of 1.76. Hence, it was proved that there was a significant improvement in flexibility after the menstruation period of women

Conclusion

The research study was conducted to establish women's cardio-respiratory capacity, speed and agility before and after the time of menstruation. Survey findings have shown that women athletes have increased their physical health, cardiovascular from the time to the menstrual period.

Bibliography

Julian R., Skorski S., Hecksteden A., Pfeifer C., Bradley P.S., Schulze E., Meyer T. Menstrual cycle phase and elite female soccer match-play: Influence on various physical performance outputs. *Sci. Med. Footb.* 2020; 10:1–8

Lebrun C.M. Effect of the Different Phases of the Menstrual Cycle and Oral Contraceptives on Athletic Performance. *Sports Med.* 1993; 16:400–430.

Eston, R.G., The regular menstrual cycle and athletic performance. Sports Medicine, 1984. 1: p. 431-445.

Volk, E., Planet Estrogen Part 3: The Menstrual Cycle and Athletic Performance. Mesomorphosis, 2000. 3: p. 2.

Daly, J. and W. Ey, Hormones and Female Athletic Performance. 1996, Adelaide: Women's Sports Foundation WA Inc.

Elliott-Sale, K.; Ross, E.; Burden, R.; Hicks, K. The BASES Expert Statement on Conducting and Implementing Female Athlete-Based Research. Sport & Exercise Scientist 2020, 6-7.

Janse De Jonge, X.; Thompson, B.; Han, A. Methodological Recommendations for Menstrual Cycle Research in Sports and Exercise. Medicine and science in sports and exercise 2019, 51, 2610-2617,

*****

The Impact of Reflective Practice on Teacher Professional Growth

Km Indu
Research Scholar,
Amity Institute of Education,
Amity University Noida-201313
Contact No: 9999853453
Email: indusingh1308@gmail.com

Dr. Neetu M Shukla
Associate Professor, Amity Institute of Education, Amity University Noida

Dr. Nandita Deb
Principal, SCERT, Delhi

Abstract

This qualitative study investigates the impact of reflective practice on teachers' professional development across a variety of educational settings. As teaching becomes more dynamic and learner-centered, continuous professional development is essential. Reflective practice, founded on the ideas of Dewey and Schön, has emerged as a valuable tool for instructors to assess, modify and improve their instructional practices and professional identity.

This study uses data from semi-structured interviews, reflective journals, and focus group discussions with in-service teachers to investigate how reflective practices affect pedagogical development, classroom management, and teacher self-efficacy. Thematic analysis found that reflective practice increases teacher knowledge of instructional approaches, encourages adaptive decision-making, and boosts teacher confidence. However, various impediments to persistent reflective participation were identified, including insufficient institutional support, time constraints, and a high workload.

The study emphasizes the value of mentoring, peer collaboration, and professional learning networks in fostering meaningful reflection. It also underlines the necessity for educational institutions to provide structured, continuing reflecting opportunities into profess Sional development.

The findings add to the increasing body of research on teacher learning and provide actionable recommendations for educators, school leaders, and legislators. The study finds that reflective practice, when fostered in a supportive environment, acts as a catalyst for continuous growth and professional transformation in the classroom.

Key Words: Reflective Practice, Teacher Development, Professional Growth, Classroom Reflection

Introduction

Teaching is a complex, evolving, and highly demanding profession that requires educators to adapt to changing pedagogical trends, student needs, and policy expectations. In the contemporary educational landscape, the role of teachers extends beyond content delivery. It encompasses the capacity for critical thinking, self-evaluation, and continuous learning. As such, teacher professional development has gained renewed attention globally, with reflective practice emerging as a pivotal component of effective teaching and lifelong learning.

Reflective practice refers to the process by which teachers engage in systematic thinking about their teaching experiences to evaluate and enhance their instructional strategies, decision-making, and professional identity. Donald Schön (1983) popularized the notion of the "reflective practitioner," emphasizing the significance of reflection-in-action (thinking during teaching) and reflection-on-action (thinking after teaching) as central to professional growth. Through reflection, educators not only recognize the strong points and flaws in their practice but also cultivate a deeper understanding of the teaching-learning process.

The significance of reflective practice in education lies in its potential to foster metacognition, critical inquiry, and transformative learning. Teachers who regularly reflect on their experiences are more likely to make informed pedagogical decisions, adapt their instruction to diverse learners, and cultivate an intellect of agency in their professional roles (Larrivee, 2000). Moreover, reflective practice encourages educators to question assumptions, align practices with values. It thus becomes a cornerstone of professional development that is not externally imposed but internally motivated and sustained.

Teacher professional growth encompasses the expansion of knowledge, skills, attitudes, and values that contribute to improved teaching effectiveness and student outcomes. It is a continuous, multifaceted process influenced by formal training, mentoring, peer collaboration, and individual reflection (Day & Sachs, 2004). In this context, reflective practice plays a dual role as both a method of self-improvement and a means of contributing to a larger culture of professional learning. The link between reflective practice and professional growth is particularly relevant in the face of educational reforms that demand accountability, innovation, and responsiveness from educators.

This study takes a qualitative approach to investigating the impact of reflective practice on teacher professional development. A qualitative methodology is ideal for

this study because it allows for a thorough understanding of teachers' experiences, perceptions, and interpretations in their specific situations (Merriam & Tisdell, 2016). Rather than measuring reflection through standardized instruments, this approach allows for the rich, nuanced exploration of how teachers engage with reflective processes, what meanings they derive from them, and how these reflections translate into changes in practice.

The purpose of this study is to examine how reflective practices contribute to the professional development of teachers, using narratives, interviews, and written reflections as primary data sources. The scope includes identifying key themes that emerge from teachers' reflective experiences, understanding the conditions that support or hinder reflective practice, and uncovering the ways in which reflection influences pedagogical decisions and professional identity. The study focuses on educators in diverse educational settings and emphasizes both individual and collaborative forms of reflection.

Purpose and Scope of the Study

This research paper titled The Impact of Reflective Practice on Teacher Professional Growth aims to investigate how reflective practice influences teacher professional growth by examining teachers' experiences, perceptions, and strategies. It focuses on identifying key themes, enablers, and barriers to reflective practice across various educational contexts using a qualitative research approach.

Research Questions:

1. How do teachers observe the role of reflective practice in their professional growth?
2. What forms and methods of reflection do teachers commonly use in their practice?
3. What variables help or hinder instructors' use of reflective practice?
4. In what ways does reflective practice influence teaching effectiveness and pedagogical decisions?

Research Objectives:

1. To study teachers' perceptions of reflective practice in relation to their professional development.
2. To identify the common strategies and models of reflection used by teachers.
3. To explore the challenges and facilitators associated with engaging in reflective practice.
4. To analyze how reflective practice contributes to improved instructional approaches and teacher identity.

Literature Review

Reflective practice as a professional ability in teaching has philosophical roots in the work of early educational theorists such as John Dewey, who emphasized the value of deliberate action and experience learning. Dewey (1933) proposed that reflection is a process of actively, persistently, and carefully considering beliefs or actions in light of their underlying grounds and effects. Dewey believed that reflection was essential for the formation of intelligent educators who could learn from their experiences and improve their practice in real-time educational situations.

Building on Dewey's core ideas, Donald Schön (1983) proposed the notions of reflection-in-action and reflection-on-action to characterize how professionals think during and after the act, respectively. Reflection-in-action refers to making instantaneous decisions while teaching, whereas reflection-on-action is studying an event retrospectively to inform future improvements. Schön's work marked a turning point in understanding teaching as an evolving process where practitioners continuously reshape their knowledge through experience and self-inquiry.

Experiential Learning Theory (ELT) by David Kolb (1984) is another useful framework for understanding reflective practice. Kolb proposed a cycle model with four stages: concrete experience, reflective observation, abstract conception, and active exploration. Teachers, through this cycle, not only act but critically reflect and apply learned insights to their professional context, facilitating growth over time. These theoretical foundations position reflective practice as both a cognitive and experiential process, deeply embedded in professional development.

Several structured models have been proposed to guide reflective practice, providing teachers with systematic methods to analyze their teaching. Gibbs' Reflective Cycle (1988) is a commonly used paradigm with six stages: description, feelings, evaluation, analysis, conclusion, and action plan. This model is particularly beneficial for novice teachers as it offers a clear, linear process for developing reflective skills and deriving practical lessons from experience.

Another prominent model is **Rolfe et al.'s (2001) Framework for Reflective Practice**, which is based on three fundamental questions: "What?", "So what?", and "Now what?" This model encourages deeper critical thinking and personal insight, prompting teachers to not only recount their experiences but to interpret their meaning and strategize improvements. Compared to Gibbs' model, Rolfe's framework is more open-ended, allowing flexibility and depth in reflection, especially for experienced practitioners.

Both methods are frequently utilized in teacher education and in-service training to encourage critical reflection and continuous development. While the models differ in structure, they share a common purpose to encourage educators to be conscious of their actions and the outcomes, thereby cultivating professional awareness and adaptability.

A growing body of empirical research has demonstrat-

ed the positive outcomes of reflective practice in teacher development. According to Farrell (2015), reflective teaching enables educators to evaluate their classroom practices, understand student needs better, and adapt strategies for improved learning outcomes. His longitudinal research with language teachers highlighted that sustained reflection enhanced teacher autonomy and pedagogical flexibility.

Larrivee (2000) contends that critically reflective teachers not only examine their instructional techniques but also challenge their assumptions, leading to transformative learning. Reflection, when embedded in daily practice, helps educators recognize gaps between intended and actual outcomes, thereby creating opportunities for intentional change and growth.

Similarly, a study by Lee (2005) found that reflective journaling helped pre-service teachers develop analytical thinking, increased self-awareness, and improved classroom management. The study emphasized that reflection promoted a sense of professional identity and confidence in teaching decisions. These outcomes underscore that reflection is not just a retrospective activity but a transformative one, influencing how teachers perceive themselves and their work.

Other collaborative reflective methods, such as peer observations, mentorship, and professional learning groups, have been shown to promote a culture of shared learning and professional discussion (Avalos, 2011).

Reflective Practices and Professional Growth

Professional growth refers to the ongoing process of obtaining and refining the information, expertise, and attitudes required to become more effective educators. Reflective practice serves as a critical mechanism for this growth by allowing teachers to critically examine and improve their instructional methods, decision-making processes, and relationships with students.

Timperley (2011) emphasized that reflective inquiry is at the heart of effective professional development. When teachers reflect on student learning and link it to their instructional choices, they are better positioned to make targeted changes that lead to improved outcomes. This cyclical process of observation, analysis, and adaptation supports deeper learning and fosters a mindset of lifelong professional growth.

Furthermore, reflection contributes to teacher resilience and self-efficacy. As teachers reflect on and overcome challenges, they build self-assurance in their abilities and develop a stronger sense of purpose. This, in turn, reduces burnout and encourages sustained engagement with teaching as a vocation (Valli, 1997).

Rreflective practice and professional growth lies in the ability of reflection to transform routine actions into informed, intentional teaching. It empowers teachers to become agents of their own development, fosters adaptability in complex educational environments, and aligns personal growth with institutional goals.

Methodology

Research Design

This study used a qualitative research methodology to investigate the effect of reflective practice on teacher professional development. A qualitative approach was judged acceptable because it allows for a thorough understanding of participants' lived experiences, attitudes, and interpretations within their individual educational contexts (Merriam & Tisdell, 2016).

Participants and Sampling

The sample comprised 15 in-service teachers from a variety of educational settings, including primary and secondary schools, both public and private. Participants were selected through purposive sampling to ensure a diverse range of experiences and backgrounds. Teaching experience among the participants ranged from **3 to 20 years**, offering a spectrum of perspectives on reflective practices. All participants were currently engaged in formal or informal reflective activities as part of their professional development.

Data Collection Methods

Data were collected through semi-structured interviews**,** reflective journals, and focus group discussions. Interviews allowed participants to offer their personal perspectives and experiences in an open-ended approach while reflective journals provided authentic documentation of ongoing reflective practices. Focus groups facilitated collaborative reflection and brought out shared themes among participants.

Data Analysis Techniques

The acquired data was evaluated thematically. Using Braun and Clarke's (2006) standards, transcripts and journal entries were categorized inductively to find recurring patterns and themes.

Ethical Considerations

Participants were informed about the study's purpose, and informed permission was acquired. Anonymity and secrecy were maintained throughout, and participants could withdraw at any time without consequence.

Findings and Analysis

Teachers' Perceptions and Experiences of Reflective Practice

Qualitative data was acquired through interviews reflective journals, and focus groups revealed several key themes related to how teachers perceive and experience reflective practice in their professional journeys. Three dominant themes emerged: **increased professional awareness**, **challenges in sustaining reflec-**

tive habits, and the **role of institutional and peer support systems.**

- **Awareness and Growth through Reflection**

Many teachers described reflective practice as a transformative process that enhanced their understanding of their teaching methods, student responses, and classroom dynamics. For some, it was a journey of becoming more aware of both their strengths and limitations. One participant reflected: *"I never really understood how much I relied on routine until I started writing about my classes. Reflection made me realize the small moments where I could've done things differently."*

Teachers frequently noted that reflection encouraged deeper thinking about pedagogy, shifting their focus from purely content delivery to student-centered approaches. This aligns with the findings of Farrell (2015), who emphasized that reflective teaching allows educators to align instructional strategies with student needs and contextual realities.

Challenges in Practicing Reflection

- Despite recognizing the benefits, participants also discussed several barriers to sustained reflective practice. Time constraints were a recurring concern, particularly among teachers with heavy workloads. One teacher explained: *"Between lesson planning, grading, and meetings, finding time to write or even think deeply about my teaching is difficult."*
- Some participants also expressed uncertainty about how to reflect effectively, citing a lack of training or guidance. This echoes Larrivee's (2000) assertion that reflection must be intentionally taught and supported if it is to become a meaningful habit rather than a mechanical task.
- Additionally, emotional discomfort emerged as a challenge. A few teachers mentioned that deep reflection sometimes led to self-criticism and doubt, especially when outcomes did not meet expectations. These experiences underscore the need for safe, supportive environments where vulnerability and growth can coexist.
- **Importance of Support Systems**
- Teachers highlighted the value of peer collaboration and institutional support in nurturing reflective habits. Participation in professional learning communities, mentoring programs, and peer observations helped normalize reflection and made it more purposeful. As one teacher noted: *"Talking to colleagues about what worked and what didn't helped me see things I had missed on my own. Reflection became a shared learning experience."*
- Such findings reinforce Avalos's (2011) argument that teacher learning is most effective when embedded in collaborative and context-responsive frameworks. Teachers also appreciated administrative efforts to integrate reflection into staff meetings and training sessions, suggesting that systemic support reinforces the legitimacy and sustainability of reflective practice**.**

The Role of Reflective Practice in Professional Learning

Reflective practice is important in developing continual professional learning because it encourages educators to critically assess their teaching practices and adapt in response to experience. This study's findings show that reflective practice has a considerable impact on three important areas of teacher development: the enhancement of pedagogical skills, improvements in classroom management and planning, and the strengthening of teacher identity and confidence.

- **Development of Pedagogical Skills**

One of the most evident impacts of reflective practice reported by participants was the deepening of pedagogical knowledge and adaptability. Teachers engaged in regular reflection described becoming more responsive to diverse student needs and more intentional in their instructional design. By analyzing classroom interactions and outcomes, they learned to adapt teaching strategies to suit varying learning styles. A participant noted, *"Reflection helped me identify which strategies worked for different types of learners—it made me more flexible and creative."*

This finding aligns with research by Zeichner and Liston (2014), who argue that reflective educators move beyond technical proficiency to pedagogical reasoning, enabling them to make informed decisions that enhance learning outcomes. Reflective practice thus empowers teachers to become more than implementers of curriculum; it transforms them into thoughtful curriculum designers.

- **Shifts in Classroom Management, Lesson Planning, and Student Engagement**

Reflection was also seen to influence classroom organization and student engagement. Several teachers reported changes in how they managed classroom behavior and structured lessons. By reflecting on daily experiences, they could identify patterns of disruption, sources of disengagement, or moments of high energy and capitalize on those insights to generate a more constructive and creative learning environment.

One teacher shared, *"After reviewing my journal, I realized certain topics sparked more interest. I began planning more around student curiosity rather than rigid textbooks."* Such experiences

highlight how reflection enhances teachers' capacity to evaluate their practice from the learner's perspective, which is essential for inclusive and student-centered pedagogy.

In terms of lesson planning, reflection encouraged participants to consider the clarity, pacing, and relevance of their instructional materials. This often led to more purposeful planning that incorporated formative feedback, student voice, and differentiated instruction. This supports the work of Calderhead and Gates (1993), who emphasized the value of reflective thinking in adapting lessons for diverse learning contexts.

- **Influence on Teacher Identity and Confidence**

Beyond skills and techniques, reflective practice also impacted how teachers viewed themselves professionally. Participants noted a growing sense of ownership over their learning and teaching processes. By engaging in regular reflection, many experienced a shift from feeling reactive to feeling proactive and empowered in their roles.

As one teacher put it, *"I used to feel unsure after a challenging class. Now, even if something goes wrong, I reflect and use it as a stepping stone instead of a setback."* This suggests that reflective practice contributes to **teacher resilience**, self-efficacy, and a more cohesive professional identity. According to Beauchamp and Thomas (2009), teacher identity is formed and reformed through reflection on experience, relationships, and context.

Thus reflective practice acts as a continuous dialogue between action and meaning, shaping how teachers see their roles, responsibilities, and growth trajectories.

Barriers and Enablers of Reflective Practice

While reflective practice is widely recognized as necessary for professional development, its adoption in educational contexts is influenced by both barriers and enablers. The findings of this study show that the effectiveness and sustainability of reflective practice are highly influenced by factors such as institutional support, workload and time management, and the presence of collaborative structures.

- **Institutional Support and Cultural Context**

Teachers emphasized that institutional culture plays a critical role in either fostering or hindering reflective practices. In schools where leadership actively promoted reflection—through workshops, reflective journals, or designated planning time—teachers felt more motivated and supported. Conversely, in environments where reflection was undervalued or absent from formal professional development, teachers were less likely to engage meaningfully in such practices (Larrivee, 2000).

- **Time Constraints and Workload**

A key barrier described by participants was the shortage of time due to heavy workloads. Reflective practice, especially when done consistently and thoughtfully, requires time for planning, analysis, and documentation—resources often scarce in teachers' daily routines. As one teacher remarked, *"I want to reflect, but by the end of the day, I'm mentally drained."* This supports the findings of Schön (1983), who acknowledged the tension between action and reflection within the fast-paced teaching environment.

- **Role of Mentoring and Collaboration**

On the enabling side, peer collaboration, mentoring, and professional learning communities (PLCs) were seen as significant facilitators. Teachers found it easier to sustain reflective habits when engaged in dialogue with peers, receiving feedback, and learning through shared experiences. These communal spaces not only normalized reflection but also enhanced its depth and utility (Avalos, 2011).

Discussion

The results of this investigation confirm the assumption that reflective practice is a transformative element in teacher professional development, aligning with the foundational theories of Schön (1983), Dewey (1933), and more recent empirical research (Farrell, 2015; Zeichner & Liston, 2014). Participants' narratives confirmed that reflection leads to increased pedagogical awareness, improved instructional strategies, and stronger professional identities. These outcomes are consistent with Larrivee's (2000) assertion that reflection supports both personal and professional growth, enabling teachers to respond more effectively to diverse classroom situations.

This study makes an important addition by providing contextual insights into how teachers interact with reflection in real-world contexts. While much of the research focuses on the theoretical benefits of contemplation, this study examines both its practical difficulties and enablers. These data imply that reflection is a practice influenced by systemic and relational variables, rather than just an individual undertaking.

The study contributes to the existing body of knowledge by offering qualitative evidence from practicing educators across diverse school settings, provid-

ing a nuanced understanding of how reflective habits form, persist, or fade.

In terms of results, the findings emphasize the importance of including structured reflective practices within teacher education programs and school policies as part of professional development. Training in reflection should be scaffolded, collaborative, and ongoing rather than ad hoc or compliance-driven. Furthermore, educational leaders should create time, space, and cultural norms that legitimize and sustain reflection as an integral part of professional learning.

Conclusion

This paper points out the transformative role of reflective practice in enhancing teacher professional growth. Key findings indicate that reflection fosters deeper pedagogical insight, improves classroom management and lesson planning, and strengthens teacher identity and confidence. However, the effectiveness of reflective practice is highly influenced by contextual factors, including institutional culture, time availability, and the presence of supportive professional networks.

The research emphasizes the need of institutional support and structured opportunities for instructors to engage in meaningful reflection. Professional learning communities, mentoring, and leadership encouragement were identified as critical enablers of sustained reflective engagement. Without these, reflection risks becoming superficial or neglected altogether.

Incorporating reflective practice into pre-service and in-service teacher education programs is essential. Educators should be trained not only in the techniques of reflection but also in its purpose and long-term benefits for both teaching and learning outcomes.

For future research, longitudinal studies could explore how sustained reflective practice impacts student achievement and teacher retention. Practical recommendations include scheduling dedicated time for reflection, embedding it into performance evaluations, and promoting a school culture where reflection is seen as a valued tool for continuous improvement.

Reflective practice, when supported and sustained, is a powerful driver of professional learning and educational excellence.

References

- Avalos, B. (2011). Teacher professional development in Teaching and Teacher Education over ten years. *Teaching and Teacher Education*, 27(1), 10–20. https://doi.org/10.1016/j.tate.2010.08.007
- Beauchamp, C., & Thomas, L. (2009). Understanding teacher identity: An overview of issues in the literature and implications for teacher education. *Cambridge Journal of Education*, 39(2), 175–189. https://doi.org/10.1080/03057640902902252
- Calderhead, J., & Gates, P. (Eds.). (1993). *Conceptualizing reflection in teacher development*. Falmer Press.
- Day, C., & Sachs, J. (2004). *International handbook on the continuing professional development of teachers*. Open University Press.
- Dewey, J. (1933). *How we think: A restatement of the relation of reflective thinking to the educative process*. D.C. Heath and Company.
- Farrell, T. S. C. (2015). *Reflective practice in ESL teacher development groups: From practices to principles*. Palgrave Macmillan.
- Gibbs, G. (1988). *Learning by doing: A guide to teaching and learning methods*. Oxford Polytechnic.
- Kolb, D. A. (1984). *Experiential learning: Experience as the source of learning and development*. Prentice-Hall.
- Larrivee, B. (2000). Transforming teaching practice: Becoming the critically reflective teacher. *Reflective Practice*, 1(3), 293–307. https://doi.org/10.1080/713693162
- Lee, H. J. (2005). Understanding and assessing preservice teachers' reflective thinking. *Teaching and Teacher Education*, 21(6), 699–715. https://doi.org/10.1016/j.tate.2005.05.007
- Merriam, S. B., & Tisdell, E. J. (2016). *Qualitative research: A guide to design and implementation* (4th ed.). Jossey-Bass.
- Rolfe, G., Freshwater, D., & Jasper, M. (2001). *Critical reflection for nursing and the helping professions: A user's guide*. Palgrave Macmillan.
- Schön, D. A. (1983). *The reflective practitioner: How professionals think in action*. Basic Books.
- Timperley, H. (2011). *Realizing the power of professional learning*. Open University Press.
- Valli, L. (1997). Listening to other voices: A description of teacher reflection in the United States. *Peabody Journal of Education*, 72(1), 67–88. https://doi.org/10.1207/s15327930pje7201_4
- Zeichner, K. M., & Liston, D. P. (2014). *Reflective teaching: An introduction* (2nd ed.). Routledge.

*****

नागार्जुन के उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ

-डॉ.सपना भूषण
एसोसिएट प्रोफेसर ,हिंदी विभाग
वसंत कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी
ईमेल-sapnabhushanvkm@gmail.com

प्रेमचंद की मृत्यु के पश्चात् हिंदी साहित्य के औपन्यासिक तत्वों में जैसे- विषय- वस्तु, संरचना, चारित्रिक प्रस्तुतीकरण, भाषा-शैली आदि में मूल-चूल परिवर्तन हुए।विषय-वस्तु और संरचना की दृष्टि से तो प्रेमचंदोत्तर उपन्यास हमें कई दौर से गुजरता हुआ दिखाई देता है जिस डॉक्टर नगेंद्र ने स्थूल रूप से तीन दशकों में विभाजित किया है-पहला दशक मुख्यतः फ्राइड और मार्क्स की विचारधारा से, दूसरा प्रयोगात्मक विशेषताओं से और तीसरा आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित है। प्रेमचंद युग में ही जैनेंद्र फ्रायड के विचारधारा को प्रस्तुत कर चुके थे जिसे आगे चलकर अज्ञेय,इलाचंद्र जोशी आदि ने आगे बढ़ाया।

अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' (१९४१) आधुनिकता का बोध कराता है जिसका मूल उद्देश्य मानवीय परिस्थितियों के बीच व्यक्ति स्वातंत्र्य की खोज करना है। इनका दूसरा उपन्यास 'नदी की द्वीप' सामान्यतः शेखर संवेदना का विकास माना जा सकता है।

"जैनेंद्र, अज्ञेय पर फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रभाव देखने को मिलता है। तो इलाचंद्र जोशी पर मनोविश्लेषण का। 'घृणामयी' इनका पहला उपन्यास है किंतु 'सन्यासी' के माध्यम से ही उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई। इस उपन्यास में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति देखी जाती है। इसके अतिरिक्त उनके 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासिता'(१९४६) उपन्यासों में भी ऐसे पात्रों को लिया गया है जो किसी न किसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि के शिकार हैं।"[१]

इन उपन्यासकारों के पश्चात् प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए एक विशिष्ट विचारधारा और सृजनात्मक शक्ति को लेकर यशपाल एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रेमचंदोत्तर युग में अवतरित हुए, अमिता और दिव्या नामक ऐतिहासिक उपन्यासों को छोड़कर उनके उपन्यास शेष उपन्यास समाजवादी यथार्थवाद को प्रस्तुत करते हैं,जैसे दादा कामरेड(१९४१), देशद्रोही(१९४३), पार्टी कामरेड(१९४६) आदि।

"यशपाल की परंपरा को आगे बढ़ाने में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का नाम उल्लेखनीय है- पहली धूप (१९४५), नई इमारत (१९४६), उल्का (१९४७) उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों को प्रेमचंद की परंपरा जो १९५० ई. तक चलती रही, के अंतर्गत रखा जा सकता है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में जहांँ समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया, वहांँ वर्मा जी भी परिवर्तनमान ऐतिहासिक धारा को मध्यवर्ग के माध्यम से करते रहे हैं,आलोक्य अवधि में प्रकाशित उनके उपन्यासों में 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखरी दाव', 'भूले बिसरे चित्र',' सामर्थ्य और सीमा रेखा' और 'सबहिं नचावत राम गोसाई' मुख्य हैं।"[२]

वर्मा जी की भांति उपेंद्रनाथ अश्क को भी प्रेमचंद की परंपरा का उपन्यासकार कहा जा सकता है। पर समग्र अर्थ में वे इस परंपरा से जुड़ नहीं पाते। उनके उपन्यासों में "गिरती दिवारे" सर्वोत्तम रचना है।इधर के उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का विशेष स्थान है। उनके उपन्यास व्यक्ति और समाज के सापेक्ष संबंधों को चित्रित करते हैं। वृंदावन लाल वर्मा ने यूं तो सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं पर उनकी ख्याति विशेषतः विराटा की पद्मिनी, झांसी की रानी, कचनार, मृगनयनी,अहिल्याबाई, माधव जी सिंधिया, भुवन विक्रम आदि ऐतिहासिक को उपन्यासों के लिए है"[३]

१९५० के बाद का दशक आंचलिक उपन्यासों का माना जाता है किंतु यह उपन्यास नितांत व्यक्तिक और सामाजिक हैं। आंचलिक उपन्यासकारों के रूप में सर्वप्रथम फणीश्वर नाथ रेणु का नाम लिया जाता है क्योंकि 'मैला-आंचल' और 'परती परिकथा' में ग्रामांचल का जो विशद् स्वरूप हमें दिखाई देता है वह अन्य आंचलिक उपन्यासों में नहीं है। रेणु का मैलाआंचल १९५४ में प्रकाशित हुआ जबकि इसके पूर्व नागार्जुन का रतिनाथ की चाची १९४८ बलचनमा१ में १९५२ तथा नहीं पौध १९५३ में यह तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे।नागार्जुन के साथ-साथ रूद्र,रांगेय राघव व शिवपूजन सहाय आदि का उपन्यास भी १९४८ से १९५४ के बीच प्रकाश में आ चुका था। इन तीन उपन्यासकारों की अपेक्षा नागार्जुन

के उपन्यास की चर्चा अधिक हुई।

नागार्जुन ने कुछ तेरा उपन्यासों की रचना की। 11 हिंदी में और दो मैथिली में उपन्यासित कृति के रूप में मैथिली उपन्यास प्रो उनकी पहली रचना है जो 1946 में प्रकाशित हुआ जबकि हिंदी में पहला उपन्यास रतिनाथ की चाची 1948 में पाठकों के सामने आया हिंदू उपन्यासों के अतिरिक्त बलचनमा १९५२, बाबा बटेश्वर नाथ १९५४ दुःख मोचन १९५७, वरुण की बेटे १९५७,नहीं पौध १९५७, कुम्भीपाक १९६०, हीरक जयंती १९६१,उग्रतारा १९६३, इमरतिया १९६९, गरीबदास तथा जमुनिया का बाबा १९६८ में प्रकाशित हुआ। इन उपन्यासों के पश्चात १९७१ में इन्होंने अपने जीवन का अंतिम उपन्यास लिखा जो अपूर्ण ही रह गया। इसका नाम वह अंतिम अग्निगर्भ या अग्निपुष्प रखना चाहते थे।

नागार्जुन ने अपने इन उपन्यासों में मैथिल अंचल विशेष के ग्रामीण जीवन, रीति-व्यवहार, लोक-आदर्श,आस्था-विश्वास, समस्या संघर्ष, राजनीतिक,सांस्कृतिक अवधारणाओं आदि को अंचल विशेष की लोक भाषा व लोक संस्कृति में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके पत्रों की भाषा में हमें स्थानीय रंग सहज ही दिखाई पड़ता है। नागार्जुन प्रगतिशील युग के मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक रहे हैं। यह एक मध्यवर्गीय किसान के बेटे थे। इनका स्वयं का जीवन अत्यंत ही आर्थिक तंगी व सामाजिक संघर्षों के बीच व्यतीत हुआ उन्होंने रुढ़ व घुटनशील रीति-रिवाज, लोक-विश्वास व सड़े गले अचार-विचारों के बीच ही अपना सारा जीवन व्यतीत किया। इस प्रकार इन्होंने आम जनता का जीवन ही नहीं जिया अपितु उनके जीवन संघर्षों को काफी करीब से देखा और उनकी परवशता को महसूस भी किया।उनका संबंध समाज के उपेक्षित-तिरस्कृत, दलित-पीड़ित किसान व मजदूर वर्ग से रहा है इसलिए किसान का धरती के प्रति मोह जमींदारों की अन्यायपूर्ण व्यवहार, शोषण के विभिन्न हथकंडों,अन्यायी व्यवस्था के सशक्त स्वरूप और उसे त्रस्ट गरीब,मजलूम व बेबस वर्ग के बहुसंख्यक जीवन की हृदय विदारक कथा को उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से मूर्तवत् कर दिया है।

प्रत्येक कथाकार का साहित्य कल्पना और यथार्थ से परिपूरीत होता है। या कहां जाए तो दोनों ही एक दूसरे के पूरक होते हैं, चाहे कोई कवी हो या कथाकार वह अपनी रचना के लिए समाज से ही विषय का चयन करता है।समाज में जो कुछ भी वह देखता है ,सुनता है व महसूस करता है, उनको अपने लेखनी के माध्यम से अपने कृति में श्रद्धा के साथ उसी रुप में उकेरने का भरसक प्रयास करता है।अपनी रचना में भले ही वह पात्रों का चयन अपनी कल्पना के अनुसार करता है किंतु विषय-वस्तु एवं कथावस्तु वह यथार्थ जीवन से ही उद्धरित करता है। प्रेमचंद, प्रसाद, जैनेंद्र, रांगेय राघव, अज्ञेय, मोहन राकेश, रेणु तथा नागार्जुन ऐसी ही कथाकार हैं जिन्होंने यथार्थ को निरूपित करने के लिए कल्पना का सहारा तो लिया, लेकिन उसको यथार्थ जीवन की प्रस्तुति पर हावी नहीं होने दिया।

नागार्जुन के उपन्यास रतिनाथ की चाची में जब चाची(गौरी) विधवा होते हुए गर्भवती हो जाती है, तब शुभंकरपुर वासियो के आचार-विचार उसे जीने नहीं देते और समाज के ठेकेदार कहते हैं कि "सामाजिक बहिष्कार तो उमानाथ की माँ का हर हालत में करना ही पड़ेगा ।"[४] आगे वह (दमयंती) कहती है कि "उमानाथ की माँ व्यभिचारिणी है, पतिता है, भ्रष्टा है, कुलटा है....उससे हमें किसी प्रकार का संबंध नहीं रखना चाहिए, बोल-चाल बंद, बात-विचार बंद ,प्रत्येक व्यवहार बंद।"[५] उसकी इस स्थिति का जिम्मेदार उसका अपना देवर जयंत ही है लेकिन चाची अकेले ही अपमान का घूंट पीकर रह जाती है और जयनाथ का नाम सामने नहीं आने देती।जयनाथ ऐसा को कुकर्म करने के पश्चात् काशी भाग जाता है। चाची को उसके इस भगोड़ेपन से सारे पुरुष जाति से घृणा होने लगती है।

इसी प्रकार जमींदारी प्रथा का एक दुर्दंत उदाहरण नागार्जुन ने अपने उपन्यास बलचनमा में प्रस्तुत किया है जहां वह बालचंद के बचपन की स्मृतियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि बलचनमा अपने बचपन की एक दुःखद घटना को याद करता हुआ कहता है कि " अपने जीवन की सबसे पहली घटना जो मुझे याद है वह खूब साफ नहीं है, मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खम्भेली के सहारे कसकर बांध दिया गया था, पीठ और बाह सभी पर बांस की कैली के निशान उभर आए हैं। चोट से कहीं-कहीं खाल उधड़ गई है ,चेहरा काला पड़ गया है ,होंठ सूख रहे हैं, अलग कुछ दूर पर छोटी चौकी पर यमराज की भांति मजले मालिक बैठे हुए हैं.... मेरी दादी कांपते हाथों से मालिक के पर छाने हुए हैं, उसके मुंह से बेचैनी में बस यही एक बात निकल रही है कि दुहाई सरकार की... मर जाएगा ललुआ !... और माँ रास्ते पर बैठी हाय-हाय करके रो रही है और मैं भी रो रहा हूँ। मेरी छोटी बहन की तो डर के मारे हिचकी बंध गई है।"[६]

यह निम्न व उच्च वर्ग के बीच की खाई से उत्पन्न हुए द्वंद्व की कहानी है बालचंद मां जो निम्न वर्ग का खेती हर मजदूर है और गांव का जमींदार जो उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है बालचंद में जो छोटी

जाति का और अनपढ़ है लेकिन फिर भी उसे दुनिया की अच्छी समझ है वह स्वभाव से अत्यंत सरल वह भी रो व्यक्तित्व वाला है उसका संपूर्ण जीवन अभाव में ही व्यतीत हुआ वह बताता है कि बचपन में ही जमींदार के क्रूर शोषण से उसके पिता की मृत्यु हो गई। फिर उसे मजबूरी में अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए इस जमींदार के छोटे भाई के यहाँ भैंस के चरवाहे के रूप में १७ साल तक दास की भांति काम करना पड़ा।इसके बदले में उसे महीने के दो आने और जूठन खाने को मिलता था जो परिवार चलाने के लिए बहुत कम था।वह कहता है कि "ऊपर से मझले मलिक सौ कसाई का एक कसाई था। बाबू के मरने पर ₹१२ उन्होंने माँ को कर्ज दिए थे,बदले में सादे कागज पर अंगूठे का निशान ले लिया था। सूद देते-देते हम थक गए,मूल ज्यों का त्यों खड़ा था।"७ छोटी मालकिन के यहाँ ऐसा कोई नहीं था जो बलचनमा से बिना गालियों के बात करता हो,मालकिन हर वक्त उसे किसी ने किसी काम में लगाई रहती हैं।

बाबा बटेश्वर नाथ उपन्यास में नागार्जुन तत्कालीन समाज की राजनीति व्यवस्था का यथार्थ चित्रण करते हुए एक जगह पर बटेश्वर नाथ के मुंह से कहलवाते हैं कि हिजरी सन् १२८० में आए हुए भीषण अकाल की चर्चा करते हुए कहते हैं कि "देश का समूचा पूर्वी हिस्सा भुखमरी की चपेट में आ गया था।हजारों परिवार बर्बाद हो गए और लाखों की जान चली गई।लाशों का बुरा हाल था। जब तक लोगों में ताकत थी और काठ जब तक सुलभ थे, तब तक मुर्दे जलाए जाते रहें, बाद में नन्हे बच्चों की लाश की तरह सयानो की भी लाशें मैदाने में गढ़ दी जाती थी।"[८]उस भयावह समय का सरकार ने खूब फायदा उठाया और रिलीफ के नाम पर रेल-पथ-निर्माण कार्य शुरू करवा कर, कम से कम मजदूरी में, अधिक से अधिक मजदूरों से बेगारी कराया। १९१८-१९ के मानवीय काल की भी चर्चा करते हुए बाबा,जयकिशन को बताते हैं कि किस तरह कुछ पूंजीपति जमींदार मुनाफ़ाखोर वर्ग ने एवं विदेशी कंपनियों ने स्वलाभ के लिए भारतीय उद्योग धंधों को ठप कर,भारत देश की वस्तुओं को सस्ते दामों में खरीद कर, विदेशों में भेज देते थे और विदेश में निर्मित माल की खपत के लिए भारत में बाजार तैयार करते।

इस प्रकार निम्न वर्ग की प्रत्येक समस्याओं को नागार्जुन में अपने उपन्यासों में अत्यंत सूक्ष्मता एवं मर्मदर्शी दृष्टिकोण से चित्रित करने का प्रयास किया है। जो कल्पना के सहयोग से यथार्थ रूप में आकर लेकर एक सरल,सहज व हृदय विदारक कथावस्तु के रूप में सामने आता है। "वर्ण व्यवस्था सामंतशाही का अभिशाप था।फिर हमारी सारी वर्ण व्यवस्था कर्मों पर नहीं जाति पर आधारित रही। आध्यात्मिक उन्नति का एकमात्र अधिकार ब्राह्मणों, पुरोहितों ने अपने अधिकार में ले लिया"[९] जब तक इस तरह की व्यवस्था समाप्त नहीं होगी, समाज में समानता नहीं आएगी.. तब तक इस तरह के उपन्यास लिखे जाते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

१- डॉ सुषमा धवन ,हिंदी उपन्यास, पृष्ठ संख्या-६७७

२-डॉ सुषमा धवन ,हिंदी उपन्यास, पृष्ठ संख्या-६७९

३-डॉ सुषमा धवन ,हिंदी उपन्यास, पृष्ठ संख्या-६८

४-शोभाकांत, संपादक, नागार्जुन रचनावली, रतिनाथ की चाची पृष्ठ सं-५५

५-शोभाकांत, संपादक, नागार्जुन रचनावली, रतिनाथ की चाची, पृष्ठ सं-५४

६- शोभाकांत, संपादक, नागार्जुन रचनावली, बलचनमा पृष्ठ सं -१२७

७- शोभाकांत, संपादक, नागार्जुन रचनावली, बलचनमा पृष्ठ सं.- १३२

८- शोभाकांत संपादक, नागार्जुन रचनावली, बाबा बटेसरनाथ,पृष्ठ सं.-३८१

९- आलोचना अंक-५,५६-५७,मार्च १८९८१, पृष्ठ संख्या -७७

*****

संस्कृत नाट्य साहित्य में रामचन्द्र सूरि का योगदान -एक अध्ययन

.जयश्री जोशी,
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,
श्री राधे हरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
काशीपुर, उधमसिंह नगर
Email – jayshrijoshi1976@gmail.com

.डॉ.राघव कुमार झा
मार्गदर्शक,
संस्कृत विभाग,
श्री राधे हरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
काशीपुर, उधमसिंह नगर

शोध सारांश

संस्कृत नाट्य साहित्य एक विशाल साहित्य है। जिसमें संस्कृत जैन साहित्य के कवियों ने भी अप. ना योगदान दिया है। जिसमें संस्कृत जैन संस्कृत जैन नाट्य साहित्य में प्रमुख नलविलास नाटक भी अपनी अहम भूमिका निभाता है। यह नलविलास नाटक रामचंद्र सूरी कृत नाटक है। संस्कृत की प्रमुख जैन कवि रामचंद्र श्री ने अनेक रचनाएं लिखी हैं। संस्कृत नाट्य साहित्य में जैन कवियों के योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। जैन कवियों में संस्कृत नाट्य साहित्य को सुसमृद्ध बनाने में अहम भूमिका निभाई , जिसमें जैन कवि रामचंद्र सूरि का भी योगदान रहा। जैन साहित्य संस्कृत प्रकृति और अप. भ्रंश भाषाओं में लिखा गया है। जैन कवियों ने हिंदुओं की लोक कथाओं को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। जैन कवियों साहित्य की तीन शाखाएं हैं – ध ार्मिक ग्रंथ,दर्शन और धर्मनिरपेक्ष लेखन। जैन साहित्य में मुख्य रूप से काव्य, दंत कथा, व्याकरण और नाटक है। जैन साहित्य में आदिकालीन ग्रंथ सबसे ज्यादा और सबसे प्रामाणिक रूप में मिलते हैं। जैन साहित्य में पुराण काव्य, चरित्र काव्य, कथा काव्य, रस काव्य जैसी कई ग्रंथ प्राप्त है। संस्कृत साहित्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथा कमनीय अंग है नाट्य। "काव्येषु नाटकम रम्यम" कहकर विद्वानों ने इसकी रमणीयता तथा महत्ता को स्वीकृती प्रदान की है। नाट्य साहित्य को समृद्ध करने में जैन आचार्य का भी बहुत बड़ा योगदान है। मध्य युग के उत्तर काल में जैन कवि दृश्य काव्य के क्षेत्र में आगे रहे हैं। जैन साहित्य कवियों में अनेक कवि जैसे हेमचंद्र जी, रामचंद्र सूरि, गुण चन्द्र, सोमप्रभू सोमू प्रभु सुर जी आदि प्रमुख जैन कवि हुए। इन्होंने हिंदुओं में प्रचलित लोक कथाओं को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया। जैन आचार्य ने भी अनेक काव्य लिखकर संस्कृत साहित्य की समृद्धि में अपना योगदान किया है। विक्रम की दूसरी शताब्दी से वर्तमान युग तक जैन कवियों द्वारा संस्कृ त काव्य लिखा जा रहे हैं। डॉक्टर नेमिचंद शास्त्री ने अप. नी एक पुस्तक में संस्कृत की जैन कवियों की योगदान का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग में विद्वान जगत में संस्कृत के जैन कवियों के योगदान का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग में विद्वान जगत में संस्कृत काव्य के पठन–पाठन की जो परंपरा प्रचलित है, उसमें संस्कृत के जैन काव्य का अध्ययन प्रायः न के बराबर है, क्योंकि यह पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आए हैं।

मुख्य शब्द – संस्कृत नाट्य साहित्य, जैन आचार्य, महाकाव्य, प्राकृत, अपभ्रंश

[1]प्रस्तावना –

संस्कृत साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा कमनीय अंग है। "काव्येषु नाटकम रम्यम्" कहकर विद्वानों ने इसकी रमणीयता तथा महत्ता को स्वीकृति प्रदान की है। काव्य के दो प्रमुख भेदों – श्रव्य और दृश्य में से एक नाटक या रूपक दृश्य काव्य विधा के अंतर्गत है। इसका विकास क्रम भारतीय परंपरा में ऋग्वेद काल से ढूंढा जा सकता है। ऋग्वेद के सरमा और पणि, यम और यमी, विश्वामित्र और नदी, पुरूनवा और उर्वशी के संवादों में नाट्य साहित्य के प्राचीनतम रूप उपलब्ध होते हैं। नाटक के प्रधान तत्व संवाद, संगीत नृत्य और अभिनय है। अधि ाकांश विद्वान इन चारों तत्वों को वेद में उपलब्ध होने से नाटक की उत्पत्ति वैदिक सूत्रों से मनाते हैं।

रामायण और महाभारत काल में आकर नाटक के कुछ स्पष्ट रूप उल्लिखित पाए जाते हैं। विराट पर्व में रंगशाला का निर्देश है। हरिवंश पुराण में रामायण की कथा पर एक नाटक के अभिनीत होने का उल्लेख है। रामायण में रंगमंच नट, नाटक का विभिन्न स्थलों पर संकेत है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में नटसूत्र और नाट्य शास्त्र का भी उल्लेख है। पतंजलि महाभाष्य में कंस वध और "बलिबन्धन" नामक दो नाटकों का स्पष्ट नाम है। इस तरह वैदिक युग से विभिन्न तत्वों को ग्रहण करती हुई नाट्यकला का पूर्ण परिपाक अनेक शताब्दियों में हो पाया। समय–समय पर अनेक नाटक भी रचे जाते हैं, जिनके अब नाम मात्र ही अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम नाट्यकार के रूप में महामना भास ही स्वीकृत हैं, किंतु भास की नाट्यकला का सौष्ठव एवं परिष्कार ही इस तथ्य का द्योतक है कि उनसे पूर्व भी नाटक रचे अवश्य गए थे जो कालक्रम में लुप्त हो गए।

अध्ययन का उद्देश्य – संस्कृत नाट्य साहित्य में जैन कवियों के योगदान से अवगत कराना, जिसमें प्रसिद्ध रामचंद्रसूरि के जैन साहित्य में योगदान से अवगत करान. T।

कवि परिचय – महाकवि रामचंद्रसूरि चालुक्य नरेशों जय सिंह सिद्धराज (1093–1143ई0) और कुमार पाल (1143–1172ई0) के शासनकाल में वर्तमान थे।

संस्कृत साहित्य के विकास में गुजरात का विशेष योगदान रहा है। गुजरात की चालुक्य वंशीय नरेशों की 11वीं से 14वीं शती तक के समय को संस्कृत साहित्य की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। यद्यपि अणहिलपट्टन के राजा शैवमतावलम्बी थे और स्वयं के लिए "उमा पतिलब्ध प्रसाद" उपाधि का प्रयोग करते थे।[2] तथापि उनके राज्य में पर्याप्त धार्मिक सहिष्णुता थी और उनकी राजसभा को ज्ञान देव, सोमेश्वर पुरोहित, दामोदर पंडित, महाकवि विल्हण आदि शैवाचार्यों के साथ–साथ शान्तसूरि, अजयदेवसूरि, हेमचंद सूरि, प्रभृति जैनाचार्यों ने भी अलंकृत किया।[3]

राजा कुमार पाल द्वारा जैनाचार्य हेमचंद सूरी का शिष्यत्व ग्रहण करना भी उनकी धार्मिक सहिष्णुता का प्रमाण है।

महाकवि रामचंद्रसूरि "काव्यानुशासनकार" आचार्य हेमचंद के पट्टशिष्य थे। जैनाचार्य प्रभातचंद्रसूरी प्रणीत प्रभावकचरित (1266ई0) से ज्ञात होता है कि आचार्य हेमचंद्र ने जयसिंह सिद्धराज के काल में ही इन्हें अपना पट्टशिष्य घोषित कर दिया था।[4] स्वयं रामचंद्रसूरि ने कौमुदीमित्रानन्द, नल विलास, सत्यहरिश्चंद्र, निर्भयभीमव्यायोग आदि कृतियों में आचार्य हेमचंद्र को अप. ना गुरु बताया है।

श्रीमद्‌आचार्य हेमचंद्रस्य शिष्येण ..... राम. चन्द्रेण[5]चालुक्य शासको जयसिंह सिद्धराज (1093–1143ई) और कुमारपाल (1143–1172ई0) के काल में वर्तमान थे, अतः इनका आविर्भाव काल 12वीं शताब्दी का पूर्वाद्व मान लेने में कोई औचित्य नहीं है।[6] आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी अपनी पुस्तक "संस्कृत साहित्य का इतिहास" में रामचंद्रसूरि के जन्म, समय एवं कृतियों पर प्रकाश डाला है।[7]

कवि रामचंद्र हेमचंद्राचार्य के शिष्यों में सर्वप्रथम थे। नलविलासनाटक के रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन में संबंध में अधिक ज्ञात नहीं है, फिर भी पंडित लालचंद गांधी ने नलविलास की भूमिका में लिखा है कि रामचंद्र वि0 सं0 1145 में उत्पन्न हुए थे। उन्हें सं0 1166 में "सूरिपद" मिला था। वे सं0 1228 में स्वर्गवासी हुए। प्रभ. ावचरित में हेमचंद्र का जीवन चरित्र बतलाते हुए कहा गया है कि रामचंद्र एक योग्य शिष्य थे, जो हेमचंद्र की परंपरा को चला सकते थे। इस प्रकार अनेक प्रमाणों में यह स्पष्ट होता है कि रामचंद्रसूरि हेमचंद्राचार्य के शिष्यों में श्रेष्ठ थे।

इनकी कृतियों पर दृष्टिनिक्षेप से यह प्रतीत होता है कि यह कवि एवं आचार्य दोनों ही थे। साहित्य, व्याकरण, न्याय, दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान थे।

गुजरात के संस्कृत जैन नाट्यकारों में रामचंद्रसूरि सर्वोच्च थे। इन्होंने नाट्य शास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया था । उनकी एतद् विषयक कृति नाट्यदर्पण एक मौलिक रचना है। इसमें नाटक के प्रकारों स्वरूप रसों का ऐसा वर्णन किया है जो भरत के नाट्य शास्त्र से भिन्न है। इसमें संस्कृति की कितने ही उपलब्ध और अनुपलब्ध नाटकों के भी उल्लेख है जिनमें कुछ तो स्वयं कवि की रचनाएं हैं। इस ग्रंथ में विशाखदत्त के लुप्त नाटक "देवी चंद्रगुप्तम" के अनेक उद्धरण दिए गए हैं। जो गुप्त वंश के इतिहास की लुप्त कड़ियां संकलित करने में बड़े महत्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं।

साहित्य कार्य – कवि एवं नाटककार रामचंद्रसूरि चार प्रकार की संस्कृत नाटक कृतियों के लेखक थे। जैसे नाटक, प्रकरण, नाटिका और व्यायोग। उनकी शैली में प्रतिभा और प्रवाह है। वे साधारण से साधारण कहानी को

सुंदरतम नाटकीय ढंग से परिवर्तित करने में निपुण थे। उन्होंने भावविभक्ति में पर्याप्त मौलिकता दिखलायी है। इसके अतिरिक्त वे प्रथम श्रेणी के समालोचक, कविता के हार्दिक प्रशंसक और तत्काल समस्या पूर्ति करने में दक्ष थे। इन्होंने अनेक अलंकारिक स्त्रोत भी रचे हैं। रामचंद्रसूरि जितने बड़े आचार्य थे उतने बड़े कवि भी थे।

कवि रामचंद्र की बहुज्ञता – महाकवि रामचंद्र न केवल साहित्य शास्त्र में अपितु व्याकरण और न्यायशास्त्र में भी पारंगत थे। अपने नाटक "रघुविलास" की प्रस्तावना में उन्होंने स्वयं के लिए "त्रयीविद्याचरणम्" उपाधि का प्रयोग किया है –

" विद्यात्रयीचणम् चुम्बित काव्यतन्द्रं कस्तं न वेद सुकृति किल रामचन्द्रम"।

यहां विद्यात्रयी से वेद का ग्रहण न होकर व्याकरण, न्याय और साहित्य विद्या का ग्रहण होता है, क्योंकि जैन आचार्य होने के कारण रामचंद्र का वेद से कोई संबंध नहीं था। "नाट्य दर्पण" की विकृति की अंत में भी वे लिखते हैं –

शब्दलक्ष्म प्रभालक्ष्म काव्यल्क्ष्मकृतश्रमः
वाग्विलासस्त्रिमार्गो नौ प्रवाह इवजाहुजः[8]

साहित्यिक कृतियां – नाट्य साहित्य को समृद्व करने में जैनाचार्यों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। मध्ययुग के उत्तर काल में जैनकवि दृश्य काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़े। जैनाचार्यों में सर्वप्रथम रामचंद्रसूरि का नाम लिया जा सकता है। ये हेमचंद्राचार्य के शिष्यों में प्रमुख थे।[9] इनका जन्म वि0सं0 1145 में हुआ था सं0 1166 में इन्हें सूरिपद प्राप्त हुआ। इनकी संस्कृत नाट्यकृतियाँ अधोलिखित हैं– **सत्य हरिश्चंद्र** – रामचंद्रसूरि ने सत्य हरिश्चंद्र[10] को अपना आदिरूपक स्वीकार किया है। इसकी कथावस्तु सत्यवादी हरिश्चंद्र से सम्बद्व है। इस नाटक का उपजीव्य महाभारत है किंतु अभिनय के अनुकूल आवश्यक परिवर्तन किए गए हैं। भागलपुर विश्वविद्यालय में इस पर शोध कार्य भी संपन्न हुआ।[11]

नल विलास – इस नाटक की कथावस्तु का भी उद्भव महाभारत के वनपर्व से हुआ है। जिसमें नाटककार ने यथा स्थान परिवर्तन किया है। नलदमयंती की कथा को सात अंकों में पल्लवित किया है। इस नाटक में दमयंती का चरित्र महाभारत की अपेक्षा अधिक उदात्त है। दमयंती स्वयंवर का दृश्य अतिशय प्रभावक है और हमें रघुवंश के षष्ठ सर्ग की याद दिलाता है।

मल्लिका मकरन्द – इसकी प्रस्तावना में इसे नाटक कहा गया है लेकिन यह प्रकरण क्योंकि इसकी कथा काल्पनिक है।[12] ऐसे तो प्रकरण में 10 अंक रखने का विधान है जबकि इसमें मात्र 6 अंक है स्वयं नाटककार ने अपनी नाट्य दर्पण में इसे प्रकरण ही कहा है। यह एक सामाजिक नाटक है जिसकी नायिका मल्लिका है और नायक मकरंद है। यह सुखांत नाटक है।

कौमुदीमित्रानन्द – यह एक सामाजिक नाटक है, जिसमें 10 अंक है। नाटककार ने इसे प्रकरण घोषित किया है। इसमें कौतुक नगर वासी धनी सेठ जिनसेन के पुत्र मित्रानंद और एक आश्रम के कुलपति की पुत्री कौमुदी की प्रेम कथा वर्णित है। यह कौमुदी नाटक के नाम से भी प्रसिद्ध है। डॉ0 कीथ ने इसमें मात्र अद्भुत रस की अवस्थिति मानी है। डॉ0 डे के अनुसार नाटकीय कृति के रूप में इसमें कोई अधिक तत्व नहीं है।[13]

रघुविलास – यह आठ अंकों का नाटक है जिसमें राम के वनवास और सीता मिलन की घटना जैन रामायण के अनुसार वर्णित है । इस नाटक का संक्षिप्त रूप "रघुविलासनाटकोद्वार" उपलब्ध होता है जिसमें गद्य भाग को हटाकर मात्रा पद्य रखे गए हैं।

निर्भयभीमव्योम – यह एक अंक का रूपक है।[14] जो भी व्यायोग के अंतर्गत है। इसमें महाभारत में वर्णित बकासुर के वध को कथावस्तु बनाया गया है। इसमें भीम एक ब्राह्मण युवक को राक्षस बक के चंगुल से छुड़ाता है और स्वयं अपने को बलिरूप में प्रस्तुत कर बकासुर का वध कर देता है। इसमें अरस्तु के सिद्धांत सं. कलन त्रय स्थान की एकता, समय की एकता और घटना की एकता का पूर्णरूपेण पालन हुआ है।[15] इसके अतिरिक्त रोहिणी, मृगाङ्क राघवाभ्युदय, यादवाभ्युदय और वनमाला भी रामचंद्र कृत और नाट्यकृतियां हैं जो संप्रति उपलब्ध नहीं है।

निष्कर्ष – अलंकारों की स्वतंत्रता विकास का एक इतिहास है। परिवर्ती युग में आचार्य यास्क महर्षि पाणिनि, भरत मुनि, महाभाष्यकार , पतंजलि ने भी अलंकार विषयक चर्चा की है। जिससे अलंकारों की प्राचीनता का अविच्छिन्न इतिहास को सुस्पष्ट हो जाता है। दूसरी शताब्दी के

अनन्तर ही अलंकार शास्त्र के स्वतंत्र चिंतन एवं विवेचना का प्रारंभ जिसमें क्रमशः मेधावी रूद्र, भामह, दण्डी, कमन, उद्भट, रूद्रत, मम्मट, विश्वनाथ आदि के महनीय ग्रंथ लिखे गये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. पाणिनी अष्टाधायी, 4/3/110– पराशर्य लालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः
2. नाट्य दर्पणः ए क्रिटिकल स्टडी, पृ0 230 में संक्षिप्त परिचय
3. ए0बी0कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ0 230 में संक्षिप्त परिचय
4. सुशील कुमार डे हिस्ट्री और संस्कृत लिटरेचर पृ0 476–476
5. जिन रत्नकोश पृ0314, यथोविजय जैन ग्रन्थमाला सं ख्या 19, वाराणसी, वी0 सं0 2437
6. जिनरत्नकोश, पृ0 378 जैन आत्मानन्द सभा भावनगर, वि0सं0 – 1997 में प्रकाशित
7. जिनरलकोश,पृ0350,मणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, पुष्प 3, बम्बई 1972
8. जैन आत्यानन्द सभा, भावनगर, 1918, सम्पादक – मुनि जिन विजय जी
9. यशो विजय जैन ग्रन्थमाला, सं0 08, काशी, वी0सं0–2432
10. जिनरत्नकोश, पृ0 331
11. महाकवि ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन, टण्डन डॉ0 किरण पृ0 सं03921
12. महाकवि ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन, टण्डन डॉ0 किरण पृ0 सं0 – 3121
13. छन्दोलंकार सौरभम् डॉ0 मिश्र, राजेन्द्र , वसुमति प्रकाशन इलाहाबाद
14. "नल विलास नाटकम्" अनुवादक डॉ0 धीरेन्द्र मिश्र, सम्पादक डॉ0 एस0सी0पाण्डेय
15. काव्य प्रकाशः, व्याख्याकारः: डॉ0 सत्यव्रत सिंहः नवम उल्लास

*****

Metaphor and Modern Identity: Cultural Resonances in Ionesco's *Rhinoceros*

- Dr. Sanjay Verma
Assistant Professor,
Department of English,
Kirori Mal College, University of Delhi
Email:sanjayvermaproff@gmail.com

-Devashree Chauhan
Research Scholar
Department of English
Faculty of ArtsUniversity of Delhi
Email: devashreechauhan98@gmail.com

Abstract

The present paper undertakes a literary analysis of Eugène Ionesco's *Rhinoceros* (1959), focusing on the evolving function and symbolism of the rhinoceros within the structure of the play. Initially emerging as an absurd and comic intrusion into everyday life, the rhinoceros gradually transforms into a powerful metaphor for the collapse of individual identity and the disintegration of coherent communication. By tracing this symbolic trajectory, the paper examines how Ionesco employs absurdist techniques—such as repetition, proliferation, and linguistic dislocation to explore the nature of transformation and the price of conformity. Rather than confining the play to its mid-20th-century context, this study foregrounds its continued relevance in an era shaped by viral trends, and algorithm-driven consensus. By focusing on the interplay between form, language, and spectacle, the essay highlights *Rhinoceros* as a profound meditation on the pressures of social alignment. In a time when public discourse is increasingly shaped by performative consensus, Ionesco's play invites renewed reflection on the costs of belonging and the quiet courage of standing apart in one's own individual selfhood.

Introduction

Eugene Ionesco's *Rhinoceros* is a three-act tragic farce first performed in 1959, often read as a cornerstone of the avant-garde "Theatre of the Absurd" movement. Originally written in French, the play presents a surreal scenario wherein the inhabitants of a small provincial town undergo absurd transformations into rhinoceroses. Since its first performance, the play has been predominantly interpreted in the context of its contemporary political regimes, and seen as a polemic critique of totalitarian regimes that the playwright had witnessed in different forms, in different places- growing up in Romania which saw the proliferation of the Iron Guards as the Nazi movement grew, in France with the growing influence of its communist party and the cold war, with the symbol of the rhinoceroses, and their proliferation being seen to exemplify the dangers of totalitarian regimes, even as some critics attempt to locate it within existential (Esslin 1961) and psychological (Schechner 1963) frameworks. While all of these are indeed essential modes of critical intervention into the text, in today's world—characterized by the ubiquity of digital media, social networks, and cultural homogenization—the metaphor of the rhinoceros retains fresh significance, positing newer semantic possibilities of re-reading the play retrospectively as a critique of the modern day viral trends, mass consumerist practices, pressures of herd-like social formations.

The symbol of the rhinoceros which begins as an absurd intrusion in the play eventually evolves into a powerful metaphor for the erosion of individuality, the allure of the collective, and the challenges of communication. Through repetition, linguistic disruption, and the spectacle of transformation, Ionesco crafts a theatrical parable that dramatizes the conflict between the desire for belonging and the preservation of selfhood. This symbolism, the present paper argues, resonates with contemporary experiences of social pressure, viral conformity, and the negotiation of identity in a landscape increasingly shaped by collective dynamics. Therefore, in line with

this thesis the present paper seeks to reexamine *Rhinoceros* through a literary lens that highlights its continued cultural relevance and its profound inquiry into the nature of individuality and social belonging. This literary approach is particularly relevant today, in a rapidly changing society shaped by technology and social media, where pressures to conform persist and meaningful communication often suffers. Reinterpreting *Rhinoceros* in this way allows for a deeper understanding of the ongoing struggle to maintain individuality while being part of a community.

Review of Literature

Since its first performance in 1959, Eugène Ionesco's *Rhinoceros* has attracted a wide array of critical interpretations, many of which emphasize its political and philosophical underpinnings. Early critics of *Rhinoceros* mainly looked at the play through the lens of existentialism, especially in the context of post-war Europe as exemplified in Martin Esslin's book *The Theatre of the Absurd* (1961) which placed Ionesco alongside other writers like Beckett and Genet. Esslin focused on how the play shows the breakdown of reason and the absurd nature of human life in a world without order. For Esslin, Berenger's final act of resistance is ambiguous—neither wholly triumphant nor entirely tragic—but emblematic of a last-ditch attempt to assert individuality in a meaningless world. While this reading acknowledges the play's philosophical weight, it flattens the symbol of the rhinoceros into a mere instrument of existential crisis, missing its dynamic metamorphosis across the acts.

Richard Schechner's 1963 essay, *"The Inner and the Outer Reality,"* extends this existential framing by focusing on the psychological dimensions of Ionesco's theatre. He emphasizes how the absurd stage reflects not just external political absurdity but also the internal fragmentation of the self. However, while this psychological lens highlights the play's engagement with the instability of identity it still treats the rhinoceros as a static metaphor rather than a progressively evolving theatrical device.

By the 1980s, however, there was a significant shift in the interpretation of the play came with critics like Emmanuel Jacquart who sought to ground the play in the playwright's personal and political biography. In her essay *"Ionesco's Political Itinerary"* (1982), the play becomes a dramatization of how mass ideologies absorb the individual—transforming even those with strong ideological convictions. While persuasive, this historical contextualization risks limiting the play's relevance to a Cold War-era critique, treating the rhinoceros as a historically specific figure of authoritarianism rather than as a transhistorical metaphor of social assimilation.

In the subsequent decade, building on Jacquart's work, Matei Călinescu sought to provide a more detailed biographical and political lens. Călinescu's essay *"Ionesco and Rhinoceros: Personal and Political Backgrounds"*(1995) connects Ionesco's personal experiences in Romania to the play's central tensions, arguing that *Rhinoceros* stages the psychic trauma of witnessing friends and intellectuals succumb to ideological fanaticism. However, like Jacquart, he focuses primarily on *Rhinoceros* as a political allegory, underplaying its formal experimentation and its broader existential and communicative concerns.

In recent times, scholarship on the play has begun to move beyond both the existential and political binaries as illustrated in Cristina Nicolaescu's 2024 article, *"The Semantics of Language in Eugène Ionesco's Plays,"* which represents a significant turn toward linguistic and semiotic analysis. For Nicolaescu, the rhinoceros becomes a signifier for the breakdown of dialogue itself, a process that unfolds on the level of language as much as on the level of plot.

However, despite the richness of these contributions, there remains a gap in the critical literature regarding how the symbol of the rhinoceros functions dynamically within the evolving structure of the play, particularly in terms of how its absurdist techniques such as repetition, proliferation, and linguistic dislocation create symbolic and semantic shifts across the play. Previous interpretations have often fixed the rhinoceros to a singular metaphorical framework (e.g., totalitarianism, existential despair, or language breakdown), overlooking how the symbol changes over time—from a comic absurdity to a social epidemic to a profound threat to individuality and

expression. Furthermore, few studies explore the continued relevance of these symbolic transformations in the age of digital consensus, viral culture, and algorithmic belonging, where the pressures of conformity may be less overtly ideological yet equally pervasive.

The present study aims to address this gap by foregrounding the interplay between symbol, form, and contemporary resonance, thereby reactivating *Rhinoceros* as a literary parable of identity negotiation. By tracing the evolving symbolism of the rhinoceros throughout the play and situating its absurdist strategies within modern contexts of social media and cultural mimicry, this paper offers a new perspective on Ionesco's work—one that bridges formal analysis with present-day cultural critique.

Critical Analysis and Discussion

The Making of a Symbol

The central symbol of eponymous play, the rhinoceros, starts out as a manifestation of the 'absurd' component of the play- coming out of nowhere into a provincial town in France and the first few transformations and subsequent discussions about them add to the farcical element of the play. However, the symbol becomes progressively sinister as the plot unfolds, beginning with the trampling of a cat and ending with widespread chaos and breakdown of communication. The title of the play, taking its significance from the symbol that drives its content and form, can be understood by analyzing the evolving associations and ramifications of its central symbol as this essay will aim to do.

Tracing the growing presence of the rhinoceros in the play reveals that the first semblance of the rhinoceros is in Act I, at the auditory level when a noise is heard "far off, but swiftly approaching, of a beast panting in its headlong course, and of a long trumpeting" (Ionesco 1959 p.6). The powerful animal is soon seen and identified by the inhabitants of the provincial town, with the cry "Oh, a rhinoceros", repeated by all present (except Berenger). The 'repetition', meant to occur simultaneously on stage, evokes the comic element as well foreshadowing the sinister transformation of the townsfolk into the 'herd'. Startled by the rhinoceros' appearance, a housewife drops her basket of groceries, and a little while later, the crowd sees her cat reduced to a "blood stained corpse" after being trampled on by the animal. The sudden trampling of a cat by the beast marks a sharp tonal shift, introducing violence and the symbolic threat of conformity.

This incident builds up the association of the rhinoceros with chaos and violence and a sinister element is shown at play in its characterization, symbolizing the gradual dissolution of individual identity into a collective mass. This metaphor transcends its historical associations, inviting reflection on universal human experiences of social influence, fear of exclusion, and the allure of belonging. In the twenty first century context, an era marked by social media trends and viral phenomena, the rhinoceros's symbolic charge thus echoes the subtle yet powerful ways that individuals can be swept into collective movements, often at the expense of personal identity. In this context, however, it is interesting to note that everyone *but* Berenger, is affected by the appearance of the rhinoceros and begins discussing it. This marks him as someone who is outside the 'herd' from the very beginning, as he remains even in the end.

The image of the rhinoceros, thus, can already be seen evolving into a symbol of **mass conformity and ideological transformation observed by Ionesco in his environment** as he saw his friends transforming into fanatical Nazis. This symbol, partly based on a nightmare, made him feel the need to "show how a mutation is possible in collective thought" which manifests itself in the transformations of characters into rhinoceroses in his play of the same name. In a telling diary entry, he writes of a world much like that lived in by Berenger (since the end of Act II), in the play which grows out of this vision, "The police are rhinoceroses. The judges are rhinoceroses. You are the only man among the rhinoceroses… It is something of a sin to not be a rhinoceros". However, while past readings have tied this statement in particular and the play *Rhinoceros* only to specific political regimes, its broader thematic architecture invites reflection on more perennial human patterns—such as the desire for belonging, the fear

of exclusion, and the tendency toward mimicry.

Private Spaces and Personal Transformations

As the rhinoceros invades public and private life alike, its power grows as the herd's impact intensifies across scenes, with repeated phrases, irrational reactions, and eventual chaos. The second and third acts see the increasing penetration of rhinoceritis into the private domain tracing a trajectory from the public square, to the office, to Jean's room and finally that of Berenger. After its/their appearance in the public square, the rhinoceros (es) are mentioned next in the office which leads to a discussion about the validity of the sighting. This discussion exposes two contradicting view points within the office- that of M. Dudard and M. Botard, insistent on a vehement denial of the reports of these 'lying journalists'.

It is interesting to note that both M.Dudard and M. Botard, each with a 'methodological mind' or so they would have us believe, transform into rhinoceroses by the end of the play. By showing characters with completely different worldviews succumbing to rhinoceritis, Ionesco is perhaps trying to highlight the universal appeal of **widespread and non-discriminatory nature of this phenomenon**. The office scene also contains Mrs Boeuf's recognition of the rhinoceros which has been following her and has destroyed the staircase, as her husband. Convinced that he is calling for her, she jumps out of the window, leaving behind her skirt in Berenger's hand as she rides away on the rhinoceros (Mr Boeuf). This scene forms the peak of the farcical element in the play and while simultaneously showcasing the irrational pull of transformation.

While the play has been understood in terms of its unambiguously political nature, read in terms of Ionesco's childhood in Romania, with the proliferation of Iron Guards and later in terms of the backdrop of the rising communism during the cold war period, on a larger, perhaps more ahistorical, social level, rhinoceritis and the play could perhaps be understood in terms of the 'herd mentality' that pervades most societies. The simultaneous repetition of phrases like "Oh, a rhinoceros!" and "Well, of all things" in Act 1 by different characters present on stage, could then be seen as Ionesco's critique of people who are "simply mechanisms", "don't think", "inhabit a world of the impersonal, the world of the collective" and pronounce only slogans to "save themselves the trouble of thinking" (Bonnefoy 1971).

The second scene of this act, takes us into the room of Jean where Berenger witnesses the transformation of his friend. The transformation of Jean is significant on multiple counts- it's the first transformation the audience is shown and provides rhinoceritis with concrete physical symptoms, secondly, it also brings in the disease into the personal realm of Berenger, making it something very immediate as opposed to something happening in some other country which could be discussed with objectivity. The scene which details the hardening of Jean's skin and its turning green as well as the emergence of the bump on his head, makes for a sinisterly marvellous theatrical spectacle. In showing the transformation of a person the audience knew in his pre- rhinoceros stage to a violent animal (who would perhaps have trampled his friend to death), the play represents the complete loss of humanity and descent into animality that accompanies the transformation, leaving Berenger terrifyingly alone, with rhinoceroses everywhere.

Language, Sound, and the Limits of Communication

Beyond its physical appearance, the herd is also characterized by the sounds it emits, 'charming' music, intelligible only to those who are a part of it or are about to transform. Associated with both violence and insanity, becoming a rhinoceros entails becoming a relentless and unyielding force, fixated solely on its objective, crushing anything that stands in its way with brute determination. Furthermore, the transformation also involves a breakdown of language as a means of communication between humans and rhinoceroses as the herd only communicates within itself, in sounds intelligible only to its members. This shift renders meaningful dialogue impossible be-

tween humans and the transformed. The collapse of shared language parallels the loss of individuality, the rise of collective identity, and foregrounds the irrevocable nature of the transformation.

The interplay between sound and silence, repetition and disruption, characterizes the play's absurdist form. The proliferation of rhinoceroses on stage, accompanied by rhythmic trumpetings and dust, heightens the atmosphere of confusion and despair. In contrast to this, the brief togetherness of Daisy and Berenger in the final act seems to promise a hope of a different kind of collective which is premised on caring, nurturing tendencies as well as understanding as opposed to the single minded members of the herd bulldozing through everything that doesn't agree with them. However, this is also denied in the play when Daisy, almost enchanted by 'charming song' leaves Berenger, possibly to become one of the 'beautiful' creatures. The end of the play involves Berenger standing alone on stage, with rhinoceros heads moving in front of him, responding to his speech by "fresh trumpetings, hectic racings and sounds of dust".

Resisting the Herd: Individuality and Reflection

The final act presents an extremely anxious Berenger who has still not come to terms with his friend's transformation, and is plagued by nightmares of the ordeal. He constantly checks himself for signs of a horn or a change in the colour of his skin. This anxiety is perhaps a symbolic representation of what Ionesco felt as a strong critic of collectivist regimes, with his friends and acquaintances consistently defecting to 'the other side'. Berenger is visited by Dudard who attempts to rationalize the increasing transformations as 'just another disease', asking him not to dramatize it or attach too much importance to it, calling Jean's transformation an 'average case', asking Berenger to see the "funny side of things". All of these lead up to him wavering at first ("I don't say it's a very good thing. And don't get the idea that I'm on the rhinoceroses' side…") and then slowly transforming his arguments, siding with the rhinoceroses, claiming to only be looking at "facts unemotionally in the face". His final transformation completely into a rhinoceros, indistinguishable from the herd, indicates the complete loss on individuality and mergence into the dominant ideology- similar to Jean's transformation. This echoes an entry from Ionesco's diary, talking about political transformations that begin with rationalizing the herd's views, when, talking about a colleague in *Present Past Past Present* (1988), Ionesco notes that he said it's strange sometimes: they seem, they seem to be right on one point…One point out of ten thousand, but all the same, in order to be completely objective…" and seeing the "strange light in his eyes whose meaning he could not mistake".

The final moment and the speech are significant in so far as they form the crux of understanding both Ionesco's ideas as well as his play. The setting completes/ fulfils the technique of proliferation of objects which stifle which is typical of Ionesco's plays, as observed by several critics. Proliferation of rhinoceroses in the eponymous play continues the absurdist trend and heightens the sense of despair and Berenger's inadequacy being one single person against a collective of rhinoceroses. Questioning of the efficacy of language and its use is a running theme in the play which is revisited in the final monologue by Berenger. In his final speech he also expresses anxieties and doubts about identity along with his very mode of expression, both of which are familiar concerns in post-war European society. However, even though he is surrounded by characters mouthing slogans of the collective mindset that they become an indistinguishable part of, without a shred of individual thought as "empty minded creatures", Berenger's doubt, and anxieties (and through him Ionesco's), show that all is not lost. The questioning of language and possibility of a dialogue establishes in them (Ionesco and Berenger) the will to make an attempt despite being surrounded by despair.

Furthermore, as Ionesco says in one of his interviews, "If I really believed absolutely that communication was impossible, I wouldn't write". This statement suggests that despite the play's portrayal of despair, there remains hope and a call to resist conformity and engage in

meaningful dialogue. Such a reading substantiates Michael Bennett's reassessment of the theatre of the absurd, who argues that Esslin's understanding of Camus and his translation of Ionesco talking about Kafka, on which he bases his understanding of the theatre of absurd is mistaken. Bennett (2011) argues instead that a better way of looking at the plays often labelled as absurd would be in terms of their 'parabolic' nature, suggesting that the "metaphor, paradox and a move to disorder, forces the reader or the audience member to confront his or her own worldview in order to create order out of the chaos presented on the stage". Such a reading then establishes these plays as more than just 'absurd', but rather deterministic and pessimistic commentary on social and political forces to a more hopeful interpretation focusing on human agency and resistance.

Therefore, despite the bleak portrayal of mass transformation, *Rhinoceros* ultimately affirms the value of reflection and self-awareness. Berenger's final stand, though filled with doubt and fear, underscores the play's commitment to the idea that individuality, though fragile, is worth preserving. As such, Ionesco's play continues to function not merely as a critique of specific political systems or historical events, but as a timeless meditation on the human condition—on the ongoing struggle between belonging and being, between speaking and being heard, and between losing oneself and standing firm in one's convictions. In doing so, *Rhinoceros* remains a vital text for interrogating how identity is negotiated and defended in an ever-changing world.

Conclusion

Eugène Ionesco's *Rhinoceros* therefore, emerges as a timeless work of modern drama, probing the fragile tensions between individuality and conformity. The rhinoceros itself serves as a potent multifaceted symbol embodying the complexities of transformation and the human yearning for connection. Through its absurdist form and innovative use of language, marked by repetition, linguistic fragmentation, and theatrical spectacle, Ionesco exposes the fragility of communication play and challenges audiences to reflect on their own positions within social collectives.

In our contemporary world, shaped by digital media, consumer culture, and subtle cultural conformity, the play resonates deeply, urging reflection on the enduring struggle to preserve selfhood amid pervasive forces that demand assimilation. However, rather than offering clear answers, *Rhinoceros* invites ongoing meditation on identity and belonging. Ultimately, Ionesco's work transcends specific historical moments, functioning as a timeless literary exploration of the human condition and the ongoing struggle to balance community and individuality, persisting as a powerful site for discussion and examination of complexities of identity and communication in an ever-evolving social landscape.

Works Cited

Bennett, M.Y. (2011). *Reassessing the Theatre of the Absurd*. Macmillan.

Bonnefoy, C. (1971). *Conversations with Eugene Ionesco*. Holt, Rinehart and Winston.

Călinescu, M. (1995). Ionesco and *Rhinoceros*: Personal and political backgrounds. *East European Politics and Societies, 9* (3), 393–432. https://doi.org/10.1177/0888325495009003002

Esslin, M. (1961). *The Theatre of the Absurd*. Doubleday & Company, Inc.

Jacquart, E. (1982). Ionesco's political itinerary. In E. Jacquart (Ed.), *The dream and the play: Ionesco's theatrical quest* (pp. 35–57). Undena Publications.

Ionesco, E. (1988). *Present past, past present* (H. R. Lane, Trans.). Da Capo Press. *(Original work published in French)*

Ionesco, E. (2015). *Rhinoceros* (D. K. Basu, Ed.). Worldview.

Nicolaescu, C. (2024). The semantics of language in Eugène Ionesco's plays. *Swedish Journal of Romanian Studies, 7*(1), 13–21. https://doi.org/10.35824/sjrs.v7i1.26049

Schechner, R. (1963). The Inner and the Outer Reality. *The Tulane Drama Review*, *7*(3), 187–217. https://doi.org/10.2307/1125094.

*****

"A Study Of Transgressive Depiction Of Gender In The Select Films" : Daayraa, Margarita With A Straw, And Badhaai Do.

-Maitreyee

ABSTRACT-

Not adhering to the standard and socially sanctioned idea of gender brings them under claims of not being natural or normal. Rather, an unnatural and impure one. The very idea of gender has been in the foreground of debate and everything that revolves around gender is contemporary as well as debatable. The purpose is to highlight the basic idea of gender which in itself is a construct and how this construct evolved from biological difference to psychological difference. The films for the discussion would focus on homosexuality. Homosexuality has never been confined to one particular discipline; rather, it has always been interdisciplinary. Homosexuality and other alternate sexualities, in itself is a debatable term and is unacceptable in the social milieu. This paper aims to investigate certain core issues of self-hood, individualism, and agency of homosexuals themselves and their strive for social acceptance. In addition to this, the manner in which cinema has depicted this sensitive and crucial idea of homosexuality through their lens. Also, whether cinema has done justice to the concept of homosexuality in an authentic way or not. And, whether it is projected in a glorified way or in an exemplified one.

Also, the manner in which Cinema is determined to contribute significantly towards representing the dynamics of transgressive gender and identity, with a specific emphasis on Indian society.

INTRODUCTION

Gender has always been a battlefield around which debates, discussions and negotiations have remained a prominent act. It was since times unknown, that these debates centered an intrinsic part of the social life that we live in. Questions and oppositions in context to what is supposed to be a normative act, behavior, or gesture, for a specific gender are dictated by the society itself. Here, the norms that are dictated by the society, when not followed lead to repercussions which include exclusion from the social strata of the society. We have been familiar with two common genders i.e. male and female but the mere utterance of the term 'Homosexuality" brings utmost disgust and reluctance in the minds of people. Homosexuality defines itself as a characteristic or state of being attracted to a person of the same sex. On the other hand, 'Transgressive', according to the Oxford English Dictionary defines itself firstly, as involving a violation of moral or social boundaries, in the context of art or literature in which orthodox moral, social, and artistic boundaries are challenged by the representation of unconventional behavior and the use of experimental forms. Secondly, to pass over or go beyond a limit or boundary. Hence, placing all the above-mentioned definitions appropriately reflects the very core idea of my research on how homosexuality as well as transgressive gender is believed an outcasted element from the umbrella term of Gender. In addition to this, how the embedded notion of gender, a general notion that is considered to be socially, culturally, and morally acceptable, has trespassed its own boundaries.

A brief insight into how every bit and piece of all such fragmented yet combined structures are demonstrated through the widely influential medium of Cinema. The aspect of Cinema that is utilized as an apparatus to highlight this complex issue. Cinema has not only been a source of entertainment but has also been looked upon as a powerful platform to reflect upon the follies and loopholes that society fails to understand. Speaking through Cinema to chal-

lenge heteronormative ideas of what constitutes Indian 'culture'. Queerness is not against Indian culture, rather it belongs at the very core of it.

It is a conscious attempt to explore and analyze such transgressive pockets that form the rudimentary task of my research, further aiming to examine the dynamic and volatile particulars in which transgressive Gender is depicted in Cinema. To determine the scope of such inquiry, I have made a selection of three films, namely: Anmol Palekar's Daayraa (1996), Shonali Bose's Margarita with a Straw (2016), and Harshvardhan Kulkarni's Badhaai Ho (2022).

ALTERNATIVE SEXUALITIES AND CHOICES

The presence of alternative sexualities in Indian society and the manner in which they are represented through Cinema, here Cinema being a major part of the Visual Culture, speaks a great length about the mindset and values that are incorporated into society. This whole idea of alienation and isolation that is experienced by homosexuals and others have been effectively portrayed in the films that will be considered for discussion.

Sexual orientation that is a deviation from the dominant norm may be referred to as Alternative sexuality. These different sexual orientations might include homosexuals, lesbians, gays, or transgender categories. Here, the term sexuality refers to something other than sex and gender, it is a major theme in the contemporary debate on identity that has developed parallelly with psychoanalysis, queer theory, feminism, and then post-feminism as well. Any deviation from the normative heterosexual practices is subjected to marginalization and abuse. People with alternate sexualities are forced to confine themselves to a miserable silence by the power of legal, social, medical, and religious practices.

Anmol Palekar's Daayraa is believed to be a revolutionary film, as it challenged the existing norms and belief system of Indian society. Among the trilogy of films directed by Anmol Palekar, Daayraa is the first film that deals with the issues of sexuality and perceiving what a specific gender ought to behave like. It also successfully reflects the very idea of accepting as well as embracing people with their own individual identities which not only depend on their biological sex but also on what they think of themselves mentally. By taking into account the literary meaning of the word Daayraa suggests boundaries- in the context of this film, social codes of behavior. In this part of India i.e. In Orissa where the film has been set up, it had been quite common for men to enact the role of women in theaters. Eventually, in this process of disguising in order to attain certain roles, the major theme of cross-dressing comes into play and throughout the film, it becomes a symbol of distorted signifier.

The film problematizes the manner and proportion in which sex and gender are developed and deconstructed simultaneously, keeping flawed and rigid patriarchal beliefs at the center. Nirmal, who is portrayed as a transvestite, and Sonali, portrayed as a helpless woman who gets kidnapped on the eve of her marriage are the two leading characters. Both of them encountered each other while being in a terrible state of living. Sonali managed to escape from the kidnappers who were determined to make use of her for their own benefit. When she saw Nirmal by the riverside, dressing himself up like a woman, she was bewildered. Her perplexed state and continuous stare, to some extent, represent the lens of the society through which they usually see someone who is different or who does not behave normatively. In that particular conversation, Nirmal further asserts to Sonali that "You see, I am a miracle of nature". To which she inquisitively responds in order to know what exactly is the sex of the person who is in front of him, who was slowly covering his body with the attire of a woman. Nirmal extended his argument and remarked, "A person should appear outside as he is from the inside". This scene propounds the idea of how an Identity is supposed to be expressed. Nirmal has not delivered a lesson that is unknown or unaccepted here; rather, he attempts to emphasize that the same basic outline of expressing one's identity also applies to people who are carrying different sexualities or those who do not belong to the normatively

established ones.

Daayraa makes every effort to explore the subjectivity and dynamics of Nirmal placed in a masculine culture where patriarchy has remained a dominant weapon. As Nirmal claims his identity as an infusion of both men and women, this becomes a reason that his character cannot be restricted as a complete masculine identity or a feminine one. Nirmal blatantly assumes both roles. The vile expression of utterly shaming the 'other' while being in a cultural construction of masculinity, is an element with which Nirmal does not relate himself. Later, he retaliates: Man! Women! Is it necessary to flex one's muscles to prove oneself a man? Or will a mustache and a beard make a man? Does baring boobs qualify one to be a real woman? Or being tearful and helpless? Man's got to be sturdy, macho. Woman? Touch- me- not- blossom? I am a miracle of nature... inside me, there is a part man, part woman. It pleases me to reveal the woman within me. Whether others accept me or not... (Daayraa)

To associate the above with Judith Butler in his theory of performativity asserts that the way we act or our role playing is crucial to the gender that we are and the gender that we present to the world. For something to be performative means that it produces a series of effects. We act, walk and talk in ways that consolidate an impression of being a man or being a woman.

This becomes a clearcut powerful scene where he finds gratitude in expressing the women inside him and in admitting the fact that it hardly bothers him whether society accepts him or not. The essence of individualism, agency, and self-admiration enlightens the entire milieu.

In an interview, the director of the film, Anmol Palekar comments that he wanted to make this film, touching all the authentic and thought-provoking boundaries so that it can reach immensely to the viewer's consciousness and could be marked as a stepping stone towards accepting dynamic identities altogether:

"My first concern was trying to know the nature of the psyche of a transvestite.. we must understand that he is not a eunuch. He is not a 'chakka'. He is very much a man but he has chosen because he thinks he would be better off or he wants to be a woman, he likes to be a woman. I was also trying to find the Indian-ness behind this psyche which I think is equally important. I didn't want a cliched again hackneyed way of effeminate portrayal which comes almost as a caricature.. Here is a man who believes from within that he wants, loves, and wants to be a woman but somewhere deep within him he also knows that he cannot be a woman, there lies the tragedy of the whole thing. In the opposite role, there was a girl who was not even aware of her own sexuality."

Shonali Bose's film Margarita with a Straw deals with the story of the protagonist Laila (a character played by Kalki Koechlin), who is a teenager with cerebral palsy. The hidden

inspiration and spirit of this film are connected to Malini Chib who is a well-known writer and also

the cousin of the director. Though the story is fiction but in real life, Malini actually deals with cerebral palsy and the film captures a lot of her attitude and acceptance towards life. The emerging character of Laila right there from the beginning of the story reflects utmost fascination and a quest to learn and grow. Two dominant factors are highlighted in the film which according to the conventional norms outlines Laila's character as a marginalized one. First being her sexuality and second, her disability.

Queer theory can be defined as a set of signifiers, which creates certain types of social meaning. Also, Queer theory follows feminist theory and gay/lesbian studies in rejecting the idea that sexuality is an essentialist category, something determined by biology or judged by eternal standards of morality and truth. Therefore, for Queer theorists, Sexuality is a complex array of social codes, behaviors, and forces. Helen Cixous, a renowned French literary critic, also talked about Bisexuality in her works; this has remained one of her prominent themes. She asserts that Bisexuality is often seen as a threat because of the ambiguity surrounding sexuality. She also proposed Bisexuality for women, as they have been conditioned to accept the role assigned to them.

Initially, Laila had problems understanding her own sexuality. Born and brought up in the Indian patriarchal culture imposed and established a sort of conventional idea in her mind that her sexual desires could only be fulfilled by a man. It was only after she received the scholarship letter to join the New York University, that her indulgence and exploration of her own identity began.

There in New York, she encounters with a blind girl named Khanum (a character played by Sayani Gupta) transformed the way she used to perceive life and her sexuality. Cinema assists not only in spreading awareness among the public but also significantly contributes to the development and enlargement of people's mental horizons and rigid opinions. But, films single-handedly don't make an impact unless there are appealing songs that add up to the message and idea that the film is determined to highlight. A song by Mickey McCleary clearly demonstrates the idea of love that transgresses the conventional boundaries of gender, sexuality, restrictions, and judgments. "... and I love that you don't care what random people think, but you care about me. Where did you come from and how did we happen to be this close? I don't understand but I like what you are doing to me..." (Song- Don't Go Running Off Anytime Soon) Margarita With a Straw captures Laila's responses to the entire process of sexual awakening while being close to Khanum, with an alarmed sensitivity. In the first instance, Laila was unable to gather the courage to open up about her relationship with Khanum. Before the sexual act between Laila and her college friend Jared (played by William Moseley), she almost attempted to speak to him about her existing relationship but then couldn't speak about it. Rather, she said, "I
am with someone." Probably, she might have known that if she will speak out the whole truth, then she would have to be devoid of that opportunity to quench her sexual desire with Jared. This remarks the disgust and repulsiveness that people are accustomed to while coming to terms with people of alternate sexualities. Laila came to know about her bisexuality soon after she realized that she could sense an intense level of attraction for both i.e. Khanum as well as Jared. Although, while exploring these sensitive identity domains, she cheated on Khanum. The thought of a
young, disabled, and
bisexual woman exploring and expressing her sexuality is such a murky and marginal vision for
most people that to portray her and her repressed screams voiced on the big screen with such honesty and finesse is quite a feat to express. Laila draws out her own path and once she discovers her own identity, she gathers up the courage to speak about it with her mother. Despite having raised her daughter in an open and supportive environment, she ridicules when Laila confronts her regarding her actual sexuality. She says, "...this isn't normal!" Laila retorts:

"That's what the world said about me too. What's your problem now?" ... (Margarita With a Straw)

In a world where women are rarely shown to have agency in choosing whom to love, let explore their sexuality and pleasure, Laila and Khanum, heroines born out of the most unexpected circumstances represent the best version of normal that could (read should) exist today.

Judith Butler advocates that those who fail to do their gender right are equally punished (Bodies That Matter). But unfortunately, how the patriarchal and socially constructed aspirations of people turn out to be hurdles in the lives of the people who belong to the LGBTQ category, is well represented in Harshvardhan Kulkarni's Badhaai Do. The film was released in the year 2022 and it celebrates the spirit of these confined yet emerging communities who due to the rigid patriarchal beliefs and practices are coerced to enact in a certain way. Two leading characters - Shardul Thakur played by Rajkumar Rao and Sumi Singh, played by Bhumi Pendekar. The plot of the film explores both these characters in suffocated situations where they are enforced to get married and have children. Unlike most people who belong to the LGBTQ category, both these characters were fully cognizant of their sexual identities. The film attempts to highlight the cruelty and inhuman ideologies that are associated with people of different sexualities. As

a matter of fact, Edward Bergler (1956) and Irving Bieber (1962) advanced sexual conversion therapy, predicated on the idea that homosexuality is an abbreviation, a curable mental condition, rather than something invented by the very disciplines that aimed to treat it. Richard von KrafftEbing, who was known to be the earliest psychiatrist offered his theory about what causes homosexuality in his book 'Psychopathia Sexualis'. He asserted that homosexuality is a type of "neurodegenerative disease". He saw any non-procreator sex as pathological. According to his theory of Pathology, Homosexuality was included as a type of 'mental disorder" in the first edition of DSM (Diagnostics and Statistical Manual) in the year 1952. Later, a film was released by Bret Wood in 2006, which encapsulated his ideas on homosexuality. Since the era when

Cinema came into being, gays or lesbians, or any other alternate sexuality were personated in a comic manner or in a minor role. Nonetheless, such movies that emphasized the seriousness and miseries of these particular sexualities have come up a long way and have definitely been a

dominant factor to break taboos or stereotypes that have been embedded in the minds of people for ages. The film, at its forefront, brings Rajkumar Rao as Shardul Thakur who is a gay policeman. The power and supremacy of this profession stand opposite to what such sexualities are deprived of. On the other hand, Bhumi Pednekar as Sumi Singh is a sports teacher. Both these characters are placed inside hardcore traditional conservative families who like any other Indian family, impinged their ideals on both of them. Owning to different sexualities, while being secretive about the same, both of them decided to get married to each other and then lead a life they want at individual ends. They assumed that by coming into the institution of marriage, there will come a sense of relief but the opposite happens. When the truth about Sumi's sexuality gets revealed then there is havoc in the family. Loathsome and inhuman comments are propounded by the family members.

They claim in disgust: "Imagine, she used to sleep next to me! I feel repulsed thinking of it...Even Homeopathy has no cure for this disease" ... (Badhaai Do)

Finally comes the climax where the actor listens to all. this owns up to his own identity and retorts- "Homosexuals are as humans as all of you... I am Gay. So if you're repulsed by her then you should be repulsed by me as well". Moreover, the end is celebrated with a happening and inclusive Pride March which remarks self-acceptance and agency for all who belong to the LBTQ community. Leading a path where there is no shame, fear, or disgust but rather a life infused with pride, dignity, and freedom.

CINEMA AND SPECTATORSHIP

Laura Mulvey's ideas about the sexual and gendered economy of cinema highlight the ways in which movies reflect, reinforce, and sometimes challenge dominant cultural norms and expectations around gender and sexuality. This is particularly evident in the ways in which films activate and attract desiring relationships between characters, images, and spectators. As viewers, we are often drawn into the world of the film and the lives of its characters, even as we are aware that what we are watching is a performance. However, the films we choose to watch and the characters we identify with are not always the stereotypical or privileged ones. Instead, they can challenge our assumptions and provide us with glimpses of alternative ways of being in the world.

At the same time, the freedom and excitement that male characters often embody in films can be linked to misogyny and disrespect for women. This dynamic is particularly evident in films that depict violence against women or reinforce harmful stereotypes about gender and sexuality. However, modern cinema also has the potential to challenge these norms and offer a more fluid and inclusive vision of gender and sexuality. The representation of non-binary or transgender characters, for example, can challenge our assumptions about what it means to be male or female and offer new possibilities for identification and desire. Ultimately, the sexual and gendered economy of cinema is a reflection of broader cultural attitudes and values, and the films we choose to

watch and identify with can have a profound impact on how we see ourselves and others. As viewers, it is important to be aware of these dynamics and to critically engage with the films we watch in order to challenge and transform harmful norms and stereotypes.

CONCLUSION

To conclude, Cinema as one of the powerful catalysts of Visual Culture reinforces and attempts to reform the society so that it could be a less cruel place for the people who belong to the different sexualities. The choice of the films that were chosen for the research above rests on the ground that they have proved to be exceptional as well as groundbreaking in the genre of cinema by exposing the rigid and unnecessary ideologies and practices. Also, the notions of sexuality and transgressive gender that these films depict are encapsulated with thoughts and ideal opinions which needs to be taken into account. The concept of power and freedom must not be inclined towards a specific gender rather, it must be divided equally.

In the midst of all the current debates and controversies that are going on in association with the LGBTQ communities, what lies in our hands is just a little humanity and acceptance, so that people with alternate sexualities feel protected and not vulnerable. A little less disgust and a little more love might navigate the society in evolving in a comparatively better way.

REFERENCES

"The Square Circle | 1996 | Daayraa (Original Title).” Ok.ru, ok.ru/video/2511381269062 Margarita with a Straw(2016).Streaming on Netflix

Badhaai Do(2022). Streaming on Netflix

Anon. “Microsoft - Search.” Www.bing.com, 2022, www.bing.com/ck/a?

Smith-Laing, Tim. An Analysis of Judith Butler s Gender Trouble. London, Routledge, 2017.

Bucholtz, Mary. “Gender.” Journal of Linguistic Anthropology, vol. 9, no. 1/2, 1999, pp. 80-83. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/43102432.

Higginbotham, Jennifer. “Roaring Girls and Unruly Women: Producing Femininities.” The Girlhood of Shakespeare’s Sisters: Gender, Transgression, Adolescence, Edinburgh University Press, 2013, pp. 62-103. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/10.3366/j.ctt20q22dc.7.

Yue, Audrey. “Queer Asian Cinema and Media Studies: From Hybridity to Critical Regionality. Cinema Journal, vol. 53, no. 2, 2014, pp. 145-51. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/43653576

DAVE, NAISARGI N. “Indian and Lesbian and What Came next: Affect, Commensuration, and Queer Emergences.” American Ethnologist, vol. 38, no. 4, 2011, pp. 650-65. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/41410424

Misra, Geetanjali. “Decriminalising Homosexuality in India.” Reproductive Health Matters, vol. 17, no. 34, 2009, pp. 20-28. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/40647442 Anon.

“Microsoft - Search.” Www.bing.com, 2022, www.bing.com/ck/a?

Mehta, Rini Bhattacharya, and Rajeshwari V. Pandharipande, editors. Bollywood and Globalization: Indian Popular Cinema, Nation, and Diaspora. Anthem Press, 2010. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/j.ctt] gxp6bs

Irigaray, Luce. An ethics of sexual difference. Cornell University Press, 1993.

Bukatman, Scott. "Spectacle, attractions and visual pleasure." The cinema of attractions reloaded (2006): 71-82.

Grossman, Andrew. "Transvestism in film." GLBTQ Arts 2 (2006): 1-5.

Halperin, David M. "The normalization of queer theory." Journal of homosexuality 45.2-4 (2003): 339-343.

Gopinath, Gayatri. "Queering Bollywood: Alternative sexualities in popular Indian cinema." Journal of Homosexuality 39.3-4 (2000): 283-297.

*****

आधुनिक भारत और अहिल्याबाई होल्कर

डॉ. शारदा गौतम
सहायक आचार्य
दौलत राम महाविद्यालय

भारत वर्ष में जन्म लेने के लिए देवता भी इच्छुक रहते है, क्योंकि भारत शब्द का अर्थ है भारत रत। भा का अर्थ होता है ज्ञान, प्रकाश और रत का अर्थ है लगा हुआ संलग्न। ऐसा देश जो ज्ञान प्राप्ति में लगा हो। हमारे देश में ऋषि परम्परा बहुत अधिक सुदृढ़ है। राष्ट्र तथा विश्व कल्याण हेतु अनेक ऋषि मुनियों का चिन्तन है, ज्ञान के आदि स्रोत हमारे वेदों का ऋषियों ने साक्षात्कार किया और वैदिक मन्त्रों को जनकल्याण हेतु समर्पित किया। एक ऋषि जो भारत में मातोश्री के नाम से जानी जाती है, राष्ट्र और धर्म के लिए समर्पित भारतीय संस्कृति और वीरता की प्रतीक देवी अहिल्याबाई होल्कर सशक्त भारतीय नारी का पर्याय हैं। महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद (अहमदनगर) जनपद के छौड़ी नामक ग्राम में 31 मई 1725 ई. में अहिल्याबाई होल्कर जी जन्म हुआ था। छौड़ी ग्राम सीणा और हरणा नदियों के संगम पर बसा था। अहिल्याबाई होल्कर अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थी। मातोश्री के माता का नाम सुशीला शिन्दे और पिता का नाम मंकोजी राव शिन्दे था, मंकोजी राव शिन्दे जी अपने ग्राम के पाटिल थे। तत्कालीन समय में पाटिल का अर्थ एक गाँव का मुखिया होता था, जो एक देशमुख के अधीन काम करता था। मालवा के प्रथम मराठा सूबेदार मल्हारराव होल्कर (16 मार्च 1693 20 मई 1766) के पुत्र खण्डेराव होल्कर से 1737 ई. में अहिल्याबाई का विवाह हुआ था। 1745 ई. में पुत्र मालेराव और 1748 ई. में पुत्री मुक्ताबाई का जन्म हुआ था। 17 मार्च 1754 ई. में कुम्भेरी युद्ध में खण्डेराव जी की मृत्यु हो गई थी। 1766 ई. में मल्हार राव की मृत्यु हो गयी, 1767 ई. में मालेराव जी का स्वर्गवास हो गया था। 11 दिसम्बर 1767 ई. का मालवा के सिंहासन अहिल्याबाई होल्कर का राजतिलक हुआ। अहिल्याबाई होल्कर के संक्षिप्त जीवन परिचय के बाद हम अब विकसित का अर्थ जानते हैं-

विकसित का अर्थ होता है, विकास हुआ, खिला हुआ, फैला हुआ इत्यादि। भारत का अर्थ भा-ज्ञान, रत-लगा हुआ, ज्ञान की प्राप्ति में लगा हुआ देश। हमारे संविधान के प्रारम्भ में ही लिखा हुआ है, INDIA यानि कि भारत। हमारे देश का नाम ही है वह देश जो ज्ञान प्राप्ति में लगा हो, इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण है कि भारत विश्वगुरु बनने के लिए तत्पर है, विश्वशक्ति या महाशक्ति नहीं। संयुक्त राष्ट्र मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) एक सांख्यिकीय माप है जो अर्थव्यवस्था के स्तर को मापता है जबकि उच्च मानव विकास सूचकांक (एच डी आई) स्कोर होने और समृद्ध अर्थव्यवस्था होने के बीच एक मजबूत सम्बन्ध है, किसी देश के विकसित होने का मानक हैं आर्थिक विकास की डिग्री का मूल्यांकन करने के लिए मानदण्ड सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी), सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी) प्रतिव्यक्ति आय औद्योगिकीकरण का स्तर, व्यापक बुनियादी ढाँचे की मात्रा और जीवनस्तर के सामान्य मानक है।

भारत देश अभी विकासशील अवस्था में है, अपनी आजादी का अमृत महोत्सव को हर्षोल्लास के साथ मनाते हुए आजादी वर्ष के 75-100 के बीच को अमृतकाल के रूप में यह घोषणा है, साथ ही अपने आजादी के शताब्दी वर्ष तक विकसित देश होने की संकल्पना के साथ माननीय प्रधानमन्त्री दामोदर नरेन्द्र मोदी जी ने देशवासियों से अनुरोध किया है कि भारत को आत्मनिर्भर बन विकसित देश की श्रेणी में शामिल होने में प्रत्येक नागरिक अपना सहयोग दें, विकसित भारत 2047 भारत सरकार की महत्वाकांक्षी दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका लक्ष्य 2047 में स्वतन्त्रता के शताब्दी वर्ष तक देश एक विकसित राष्ट्र के रूप में बदलना है। इसमे आर्थिक समृद्धि, सामाजिक उन्नति, पर्यावरणीय स्थिरता और प्रभावी शासन जैसे विकास के विविध आयाम शामिल हैं। विश्व की सबसे बड़ी जनसांख्यिकीय भागीदारी के साथ, युवा 2047 तक भारत के अग्रणीय श्रेणी की ओर से जाने में महती भूमिका निभा रहे हैं। राष्ट्र के आह्वान के साथ ही प्रधानमन्त्री ने युवाओं को "विकासित भारत ऐट 2047" के लिए 'युवाओं के विचार' नामक युवा आन्दोलन के माध्यम से परिवर्तनकारी एजेण्डे में सक्रिय रूप से शामिल होने का आग्रह किया है। निम्नलिखित क्षेत्रों के आधार पर विकसित भारत की परिकल्पना प्रस्तुत होती है-

कृषि क्षेत्र में युवाओं की भूमिका
विनिर्माण उद्योग
डिजिटल अर्थव्यवस्था का तेज उभार
संवहनीयता केन्द्रित अर्थव्यवस्था
मध्यम आय जाल
जनसांख्यिकीय लाभांश
उच्च जीडीपी विकास दर को बनाये रखना

महिलाएँ बालिकाएँ विकसित भारत में
तृतीय प्रक्रिया में विकसित भारत
शिक्षा क्षेत्रयुवाओं को जागरूकता
मध्यम वर्ग का विकास
वृद्ध होती जनसंख्या।
विकसित भारत के मुख्य रूप से 5 विषय है
सशक्त भारतीय (स्वास्थ्य, शिक्षा, नारी शक्ति, खेल, संस्कृति, देखभाल करने वाला समाज)
सम्पन्न और टिकाऊ अर्थव्यवस्था (उद्योग, ऊर्जा, कृषि, बुनियादी ढांचा, सेवाएं हरित अर्थव्यवस्था, शहर)
नवाचार विज्ञान और प्रौद्योगिकी (अनुसंधान और विकास, स्टार्टअप, डिजिटल)
सुशासन और सुरक्षा
विश्व में भारत

विकसित भारत का अर्थ और उद्देश्य जानने के बाद इस अध्याय के आधार स्तम्भ अहिल्याबाई होल्कर जी के जीवन पर आधारित इस पुस्तिका में हमें उनके विषय में अब मुख्य जानकारी मिल गई है। राष्ट्र सेविका समिति की आदर्श हैं- नेतृत्व की तेजस्वी ज्योति- रानी लक्ष्मीबाई, कर्तृत्व की आदर्श देवी अहिल्याबाई होल्कर, मातृत्व की आदर्श जीजामाता। जिस विकसित भारत की संकल्पना हम अपने आजादी के अमृतकाल में देख रहे है उसे हमारी समिति कर्तृत्व के लिए आदर्श देवी अहिल्याबाई होल्कर ने पहले ही प्रयास कर दिया था, प्रस्तुत अध्याय में देवी अहिल्याबाई के उन तमाम कर्तृत्व को हम जानेगे, जो आज हम अपने विकसित भारत के मुख्य विषय के रूप में देखते हैं-

वर्त्तमान भारत कृषि में आत्मनिर्भर बन चुका है अब विश्व के प्रमुख औद्योगीकृत देश की श्रेणी में हैं, चन्द्रयान-2 सफलतापूर्वक चन्द्रमा पर जा चुका विश्व का दूसरी सबसे बड़ी सैन्य शक्ति भारत की है, अर्थव्यवस्था की दृष्टि से भी भारत का स्थान विश्व में 5वाँ है। जब सम्पूर्ण विश्व कोविड-19 जैसे महामारी से जूझ रहा था, तब भारत ने कोविड के लिए वैक्सीन बनाकर विश्वगुरू होने की तरफ संकेत दिया। वर्तमान भारत की नारियाँ भी भारत की प्रथम नागरिक सहित अनेक उच्च पदों पर आसीन हो भारत को सुदृढ़ करने में लगी हुई हैं। वर्त्तमान भारत को जानने के बाद इस अध्याय के आधार स्तम्भ अहिल्याबाई होल्कर के जीवन पर आधारित इस पुस्तिका में अब मुख्य जानकारी मिल गयी है, जिस वर्तमान भारत की संकल्पना (स्थिति) हम अपने आजादी के अमृतकाल में देख रहे हैं उसे राष्ट्र सेविका समिति की कर्तृत्व की आदर्श देवी अहिल्याबाई होल्कर ने पहले से ही प्रयास कर दिया था, प्रस्तुत अध्याय में देवी अहिल्याबाई के उन अनेकानेक कर्तृत्व को हम जानेगें, जो हम आज वर्तमान भारत में देख रहे हैं-

अहिल्याबाई होल्कर अपने सूबे में महिलाओं को आत्मरक्षा का प्रशिक्षण दिया करती थीं, उन्होने महिलाओं की एक सैन्य टुकड़ी गठित की थी, जिसमें 500 महिलाएँ थी[1]" अहिल्याबाई जी से पहले यह परम्परा थी कि जिस महिला के कोई सन्तान न हो और वह विधवा हो जाय तो पति के सम्पत्ति में उसका कोई अधिकार नहीं था अहिल्याबाई ने यह परम्परा हो समाप्त नहीं की बल्कि महिलाओं को सम्पत्ति में अधिकार भी दिया।[2] महिलाओं को अपनी सम्पत्ति बेचने या अपनी इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकार भी दिया।[3] विधवा महिला को पुत्र गोद (दत्तक पुत्र) लेने का अधिकार भी अहिल्याबाई होल्कर ने अपनी महिला प्रजा को दिया।[4] विधवा विवाह को भी अहिल्याबाई जी अपने सूबे में प्रारम्भ किया एक महिला का (विधवा विवाह) उन्होंने स्वयं करवाया था।[5] जब कोई भी स्त्री अहिल्याबाई जी के पास अपनी कोई समस्या लेकर राजसभा में आती थी, तो राजसभा के सभी पुरुषों को बाहर जाना पड़ता था, उनका इतना आत्मीयता थी कि स्त्रियाँ अपने व्यक्तिगत और भावनात्मक विषयों पर भी चर्चा करती थीं, अहिल्याबाई जी उनकी आर्थिक सहायता करने के साथ ही आत्मनिर्भर बनने की दिशा की ओर प्रोत्साहित भी करती थीं।[6] स्त्रियों के मान-सम्मान के लिए उन्होंने पवित्र नदियों के घाट पर स्त्रियों के लिए स्थान निर्धारित किया।[7] अहिल्याबाई होल्कर जब भी तीर्थ यात्रा या किसी सार्वजनिक स्थल पर जाती थीं वहाँ स्त्रियों से अवश्य मिलकर उनका कुशलक्षेम जानती थी, आवश्यक सलाह, सहयोग भी देती थी।[8]

अहिल्याबाई होल्कर के शासन के दौरान ही उनकी प्रजा 'मातोश्री' कहकर उन्हें सम्बोधित करती थी उनके शासनकाल में उनका सूबा (राज्य) प्रमुख शक्तिशाली राज्यों में एक था, मातोश्री को सभी राज्यों से आदर सत्कार प्राप्त था, 'चन्द्रावत विद्रोह प्रकरण' को छोड़कर पड़ोसी राज्यों के साथ उनके शासनकाल में कभी भी युद्ध का अवसर नहीं आया। राज्य के राजदूत, जिन्हे तत्कालीन समय में 'वकील' कहा जाता था, देवी अहिल्याबाई के वकील स्थायी रूप से पूना, ग्वालियर, उदयपुर, जयपुर, हैदराबाद, अयोध्या, नागपुर, लखनऊ, भोपाल, कोटा, दिल्ली, श्रीरंगपट्टनम, कलकत्ता, डोंगरपुर, प्रतापगढ़ आदि अनेक राज्यों में नियुक्त थे।[9]

मातोश्री के शासनकाल से पूर्व राज्य में न्यायालयों की संख्या काफी कम थी, होल्कर राज्य की स्थापना के बाद देवी अहिल्याबाई के शासनकाल में ही नियमबद्ध न्यायालयों की स्थापना हुई, प्रजा को समय से न्याय उपलब्ध कराने के उद्देश्य से देवी द्वारा स्थान-स्थान पर न्यायालयों की स्थापना कर न्यायदान का विस्तृत अधिकार उन्हें दिये।[10]" पंचायतों तथा न्यायालय में न्याय सुगम तथा सस्ता था तथा उसमें विलम्ब नहीं होता था, इन न्यायलयों में असन्तुष्ट लोग सीधे देवी के दरबार में उपस्थित होकर अपनी शिकायत प्रस्तुत कर सकता था।"[11]

मातोश्री के शासनकाल में प्रजा पर कर नियम सरल था, उनका मानना था कि प्रजा पर इतने ही कर लगाने चाहिए कि उन्हें चुकाने में कष्ट न हों। कर और लगान की वसूली के लिए उन्होंने अपने राज्य को जिलों और तहसीलों में बाँटकर उनमें सुयोग अधिकारियों को नियुक्ति की, ग्रामों और पंचायतों को उन्होंने व्यापक अधिकार दिये थे। मातोश्री कृषि के विकास पर भी ध्यान दिया कृषि में लगान काफी कम थे। बाढ़ और सूखा की स्थिति में देवी कृषि लगान से मुक्त कर देती थीं। देवी अहिल्याबाई इस बात पर विशेष ध्यान देती थीं कि राज्य में शासकीय कर्मचारी व्यापारियों को परेशान न करें। मातोश्री के राज्य में उनके आस-पास के पड़ोसी राज्यों

से काफी कम कर होते थे।

चन्द्रावतों के तीन विद्रोहों तथा उनकी मदद के लिए उदयपुर के राणा द्वारा किए गये आक्रमण, जिसे मातोश्री ने अपने कुशल नेतृत्व तथा युद्ध नीति से असफल बनाया था, देवी अहिल्या ने अपनी सेना को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित कर रखा था, साथ ही युद्ध विद्या से प्रशिक्षित कर रखा था, युद्ध सामग्री और खाद्य सामग्री के भण्डार भी भरकर रखे हुए थे। युद्ध में जाने वाले सैनिकों के परिवारों का विशेष ध्यान रखती थीं, युद्ध में वीरगति पाने वाले सैनिकों के परिवारों के भरण-पोषण की व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती थी अहिल्या जी के इस प्रकार के ममतामयी व्यवहार से सैनिक, प्रजा सदैव सन्तुष्ट और प्रसन्न रहती थी।"[12]

मातोश्री अहिल्याबाई होल्कर धर्मपरायण शिव भक्त थीं, मुख्य धार्मिक स्थानों पर धर्मशाला, मन्दिर का पुनः उद्धारण आदि कार्य वे निरन्तर करती रहती थीं, अपने राज्य और सीमाओं के बाहर भारत भर के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों पर, मन्दिर, घाट, कुआं बावड़ी का निर्माण करवाया। अहिल्याबाई राजाज्ञाओं पर हस्ताक्षर करते समय अपना नाम नहीं लिखती थीं बल्कि पत्र के नीचे केवल श्री शङ्कर लिख देती थीं. उनके रुपयों पर शिवलिङ्ग बिल्वपत्र और नन्दी के चित्र अंकित होते थे।[13]

अहिल्याबाई का मानना था कि धन, प्रजा व ईश्वर की दी हुई, वह धरोहर स्वरूप निधि है जिसकी मैं मालिक नहीं बल्कि प्रजाहित में उपयोग की जिम्मेदार संरक्षक हूँ।[14] अहिल्याबाई सदैव निष्काम भाव से अपने राज्य और प्रजा का समुचित संरक्षण किया।

अहिल्याबाई होल्कर के राज्य में जातिभेद का कोई मान्यता नहीं थी, सारी प्रजा समान रूप से आदर की हकदार थीं, इसका असर यह था कि अनेक बार लोग निजामशाही व पेशवाशाही शासन छोड़कर मातोश्री के राज्य में आकर बसने की इच्छा स्वयं इनसे व्यक्त करते थे।[15]

अहिल्याबाई होल्कर अपने शासनकाल (1767-1795) में राज्य में सड़क व्यवस्था उसके राजगृह (पथिक विश्रामशाला) आदि पर अपना काफी धन खर्च किया परिणामस्वरूप आज भी इन्दौर शहर भारत सरकारी द्वारा लगातार 5वीं बार सबसे स्वच्छ शहर के सम्मान से सम्मानित है। आज भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में मातोश्री द्वारा बनवाये गये घाट, मन्दिर, धर्मशाला आदि उनके सशक्त व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। भारत के प्राचीन शहर काशी में मणिकर्निका घाट, हरिद्वार का कुशावर्त घाट, अपनी समृद्ध विरासत के साथ अहिल्याबाई होल्कर के मातोश्री, लोकमाता आदि शब्दावली पूर्ण सम्मान के साक्षी हैं।

जिस विकसित भारत का स्वपन हम भारत के नागरिक आज देख रहे हैं @ भारत 2047 उसका सपना मातोश्री आज 260 वर्ष पूर्व ही देखा ही नहीं बल्कि उसको पूरा करने का प्रयास भी किया यदि आज भारत लोकमाता अहिल्याबाई होल्कर के दिखाए मार्ग पर चलता है तो निश्चय ही वह विश्वगुरू बनाने के मार्ग पर अग्रसर हो जाएगा।

संदर्भ

1 रमेश शर्मा, अहिल्याबाई होल्कर, बिन्दु से विराट तक, पृ. 25.
2 वहीं।
3 वहीं।
4 वहीं, पृ. 27. अरविन्द जावलेकर, लोकमाता अहिल्याबाई, पृ. 90.
5 वहीं, पृ. 26, अरविन्द जावलेकर, लोकमाता अहिल्याबाई, पृ.90-91.
6 वहीं।
7 वहीं।
8 वहीं।
9 अरविन्द जावलेकर, लोकमाता अहिल्याबाई, पृ. 116.
10 वहीं, पृ. 98.
11 वहीं, पृ. 99.
12 वहीं, पृ. 108.
13 अहिल्याबाई होल्कर की जीवनी, Jivani.org.
14 वहीं।
15 वहीं।

*****

मीरा कान्त के नाटक और स्त्री प्रश्न

-डॉ.अशोक कुमार मीणा
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. कंचन
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

स्त्री चिंतन को परिभाषित करना चाहे तो वह घर-परिवार, समाज, नीति और राष्ट्र नीति में नारी की अस्मिता, अधिकार और उन अधिकारों के लिए संघर्ष से जुड़े संवाद की संकल्पना है। वहाँ सामाजिक-धार्मिक अंधरूढ़ियों में दबी-पिसी स्त्री की आहें-कराहें ही नहीं बल्कि शोषक व्यवस्था के विरुद्ध उसका विद्रोह भी है। साथ ही औपनिवेशिक भारत में आज़ादी की लड़ाई के दौरान स्त्री चेतना का एक अलग किस्म का भव्य रूप हमारे सामने आता है। उस समय स्त्रियाँ, पुरुषों के साथ स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल हुई और अपने सामर्थ्य का भरपूर परिचय दिया। यह भूमिका इसलिए भी जरूरी थी कि न तो भारत में साहसी आत्मचेता स्त्रियों की कमी रही है और न लोहिया, राममोहन राय जैसे सत्पुरुषों की जिन्होंने स्त्रियों को रूढ़िबद्ध समाज के अंधेरे से बाहर निकलने में मदद की और स्त्री विमर्श की अवधारणा को यथार्थ का धरातल दिया।

यह सच है कि स्वतंत्र भारत के संविधान ने कई अधिकार स्त्रियों को दिए हैं। पर यह भी सच है कि घर, परिवार और समाज में वे आज भी शोषण मुक्त नहीं हो पाई हैं। समय के बदलते तापमान में, बदलते सामाजिक संदर्भों में, अपनी अधीनस्थ भूमिका, शोषण, असमानता, से मुक्ति के प्रश्न एवं दोहरे मानदंडो के बीच अपनी बदलती सामाजिक भूमिका के बावजूद स्त्री प्रश्न नहीं बदले हैं। स्त्री-पुरुष और व्यवस्था से जुड़े स्त्री प्रश्न जटिलतर होते गए हैं। स्त्री चिंतन का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की अस्मिता की लड़ाई आधी दुनिया को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है। समाज और संस्कृति की नई सबसे बड़ी माँग स्त्री चिंतन के सभी पहलुओं पर मर्दवादी जोश से मुक्त होकर सोचना विचारना है | इधर स्त्री विमर्श को लेकर मोहन राकेश, भीष्म साहनी, मीरा कांत, रमेश बक्षी, स्वदेश दीपक, राजेश जैन, नंदकिशोर के नाटकों में स्त्रियों की बदलती छवि को नए आयाम दिए गए। सामंती परिवारों की जकड़न, से मुक्ति के लिए संघर्ष करती स्त्रियों को विवाह संस्था और दाम्पत्य संबंधों की विडंबनाओं पर सार्थक विमर्श के लिए वर्तमान साहित्य सामने लाता है। वर्तमान साहित्य जगत में स्त्री लेखन का विस्तार और विकास लगातार हो रहा है | महिलाओं ने अपने लेखन के बल से सामाजिक असंगतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई है | मीरा कांत ऐसी महिला लेखिकाओं के बीच एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं | उन्होंने नाटककार के रूप में हिंदी साहित्य में अपना विशेष योगदान दिया है | बदलते परिवेश में स्त्री के प्रश्नों, संघर्षों, चुनौतियों, अधिकारों, शोषण एवं विद्रोह का यथार्थ चित्रण करने के साथ-साथ स्त्री अस्मिता से जुड़े गंभीर प्रश्नों पर भी मीरा कांत जी ने अपना मत प्रकट किया है | मीरा कांत ने अपने नाट्य साहित्य के माध्यम से समाज के विभिन्न पहलुओं को छूने का प्रयास किया है, जिसमें उनकी संवेदनशीलता का प्रदर्शन है | उनकी रचनाओं में नारी को सकारात्मकता, स्वतंत्रता और सामाजिक समर्थन का प्रतीक माना गया | संघर्षशील स्त्री और समाज के मुख्य धारा से छूटे हुए व्यक्ति उनके साहित्यिक धूरी रहे हैं | यही कारण है कि उन्होंने उपेक्षित और प्रताड़ित नारी को केंद्र में रखकर सृजन किया है|

स्त्री पुरुष का संघर्ष सिर्फ व्यक्ति के मध्य ही नहीं होता बल्कि स्त्री को अपने अस्तित्व के लिए भी पूरे समाज से संघर्ष करना पड़ता है। मीरा कांत ने अपने नाटक 'नेपथ्य राग' में अंहवादी पुरुष समाज में स्त्री की नियति को नये रूप में प्रस्तुत किया है। स्त्री चाहे कितनी भी उन्नति कर ले, पुरुष समाज उसे आगे बढ़ता हुआ नहीं देख सकता है और न ही उसे स्त्री की तरक्की स्वीकार है। इस नाटक में खना या किसी भी सदियों से स्त्री पर हो रहे अत्याचार को प्रस्तुत किया गया है। पुरुष समाज को स्त्री का वैदुष्य, उनकी अभिव्यक्ति स्वतंत्रता स्वीकार्य नहीं है। खना के इस चरित्र द्वारा स्त्री की इसी पीड़ा को नाटक में स्वर दिया गया है। नाटक में खना की कहानी मेधा को मेधा की माँ सुनाती है। मेधा एक आधुनिक युवती है जो अपने कार्यालय में सहकर्मियों से सहयोग न मिलने पर दुखी है। उसकी माँ उदाहरण के रूप में खना की कहानी सुनाती है। जिससे यह पता चलता है कि स्त्री और पुरुष के संघर्ष की कथा आज की नहीं बल्कि सदियों पुरानी है और इस संघर्ष में विद्रोह के स्वर कम ही सुनाई पड़ते हैं। नाटक में खना का चरित्र एक ऐसी युवती का है जो प्रतिभाशाली और अध्यसायी है। जिसे आकाश के ग्रह-नक्षत्रों, उनके संकेतों के बारे में जानने की इच्छा है। अपनी विलक्षण बुद्धि एवं जिज्ञासा के कारण उसे प्रख्यात ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर की शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त अपने जीवन से अनेक अपेक्षाएँ हैं:

" जीवन से अपेक्षा। मेरी अपेक्षा (प्रफुल्लित स्वर में) मैं ... मैं जीवन को अवनि से अंबर तक आत्मसात् करना चाहती हैं जिससे स्थूल आकृतियों के पार देख सकूँ।.... पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक फैले गगन मंडल में कभी चमकते, कभी ठिठकते, कभी विमुख होते ग्रह नक्षत्रों व तारों का सत्व ग्रहण करना चाहती हैं। उनसे बातें करना चाहती हूँ।..... मुझे ज्योतिष की ज्योति का आशीर्वाद दीजिए गुरुवर..... जिससे सृष्टि को समझ सकूँ..... ग्रह नक्षत्रों को साक्षात् देख पाऊँ.... उनकी गति जानने-समझने में ही मेरी गति हो। ऐसा ज्ञान दें जो भय से मुक्ति दें।"[1] इन पंक्तियों में खना एक ऐसी युवती के रूप में उभरती है जो अपने जीवन में ज्योतिष ज्ञान के क्षेत्र में असाधारण उपलब्धि पाना चाहती है। आचार्य वराह मिहिर के सान्निध्य में वह एक बहुत बड़ी भविष्य वक्ता बनती है किन्तु समाज में उसकी क्षमता पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता है। खना की सफलता का कारण उसके वैदुष्य को नहीं माना जाता बल्कि "आचार्य वराह मिहिर की पुत्रवधू खना ने अपने श्वसुर का बनाया हुआ कोई तैल पी लिया था.... ज्योतिषमति तैल।"[2]

ऐसा कहकर उसकी विद्वता को गलत सिद्ध किया जाता है। खना की भविष्यवाणी की सफलता से उसकी कीर्ति विक्रमादित्य के दरबार तक पहुँचती है जो उसे अपने दरबार में सभासद के रूप में लाना चाहते हैं। एक स्त्री को सभासद के रूप में लाया जाना पुरुष समाज (नवरत्नों) को रास नहीं आता और आचार्य वराह मिहिर भी मौन रहकर उनका साथ देते हैं। खना में क्षमता होने के बाद भी, केवल स्त्री होने कारण उसके दरबार में

शामिल होने पर आपत्ति की जाती है। स्त्री की विद्वता को समाज सहज स्वीकार नहीं करता। वह चाहे आधुनिक युग की मेधा हो या पुरातन युग की खना। खना के गुरु वराह मिहिर भी इसी पुरुष समाज के अंग बनकर उसकी उन्नति को स्वीकार नहीं कर पाते और "उनका कहना है कि यदि स्त्री सभासद बने तो पहले उसकी जीभ काट ली जाए।"[3] खना का यह कथन :- " (करुणा नयी मुस्कान के साथ स्वगत)..... श्रावण क्या ये तो आषाढ़ से भी पहले के मेघ हैं। बरसेंगे नहीं। आषाढ़ अभी नहीं आया... नहीं आया.... आषाढ़ आने में कई संवत्सर बीत जाएंगे... कई युग.... यह नेपथ्य है इसे मंच एक पहुंचने में समय लगेगा... कल्पांत.... कई युग.... श्रावण क्या अभी नहीं है..... पूर्वाषाढ़ है.... यह नेपथ्य है ... नेपथ्य।"[4] यह नाटक स्त्रियों के मुख्यधारा में आने वाली सदियों से चली आ रही कठिनाइयों को प्रस्तुत करता है। खना का क्या हुआ यह कोई नहीं जानता। कोई कहता है कि उसने अपनी जुबान खुद काट ली या उसके गुरु ने उसकी जुबान काटी अर्थात् स्त्री-पुरुष के संघर्ष ने खना की विद्वता को नेपथ्य में ही रखा, उसे सामने नहीं आने दिया।

मीरा कान्त का अन्य नाटक कंधे पर बैठा था शाप ऐतिहासिकता के आधार को ग्रहण करता हुआ समकालीन स्थितियों को संस्पर्श से आगे बढ़ता है | नाटक की कहानी का संस्कृत के दो महान कवियों कुमार दास और कालिदास के समय की प्रसिद्ध गणिका कामिनी के इर्द गिर्द बुना गया है | गणिका कामिनी सिंहलदीप के राजा कुमार दास पर आसक्त होती है | कुमार भी संस्कृत के एक श्लोक को पूरा करने की शर्त पर उसे विवाह का वचन देते हैं | श्लोक को पूरा करने के लिए कामिनी महाकवि कालिदास से सहायता मांगती हैं | कालिदास कुमार दास से मिलने के बहाने कामिनी के घर पहुंचते हैं तथा अधूरे श्लोक को पूरा करते हैं | कामिनी की माँ राजम्मा कालिदास की अप्रत्याशित सहायता से प्रसन्न तो बहुत होती है , किंतु अगले ही पल इस रहस्य के खुलने पर मिलने वाले दंड की कल्पना से आतंकित हो जाती है और निदान के रूप में वह कालिदास को विष पिला देती है | कामिनी को अपनी माँ के कृत्य पर अत्यंत ग्लानि होती है और प्रायश्चित करने के उद्देश्य से वह स्वयं भी विष पी लेती है | अपने मित्र की मृत्यु का समाचार सुनकर कुमार दास अत्यन्त दुखी होते हैं और अपराध बोध से ग्रस्त होकर स्वयं भी कालिदास एवं कामिनी की सामूहिक चिता में कूदकर अपने प्राण दे देते हैं | कारागार में बंद राजम्मा इस समाचार को सुन कर प्रश्न करती है कि दोनों कवियों की दुखद मृत्यु के लोग याद करेंगे किंतु कामिनी की चर्चा कौन करेगा |

"सुमित्रा: (घबराकर) पर यह तो गणिका धर्म के विरुद्ध हुआ

राजम्मा : धर्म अधर्म समझाएगी तुम मुझे? कौन सा धर्म? वही जो समाज में निर्बल निर्धन बालिकाओं को अपने हित के लिए गणिका बना देते हैं? और तुम्हारे माता पिता ने जो किया वह क्या था? धर्म या अधर्म?" [5]

यहाँ मीरा कांत जी स्त्री के अपराधी रूप को प्रस्तुत करने की बजाय उन स्थितियों और उन कारणों को प्रस्तुत करना चाहती है, जहाँ आत्मरक्षा के लिए कोई भी व्यक्ति वही करता जो गणिका कामिनी ने किया अर्धांगिनी के रूप में स्वीकृत होने के लिए अपने स्त्रीत्व की रक्षा करने और वेश्यावृत्ति से निकलने के लिए कामिनी कुमार दास के साथ विवाह करना चाहती है| कामिनी के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने सदियों से सामाजिक ढांचे में जमीन व्यवस्था के भीतर झांकने का प्रयास किया है |

पहले स्त्री शोषण की जो बातें घर की चार दीवारों में ही बंद रहती थी आज साहित्य की अलग-अलग विधाओं में उन बातों को स्थान मिल रहा है | मेरा कांत जी का नाटक अंत हाजिर हो वर्तमान समय के ऐसे ही सड़े गले किंतु दबे ढके यथार्थ को प्रस्तुत करने वाला नाटक है अपने नैतिक मूल्यों पर परंपरागत मान्यताओं सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्कृति पर गर्व करने वाला भारतीय समाज आज ऐसी स्थितियों से गुजर रहा है जो निश्चय ही न केवल अबोध बच्चियों किशोरियों,स्त्रियों के लिए बल्कि मानवता के लिए भी खतरा साबित हो सकती हैं |पितृसत्तात्मक संवेदनाओं से शून्य मानसिकता धारण किए हुए पुरुष आज अपनी वासना से दिग्भ्रमित होकर अपने ही परिवार को शिकार बनाने में लगा है | अंत हाजिर हों उन स्थितियों का नाटक है जब घर सुरक्षित चार दीवार का प्रतीक न होकर खतरा बन जाता है | ये नाटक समस्याप्रधान नाटक है | स्त्रियां हमेशा से परिवार के साथ स्वयं को सुरक्षित महसूस करती है परंतु आज स्त्रियां अपने घर पर अपने सुरक्षित नहीं हैं | उनका रक्षक ही उनका भक्षक बन बैठा है | आधुनिक दौर में आगे बढ़ते हुए मनुष्य ने अपने नैतिक और मानवीय मूल्यों को ताक पर रखा है समकालीन दौर को आधार बनाता नाटक अंत हाजिर हों यौन शोषण जैसी गंभीर समस्या को प्रकाश में लाता है कॉलेज में पढ़ने वाले कुछ छात्र एक नाटक की तैयारी कर रहे हैं ये विद्यार्थी झूठे राजनीति का विरोध करने वाले और अन्याय के खिलाफ़ आवाज उठाने वाले युवक हैं पुरुष पात्रो में मुख्य भूमिका पापा की हैं क्योंकि पापा पात्र के माध्यम से ही समस्या को प्रस्तुत किया गया है | पापा शिल्पा के पिता हैं जिनकी तीन बेटियां हैं वह अशिक्षित नहीं अपितु समाज को दिशा और दृष्टि देने वाले प्राध्यापक हैं लेकिन स्त्रियों के प्रति ऐसे बुद्धिजीवी की सोच भी आदिपुरूष से ज्यादा नहीं जिसके लिए स्त्री केवल भोग की वस्तु है | विश्वविद्यालय के प्रोफेसर होने पर भी वह आदिम कुंठा से ग्रस्त हैं और पुत्र की चाह में इस कदर हैवान बन जाता है की अपनी पत्नी के देहांत के बाद बेटी का ही यौन शोषण करने लगता है |

पापा :"साली क्या जिंदगी है हमारी भी यार. बीज बो उसे सीखते रहो सालों….. पालों पोसो…. जब लहलहाने लगे तो किसी और की नजर कर दो ! तुम भी तो भुगत रहे हो तुम्हारी ऐसी खूबसूरत जवान बेटे को ले जाने की वो साला तुम्हारा प्रोस्पेक्टिव दामाद कीमत चाहता है | कम न ज्यादा…. दस लाख! साला…. पाले हम फल खाएं दूसरे! ओह इस घुटन में तो नशा भी नहीं ठहरता…… चलो….. चलो छत पर चलते हैं हवा में "[6]

यह नाटक महानगरीय परिवार के रिश्तों की दलदल में प्रवेश करवाता है, पर बलात्कार के मामले आज के समय में चिंता का विषय है मीरा कांत जी ने उसी को आधार बनाकर रिश्तों की मर्यादा पर सवाल खड़े किए हैं |

आज अखबार में तेजी से घरेलू हिंसा की खबर अपनी जगह बनाती जा रही है | पुलिस एवं एक गैर सरकारी संस्था का संयुक्त रूप से किया गया सर्वेक्षण बताता है कि घर में बच्चियों व किशोरियां सुरक्षित नहीं है आंकड़े बताते हैं कि आठ में से एक महिला घर के ही सदस्यों द्वारा शोषित होती है | वस्तुतः मीराकांत का यह नाटक बलात्कार की कथा नहीं रिश्तों की अमानवीयता की कथा है, विश्वासघात की कथा है|

उत्तर प्रश्न मीराकांत जी का एक सचेत बुद्धिमान स्त्री द्वारा प्रस्तुत एक प्रश्न वाचक नाटक है | यह नाटक स्त्री की समस्याओं संघर्षों प्रश्नों को सामाजिक राजनीतिक स्तर पर स्वर देकर स्त्री अधिकारों की मांग करता है मीराकांत जी ने इस नाटक में जीवंत और सबल स्त्री पात्रो को प्रस्तुत किया है | नाटक की नायिका यशोवती सचेत, स्वाभिमानी एवं सक्षम स्त्री है , जो सत्ता को संभालने की योग्यता रखती है | लेखिका अपने नाटक की

भूमिका में स्पष्ट किया है कि "नाटक में महारानी यशोवती अपने शासन की अल्पावधि में ही राजधर्म को पुरुष सत्ता को शोषणकारी दमन चक्र से मुक्त करने का साहस दिखाती है | राजस्व अधिकारी व सामान्त समरसेन के माध्यम से वह समाज व संबंधों में व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रहार करती है| सामंती मूल्यों के स्थान पर जनतांत्रिक मूल्यों को सर्वोपरि ठहराती है| इसी मोड़ पर आकर वह स्त्री शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हुए व्यवस्था में व्याप्त उन मूल्यों को चुनौती देती है, जो रेशमी परदों की आड़ में स्त्री की संभावनाओं को पददलित करते हैं |"[7]

मीराकांत जी का उत्तर प्रश्न नाटक कल्हण कृत प्रसिद्ध रचना राजतरंगिणी में से संक्षिप्त घटनाक्रम को आधार बनाकर रचा गया है | यह नाटक कश्मीर की पहली महिला शासक यशोवती की कहानी है | जो गोनन्द वंश की पुत्रवधू थी | इस वंश के महाराज गोनंद ने जरासंध के अनुरोध पर मथुरा पर आक्रमण कर वहाँ उथल पुथल मचा दी थी | उस युद्ध में यादव सेना को बुरी तरह हारता देख उसकी रक्षा के लिए बलराम ने आकर गोनंद को घेर लिया और बलराम की गदा के प्रहार से गोनंद ने अपने प्राण त्यागे | अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने की उभावना गोनंद के पुत्र कश्मीर नरेश दामोदर के भीतर बसी थी |उसी समय गांधार देश के नरेश ने अपनी पुत्री के स्वयंवर का आयोजन किया, जिसमें यदुवंशी भी आमंत्रित थे| स्वयंवर में जाकर दामोदर ने यदुवंशियों को युद्ध के लिए ललकारा | अंत में कृष्ण के सुदर्शन चक्र से कश्मीर नरेश दामोदर की हत्या हुई | भगवान कृष्ण ने ही स्वयं दामोदर की गर्भवती पत्नी यशोवती का राज्याभिषेक करवा दिया | यशोवती के राज्याभिषेक के अवसर पर कृष्ण के मंत्रिमंडल के सदस्यों ने आपत्ति प्रकट की, जिसे कृष्ण ने शीघ्र ही शांत भी कर दिया | यशोवती ने कश्मीर का कार्यभार सम्भाला और शिशु को जन्म दिया |

इस नाटक में एक ऐसी राजव्यवस्था का वर्णन है जो प्रजातांत्रिक मूल्यों की हत्या व्यवस्था मैं भ्रष्ट मूल्यों का प्रसार करती है | इस शोषण के विरुद्ध यशोवती का विद्रोह नाटक को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ले कर आता है | यशोवती में किसी सत्ता को पाने का लालच नहीं बल्कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का साहस है | लेखिका यशोवती के माध्यम से स्त्री शक्ति व अधिकारों की लोकतांत्रिक मांग करती है | यशोवती स्त्री शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हुए व्यवस्था में व्याप्त उन मूल्यों को चुनौती देती है जो पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की क्षमताओं ,वैचारिकता ,स्त्रीवादी चेतना को अनदेखा- अनसुना करते हुए राज़ सत्ता संभालने के अयोग्य समझते हैं | यशोवती निर्णय करती है कि वह शशक के रूप में तब तक पद त्याग नहीं करेगी जब तक अपने पुत्र को वे मूल्य व संस्कार न दें जो स्त्री शक्ति की संभावना के पक्षधर हो | यह नाटक आज समाज में स्त्री को उसकी रूढ़िवादी निर्धारित भूमिका में रख कर गरिमा मंडित करने वालों के षडयंत्र की पोल खोलता है |उत्तर प्रश्न नाटक वस्तुतः आधुनिक युग का प्रासंगिक प्रश्न हैं ऐसा प्रश्न जिससे स्त्री आज भी जूझ रही है |

मीरा कांत के नाटकों के विषय स्त्री जीवन से संबंधित हैं | उन्होंने आधुनिक स्त्री जीवन को प्रामाणिक ,ऐतिहासिक, आधुनिक चरित्रों के माध्यम से प्रस्फुटित किया है | उदारीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में स्त्री विमर्श को अपने नए सोच के कारगर औजार तलाशने होंगे। पुराने औजार लिएर स्त्री चलने वाला नहीं है। आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने वीडियो, आजारों से काम बिछाकर दृश्य-श्रव्य माध्यमों से, जहाँ हमें पूरी दुनिया से जोड़ दिया वहीं उपभोक्तावादी संस्कृति को भी बढ़ावा दिया। मूल्यों और रिश्तों पर बाजार हावी हो गया। देश में जहाँ बदलाव का दौर पूरे वेग से शुरू हो गया, वहीं स्त्री अस्मिता और स्त्री स्वातंत्र्य को लेकर गलतफहमियाँ भी फैलती गई | इसके बावजूद साहित्य में स्त्री की यह संघर्ष यात्रा जारी रही। मीरा कान्त जी ने साहित्य में जहाँ एक ओर भोगवादी तंत्र में वस्तु बनती स्त्री की चेतना को आत्मशोधन के लिए चेताया, तो दूसरी ओर सांप्रदायिक उन्माद और आंतकवाद की परिणतियों से जूझती स्त्री की व्यथा और संघर्ष को अपने नाटकों में लिपिबद्ध किया।

संदर्भ सूची

1.'नेपथ्य राग' पृष्ठ संख्या 16-17
2. वही, पृ०सं० 42
3. वही, पृ०सं० 61
4. वही, पृ०सं० 61
5. कंधे पर बैठा था सांप, पृष्ठ संख्या 46-47
6. अंत हाजिर हो, पृष्ठ संख्या 65
7. भूमिका, उत्तर प्रश्न

*****

Ensuring Digital Privacy for Children: Addressing Emerging Challenges in India

-Dr. Inderpreet Kaur Narang
Assistant Professor,
Department of Laws,
Guru Nanak Dev University, Regional Campus,
Jalandhar

Abstract

The swift incorporation of digital technologies into children's life has revolutionised their learning, play, and global connectivity, offering unmatched prospects for education, entertainment, and social engagement. Nonetheless, this heightened connectedness raises substantial concerns around digital privacy, data security, and the ethical ramifications of data gathering activities aimed at kids. Children, due to their heightened susceptibility to exploitation in the digital domain, encounter threats like data surveillance, exposure to inappropriate content, and the misuse of personal information. This study examines the diverse problems related to protecting children's digital privacy, emphasising the intricate interaction of legal, technological, and socio-cultural elements.

An extensive analysis of current legislative frameworks, including the Children's Online Privacy Protection Act (COPPA) and the General Data Protection Regulation (GDPR), uncovers significant deficiencies in tackling modern threats. The study assesses the effectiveness of technological safeguards, including parental controls, encryption, and AI-driven content moderation, while examining socio-cultural factors such as parental awareness, digital literacy, and the role of educational institutions in promoting responsible digital behaviour.

The study emphasises the collective obligation of parents, educators, technology developers, and regulators in fostering a safer digital environment for children. The study identifies deficiencies in existing systems and practices, proposing concrete recommendations such as the formulation of child-centric privacy policies, the augmentation of digital literacy programs, and the enforcement of more stringent data security measures. It also emphasises the necessity of promoting international cooperation to tackle these difficulties effectively.

This study enhances the discourse on ethical digital engagement, promoting a balanced strategy that utilises the advantages of digital technologies while safeguarding the rights and welfare of children in a progressively interconnected environment. This heightened connectedness raises substantial concerns around digital privacy, data security, and the ethical ramifications of data gathering activities aimed at kids. Children, due to their heightened susceptibility to exploitation in the digital domain, encounter threats like data surveillance, exposure to inappropriate content, and the misuse of personal information. This study examines the diverse problems related to protecting children's digital privacy, emphasising the intricate interaction of legal, technological, and socio

-cultural elements.

An extensive analysis of current legislative frameworks, including the Children's Online Privacy Protection Act (COPPA) and the General Data Protection Regulation (GDPR), uncovers significant deficiencies in tackling modern threats. The study assesses the effectiveness of technological safeguards, including parental controls, encryption, and AI-driven content moderation, while examining socio-cultural factors such as parental awareness, digital literacy, and the role of educational institutions in promoting responsible digital behaviour.

The study emphasises the collective obligation of parents, educators, technology developers, and regulators in fostering a safer digital environment for children. The study identifies deficiencies in existing systems and practices, proposing concrete recommendations such as the formulation of child-centric privacy policies, the augmentation of digital literacy programs, and the enforcement of more stringent data security measures. It also emphasises the necessity of promoting international cooperation to tackle these difficulties effectively.

This study enhances the discourse on ethical digital engagement, promoting a balanced strategy that utilises the advantages of digital technologies while safeguarding the rights and welfare of children in a progressively interconnected environment.

Keywords: Children's digital privacy, data security, privacy regulations, ethical tech, privacy-by-design, digital literacy.

Introduction

Children today represent the first generation born into a digital age. Their parents are the primary custodians of "digital children." Guardians and children themselves may communicate personal information pertaining to children, specifically the personal information of children and that provided by children. During early development, a child's digital identity is mostly shaped by the information provided by their family. The initial instance of this usually entails in utero images shared by parents and families on social media. Consequently, it has been noted that 80 percent of children in specific Western countries had a digital footprint before the age of 2. Children today grow up as digital natives, interacting with smart devices and online platforms from an early age. While this integration of technology enriches their lives, it also exposes them to risks of data misuse, identity theft, and surveillance.

According to Section 9 of the Digital Personal Data Protection Act, data fiduciaries are required to secure "verifiable consent" from parents or legal guardians prior to processing data of individuals under the age of 18. This provision also forbids the processing of data that may endanger minors, targeting them with advertisements, or monitoring their activity. The Data Protection Board may impose penalties of up to ₹200 crore for non-compliance with these regulations. The structure, however extensive, commences with a significant flaw: self-declaration.

Privacy constitutes a collective obligation. Governments, enterprises, and individuals each have a responsibility in safeguarding its protection. This necessitates that governments implement and uphold legislation that prioritises citizen's rights over state convenience. Businesses must implement ethical processes that safeguard customer data and invest in secure technologies. Individuals must be knowledgeable about their rights and advocate for enhanced protections. Only by collaborative endeavour can we establish a digital ecology that is both

secure and respectful of privacy.

Contemporary Indian legislation on child protection

A crucial consideration when handling children's data is that data privacy rules are not the principal regulatory framework. Numerous Indian statutes are established to safeguard children from abuse and obscenity, among other concerns. The gathering and management of children' data in India are also delicate from a legal perspective.

The depiction of minors in an inappropriate manner may lead to penalties under various legal statutes: **The Bhartiya Nyaya Sanhita (BNS), 2023** which supersedes the Indian Penal Code, 1860, pertains to the distribution of obscene material, especially in relation to minors. Section 292 of the BNS prohibits the display or presentation of obscene materials. Moreover, Section 293 of the BNS explicitly addresses the sale, distribution, or dissemination of obscene materials to individuals under 18 years of age, enforcing more severe penalties for these violations. These measures emphasise India's dedication to protecting minors from dangerous content and ensuring that intermediaries or platforms responsible for such dissemination are legally accountable.

The Information Technology Act, 2000: The IT Act regulates digital and cyberspace in India. It stipulates the penalisation of anyone who produce, disseminate, or distribute prohibited photos of minors; and enable the internet exploitation of children. If any child-related content on an electronic device triggers these requirements, the responsible entity may face imprisonment and/or a fine.

The Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012 (hereafter referred to as 'the POCSO Act'): The POCSO Act is a particular statute designed to safeguard children against sexual offences, similar to the aforementioned laws. From a data protection standpoint, enterprises must recognise the regulations against the dissemination of prohibited material involving minors or the exploitation of minors for indecent portrayal. The POCSO Act adheres to the notion of absolute liability, meaning culpability exists regardless of intent or purpose. Engaging in or facilitating the perpetration of a crime under the POCSO Act, as well as the retention of content prohibited by the POCSO Act, constitutes a penal offence. Moreover, failing to report an offence under the POCSO Act is subject to penalties under specific conditions. Consequently, in the occurrence of a data breach involving children's data (e.g., leaked identifying images), a delay in notifying law enforcement may result in criminal liability.

The Personal Data Protection Act, 2023: A concerning element of global digital privacy legislation is the extensive power it frequently bestows upon governments. These authorities often encompass the acquisition and utilisation of sensitive personal information, including biometric data, financial particulars, and real-time geolocation tracking. The justification for these incursions generally pertains to enhancing administrative efficiency, optimising public service delivery, and bolstering national security. Access to biometric data is portrayed as a method to guarantee precise identity for subsidy distribution, whilst financial data is frequently referenced as essential for fraud prevention in governmental programs. Location data is positioned as an instrument for emergency response or crime deterrence. Although these reasons include some validity, the lack of rigorous protections fosters an environment conducive to misuse, wherein the extent and intent of data utilisation may extend in manners that violate persons rights.

To fulfil their original purpose without becoming tools of abuse, privacy laws must integrate essential safeguards. Clarity on the collection, storage, and utilisation of data is crucial. Citizens must be apprised of the objectives and extent of data collecting, with explicit constraints established to avert mission creep. The formation of independent regulatory agencies to oversee the enforcement of privacy rules is equally essential. These entities ought to be authorised to conduct audits of government agencies, investigate misconduct, and impose sanctions for infractions. Robust encryption protocols and data anonymisation methods must be required to mitigate the danger of misuse or breaches. Moreover, judicial supervision of surveillance operations can function as an essential restraint on the possibility of state excess.

Judicial Interpretation of Children's Privacy in India

The Indian judiciary has been essential in interpreting and protecting the right to privacy, especially with digital technology and their effects on minors. Although specific case law regarding children's digital privacy is few, comprehensive judicial interpretations of privacy rights under the Indian Constitution offer a strong foundation for tackling new difficulties in this domain.

Privacy as a Fundamental Right

The pivotal case of Justice *K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India*[1] (2017) established privacy as a fundamental right under Article 21 of the Constitution. The Supreme Court acknowledged the heightened sensitivity of children's data and underscored the state's duty to safeguard minors from exploitation in the digital domain. The ruling underscored the susceptibility of children in the digital world, establishing a benchmark for implementing rigorous protections for their personal information. In 2020, concerns about data-sharing practices of the Aarogya Setu app led to a petition that challenged its handling of personal data, particularly children's information. The petition raised critical issues around transparency and accountability in government-led digital initiatives, questioning the extent of data collection, storage, and sharing mechanisms. The lack of clarity in data usage policies and the potential for misuse underscored the vulnerabilities in large-scale digital platforms, especially when involving sensitive groups like children.

This case highlighted the pressing need for robust safeguards in digital data collection, particularly in large-scale government initiatives. It emphasized the importance of clear data protection policies, independent oversight, and stringent accountability measures to ensure that children's data is collected and processed ethically and securely. By drawing attention to these gaps, the case contributed to the broader discourse on privacy and data security in India, reinforcing the urgency for comprehensive legislation tailored to the unique needs of digital platforms involving children.

Reconciling Freedom of Expression with Privacy

In *Shreya Singhal v. Union of India*[2], the Supreme Court annulled Section 66A of the IT Act, citing its detrimental impact on free speech. Nevertheless, the ruling emphasised the necessity of safeguarding persons, particularly minors, from online threats. The verdict implicitly highlighted the necessity of reconciling freedom of expression with privacy protections, particularly for at-risk populations such as minors.

Protection from Exploitation

In *Avinash Mehrotra v. Union of India*[3], which ad-

dressed safety in educational institutions, the judiciary underscored the state's obligation to safeguard children from harm. Applying this view to the digital realm, courts could require proactive efforts to protect minors from data exploitation, detrimental content, and various digital hazards. A primary concern of privacy advocates is that the rise of social networking sites has fundamentally undermined the common law tradition's conception of ownership. The renowned edict by John Locke asserting that the fruits of one's labour constitute personal possession is contended to be obsolete in the era of Facebook and Myspace. The Lockean Proviso asserts that an individual who engages in labour on an object may assert at least partial ownership of it.

This, however, does not invariably apply to most second-generation social networks, where individuals continuously generate and augment the content available, yet the information is appropriated and placed under the ownership of multinational corporations. Furthermore, commentators have expressed concerns that teenagers, students, and business professionals have become increasingly deprived of their need for privacy due to these social networking platforms.

In reaction to these significant claims, the social networking sector asserts that its users do not prioritise privacy highly and make reasonable privacy decisions when online. This case is crucial since it represented a critical juncture in tackling regional privacy issues, especially in emerging nations such as India, where digital literacy is still progressing. The court highlighted the obligations of social media sites, emphasising the need for proactive efforts to create a safer digital environment for minors. The ruling highlighted deficiencies in current privacy standards and emphasised the necessity for cooperative initiatives among regulators, platforms, and stakeholders to safeguard children's rights in the digital environment. This case remains an important precedent for enhancing children's digital privacy in India and other developing countries.

Acknowledgement of Data Protection Requirements

The B.N. Srikrishna Committee Report[4] on data protection, although not judicially mandated, has significantly impacted legal debate by underscoring the necessity of safeguarding children's data. The judiciary has recognised these findings in forming its position, as evidenced by its dependence on expert testimonies in privacy-related issues. This decision indicates that Indian courts may support stringent laws concerning children's digital privacy.

Judicial Endorsement for Legislative Advancement

The judiciary has persistently advocated for legislative measures to tackle developing challenges. In *K.S. Puttaswamy*[5], the Supreme Court implored Parliament to legislate a comprehensive data protection statute. The Personal Data Protection Bill, 2019, although not yet enacted, has provisions aimed at defending children's privacy, demonstrating judicial apprehensions on the protection of vulnerable populations.

International Factors Affecting Judicial Interpretation

Indian courts frequently reference international jurisprudence and treaties. The United Nations Convention on the Rights of the Child (UNCRC), ratified by India, emphasises the significance of safeguarding children's privacy. The judiciary has cited global norms in the interpretation of domestic laws, particularly in issues concerning child labour, trafficking, and education. This trend suggests possible judicial

endorsement for aligning Indian digital privacy legislation with global best practices.

Judicial interpretations in India emphasise the necessity of safeguarding children's privacy as a fundamental right, consistent with constitutional principles and international obligations. By leveraging existing precedents and advocating for stricter regulatory frameworks, the judiciary can play a transformative role in addressing the emerging challenges of children's digital privacy. As technology advances, courts will probably persist in formulating regulations that reconcile innovation with the necessity of protecting children in the digital era.

Children are particularly vulnerable as they often lack the capacity to understand or consent to complex data practices. This paper investigates the emerging challenges in protecting children's digital privacy and proposes strategies for mitigating these risks through policy, education, and technology.

Data Collection and Profiling

Online platforms routinely collect personal data from children, including behavioural, biometric, and location data, to drive targeted advertising. Such practices risk manipulating children's preferences and behaviours and may lead to long-term data misuse. In India, the *Information Technology (Reasonable Security Practices and Procedures and Sensitive Personal Data or Information) Rules, 2011* under the IT Act, impose certain obligations on entities collecting sensitive data. However, enforcement lacks robustness when it comes to children. The absence of specific regulations akin to the United States' COPPA highlights a regulatory void. In the case of *Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India*[6], the Supreme Court of India recognized privacy as a fundamental right under Article 21. These ruling underscores the need to protect children's data privacy against profiling and misuse.

Inadequate Regulatory Frameworks

India's legislative framework for children's digital privacy remains underdeveloped. While the *Personal Data Protection Bill, 2019* aimed to address children's data protection, it has faced delays in enactment. The Supreme Court's ruling in *K.S. Puttaswamy v. Union of India*[7] has also emphasized the need for stringent privacy protections, setting a precedent for legislative action. The lack of unified global standards and enforcement mechanisms exacerbates inconsistencies in safeguarding children's digital privacy.

Exposure to Harmful Content

Algorithms used by social media platforms often expose children to inappropriate content, adversely impacting their mental and emotional well-being. The case of *Shreya Singhal v. Union of India*[8], which struck down Section 66A of the IT Act for being overly broad and vague, highlights the challenges in regulating online content. Although this decision protects freedom of speech, it underscores the need for balanced mechanisms to shield children from harmful content.

Parental and Educational Gaps

Parental and educational awareness is critical for protecting children online. However, the lack of digital literacy among parents and educators in India leaves children vulnerable. In *Avinash Mehrotra v. Union of India*[9], the Supreme Court emphasized the importance of safety in education, which can be extended to include digital safety measures. Digital literacy initiatives, such as those promoted by the Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY), must include specific modules for protecting children online.

Emerging Technologies

Emerging technologies like virtual reality (VR) and artificial intelligence (AI) introduce new privacy challenges by collecting more intrusive forms of data. Indian law currently does not adequately regulate these technologies. The *B.N. Srikrishna Committee Report*[10] on data protection highlighted the need to address technological advancements and their impact on privacy, emphasizing children's data as a priority area for protection.

Regulatory Measures

Regulatory efforts such as the *Children's Online Privacy Protection Act (COPPA)* in the United States and the *General Data Protection Regulation (GDPR)* in the European Union include specific provisions for children. COPPA mandates verifiable parental consent for collecting data from children under 13, while the GDPR requires higher standards for processing children's data and encourages age-appropriate transparency. Additionally, the UK's *Age-Appropriate Design Code (Children's Code)* further enhances these protections by requiring privacy by design for children's services.

While these frameworks establish foundational safeguards, they face challenges in enforcement due to the global nature of digital platforms. Cross-border jurisdiction issues, inadequate penalties, and lack of awareness among parents and service providers limit their effectiveness. For example, COPPA's age limit of 13 does not cover adolescents who are also vulnerable. In India, the lack of a dedicated law for children's digital privacy highlights a critical gap, though the *Personal Data Protection Bill* and Supreme Court rulings provide a basis for future legislation.[11]

Technological Solutions: Parental control software, such as Qustodio and Norton Family, allows parents to monitor and restrict children's online activities. PETs, including data anonymization tools, encryption, and AI-driven content filtering, protect children's data and prevent profiling.

AI-driven content moderation tools, such as those implemented by social media platforms, identify and restrict harmful or inappropriate content. However, biases in AI algorithms and their susceptibility to circumvention pose ongoing challenges.

Education and Awareness

Initiatives like UNESCO's *Media and Information Literacy* and government-backed programs in countries like Singapore emphasize teaching children, parents, and educators about online safety, privacy, and ethical internet use.

Collaboration among governments, schools, and private entities is critical. Public-private partnerships, such as Google's *Be Internet Awesome* program, provide resources and tools for educating children about safe internet practices. Similarly, India's *Digital India* initiative includes components focused on spreading awareness of digital security. While regulatory measures, technological solutions, and educational initiatives provide essential safeguards, their combined effectiveness depends on global cooperation, robust enforcement, and continuous adaptation to technological advancements. Policymakers must focus on addressing gaps in enforcement, integrating cutting-edge technology, and fostering a culture of digital literacy to ensure children's safety and privacy in the digital age.

Strengthening Regulatory Frameworks

Establishing a unified set of global standards for children's digital privacy would ensure consistent protections across jurisdictions. Initiatives like the United Nations' efforts toward international cooperation on privacy can serve as a foundation. India can leverage frameworks such as the *Personal Data Protection Bill*

by aligning it with global benchmarks like GDPR and COPPA to fill gaps in its current regulatory landscape.

Stricter penalties for violations, coupled with robust enforcement mechanisms, are critical. This includes empowering national data protection authorities with greater oversight and resources to monitor compliance and impose penalties for non-compliance effectively. Case studies from GDPR fines highlight the importance of consistent and visible enforcement in driving compliance.

Promoting Privacy-First Design: Developers should integrate privacy into the design phase of products and services targeting children. This involves minimizing data collection, anonymizing data wherever possible, and building tools for age-appropriate user interfaces. For instance, platforms like YouTube Kids implement simplified privacy controls, but broader adoption of such practices is needed. Introducing compulsory data protection impact assessments (DPIAs) for platforms catering to children ensures that risks are evaluated and mitigated before deployment. These assessments should cover data minimization, content moderation, and compliance with age-specific requirements.

Empowering Parents and Educators: Parents and educators require structured programs on digital literacy to navigate privacy risks effectively. Initiatives like Google's *Be Internet Awesome* and *CyberSmart* programs in India can serve as templates for scalable training programs.

Equipping parents with user-friendly tools for monitoring their children's online activities without violating trust is essential. Advanced parental control apps should offer real-time alerts and intuitive dashboards to empower parents without overstepping boundaries.

Leveraging Technology for Privacy: AI can be instrumental in identifying and mitigating privacy risks, such as detecting inappropriate data collection or harmful content exposure. However, transparency in AI algorithms is crucial to prevent unintended biases. Platforms like TikTok have started using AI for content moderation, demonstrating the potential of such solutions.

Promoting open-source tools tailored for children's privacy ensures transparency and customization. Governments and NGOs should fund the development and dissemination of these tools to make them accessible to all socioeconomic groups.

Conclusion

The digital privacy of children is a significant issue in today's interconnected society, requiring a thorough and diversified strategy. A synthesis of regulatory reforms, privacy-centric technical design, educational enhancement, and sophisticated technological solutions is essential for tackling the intricate difficulties presented by widespread digital connectedness. Policymakers must strive to unify worldwide privacy rules and enhance enforcement mechanisms to ensure uniform protections for minors.

The difficulty resides in reconciling the state's legitimate objectives with the fundamental right to privacy. Privacy is not simply an abstract concept; it is fundamental to individual liberty and dignity. It guarantees individuals the freedom to express themselves, associate with preferred companions, and participate in activities without the apprehension of unjust inspection. The erosion of privacy undermines fundamental liberties, engendering a chilling effect that suppresses creativity, protest, and the free interchange of ideas. The ramifications of such an atmosphere are extensive, eroding the foundational principles of democratic countries.

Developers must concurrently include privacy-by-design principles into child-focused technology and do obligatory impact evaluations to guarantee safety and compliance. Equipping parents and educators with comprehensive digital literacy programs and real-time monitoring technologies will enable them to successfully guide children's online activities. Cutting-edge technologies, including AI-based privacy solutions and open-source tools, present intriguing opportunities for improving protections while ensuring transparency and accessibility.

The transition from screens to protections necessitates cooperative endeavours among governments, developers, educators, and parents. By rectifying legislative deficiencies, enhancing awareness, and utilising emerging technology, society can establish a safer, equitable digital landscape that prioritises the well-being and rights of children.

The path presents numerous challenges, including enforcement discrepancies, swift technological improvements, and socio-cultural obstacles, making the stakes too significant to overlook. Safeguarding children's digital privacy involves not just risk mitigation but also promoting responsible technology interaction, enabling the future generation to traverse the digital landscape securely and assuredly. The dedication to protecting children's privacy today will influence a future that honours their rights and fosters their whole development in a more digital society.

References

1. Banerjee, P. (2016). "The Legal Aftermath of Striking Down Section 66A: Challenges Ahead." *Economic and Political Weekly*, 51(7), 56-62.

2. Chander, A., & Lê, U. P. (2016). "Free Speech and the Internet in India: The Legacy of Shreya Singhal." *Georgetown Journal of International Affairs*, 17(1), 80-88.

3. Kumar, A. (2015). "Shreya Singhal vs. Union of India: Free Speech in the Digital Age." *Indian Journal of Constitutional Law*, 9(2), 345-361.

Rajagopal, K. (2015). "A Landmark Ruling on Free Speech." *The Hindu*.

Books

1. Choudhry, S., Khosla, M., & Mehta, P. B. (Eds.). (2016). *The Oxford Handbook of the Indian Constitution*. Oxford University Press.

2. Nariman, F. S. (2017). *Constitutional Questions and Citizen's Rights*. Penguin Random House.

Solove, D. J. (2021). *Understanding Privacy in the Digital Age*. Aspen Publishers.

Reports and Papers

1. Centre for Communication Governance at NLU Delhi (2016). *Impact Analysis of Shreya Singhal v. Union of India*.

2. Internet Freedom Foundation (IFF) (2020). *Free Speech and the Internet in India: A Post-66A Perspective*.

3. Law Commission of India (2017). *Report No. 267: Hate Speech. (Discusses the broader implications of the Shreya Singhal judgment on hate speech laws in India.)*

United Nations Human Rights Council (2018). *Freedom of Expression and the Internet: Global Perspectives*.

Online Resources

Internet Freedom Foundation. *Resources on Freedom of Speech in India Post-66A.* InternetFreedom.in.
PRS Legislative Research. *Analysis of Section 66A and Related Provisions in IT Act.* PRSIndia.org.

Supreme Court of India. *Judgment of Shreya Singhal v. Union of India (2015).* Available on SCC Online.

*****

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी । शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा स इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं । UGC CARE LISTED हिन्दी की स्तरीय पत्रिका नागफनी के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा । जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं उसमें निम्नोक्त बिंदु आवश्यक हैं जैसे-

1.सरांश
2. विषय वस्तु / बीज शब्द
3.भूमिका / प्रस्तावना
4. मुख्य अंश / उद्देश्य
5. परिणाम / निष्कर्ष
6. सन्दर्भ
7. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 । इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा ।
8. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा ।

मैं ..... सत्यापित करता/करती हूँ की नागफनी के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक.....मौलिक एवं अप्रकाशित है स लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य है । किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा / रहूँगी । साथ ही प्रस्तूत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमिटी को संशोधन, संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता / जताती हूँ । शोधालेख प्रकाशित-अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है । स्तरीयता एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा । उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर :-

नाम:-

मोबाइल नं. :-

व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी । शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा । इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords
2. Objectives
3. Conclusions
4. References
5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

UNDERTAKING BY AUTHOR

I———— certify/undertake to say that the manuscript entitled————submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:



अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com